आयुर्वेद सारसंग्रह

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

• कोलकाता • पटना • झाँसी • नागपुर • नैनी (इलाहाबाद

बैद्यनाथ



बैद्यनाथ के संस्थापक
वैद्य पं. रामनारायणजी शर्मा को
समर्पित

आयुर्वेद- सारसंग्रह

आयुर्वेदीय औषधियों के निर्माण, प्रयोग
और
गुणधर्मों का विशद विवेचन

: प्रकाशक :

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रायव्हेट लिमिटेड

कोलकाता ❖ पटना ❖ झांसी ❖ नागपुर ❖ नैनी (इलाहाबाद)

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रायव्हेट लिमिटेड
ग्रेट नाग रोड, नागपुर- 440024
(महाराष्ट्र)

(रजि. कार्यालय: 1 गुप्ता लेन, कोलकाता-6)

प्रथम संस्करण से षड्विशंम् संस्करण सन 2017 तक
मुद्रित प्रतियाँ एक लाख तिरासी हजार
(1 लाख 83 हजार)
संवत् 2074

नया संस्करण: 6,000 प्रतियाँ
दिंसम्बर, सन्– 2023
संवत् 2080

मूल्य: 475.00 रू. सिर्फ
(चार सौ पचहत्तर रुपये)

मुद्रक:
शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.
बैद्यनाथ भवन, ग्रेट नाग रोड, नागपुर–24

भूमिका

शरीर, इन्द्रिय, सत्व (मन) और आत्मा का संयोग है। आयु या जीवन और इस (जीवन या आयु) का शास्त्र (आयुषो वेद:) यह आयुर्वेद मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास का ही शास्त्र है। फिर इसकी सीमा कैसी?

' न हयस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम्। तस्मादप्रमत्त: अभियोगेऽस्मिन् गच्छेत् अमित्रस्यापि बच: यशस्यं आयुष्यं श्रोतव्यमनुविधातव्यंच XXX।।'

इस अनन्त आयुर्वेद का सार-संग्रह करने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है। प्रसन्नता की बात है कि उद्धृत पंक्तियों में आयुर्वेद का जो उदार दृष्टिकोण प्रतिपादित है, उसे "बैद्यनाथ प्रकाशन" ने प्रारम्भ से ही निभाया है और बैद्यनाथ-प्रकाशन से प्रकाशित अन्य मौलिक ग्रन्थों के समान प्रस्तुत संग्रह में भी वही दृष्टिकोण अपनाया गया है। "धन अथवा सुख के लिए नहीं, अपितु प्राणियों के प्रति करुणा के उद्देश्य से" "आदानं हि बिसर्गाय सतां वारिमुचामिच" सरीखे अपने प्राचीन आदर्श पर चल कर यह संस्था गत 77 वर्षों से आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार का अत्यंत स्तुत्य कार्य कर रही है। औषधियों के निर्माण और विक्रय में ही संलग्न न रह कर यह संस्था आयुर्वेद के अध्ययन और चिकित्सा व्यवसाय को भी देश में बराबर प्रोत्साहन देती रहती है।

मौलिक साहित्य का निर्माण जहाँ आवश्यक है, वहाँ साहित्य-संकलन का कार्य भी किसी प्रकार से कम आवश्यक नहीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद औषध योगों के निर्माण एवं उपयोग का सरल-सुबोध वर्णन है। यह पुस्तक आयुर्वेदीय साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने के साथ-साथ चिकित्सकों के लिये भी सहायक सिद्ध होगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

इस बृहद् पुस्तक में सर्वप्रथम परम उपयोगी सांकेतिक तथा रासायनिक पारिभाषिक शब्दों तथा आयुर्वेदीय औषध निर्माण में प्रयुक्त होने वाले यन्त्रों एवं पुटों का विशद वर्णन किया गया है। औषध की कृतकार्यता बहुत कुछ अनुपान पर निर्भर करती है। अत: अनुपान की व्याख्या तथा रोगानुसार संकेत कर रस-प्रकरण प्रारंभ किया गया है। इस (रस-प्रकरण) में रस-उपरस, धातु-उपधातु, रत्न-उपरत्न एवं विष-उपविष प्रभृति के शोधन-मारण, गुण-धर्म एवं प्रयोग-विधि की विस्तृत व्याख्या तथा आयुर्वेद एवं यूनानी वैद्यक में प्रयुक्त होनेवाली सभी प्राणिज, खनिज एवं उद्भिज्ज द्रव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इसके बाद विविध प्रान्तों में प्रयुक्त होनेवाले चुने हुए आयुर्वेदीय तथा यूनानी योगों के निर्माण एवं प्रधान गुणों के दिग्दर्शन कराते हुए विविध रोगों में उनकी प्रयोग-विधि का स्पष्टीकरण किया गया है। कषाय चूर्ण, बटिका, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, अवलेह-पाक, लौह, गुग्गुलु, मलहम आदि की निर्माण-विधि एवं गुण-धर्म लिखे गए हैं। सिद्ध योगों के वर्णन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि पाठ-भेदों का भी यथासाध्य सकारण वर्णन हो। इस प्रकार यह पुस्तक चिकित्सकोपयोगी तथा सभी औषध-प्रयोगों के भण्डार है, जो चिकित्सकों के लिये बड़ा सहायक है। ऐसी सुन्दर पुस्तक प्रकाशित करने के लिए मै।, "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

लिमिटेड'' के संचालकों को धन्यवाद देता हूँ और आयुर्वेदोन्नति के लिए उनकी सभी योजनाओं में सफलता की कामना करता हूँ।

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आयुर्वेदीय अन्वेषण की दिशा में ''श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड'' ने एक नया कदम उठाया है और यह शीघ्र ही एक अन्वेषणालय प्रयोगशाला तथा आतुरालय स्थापित करने जा रहा है। वनस्पति अन्वेषणों के लिए काशी विश्वविद्यालय के वनस्पतिशास्त्रवेत्ताओं की अध्यक्षता, में कार्य प्रारम्भ भी हो गया है। मुझे विश्वास है कि अन्य आयुर्वेदीय प्रतिष्ठान भी इस संस्था का अनुकरण कर आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार में हाथ बटाएँगे।

वैद्य रामरक्ष पाठ

अयोध्या शिवकुमारी
आयुर्वेदीय कॉलेज-बेगूसराय

❖❖❖

संस्करण की विशेषता

समयाभाव के कारण कुछ महत्वपूर्ण चिकित्सोपयोगी विषयों का सन्निवेश पिछले संस्करणों में नहीं हो सका, पंचम संस्करण में यथाशक्य उन सब विषयों का सन्निवेश कर इस पुस्तक को आयुर्वेद-प्रेमीजनों एवं चिकित्सकों के लिए अत्याधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। जैसे परिभाषा-प्रकरण में ''अभाव द्रव्यों के स्थान पर प्रतिनिधि द्रव्यों की योजना,'' ''गौण और प्रतिनिधि द्रव्यों की सूची''। सम्प्रति सरकार ने दाशमिक प्रणाली की माप-ताल प्रचलित की है और वैद्यों से लेकर सर्वसाधारण जनता को इसी का व्यवहार करना पड़ता है। ऐसी दशा में आयुर्वेदीय प्राचीन मान-परिभाषा या सेर, छटाँक, मन, तोला आदि का अब कोई महत्व नहीं रहा, इसलिए इस पुस्तक में प्राचीन तौलों का अर्थात् मन,सेर, छटाँक, तोला आदि का दाशमिक (मेट्रिक) मान (तौल) के साथ तुलनात्मक विवरण करके दिखाया गया है। इससे पाठकों को अत्याधिक लाभ होगा। इसके अतिरिक्त पारद-संस्कार, कूपीपक्व रसायन, अर्क आदि बनाने के लिए अनेक नव्य-प्राचीन यन्त्रों का भी उल्लेख किया गया है। आयुर्वेदीय औषधियों के निर्माण में काम आनेवाली अनेक वानस्पतिक, खनिज, प्राणिज आदि औषधियाँ ऐसी होती है, जिनका उपयोग विषाक्त होने के कारण बिना शोधन किये नहीं किया जा सकता। अत: ''द्रव्य-शोधन-प्रकरण'' नामक प्रकरण भी बढ़ाया गया है। इसके अतिरिक्त शोधन-मारण-प्रकरण, रस-रसायन, कूपीपक्व, आसवारिष्ट, चूर्ण, बटी, अवलेह, लौह, गूगल, पर्पटी, घृत, तैल आदि प्रकरणों में भी यंत्र-तंत्र संशोधन-परिवर्द्धन किया गया है। प्रकरणानुसार ''श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.'' की निर्माणशालाओं में स्वतन्त्र रूप से निर्मित होनेवाले जो बहु-प्रशंसित एवं सद्य: फलदायिनी औषधियाँ हैं, जैसे-सिद्ध मकरध्वज स्पेशल, च्यवनप्राश स्पेशल, जीवन कल्प, सुन्दरी कल्प आदि का उल्लेख जनकल्याणार्थ किया गया है। आयुर्वेदीय चिकित्सक अर्क, शर्बत, प्रवाही क्वाथ, क्षार-लवण-सत्व आदि का उपयोग कर सर्वसाधारण को लाभान्वित करें, इस दृष्टि से इन सबों का पृथक-पृथक प्रकरण के रूप में स्वतन्त्रतया उल्लेख किया गया है। इस प्रकार, पंचम संस्करण गत संस्करणों की अपेक्षा विशेष उपयोगी बना है। इसकी छपाई, सफाई, गेट-अप आदि भी पूर्वापेक्षा अति सुंदर है। इतना होते हुए भी मूल्य में कोई विशेष वृद्धि नहीं की गई है। आशा है पूर्व संस्करणों की तरह प्रस्तुत संस्करण का भी आयुर्वेद-प्रेमी पाठक सोत्साह स्वागत करेंगे।

रामदयाल जोशी रामनारायण वैद्य
मैनेजिंग डायरेक्टर
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.

रामनवमी

ता. 20-4-64

संस्करण का प्रशासकीय निवेदन

आयुर्वेद-प्रेमीजनों की गुणग्राहकता की प्रशंसा करते हुए एवं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है, क्योंकि उन्होंने आयुर्वेद-सारसंग्रह ग्रन्थ को हृदय से अपनाकर उसकी बड़ी उपयोगिता सिद्ध की है। यही कारण है कि इतने स्वल्प समय में ही इस ग्रन्थ का छठा संस्करण भी समाप्त हो गया है और ग्राहकों की दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई मांग के कारण यह प्रस्तुत सप्तम संस्करण प्रकाशित किया गया है। ग्राहकों की शीघ्रता के कारण इस सप्तम संस्करण के कलेवर में कोई परिवर्द्धन नहीं किया जा सकता है और षष्ठ संस्करण की तरह सप्तम संस्करण का पुनर्मुद्रण मात्र किया गया है। हां, इतना अवश्य किया गया है कि षष्ठ संस्करण के कम्पोजिंग और प्रूफसंशोधन आदि में हुई त्रुटियों को यथासम्भव परिमार्जन इस सप्तम संस्करण में करा दिया गया है। फिर भी विद्वान पाठकों की दृष्टि में कहीं कोई त्रुटि अनुभव हो, तो उसके सम्बन्ध में हमें अवश्य सूचित करने की कृपा करें ताकि अगले संस्करण में उसको भी दूर किया जा सके।

इस ग्रन्थ की उपयोगिता के सम्बन्ध में हमें यह सूचित करते हुए अतीव हर्ष है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेद फार्माकोपिया कमेटी के गुणग्राही सदस्यों ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता को समझकर इसे आयुर्वेद फार्माकोपिया ग्रन्थों की सूची में सम्मिलित करने का निश्चय किया है। इससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता और प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि हुई है।

आशा है, आयुर्वेदिक चिकित्सकगण और औषध-निर्माता-प्रतिष्ठान इस ग्रन्थ का अधिकाधिक उपयोग कर लाभ उठायेंगे और उत्तम कोटि के आयुर्वेदिक ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रति हमारे उत्साह को बढ़ाने का अनुग्रह करेंगें।

निवेदक
रामनारायण वैद्य हजारीलाल शर्मा
मैनेजिंग डायरेक्टर
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.

नागपुर
ता. - 26-1-69

षड्विंशम् संस्करण का प्रकाशकीय निवेदन

पंचविंशम् संस्करण की मांग की अधिकता के कारण स्टाक समाप्त हो जाने से षड्विंशम् संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। आयुर्वेद जगत में लोकप्रिय होने के कारण इस ग्रन्थ को काफी सराहा गया है। इस संस्करण में मुद्रण दोष न रहे, ऐसा हमारा प्रयास रहा है।

आशा है, गुणग्राही वाचकों का प्रेम यथावत बना रहेगा।

नागपुर प्रकाशक

ता. 10-08-2017

सप्तविंशम् संस्करण का प्रकाशकीय निवेदन

सर्वजनोपयोगी आयुर्वेद सार संग्रह का सप्तविंशम् संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ आयुर्वेद चिकित्सकों एवं विद्यार्थियों द्वारा बहुत ही समाहत किया गया। जिसके फलस्वरूप षड्विंशति संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया। ग्रन्थ की मांग उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। अतः इसका सप्तविंशम् संस्करण गुणग्राही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर ग्रन्थ के प्रति उसकी सराहना को हम हृदय से ग्रहण करते है। इस संस्करण में अभाव द्रव्यों एवं प्रतिबंधित द्रव्यों का विचार कर संशोधन किया गया है। हम आशा करते हैं कि पाठकों का स्नेह हम पर पूर्ववत बना रहेगा। वे इस ग्रन्थ का अध्ययन एवं मनन कर हमें प्रकाशन के प्रति उत्साहित करने का अनुग्रह करेंगे।

नागपुर
ता. 20-12-2023

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि.
नागपुर

प्रकरण-सूची

विषय-सूची

❖❖❖

सहायक पुस्तकों की सूची

१. अनुपान तरंगिणी (अ.त.)
२. आयुर्वेद प्रकाश (आ.प्र.)
३. आयुर्वेदीय विश्वकोष (आ.वि.को.)
४. आरोग्य-प्रकाश
५. औषधगुण धर्मशास्त्र (औ.गु.ध.शा.)
६. खनिज विज्ञान (ख.वि.)
७. गदनिग्रह (ग.नि.)
८. चरक
९. चक्रदत्त
१०. चिकित्साचन्द्रोदय (चि.चं)
११. द्रव्यगुणविज्ञान (द्र.गु.वि.)
१२. धन्वन्तरि
१३. धन्वन्तरि निघण्टु (ध.नि.)
१४. धात्वंक
१५. बृ. निघण्टु रत्नाकर (बृ.नि.र.)
१६. बृ. योगतरंगिणी (बृ.यो.त.)
१७. भारतभैषज्यरत्नाकर (भा.भै.र.)
१८. भावप्रकाश (भा.प्र.)
१९. भैषज्यरत्नावली (भै.र.)
२०. योगचिन्तामणि (यो.चि.)
२१. योगतरंगिणी (यो.त.)
२२. योगरत्नाकर (यो.र.)
२३. रसकामधेनु (र.का.ध.)
२४. रसचंडायु (र.च.)
२५. रस तन्त्रसार (र.त.सा.)
२६. रस तरंगिणी (र.त.)
२७. रस-भस्म सेवन-विधि
२८. रसयोगसागर (र.यो.सा.)
२९. रसरत्नसमुच्चय (र.र.सं.)
३०. रसेन्द्रसारसंग्रह (र.सा.सं.)
३१. रसराजसुन्दर (र.रा.सु.)
३२. रसविज्ञान (र.वि.)
३३. रसायनसार (र.सा.)
३४. वनौषधि-चंद्रोदय (व.चं.)
३५. वसवराजर्याम् (व.रा.)
३६. वाग्भट
३७. वैद्यकल्पद्रुम (वै.क.द्रु.)
३८. वैद्यचिन्तामणि (वै.चि.)
३९. वंगसेन
४०. शार्गंधरसंहिता (शा.ध.सं.)
४१. सिद्धभेषजमणिमाला (सि.भे.म.मा.)
४२. सिद्धयोगसंग्रह (सि.यो.सं.)
४३. हारीतसंहिता (हा.सं.)

।। श्री धन्वतरये नमः ।।

आयुर्वेद- सारसंग्रह

मंगलाचरण

ध्यात्वा शिवं परमतत्वविचारवेद्यम्,
गौरमभीष्टऊलदां सगणं गणेशम्।
धन्वन्तरिं नृपवरं मुनिसुश्रुतादीन्,
आत्रेयमुग्रतपसम् शिरसा नमामि।।

ग्रन्थ-प्रयोजन

प्रसिद्धयोगाः मुनिभिः प्रयुक्ताच्चिकित्सकैये बहुशोऽनुभूताः।
विधीयते वैद्यवरेण तेषाम्, सुसंग्रहः सज्जनरञ्जनाय।।

चरकादि मुनियों द्वारा जो प्रसिद्ध योग प्रयोग में लाये गये हैं तथा जिन प्रयोगों का चिकित्सकों द्वारा अनेक बार प्रयोग कर अनुभव कर लिया गया है, ऐसे ही प्रयोगों का संग्रह करके सज्जनों (वैद्यजनों) के आनन्द के लिए यह ग्रन्थ लिखा जाता है।

परिभाषा -प्रकरण

औषधि-संग्रह

आजकल के वैद्य दवाइयाँ पन्सारियों से लेते हैं, जो वनस्पति-शास्त्र का ज्ञान नहीं रखते। हाँ, अर्थ-शास्त्र का ज्ञान अवश्य रखते हैं। हमारे वैद्य-बन्धुओं में आलस्य की मात्रा ज्यादा आ गई है, यदि वे (वैद्यगण) जंगलों में जाकर स्वयं वनस्पति-संग्रह करें तो अपनी दवा भी उत्तम बना लें और बची हुई वनस्पतियों को बेचकर अर्थ प्राप्ति भी कर सकते हैं।

आयुर्वेदीय दवाइयाँ तो प्रकृति स्वयं पैदा करती है, इनका तो संग्रह ही करना पड़ता है। हाँ, एक कठिनाई जरूर है कि सब दवाएँ एक जगह पैदा नहीं होतीं। जैसे- उड़ीसा में कुचला के जंगल हैं, तो दार्जिलिंग में (सिंगीमोहरा श्रृंगिक) विष सैकड़ों मन मिलता है। राजपूताना में इन्द्रवारूणी बहुत मिलती है; चिरायता, कुटकी, पिपलामूल, नेपाल की तराई में हजारों मन मिलता है। वैद्यों का कर्त्तव्य है कि जिस स्थान में जो वनस्पति अधिक मात्रा में पैदा होती है, उसको वहीं से संग्रह करके काम में लाएँ और बची हुई को विश्वासी आयुर्वेदीय औषधि-निर्माताओं के हाथ में बेच दें। इस प्रकार वैद्यबंधु सिर्फ परिश्रम मात्र से अपना और आयुर्वेद-जगत् का कल्याण कर सकते हैं।

औषधि-संग्रह-काल

कौनसी दवा किस ऋतु में ग्रहण करनी चाहिए- यह निश्चित नहीं है। हजारों की संख्यावाली वनस्पतियों का निश्चित काल होना भी कठिन है, तथापि एक सामान्य समय शास्त्रकारों ने निर्णय किया है।

सुश्रुत के मतानुसार- प्रावृट् ऋतु में मूल, वर्षा में पत्र, शरद में छाल, वसन्त में सार और ग्रीष्म में फल संग्रह करना चाहिये, परन्तु यह मत ठीक नहीं है। जो औषधियाँ सौम्य (मधुर, तिक्त और कषाय रसवाली) हों उनको सौम्य (वर्षा, शरद और हेमन्त) ऋतु में संग्रह करना चाहिए। सौम्य औषधियाँ सौम्य गुणाधिक भूमि से और सौम्य ऋतुओं में लेने से अति लघु, स्निग्ध और शीत गुणवाली होती हैं। इसी प्रकार आग्नेय औषधियों को विन्ध्याचल आदि उष्ण स्थानों से उष्ण ऋतु में संग्रह करना चाहिये। समान गुणवाली ऋतु में संग्रहीत औषधि अव्यापन्न तथा अधिक रस-वीर्यवाली होती है।

राज निघण्टु में लिखा हैं- हेमन्त ऋतु में लिया हुआ कन्द, शिशिर में लिया हुआ मूल, वसन्त में लिया हुआ पुष्प और ग्रीष्म में लिया हुआ पत्र गुणकारक होता है। शरद्काल में लिये औषधिद्रव्य नये, ताजे और सरस लेने चाहिये। यदि नये न मिलें, तो जिनको लाये हुए एक साल न बीता हो, ऐसे उत्तम द्रव्य के स्वाभाविक रस-गन्ध-वर्ण (रंग) आदि न बदले हो, ऐसे उत्तम द्रव्य काम में लेने चाहिए। औषधि के लिए गुड़, धान्य, घी, शहद एक साल के ऊपर के लेने चाहिए।

शार्ङ्गधर कहते हैं- समस्त कार्यों के लिए रसयुक्त औषधियाँ शरद् ऋतु में ग्रहण करें, परन्तु वमन और विरेचन की औषधियाँ वसन्त ऋतु के अन्त में ग्रहण करनी चाहिए।

भूमि-विशेष से औषधियों के गुण

पृथ्वी और जल के गुणों की अधिकता वाली भूमि से विरेचक (अधोभागहर) द्रव्य लेने चाहिए। अग्नि, वायु और आकाश के गुणों की अधिकतावाली भूमि से वामक (ऊर्ध्व भागहर) द्रव्य लेने चाहिए। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के गुणों की अधिकता वाली भूमि से उभयतोभागहर द्रव्य लेने चाहिए और आकाश के गुणों की अधिकतावाली भूमि से संशमन द्रव्य लेने चाहिए। इस प्रकार ली गई औषधियाँ अधिक गुणवाली होती हैं।

औषधि-द्रव्य लाने के बाद उनको छाया में या मन्द धूप में सुखाकर भेषजागार (गोदाम) में रखना चाहिए। वनस्पति संग्रहालय (गोदाम) स्वच्छ स्थान में तथा पूर्व या उत्तर की ओर द्वार वाला होना चाहिए। जहाँ औषध-द्रव्य रखें जायँ, वह स्थान खुला न हो तथा जहाँ अग्नि, जल, भाप, धुआँ, धूल, चूहे और चौपाये न आ सकें ऐसा तथा साफ होना चाहिए, ऐसे स्थानों में औषध द्रव्यों को उनके अनुरूप अच्छे पाट के थैले, मिट्टी के बरतन आदि पात्रों में बंद करके लकड़ी के तख्तों के खटालों या खूंटे-छींके आदि पर रखना चाहिए।

इन स्थानों की दवा नहीं लेनी चाहिए

साँप की बिल (बॉबई), दुषित स्थान, जल से गीले (सील वाले) हुए स्थान अर्थात् जिन स्थानों के आसपास में बराबर जल भरा हुआ रहता हो, उनमें उत्पन्न हुई तथा श्मशान (जहाँ मुर्दे जलाये या गाडे जाते हों) ऊषर (जहाँ रेह-ऊस ज्यादा निकलती हों), अथवा जिस जमीन पर घास-फूस पैदा नहीं होती हो, और सड़क आदि पर उत्पन्न हुई औषधियों का संग्रह नहीं करना चाहिए। कीड़ों से व्याप्त और अग्नि या पाला से जो औषधियाँ झुलस गई हों, उन्हें भी नहीं लें, क्योंकि ये औषधियाँ उचित गुण करने-वाली नहीं होती हैं।

स्थानों की विशेषता

हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने वाली दवाइयाँ श्रेष्ठ और ठंडी होती हैं। विन्ध्याचल पर्वत पर उत्पन्न होनेवाली दवाइयाँ श्रेष्ठ होती हैं, परन्तु गर्म होती हैं। यह शास्त्र का महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

हमारा ऐसा अनुभव है कि आसाम, बंगाल, उड़ीसा आदि आनूपदेशों में उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ गुणों में कमजोर होती हैं। बिहार, नेपाल की तराई तथा विन्ध्याचल में पैदा होनेवाली वनस्पतियाँ मध्यम श्रेणी की होती हैं। हिमालय में पैदा होनेवाली वनस्पतियों को श्रेष्ठ समझना चाहिए। पंजाब और राजपूताने में उत्पन्न हुई वनस्पतियाँ भी अच्छी होती है। जिस प्रदेश के अन्न और शाक आदि में स्वाद, गंध और सार पदार्थ अधिक हो, उस प्रदेश की वनस्पतियाँ उत्तम होती है। हिमालय की महिमा बहुत है। वास्तव में हिमालय में पैदा हुई वनस्पतियाँ उत्तम होती हैं। ब्राह्मी हिमालय के अतिरिक्त स्थानों में भी पैदा होती है, परन्तु गुण में उसके सामने कुछ भी नहीं होती। आजकल वैद्य लोग जितनी भी वनस्पतियाँ व्यवहार करते हैं, वे प्राय: अपने आसपास की ही अधिक होती हैं। यह तो व्यावहारिक बात है कि जहाँ जो चीज पैदा होती है, वहाँ के वैद्य या औषध-निर्माता वहीं की औषधियाँ अधिक व्यवहार करते हैं।

जैसे बंगाल के औषध निर्माता वहीं की औषधियों से सब दवा बनाते हैं, और जो औषधियाँ वहाँ नहीं होती, वे अपने समीपवर्ती स्थान से ले ली जाती हैं, परंतु सभी द्रव्यों के विषय में यह सुविधा हमारी दृष्टि में अच्छी नहीं है, क्योंकि आजकल जब यातायात की सुविधानुसार 10-10

हजार मील दूर की दवा मँगाकर लोग व्यवहार करते हैं, तो भारतवर्ष में पैदा होनेवाली दवाओं के लिए असुविधा ही क्या हैं? अत: जो चीज जिस प्रदेश के जलवायु में उत्तम क्वालिटी की उत्पन्न होती हो, उसे वहीं से मँगाकर काम में लेना चाहिए।

इन औषधियों का संग्रह करके रखें

एक ही औषधि स्थान और जलवायु के भेद से उत्तम, मध्यम और निकृष्ट श्रेणी की होती है। सर्वोत्तम सनाय बंगलोर में पैदा होती है, और वह प्राय: सारी की सारी यूरोप में औषध-निर्माण के लिए भेजी जाती है। जबकि भारत के बाजारों में मध्यम श्रेणी की भी सनाय नहीं मिलती, बल्कि निकृष्ट श्रेणी की सनाय भारतीय चिकित्सकों को मिलती है। फिर लोग शिकायत करते हैं कि आयुर्वेदीय दवाइयाँ अच्छी नहीं होती। जब निकृष्ट श्रेणी की वनस्पति दवाइयों में डाली जाएगी, तो उत्तम दवा कैसे बन सकती हैं? अत: औषधि-संग्रह करते समय उत्तम श्रेणी की ही वनस्पति-संग्रह करनी चाहिए। आयुर्वेद की वनस्पति-संग्रह करके रखने की प्रणाली जो वर्तमान समय में है वह दोषपूर्ण है। हम देखते हैं कि वनस्पति के बड़े-बड़े स्टॉकिस्ट-व्यापारी वनस्पतियों को बोरों में भर-भर कर जहाँ-तहाँ लाट (थोक) लगा देते हैं, जिससे वनस्पतियाँ शीघ्र ही सड़-गल जाती या धुन फफुन्द जाती है।

इस काम को उत्तम रीती से करने का विधान यह है, कि वनस्पति को रखते समय देखना चाहिए, कि वनस्पति (मूल, छाल, फल आदि) अच्छी तरह सूखे हुए हों। गीली या कुछ सूखी हुई वनस्पतियों को गोदाम में रख देने से उनका शीघ्र ही खराब होना निश्चित है। वनस्पति रखने के लिए बोरे नये और स्वच्छ हों, इनमें भरकर अच्छे स्थान में उन्हें रखना चाहिए। बंगाल, आसाम आदि आनूप देशों के गोदामों की फर्श (जमीन) पक्की, सिमेंट से बनी होनी चाहिए। इस फर्श पर भी सूखी लकडी के तख्ते डालकर उस पर वनस्पतियों के बोरे रखने चाहिए। बिहार, मध्यप्रांत आदि स्थानों में भी गोदाम पक्के होने चाहिए। राजपूताना, गुजरात, पंजाब आदि प्रान्तों में वर्षा कम होती है, अत: साधारण गोदामों से भी काम चल सकता है। इन गोदामों में सूर्य की किरणें जानी चाहिए। यदि किरणें न जा सकें, तो प्रकाश तो जाना ही चाहिए। जहाँ वर्षा अधिक होती हो वहाँ की गोदामों में प्रकाश और हवा का ऐसा प्रबंध करना चाहिए जो समय के अनुसार काम देता रहे। वर्षाकाल में आर्द्र (जल मिश्रित) हवा गोदाम में नहीं जानी चाहिए। वर्षा के अलावा अन्य ऋतुओं में वायु का संचार (जाना-आना) गोदाम में होते रहना चाहिए।

गोदाम में लाट (थोक) लगाते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक दूसरे से विरोधी चीजें एक साथ नहीं रखी जाये। वनस्पति के बड़े-बड़े व्यापारी लोग वनस्पतियों के साथ में मिर्च, मसाला, हींग, मनुक्का आदि के बोरे रख देते हैं, जिससे वनस्पतियों के मौलिक गुण नष्ट हो जाते हैं। सावधानी पूर्वक रखी हुई वनस्पतियाँ अधिक समय तक अच्छी बनी रहती हैं। वनस्पतियों को काम में लाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पहले की रखी हुई वनस्पति पहले काम में ले ली जाए और बाद की बाद में।

वनस्पतियों का खराब या कम गुणकारी होना

'गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम्'।-काष्ठौषधि जिस रूप में संग्रह की गयी हो उसी रूप में यानी मूल, छाल, पंचांग आदि के रूप में पड़ी रहे तो एक वर्ष के बाद गुणहीन हो जाती है। अर्थात् उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। वनस्पति हो या उससे बनी हुई दवा हो, जब खराब होती है, तो उसका रूप-रंग बदल जाता है। उसकी गंध और स्वाद भी बिगड़ जाते हैं। उपरोक्त मत आचार्य शार्ङ्गधर का है। उस समय वनस्पति संग्रहालयों के लिए कच्चे ईंट, मिट्टी और घास-फूस के बने साधारण कच्चे फर्श से बने मकानों का उपयोग होता था, उनमें रखी वनस्पतियों के लिए एक वर्ष में खराब हो जाने का समय उपयुक्त है, किन्तु आजकल स्थापत्यकला का बहुत विकास हो चुका है, सिमेंट क्रांकिट के बने उत्तम गोदामों में रखने पर वनस्पति द्रव्य अधिक समय तक गुण युक्त बने रहते हैं। इस निर्विवाद एवं प्रत्यक्ष बुद्धिगम्य बात को सभी वैद्य लोग प्रत्यक्ष देखते अर्थात् अनुभव करते हैं।

आचार्य यादव जी त्रिकम जी का मत है कि-'वनस्पतियाँ एवं वनस्पतियों द्वारा बनी दवाएँ उपरोक्त समय में हीन वीर्य होने या न होने, बिगड़ने या न बिगड़ने का आधार उसी देश की हवा, ऋतु, रखने के पात्र और बंद करके न रखने की क्रिया पर निर्भर है।'

'दवा रखने के स्थान की हवा शीत और रूक्ष हो, योग शीतकाल में बना हो, औषध रखने का पात्र अच्छा हो, और पात्र में वायु का प्रवेश न हो, इस प्रकार उसको बंद किया हो, तो वनस्पति या वनस्पति द्वारा बने योग चिरकाल तक अच्छे रह सकते हैं। इसके विपरीत यदि उस स्थान की हवा में नमी (आर्द्रता) अधिक होगी, योग वर्षा ऋतु में बना होगा, पात्र अच्छा न होगा, और पात्र में हवा न जा सके (Air tight)इस प्रकार उसको बंद न किया होगा, तो वनस्पति या उसके द्वारा बने योग हीन वीर्य या नष्ट हो जाएँगे। अत: वैद्यों को वनस्पति-द्रव्य अच्छे-सूखे लेने हो, व गीले हों तो उनको अच्छी तरह सुखा लेने और अच्छे पात्र में अच्छी तरह बंद करके रखने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। दवा आवश्यकता से अधिक परिणाम में बनाकर नहीं रखें, जहाँ तक बने शीत काल में ही दवा बना कर रखें। बिना विशेष आवश्यकता के वर्षा ऋतु मे चूर्ण, अवलेह, गोली आदि नहीं बनानी चाहिए। वनस्पति और उनके चूर्ण आदि कल्पों का गंध, वर्ण (रंग) और स्वाद कम या विकृत हो गया हो तो उसे फेंक देना चाहिए। भस्में और रस-योग अधिक परिणाम में बनाकर रखने चाहिए। क्योंकि वे जितने पुराने होंगे, उतने ही अधिक गुणकारी होंगे।'

निम्नलिखित द्रव्य सदा ताजे ही लेने चाहिए एवं इनका परिणाम द्विगुण नहीं करना चाहिए।

वासा, नीम, पटोल, केतकी, खरेटी, पेठा, शतावर, पुनर्नवा, कुड़ा की छाल, असगन्ध, गन्धप्रसारणी, नागबला, पियाबाँसा, गूगल, हींग और अदरख आदि, परन्तु वायविडंग, पिप्पली, गुड़, धनियाँ, मधु और घृत ये छ: पदार्थ 1 वर्ष से नीचे के नहीं लेने चाहिए। उक्त औषधियों के अतिरिक्त अन्य समस्त औषधियाँ सब कार्यों में नवीन तथा सूखी ही डालनी चाहिए। यदि गीली हों, तो दूने प्रमाण में डालें। जहाँ औषधि खाने के लिए समय नहीं लिखा हो, वहाँ खाने का समय प्रात:काल ही जानें, तथा जिन औषधियों का अंग स्पष्ट न लिखा हो, वहाँ उसकी जड़ लेना

और जिन औषधियों का मान (तौल) न लिखा हो, वहाँ सब औषधियाँ समान भाग लें।

यदि किसी योग में एक ही औषधि का नाम दो बार आ गया हो, तो वह औषधि दूनी लेनी चाहिए।

यदि किसी प्रयोग में कोई औषधि रोगी के लिए हानिकारक हो, तो उसे निकाल दें। इसी प्रकार यदि कोई औषधि रोगी के लिये हितकारी हो, तो वह योग में न होने पर भी डाली जा सकती है। जहाँ केवल चन्दन मात्र लिखा हो, तो सफेद चन्दन लेना चाहिए, परन्तु क्वाथ और लेप में रक्त चन्दन ही डालें। अत्यन्त बड़े वृक्षों, जैसे नीम आदि की जड़ या छाल लें, परन्तु कोमल छोटे वृक्षों जैसे गोखरू, पियाबाँसा आदि की जड़ अथवा पंचांग लेना चाहिए। बड़े (बटवृक्ष) आदि मोटे वृक्षों की जड़ की छाल लें, तथा खैर, चन्दन, विजयसार आदि वृक्षों के सार तथा महुआ, बबूल आदि वृक्षों की अन्तर्छाल और तालीसपत्र, पान, तुलसी, तेजपात, भांग आदि के पत्ते और त्रिफला, सुपारी आदि के फल तथा गुलाब सेवंती आदि के फूल लेने चाहिए।

अभाव द्रव्यों के स्थान पर प्रतिनिधि द्रव्यों की योजना

किसी औषध-योग को बनाते समय उसमें पड़ने वाले किसी द्रव्य के न मिलने पर उसके स्थान पर उसके समान गुण-धर्मवाले या मिलते-जुलते गुण-धर्मवाले अन्य द्रव्य का उपयोग किया जाता है, ऐसा विधान आयुर्वेदशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में वर्णित है और ऐसा होना आवश्यक भी है, क्योंकि कितने ही द्रव्य ऐसे हैं जो हर जगह सदैव उपलब्ध नहीं होते हैं, और कितने ही द्रव्य ऐसे है जिनके वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में वैद्यसमाज में सन्देह बना हुआ है एवं कितने ही द्रव्य विदेशों में या दूर के स्थानों में उत्पन्न होने के कारण, आयात सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण सब जगह उपलब्ध नहीं होते हैं। इन्हीं सब कठिनाइयों को ध्यान में रखकर न प्राप्त होनेवाले द्रव्यों (अभाव द्रव्यों) के कारण औषध-निर्माण में बाधा उपस्थित न हो, आचार्यों ने उनके स्थान पर उनके समानगुणधर्मी अथवा मिलते-जुलते प्रतिनिधि द्रव्यों की योजना की है और उसके उपयोग के नियम बनाये हैं। उन्हीं नियमों के अनुसार प्रतिनिधि द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। अतः उन नियमों के सम्बन्ध में विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

जिस औषधि में एक ही द्रव्य उपयोग किया जाता हो उसमें प्रतिनिधि द्रव्य नहीं लिया जाता है, किन्तु जिन औषधियों में एक से अधिक द्रव्य उपयोग में आते हैं, वहाँ मुख्य द्रव्य को छोड़ कर शेष द्रव्यों में से जो द्रव्य नहीं मिले उसके स्थान पर प्रतिनिधि द्रव्य का प्रयोग करना चाहिए। अनेक द्रव्यों को मिलाकर एक औषध-प्रयोग तैयार करने में प्रायः मुख्य द्रव्य और गौण द्रव्य ऐसे दो विभाग होते हैं। मुख्य द्रव्य वह माना जायेगा जिसके बिना प्रयोग किये औषधि बनाने पर वह यथार्थ गुण न कर सके और गौण द्रव्य वे है जिनके अभाव में समान गुण-धर्मवाले प्रतिनिधि द्रव्य प्रयोग करने पर भी वह औषधि यथार्थ गुण कर सके। रोग को दूर कर स्वास्थ्य प्रदान करना यह मुख्य द्रव्य का कार्य है और मुख्य औषधि (द्रव्य) के गुणों में वृद्धि करना अथवा सहायता पहुँचाना या मुख्य औषधि द्रव्य के किन्हीं अभावों की पूर्ति कर उसे सर्वांग गुणयुक्त बनाना ये गौण द्रव्यों के कार्य हैं। जैसे हिंग्वष्टक चूर्ण में हींग मुख्य द्रव्य है और शेष 7 द्रव्य गौण हैं। अगर हींग न मिले तो हिंग्वष्टक चूर्ण तैयार नहीं हो सकेगा, किन्तु शेष 7 चीजों में से कोई द्रव्य न मिले तो उसके स्थान पर प्रतिनिधि द्रव्य का प्रयोग कर बनाया जा सकता है। किन्ही औषधि प्रयोगों में से एक से अधिक द्रव्य भी मुख्य होते हैं। कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस-रसायन आदि प्रयोगों

में एक से अधिक द्रव्य भी मुख्य होते हैं। जैसे मल्लचन्द्रोदय, मकरध्वज, पञ्चामृत पर्पटी, अश्वकंचुकी रस, अमृत संजीवन बटी, त्रिफला, पिप्पली चूर्ण, दशमूलारिष्ट, महानारायण तेल, चन्दनबला लाक्षादि तैल, लवण भास्कर चूर्ण इत्यादि अनेक औषधियों में एक से अधिक मुख्य द्रव्य हैं।

शास्त्र में प्राय: अनेक औषध योग ऐसे है जिनके नाम ही उनमें प्रयुक्त मुख्य द्रव्य के नाम से संयुक्त होते हैं, ऐसी औषधियों में मुख्य द्रव्य का बोध सहज ही हो जाता है। जैसे कस्तूरी भैरव रस, द्राक्षारिष्ट, खदिरारिष्ट, पिप्पल्यासव, त्रिफलाघृत, किरातादि तैल, वचादि चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण, शंख बटी, त्र्यूषणादि मण्डूर आदि। उनमें क्रमश: कस्तूरी, द्राक्षा, खदिरकाष्ठ, पिप्पली, त्रिफला तथा घृत चिरायता और तैल, बच, हींग, शंख, त्र्यूषण और मण्डूर ये उनके नाम में संयुक्त नामवाले मुख्य द्रव्य हैं, परन्तु अनेक औषध योग ऐसे भी हैं, जिनके नाम से उनमें पड़नेवाले मुख्य द्रव्य का बोध नहीं होता। जैसे आनन्द भैरव, संजीवनी बटी, अग्नितुण्डी बटी, लक्ष्मीनारायण रस, वातकुलान्तक रस, मृगांक रस, योगेन्द्र रस, वसन्त मालती रस, महालक्ष्मी विलास रस, महानारायण तेल, फलकल्याण घृत, वैश्वानर चूर्ण, कन्दर्पपाक आदि के नामों में किन्हीं के नाम में रोग सम्बन्ध, किन्ही के नाम में गुण सम्बन्ध और किन्हीं के नाम केवल उनकी विशिष्ट संज्ञा के रूप में हैं। कितने ही औषध योगों के नाम उनमें पड़नेवाले किसी गौण द्रव्य के नाम से सम्बन्धित भी देखे जाते हैं, जैसे चन्द्रप्रभाबटी में चन्द्रप्रभा नाम कचूर या कपूर और वायविडंग का है, जो इसका गौण द्रव्य है, क्योंकि चन्द्रप्रभाबटी के योग में मुख्य द्रव्य शिलाजीत, गुग्गुल, लौह भस्म हैं। इसी तरह योग रत्नाकर ग्रहणी रोगाधिकार के तालीसादि चूर्ण में तालीस पत्र गौण द्रव्य है, मुख्य द्रव्य भांग या हरड़ हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मुख्य द्रव्य और गौण द्रव्यों का बोध होने का सर्वत्र एक समान नियम नहीं हैं। अत: जहाँ मुख्य द्रव्य और गौण द्रव्यों का बोध नाम आदि की सुगमता से नहीं हो सके, वहाँ बुद्धिमान वैद्य को औषधि के मुख्य गुणों और उनमें पड़नेवाले द्रव्यों के गुणों का विचार करके मुख्य और गौण द्रव्यों का बोध कर लेना चाहिए। जिन औषधियों में जो द्रव्य अधिक परिमाण में पड़ते हैं, उनके मुख्य द्रव्य और गौण द्रव्यों का बोध हो जाता है, किन्तु यह नियम औषध योगों में पड़नेवाले घी, तैल, गुड़, चीनी, शहद के सम्बन्ध में लागू नहीं होता है, क्योंकि ये चीजें औषध योगों में प्राय: सहायक अर्थात् गौण द्रव्य के रूप में ही प्रयुक्त होती हैं।

कौन-कौन द्रव्य किन-किन द्रव्यों के प्रतिनिधि स्वरूप प्रयोग में लेना उचित है, उनका पूरा विवरण तो यहाँ देना कठिन है, किन्तु उदाहरणार्थ कुछ द्रव्यों के प्रतिनिधि द्रव्यों का उल्लेख किया गया है। जिन द्रव्यों के प्रतिनिधि द्रव्यों का उल्लेख कहीं नहीं मिले तब बुद्धिमान वैद्य का कर्तव्य है कि वह द्रव्यों के पारस्परिक गुणधर्मों का विचार करते हुए परस्पर समान गुणधर्म वाले द्रव्यों को एक दूसरे का प्रतिनिधि कल्पित करके प्रयोग करें। किसी-किसी द्रव्यों के एक से अधिक प्रतिनिधि द्रव्य भी होते हैं, जिनमें से जिस कार्य (प्रयोग) में जो प्रतिनिधि द्रव्य अधिक उपयोगी हो,उसे प्रयोग करना चाहिए। किसी भी द्रव्य की मुख्य अथवा गौण संज्ञा स्थान रूप से नहीं है; प्रत्येक औषध योग के गुणों में मुख्य प्रभाव जिस द्रव्य का होता है, वह उस औषध-योग का मुख्य द्रव्य कहलाता है और शेष द्रव्य जो मुख्य द्रव्य के गुणोदय में सहायता स्वरूप कार्य करते हैं, वे गौण द्रव्य कहलाते हैं। एक औषध में एक से अधिक संख्या में भी मुख्य द्रव्य हो सकते हैं। जैसे चन्द्रप्रभा बटी में शिलाजीत, गुग्गुल और लौह भस्म ये तीनों मुख्य द्रव्य हैं। उसी प्रकार अन्य योगों में भी देख लेना चाहिए। नीचे कुछ द्रव्यों के प्रतिनिधि द्रव्यों की सूची दी जा रही है। किसी योग में इनके गौण द्रव्य के रूप में होने पर एवं अप्राप्य होने पर जो द्रव्य अप्राप्य हो उसके स्थान पर सूची में लिखे प्रतिनिधि द्रव्य का प्रयोग करना चाहिए। किसी योग में इस सूची

में प्रतिनिधि द्रव्य रूप में लिखा द्रव्य गौण द्रव्य रूप में हो, तो वहाँ उसके अप्राप्य होने पर सूची में उस प्रतिनिधि द्रव्य के सामने जो गौण द्रव्य लिखा है, उस द्रव्य को वहाँ प्रतिनिधि द्रव्य के रूप में प्रयोग करना चाहिए। जैसे सूची में गौण द्रव्य अतीस लिखा है और उसके प्रतिनिधि द्रव्य रूप में नागरमोथा लिखा है, तो किसी औषध-योग में नागरमोथा गौण द्रव्य होने पर अप्राप्य हो, तो उसके प्रतिनिधि द्रव्य के रूप में अतीस का प्रयोग करना चाहिए। यह बात सूची के सभी गौण द्रव्यों और उनके प्रतिनिधि द्रव्यों के सम्बन्ध में समझनी चाहिए।

गौण और प्रतिनिधि द्रव्यों की सूची

गौण द्रव्य	प्रतिनिधि द्रव्य
अकरकरा	- पीपल, महाराष्ट्री, (मरेठी के फूल)
अखरोट	- नोजा, चिरोंजी
अगर	- दालचीनी, लौंग, केशर
अजमोद	- अजवायन
अतीस	- नागरमोथा
अदरख	- सोंठ
अनार	- वृक्षाम्ल, इमली
अनन्नास	- सेव
अफीम	- खुरासनी अजवायन, कुचिला, पोस्तडोडा-छिलका के क्वाथ का घन
अभ्रक भस्म	- लौह भस्म
अम्लवेतस	- कोकम, चूके के पत्ते, चने के पत्ते
अरहर	- मसूर
अजामूत्र	- गोमूत्र
आक का दूध	- आक के पीले पत्तों का रस
आकाश बेल	- निशोथ, पित्तपापड़ा
आमा हल्दी	- बावची
आलुबुखारा	- इमली पकी
असगन्ध	- कूठ (मीठा)
ईख	- नरसल
इन्द्रजौ	- कुडा की छाल, जायफल
इन्द्रायन फल	- उसारे रेवन्द, काला दाना
इलायची छोटी	- बड़ी इलायची, शीतलमिर्च
ईसबगोल	- बिहदाना
उशवा	- चोपचीनी
उन्नाव	- लिहसोड़ा, मनुक्का
कतीरा	- बबूल का गोंद
कपूर	- सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, नागरमोथा, नेत्रबाला, ग्रन्थिपर्णी, वंशलोचन
चोक	- चोपचीनी, दन्तीमूल, कूठ
तुलसी का रस	- जंगली तुलसी (वन तुलसी का रस)
कमलगट्टा	- आँवले के बीज
कमलकेशर	- नागकेशर
कटेली छोटी	- बड़ी कटेली, कूठ
कटेली मूल	- नीम-पंचांग
कलिहारी	- कूठ कडवा
कलौंजी	- स्याह जीरा
कटहल पका	- पका केला
कबीला	- वायविडंग
कस्तुरी	- जावित्री, शीतलमिर्च, मद्य (दारू), लता कस्तुरी
काकोली	- असगंध, शतावरी, मुलेठी
किण्व	- महुए का फूल (मधक पुष्प), धाय- फूल
कालादाना	- इन्द्रायण की जड़
काली मिर्च	- लौंग
नीलकमल	- कुमुदनी
काला नमक	- सांभर नमक
काला अनन्तमूल	- सफेद अनन्तमूल
काला(स्याह) जीरा	- सफेद जीरा
काली मुसली	- सफेद मुसली
कान्त लौह	- फौलाद

गौण द्रव्य	प्रतिनिधि द्रव्य
ऋद्धि-वृद्धि	- वाराहीकन्द, बला, महाबला
एलुवा	- निशोथ (विरेचन में)
कचूर	- अदरख, अंजीर, कपूरकचरी
कत्था	- खैरसार, गेरू
कुश	- काँस
कूठ	- अकरकरा, पुष्करमूल
केवड़ा	- रक्त चन्दन
केशर	- कुसुम-पुष्प (कसूमा), जावित्री
कौंच का बीज	- उटंगन के बीज
क्षीर काकोली	- शतावरी, विदारीकंद
खैर छाल	- नीम की अंतर्छाल, कत्था
खैरसार	- कत्था
गजपीपल	- पीपलामूल
गिलोय सत्व	- गिलोय घन
गाय का दूध	- बकरी का दूध
गोखरू	- ककड़ी-बीज
गोपी-चन्दन	- फिटकरी
चव्य	- गजपीपल, पीपलामूल
चित्रकमूल	- दन्तीमूल
चावल	- ज्वार
चांदीभस्म	- चांदी के वर्क, कान्तलौह भस्म, रौप्यमाक्षिकभस्म
चमेली के पत्ते	- लौंग
छोटी हरड	- बड़ी हरड़, आँवला
जवासा	- धमासा
जावित्री	- जायफल, लौंग
जीवक-ऋषभक	- शतावरी, बिदारीकंद वंशलोचन
जैतून का तेल	- एरण्ड तेल
तगर	- कूठ
तालमखाना	- ईसबगोल, सालममिश्री
तिल	- अलसी
दही	- मट्ठा
दारूहल्दी	- हल्दी, आमाहल्दी

गौण द्रव्य	प्रतिनिधि द्रव्य
काँजी	- नींबू का रस
कुलथी	- अलसी
कुलिंजन	- दालचीनी, शीतलमिर्च
धाय के फूल	- महुए के फूल (मधुक पुष्प)
नख(नखी)	- लौंग के फूल
नकछिकनी	- मैनफल, काली मिर्च, कायफल
नागकेशर	- कमल केशर
निर्गुण्डी	- तुलसी
नेत्रबाला	- नागरमोथा, खस
नीलम भस्म	- सुवर्ण भस्म
निंबू का रस	- चूका-रस, खट्टे अनार का रस अनारदाना क्राथ, कांजी
पञ्च क्षार	- अपामार्ग क्षार
पञ्च लवण	- सेंधा नमक
पन्ना भस्म	- प्रवाल भस्म
पाठा	- पाढल
पारद भस्म	- रससिन्दूर
पित्त	- मांस को उबाल कर निकाला रस
पित्तपापड़ा	- सनाय
पिस्ता	- बादाम
पीपल	- कालीमिर्च
पीपलामूल	- चित्रकमूल, जटामांसी, पीपल
पुखराजभस्म	- अभ्रक भस्म
पुष्करमूल	- कूठ, एरंड की जड़
बकरी का दूध	- गाय का दूध
बनप्सा	- नील कमल
बड़ी कटेली	- छोटी कटेली
बच	- मोरबेल(मूर्वा) शीतलमिर्च, कुलिंजन, कूठ
बहेडा	- छोटी हरड़
बाबची	- पवाड़ के बीज, काली जीरी
बादाम का तैल	- खस-खस का तैल
बिजोरे का रस	- नारंगी रका रस, जम्बीरी का रस, कागजी निम्बू का रस
ब्रह्मदंडी	- ऊंट कटेला

गौण द्रव्य	प्रतिनिधि द्रव्य
द्राक्षा, (मुनक्का)	खजूर, काश्मरी फल (गम्भारी फल), महुए के फूल (मधुक पुष्प)
दूध	मूँग का जूस
भैंस का दूध	भेड़ का दूध, गाय का दूध
मयूर शिखा	हरड़
मसूर	उड़द
मद्य	आसर-अरिष्ट
माणिक्य भस्म	चांदी भस्म
मिश्री	चीनी या बूरा, पुराना गुड़
मुलहठी	धाय के फूल
मूली	शलगम
मोती भस्म	मोती सीप की भस्म
मोरबेल (मूर्वा)	दालचीनी, मजीठ, पीपलमूल
मेदा, महामेदा	शतावरी, असगन्ध, सारिवा
मोलसरी फुल	नीलोफर
मोलसरी छाल	बबूल छाल
रसोत	दारूहल्दी
रक्तचन्दन	नेत्रवाला
रास्ना	कुलिंजन
रोहितक छाल	लाख
रौप्यमाक्षिक भस्म	स्वर्णमाक्षिक भस्म, विमल भस्म
लक्ष्मणामूल	मयूर शिखा, सफेद फूलवाली बड़ी या छोटी कटेली की जड़
लौंग	काली मिर्च
लोबान	रूमी मस्तंगी

गौण द्रव्य	प्रतिनिधि द्रव्य
ब्राह्मी	मण्डूकपर्णी
भारंगी मूल	छोटी कटेली का मूल, तालीमपत्र
भिलावा	चित्रक मूल (उष्णता के लिये)
रक्तचन्दन	(शीतलता के लिए)
बिदारी कन्द	असगन्ध, शतावरी, सफेद मूसली
विधारा	जस्त (यशद) भस्म, शुक्ति भस्म या पिष्टी, गिलोय सत्व, तवाशीर
शीतल मिर्च	जावित्री, चमेली के फूल, छोटी इलायची
श्योनाक	कैडर्य (कृष्ण निम्ब)
शहद (मधु)	पुराना गुड़
शिलाजीत	कलमी शोरा
सत्यानाशी	कूठ की जड़
सफेद चन्दन	रक्तचन्दन, नेत्रबाला
सफेद मिर्च	काली मिर्च
सफेद पुनर्नवा	लाल पुनर्नवा
सफेद अनन्तमूल	काला अनन्तमूल
समुद्र नमक	सेंधा नमक
स्त्री का दूध	गाय का दूध, बकरी का दूध
सुवर्णभस्म	सुवर्ण का वर्क, सुवर्णमाक्षिक भस्म, लौह भस्म, सुवर्ण चूर्ण
सुवर्ण माक्षिक	सोना गेरू, रौप्यमाक्षिक भस्म
सोंठ	अदरख
सोआ	सौंफ
सेन्धा नमक	साम्भर नमक, सामुद्र नमक
हरड़	आँवला
हीरा भस्म	वैक्रान्त भस्म
लोध	कत्था
वाराही कन्द	बिदारी कन्द

औषधि-निर्माण-परिभाषा

जिन संस्कारों द्वारा औषध-द्रव्यों को प्रयोग कार्य के लिये उपयुक्त बनाया जाय, उसे 'औषधनिर्माण' कहते हैं। किसी भी औद्भिद- जंगम या पार्थिव द्रव्यों का चूर्ण, क्वाथ, भस्म आदि निर्माण किये बिना, उसका मनुष्य शरीर पर प्रयोग नहीं किया जा सकता, अत: उनका क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, गुटिका, आसव-अरिष्ट-रस-रसायन-भस्म, तैल, घृत आदि रूपों में परिवर्तन करने के लिए जो निर्माण-विधान है, उसी का उल्लेख इस 'औषधि- निर्माण-परिभाषा- प्रकरण' में किया जायेगा।

पंचकषाय क्वाथ

मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त कषाय रसवाले द्रव्यों द्वारा पांच प्रकार के क्वाथ की कल्पना की जाती है, यथा- स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फाण्ट। इनमें स्वरस से कल्क, कल्क से क्वाथ, क्वाथ से हिम, हिम से फाण्ट हल्का (लघु) होता है। वाग्भट के मतानुसार फाण्ट से हिम, हिम से क्वाथ, क्वाथ से कल्क और कल्क से स्वरस अधिक बलवान होता है। अतः व्याधि और रोगी के बलाबल का विचार करके पाँचों में जिस रोगी के लिए जो उपयुक्त हो, उसी का निर्माण करना चाहिए, क्योंकि सब तरह के कषाय सबके लिए उपयोगी नहीं होते।

स्वरस-क्वाथ

कृमि आदि से अदूषित हरी-ताजी वनस्पति लाकर, उसे जल से धोकर छोटे-छोटे टुकड़े कर, ऊखल में कूटकर या सिल पर पीस कर यन्त्र या हाथ से दबा कर रस निकालें, फिर उसे कपड़े से छान लें, इस प्रकार निकाले हुए रस को, 'स्वरस-क्वाथ' कहते हैं। इसकी मात्रा 2 तोला है।

यदि आर्द्र (ताजी गीली) वनस्पति न मिले, तो सूखी वनस्पति का चूर्ण कर, उसे चूर्ण से दूने जल में डाल, मिट्टी के बर्तन में 24 घंटा ढककर रख छोड़े, दूसरे दिन हाथ से मसल, कपड़े से छानकर, उसका स्वरस के समान प्रयोग करें। इस प्रकार बनाये हुए स्वरस का औषधियों में भावना देने के लिए उपयोग होता है।

उक्त दोनों स्वरसों के अभाव में सूखी औषधि लेकर अठगुने जल में पकावें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर कपड़े से छान कर रख लें, यह भी स्वरस ही है, इन तीनों में भेद यही हैं, कि पूर्वोक्त स्वरस भारी होने से उसकी मात्रा 2 तोला दें, और इसकी मात्रा 4 तोला दें

स्वरस में प्रक्षेप द्रव्य- स्वरस में घी, तेल, गुड़, मिश्री और शहद डालना हो, तो 2 तोला स्वरस में 6 माशा डालें और लवण, क्षार और पीपल आदि का चूर्ण रोगी और रोग के बलानुसार योग्य परिमाण में डालें।

स्वरस की पुटपाक विधि- कई द्रव्यों का स्वरस पुटपाक करके लिया जाता है। अतः पुटपाक विधि लिखते हैं:-

यदि ताजी-हरी वनस्पति हो तो उसको वैसा ही सिल पर पीस, कल्क बना लें, और सूखी हो तो उसका कपड़छान चूर्ण कर उसमें थोड़ा जल मिला, कल्क बना लें, फिर उस कल्क का गोला बना, उस पर बट-जामुन, कमल आदि किसी मृदु वीर्य वनस्पति के पत्ते लपेट, गोले को सूत से कसकर बाँध दें और ऊपर जल में गुँथे हुए आटे का और उस पर पानी में खूब मसली हुई मिट्टी का दो अंगुल मोटा लेप करके गोला बना लें। इस गोले को बिना धूएँ के कंडों की आँच में रखकर पकावे जब गोले के ऊपर की मिट्टी जलकर लाल हो जाय तब गोले को थोड़ा ठण्डा कर अन्दर का कल्क निकाल कपड़े में रख, हाथ से दबा, स्वरस निकाल लें।

नीम, बेल, अडूसा आदि सब वृक्षों की पत्ती-छाल आदि को बिना गरम किये स्वरस ठीक से नहीं निकलता, अतः उक्त विधान लिखा गया है।

कल्क-कषाय

यदि ताजी-हरी वनस्पति हो, तो उसे जल से धोकर और सूखी हो, तो कपड़छान चूर्ण में जल मिला, कल्क बना लें। इसकी मात्रा 1 तोला है।

खाने के लिए जो कल्क दिया जाता है, उसे कल्क-कषाय कहते हैं और तेल, घृत, आसव आदि में प्रक्षेप के लिए जो कल्क बनाया जाता है, उसे कल्क-प्रक्षेप कहा जाता है।

कल्क की मात्रा मृदुवीर्यवाली दवा की है, मध्य और तीक्ष्ण वीर्यवाली दवा की मात्रा क्रमश: न्यून जाने।

कल्क में प्रक्षेप द्रव्य की मात्रा- कल्क में शहद, घी या तैल मिलाना हो, तो कल्क से दुगुनी मात्रा में मिलावें, मिश्री या गुड़ मिलाना हो, तो कल्क के बराबर दें और जल, दूध आदि द्रव्य (पतला) पदार्थ मिलाना हो, तो चौगुना मिलावें। स्वरस और कल्क में यही भेद है, कि स्वरस में द्रव्य का सार भाग लेकर काष्ठ भाग फेंक दिया जाता है, परन्तु कल्क में सार तथा काष्ठ दोनों भाग लिये जाते हैं, अत: स्वरस की अपेक्षा कल्क लघु होता है।

क्वाथ (काढ़ा)-कषाय

क्वाथ करनेवाले द्रव्य का दर-दरा कूटकर मिट्टी के बर्तन में या नीचे मिट्टी का लेप किये हुए कलईदार ताँबे के बर्तन में कूटी हुई औषधि से १६ गुना जल डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पकावें। जब आठवाँ हिस्सा जल बाकी रहे, तब बर्तन को उतार कर जल थोड़ा गरम रहते ही छान लें। मात्रा ८ तोला।

नोट- यद्यपि शार्ङ्गधर संहिता में काढ़े की मात्रा आठ तोला है, परन्तु आजकल के क्षीणबल और मन्दाग्नि वाले रोगियों के लिये मात्रा अधिक है, अत: 2 तोला मात्रा ठीक मालूम होती है।

प्रमथ्या- शार्ङ्गधर में लिखा है कि ४ तोले औषध के चूर्ण को जल में पीस कर कल्क बनावें, उस कल्क को ३२ तोले जल में पका ८ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छानकर पिलावे।

यहाँ द्रव्य की मात्रा चार तोला वर्तमान समय में अधिक है। अत: 1 से 2 तोला द्रव्य और उसी अनुसार जल देना उचित है।

प्रमथ्या क्वाथ का ही एक भेद है, अत: इसकी परिभाषा क्वाथ-प्रकरण में लिखी जायेगी, वहीं देखे।

क्षीरपाक-विधि- औषधीय द्रव्य को जौकूट चूर्ण कर ८ गुने दूध से चौगुने जल में डाल कर मन्द-मन्द अग्नि पर पकावें, जब दूध मात्र शेष रह जाय, तब छान कर उपयोग में लें।

गरम जल-विधि- ठंडे जल को औंटाकर आवश्यकतानुसार अष्टमांश, चतुर्थांश या आधा शेष रहने पर अथवा अच्छी तरह उबलने तक पकाकर कपड़े से छान लें।

औषधियों द्वारा सिद्ध जल- औषधिसिद्ध जल बनाना हो तो १ तोला औषधि के चूर्ण में ६४ तोला जल दें, क्वाथ-विधि से पका, आधा जल (३२ तोला) शेष रहने पर नीचे उतार कर कपड़े से छान कर रोगी को आवश्यकतानुसार पिलावें।

औषधसिद्ध जल (षडंग पानीय आदि) रोगी को दिया जाता है तथा क्वाथ साध्य यवागू आदि बनाने में भी इस प्रकार तैयार किये हुए जल का उपयोग होता है।

यवागू- मण्ड, पेया और विलेपी-भेद से यवागू तीन तरह की होती है, जिस यवागू में सिक्थ (सिट्ठी) का भाग छोड़कर केवल ऊपर का द्रव भाग लिया जाय, उसको 'मण्ड' कहते हैं और जिस यवागू में द्रव भाग अधिक हो, और सिक्थ कम हो उसे 'पेया' कहते हैं और जिस यवागू में सिक्थ अधिक और द्रव भाग कम हो उसे 'विलेपी' कहते हैं।

जिसे यवागू देनी हो, वह एक समय में जितना चावल खाता हैं, उससे चतुर्थांश चावल यवागू बनाने के लिए लेना चाहिए। मण्ड बनाना हो तो मोटे पिसे हुए चावल में १४ गुना औषधसिद्ध जल देकर पकावे, जब चावल अच्छी तरह पक जाए, तब ऊपर का द्रव भाग

१ विशेष विवरण क्वाथ-प्रकरण में देखें।

(मण्ड) निथार कर पीने को दें। पेया बनानी हो तो मोटे पिसे हुए चावल में छः गुना औषधसिद्ध जल देकर द्रवांश अधिक रहे और सिक्थ कम रहे इतना पकावें। विलेपी बनानी हो तो मोटे पिसे हुए चावल में चार गुना औषधसिद्ध जल देकर सिक्थ अधिक रहे और द्रवांश कम रहे इतना पकावें, चावलों को थोड़े भूनकर पीछे यवागू बनाने से यवागू ठीक बनती हैं।

मृदु, मध्य और तीक्ष्ण भेद से द्रव्य तीन तरह के होते हैं। कल्क साध्य यवागू यदि तीक्ष्ण औषधि द्वारा बनानी हो तो १ तोला और मध्य वीर्य औषधि से बनानी हो तो २ तोला तथा मृदु औषधि द्वारा बनानी हो तो ४ तोले औषधि का कल्क बना, उसमें यवागू पूर्वोक्त विधि के अनुसार मोटे पिसे हुए चावल और ६४ तोला जल देकर मण्ड, पेया या विलेपी बनावें।

यवमण्ड- छिलके उतारे हुए जौ को थोड़ा भूनकर १४ गुने जल में पकावें, जो सिद्ध हो जाने पर ऊपर का जल निथार कर कपड़े से छानकर पीने को दें।

लाजमण्ड- धान की खील (लावा) को १४ गुने जल में पकाकर कपड़े से छान लें।

यूष- २ तोले औषधि का कल्क बना, उसमें ८ तोले मूँग, मसूर, मोठ आदि शिम्बीधान्य और ६४ तोला जल, छाछ आदि द्रव्य पदार्थ डाले और इतना पकावें कि चौथाई जल शेष रहे, फिर इसे छान कर दें।

हिम-कषाय

जौकुट की हुई दो तोला औषधि को १२ तोले ठण्डे जल में डाल मिट्टी या काँच के पात्र में रात भर ढक कर रहने दें, प्रातः हाथ से मसल, कपड़े से छानकर ४-४ तोले की मात्रा में दिन भर में तीन बार पीने को दें, इसे **'फाण्ट'** कहते हैं। इसमें शहद, मिश्री, गुड़ आदि डालना हो, तो क्वाथ-प्रमाण के अनुसार डालें।

मन्थ-कुटे हुए ४ तोले द्रव्य को मिट्टी के बर्तन में डाल उसमें १६ तोला ठण्डा जल मिला, मथानी से खूब मथकर कपड़े से छाने, इसको ८ तोले की मात्रा में दिन भर में दो बार दें।

तर्पण-मन्थ- धान की खीलों के सत्तु में ज्वरनाशक फलों के रस और खाण्ड तथा शहद मिलाकर यह बनाया जाता है।

तण्डुलोदक- साफ किये हुए चार तोले चावल का मिट्टी के बरतन में डाल ३२ तोला जल डाल कर रखें, जब चावल नरम हो जाय तो छानकर १६-१६ तोला की मात्रा में दिन में दो बार दें।

आम्रादि मण्ड- आम, फालसा, इमली आदि के अधपके फलों को जल में पकाकर १६ गुने ठण्डे जल में हाथ से खूब मसल कर कपड़े से छान लें। फिर अपनी रूचि के अनुसार मिश्री, काली मिर्च, इलायची, लौंग का चूर्ण और केशर मिलाकर पीयें।

शर्बत- गुलाब, केवड़ा, वेदमुश्क आदि सुगन्धित द्रव्यों के अर्क में और अनार, नींबू आदि फलों के रस में दुगुनी चीनी मिलाकर मन्द आँच पर पकावें, ठण्डा होने पर उतार, कपड़े से छान लें।

अर्क- जिन द्रव्यों का अर्क निकालना हो, वे यदि ताजे हो तो वैसे ही और सूखे हो तो उनका दर-दरा चूर्ण करके रात को दसगुने जल में भिगों दें, सबेरे उसको भवक में डालकर भवके के दोनों पात्रों की सन्धि में अच्छी तरह कपड़मिट्टी कर आग पर चढ़ावे, भवक के ऊपर के पात्र में जैसे-जैसे जल गरम होता जाय, उसे निकालकर दूसरा ठण्डा जल डालते जाये, जितना जल डाला हो, उसका आधा अर्क खींचना चाहिए, अन्त में सब अर्क को कपड़े में छान, शिशियों में

भरकर बन्द कर दें। भवका ताँबे या पीतल का कलईदार होना चाहिए।

फाण्ट-कषाय

जौकुट की हुई ४ तोला औषधि को १६ तोला गरम (उबलता हुआ) जल में डाल, ढककर थोड़ी देर रहने दें, जब जल ठण्डा हो जाय, तब हाथ से मसल कर कपड़े से छान लें। इसको 'फाण्ट' कहते हैं। इसकी मात्रा ४ से ८ तोले तक है। इसमें भी मिश्री, शहद, गुड़ आदि क्वाथ के अनुसार ही मिलावें।

सन्धान

सन्धान के लक्षण- गन्ने का रस, क्वाथ आदि द्रव पदार्थ अकेला या औषधद्रव्य, अन्न, गुड़, किण्व आदि के साथ मिलाकर कुछ समय तक रख दिया जाय तो उसमें एक प्रकार की रासायनिक क्रिया (Fermentation)उत्पन्न होती है, उसको 'सन्धान' कहते हैं।

सीधुमद्य-गन्ने का रस, आदि मीठे पदार्थों को अग्नि पर पकाये बिना ही संधान करें तो सीतरस-सीधु और अग्नि पर पकाने के बाद संधान करें तो पक्वरस-सीधे बनता हैं।

वारूणी मद्य- ताड़ या खजूर के वृक्ष से निकाले हुए रस (ताड़ी-नीरा) का संधान करके जो मद्य तैयार किया जाता है, वह 'वारूणी-मद्य' कहलाता है। वारूणी-मद्य को चिरकाल तक रखना हो तो उसमें चतुर्थांश मीठा मिलाकर खमीर उठाना चाहिए और बोतलों में भरते समय पुनः चतुर्थांश मीठा मिलाना चाहिए।

सुरा-मद्य- चावल, यव आदि अन्न का पका, उसमें जल और किण्व मिलाकर संधान करने से '**सुरा-मद्य**' बनता है। सुरा के ऊपर के स्वच्छ द्रव भाग का '**प्रसन्ना**', उससे कुछ गाढे भाग को '**कादम्बरी**', उससे कुछ गाढ़े भाग को '**जगल**' और उससे गाढ़े भाग को '**मेदक**' कहते हैं। सुरा कपड़े से छानने पर जो सारहीन भाग रहता है, उसे '**बक्कस**' किण्व या सुराबीज कहते हैं। मद्य या खमीर उठाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

आसव में नीचे जो गाद बैठता है, वह दूसरा आसव बनाने में किण्व का काम देता है। दूसरे आसव का सन्धान करते समय उसमें थोड़ा किण्व मिला देना चाहिए।

आसव-अरिष्ट-कल्पना-क्वाथ, स्वरस, जल आदि द्रव पदार्थों में औषध द्रव्यों का चूर्ण, शक्कर, गुड़ या शहद के साथ आसव ठीक उठने के लिये कुछ किण्व मिलाकर, अन्दर से अच्छी तरह घी लगाये हुए मिट्टी के घड़े में अथवा चीनी मिट्टी की बरनी में या सागौन लकड़ी के पीपे में डाल, उसके मुँह पर कपड़ा बाँधकर स्वच्छ समशीतोष्ण स्थान में रख दे। बीच-बीच में कपड़ा खोलकर देखते रहे कि खमीर बन्द हुआ या नहीं। जब उसमें खमीर बन्द हो जाये और प्रक्षेप-द्रव्य नीचे बैठे जाये तब उसको कपड़े से छानकर जटामांसी, कालीमिर्च और अगर का लेप या धूप दिये हुए पात्र (चीनी मिट्टी की पेचदार ढक्कन की बरनी या सागौन की लकड़ी की पीपे) में भर इस प्रकार बन्द कर दें कि वायु का प्रवेश न हो। तैयार आसव-अरिष्टों में वायु का प्रवेश होने से वे बिगड़ जाते हैं।

प्रक्षेप-द्रव्यमान- जहाँ आसव अरिष्टों में द्रव्यों का प्रमाण न लिखा हो, वहाँ १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला क्वाथ जल आदि द्रव पदार्थों में गुड़ या चीनी ५ सेर शहद २।। सेर और प्रक्षेप द्रव्य ४० तोला डालें। द्राक्षासव, मधुकासव और खर्जूरासव में स्वभावतः शक्कर होती है, अतः

इनमें मीठा ३०० तोला ही डालें। (विशेष विवरण आसवारिष्ट प्रकरण में देखें)।

शुक्त- अरिष्ट आदि मद्य यदि बिगड़कर खट्टे हो जाएँ, या गन्ने आदि का मीठा रस संधान करने पर बिगड़कर खट्टा बन जाय, तो उसे 'शुक्त' या 'चुक्र' (सिरका) कहते हैं।

तुषाम्बु- तुष (छिलके) सहित कूटे हुए जौ को मिट्टी के घड़े में बिना पकाये ही चौगुने पानी में डाल घड़े के मुँह को कपड़े से बाँधकर रख दें। जब द्रव खट्टा हो जाय, तो उसे छानकर पात्र में भर लें।

सौवीर-निस्तुष-(छिलके रहित) जौ को दल (दर-दरा) करके अठगुने जल में पकाकर आधा जल बाकी रहने पर मिट्टी के घड़े में डाल, घड़े के मुँह को कपड़े से बाँधकर रख दें। जब द्रव खट्टा हो जाय, तो छानकर रख लें।

चूने का पानी- २ रत्ती अच्छा सूखा कली का चूना लें, उसे ५ तोले जल समान की हरी शीशी में जल भरकर छोड़ दें। फिर शीशी में हरे रंग की शीशी की डाट लगा, खूब हिलाकर ठण्डी जगह में रख दें। ९ घण्टे बाद निथरा हुआ पानी फिल्टर पेपर द्वारा छान लें और इस साफ हरी शीशी में सुरक्षित रख लें।

कांजी- चावल को जल में पकाकर, मिट्टी के घड़े में तीन गुने- जल में डाल, घड़े के मुँह को कपड़े से बाँध कर ७ दिन रखें, खट्टा होने पर छानकर काम में लें।

सुरासव कल्पना- औषध द्रव्यों के चूर्ण को स्वच्छ मद्य में ७ दिन बन्द पात्र में भिगो, कपड़े से या फिल्टर से छानकर शीशी में भर लें। आधुनिक विधि से सुरासव (Tinctures)बनाने के लिये औषधि चूर्ण को रेक्टीफाइड स्पिरिट (योग के अनुसार मात्रा में) के साथ परकोलेटर में डालकर २४ घण्टे या अधिक समय बाद छानकर रख लें, यह भी उत्तम विधि है।

स्नेहपाक-कल्पना- घृत, तैल आदि स्नेह को क्वाथ-स्वरस, दूध-जल आदि द्रव पदार्थ तथा औषध-द्रव्यों के कल्क के साथ पकाकर जो सिद्ध घृत-तैल आदि तैयार करते हैं, वे पाक तीन प्रकार के होते हैं। जिस पाक में पिट्ठी कल्क जैसी कुछ द्रवांशयुक्त हो, उसे मृदुपाक, जो पिट्ठी द्रवांशरहित हलुए की तरह कोमल और कोंचे में न लगनेवाली हो वह मध्यपाक, और जिसमें पिट्ठी पेंदे में नीचे बैठ जाय और कुछ कठिन हो, तथा दो अँगुलियों से दबाने से बत्ती बन जाय, वह खरपाक होता है।

तैलमूर्च्छना- तैल को मन्द आँच पर पकावें। जब तैल में फेन आकर बैठ जाये तब नीचे उतार, ठण्डा कर उसमे तैल का सोलहवाँ भाग मंजीठ का कल्क और मजीठ का चौथाई भाग हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, हल्दी, खस, लोध, केवड़े का मूल, बड़ की जटा और नलिका इनका कल्क तथा तैल से चार गुना जल मिलाकर पकाने से तैल की गन्ध दूर होती है और तैल शुद्ध हो जाता है। कई अनुभवी रसायनशास्त्रियों के मतानुसार तैल में षोडशांश मजीठ और मजीठ से चतुर्थांश हल्दी इन दोनों का कल्क कर तैल में डाल कर तैल के समान भाग जल के साथ पकाने से तैल का उत्तम मूर्च्छन हो जाता है। उनका मत है कि मूर्च्छा में कल्क की मात्रा अधिक देने एवं चौगुने जल से पाक करने पर पुनः मुख्य कल्क और क्वाथ, जल, दूध आदि से पकाने में तैल में औषधि गुणों को अपने में आत्मसात करने की शक्ति कम रहती है एवं तैल से छः गुने द्रव पदार्थों से अधिक द्रवपदार्थ से परिपाक करने पर तैल के स्नेहांश द्रव की कमी होकर तैल गाढ़ा एवं खरपाक जैसा हो जाता है कि तैल के मौलिक गुणों के विपरीत है। यही बात घृत मूर्च्छा के सम्बन्ध में भी लागू होती है। घृत मूर्च्छा का कल्क घृत से षोडशांश तथा घृत के समान

भाग जल से मूर्च्छा करना उत्तम है।

घृतमूर्च्छना- ६४ तोले घी को कड़ाही में डालकर पकाएँ। जब घी गरम होकर फेन और शब्दरहित हो जाय तब उसमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा और हल्दी के चूर्ण के बिजोरे के रस में पीसा हुआ कल्क १६ तोला और जल २५६ तोला मिलाकर स्नेह-पाक विधि से पकावें।

यवक्षार- उत्तम जौ की गाँठे (मूल,फल, पत्ते, आदि पाँचों अंग) एक साफ कड़ाही में जलाकर भस्म बना लें। भस्म को मिट्टी के पात्र में डाल, छः गुना जल मिला कर हाथ से खूब मसल, पात्र को ढँककर एक दिन रात भर रहने दें। दूसरे दिन स्वच्छ जल को दूसरे पात्र में निथार लें। पीछे उस को २१ बार गाढ़े वस्त्र से छान लें। प्रति बार छानते समय वस्त्र को जल से धो लें। उस जल को मिट्टी के पात्र में मन्द आँच पर पकाएँ और जल को हिलाते रहें। जब-जब सूखने योग्य हो जाय तब पात्र को नीचे उतारकर ठण्डा होने दे ताकि वे बँध जायें, पश्चात् क्षार को खुरच कर निकाल लें। इसी प्रकार अन्य द्रव्यों का भी क्षार निकालें। क्षार को काँच के बर्तन में डाट लगाकर रखें, अन्यथा बरसात में पिघल जाता है। यदि ज्यादा तादाद में क्षार हो, तो मिट्टी के कोरे बर्तन में रखकर उसके मुँह पर मजबूत डाट लगा जौ या गेहूं की भूसी के ढेर में दबाकर रख देने से सुरक्षित रहता है।

शंखद्राव- लवण, फिटकरी,शोरा, नवसादर, कसीस, सुहागा, यवक्षार और सज्जीक्षार आदि लवण और क्षार द्रव्यों को काँच के नलिका यन्त्र(ग्लास रिटॉर्ट) में रख, यन्त्र की संधि को कपड़ा मिट्टी करके आग पर चढ़ावे। नलिका यन्त्र की तिरछी नली का मुँह दूसरे जल भरे पात्र में रखी हुई काँच की शीशी के मुँह में लगाकर यन्त्र के नीचे से मन्द आँच दें। तिरछी नली के मुँह से टपक कर शखद्राव आना बन्द हो जाय, तब आँच देना बन्द कर दें। इसे 'शंखद्राव'कहते हैं। यह तेजाब (Acids)निकालने की विधि है। इसी प्रकार से लवण, शोरा, नौसादर आदि पृथक् पृथक् द्रव्यों की तेजाब भी बनाकर उपयोग में ली जा सकती है।

चूर्ण- बिल्कुल सूखी हुई औषधियों को महीन कूट-पीसकर चलनी से छान लें। इसको '**चूर्ण**' कहते हैं। इसकी मात्रा १ तोला तक है। (व्यावहारिक मात्रा ३ से ६ माशा)

प्रक्षेप-द्रव्य- चूर्ण में गुड़ बराबर मात्रा में और मिश्री, घी, शहद तथा तेल दुगुनी मात्रा में मिलाये जाते हैं। जल-दूध आदि के साथ लेना हो तो चूर्ण आसानी से निगला जा सके उतनी मात्रा में दूध-जल आदि लें।

भावना- चूर्ण को स्वरस की भावना देनी हो, तो चूर्ण में द्रव पदार्थ इतना डाले कि चूर्ण अच्छी तरह तर हो जाये।

अवलेह-कल्पना- क्वाथ या स्वरस को मन्द अग्नि पर पकाकर गाढ़ा कर लें। अवलेह जब अच्छी तरह तैयार हो जाता है, तब वह करछी या कूंचे से उठाने पर तार बाँधकर उठता है, थोड़ा ठण्डा कर जल में डालने से डूबकर एक जगह रह जाता है, बिखरता (फैलता) नहीं। ठण्डा होने पर अँगुली से दबाने पर उसमें अँगुली के निशान बन जाते हैं और जिस द्रव्य का अवलेह बनाया हो उसकी गन्ध, वर्ण और रस उसमें आने लगते हैं। गोली बनाने के लिए चाशनी अवलेह जैसी हो जाने पर अग्नि से उतार थाली में फैला, धूप में सुखा, गोली बन सकने लायक गाढ़ी कर लेनी चाहिए। द्रवांश कम होने के बाद अग्नि पर रखने से औषधि का वीर्य कम हो जाता है।

अवलेह के लिए चाशनी- चीनी या गुड़ की चाशनी में चूर्ण मिलाकर जो अवलेह बनाया

जाता है, उसमें चीनी दवाओं के चूर्ण से चारगुनी और गुड़ दुगुना लेना चाहिए। कलईदार बर्तन में चीनी डाल कर उसमें इतना जल डालें कि चीनी अच्छी तरह घुल जाय। पीछे बर्तन को आग पर चढ़ाकर कोंचे से चलाते रहे। चाशनी जब उबलने लगे तो उसमें दूध के छींटे देकर हिलाने से मैल चाशनी के ऊपर आ जाती है, उसको कोंचे से अलग निकाल दें। ऐसा दो-तीन बार करने से सब मैल निकल कर चाशनी स्वच्छ हो जाती है। जब चाशनी तैयार होने को आवे तो उसको जल में डाल कर परीक्षा करें। चाशनी जल में डालने से नीचे बैठ जाय-ऊपर तैरे नहीं, जल में फैले नहीं, बिना बिखरें पड़ी रहे- तब चाशनी तैयार हो गई है- ऐसा समझकर उसे नीचे उतार लें।

अवलेह में चूर्ण प्रक्षेप- चूर्ण डालते समय चाशनी में द्रवांश इतना रह जाना चाहिए कि उसमें सारा चूर्ण समा सके। पाक हो जाने पर, उसे नीचे उतार चूर्ण थोड़ा-थोड़ा उसमें डालते रहे और मिलाते रहें। यदि थोड़ा चूर्ण मिलाना हो तो अवलेह ठण्डा होने पर मिलावें। केवल शहद से अवलेह बनाना हो तो शहद को मिट्टी के पात्र में मन्द अग्नि पर चढ़ा कर इतना गरम करे कि शहद पतला हो जाय। फिर नीचे उतार, ठण्डा होने पर ऊपर का फेन चम्मच से उतार कपड़े से छान कर उसमें चूर्ण मिलावें।

गुटिका-कल्पना- गुड़,शक्कर या गुग्गुल- जिसमें गोली बनानी हो उसको अग्नि पर अवलेह की तर पका, उसमें चूर्ण मिलाकर मोदक, गोली या बत्ती बनावें। गुग्गुल को बिना पकाये ही गोली बनानी हो तो गुग्गुल के बड़े-बड़े स्वच्छ टुकड़ों को, इमामदस्ते में थोड़ा एरण्ड तेल लगाकर, उसमें डालकर, इतना कूटें कि गुग्गुल नरम हो जाय। फिर उसमें थोड़ा-थोड़ा चूर्ण मिलाते जाय और कूटते जाएँ। जब सब चूर्ण अच्छी तरह मिल ताय तब उसकी पिण्डी या गोली बना लें अथवा जल स्वरस,शहद आदि किसी द्रव पदार्थ में चूर्ण को घोंट कर गोली बनावें।

प्रक्षेप-द्रव्यमान- गोली बनाने में चूर्ण से चौगुनी शक्कर, दुगुना गुड़ और गुग्गुल तथा शहद चूर्ण के बराबर लेना चाहिए। जल-स्वरस आदि द्रव पदार्थ इतना देना चाहिए कि चूर्ण अच्छी तरह से मर्दन किया जा सके।

फलवर्ति- मल और वायु के अनुलोमन के लिए गुड़ का पाक कर उसमें विरेचन द्रव्यों का चूर्ण मिला कर हाथ के अंगूठे जितनी मोटी और चिकनी फलवर्ति बनाएँ। इस पर घी लगाकर गुदा में चढ़ाएँ। योनिमार्ग और मूत्रनली में चढ़ाने के लिए उत्तरबस्ति यन्त्र के बराबर मोटी और लम्बी बत्ती बनानी चाहिए। आजकल सफेद पार्थिव मोम (Hard Paraffin)में विरेचक औषधि मिलाकर फलवर्त्रि बनायी जाती है। यह अंग्रेजी दवा विक्रेताओं के यहाँ बनी हुई तैयार मिल सकती हैं।

गुडूचीसत्व- अंगूठे जितनी मोटी-ताजी-हरी गिलोय (गुडूची)लें, जल से धो छोटे-छोटे टुकड़े कर लकड़ी के मूसल से खूब कटें। फिर इसे कलई किये हुए बर्तन में डाल, उसमें चौगुना पानी मिला हाथों से खूब मर्दन कर दूसरे कलई किये हुए बर्तन में स्वच्छ कपड़े से जल को ३-४ बार छान, बर्तन के मुँह पर थाली ढककर रात भर रहने दें। दूसरे दिन ऊपर का जल धीरे से दूसरे पात्र में निथार लें। पात्र के तल भाग में गिलोय का सत्व जमा हुआ मिलेगा। उसका सुखाकर निकाल लें। इसमें कुछ मटमैलापन हो तो इसमें २-३ बार चौगुना जल मिला, निथार कर तलभाग मे जमे सफेद गिलोय सत्व को सुखाकर रख लें।

बिरोजे का सत्व- एक कलईदार पीतल या मिट्टी के पात्र में आधा दूध और आधा जल

(आधे तक)भर दें, पात्र के मुँह पर ढीला कपड़ा बाँध कर उस पर गन्धाबिरोजा डालकर पात्र को अंगीठी या चूल्हे पर रख, नीचे मंद अग्नि दें, जब सब बिरोजा पिघल कर नीचे पात्र में बैठ जाय तो पात्र को नीचे उतारकर ठण्डा होने पर बिरोजे का सत्व निकालकर, उसे जल से धोकर छाया में सुखाकर रख लें।

गुलकन्द बनाना-अच्छे कलईदार पीतल या चीनी मिट्टी के बर्तन में गुलाब, सेवंती, अमलतास, वासा आदि जिस चीज का गुलकन्द बनाना हो, उसके ताजे फूलों को बराबर वजन की शक्कर के साथ हाथों से अच्छी तरह मिला, पात्र के ऊपर दोहरा मजबूत कपड़ा बाँध कर १५-२० दिन तक धूप में रखें-गुलकन्द तैयार हो जायेगा।

१ मान-परिभाषा

औषध-निर्माण के लिए मान(तौल) का ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि प्रयोग में औषधियों का परिमाण ठीक-ठीक न होने से पूर्ण लाभ नहीं कर सकता। अत: इस अध्याय में मान-**परिभाषा** का उल्लेख किया जाता है।

आयुर्वेद-शास्त्र में '**मागधीय**' और '**कलिंग**' भेद से दो मानों का उल्लेख मिलता है। इन दोनों में मागधीय मान श्रेष्ठ होने से इसी का व्यवहार वैद्य लोग करते हैं, किन्तु इसके वजन करने के बाद अप्राप्य होने के कारण बड़ी कठिनाई होती है, अत: प्राय: वैद्य लोग तोला, छटांक, सेर, मन के बाटों का ही प्रयोग करते थे, किन्तु अब सरकारी कानून के अनुसार उनका प्रचलन भी बन्द हो गया है और उनके स्थान पर मिलिग्राम, ग्राम, किलोग्राम, क्विंटल आदि नये दाशमिक प्रणाली के बाटों का प्रचलन हुआ है। वैद्यों को भी इसे प्रयोग में लाना चाहिए, अत: तुलनात्मक परिचय दे रहे हैं।

शार्ङ्गधर के मतानुसार-मागधीय मान

१ त्रसरेणु	=	छोटे झरोखे से कमरे में आती हुई सूर्य की किरण में उड़ती हुई धूल के जो कण दिखाई पड़ते हैं, उन्हें 'त्रसरेणु' कहते हैं।
६ त्रसरेणु, ध्वंसी या वंशी	=	१ मरीचि
६ मरीचि	=	१ राई
३ राई	=	१ सरसों
८ सरसों	=	१ जौ
२ लाल चावल	=	१ उड़द या जौ
४ जौ	=	१ रत्ती या गुन्जा
६ रत्ती	=	१ माषा, माषक, हेम धान्यक
४ माशा = २४ रत्ती	=	१ शाण या टंक (धरण)
२ शाण = ४८ रत्ती	=	१ द्रंक्षण, कोल, गद्याण या वटक

*मान शब्द का '**मीयते अनेन इति मानम्**' अर्थात् जिसके द्वारा तौला या मापा जाये उसको 'माप' कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से 'मान' शब्द से तौल करने के साधन सरसों, चावल, जौ, रत्ती आदि तौल (वजन) का द्रवद्रव्य के समान बिन्दु शाण, शुक्ति आदि मापने के पात्र का तथा लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई मापने का साधन, यव, अंगुल वितस्ति आदि माप (मापदण्ड) का

ग्रहण होता है।

२ द्रक्षण = ४ शाण = ९६ रत्ती = १ कर्ष
२ कर्ष = २ तोला = १ पलार्ध, शुक्ति
२ पलार्ध = ४ तोला = १ पल, मुष्टि, बिलव चतुर्थिका
२ पल = ८ तोला = १ प्रसृति या प्रसृत
२ प्रसृति = १६ तोला = १ अंजलि या कुडव
२ अंजलि = ३२ तोला = १ मानिका, शराब या अष्टपल
२ शराब = ६४ तोला = १ प्रस्थ
४ प्रस्थ = ३ सेर
३ छटाक १ तोला = १ आढक, भाजन, कंसपात्र
४ आढ़क (कंस)= १२ सेर
१२ छटांक ४ तोला = १ द्रोण, कलश, घट
२ द्रोण = २५ सेर
३ छटाक ३ तोला = १ शूर्प, कुम्भ या चतु:षष्ठि शराब
२ शूर्प = ५१ सेर
३ छटाक १ तोला = १ वाही, गोणी, भारी या द्रोणी
४ द्रोणी = २०४ सेर
१२ छटाक ४ तोला = १ खारी
१०० पल = ५ सेर = १ तुला
२० तुला = १०० सेर = १ भार

सुश्रुत के मत से मान-परिभाषा

१२ उड़द = १ सुवर्ण माषक (उड़द) = (१ माशा)
१६ सुवर्णमाषकों का = १ कर्ष = सुवर्ण १ तोला'
१९ निष्पाव = १ धरण
२।। (अढ़ाई) धरण = १ कर्ष (तोला)
४ कर्ष = १ पल = ४ तोला
४ पल = १ कुडव = ३ छ. १ तोला
४ कुडव = १ प्रस्थ = १२ छ. ४ तोला
४ प्रस्थ = १ आढ़क = ३ सेर १२ छ. ४ तोला
४ आढ़क = १ द्रोण = १२ सेर १३ छ. ४ तोला
४०० कर्ष = १ तुला = ५ सेर
२० तुला = १ पार = १०० सेर

आचार्य यादवजी त्रिकमजी द्रव्यगुणविज्ञान में लिखते हैं-

'सुश्रुत ने मान संक्षेपत: और सरल भाषा में लिखा है। एक मान के कई पर्याय भी नहीं लिखे है। शाण, कोल, प्रसृत, शराब, कंस, शूर्प और खारी ये मान सुश्रुत ने लिखे ही नहीं हैं, माशे का

मान सुश्रुत और शार्ङ्गधर दोनों का समान है। दोनों के मत से माशा ६ रत्ती का होता है और शाण ४ माशे का होता है। चरक ने ८ रत्ती का माशा माना है, परन्तु शाण ३ माशे का माना है। अतः शाण दोनों के मत में २४ रत्ती का होता है। सुश्रुत तथा शार्ङ्गधर ने कर्ष १६ माशे का और चरक ने शाण ३ माशे का, कोल ६ माशे का और कर्ष १२ माशे का माना है, परन्तु यह है केवल आभास मात्र। रत्तियों के हिसाब से सब का शाण २४ रत्ती का, कोल ४८ रत्ती का और कर्ष ९६ रत्ती का होता है। अर्थात् रत्तियों के हिसाब से सुश्रुत और शार्ङ्गधर के साथ चरक के शाण, कोल और कर्ष के मान में भी अंतर नहीं है। कर्ष के आगे के मान तीनो में बराबर हैं, सुश्रुत में उड़द के पहले का मान नहीं लिखा हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि सुश्रुत के योगों में उड़द से नीचे की मान की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। हाँ, हीरे प्रभृति के भस्म संखिया जैसे विष या कुछ तीक्ष्ण रस-योगों को रत्ती से भी सूक्ष्म मात्रा में देने की आवश्यकता पड़ती है। उसके लिए सुगम उपाय यह है कि उन द्रव्यों की एक रत्ती की मात्रा लेकर उसकी जितनी मात्रा बनानी हो, उतनी गुना उसमें गिलोय सत्व या दुग्ध-शर्करा(शूगर ऑफ मिल्क) मिला, खूब मर्दन कर, उसकी उतनी मात्रायें बनायें, इस प्रकार भाग बना लेने से मनोऽनुकूल मात्रा बनाने में सुविधा होती है और औषध के गुणों में कुछ भी अन्तर नहीं आता। इसी प्रकार गन्धकद्राव (गन्धकाम्ल) जैसे तीक्ष्ण द्रवौषधों को १०-२० गुने परिस्रुत जल में मिला लेने से उसकी अभीष्ट मात्रा देने में सरलता होती है।'

स्व. पं. हरिप्रपन्नजी 'रसयोगसागर' के परिशिष्ट में लिखते हैं-

'सुश्रुतीय मान के साथ शार्ङ्गधरोक्त मान की तुलना की जाती है। सुश्रुत में १२ उड़द का १ माशा माना गया है, तथा शार्ङ्गधर में ६ रत्ती का एक माशा माना है और कर्ष को दोनों ने १६ माशे का लिखा है। वजन करने से १ रत्ती के बराबर २ उड़द होते हैं। सुश्रुत के हिसाब से एक कर्ष में १९२ उड़द होते हैं और शार्ङ्गधर में ६ रत्ती के माशे के हिसाब से ९६ रत्तियाँ होती हैं। इन रत्तियों को द्विगुण करने से १९२ उड़द बनते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सुश्रुत को भी ९६ रत्ती का कर्ष और ६ रत्ती का ही माशा मान्य है। जो शार्ङ्गधर के मान के बराबर है। आजकल व्यवहार में भी एक तोले की ९६ रत्तियाँ मानी जाती हैं,()। यदि आजकल के प्रचलित रूपयों के साथ बराबरी करनी हो तो पंचमजार्ज का जो किल्विष रहित नया सिक्का है(आजकल यह सिक्का अप्राप्य सा हो गया हैं,) वह उपरिनिर्दिष्ट तोले या कर्ष के बराबर वजन में है, परन्तु इससे पहले के दो सिक्के कुछ कम हैं इसलिये रूपयों से तोलने का काम लिया जाय तो वर्तमान नये में सिक्के से लेना उचित होगा पर एकान्ततः उस पर भी भरोसा न रखना चाहिये। उसमें भी एक दूसरे में टकसाल की गलती से अथवा घिसने से अथवा तेजाब में डाल कर चाँदी निकालने से कुछ फेर-फार रहता है, इस बात पर ध्यान रखना चाहिए। एक कर्ष के १६ माशे माने गये हैं और आजकल १ तोले के १२ माशे माने जाते हैं, इस जगह आपाततः विरोध होता है, परन्तु तोले में माशा ८ रत्ती का माना जाता है, और उपरिनिर्दिष्ट कर्ष में ६ रत्ती का माना है, इसलिये कर्ष में १६ माशे और तोले में १२ माशे का आभासमात्र भेद प्रतीत होता है, वास्तविक भेद नहीं है।'

द्रव पदार्थ का यूनानी मान

४।। माशा	---	१ चमचा
२।। तोला	---	१ प्याली
२० तोला	---	१ प्याला

यूनानी मान के अनुसार चम्मच, प्याली और प्याले बनवा कर भी वैद्यों को उपयोग में लाने चाहिए।

द्रव द्रव्यार्थ कुडवमान

द्रव द्रव्य मापने के लिये मिट्टी, लकड़ी या लोहे आदि धातुओं का चार अंगुल =(३२ जौ =३ इंच) चौड़ा और 4 अंगुल ही ऊँचा गोल पात्र बनाया जाये, इसे 'कुडव' कहते हैं।

वक्तव्य- आचार्य शार्ङ्गधर आदि ने द्रव द्रव्यों के मापने के लिये इस प्रकार का कुडव बनाने को लिखा है। अंगुल ३ प्रकार का माना गया है- ६.७ और ८ यव की चौडाई का। एक यव की लम्बाई एक इञ्च के दशांश के बराबर होती है। यदि ६ यव का एक अंगुल मान कर ४ अंगुल (=२४ यव या २ इञ्च ४ दशांश) चौड़ा और गहरा गोल पात्र बनाया जाये, तो उसमें १६ तोला (कर्ष) जल आ सकता है। आयुर्वेदीय पद्धति से द्रव द्रव्य मापने के लिये कुडव का मान बनाना आवश्यक है। इसमें कर्ष, पल प्रभृति और कुडव के स्थान में रेखाएँ ला कर नागरी अंक और मान के नाम लिखने चाहिए। जब तक इस प्रकार के कुडव का मान बन कर बाजार में न मिलने लगे, तब तक सरकारी छाप के पाव, आधा सेर और सेर के मानों से काम चलाना चाहिए। ०।० सेर =१। कुडव, ०।।० सेर = १। शराब और १ सेर = १ प्रस्थ।

भारतवर्ष में अंग्रेजी तौल

१८०	ग्रेन	१	तोला
५	तोला	१	छटाँक
४	छटांक	१	पाव
४	पाव (१६ छटांक)	१	सेर
४०	सेर	१	मन

घन पदार्थ का अंग्रेजी तौल

१	ग्रेन	१	गेहूँ भर
६०	ग्रेन	१	ड्राम
४३७।।	ग्रेन	१	औंस
१६	औंस	१	पौंड
१४	पौंड	१	स्टोन
२८	पौंड	१	क्वार्टर
४	क्वार्टर	१	हंड्रेडवेट
२०	हंड्रेडवेट	१	टन

द्रव पदार्थ का अंग्रेजी मान

१	बूँद	१	बूँद
६०	बूँद	१	फ्लूइड (तरल) ड्राम
८	फ्लूइड ड्राम	१	फ्लूइड औंस
१६	फ्लुइड औंस	१	फ्लूइड पौंड
२०	फ्लूइड औंस	१	पॉइण्ट
८	पाइण्ट	१	गेलन

तुलनात्मक मान

घन पदार्थ का दाशमिक (मीटरिक मान)

१	रत्ती						१२१.५०	मिलीग्राम
२	रत्ती						२४३.००	मिलीग्राम
३	रत्ती	=	आधा आना भर				३६४.००	मिलीग्राम
४	रत्ती						४८६.००	मिलीग्राम
६	रत्ती	=	एक आना				७२९.००	मिलीग्राम
८	रत्ती	=	एक माशा				९७२.००	मिलीग्राम
१२	रत्ती	=	डेढ़ माशा	=	दो आना भर		१.४६	मिलीग्राम
२४	रत्ती	=	तीन माशा	=	चार आना भर		२.९२	ग्राम
४८	रत्ती	=	छः माशा	=	आठ आना भर		५.८३	ग्राम
९६	रत्ती	=	बारह माशा	=	एक तोला भर		११.६६	ग्राम
२	तोला						२३.३३	ग्राम
२ ।।	तोला						२९.१६	ग्राम
३	तोला						३४.९९	ग्राम
४	तोला						४६.६६	ग्राम
५	तोला						५८.३२	ग्राम
६	तोला						६९.९८	ग्राम
७	तोला						८१.६५	ग्राम
८	तोला						९३.३१	ग्राम
९	तोला						१०४.९७	ग्राम
१०	तोला						११६.६४	ग्राम

पाँच तोला, एक छटाँक से एक सेर तक तौल

५	तोला	=	१	छटाँक	५८	ग्राम
१०	तोला	=	२	छटाँक	११७	ग्राम
१५	तोला	=	३	छटाँक	१७५	ग्राम
२०	तोला	=	४	छटाँक	२३३	ग्राम
२५	तोला	=	५	छटाँक	२९२	ग्राम
३०	तोला	=	६	छटाँक	३५०	ग्राम
३५	तोला	=	७	छटाँक	४०८	ग्राम
४०	तोला	=	८	छटाँक	४६७	ग्राम
४५	तोला	=	९	छटाँक	५२५	ग्राम
५०	तोला	=	१०	छटाँक	५८३	ग्राम
५५	तोला	=	११	छटाँक	६४२	ग्राम
६०	तोला	=	१२	छटाँक	७००	ग्राम
६५	तोला	=	१३	छटाँक	७५८	ग्राम
७०	तोला	=	१४	छटाँक	८१६	ग्राम
७५	तोला	=	१५	छटाँक	८७५	ग्राम
७०	तोला	=	१६	छटाँक (१सेर)	९३३	ग्राम

(८० तोला) एक सेर से एक मन तक

१	सेर	०.९३३	कि. ग्राम
२	सेर	१.८७०	कि. ग्राम
३	सेर	२.८००	कि. ग्राम
४	सेर	३.७३०	कि. ग्राम
५	सेर	४.६७०	कि. ग्राम
६	सेर	५.६००	कि. ग्राम
७	सेर	६.५३०	कि. ग्राम
८	सेर	७.४६०	कि. ग्राम
९	सेर	८.४००	कि. ग्राम
१०	सेर	९.३३०	कि. ग्राम
२०	सेर	१८.६६०	कि. ग्राम
३०	सेर	२७.९९०	कि. ग्राम
४०	सेर	३७.०००	कि. ग्राम

एक किलो से दस किलो तक

१	किलो ग्राम	१	सेर	१	छटाँक	१	तोला
२	किलो ग्राम	२	सेर	२	छटाँक	३	तोला
३	किलो ग्राम	३	सेर	३	छटाँक	४	तोला
४	किलो ग्राम	४	सेर	५	छटाँक	१	तोला
५	किलो ग्राम	५	सेर	६	छटाँक	२	तोला
६	किलो ग्राम	६	सेर	७	छटाँक	४	तोला
७	किलो ग्राम	७	सेर	९	छटाँक		
८	किलो ग्राम	८	सेर	१०	छटाँक	२	तोला
९	किलो ग्राम	९	सेर	११	छटाँक	३	तोला
१०	किलो ग्राम	१०	सेर	१३	छटाँक		

एक पौंड से दस पौंड

१	पौंड	०.४५	कि. ग्राम
२	पौंड	०.९१	कि. ग्राम
३	पौंड	१.३६५	कि. ग्राम
४	पौंड	१.८१	कि. ग्राम
५	पौंड	२.२७	कि. ग्राम
६	पौंड	२.७२	कि. ग्राम
७	पौंड	३.१८	कि. ग्राम
८	पौंड	३.६३	कि. ग्राम
९	पौंड	४.०८	कि. ग्राम
१०	पौंड	४.५४	कि. ग्राम

तरल (द्रव) पदार्थ के अंग्रेजी तौल से दाशमिक तौल

१	तरल ड्राम	३.५	मिलीलिटर
२	तरल ड्राम	७.०	मिलीलिटर
१/२	तरल ड्राम	१४	मिलीलिटर
१	तरल ड्राम	२८	मिलीलिटर
२	तरल ड्राम	५७	मिलीलिटर
४	तरल ड्राम	११४	मिलीलिटर
५	तरल ड्राम	१४२	मिलीलिटर
६	तरल ड्राम	१७०	मिलीलिटर
८	तरल ड्राम	२२७	मिलीलिटर
१०	तरल ड्राम	२८५	मिलीलिटर
१६	तरल ड्राम	४५५	मिलीलिटर
२०	तरल ड्राम	५७०	मिलीलिटर
२४	तरल ड्राम	६८२	मिलीलिटर

व्यवहार के लिए उपयोगी सुझाव

आयुर्वेदाक्त मानों को व्यवहार में लाने के लिए उन मानों के बाट जंग न लगने वाले फौलाद, निकल, चाँदी, प्लेटिनम जैसी धातु के या मुलामा चढ़ाएँ हुए पीतल के बना लेना चाहिए। उन पर मान के अंक नागरी में लिखे होने चाहिए। जब ऐसे मान बाजार में न मिलने लगें, तब तक बाजार में अंग्रेजी मान वाले ग्रेन के बाटों से या भारत सरकार के चाँदी के सिक्कों से काम चलाया जाय। १ ग्रेन १ यव या एक धान्यमाष के बराबर होता है।- (द्र.गु.वि.)

वक्तव्य- वर्तमान में सरकारी कानून के अनुसार अंग्रेजी बाटों का प्रचलन भी बन्द हो गया है। अतः तुलनात्मक सूची के अनुसार दाशमिक प्रणाली के बाटों का व्यवहार करना उपयुक्त हैं।

सांकेतिक परिभाषा

दीपन- जो द्रव्य जठराग्नि को प्रदीप्त करता है किन्तु आम को नहीं पचाता, उसे 'दीपन' कहते हैं, जैसे- सौंफ।

पाचन - जो द्रव्य आम को पचाता है और जठराग्नि को प्रदीप्त नहीं करता, उसको 'पाचन' कहते हैं, यथा-नागकेशर। कई ऐसे भी द्रव्य होते हैं, जो 'दीपन' और 'पाचन' दोनों गुण रखते हैं, यथा- चित्रक।

संशमन - जो द्रव्य वात, पित्त और कफादि दोषों को शमन न करे और न प्रकुपित करे किन्तु बढ़े हुए दोषों का शमन कर दे, उसे 'संशमन' कहते हैं, यथा- गुर्च (गिलोय)।

अनुलोमन- जो द्रव्य अपक्व-मल को पकाकर अधोमार्ग द्वारा देह से बाहर निकाल दे, उसे 'अनुलोमन' कहते हैं, यथा- हरड़।

विष - जो द्रव्य व्यवायी, विकाशी, कफनाशक, मदकारक, आग्नेयगुण-विशिष्ट जीवननाशक और योगवाही हो, उसको 'विष' कहते हैं। यथा बच्छनाग, संखिया, अफीम आदि।

प्रमाथी- जो द्रव्य अपनी शक्ति से रस-रक्तवाही स्रोतों के भीतर संचित दोष (विकार) को दूर करता है, उसको 'प्रमाथी' कहते हैं। यथा-काली मिर्च और बच।

अभिष्यन्दी- जो द्रव्य अपने पराक्रम से रसवाही स्रोतों को अवरुद्ध कर शरीर में गुरुता उत्पन्न करें, उसे 'अभिष्यन्दी' कहते हैं। यथा- दही।

योगवाही- जो द्रव्य पच्यमानावस्था में सांसर्गिक गुण को ग्रहण कर लेते हैं उन्हें 'योगवाही' कहते हैं। यथा- शहद, घी, जल, तैल, पारद और लौह आदि धातु।

विदाही- जिस द्रव्य के सेवन से खट्टी-खट्टी डकारें आने लगें, प्यास लगे और हृदय में दाह हो तथा भोजन का परिपाक देर से हो, उसे 'विदाही' कहते हैं।

शीतल- जो द्रव्य स्तम्भक और ठण्डा तथा सुखप्रद हो और प्यास, मूर्च्छा, दाह तथा स्वेद (पसीना) का शमन करें, उसे 'शीतल' कहते हैं।

उष्ण- जो द्रव्य शीत गुण के विपरीत अर्थात् प्यास, दाह, मूर्च्छा को उत्पन्न करने वाला विशेषत: घाव को पकाने वाला हो, उसे 'उष्ण' कहते हैं।

स्निग्ध- जो द्रव्य स्नेहयुक्त (चिकना) और कोमलता उत्पन्न करने वाला तथा बल-वर्ण की वृद्धि करने वाला हो, उसे 'स्निग्ध' कहते हैं।

त्रिकटु- सोंठ, पीपल और काली मिर्च के समभाग मिश्रण को 'त्रिकटु' कहते हैं।

त्रिफला- आँवला, हर्रे और बहेड़ा के समभाग मिश्रण को 'त्रिफला' कहते हैं।

त्रिकंटक- कटेली, धमासा और गोखरू को 'त्रिकंटक' कहते हैं।

त्रिमद- एकत्र मिले हुए वायविडंग, नागरमोथा, और चित्रक को 'त्रिमद' कहते हैं।

त्रिजात- दालचीनी, तेजपात और इलायची को 'त्रिजात' कहते हैं।

क्षारत्रय- यवक्षार, सज्जीखार और सुहागा के मिश्रण को 'क्षारत्रय' कहते हैं।

मधुरत्रय- न्युनाधिक मात्रा में एकत्र मिले हुए घृत, मधु, गुड़ को 'मधुरत्रय' कहते हैं।

त्रिगन्ध- मिले हुए गन्धक, हरिताल और मैनशिल को 'त्रिगन्ध' कहते हैं।

चतुर्जात- एकत्र मिले हुए दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर को 'चतुर्जात' कहते हैं।

चातुर्भद्र- एकत्र मिले हुए सौंठ, अतीस, मोथा तथा गिलोय को 'चातुर्भद्र' कहते हैं।

चातुर्बीज- एकत्र मिले हुए मेथी, अजवायन, काला जीरा तथा हालों के बीज को 'चातुर्बीज' कहते हैं।

चतुरूषण- एकत्र मिले हुए सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और पीपलामूल को 'चतुरूषण' कहते हैं।

चतु:सम- हरड़, लौंग, सेंधानमक और अजवायन के मिश्रण को 'चतु:सम' कहते हैं।

बलाचतुष्ट्य- एकत्र मिले हुए खरेंटी, सहदेई, कंधी, और गंगरेन को 'बलाचतुष्ट्य' कहते हैं।

पंचवल्कल- आम, बड़, गूलर, पीपल, पाकड़ इन पंचक्षीर वृक्षों के वल्कलों के मिश्रण को 'पंचवल्कल' कहते हैं।

तृणपंचमूल- एकत्र मिले हुए कुश, कास, सरकण्डा, काश (डाभ) और गन्ने के मूल को 'तृणपंचमूल' कहते हैं।

अम्लपंचक-एकत्र मिले हुए बिजौरा, सन्तरा, इमली, अम्लवेत और जम्बीरी नींबू को 'अल्पपंचक' कहते हैं।

लघुपंचमूल- शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली और गोखरू को 'लघुपंचमूल' कहते हैं।

बृहत्पंचमूल- अरणी, श्योनाक, पाढ़ल की छाल, बेल और गम्भारी को 'बृहत्पंचमूल' कहते हैं।

पंचपल्लव- एकत्र मिले हुए आम, कैथ, बिजौरा, बेल और जामुन के पत्ते को 'पंचपल्लव' कहते हैं।

मित्रपंचक- एकत्र मिले हुए गुड़, घी, घुंघची, सुहागा और गुगल को 'मित्रपंचक' कहते हैं।

पंचकोल-एकत्र मिले हुए पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक (सोंठ) को 'पंचकोल' कहते हैं।

पंचगव्य- एकत्र मिले हुए गाय के दूध, दही, घृत, गोबर और मूत्र को 'पंचगव्य' कहते हैं।

पंचलवण- एकत्र मिले हुए सेंधा, काला, विड्, सोंचल और सामुद्र लवण को 'पंचलवण' कहते हैं।

पंचक्षार- तिल क्षार, पलाश क्षार, अपामार्ग क्षार, यवक्षार, और सज्जी-क्षार, इनको 'पंचक्षार' कहते हैं।

पंचसुगन्धि- शीतल चीनी, सुपारी, लौंग, जावित्री और जायफल को 'पंचसुगन्धित' कहते है।

षडूषण- पंचकोल में काली मिर्च मिला देने से 'षडूषण' कहलाता है।

सप्तधातु- सुवर्ण, चाँदी, ताम्र, बंग, यशद, शीश और लोहा को 'सप्तधातु' कहते हैं।

सप्त उपधातु- सुवर्णमाक्षिक, रौप्यमाक्षिक, नीलाथोथा, मुरदासंग, खर्पर, सिन्दूर और मण्डूर को 'सप्तउपधातु' कहते हैं।

सप्त उपरत्न- वैक्रान्त, राजावर्त, पिरोजा, शुक्ति, शंख, सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त को 'सप्त उपरत्न' कहते हैं।

सप्त सुगन्धि- अगर, शीतल मिर्च, लोबान, लौंग, कपूर, केशर और चतुर्जात को 'सप्त सुगन्धि' कहते हैं।

अष्टवर्ग- मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और वृद्धि को 'अष्टवर्ग' कहते हैं।

मूत्राटक- गाय, भैंस, बकरी, भेड़, ऊँटनी, गधी, घोड़ी और हथिनी के मूत्र को 'मूत्राष्टक' कहते हैं।

क्षाराष्टक- अपामार्ग, आक, इमली, तिल, ढाक, थूहर और जौ इनके पंचांग के क्षार तथा सज्जीक्षार 'क्षाराष्टक' कहलाते हैं।

नवरत्न- हीरा, मोती, पन्ना, प्रवाल, लहसुनियाँ, गोमेदमणि, माणिक्य, नीलम और पुखराज- ये 'नवरत्न' कहलाते हैं।

नव उपविष- थूहर, आक, कलिहारी, चिरभिटी (गुंजा) जमालगोटा, कनेर, धतूर और अफीम- ये नव 'उपविष' हैं।

दशमूल- लघुपंचमूल और बृहत् पंचमूल को मिला देने से 'दशमूल' बन जाता हैं।

रासायनीक परिभाषा

कज्जली- पारद को गन्धक के साथ अथवा प्रथम पारद में सुवर्णादि धातुओं को सूक्ष्म चूर्ण या बरक मिलाकर पीछे गन्धक के साथ खरल में पीसने से जो काजल जैसा काले रंग का पदार्थ बनता है, उसे 'कज्जली' कहते हैं।

रसपंक- यदि उपरोक्त विधि से बनी हुई कज्जली में द्रव पदार्थ मिलाकर घोंटा जाय, तो उसे 'रसपंक' कहते हैं।

पिष्टी- २ माशे गन्धक और १२ माशे शु. पारद को लेकर खरल में डालकर तेज धूप में घोंटे। घोंटते-घोंटते चूर्ण के चिकना (कज्जली) हो जाने पर उसे 'पिष्टी' कहते हैं।

पातन पिष्टी- १ भाग शुद्ध पारद को चौथाई भाग सुवर्ण पत्रों (वर्कों) के साथ घोंटने से जो कज्जली (पिष्टी) तैयार हो, उसे 'पातन पिष्टी' कहते हैं।

नोट- इस क्रिया के अन्दर अनेक गुणों का समावेश होता है।

वरलोह- तीक्ष्ण लोह तथा ताम्र को (अनेकबार) एक साथ ही पिघलावें, फिर गन्धक के चूर्ण को लकुच (बड़हल) के रस में मिलाकर उसमें बुझायें। इस लोह को 'वरलोह' कहते हैं।

निर्वापण- अग्नि में पिछली हुई धातु में अन्य धातुओं को पिघला कर बंकनाल से फूँककर मिला दिया जावे, तो उसको 'निर्वापण' या 'निर्वाहण' कहते हैं।

वंकनाल के लक्षण- पीतल आदि धातु की एक हाथ लम्बी, अग्रभाग में मुड़ी हुई, मूल के स्थूल छिद्रवाली और अग्रभाग में सूक्ष्म छिद्रवाली जो नली बनाई जाती है, उसको 'वंकनाल' कहते हैं।

नोट- आजकल यह यन्त्र प्रायः सुनारों के यहाँ अग्नि प्रज्वलित करने के लिए देखा जाता है।

रेखापूर्ण भस्म- जिस धातु की भस्म तर्जनी (अंगूठे और मध्यमा के बीच के अंगूली) और अंगूठे के बीच में रगड़ने पर अंगूठे और तर्जनी की रेखाओं में प्रवेश कर जाय, उसे 'रेखापूर्ण भस्म' कहते हैं।

अपुनर्भव भस्म- किसी धातु की भस्म को गुड़, घूंघची का चूर्ण, सुहागा, शहद और घृत इनके साथ मिला मूषा में रख कर, अग्नि में फूंकने से यदि भस्म से धातु पृथक् न हो, तो उस भस्म को 'अपुनर्भव भस्म' कहते हैं।

वारितर भस्म- धातु की जो भस्म जल में तैर सकती है, उसको 'वारितर भस्म' कहते हैं।

वारितर भस्म की परीक्षा- एक छोटा कांच या पीतल अथवा कलई का गिलास लेकर उसे जल से भर दिया जाय। जब पानी स्थिर हो जाय तब अंगुष्ठ और तर्जनी के बीच में रगड़ते हुए थोड़ी भस्म धीरे-धीरे उसमें छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने पर यदि वह भस्म उत्तम होगी तो पानी पर तैरेगी, यदि वह कच्ची होगी तो पानी के नीचे बैठ जायेगी, किन्तु अनेक विधियों से बनी भस्मों के परीक्षण करने पर हमारे अनुभव में आया है कि केवल वानस्पतिक द्रव्यों की अधिक भावना लगी भस्मों में हल्कापन (लघुत्ता) आने से वे ही जल पर तैरती है। शिला, ताल, गन्धक, हिंगुल, पारद तथा धातुयोग से बनी भस्मों में गुरूता (भारीपन) होने के कारण इस विधि से अपरीक्षणीय है।

बीज- किसी धातु को गलाकर उसमें विशेष संस्कारित पारद का निर्वापण करने से वह धातु बीजरूप हो जाती है तथा इसके सम्मिश्रण से धातुवेध होता है।

धान्याभ्रक- शुद्ध किए हुए अभ्रक का चूर्ण कर, उसमें चतुर्थांश (छिलके सहित धान्य) डाल, ऊनी कम्बल या खद्दर में जरा ढीली पोटली बाँध कर एक पात्र में भरे हुए जल (या काँजी) में तीन दिन रख छोड़ें, इससे अभ्रक नरम हो जायेगा। चौथे दिन कम्बल या खद्दर की पोटली को (धान समेत अभ्रक को) हाथ से मर्दन करके सब अभ्रक को जल में से छान, ऊपर का निथरा हुआ जल निकालकर, पेंदे में जमें हुए अभ्रक चूर्ण को धूप में सुखा लिया जाय। इसको 'धान्याभ्रक' कहते हैं। धान्याभ्रक बनाने के बाद उसकी भस्म बनानी चाहिए। धान्याभ्रक बना लेने से अभ्रक सूक्ष्म और मरणोपयुक्त होता है।

वक्तव्य- यह अभ्रक का चूर्ण बनाने की एक विधि है, किन्तु पानी में तीन दिन धान्य के भीगने से उनमें मुलायमपन आ जाता है और अभ्रक के साथ मलने पर अभ्रक पर दबाव ठीक नहीं पडता है। अतः हमने धान्य के स्थान पर ग्रेनाईट पत्थर (कठोर काले पत्थर) के छोटे-छोटे टुकड़े डालकर मर्दन करके धान्याभ्रक (अभ्रकचूर्ण) बनाया तो बड़ी सरलता से एवं उत्तम बना। ग्रेनाईट के टुकड़े भी बार-बार वही काम में आते हैं।

सत्त्व- क्षारवर्ग, अम्लवर्ग और द्रावण वर्गों के द्रव्यों के साथ अभ्रक, माक्षिक खर्पर आदि जिस खनिज द्रव्य का सत्त्व निकालना हो उसको मर्दन कर गोला बना, सुखा कर बगल में छिद्रयुक्त मूषा में डाल, भट्ठी में रखकर धौंकनी की सहायता से तीव्र आँच देने से उस खनिज में जो साररूप द्रव्य प्राप्त होता है, उसको 'सत्त्व' कहते हैं।

शोधन-त्रितय- काँच (एक विशेष प्रकार की मिट्टी), सुहागा और सौवीरांजन ये तीनों धातु-द्रव्यों को शुद्ध करनेवाले हैं।

क्षीरत्रय- अर्क, बड़ और थूहर के दूध को 'क्षीरत्रय' कहते हैं।

हिंगुलाकृष्ट- हिंगुल को अदरक अथवा निम्बू रस आदि के रस में घोंट कर विद्याधर यन्त्र से अथवा डमरू या कन्दुक यन्त्र से उड़ा कर निकाले हुए पारद को 'हिंगुलाष्टक' पारद कहते हैं।

घोषाकृष्ट- कांस्य के अन्दर कुछ हरिताल मिला कर बंकनाल द्वारा अग्नि में फूंकने से बंग का भाग और ताम्र का भाग पृथक्-पृथक् निकल जाता है। इसको 'घोषाकृष्ट' षङ्ग और घोषाकृष्ट ताम्र कहते हैं।

वरनाग- नाग को तीक्ष्ण लौह और नीलांजन के साथ अनेक बार तेज आँच में फूँकने पर जब वह अत्यन्त कोमल कृष्ण वर्ण तथा शीघ्र ही द्रुत होने लायक हो जाय, तब उसको 'वरनाग' कहते हैं।

उत्थापन- किसी भी धातु की भस्म को द्रावक वर्ग के द्रव्यों के साथ फूँकने से वह अपने स्वरूप में आ जाता हैं, इसको 'उत्थापन' कहते हैं।

ढालन- किसी भी धातु को अग्नि में द्रवित करके द्रव्य पदार्थ में बुझाने को 'ढालन' कहते हैं।

द्वन्दान- दो धातुओं को एक साथ मिलाकर फूँकने से जो एकीकरण किया जाता है, उसको 'द्वन्दान' कहते हैं।

आवाप- अग्नि के द्वारा पिघलाये हुए धातु आदि में अन्य किसी द्रव्य को मिलाने की क्रिया को 'आवाप' 'प्रतिवाप' अथवा 'आच्छादन' कहते हैं।

निर्वाप- अग्नि में गर्म की हुई किसी धातु को जल में बुझाने की क्रिया को 'निर्वाप' कहते हैं।

शुद्धावर्त- जब अग्नि खूब प्रज्वलित हो जाय और उसमें से श्वेत वर्ण की ज्वाला उठने लगे, तब उसको 'शुद्धावर्त' कहते हैं। यह आँच सत्व निकालने के लिए काम आती है।

बीजावर्त- किसी धातु का द्रावण करने के लिए उसको अग्नि में रखकर धौंकनी से धौंकते हैं, उस समय धातु की तरह अग्नि में ज्वाला दिखाई देती हैं। इसी समय इसका द्रव होना भी आरम्भ हो जाता है, इसको 'बीजावर्त' कहते हैं।

स्वांगशील ओर बाह्यशील- भस्म चूल्हे पर या पुट में रखी हो और आग ठण्डी हो जाय, तो चूल्हे या पुट पर रखी-रखी ही ठण्डी होने पर, इसको 'स्वांगशील' कहते हैं।

स्वेदन- पारद या अन्य किसी द्रव्य को क्षारीय द्रव्य (घोल), अम्ल-द्रव अथवा दूध, गोमूत्र क्वाथ आदि द्रव के साथ दोला यन्त्र में पकाने की क्रिया को 'स्वेदन' कहते हैं। इससे पारद के विषादि दोष नष्ट हो जाते है और पारद शिथिल हो जाता है।

मर्दन- पारद को मर्दन संस्कार में लिखित द्रव्यों के साथ अथवा किसी अम्ल पदार्थ (या कांजी) के साथ घोंटने से पारद के बाहरी मल का नाश होता है।

मूर्च्छन- मूर्च्छन के लिए मूर्च्छनोक्त द्रव्यों के साथ पारद को इतना मर्दन करना चाहिए कि पारद अदृश्य हो जाय। इसको 'मूर्च्छन संस्कार' कहते हैं। इससे पारद के मल, वह्नि् और विष दोष दूर हो जाते हैं।

उत्थापन- मूर्च्छितपारद को कांजी में स्वेदन करके अथवा उसे कड़ी धूप में रख कर पुनः अपने स्वरूप में लाने की क्रिया को 'उत्थापन' कहते हैं।

पातन- पातन संस्कारोक्त द्रव्यों के साथ पारद को घोंट कर ऊर्ध्व पातन अध:पातन और तिर्यक पातन यन्त्रों में रखकर क्रम से पारद हो ऊपर-नीचे और तिर्यक (तिरछा) मार्ग से उड़ाते हैं। इसको 'पातन संस्कार' कहते हैं।

रोधन- उपरोक्त संस्कार से पारद मन्द वीर्य वाला हो जाता है। उसमें पुनः शक्ति उत्पन्न करने के लिए मिट्टी के घड़े में अथवा चीनी मिट्टी या कांच के बर्तन में कांजी अथवा पानी और सेन्धा नमक भर कर पारद डालकर घड़े मुँह तीन दिन तक बन्द रखा जाता है। इसको 'रोधन संस्कार' कहते हैं।

नियमन- रोधन संस्कार से प्राप्त शक्तिवाले पारद की चंचलता निवृत्ति के लिए पारद का स्वेदन किया जाता है। इसको 'नियमन संस्कार' कहते हैं।

दीपन- स्वर्णादि को ग्रास करने की शक्ति बढ़ाने के लिए पारद का दोला यन्त्र द्वारा कसीस, चित्रक, सेन्धा नमक आदि अन्य दीपनीय औषधियों के साथ तीन दिन तक स्वेदन किया जाता है, इसको 'दीपन संस्कार' कहते हैं।

ग्रासमान- इतनी मात्रा में पारद, इतनी मात्रा वाले स्वर्ण-अभ्रक आदि धातुओं को ग्रसित करता है। इस प्रकार ग्रास की मात्रा जो निर्णय की जाती है, उसको 'ग्रासमान' कहते हैं।

चारणा (जारणा)- पारद में सुवर्णादि धातु को मिलाकर जीर्ण करा देने की क्रिया को 'धारणा' कहते हैं।

चारणा के भेद- इसके दो भेद है १) समुख चारणा और २) निर्मुख चारणा।

समुख चारणा- पारद में ६४ वाँ भाग बीज मिलाने से पारद अभ्रक सत्त्व आदि कठिन तत्वों को खाने (अपने अन्दर विलीन करने) में समर्थ होता है। इस प्रकार पारद में पहले मुख उत्पन्न करके पीछे अभ्रक सत्त्व आदि के चारण कराने की क्रिया को 'समुख चारणा' कहते हैं।

निर्मुख चारणा- मुख उत्पन्न किये बिना ही खुले मुख की मूषा में रखा हुआ पारद दिव्यौषधियों के योग से समग्र लोह और सत्त्वों को खा ले (अपने में मिला ले) उसको 'निर्मुख चारणा' कहते हैं।

गर्भद्रुति- ग्रास दिये (मिलाये) हुए अभ्रक सत्त्व आदि को पारद के बीच में द्रवीभूत करने की क्रिया को 'गर्भद्रुति' कहते हैं।

बाह्यद्रुति- अभ्रक के सत्त्व या अन्य लोहादिकों की भस्म को, पृथक्-पृथक् द्रव कर पारद के अन्दर जारण करने के लिए मिलाया जाता है। इसको 'बाह्यद्रुति' कहते हैं।

द्रुतिलक्षण- सुवर्णादि लोहों अथवा अन्य खनिज पदार्थों को विशिष्ट औषधों के साथ मिला कर तीक्ष्ण आँच देने से जब ये पिघल कर द्रवावस्था में ही रह जायँ तो इस क्रिया को 'द्रुति' कहते हैं।

द्रुतियों के भेद- पाठादि के साथ न चिपकना, सदा द्रव रूप में रहना, चमकदार होना, मूल पदार्थ से हल्का होना और पारद में शीघ्र मिल जाना, 'द्रुति' के ये पाँच लक्षण हैं।

जारण- ग्रास दिये हुए और द्रवभूत किये हुए अभ्रक सत्त्व आदि को विड मिला कर और जारण यन्त्र में पकाकर पारद में जीर्ण करा देने की क्रिया को 'जारण' कहते हैं। ठीक जीर्ण हुए द्रव्य छानने, पातन करने, गलाने आदि किसी भी क्रिया द्वारा अलग नहीं किये जा सकते हैं।

विडलक्षण- पारद में दिये हुए ग्रास को जीर्ण कराने के लिये क्षार, अम्ल द्रव्य, गन्धक आदि खनिज द्रव्य, मूत्र और लवण को मिला कर विशिष्ट क्रिया से जो पदार्थ तैयार किया जाता है, उसको 'विड' कहते हैं।

रंजन लक्षण- अच्छे प्रकार के सिद्ध किये हुए बीज (स्वर्ण-चाँदी) धातुओं के साथ पारद में जारण करके उसमें पीत, रक्त इत्यादि रंग उत्पन्न करने की क्रिया को 'रंजन' कहते हैं।

सारणलक्षण- तेल से भरी हुई अन्धमूषा में रंजित पारद को डाल कर उसमें सोना-चाँदी आदि धातुओं को डालकर जो संस्कार किया जाता है, उसको 'सारण' कहते हैं। इस संस्कार द्वारा पारद में लौह वेध करने की शक्ति बढ़ जाती है।

वेधलक्षण- व्यवायी पदार्थों के साथ किये हुए पारद को ताम्र बंग आदि दूसरी धातु में डालने की क्रिया को 'वेध' कहते हैं।

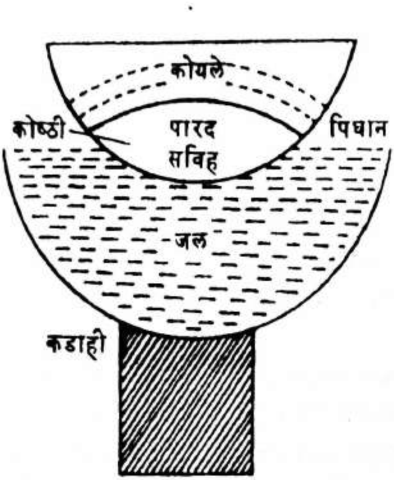
रस ग्रन्थों में इसके कई भेद लिखे गये हैं यथा- लेपवेध, क्षेपवेध, कुन्तवेध, धूमवेध, शब्दवेध ये पाँच वेध हैं। इन सबके लक्षण रस-शास्त्रों में देखना चाहिए। द्र.गु. वि.

आठ महारस- माक्षिक, विमल, शिलाजीत, चपल, रसक (खपरिया), शस्यक (नीलाथोथा), दरद (हिंगुल) और स्रोतोंञ्जन इन आठ द्रव्यों को 'महारस' कहते हैं। -रसार्णव

आठ उपरस- गन्धक, हरताल, मैनसिल, फिटकरी, कसीस, गेरू, लाजवर्द और कंकुष्ठ ये आठ 'उपरस' हैं।

साधारण रस- कबीला, चपल, संखिया, नौसादर, कौड़ी, अम्बर, गिरी सिन्दूर, हिंगुल और मुर्दासंग ये नौ 'साधारण रस' हैं।

यन्त्र और पुट



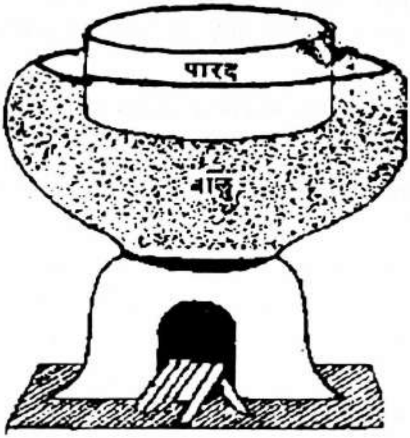
२४ अंगुल चौड़ी और इतनी ही गहरी मजबूत लोहे की नाँद लेकर उसमें आधे भाग तक शीतल जल भर दें, फिर एक दूसरा लोहे का ऐसा पात्र लें जो पात्र में पड़े हुए जल की सतह को छूता हुआ उसके मुख पर अच्छी तरह बैठ जाय। ऊपर वाले पात्र के बीच में ग्रास दिया हुआ पारद और विड तथा गन्धकयुक्त मूषा को रख दें।

इस मूषा को एक दृढ़ सराब या लोहे के उल्टे तवे से अच्छी तरह ढक कर जल और मिट्टी या नमक से अच्छी तरह सन्धिलेप करें, सबसे ऊपर के पात्र में रखे हुए तवे के ऊपर चारों तरफ खर के कोयले भर कर तब तक तेज अग्नि जलावें जब तक कि गन्धक जारण न हो जाय। इसे कच्छप यन्त्र कहते हैं।

-र.वि.

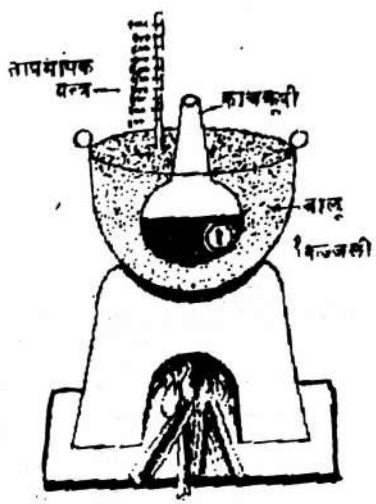
हंसपाक यन्त्र

वक्तव्य- एक बार करने पर ग्रास जीर्ण न हो, तो पुनः इसी प्रकार करें। हंसपाक यंत्र-मिट्टी का बना हुआ एक चौड़ा कूंडा लेकर उसमें किनारों तक बालू भर कर उसके ऊपर दूसरा छोटा कूंडा रख उसमें पारद रख कर उसके ऊपर यवक्षार आदि पंचक्षार, पाँचों नमक तथा पूर्वोक्त विड़ द्रव्यों को अष्टमूत्रों के साथ एकत्र पीस कर रखें, और धीमी आँच से उसे पकावें। यह यन्त्र पारद संस्कारों में विड़ों के पाकार्थ प्रयुक्त होता है।- र.र.स.



बहिर्धूम विधि से गन्धक जारणार्थ

बालुका यन्त्र

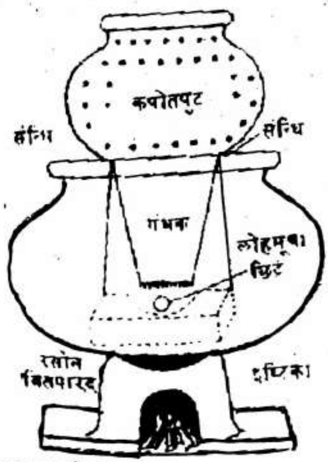


एक काँच की बोतल या आतशी शीशी लेकर उसके ऊपर सात बार अच्छी तरह कपड़ मिट्टी करके सुखा कर, इस शीशी में तृतीय भाग तक कज्जली भर दें। अब एक बारह अंगुल गहरी चौड़ी मिट्टी या लोहे की नाँद जिसके पेंदे में आधा इंच गोल छेद हो लें। मिट्टी की हो तो दो तीन कपड़मिट्टी कर दें। इस नाँद में कज्जलीयुक्त शीशी को मध्य में रखकर नाँद के शेष भाग को गले तक साफ व मोटी बालुका से भर दें और नाँद को चूल्हे या भट्टी पर रखकर नीचे अग्नि दें। कूपीपक्व रसायनों के निर्माण में 'बालुका यन्त्र' का प्रयोग होता है। -र.त.

लवण यन्त्र

बालुका यन्त्र में जहाँ बालू भरी जाती है। वहाँ लवण यन्त्र में नमक भर कर पकाया जाता है। इस यन्त्र द्वारा मृगांक रस आदि बनाया जाता है।

जारण यन्त्र



आ. सा. सं. ३

१२ अंगुल लम्बी और नीचे से 6 अंगुल चौड़ी तथा ऊपर से ७ अंगुल चौड़ी लोहे की एक मूषा लें तथा १२।। अंगुल लम्बी और ६।। अंगुल नीचे से तथा इतनी ही ऊपर से चौड़ी लोहे की दूसरी मूषा लें। १२।। अंगुलवाली मूषा के चारों तरफ (ऊपर-नीचे के तल्लों को छोड़कर) बारीक छिद्र करके उसमें पारद के समभाग शुद्ध गन्धक का चूर्ण भर दें। दूसरी लौह मूषा में पारद भर कर इसमें गंधक वाली मूषा फिटकर मूषा के मुँहपर एक दूसरा पात्र टिका दें। इस पात्र में कडे भरकर जलाये तथा बड़ी हाँड़ी के नीचे भी कोयले या उपलों की अग्नि दें। इस क्रिया से गंधक जारण होता है।

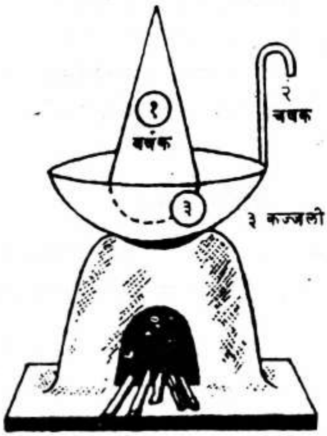
र.र.स. के प्रथम प्रकार किंचित परिवर्तित

बाष्पस्वेदन यन्त्र



एक चौड़े मुँह के मजबूत पात्र में जल अथवा जिस औषधि से स्वेदन करना हो उसका स्वरस या क्वाथ भर कर पात्र के मुँह पर मजबूत कपड़े को बाँध कर (लोहे के तार की जाली भी बाँधी जा सकती है)। उस पर स्वेदन करने की वस्तु रखकर पात्र के मुँह पर फिट आने लायक सराब औंधा रख कर कपड़मिट्टी कर दें, फिर पात्र को चूल्हे पर रख कर नीचे अग्नि जला कर स्वेदन करें। इसे 'कन्दुक' तथा 'स्वेदनी यन्त्र' भी कहा जाता हैं।

पालिका यन्त्र



किसी प्याले या करछी में यदि सीधी डंडी के स्थान ऊपर की ओर डंडी लगवा करके उसके अन्त में कुछ मोड़ दिया जाय, तो उसे 'पालिका यन्त्र' कहते हैं। इसका आकार ठीक पात्र से तेल निकालने के लिये बनायी गयी पली की तरह होता है। अत: इसे 'पालिका यन्त्र' कहते हैं। लुहार लोगों के पास बनी हुई पली भी मिलती है।

वक्तव्य- पालिका यन्त्र में यदि मर्दन करना हो तो चित्र में दिखाये अनुसार लोहे का घर्षक (मूसली) भी बनवा लें।

धूप यन्त्र

आठ अंगुल ऊँचा और आठ अंगुल चौड़ा एक लोहे का पात्र लें, उसमें गन्धक, हरताल तथा मैनसिल आदि धुआँ देनेवाले द्रव्य, जिनसे सोना-चाँदी के पात्रों पर धुआँ देना ही डाल दें। इस पात्र में कण्ठ-प्रदेश के नीचे निर्मित आधार पर पतली लोहे की शलाकाएँ (या लोहे की पतली जाली) लगा दें। शलाकाओं या जाली पर सोने या चाँदी के कण्टक-वेधी पत्र रख दें। अब इस लोह-पात्र के ऊँपर दूसरा लोह पात्र उल्टा मुख रख कर कपड़मिट्टी से सन्धि बन्द करके सुखा लें।

इस यन्त्र को चूल्हे पर रख कर नीचे मंद-मंद आँच लगावें। इस प्रकार धूपन देने से स्वर्णपात्र काले और मृत हो जाते है, जिन्हें पारद शीघ्र ही खा जाता है और वे पत्र पारद में शीघ्र ही द्रव रूप ही विलीन हो जाते हैं। तार कर्म अर्थात् चाँदी के पत्रों को बंग या बंग भस्म से, धूपन किया जाता है। -र.र.स.

विद्याधर यन्त्र



भीतर से चिकनी दो चौड़े मुँह की हाँडियाँ लेकर एक हाँडी में घुटाई किया हुआ हिंगुल रख कर इसके मुख पर दूसरी हाँडी को सीधा रख कर कपड़मिट्टी से सन्धिरोध कर दें और ऊपर की हाँडी में जल भर दें, पश्चात् यन्त्र को चूल्हे पर रख कर नीचे की हाँडी के नीचे अग्नि प्रज्वलित करें। हिंगुल के परिमाण के अनुसार ५ या अधिक प्रहर तक आँच देने पर हिंगुल से पारा निकल कर उड़ कर ऊपर की हाँडी के पेंदे में जमा हो जाता है। ऊपर की हाँडी का जल गरम हो जाने पर उसे निकाल कर पुनः ठण्डा जल भर देना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर ऊपर की हाँडी का जल निकाल दें और सन्धि खोलकर ऊपर की हाँडी के पेंदे में लगे पारद को सावधानी से पोंछ कर एकत्रित करके रख लें। -र.रा. सु.

गर्भ यन्त्र



एक चार अंगुल लम्बी और तीन अंगुल चौड़ी मूषा बना कर उसमें बीस भाग नमक और एक भाग गुग्गुल और नमक से आधा भाग मिट्टी एकत्र मिला कर मूषा में लेप कर दें। फिर उसके अन्दर पारद डालकर उसका मुख बन्द कर दें। सुखने के बाद मूषा को पृथ्वी में गाड़ दें और उसके ऊपर एक दिन या तीन दिन आवश्यकतानुसार जंगली उपलों (कण्डों) की आँच दें। स्वांग शीतल होने पर मूषा को निकाल कर पारद निकाल लें। इसी को 'गर्भ यन्त्र' कहते हैं।

-वृ.र.रा.सु.

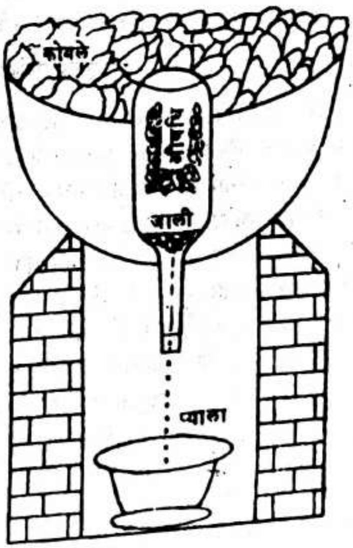
सोमानल यन्त्र

एक मिट्टी के पात्र में जल भर कर उसमें लोहे की बनी तिपाई रख कर उसके ऊपर जल को स्पर्श करती हुई पारदयुक्त मूषा रख कर पात्र के मुख को सराब से बन्द कर कपड़मिट्टी कर दें। तत्पश्चात् इस सराब पर कंडों या कोयलों की आँच देनी चाहिए। इसको 'सोमानल यन्त्र' कहते हैं।



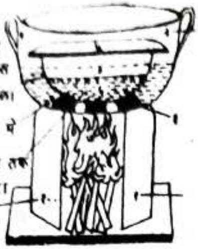
पाताल यन्त्र

पाताल यन्त्र द्वारा भिलावा, माल काँगनी आदि कई द्रव्यों का तेल निकाला जाता है। अतएव, इस यन्त्र का भी उल्लेख करना आवश्यक है। यथा:-



एक मिट्टी की नाँद या लोहे की कड़ाही को बीच से ऐसा गोल काटे ताकि कपड़मिट्टी की हुई बोतल का मुँह उसमें से बाहर आ सके। (कपड़मिट्टी की हुई काली बोतल में ही दवा भरकर तेल निकालते हैं) पीछे उस कड़ाही को लोहे की तिपाई पर या चूल्हे पर रखें। जिस द्रव्य का तेल निकालना हो उस द्रव्य को जौ कुटकर कपड़मिट्टी की हुई बोतल में भर दें और उसके मुँह पर लोहे के तार से लोहे की एक जाली बाँध डालें। फिर कड़ाही के छेद में बोतल का मुँह नीचे करके उसके नीचे काँच का प्याला रख दें और नाँद या कड़ाही में रहे बोतल के चारो तरफ कड़ों की आँच दें। अग्नि की गरमी से बोतल के अन्दर के द्रव्य का स्नेह पिघलकर नीचे के प्याले में इकट्ठा हो जायेगा। उसको कपड़े से छानकर शीशी में रख लें।

स्वरस यन्त्र



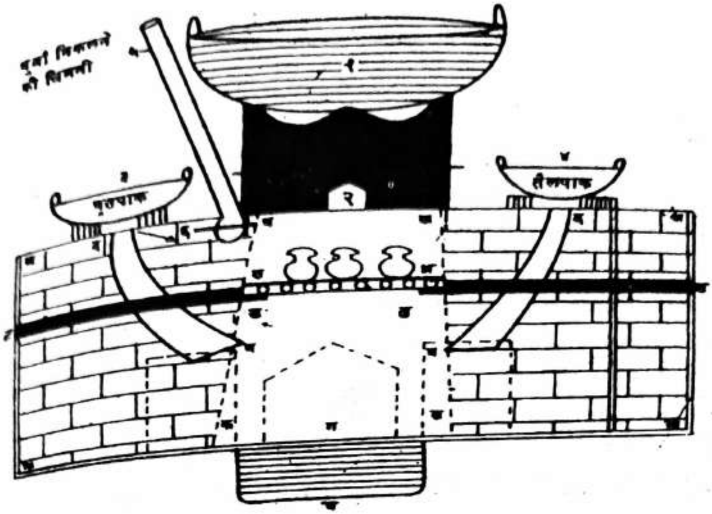
निम्बपत्र, पान, तुलसी, भांगरा आदि हरी-ताजी औषधियों को कूटकर कपड़े में रख कर निचोड़ने से स्वरस निकल आता है परन्तु बिल्वपत्र, अडूसा, पियाबाँसा, तालपत्र, खर्जुरपत्र आदि जो अल्प स्वरसवाली औषधियाँ हैं, उन्हें कितना ही कूटकर निचोड़ा जाय,किन्तु उनका स्वरस नहीं निकलता है। अत: स्वरस यन्त्र विधि लिखी जाती है।

जिस वस्तु का स्वरस निकालना हो, उसको लोहे का पत्थर के खरल में खूब कूट कर एक लोहे के तसले में भर दें और उसके ऊपर लोहे का तवा रख दें, जिसमें कहीं छिद्र भी न रहे। यह एक पिटारी जैसा हो जायेगा। बाद में एक बड़ी कड़ाही में तीन ईंटे रखकर इन पर इस पिटारी को रख दें। तीन ईंट रखने का अभिप्राय यह है कि पिटारी इधर-उधर ढुलके नहीं, सीधी रखी रहे। दूसरा अभिप्राय यह है कि अग्नि पाकर पानी बहुत उछल कर पिटारी के अन्दर न जा सके। फिर उस कड़ाही में उतना पानी भरें कि जिससे पिटारी में अन्दर न चला जाय। इस कड़ाही को चूल्हे पर रखकर अग्नि दें। ऐसा करने से पहले पानी गरम होगा, फिर पिटारी गरम होगी, तब पिटारी में रखी औषधि गरम हो जायेगी। इस प्रकार आधा घण्टा तक अग्नि लगने से औषधियाँ रस निकालने योग्य पक जायेंगी, तब औषधि को निकाल कर कपड़े में रखकर निचौड़े जैसे स्नान करने के बाद धोती निचोड़ते हैं। ऐसा करने से सब स्वरस निकल जायेगा। इसे 'स्वरस यन्त्र' कहते हैं। - रसायनसार

सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री

पहले पृथ्वी मे एक वृत्त (घेरा) डेढ़ गोलाई का बनावें, अब इसके बीच में एक बालिश्त गहरा गड्ढा खोदें और उसमें पानी डालकर मिट्टी को खूब कूटकर पक्का कर दें। इसके पश्चात् इस गढ्ढे के किनारे-किनारे से भट्टी की दीवार कच्ची ईटों से बनाना शुरू करें, जब अठारह इंच ऊँची दीवार बन जाय, तो उस पर चारों ओर लोहे के ११/२-१ $^{1}/_{2}$ हाथ लम्बे चार डण्डे रख दें और उनके ऊपर १६ इंच ऊँची दीवार और बना दें। लोहे के डण्डे इस प्रकार लगाने चाहिए कि आवश्यकतानुसार बाहर-भीतर जा सकें। दीवार इस तरह की हो, जिससे ११ $^{1}/_{4}$ फुट भट्टी नीचे से चौंड़ी और ऊपर से ११ $^{1}/_{2}$ इंच चौड़ी रहे ताकि अन्त में उसके ऊपर १२ इंच गोलाई की लोहे की जाली आ सके। दीवार के नीचे भाग में १-१ बिलाँद लम्बे-चौड़े दो दरवाजे बनाने चाहिए। भट्टी के अन्दर लोहे के डण्डों के नीचे एवं बगल से दोनों तरफ एक लम्बी लोहे की नली भी लगानी चाहिए। इस नली का एक सिरा भट्टी के ऊपर जाकर निकलेगा और दूसरा भट्टी के अन्दर। भट्टी के अन्दर वाला सिरा (मुख) इतना बड़ा होना चाहिए, जिसमें मुठ्ठी घुस सके, और ऊपरवाला सिरा (मुख) तीन अंगुलं चौड़ा होना चाहिए। यह नली नीचे से ऊपर को सीधी नहीं बल्कि कुछ आड़ी करके लगानी चाहिए। इसके नीचे वाले मुख में अग्नि की लपटें घुसेंगी और ऊपरवाले मुख से बाहर निकलेंगी। यह भट्टी इतनी उपयोगी है कि इस पर आयुर्वेदीय सभी औषधे सुगमतापूर्वक बन सकती हैं।

(चित्र पृ. ३९ पर देखें)



क से ख तक का आभ्यन्तर तलभागँ ग से घ तक गड्ढा डेढ़ हाथ गोलाईदार (नीचे राख गिरकर इकट्ठी होने को) च से छ तक आभ्यन्तर ऊपरी खाली भाग। छ से ज तक कच्ची ईटों की दीवार। झ से ज तक दीवार की ऊँचाई। झ से ट तक लोहे का डंडा। ड से ढ तक लोहे का एक-एक हाथ लम्बा दोनों तरफ तथा इसी प्रकार पीछे के भाग में भी लोहे के दो डंडे (सलाक) रहेंगे। इन चारों भट्टी के भीतर आगे निकले हुए डंडों पर पुट रखने की लोहे के डंडों की बनी जाली रखी जायेगी। ड से ढ तक दीवार के बाहर भट्टी के भीतरी ओर निकला हुआ डंडा। त से थ तक लोहे के सलाकों की बनी जाती भस्मों के संम्पुट रखने के लिये। द से ध तक नली दोनों ओर घृतपाक तथा तैलपाक की कड़ाहियों को ताप (आँच पहुँचाने को)

नं. १ चूल्हा, २. क्वाथ आदि की बड़ी कड़ाही (इसके स्थान पर बालुका यन्त्र की नांद या अन्य कोई भी यन्त्र जिसे भट्टी या चूल्हे पर रखना होता है रखा जा सकता है।) ३. घृतपाक की कड़ाही, ४. तैल पाक की कड़ाही, ५. धुआँ निकलने की चिमनी, ६. चिमनी के नीचे से मुख बन्द करने की लोहे की प्लेट भट्टी के बाहरी हिस्से तक लम्बी एवं कुन्डा लगी हुई।

उपयोग-

१) यदि किसी औषध के सम्पुट को तीव्राग्नि में देना हो, तो भट्टी के बीच में लगे हुए लोहे के डण्डों को ६-६ अंगुल दीवार के बाहर निकाल कर उन पर लोहे की जाली रख दें। (जैसे लोहे की अंगीठियों में होती है)। इस जाली पर सम्पुट रखकर उसके चारों ओर पत्थर या लकड़ी के कोयले को भरकर भट्टी के नीचे के भाग में आग लगा दें।

२) हरितालादि की भस्म बनाने के लिये भट्टी के ऊपर एक बड़ा-सा लोहे का चूल्हा रखकर उस पर यन्त्र को रखना चाहिए। बीच वाली जाली पर भी सम्पुट पकता रहे, तो कोई हर्ज नहीं है।

३) धात्वादि, शोधन के लिए भट्टी के दरवाजे के बीच में एक तीसरा दरवाजा भी रख लेना चाहिए, जिससे भीतर लोहे का करछा घुमाया जा सके, जिसमें धात्वादि डालकर तपाया जाय।

४) गजपुट देना हो, तो लोहे की जाली को निकालकर और लोहे के डण्डों को भीतर घुसाकर भट्टी के मध्य में सम्पुट रख दें और ऊपर-नीचे उपले भरकर आँच दें तथा दरवाजे बन्द कर दें।

५) वाराहपुट देना हो तो लोहे की जाली पर उपले डालकर और भट्टी पर लोहे का चूल्हा रखकर उसके भीतर सम्पुट रखें और चूल्हे में भी उपले भरकर उसके दरवाजे को लोहे की चादर और ईंटों आदि से बन्द कर दें।

६) कुक्कुट पुट देना हो तो पुट को लोहे की जाली पर रख कर शेष भाग में उपले भर दें। इसमें भट्टी के ऊपर चूल्हा रखने की आवश्यकता नहीं हैं।

पुट

पुट के लक्षण- धातु-उपधातु या रत्न-उपरत्न अथवा रस-उपरस आदि द्रव्यों को वनस्पतियों के स्वरस में घोंट, टिकिया बना, सुखा, तथा सम्पुट में रखकर अग्नि में पकाने की क्रिया को 'पुट' कहते हैं।

पुटों का ज्ञान होना प्रत्येक वैद्य के लिए आवश्यक है, क्योंकि कम या अधिक पकी हुई औषधि हानि पहुँचाती है और अच्छी तरह पकी हुई औषध ही हितकारक होती है।

पुट देने से लाभ- पुटों के लौहादिक धातुओं का निरुत्थ मारण होता है अर्थात् पुट योग से बनी हुई लौहादिक धातुओं को मित्रपंचक के साथ फूँकने पर भी वे पुनः जीवित नहीं होते। लौहादिक धातुओं का अपुनर्भव, पुटों से ही होता है। बार-बार पुट देने से शरीर के अन्दर अनेक गुण पहुँचाने वाली शक्ति भस्मों में उत्पन्न होती है। बार-बार पुट देने से भस्म में अत्यन्त सूक्ष्मता आ जाती है। पुट के ही प्रभाव से भस्में अंगुलियों की रेखाओं के अन्दर प्रविष्ट हो जाती है। जिसे 'रेखा पूर्ण भस्म' कहा जाता है। पुट के योग से रत्न-उपरत्न आदि में लघुता एवं सुक्ष्मता आ जाती है और उनकी भस्में शरीर में शीघ्र ही व्याप्त होकर पाचक रसों को उद्दीप्त करती हैं तथा अपने गुण प्रकट करती हैं। पुट दी हुई धातु-भस्मों में जारित संस्कारयुक्त पारद के सदृश ही अधिक गुण पाये जाते हैं। जिस तरह बाह्य पुट के प्रभाव से पत्थर के अन्दर वह्नि शीघ्र प्रवेश कर अनेक गुणयुक्त बना देती है। आजकल पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने तेजाबों (Acids) के द्वारा भी भस्म बनाने की विधि प्रचलित की है, एलोपैथी में उसका व्यवहार होता है, किन्तु वे निरूत्थ नहीं होती हैं, अतएव प्रत्येक चिकित्सक को चाहिए कि पुटों द्वारा सिद्ध की हुई भस्मों का प्रयोग करें, क्योंकि पुट द्वारा सिद्ध की हुई भस्में लघुता-सूक्ष्मता आदि गुणों से युक्त होती हैं और शरीर के अन्दर शीघ्र प्रवेश कर रक्त में मिलकर यथोचित रूपेण अपना कार्य प्रारम्भ कर देती हैं। अशुद्ध भस्में शरीर के अन्दर पहुँचकर शरीरस्थ रासायनिक द्रव्यों से सम्मिश्रित होकर पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर शारीरिक पेशियों का नाश करती हैं।

वैज्ञानिक यह मानते हैं कि प्रत्येक पदार्थ गुरुत्वाकर्षण के कारण ऊपर की तरफ फेंकने पर भी पृथ्वी की ओर गिरता है। अतः धातुएँ जल्दी ही पृथ्वी की ओर जाती हैं, किन्तु पुट देने से उसकी गुरुता नष्ट हो उनमें लघुता आ जाती है और अत्यन्त सूक्ष्म होने से शरीर के सूक्ष्मावयवों में

मिलकर रक्त के साथ सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर अपने गुण करती है। ये सब पुट के ही गुण है। अब नीचे पुटों के भेद लिखे जाते हैं। यथा-

महापुट- जमीन में दो हाथ लम्बा तथा दो हाथ चौड़ा और दो हाथ ही गहरा खड्डा बना, उसमें एक हजार जंगली उपले भर बीच में औषध-द्रव्य से भरा हुआ सम्पुट रख, ऊपर से फिर पाँच सौ जंगली कण्डों से भर अग्नि जला दें। इसको 'महापुट' कहते हैं।

गजपुट- जमीन में डेढ़ हाथ गहरा तथा डेढ़ हाथ लम्बा तथा इतना ही चौड़ा गड्ढा बना, उसमें आधे तक जंगली कण्डे भर दें। बीच में औषध-द्रव्य से भरा हुआ सम्पुट रख ऊपर तक गड्ढे में कण्डे भर आँच लगा दें। इसको 'गजपुट' कहते हैं।

वाराहपुट- कोहनी से छोटी अंगुली तक (अरत्निमात्र) लम्बा तथा इतना ही चौड़ा और गहरा गड्डा बना कर उसमें आधे तक जंगली उपले भर दें। बीच में औषध द्वारा भरा हुआ सम्पुट रख गड्डे के शेष भाग को कण्डों से भर कर अग्नि जला दें। इसको 'वराहपुट' कहते हैं।

कुक्कुटपुट- दो बालिश्त गहरा और इतना ही लम्बा-चौड़ा गड्ढा बना उसमें आधे तक जंगली कण्डे भर दें। फिर बीच में औषध-द्रव्य से भरा हुआ सराब-सम्पुट रख दें। गड्ढे के शेष भाग को भी कण्डों से भर कर अग्नि जला दें। इसको 'कुक्कुट पुट' कहते हैं।

कपोतपुट- जमीन के अन्दर एक बालिश्त गहरा और इतना ही लम्बा-चौड़ा गड्ढा बना कर आठ जंगली उपलों की आँच दें। इसको 'कपोतपुट' कहते हैं। अग्नि स्थाई बनाये हुए पारद को पुट देने के लिये अथवा सोना, नाग और चाँदी को प्रारम्भिक पुट देने के लिये 'कपोतपुट' काम में आता हैं।

गोबरपुट- एक गड्ढे या हाँडी में गोबर या भूसा भर दें और उसके बीच में सम्पुट रखकर अग्नि जला दें। इसको 'गोबरपुट' कहते हैं। इसके द्वारा पारद भस्म या अन्य धातुओं की भस्में बनायी जाती हैं।

भाण्डपुट- एक मिट्टी के घड़े में धान की भूसी को दबा-दबा कर आधे तक भर दें। बीच में औषध से भरा हुआ सम्पुट रख ऊपर से और धान की भूसी दबा-दबा कर भर दें। फिर इसमें अग्नि जला दें। इसको 'भाण्डपुट' कहते हैं।

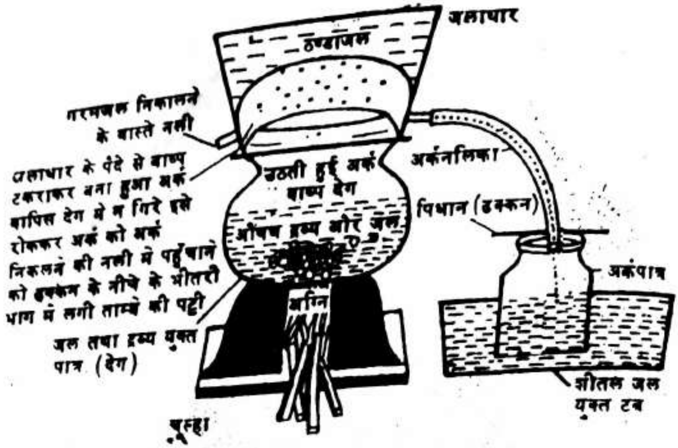
बालुकापुट- औषधि सम्पुट को गरम की हुई बालुका में दबाकर पाक करने को 'बालुकापुट' कहते हैं। किसी चौड़े मुँह के बर्तन में अथवा छोटी नाँद या कड़ाही में यह क्रिया करना उत्तम है।

भूधरपुट- दो अंगुल गहरे गड्ढे में औषधियुक्त मूषा रखकर ऊपर कडे रखकर पुट देने को 'भूधरपुट' कहते हैं।

लावकपुट- जमीन के ऊपर एक बालिश्त ऊँचे धान या भूसा या गोबर के ढेर के बीच में सम्पुट रख कर अग्नि जला दें। इसको 'लावकपुट' कहते हैं। जो द्रव्य विशेष मृदु (अग्नि को न सहन करनेवाले)हों, उनका पाक करने के लिए इस पुट का प्रयोग किया जाता है।

अनुक्तपुट-मान- कहाँ कौन-सा पुट देना, यह स्पष्ट नहीं लिखा है, वहाँ जिस द्रव्य को पुट देना है, वह द्रव्य कितनी अग्नि सहन कर सकता है, और कितने परिमाण (तौल) में है, इसका विचार करके पुट देने का निर्णय करना चाहिए।

नाड़िका यन्त्र



मिट्टी का और कोई ताँबे का बनाते हैं। उसके बनाने की विधि भी लिखते हैं। एक ताँबे का पात्र आवश्यकतानुसार आकार का बनवाकर उसके अन्दर कलई करवा लें। फिर उसके नाप का ताँबे का ढक्कन ऐसा बनाया जाय, जिसके अन्दर एक उल्टा कटोरा जुड़ा रहे और उसमें आमने-सामने पृथक-पृथक दो नलियाँ लगी रहे। जिनमें एक नली तो कटोरी के अन्दर अर्क निकालने क लिए जुड़ी रहे, और दूसरी नली कटोरे के ऊपर (कटोरे को छोड़कर) जलाधार में जुड़ी रहे, जिसके द्वारा गरम जल निकाला जायेगा। दोनों नलियों में १२ अंगुल या एक-एक हाथ लम्बी नली लगा दी जाय, जिनके द्वारा अर्क तथा गरम जल दूर-दूर निकलता रहे। बाद में नीचे के पात्र में औषध और पानी जिनके द्वारा अर्क तथा गरम जल दूर-दूर निकलता रहे। बाद में नीचे के पात्र में औषध और पानी भरें। अर्थात् भबका में १२ सेर पानी आता हो, तो ६ सेर पानी और १ सेर औषध भरें। पश्चात् ढक्कन लगा उड़द के आटे का चिकनी मिट्टी को पानी में सानकर सन्धि बन्द कर दें और सूख जाने पर नीचे अग्नि दे। इस प्रकार जैसे-जैसे पानी गरम होता जायेगा, वैसे-वैसे अर्क की बाष्प उठकर ऊपर के जलधार पाठ के पेंदे से टकराकर अर्क बनकर अर्क निकलने की नली से अर्क प्राप्त में जायेगा। इस नली के नीचे एक पात्र रखा रहे, जिसमें अर्क एकत्र होता रहेगा। इस पात्र को ठण्डे पानी के टब में रखना चाहिए ताकि नली से निकलकर पात्र में आया हुआ अर्क ठण्डा होता रहे। टब का पानी गरम हो जाने पर उसे निकाल कर पुनः ठण्डा पानी भर दे। इसी प्रकार यन्त्र की ऊपरी भाग (जलधारा) में डाला हुआ पानी गरम हो जाने पर गरम जल निकलनेवाली नली का डाट (काक) खोलकर गरम पानी निकाल दें। इसके बाद पुनः नली में काक लगाकर जलाधार में ठण्डा पानी भर दें। इस प्रकार जब-जब जलाधार का पानी गरम हो जाएँ तब तब उसे निकाल कर ठण्डा पानी भरते रहे। इस प्रकार से बने यन्त्र का प्रचलित नाम करभवीक है।

औषध-प्रयोग-विधान

शारीरिक रोगों में आवश्यकतानुसार शरीर के मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र गुदा, मूत्रमार्ग, योनि, त्वचा आदि अनेक अवयवों के द्वारा खिलाने, लगाने, डालने, बस्ति देने, मर्दन कने आदि अनेक विधियों में औषध का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि आयुर्वेद में औषध सेवन का सविस्तर विधान वर्णित है परन्तु यहाँ संक्षेप में ही लिखा जायेगा।

मुख के द्वारा औषध-प्रयोग-विधि- मुख के द्वारा औषध का प्रयोग दो उद्देश्यों से किया जाता है। एक तो स्थानिक क्रिया सम्पादनार्थ जैसे औठ से गले तक के रोगों के लिए गण्डूष (कुल्ला) करना और प्रतिसारण आदि क्रियाओं द्वारा औषध का स्थानिक प्रयोग करना। इन क्रियाओं में औषध गले से नीचे नहीं उतारी जाती है। दूसरे संपूर्ण शरीर में होनेवाले रोगों का नाश करने के लिये औषध-भक्षण करना अर्थात् इस क्रिया में औषध गले से नीचे उतारनी पड़ती है। इनमें पहले औषध-भक्षण (खाने की) विधि का वर्णन किया जायेगा, क्योंकि औषधों का अधिकांश प्रयोग भक्षण द्वारा ही किया जाता है।

भक्षित औषधियों के कार्य- खायी हुई औषधियाँ कई प्रकार से शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों पर अपना प्रभाव दिखलाती है। कुछ औषधियाँ अवस्थापाक के समय महास्त्रोतस् के अवयवों पर स्थानिक क्रिया द्वारा अपना प्रभाव डालती हैं, कुछ जठराग्नि की क्रिया द्वारा परिपक्व होकर रस-रक्त आदि धातुओं में मिलकर समस्त शरीर का चक्कर लगाती हुई अपना काम करती हैं तथा कुछ मल-द्वारों और त्वचा से निकलते समय उस स्थानों पर अपना गुण दिखलाती हैं।

कषाय (क्वाथ), आसव, अर्क आदि द्रव रूप औषधियाँ शरीर में शीघ्र ही मिल कर अपनी क्रिया शरीर पर करने लगती हैं। इसके विपरीत चूर्ण, बटी, भस्म, अवलेह-पाक आदि घन रूप औषधियाँ शरीर में विलम्ब से शोषित होने के कारण आसव, अर्क आदि की अपेक्षा अपना प्रभाव कुछ देर से दिखलाती हैं। अतः आवश्यकतानुसार ही घन (चूर्ण, बटी, भस्मादि) और द्रव (अर्क, आसव आदि) औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। शंखद्राव, मद्य और कई आसव अपनी तेजी के कारण अकेले नहीं लिए जा सकते। अतः उनको उचित परिमाण में जल या किसी अर्क के साथ मिलाकर देना चाहिए।

मूर्च्छा, संन्यास, अपतन्त्रकादि रोगों में रोगी जब अचेतनावस्था में होता है, तो उसको औषध पिलाना दुष्कर हो जाता है। इतना ही नहीं, औषध के श्वास-नलिका में भी चले जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी अवस्था में थोड़ी मात्रा में शीघ्र कार्य करनेवाली औषध शहद से मिला कर जीभ पर या दाँत बन्द हो, तो दाँतों पर ही लगा देनी चाहिए। इससे धीरे-धीरे दवा पेट में जाकर अपना कार्य करने लगती है। बच्चे प्रायः औषध खाने को राजी नहीं होते, जबर्दस्ती खिला भी दी गयी तो मुँह में ही दवा पड़ी रहती है। गले के नीचे औषध को बच्चे नहीं उतारते। ऐसी हालत में उनकी नाक को अंगुली से दबाना चाहिए। बच्चा जब श्वास लेने को मुँह खोलेगा, तब औषध आसानी से पेट में चली जायेगी।

औषध द्रव्यों की गोली- बटी प्रायः इसीलिये बनाई जाती है कि कटु-तिक्त आदि औषधि द्रव्य के स्वाद का पता न चले और आसानी से निगली जाय एवं गोली की संख्या के हिसाब से देने से औषधि की खुराक लेने में भी सुविधा रहती है, परन्तु कई लोग गोली निगल नहीं सकते और कभी रोगावस्था में निगली हुई गोली पेट में हजम न होकर वैसी ही मल के साथ निकल जाती है। ऐसी दशा में गोली को पीस कर देना चाहिए। गोली आवश्यकता से अधिक कठोर

नहीं होनी चाहिए। मृदु बनी हुई गोलियाँ पेट में पहुँचकर आमाशय-रस से शीघ्र ही घुलकर अपना प्रभाव करने लगती हैं। कई औषध अपने अप्रिय स्वाद और गन्ध तथा तीक्ष्णता के कारण लेने में अच्छी नहीं लगती। उन्हें कैपसुल में बन्द करके देना चाहिए।

चूर्ण को सूखा न फाँककर (खाकर) अनुपान जल, क्वाथ, अर्क, आसव, मट्ठा, दूध आदि में मिलाकर लेना चाहिए।

औषध-सेवन-काल

रोगी तथा रोगों की अवस्था देखकर चिकित्सक अनेक कालों में औषध सेवन कराते हैं। परन्तु सुश्रुत ने औषध सेवन के लिये १० काल (समय) लिखें हैं। यथा-

१. **अभुक्त**- प्रात:काल शौचादि से निवृत्त होकर बिना कुछ खाये ही जो औषध सेवन किया जाय, उसको 'अभुक्त काल' कहते हैं। प्रात:काल निरन्न अर्थात- अन्न-रहित सेवन किया हुआ औषध अधिक गुण करता है और रोग को शीघ्र तथा निश्चित रूप से नष्ट करता है।

परन्तु बालक, वृद्ध स्त्री, सुकुमार प्रकृतिवाले को कुछ खिला करके ही प्रात:काल औषध सेवन कराना चाहिए। अन्यथा ग्लानि और बल का क्षय होता है। -सुश्रुत

(**शार्ङ्गधर** का मत है कि पित्त और कफ की वृद्धि में विरेचन और वमन कराने के लिए तथा लेखन के लिये प्रात:काल बिना कुछ खाये ही औषध-सेवन करना चाहिए। प्राय: सब प्रकार के औषध विशेषकर कषाय (काढ़ा) प्रात:काल ही देना चाहिए)।

२. **प्राग्भुक्त**- औषध खिलाकर तुरन्त ऊपर से अन्न दिया जाय, तो उसे 'प्राग्भुक्त' कहते हैं। अन्न के पहले खाई हुई औषध शीघ्र हजम हो जाती है और बलहानि भी नहीं करती हैं। औषध अन्न के साथ मिल जाने पर वमन के साथ नहीं निकलती-सुश्रुत

(**वृ. वाग्भट्ट** कहते हैं कि अपानवायु के विकारों में नाभि के नीचे बल देने के लिए तथा उनके विकारों को शान्त करने के लिए और शरीर को पतला करने के लिए 'प्राग्भुक्त' औषध देना चाहिए।)

३. **अधोभुक्त**- अन्न खाकर तत्काल ही जो औषध लिया जाये, उसे 'अधोभुक्त' कहते हैं। अन्न खाकर ऊपर से सेवन की हुई औषध नाभि से ऊपर होनेवाले रोग को दूर करती है और उन अवयवों को बल देती हैं।

(**वृ.वाग्भट्ट** कहते हैं,-व्यान वायु के विकारों में प्रात:काल के भोजन के बाद और उदान वायु के विकारों में सायंकाल के भोजन के बाद औषधि देनी चाहिए। 'अधोभुक्त' के समय में खाई हुई औषध शरीर को स्थूल (मोटा)बनाती है।)

४. **मध्यभुक्त**-जो औषध आधा भोजन करके ली जाय और शेष भोजन ऊपर से किया जाय, उसे 'मध्यभुक्त' कहते हैं। भोजन के मध्य में ली गयी औषध कोष्ठ में होनेवाले रोगों को दूर करती है।

(**वृ.वाग्भट्ट** कहते हैं-समान वायु के विकार, कोष्ठ के रोग और पित्त के रोग इनमें 'मध्यभुक्त' (भोजन के मध्य में) औषध देनी चाहिए।)

५. **अन्तराभुक्त**- जो औषध सबेरे और शाम को भोजन के मध्य में ली जाय, अर्थात् सबेरे के भोजन जीर्ण होने पर औषध खाई जाय और वह औषध जीर्ण होने पर शाम को खायी जाय, तो उसे 'अन्तराभुक्त' कहते हैं। अन्तराभुक्त में दी हुई औषध हृदय और मन को बल देनेवाली दीपन और पथ्य होती है। अन्तराभुक्त औषधि दीप्ताग्नि और व्यानवायु के विकारों में दी जाती है।

६. **सभुक्त**- जो औषध अन्न के साथ दी जाय या पकाये हुए अन्न में मिलाकर दिया जाय, उसको 'सभुक्त' औषध काल कहते हैं। सभुक्त औषध दुर्बल, स्त्री, बालक, सुकुमार, वृद्ध और औषध लेना पसन्द न करनेवाले अरुचि और सर्वांगगत रोग में देनी चाहिए।

७. **सामुद्ग**- जो पाचन, अवलेह, चूर्ण आदि औषध लघु और अल्प अन्न के आदि और अन्त में दिया जाय, उसको 'समुद्ग' कहते हैं। सामुद्ग औषध हिक्का, कम्प और आक्षेप में तथा जब दोष अधोमार्ग तथा उर्ध्वमार्ग दोनों में फैले हों तब देनी चाहिए।

८. **मुहुर्मुहु**- अन्न के साथ अथवा खाली पेट (भूखे ही) में जो बारम्बार औषध दिया जाये, उसे 'मुहुर्मुहु' औषध काल कहते हैं। साँस बढ़ी हुई, खाँसी, हिचकी, वमन, तृषा और विष विकारों में बारम्बार औषध देनी चाहिए।

९. **सग्रास**- जो औषध प्रत्येक ग्रास में या कुछ ग्रासों में मिलाकर दिया जाये, उसको सग्रास कहते हैं। मन्दाग्निवाले को जठराग्नि प्रदीप्त करने के लिए चूर्ण, अवलेह, गुटिका आदि का तथा वाजीकरण औषध सग्रास अर्थात् कौर-कौर में मिलाकर देनी चाहिए।

१०. **ग्रासांतर**-औषध यदि दो ग्रासों के बीच में दिया जाय, तो उसको 'ग्रासांतर' औषध काल कहते हैं। वमन कराने वाले धूम और श्वास-कास आदि में प्रसिद्ध गुणवाले अवलेह दो ग्रासों के बीच में देना चाहिए। (वृद्ध वाग्भट्ट कहते हैं- कि प्राणवायु के विकारों में सग्रास और ग्रासान्तर में औषध देनी चाहिए)। वि.

अनुपान

जो द्रव पदार्थ जैसे- शहद, घी, शर्बत, चाशनी आदि जिन पदार्थों में मिलाकर औषध सेवन की जाय या औषध के ऊपर जैसे- दूध, छाछ, पानी, क्वाथ, अर्क, आदि पिलाया जाय, उसे 'अनुपान' कहते हैं।

आयुर्वेदीय विश्वकोषकार अनुपान के विषय में लिखते हैं-

अनुपान का प्राथमिक अर्थ वह तरल पदार्थ था जो औषध सेवनोपरान्त व्यवहार मे लाया जाता है, परन्तु बहुत काल से अब यह उस द्रव पदार्थ के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, जिसके साथ औषध सेवन की जाती है। दूसरे शब्दों में इससे वह द्रव्य अभिप्रेत है, जो सेवन की हुई औषध को पथ-प्रदर्शक का काम देता है।

नोट- यह बात सिद्ध है, कि यदि किसी तरह (पतला) द्रव के साथ औषध सेवन की जाय, तो इसका शीघ्र प्रभाव होगा, और वह औषध को शरीर में उचित स्थान पर पहुँचाने में सहायक होगा, यही कारण है कि प्रायः सभी औषधें किसी-न-किसी तरल पदार्थ के साथ सेवन की जाती हैं। जैसे उपसर्ग लगाने से एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं। उसी तरह अनुपानभेद से एक ही औषध गुण विशेष के कारण अनेक रोगों का नाश करती है।

कतिपय रोगोक्त अनुपान

ज्वर में- तुलसी की चाय, शहद, तुलसी के पत्तों का रस, अदरख का रस, पान का रस या मिश्री की चाशनी।

वातज्वर में- शहद, गिलोय का रस, पटसन (लाल पटुआ) तथा चिरायता का शीत कषाय और तुलसी पत्र-स्वरस या कषाय, लौंग का पानी।

पित्तज्वर में- पटोल पत्र-स्वरस, पित्त-पापडा, स्वरस अथवा क्वाथ, गिलोय का स्वरस या क्वाथ, निम्बत्वक् क्वाथ या स्वरस, ल्हीवेरादिक्वाथ, मुस्तकादि क्वाथ।

श्लेष्मज्वर में- मधु, पान का रस, आर्द्रक रस, और तुलसी का रस या क्वाथ।

विषमज्वर में- मधु, पीपल (पिप्पली चूर्ण), हरसिंगार के पत्तों का रस, बिल्वपत्र स्वरस, बिल्वमूल चूर्ण, नागरमोथा, कुटज-बीज (इन्द्रयव), पाठामूल, आम्रबीज, दाड़िम मूल या फलत्वक्, धाय के फूल और कुटजवृक्षत्वक्।

सन्निपातज्वर में- आर्द्रक (अदरख) स्वरस, तुलसी या सहजने का रस, दशमूलक्वाथ, तगरादि क्वाथ।

विषमज्वर में- मधु, पीपल (पिप्पली चूर्ण), हरसिंगार के पत्तों का रस, बिल्वपत्र स्वरस, बिल्वमूल चूर्ण, नागरमोथा, कुटज-बीज (इन्द्रयव), पाठामूल, आम्रबीज, दाड़िम मूल या फलत्वक्, धाय के फूल और कुटजवृक्षत्वक्।

सन्निपातज्वर में- आर्द्रक (अदरख) स्वरस, तुलसी या सहजने का रस, दशमूलक्वाथ, तगरादि क्वाथ, कण्टकार्यादि क्वाथ, तगरादि क्वाथ, पिप्पलीमूलक्वाथ।

शीतज्वर में- भांगरे का रस या कालीमिर्च का क्वाथ का गरम जल।

जीर्णज्वर में- शहद, पीपल, जीरा, गुड़ या जीरा-मिश्री, वर्धमान पिप्पली, सितोपलादि चूर्ण व मधु, सितोपलादि चूर्ण व घी, धारोष्ण या गरम करके ठंडा किया हुआ दूध, शक्कर व सोंठ का चूर्ण।

अतिसार में- छाछ (मट्ठा) ज्वर हो तो शहद, यदि रक्तमिश्रित हो तो आम का रस ककड़ी का पानी अथवा ईसबगोल का हिम, सौंफ का अर्क।

संग्रहणी में- छाछ (मट्ठा) दही का नितरा हुआ पानी।

खूनी बवासीर में- मक्खन, मिश्री, नागकेशर, असली घी, शक्कर, आँवले का चूर्ण अथवा आँवले का मुरब्बा।

बादी बवासीर में- घी और त्रिफला चूर्ण।

अजीर्ण में- गरम पानी, हींग और सेंधा नमक युक्त छाछ (मट्ठा) या नींबू का रस, प्याज या पुदीना का रस, अजवायन का फाण्ट, सौंफ का फाण्ट, पीपलामूल, चित्रक, कालीमिर्च, सोंठ और हींग इनका चूर्ण गरम पानी में निम्बू निचोड़कर, शंखद्राव मिला पानी, सोडा वॉटर।

अग्निमान्द्य में- गरम पानी, पान खाने को दें।

विसूचिका में- अजीर्णोक्त अनुपान दें।

भस्मक रोग में- पक्का केला ५ तोला और घी।

कृमि रोग में- वायविडंग, शहद, अनार की जड़ का क्वाथ, अननस के पत्तों का रस तथा खजूर, भिण्डी-चम्पा की पत्तियों का रस और निर्गुण्डी का रस।

पाण्डु रोग में- त्रिफला और शहद, त्रिफला व मिश्री अथवा गोमूत्र, गन्ने का रस, मोसम्बी का रस, वेदाना-अनार का रस।

कामला में- त्रिफला व शक्कर, कुटकी चूर्ण व शक्कर।

रक्तातिसार व रक्तपित्त में- अडूसे के पत्तों का रस, आयाधान का स्वरस, अनार पत्र, स्वरस गूलर का फल, कूटज वृक्ष की छाल का चूर्ण, दूर्वा-स्वरस, बकरी का दूध और मोचरस का चूर्ण।

क्षय (यक्ष्मा) में- मक्खन, शहद और मिश्री, शहद, मिश्री, कफज श्वास या प्रतिश्याय हो जाय तो अडूसे के पत्ते का रस, तुलसी पत्र स्वरस, पान का रस, आर्द्रकस्वरस, मुलेठी, कण्टकारि, कायफल आदि इनमें से किसी का क्वाथ, तालीस-पत्र, पिप्पली, काकड़ासिंगी और वंशलोचन में से किसी एक का चूर्ण।

कफ निकलने वाली खाँसी व दमा में-पका पान , अदरख का रस व शहद, तुलसी का रस व मिश्री, चातुर्जातावलेह।

कफ न निकलता हो तो- अड़ूसे का रस व शहद, अड़ूसा रस व मिश्री, काले अंगूर अथवा मुलेठी का क्वाथ या दाडिमावलेह, द्राक्षासव या पिप्पल्यासव में वासाक्षार या अपामार्गक्षार ४ रत्ती मिलाकर।

काली खाँसी में- पका केला, मक्खन, मिश्री, दाड़िमावलेह, आँवले का मुरब्बा, द्राक्षारिष्ट (शार्ङ्गधरोक्त)

हिक्का 'हिचकी' में- मोर पंख की राख, पीपल व बेर की गुठलियों का मग्ज व शहद एकत्र करके देना।

अरूचि में- अदरख, बिजौरा, अनार और नींबू में से किसी एक का या दो अथवा चारों का रस या मिश्रीयुक्त अवलेह।

स्वरभेद में- मुलेठी व दाखों का काढा, कुलिंजन का क्वाथ।

वमन में- पीपल (वृक्ष) का क्षार, बड़ी इलायची का चूर्ण व क्वाथ।

बेहोशी व चक्कर में- धमासे का क्वाथ व घी, ब्राह्मी का रस, दूध, मिश्री, आँवले का मुरब्बा, अनार का रस या दाडिमावलेह, गुलकन्द, ठण्डा जल, इनमें से किसी से या शहद ५तोला उबाल कर ठण्डा पानी १० तोला में मिलाकर देना।

दाह में- औदुम्बरावलेह, दाडिमावलेह, आँवले का मुरब्बा, धनिये का हिम, नींबू का शर्बत, सफेद चन्दन घिसकर जल में मिलाकर, खश डाला हुआ मिट्टी के घड़े का ठण्डा पानी।

उन्माद व अपस्मार में- घी या ब्राह्मी रस या दोनों अथवा पुराना घी।

वातरोग, आमवात, अर्धांगवात, लकवा आदि में- घी, गरम पानी, रेंडी का तेल अनेक वातघ्न औषधियों के क्वाथ या स्वरस।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में- चावल का धोवन, गोखरू का क्वाथ, दूध, पानी, ढाक के फूल तथा धनियाँ इनका क्वाथ मिश्री मिलाकर।

प्रमेह में- हल्दी व मिश्री, त्रिफला, आँवला व मिश्री। शहद मिश्री।

बहुमूत्र में- पका केला, जम्ब्वावलेह, पुराना शहद, दूध, घी।

शोथ में- पुनर्नवा चूर्ण या काढ़ा, गोमूत्र, बिल्वपत्र-स्वरस (बेल के पत्तों का रस), सफेद अपामार्ग का क्वाथ, स्वरस, शुष्क मूली का क्वाथ और काली मिर्च का चूर्ण तथा अर्क, मकोय या मकोय का स्वरस।

गुल्म, उदर, तिल्ली, यकृत आदि में- गोमूत्र, त्रिफला का क्वाथ, घी, रेंडी का तेल, पुनर्नवादि क्वाथ, विडंगासव या कुमार्यासव में यवक्षार ४ रत्ती मिलाकर।

गलगण्ड ग्रंथि, अर्बुद, विद्रधि आदि में- गोमूत्र क्वाथ या चूर्ण, घी।

सूजाक में- गिलोय का रस, कच्ची हल्दी का रस, आँवले का रस, लघु शाल्मली (सेमर) वृक्ष का स्वरस, दारूहल्दी का चूर्ण, मजीठ और असगन्ध का क्वाथ, सफेद चन्दन का कल्क, बबूल के गोंद का हिम, कदम्ब की छाल का स और कसेरू का रस।

अपदंश (आतशक) में- घी, खोवा, पका पान।

विसर्प व कुष्ठ में- निम्ब के पंचांग या चूर्ण, त्रिफला, बाकुची चूर्ण और घी।

शीतपित्त में- अदरख- रस या घी, छुहारें का काढ़ा(क्वाथ)

अम्लपित्त में- अदरख का रस, अनार व मिश्री, आँवले का मुरब्बा, चन्दन व मिश्री का क्वाथ (काढ़ा), दूध घी, दाड़िमावलेह, चन्दनावलेह, द्राक्षावलेह।

नेत्ररोग में- घी, त्रिफला चूर्ण व घी, महात्रिफलादि घृत।

शिरोरोग में- घी व गुड़, घी व शक्कर।

प्रदर के लिये- चावलों का धोवन, जीरा, मिश्री, प्याज का रस, आँवले का मुरब्बा दाड़िमावलेह, गुलकंद, दारूहल्दी, अडूसा और गिलाये का काढ़ा- इनमें से कोई एक रोगी की प्रकृति के अनुसार।

शुक्रवर्द्धक तथा वृष्य- नवनीत (मक्खन), मांस-रस, केवाँच के बीज, बिदारीकन्द, असगन्ध, सेमल की मुसली का रस और अनन्तमूल का रस, मिश्री मिला गरम दूध, मलाई।

नोट- रोगी और रोग दोनों की दशा को अच्छी तरह विचार कर अनुपान का निश्चय करना चाहिए। क्वाथ और फाण्ट की मात्रा २ औंस (1 छटांक), औषधियों के निचाड़े हुए रस की मात्रा १ या २ तोला और चूर्ण की मात्रा १ से ३ माशा भर लेनी चाहिए। जब चूर्ण अनुपान रूप में लायें तब मधु मिलाकर या जल से उसका व्यवहार करें। पित्तोल्वणता की दशा को छोड़कर शेष सभी दशा में शहद ही अनुपान रूप में प्रयोग करें।

उपर्युक्त अनुपान उसी दशा में प्रयोग में लाया जाय, जबकि औषध वटिका या चूर्ण रूप में दी जाय, किन्तु जब मोदक, गुग्गुलु और औषधीय पाक प्रभृति का उपयोग किया जाय, तब शीतल या उष्ण जल का अथवा उष्ण दूध का ही अनुपान में व्यवहार करना चाहिए। सभी औषधीय घृतों में चवन्नी भर शक्कर मिलाकर लगभग एक छटाँक अर्धोष्ण दूध के साथ सेवन करें। बहुत से औषधसिद्ध घृत बिना शक्कर के भी उपयोग में आते हैं।

अनुपानीय द्रव्य और उनकी मात्रा- गोमूत्र (गाय का मूत्र), दूध (जीर्णज्वर व अग्निमांद्य हो तो गाय का, संग्रहणी, अतिसार और क्षय हो तो बकरी का दूध), गरम पानी, ठण्डा पानी, चावलों का धोवन, गाय या बकरी का दूध आदि ५ तोला से ८ तोला तक लें।

मीठे अनार का रस २ तोला, मिश्री, मक्खन, आँवले का रस, मुरब्बा व गुलकन्द (एक वर्ष का पुराना), गुड़ (१से३ साल का पुराना हो), कागजी नींबू का रस, पुदीने का रस, प्याज का रस, इनमें से कोई भी पदार्थ १-१ तोला लें।

घी- सभी विकारों में गाय का और कुष्ठ विकार हो तो भैंस का लेना चाहिए। मात्रा ६ माशे। घी ताजा ही लेना चाहिए। शहद जितना पुराना होगा, उतना ही सौम्य गुणवाला होगा। सहजन की छाल का रस, भांगरे की पत्तियों का रस ३ माशे लें। हरी दूब का रस व कुटजमूल का रस ६ माशे लें।

आँवला, त्रिफला, निम्ब, पंचांग या कुटकी, मुलेठी, बाकुची इनमें से किसी का चूर्ण लेना हो तो २ माशे लें। हल्दी, तमालपत्र, स्याह-जीरा, अपामार्ग, दालचीनी, बड़ी सौंफ, जीरा, सेन्धा नमक, करंजबीज चूर्ण, नागकेशर, वायविडंग इनके चूर्ण की मात्रा एक माशा लें।

अनुपान के लिए किसी भी दवा का क्वाथ बनाना हो तो १ तोला द्रव्य को आधा सेर पानी में मिलाकर आग पर चढ़ाकर खूब उबालना चाहिए। ५ तोला शेष रहने पर उतार कर साफ कपड़े से छान लेना चाहिए।

काढ़े के लिए ताजी जड़ २ तोला और सूखी जड़ १ तोला लेनी चाहिए।

पथ्यापथ्य

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।

इसका भाव यह है कि यदि रोगी पथ्य से रहे, तो उसे औषध सेवन कराने की क्या जरूरत? अर्थात् रोगोत्तर पथ्यापथ्य के विचार से रहने पर ही बहुत से प्रारम्भिक रोग अच्छे हो जाते हैं। जैसे साधारण ज्वरादि। इसी तरह यदि रोगी अपथ्य से रहे, तो उसे भी औषध सेवन से क्या लाभ? अर्थात् औषध सेवन काल में यदि वैद्यों के आदेशानुसार पथ्य-परहेज से नहीं रहे, तो सिर्फ औषध मात्र के सेवन से क्या फायदा होगा? अतः औषध-सेवन-काल में अथवा जब रोग छूट जाय उसके बाद भी वैद्यों के आदेशानुसार अथवा शास्त्र विधानानुसार पथ्य करने से शीघ्र ही शरीर निरोग हो जाता है। इसी का विवेचन इस प्रकरण में किया जायेगा।

पथ्याहार- पुराने चावल का भात या पुराने जौ का दलिया अथवा सत्तु, पुराने धान की खील (लावा) या मकई, ज्वार (जनेर) की खील (लावा) का आटा, मूँग की दाल, पुरानी अरहर की पतली दाल, साबूदाना या दूध में बनी हुई पतली खीर या लस्सी- ये सुपच आहार हैं।

पानी-धातु के कलईदार या मिट्टी के बर्तन में खूब उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी सन्निपात ज्वर, अग्निमांद्य, पेट के रोग, उल्टी (वमन), आमांश, पार्श्वशूल, कटिशूल, जुकाम, वातरोग, गलग्रह, नवज्वर, हिक्का, दाह या जो स्नेहपान किया हो इत्यादि रोगों में सुबह से शाम तक पीना और शाम को उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी रात भर पीना चाहिए। एक बार गरम किये हुए पानी को दुबारा नहीं उबालना चाहिए।

भोजन करते समय थोड़ा-थोड़ा पानी बार-बार पीना चाहिए। एक ही बार में ज्यादा पानी नहीं पीना चाहिए। दूध पीने के बाद आधा घंटा तक पानी नहीं पीना चाहिए। पेटशूल और नलाश्रितवायु तथा अम्लपित्त के रोगियों को भोजन के समय पानी के स्थान में दूध पीना चाहिए। फिर छः घंटे के बादयदि प्यास लगे, तो मात्र २० तोला पानी पीवें, ज्यादा नहीं।

अरोचक, जुकाम, सूजन, क्षय, उदर रोग, अग्निमान्द्य, जीर्णज्वर, नेत्ररोग, कुष्ठ और मधुमेह के विकारों में पानी बार-बार परन्तु थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए। मधुमेह और बहुमूत्र रोग में पानी की अपेक्षा दूध ज्यादा लाभदायक है।

सौम्य मसाला- धनियाँ, जीरा, सौंफ (बड़ी), तेजपत्ता (पत्रज) आदि को एकत्र कूट कर रख लें। यह मसाला कफ, खाँसी, दमा, मुँह आना, बवासीर में खून गिरना, दाह होना, रक्त प्रदर, नेत्ररोग, उपदंश (आंतशक), प्रमेह, सुजाक और क्षय रोगों में हितकारी है।

फलवाले शाक- परवल, भिण्डी, तुरई, कच्चा केला, ककोड़ा (खेखसा), पेठा, लौकी, कुँदरू, केले का फल, काली बैंगन आदि ये शाक पथ्य हैं।

कन्दवाले शाक- सुरण (जमीकन्द), मूली, गाजर, शकरकन्द, पानी का आलू इन्हें भून कर या उबाल कर भरता या भाजी बनाकर सेवन करना चाहिए।

पत्तेवाले शाक- बथुआ, चौलाई, सोआ, मेथी, पुनर्नवा और गोभी के पत्ते, पालक, लोबिया आदि का शाक खाना चाहिए।

फल- मीठा अनार, सन्तरा, अंगूर, सेब, अनन्नास, मोसंबी, फालसा, खिरनी, कागजी नींबू, रसभरी, शरीफा (सीताफल), आम के मौसम में बीजू आम आदि खाने चाहिए।

पथ्य- अपथ्य

विषमाशन- कभी ज्यादा कभी कम या असमय में खाना 'विषमाशन' कहलाता है।

अध्यशन- खाये हुए पदार्थ के बिना हजम हुए ही पुन: खा लेना 'अध्यशन' कहलाता है।

समशन- यथापथ्यकारक (हित-अहित करनेवाले) पदार्थों को एक साथ मिला कर खाना 'समशन' कहलाता हैं। ये विषमाशन, अध्यशन और समशन अजीर्ण उत्पन्न कर अग्निमान्द्य आदि अनेक रोग उत्पन्न करते हैं।

पित्तवर्धक पदार्थ- दही, खट्टी छाछ, तेल और तेल में तले हुए पदार्थ, गुड़, नमक, मिर्च, हींग, मूँगफली, राई, बैंगन, गाजर, सहजन की फली, करेला, कुल्थी, कटहल, शराब, बासी भोजन, सूखे शाक, खिचड़ी वगैरह चीजें तथा गर्म हवा, भूख का दमन, चाय, तमाखू, गाँजा आदि का धूम्रपान, धूप में घूमना, अतिशय परिश्रम करना, जागरण, अधिक मैथुन, क्रोध आदि से पित्त बढ़ जाता है। इससे सिर में दर्द तथा जकड़ जाना, चक्कर आना, अर्द्धांग वायु, लकवा, धातु का पतला होना आदि विकार उत्पन्न होते हैं और फिर वे अनेक रोगों की वृद्धि करने में सहायक होते हैं।

वातवर्धक पदार्थ- चना, मटर, मसूर आदि का साग, दाल तथा चटनी, बेसन के लड्डू, आलू, कटहल, मूँगफली, बासी तथा खट्टा भोजन, नया अन्न आदि पदार्थ वायुकारक हैं। ये वायु को बढ़ाते हैं। अधिक उपवास करना, दौड़ना, कूद-फांद, तैरना, चिन्ता, शोक, भ्रम, मैथून, जुलाब, रक्तस्राव, रात्रि जागरण आदि कारणों से वात की वृद्धि होती है और पाचन-शक्ति कम हो जाती है। फिर पेट फूलता है और अजीर्ण होता है। संग्रहणी, आमवात, उदर रोग, पेट में दर्द, बहुधा ये विकार उत्पन्न होते हैं। खास कर वर्षा, हेमन्त और शिशिर ऋतु में वायु के विकार बढ़ते हैं।

कफवर्धक पदार्थ- पका केला, आम का पना, कदली (केले)का फुल, दही, दूध से बनी चीजें, कच्चे नारियल का जल, तुम्बी, दूधी इनके शाक, नया अन्न, नया वर्षा का या नयी सुराही या मटके का ज्यादा ठंडा पानी, नयी इमली, खट्टे बेर, करोंदे, कच्चे अमरूद, आँवले, चिरौंजी या तिल का तेल, कच्चा घी आदि का सेवन कफकारक होता है।

धातुनाशक पदार्थ- स्त्री के रूप एवं विलास का स्मरण, उनके विषय में विशेषतया बाते करना, गुह्यभाषण व क्रीड़ा, औरतों की तरफ घूर-घूर कर देखना, अश्लील उपन्यास एवं कहानियाँ पढ़ना, अश्लील चित्रादि देखना आदि कारणों से शुक्र का नाश होता है। इनके अतिरिक्त शरीर सदा गर्म रहने तथा विशेष चिन्ता आदि करने से भी शरीर कमजोर होकर धातु-नाश का कारण बनता है। कटु पदार्थ तथा क्षार और कषैली चीजे धातु को नष्ट करती हैं। खट्टी और चटपटी चीजें शरीर में गरमी उत्पन्न करके धातु को पतला बनाती हैं। उपदंश और सुजाक तथा प्रमेह होने से सन्तानोत्पत्ति की शक्ति धातु में नहीं रहती हैं।

धातुवर्धक पदार्थ- जब शरीर में किसी तरह का विकार न हो, अग्नि भी ठीक रहे, खूब भूख लगे, दस्त साफ होगा तो, तब निम्न पदार्थों के सेवन से धातु की पुष्टि होती है।

खूब औंटाये हुए दूध से बने पदार्थ, अच्छा दही या दही से बनी हुई चीजें, गेहूँ की रोटी, उत्तम सुगंधित चावलों का भात, कुँदरू, परवल, भिण्डी, सूरण (जमीकन्द), पेठा घी में भुना (तला) हुआ, अरहर, उर्द का दाल, किसमिस, पिस्ता, बादाम, चिरौंजी आदि मेवा, गन्ना, अनन्नास, पका हुअ आम आदि फल खाने और रोज ताजा जल से स्नान, व्यायाम आदि करने से धातु की वृद्धि होती हैं।

साधारण ज्वर में पथ्यापथ्य- इसमें सर्वप्रथम लंघन कराने के बाद एक वर्ष के पुराने धान की खील (लावा), चावल, सुखे या हरे अंगूर, मीठा अनार, परवल, मोसम्बी, अनन्नास, मूली, चौलाई, बथुआ आदि का शाक पथ्य में दें। मूँग का दलिया, साबूदाना, बार्ली(जौ) का पानी आदि देना चाहिए। पीने के लिये गरम करके ठंडा किया हुआ पानी थोड़ा-थोड़ा और बार-बार देना चाहिए।

अन्य उपचार- सूखी दाख, मुनक्का भून कर उन पर थोड़ा पिसा हुआ सेंधा नमक लगाकर दें। इससे अरुचि या वमन का शमन होता है। यदि कफ न हो तो आलूबुखारा देना हितकारी है।

अपथ्य- कोशिश यह रहे कि रोगी अधिक नहीं बोले। जोर-जोर से रोगी से बातें नहीं करनी चाहिए। शारीरिक व मानसिक परिश्रम तथा दिन में सोना, रात को जागरण आदि नहीं करें। जब तक खूब स्वस्थ न हो जाय तब तक मैथुनादि से भी परहेज रखें।

अतिसार, पेचिस, संग्रहणी आदि में- पथ्य हलका दें। पुराने चावल का भात, पुराने मूँग को भून कर उसकी बनाई हुई दलिया, बकरी या गाय का दूध, घी, मक्खन, मट्ठा, ककड़ी, केला पका, केले का फूल, सोया, गोभी आदि शाक, पका आम, बेल का फल आदि देना चाहिए।

अतिसार में रक्त नहीं गिरता हो- तो काली बैंगन, घीया (लौकी), तुरई और कागजी नींबू आदि भी दें।

अपथ्य- आटा, मैदा, खोवा, चीनी से बनी हुई गरिष्ठ चीजें, पौष्टिक पदार्थ, दालमोठ, गुड़ आदि नहीं दें।

मुखरोग और गुदारोग में- पुराना चावल यदि हजम हो सके तो जौ की दलिया, मूँग या अरहर की पुरानी दाल, कुँदरू, पेठा, कच्चा केला, जिमीकन्द, पटोल (परवल), पुनर्नवा, सोआ के साक आदि सेंधा नमक, दूध, घी, मक्खन, मीठा अनार, काले अंगूर पका आम आदि पथ्य हैं।

घी-शक्कर का हलुआ, मुलायम भात, दलिया जैसी पतली चीजें, आरारोट की लप्सी आदि भी पथ्य हैं।

गुदा द्वार में मस्से निकल गये हों, सूजन में से रक्त निकलता हो, मुँह में छाले पड़ गये हों तो कंचनार की छाल और फिटकरी आदि डालकर क्वाथ करके सुखोष्ण जल का कुल्ला (गण्डूष) करें, बवासीर वाले को यदि बर्दाश्त हो सकें तो जमीकन्द को घी में तल कर मिश्री मिलाकर दें। शाक में जिमीकन्द और पेठे को मिलाकर देना पथ्यकारक है।

अपथ्य- गर्मागरम तथा बासी चीजें न खाएँ, दाँतों से ज्यादा चबानेवाली चीजें भी न खाएँ, कड़े आसन पर न बैठे, जिससे बैठने में गुदा को कष्ट हो, मूली, बैंगन, राई, हींग, लहसुन, अदरक, काली मिर्च, खट्टी चीजें, खटाई, गुड़ आदि पदार्थ बवासीर वालों के लिए अपथ्य हैं।

क्षय,काली खाँसी एवं उर:क्षत- के लिए साधारणतया सौम्यपदार्थ, ताजा मक्खन, घी, आँवले का मुरब्बा, छाती और छाती के पीछे पीठ पर पुल्टिस से उचित ढंग से ठीक-ठीक सेंक करना चाहिए।

पुल्टिस का विधान- अलसी या गेहूँ का आटा ६ तोला, घी १।। तोला, दूध या पानी २० तोला, हल्दी १।। माशे इन सब को एकत्र मिला और पका कर जितना सहन हा सके उतना गर्म-गर्म पीड़ा (दर्द) की जगह पर लगावें। यह लेप आवश्यकतानुसार तैयार करना चाहिए। यह ध्यान रखें कि पुल्टिस गर्म ही रहे। ठण्डी पुल्टिस से सेंक न होने के कारण लाभ नहीं होता है।

गुण और उपयोग- छाती व छाती के पीछे पीठ पर लगाने से कफ पतला होता है। दमा व खाँसी से हुई तकलीफ दूर होती है। क्षय के दर्द में यदि सूखी खाँसी हो या कफ बहुत गिरता हो, थोड़ी बहुत दमा की शिकायत हो, तो उस समय यह पुल्टिस अच्छा काम करती है। शरीर में कहीं मोच (झटका) आ गयी हो, जिससे रक्त एक जगह जम गया हो, तो उस रक्त को फैलाने के लिए इसका प्रयोग करना चाहिए। बड़े-बड़े फोड़े-फुन्सियों में पीब जल्द बनकर उनके फूट जाने तथा नारू की सूजन कम होने या बह कर बाहर आ जाने के लिए, आमवात या संधिवात की सेजन कम होने के लिए और घावों की बदबू दूर करने के लिये यह पुल्टिस बहुत लाभप्रद है।

अपथ्य- ठण्डी हवा, दही, इमली, धूल, रूई का कूड़ा-करकट, धुआँ आदि सूक्ष्म चीजों का गले व नाक के छेद में जाना, तली हुई चीजें जिनके तेल में तलने से इनकी गन्ध नाक-मुँह में जाती है, धूप में ज्यादा घूमना, ज्यादा जागरण करना आदि अपथ्य हैं।

शिर और नेत्ररोग में-सुखपूर्वक जितना हजम हो सके, उतने गेहूँ के आटे की बनी हुई चीजें या चावल, मूँग की दाल, उर्द की दाल, छाछ, पेठा, परवल, पुनर्नवा के पत्ते आदि का शाक, ठण्डा पानी, घी, शक्कर, मक्खन, सूखे अंगूर, जुलाब के लिए-रेंडी का तैल, मस्तक पर ब्राह्मी का रस, खस, चन्दन, कपूर मिश्रित आँवला चूर्ण का लेप, खुशबूदार तैल और इत्र का सूँघना, खुली हवा और साफ जगह में रहना पथ्य हैं।

अपस्मार- स्नान के समय सिर पर ठण्डा पानी या किंचित गरम पानी डालना, अपस्मार के रोगी को शाम के समय नारायण तैल की मालिश पाँवों पर करना तथा उस स्थान को गरम पानी से सेंकना अच्छा है।

भोजन में घी ज्यादा हो, रोगी को एकान्त में रखें। रोगी के पास बहुत थोड़े आदमी जाएँ। रोगी को बहुत बोलने नहीं दें, जिन बातों से उसका मन बहलता रहें वैसी ही बातें करें। कोई ऐसी बात न करें, जिससे उसके मन को कष्ट हो या किसी तरह की मानसिक चिन्ता हो।

अपथ्य- किसी को बिना साथ लिए कहीं बाहर जाना, तालाब, कुआँ, नदी, बाँध, बावली, ऊँची-नीची जगहों पर चढ़ना, घोड़े पर चढ़ना, अशुभ या शोकदायक समाचार एकाएक सुनना, क्रोध, चिन्ता एवं सूर्य, अग्नि के तेज में तपना आदि अपथ्य हैं।

धनुर्वातादि कठिन वातरोगों में-यह रोग बड़ा भयंकर होता है। यहाँ तक कि खाना खाने में भी दिक्कत होती है। गेहूँ या कुल्थी का बना हुआ पतला दलिया, ज्यादा घी, थोड़ी शक्कर व नमक मिला कर बार-बार थोड़ा-थोड़ा दिया जाय, नारंगी, सहजन, लहसुन, गोमूत्र आदि पथ्य हैं।

आमवात रोग में- गेहूँ के फुल्के, घृत और शक्कर डाला हुआ हलवा, साठी चावल, पुनर्नवा के पत्तों का शाक, अनार, आम, अंगूर, रेंडी का तेल और अग्निमांद्य न हो तो उर्द की दाल देना पथ्य हैं। दोपहर और रात में नारायण तैल की मालिश करना उत्तम हैं।

अपथ्य- चना,मटर, सोयाबीन, आलू, तोरई, मसूर, सावाँ, कटहल, ज्यादा श्रम,जागरण, व्रत करना, ठण्डे जल से स्नान करना आदि अपथ्य हैं।

मूत्ररोग (मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात-पथरी आदि)- पुराने लाल चावल, भूनी हुई मूँग की दाल, गाय के दूध की छाछ (मट्ठा), घी, दूध, पेठा, परवल, ककड़ी, इलायची, कबाबचीनी, चन्दन का तेल और छुहारा, इसबगोल, तालफल, मीठा आम, धनियाँ, नागकेशर आदि पथ्य है।

पलास के फूल थोड़ा उबाल कर नाभि के नीचे पेट पर बाँधना, जननेन्द्रिय में सलाई चलवाना, गरम पानी में बैठाना आदि लाभदायक हैं।

अपथ्य- मटर, दही, राई, चना, हींग, उबली हुई चीजें, केला आदि पदार्थ, मलमूत्र के वेग को रोकना, मैथुन, श्रम, सफर, धूप में घूमना या बैठना आदि अपथ्य हैं।

प्रमेह रोग में पथ्य- सत्तू, गेहूँ, चावल (महीन), सरसों, कोदो कम-से-कम एक वर्ष के पुराने हों, पुराना मूँग, धुली हुई उर्द की दाल और अरहर एवं चना की दाल, मुलायम भात, बकरी या गाय का दूध और मट्ठा, पटोल, ककड़ी, केला, केला के फूल आदि के शाक पथ्य हैं।

खस, कपूर, छुहारा, चन्दन, औदुम्बर, जामुन, ग्वारपाठा, ब्राह्मी आदि का औषध रूप में प्रयोग करना पथ्य हैं। ज्यादा परिश्रम नहीं करना, मैथुन भी बन्द रखना चाहिए।

भोजन के समय पानी न पीकर भोजन के एक-दो घण्टे बाद पानी पीना चाहिए। रोटी और पूड़ी कठिनाई से हजम होती है। अतः हल्की चीजें खानी चाहिए।

अपथ्य- मूत्रवेग धारण करना, धूम्रपान, रक्तस्राव, सुख से निश्चित बैठे रहना, दिन में सोना, कोई काम-काज नहीं करना, दही, सोयाबीन, नये अन्न-जल का सेवन, आटे से तेल में बनी चीजें, तेल गूड़, खटाई आदि का सेवन, मैथुन, शराब, कद्दू (लौकी), अंजीर, गन्ना, शक्कर (चीनी) आदि अपथ्य हैं।

मधुमेह तथा बहुमूत्र में- कम मीठे तथा कषैले फल खाना अच्छा है। इस रोग में क्रमशः रोज कमजोरी बढ़ती ही जाती है। अतः किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम नहीं करना। हाँ थोड़ा-सा मानसिक श्रम जितना बर्दाश्त हो सके करना, चित्त को हरदम, काम-धंदा में लगाये रहने से रोग की चिन्ता कम रहती है। इससे शारीरिक उत्साह (स्फूर्ति) बढ़ती है और थकावट भी दूर हो जाती है।

उदर रोग (पेटशूल-गुल्म-प्लीहा आदि) में- उबालकर ठण्डा किया हुआ पानी, सोडा वॉटर, गाय या बकरी के दूध की छाछ (मट्ठा), घी, पुराना चावल, कागजी नींबू, पुनर्नवा, सोया, प्याज, तरोई, परवल, बैंगन, मूली, जिमीकन्द इनके शाक, रेंडी का तेल और गोमूत्र-सेवन करना है, बस्ति देना। अनार व अंगूर व अदरख आदि चीजें भी पथ्य हैं।

रक्तविकार में- दूध, पुराने चावल का भात, सेंधा नमक, भुने मूँग की दाल, अरहर की दाल, भिण्डी, तरोई, परवल, केला व उसका फूल, गोभी आदि में पूर्वोक्त मसाला डाल कर सेवन करना, उबाल कर ठण्डा पानी छाछ इन चीजों में से जितनी कम चीजें और जितनी कम मात्रा में खाई जायें अच्छा हैं।

गर्भिणी के लिए-सीढ़ियों पर चढ़ना, पलंग पर सोना, अधिक परिश्रम करना, मैथुन करना, बड़ी इलायची खाना, डरना आदि-आदि गर्भ और गर्भवती स्त्री दोनों के लिए हानिकारक हैं। अतः इन्हें त्याग दें।

प्रसूता- को गेहूँ के आटे का हलुआ ज्यादा घी डालकर बनाकर खिलाना, पानी गर्मकर ठण्डा किया हुआ देना, हवादार और जिस कमरे में सूर्य की रोशनी आती हो और साफ हो ऐसे कमरे में रखना। ऐसा करने से गर्भाशय में प्रसव के साथ हुई वेदना कम मालूम पड़ती हैं।

प्रसूता के लिए पथ्य- गेहूँ, जूनरी (ज्वार), चावल, घी, दूध, शक्कर, परवल, सफेद कुँदरू, पेठा, भिण्डी, लौकी, भुने मूँग व उर्द की दाल, बादाम, किसमिस, सफेद प्याज, कौंच की बीज, खस, शतावरी, पान, सौम्य मसाला (जो पहले लिख चुके हैं) आदि चीजें १२ दिन के बाद अग्निबलानुसार दें।

बच्चों को दूध पिलाना- प्रसूता स्त्री ज्वर या पेट के विकारों (जो प्राय: अक्सर प्रसूता को हो जाया करते हैं जैसे पेट फूलना, पतले दस्त होना, पेट में दर्द होना, अग्निमांद्य आदि) में बच्चे को दूध नहीं पिलावें, क्योंकि इस अवस्था का दूध दूषित हो जाता है।

इससे बच्चे की तन्दुरूस्ती खराब हो जाती है। माता गर्भवती हो, तो उस अवस्था में भी बच्चे को दूध नहीं पिलाना चाहिए, क्योंकि गर्भिणी माता का दूध पीने से बच्चे के पेट में डब्बा, तिल्ली आदि रोग हो जाया करते हैं। आजकल विशेषतया बच्चे जो कमजोर या रोगी दिखाई देते हैं, उसका कारण यह भी है।

अतएव गर्भवती या रोगिणी माता का दूध बच्चे को बन्द कर दाई (धाय) का या न मिले तो बकरी या गाय का दूध पिलावें। बच्चे को उसकी माता का दूध पिलाना बन्द कर देने से प्रथम २-४ दिन स्तन में दूध जमा होकर माता को अधिक कष्ट होता है। वह दूध हाथ से या दूध निकालनेवाले यन्त्र (Breastpump) से सुविधानुसार निकाल दें। कुछ दिनों के बाद दूध आना अपने आप बन्द हो जाता है।

बालरोगों का पथ्यापथ्य- यदि बालक सिर्फ माता का ही दूध पीता हो, और बीमारी का कारण भी दुग्ध हो तो माता को दुग्ध-शोधन के लिए औषध व पथ्य देना चाहिए। इस समय माता को विशेष सावधानी से चलना चाहिए, क्योंकि उसकी थोड़ी-सी गलती से बच्चे को अनेक तरह कष्ट भोगने पड़ते हैं। इसी प्रकार गर्भवती माता का भी दूध रोग-कारक होता है। ऐसे दूध को न देकर उसे दाई (धाय), बकरी या गाय का दूध दें।

जिन गाय को बच्चा दिये कम-से-कम ६ महीने हो गये हों उसका दूध देना ठीक हैं। गाभिन गाय का दूध बच्चे को कभी न देना चाहिए। स्वाभाविकतया कुछ गायों का दूध गाढ़ा या पतला होता है। गाढ़ा दूध कमजोर बच्चे को ठीक से हजम नहीं होता। नीरोग और स्वस्थ बालकों को गाढ़ा दूध अच्छी तरह पच जाता है। ऐसे बच्चे भैंस का भी दूध हजम कर जाते हैं। रोग-विकार की सम्भावना देखते ही गाढ़ा दूध बन्द कर देना चाहिए। बकरी का दूध सुविधानुसार और जल्दी हजम हो जाता है। बकरी के दूध से बच्चे पुष्ट और चंचल होते हैं, गाय का दूध पीने वाले बच्चे बुद्धिमान और अच्छे विचार के होते हैं, भैंस का दूध पीनेवाले बच्चे उन्मत्त और जड़ स्वभाव वाले होते हैं।

यदि बच्चे को कोई भी दूध हजम न होता हो, तो ५ तोला दूध में ५ बूँद चूने का (निथरा) पानी मिला कर देना अच्छा है। छोटे बच्चे को अफीम या अफीम मिश्रित दवा नहीं देनी चाहिए। क्योंकि इसका असर सीधे दिमाग पर होता है। बहुत-सी माताएँ बच्चे को खूब सोने (नींद) के लिए जरा-सी अफीम दे दिया करती हैं, किन्तु यह आदत हितकर नहीं है।

पथ्य में दूध का उपयोग- दूध में अनेक गुण हैं। जहाँ दूध एक ओर बाल्यावस्था में शरीर का पोषण कर उसे तन्दुरूस्त बना देता है, वहाँ दूसरी ओर रोगी मनुष्य को सबल और पुष्ट भी करता है। परमात्मा ने दूध में सब गुण भर दिये हें।

गाय अतिशय सात्त्विक तथा ममतामयी होती है। अत: गाय का दूध भी सात्त्विक होता है। गाय का दूध पतला होने से जल्दी हजम भी हो जाता है। इससे रस-रक्तादि धातुएँ एवं स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है। अच्छे-अच्छे विचार तथा अच्छे कामों की ओर बुद्धि की प्रवृत्ति होती है। इससे परिशुद्ध भावना उत्पन्न होती रहती है।

पथ्य में दूध क्यों लिया गया- अन्न की अपेक्षा दूध बहुत जल्दी हजम होता है तथा अन्न दिन भर में दो-तीन बार ही दिया जा सकता है, किन्तु दूध के लिये ऐसा नियम नहीं है, इसे आप हर २-२ घण्टे बाद दिन भर में ४-६ बार थोड़ा-थोड़ा दे सकते हैं, यथा-प्रातःकाल ६-९-११ बजे, दोपहर में १-३-४ और रात को ७-९-१२ बजे तक साधारणतया दे सकते हैं, अर्थात् दूध जब भी चाहें दे सकते हैं, परन्तु उतना ही दे जितना रोगी खूबी से बचा सके। बच्चे को सोते से जगा कर दूध कभी नहीं देना चाहिए। जिसके शरीर में गर्मी बढ़ी हुई हो और हवा भी गर्म चल रही हो, उसे दूध देना हो तो गरम दूध को गिलास में भरकर बर्फ या पानी में गिलास रख उसे ठण्डा करके दूध देना चाहिए। जाड़े में गर्म दूध ही देना उचित हैं। अतिरिक्त समय में सुखोष्ण दूध देना हितकर हैं। ज्यादा मात्रा में एक ही बार दूध देने से पतले दस्त आने लगते हैं।

पथ्य के योग्य दूध- खूब गर्म किया तथा मलाई निकाल हुआ दूध पथ्य के लिए उत्तम है, यदि गाय का दूध न मिले, तो भैंस का दूध (बराबर पानी मिलाकर उबालें, पानी जल जाने पर केवल दूध मात्र रह जाय तब) लेना चाहिए। बकरी के दूध से जुलाब नहीं होता। कफ भी इससे कम बढ़ता है। कफ सुख गया हो या पेट फूला हुआ हो, तो गाय का और यदि रोगी शक्तिवान हो तथा हाजमा भी ठीक हो, तो भैंस का दूध उपरोक्त विधान से देना चाहिए।

दूध देने का प्रमाण- कमजोर रोगी को हर बार दूध ५ से १० तोला, मध्यम को १५ से २० तोला और सशक्त को २० से ३० तोला तक दूध देना उचित है। इसी तरह अशक्त को ८ बार, मध्यम को १० बार, सशक्त को १२ बार दिन-रात में दूध देना चाहिए। अशक्त को १।। सेर, मध्यम को २।। सेर और सशक्त को ४ सेर तक दूध दिन-रात में पिला देना चाहिए।

यदि दस्त में मल की गुठलियाँ रूक्ष (सूखी) बन जाने लगें, तो प्रातः और शाम को दूध में ३ माशा घी डाल कर देना चाहिए। इससे शुद्ध मल आने लगेगा।

दूध के पथ्य के बाद अन्न देना- यदि दूध देने से भूख खूब लगने लगे, तो पुराने चावलों का भात, ताजा घी और सैंधा नमक मिलाकर देना चाहिए। यह हजम हो जाने पर मूँग की दाल, परवल, कुँदरू, तोरई आदि के रसदार शाक देना ठीक हैं। इस तरह अन्न-सेवन बढ़ाते जाएँ। पानी उबाल कर देना चाहिए, सोडावाटर भी कभी-कभी दे सकते हैं। परन्तु बीच-बीच में दूध भी देते रहें। इस तरह अन्न की मात्रा बढ़ाते जाएँ और दूध की मात्रा कम करते जाएँ, किन्तु इसमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिए, अन्यथा नुकसान होगा।

दूध के साथ अन्य वस्तुएँ- यदि दूध ही पथ्य में लेते हों, तो उस समय दूध में शक्कर (चीनी) नहीं डालें, यदि एकाध बार थोड़ी मात्रा में डाली भी जाय, तो कोई हर्ज नहीं। पका हुआ आम, मूँग की पतली दाल, जिमीकन्द (सूरण) आदि भी कभी-कभी ले सकते हैं। अनार, अँगूर, छुहारा, इलायची, लौंग, कबाबचीनी या मिश्री आदि लेना तथा मुख में रखना भी लाभदायक है।

केवल दूध के पथ्य से मिटनेवाले रोग- जीर्णज्वर, अग्निमांद्य, तिल्ली, यकृत, गुल्म, जलोदर, रक्त विकार, वातरक्त, गण्डमाला, अपस्मार, उन्माद, भ्रम, चक्कर, मूर्च्छा, उपदंश, विष और उससे उत्पन्न सभी प्रकार के दर्द, लकवा, लूलापन, शिर और नेत्र रोग, मस्तक शूल, मूत्राशय के रोग, पाण्डु, पीलिया, रक्तपित्त, प्यास, क्षय, उरःक्षत, हृद्रोग, छाती का दर्द, विषरोग, दवाओं की उष्णता, अम्लपित्त, पेटशूल, उल्टियाँ, जुलाब, पेट फूलना, संग्रहणी, आमांश, दस्त के विकार, मन के विकार, चिन्ता-फिक्र आदि-आदि अनेक रोग केवल दूध के पथ्य से आराम होते हैं।

अपथ्य- केला, अननस, जामुन आदि फलों के साथ दूध नहीं देना (पके मीठे बीजू, आम के साथ दूध देना अच्छा है।) कोदो, मोठ, कुलथी आदि धान्य के साथ भी दूध नहीं देना। मूली,

धनियाँ, लहसुन, उर्द की दाल, मट्ठा, दही, इमली, आम की खटाई (अमचूर) आदि के साथ भी दूध का सेवन नहीं करना चाहिए।

इन पदार्थों के गुण-धर्म दूध के गुण-धर्म से विरुद्ध हैं। अर्थात् कुछ चीजें दूध को बिगाड़ देती हैं, कुछ चीजें जो सात्विक गुण दूध में रहता है, उसको नष्ट कर देती हैं।

अंग्रेजी मतानुसार डाक्टर लोग दूध के साथ केला, नारंगी, आदि फल खाने को कहते हैं। परन्तु वह भी बराबर नहीं। आप देखेंगे कि दूध में सन्तरे का रस डाल दें, तो दूध तुरन्त फट जायेगा। डॉक्टरों की यह युक्ति की पेट में जाकर फल और दूध शीघ्र हजम हो जाता है, कभी भी मान्य नहीं हो सकती।

पथ्य में (छाछ) मट्ठा का उपयोग

मट्ठा बनाने का विधान- अच्छा जमाया हुआ दही लेकर इसमें चौथाई भाग पानी मिला तथा मथानी से मथ कर इसमें से मक्खन निकाल लें। इस तरह से बना मट्ठा अत्यन्त रूचिकर पचने में हल्का, मल-मूत्र को साफ करने वाला, स्वयं पाचक तथा अन्य द्रव्यों को भी पचाने के कारण वह अतिसार, संग्रहणी, अर्श, नलाश्रित वायु, पीलिया, पेट-शूल, मूत्रकृच्छ्र, हैजा, मूत्राघात, अश्मरी, उदर और गुल्म आदि रोगों में लाभदायक हैं।

गुण- शीतकाल में तथा अग्निमांद्य, अरूचि, वातरोग, स्रोतोरोध आदि रोगों में मट्ठा, अमृत के समान गुणकारक है। यह विष-विकार, छर्दि, लालास्राव, ऐकाहिकादि विषमज्वर, पाण्डु, ग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी आदि मूत्रविकार, भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, अतिसार, शूल, तिल्ली,उदर,अरूचि,श्वित्र (कुष्ठ)रोग, कोष्ठात रोग, कोष्ठसूजन, तृषा और कृमि का नाश करता है। यह क्षुधावर्द्धक (भूख बढ़ानेवाला), नेत्ररोग-नाशक, रक्त और मांसवर्द्धक, आँव व कफ-वात नाशक है।

रोगानुसार उपयोग- वात-विकार में मट्ठा और सेंधा नमक मिला कर देना और पित्तविकार में मट्ठा शक्कर मिलाकर तथा कफ-विकार में मक्खन निकाला हुआ मट्ठा में सोंठ, सेंधानमक, काली मिर्च और पीपल मिला कर देना, मूत्रकृच्छ्र में गुड़ मिला कर और पाण्डू रोग में चित्रक चूर्ण मिला कर मट्ठा देना चाहिए।

उदर रोग में- वातोदर में पीपल व सेंधा नमक मिला कर देना, पित्तोदर में शक्कर तथा काली मिर्च मिला कर कफोदर में अजवायन, सेंधा नमक, जीरा, सोंठ, पीपल, काली मिर्च मिला कर देना, त्रिपातोदर में सोंठ, काली मिर्च, पीपल और सेंधा नमक मिला कर मट्ठा पीना। बद्धोदर में हाऊबेर, अजवायन, जीरा और सेंधा नमक मिला कर मट्ठा पीना। ग्रहणी (संग्रहणी) ग्रस्त रोगी के लिये विशेष रूप से मट्ठा सेवन करना चाहिए। ग्रहणी रोग में अन्न का बिल्कुल परित्याग कर निरन्तर खाने-पीने से मट्ठा का ही बराबर प्रयोग करें। इसमें जरा-सा सफेद जीरे को भूनकर मिला लेना अधिक लाभदायक होगा।

रस-पारद

हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विषय के ऊपर गवेषणा करके जो कुछ सूत्र रूप में लिख दिया है, वह अक्षरशः सत्य है। उनके ज्ञान को आजकल के नवयुग के यथार्थवादी वैज्ञानिक अथक परिश्रम करने पर भी अभी तक नहीं प्राप्त कर सके हैं। बहुत से सत्य-प्रिय वैज्ञानिकों ने हमारे आचार्यों के सूत्राशयों को प्रत्यक्ष प्रमाणों से स्वयं प्रत्यक्ष करके सिद्ध कर लेने पर मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा ही हैं।

हमारे ऋषि-महर्षि आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों प्रकार के ज्ञान के यथार्थ विज्ञानी थे। इस विषय में वर्तमान समय के प्राय: सब देशो के उच्च विद्वानों का एकमत है। आजकल के पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे ही महर्षि-निर्मित सूत्रों के तत्वों को भली-भाँति समझ कर उसी के आधार पर प्रत्येक पदार्थ का अन्वेषण प्रारम्भ कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि उनको इस काम में पर्याप्त सफलता मिली और उन्होंने विश्वभर में अपने मस्तक को ऊंचा कर लिया, किन्तु विज्ञान के मूलजनक उन महर्षियों की संतति होकर भी हम लोग अपने महर्षियों के सद्वचनों का कुछ भी उपयोग नहीं कर रहे है एवं अस्तगत अपने विज्ञान भास्कर के उदय के लिये कुछ भी उद्योग नहीं कर रहे हैं, यह बहुत दुख की बात है।

हमारा आयुर्वेद समस्त जगत के कल्याण के लिये ही है। कहा भी है, नार्थार्थ नापि कामार्थमथ भूतयाम्प्रति अतएव हमें सर्वप्रथम अपने ज्ञान को सर्वांशेन समुन्नत बनाना चाहिए। इसके लिये रस जैसे चिकित्सोपयोगी पदार्थ कहाँ से और कैसे प्राप्त होते हैं, इसके ज्ञान की भी पूर्ण आवश्यकता है। अतएव, आयुर्वेदीय साहित्य से वर्णित पारद विषयक बातों के साथ आजकल के पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कहाँ तक इसकी खोज की है तथा आयुर्वेद से इसका कहाँ तक समन्वय है। प्रथम इसका उल्लेख कर देना आवश्यक है।

संसार में जितने खनिज पदार्थ पृथ्वी से निकलते हैं, उनमें पारद ही एक ऐसा पदार्थ है, जो साधारण तापक्रम पर द्रव रूप में प्राप्त होता है। पारद का स्वरूप पिघली हुई चाँदी के समान होता है, अतएव रसकामधेनु में इसे 'गलद्रौप्यनिभम्' (अर्थात् पिघली हुई चाँदी के समान) कहा है। वैज्ञानिकों ने भी इसीलिये इसको 'क्विक सिल्वर' कहा हैं।

पारद कभी-कभी मुक्तावस्था में या स्वतन्त्र रूप (प्राकृत रूप) में भी अल्प मात्रा में पाया जाता है, परन्तु अधिक मात्रा में हिंगुल से ही निकाला जाता है, जिसके उल्लेख आयुर्वेदीय रस ग्रन्थों में बहुत मिलते हैं। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी हिंगुल से पारद निकालने का उल्लेख मिलता है। 'थियोफास्टस' नामक विद्वान ने ईसा के पूर्व की तीसरी शताब्दी के लगभग लिखा है कि ताम्रचूर्ण और हिंगुल को सिरके के साथ पिस कर उसे उड़ा कर पारद पृथक् करते थे। इसी प्रकार 'डायस्कोरिडीज' नामक विद्वान ने भी लौहचूर्ण के साथ हिंगुल मिलाकर पारद निकाला था। यही विधि ऊँचे दर्जे के हिंगुल से पारद निकालने के लिये अभी भी कहीं-कहीं काम में लाई जाती है।

पाश्चात्य देशों में सर्वप्रथम सन् १५६६ ई. में 'पेरू' देश के 'हुवान्कावेलिका' नामक स्थान में हिंगुल का अस्तित्व विदित हुआ और सन् १६३३ ई. में 'लोपेज-सावेद्रा-बर्वा' नामक व्यक्ति ने पारद निकालने के लिये-'अल्युडल' नामक भट्ठी तैयार की। सन् १६४३ में 'बुस्टामेण्ट्' नामक रसायनशास्त्रवेत्ता ने 'स्पेन' देशीय पारदीय खनिज प्राप्ति के प्रसिद्ध 'अल्माडन' स्थान की खानों में पारद निकालने के लिये यही भट्ठी प्रचलित की और यह भट्ठी दोनों देशों में शताब्दियों तक प्रचलित रही। फिर कालान्तर में नई-नई भट्ठियाँ बन गई, तब यह बन्द कर दी गई।

पारद की प्राप्ति

पारद अनेक प्रकार के रूप रंगवाले विभिन्न जातीय जलज और आग्नेय पाषाण खण्डों में व्याप्त मिलता है। उदाहरण के लिये रेणुशिला, मृत्तिका-पाषाण, सुधा-पाषाण, स्फटिक-शिला आदि जलज और ज्वालामुखी की लावा आदि आग्नेय पाषाणों के नाम लिखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उक्त दोनों के गुण-धर्म से रहित अन्य पाषाण खण्डों में भी पाया जाता है। किन्तु अधिकतर आग्नेय पाषाण-खण्डों के समीप ही मिलता है।

पारदीय खनिजों के जमाव के देखने से ज्ञात होता है कि भूगर्भ में जब आग्नेय पाषाण क्रमश: शीतल होते हुए अपनी द्रवावस्था से घनावस्था में परिणत होने लगता है, उस समय उड़नशील खनिज जो इनके भीतरी भाग में विद्यमान रहते है, वाष्प रूप में उड़ कर ऊपर के समीपवर्ती पाषाण-खडों की दरारों में जमा हो जाते हैं। उनमें पारदीय खनिज भी अन्यतम हैं। इसी कारण आजकल भी उष्ण जल के स्रोतों के समीप पारद पाया जाता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध भू-गर्भ शास्त्री 'रेन्सम' और 'स्पर' नामक विद्वानों का विचार है कि पारद सदा ज्वालामुखी आग्नेय पाषाणों के समीप ही पाया जाता है, परंतु इसमें मतभेद हैं, क्योंकि, 'स्पेन' देश की प्रसिद्ध खान जो अल्माडन नामक स्थान में है, वह भू-गर्भ काल के निर्णयानुसार अत्यन्त प्राचीन है और उसे १३०० फीट की गहराई में पाया जाता है। इसी प्रकार अमेरिका के केलीफोर्निया, न्यू इण्डिया और न्यू अल्माडन की खाने हैं, इनका सम्बन्ध ज्वालामुखी के उद्‌गम से नहीं है। इन खानों में २२०० फीट की गहराई में पारद हैं।

इस प्रकार अनेक मतभेद होने पर भी इस बात पर सभी भू-गर्भविज्ञों का एकमत है कि पारद भू-गर्भ में अन्तराल से उष्ण जल के साथ ही पृथ्वी पर बाहर प्रकट हुआ है। अत: अपने खनिजों के साथ पृथ्वी पर अधिकतर जमा हुआ मिलता है। जिस उष्ण जल के साथ पारद निकलता है, वह जल चाहे वर्षा द्वारा पृथ्वी के भीतर के उष्ण भाग में जाकर पुन: उष्ण स्रोत के रूप में बाहर निकला हो या पातालिक उष्ण स्रोत से निकलकर बाहर आया हो, किन्तु यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि पारद उष्ण जल के साथ ही क्षारीय घोलों में घुला हुआ पृथ्वी की दरारों में या खुले भू-भाग में आकर प्राकृतिक पारद और पारदीय खनिज हिंगुल आदि के रूप में जमा हुए है।

पारद की उत्पत्ति

रसरत्नसमुच्चय आदि रस शास्त्रों में पारद की उत्पत्ति का वर्णन पौराणिक ढंग से अलंकारिक भाषा में कया गया है, जिसका सारांश निम्न है।

गंगा नदी के किनारे महादेव जी के वीर्य से उत्पन्न पारद के सौ योजन लम्बे पाँच कुएँ (कूप) थे, इनमें से दो कुओं के पारद को जो सेवन कर देवता और नाग मृत्यु और बुढ़ापे से मुक्त हो गये, फिर उन्होंने उन दोनों कुओं को मिट्टी ओर पत्थर से भर दिया। शेष तीन कुओं के पारद के सेवन से मनुष्य भी मृत्यु तथा रोग से मुक्त होकर देवताओं के समान आयु और बलवाले होने लगे, वह देखकर दु:खी हुए ईर्ष्यालु इन्द्र ने महादेव जी से प्रार्थना की, जिससे संतुष्ट होकर महादेवजी ने इन्द्र की इच्छानुसार शेष तीन कुओं के पारद को शाप देकर आवरण रूप सात कंचुकादि दोषों से युक्त कर दिया। तब से बिना संस्कार किये पारद के प्रयोग से विशेष लाभ नहीं होता है।

रसरत्नसमुच्चय में मूल श्लोक निम्न प्रकार है। यथा-

शैलेऽस्मिन् शिवयो: प्रीत्या परस्परजिगीषया।
सम्प्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोकक्षोभकारिणी।।
विनिवारयितुं वह्नि: सम्भोगं प्रेषित: सुरै:।
कपोतरूपिणं प्राप्त हिमवत: कन्दरेऽनलम्।।
अपक्षिभावसंक्षुब्धंस्मरलीलाविलोकिनम्।
तं दृष्ट्वा लज्जित: शम्भुर्विरत: सुरतात्तदा।।
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीत: शूलपाणिना।

प्रक्षिप्तो वदने बह्नेर्गंगायामपि सोऽपतत्।।
बहिः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदंदह्यमानया।
संजातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिदायकाः।।
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्भुवि सर्वतः।
शतयोजननिम्नास्ते जाताः कूपास्तु पंच च।।
तदाप्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पंचधाऽभवत्।।

इसका तात्त्विक भाव यह है-

हिमालय पर्वत पर जब जड और चेतन शक्ति का संघर्षण होता है, तब पृथ्वी के नीचे आग्नेय पदार्थ ज्वालामुखी के रूप में प्रकट होने लगते हैं। उस समय तीनों लोक (स्वर्ग, मृत्यु, पाताल)में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला भूकम्प पैदा हो जाता है। जहाँ भूकम्प के बाद ज्वालामुखी का प्रादुर्भाव होता है, वहाँ पर पृथ्वी शतधा विदीर्ण हो जाती है, जिसमें से पहले धूम्र वर्ण की गैस निकलता है। धुआँ निकलने के पश्चात् अग्नि की ज्वाला निकलने लगती है। जब ज्वालामुखी के आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होने लगते हैं, तब उसके अन्तराल के उड़नशील खनिज उष्णजल के साथ मिलकर बाष्प रूप में ऊपर आकर शीत होने पर जम जाते हैं। जो खनिज इस प्रकार निकल कर जमा होते हैं, उनके जमने का क्रम डा. सी.जी. कलिस, प्रोफेसर इम्पीरियल कालेज लन्दन के मतानुसार यह है-

सब के नीचे पातालिक आग्नेय पाषाण (ग्रेनाइट) और उसके ऊपरी भागों में एक तेज जलज, पारद, तुरमुली, पुखराज, बंग और टंगस्टन रहते हैं तथा दूसरी ओर भारी धातु जैसे ताम्र, नाग, यशद, सुवर्ण, रजत और रौप्य माक्षिक आदि रहते हैं। जो लोग ऐसी खानों को खनते हैं, वे प्रायः एक के बाद दूसरे खनिज पदार्थ को निकाल कर लाभ उठाते हैं। यह भी निश्चित है कि जहाँ-जहाँ पारद की खाने हैं, वहाँ पर किसी-किसी स्थान में कुएँ भी मिलते हैं। इटली में ऐसे कुएँ मौजुद हैं। युनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका में भी पारद की खानों में नलाकार कूप मिलते हैं। उन देशों में पारद के कूप २४५० फीट तक गहरे हैं। प्राचीन पारदोत्पत्ति के अन्दर पाँच कूपों का ही वर्णन मिलता है। किन्तु वहाँ १८ कूप इस समय वर्तमान में जिनसे पारद निकाला जाता है।

पारदीय खनिज

१. हिंगुल (सिनावार)- गुड़हल के पुष्प के सदृश लाल हिंगुल पारद निकालने के लिए यह मुख्य खनिज है। इसका रंग तेज लाल होता है। यह पारद और गन्धक का यौगिक है। इसका रंग वैसा ही होता है, जैसा जपाकुसुम (गुड़हल के फूल) का होता है। अतः यह 'रेड सल्फाइड ऑफ मर्कुरी' खनिज ही रस-शास्त्र का हंसपाद हिंगुल है। साधारणतया यह मृत्तिका के ढेले-सा या दानेदार प्राकृत रूप में प्राप्त होता है। कभी-कभी इसके रवे भी पाये जाते हैं। इस चीनी मिट्टी की कसौटी पर घिसने से लाल लकीर खिंचती है।

इसके दो भेद और हैं (१) यकृदाकार और (२) प्रवालाभ (कोरेलीन)। इसमें पहला रसरत्नसमुच्चयोक्त 'दरद' है और दूसरे का एक नाम और है, जिसे 'कोरेलीन अर्टज' कहते हैं। इसका अर्थ मूँग की-सी मिट्टी होता है। इस प्रकार का हिंगुल इटली देश में होता है।

२. चर्मार- यह कृष्णवर्ण का खनिज हिंगुल है। इसका रासायनिक संगठन रक्त हिंगुल के सदृश ही हैं। यह मिट्टी और छोटे-छोटे कणों के रूप में पाया जाता है। इसको चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से काफी लकीर खिंच जाती है। देखने में यह चमकदार होता है। कणों की

अपेक्षा मिट्टीवाले में गुरुता कम होती है। इसी को रस कामधेनु में 'चर्मार: कृष्णवर्ण: स्यात्' इस रूप में वर्णन किया है।

३. हीरकद्युति (केलामल)- यह हीरे के समान द्युति (कान्ति) वाला 'रवादार' पारद का खनिज है। इसे मर्क्यूरस क्लोराइड या केलोमल कहते हैं।

प्राप्तिस्थान- यह प्राकृतिक दशा में 'स्पेन' देश के इंडिया और आल्माडन नामक स्थान में स्वल्प मात्रा में पाया जाता है। यह कण के रूप में ही प्राय: मिलता है। इसके कण बहुत ही जटिल संगठन के रूप में होते हैं। इसका रंग श्वेत या पाण्डु वर्ण का होता है। चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से पीली-सी लकीर खिंच जाती है। भारतीय रस-शास्त्रियों को इन पारदीय खनिजों का पूर्ण ज्ञान था। रस कामधेनु ग्रन्थ में इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन है।

४. प्राकृतिक पारद- यह बहुत अल्प मात्रा में प्राप्त होता है। कभी-कभी इसके कण खनिज हिंगुल के साथ बिखरे हुए पाये जाते हैं। यह स्पेन तथा इटली की खानों में पाया जाता है। पारद प्राप्ति का यह गौण खनिज है।

पारद रजत मिश्रक (सिल्वर मर्करी)- यह प्रकृति में पारद और रजत के भिन्न-भिन्न परिमाण में पाया जाता है। अधिकतर यह चीनी देश की खानों में मिलता है। इसके अतिरिक्त जर्मनी, स्पेन, अमेरिका की खानों में भी मिलता है।

उपरोक्त किसी भी खनिज को पारद के लिये यदि परीक्षा करनी हो, तो निम्न प्रकार से करें। एक काँच की नली में पारदीय खनिजों में से जिसकी परीक्षा करनी हो उसका चूर्ण तथा चूना या खाने का सोड़ा भर कर स्प्रीट-लैम्प पर तपाने से नलिका के शीतल प्रदेश में पारद के कण देखने में आयेंगे। यदि पारद का खनिज पारद और गन्धक का यौगिक हिंगुल हुआ, तो नलिका के शीतल प्रदेश में लाल हिंगुल और पारद दिखाई पड़ेंगे तथा जलते हुए गन्धक की तीव्र गन्ध भी प्रतीत होगी।

पारदीय खनिज-प्राप्ति-स्थान

१. भारतवर्ष- बहुत समय से हमारे देश में भू-गर्भ के अन्वेषण का कार्य नहीं हुआ। अत: यहाँ अब तक पारद या उसके खनिजों की प्राप्ति का कोई निश्चित स्थान ज्ञात नहीं हुआ है। अभी हाल ही में चित्राल (पंजाब में) नदी के रेत में हिंगुल के अस्तित्व का कुछ पता लगा है। यह स्थान सावधानीपूर्वक सुरक्षित कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त लंदन, अफगानिस्तान, अण्दमान, आयरलैण्ड, बर्मा, तिब्बत आदि पार्श्ववर्ती देशों में भी हिंगुल के मिलने की सम्भावनाओं की सूचनायें समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

२. यूनियन ऑफ साउथ अफ्रीका- ट्रान्सवाल जिले में स्फटिक के साथ मिला हुआ हिंगुल पाया जाता है। इसी देश के अन्य स्थानों में गेलेना, लेडसल्फाइड, यशद, स्फटिक रेणुशिला आदि के साथ पाया जाता है। एक स्थान पर प्राकृतिक पारद सुवर्ण के साथ भी पाया गया है।

३. उत्तरी अमेरिका- कनाड़ा के सब प्रान्तों में अने-जातीय खनिज पाषाण और उष्ण खेतों में प्राकृतिक पारद और हिंगुल पाया जाता है।

४. आस्ट्रेलिया- यहाँ हिंगूल तथा प्राकृतिक पारद अनेक स्थानों में पाया जाता है। यहाँ ज्वालामुखी पाषाणों में भी अधिकतर पारदीय खनिज मिलते हैं। पारद के खनिज निकालने के लिये यहाँ अनेक कूप भी खोदे गये हैं, जिनकी गहराई ५० से २४० फीट तक हैं।

५. न्यूजीलैण्ड- यहाँ सोना, चाँदी, माक्षिक आदि खनिजों के साथ अनेक स्थानों में पारदीय खनिज भी पाये जाते हैं। यहाँ एक स्थान पर उष्ण स्रोत में हिंगुल प्राकृतिक गन्धक के साथ अन्य खनिजों के सहयोग में पाया गया है।

इसके अतिरिक्त अल्वेनिया, जेकोस्लोवाकिया, फ्रान्स और कार्सिका, जर्मनी, हंगेरी, इटली, पुर्तगाल, रूमानिया, रूस, स्पेन, एशिया माईनर, चीन, जापान, फारय, अफ्रीका, टयुनिसिया, उत्तरी अमेरिका, होण्डुरास, मेक्सिको, अलास्का, एरिजोना, केलीफोर्निया, कार्न कौण्टी, इडाहो, निवाडा, ओरेगन, लेन, टेक्सास, वाशिंगटन, दक्षिण अमेरिका, डच, गायना, कोलंबिया, इक्वेडोर, पेरू, जुनिन, हुवानुको, वेनेजुएला आदि स्थानों में भी पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं।

पारद के भेद और नाम

अनेक स्थानों में उत्पन्न होने के कारण पारद के प्रधान नाम-रस, रसेन्द्र, सूत, पारद और मिश्रक के भेद से पाँच हैं। ऐसे तो जितने नाम शिवजी के हैं, उतने नाम पारद के भी हैं। क्योंकि शास्त्रों में ऐसा ही उल्लेख है। यथा-

पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः।
चपलः शिववीर्यश्च रस, सूतः शिवाह्वयः।।
रसेन्द्रः पारदः सूतः हरजः सूतको रसः।
मिश्रकश्चेति नामानि ज्ञेयानि रसकर्मसु।।

१. रस- नाम का पारद लाल रंग का होता है। यह सब प्रकार के दोषों से रहित और रसायन है। इसी पारद के सेवन से देवता रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु से मुक्त हो गये।

२. रसेन्द्र- यह स्वभाव से ही निर्दोष, श्याव (काला-पीला), रूखा और अत्यन्त निर्मल होता है। इसी पारद के भक्षण से नागदेव जरा और मृत्यु से छूट गये। इस पारद के सेवन से मनुष्य नाम अजर-अमर न हो जाय इस कारण देवताओं ने इस कूप को मिट्टी से और पत्थर से ढक दिया। तभी से रस और रसेन्द्र ये दोनों पारद मनुष्यों के लिये दुर्लभ हो गये।

३.सूत- नामक पारद कुछ पीला, रूखा तथा दोषों से मिला हुआ होता है। १८ संस्कारों द्वारा शुद्ध होने पर देह ओर लौह सिद्धि के लिए इसका उपयोग होता है।

४. पारद- यह चंचल और सफेद रंग का होता है। आजकल यही एक पारद मिलता है और इसी को शुद्ध करके अनेक प्रकार की दवाओं का निर्माण किया जाता है।

५. मिश्रक- नामक पारद मयूर (मोर) के पंख के समान चमकदार तथा पतलापन लिए हुए होता है। इसको भी १८ संस्कार द्वारा शुद्ध करने पर ही काम में लिया जाता है।

पारद में अन्य धातुओं का समावेश

जिस प्रकार शिवमूर्ति में मग्न हुए योगीराज मोक्ष को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अभ्रक द्वारा जारण किये हुए पारद में सुवर्णादि धातुयें लीन हो जाती हैं। जड़ी-बूटियों के सत्वादिक-क्षार शीशें में लीन हो जाते हैं। इसी प्रकार शीश वंग में, वंग तांबा में, तांबा चांदी में, चांदी सोने में ओर सोना पारद में लीन हो जाता है। जिस प्रकार समस्त जीव (प्राणी) ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार समस्त रसादि धातुएँ पारद में लीन हो जाती हैं।

पारद के दोष

नागो बंगो मलो वन्हिश्चापलयं च विषं गिरिः।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात् पारद स्थिताः।।

पारद में १-नाग (शीशा), २-वंग (रागा), ३-मल, ४-अग्नि, ५-चंचलता, ६-विष, ७-गिरिदोष, ८-असह्यग्निदोष, (अग्नि को न सहन करना, अग्नि पर गरम करने से उड़ जाना) ये आठ महादोष स्वभाव से ही पारद में रहते हैं।

पारद के दोषों के विषय में अनेक मत हैं। 'रसेन्द्र चूड़ामणि' तथा 'रस प्रकाश सुधाकर' आदि ग्रन्थों में पारद के पाँच तथा अन्यों में सात और कुछ ग्रन्थों में तीन नैसर्गिक दोष लिखे गये हैं।

पारद के गुण-दोष का विवेचन

स्वाभाविक पारद और उनके रस-कर्पूरादि यौगिक दाह विष हैं। स्वाभाविक रूप में प्राप्त हुए पारद में अन्य धातुएँ भी मिली रहती हैं, प्राकृतिक पारद में स्थित तीनों दोषों को दिखाने के लिये-रसरत्नसमुच्चय आदि पुस्तकों में लिखा हैं-

विषं वन्हिर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः।

अशुद्ध पारद में विषदोष होने से मारक, वन्हिदोष होने से दाहक और धात्वन्तर के संयोग से-मूल-दोषयुक्त माना गया है।

इन दोनों से युक्त पारद अथवा ऐसे पारदीय यौंगिक सेवन करने से मरण, सन्ताप और मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं।

यह बात आजकल के वैज्ञानिक भी मानते हैं। घोषकृत 'मेटेरिया मेडिका' में पारदप्रयोग के 'एक्यूट टोक्सिनएक्शन' (तात्कालिक पारद-विष-प्रभाव) शीर्षक में लिखा है कि 'पारद के यौगिक विशेष कर रस-कर्पूरादि' (कोरोसिव सबलिमेण्ट), रस पुष्प (केलोमल, सुधानिधि रस) और मुग्ध रस (ग्रेस पाउडर)ये सेवन करने से कोष्ठ में भयंकर प्रभव करते हैं। जिससे वमन, विरेचन, शूल, रक्तातिसार, मूर्च्छा तथा अन्त में मरण भी हो जाता है।'

इसलिए हमारे प्राचीन रसशास्त्रों में पारद के संस्कारों की पूर्ण व्यवस्था की गई हैं, जिससे ये दोष नष्ट हों तथा द्रव्य के संयोग से रोगनाशक व शक्तिप्रद गुण उत्पन्न हों।

पारद का विष-प्रभाव तो स्वाभाविक है। जब खान से पारद निकलता है, उस समय उसके साथ में संखिया और एण्टिमनी भी निकालते हैं। ये दोनों भयंकर विष हैं तथा उड़नशील भी हैं अतः पारद-शोधन करते समय इनकी अशुद्धियों को भी दूर करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। पारद में दो यौगिक दोष नाग और बंग भी माने गये हैं। यथा-

यौगिकी नागवंगौद्वो ती जाड्याध्मानकुष्ठदौ।

यह आधुनिक दृष्टि से भी ठीक है। घोष की 'मेटेरिया मेडिका एण्ड थेराप्युटिक्स' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि पारद में लेड, टिन तथा अन्य धातुओं की अशुद्धियाँ भी मिली रहती हैं।

अन्य धातुओं के सम्बन्ध में लाडर ब्रण्टन् नामक विद्वान ने अपने 'फार्माकोलोजी थेराप्युटिक्स एण्ड मेटेरिया मेडिका' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि अन्य दोषों में-नाग(लेड), आर्सेनिक (संखिया), एण्टिमनी (स्रोतोजन) हो सकते हैं। इन अवतरणों से स्पष्ट है कि पारद में अन्य धातुएँ मिली रहती हैं, अतएव मल-दोष को मानना सर्वथा सत्य है।

पारद के सप्तकंचुक दोष

उपरोक्त दोष के अतिरिक्त पारद में सप्तकंचुक दोष भी माने गये हैं।-

औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्तकंचुकाः।
पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा।।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्तकंचुकाः।

यह सप्त कंचुक दोष क्या है? साम्प्रतिक-रसायन और खजिन विज्ञान के परिशीलन से पता चलता है कि पारद प्रायः सब धातुओं से भारी होता है। जब यह अन्य धातुओं के साथ मिलता है, तब उसे पारदीय मिश्रक कहते हैं। इस अवस्था में पारद के अन्दर मिली हुई धातुएँ प्रायः पारद के ऊपर आवरण के रूप में फैली हुई रहती हैं। इस प्रकार के आवरण को 'कंचुक' कहते हैं।

पारद के कंचुक दोषों का प्राच्य और पाश्चात्य ढंग से 'रसतरंगिणी' में अच्छा वर्णन किया गा है। यथा-

धातवो रससंश्लिष्टाः यदा विष्णुपदामृतम्।
गृह्णन्ति हि तदा तेषां कश्चित् भागोऽवशीर्यते।।
ततश्चूर्णत्वमापन्ना रसमाच्छादयन्ति ते।
तेनावरणसाम्येन धातवः सूतसंगताः।।
कंचुकाख्यां भजन्तीति प्राच्य-पाश्चात्य-सम्मतिः।
कैश्चिदेते कंचुकाख्यां दोषा औपाधिकाः स्मृताः।।

पारद के मिश्रक अत्यधिक दबाव पर वियुक्त हो जाते हैं, अर्थात्- पारद अलग निकल आता है, प्रायः इसी ज्ञान के आधार पर आयुर्वेद के रस-शास्त्रज्ञों ने पारद को शुद्ध करने के लिये अनेक प्रकार के शोधन-विधानों का वर्णन किया है। साधारणतया पारद 'लेटिन गेबर' के लेखानुसार बंग, सुवर्ण, ताम्र, रजत और लोहे के साथ मिलता है तथा इसके बाद लेखकों के मतानुसार पारद, यशद, नाग और बंग धातु के साथ भी मिलता है। लौह के साथ कठिनता से मिलता है।

पारद के संस्कार की आवश्यकता क्यों? अशुद्ध या खनिज पारद के अन्दर विष, वन्हि और मल ये 3 दोष स्वाभाविक रूप से रहते हैं। इन दोषों से युक्त पारद के सेवन से मनुष्य को क्रमशः मरण, सन्ताप और मूर्च्छा होती है। पारद के नाग और वंग-ये दोष यौगिक हैं अर्थात् ये दोष खान में संसर्ग से पारद में उत्पन्न होते हैं। अथवा व्यापारी लोग इन दोनों धातुओं को पारद में मिला देते हैं। इन दोषों से युक्त पारद का सेवन करने से- जाड्य, आध्मान और कुष्ठ पैदा होता है। इसके अतिरिक्त सप्तकंचुक दोष है, ये औपाधिक दोष हैं, ये भूमि, पर्वत और जल से उत्पन्न होते हैं।

पारदीय भूमि से उत्पन्न कंचुक दोष कुष्ठ रोग उत्पन्न करते हैं। पर्वत से उत्पन्न जाड्यता, जल से उत्पन्न कंचुक दोष वातव्याधि और नाग, तथा वंग दोष अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। अतएव, इन दोषों से मुक्त करने के लिए पारद का अष्टसंस्कार द्वारा शोधन करना चाहिए।

पारद संस्कार की संख्या

रसरत्नसमुच्चयादि ग्रन्थों में पारद के १८ संस्कार करने का वर्णन है। किन्तु रस-पद्धति, रूद्रयामल आदि ग्रन्थों के कर्ता रसशास्त्रियों का मत है कि देहसिद्धि (शारीरिक प्रयोग) के लिए पारद के आठ ही संस्कार चिकित्सकों को करना चाहिए। शेष १० संस्कार स्वर्णादि (रसायन, लौह, सिद्धि) कार्य में काम आते हैं। अतएव हम भी यहाँ आठ ही संस्कार का उल्लेख करेंगे। यथा-

१. स्वेदन, २. मर्दन, ३. मूर्च्छन, ४. उत्थापन, ५. पातन (ऊर्ध्वपातन, अधःपातन, तिर्यक्पातन),६. बोधन, ७. नियमन और ८. प्रदीपन।

१. स्वेदन(स्वेद) संस्कार

स्वेदन संस्कार के लिये जितना पारा ले उसका सोलहवाँ भाग प्रत्येक सोंठ, पीपल, मिर्च, सेंधा नमक, राई और चित्रक लेकर इन सब को कूट-कपड़छान कर बारीक चूर्ण कर लें, फिर आर्द्रक और मूली के रस से खरल में उपरोक्त चूर्ण और पारद को घोंटे। यहां तक खरल करें कि गोला बन जाय। फिर चार पर्त किये हुए मजबूत स्वच्छ वस्त्र में भोजपत्र लगाकर गोले को रखकर पोट्टली बाँध कर काँजी भरे हुए मिट्टी के पात्र में इस गोले को (दोला यन्त्र में) लटका कर चूल्हे पर चढ़ा मध्यमाग्नि द्वारा तीन दिन तक स्वेदन करें। यदि काँजी कम हो जाय, तो दुबारा फिर डाल दिया करें। दोला यंत्र की विधि पृष्ठ ६७ पर देखें। स्वेदन के पश्चात् गरम काँजी से धोकर पारद को अलग कर लें। ध्यान रहे, पोट्टली काँजी के मध्य में तथा हाँडी की तली से कुछ ऊपर ही रहनी चाहिए और हाँडी चौड़े मुँह की हो जिससे पोट्टली सुगमता से उसमें आ जाये। चूँकि पोट्टली बड़ी होती है, अतः हाँडी का पेट भी बड़ा होना चाहिए।

स्वेदन संस्कार से लाभ- रस पद्धति, भावप्रकाश तथा रससागर आदि ग्रन्थों के मतानुसार- स्वेदनसंस्कार द्वारा पारद के दोषों को शिथिल किया जाता है। शिथिलता दूर होकर पारद में तीव्रता आ जाती है।

२-मर्दन संस्कार

स्वेदन किये हुए पारद से सोलहवाँ भाग मर्दन संस्कार की औषधियाँ (घर का धुआँ, ईंट का चूर्ण, दही, गुड़, सेंधा नमक ओर राई) प्रत्येक को अलग-अलग लेकर चूर्ण करने योग्य दवाओं का कपड़छान चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण तथा तरल द्रव्यों के साथ पारद को खरल में डालकर तीन दिन तक घोंटे पश्चात् गरम काँजी से धोकर पारद को अलग कर लें।

मर्दन संस्कार से लाभ- मर्दन संस्कार द्वारा पारद का बाहरी मल नष्ट होकर शुद्ध और स्वच्छ हो जाता है।

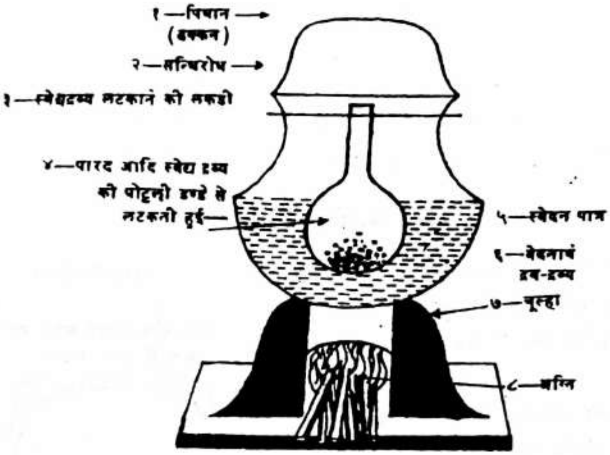
३. मूर्च्छन संस्कार

मर्दन किये हुए पारद को त्रिफला और चित्रकमूल प्रत्येक षोडशांश चूर्ण के साथ खरल में डालकर घृतकुमारी के स्वरस में 7 दिन तक घोंटने से मल-दोष, अग्नि-दोष, विष-दोष नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार पारद उपर्युक्त सभी द्रव्यों के साथ एक साथ अथवा पृथक्-पृथक् घोंटने से मूर्च्छन संस्कार हो जाता है।

मूर्च्छन संस्कार से लाभ- मूर्च्छन संस्कार से मल, वन्हि तथा विष-दोष नष्ट हो जाते हैं।

दोला यंत्र

दोला यंत्र



पारद आदि स्वेदनीय द्रव्यों को चार तह वाले कपड़े में पोट्टली बना कर उसको एक मजबूत फीते या डोरी से बाँध लें। अब एक हाँडी या पतेली लें। इसमें आधे भाग तक लिखित क्वाथ या स्वरस आदि भर दें और पतेली या हाँडी के गले में दोनों तरफ आमने-सामने एक-एक छेद कर उसमें एक-एक मजबूत लकड़ी या लोहे की सलाख डाल दें। अब इस लकड़ी या डण्डे के बीच के भाग में उक्त औषधि को पोट्टली को अच्छी प्रकार बाँधकर नीचे द्रव्य में लटका दें। इस हांडी को चूल्हे (अग्नि) के ऊपर रखकर पकायें और प्रत्यक्ष स्वेदन करें। इस विधि से बनाये यन्त्र को 'दोला यंत्र' कहते हैं।

वक्तव्य- दोला यंत्र में यदि कोई द्रव वस्तु जैसे पारद का स्वेदन करना हो, तो उसे खाली कपड़े में न रखकर प्रथम भोजपत्र में रखें, फिर कपड़े में रख कर पोट्टली बनानी चाहिए। पोट्टली द्रव में इस प्रकार लटकानी चाहिए कि जिससे हाँडी का द्रव पोट्टली के आधा ऊपर और आधा नीचे रहे। इस प्रकार जैसे-जैसे द्रव कम होता जाय, पोट्टली को भी नीचे ढीली करते जायें; जब द्रव भाग सूख जाय तब पोट्टली को निकाल लेना चाहिए। पोट्टली को अच्छी प्रकार स्वेद पहुँचाने के लिये कई वैद्य हाँडी के मुखपर एक सराव या पात्र का विधान (ढक्कन) रखने का विधान करते हैं। इससे स्वेदन अच्छा होता है।-र.त.

४. उत्थापन संस्कार

उपरोक्त मूर्च्छन संस्कार से पारद पिष्टी के रूप में हो जाता है। अतः उसको फिर अपने स्वरूप में लाने के लिए इसका उत्थापन करना चाहिए। यह उत्थापन संस्कार अनेक प्रकार से किया जाता है। यथा-

१. मूर्च्छन संस्कार द्वारा नष्ट-पिष्ट हुए पारद को खरल में डाल कर काँजी के साथ तेज धूप में एक प्रहर तक घोंट कर फिर अच्छी तरह सूख जाने पर चूर्ण जैसा पीस कर चार तह किये हुए वस्त्र से छान कर गर्म जल से धो लें।

२. नष्ट-पिष्ट पारद को खरल में डालकर जम्बीरी नींबू के रस के साथ तेज धूप मे तीन घण्टे तक खरल में घोंट कर वस्त्र से छान कर गरम जल से धो लेना चाहिए। इससे पारद का उत्थापन हो जाता है।

वक्तव्य- वस्त्र से छानने पर जो पारद चूर्ण से अलग हो जाये, उसे अलग करके रख लें तथा औषधियों के चूर्ण में सूक्ष्म कणों के रूप में पारद को उर्ध्वपातन विधि से उड़ाकर पृथक् करके, पूर्व अलग करके रखे पारद में मिला कर गरम जल से धोकर रख लें।

५. पातन संस्कार

डमरू यन्त्र



एक खरल में वह उत्थापित पारद तनी भाग और ताम्र चूर्ण एक भाग डालकर इन दोनों को नींबू के रस से जब तक गोला (पिण्ड) बनने लायक हो जाये, तब तक मर्दन करके गोला बना लें। यदि गोला न बने तो थोड़ा शुद्ध तूतिया डाल कर घोंटें, अवश्य गोला बन जायेगा।

इस गोले को नीचे की हाँडी में रख दें और उस हाँडी के मुख पर नीचे की ओर मुख की हुई दूसरी उतने ही चौड़े मुख की हाँडी को रख कर दोनों हाँडियों की मुखसन्धि को मुल्तानी मिट्टी से बन्द कर सुखा दें। नीचे की हण्डिका (हाँडी) के बाहरी अधोभाग (पेन्दी) में भी मिट्टी लगा देनी चाहिए। फिर इस डमरू यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा कर तीन प्रहर मध्यमाग्नि द्वारा आँच दें। पास में एक पात्र में शीतल जल भर कर रखें। उनमें 4 पर्त किये कपड़े जल में भिगो कर ऊपरी हाँडी के पेन्दे पर शीतलता पहुँचाने के लिए बार-बार बदल कर रखते जाएं। इस तरह नीचे से पारद उड़ कर ऊपर की हाँडी के भीतरी भाग में छोटे-छोटे कणों के रूप में चिपक जाता है। स्वांग शीतल होने पर धीरे से यंत्र को उतार, उसकी सन्धि को खोल कर ऊपरी हाँडी में लगे पारद को ब्रश से साफ कर निकालें, फिर स्वच्छ वस्त्र से छान कर रख लें।

१. स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वाद्बन्धनं हि तत्।
विद्वद्भिर्निर्जितः सूतो नष्टपिष्टः स उच्यते।।

इस तरह अर्ध्वपातन संस्कार से पारद नाग और पंश दोषों से मुक्त हो निर्मल हो जाता है।

नोट- इस ऊर्ध्वपातन विधि से ऊर्ध्वपातन करने के लिए आठ पल (३२ तोला) पारद देना चाहिए, क्योंकि अनुभव से ९ घण्टे की अग्नि से प्राय: आठ पल (३२ तोला) पारद का ही ऊर्ध्वपातन देखा गया है। कभी-कभी ४० तोला भी उड़ जाता है, परन्तु इसमें बारह घण्टे की आँच लगती है, अत: ऊर्ध्वपातन के लिए ३२ तोला ही पारद लेना चाहिए। अधिक मात्रा में पारद का ऊर्ध्वपातन करना हो, तो प्रति बार में ३२ तोला पारद लेकर आवश्यकतानुसार कई बार में कर लेना चाहिए।

अध:पातन यन्त्र

शुद्ध आँवलासार गन्धक तथा पारद समान भाग लेकर जम्बीरी नींबू के रस में एक दिन घोंटकर कौंच के बीज, चित्रक, सहजना, राई और सेंधा नमक प्रत्येक के षोड़शांश चूर्ण के साथ इतना घोंटे कि इसकी पिट्ठी बन जाये, जिससे कि पारद अलग न दिख पड़े, फिर इसे एक हण्डिका के-

अध:पातन यन्त्र (प्राचीन)



भीतरी भाग में लेप कर दें और इस हण्डिका के बराबर मुखवाली एक दूसरी हण्डिका में जल भर दें फिर पारद में लिप्त-हण्डिका को औंधा करके इसका मुख नीचे की जल-भरी हुई हण्डिका के मुख से मिलाकर मुल्तानी मिट्टी से सन्धि बन्द करके (पृथ्वी)जमीन में एक गड्ढा (जिसमें यह यन्त्र पूरा बैठ सके, केवल ऊपरी हण्डिका का आधा भाग मात्र, बाहर दिखाई पड़े) खोदकर गाड़ दें। बाद में ऊर्ध्व हण्डिका के बाहर रहे भाग के चारों तरफ तथा पीठ पर जंगली कण्डों की आँच दें। इस तरफ अग्नि के ताप से पारद नीचे शीतल जल में गिरेगा। स्वाँग-शीतल होने पर सावधानी से ऊपर की हण्डिका हटा नीचे जल में से पारद निकाल सुरक्षित रख लें। यदि एक बार में सम्पूर्ण पारद न गिर सके तो दुबारा फिर इसी प्रकार करें।

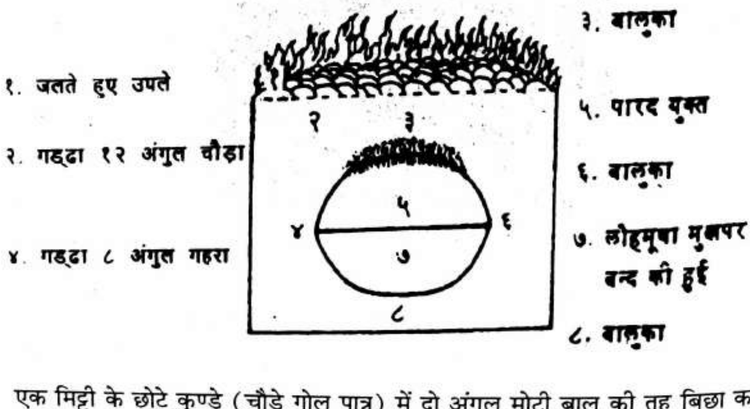
वक्तव्य- नीचे वाली हाँडी के मुख के किनारों से लौह की चलनी (छेददार या जाली लगी) फिट कर देने से पारा युक्त औषध चूर्ण का लेप एकदम से वैसा का वैसा जल में नहीं गिरेगा, चलनी पर गिरकर धीरे-धीरे औषध चूर्ण जलकर उसमें से पारा

अध:पातन यन्त्र (नवीन संशोधित)



अलग होकर जल में गिरेगा और इस प्रकार अध:पातन संस्कार उत्तम ढंग से होता है। ऐसा हमारा अनुभव है।

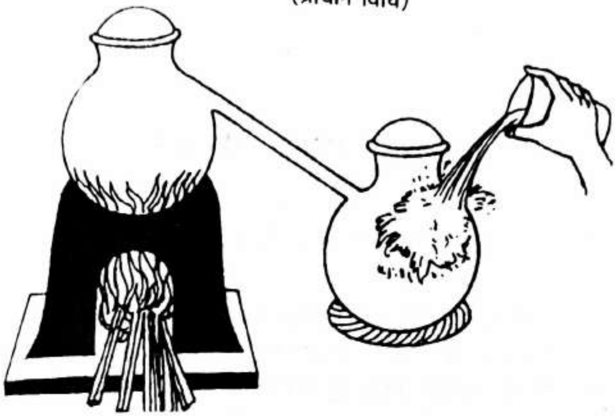
भूधर यन्त्र



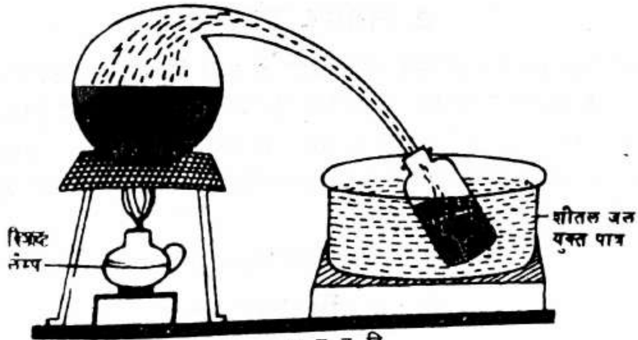
एक मिट्टी के छोटे कुण्डे (चौड़े गोल पात्र) में दो अंगुल मोटी बालू की तह बिछा कर उस पर औषधियुक्त मूषा रखें और इसके चारों तरफ दो अंगुल बालुका आ जाए, इस प्रकार भर कर इसके ऊपर उपले रखकर अग्नि जला दें। इसे 'भूधर यन्त्र' कहते हैं। अथवा जमीन में एक गड्ढा खोदकर उसमें दो-तीन अंगुल बालुका भर दें, इसके ऊपर पारद आदि पाच्य औषधियुक्त मूषा रख दें। फिर इस मूषा के चारों तरफ ऊपर नीचे दो अंगुल बालू भर ऊपर से उपलों की अग्नि जलावें।

तिर्यक् पातन यन्त्र

(प्राचीन विधि)



तिर्यक् पातन यन्त्र (नवीन विधि)



कू. प. न. वि.

समान भाग धान्याभ्रक और पारद को काँजी में पीस कर पिष्टी बना लें। फिर इस पिष्टी को एक बड़े घड़े में रख दें और एक दूसरे घट में जल भर दें। इन दोनों घड़ों के मुख को सराव से बन्द कर मुल्तानी मिट्टी से सन्धि बन्द कर दें। फिर पारदयुक्त घट को चूल्हे पर रख इसके पाँजर(पार्श्व) में चूल्हे से नीचे जल भरा हुआ घट रख दें। पारदवाले घट की गर्दन से कुछ नीचे एक छेद बना बाँस की या और किसी धातु लोहे आदि की नली लगा दें, किन्तु नली ज्यादा भीतर प्रविष्ट न करे इसका ध्यान रहे। उस नली के अग्र भाग को जलवाली घट के पार्श्व में छेद कर प्रवेश कर दें। फिर मुल्तानी मिट्टी से अच्छी तरह सन्धि बन्द कर देने के बाद आँच दें। प्राय: नऊ घण्टे तक की आँच देने से ३२ तोला पारद उड़कर आ जाता है। जल से भरा हुआ घड़े के ऊपर शीतल जल में कपड़ा भिंगोकर लपेटकर उस पर जल बराबर डालते रहें, जिससे घड़ा गर्म न होने पावे। (यह प्राचीन विधि है)

वक्तव्य- लोहे की बोतल (जिसमें पारद भर कर विदेशों से आता है) के मुख के भीतरी भाग में चूड़ी निकाल कर उसमें पारदपिष्टी भरकर बोतल के मुख में पाईप को झुका कर बनाया हुआ दो फुट लम्बाई का बेन्ड फिट करके बेन्ड के दूसरे मुख से जल भरे पात्र को लगा दें। पश्चात् उस बोतल को चूल्हे पर रखकर ८-९ घण्टे अग्नि देने पर पारद का तिर्यक पातन होकर पारद जल-पात्र में आ जाता है।

६. बोधन (रोधन) संस्कार

उक्त प्रकार से स्वेदन, मर्दन, उत्थापन तथा पातन संस्कारों से संस्कृत किया हुआ पारद शक्तिहीन हो जाता है, अतः इसमें पुनः शक्ति लाने के लिये ही यह बोधन संस्कार किया जाता है। यथा-

एक हांडी में पारद को रखकर ऊपर से नींबू के रस में पिसे हुए सैन्धव नमक से ढक दें, और कुछ जल डालकर एक ढक्कन मुख पर रख मुख बन्द कर सन्धि लेप कर दें, पश्चात् इसे भूमि के बराबर इसका ऊपर का भाग रहें इस प्रकार गड्ढे में रखकर इसके ऊपर लघुपुट देने से 'बोधन संस्कार' हो जाता है, तथा पारद शक्ति-सम्पन्न हो जाती है।

अन्य विधि- चार तह के मोटे कपड़े में भोजपत्र लगाकर उसमें पारद की पोट्टली बना कर दोला यन्त्र में सैंन्धव लवण मिश्रित जल से स्वेदन करने से भी पारद का बोधन ठीक हो जाता है।

७. नियमन संस्कार

बोधन संस्कार द्वारा बलवान पारद की चंचलता दूर करने के लिये 'नियमन संस्कार' किया जाता है। इसका प्रयोजन सिर्फ पारद की चंचलता दूर कर अग्निस्थायी करना है। इसके लिये-

सपाक्षी, इमली, बाँझ, ककोड़ा, भाँगरा, धतूरा और नागरमोथा के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ एक दिन स्वेदन करने से पारद की चंचलता दूर होकर पारद अग्निस्थाई बन जाता है, ऐसा रासायनिकों का मत है।

वक्तव्य- सपाक्षी आदि औषधियों का क्वाथ पारद से सोलह गुना लेना चाहिए।

और ८. दीपन संस्कार

काँजी और चित्रकमूल क्वाथ से दोला यन्त्र द्वारा तीन दिन तक स्वेदन करने से पारद का स्वेदन संस्कार हो जाता है। इस संस्कार से पारद की जारण-शक्ति बढ़ जाती है।

वक्तव्य- दीपन संस्कार करने के पश्चात् पारद को जम्बीरी अथवा कागजी निम्बू के रस में एक सप्ताह घोंट कर रखने से वह और अच्छा दीप्त हो जाता है। ऐसा हमारा अनुभव है।

पारद के ८ दोषों को दूर करने का सरल उपाय

१. नागदोष के लिये- पारद के १६ वाँ भाग ऊन की भस्म, ईंट का चूर्ण, हल्दी का महीन चूर्ण, गृहधूम प्रत्येक पृथक्-पृथक् लेकर तप्त खरल में नींबू का रस डालकर एक दिन तक बराबर मर्दन करें।

इसके लिये खरल मजबूत (लोहा अथवा पत्थर का) होना चाहिए। मर्दन करने के पश्चात् पारद को काँजी से धो दें, इस तरह से नागदोष दूर हो जाता है।

२. वंग-दोष के लिये- इन्द्रायण तथा अंकोठ के जड़ की छाल के षोडशांश चूर्ण के साथ पारद का मर्दन करने से वंग-दोष नष्ट होता है।

३. मल-दोष के लिये- अमलतास के गुदे के साथ पारद को मर्दन करने से मल-दोष नष्ट होता है।

४. वन्हि-दोष के लिये- चित्रक की जड़ की छाल के चूर्ण के साथ पारद को घोंटने से वन्हि-दोष नष्ट होता है।

५. चांचल्य-दोष के लिये- काले-धतूरे (पंचांग) का चूर्ण और पारद दोनों को एकत्र मर्दन करने से चांचल्य-दोष नष्ट होता है।

६. विष-दोष के लिये- त्रिफला चूर्ण और पारद दोनों को एकत्र घोंटने से विष-दोष नष्ट हो जाता है।

७. गिरी-दोष के लिये- गोखरू का चूर्ण और पारद को एकत्र मर्दन करने से असह्याग्नि दोष नष्ट होता हैं।

वक्तव्य- क्रम संख्या २ से ८ तक के दोष नष्ट करने के लिये प्रतिदोष नाशनार्थ औषधि चूर्ण षोडशांश के साथ उचित मात्रा में घृतकुमारी स्वरस डाल कर पारद का मर्दन करना चाहिए तथा पश्चात् कांजी से धोकर रखना चाहिए। कुछ आचार्यों के मतानुसार यह क्रम प्रति दोष के हिसाब से सात-सात बार करना चाहिए एवं प्रति बार प्रक्षालन कर नया चूर्ण और घृतकुमारी रस डालना चाहिए।

अशुद्ध पारद के लक्षण

आजकल बाजार में बिकने वाला पारा कई विशेष धातुओं से मिश्रित रहता है। यदि आप इसकी परीक्षा करना चाहें, तो किसी साफ चीनी या काँच के बरतन में रख कर तिरछा करें, तो पीछे से पारद के छोटे-छोटे कण की लकीर-सी-दिखाई पड़ेगी अथवा इसे वात-प्रदेश में हिलावें तो पारद के ऊपरी भाग में काले-से चूर्ण का मलाई की तरह जम जायगी, जिसमें पारद के छोटे-छोटे कण आच्छादित हो जाएँगे। यही कंचुकी दोष माना गया है। प्राय: अशुद्ध पारद का स्वरूप धुएँ के समान पाण्डु और चित्र-विचित्र वर्ण का होता है, यथा-

धूम्रः परिपाडुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ।

अत: उक्त प्रकार के पारद का प्रयोग औषध या रस कर्म में नहीं करना चाहिए। पारद को अन्य मिश्रित धातुओं से मुक्त करने के लिये पातन संस्कार करना बहुत उपयोगी है। इसमें आपको एक विचित्र बात देखने में आयेगी- यदि पारद में नाग या वंग धातु का सम्मिश्रण थोड़ा भी होगा, तो तीव्र आँच देने पर भी बहुत कम मात्रा में ऊपर उड़ता है।

रस-ग्रन्थों में विष, वन्हि, मल, नाग, वंश आदि दोषों के अतिरिक्त चापल्य, गिरि दोष और असह्याग्नि-ये महादोष भी माने गये हैं। ये दोष अवश्य विचारणीय हैं। चपल (विस्मथ धातु) कभी-कभी पारद के साथ मिला रहता है। चपल के साथ पारद के द्रवांक (मल्टिंग प्लाइण्ट) को घटाने के लिये मिलाते हैं, अर्थात् पारद मिलाने से चपल शीघ्र ही मन्द अग्नि पर भी पिघल

जाता है और 'स्टीरियो' टायपिंग के व्यापार में आजकल लगाया जाता है। ऐसा पारद यदि काम में (औषधि कर्म में) लाया जाय, तो उसमें चपल धातु की अशुद्धि रहना अवश्यम्भावी है।

इसी प्रकार गिरी-दोष है, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। तथापि ध्यान रहे कि संखिया (आरसेनिक), सुरमा (एण्टिमनी) पारद खनिजों के साथ ही अधिकांश निकलते हैं, और ये उड़नशील भी है अतः इन दोषों को गिरि-दोष मानना ठीक है।

कुछ ऐसे भी पारदीय खनिज हैं, जो ऑक्सिजन और नमक की गैस (क्लोरिन) के अत्यल्प मात्रा में पाये जानेवाले यौगिक हैं, और अपेक्षाकृत अत्यन्त उड़नशील हैं। सम्भवतः इन्हीं यौगिकों को देख कर पारद में असह्याग्नि दोष गौण रूप में माना गया है।

शुद्ध पारद के लक्षण

शुद्ध पारद श्वेत (चाँदी जैसे) वर्ण का एवं चमकदार होता है। यह साधारण तापक्रम पर द्रव-रूप में रहता है। यदि इनका आप किसी शीशी के अन्दर रख कर हिलाएँगे तो छोटे-छोटे गोल-गोल कण बन जायेंगे, यदि पात्र से पृथ्वी पर फैला देंगे तो भी छोटे-छोटे कण के रूप में फैल जायेगा। इन फैले हुए कणों को इकट्ठा कर शीशी में आसानी से भर सकना कठिन हैं। पारद अत्यन्त शीतांग पर सफेद राँगे जैसा ठोस हो जाता है। किसी-किसी का कहना है कि इतना सख्त हो जाता है कि चाकू से कटता है, न जाने यह कहाँ तक सत्य है, द्रवावस्था में पारद की पतली सतह पारदर्शक होती है तथा उसमें नीले रंग की आभा दिखाई देती हे। आयुर्वेद-शास्त्र में शुद्ध पारद के लक्षण भी यही हैं। यथा-

अन्तः सुनीलो बहिरूज्ज्वलो यो मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः।

थोड़ा-सा पारद एक काँच या चीनी के बर्तन में रखकर उस पर ऊपर से पानी की तेज धारा गिराई जाये, तो पारद के बुल-बुले पानी की सतह पर तैरते दिखाई देते हैं। उसमें नीली आभा दिखाई देती है तथा वे फूट कर पुनः पारद के रूप में बदल जाते हैं। -ख.वि.

गन्धक

आयुर्वेदीय रसायन-शास्त्र में पारद के बाद गन्धक का ही नंबर आता है। वास्तव में रासायनिक चिकित्सा की सृष्टि (रचना) के लिये इन दोनों (पारा, गन्धक) का संयोग होना परमावश्यक है। इनके संयोग के बिना आयुर्वेदिक रासायनिक चिकित्सा चल ही नहीं सकती है। ये दोनों पृथक् रहने पर उतना कार्य नहीं कर सकते, जितना एक जगह मिलकर अद्‌भुत कार्य करते है। इसी से पारद का शिव वीर्य एवं गन्धक का पार्वती रज नाम सिद्ध होता है। अतएवं, पारद के बाद गन्धक का विवरण लिखा जाता है।

गन्धक के भेद और नाम

गन्धक तीन प्रकार का होता है। इनमें पहला शुक्र (तोते) की चोंच के समान लाल होता है, यह उत्तम होता है। दूसरा पीत वर्ण का होता है, यह मध्यम है। तीसरा श्वेत वर्ण का होता है, यह अधम है। कुछ लोगों का मत है कि गन्धक चार प्रकार (श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण) का होता है। इनमें सफेद गन्धक को खटिक कहते हैं, क्योंकि वह खड़िया के समान होता है, और यह लेप तथा मारण के काम में आता है और जो गन्धक पीले वर्ण का होता है उसे आँवलासार गन्धक कहते हैं। इसी का एक दूसरा भेद हैं। यह रस-रसायन कार्य के लिए श्रेष्ठ

होता है। जो गन्धक तोते की चोंच के समान होता है, वह सोना, चाँदी आदि धातु निर्माण में काम आता हैं तथा जो काले वर्ण का गन्धक होता है, वह जरा और मृत्यु को नष्ट करनेवाला होता है। वर्तमान काल में लाल तथा काला गन्धक मिलना अति दुर्लभ हो गया है।

गन्धक के नाम- गन्धक, गन्धपाषाण, शुक्रपिच्छ, सुगन्धक (सुन्दर गन्धवाला), शुल्वरिपु (यह तांबे को मारता हैं, अत: इसका नाम तांबे का शत्रु है), पामारि (पामा खुजली को नाश करनेवाला), नवनीतक जिसे आजकल नौनियाँ या नुनियाँ गन्धक भी कहते हैं।

गन्धक के दोष- अशुद्ध गन्धक के सेवन से ताप, कुष्ठ, भ्रम और पित्त के रोग उत्पन्न होते हैं, तथा रूप, बल, वीर्य और आरोग्य का नाश होता है। अत: शुद्ध करके ही इसका उपयोग करना चाहिए।

नोट- अक्सर देखा जाता है कि प्राय: गन्धक में छोटे-छोटे शिलाकण तथा मिट्टी आदि के भी कण मिले रहते हैं, अत: गन्धक जब कड़ाही में पिघल जाय, तो दूध के ऊपर एक स्वच्छ कपड़ा बाँध दें। उस कपड़े पर गन्धक डालें, जिससे छन कर सिर्फ गन्धक मात्र ही दूध में पड़े और कंकड़-पत्थर सब ऊपर कपड़े में ही रह जायें। इसी प्रकार भृंगराजस्वरस या त्रिफला क्वाथ से भी गन्धक का उत्तम शोधन होता है। कुछ आचार्यों के मतानुसार तीन या सात बार इस प्रकार शोधन करने से विशेष शुद्धि होती है।

शुद्ध गन्धक के गुण- शुद्ध गन्धक रसायन में श्रेष्ठ और रस में मधुर तथा पाक में कटु होता है। यह खोज, कुष्ठ और विसर्प (फैलनेवाली खुजली) को दूर करता है। स्वभाव से उष्ण और अग्नि-दीपक और पाचक है। आँव को दूर करता है तथा उसका शोषक है और दुष्ट मलादि को निकाल कर शुद्ध करनेवाला एवं विनाशक भी है। पारद के लिए वीर्य-प्रद है अर्थात् उसकी रोगनाशिनी शक्ति को बढ़ाता है। कृमि और प्लीहावृद्धि नाशक है। सत्वरूप (जैसे अन्य धातुओं से सत्त्वं निकाले जाते हैं, वैसे इसका नहीं, यह तो खुद ही सत्त्वात्मक है) और वीर्यवर्द्धक है।

गन्धक की गन्ध दूर करने का उपाय- गन्धक के चूर्ण को 8 गुने दूध में इतना पकावें कि वह गाढ़ा हो जाय, फिर उसमें हुलहुल का रस डाल कर धीरे-धीरे पकाने के बाद उसे त्रिफला के काढ़े में डाल कर गर्म जल से धोकर रख लें।

गन्धक के कुछ विशिष्ट प्रयोग

गन्धन का तेल बनाने की विधि-शुद्ध गन्धक के चूर्ण में सोलहवाँ भाग त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च) चूर्ण मिलाकर तेल में बारीक घोंट कर एक बालिश्त भर चौकोर स्वच्छ कपड़ा बिछा कर उस पर वर्तिका को धागे से लपेट दें। अब इस बत्ती को संड़सा या चिमटी से पकड़ कर अग्नि में जलावें ओर नीचे एक काँच का पात्र रख दें। जिससे गन्धक का तैल टपकता रहे, बत्ती जल जाने पर पात्र में जितना तैल हो उसे छान कर अच्छी शीशी में रख लें। इसे 'गन्धकद्रुति' भी कहते हैं।

गुण और उपयोग- इस तैल की 3 बूँद और रस सिन्दूर 3 रत्ती लेकर अंगुली से पान में मिलाकर सेवन करें तो अग्नि प्रदीप्त होती है। तीव्र क्षय, पाण्डु, कास और श्वासरोग नष्ट होते हैं। शूल, दु:साध्य ग्रहणी और आमाजीर्ण भी नष्ट हो जाते हैं।

कुष्ठ रोग में- शुद्ध गन्धक और काली मिर्च का चूर्ण समान भाग लें और गन्धक से षड्गुण त्रिफला लेकर इसमें मिला कर एकत्र घोंट लें। फिर इस चूर्ण को अमलतास की जड़ के क्वाथ या स्वरस के साथ सेवन करने से कुष्ठ नष्ट होता है। यदि इस औषध सेवन काल में अमलतास की जड़ को चन्दन की तरह पानी में घिसकर बराबर घावों पर लेप करते रहे, तो बहुत शीघ्र कुष्ठ व्रण को आराम होता है।

सेहुआँ में- गन्धक और यवक्षार को सरसों के तेल में मिला कर लेप करने से सिध्म (सेहुआँ) नष्ट होता है।

गण्डमाला में- पारा, गन्धक, आक का दूध, सेंधा नमक ओर हल्दी पीस कर लेप लगाने से गण्डमाला की गाँठ बैठ जाती है।

पामा (कण्डू) में लेप- गन्धक को महीन पीस कर सरसों के तेल में मिलाकर लेप करने से पामा (कण्डू) नष्ट हो जाती है।

अथवा- शुद्ध गन्धक 4 रत्ती को 3 माशा त्रिफला चूर्ण में मिलाकर सुबह-शाम ठण्डे जल के साथ २१ या ४१ दिन सेवन करें।

हिक्का में- शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान भाग मे लेकर ताँबे के बर्तन में घोंट कर कज्जली बना पान के रस और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार की हिक्का नष्ट हो जाती है।

प्रमेह पर- शुद्ध गन्धक १ रत्ती को ४ रत्ती गुड़ मिला कर जयन्ती-रस के साथ सेवन करें, तो प्रमेह रोग नष्ट होता है।

पामा तथा विचर्चिका पर- शुद्ध गन्धक ४ रत्ती को एक माशा मिश्री मिला कर पावभर धारोष्ण गो-दुग्ध के साथ सेवन करने से विचर्चिका तथा पामा नष्ट होती है। पूर्ण लाभ के लिए २१ दिन या ४१ दिन तक सेवन करना चाहिए।

प्रमेह-पिड़िका पर- ४ रत्ती शुद्ध गन्धक १ माशा गुड़ के साथ मिला कर खाने से प्रमेह-पिड़िका नष्ट होती है।

फोड़े फुन्सियों पर- ३ माशा शुद्ध गन्ध के महीन चूर्ण को २।। तोला कडुवे (सरसों के) तेल में मिलाकर धूप में रख दें। एक दिन बराबर धूप लगने दें। दूसरे दिन इस तेल की मालिश घाम(धूप) में बैठ कर करें। इसी तरह एक सप्ताह तक करने से पुरानी-से-पुरानी फुन्सियाँ, रक्त-विकार आदि नष्ट होकर शरीर सुन्दर बन जायेगा।

मूत्रकृच्छ्र- शुद्ध गन्धक, जीरा और बड़ी कटेली के बीज क्रमशः १,२,३ रत्ती की मात्रा में लेकर महीन चूर्ण कर सहिजन के स्वरस के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

असाध्य आमवात पर- शुद्ध गन्धक १ तोला, सोंठ २ तोला, निशोथ ३ तोला इन सबका बारीक चूर्ण कर प्रातः सायं १ गोली गर्म जल के साथ सेवन करने से ३ महीने में आमवात दूर हो जाता है।

पाण्डु रोग पर- शुद्ध गन्धक ३ माशा, तुत्थ भस्म १ रत्ती दोनों को एकत्र मिला कर मधु के साथ देने से पाण्डु रोग नष्ट होता है। इसी तरह ३ रत्ती लौह भस्म के साथ देने से कुष्ठ रोग दूर हो जाता है।

शोषज्वर पर- गन्धक, त्रिफला और भाँगरा- इनका समभाग चूर्ण कर तीन-तीन माशे की मात्रा में मधु और घृत के साथ खाने से शोषज्वर नष्ट होता है।

वक्तव्य- गन्धक उष्णवीर्य होता है, अत: इसके सेवन काल में तैल, गुड़, लाल मिर्च, लहशुन, राई, गरम मसाला आदि उष्ण स्वभाव के पदार्थों का परहेज करना चाहिए तथा दूध, घी, चीनी, गेहूँ की दलिया, चावल या जौ की रोटी खाना लाभदायक है।

हिंगुल (सिंगरफ)

हिंगुल के पर्याय तथा भेद- हिंगुल, म्लेच्छं, हंगुल, चर्मारबन्धनम्, चूर्णपारद, दरद, कुरुविन्दं, चीनपिष्टं, लघुकन्दरसं, चर्मारगन्धिका, रत्नरागकरी, हंसपाद, चर्मार:, सुपीतक:, शुकतुण्डक: इत्यादि पर्यायवाची शब्दों को देखने से ज्ञात होता है कि भारतेतर देशों से व्यापारी लोग पारद हिंगुल या तत्सम्बन्धी अन्य खनिजों को यहां लाते थे। सिंगरफ जहाँ से आया और जिस तरह के कार्य में उपयुक्त हुआ, या जिस पात्र आदि में रखा गया उसके संस्मरण के लिये वैसा ही नाम रख दिया गया। उदाहरण के लिये 'म्लेच्छ' शब्द को ही लीजिए। यह शब्द सदा से यवनों के लिए ही व्यवहृत होता आया है। यवन (ग्रीक) लोग बहुधा हमारे देश में आकर यहाँ की कला-कौशल सीखकर चले जाते थे, इसके अनेक प्रमाण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। अस्तु, पारद और उसके अन्य खनिज भारतेतर देशों से आया करते थे, अत: हिंगुल के लिये 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार रोम देश से आनेवाले हिंगुल को हंसपाद रूपी हिंगुल कहा जाता है और यह सबसे अच्छा माना जाता है।

इसी प्रकार चीन से चूर्ण रूप में हिंगुल आता था, अत: उसका नाम 'चीनपिष्ट' रखा गया है। उस जमाने में व्यापारी लोग चमड़े के थैलों में भर कर हिंगुल लाया करते थे। अत: 'चर्मरगन्धिका' नाम रख दिया गया। काँच के पीछे हिंगुल की कलई कर दी जाती है, अत: 'रत्नरागकरी' नाम रखा गया।

चीन में अब तक हिंगुल को पीस कर ही व्यापार किया जाता है। 'दरद' शब्द स्थानवाची है। सर पी. सी. राय महोदय ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'हिस्ट्री ऑफ हिंदू केमिस्ट्री' में लिखा है कि हिंगुल काश्मीर के समीपवाले 'दरिस्तान' से आता था, अत: इसका नाम 'दरद' रखा गया, किन्तु 'सर्वे आफ इण्डिया' नामक पुस्तक में इस स्थान का वर्णन देखने में नहीं आता। यह स्थान अरब सागर और फारस की खाड़ी में है, जिसको, 'दोरदुर' कहते हैं, यह दो पहाड़ियों के बीच का तंग समुद्री-मार्ग है। स्वभवत: इसी मार्ग से यवन लोग भारत में हिंगुल लाया करते थे। अत: संस्कृत में 'दोरदुर' का शुद्ध नाम 'दरद' रखा गया।

कृष्ण वर्ण के हिंगुल को 'चर्मार' कहते हैं। पीले रंग वाले को 'सुपीतक', लाल रंगवाले को 'हंसपाद' और 'शुकतुण्ड' नाम दिये गये हैं। पारदीय खनिजों के वर्णन में नवीन मतानुसार सब खनिजों का वर्णन किया गया है, परन्तु सर्वत्र आधुनिक ग्रन्थों में आजकल मुख्य खनिज में रक्त हिंगुल का ही वर्णन पाया जाता है और अब चूँकि यह भी दुर्लभ हो गया है, इसीलिए खनिज और कृत्रिम का भेद समझना भी कठिन हो गया है, परन्तु कुछ वैद्यों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ है और उन्होंने अपनी पुस्तकों में इसका समावेश किया है। यथा-

जपाकुसुमवर्णाभः पेषणे सुमानोहरः।
महोज्ज्वलो भारपूर्णः हिंगुलः श्रेष्ठ उच्यते।।
प्रथमः खनिजोऽन्यस्तु कृत्रिमो हिंगुलो मतः।
खनिजः खनिजाज्जातः कृत्रिमो रसगन्धजः।।

– रसतरंगिणी

अनेक प्राप्त रस-ग्रन्थों के अनुशीलन और अर्वाचीन शास्त्रों के अध्ययन से यह पता चलता है कि प्राचीन काल में खनिज हिंगुल ही व्यापार में तथा व्यवहार (प्रयोग) में काम आता था। पारद और उसके खनिज अरब, चीन, जापान आदि देशों के व्यापारी स्थल या जल मार्ग से लाकर यहाँ पर बेचा करते थे, परन्तु म्लेच्छों के आक्रमण काल में बाहरी व्यापार अधिकांश में बन्द हो गया। ऐसी स्थिति में अपने देश (भारतवर्ष) के अन्दर ही रासायनिक ढंग से हिंगुल बनाने का प्रचार हुआ।

स्त्रियाँ हिंगुल (इंगुर-सिंदूर) की बिन्दी लगा कर अपने को सौभाग्यवती समझती हैं तथा यह बिन्दी सौभाग्य का चिन्ह भी मानी जाती है आजकल भी इंगुर (हिंगुल) के नाम से यह प्रचलित है। इसे 'गिरि सिन्दूर' भी कहते हैं। रसरत्नसमुच्चय में लिखा है–

'महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तः स्थितो रसः।
शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरिसिंदूर-संज्ञया।।'

परन्तु दुःख है कि आजकल गिरि-सिन्दूर शब्द नाग सिन्दूर (लेडपेराक्साइड) के लिए व्यवहार होने लगा है और जहाँ-जहाँ सिन्दूर का व्यवहार होता है, वहाँ-वहाँ यही नाग सिन्दूर व्यवहार किया जाता है, जो भ्रमात्मक मालूम पड़ता है। अतः जहाँ गिरि सिन्दूर का प्रयोग होता है। वहाँ इंगुर-सिन्दूर (हिंगुल का बना सिन्दूर ही डालें तथा जहाँ सिर्फ सिन्दूर ही कहा हो वहाँ नाग सिन्दूर) डालें। नाग सिन्दूर बनाने की व्यवस्था 'आयुर्वेद प्रकाश' में निम्न प्रकार है।–

भू-भूजंगमगस्तिंच पिष्ट्वाहेः पत्रमादिहेत्।
हण्ड्यामग्नौ द्रवीकृत्य वासापामार्गसंभवम्।।
क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांश गुरूक्तितः।
प्रहरं पाचयेच्चुल्यां वासादर्व्या विघट्टयन्।।
चूर्णीभूतं पिधायाथ कुर्यादग्निसमं पुनः।
तत उद्धृत्य तच्चूर्ण शुद्धया शिलयान्वितम्।।
वस्वंशयाथ तत्सर्वं वासानीरैर्विमर्दयेत्।
पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तद्द्रवेण विमर्दयेत्।।
पत्रं सप्तपुटर्नागः सिन्दूराभो भवेद्ध्रुवम्।।

आजकल रक्त वर्ण का 'लेडपेराक्साइड'(नाग सिन्दूर) बहुधा वार्निश के काम में आता है। अतः चिकित्सकों को इस विषय में सावधान रहना चाहिए।

कृत्रिम हिंगुल बनाने का प्रचार रसरत्नसमुच्चयासदि ग्रन्थों के संग्रह के बाद हुआ है, क्योंकि उसमें या उसके समकालीन ग्रन्थों में भी इसके निर्माण-प्रक्रिया का वर्णन नहीं मिलता। सर

पी.सी. राय ने भी ऐसा ही लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि भावमिश्र के बाद यह प्रक्रिया चालू हुई है।

'भावप्रकाश' में रसकर्पूर बनाने का विधान है, किन्तु हिंगुल-निर्माण-विधि का कहीं उल्लेख नहीं है। अस्तु, आजकल समस्त देश में प्राय: कृत्रिम हिंगुल का ही व्यवहार हो रहा है।

आजकल बाजार में दो प्रकार के कृत्रिम हिंगुल पाये जाते हैं। एक को 'कठा' जो कि तोड़ने में कड़ा होता है और दूसरे को 'रूमी' कहते हैं, जो कि तोड़ने में मृदु होता है। पहले यह रोम देश से आता था, किन्तु आजकल 'रूमी' सिंगरफ सूरत (गुजरात) में भी बनता है। सूरत में इसके बड़े-बड़े कारखाने भी हैं।

दूसरा 'काठा' बंगाली कहलाता है। सुना जाता है कि इसका कारखाना मुर्शिदाबाद (बंगाल) में है, किन्तु सबसे अधिक अमेरिका, इग्लैण्ड और जर्मनी आदि पश्चिमी देशों में आकर यहाँ बिकता है। सूरत के वैद्यों का कहना है कि यहाँ के सिंगरफ व्यापारी विलायती ढंग पर गन्धक के तेजाब से हिंगुल बना कर बड़ा लाभ उठा रहे हैं। सूरत के प्राचीन वैद्य अपने हित के लिए इसका निर्माण स्वयं करते थे।

भारतीय हिंगुल बनाने की विधि- अशुद्ध पारद १ तोला, गन्धक ४ तोला लेकर दोनों को लोहे की कड़ाही में डाल कर थोड़ी देर तक मन्द-मन्द आँच से पकावें, बाद में पारद की अपेक्षा दशमांश मैनशिल का चूर्ण मिलाकर लोहे की करछी से चलाते रहें। स्वाँग-शीतल होने पर उतार लें। यह कृष्ण वर्ण का एक ढेला-सा बन जाएगा। फिर इसके छोटे-छोटे टुकड़े कर आतसी शीशी में भरकर उस पर एक अंगुल कपड़मिट्टी कर दें। उसे छाया में सुखाकर रस सिन्दूर की तरह बालुका यन्त्र में एक दिन मन्दाग्नि से पाक करें। बाद में मृदु-मध्यम और तीक्ष्ण अग्नि दें, इस तरह पाँच दिन तक लगातार अग्नि देते रहें। स्वाँग-शीतल होने पर सावधानी से शीशी तोड़ कर निकाल लें। बस, सिंगरफ तैयार हो गया। इसको रसायन के काम में लावें। -आ.प्र.

हिंगुल से पारद निकालना- हिंगुल से पारद निकालने की कई विधियाँ है। कोई 'विद्याधर यन्त्र' से, कोई 'डमरू यन्त्र' से और कोई 'कन्दुक यन्त्र' द्वारा पारद निकालते हैं। डमरू यन्त्र का वर्णन पारद प्रकरण में पृष्ठ ६८ पर हो चुका है। यहाँ विद्याधर यंत्र द्वारा पारद निकालने का विधान लिखा जाता है।

एक मजबूत चौड़े मुख की हाँड़ी में हिंगुल का चूरा रख, दूसरी हाँड़ी को उसके मुख पर ढँककर, सन्धि बन्द कर, ऊपरवाली हाँड़ी में ठंडा जल भर दें। जल उष्ण होने पर ठण्डा जल बदलते रहें। हिंगुल के तौल के अनुसार ८ से २४ प्रहर तक की आँच देकर स्वाँग-शीतल होने पर उतार लें और धीरे से ऊपर की हाँड़ी को हटाकर उसकी पेंदी में लगे हुए पारद को सावधानी से एकत्रित कर लें।

इन यन्त्रों द्वारा जो पारद निकाला जाता है, उसका रासायनिक ढंग पर विश्लेषण करके देखा गया है तो पता लगा है कि यह पारद एकदम निर्मल होता है।

❖❖❖

शोधन-मारण-प्रकरण

धातु-उपधातुओं का शोधन, भस्म निर्माण और उनके गुण-धर्म

शोधन-संस्कार का महत्त्व

आयुर्वेद के मतानुसार किसी भी धातु-उपधातु, रस-उपरस, रत्न-उपरत्न एवं खनिज पदार्थ का भस्म बनाने से पूर्व उस पदार्थ का शोधन करना आवश्यक होता है। बिना उस पदार्थ को शुद्ध किये बनाई गई भस्में गुणों में अपेक्षाकृत हीन होने के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अवगुण भी करती हैं। इन अवगुणों को मिटा कर गुणों की वृद्धि के लिए ही आयुर्वेद-रस-शास्त्रियों ने भस्म बनाने के लिए शोधित पदार्थों के उपयोग का ही निर्देश किया है। यद्यपि आधुनिक रसायन-शास्त्र (माडर्न केमेस्ट्री) के मतानुसार किसी भी द्रव्य के शुद्ध रूप में (अन्य किसी पदार्थ के मिश्रणरहित होना) ही उसका शुद्ध होना है, किन्तु आयुर्वेद रसायन-शास्त्रियों ने द्रव्य के शोधन के विषय में इससे भी अधिक गम्भीर विवेचन किया है। और उनके मतानुसार शोधन-कार्य द्वारा पदार्थों के विजातीय द्रव्यों से पृथक् होकर उसमें स्थित स्वजातीय ठोसता (घनत्व), वान्ति (वमन-उल्टी आना) भ्रान्ति (चक्कर आना), दाहकता (पदार्थ की स्वजातीयता से अग्नि दाह उत्पन्न होना), उग्रता आदि दोष स्पष्ट होकर उसमें लघुता, सौम्यता, शीघ्र पाचकता, सूक्ष्मता आदि विशिष्ट गुणों का प्रादुर्भाव होता है। यहाँ प्रत्यक्ष सिद्ध है कि आयुर्वेदीय पद्धति से शोधित द्रव्यों की बनी भस्में पाश्चात्य पद्धति से शुद्ध द्रव्यों की बनी भस्मों की अपेक्षा निर्दोष एवं अतीव गुणकारी सिद्ध होती हैं एवं इसी कारण आधुनिक विज्ञान से शिक्षित अनेक भारतीय चिकित्सकों (डॉक्टरों) को भी जब कभी किसी रोगविशेष में अन्त: प्रयोग के लिए किसी पदार्थ की भस्म की आवश्यकता होती है, तो वे आयुर्वेदिक पद्धति से बनी भस्मों का प्रयोग कर लाभ उठाते देखे जाते हैं। इस प्रकार द्रव्यों के शोधनपूर्वक भस्म बनाने की आयुर्वेदीय पद्धति ही सर्वोत्कृष्ट भस्म-निर्माण-पद्धति सिद्ध होती है। अतएव, इस ग्रन्थ में प्रत्येक द्रव्य की भस्म बनाने की विधि के प्रारम्भ में ही उसके शोधन-विधान का वर्णन कर दिया गया है।

मारण

कुछ रस-उपरस, रत्न-उपरत्न एवं अन्य कुछ खनिज इतने मृदु होते हैं, कि जो शोधन के पश्चात् ही खण्ड-खण्ड अर्थात् छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में हो जाते हैं, और इमामदस्तों में कूटने पर चूर्ण रूप में हो जाते हैं। ऐसे मृदु द्रव्यों का तो इसी प्रकार चूर्ण कर उसमें जिस औषधि क्वाथ या वनस्पति स्वरस की भावना देनी हो वह क्वाथ या स्वरस मिला कर उसे सान कर (सान्द्र-गीला कर) छोटी-छोटी टिकियायें (चक्रिकायें) बनाकर सुखाकर सराब-संपुट में रख कर अग्नि में पुट देने से उसका मारण अर्थात् भस्मीकरण हो जाता है, किन्तु नाग, वंग, यशद, ताम्र, रौप्य, स्वर्ण, लौह, अभ्रक, वज्र (हीरा) आदि कितने ही धातवीय एवं अत्यन्त ठोस पदार्थ इतने कड़े (कठिन) हैं, कि उनका शोधन करने के पश्चात् भी उनको खण्ड-खण्ड अर्थात् चूर्ण के रूप में कर टिकिया बनाना सम्भव नहीं है। अतएव, ऐसे ठोस एवं कड़े पदार्थों की भस्म बनाने के लिए उनके शोधन के पश्चात् उनका एक विशेष प्रकार का मारण भी करना आवश्यक होता

है, जिसके करने से उन पदार्थों का खण्ड-खण्ड एवं चूर्ण रूप हो जाता है और भस्म बनाने में पर्याप्त सुविधा हो जाती है। अतएव, आयुर्वेद रसायन-शास्त्रियों ने केवल कठिन (ठोस) द्रव्यों के ही विशेष प्रकार के मारण का उल्लेख किया है। अन्य मृदु (मुलायम)पदार्थों का तो शोधन के पश्चात् ही सीधा भस्मीकरण करना मारण हो जाता है।

धातु-उपधातुओं की भस्म बनाने अथवा मारण करने का अर्थ इनके धातुत्व को बिल्कुल नष्ट कर देना, ऐसा नहीं है और न यह कदापि सम्भव ही है। भस्म चाहे जितनी सुक्ष्म बनाई जाय, कदाचित् पाश्चात्य रसायन-शास्त्र की दृष्टि से इनका धातुत्व बिल्कुल नष्ट हो जाय, फिर भी वह अपने मूल स्वभाव (प्राकृतिक गुण वैशिष्ट्य)का त्याग नहीं कर सकता, यह प्रयोग सिद्ध सिद्धान्त है।

भस्म का अर्थ राख नहीं है। भस्म तथा राख में महत्त्वपूर्ण अन्तर है। भस्म अति तेजस्वी, वीर्यवान, सूक्ष्म, योगवाही एवं आशुविपाकी होने से सत्वर फलदायक होती है। भस्म बनाने में सेन्द्रिय क्षार का संयोजन, धातु के साथ इस प्रकार कराया जाता है, जिससे कि भस्म सेन्द्रिय बन जाती है। एलोपैथिक पद्धति के अनुसार बनाई हुई भस्म और आयुर्वेदिक पद्धति से बनी भस्म में यही अन्तर है। एलोपैथिक विधि से बनी भस्म निरिन्द्रिय है जबकि आयुर्वेदिक पद्धति से बनी भस्म सेन्द्रिय है। इसी बात को समझ कर अब एलोपैथी (डाक्टरी) में भी सोमल के कल्प बनायें गये हैं। यशद के पुष्प यशद की राख हैं, क्योकि इसके बनाने में सेन्द्रिय वानस्पतिक क्षारों का धातु के साथ संयोग नहीं होता है। अत: इसे यशद की भस्म कहना बड़ी भारी भूल है। इसका उपयोग भस्म रूप में नहीं किया जा सकता। राख और भस्म के वजन में एवं धात्वीय परमाणुओं में भी पर्याप्त अन्तर रहता है।

धातु-उपधातुओं की भस्में निम्न पाँच प्रकार से तैयार होती है।

१. पारद या पारद-गन्धक की कज्जली अथवा हिंगुल के योग से।

२. वनौषधियों (वनस्पति) के चूर्ण-प्रक्षेप कल्क के साथ अथवा स्वरस की भावना द्वारा।

३. सोमल, हरिताल, मैनशिल आदि उग्र द्रव्यों के योग से।

४. गन्धक, सज्जी क्षार या शोरा आदि अन्य क्षार के योग से।

५. धातु के अन्य विरोधी धातु से मारण द्वारा।

उनमें पहले दो प्रकार श्रेष्ठ और निर्दोष हैं। तीसरी विधि से भस्म उग्र बनती है तथा चौथी और पाँचवी विधि से बनाई हुई भस्म न्यून गुणयुक्त होती है। यथा-

लौहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः ।।

वक्तव्य - यहाँ लौह शब्द धातु अर्थ में प्रयुक्त है।

स्वर्ण आदि धातु या पारद योग से मारण श्रेष्ठ, वनौषधियों से मारण मध्यम गुणयुक्त और गन्धक एवं क्षार आदि से मारण कनिष्ठ तथा विरोधी धातुओं से मारण करना हानिकारक है।

जब तक भस्म निरुत्थ न बन जाय, तब तक उसे उपयोग में नहीं लेना चाहिए ऐसी शास्त्रज्ञा है, किन्तु इस शास्त्रज्ञा का वर्तमान काल में पालन नहीं हो रहा हैं एवं आधुनिकतावादी कितने

ही चिकित्सकों के मतानुसार बिना निरुत्थ किये भी विधिपूर्वक बनी सूक्ष्म (महीन) भस्म गुणकारी सिद्ध होती है। यूनानी हकीम तो कच्चे बंग और शीशे को मिश्री के साथ खरल करके उपयोग में लाते हैं। उनके सिद्धान्तानुसार कच्ची धातु के उपयोग में भी कुछ हानि नहीं है, अपनी शक्ति के अनुसार लाभ ही पहुँचाती है। कुश्ता (भस्म) किया जाय तो विशेष लाभदायक बनती है। परन्तु आधुनिकतावादियों का सजीव भस्म का प्रयोग एवं यूनानी की कच्ची धातु के प्रयोग का मत ये दोनों ही आयुर्वेदीय मत निरुत्थ भस्म के प्रयोग की तुलना में अल्प गुणकारी ही सिद्ध होते हैं। अतः आयुर्वेदीय विधि से बनाई गई निरुत्थ भस्मों का प्रयोग करना ही विशिष्ट गुणकारी होने के कारण सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होता है।

भस्म बनाने के लिए पुट तथा अग्नि का परिमाण– भस्म बनाने के लिए जब पारा, गन्धक, संखिया, हरताल, मैनशिल आदि अग्नि पर उड़नेवाली चीजें मिलाई गयी हों, तो सम्पुट की सन्धि को कपरौटी से अच्छी तरह बन्द कर सम्पुट को चारों तरफ से कपड़मिट्टी कर सुखा करके पुट देना चाहिए, परन्तु यदि ये उड़नशील वस्तुएँ नहीं मिलाई गई हो तो सम्पुट की सन्धि को इस प्रकार खुली रहने दें जिससे हवा प्रवेश करती रहे। इससे औषध में आँच अच्छी तरह लगती है और भस्म भी अच्छा बन जाता है।

कुछ वैद्य मिट्टी के घड़े-जैसे बर्तन में दवा भर कर गजपुट में डाल देते हैं। इसमें आँच अच्छी तरह नहीं लग पाती और भस्म भी अच्छी नहीं बनती है। अतः पुट देने के लिए मिट्टी के छोटे सिकोरे (सरवा) लेने चाहिए और इनमें टिकिया भर कर ऊपर से दूसरे सिकोरे से ढँक कर पुट देना चाहिए, जिससे सब टिकियों में एक-सी आँच लगे। ये सिकोरे ऐसे हों जो बीच में ज्यादा गहरे न हों। भस्म के लिए टिकिया (अभ्रकादि की) बिल्कुल गोल और छोटी-छोटी हों, टिकियों को अच्छी तरह सूखने के बाद ही पुट देना चाहिए, यदि टिकिया गीली रह जायेगी तो भस्म का रंग अच्छा नहीं होगा।

अभ्रक, लौह, मण्डूर, माक्षिक, वंग, जस्ता, ताम्र और रत्नों को प्रारम्भ में कुछ मन्द फिर तेज आँच दें। सबसे अन्ति पुट में मृदु (मुलायम) भस्म बनाने के लिए मृदु आँच ही देनी चाहिए, अन्यथा भस्म कड़ी (कठोर) हो जाती है।

सोने, चाँदी और नाग को भी प्रारम्भ में थोड़ी ही आँच दें। जैसे-जैसे अग्नि सहन करने योग्य होते जायें, वैसे-वैसे आँच भी तेज देते जायें। भस्म तैयार होने के बाद उसमें किसी भी रस-विशेष (कषाय-अम्लादि) का स्वाद नहीं रहना चाहिए। अर्थात् भस्म बे-जायका (स्वाद रहित) होनी चाहिए तथा जीभ को काटनेवाली तीक्ष्ण क्षारीय भी नहीं होनी चाहिए। भस्म तैयार होने के बाद उसे खूब महीन कपड़े से छान लेना चाहिए।

भस्म बनाते समय उसमें उपयुक्त वनस्पतियों का स्वरस देकर ६-८ घण्टे तक लगातार खूब घोंटना चाहिए। घुटाई जितनी अच्छी होगी, भस्म भी उतनी ही अच्छी और बारीक बनेगी।

यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि पुट के लिए जहाँ तक हो सके जंगली कंण्डों (उपलों) का ही प्रयोग करें, अभाव में हाथ के बनाये हुए कण्डे ले सकते हैं। भस्मों में हरताल भस्म बहुत तेज (उग्रवीर्य) होती है। हरताल भस्म से ताम्र भस्म और ताम्र से लौह भस्म कम तेज होती है। मुक्ताशुक्ति और प्रवाल भस्म अन्य भस्मों की अपेक्षा सौम्य हैं। इनकी भस्मों से भी पिष्टी में अपेक्षाकृत विशेष सौम्य गुण हैं और वह काम भी अच्छा करती हैं।

काँच की डाटवाली शीशी में भस्म रखना चाहिए। ये भस्म जितनी पुरानी होती जायेंगी, उतनी ही सौम्यगुणयुक्त तथा विशेष गुणकारी होंगी। इसके अतिरिक्त टीन के डिब्बों में कागज की पुड़िया में भस्म रखने से बहुत शीघ्र हीनवीर्य हो जाती है। प्राचीन वैद्य भस्म को वसहा (नेपाली) कागज में पुड़िया बना कर रखते थे। उन लोगों का कहना था कि इस कागज में भस्म निवीर्य नहीं होती।

आयुर्वेद शास्त्र की आज्ञा है कि भस्म सूक्ष्म एवं निरुत्थ ही लेना चाहिए। भस्म अपनी विशो सूक्ष्मता के कारण रस-रक्तादि द्वारा सम्पूर्ण शरीर में शीघ्र फैल जाती है, अतः अपना प्रभाव भी शीघ्र दिखाती है।

कुछ धातुएँ ऐसी भी है कि उनमें जितने अधिक पुट देते जायें उतने ही उनके गुणों में वृद्धि होती जायेगी। जैसे-लोहा, अभ्रक, ताँबा, सोना, चाँदी और शीशा आदि। कुछ ऐसी भी हैं कि उनमें मात्रा से ज्यादा पुट लग जाने से उनकी भस्म हीनवीर्य हो जाती है, जैसे रत्न-उपरत्न, प्रवाल, मुक्ता, शुक्ति आदि। अतः शतपुटी अभ्रक भस्म भी अपेक्षा सहस्त्रपुटी अभ्रक को विशेष महत्त्व दिया जाता है। यही हालत लौहादिकों की भस्मों की भी है।

कपर्दक (कौंड़ी), शंख और शुक्ति भस्म को भस्म करने के बाद जम्बीरी नींबू के रस की भावना देने से उसकी तीक्ष्णता नष्ट हो जाती है और भस्म की मुलायम और स्वच्छ बन जाती है। अन्यथा वह तीक्ष्णता के कारण जीभ काट देती है।

कतिपय रसायन शास्त्रियों का मत है कि भस्म बनाने के बाद में यदि इन भस्मों पर थोड़ा जल का छींटा दे दिया जाय तो यह अच्छी तरह खिल जाती हैं और एकदम स्वच्छ (सफेद) भस्म बन जाती हैं, परन्तु इसमें एक त्रुटि रह जाती है कि तीक्ष्णता नहीं जाती। अतः ऐसा करने के बाद भी नींबू के रस की भावना देना ठीक है।

अभ्रक

परिचय- यह बहुधा पर्वतों पर पाया जाता है। भारतवर्ष में सफेद, भूरा और काले रंग का अभ्रक मिलता है, बिहार प्रान्त में हजारीबाग और गिरीडीह तथा बंगाल में रानीगंज के आसपास कोयले की खानों के अन्दर मिलता है। राजस्थान में चित्तौड़, भीलवाड़ा में इसकी खानें हैं। यह तह पर तह जमें हुए बड़े-बड़े ढाकों (स्थानों) में पहाड़ों में मिलता है। साफ करके निकालने पर इसकी तह काँच की तरह निकलती है। इसके पत्र पारदर्शक, मृदु और सरलता से पृथक्-पृथक् किये जा सकते हैं। आयुर्वेद में इसकी गणना महारसों में की गयी है। भस्म बनाने के लिए वज्राभ्रक (काला अभ्रक) काम में लिया जाता है। वज्राभ्रक में लौह का अंश विशेष होने से इसकी भस्म बहुत गुणदायक होती है।

अभ्रक के भेद- आयुर्वेदीय मतानुसार, पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्राभ्रक भेद से अभ्रक चार प्रकार का होता है। इन्हें आग में डालने से जिसे अभ्रक के पत्ते खिल जायें उसे 'पिनाक' और जो अभ्रक आग में डालने से मेंढक के समान (टर्र-टर्र) आवाज करे उसे 'दर्दुर' तथा जो अभ्रक आग में डालने से साँप की तरह फुफकार छोड़े, उसे 'नाग' एवं जो अभ्रक आग पर डालने से अपना रूप नहीं बदले तथा आवाज भी न करे, उसे 'वज्र' कहते हैं। वज्राभ्रक का ही विशेषतया उपयोग भस्म और रसायनादि में किया जाता है। वज्राभ्रक का धान्याभ्रक बना कर भस्मादि कामों में लिया जाता है।

धान्याभ्रक बनाने का विधान इसी पुस्तक में 'रासायनिक परिभाषा-प्रकरण' में पृष्ठ २९ पर देखें।

वज्राभ्रक के लक्षण

यदज्जन-निभं क्षिप्तं न बह्नौ विकृतिं व्रजेत।
वज्रसंज्ञं हि तद्योग्यमभ्रं सर्वत्र नेतरत्।। -र.चि.

जो अभ्रक अंजन के समान काला हो और आग पर रखने से किसी तरह विकृत न हो, वही 'वज्राभ्रक' है। यह सर्वत्र हितकारक है। भस्मादिक काम में यही अभ्रक लेना उत्तम है।

अंजन समान कृष्णाभ्रक (वज्राभ्रक) वही होता है, जिसमें लौहांश अधिक हो। अच्छा कृष्णाभ्रक हिमालय तथा पंजाब में कांगड़ा जिले के नूरपुर तहसील की खानो में मिलता है और उ.प्र. में अल्मोड़ा के आगे वाघेश्वर में भी कहीं-कहीं मिलता है। कभी-कभी भूटान से भी यही अभ्रक आता है।

यह भूगर्भ में शिरा-जाल की तरह मीलों तक पृथ्वी की गहराई में बिछा हुआ रहता है। अत: प्रारम्भिक भाग को खोद कर निकाल लेने के बाद सूक्ष्म पत्रवाला अंजन के समान कृष्णवर्ण का जो अभ्रक का ढेला मिले वही ग्रहण करना उत्तम है।

इस अभ्रक में जो लौह का अंश होता है वह विद्युत् उल्कापात निकले हुए लौह की जाति का है। इसलिए विद्युत लौह सदृश लौह के संपर्क से ही इसका वज्राभ्रक नामकरण किया गया है।

अच्छे अभ्रक की पहचान- जो अभ्रक श्रेष्ठ कृष्णवर्ण का, छूने से चिकना और देखने में चमकदार ढेले के रूप में हो तथा जिसके पत्र मोटे हों, और वे सहज ही खुल जाते हों एवं जो तौल में भारी हो, वह अभ्रक सबसे अच्छा होता है।

अभ्रक शोधन-विधि- काले रंग के पत्थर रहित और वजनदार अभ्रक के ढेले लाकर छोटे-छोटे टुकड़े कर उसको अग्नि में तपा-तपा कर खूब लाल हो जाने पर गो-मूत्र, त्रिफला क्वाथ तथा गाय के दूध में सात बार बुझावें। पीछे जल से अच्छी तरह धोकर, सुखाकर, इमामदस्ते में कूट कर कपड़छान चूर्ण कर लें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य-शुद्ध किये अभ्रक को दो-तीन दिन जल में डाल कर पड़ा रहने के बाद धोना विशेष अच्छा रहता है।

दूसरी विधि- अभ्रक को तपा-तपा कर सात बार बेर के काढे में बुझावें, फिर सुखा कर हाथों से मर्दन कर रख लें तो यह धान्याभ्रक से भी अच्छा होता है। -आ.प्र.

अभ्रक निश्चन्द्रीकरण- अभ्रक भस्म वही अच्छी और विशेष गुणकारी होती है, जिसमें चमक नहीं होती। इस चमक को दूर करने के लिए वैद्य लोग अनेक प्रक्रियाओं से अनेक पुट देते हैं, किन्तु चमक दूर नहीं होती। भस्म में चमक रहने से रोगी की आँतें कटने लगती हैं, खून आने लगता है, गर्मी अत्यधिक बढ़ जाती है तथा अन्यान्य उपद्रव होने लगते हैं। अत: रोगी और वैद्य इस चमक के बारे में परेशान हो जाते हैं। इस चमक को दूर करने के लिए एक ऐसी सरल युक्ति बतलायी जाती है जिससे एक से दो पुट में ही अभ्रक निश्चन्द्र हो जायेगा।

विधि- पुराना गुड़ -१, सोरा कलमी-2, दोनो को थोड़ा डाल कर एक जगह मिला कर घोल लें, फिर उसमें २ सेर शुद्ध अभ्रक मिला कर हाँडी में भर दें, ऊपर से हाँडी का मुख एक ढक्कन

से ढँक कर सर्वार्थकरी भट्टी (इस भट्टी का विवरण इसी पुस्तक में पीछे परिभाषा प्रकरण में पृ. ३९ पर देखें) की लौह जाली पर अथवा काढा बनाने वाली भट्टी की लौह जाली पर (कोई २ गजपुट में ही रख देते हैं) अन्दाज से करीब १० सेर लगभग पत्थर का कोयला रख दें। नीचे लकड़ी लगा कोयला लगा लें और इसी कोयले पर अभ्रक की हाँडी रख दें। (एक बार में एक ही हाँडी रखें) आँच पर रखने से आँच की तेजी के कारण हँड़िया में से सोरा आवाज के साथ निकलता जायेगा, इसमें डरने की कोई बात नहीं है। कभी-कभी सोरा नहीं भी उड़ता है।

इस विधान से एक-दो पुट में ही अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि हाँड़ी पतली पेंदी की रही, तो सोरा बहुत जल्द निकल जाता है जिससे ऊपरी भाग का अभ्रक निश्चन्द्र नहीं होता, तो उस अभ्रक को अलग निकालकर पुनः उक्त विधान से निश्चन्द्र करना चाहिए।

इस अभ्रक में सोरा का एक भाग कुछ-न-कुछ रह ही जाता है, अतएव इसको कूटकर एक दिन-रात जल में भिगोकर छोड़ दें, जब जल स्थिर हो जाय, और अभ्रक भी नीचे पात्र में बैठ जाय, तब धीरे-धीरे सावधानी के साथ पानी बहा दें। अभ्रक बह न जाय इस पर खूब ध्यान रखें, फिर पानी भर कर छोड़ दें, इस तरह जब तक इसमें से खारापन न निकल आए, तब तक बराबर पानी डाल-डाल कर धाते रहे।- र.सा.

अभ्रक मारण-उपरोक्त विधि से निश्चन्द्र किए अभ्रक को आक (मदार) के पत्तों के रस में घोंट कर टिकिया बना लें, जब टिकिया खूब सूख जायें, तब गजपुट में सम्पुट को रखकर फूँक दें। ऐसे तीन पुट देने से लाल वर्ण की भस्म बनेगी। इसे सब रोगों में प्रयुक्त करें।

दूसरी विधि- धान्याभ्रक को २४ घण्टे आक के दूध में खूब घोट कर गोल-गोल छोटी-छोटी टिकिया बना, आक के पत्तों में लपेट सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। स्वाँग शीतल होने पर निकाल कर फिर आक के दूध में उसी प्रकार घोंट कर पुट दें। ऐसे ७ पुट आक के दूध के साथ और तीन पुट बड़ की जटा के क्वाथ के साथ देने से १० पुट में ही अभ्रक की उत्तम भस्म बनती है। र.सा.सं.

तीसरी विधि- धान्याभ्रक के चूर्ण को प्याज के रस में पीसकर टिकिया बनाकर सुखा लें, फिर इसे सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार २१ पुट प्याज के रस में, ७ पुट गिलोय के रस में और ७ पुट आक के दूध में और ७ बार अडूसे के स्वरस में मर्दन कर पुट देने से अभ्रक की उत्तम भस्म बनती है।

नोट- अभ्रक भस्म एक साथ ४० से ६० तोले तक बनावें तो बहुत अच्छी भस्म बनती है।

अभ्रक भस्म ६० पुटी- शुद्ध अभ्रक को नागरमोथा के रस में खरल कर टिकिया बना करके सुखा लें, खूब सूख जाने पर टिकिया को सराब-सम्पूट में बन्द कर गजपूट में फूँक दें। इस प्रकार नागरमोथा के रस में ३० पुट दें। फिर अभ्रक का जितना तौल हो, उसका १६ वाँ भाग सुहागा मिला कर ३० पुट चौलाई के रस की दें। इस प्रकार ३० पुट देने से अभ्रक की सिन्दूर के समान लाल भस्म हो जाती है। यह भस्म कुष्ठ क्षयादिक रोगों को नष्ट करती है।

अभ्रक भस्म शतपुटी- धान्याभ्रक को कसौंदी के पत्तों के रस में बारह घण्टे खरल कर टिकिया बनाकर, धूप में सुखा लें। सूखने पर सराब-सम्पुट में रख कर गजपुट में फूँक दें। यह १ पुट हुई, इस प्रकार ९९ फुट कसौंदी के पत्रों के रस में घोंट कर गजपुट देते जाएँ। इस प्रकार १०० पुट होते ही निश्चन्द्र अभ्रक भस्म तैयार हो जायेगा। -चि.च.

दूसरी विधि- उपरोक्त तैयार अभ्रक को अर्क दुग्ध (अभाव में अर्कपत्र स्वरस) की भावना देकर सौ पुट देने से अभ्रक भस्म शतपुटी तैयार हो जाती है।

अभ्रक भस्म सहस्रपुटी- उपरोक्त तैयार अभ्रक भस्म को अर्क दुग्ध (अभाव में अर्कपत्र स्वरस) की भावना देकर एक हजार बार पुट देने से अभ्रक भस्म सहस्रपुटी तैयार हो जाती है।

वक्तव्य-पुट देने के सम्बन्ध में पूर्वाचार्य वृद्धों का ऐसा मत है कि यदि अभ्रक में सौ पुट देने की औषधियों के स्वरस में घोंटकर टिकिया बनाकर, सुखा कर प्रतिबार गजपुट में फूँक कर सौ पुट दें, किन्तु यदि सहस्रपुट देने की इच्छा हो तो पुट देने की औषधियों के स्वरस या क्वाथ में दश बार भावना देकर सुखा कर एक पुट दें, तो दशपुट समझा जाता है। इसी प्रकार प्रति दश भावना के बाद पुट देते हुए १०० बार पुट देने पर एक हजार पुट समझे जाते हैं। यही बात लौह भस्म शतपुटी और सहस्रपुटी के विषय में समझनी चाहिए।

अभ्रक भस्म सहस्रपुटी- निश्चन्द्र धान्याभ्रक को लेकर निम्नलिखित वनस्पतियों में से जैसे-जैसे जो-जो दवाइयाँ मिलती जायें, प्रत्येक की १६-१६ भावना दें, यह ध्यान रखें कि प्रति भावना के बाद टिकिया बना कर सुखा लें तब सराब-सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूँक दें। रेचक, तीक्ष्ण तथा लेखन औषधियों की भावना लिखित मात्रा से ज्यादा न दें। भावना द्रव्य निम्न हैं।

बट का दुग्ध या जटा का क्वाथ, आक का दूध या पत्र का स्वरस, घीकुमारी (ग्वारपाठा) का रस, अण्डी की जड़ का क्वाथ, कुटकी का क्वाथ, नागरमोथा का क्वाथ, गिलोय (गुर्च) का क्वाथ, गोखरू का क्वाथ, कटेरी का क्वाथ, शालिपर्णी का क्वाथ, पृश्निपर्णी का क्वाथ, ग्रन्थिपर्ण, सरसों का स्वरस, चिरचिटा (अपामार्ग) का क्वाथ, बड़ के अंकुर, बेलछाल का क्वाथ, अरणी का क्वाथ, चित्रक का क्वाथ, तेंदू का क्वाथ, हरड़ का क्वाथ, पाढल की जड़ का क्वाथ, गोमूत्र, आँवले का क्वाथ या रस, असगन्ध का क्वाथ, भांगरा रस, केले का रस, अदरख का रस, सप्तपर्ण (सतौना) का क्वाथ, धतूरे का रस, लोध्र का क्वाथ, देवदारु का क्वाथ, तुलसी का रस या क्वाथ, सफेद और हरी दूब का रस या क्वाथ, कसौंदी का रस या क्वाथ, पान का रस, पुनर्नवा का क्वाथ, मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) का क्वाथ, इन्द्रायण का क्वाथ, भारंगी का क्वाथ, देवदाली (बन्दाल) का क्वाथ, कैथ का क्वाथ, कड़वा पटोल, पतलाश (ढाक), तुरई का क्वाथ, मूषाकर्णी का क्वाथ, अनन्तमूल का क्वाथ, कलौंजी का क्वाथ, दन्ती और हरी शतावरी- इन सब का रस या क्वाथ लें।

वक्तव्य- उपरोक्त भावना द्रव्यों की संख्या ६० हैं, प्रत्येक से १० पुट देने पर १०२० पुट होते हैं, परन्तु कुछ द्रव्य नहीं मिला पाते हैं, अत: लगभग १००० पुट ही लग पाते हैं। चिकित्सा चन्द्रोदय में ६३ द्रव्य संख्या है, उसके हिसाब से १००८ पुट होते हैं।

यह सहस्रपुटी अभ्रक अनुपान भेद से अनेक रोगों का नाश और शरीर में अतुल बलवीर्य पैदा करनेवाली है।

नोट- कभी-कभी अभ्रक भस्म लाल नहीं हो पाती है। ऐसी अवस्था में निम्न लिखित द्रव्यों के स्वरस की भावना देने से भस्म लाल हो जाती है, जैसे- नागबला, नागरमोथा, बट का दुध अथवा बट-जटा का स्वरस, हल्दी या मजीठ का क्वाथ।

भस्मों के विषय में- धातुओं की भस्में अनेक विधियों द्वारा बनाकर उचित अनुपान भेद से अनेक रोगों में प्रयोग की जाती हैं और लाभ भी होता है। ऐसी अवस्था में यह शंका या प्रश्न उठाना कि अनुपान (जिसके साथ भस्म प्रयोग की जाती है) से जो लाभ होता है, वह अनुपान का प्रभाव है, भस्म तो नाममात्र की ही प्रभावकारी होती है, किन्तु यह केवल अज्ञानता है और अनुपान को स्वतन्त्र रूप से प्रयोग करके उसके गुणों का परीक्षण कर इसे दूर किया जा सकता है। भस्मों के योगवाही होने के कारण अनुपान से भस्मों के गुण अवश्य बढ़ते है, क्योंकि अनुभव इस बात को बताता है कि जब भस्म साथ में न हो तब केवल अनुपान की इतनी थोड़ी मात्रा देने से शरीर पर कोई असर नहीं होता है। यह तो भस्म में ही ताकत है कि इतनी थोड़ी मात्रा में ही सम्पूर्ण शरीर पर अपना प्रभाव करती है। किसी भी धातु-उपधातु की भस्म हो, उसमें ऐसी रासायनिक शक्ति विद्यमान रहती है कि मुख में डालते ही सम्पूर्ण शरीर की नसों में व्याप्त हो जाती है और अपने स्वाभाविक एवं मौलिक गुण-धर्म एवं उस प्रत्येक औषध के प्रभाव की जिसमें वह भस्म बनायी गयी है, या जो अनुपान रूप में प्रयोग किया जा रहा है, उसके गुणधर्म को भी सम्पूर्ण शरीर में विशेषकर रोगस्थान में अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक पहुंचा देती है। अत: सभी भस्मों को उचित अनुपान के साथ प्रयोग करने पर पूर्ण सफलता प्राप्त होती है और यही ठोस कारण है कि आज आयुर्वेद के अलावा यूनानी, एलोपैथी आदि अन्य प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धतियों में भी भस्मों का प्रचुर प्रयोग बढ़ रहा है।

जो दवा सेरों खाने से तब कहीं अपना प्रभाव शरीर में प्रकट करती है, वह १-२ माशे की मात्रा में ही एक रत्ती भस्म के संग मिला कर देने से तत्काल ही सेर भर औषध के प्रभाव से भी अधिक प्रभाव प्रकट करती है। यद्यपि यह प्रभाव भावित (भावना दी हुई) औषधियों का ही क्यों न हो, किन्तु औषध को इतनी स्वल्प मात्रा और प्रभाव को एवं उस तात्कालिक शक्ति को देखकर बरबस यही कहना पड़ेगा कि यह चमत्कार भस्म के ही हैं, जो उक्त औषध के साथ सम्मिलित होकर उसके प्रभाव को कई गुना बढ़ा देती है।

अत: अभ्रक भस्म को ही क्यों, सभी भस्मों को उचित अनुपान के साथ व्यवहार करने पर पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है तथा मिलती भी रही है। अत: निर्भय होकर भस्मों का प्रयोग किया जा सकता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती प्राय: सायं रोगानुसार अनुपान अथवा शहद के साथ।

अभ्रक भस्म का रोगानुसार अनुपान

प्रमेह के लिए- अभ्रक भस्म को पीपल और हल्दी के चूर्ण में मिला शहद (मधु) के साथ दें।

क्षय के लिए- सोना भस्म चौथाई रत्ती (अथवा वर्क), सितोपलादि चूर्ण या च्यवनप्राशावलेह में मिला न्युनाधिक मात्रा में घी और शहद के साथ दें।

धातु बढ़ाने के लिए- सोना और चाँदी की भस्म चौथाई रत्ती या वर्क छोटी इलायची के चूर्ण और शहद (मधु) या मक्खन के साथ दें।

रक्तपित्त के लिए- अभ्रक भस्म को गुड़ या शक्कर और हरड़ का चूर्ण मिला कर या इलायची का चूर्ण और चीनी मिला कर दूर्वा-स्वरस के साथ दें।

बवासीर (अर्श) पाण्डू और क्षय के लिए- दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात, सोंठ, पीपल, मिर्च, आँवला, हरड़, बहेड़े का महीन चूर्ण चीनी या मिश्री मिला कर शहद के साथ दें।

पैत्तिक प्रमेह के लिए- गुर्च सत्त्व और मिश्री मिलाकर शहद के साथ दें।

मूत्रकृच्छ्र के लिए- इलायची, गोखरू, भूमि-आँवले का चूर्ण एवं मिश्री मिलाकर दूध के साथ दें।

जीर्णज्वर और भ्रम के लिए-पीपलामूल का चूर्ण मिला कर शहद के साथ दें।

नेत्र की ज्योति बढ़ाने के लिए- त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) के चूर्ण और शहद के साथ दें।

व्रण-नाश के लिए- मूर्वा का चूर्ण मिला शहद के साथ दें।

बल-वृद्धि के लिए- विदारीकन्द का चूर्ण मिला कर गाय के धारोष्ण दूध के साथ दें।

वादी अर्श के लिए- शुद्ध भिलावे का चूर्ण का निशोथ का चूर्ण मिला कर गर्म जल के साथ दें।

अम्लपित्त में- आमला चूर्ण डेढ़ माशा या आमला-रस १ तोला के साथ दें।

स्नायु दौर्बल्य में- अभ्रक भस्म १ रत्ती को मकरध्वज आधी रत्ती के साथ मिला कर मक्खन या मलाई के साथ दें।

हृदय रोग में- अभ्रक भस्म एक रत्ती को मोती पिष्टी १ रत्ती और अर्जुनछाल चूर्ण ४ रत्ती के साथ मधु में मिला कर दें।

वातव्याधि के लिए- सोंठ, पुष्करमूल, भारङ्गी और असगन्ध का चूर्ण मिलाकर शहद (मधु) के साथ दें।

पित्त प्रकोप में- दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर का चूर्ण मिलाकर चीनी या मिश्री के साथ दें।

कफ प्रकोप में- कायफल और पिप्पली के चूर्ण में शहद के साथ दें।

अग्नि-प्रदीप्त के लिए-यवक्षार, सुहागे की खील (फूला), सज्जीखार के चूर्ण में मिला कर गर्म जल के साथ दें।

मूत्राघात और पथरी के लिए- मूत्रकृच्छ्र का अनुपान ठीक है।

वीर्यस्तम्भन के लिए- भांग के चूर्ण के साथ दें।

धातुक्षीणता के लिए- लौंग का चूर्ण और शहद (मधु) के साथ दें।

शारीरिक उत्ताप (दाह) के लिए- चीनी, मिश्री और गाय के दूध के साथ दें।

पाण्डु, संग्रहणी और कुष्ठ के लिए- वायविडंग, त्रिकुटा और घी के साथ २-४ रत्ती की मात्रा में अभ्रक भस्म सेवन करें।

मिश्र अनुपान- अभ्रक भस्म अकेली तथा पूर्वोक्तानुपान के साथ जैसी दी जाती है, वैसे ही भस्मों के मिश्रण के साथ देने से अपूर्व लाभ करती है। जैसे-

प्रसूत और कफक्षय में- अभ्रक भस्म ४ रत्ती, सुवर्ण वर्क १ रत्ती, दोनों की ६ पुडिया बना, प्रातः सायं दाड़िमावलेह में मिला कर देने से लाभ होता है।

कफक्षय, कामला, जीर्ण ज्वर तथा संग्रहणी पर- अभ्रक भस्म ३ रत्ती, कान्तलौह भस्म ३ रत्ती और सोने का वर्क १ रत्ती- इनकी ६ पुड़िया बना कर प्रात: सायं १-१ पुड़िया दाड़िमावलेह के साथ सेवन करें।

धातुक्षय और मधुमेह के लिए- १ रत्ती अभ्रक भस्म, १ रत्ती कान्तलौह भस्म, २ रत्ती शोधित शिलाजीत इनकी गोली बनाकर, प्रात:-सायं दूध के साथ सेवन करें।

सन्निपात, पाण्डु आदि पर- अभ्रक भस्म १ रत्ती, मौक्तिक भस्म १ रत्ती और ४ रत्ती गोरोचन मिला इन सब की ६ पुड़िया बनाना और ६ माशा दाड़िमावलेह के साथ एक-एक पुड़िया प्रात:, दोपहर और शाम को देना। इससे ज्वर, दाह, खाँसी, दमा, नकसीर (नाक से खून गिरना) आदि में अमित लाभ होता है और अति कमजोरी पर इसका उत्तम प्रभाव पड़ता है तथा क्षय, प्रसूत रोग, सन्निपात, पाण्डु, रक्तपित्त और पित्तज कास आदि में यह मिश्रण बहुत काम करता है। इसके अतिरिक्त आँव एवं खूनी बवासीर में अच्छा काम करता है।

गुण और उपयोग- अभ्रक भस्म अनेक रोगों को नष्ट करता है, देह को दृढ़ करता है एवं वीर्य बढ़ाता है। तरुणावस्था प्राप्त कराता है और सम्भोग (मैथुन) करने की शक्ति प्रदान करता है। राजयक्ष्मा, कफक्षय, बढ़ी हुई खाँसी, उर:क्षत, कफ, दमा, धातुक्षय, विशेषकर मधुमेह, बहुमूत्र, बीस प्रकार के प्रमेह, सोम रोग, शरीर का दुबलापन, प्रसूत रोग और अति कमजोरी, सूखी खाँसी, काली खाँसी, पाण्डु, दाह, नकसीर, जीर्णज्वर, संग्रहणी, शूल, गुल्म, आँव, अरुचि, अग्निमांद्य, अम्लपित्त, रक्तपित्त, कामला, खूनी अर्श (बवासीर), हृद्रोग, उन्माद, मृगी, मूत्रकृच्छ्र, पथरी तथा नेत्र-रोगों में यह भस्म लाभदायक सिद्ध हुई है। रसायन और बाजीकरण भी है।

त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) में जो दोष-विशेष उल्बण अर्थात् बढ़े हुए हों, उन्हें शमित करने के लिए उचित अनुपान के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करना चाहिए। प्रमेह रोग में शिलाजीत के साथ और कुष्ठ तथा रक्त-विकार में अभ्रक भस्म १ रत्ती, बावची चूर्ण ४ रत्ती खदिरारिष्ट के साथ दें। उदर रोगों में कुमार्यासव के साथ इसका सेवन करना लाभदायक है।

राजयक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में जब रोगी कास और ज्वर से दुर्बल हो गया हो, उस अवस्था में प्रवाल पिष्टी और गिलोय सत्त्व के साथ अभ्रक भस्म के नियमित सेवन से ८० प्रतिशत लाभ हुआ है। रक्ताणुओं की कमी से उत्पन्न पाण्डु और कामला पर अभ्रक भस्म को मण्डूर भस्म और अमृतारिष्ट साथ देने से बहुत लाभ होता है। आजकल डॉक्टर लोग शरीर में रक्त की कमी की पूर्ति दूसरों के रक्त का इंजेक्शन देकर करते हैं, किन्तु कभी-कभी इसके परिणाम भयंकर भी सिद्ध होते हैं, परन्तु आयुर्वेद में गुडूची सत्त्व के साथ अभ्रक भस्म सेवन कराने से यह काम निरापद रूप से पूरा हो जाता है।

संग्रहणी में अभ्रक भस्म का सेवन कुटजावलेह के साथ करने से यह आँव रोग को समूल नष्ट कर शरीर को नीरोग बना देती है। वातजन्य शूल में अभ्रक भस्म का सेवन शंख भस्म में मिलाकर अजवायन अर्क के साथ करना परमोपयोगी है।

श्वास रोग-पुराना हो जाने पर रोगी बहुत कमजोर हो जाता है और बहुत खाँसने पर थोड़ा सा चिकना सफेद कफ निकलता है तथा थोड़ा-सा भी परिश्रम करने से पसीना आ जाता है। ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म का सेवन पिप्पली चूर्ण के साथ मधु मिला कर करना बहुत लाभदायक है अथवा १ तोला च्यवनप्राश चौथाई रत्ती स्वर्ण वर्क के साथ सेवन कराने से भी लाभ होता है।

सामान्य कास- रोग में अधिक कफस्राव होने पर या वासावलेह के साथ तथा शुष्क कास रोग में प्रवाल पिष्टी, सितोपलादि चूर्ण तथा मक्खन या मधु के साथ इस भस्म का सेवन कराने से भी लाभ होता है।

आँव (पेचिश) में कुटजारिष्ट के साथ, मन्दाग्नि में त्रिकटु (सोंठ, पीपल,मिर्च) चूर्ण के साथ तथा जीर्णज्वर में लघुवसन्तमालिनी के साथ अभ्रक भस्म विशेष लाभ करती है।

रक्तार्श (खूनी बवासीर) पुराना हो जाने पर बारम्बार रक्तस्राव होने लगता है। शरीर में थोड़ा भी रक्त उत्पन्न होने से रक्तस्राव होने लगता है। ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म शुक्ति पिष्टी के साथ देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

मानसिक दुर्बलता होने पर कार्य करने का उत्साह नष्ट हो जाता है। चित्त में अत्यधिक चंचलता रहती है। रोगी निस्तेज, चिन्ताग्रस्त और क्रोधी हो जाता है, ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म का सेवन मुक्तापिष्टी के साथ करना अधिक लाभप्रद है।

मन्दाग्नि हो जाने पर खाया हुआ अन्न ठीक तरह से नहीं पचता, जिससे शरीर में बल की वृद्धि नहीं होती। परिणाम यह होता है कि अपस्मार, उन्माद, स्मृतिनाश, अनिद्रा, चित्तचांचल्य, हिस्टीरिया आदि अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में अभ्रक भस्म के सेवन से थोड़े ही दिनों में बल की वृद्धि होकर शरीर पुष्ट हो जाता है। ब्राह्मी चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करना मानसिक रोगों में लाभदायक है।

हृदय की दुर्बलता को नष्ट करने के लिए अभ्रक भस्म बहुत उपयोगी है। नागार्जुनाभ्र जो हृदय -पुष्टि के लिए ही प्रसिद्ध है, इसके गुणों में सहस्रपुटी अभ्रक भस्म का ही विशेष प्रभाव है। अभ्रक भस्म हृदय को उत्तेजना देने वाली है किन्तु यह कपूर और कुचिला के समान हृदय को उत्तेजित नहीं करती। यह हृदय के स्नायुमंडल को सबल बना कर हृदय में स्फूर्ति पैदा करती है। अभ्रक सहस्रपुटी १-१ रत्ती को मधु में मिलाकर सेवन करने से हृदय रोग में अच्छा लाभ होता है।

पुरानी खाँसी, श्वास, दमा आदि रोगों में रोगी खाँसते-खाँसते या दमा के मारे परेशान हो जाता हो, श्वासनली या कण्ठ में क्षत (घाव) हो गया हो, ज्यादा खाँसने पर जरा-सा सफेद-चिकना कफ निकल पड़ता हो, रोगी पसीना से तर हो जाता हो-इन कारणों से दुर्बलता विशेष बढ़ गयी हो, तो अभ्रक भस्म, पिप्पली चूर्ण और मिश्री की चाशनी के साथ मिला कर लेने से अच्छा लाभ करती है।

चिरस्थायी (बहुत दिनों का) अम्लपित्त रोगों में अनेक दवा करके थक गए हों, अनेक डाक्टर या वैद्य, हकीम असाध्य कह कर छोड़ दिये हों, पेट में दर्द बना रहता हों, हर वक्त वमन करने की इच्छा होती हो, कुछ खाते ही वमन हो जाय, वमन के साथ रक्त भी निकलता हो, तो ऐसी अवस्था में अभ्रक भस्म को अम्लपित्तान्तक लौह और शहद के साथ मिलाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

प्रसूत रोगों में देवदार्वादि क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ या दशमूलारिष्ट के साथ अभ्रक भस्म का सेवन लाभप्रद है। धातुक्षीणता की बीमारी में च्यवनप्राश और प्रवाल पिष्टी के साथ इसका सेवन करना उत्तम है।

अभ्रक भस्म योगवाही है। अतः यह अपने साथ मिले हुए द्रव्यों के गुणों को बढ़ाती है। पाचन विकार को नष्ट कर आंत को सशक्त बनाने और रुचि उत्पन्न करने के लिए अभ्रक भस्म का मिश्रण देना अत्युत्तम है।

संग्रहणी में अभ्रपर्पटी (गगन पर्पटी) उत्तम कार्य करती है। मलावरोध तथा संचित मल के विकारो के लिये अभ्रपर्पटी का प्रयोग महोपकारी है।

पाचक और रंजक पित्त की कमी होने पर यकृत विकार को दूर करने के लिए मण्डूर भस्म के

साथ अभ्रक भस्म देना चाहिए। इसी प्रकार अरुचि, अम्लपित्त और पित्त की प्रबलता में कपर्दक भस्म और प्रवाल-पिष्टी के साथ प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

जिस स्त्री के बच्चे कमजोर पैदा होते हों, उस स्त्री को अभ्रक भस्म सितोपलादि चूर्ण में मिला कर कुछ रोज तक सेवन करावें तो गर्भस्थ बालक सुपुष्ट होकर पैदा होगा।

अभ्रक भस्म रसायन और वृष्य होने के कारण इसका प्रभाव रसरक्तादि धातुओं पर बहुत अच्छा पड़ता है। शरीर में रक्ताणुओं की कमी हो जाने के कारण शरीर पीला हो जाता है। यह रोग अक्सर कच्ची उमर में जिस स्त्री को बच्चा पैदा होता है, उसे होता है। इसके साथ-साथ ज्वर, शरीर में आलस्य, कमजोरी, मन्दाग्नि आदि उपद्रव भी होते हैं, ऐसी दशा में अभ्रक भस्म कान्त लौह भस्म के साथ दें और ऊपर से दशमूल क्वाथ का अनुपान देने से बहुत लाभ होता है।-औ.गु.ध.शा.

अकीक

परिचय- यह एक प्रकार का खजिन पत्थर है। श्वेत, रक्त, नील तथा पीत भेद से यह चार प्रकार का होता है। इनमें श्वेत वर्ण वाला श्रेष्ठ होता है। हकीमों (यूनानी चिकित्सकों) के मत से लाल वर्णवाला सर्वोत्तम होता है। यह मुम्बई, बाँदा और खम्भात से आता है। इसकी कई किस्में यमन और बगदाद से भी आती है।

शोधन विधि- अकीक पत्थर को लेकर आग में तपा-तपा कर गुलाब जल में २१ बार बुझा दें तो यह पत्थर खिल जाता है और मुलायम भी हो जाता है।

दूसरी विधि- अकीक के टुकड़ों को आगर पर खूब तपाकर ७ बार त्रिफला क्वाथ में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- उपरोक्त रीति से शुद्ध किया हुआ अकीक का महीन चूर्ण करके अर्क गुलाब या घी कुमारी (ग्वारपाठा) के रस में खरल कर टिकिया बना लें, सूख जाने पर सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में तीन बार फूँक देने से भस्म हो जाती है। फिर इस भस्म को गाय के दूध में घोंट कर टिकिया बना, सुखा कर, गजपुट में फूँक दें। दूध में टिकिया बाँधने के बाद गजपुट में देने से भस्म फूलती है, अतः सम्पुट में थोड़ी जगह खाली रहे, उतनी ही टिकिया रखें। इससे भस्म बहुत मुलायम हो जाती है। -आ.प्र.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती, प्रातः-सायं, मधु (शहद), मक्खन या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- सब प्रकार की हृदय दुर्बलता, उष्णता, नेत्ररोग, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, मस्तिष्क विकार आदि में लाभकारी है। पैत्तिक विकारो के लिए इसका उपयोग करना उत्तम है।

यह हृदय एवं मस्तिष्क को बल देनेवाली तथा वात-पित्त नाशक है, इसके सेवन से बढ़ी हुई तिल्ली एवं यकृत, सम्बन्धी विकार आराम होते हैं। यह वातरोगजन्य उन्माद, मूर्च्छा, पुराना और शुष्क कास, सब प्रकार के रक्तस्राव, रक्त प्रदर, पुराना सुजाक, व्रण (घाव), अश्मरी (पथरी) को नष्ट करने में समर्थ है। इसे नेत्रों में लगाने से नेत्र की ज्योति बढ़ती है। इसके सेवन से वीर्य गाढ़ा होता है और शरीर में कामोत्पादक शक्ति बढ़ती है। भिन्न-भिन्न अनुपानों द्वारा यह अनेक रोगों को नष्ट करती है। इसका सर्वसाधारण अनुपान मधु है। वात तथा प्लीहा-विकारों के लिए इसका खास प्रयोग होता है। थूक के साथ यदि खून आता हो, तो उसे बन्द करने के लिये इसका

व्यवहार लाभदायक है। अकीक के आभ्यन्तर प्रयोग के अलावा बाह्यस्पर्श से भी हृद्रोगों में लाभकारी माना गया है। इसी कारण अनेक हृद्रोगी अकीक का लाकेट बनाकर पहनते हैं।

अकीक पिष्टी- शु. अकीक को इमामदस्ते में महीन कूट-कपड़छन कर 10-20 दिन लगातार गुलाब जल में घोंटे, फिर इसे महीन कपड़े में छान कर, सुखा करके, सुरक्षित रख लें। यह भस्म से सौम्य होती है।

गुण और उपयोग- रक्तपित्त, शारीरिक उत्ताप तथा ज्वर की गर्मी, हृदय की दुर्बलता आदि में लाभदायक हैं। शेष गुण उपरोक्त भस्म के समान ही है।

कपर्दक (कौड़ी)

परिचय- कौड़ियाँ सारे भारत में मिलती हैं। इसकी सफेद, लाल और पीली तीन जातियाँ होती हैं। आयुर्वेद में लिखा है कि जो कुछ पीतवर्ण युक्त और पीठ पर गांठदार तथा कुछ लम्बी और कुछ गोल आकारवाली हो, उसे 'वराटिका' कहते हैं। ६ माशे की वजनवाली कौड़ी श्रेष्ठ होती हैं। ऐसी ही कौड़ी भस्म के लिये लें।

शोधन विधी- कौड़ी को काँजी में एक प्रहर तक दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती हैं।

दूसरी विधि- पानी में नींबू का रस मिलाकर उसमें कौड़ी को डुबोकर एक घंटे तक आँच पर गर्म करें, फिर स्वांग शीतल होने पर छान कर सब कौड़ी निकाल लें। इस तरह भी कौड़ी शुद्ध हो जाती हैं।

भस्म विधि- हाथ पर लम्बा-चौड़ा उतना ही गहरा गड्ढा खोद लें। गड्ढे के अन्दर से खूब झाड़-बहारकर साफ कर लें। इस गड्ढे में एक लोहे का तवा रख दें। उस पर कौड़ी को अच्छी तरह बिछा दें। ऊपर से एक टिन की चद्दर ढक दें, जिससे कंडों की राख न मिल जाय, इस टिन की चद्दर के ऊपर जंगली कंडों को अच्छी तरह बिछा दें फिर आँच लगा दें। ८ घण्टे के बाद स्वांग शीतल होने पर धीरे-धीरे ऊपर की राख हटा दें, नीचे कौड़ी जलकर सफेद (खील) हो जायेगी। इसे नींबू के रस में घोंटकर छोटी-छोटी टिकिया बना कर सुखा लें और सराब-सम्पुट मे बन्द कर गजपुट में फूँक दें। एक ही पुट में बिल्कुल मुलायम भस्म बन जायगी। यदि कुछ कसर रह जाय तो दुबारा पुट दें।

दूसरी विधि- दो मिट्टी के तवों के बीच में कुछ कौड़ी रखकर १० सेर कंडों या लकड़ी के कोयलों की आंच में फूँक दें, स्वांग-शीतल होने पर निकाल कर पत्थर के खरल में २-३ बार नींबू के रस की भावना दें, सुखा और कपड़छन कर शीशी में भर लें। - सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती नींबू के रस या पान के रस या घृत तीन माशा और शहद आधा तोला मिलाकर प्रातः सायं दें।

गुण तथा उपयोग- यह भस्म परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, संग्रहणी, अम्लपित्त, रस, क्षय, अफरा, प्यास, गुल्म, उदर-वात, मन्दाग्नि आदि रोगों में लाभदायक है। इस भस्म में पित्त की अम्लता को कम करने का खास गुण है। यह शंख और शुक्ति की अपेक्षा पेट में स्वादुता उत्पन्न करती है। अतः कोष्ठगत-वायु द्वारा अफरा या उदरशूल तथा भोजन अच्छी तरह से परिपक्व न होने से बराबर खट्टी डकारों के आने पर पित्तज अजीर्णादि में कपर्दक भस्म अच्छा गुण करती है। यह वातहर, शूलघ्न तथा पाचक भी है।

अजीर्णादि लक्षणयुक्त रोग हो तो मधु के साथ दें। परिणामशूल में यदि वमन हो अफरा भी हो, तो दाड़िम-स्वरस या दाडिमावलेह के साथ देने से विशेष लाभकारी है। रसाजीर्ण में कपर्दक भस्म, हिंग्वष्टक चूर्ण के साथ तथा अन्नद्रव-शूल में शंख भस्म मिला कर देने से अवश्य फायदा करती है। ग्रहणी की प्रारम्भिक अवस्था में अफीम आदि स्तम्भक दवा न देकर, केवल भुना हुआ जीरा के चूर्ण के साथ कपर्दक भस्म अच्छा लाभकारक है। अम्लपित्त में बार-बार खट्टी डकारें एवं वमन आने की दशा में स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ मिलाकर दें।

श्वास रोग में-पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ देना अत्युत्तम है। अग्निमान्द्य में त्रिकटु (सोंठ, पीपल, काली मिर्च) के चूर्ण के साथ बहुत लाभदायक है।

कर्णस्त्राव में- कपर्दक भस्म को कान में डालकर ऊपर से नींबू का स्वरस डालना बहुत फायदेमंद हैं।

नोट- कपर्दक भस्म को मक्खन, मधु या मलाई में मिलाकर देना चाहिए। केवल कपर्दक भस्म का कभी भी उपयोग न करें। क्योंकि यह तीक्ष्ण होने से जीभ काट देती है।

सूखी खाँसी में- कपर्दक भस्म २ रत्ती की मात्रा में मलाई अथवा पान के रस के साथ देने से सूखी खाँसी जड़ से मिट जाती है।

क्षय रोग में- जब कि मन्दाग्नि हो जाय और खाँसी का वेग बराबर बढ़ता ही जाए। साथ ही कमजोरी भी बढ़ती जाये और भूख न लगे तो कपर्दक भस्म मक्खन के साथ दें।

मन्दाग्नि में- अग्नि प्रदीप्त कर भूख बढ़ाने और खाये हुए अन्न का यथोचित पाचन करने के लिए कपर्दक भस्म को पीपलामूल के चूर्ण के साथ देने से उपरोक्त दोष मिट जाते हैं।

• उदर शूल में- कपर्दक भस्म को काली मिर्च के चूर्ण के साथ मिलाकर आधे नींबू में भर कर उसको चूसने से उदरशूल मिट जाता है।

संग्रहणी की प्रारम्भिक अवस्था में- आम द्रव को पचाने के लिये कपर्दक भस्म का प्रयोग किया जाता है। इसमें क्रमशः आम संचित होता रहता है। यह आम इसलिये संचित होता है कि ग्रहणी जो अन्न पचाती है और पित्तधरा के नाम से शरीर में स्थित हैं। उसमें विकार होने से यह अन्न पचाने में असमर्थ हो जाती है, जिससे अपचित अन्न का आंव (कच्चा रस) बनने लगता है। इस ग्रहणी विकार को दूर करने के लिए कौंड़ी भस्म १ माशा, शहद ३ माशा और नमक १ रत्ती इन तीनों चीजों को एक पात्र में मिलाक चटावें, किन्तु इसके सेवन करने वाले को साठी चावल और दूध के पथ्य पर रहना चाहिए।

मुँहासे में- पीली कौड़ी को नींबू के रस में भिगो दें, जब रस सूख जाय तब खूब महीन पाउडर बनाकर लगाने से मुँह की झांई और मुहाँसे मिट जाते हैं।- औ.ग.ध.शा.

कहरवा (तृणकान्तमणि)

परिचय- एक प्रकार का गोंद, जो स्वच्छ, अत्यन्त चमकदार और रंग मे पीला होता है। इसे कपड़े आदि पर रगड़कर यदि घास या तिनके के पास रखें, तो उसे यह चुम्बक की तरह पकड़ लेता है। उक्त भौतिकीय आकर्षण शक्ति के कारण ही विद्युत-शक्ति को उर्दू में 'कुव्वत कहरूवाइया' कहा जाता है। यह प्रायः वर्मा की खानों तथा कतिपय अन्य खानों में भी निकलता है। इसका काठिन्य २.२।। और विशिष्ट गुरुत्व १.१ है।

परीक्षा- उत्तम कहरवा की पहचान यह है कि वह कड़ा, स्वच्छ, उज्ज्वल और स्वर्ण के समान पीतवर्ण हो और देर में पिघले। यदि हाथ से रगड़ने से वह गरम हो जाय, उसमें से नींबू जैसी खुशबू आवे और घास के तिनके, रेशम और रूई उठा ले तो उसे उत्तम समझना चाहिए।

कहरवा पिष्टी- कहरवा को छोटे-छोटे टुकड़े करके महीन चूर्ण कर छान लें। फिर इसको गुलाबजल में १०-१२ दिन तक लगातार खरल करे जब अच्छी तरह घुट-जाय, तब शीशी में सुरक्षित रख लें।

भस्म विधि- कहरवा को बारीक टुकड़े-टुकड़े करके मिट्टी के सिकोरे में रखकर अच्छी तरह मुख बन्द कर कपड़मिट्टी को लगा, सुखाकर गजपुट में फूँक दें, फिर प्रातःकाल निकाल कर खरल करके महीन भस्म छान कर काम मे लावें।

वक्तव्य- चूँकि कहरवा एक रालीय (गोंद) जाति का पदार्थ है, भस्म बनाने से इसके मौलिक गुण अत्यल्प रह जाते हैं, जबकि पिष्टी बनाने में सम्पूर्ण मौलिक गुण विद्यमान रहते हैं। अतः इसकी पिष्टी बनाकर व्यवहार करना लाभदायक है।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती दिन में २-३ बार शहद या मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग- अपनी, स्तम्भनकारिणी-शक्ति के रक्तष्ठीवन (रक्त मिला हुआ थूक निकलना) और रक्तस्राव को रोकता है। हृदय को भी शक्ति प्रदान करता है, क्योंकि इसमें हृदय को शक्ति प्रदान करने की प्रबल शक्ति है। यह पैत्तिक उन्माद में भी काफी लाभ पहुँचाता है, कारण इसमें प्रकृति को सौम्य रखने की उत्तम शक्ति है। अपनी धारक (ग्रहण) शक्ति के कारण यह संग्रहणी, आंव (पेचिश) और प्रवाहिका को भी दूर करता है।

पित्तविकार, हृदय की दुर्बलता, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तापित्त, वमन, प्रवाहिका (पेंचिश), अर्श आदि रोगों में इसका प्रयोग लाभदायक है। यह शीतल पित्तशामक एवं रक्तनिरोधक है। चक्कर आना, दाह, ज्यादा प्यास लगना आदि पित्तजन्य उपद्रवों में इसका प्रयोग लाभदायक है। नाक, मुँह, गुदा, योनि, लिंग आदि किसी भी मार्ग से गिरते हुए रक्त को रोकता है। मस्तिष्क में कीड़े पड़ जाने से बराबर होने वाले सिरदर्द में इससे अच्छा फायदा होता है। घाव पर छिड़कने से यह खून को बन्द कर घाव को सुखा देता है।

रक्तस्राव अर्श (बवासीर) या रक्तपित्त हो अथवा मूत्रमार्ग आदि से खून निकलता हो तो सफेद दूब के स्वरस के साथ देने से शीघ्र ही लाभ होता है। यह नकसीर (नाक फूटना) और नेत्ररोग में भी उपकार करता है। इसके अतिरिक्त आमातिसार, पेचिश (आँव), वमन, रक्तातिसार, मूत्रावरोध में भी इसका विशेष प्रयोग होता है।

व्रण कैसा भी दुष्ट हो, बराबर मवाद आता हो, कीड़े तक पड़ गये हों, बदबू भी आती हो, ऐसी हालत में इसकी पिष्टी उस व्रण के ऊपर पाउडर की तरह सूखे ही छिड़कने से बहुत फायदा करता है। आमाशय, यकृत और मूत्र-प्रणलियों को शक्ति प्रदान करता है, वृक्क एवं वात की निर्बलता तथा कामला में कल्याणप्रद है।

अग्निदग्ध- अग्नि से जल जाने पर इसकी पिष्टी को मृर्दासिंग, कबीला और गाय के घी के साथ मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। ऐसी गर्भवती स्त्री जिसका अकाल में गर्भ प्रसव हो जाता हो या गिर जाता हो उसके गर्भाशय की धारणा शक्ति बढ़ाने के लिए इसकी पिष्टी का सेवन उत्तम है अथवा साबूत कहरवा लेकर उसकी माला या ताबीज बना गले में धारण करने से भी गर्भ की रक्षा होती है।

आमाशय कमजोर होकर जब अपना काम करने में असमर्थ हो जाय तो कहरवा की पिष्टी, निशास्ता, कतीरा और खीरे का बीज=प्रत्येक १०।। माशे ओर गुलाब के फूल, बबूल का गोंद प्रत्येक ५।। माशे मिलाकर कूट-छान कर ईसबगोल के लुआब में मिला टिकिया बना लें, इसमें दो माशे की मात्रा में देने से अच्छा लाभ करता है।

पित्तविकार में इसके साथ प्रवाल पिष्टी २ रत्ती मिलाकर आँवले का मुरब्बा या अनार के शर्बत साथ या गौ-दूध के साथ दें। रक्तातिसार में कुटज क्वाथ या कुटजारिष्ट के साथ और पेचिश तथा बवासीर में ईसबगोल की भूसी के साथ मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिए।

कसीस

परिचय- आयुर्वेद मतानुसार कसीस दो तरह का होता है। एक पुष्प कसीस और दूसरा बालूकसीस। बालूकसीस को धातु कसीस भी कहते हैं। यह खनिज तथा कृत्रिम दोनो प्रकार का होता है। कृत्रिम लोहा और गन्धक के तेजाब से बनता है। प्राय: बाजार में यही मिलता है। अंग्रेजी दवा विक्रेताओं के यहाँ सल्फेट ऑफ आयरन के नाम से विशुद्ध कसीस (हरा) मिलता है। औषध प्रयोग के लिए यह उत्तम है।

शोधन विधि- कसीस को भांग के रस में दोलायंत्र-विधि से स्वेदन करने से एक बार ही में शुद्ध हो जाता है। या एक दिन निंबू रस की भावना देकर धूप में सुखा लेने से शुद्ध हो जाता हैं।

भस्म विधि- अच्छे हरे रंग का कसीस लेकर उसको लोहे के तवे पर रख, अग्नि पर गरम कर, उसका जल सुखा लें। बाद में ताजे (हरे) आँवले, भांगरा अथवा खन्धारी अनार के रस में मर्दन कर लघुपुट (थोड़े कण्डो की आँच) में फूँक दें। ऐसे दो पुट देने से ही लाल रंग की भस्म हो जायेगी। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती, सुबह-शाम शहद के साथ सेवन करें।

गुण तथा उपयोग- यह भस्म पाण्डु, रक्ताल्पता, क्षय कुष्ठ, यकृत-प्लीहा-वृद्धि आम विकार, उदर रोग, गुल्म, शूल आदि रोगों में उपयोगी है। रोग छूटने के बाद की कमजोरी को दूर करने तथा शरीर में नया रक्त पैदा कर शरीर को पुष्ट बनाने के लिये यह उत्तम है। यह पाचक पित्त के विकार को दूर कर अग्नि प्रदीप्त करती है। रक्तवर्धक एवं पित्तनाशक गुण विशेष होने से सुकुमार (कोमल) प्रकृतिवालों को विशेष अनुकूल पड़ती है। कसीस की भस्म मण्डूर से भी ज्यादा सौम्य है। यह कषाय-गुणयुक्त होने से नेत्र-रोगों में भी लाभदायक है।

यह ढीले अंगों को मजबूती और कड़ापन ला देती है। जख्म (व्रण) पर लगाने से खरोटें ला देती है। तर खुजली अर्थात् जिस खुजली के फोड़ों के बराबर मवाद बहता हो उसमें तथा सिर की गत्र्जता में लाभदायक है। नासूर में इसकी बत्ती रखने से बहुत लाभ होता है। इसको मंजन में डालने से मसूढ़ों के विकार अच्छे हो जाते हैं।

आधुनिक अन्वेषणों से ज्ञात होता है कि कसीस कारबंकल नामक फोड़ा के अन्दर बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

पाण्डु और रक्ताल्पता में- जब शरीर में रक्तकणों की कमी हो जाती है- इसका कारण यह होता है कि पाचक पित्त दूषित होकर अपना कार्य बन्द कर देता है, जिससे खायी हुई वस्तुओं का ठीक से पाचन न होने से अच्छा रस नहीं बनता और अच्छा रस न बनने से अच्छा

रक्त भी नहीं बनता, अतः रक्तकणों का बनना बन्द हो जाता है रक्त कण कम होने से पित्त भी कम बनता है, क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे के सहारे रहते हैं। इनमें से किसी एक के दूषित होने से दूसरा भी दूषित हो जाता है, यह स्वाभाविक है। ऐसी हालत में कसीस भस्म शहद के साथ कुछ दिन तक सेवन करने से बहुत लाभ होता है। इससे अग्नि प्रदीप्त होती है और पाचक पित्त काम ठीक करने लगता है तथा क्रमशः अच्छा रक्त भी बनने लग जाता है।

क्षय रोग में चौसठ प्रहरी पीपल के साथ तथा श्वेत कुष्ठ में त्रिफला और वायविडंग चूर्ण तथा न्यूनाधिक मात्रा में घृत और मधु के साथ दें। यकृत और प्लीहा-वृद्धि में शहद और गो-मूत्र के साथ तथा आम विकार में शहद और धान्यपंचक के क्वाथ के साथ दें। उदर रोग में त्रिकटु चूर्ण और शहद से तथा गुल्म शूल में घृत कुमारी रस और शहद से दें। नेत्र रोग में त्रिफला घृत अथवा आमलें के मुरब्बा से और रजोरोध मे एलुवा और हींग के साथ देने से मासिक धर्म साफ होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

कासीस गोदन्ती भस्म

हरा कासीस १० तोला शुद्ध गोदन्ती १० तोला लेकर ग्वारपाठे के रस में ६ घण्टा तक मर्दन कर छोटी-छोटी टिकिया बनावें। फिर टिकिया को सुखाकर सराब-सम्पुट में रख लें। इस प्रकार दो-तीन पुट देने से सिन्दूर जैसी लाल भस्म बन जाती है। -र.त.सा.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती मिश्री, दूध या शहद के साथ दें। विषम ज्वर में अदरक के रस और शहद से दें।

गुण और उपयोग- इस भस्म का प्रयोग करने से आमप्रकोपजन्य नवीन ज्वर, मलेरिया (विषमज्वर), जीर्णज्वर पाण्डु, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि और आम वृद्धि को नष्ट कर शरीर में रक्त की वृद्धि होती है। सगर्भा और प्रसूता स्त्रियां और बालकों के लिये भी हितकारी है। मलेरिया ज्वर आने के ४ घण्टा पूर्व एक मात्रा और दूसरी मात्रा दो घण्टा पूर्व देने से ज्वर रुक जाता है।

कासीस भस्म के विवेचन में दर्शाये गुणों से विशेष इस भस्म में रहते हैं। क्योंकि गोदन्ती का सम्मिश्रण हो जाने से कतिपय नूतन गुणों की उत्पत्ति होती है। अनेक कोमल प्रकृति के रोगी, पित्त-प्रधान प्रकृतिवाले, बालक, प्रसूता और सगर्भा स्त्री आदि को विषम ज्वर आने पर तीव्र औषध नहीं दे सकते हैं, उनके लिए कासीस गोदन्ती भस्म अदरख के रस और शहद के साथ दिन में २ या ३ बार देने से उत्तम लाभ होता है।

विषमज्वर प्रकुपित होने पर उसका विष मांस आदि धातुओं में लीन हो जाता है। इस स्थिति में तीव्र औषध देने पर रोगी की व्याकुलता बढ़ जाती है। पश्चात कान, आँख, वृक्क आदि पर बुरा प्रभाव पड़ता है एवं रक्तदाब भी बढ़ जाता है। ऐसी दशा में इस भस्म के सेवन से कुछ दिनों में तीव्र औषधियों का विष और रोग-विष नष्ट होकर शमन हो जाता है एवं शरीर भी सबल हो जाता है। विषम ज्वर जीर्ण होने पर स्वर्णवसन्तमालती और लघुवसन्तमालती आदि औषधियाँ उत्तम कार्य करती हैं, किन्तु आम प्रकोप से पीड़ित रोगियों को इनकी अपेक्षा कासीस गोदन्ती भस्म विशेष लाभप्रद है। यदि धातुक्षीणता अधिक हो तो इस भस्म के साथ स्वर्णवसन्तमालती देने से सत्वर लाभ होता है।

विषम ज्वर अधिक दिन रहने पर प्लीहा बढ़ जाती है और मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। थोड़ा भी अपथ्य या आहार-विहार में भूल होने पर ज्वर बढ़ जाता है। ऐसे रोगियों को कासीस गोदन्ती भस्म ४ से ६ रत्ती अमृतारिष्ट के साथ देते रहने से थोड़े ही दिनों में प्लीहागत कीटाणु और विष नष्ट होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

मसूढ़ों में पूय (Pyorrhea) होने पर भोजन के साथ पूय आमाशय में जाता है। पश्चात आमाशय और लघु आंत्र आदि भाग दूषित हो जाने पर अग्निमान्द्य उदरशूल, बेचैनी, पाण्डुता, शिर में भारीपन और निर्बलता आदि लक्षण उपस्थित होते है तथा रोगी को शान्त निद्रा नहीं आती। ऐसी दशा में दूषित दाँत निकलवा दें, अथवा दाँतों का स्थानिक योग्य उपचार करावें। साथ ही कासीस गोदन्ती भस्म का सेवन कराने पर सब उपद्रव शमन होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

कांस्य (काँसा)

परिचय- आठ भाग तांबा और दो भाग खुरक बंग- इन दोनों को अग्नि में द्रुत (पतला) करके मिला देने से कृत्रिम कांस्य बनता है। इस विधि से खानों के अन्दर भी इसकी उत्पत्ति होती है। सौराष्ट्र देश का बना काँसा अच्छा माना जाता है।

उत्तम कांसा के लक्षण- जो कांसा बजाने से तेज शब्द करता हो और मृदु स्निग्ध तथा थोड़ी श्यामलता लिये श्वेत (सफेद) और निर्मल (स्वच्छ) हो, तथा अग्नि में तपाने से लाल हो जाता है, वह काँसा श्रेष्ठ और भस्म के योग्य होता है।

शोधन विधि- काँसे को अग्नि मे तपा-तपा कर तिल तैल, गोमूत्र, मट्ठा (छाछ), काँजी और कुल्थी के काढे में तीन-तीन बार बुझाने से काँसा शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध काँसे का चूर्ण और हिंगुल दोनों समान भाग लेकर नींबू के रस से मर्दन कर धूप में सुखा लें। सूख जाने पर सराव-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार तीन गजपुट देने से काँसा की अच्छी भस्म बन जाती है।-र.त.

दूसरी विधि- काँसे के बुरादे को तैल-तक्रादि में शुद्ध कर, उस शुद्ध काँसे के बुरादे के बराबर सेन्धा नमक तथा बराबर शुद्ध गन्धक मिलाकर नींबू-रस या इमली के पानी की भावना देकर मिट्टी की हँडिया में रखकर कपड़मिट्टी करके गजपुट में कुछ तेज अग्नि दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर घुटाई कराकर बराबर गन्धक मिला, नींबू या इमली के पानी की भावना देकर सराबों में बन्द कर गजपुट की अग्नि दें। स्वांगशीतल होने पर पूर्ववत घुटाई कराकर आधा (वजन में) गन्धक मिलाकर, नींबूरस या इमली रस की भावना देकर पुट दें। स्वांगशीतल होने पर गजपुट से निकाल, अच्छी घुटाई करा, कड़ाही पर कपड़ा लगाकर, कपड़े पर थोड़ी-थोड़ी भस्म और पानी डालकर हाथ में चलाते रहें, इस प्रकार पानी के साथ भस्म को छान लें। छानने के बाद ३-४ घण्टे पड़ा रहने दें ताकि भस्म पेन्दे में जम जाय, तब ऊपर का पानी नितार कर अलग कर दें। जब तक पानी हरा आता रहे तथा स्वाद अच्छा न हो तब तक इसी प्रकार भस्म की धुलाई करना आवश्यक है। जब पानी का हरापन आना बन्द हो जाय तब पुनः भस्म की अच्छी तरह घुटाई (पिसाई) कराकर, अन्तिम पुट में भस्म में थोड़ा तेल का मोयण देकर कड़ाही में रखकर भट्टी पर चढ़ाकर आँच लगाकर तैल को जलावें। भट्टी पर चढ़ी हुई कड़ाही के माल कांस्य भस्म को चलाते रहना चाहिए। पश्चात् स्वांगशीतल होने पर भस्म की पिसाई कराकर महीन कपड़े से छान कर काँच या चीनी मिट्टी के पात्र में भरकर रख लें।- र.सा.सं. के आधार पर स्वनुभूत-विधि

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, प्रातः सायं मधु या गुलकन्द के साथ दें।

गुण और उपयोग- काँसे की भस्म लघु, तिक्त, उष्ण और लेखन है। यह कृमि, कुष्ठ, वात-पित्तनाशक अग्नि को प्रदीप्त करनेवाली, दृष्टि को बढ़ानेवाली, प्रदर, प्रमेहादि रोगों पर भी उत्तम कार्य करती है। कांस्य के सेवन से त्वचा का रूखापन मिट कर त्वचा पर कोमलता आ जाती हैं। -आ.सा.सं.७

कृमि रोग- कोष्ठबद्धता के कारण दस्त साफ नहीं होता, फलत: जब पुराने मल संचित हो जाते हैं, तब इनमें संडाद उत्पन्न होकर पेट में छोटे-छोटे कीड़े(चुन्ने) हो जाते है जिससे मन्दाग्नि हो जाती है, भूख नहीं लगती, दिनोंदिन कमजोरी बढ़ती जाती है। रोगी की अवस्था क्रमश: गिरती चली जाती है। ऐसी दशा में कांस्य भस्म १ रत्ती, वायविडंग चूर्ण १ माशा, बावची चूर्ण १ माशा, एकत्र मिलाकर विडंगारिष्ट अथवा अभयारिष्ट के साथ सेवन करने बहुत लाभ होता है।

रक्तविकार- (कुष्ठ) में रक्त विकृत होने से पूर्व दस्त कब्ज की शिकायत होने लगती है जिसे शरीर के अन्दर एक तरह की गर्मी उत्पन्न हो जाती है। यह गर्मी रंजक पित्त की विकृति से होती है, इसलिए शरीर में रूक्षता, चमड़े में कठोरता आदि कई विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में कास्य भस्म, गन्धक रसायन मिलाकर सारिवाद्यारिष्ट के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

कांस्य में ताँबा और बंग का मिश्रण है, अत: नेत्र रोगों में आँवले के मुरब्बे के साथ या दूध के साथ, प्रमेह रोग में हल्दी के स्वरस और मधु के साथ इसका प्रयोग करना ठीक है।

कुक्कुटाण्डत्वक भस्म

भस्म विधि- मुर्गी के अण्डे के ऊपर का सफेद छिलका १० तोला लेकर यवकुट कर लें। इसे एक मिट्टी के सकोरे या छोटे से मिट्टी के बरतन में रख ऊपर से चाँगेरी का रस इतना डाले कि वह डूब जाय, बाद में सकोरे या बरतन का मुँह बन्द कर सिन्ध लेप करके पुट में (१० सेर कण्डों की आँच में) फूँक दें। स्वांगशीतल होने पर इसे निकाल कर देख लें। सफेद मुलायम भस्म बन गई हो तो लाकर रख लें, अन्यथा यदि एक बार में आंच कम लगने या और किसी गड़बड़ी के कारण भस्म काली हो गयी हो तो पुन: चाँगेरी रस डाल कर पुट दें। इस तरह से दो-तीन पुट देने से उत्तम स्वच्छ और मुलायम भस्म बन जाती है।

विशेष गुण- वृद्धि के लिए कोई-कोई इसी भस्म में हिंगुल ४ तोला मिलाकर ग्वारपाठा (घीकुमारी) के रस में घोंट, टिकिया बना-सुखा, सराब-सम्पुट में बंद कर गजपुट में ५-६ पुट और दे देते हैं।

वक्तव्य- हिंगुल सिर्फ प्रथम पुट में ही देना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- इस भस्म को १ रत्ती की मात्रा में लेकर १ रत्ती बंग भस्म में मिला मलाई के साथ खाने से प्रमेह एवं मूत्ररोग नष्ट होते हैं। यह वाजीकरण और रसायन भी है। अत: धातु विकार में छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती और कान्तलौह भस्म २ रत्ती में मिलाकर द्राक्षासव के साथ देने से शुक्र-दोष दूर होकर शरीर में ताकत आ जाती है। इसके सेवन से स्वप्नदोष, धातु का पतलापन आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

इसी तरह स्त्रियों के रजोविकार यथा-प्रदर, सोमरोग आदि नष्ट हो जाते हैं। प्रसव के बाद स्त्रियाँ अक्सर कमजोर हो जाया करती हैं, ऐसी अवस्था में कुछ रोज तक प्रतापलंकेश्वर रस में मिलाकर अनार शर्बत के साथ इस भस्म का और ऊपर से दशमूलारिष्ट या दशमूल क्वाथ (काढ़े) का सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। इससे स्त्रियों की कमजोरी दूर हो जाती है।

खर्पर

परिचय-पत्राकार (दुर्दुर)और कारबेल्लक भेद से यह दो तरह का होता है। इनमें कारबेल्लक ठीक करेला के आकार का होता है और यही श्रेष्ठ भी है। भस्म भी इसी की बनाई जाती है। कुछ वैद्य खर्पर को नाग का मैल मानते है। पुराने समय में जहाँ नाग (शीशा) गलाने की भट्टियाँ

होती थी वहाँ नाग का मैल मिट्टी में मिला कर खर्पराकार या पिण्डाकार गोल अथवा लम्बे-चपटे टुकड़ों के रूप में जमा हो जाता था उन्हीं टुकड़ों को प्राचीन वैद्य काम में लाते थे, किन्तु आधुनिक रसायनशास्त्रियों के मतानुसार खर्पर यशद का उपधातु है जिसे अंग्रेजी में जिंग कार्बोनेट (Zink Carbonate) कहते हैं। अमेरिका से आनेवाले स्मिथसोनाईट और कैलेमाईन नामक द्रव्यों को क्रमशः कारबेल्लक और दुर्दुर के स्थान पर आजकल व्यवहार किया जाता है, किन्तु खर्पर के सम्बन्ध में वैद्यों में एकमत नहीं है। हमारी सम्मति में जब तक खर्पर के विषय में सर्व सम्मत निर्णय न हो तब तक इसकी भस्म के स्थान पर यशद भस्म का प्रयोग करना उत्तम है।

शोधन विधि- खपरिये का सूक्ष्म चूर्ण बना मिट्टी या काँच के पात्र में डालकर ऊपर से पात्र को गोमूत्र से भर दें। प्रतिदिन गोमूत्र बदलते रहें। इस प्रकार सात दिन तक करें। आठवें दिन गरम पानी से धोकर सुखा लें।-सि.यो.सं.

भस्म विधि- शुद्ध खर्पर के कपड़छन चूर्ण को समान भाग पारे के साथ खूब घोंटकर कपरौटी की हुई बोतल में रखकर बालुका यंत्र में एक दिन पकाने से इसकी उत्तम भस्म बन जाती है।

मात्रा और अनुपान- २ से ३ रत्ती तक शहद, घृत या आवश्यकतानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह बीसों प्रकार के प्रमेह, कफ, पित्त, नेत्ररोग और राजयक्ष्मा को नष्ट करता है, लौह तथा पारद को रंग देता है। धातुगत जीर्णज्वर को नष्ट करने में यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है।

नागार्जुनाचार्य- ने खर्पर तथा पारद को सिद्ध रस कहा है। ये दोनों देह को दृढ़ करते हैं। क्षयजन्य बुखार या जीर्ण ज्वर में पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती, खर्पर भस्म १ रत्ती और च्यवनप्राश १ तोला के साथ देने से अति गुणदायक होता है। इन रोगों में स्वर्णवसन्त मालती जैसी शास्त्रीय प्रसिद्ध औषधि का प्रयोग अधिक होता है, जिसमें खर्पर भस्म की मात्रा अधिक हैं। पुरानी खाँसी में यदि अन्य दवाओं से लाभ होता दिखाई न पड़े तो उस समय सितोपलादि चूर्ण के साथ खर्पर भस्म का प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

वक्तव्य- अनेक वैद्य पाश्चात्य विधि से बनी हुई खर्पर भस्म (Calamina preparata) का भी व्यवहार करते हैं। आधुनिक युग के आयुर्वेद द्रष्टा ऋषि यादवजी ने भी अपने अनुभव से उसे उत्तम बनाया है।

गोदन्ती (हरताल)

परिचय- यह अपने इसी नाम से प्रसिद्ध है। बाजार में पत्रमय-शिला या पाशेदार टुकड़ों के रूप में यह मिलती है। औषध में दोनों का प्रयोग होता है। बम्बई में इसे घाषाण तथा दक्षिण भारत के सिद्ध सम्प्रदाय में कर्पूर शिला एवं अंग्रेजी में जिप्सम (Gypsum) कहते हैं।

शोधन विधि- अच्छी गोदन्ती को गर्म पानी से धोकर साफ करके धूप में सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं.

भस्म विधि- जमीन में एक हाथ गहरा गड्ढा बना उसका चौथाई भाग कण्डों से भरकर उस पर गोदन्ती के टुकड़ों को अच्छी तरह बिछा दें और ऊपर कण्डों से शेष भाग को भरकर आँच दें। स्वांगशीतल होने पर कण्डों की राख को सावधानी से हटाकर गोदन्ती भस्म को निकाल

चन्दनादि अर्क (उत्तम चन्दन का चूर्ण, मौसमी गुलाब तथा केवड़ा, वदेमुश्क या मौलसरी और कमल के फूल-सबको एकत्र कर उसमें आठ गुना पानी डालकर भबके से आधा अर्क खींचे) इसमें या ग्वारपाठा (घीकुमारी) के रस में घोंट टिकिया बना धूप में सुखावे, जब टिकिया खूब सूख जाये तो सराव-सम्पुट में बन्द कर लघुपट में फूँक दे। यह स्वच्छ-सफेद और बहुत मुलायम भस्म तैयार होगी।-सि.यो.सं.

दूसरी विधि- गोदन्ती के टुकड़ों के नीचे-ऊपर ग्वारपाठे का गुदा लगा हँडिया में रख गजपुट में पुट देने से एक-दो पुट में उत्तम भस्म बन जाती है।

गुण और उपयोग- साधारणतः किसी भी प्रकार के ज्वर में ज्वर की गर्मी तथा दाह, प्यास, वमन, शिरोवेदना, आदि ज्वर के उपद्रवों को कम करने के लिये इसका उपयोग होता है। विषम ज्वर में जब तक ज्वर का वेग हो तभी तक इसका प्रयोग करना चाहिए। ज्वर-वेग उतरने के बाद सप्तवर्ण बटी, महाज्वरांकुश रस आदि ज्वर के आगामी (होनेवाले)वेग को रोकनेवाली औषधियों का प्रयोग करें। ज्वर के अतिरिक्त प्रतिश्याय (जुकाम),स्त्रियों के श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर, रक्तस्राव, सूखी खाँसी में यह विशेष लाभदायक होती है। बालकों के ज्वर, कास-श्वास, कब्ज और अजीर्णादि रोगो में भी लाभ करती हे। मलेरिया के लिये तो यह बहुत प्रसिद्ध औषध है।

मलेरिया के अत्यधिक तापमान में गोदन्ती भस्म २ रत्ती, फिटकरी भस्म २ रत्ती सफेद जीरे का चूर्ण ४ रत्ती -तीनों को तुलसीपत्र-रस और शहद में मिलाकर चटाने और ऊपर से सुदर्शन अर्क ५ तोला पिलाने से मलेरिया की गर्मी दूर हो जाती है।

गोदन्ती भस्म ६ रत्ती में एक चावल संखिया भस्म मिला शहद के साथ दें, ऊपर से सुदर्शन चूर्ण का क्वाथ बनाकर अथवा सुदर्शन अर्क ही ५ तोला पिला देने से भी बहुत लाभ होता है, यह शीत ज्वर या पारी वाले बुखार के लिये विशेष गुणकारी है।

सिर-दर्द में- ३ रत्ती गोदन्ती भस्म और १ माशा मिश्री तथा १ तोला गोघृत सब को मिलाकर दिन में तीन बार देने से विशेष लाभ होता हैं। इसी प्रकार सूर्यावर्त, अर्धावभेदक (अधकपारी) में सूर्योदय से १।-१। घंटा पहले दो मात्रा गोदन्ती भस्म शहद के साथ देने से अवश्य लाभ होता है। यदि कफज सिर-दर्द हो तो आधी रत्ती समीरपन्नग रस मिलाकर घी के साथ देना चाहिए। स्त्रियों के श्वेत प्रदर में गोदन्ती भस्म ६ रत्ती और त्रिबंग भस्म १ रत्ती मिला शर्बत बनप्सा या मधूकाद्यवलेह के साथ देने से उत्तम लाभ होता है। रक्त प्रदर में पूर्व मिश्रण सहित देकर ऊपर से अशोकारिष्ट या पत्रांगासव पिलाने से बहुत शीघ्र फायदा करती है।

गोमेद-मणि

परिचय- सफेद, लाल, पीला और नीलवर्ण के भेद से यह चार तरह की होती है। सफेद रंग की अत्यन्त चिकनी गोमेद-मणि धारण करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कुरूप, खुरदरी और मलिन गोमेद-मणि अच्छी नहीं होती हैं।

उत्तम गोमेद-मणि- जो अत्यन्त चिकना तथा देखने में स्वच्छ और गोमूत्र के समान वर्णयुक्त हो, स्निग्ध तथा समानाकर हो, पत्ररचना रहित, मसृण, ज्यादा भारी न हो तथा चमकदार हो, वह उत्तम होता है। इस तरह की गोमेद-मणि भस्म के लिये लेनी चाहिए।

शोधन विधि- गोमेद-मणि को छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हे सोना गलानेवाली मूषा या सकोरे में रख अग्नि पर तपावें। जब लाल हो जाय, तब चन्दनादि अर्क या आँवले के स्वरस में बुझावें। ऐसे ५०-१०० बार करें, अर्थात् जब तक मणि नरम होकर आप से आप टुकड़े न हो जायें, तब तक बुझावें।

दूसरी विधि- दोलायंत्र में नींबू के रस से ३ घंटे तक स्वेदन करने से गोमेद-मणि उत्तम शुद्ध हो जाती हैं।

भस्म विधि- उपरोक्त प्रकार से शोधित गोमेद लेकर खूब साफ किये हुए लोहे के इमामदस्ते में कूट कर महीन रेशमी कपड़े से छान लें, फिर समाक पत्थरवाले खरल में डाल ताजे आँवले के स्वरस से मर्दन कर टिकिया बना सुखा दें। फिर इसे सराव-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार ३० पुट दें। बाद में चन्दनादि अर्क में तीन दिन मर्दन कर छाया में सुखा, महीन रेशमी कपड़े से छान, शीशी में भर कर रख लें।

नोट- रत्नों की भस्म एक साथ २० तोला से ज्यादा न बनावें। आ.प्र.

गोमेद-पिष्टी-शुद्ध गोमेद को लेकर इमामदस्ते में कूट-कपड़ छानकर महीन चूर्ण बना लें, फिर इसे गुलाब जल या चन्दनादि अर्क में लगातार एक सप्ताह तक घोंटकर पिष्टी बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती, सुबह-शाम-शहद (मधु), घृत या मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसकी पिष्टी (भस्म) क्षय, रोग में जब पित्ताधिक्य के कारण कफ सूख गया हो और खाँसी बराबर आती हो, खाँसते-खाँसते रोगी पसीने से तर हो जाता हो, साथ में बुखार की भी गर्मी बढ़ती ही जाती हो और कमजोरी भी हो तथा शरीर में रक्ताणुओं की कमी के कारण देह पीली हो गयी हो, ऐसी दशा में इसकी पिष्टी १ रत्ती को सितोपलादि चूर्ण १ माशा और च्यवनप्राशावलेह १ तोला मिलाकर प्रातः-सायं देना और भोजनोत्तर एकत्र मिला हुआ द्राक्षारिष्ट तथा बब्बूलारिष्ट १।। तोला समान भाग शीतल जल में मिलाकर पीने से शीघ्र लाभ होता है।

यह दीपन और पाचन भी है, अतः किसी रोग के बीच में या रोग घटने के बाद मन्दाग्नि हो, भूख नहीं लगती हो, कोई भी पदार्थ खाने की इच्छा न हो, तो इसकी पिष्टी १ रत्ती और कपर्दक भस्म ४ रत्ती, दोनों को मिला अनार शर्बत के साथ देने तथा ऊपर से आर्द्रक खण्ड १ तोला खिलाने से उत्तम लाभ होता है।

यह बुद्धिवर्द्धक भी है। कफ प्रकृतिवालों की अपेक्षा पित्त और वात प्रकृतिवालों की बुद्धि इसके सेवन से तीक्ष्ण होती है। क्योंकि कफ तमोगुण-प्रधान है। और तमोगुण पदार्थ बुद्धिनाशक होता है। बुद्धि-वृद्धि के लिए गोमेद-पिष्टी १ रत्ती को ब्राह्मी और बच के समान भाग चूर्ण ३ माशे में मिला घी और चीनी के साथ सेवन करना चाहिए। इससे कफ छँटकर निकल जाता है। इसका असर मस्तिष्क पर ज्यादा पड़ता है। यह त्वचा को भी साफ रखती है और बल, वीर्य तथा आयु की वृद्धि करती है।

जस्ता (यशद)

परिचय- यह एक सुप्रसिद्ध धातु है और यह मद्रास, बंगाल, राजपूताना, पंजाब आदि कई स्थानों में खान से निकलता है, इसका रंग सफेद होता है। व्यवहार में इसका उपयोग व्यापारी लोग सुराही, हुक्का, गिलास, कटोरी, थाली आदि बनाने के काम में करते हैं। यह पानी से अठगुना भारी होता है। प्राचीन रस ग्रन्थों में उसे रसक सत्व या खर्पर सत्व नाम से कहा हैं। यशद नाम से इसका सर्वप्रथम वर्णन भावप्रकाश और आयुर्वेद प्रकाश में मिलता है। यशद का विशिष्ट गुरुत्व ७ है। ४२०^{0} शतांश तापमान पर यह पिघलता है और ९०७^{0} शतांश तापमान पर उबलता है। इसकी भस्म १४००^{0} शतांश तापमान पर उड़ने लगती है। खुली हवा में गरम करने पर यह नीली ज्वालाओं के रूप में जलकर इसकी सफेद भस्म बन जाती है। इसे जस्ते का फूल

या मली कहते हैं। राजस्थान और पंजाब में अंजन के प्रयोग में लिया जाता है, जयपुर की मली बहुत प्रसिद्ध है। यही असली पुष्पांजन भी है। इससे उत्तम लाभ होता है।

शोधन विधि- जो जस्ता भारी, सफेद, चमकदार और दाँतों के समान मोटे रवेवाला हो, वही उत्तम समझा जाता है, उसी की भस्म अंजन के काम में लेनी चाहिए।

ऐसे उत्तम जस्ते को प्रथम अन्य धातुओं की तरह सात-सात बार तैल, तक्र, गोमूत्र-काँजी आदि में बुझावे। फिर इसको तेज आँच पर कड़ाही में रख गलाकर पतला करके गो-दुग्ध में बुझावें। इस तरह २१ बार गो-दुग्ध में बुझाने से शुद्ध हो जाता है। जस्ते का द्रव (पतला) होते समय उस पर मलाई- सा किट्ट की तरह जमता रहता है। उसको फेंके नहीं, उसे बचे हुए जस्ते के साथ गरम करके बुझाते रहें।- सि.यों. संग्रह

नोट- यह ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी गली (पतली) धातुएँ दूध आदि पतले जलीय पदार्थों में डालने से उछलती हैं। अत: जिस बरतन में बुझाया जाय उस बरतन के ऊपर चक्की का पाट या कोई ऐसे वजनी पदार्थ का बरतन रख देना चाहिए, जिसके बीच में छेद हो। उसी छेदे की राह से धातु को उसमें बुझाना चाहिए।(बुझाने के लिए लोहे का इमामदस्ता लेना ठीक रहता है। इस क्रिया से जस्ता उछलकर बाहर नहीं आता तथा अच्छी तरह शोधन भी हो जाता है।)

भस्म विधि- शुद्ध यशद को कड़ाही में आग पर पिघला कर नीम के गीले पत्तों का रस चूर्ण का थोड़ा-थोड़ा प्रक्षेप देकर नीम के डंडे से चलाते रहें। चूर्ण होने पर ढाँककर ४-५ घण्टे तक तीव्र आँच लगाये। स्वांग-शीतल होने पर पीसकर पश्चात् एक बर्तन पर कपड़ा बाँधकर कपड़े पर थोड़ी-थोड़ी भस्म और पानी डालकर हाथ से चलाते जाएँ, इस प्रकार सारी भस्म छान लें और ३-४ घण्टे तक पड़ा रहने दें। बार में पानी को नितार कर अलग कर दें तथा भस्म को सुखाकर ग्वारपाठा स्वरस की भावना देकर टिकिया बना सुखाकर सरावों में रख कपड़मिट्टी से सन्धि बन्द कर प्रथम पुट में तेज आँच दें। बाद में इसी प्रकार उत्तरोत्तर कुछ हलकी आँच में पुट दें। १०-११ पुट में कुछ ललाई लिए पीली रंग की भस्म बनेगी। इसकी बारीक घुटाई कराकर महीन कपड़े से छानकर काँच या चीनी मिट्टी के पात्र में भरकर रख लें।

-रसायन सार के आधार पर स्वानुभूत विधि

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती, शहद, मक्खन, मलाई, मिश्री या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसकी भस्म कड़वी, कषैली, शीतल, पित्त-नाशक, नेत्रों के लिए लाभदायक और पाण्डु, प्रमेह तथा श्वास को नष्ट करनेवाली है। नेत्ररोग में इसकी भस्म बहुत लाभदायक है, जैसे- नेत्र (आँख) में रोहे आना, आँख में दर्द होना, बराबर आँख में लाली बनी रहना या जल्दी-जल्दी आँखे आ (उठ) जाना, इन रोगों में १ माशा यशद भस्म और गो-घृत २ तोला, दोनों को बासी पानी से १०८ बार काँसे की थाली में डालकर हाथ की हथेली से खूब मथकर प्रतिबार पानी निकाल कर धोकर रखें, फिर अंजन बनाकर आँखों में आँजने से शीघ्र लाभ होता है। यदि बच्चों के लिये बनावें तो १ तोला मक्खन और चौथाई रत्ती भीमसेनी कपूर भी डाल दें। यह बच्चों के लिये विशेषकर लाभदायक होगा। ग्रीष्मकाल में होनेवाले बच्चों के फोड़े-फुन्सियों में भी लगाने से अच्छा लाभ होता है।

इस अंजन से पैत्तिक रतौन्धी दूर हो जाती है, परन्तु रतौन्धी में इतना और करें कि प्रात:काल त्रिफला के जल से सिर और आँखों को खूब धो दिया करें।

इसकी भस्म को घी में मिलाकर गर्मी में फोड़ा-फुंसी आदि पर लेप लगाते हैं। हाथ पैरों की अंगुलियों की बीच जो पानी लग जाने से सफेद पड़ जाती है, उस पर इस भस्म को घी में या नारियल-तैल में मिलाकर लेप करने से लाभ होता है।

बच्चों की पीठ, छाती या माथे पर कभी-कभी ग्रन्थि (गाँठ)हो जया करती है, और क्रमश: बढ़ती रहती है। साधारण बोल-चाल में इसको मांस वृद्धि कहते हैं। शास्त्रकारो ने इसका नाम अर्बुद(रसौली) रखा हे। इस पर यशद भस्म का प्रभाव प्रवालपिष्टि के साथ अच्छा पड़ता हैं। साथ ही ग्रन्थि फूटने के लिये-कासीस, सेन्धानमक, चित्रक की जड़, आक और सेहुँड के दूध, दन्ती की जड़, गुड़ और गौ-दुग्ध इसका लेप बनाकर ग्रन्थि पर लेप करें, तो ग्रन्थि फुट जायेगी। जस्त भस्म सरसों के तेल में मिला कर पैत्तिक सूजन पर लेप करने से सूजन मिट जाती हैं।

यह भस्म कषाय और शीतल गुणयुक्त है। रसवाहिनी और रसपिण्ड की विकृति में यह बहुत उत्तम औषधि मानी गई है। यह कफ और पित्त शामक, दाह, प्रदर, पित्तज-प्रमेह, खाँसी, अतिसार, संग्रहणी, धातुक्षय, जीर्णज्वर, पाण्डु, श्वास आदि रोगों में लाभदायक हैं। कण्ठमाला, अपची और आभ्यन्तरिक शोध में भी लाभदायक है।

नेत्र रोग में १ माशा घी और ४ माशा शहद के साथ खाकर ऊपर से दूध पियें। दवा सेवन के साथ-साथ १ रत्ती यशद भस्म ६ माशे शतधौत घृत में मिलाकर दिन में दो बार अंजन करना चाहिए। इससे नेत्र की ज्योति बढ़ती है। पेट में दाह (जलन) हो, तो प्रवाल पिष्टी और आँवले के मुरब्बे के साथ १ रत्ती यशद भस्म, जामुन की गुठली का चूर्ण १ माशे में मिलाकर शहद के साथ देने से लाभ होता है। विशेषकर पैत्तिक प्रमेह में जब कि सर्वांग में दर्द हो, हाथ-पैर मे जलन हो, प्यास अधिक लगती हो, जिव्हा सख्त और फट जाये, कण्ठ में शोथ हो, मस्तिष्क शून्य हो जाय, थोड़े ही परिश्रम से थकावट मालूम हो इत्यादि लक्षणों से युक्त प्रमेह में यशद भस्म १ रत्ती, गिलोय सत्व ४ रत्ती, शिलाजीत १ रत्ती के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। खाँसी में सितोपलादि चूर्ण के साथ देना चाहिए।

अतिसार और संग्रहणी में-कभी-कभी आँतों में शोथ होने पर अतिसार हो जाया करता है, साथ में वमन, ज्वर, उदर शूल, स्वर भंग आदि उपद्रव होते हैं और रोगी की शक्ति क्षीण होकर ऐसी दशा हो जाती है कि उससे उठा-बैठा नहीं जाता, यहाँ तक की हाथ-पैर का संचालन भी अच्छी तरह नहीं कर सकता अर्थात् बहुत भयंकर परिस्थिति हो जाती है। ऐसी भीषण परिस्थिति में यशद भस्म बहुत अच्छा काम करती है। यशद भस्म १ रत्ती, मिश्री ४ रत्ती दोनों एकत्र मिलाकर ३ पुड़िया बना प्रात:, दोपहर, तथा सायं में शहद या मट्ठा (छाछ) से दें।

धातुक्षय के कारण-धातु इतनी पतली हो गयी हो कि पेशाब के साथ पानी की तरह बहकर निकल जाती हो या स्त्री विषयक अथवा तत्प्रसंग विषयक चर्चा होते ही धातु-स्राव हो जाता हो या थोड़ी भी खट्टी-मीठी चीजें खा लेने से रात में स्वप्न दोष हो जाता हो, अथवा मैथुनेच्छा (स्त्री प्रसंग की इच्छा) होते ही शुक्रस्त्राव हो जाता हो ऐसी दशा में रोगी बहुत परेशान हो जाता है। इसमें यशद भस्म १ रत्ती और शिलाजीत १ रत्ती दोनों एकत्र मिलाकर मलाई या मक्खन के साथ सेवन करने से फायदा होता है।

राजयक्ष्मा- जबकि इस रोग का असर सम्पूर्ण शरीर में अच्छी तरह व्याप्त हो गया हो, खाँसी के मारे छाती ओर कलेजा तथा पीठ में दर्द मालूम होता हो, फुफ्फुस के कुछ भागों में इसका असर पड़कर वह भाग नष्ट हो गया हो, बुखार हर समय बना रहता हो, प्रात:काल पसीना जोरों से आता हो, बल तथा मांसादि क्षीण हों- ऐसी दशा में यशद भस्म १ रत्ती, मोती पिष्टी आधी

रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशा और च्यवनप्राशावलेह अथवा वासावलेह २ तोला में मिलाकर सेवन करावें। ऊपर से बकरी का दूध पिला दें। इससे पूर्वोक्त उपद्रव शान्त होकर रोग का शमन होने लगता है।

पाण्डु रोग में- मण्डूर भस्म के साथ देने से लाभ होता है, और उसके उपद्रवों में पान के रस और मधु के साथ देने से लाभ होता है।

पैत्तिक प्रमेह में- **यशद भस्म के उपयोग से विशेष फायदा होता है। जिस प्रमेह में रोगी को पित्ताधिक्य के कारण हाथ-पाँव तथा सम्पूर्ण शरीर में** दाह मालूम हो, प्यास लगने पर थोड़े- ही पानी से शान्ति मिल जाय, मन में बेचैनी के कारण विचार-शक्ति का ह्रास और मस्तिष्क शून्य मालूम पड़े, ऐसी दशा में यशद-भस्म, प्रवाल चन्द्रपुटी या गुडूची सत्व के साथ देने से लाभ होता है।

पित्तज्वर और रक्तातिसार में छूहारे और चावल के धोवन के साथ, शीतज्वर में लौंग और अजवायन के साथ तथा वमन और जी मिचलाने में मिश्री और जीरे के साथ देना बहुत लाभप्रद है।

पंचकोल(पीपल, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) के साथ यशद भस्म १ रत्ती खाने से मन्दाग्नि दूर हो जाती है। इसको ६ माशे अद्रक का रस और ६ माशे शहद के साथ सेवन कराने से खाँसी व दमा नष्ट हो जाता है।

सूजाक में जब रोगी को कभी चैन न पड़ती हो, मारे दर्द के परेशान रहता हो, इन्द्रिय में जलन, पेशाब में भी जलन तथा बहुत कष्ट भी होते हों, मवाद का रंग पीला सा तथा उसमें बुरी बास (बदबू) आती हों, ऐसी दशा में ३ माशे सन्दल तैल (चन्दन तैल) आधी रत्ती यशद भस्म मिलाकर दें। ऊपर से दही की लस्सी पिला दें तथा प्रातः सायं त्रिफला को दही के पानी में भिगोकर उस पानी को छान कर रख लें। इस छने हुए पानी से पिचकारी लेकर इन्द्रिय को धोवें। इससे मूत्रनली साफ हो जाती हैं तथा धीरे-धीरे सूजाक भी मिट जाता है।

गोखरू क्वाथ के साथ यशद भस्म देने से पेशाब साफ आता है और कौंच के बीज के के चूर्ण तथा मिश्री के साथ देने से नपुंसकता मिटती है।- औ.गु.ध.शा.

वक्तव्य- आधुनिक वैज्ञानिक विधि से बनी यशद भस्म का भी नेत्र अंजनों सुरमा, काजल में तथा व्रणों पर लगाने के मलहमों में प्रचुर प्रयोग हो रहा है। यह भी एक प्रकार का जस्ते का **फूल ही है। इसे खाने के काम में नहीं लें।**

जहरमोहरा खताई

परिचय- जहरमोहरा एक पत्थर है। यह रंग में सफेद कुछ पीला और हरापन लिए हुए होता है। यूनानी दवा बेचनेवालों के यहाँ इसी नाम से मिलता है। यूनानी वैद्य(हकीम) लोग इसका प्रयोग अधिक करते हैं। इसके श्रेष्ठ गुणों के कारण वैद्यौं में भी इसका प्रचार बढ़ा है। जो वजन में हल्का और चिकना हो, वह अच्छा समझा जाता है। दिल्ली, अमृतसर के व्यापारी इसके टुकड़ो को चौकोर कर विशेष घिसाई कर उनको जहरमोहरा खताई के नाम से महँगा बेचते हैं। परन्तु गुणों की दृष्टि से बिना घिसा ही उत्तम है।

शोधन विधि- जहरमोहरा को अग्नि में तपा-तपाकर २१ बार गो-दुग्ध या आँवला के रस में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

---

१. **चन्दनादि अर्क**- उत्तम सफेद चन्दन का चूर्ण मौसमी गुलाब के फूल, वेदमुश्क और कमल के फुल सब को एकत्र करके उसमें अठगुना पानी डालकर भवके से आधा अर्क खींचे। यही चन्दनादि अर्क है। प्रवाल आदि की पिष्टी बनाने में इसका प्रयोग करें। यदि वेदमुश्क के फूल न मिले तो मौलसरी के फूल डालें। (आचार्य यादवजी त्रिकमजी का अनुभव है।)

भस्म विधि- शुद्ध किया हुआ जहरमोहरा का महीन चूर्ण गो-दुग्ध में ६ घण्टे तक खरल कर टिकिया बना धूप में सुखाकर सराव-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

पिष्टी-उत्तम क्वालिटी के जहरमोहरा के टुकड़ों को जल से धोकर सुखाकर, कपड़छन चूर्ण कर पत्थर की खरल में गुलाब-जल या चन्दनादि अर्क से खूब बारीक घोंटकर सुखा लें। इसी को 'जहरमोहरा पिष्टी' कहते हैं।-सि.यो.सं.

वक्तव्य- यूनानी वैद्यक के मतानुसार भस्म से पिष्टी विशेष गुणकारी है। कितने ही वैद्य भस्म के स्थान पर भी पिष्टी ही प्रयोग करते हैं।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, दिन में २ से ४ बार तक या आवश्यकतानुसार शहद, मोसम्बी का रस, बेदाना अनार का रस, खमीरे गाजवान, दाडिमावलेह, गाय का दूध आदि में से किसी एक अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह भस्म या पिष्टी मातदिल अर्थात् न अधिक गरम और न अधिक शीतल याने समशीतोष्ण है। इसलिये हर प्रकृति (वात-पित्त-कफ-प्रकृति) वालों के लिये काम आ सकती है। यह हृदय एवं मस्तिष्क को बल देनेवाली तथा पित्तनाशक है।

दाह, हैजा, अतिसार एवं यकृत, विकार, दिल की घबराहट, जीर्ण ज्वर, बालकों के हरे-पीले दस्त एवं शोष(सूखा) रोग में इसका सेवन विशेष हितकारी है। यह बल, वीर्य और कान्ति को बढ़ाती है। बालकों के लिए अमृततुल्य औषध है।

'कराबादीन कादरी' नामक यूनानी ग्रन्थ में लिखा है कि जहरमोहरा को अग्नि में रखने पर उसमें से पानी-सा छूटता है, उसे जीर्ण ज्वर के रोगी को पिलाने से ज्वर दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह औषध विष के उपद्रवों को दूर करने के लिये बहुत प्रभावशाली मानी जाती है। हकीम लोग इसे विषघ्न मानते हैं।

यद्यपि यह स्वयं विषैला नहीं है, किन्तु इसमें जहर दूर करने की अद्‌भुत शक्ति है। साँप, बिच्छू, अफीम इत्यादि किसी प्रकार के स्थावर-जंगम विष के उपद्रवों में इसको पानी में घिस कर पिलाने से लगातार वमन होकर जहर का प्रभाव दूर हो जाता है। विषजन्य पुराने विकारों में जहरमोहरा को दूध के साथ घिसकर या दूध में मिलाकर दो-तीन महीने लगातार सेवन करने से लाभ होता है। इसके विषघ्न गुणों के कारण ही इसका नाम 'जहरमोहरा' है।

प्लेग, हैजा, मलेरिया, माता इत्यादि संक्रामक रोग जोरों से फैल रहें हों, उस समय जहरमोहरा पिष्टी ३ रत्ती और निर्मली बीज चूर्ण १।। रत्ती, दोनों को एकत्र मिला, गुलाब जल के साथ सेवन करने से संक्रामक रोगों का कुछ भी भय नहीं रहता।

अगर संयोग से किसी को हैजा जो जाय, तो आधा-आधा घण्टे के बाद मयूरपंख (चन्दवे) भस्म २ रत्ती और जहरमोहरा पिष्टी २ रत्ती दोनों को एकत्र मिलाकर अर्क कपूर या अर्क पोदीना के साथ बराबर देते रहने से हैजा के उपद्रव यथा-वमन, दस्त, प्यास ज्यादा लगना कम हो जाते हैं।

देश-विदेश के दूषित जल और हवा के कारण ज्वर, अतिसार, सूजन, निर्बलता आदि उपद्रव शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। इन उपद्रवों को शांत करने में यह प्रभावशाली औषध है। इसी प्रकार हृदय, मस्तिष्क, यकृत और पाचन-इन्द्रियों को बल देने में भी यह आश्चर्यजनक लाभदायक है।

शीतला की बीमारी में- जहरमोहरा पिष्टी आधी रत्ती, मोती पिष्टी चौथाई रत्ती, संगेयशव आधी रत्ती, कहरवा पिष्टी आधी रत्ती, इन सब को अर्क गुलाब या अर्क केवड़ा में घोंटकर प्रातः सायं गोदुग्ध या बकरी के दूध के साथ देने से बहुत जल्दी लाभ होता है। चेचक होने से पूर्व यदि इसका सेवन किया जाय, तो चेचक निकलने का डर ही नहीं रहता है।

बालकों के सूखा रोग के लिए- जहरमोहरा पिष्टी १ रत्ती, वंशलोचन १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण आधी रत्ती और प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर शहद के साथ चटावें, ऊपर से दो-चार चम्मच चूने का पानी पिला दें या गाय का दूध पिला दें, इससे बालकों का सूखा रोग समूल नष्ट हो जाता है। सूखा रोग के लिए यह सर्वोत्तम औषध है।

रक्तचाप वृद्धि- (Blood Pressure) से सिर में भारीपन, नेत्रों में लाली, घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न हों तो जहरमोहरा खताई पिष्टी को सोड़ा बाईकार्ब और गुलकन्द के साथ देने से रक्त का दबाव कम हो जाता है एवं तज्जन्य उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

ताम्र (तांबा)

परिचय- ताम्र के नेपाल और म्लेच्छ ये दो भेद हैं। इनमें नेपाल संज्ञक ताम्र श्रेष्ठ होता है, यही भस्मादिक काम के लिये भी लिया जाता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ८ है तथा १०८० शतांश तापमान पर पिघल जाता है। ताप और विद्युत की दाहकता में चाँदी के बाद ताम्र आता है।

नेपाली ताम्र के लक्षण- जो ताम्र चिकना, भारी, लालवर्ण, कोमल, चोट मारने पर चूर्ण न होकर बढ़ता हो वह नेपाली ताम्र हैं।

म्लेच्छ ताम्र के लक्षण- जो ताम्र सफेद या कृष्ण (काला) तथा थोड़ा-थोड़ा लाल हो और अत्यन्त कठोर हो, खूब साफ करने पर भी काला ही बना रहें, यह म्लेच्छ संज्ञक ताम्र है। भस्मादिक कार्य में इसे नहीं लेना चाहिए।

भस्म के लिये यदि इससे भी उत्तम ताम्र लेना हो, तो तुतिया से ताँबा निम्नलिखित विधि से निकालकर भस्म करें अथवा बिजली के तारों को जलाकर साफ करके उनकी भस्म बनावें। पुराने नेपाली पैसे भी उत्तम ताम्र के बने होते हैं। पुराने वैद्य उनको भी भस्म बनाने के काम में लेते हैं।

तूतिया से ताँबा निकालने की विधि-२।। सेर तूतिया को पीसकर एक साथ लोहे की छोटी कड़ाही में बिछा दें और उस लोहे की कड़ाही को एक बड़े लोहे की कड़ाही में रख दें। फिर उस कड़ाही में पड़े हुए तूतिया को ढँक दें। बाद में उस बड़ी कड़ाही में दस सेर मोटा कुटा हुआ त्रिफला चूर्ण और पक्का १ मन पानी डालकर कड़ाही को खुली जगह में रख दें जिससे सूर्य की किरणें और चन्द्रमा की चाँदनी बराबर पड़ती रहें। इस तरह दो माह पर्यन्त छोड़ दें। बाद में पानी छान लें। यह पानी स्याही (लिखने) के काम में आयेगा और छोटी कड़ाही को बाहर निकाल कर उसके पेंदे में जमे हुए विशुद्ध ताँबे के चूर्ण को चाकू से खुरच कर निकाल लें। इसमें करीब ४० तोला विशुद्ध ताँबा आप को मिलेगा। यह ताँबा नेपाली ताँबा से भी उत्तम होगा। र.सा.

शोधन- विधि- उपरोक्त विधि से तूतिया से निकाले हुए ताँबे को अथवा बिजली के तारों से निकाले ताम्र को अग्नि में खूब लाल करके आक के पत्तों के स्वरस में ७ बार बुझावें। फिर दो सेर इमली के पत्तों को १० सेर पानी में उबाल कर ५ सेर शेष रहने पर उतार कर छान लें। इस

५ सेर काढे में सेंधा नमक आधा सेर और उपरोक्त ताँबा आधा सेर डालकर ४ पहर तक आँच दें। यदि पानी जल जाय तो बीच में गोमूत्र डालते जाएँ। यदि गोमूत्र न मिले तो पानी से भी काम चल सकता है। इस ताम्र की इतनी ही शुद्धि पर्याप्त है, क्योंकि इस ताम्र में नेपाली जैसा दोष नहीं रहता है। इस क्रिया से ताँबा शुद्ध हो जाता है।

दूसरी विधि- नेपाली ताँबे के पत्रों को लेकर आग में तपाकर तेल, तक्र, गोमूत्र, कांजी और कुल्थी के क्वाथ में ३-३ बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- हिंगुलोत्थ पारद १ तोला और शुद्ध गन्धक २ तोला की कज्जली बना नींबू के रस में मर्दन कर शुद्ध ताम्र-पत्रों पर लेप कर, सुखा, सम्पुट में बन्द कर, सम्पुट की संधि को कपड़मिट्टी से बन्द कर, धूप में सूखने दें, फिर हल्के पुट (अर्धगजपुट) की आँच में फूँक दें। ठण्डा होने पर ताम्र को निकाल, उसमें समभाग शुद्ध गन्धक का चूर्ण मिला, नींबू के रस से घोंट, टिकिया बनाकर पूर्वोक्त विधि से पुनः पुट दें। इस प्रकार दो पुट देकर भस्म को एक काँच के पात्र में डालकर ऊपर से खट्टे नींबू का रस देकर एक दिन-रात रहने दें। दूसरे दिन देखें यदि नींबू रस में हरापन नहीं आाय हो, तो भस्म ठीक हो गयी है, ऐसा समझकर उसको काम में लावें। यदि नींबू के रस में हरापन आ जाय तो समभाग गंधक के साथ नींबू के रस में पूर्वोक्त विधि से घोंटकर एक पुट दे दें, परंतु इस बार आँच पहले से भी कम दें। बाद में उपरोक्त विधि से पुनः परीक्षा कर लें। ताँबे की भस्म एक साथ में आधा सेर तक बनावें।-सि.यो.सं.

दूसरी विधि-ताँबे के तारों को शोधन विधि से शुद्ध करें, बाद में बराबर सेन्धा नमक और गन्धक मिलाकर नींबू या इमली रस से घोंटकर टिकिया बना, सुखाकर पुट दें। ३-४ पुट देने के बाद पिसाई कराकर बर्तन पर कपड़ा बाँध कर उस पर थोड़ी-थोड़ी भस्म और पानी डालकर हाथ से चलाकर छानते जायें। इस प्रकार सारी भस्म को छान लें, पश्चात् ३-४ घण्टे पड़ा रहने दें, बाद में पानी नितार कर अलग कर दें। जब तक हरा तथा खराब स्वाद का पानी निकलता रहे, तब तक धुलाई होनी चाहिए। अर्थात् भस्म के पात्र में पानी डालकर उसे चलाकर ३-४ घण्टे पड़ा रखकर पानी नितार कर अलग करते रहना चाहिए। काफी धुलाई करने पर भी यदि स्वाद ठीक न हो तथा वान्ति-भ्राँति का दोष दूर न हो, तो भस्म में खट्टा दही मिलाकर ३ दिन रखें, बाद में पानी डालकर उपरोक्त प्रकार से तीन-चार बार धुलाई कराने से उपरोक्त दोष भी ठीक हो जायेगा तथा भस्म निःस्वाद भी हो जायगी। स्वाद रहित होने पर अच्छी तरह पिसाई करा महीन कपड़े से छानकर काँच या चीनी मिट्टी के पात्र में रख लें।

नोट- हर बार पुटान्त में अच्छी घुटाई होना आवश्यक है। पुट में आँच मन्दी देनी चाहिए अन्यथा ताँबे के डले बँध जायेगें। -र.सा.सं. के आधार पर स्वानुभूत विधि।

सोमनाथी ताम्र भस्म- शुद्ध पारद २ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, हरताल १ तोला, मैनशिल ६ माशे सब की महीन कज्जली बना लें और २ तोला शुद्ध ताम्र चूर्ण (महिन) लें। पश्चात् गर्भयंत्र में थोड़ी कज्जली बिछा कर उस पर ताम्र का महिन चूर्ण रखें और उसके ऊपर कज्जली रखें, इसी प्रकार ताम्र चूर्ण और कज्जली की तह जमाकर यन्त्र के मुख को बन्द कर के चार पहर तक अग्नि पर पकावें, स्वांगशीतल होने पर ताम्र भस्म को निकाल कर पीस कर रख लें। यही सोमनाथी ताम्र भस्म है।

नोट- अन्य कुछ ग्रन्थों में कूपीपक्व विधान से सोमनाथी ताम्र भस्म बनाने का विधान है, वह भी श्रेष्ठ है।

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती, दिन में दो बार शहद से या आवश्यकतानुसार उचित अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- उदर रोग, प्रमेह, अजीर्ण, विषमज्वर, सन्निपात, कफोदर, प्लीहोदर, यकृत विकार, परिणामशूल, हिचकी, अफरा, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डु, मांसार्बुद, गुल्म, कुष्ठ, कृमि रोग, हैजा, अम्लपित्त, प्लेग आदि में ताम्र भस्म महौषधि है। अनेक रस-रसायन औषधें इसके योग से बनती हैं। यह अत्यन्त शक्तिवर्द्धक, रूचिकारक और कामोद्दीपक है। यकृत में विकृति होने से पित्त का निर्माण बहुत कम होता है और कभी-कभी यकृत में पथरी भी हो जाती है। इसके लिए ताम्र भस्म बहुत उत्तम औषधि है। इसके सेवन से पित्त-विकृतिजन्य शूल शान्त होता है।

यकृत और पित्ताशय पर इसका असर अधिक पड़ता है, यकृत बढ़ जाने से पित्ताशय संकुचित हो गया हो या पित्ताशय से पित्त गाढ़ा होने की वजह स्रवित न होता हो या पित्ताशय के किसी भाग में विकृति आ गयी हो इत्यादि अनेकों विकारों या इनमें से किसी एक के कारण पेट में दर्द होता हो या पित्ताशय में पथरी के कण जम जाने के कारण ही दर्द हो तो ताम्र भस्म २ रत्ती, कपर्दकभस्म २ रत्ती दोनों को एकत्र मिलाकर करेले के पत्तों के रस या घी और चीनी में मिलाकर देने से लाभ होता है।

अष्ठीला और गुल्म की गाँठ को गलाने के लिए तथा बढ़ी हुई प्लीहा को नष्ट करने के लिए ताम्र भस्म १ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती और मूलीक्षार ४ रतती मिलाकर कुमार्यासव के साथ देने से बहुत लाभ होता है। साथ-साथ यदि साधारण रेचक दवा की भी एकाध मात्रा दे दी जाय तो अछा है।

जलोदर में सिर्फ ताम्र भस्म का ही प्रयोग न करें, क्योंकि यह मूत्रप्रवर्तक नहीं है, अत: इसके साथ फिटकरी भस्म ४ रत्ती, कुटकी चूर्ण २ माशे मिलाकर दें। ऊपर से पुनर्नवा और मकोय का स्वरस ५ तोला मिला देने से अच्छा लाभ होता है।

हैजा में- ताम्र भस्म चौथाई रत्ती, कर्पूर रस २ गोली प्याज के रस से या मयूर पुच्छ भस्म के साथ मधु मिलाकर आधे-आधे घंटे पर दें। जब वमन और दस्त कुछ कम होने लगे तो हृदय को ताकद देने वाली औषधियाँ भी दें।

अम्लपित्त की बढ़ी हुई अवस्था में ताम्र भस्म आधी रत्ती, सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती में मिलाकर शहद से दें और ऊपर से २ तोला मुनक्का और २ तोला हरड़ के छिलके को आधा सेर पानी में पकाकर एक-एक पाव शेष रहे तब छान कर यह क्वाथ पिला दें, इससे एक-दो साफ दस्त हो जायेंगे। - औ.गु.ध.शा.

शरीर में रक्त बढ़ाने के लिए आयुर्वेद में लौह भस्म का प्रयोग करना अच्छा लिखा है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि लौह में ताम्र का अंश रहता है, अतएव यह रक्त बढ़ाने में समर्थ है। मन्दाग्नि जन्य रोगों मे लौह और ताम्र का मिश्रित प्रयोग करना चाहिए।

कफज प्रमेह में कच्चे गूलर-फल के चूर्ण एक माशा के साथ, वातज प्रमेह में गिलोय सत्व ४ रत्ती और मधु के साथ, अजीर्ण रोग में त्रिकटु १ माशा और मधु के साथ तथा कफ प्रधान सन्निपात में अदरख स्वरस और मधु के साथ ताम्र का प्रयोग महान लाभदायक है।

सब प्रकार के शूलो पर ताम्र भस्म १ रत्ती, शुद्ध गन्धक १ रत्ती, इमली क्षार १ माशा मिलाकर

गोघृत के साथ देना चाहिए। हिक्का में जम्बीरी नींबू रस के साथ ताम्र भस्म का प्रयोग अच्छा लाभ करता है। हिचकी में विषम भाग घृत और मधु से दें।

आमातिसार में बेलगिरी चूर्ण २ माशा, पिप्पली चूर्ण ३ रत्ती को ताम्र भस्म १ रत्ती के साथ देना लाभदायक है। पाण्डु रोग में नवायस लौह मण्डूर भस्म के साथ, कृमि रोग में वायविडंग चूर्ण और सोमराजी (बाकुची) चूर्ण २ माशे के साथ १ रत्ती ताम्र भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। कुष्ठ रोग में बाकुची चूर्ण के साथ ताम्र भस्म का प्रयोग करना चाहिए। यकृत दाह में ताम्र भस्म १ रत्ती को गिलोय सत्त्व ४ रत्ती के साथ बेदाना अनार के रस या आमला मुरब्बा की चाशनी के साथ दें। अम्लपित्त में कुष्माण्ड रस और मिश्री से दें।

नोट- ताम्र भस्म अत्यन्त उग्र, तीक्ष्ण, भेदी और पित्तस्रावी है। अत: इस औषध का उपयोग संभालकर करना चाहिए। ताम्र में वान्ति और भ्रान्ति का दोष विद्यमान रहता है। अत: इस दोष से रहित भस्म का ही प्रयोग करना चाहिए।

ताम्र भस्म की परीक्षा-विधि- सूर्य की किरणों द्वारा देखने से चन्द्रिका रहित मालूम हो या इसकी भस्म थोड़ी मात्रा में दही में डालकर काँच के पात्र में १२ घण्टा तक रखने पर भी दही में नीलापन या हरापन न दिखाई पड़े तो विशुद्ध ताम्र भस्म समझे।

यदि अशुद्ध ताम्र भस्म हो तो उसको घीकुमारी के रस में घोंटकर टिकिया बना २१ पुट देने से वान्ति एवं भ्रान्ति दोष से ताम्र मुक्त हो जाता है।

तार्क्ष्य (पन्ना)

परिचय- प्रसिद्ध खनिज हरित वर्ण का महारत्न है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३।।। और काठिन्य ७।। होता है।

भस्म के योग्य पन्ना- जो पन्ना हरे रंग का भारी, स्निग्ध, उज्ज्वल किरणयुक्त, कोमल तथा स्थूल हो ऐसा पन्ना भस्म के लिये लेना चाहिए।

शोधन विधि- पन्ना को गाय के दूध में दोलायंत्र विधि से एक प्रहर तक स्वेदन करने मात्र से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध पन्ना के महिन चूर्ण के समभाग मैनशील, हरताल और आँवला सार गन्धक मिला, बड़हल के रस में घोंटकर टिकिया बना, लघुपुट में फूँक दें। इस तरह ८ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

दूसरी विधि- पन्ना के चूर्ण का गुलाब जल में घोंटकर ग्वारपाठे के गुदे के साथ सराव-सम्पुट में रखकर १० सेर उपलों की आँच दें।- यू.सि.यो.सं.

पिष्टी- शुद्ध पन्ना के टुकड़ों का महिन चूर्ण कर कपड़छान कर लें, फिर इसको खरल में डाल गुलाब जल से एक सप्ताह घोंटे। जब बिल्कुल महिन और कोमल पिष्टी हो जाय, तब रेशमी वस्त्र से छान कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से एक रत्ती पन्ना भस्म मक्खन, मलाई, दूध या पान का रस और मधु (शहद) इनमें से रोग और रोगी की अवस्थानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह ओजवर्द्धक है। सन्निपात ज्वर, विष विकार, वमन, प्यास, अम्लपित्त, पाण्डु, मलावरोध, अर्श और शोथ को दूर करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त कर बल बढ़ाता हैं। हृदय गति को बल देने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से स्मरण-शक्ति और आयु की वृद्धि होती है। यह भस्म गर्म (पैत्तिक) प्रकृतिवालों के लिये अति लाभदायक है।

तूतिया (नीलाथोथा)

परिचय- तूतिया प्राकृत रूप में पाया जाता है तथा कृत्रिम भी बनाया जाता है। यह ताम्र का उपधातु है। ताँबे का (रेती से रेता हुआ) बारीक चूर्ण और नौसादर दोनों समभाग लेकर, एकत्र मिलाकर कूटें फिर दोनों के बराबर नींबू का रस मिलाकर मिट्टी के पात्र में भरकर रख दें। एक मास पश्चात् तूतिया तैयार हो जायेगा।- र.सार

यूनानी ग्रंथों के मतानुसार ताँबा का सफेद फिटकरी के साथ जलाकर तूतिया तैयार किया जाता है और डाक्टरों के मतानुसार ताँबे का बुरादा गन्धक के तेजाब में डालकर आँच देने से 'नीलाथोथा' तैयार होता है।

उत्तम नीलाथोथा के लक्षण- जिसका रंग मयूर के कण्ठ के समान नीलवर्ण और भारयुक्त हो, वह भस्म के लिये श्रेष्ठ माना गया जाता है।

शोधन विधि- नीलाथोथा को केवल दोलायंत्र में ३ प्रहर तक गौ, भैंस या बकरी के मूत्र के साथ स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध नीलाथोथा में गन्धक और सुहागा समान भाग मिलाकर लकुच (बड़हल) के फल के स्वरस में खरल करके सराव-सम्पुट में डालकर कुक्कुट पुट में रखकर फूँक देने से उत्तम भस्म तैयार होती है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, दिन में दो बार या आवश्यकतानुसार शहद से दें।

गुण और उपयोग- इसकी भस्म प्रकुपित वात-पित्तादि दोष, विष का प्रभाव, हृदय रोग, अर्श, कुष्ठ अम्लपित्त तथा विबन्ध और मलावरोध को नष्ट करती है। यह चरपरी, नमकीन, कसैली, वमनकारक तथा खुजली को दूर करनेवाली है। विशेषकर मंडल कुष्ठ, श्वित्रकुष्ठ, दाद और विष-दोषघ्न है।

अगर किसी ने अफीम, धतूरा आदि विष खा लिया हो, तो २।। रत्ती से ४ रत्ती की मात्रा में तूतिया भस्म पानी के साथ देने से उल्टी होकर विष-विकार निकल जाता है।

अपस्मार (मिरगी) की बीमारी में इसकी भस्म चौथाई रत्ती और कुनैन १ रत्ती को साथ मिलाकर देने से पूर्ण लाभ होता है। कम्पवात और हिस्टीरिया में भी यह पूर्ण लाभदायक है।

पुराने सुजाक की बीमारी में, जब जननेन्द्रिय के व्रण (घाव) अच्छे होते नहीं दिख पड़े तब एक रत्ती भस्म को पाव भर पानी में घोंटकर जननेन्द्रिय के भीतर पिचकारी से देने से लाभ होता है। मुँह के छालो में १ रत्ती भस्म को मधु में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

आँखों की पलकों की झिल्ली में अगर कफ की वजह से दाने पड़ गये हों, तो इस भस्म को पानी में घोलकर रूई के फाहा से लगाने से लाभ होता है। पलक को उलटकर उस पर लोशन लगाकर शीतल जल से तुरन्त धो देना चाहिए, अन्यथा फायदे की जगह उल्टे नुकसान ही करेगा।

पेट के कीड़ों को नष्ट करने के लिए वायविडंग चूर्ण के साथ देने से कीड़ों को मार कर निकालता है। आँख के जालों के लिए फिटकरी और मिश्री के साथ गुलाबजल में जरा तूतिया को घोलकर बूँद-बूँद टपकाने से जाला नष्ट हो जाता है तथा आँख की सुर्खी (लाली) और दर्द भी दूर हो जाता है। बच्चों के डब्बा रोग जिसे आयुर्वेद में पारि-गर्भिक नाम से उल्लेख किया गया है, यह गर्भिणी माता का दूध पीने से होता है। इसमें दस्त कब्ज हो जाता , पेट आगे को निकल आता और पीठ बीच में कुछ गहरी-सी हो जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा और बात-बात में रोने

लगता है। इत्यादि लक्षण होते हैं। इस रोग में तूतिया भस्म पाव रत्ती और सुहागा की खील पाव रत्ती दोनों को मिलाकर प्रातः सायं और दोपहर को १-१ पुड़िया माँ के दूध से अथवा शहद में दें, तो इससे उल्टी और दस्त होकर बच्चे की तबियत ठीक हो जाती हैं।

पुराने अतिसार और आमातिसार में पाव रत्ती की मात्रा में इस भस्म को मधु में मिलाकर देने से लाभ होता है।

विष-विकार में- मट्ठा (छाछ) पर यह भस्म १ रत्ती छिड़क दें और जो मनुष्य विष खाया हुआ हो, उसे यह छाछ पिला दें, तो वमन होकर विष विकार निकल जाता है।

अथवा -२।। रत्ती इसकी भस्म या केवल शुद्ध किया हुआ नीलाथोथ १ रत्ती का मंजन करने से दाँत का दर्द दूर हो जाता है।

मांसार्बुद (Tumor)और कर्कट व्रण (Cancer) तथा दुष्ट व्रण जिनके घाव न भरते हों उनको ३ रत्ती तुत्थ भस्म को आधा पाव जल में मिलाकर बनाये गए लोशन से धाने एवं ३ रत्ती तूतिया को महीन पीसकर १। तोला वेसलीन में मिलाकर बनाया मलहम लगाने से घाव स्वच्छ होकर भर जाता है।

त्रिवंग भस्म

भस्म विधि- शुद्ध नाग, शुद्ध वंग और शुद्ध जस्ता प्रत्येक समान भाग लेकर एक साथ लोहे की कड़ाही में डाल, आग पर गरम करके पतला कर लें, फिर उसमें भाँग और अफीम के पोस्ते का मिश्रित चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालते जाएँ और लोहे की कलछी से चलाते जायें। जब चूर्ण समाप्त हो जाय और उक्त तीनों धातुओं का भी चूर्ण हो जाय, तब किसी तवे या ढक्कण से ढककर नीचे खूब तेज आँच करीब १२ घण्टे तक देते रहें। जब भस्म अग्निवर्ण लाल हो जाय, तब आँच बन्द कर दें और स्वांगशीतल होने पर कपड़े से छान, खरल में डाल, ग्वारपाठे के रस में मर्दन कर, टिकिया बना, सुखाकर, लघुपुट में फूँक दें। ऐसे ७ पुट देने से पीले रंग की भस्म तैयार हो जाती है।- सि.यो.सं.

दूसरी विधि- धातु-शोधन-विधि से शोधित रांगा, यशद, नाग तीनों को बराबर लेकर एक लोहे की कड़ाही में डालें तथा भट्टी पर चढ़ाकर पिघलावें। पिघलने पर नीम या आक की लकड़ी से चलाते जावें और थोड़ा-थोड़ा ढाक के फूलों का चूर्ण भी डालते जावें। जब सारा द्रव्य भस्म रूप हो जाय तब दूसरे तसले से कड़ाही के अन्दर के माल को ढँक देवें और आँच बराबर ४-५ घण्टे और लगने देवें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर पानी के साथ कपड़े से छान कर सुखा लेवें। फिर ग्वारपाठा-स्वरस की भावना देकर टिकिया बनाकर गजपुट में कुछ तेज आँच में रखें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर घुटाई कर ग्वारपाठा-स्वरस की भावना देकर फिर गजपुट में कुछ कम आँच देवें। इस प्रकार ८ पुट में खुले रंग की भस्म तैयार होगी।-स्वानुभूत विधि

नोट- पहली पुट कुछ तेज आँच तथा बाद में हल्की आँच की देवें। नाग-वंश-यशद तथा त्रिवंग का मारण ढली हुई लोहे की कड़ाही में ही करावें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, दिन में दो बार या आवश्यकतानुसार शहद, मक्खन, मलाई आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग- प्रमेह-विकार पर त्रिबंग भस्म का प्रभाव बहुत अच्छा होता है। विशेषकर मूत्रपिण्ड या मूत्रवाहिनी नली पर इसका असर होता है। अतः मधुमेह में भी इस भस्म का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि मधुमेह में केवल नाग भस्म का ही प्रयोग बहुत लाभदायक है, किन्तु कुछ लक्षण विशेष होने पर जैसे-मधुमेह वालों की सन्धि स्थानों (जोड़ों) में पीड़ा (दर्द) होती हो, शिर तथा पेट में दर्द हो या पहले मन्दाग्नि होकर पेट फूल जाता हो, बाद में क्रमशः मधुमेह रोग उत्पन्न हो गया हो, ऐसी अवस्था में त्रिबंग भस्म बहुत लाभ करती है। इसके अतिरिक्त जिस मधुमेह रोगी को मधुमेह बहुत पुराना होकर प्रमेह पिड़िकायें (शरीर में फोड़े-फुंसियाँ) निकलती हों, उसके लिये भी त्रिबंग भस्म बहुत हितकर है।

यह भस्म वीर्यवर्द्धक भी है। अतः जननेन्द्रिय को शिथिल नसों को सख्त कर देती है, जिससे वीर्य का स्वयं (अपने आप) स्राव हो जाना तथा स्वप्नावस्था या स्त्री-प्रसंग की इच्छा होते ही अथवा स्त्री-प्रसंग के पूर्व ही जो वीर्यस्राव हो जाता है, वह रुक जाता है। इसके सेवन से जननेन्द्रिय की मांसपेशियाँ और नसें कड़ी हो जाती, साथ ही शुक्र भी गाढ़ा हो जाता है। अतः वर्य विकार के लिये यह भस्म बहुत उपयोगी है।

छोटी आयु (वय) में मासिक धर्म होना या १४ से २० वर्ष तक की आयु में पुरुष का समागम ज्यादा होना, इससे गर्भधारणा शक्ति कमजोर हो जाती है, अतएव गर्भ नहीं रहता और रहता भी है तो असमय में ही (गर्भ की पुष्टि न होकर) हीनांग या अल्पायु अथवा रोगी सन्तान उत्पन्न होती है। साथ ही जच्चा (प्रसूता) को भी अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ता है। बहुत-सी स्त्रियां तो ज्वरादि से पीड़ित हो क्रमशः तपेदिक की भी शिकार हो जाती है, जिससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है। ऐसी हालत में गर्भाशय को शक्ति प्रदान करने के लिए, स्त्रियों की कमजोरी दूर करने के लिए, त्रिबंग भस्म का प्रयोग करना उत्तम हैं।

श्वेतप्रदर- यह रोग आजकल स्त्री समाज में विशेष कर नयी शिक्षा से शिक्षित स्त्री-समाज में विशेष देखने में आता है। इसका सबसे मुख्य कारण आधुनिक बनावटी फैशन, सिनेमा, थिएटर, उपन्यास, नग्न चित्रादि देखने-पढ़ने तथा मनन करने से काम-वासना की प्रवृत्ति सीमा से अधिक हो जाती है। परिणाम यह होता है कि सफेद पानी चिपचिपा-सा जननेन्द्रिय के मुँह द्वारा निकलता प्रारम्भ हो जाता है। कभी-कभी यह स्राव इतना बढ़ जाता है कि स्त्रियाँ इनके मारे परेशान हो जाती है। साथ ही कमजोरी बढ़ने लगती है, भूख कम हो जाती है, चक्कर आने लगता है। इस अवस्था में त्रिबंग भस्म सेवन करना हितकर है। -सि.यों.सं.

बीसों प्रकार के प्रमेह पर शुद्ध शिलाजीत और मधु में मिलाकर त्रिबंग भस्म १ रत्ती की मात्रा में सेवन करना अति लाभप्रद है। धातुक्षीणता आदि कारणों से ही शुक्र स्थान इतने कमजोर हो जाते हैं कि विषय भोगादि के चिन्तन मात्र से ही शुक्र स्राव हो जाता है ऐसी अवस्था में त्रिबंग भस्म १ रत्ती से २ रत्ती की मात्रा में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर मधु और ताजे आँवले के स्वरस में मिलाकर देने से लाभ होता है। बार-बार गर्भस्राव या गर्भाशय की कमजोरी अथवा गर्भधारण-शक्ति नष्ट होने पर त्रिबंग भस्म १ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती च्यवनप्राश १ तोला में मिलाकर गोदुग्ध के साथ सेवन कराना परमोत्कृष्ट है। मधुमेह में जामुन की गुठली या गुड़मार बूटी के चूर्ण २ माशे के साथ त्रिबंग भस्म १ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ देना लाभप्रद है। नपुंसकता में मक्खन या मलाई के साथ १ रत्ती त्रिबंग भस्म देना अच्छा है। श्वेतप्रदर में त्रिबंग भस्म १ रत्ती, चावल के धोवन के साथ मृगश्रृंग भस्म २ रत्ती में मिलाकर देना उत्तम है।

नाग (सीसा)

परिचय- नाग (सीसा) यह खनिज द्रव्य है। यह मृदु किन्तु भार में वजनदार होता है। यह बंग या रांगा के समान किन्तु रंग में उससे कुछ काला होता है, जो सीसा आग पर रखने मात्र से गल जाये, तौल में भारी हो, तोड़ने में काला और भीतर उज्ज्वल और दुर्गन्धयुक्त हो, वह उत्तम होता है। खुली हवा में रखने पर सीसा में जंग नहीं लगता है किन्तु आर्द्र (गीली) हवा में लग जाता है। सीसा को खूब तपा कर श्वेतवर्ण कर दिया जाने पर यह उड़ने भी लगता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ११.३४ से ११.३७ तक है। ३२५.८० शतांश ताप पर पिघलने लगता है, और १२२५° पर उड़ने लगता है।

शोधन विधि- नाग को मजबूत लोहे की कड़ाही में गलाकर एक मिट्टी की मजबूत हाँडी को तैल, तक्र, गोमूत्र, कांजी, कुल्थी का काढ़ा इसमें से किसी एक चीज से जिसमें नाग को शुद्ध करना हो, लगभग आधी भरें। उस पर बीच में छेद किया हुआ सकोरा रख उसको लोहे के तार से बांध उस पर पिघला हुआ नाग (सीसा) कलछी से, जिससे लम्बी काठ की डंडी लगी हुई हो, उठाकर सावधानी से सकोरे के मुँह पर डाल दें, जिससे हाँड़ी में गिरकर उछला हुआ नाग शुद्ध करनेवाले के शरीर पर न पड़े। इस प्रकार उपरोक्त प्रत्येक पदार्थ में पृथक्-पृथक् करके ७-७ बार बुझाने से नाग शुद्ध हो जाता है।

दूसरी विधि- सीसा को गरम कर ७ बार चूना के पानी में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध नाग को साफ की हुई लोहे की बड़ी कड़ाही में अग्नि पर गलाकर उस पर इमली और पीपल वृक्ष की छाल समभाग लेकर जौकुट किया हुआ चूर्ण या अर्कमूल का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा छोड़ता जाय और लोहे की कलछी से चलाता जाय। जब तक सब नाग का सूक्ष्मचूर्ण लाल रंग न हो जाय, तब तक इसी प्रकार करते रहे। पीछे सब चूर्ण कड़ाही में इकट्ठा कर ऊपर से सकोरा से ढक दें और अग्निवर्ण (लाल) हो जाय, इतनी तेज आँच देकर रख दें। स्वांगशीतल होने पर कपड़े से छान खरल में डाल उसमें बारहवाँ हिस्सा शुद्ध मैनशील मिला, अडूसे के रस में घोंटकर टिकिया बना सुखा सराव-सम्पुट में बन्द कर कपड़मिट्टी करके लघुपुट (१-२ सेर कंडों की आँच) में फूँक दें। इस प्रकार ४० पुट दें। जैसे-जैसे नाग अग्नि सहन करता जाय, वैसे-वैसे आँच की मात्रा भी बढ़ाते जायें। १० पुट के बाद में मैनशील देना बन्द कर दें और सम्पुट की सन्धि पर कपड़मिट्टी भी न करें। यह लाल रंग की भस्म होगी। नाग भस्म एक बार में ४० से ६० तोले तक की बनानी चाहिये। -सि.यो.सं.

दूसरी विधि- धातु शोधन-विधि से शोधित नाग लेकर एक कड़ाही में डालकर गलावें। फिर जितना नाग हो उससे आधा कल्मी शोरा तथा आँवले की कली का चूर्ण लेकर पात्र में रखें (अर्थात् एक बार में छोटी कड़ाही में एक सेर नाग तथा आधा सेर कल्मी शोरा और आँवले का चूर्ण लें।) नाग के पिघलने पर उसे नीम या अर्क मूल के डण्डे से हिलाते (चलाते) रहें तथा थोड़ा-थोड़ा कल्मी शोरा और आँवले का चूर्ण डालते जायें। चूर्ण-सा बन जाने पर सब चूर्ण को कड़ाही के पेन्दे में एकत्र कर लोहे के तसले से ढक दें और नीचे थोड़ी आँच लगती रहने दें। स्वांगशीतल होने पर पानी के साथ कपड़े से छानकर सुखाकर अडूसा- क्वाथ की भावना देकर टिकियां बना, सराबों में रख कर हल्की आँच की पुट दें। इस प्रकार २१ पुट देने पर हल्के लाल रंग की भस्म तैयार हो जायेगी।

नोट-यह भस्म फिर जीवित हो जाती है। अतः पहली दस पुटों में मैनशील देने से ऐसा नहीं होगा। पहली पुट में समान भाग मैनशील दें। बाकी ९ पुटों में चतुर्थांश दें। - स्वानुभूत- विधि

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती दिन में दो बार, शहद, मक्खन, मलाई आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस भस्म के सेवन से प्रमेह, विशेषकर मधुमेह, नेत्ररोग, गुल्म, प्लीहा-वृद्धि, प्रदर, अतिसार, रक्तगुल्म, आमाशय की वृद्धि से होनेवाले अम्लपित्त, मन्दाग्नि, अपची, गण्डमाला, धातुक्षय, खाँसी, आमवात, सिरदर्द, कमजोरी, यकृत दोष, श्वास रोग, मूत्ररोग, वात रोग, पाण्डू आदि रोग दूर होते हैं। इस भस्म के सेवन से धातुओं की वृद्धि होती है। अतः शरीर को पुष्ट करती है और अग्नि को भी यह प्रदीप्त करती है।

यह भस्म अग्नि प्रदीपक अर्थात् मन्दाग्नि को नष्ट कर जठराग्नि को तेज करनेवाली है, अतः अम्लपित्त रोग में जब कि पेट में अधिक दाह हो, प्यास ज्यादा लगती हो, बराबर वमन करने की इच्छा हो ऐसी हालत में नाग-भस्म बहुत अच्छा काम करती है, क्योंकि पाचकाग्नि की विकृति से अम्लपित्त होता है और नाग भस्म का प्रभाव पाचकाग्नि पर बहुत ज्यादा पड़ता है। अतएव उपरोक्त दोष इस भस्म के सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

नाग भस्म का प्रयोग मधुमेह में बहुत किया जाता है। मधुमेह में-सम्पूर्ण दोष और दूष्यों (तीनों दोष-वात-पित्त-कफ और दूष्यों-रस, रक्त, मांस, मेदा, वसा लसीका मज्जा, शुक्र और ओज) के दूषित होने से मधुमेह होता है। मधुमेह के चिकित्साकाल में इन सब बातों का ध्यान रख करके ही चिकित्सा करने पर दोष और दूष्यों के विकार दूर हो मधुमेह रोग अच्छा होता है। मधुमेह उत्पादक विकारों में सबसे प्रधान विकार है शरीर में जल-भाग की वृद्धि होना। प्रमेह क्रमशः पुराना होते-होते मधुमेह के परिणत हो जाता है। इस भस्म का सेवन प्रथम जल भाग की वृद्धि के शोषण (सुखाने) के लिये किया जाता है और इस भस्म के सेवन से शर्करा भी कम होने लगती है। यह शक्तिवर्धक होने के कारण शारीरिक शक्ति की वृद्धि करती है।

अतएव इसका कार्य-दोष और दूष्यों के विकार को सुधारकर उनको अपनी प्रकृति में लाने का रहता है। यही कारण है कि मधुमेह में भी यह शीघ्र लाभ करती है। साथ में शिलाजीत भी मिला दिया जाय तो और विशेष गुणप्रद होती है। पथ्य में गो-दुग्ध और भात मात्र दें।

यदि किसी स्थूल (मोटे) आदमी को मधुमेह हो जाय, तो उसकी मेदा (चर्बी) कम करने के लिये नाग भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। क्योंकि नाग भस्म में दोनों गुण हैं अर्थात् बढ़े हुए धातुओं को घटाना और घटे हुए धातुओं को बढ़ाना, परन्तु कृश मधुमेही को सिर्फ नाग भस्म न देकर यशद भस्म के साथ देने से अच्छा लाभ करती है।

इसका प्रयोग अस्थि-विकार में भी होता है। मज्जा में रहने वाली वायु जब कुपित हो जाती है, तो अस्थि क्षीण और नरम होकर टेढी हो जाती या पिचक (दब) जाती है, इसमें कभी प्रारम्भ में कभी बाद में बहुत दर्द होता है। विशेषकर जोड़ों (संधियों) में दर्द होता है। रोगी इस दर्द के मारे परेशान हो जाता है और उसका बुखार भी हो जाता है। प्रायः यह रोग अधिकतर प्रसूता को विशेष हवा लग जाने से वायु के कारण होता है। ऐसी अवस्था में नाग भस्म १ रत्ती, गोखरू चूर्ण १ माशा, ३ माशे मिश्री में मिलाकर प्रातःसायं दशमूल क्वाथ से दें।

वादी का अर्श (बवासीर) में भी नाग भस्म का प्रयोग किया जाता है। गुल्म रोग का दूर करने के लिये विशेषतः रक्त-विकार जन्य गुल्म और पित्त-विकार जन्य गुल्म में इस भस्म का प्रयोग करना अधिक लाभदायक है। पित्तज गुल्म के प्रारम्भ में ही यदि नाग भस्म सेवन किया जाय, तो यह अपने तीक्ष्ण गुण के कारण उसको गला देती है, आगे बढ़ने नहीं देती। इसी प्रकार रक्त गुल्म में भी फायदा करती है।

नाग भस्म का विशेष प्रभाव मांसपेशियों पर पड़ता है और खायी हुई चीजों को अच्छी तरह पचाकर उसके मूल अंश को ग्रहण करने की शक्ति स्नायुओं में पैदा होती है। जिससे प्रतिदिन शरीर के अवयवों में नवीन रक्त का संचार होता रहता है। अत: स्नायुओं या मांसपेशियों के क्षीण होने पर इसका उपयोग करना चाहिए।

यदि स्नायुओं की निर्बलता के कारण रोगी नपुंसक हो गया हो अथवा अण्डकोष की ग्रन्थियों की निर्बलता के कारण यह रोग हुआ हो, तो नाग भस्म एक रत्ती को शिलाजीत १ रत्ती, स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती के साथ मिलाकर मधु से दें, इससे स्नायुओं में रक्त का संचार होकर शिथिलता दूर हो जाती और क्रमश: नसों में ताकत पैदा होकर नपुंसकता भी मिट जाती है।

अधिक वीर्यस्त्राव होने पर दिमाग कमजोर हो जाता है। काम करने में उत्साह नहीं होता। विचारों में उच्छृंखलता आ जाती है। ऐसी अवस्था में नाग भस्म १ रत्ती शिलाजीत १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी आधी रत्ती के साथ मिलाकर शहद के साथ अथवा दूध के साथ देना चाहिए। इससे एक-दो मात्रा में ही अद्‌भूत गुण देखने में आता है। मधुमेह में नाग भस्म १ रत्ती, गुड़मार बूटी चूर्ण २ माशे और गिलोयसत्व २ रत्ती की मात्रा में मिलाकर मधु के साथ देना चाहिए। स्थूल शरीर वाले और मधुमेह वाले रोगी को नाग भस्म १ रत्ती, टंकण (सुहागा) क्षार 2 रत्ती में मिलाकर देना लाभदायक है। मूत्राशय और शुक्र के सभी तरह के विकारों में नाग भस्म १ रत्ती, मुक्ताशुक्तिपिष्टी १ रत्ती में मिलाकर मक्खन के साथ देने से फायदा होता है। नेत्र रोग में नाग भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण २ माशा या त्रिफलादि घृत १ तोला में मिलाकर लेने से शीघ्र गुण करती है। वातज या पित्तज अथवा रक्तजगुल्म रोग में नाग भस्म १ रत्ती, सोंठ का महीन चूर्ण १ माशा, सेन्धानमक या चणक (चना) क्षार १ माशा मिला कर गर्म जल से देना चाहिए।

आँत की कमजोरी से पैदा हुई मन्दाग्नि और कब्ज में नाग भस्म १ रत्ती, पंचकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ) का चूर्ण २ माशे के साथ मिलाकर जीरा के अर्क या सौंफ के अर्क के साथ देना चाहिए। अपची और गण्डमाला में गांठ कठोर अथवा उठी (सूजी) हुई मालूम होती है, ऐसी दशा में नाग भस्म १ रत्ती मधु के साथ देने से लाभ होता है।

क्षय रोग में नाग भस्म १ रत्ती, मुक्ता पिष्टी १ रत्ती च्यवनप्राश या वासावलेह १ तोला के साथ देने से महान उपकार होता है।

सूखी खाँसी में नाग भस्म- १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिला कर वासारिष्ट के साथ देने से विशेष फायदा होता है। आमवात में नाग भस्म १ रत्ती, सोंठ का चूर्ण १ माशा को मधु में मिलाकर देना चाहिए। कमजोरी दूर करने के लिये नाग भस्म को मक्खन या मलाई के साथ देना अच्छा है। यकृत दोष-में नाग भस्म १ रत्ती, शरपुंखाक्षार १ रत्ती दोनों को मिलाकर मधु से देना लाभदायक है। सिर दर्द में बादाम के हलुआ के साथ नाग भस्म देना उपकारक है। मूत्र रोग में यवक्षार १ माशा, नाग भस्म १ रत्ती मिलाकर पानी से देना चाहिए, इससे मूत्र साफ होने लगता है।

नीलम (नील-मणि)

परिचय- नीलम के जलनील और इन्द्रनील ये दो भेद हैं। इन दोनों में इन्द्र-नील-मणि उत्तम होती है। यह रत्न माणिक्य की खानो में से अनेक प्रकार का निकलता है।

जलनील के लक्षण- जो नीलम बीच में श्वेत हो और बाहर से नीलवर्णयुक्त और हलका हो, वह जलनील कहलाता है।

इन्द्रनील के लक्षण- जो मध्य में काले रंग का हो और बाहर से अत्यन्त नीलवर्णयुक्त तथा भारी हो, वह इन्द्रनील कहलाता है।

श्रेष्ठ नीलम के लक्षण- जो नीलम एक-सी छायावाला हो, भारी हो, चिकना, स्वच्छ, आकार में पिण्डस्वरूप हो, मृदु, दीप्त, तेजयुक्त- इन सात लक्षणों से युक्त हो वही नीलम भस्म के लिये देना चाहिए। -र.र.सं.

शोधन विधि- नील के रस में नील-मणि को दोलायंत्र विधान से ३ घण्टे तक उबाल कर स्वेदन करने से वह शुद्ध हो जाता है।- र. तरंगिणी

भस्म विधि- नील-मणि का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उत्तम पत्थर की खरल में डालकर समभाग हरताल, गन्धक और मैनशील मिलाकर, बड़हल के स्वरस (काढ़ा) के साथ घोंटकर छोटी-छोटी टिकिया बना लघुपुट में फूँक दें। ऐसे ८ पुट दने से उत्तम भस्म बन जाती है।

मात्रा और अनुपान- चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक शहद, मक्खन, मिश्री या मलाई के साथ दें।

गुण और उपयोग- प्रारम्भिक श्वास रोग में बलगम (कफ) ज्यादा निकलता है और खाँसी भी होती है। इस रोग में प्रवाल भस्म २ रत्ती, नीलम भस्म आधी रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे मधु में मिलाकर देने से नवीन कफ का बनना बन्द हो जाता है और बढ़ा हुआ कफ कम होकर खाँसी भी कम हो जाती है। कफ कम हो जाने से दमा का वेग (दौरा) भी रुक जाता है। यह त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) को भी नष्ट करता है।

मलेरिया में यह बहुत अच्छा काम करती है, क्योंकि मलेरिया प्रायः दूषित जलवायु के कारण ही होता है, और ज्वर जाड़ा देकर ही चढ़ता है। ऐसी स्थिति में नीलम भस्म आधी रत्ती, मल्ल भस्म चौथाई रत्ती, फिटकरी का फूला हुआ १ माशा-सबको एकत्र मिला तुलसी पत्तों के रस के साथ दिन में तीन बार दें। यदि बुखार आ जाये तो नहीं दें। बुखार आने से १ घण्टा पूर्व ही दवा देनी चाहिए।

यह अर्शनाशक और अग्निप्रदीपक तथा वृष्य भी है। वृष्य होने के कारण ही यह शुक्र दोष को नष्ट कर शरीर को पुष्ट बनाती है।

प्रवाल (मूँगा)

परिचय- आयुर्वेद के मतानुसार समुद्र में बालसूर्य की किरणों के समान लाल मूँगे की बेल उत्पन्न होती है। यह बेल कसौटी पर कसने पर भी अपनी कान्ति (लालिमा) नहीं छोड़ती। पके कुँदरू फल के समान लाल, गोल, लम्बे, सरल, स्निग्ध (चिकना), व्रण (गाँठ) रहित और स्थूल (मोटा)- इन लक्षणों से युक्त मूँगा उत्तम होता है और इसकी भस्म अच्छी बनती है।

पीला, टेढ़ा, सूक्ष्म (महीन), छेदवाला, रूखा, काला और हल्के सफेद वर्णयुक्त मूंगे की भस्म नहीं बनानी चाहिए।

नव्यमत- आधुनिक अन्वेषणों से पता चला है कि समुद्र में एक प्रकार के छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। ये कीड़े बहुत छोटे और मुलायम होते हैं। यद्यपि ये कीड़े अनेक चीजों का भक्षण करते हैं, परंतु मुख्यतया पानी की मिट्टी ही इनका विशेष भोजन है। वह मिट्टी इनके पेट में जमा होती रहती है और जब कीड़ा मर जाता है, तब उसकी खाल अलग हो जाती है और मिट्टी मूँगा के रूप में निकलती है। समुद्र में इन कीड़ों की संख्या इतनी अधिक है कि लाखों मन मूंगा वहाँ इकट्ठा हो जाता है, जिससे मूंगा के पहाड़ बन जाते हैं।

इन मूँगों की कई किस्में होती है। कोई तो छोटे-छोटे पौधे की डालियों की तरह होते है, कोई टेढ़े-मेढ़े भी होते हैं। इस तरह मूंगों के बड़े-बड़े टीले समुद्र की तह तक पहुँच जाते हैं। यह कीड़ा २०-२२ फीट गहराई(नीचे) से अपना काम प्रारम्भ करता और १२०-१२२ फीट की गहराई तक नीचे पहुँच जाता है। नीचे से ऊपर तक दीवार की तरह यह सीधी इमारत बनाता है। कुछ लोगों के मतानुसार मूँगे के वृक्ष होते हैं, जो कि लंका और मालद्वीप के पास समद्र के भीतर पाये जाते हैं। वहाँ से निकाल कर ये यूरोपीय देशों को ले जाते हैं। वहाँ इन्हें साफ करके इनपर पॉलिश की जाती है। ज्यादातर इटाली में मूँगे की पॉलिश का काम होता है। मूँगा दो रूप में आता है, एक पतला शाखा(सांख) रूप में तथा दूसरा गोल दाना रूप में। भस्म और पिष्टी के लिये शाखा का ही विशेष प्रयोग होता है।

शोधन विधि- प्रवाल को दोलायंत्र में डालकर उसमें जयंती (अरणी) का रस या क्वाथ भरकर चूल्हे पर चढ़ा तीन घण्टे तक स्वेदन करने से प्रवाल शुद्ध हो जाता है। - र.त.

दूसरी विधि- गरम पानी में नींबू रस मिलाकर उसमें एक प्रहर तक प्रवाल को भिंगोकर पश्चात् पानी से धोकर रख लें।

भस्म विधि- उपरोक्त विधि से शुद्ध किये हुए प्रवाल को पहले इमामदस्ते या लौह खरल में कूट कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को साफ खरल में डाल ग्वारपाठे के रस में खूब खरल करें, गोला या टिकिया बना धूप में सुखाकर सराव-सम्पुट में बंद कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार तीन बार कुमारी स्वरस से पुट देने से प्रवाल की सफेद भस्म हो जाती है।-र.त.

दूसरी विधि- अच्छे लाल रंग के छेद रहित शुद्ध प्रवाल लेकर उसे गर्म जल से धोकर, कपड़े से पोंछकर, सुखा लोहे के इमामदस्ते में कूट-कपड़छन चूर्ण कर उत्तम पत्थर के खरल में आक के दूध या ग्वारपाठे के रस में पीस टिकिया बना, सुखा, सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल, एक दिन नींबू के रस और एक-दो दिन चन्दनादि अर्क में पीसकर, छाया में सुखाकर, कपड़छन करके शीशी में रख लें।-सि.यो.सं.

वक्तव्य- एक पुट से साफ-सफेद भस्म न बने तो पुनः पुट देते हैं। प्रायः दूसरी या तीसरी पुट में साफ-सफेद भस्म बन जाती है।

पिष्टी और चन्द्रपुटी प्रवाल भस्म- शुद्ध प्रवाल का कपडछन चूर्ण कर उत्तम खरल में गुलाबजल के साथ लगातार ८-८ घण्टे दो सप्ताह (१४ दिन) तक घोंटे। गुलाब जल कम हो जाने पर पुनः डाल दिया करें और रात में इस खरल को खुली छत या ऐसी खुली जगह में रखें, जहाँ चाँदनी और ओस बराबर पड़ती रहे। चन्द्रमा की चाँदनी पड़ने से इसको चन्द्रपुटीह प्रवाल कहा जाता है। यह विशेष सौम्यगुणयुक्त होती है। १४ दिन के बाद मुलायम पिष्टी को सुरक्षित रख लें। पिष्टी बनायी हो तो छाया में सुखाकर महीन कपड़े से छान कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- प्रवाल पिष्टी १ से ६ रत्ती और भस्म १ से ४ रत्ती तक आवश्यकतानुसार शहद से दें और प्रवाल भस्म चन्द्रपुटी दाडिमावलेह, अनार, बेदाना-रस, आँवला मुरब्बा की चाशनी, खमीरे गावजवान, च्यवनप्राश, ताजा दूध आदि के साथ आवश्यकतानुसार दें।

गुण और उपयोग- प्रवाल मधुर, अम्ल, कफनाशक, पित्त को शमन करनेवाला, दाहघ्न, वीर्यवर्द्धक, कान्तिजनक, क्षयनाशक, रक्त-पित्त को दूर करनेवाला, खाँसी को नष्ट करनेवाला, दीपन, सारक, पाचक, हल्का ज्वर, विष, भूतबाधा, उन्माद, पाण्डूरोग और नेत्र रोगों को दूर करनेवाला है। हृदय की कमजोरी मिटाकर रक्तचाप की वृद्धि का शमन करनेवाला तथा मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने वाला है।

प्रवाल भस्म की अपेक्षा 'पिष्टी' पित्तनाशक और सौम्य होने के कारण पित्त युक्त शुष्क कास, रक्तप्रदर, रक्त-पित्त, अम्लपित्त, नेत्र-प्रदाह और वमन आदि विकारों में विशेष हितकर है। पित्तविकारों की तो यह सर्वोत्कृष्ट दवा है। पित्त की तीक्ष्णता, उष्णता एवं अम्लता को शांत करने में यह अपूर्व है। यह अपने शीतवीर्य-शामक और प्रसादक गुणों के कारण अनेक रोगों में उपयुक्त होती है। पिष्टी की भी अपेक्षा चन्द्रपुटित भस्म विशेष सौम्य एवं शीतवीर्य है।

ज्वर को पचाने के लिए- जब ज्वर प्रारम्भ होता है, तो उपवास कराया जाता है। उपवास के बाद ज्वर (दोष) को पचाने के लिए गुडुच्यादि क्वाथ आदि पाचक काढ़ा का प्रयोग न कर केवल प्रवाल पिष्टी का ही प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह दीपन-पाचन है, अत: ज्वरादि दोषों को पचाता है, पैत्तिक ज्वर में जब रोगी को निद्रा न आती हो, ज्वरावस्था में पतले दस्त भी होते हों, नाड़ी का वेग अति वेगयुक्त हो, कण्ठ, नाक और मुख में दाह होता हो, पसीना बराबर छूटता हो, तो ऐसी हालत में इसकी पिष्टी से लाभ होता है।

पैत्तिक मलेरिया (विषमज्वर) में कभी-कभी ज्वर की गर्मी इतनी बढ़ जाती है कि रोगी परेशान हो जाता है। उसे प्यास ज्यादा लगने लगती है, गर्मी के मारे आँख और मुँह लाल हो जाते हैं, सम्पूर्ण शरीर जलता-सा मालूम पड़ता है, मुँह सूखने लगता है, पानी पीने पर भी प्यास शान्त न होकर और बढ़ जाती है। ऐसी हालत में प्रवालपिष्टी, गिलोय (गुर्च) सत्व के साथ में मिलाकर देने से उपद्रव शान्त होकर ज्वर की गर्मी भी जो पित्त प्रकोप के कारण बढ़ी रहती है, कम हो जाती है, क्योंकि यह पित्तशामक है, अंत: पित्तजन्य उपद्रवों को नष्ट करने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। पित्तप्रधान किसी भी ज्वर में पैत्तिक विकारों को शमन करने के लिए इसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से या किसी दवा में मिलाकर निर्भय होकर करना चाहिये, इससे आशातीत लाभ होता है।

राजयक्ष्मा की पूर्वरूपावस्था में प्रवालपिष्टी २ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी २ रत्ती और गुर्च का सत्व ४ रत्ती एकत्र मिलाकर च्यवनप्राश के साथ देना अति हितकर है।

यदि इस अवस्था से भी पार होकर यक्ष्मा तीसरी अवस्था में पहुंच जाय, तो प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, सुवर्ण भस्म चौथाई रत्ती, गुर्च सत्व २ रत्ती में मिलाकर अनार के शर्बत के साथ देने से बहुत लाभ होता है। यक्ष्मा की सब अवस्था में पिष्टी इसलिये लाभ करती है कि एक तो इसमें प्राकृतिक रूप से कैलशियम होती है और यह शीतवीर्य प्रधान होने से पित्त को शान्त कर कफ ढीला करके सूखी खाँसी को भी बन्द करती है, जिससे फुफ्फुस पर किसी तरह का आघात भी नहीं होने पाता। साथ ही यह वीर्यवर्द्धक भी है। अत एवं शरीर में शक्ति भी बढ़ाती है। अत: यक्ष्मा की प्रत्येक अवस्था में इसका व्यवहार करना परम लाभदायक है।

रक्तपित्त में चन्द्रपुटी प्रवाल अति लाभदायक है, क्योंकि इस रोग का मूल कारण पित्तदुष्टी ही है और चन्द्रपुटी प्रवाल पित्तशामक तथा रक्तप्रसादक होने से इन विकारों को दूर कर देती है।

यदि रक्त विशेष पतला हो या विशेष काल तक अधिक मात्रा में गिरता हो, तो चन्द्रपुटित प्रवालपिष्टी के साथ स्वर्णमाक्षिक भस्म को हल्दी-स्वरस के साथ देना चाहिए, क्योंकि हल्दी में अवरोधक शक्ति है, किन्तु इसे रक्तपित्त की प्रारम्भिक अवस्था में देने से दूषित रक्त रुक जाता है, जिससे पुन: रोग हो जाने का डर रहता है। अत: प्रारम्भिक रक्त-पित्त के अनुपान में हल्दी नहीं मिलानी चाहिए।

पैत्तिक कास में- प्रवाल चन्द्रपुटीत शर्बत अनार के साथ देने से फायदा होता है।

कुक्कर खाँसी- यह खाँसी अधिकतर बच्चों को हुआ करती है, क्योंकि बाल्यावस्था मे कफ बढ़ा हुआ रहता है और इस खाँसी में कफ रोज बनना या बढ़ना ही इस रोग का मूल कारण है। इस रोग में इतने जोर की खाँसी का वेग होता है कि खाँसते-खाँसते बच्चों के मुँह, आँख, कान आदि लाल हो जाते हैं, मुँह फूला हुआ-सा दिखाई पड़ता है। कभी-कभी खाँसी तब बन्द होती है, जब कि वमन हो जाता है। किसी-किसी बच्चे की एक आँख का कोना लाल (सुर्ख) हो जाता है। खाँसी का वेग ज्यादा बढ़ जाने से कान की नसें फट जाती हैं, जिससे खून भी आने लगता है, मुँह में भी खून आ जाता है। ऐसी दशा में प्रवाल चन्द्रपुटी बहुत जल्दी लाभ करती है, क्योंकि चन्द्रपुटी प्रवाल से नवीन कफ कम बनता है और वृद्धिगत (बढ़े हुए) कफ को यह छाँटकर निकालनी रहती है, जिससे श्वासपथ साफ हो जाता है फिर सांस के आने-जाने में रुकावट न होने से खाँसी भी नहीं होती। खाँसी कम हो जाने से और भी विकार शान्त हो जाते हैं। कुक्कर खाँसी में इसका प्रयोग करना अति गुणप्रद है।

गर्भिणी के लिए खाँसी या वमन होने पर चन्द्रपुटी प्रवाल का उपयोग करना अच्छा है अथवा जिस स्त्री की सन्तान कमजोर, अल्पायु या अधिक रोनेवाली होती हो अथवा दुबली-पतली त्वचा हो एवं वह भी कहीं-कहीं सिकुड़ी हुई हो- ऐसी सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री को गर्भाधान से लेकर जब तक बच्चा पैदा हो, उस समय तक बराबर चन्द्रपुटी प्रवाल को सेवन कराने से उक्त दोषरहित और हृष्ट-पुष्ट बच्चा उत्पन्न होता है, क्योंकि उपरोक्त दोष माता की कमजोरी अर्थात् शारीरिक सत्वाभाव के कारण ही होता है। प्रवाल पौष्टिक है। अत: उसकी पूर्ति इसके द्वारा होती है, जिससे बच्चे भी पुष्ट होते हैं।

नेत्र रोग में- पित्ताधिक्य के कारण आँखें लाल हो जाती हों, निद्रा कम होती हो, आँखों में दाह और जलन रहती हो, निद्रा खून न होने के कारण आँखों में पीड़ा व पलकें सूजी हुई रहती हों, सिर में दर्द होता हो- ऐसी अवस्था में प्रवाल चन्द्रपुटी देने से प्रकुपित पित्त का शमन हो जाता और उसके उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। कारण चन्द्रपुटी प्रवाल देने से बढ़ा हुआ पित्त शान्त हो जाता है और कफ की उचित मात्रा में वृद्धि हो निद्रा आने लगती और जलन तथा पलकों की सूजन आदि भी नष्ट हो जाती है।

पित्त-विकारजन्य उन्माद रोग में यह अच्छा गुण करती है, उन्माद, मानसिक और शारीरिक भेद से दो तरह के होते हैं, मानसिक क्षोभ अर्थात् शोक, चिन्तादि मसे मन में क्षोभ उत्पन्न होने से जो उन्माद होता है, वह मानसिक उन्माद है, और जिनमें पित्तवर्द्धक पदार्थ जैसे अधिक भांग या शराब के सेवन से पित्त दूषित होकर जो उन्माद होता है, वह शारीरिक उन्माद है। इसमें प्रवाल चन्द्रपुटी का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

यदि किसी को विष खाने की वजह से पित्त दूषित होकर उन्माद रोग उत्पन्न हुआ हो (ऐसी हालत में कोई-कोई प्रचण्ड पागल भी हो जाते हैं) तो प्रवाल चन्द्रपुटी देना अच्छा है। बाल शोष (सूखा रोग) में भी इसका असर बहुत अच्छा होता है। यह रोग ६ मास के बच्चे से लेकर ३-४ वर्ष तक के बच्चों को होते देखा गया है। इस रोग की सबसे साधारण परीक्षा यह है कि जिस बच्चे को यह रोग होता है, उसके कान की लौ (जिस स्थान पर कण्डल या लौंग आदि छेदकर पहनाया जाता है, उसे लौ कहते हैं) को चुटकी से खूब जोर से दबाने पर भी उस बच्चे को तकलीफ न हो, तो समझ लें कि यह बच्चा सूखा रोग से आक्रान्त हो गया हैं।

इस रोग में बच्चे एकदम कमजोर हो जाते, चूतड़ सूखकर उसकी खालें लटक जाती हैं, हाथ-पांव की भी खालों में सलवटे पड़ जाती है, अस्थियों में चूने (कैलशियम) की कमी के

कारण कोमलता आ जाती है, जिससे हड्डियां टेढ़ी-मेढ़ी भी हो जाती हैं, विशेषकर पैर की हड्डियाँ मुड़ जाती है, ज्वर भी रहता है तथा थोड़े-थोड़े दस्त भी होने लगते हैं। बच्चों का स्वभाव चिड़चिड़ा तथा रोना-सा हो जाता है। प्रधानतया ये ही लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रवाल चन्द्रपुटी देना बड़ा लाभदायक हैं, क्योंकि इसमें प्राकृतिक कैल्शियम (चूना) का भाग ज्यादा रहता है। साथ ही पौष्टिक, शक्तिवर्द्धक एवं रक्त-प्रसादक होने की वजह से हड्डी में चूने के अंश की पूर्तिकर उसमें सख्ती लाती है और खून को बढ़ाकर शरीर पुष्ट करती है तथा ताकत उत्पन्न कर बच्चे को सबल बनाती है। अर्थात् जिस अंश की कमी रहती है, उसकी पूर्ति कर रोग दूर कर देती है। इस रोग में प्रवाल भस्म का भी उपयोग उत्तम लाभदायक होता है।

बच्चों के डब्बा (पारिगर्भिक) रोग अथवा दाँत आने के समय हरे-पीले दस्त होने लगते हों अथवा दाँत निकलने में विशेष तकलीफ होती हो, ज्वर भी रहता हो, बालक कमजोर होता जा रहा हो, तो प्रवाल चन्द्रपुटी का उपयोग करना अच्छा है।

एक साल के बाद ही सूजाक या उपदंश रोग में- प्रवाल चन्द्रपुटी का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। रक्त या श्वेतप्रदर में भी यह अच्छा काम करती है। -औ.गु.ध.शा.

क्षय की प्रारम्भिक अवस्था- में जब कि रोग-निर्णय करना कठिन प्रतीत हो, केवल क्षय का सन्देह मात्र हो, ऐसी अवस्था में प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, शुक्ति पिष्टी २ रत्ती, स्वर्णमालिनी वसन्त १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

क्षय की दूसरी अवस्था- में प्रवाल चन्द्रपुटी २ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, गिलोय सत्व ३ रत्ती के साथ मिलाकर देने से अपूर्व लाभ होता है। क्षय की तृतीयावस्था -यह कष्टसाध्यावस्था है। अत: सफलता कम ही मिलती है। फिर भी धन्वन्तरि भगवान का नाम लेकर प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण भस्म या वर्क चौथाई रत्ती, मुक्तापिष्टी आधी रत्ती- इन सबको गिलोयसत्व २ रत्ती में मिलाकर बकरी के दूध के साथ देना हितकर है।

पैत्तिक शिर:शूल, सिर-दर्द, वमन, दाह, जलन आदि में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती को आँवले के मुरब्बे के साथ देना लाभप्रद है।

उर:क्षतजन्य शुष्क क़ास में लाक्षा (लाख) के क्वाथ के साथ प्रवाल पिष्टी १ रत्ती सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर देने से लाभ होता है। गर्भवती स्त्रियों के वमन, कास एवं अन्य उपद्रव्यों में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, मिश्री एक माशा के साथ देने से जमा हुआ कफ निकल जाता है तथा वमन और खाँसी भी मिट जाती है। कफ को सुखाने के लिये प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, श्रृंगभस्म १ रत्ती दोनों को मिलाकर मधु के साथ देना चाहिए। पैत्तिक श्वास में कफ निकालने के लिए प्रवाल पिष्टी को गुडूची सत्व के साथ या च्यवनप्राश में मिलाकर देना अच्छा है।

विष का प्रयोग होने पर शरीर में कुछ-कुछ विष का असर अवश्य ही रह जाता है। खासकर संखिया, हरताल और रसकपूर का असर प्राय: जीवनभर रह जाता है। और तब तक शरीर में कष्ट भी देता रहता है। ऐसी अवस्था में प्रवाल पिष्टी एक रत्ती का सेवन घी या मक्खन-मिश्री के साथ करना अति लाभदायक है।

भूतोन्माद और पित्तोन्माद में प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण १ माशा सारस्वतारिष्ट या ब्राह्मी शर्बत के साथ देना हितकर है। गर्मी के कारण आँखें आ जाती हैं और उसमें अधिक जलन (दाह) तथा दर्द होने लगता है, ऐसी अवस्था में दूध के साथ देने से लाभ होता है।

पित्तजन्य शिर:शूल में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, बादाम का हलुआ २।। तोला के साथ खाकर, ठण्डा किया गरम दूध पीना लाभदायक है।

शुक्रस्थान की अत्यन्त निर्बलता अथवा स्नायुमण्डल की दुर्बलता के कारण शुक्र बहुत पतला और शक्तिहीन हो जाता है। इस अवस्था में च्यवनप्राश एक तोला के साथ प्रवाल भस्म या प्रवाल पिष्टी २ रत्ती मिलाकर प्रात:-सायं सेवन करें और भोजनोत्तर अश्वगन्धारिष्ट २।। तोला बराबर जल मिलाकर पीने से लाभ होता है।

रक्तार्श में प्रवालपिष्टी २ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती, असली नागकेशर का चूर्ण १ माशा के साथ देना हितकर है। इसका निरन्तर सेवन करने से स्थायी लाभ होता हे। बार-बार रक्त गिरना तो सर्वप्रथम ही बन्द हो जाता है।

यकृत विकार में पित्तदुष्टि अधिक हो जाय, तो प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, आरोग्यवर्द्धिनी १ गोली में मिलाकर मधु से देना चाहिए। पैत्तिक ज्वर या ज्वर की गर्मी (उत्ताप) को कम करने के लिए प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, गिलोय (गुर्च) सत्त्व ४ रत्ती में मिलाकर ३-३ घण्टे के बाद मधु मिलाकर देने से फायदा होता है।

पित्तज अम्लपित्त में प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, अविपत्तिकर चूर्ण २ माशे आँवले के मुरब्बे के साथ या गाय के धारोष्ण दूध के साथ देने से अत्यन्त लाभ करती है। पित्तज प्रदर में दाह व प्रदर के स्राव लगने से होनेवाली फुंसियाँ, त्वचा फट कर फोड़ा होना, खुजली पैदा होना आदि उपद्रव होते हैं। इस अवस्था में प्रवाल पिष्टी २ रत्ती को उशीरासव या अशोकारिष्ट अथवा सारिवाद्यासव के साथ देना अत्यन्त लाभप्रद है।

हृदय की दुर्बलता में तथा रक्तचाप वृद्धि में प्रवाल चन्द्रपुटित या पिष्टी २ रत्ती को खमीरे गावजवान आधा तोला और मधु तीन माशा में मिलाकर देने से शीघ्र ही बहुत अच्छा लाभ होता है।

छोटी या बड़ी चेचक (माता रोग) में प्रथम सप्ताह में प्रवाल पिष्टी १ रत्ती का गोदन्ती भस्म १ रत्ती के साथ देने से एवं द्वितीय सप्ताह में प्रवाल भस्म २ रत्ती को मधु के साथ देने से दाने आसानी से निकलकर सूख जाते हैं।

पारद भस्म

प्रथम विधि- शुद्ध पारा और सेन्धा नमक १-१ तोला, संखिया ६ माशे, बच्छनाग ३ माशे, हींग, फिटकरी, गेरू और समुद्र लवण का समान भाग मिश्रित चूर्ण-इन सबको बराबर लेकर सबको एकत्र मिला, काँजी में अच्छी तरह घोंटे। फिर इन्द्रायण की जड़ के स्वरस में घोंटकर डमरूयन्त्र में रखकर आठ प्रहर की आँच दें। यन्त्र के स्वांगशीतल होने पर उसे खोलकर ऊपर की हांडी में लगी हुई पारद भस्म को निकाल लें।

दूसरी विधि- शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला लेकर खरल में घोंटकर इनकी अच्छी तरह कज्जली बनाकर इसको बड़ के दूध से घोंटकर एक मिट्टी के चौड़े दृढ़ पात्र में (कुंडे में) डालकर चूल्हे पर चढ़ा दें, और उसके नीचे मन्द-मन्द अग्नि दें। इसे बड़ की गीली लकड़ी के डण्डे से धीरे-धीरे चलाते रहें। इस प्रकार एक दिन तक अत्यन्त मन्द-मन्द अग्नि देकर पकाने से पारद की भस्म हो जाती है। इस प्रकार से की गई भस्म काले अंजन के समान कृष्ण वर्ण की होती है। इसमे निर्धूम, गौरव आदि गुण होते हैं।

– यो.चि.

मात्रा और अनुपान- १ रत्ती से २ रत्ती। इस भस्म को कैपसूल या मुनक्का के बीच में रखकर निगल जाना चाहिए।

रोगानुसार अनुपान- पारद भस्म को पित्तपापड़ा तथा मोथा क्वाथ या तुलसी क्वाथ अथवा पिप्पली-क्वाथ के सेवन करने से ज्वर नष्ट होता है। लाक्षा-चूर्ण हरीतकी चूर्ण या वासा चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ सेवन करने से रक्तपित्त रोग नष्ट होता है। कास को नष्ट करने के लिये इसको छोटी-छोटी कटेली के क्वाथ में पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए। पाण्डुरोग में इसे त्रिफला और हल्दी कषाय के साथ प्रयोग करना चाहिए। अतिसार में पंचक्षीरी वृक्ष के क्वाथ से इसका सेवन करें। प्रवाहिका (पेचिश) में आम तथा जामुन के पत्तों का रस, बेल का चूर्ण, सोंठ और गुड़ इन सब को एकत्र मिला कर, मन्दाग्नि पर पका कर अवलेह-सा बना लें। इस अवलेह के साथ पारद-भस्म का सेवन करें।

पारद-भस्म को हींग और पिप्पली चूर्ण के साथ सेवन करने से विशूचिका (हैजा) रोग नष्ट होता है। हरीतकी चूर्ण और काँजी के साथ इसका सेवन करने से अजीर्ण रोग नष्ट होता है।

पुरातन तथा नवीन अर्श रोग के लिए पारद-भस्म को पुटपक्व जमीकन्द (सूरण) में तिल तैल तथा सेंधानमक मिलाकर सेवन करना चाहिए। बिजौरा नींबू का काला नमक के साथ इसका सेवन करने से हिक्का रोग नष्ट होता है। वमन और अन्तर्दाह के लिए धान की खीलों के चूर्ण को जल में घोलकर उसमें मधु तथा मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिए।

क्षतयुक्त क्षय में बकरी का दूध तथा पिप्पली कल्क-सिद्ध घृत में गन्धक मिलाकर उसके साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है। गोक्षुरादि कषाय अथवा मसूर-क्वाथ में मधु मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग आराम होता है। तिलों के क्वाथ में त्रिकटु चूर्ण मिलाकर इसके साथ पारद-भस्म सेवन करने से शूल नष्ट होता है। शम्बूक भस्म और यवक्षार के साथ पारद-भस्म देने से परिणामशूल नष्ट होता है।

शोथरोग में कुटकी तथा सोंठ के कषाय में गोमूत्र मिलाकर पारद-भस्म सेवन करना चाहिए। दारु हल्दी तथा त्रिफला क्वाथ के साथ पारद-भस्म सेवन करने से कामला रोग नष्ट होता है। स्थूलता (मोटापा) दूर करने के लिये शुद्ध गुग्गुलु में त्रिफला और त्रिकटु तथा मरिच चूर्ण और एरण्ड तैल मिलाकर खूब कूट लें, जिससे अवलेह-सा बन जाय। इसमें पारद-भस्म मिलाकर सेवन करना चाहिए। लहसुन के कल्क तथा स्वरस से पकाये हुए तिल तैल के साथ पारद-भस्म सेवन करने से पुराने तथा नवीन सभी प्रकार के वातरोग नष्ट होते हैं। वातरक्त मे पारद भस्म को हरड़ और गिलोय के क्वाथ में गुड़ मिलाकर सेवन करना चाहिए। सोंठ और एरण्डबीज के चूर्ण से पहिले क्षीरपाक विधि से दुग्ध सिद्ध कर लें, इसके साथ प्रत्येक दिन में दो बार पारद भस्म का सेवन करने से गृध्रसी रोग नष्ट होता है, बाकुची, त्रिफला तथा भृंगराज चूर्ण के साथ पारद-भस्म सेवन करने से सफेद कोढ़ नष्ट होता है।

उदर के कृमियों के लिए इसको वायविडंग, नीम, दाड़िम की छाल, पलास बीज के चूर्ण के साथ मधु में मिलाकर सेवन करना चाहिए। शरीर की कृशता दूर करने के लिए पारद-भस्म को शतावरी, खरेंटी, असगन्ध और केला-कन्द के कषाय के साथ दो मास तक सेवन करना चाहिए।

अपस्मार रोग के लिए- कालानमक, त्रिकटु, हींग- इनका कल्क कर इसमें कल्क से चौगुना गोघृत और उससे चौगुना गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्ध कर लें। इसके साथ सात दिन तक

पारद-भस्म का सेवन करावें। त्रिफला, शिलाजीत और त्रिकटु के चूर्ण को भांगरे के रस की सात भावना देकर सुखा लें। इस चूर्ण के साथ पारद-भस्म का सेवन कराने से प्रमेह रोग नष्ट होता है। स्थावर तथा जंगम विषो के प्रभाव को दूर करने के लिए पारद-भस्म को घृतकुमारी मूल-स्वरस अथवा चौलाई-स्वरस के साथ सेवन करना चाहिए।- र.स. तरंगिणी

गुण और उपयोग- अच्छी तहर बनाई हुई पारद की भस्म-संग्रहणी, अतिसार, क्षय और शोषरोग को नष्ट करती है तथा पाचकाग्नि की दुर्बलता दूर करती है। इस भस्म के सेवन से शरीर में बल, वीर्य, तथा मैथुन-शक्ति की वृद्धि होती है। शरीर को पुष्ट करनेवाली भस्म रोग को नष्ट कर शान्ति उत्पन्न करती है। स्मरण-शक्ति को बढ़ाती है और शरीर को मजबूत करती है। लगातार एक वर्ष तक इसका सेवन किया जाय, तो बुढ़ापा नष्ट हो जाता है। पारद-भस्म के सेवन करने पर मैथुन शक्ति की अपूर्व वृद्धि होती है। अधिक विषय भोग करनेवालों को पारद-भस्म के सेवन से वीर्यवृद्धि होकर अच्छी शक्ति प्राप्त होती रहती है, अत: निर्बलता नहीं आ पाती। मलाई या मक्खन के साथ सेवन करना चाहिए। उपदंश रोग में पारद-भस्म २ रत्ती को प्रात:काल तीन या सात दिन तक सेवन कराने से उपदंश का विष नष्ट होकर उत्तम लाभ हाता है। कुष्ठ रोग में १ रत्ती की मात्रा में इसे सुबह-शाम दो से तीन सप्ताह तक सेवन कराने से रोग निर्मूल हो जाता है। रोग की स्थिति के अनुसार सेवन-काल की अवधि का चिकित्सक को स्वयं निर्णय कर लेना चाहिए। दुर्बल तथा नाजुक प्रकृति के रोगी एवं कम उम्र वालों की उनकी स्थिति के अनुसार मात्रा निर्णय करके देवें। दवा सेवन करते समय तथा बाद में कुछ समय नमक, मिर्च, गुड़, तैल का परहेज करें। जौ या गेहूँ की दलिया, रोटी, दूध घी, चीनी, हलुवा आदि खाना चाहिए।

पीतल

परिचय- दो भाग ताँबा और एक भाग जस्ता के मेल से पीतल बनता है। यह मुख्यतया सम्पूर्ण भारतवर्ष में बरतन बनाने के काम में आता है। आयुर्वेदीय रसायन शास्त्र के अनुसार इसका भस्म बनाकर चिकित्सा में व्यवहार की जाती है।

भस्म करने योग्य पीतल- जिस पीतल को अग्नि में तपाकर काँजी में बुझाने से ताँबे के समान वर्ण निकले और जो देखने में पीला, भारी और चोट सहन करनेवाला हो, वही पीतल भस्म के लिए लेना चाहिए।- र.र.स.

शोधन विधि- पीतल के पतले-पतले पत्र बनाकर आग में तपा-तपा कर निर्गुण्डी रस में हल्दी का चूर्ण मिलाकर इसमें सात बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है। -र.त.

भस्म विधि- शुद्ध पीतल के छोटे-छोटे कंटकवेधी पत्र बना कर २० तोला ले। फिर २० तोला गन्धक और २० तोला मैनशील मिलाकर, घी कुमारी के रस के साथ अच्छी तरह घोंटकर पीतल के पत्रों पर लेप करके धूप में सुखा लें। बाद में सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। इस तरह गन्धक और मैनशील के साथ तीन पुट देने से पीतल की काजल के सदृश भस्म हो जाती है।

दूसरी विधि- पीतल के बुरादे को तैल-तक्रादि में शुद्ध कर (बुझावा देकर), शुद्ध बुरादे के बराबर सेंधा नमक तथा शुद्ध गन्धक मिलाकर नींबू रस या इमली के पानी की भावना देकर हँडिया में रखकर कपड़मिट्टी करके गजपुट में रख कुछ तेज आँच दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर घुटाई करके उसके बराबर गन्धक मिला नींबू रस या इमली के पानी की भावना

देकर सराबों में रख, गजपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर पुनः पूर्ववत् घुटाई कर, आधे परिणाम में गन्धक देकर नींबू या इमली-रस की भावना देकर पुट दें। स्वांग-शीतल होने पर गजपुट से निकाल कर अच्छी तरह घोंटकर कड़ाही पर कपड़ा लगा पानी के साथ भस्म को छान लें। छानने के बाद धुलाई तब तक करावें जब तक पानी में हरापन आता रहे तथा स्वाद अच्छा न हो जाय। भस्म बनाने के बाद अन्तिम पुट में थोड़ा तैल (अष्टमांश का तैल) मोयन देकर भट्ठी पर चढ़ा कर तैल को जला दें। भट्ठी पर चढ़ी हुई कड़ाही के माल को (पीतल भस्म को) चलाते रहना चाहिए।

-र.सा.सं. के आधार, पर स्वानुभूत।

इसमें ताँबे का अंश रहता है। अतः वान्ति-भ्रान्ति दोष को भी रहना सम्भव है। इन दोषों को दूर करने के लिए इस भस्म को जम्बीरी नींबू के रस में घोंटकर १-२ पुट और देने से उक्त दोष मिट जाते हैं और भस्म भी विशेष गुणकारी तथा निर्दोष हो जाती है।

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती, दिन में दो बार अनार के शर्बत या मधु से दें।

गुण और उपयोग- इसकी भस्म स्वाद में तिक्त, रूक्ष और कृमिनाशक होती है। यह रक्तपित्त, कुष्ठ तथा पाण्डु को दूर करती है। प्रमेह, वातविकार, अर्श, संग्रहणी, श्वास, कामला और शूल को नष्ट करती है। यह विषनाशक, वीर्यवर्द्धक और पलित रोगनाशक है। यह शीतल पदार्थों के साथ सेवन करने से शीतवीर्य और उष्ण पदार्थों के साथ सेवन करने से उष्णवीर्य है।

इस भस्म मे ताम्र और यशद दोनों के मिश्रित गुण हैं, किन्तु यह भस्म ताम्र भस्म के समान उग्र (तेज) और यशद भस्म के समान शीतवीर्य नहीं है। जिस रोगी को ताम्र भस्म सेवन करने से पेट मे जलन और हाथ-पाँव में भी दाह तथा आँखों में गर्मी (जलन) प्रतीत होती हो, कभी-कभी पेट में ज्यादा गर्मी बढ़ जाने से सम्पूर्ण शरीर की रक्तवाहिनी धमनी संतप्त हो जाती हो। जिससे रात में खलबली मचकर देह में खुजली चलने लगती है। फिर जैसे-जैसे गर्मी कम हो जाती है, वैसे-वैसे खुजली भी कम हो जाती है। ऐसी अवस्था में ताम्र भस्म न देकर पीतल भस्म ही देना अच्छा है।

शूल और संग्रहणी में यशद भस्म से यदि लाभ न हो, तो पीतल भस्म देना श्रेष्ठ है। पित्त और कफ विकार में पीतल भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। यह भस्म दीपक और पाचक भी है।

पुखराज

परिचय- यह प्रसिद्ध नौ रत्नों में से एक रत्न है। इसका रंग सफेद और पीला होता है। यह अल्युमिनियम और सिकता (बालुका) का यौगिक है। इसका काठिन्य ८ तथा विशिष्ट गुरुत्व ३०० है।

भस्म के योग्य पुखराज के लक्षण- जो पुखराज भारी, चिकना, स्वच्छ, मोटा, समानाकार, कोमल, अमलतास के फूल के समान पीतवर्णयुक्त हो, वही पुखराज भस्म के लिए लेना चाहिए।

शोधन विधि- पुखराज को काँजी और कुल्थी के क्वाथ में दोलायन्त्र-विधान से एक प्रहर तक स्वेदन कर गर्म जल से धोने पर शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध पुखराज को लेकर इमामदस्तें में कूट-कपड़छन चूर्ण में समान भाग मैनशील, गन्धक और हरताल मिला, बड़हल के रस में सुखाकर लघुपुट में फूँक दें। इस तरह के ८ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

पिष्टी-शुद्ध पुखराज को कूट-कपड़छन चूर्ण बना कर, गुलाब जल के साथ खरल में १२ घण्टे तक घोंटकर महीन पिष्टी बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती शहद, मक्खन, मलाई आदि से दें।

गुण तथा उपयोग- पुखराज भस्म विष-विकार, वमन, कफ, वात, मन्दाग्नि, दाह, कुष्ठ और बवासीर को दूर करती है। यह दीपन, हल्का और पाचक है। वैसे तो इसकी भस्म शीतल है, किन्तु हरताल तथा मैनशील के योग से कुछ उग्र हो जाती है। यह जठराग्नि, दीपक, वीर्यवर्द्धक, बुढ़ापा दूर करनेवाली, बुद्धिवर्द्धक, कीटाणुनाशक और पित्तवर्द्धक है।

पिष्टी भस्म से सौम्य होती है। यह दाह (जलन) और रक्त पित्त विकार का दूर करती है। यह आमाशय, हृदय और मस्तिष्क के लिए बलदायक है और अश्मरी को तोड़नेवाली तथा हृत्स्पन्दन (दिल धड़कना) रोग में लाभकारी है।

बंग

परिचय- यह दो प्रकार का होता है। एक हिरनखुरी (खुरक) और दूसरा मिश्रक। इनमें हिरनखुरी बंग भस्म के लिये ली जाती है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ७.३ और द्रवणांक २३५० शतांश ताप है तथा २२७० शतांश ताप पर बाष्प बनकर उड़ने लगता है। पिनांग (चीन) का बंग श्रेष्ठ होता है।

हिरनखुरी बंग के लक्षण- हिरनखुरी बंग रंग में सफेद, कोमल, स्निग्ध, जल्दी गल जानेवाला, भारी और शब्दरहित होता है। यही बंग भस्म के लिए उत्तम है।

शोधन विधि- इसका शोधन नाग के समान होता हे। शोधन करते समय द्रव द्रव्यों में डालने पर यह भी उछलता है, अंत: विशेष सावधानी से विधिपूर्वक डाले।

भस्म विधि- बंग को लोहे की कड़ाही में अग्नि पर गलाकर उसमें पलास (ढाकटेसू) के पुष्प, मोती की सीप का चूर्ण अथवा मुर्गी के अण्डे के छिलके का धोया हुआ चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालकर लोहे की कलछी से चलाता जाय। जब सम्पूर्ण बंग का चूर्ण हो जाय तब उसके ऊपर सकोरा ढककर तब तक आँच दें तब तक बंग भस्म का वर्ण आग की तरह लाल न हो जाय। स्वांगशीतल होने पर सूप से फटककर, पलास के फूलों की राख अलग करके बंग भस्म को कपड़े से छानकर ग्वारपाठे (घीकुमारी) के रस में मर्दन कर छोटी-छोटी टिकियां बनाकर, धूप में सूखाकर, सराव-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस तरह सात पुट देने से श्वेतवर्ण की भस्म मिलेगी।

दूसरी विधि- धातु शोधन-विधि से शोधित रांगा आधा सेर लेकर एक कड़ाही में डालकर पिघलावें। बाद में चतुर्थांश सीप का चूर्ण तथा लगभग १ सेर ढाक के फूलों को थोड़ा-थोड़ा करके नीचे ४-५ घण्टे तेज अग्नि देवें। फिर स्वांगशीतल होने पर पूर्वोक्त त्रिबंग भस्म की तरह छानकर-धोकर एवं सुखाकर ग्वारपाठे के रस की भावना देकर घोंटकर टिकिया बनाकर सुखावें और पुट में रखकर फूँक देवें। प्रथम पुट में कुछ तेज आँच देवें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर घुटाई करके, पुन: ग्वारपाठे के रस की भावना देकर टिकिया बनाकर पुट देवें। इस प्रकार ७ से ११ पुट देने से सफेद रंग की उत्तम भस्म होगी। भस्म तैयार होने पर घुटाई करवाकर छानकर फिर धुलाई करके सुखाकर रखना चाहिए। -सि.यो.सं.के आधार प स्वानुभूत विधि

नोट- बंग भस्म एक बार में ४० तोले से ६० तोले तक बनावें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती मक्खन, मलाई, मिश्री, मधु या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान-

मुख की दुर्गन्धि में- बंग भस्म १ रत्ती, शुद्ध कपूर २ रत्ती, सेन्धा नमक २ रत्ती इन्हें कडुवा तेल में मिलाकर मंजन करें।

शरीर-पुष्टि के लिए-जायफल का चूर्ण २ रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती में मिलाकर मधु या गाय के दूध के साथ दें।

प्रमेह में- बंग भस्म १ रत्ती, हल्दी चूर्ण ४ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती में मिलाकर मधु से दें।

अथवा- बंग भस्म १ रत्ती, गोखरू चूर्ण १ माशा में मिलाकर गोदुग्ध (मिश्री मिलाकर) के साथ देवें।

अथवा- बंग भस्म १ रत्ती, नाग भस्म १ रत्ती, गिलोयसत्व ४ रत्ती एकत्र मिलाकर मलाई के साथ देवें।

पाण्डु में- बंग भस्म १ रत्ती, लौह या मण्डूर भस्म २ रत्ती त्रिफला चूर्ण के साथ मधु में मिलाकर देवें।

गुल्म में- बंग भस्म २ रत्ती, सुहागे की खील ४ रत्ती शंख भस्म २ रत्ती में मधु या गोमूत्र के साथ देवे।

रक्तपित्त में- बंग भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे को दूर्वा रस और मधु के साथ दें तथा ऊपर से उशीरासव पिलावें।

बलवृद्धि के लिये- बंग भस्म २१ रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती, प्रवालभसम २ रत्ती, मक्खन मिश्री के साथ दें।

अग्निमांद्य के लिये- बंग भस्म १ रत्ती, पीपल चूर्ण २ रत्ती में मिलाकर नीम्बू या अदरख रस में दें।

ऊर्ध्वश्वास के लिये- बंग भस्म १ रत्ती, हल्दी चूर्ण २ रत्ती में मिलाकर घृत और मिश्री के साथ दें।

शरीर की दुर्गन्धि के लिये- बंग भस्म १ रत्ती, चम्पा के फूल का चूर्ण १ माशा में मधु के साथ दें।

दाह शमन के लिये- बंग भस्म १ रत्ती, नीम की पत्ती का रस १ तोला, मिश्री २ माशा मिलाकर दें।

वीर्यस्तम्भन के लिये- बंग भस्म २ रत्ती, नाग भस्म १ रत्ती, वंशलोचन चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर अथवा कस्तूरी आधी रत्ती, भांग ४ रत्ती में मिलाकर मक्खन-मिश्री अथवा पान के रस या मधु में मिलाकर दें, पश्चात् औंटाया हुआ दुध पिलावें।

चर्मविकार में- बंग भस्म १ रत्ती तबकिया हरताल भस्म आधी रत्ती में मिलाकर त्रिफला चूर्ण १ माशा के साथ दें। ऊपर से खदिरारिष्ट या सारिवाद्यासव पिलावें।

सोमरोग में- बंग भस्म १ रत्ती को ताम्र भस्म आधी रत्ती के साथ मधु में मिलाकर दें।

धातुक्षीणताजन्य क्षय रोग में- बंग भस्म १ रत्ती, प्रवालभस्म २ रतती, स्वर्णवसन्तमालती १ रत्ती, ताप्यादि लौह २ रत्ती, मधु में मिलाकर दें।

अजीर्ण में- बंग भस्म १ रत्ती, लवणभास्कर चूर्ण डेढ़ माशा में मिलाकर, गर्म जल से दें।

वात-पीड़ा (दर्द) में- बंग भस्म २ रत्ती, लहसुन कल्क में मिलाकर खाने से वातविकारों में फायदा होता है।

वातव्याधि में- बंग भस्म २ रत्ती, असगन्ध चूर्ण १ माशा, अजवायन चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु के साथ दें।

जलोदर में- बंग भस्म २ रत्ती, फिटकरी भस्म ४ रत्ती में मिलाकर बकरी के दूध के साथ दें।

कटिशूल में- बंग भस्म १ रत्ती, जायफल चूर्ण ४ रत्ती, असगंध का चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर शहद के साथ लें।

स्वप्नदोष के लिए- बंग भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, कबाब चीनी चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर शहद के साथ लें।

अथवा बंग भस्म १ रत्ती, शिलाजीत ४ रत्ती में मिलाकर गोदुग्ध के साथ सेवन करें।

-भा.भै.र. से किंचित् परिवर्तित

गुण और उपयोग- बंग भस्म प्रमेह, धातुक्षीणता बहुमूत्र, वीर्यस्त्राव, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, नपुंसकता, कास, श्वास, रक्त-पित्त, पाण्डु, कृमि, मन्दाग्नि, क्षय आदि रोगों को नष्ट करती है। यह उष्ण, दीपक, पाचक, रूचिकर, बलवीर्य-वर्द्धक, वातघ्न और किंचित् पित्तकारक है। स्त्रियों के गर्भाशय के दोष अत्यार्तव, कष्टार्तव तथा वन्ध्यत्व दूर करने में भी यह भस्म गुणकारी है, उपदंश और सूजाक से दूषित शुक्र को शुद्ध कर सन्तानोत्पादन के योग्य बनाती है। पुरोन रक्त और त्वचा के दोष भी इसके सेवन से दूर हो जाते हैं। सब प्रकार के प्रमेह विशेषतः शुक्रमेह पर बंग भस्म का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है।

बंग भस्म का प्रभाव शुक्र- स्थान पर विशेष रूप से होता है। अतः यह शुक्र की कमजोरी को दूर कर शक्ति प्रदान करती है। कमजोरी किन्हीं भी कारणों से क्यों न हो, सभी में वातवाहिनी सिरा तथा मांसपेशियाँ शिथिल हो ही जाती हैं। इनमें शिथिलता आने का प्रधान कारण अधिक शुक्र का क्षरण होना है। जब मनुष्य प्राकृतिक (स्त्री-सेवन से या अप्राकृतिक ढंग से हस्तमैथुनादि) द्वारा शुक्र का अधिक दुरूपयोग करता है, तब वातवाहिनी सिरा और मांसपेशियाँ कमजोर होकर शुक्र-धारण करने में असमर्थ हो जाती है जिसका फल यह होता है कि स्त्री-प्रसंग आदि विषयक विचार मन में उठते ही या किसी नवयुवती अथवा अश्लील तस्वीर आदि देखने मात्र से शुक्रस्त्राव होने लगता है। ऐसी दशा में बंग भस्म का सेवन करना अच्छा है, क्योंकि यह वातवाहिनी तथा मांसपेशी की कमजोरी दूर कर कर्मेन्द्रिय में सख्ती पैदा करती और शुक्र को गाढ़ा कर देती है, जिससे उपरोक्त दोष अपने आप दूर हो जाते हैं।

स्वप्नदोष या पेशाब के साथ शुक्र जाना- यह बीमारी प्रायः पित्त प्रकृतिवालों को विशेष होती है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकृतिवालों को जो खटाई, मिठाई, कटु आदि गर्म पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं, उन्हें भी यह बीमारी हो जाती है। इन पदार्थों के सेवन करने से पित्त कुपित हो रक्तवाहिनी सिरा में हलचल पैदा कर देता है, जिससे मन चंचल हो जाता है और उसके विचार में भी अनेक दुर्भावनायें पैदा होने लगती हैं और यही विचार (भावना) स्वप्नावस्था में भी बने रहने के कारण क्षणिक उत्तेजना होकर शुक्र स्राव (स्वप्नदोष) हो जाता है, ऐसी हालत

में बंग भस्म से बढ़कर और कोई दवा नहीं है, क्योंकि शास्त्र में भी लिखा है कि जो वीर्य-रोगी बंग भस्म का सेवन करता है, उसे स्वप्न में भी शुक्र-स्राव नहीं होता है।

वैसे तो सब प्रकार के प्रमेह पर बंग भस्म का उपयोग करने के लिये शास्त्रकारों ने लिखा है, किन्तु अनुभव से यह बात जानी गई है कि बंग भस्म जैसा कफ-प्रमेह पर अच्छा और शीघ्र काम करती है वैसा व्याधियों में नहीं, विशेषतया, शुक्रपात या शुक्रक्षय पर बहुत जल्दी असर दिखाती है।

मूत्रपिंड, मूत्राशय या मूत्रवह-स्रोतों पर भी इसका असर बहुत होता है। शरीर में जब रस-रक्तादि धातुओं का बनना कम हो जाता है, जिससे शरीर के सब अवयव कमजोर होने लगते हैं और शरीर में जलीय भाग की वृद्धि होने लगती है, तब पेशाब करने के लिये बार-बार जाना पड़ता है। इसकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि दिन-रात में २०-२५ बार पेशाब होने लगती है, ऐसी हालत में बंग भस्म का प्रयोग अमृत के समान गुण करता है, क्योंकि यह मूत्राशय तथा मूत्रवहा नाड़ी आदि को शक्ति प्रदान कर मूत्राशय में धारण शक्ति उत्पन्न कर देता है। जिससे पेशाब की मात्रा कम हो जाती और रस-रक्तादि धातु भी पुष्ट हो जाती हैं।

यदि विशेष शुक्रपात के कारण शरीर कमजोर हो गया हो, तो बंग भस्म का उपयोग बहुत लाभकर होता है, क्योंकि शुक्रदोष के कारण जो रोग होते हैं, उनमें बंग भस्म का प्रयोग करने से वह सर्वप्रथम शुक्र-विकार को दूर कर फिर अन्य कार्य करता है। अत: इस रोग में बंग भस्म का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

मन्दाग्नि और कोष्ठबद्धता (कब्जियत) हो जाने के कारण प्राय: पेट में छोटे-छोटे कीड़े (चुन्ने) हो जाते हैं। इससे ज्वर भी हो जाता है और ज्वर कभी-कभी अधिक दिनो तक रह जाता है, जिससे रोगी को विषम ज्वर (मलेरिया) का संशय होने लगता है, परन्तु इसमें प्रधानतया निम्नलिखित लक्षण होते हैं, जैसे पेट में पीड़ा होना, मुँह में पानी भर आना, जी मिचलना आदि। इन लक्षणों से कृमि का ज्ञान होता है। इसमें बंग भस्म अकेले या किसी मिश्रण के साथ देने से लाभ होता है, क्योंकि बंग भस्म कृमिघ्न होने के कारण कृमियों को नष्ट कर देती या जिन कारणों से ये कीड़े पेट के अन्दर जीवित बने रहते हैं, उन कारणों को दूर कर देती है।

विशेष शुक्रपात होने की वजह से जो मन्दाग्नि हो जाती है, उसमें भी बंग भस्म बहुत लाभ करती है। इसमें एकाएक अन्न पर अरूचि और भूख बिल्कुल मन्द हो जाती है तथा मुँह का जायका (स्वाद) भी तीता हो जाता है इत्यादि। इन लक्षणों के उत्पन्न होने पर बंग भस्म के सेवन से बहुत फायदा होता है, क्योंकि बंग भस्म दीपन-पाचन और अग्नि दीपक भी है। अन्य अग्निदीपक पदार्थ (शंख-कौड़ी-भस्म, चित्रक, हींग आदि) की तरह पाचक पित्त को बढ़ाकर अग्नि दीप्त नहीं करता, किन्तु इसका कार्य प्रथम शुक्र स्थान पर होता है। अत: शुक्रदोषों को दूर कर उसे पुष्ट बनाकर शरीर के अवयवों को बलवान बनाता है और जठराग्नि को भी प्रदीप्त करता है।

नपुंसकता- अधिक स्वप्नदोष या हस्तमैथुन आदि के कारण वातवाहिनी और मांसपेशियाँ कमजोरी हो जाने की वजह से शरीर में शुक्र नहीं रह पाता, जिससे मनुष्य कामवासना से वंचित ही रह जाता है। ऐसी हालत में बंग भस्म का प्रयोग अति लाभदायक है।

कोई-कोई घाव ऐसे होते हैं, जिनमें से मवाद बारबार निकलता ही रहता है। कभी-कभी उसमें कीड़े भी पड़ जाते हैं। घाव को प्रात: नीम के पत्तों को डालकर गर्म किए हुए पानी से खूब साफ कर धोवें। हो सके तो पानी में थोड़ासा 'बोरिक एसिड' या कार्बोलिक एसिड ३ बूंद डाल दें तो और अच्छा।

घाव पर उदुम्बर के दूध की पट्टी बाँधे और प्रातः-सायं १-१ रत्ती बंग भस्म मधु से सेवन करते रहने से घाव में से निकलेवाला मवाद बन्द हो जाता और कृमि नष्ट होकर व्रण भर जाता है।

प्रदर विशेष मात्रा में बढ़ गया हो अथवा स्त्रियों के डिम्बकोष कमजोर हो जाने से बीजधारण शक्ति का ह्रास हो गया हो, बीज धारक शक्ति की कमजोरी के कारण स्त्रियों में गर्भोत्पन्न करनेवाला बीज (आर्तव) की उत्पत्ति ही न होती हो या उपरोक्त कारणों की वजह से शरीर ज्यादा कमजोर हो गया हो, तो ऐसी स्थिति में बंग भस्म अच्छा काम करती है, क्योंकि बंग भस्म का असर गर्भाशय और रजो-विकार पर होता है, जिससे उपरोक्त दोष नष्ट होकर शरीर बलवान हो जाता, मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती और बन्ध्यापन भी दूर हो जाता है।

स्त्रियों के कटिशूल में- किसी-किसी को रजोदर्शन काल में कमर तथा बस्तिप्रदेश (नाभि से नीचे का भाग) में दर्द होने लगता है। यह दर्द अन्य दर्दों के समान नहीं होता। फिर भी नसों में दर्द होने की वजह से पीड़ा का बहुत अनुभव होता है। इस दर्द के कारण मासिक धर्म खुलकर न होकर रजःस्राव थोड़ा-थोड़ा और रुक-रुक कर होने तथा मासिक धर्म से संचित होने पर भी बंग भस्म बहुत फायदा करती है। - औ.गु.ध.शा.

अभ्रक भस्म और शिलाजीत, गिलोय (गुर्च) सत्व और मधु के साथ साधारणतया बंग भस्म का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों के श्वेत प्रदर में बंग भस्म २ रत्ती, मृगश्रृंग भस्म १ रत्ती में मिलाकर शर्बत अनार के साथ या मिश्री की चासनी से दें, ऊपर से पत्रांगासव पीने को दें। इससे प्रदर रोग नष्ट होकर स्त्रीबीज (डिंब) भी सबल होकर वन्ध्यत्व दोष नष्ट हो जाता है।

शुक्र पतला होकर निकला जाने से मनुष्य शक्तिहीन हो जाता है। इसका असर दिमाग पर भी पड़ता है, जिसकी वजह से मन में अनुक दुर्भावनाएँ पैदा होती हैं और इसी कारण स्वप्नदोषादि विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग में बंग भस्म २ रत्ती, गिलोय का सत्व ४ रत्ती, शिलाजीत २ रत्ती में मिला मक्खन-मिश्री के साथ देने से रोग नष्ट हो जाता है। इससे शुक्र और शुक्रस्थान दोनों पुष्ट हो जाते हैं और इनके पुष्ट होने से रसरक्तादि धातु पुष्ट होकर बलवान हो जाता है।

वृद्धावस्था, शुक्र प्रमेह तथा बहुमूत्र रोग में बंग भस्म २ रत्ती, नाग भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, मिलाकर मधु के साथ दें। स्वप्नदोष में ईसबगोल की भूसी के साथ बंग भस्म २ रत्ती मिलाकर देने से बहुत लाभ करती है। यदि विशेष शुक्रपात के कारण नपुंसकता आ गई हो, तो बंग भस्म २ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, असगन्ध चूर्ण १ माशे में मिलाकर गोदुग्ध से दें। अति मैथुन या अति शुक्रपात के कारण कास-श्वास एवं क्षय रोग की उत्पत्ति हो जाती है, इसके साथ-साथ धातुक्षीणता के भी लक्षण विद्यमान रहते हैं। इस रोग में बंग भस्म २ रत्ती, च्यवनप्राश १ तोला, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर और ऊपर से द्राक्षासव पिलावें। रक्तपित्त में प्रवालपिष्टि, २ रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे वासावलेह के साथ दें और ऊपर से उशीरासव पिलावें। अप्राकृतिक मैथुन (हस्तमैथुन) आदि की आदत पड़ने के कारण पाण्डुरोग के समान चेहरा पीला पड़ जाता है। शरीर निस्तेज, कृश तथा शुष्क हो जाता है। पानचशक्ति मन्द हो जाती है। इस अवस्था में बंग भस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती पान के साथ देने से विशेष लाभ होता है। मानसिक दुर्बलता में बंग भस्म और अभ्रक भस्म का मिश्रण ब्राह्मी चूर्ण के साथ देना बहुत हितकर है।

पेट की कृमि या अन्य कृमिजन्य विकार में बंग भस्म १ रत्ती, सनाय की पत्ती का महीन चूर्ण ३ माशा, मिश्री एक माशा में मिलाकर अमलतास के क्वाथ के साथ देना हितकर है। इससे कृमि नष्ट होकर दस्त की राह से निकल जाते हैं।

शुक्र की कमजोरी के कारण अग्निमांद्य में बंग भस्म १ रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती मे मिला मधु के साथ देना चाहिए। नेत्ररोग में बंग भस्म १ रत्ती, मुलेठी चूर्ण ४ रत्ती ताजे मक्खन और मिश्री के साथ देने से लाभ होता है। सूजाक में बंग भस्म १ रत्ती, मुक्तापिष्टी आधी रत्ती, चाँदी का वर्क चौथाई रत्ती, इलायची तथा वंशलोचन का चूर्ण ४-४ में मिलाकर मधु के साथ देने से बहुत गुण करता है।

उदर में कर्कटव्रण होने से वमन होती हो, तो बंग भस्म से अच्छा लाभ होता है। आयुर्वेद में दो औषधियाँ इस विकार पर लाभ करती हैं, एक तो बंग भस्म, दूसरी ताम्र भस्म उग्र और तीक्ष्ण होने से कफ प्रधान या कफ-वात-प्रधान विकारों में लाभकारी है। अन्य विकारो में बंग भस्म उपयोगी है। बंग भस्म सेवन से कर्कटव्रण को रक्तवाहिनियों की विकृति नष्ट होकर लाभ होता है।

वज्र (हीरा)

परिचय- आयुर्वेदिक मत से हीरा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भेद से चार प्रकार का होता है। क्षत्रिय जाति के हीरा में सफेद वर्ण होते हुए भी किंचित् लाल झाई होती है, यह बुढापा और सब रोगों को नष्ट करनेवाला होता है। ब्राह्मण जाति का हीरा सफेद वर्ण का होता है। यह रसायन कार्य के लिये उत्तम है। वैश्य जाति के हीरे में कुछ पीली झाँई होती है, यह धनदायक और शरीर को दृढ़ करनेवाला है। शूद्र जाति के हीरे में थोड़ी काली झाँई होती है, यह व्याधिनाशक और अवस्था स्थापक होता है।

इसी तरह पुरुष, स्त्री और नपुंसक भेद से तीन जातियाँ इनकी और बतलायी गयी हैं। इनमें पुरुष जाति का हीरा उत्तम, गोल, रेखा और बिन्दु से रहित, चमकदार और बड़े आकार का होता है और स्त्री जाति का हीरा रेखा और बिन्दु से शुक्त तथा छः कोनेवाला होता है। नपुंसक जाति का हीरा त्रिकोणयुक्त बड़े आकार का होता है। इसमें पुरुष जाति का हीरा सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि इसका प्रोग सब रोगों तथा अवस्थाओं में होता है। आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार हीरा शुद्ध काजल (Carbon) है। भूगर्भ में अत्याधिक भार के दबाव और ताप से यह काजल अत्यन्त उज्ज्वलवर्ण और कठोर रूप में बदल जाता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ३।। और काठिन्य १० होता है।

उत्तम हीरे की परीक्षा- उत्तम हीरे को कसौटी पर जोर से देर तक घिसने अथवा किसी दृढ पत्थर पर खून घिसने पर बिल्कुल नहीं घिसता, बल्कि अपनी तेज नोक से कसौटी, काँच आदि कठिन द्रव्यों को बड़ी आसानी से काट देता है।

शोधन विधि- हीरे को एक पहर तक कुल्थी या कोदों के क्वाथ में (दोलायन्त्र विधि से) स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है। -र.स.स.

दूसरी विधि- कोयलों की तेज आँच पर हीरे को मूषा में रखकर गरम कर १०० बार पारद में बुझाने पर शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- कुल्थी के क्वाथ में हींग और सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर रख लें, फिर इसके काढे में हीरे को उत्तम चिकने खरल में घोंटे। गोला बन जाने पर सराब-सम्पूट में बन्द कर लघुपुट में फूँक दें। ऐसे २१ पुट देने से कुछ सुर्खी-मायल रंग की भस्म तैयार होती। यदि सूर्खी न आवे तो एक खुला पुट देने से सुर्खी आ जायेगी।- भा.प्र.

दूसरी विधि- शुद्ध हीरे का चूर्ण, रससिन्दूर, शुद्ध मैनशील और शुद्ध गन्धक प्रत्येक समभाग लेकर एकत्र खरल में मर्दन कर सम्पुट में अच्छी तरह बन्द करके गजपुट में फूँक दें। इस तरह

चौदह पुट में हीरे की भस्म अवश्य हो जाती है। रससिन्दूर प्रथम पुट में ही देना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १ रत्ती उत्तम हीरा-भस्म को एक उत्तम खरल में डालकर उसमें चार माशा उत्तम रससिन्दूर मिलाकर अच्छी तरह पीस कर रख लें। आवश्यकता पड़ने पर इसमें से १ रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- हीरे की भस्म रसायन और देह को दृढ़ बनानेवाली पौष्टिक, बलदायक और कामोत्तेजक है। यह वर्ण को सुन्दर करनेवाली, सुखदायक तथा रोगनाशक है। यह सारक, शीतल, कषैला, मधुर, नेत्रों को हितकारी और शरीर को शक्ति प्रदान करनेवाली है।

हीरा भस्म नपुंसकता की अद्वितीय औषध है। यह वृष्य (उत्पादक अंगों को बल देनेवाली) आयुवर्धक, नेत्र-ज्योतिवर्द्धक, बलवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, वर्ण्य और मेधावर्द्धक है।

हीरा भस्म रस सिन्दूर या मकरध्वज मिलाकर मलाई के साथ कुछ दिनो तक सेवन करने से भयंकर नपुंसकता नष्ट हो जाती है। राजयक्ष्मा में हीरा भस्म को स्वर्ण भस्म तथा रससिन्दूर के साथ मिलाकर सेवन करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

रससिन्दूरयुक्त हीरा भस्म में कपूर, खाँड तथा छोटी इलायची के बीज का चूर्ण मिलाकर इसको दूध के अनुपान के साथ निरन्तर छः महीने तक सेवन करने तथा मधुर पदार्थों के भोजन करने से पुरुष में अनेक स्त्रियों के साथ समागम करने की शक्ति आती है। इसके सेवन से शरीर में सुन्दरता, तीव्र पाचन-शक्ति, अतुल बल ओर प्रखर बुद्धि की प्राप्ति होती है। हृदय की दुर्बलता एवं रक्तचाप वृद्धि रोग में हीरा भस्म १/३२ रत्ती को मुक्तापिष्टी १ रत्ती के साथ मधु में मिलाकर देने से बहुत उत्तम लाभ होता है। डाक्टरों से त्यक्त रोगी भी इससे अच्छे होते देखे गये हैं। कर्कट-व्रण में भी ताम्र भस्म आधी रत्ती के साथ मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है।

वर्तलौह (जर्मनी सिल्वर)

परिचय- काँसा, ताँबा, पीतल, लौह और शीशा यह पाँच धातुओं को गलाकर एकत्र मिला देने से जो धातु बनती है, इसको वर्तलौह (जर्मनी सिल्वर) कहते हैं।

शोधन विधि- वर्तलौह को अग्नि पर पिघला कर तुरन्त ही घोड़े के पेशाब में बुझा देने से यह शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध वर्तलौह (जर्मनी सिल्वर) के छोटे-छोटे टुकड़े कर उस पर समभाग गन्धक और शुद्ध हरताला लेकर नींबू के रस में घोंटकर लेप कर देना चाहिए। फिर सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। ६-७ पुट देने से अच्छी भस्म बन जाती है।

वक्तव्य- बृहत् रस राज सुन्दर में नींबू रस के स्थान पर अर्कदुग्ध से लेप करने का विधान है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती शहद, घृत या गिलोय के सत्व से देना।

गुण और उपयोग- यह पाँच धातुओं के संयोग से बनता है। अतः इसमें उन पाँचों के सम्मिश्रित गुण विद्यमान रहते हैं तथा संयोग-जन्य नये गुण भी रहते हैं। इसके अतिरिक्त जो अन्य भस्में इसमे मिला दी जाती हैं, उनके गुण भी रहते हैं। यह शीत-वीर्य, अम्ल, कटु, रूक्ष, कफ, पित्त और कृमि को नष्ट करता है। त्वचा और नेत्र विकारो में हितकर तथा रुचिकारक अर्थात् अरुचि को नष्ट कर रुचि उत्पन्न करनेवाला है और मलशोधक भी है।

सूचना- इस भस्म के सेवन-काल में अम्ल पदार्थों से परहेज करें।

वैक्रान्त (तुर्मुली)

परिचय- यह एक विशेष खनिज है जो कि अभ्रक के साथ तथा कभी-कभी स्वतंत्र रूप से भी प्राप्त होता है। प्रायः इसीलिये रसायन-शास्त्र में अभ्रक के बाद ही इसको रखा गया है। वैक्रान्त के विषय में आचार्यों में मतभेद है। कुछ लोग स्फटिक (बिल्लौर) को तो कुछ लोग मैंगनीज को एवं कितने ही लोग तुरमुली को वैक्रान्त मानते हैं, किन्तु अधिकांश वैद्यों के मतानुसार तुरमुली ही वैक्रान्त मानी गयी है।

आजकल जौहरियों के परीक्षण के आधार पर इसका दग्ध हीरक होने की भावना लोगों के मन में हैं, परन्तु अभी इसका कोई निश्चय नहीं हुआ है। यह एक स्वतंत्र खनिज है और खानों से अन्य खनिजों की भाँति आता है।

यह खनिज प्रथम सिलोन में निकलता था, किन्तु आजकल विशेषकर अफ्रीका में निकलता है और वहीं से सर्वत्र भेजा जाता है। इसके जो अनेक वर्ण के सुन्दर-सुन्दर करण (क्रिस्टल्स) आते हैं, उनकी गणना रत्नों में होती है। इसके बहुमूल्य कणों को जौहरी अनेक प्रकार के लिये उसे ही लेना चाहिए।

शोधन विधि- उत्तम वैक्रान्त के छोटे-छोटे टुकड़े कर सैन्धव नमक और यवक्षार के साथ पोट्टली में बांध कर कुल्थी के काढ़े में दोलायन्त्र द्वारा एक प्रहर तक स्वेदन करने से वैक्रान्त शुद्ध हो जाता है। -र.र.स.

भस्म विधि- शुद्ध वैक्रान्त मणि को सावधानी में इमामदस्ते में महीन चूर्ण कर समभाग गन्धक मिलाकर नींबू के रस में मर्दन कर गोला बनाकर सम्पुदट में बन्द कर अर्ध गजपुट में (थोड़ी आँच में) फूँक दें। ऐसे ८ पुट देने से इसकी भस्म तैयार हो जाती है।

दूसरी विधि- वैक्रान्त को कुठाली में रखकर तेज आँच पर तपा-तपाकर ७ बार त्रिफला के क्वाथ में बुझाकर शुद्ध कर लें। पश्चात् इमामदस्ता में कूटकर चूर्ण करके घृतकुमारी रस की ८ पुट देने से वैक्रान्त की उत्तम भस्म बनती है। पश्चात् पीसकर कपड़छन करके रख लें। -स्वानुभूत

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती प्रातः-सायं मक्खन, मलाई या शहद (मधु) से दें।

गुण और उपयोग- वैक्रान्त रसों का राजा कहलाता है। अतएव हीरा भस्म के अभाव में इसका प्रयोग किया जाता है और तद्नुसार यह गुण भी करता है। यह त्रिदोषघ्न, ज्वर, कुष्ठ और क्षय रोगों को नष्ट करता, विषों के प्रभाव को दूर करता है और शरीर को लोह तुल्य बनाता है तथा धातुओं की निर्बलता को दूर कर, धातुक्षीणता, प्रमेह आदि रोगों को नष्ट करता है।

इसके सेवन से पुराना अग्निमांद्य नष्ट हो जाता है। मेधा (धारण) शक्ति बढ़ाने के लिये यह उत्तम औषधि है। स्वस्थ शरीर में इसका सेवन उत्तम रासायनिक गुणों को उत्पन्न करता है। यह भयानक सन्निपात ज्वर में त्रिदोष को शान्त करता है और भिन्न-भिन्न रोगनाशक योगों में इसका मिश्रण करने से योगों की शक्ति बढ़ जाती है। वैक्रान्त भस्म उत्तम त्वच्य तथा राजयक्ष्मा, शोध-शोष, बुढ़ापा आदि अनेक प्रकार के शोष रोगों को नष्ट करता है। स्वस्थ शरीर में इसके सेवन से शरीर अत्यन्त मजबूत अर्थात् रोग निवारण शक्तियुक्त हो जाता है। योगवाही होने के कारण रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से उत्तम लाभ करती है। हीरा भस्म के स्थान पर प्रायः वैद्य वैक्रान्त भस्म का उपयोग करते हैं।

धातुओं की निर्बलता में वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती, मक्खन और मिश्री में मिलाकर देने से लाभ होता है। स्वप्नदोष की बढ़ी हुई अवस्था में वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिला कर मधु या मलाई के साथ देने से लाभ होता है। स्मरण-शक्ति बढ़ाने के लिये वैक्रान्त भस्म चौथाई रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण १ माशा और बच, मीठी का चूर्ण १ माशा में मिलाकर घृत साथ देना चाहिए। आयु-वृद्धि के लिये वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, आमलकी रसायन १ माशा के साथ देने से दीर्घायु प्राप्त होती है। राजयक्ष्मा तथा उर:क्षत के लिए वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, सुवर्ण भस्म या वर्क चौथाई रत्ती, वायविडंग तथा छोटी पीपल का चूर्ण ४-४ रत्ती में मिलाकर च्यवनप्राश अवलेह के साथ खाकर ऊपर से बकरी का दूध पीना। क्षय रोग की असाध्यावस्था में भी वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती, रससिन्दूर १ रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती में मिलाकर आँवले के मुरब्बे के साथ देने से बहुत फायदा होता है। भयंकर पाण्डु रोग जिसमें रक्ताणुओं की अत्यधिक कमी और श्वेताणुओं की अत्यधिक वृद्धि होती रहती है, वैक्रान्त भस्म आधी रत्ती को, माणिक्य पिष्टी आधी रत्ती और कसीस भस्म १ रत्ती तथा सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती के साथ मिलाकर वेदाना अनार के रस और मधु में मिलाकर देने से श्वेताणुओं की अच्छी वृद्धि होती है।

विमल

परिचय- विमल और माक्षिक के विषय में रस-पद्धतिकार ने लिखा है कि ताप्य दो प्रकार का होता है। एक विमल और दूसरा माक्षिक। विमल गोलाई लिए, कोने और धारवाला तथा पासेदार होता है। उसके रंग-भेद से सुवर्ण विमल, रौप्य विमल, और कांस्य विमल ऐसे तीन भेद माने जाते हैं। माक्षिक धार, कोने और पासे-रहित तथा वजनदार होता है। उसको अंगुलियों से खूब रगड़ने पर अंगुलियां काली हो जाती है। माक्षिक के भी उसके वर्ण के अनुसार, स्वर्ण माक्षिक, रौप्य माक्षिक और कांस्य माक्षिक ऐसे तीन भेद माने गये हैं।

-सि.यो.सं.

विमल में लोहा और गन्धक तथा माक्षिक में गन्धक, लोहा और थोड़े अंश में ताँबा पाया जाता है। इस समय बाजार में जो विशेष रूप से मिलता है और प्रायः वैद्य लोग जिसे माक्षिक के नाम से उपयोग करते हैं, बहुधा विमल ही है।

शोधन विधि- विमल को गर्म पानी से धोकर सुखा करके कपड़छन चूर्ण बना कर त्रिफला क्वाथ की तीन भावना देकर सुखा लें।

दूसरी विधि- विमल को वासा रस अथवा त्रिफला क्वाथ से स्वेदन करके धोकर रखने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध किये हुए विमल में से २० तोला चूर्ण लेकर लोहे की कड़ाही में रख ऊपर से इतना गाय का घी छोड़े कि सब डूब जाय, फिर अग्नि पर चढ़ाकर कलछी या कोंचे से चलाते जायें। चलाते-चलाते जब उसमें से आग की ज्वाला उठने लगे तब कड़ाही को उतार कर नीचे रख दें। स्वांग-शीतल होने पर फिर यही विधि करें। इस तरह तीन बार करने से लाल रंग की भस्म तैयार होती है।

-सि.यो.सं.

वक्तव्य- विमल की सिर्फ भर्जन मात्र से भस्म बन जाती है। पुट देने की विशेष आवश्यकता नहीं रहती। फिर भी यदि २ या ३ पुट भी दिये जायें तो और भी अच्छी भस्म बनती है।

मात्रा और अनुपान- १ रत्ती से ३ रत्ती, सुबह-शाम त्रिकटु, त्रिफला और घृत के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- विमल लौह और गन्धक या यौगिक कल्प है। अतः रक्तवर्द्धन एवं रक्तशोधन कार्य के लिए इसकी भस्म विशेष गुणदायक होती है। पाण्डु, कामला, शोथ, क्षय, संग्रहणी, बवासीर, भगन्दर आदि रोगों में रक्ताल्पता को दूर कर शरीर को नीरोग बनाने में अत्युत्तम है। यह वृष्य है, अतः बल बढ़ाने में भी बहुत उपयोगी है। स्वर्णमाक्षिक, लौह, मण्डूर आदि भस्मों का प्रयोग जिन-जिन रोगों में होता है, उन-उन रोगों में विमल भस्म का प्रयोग लाभदायक है। पाण्डु (पीलिया) में विमल भस्म का प्रयोग हितकारी है।

विमल भस्म- कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, बाजीकरण और रसायन है। त्वचा और रक्त के दोष तथा रक्त की कमी, शोथ, धातुगत जीर्णज्वर, प्रमेह, मन्दाग्नि, ग्रहणी, अर्श, पित्त एवं वात के विकारों में लाभदायक है।

मण्डूर

परिचय- मण्डूर जितना पुराना होगा उतना ही विशेष गुणयुक्त तथा आशुफलप्रद होगा। अतएव आयुर्वेद में लिखा है कि १०० साल पुराना मण्डूर उत्तम, अस्सी वर्ष का मध्यम और ६० वर्ष का अधम गिना जाता है। ६० वर्ष से कम का मण्डूर विषवत् त्यागने योग्य है। प्राचीन समय में जहाँ लोहे की खदाने थीं और लोहा गलाया जाता था वहाँ पुराना लौह किट्ट अर्थात् मण्डूर खूब पाया जाता है।

जो मण्डूर भारी, चिकना, ठोस, तोड़ने पर अंजन के समान और बिना गड्ढेवाला हो, वह उत्तम होता है।

शोधन विधि- छेद-रहित, वजनदार और चिकना मण्डूर लाकर उसको अग्नि में तपा-तपा कर लाल होने पर २१ बार गो-मूत्र में डालने से मण्डूर शुद्ध हो जाता है। -सि.यो.सं.

भस्म विधि- उपरोक्त रीति से शुद्ध किया हुआ मण्डूर ४० तोले से ५० तोले तक की मात्रा में लें, इसको इमामदस्ते में डालकर खूब महीन कपड़छन चूर्ण कर गो-मूत्र में मर्दन कर थोड़े कंडों की आँच देकर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार ७ पुट गो-मूत्र के एवं ७ पुट त्रिफला क्वाथ के और ७ पुट ग्वारपाठे के रस के दें। इस तरह २१ पुट देने से बहुत उत्तम और मुलायम भस्म बनती है। -सि.यो.सं.

दूसरी विधि- अच्छे-पुराने मण्डूर के टुकड़ो को धोंकनी से अग्नि पर तपा-तपा कर गो-मूत्र में सात बार बुझावें। फिर सुखाकर इमामदस्ते में कूटकर बारीक चलनी से छानकर गो-मूत्र की भावना देकर टिकिया बना-सुखाकर सराब-सम्पुट में बन्द करके गजपुट में रखकर साधारण अग्नि में फूँक दें। हर बार पुट के अन्त में अच्छी घुटाई होना आवश्यक है। इस प्रकार ७ पुट में उत्तम भस्म बन जाती है। यदि घुटाई अच्छी होती रहे, तो कम पुटों में भी भस्म बन जाती है। भस्म तैयार होने के बाद पानी के साथ कपड़े से छान लें। फिर सुखाकर एक पुट और देकर घुटाई कराकर रख दें। इस प्रकार यह लाल रंग की उत्तम भस्म बनेगी।- र.सा.सं. के आधार पर स्वा.

मात्रा और अनुपान- २ रत्ती से ८ रत्ती, सुबह-शाम शहद (मधु) से दें।

गुण और उपयोग- मण्डूर का प्रभाव यकृत पर होता है। अतएव यकृत की खराबी से होनेवाले पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, कामला, बवासीर, शरीर की सूजन, रक्तविकार आदि रोगों में विशेष रूप से काम करता है। पाण्डु रोग में जब किसी औषध से लाभ न हो, तब मण्डूर भस्म गिलोय (गुर्च) के रस अथवा पुनर्नवा के रस के साथ प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त उदर रोग में अच्छा काम करता है।

इसकी भस्म सौम्य, शीतल और कषाय गुणवाली है। जो गुण लौह भस्म में है उससे कुछ ही कम गुण मण्डूर भस्म में पाया जाता है। मण्डूर भस्म लौह भस्म की अपेक्षा शरीर पर जल्दी असर करती है, क्योंकि यह लौह भस्म से सूक्ष्म होती है। अतएव, बच्चों, गर्भवती स्त्रियों एवं कामल प्रकृतिवालों के लिए लौह भस्म की अपेक्षा मण्डूर भस्म का प्रयोग करना अधिक श्रेयस्कर है। मण्डूर भस्म या लौह भस्म रंजक-पित्त को सुधार करके रक्ताणुओं को बढ़ाती है। अतएव, रक्ताणुओं की कमी से होनेवाले रोग इससे नष्ट होते हैं।

लौहकिट्ट मण्डूर के किट्ट अवस्था में खुली जमीन पर सैकड़ों वर्ष पड़े रहने के कारण वर्षा तथा वायु के संयोग से उस पर ओषजन बहुत जम जाती है, रक्ताणुओं की वृद्धि करने के लिए उत्तम लाभकारी वस्तु है। इसी कारण करने में मण्डूर भस्म सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

मण्डूर भस्म का प्रधान कार्य रक्ताणुओं की वृद्धि करना है। किसी भी कारण से रक्ताणुओं की कमी होने पर मण्डूर भस्म का प्रयोग करना बहुत लाभदायक है।

प्रथम अवस्था- पाण्डू रोग में रक्ताणुओं की कमी- के कारण हृदय कमजोर हो जाता है और उसकी गति बढ़ जाती है। हृदय की गति बढ़ जाने से रक्तचाप एवं नाडी की गति में भी वृद्धि हो जाती है, क्योंकि शरीर में रक्ताणुओं की जितनी कमी होगी उतनी ही शारीरिक अवयवों में भी कमजोरी होती जायेगी। इन विकारों को दूर करने के लिये रक्ताणुओं की वृद्धि करनी चाहिए। रक्ताणुओं की वृद्धि के लिए ही मण्डूर भस्म का प्रयोग किया जाता है। यह रंजक पित्त को सबल बनाकर उसकी सहायता से शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि करने में समर्थ होता है। रक्ताणुओं की वृद्धि होने से शरीरावयव पुष्ट हो जाते हैं तथा हृदय की गति भी अपनी सीमा पर नाडी की गति को भी उचित अवस्था पर ले आती है तथा शरीर में पाण्डुता भी कम हो जाती है। इसी कारण पाण्डु रोग की औषधियों में प्रायः मण्डूर और लौह का मिश्रण रहता है।

पाण्डुरोग की ही दूसरी अवस्था कामला है। इसकी उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि जो पाण्डुरोगी पैत्तिक पदार्थों का ज्यादा सेवन करते हैं, उनका पित्त प्रकुपित (दुष्ट) होकर रक्त और मांस को दूषित करके कामला नामक रोग उत्पन्न कर देता है। इसमें आँख, मुँह, नाखून सब पीले हो जाते हैं। मूत्र पीला होना, मल काले (मटमैले) रंग का होना, शरीर में दाह, अन्न में अरुचि आदि लक्षण होते है। इस रोग में भी मण्डूर भस्म बहुत फायदा करती है, क्योंकि मण्डूर भस्म शीतल है। अतः पैत्तिक रोगों में इसका असर बहुत शीघ्र होता है और इस रोग का प्रधान कारण पित्त की विकृति ही है। इसलिए निर्भय होकर इसका प्रयोग सुवर्ण माक्षिक भस्म के साथ करें। ऊपर से कुमार्यासव का भी सेवन कराने से आशातीत लाभ होता है।

पाण्डु रोग की तीसरी अवस्था कुम्भकामला है। अर्थात् जब कामला रोग पुराना हो जाता है, तो दोष कोष्ठाश्रय होकर कुम्भकामला को उत्पन्न करता है। यह असाध्यावस्था है। इसमें रक्ताणुओं की कमी होते-होते शरीर में जल भाग विशेष हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण देह में सूजन हो जाती है, विशेष कर नेत्र, पेट, गाल और हाथ-पैर के ऊपरी भाग में यह सूजन ज्यादा होती है। इस सूजन को दबाने से गड्ढा बन जाता है, जो देर में भर जाता है। इसका कारण यह है कि दबाने से वहाँ का जल भाग दब कर अलग हो जाता है, जो फिर धीरे-धीरे आकर उस स्थान की पूर्ति करता है। ऐसी स्थिति में मण्डूर भस्म के प्रयोग से शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि होकर जल

भाग शोषित कर हृदय की गति को नियमित करते हुए सूजन कम कर देती है और शारीरिक अवयवों को भी पुष्ट कर शरीर को नीरोग बना देती है।

हारिद्रक रोग- यह प्रायः तरुण स्त्रियों को प्रसूतावस्था के बाद में होता है। इस अवस्था में मण्डूर भस्म अकेले या किसी उपयुक्त मिश्रण-जैसे अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, लौह, प्रवाल चन्द्रपुटी आदि भस्म के साथ मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है।

बालरोग- बच्चों के रोग में भी मण्डूर भस्म का प्रयोग बहुत गुणप्रद है। इसमें यकृत या प्लीहा-वृद्धि ये दोनों रोग ऐसे रोग हैं कि प्रायः बच्चों को ही होते हैं। इसमें भी रक्ताणुओं की कमी हो जाती है। बच्चा-दुबला-पतला हो जाता, आँखें और मुँह पीले हो जाते हैं, बुखार भी हो जाता है, इसमें मण्डूर भस्म अकेले या प्रवाल चन्द्रपुटी और स्वर्णवसन्तमालती के साथ दें और शरीर पर महालाक्षादि तैल की मालिश करवाने से बच्चा शीघ्र अच्छा हो जाता है। गर्भिणी माता का दूध पीने से बच्चे के यकृत की वृद्धि हो जाती है, इसे बालयकृद्रोग कहते हैं। इसमें भी मण्डूर भस्म से बहुत लाभ होता है।

कभी-कभी लड़कियों को छोटी आयु (बाल्यावस्था) में यकृत या प्लीहा की वृद्धि हो जाती है या अतिसार, संग्रहणी, पेचिश आदि आन्त्रजन्य विकार हो जाया करते हैं जिससे लड़कियों में रक्ताणुओं की कमी होकर कमजोरी बढ़ जाती है। किसी किसी को रक्ताणुओं की कमी बड़ी आयु (१४-१५वर्ष) तक में भी बनी रह जाती है, जिससे बड़ी अवस्था में भी रजोदर्शन नहीं होता, शारीरिक पुष्टि या अवयवों का विकास नहीं हो पाता। शरीर कान्तिहीन, मुँह पर पीलापन और गाल फूला-सा मालूम होता है। कभी-कभी ज्वर भी आ जाता है। ऐसी परिस्थिति में मण्डूर भस्म देना आवश्यक है, क्योंकि बाल्यावस्था में रक्ताणुओं की कमी हो जाने से शारीरिक अवयव पुष्ट नहीं हो पाते, वे कमजोर ही बने रहते हैं, जिससे शारीरिक अवयवों के विकास में बाधा पड़ती है। रसादि धातुओं की विकृति या कमजोरी के कारण ठीक तरह से रज की उत्पत्ति नहीं होती, अतः रुज रुका हुआ रहता है। मण्डूर भस्म रक्ताणुओं की वृद्धि कर रक्त की वृद्धि करती है एवं इन सब विकारों को दूर कर शरीर को स्वस्थ बना देती है।

शरीर में रक्त या रक्ताणुओं की कमी हो जाने से हृदय की कमजोरी के साथ-साथ स्त्रियों का मस्तिष्क भी कमजोर हो जाता है। जिससे स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है, मन भी चंचल हो जाता, किसी भी विषय पर विचार स्थिर नहीं हो पाता, मन में अनेक तरह की शंकाएँ उत्पन्न होने लगती हैं, जिससे किसी पर विश्वास भी नहीं होता और न अपने विरुद्ध छोटी-से-छोटी बात को ही सहन करने की शक्ति होती है। ऐसी स्थिति में मण्डूर भस्म देना आवश्यक है, क्योंकि मण्डूर भस्म का प्रभाव पित्त पर बहुत पड़ता है और उपरोक्त उपद्रव पित्त प्रकोप के कारण होता हैं। अतः इस भस्म के सेवन से उपरोक्त सब विकार दूर हो जाते हैं। इससे शरीर में ताकत भी आती है और रक्तादि की वृद्धि होकर पित्त भी शान्त हो जाता है। -औ.गु.ध.शा.

साधारणतया मण्डूर भस्म का सेवन त्रिकटु चूर्ण और मधु से करना चाहिए। अगर दस्त की कब्जियत हो तो गो-मूत्र का अनुपान देना ठीक है। किसी भी कारण से होनेवाले शोथ में मण्डूर भस्म रामबाण औषध है। छोटे बालकों को मिट्टी खाने से होनेवाले पाण्डु रोग में तथा कमजोरी में मधु के साथ मण्डूर भस्म २ रत्ती की मात्रा में देना अच्छा हैं।

यकृत और प्लीहा-वृद्धि में मण्डूर भस्म ४ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती में

मिलाकर मधु से देना एवं ऊपर से लोहासव पिलाना चाहिए। बच्चों के सूखा रोग में प्रवाल भस्म १ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती, गिलोय सत्व १ रत्ती में मिला कर देना विशेष लाभप्रद है। मण्डूर भस्म ४ रत्ती को कुटकी चूर्ण १ माशा के साथ देने से पाण्डु रोग में बहुत उत्तम लाभ होता है। दिन में तीन बार देना चाहिए।

मधु-मण्डूर

भस्म विधि- १ सेर शुद्ध मण्डूर को १ प्रहर तक त्रिफला के क्वाथ में घोंट कर सम्पुट में बन्द करके उसे सुखा कर इस प्रकार पुट दें कि, २ प्रहर में अग्नि शान्त हो जाय। इसी प्रकार त्रिफला क्वाथ, गो-मूत्र, घीकुमारी के रस और पंचामृत चूर्ण (गोखरू मुण्डी, मूसली, गिलोय और शतावर प्रत्येक समान भाग) के क्वाथ से २१-२१ पुट दें। प्रत्येक पुट में इतनी अग्नि देनी चाहिए कि दो पहर में शान्त हो जाय। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- १ से ६ रत्ती, सुबह-शाम पीपल चूर्ण और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसमें अधिक पुट लगने के कारण मण्डूर भस्म की अपेक्षा यह विशेष गुणकारी होती है। अत: जहाँ मण्डूर भस्म देने से सफलता न मिले वहाँ मधु मण्डूर का प्रयोग करना चाहिए। रक्ताल्पता, पाण्डु रोग, कामला, प्लीहा, विकार, शोथ, उदर रोग आदि की यह श्रेष्ठ औषध हे। यकृत और रक्तवृद्धि के लिये इसका प्रयोग विशेष लाभकर है, इससे शरीर में नया रक्त प्रचुर मात्रा में बढ़ता है। छोटे बच्चे, गर्भिणी स्त्रियाँ व कमजोर पुरुष-इन सब के लिये यह उत्तम गुणकारी है। इसके सेवन से पाचन-शक्ति, रक्त और मांस बढ़कर शरीर पुष्ट होता है।

संग्रहणी और पुरानी पेचिश में मधु मण्डूर भस्म २ रत्ती को बेल के मुरब्बा के साथ देने से फायदा होता है। कमजोरी दूर करने के लिए-मधु मण्डूर भस्म २ रत्ती घी या शहद के साथ खाना चाहिए। कृमि तथा तज्जन्य विकार में मधु मण्डूर भस्म २ रत्ती, वायविडंग चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु के साथ दें। यह भस्म साधारण मण्डूर भस्म की अपेक्षा सौम्य होती है। लगातार १४ दिन तक सेवन करने से मन्दाग्नि दूर होकर भूख लगने लगती है।

पुराने पाण्डु रोग में- मधु मण्डूर भस्म २ रत्ती, पिप्पली चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु से लेने पर बहुत फायदा करती है।

वक्तव्य- मण्डूर भस्म के स्थान पर यदि मधु मण्डूर भस्म का प्रयोग किया जाये तो बहुत अधिक गुण होता हैं, क्योंकि यह मण्डूर की बहुत उत्कृष्ट भस्म होती है।

मल्ल (संखिया)

परिचय- संखिया एक प्रकार का भयंकर और प्राणघातक खनिज विष है। यह रंग भेद से सफेद, काला, लाल और पीला चार प्रकार का होता है। इनमें सफेद रंग का संखिया अधिक तादाद में मिलने से यही औषध के प्रयोग में विशेष रूप से काम में आता है। यह देखने में सुहागे के समान किन्तु चिकना और इनका स्वाद फीका होता है, परन्तु इसको चखकर परीक्षा कभी नहीं करें, क्योंकि यह प्राणघातक है।

शोधन विधि- संखियें को सरौते से चने जितने छोटे-छोटे टुकड़े कर कपड़े में बाँध मिट्टी की हाँडी में दोलायन्त्र द्वारा गाय के दूध में धीमी-धीमी आँच पा तीन घण्टे तक पकावें। पीछे कपड़े मे से निकाल कर गरम जल से धोकर लें। -सि.यो.सं.

भस्म विधि- मूली की एक सेर राख लेकर उसमें से आधी राख एक मिट्टी की हाँडी में

दबा-दबा कर भर दें। उस राख पर २ तोला संखिया की डली रख कर, ऊपर से बाकी राख दबा-दबा कर भर दें, फिर हाँडी के मुख पर ढक्कन रखकर कपड़मिट्टी से सन्धि बन्द कर दें। बाद में हांडी को चूल्हे पर चढ़ा थोड़ी-थोडी आँच १२ घण्टे तक देने से संखिया की भस्म हो जाती है।

दूसरी विधि- पापड़खार चार तोले लेकर मिट्टी के एक सराब-सम्पुट में उसमें आधा पापड़खार बिछा कर उस पर संखिया की एक तोले की डली रख उस पर बाकी पापड़ खार बिछा कर दूसरे सराब से बन्द कर कपड़मिट्टी कर धूप में सुखा दें। सूखने के बाद २ सेर कण्डों की आँच में रखकर फूँक दें। इस तरह से १-२ पुट में संखिया की अच्छी और मुलायम भस्म बन जाती है। -चि.चं.

संखिया के फूल- १ तोला सफेद संखिया को ३ दिन पुनर्नवा के रस में घोंट कर सुखा लें, फिर डमरू-यन्त्र में रख कर चार प्रहर नीचे अग्नि लगावें। ऊपर के पात्र को भींगा हुआ कपड़ा रख कर ठण्डा रखें। स्वांग-शीतल होने पर ऊपर के पात्र में लगे हुए संखिया के फूल को चाकू या छुरी से खुरचकर निकाल लें। पश्चात् चाकू या छुरी को ईंट के टुकड़े से रगड़कर जल से धोकर रखें।

उपयोग- इसे जाड़े के मौसम में सेवन करें। इसकी मात्रा अष्टामांश रत्ती है। इसके सेवन-काल में घी, दूध, मलाई का यथेष्ट मात्रा में सेवन करना चाहिए। ४०-५० वर्ष से अधिक आयुवालों के लिये यह अमृततुल्य गुण करता है, परन्तु इससे कम उम्र-वालों के लिये योग्य नहीं हैं।

मात्रा और अनुपान- आधा चावल, मुनक्का में रख कर लें, ऊपर से दूध और घी मिलाकर पीवें। अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ लें।

रसतरंगिणीकार संखिया की मात्रा के विषय में लिखते हैं, कि एक रत्ती शुद्ध संखिया लेकर उसमें १५ माशा काली मिर्च के चूर्ण को मिला अदरक के रस से अच्छी तरह तीन दिन तक मर्दन करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लें। इसमें से १-१ गोली प्रातः सायं या आवश्यकतानुसार सेवन करें। इसी प्रमाण में भिन्न-भिन्न प्रयोगों की औषधों के साथ इसको मिलाकर गोली, चूर्ण आदि बना लें, क्योंकि एक रत्ती संखिया खाने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अतः देश-काल, अवस्था रोगी का बल-दोष आदि का विचार करके सावधानी से इसकी मात्रा निर्धारित करनी चाहिए।

गुण और उपयोग- इस भस्म के सेवन से मलेरिया ज्वर, उपदंश ज्वर, गठिया, रक्त विकार, कास-श्वास, कोढ़, पक्षाघात और (नपुंसकता)दूर हो जाती है।

संखिया की भस्म आधे चावल की मात्रा में देने से यह आमाशय में रस बनाने की क्रिया को उत्तेजित करती है। आमाशय के लिये यह एक उत्तेजक और शक्तिदायक पदार्थ है। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है और भूख बढ़ती है। इसे ज्यादा मात्रा में लेने से आमाशय में दाह पैदा करती और आमाशय तथा पक्वाशय में दाह और सूजन (शोथ) उत्पन्न करती है। मल्ल का इन्जेक्शन देने से यह सम्पूर्ण शरीर में जज्ब होकर आमाशय में पहुँचता है। संखिया की भस्म उचित मात्रा में भोजन के पहले लेने से यह दाहयुक्त अपचन की और भोजन के पश्चात् लेने से दस्त और वमन को दूर करती है।

नवीन पाण्डु रोग में संखिया की भस्म उपयोगी है। घातक पाण्डुरोग में यह रक्तरंजक कणों को बढ़ाती है। असाध्य पाण्डुरोग जिसमें रक्त के अंदर श्वेत जीवाणुओं की संख्या निरंतर बढ़ती ही जाती है तथा तिल्ली और यकृत में बहुत विकृति पैदा हो जाती है, इसकी भस्म स्थायी रूप से लाभ पहुँचाती हैं।

मलेरिया के पश्चात् होनेवाले पाण्डु रोग में इसकी भस्म देना अच्छा है। नवयुवतियों को होनेवाले ऐसे पाण्डु रोग में जिसमें त्वचा हल्दी रंग की-सी हो जाती है तथा मासिक धर्म की अनियमितता रहती है, यह बहुत लाभ करती है। क्योंकि इस भस्म से शरीर की पोषण-क्रिया को सहायता मिलती है, परंतु इसके साथ में लौह या मण्डूर भस्म का मिश्रण अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अकेली यह रक्ताणुओं को उतना नहीं बढ़ा सकेगी।

इसका इण्ट्रावेनस इंजेक्शन देने से, यह उन सूक्ष्म केशवाहिनी नाड़ियों को जो शुद्ध रक्तवाहिनी और अशुद्ध रक्तवाहिनियों को मिलाने का काम करती है, फैलाकर रक्त का दबाव कम कर देती है। रक्तवाहिनियों के ऊपर उसका प्रभाव दूसरे अंगों की अपेक्षा अधिक होता है। इसीलिये इसकी कुछ अधिक मात्रा हो जाने पर आमाशय और आंतों में रक्ताधिक्य होकर उसमें सूजन पैदा हो जाती है और पानी के समान पतले दस्त होने लगते हैं।

शुद्ध संखिया १ रत्ती को १ तोला सोडा बाई कार्ब में मिश्रण कर इसकी १६ मात्रा बना लें। इसमें से १ पुड़िया प्रातः और सायंकाल देने से बढ़ा हुआ श्वास का वेग कम हो जाता है।

दमें की बीमारी में इसका प्रयोग करना बहुत अच्छा है। इसका अधिक दिन तक सेवन करने से दमें की बीमारी में बहुत फायदा होता है। जुकाम, दमा, कठिन श्वासावरोध, आक्षेपयुक्त खाँसी और जुकाम से पैदा हुए निमोनिया में इसका असर बहुत शीघ्र होता है।

उपदंश के विष को नष्ट करने में मल्ल अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। एलोपैथी में मल्ल के बने सत्वार्सन के इंजेक्शन उपदंश रोग में बहुत लाभकारी माने जाते हैं। पक्षाघात और अर्धांगवात जैसी भयंकर व्याधियों में इससे अच्छा लाभ होता है।

संखिया भस्म का त्वचा की पोषण-क्रिया पर खास प्रभाव देखा जाता है। यह त्वचा की पोषण-क्रिया और उसके रंग को सुधारती है। चमड़े के नीचे की चर्बी को बढ़ाती है। पसीने द्वारा बाहर निकलते समय यह त्वचा की विनिमय क्रिया को सुधारती है। कभी-कभी त्वचा पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ भी पैदा भी कर देती है। इसके अधिक प्रयोग से त्वचा का रंग काला पड़ जाता है।

प्राचीन चर्म रोगों में प्रधानतया ऐसी खुजली में, जिसमें खुजली चल-चल कर पपड़ियाँ उतरती हैं और ऐसी खुजली जिसमें छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं... इस तरह की खुजलियों में बहुत लाभ पहुँचाती है। इसी तरह विसर्प, सिर का गंत, मुँहासे और चमड़े पर होनेवाले फफोलो में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

आधे चावल की मात्रा में इसकी भस्म को अधिक समय तक सेवन करने से यह शीर की वृद्धि और पोषण-क्रिया को बढ़ाती है। शरीर के तन्तुओं पर इसका प्रभाव फास्फोरस के समान किन्तु उससे कुछ सौम्य होता है। अधिक दिन तक ज्यादा मात्रा में सेवन करने से यह यकृत की क्रियाशक्ति को कम करती है और ग्लायकोजन (शरीर रचना में शक्कर उत्पन्न करनेवाला एक पदार्थ) के बनाने की क्रिया को कम कर प्रोटिन को नष्ट करनेवाली क्रिया को बढ़ाती है। यद्यपि इससे पेशाब के नाइट्रोजन की मात्रा में विशेष परिवर्तन नहीं होता तथापि पेशाब में यूरिया, एमोनिया, ग्लायकोजन और टायरोजिन की मात्रा बढ़ जाती है। यकृत, गुदा, क्षय और मांसपेशियों पर इसका हानिकारक प्रभाव साफ-साफ मालूम होता है।

मलेरिया के लिये संखिया एक बहुत उपयोगी वस्तु है। पुराने मलेरिया में जब कि पाण्डु रोग और दुर्बलता पैदा हो जाती है, यह बहुमूल्य औषधि का काम करता है। इस कार्य के लिये साधारणतया लौह और कुनेन में मिलाकर उपयोग किया जाता है। फीलपाँव और अण्डकोष की वृद्धि होने पर इसकी भस्म आधा चावल की मात्रा में लेते रहने से इस बीमारी में बार-बार आनेवाला ज्वर दूर हो जाता है।

संखिया के तीव्र विष का प्रभाव

अशुद्ध संखिया खाने के १५ मिनट बाद और एक घण्टे के अन्दर विष के विकार प्रकट होने लगते हैं। कभी-कभी ४-५ मिनिट के बाद ही इसके विष के लक्षण उत्पन्न होते देखे गये हैं। घाव के ऊपर भी संखिया का प्रयोग करने से विष विकार उत्पन्न होने की पूरी सम्भावना रहती है।

संखिया खाने के पश्चात शूल, तेज वमन, पतले दस्त, अधिक प्यास, शरीर में थकावट इत्यादि लक्षण एक साथ भयंकर रूप में उपस्थित होते हैं। संखिया खाते ही शरीर में शून्यता, मूर्च्छा, जी मिचलाना और उबकाई आने लगती है। पक्वाशय में दाह उत्पन्न होकर पीला वमन होने लगता है, फिर रक्त-मिश्रित कफ का वमन होता है। कहीं पित्त-मिश्रित भी वमन होता है। हाथ-पैर और जांघों की मांस-पेशियों में अकड़न होती है, मुँह और गले में खुश्की आकर गला बैठ जाता है। नाड़ी हल्की, अव्यवस्थित और मन्द चलती है। पेट में दर्द, श्वास-प्रश्वास में दीर्घता, त्वचा ठण्डी, पसीना ज्यादा आना इत्यादि लक्षण पैदा होकर दिल की धड़कन बन्द हो जाती है। और रोगी मर जाता है।

विष का प्रतिकार (दर्पनाशक)- अगर किसी ने संखिया खा लिया हो और वह विष आमाशय मे हो तो पहले रोगी का मैनफल, रीठा अथवा किसी उपाय से वमन कराना चाहिए अथवा मुँह के द्वारा पेट में स्टमक पम्प (Stomach pump) डालकर वमन करना चाहिए, क्योंकि विष-विकार दूर करने में वमन से बढ़कर और कोई दूसरी दवा नहीं है। संखिया के आमाशय से पक्वाशय में पहुँचने पर तीव्र जुलाब देकर तुरन्त ५-७ दस्त करा देनी चाहिए। डूस या एनिमा से भी दस्त कराये जा सकते हैं, इससे आँतों का प्रक्षालन भी हो जाता है। पश्चात् निम्नलिखित वस्तुओं के प्रयोग से संखिया विष की शान्ति हो जाती है।

संखिया खानेवाले को वमन-विरेचन कराने के पश्चात्-लिहासेड़े के पत्तो का स्वरस १ छटांक और पकी इमली का रस २।। तोला मिलाकर पिला देने से विष शान्त हो जाता है।

बिनौले की गिरी को गुनगुने दूध के साथ पिलाने से संखिया का विष नष्ट हो जाता है।

नीम के पत्तों का रस पिलाने से भी संखिया का विष उतर जाता है।

यदि रोगी को पके बेल का गूदा खिलाया जाय, तो विष शरीर में न फैल कर बेल के गूदे पर लिपट जाता है।

संखिया-विष के रोगी को ठंडा जल पीने को दें और न ठण्डा जल से स्नान करावें। बराबर गर्म जल का ही व्यवहार करें।

संखिया-विष खानेवालों के लिये घी का प्रयोग करना बहुत अच्छा है। पहले रोगी को खूब घी पीला कर वमन करना चाहिए। इससे सब विष घी के साथ निकल आएगा।

संखिया-विष खानेवालों को बारम्बार केले की जड़ का रस २।। तोला से ५ तोला तक की मात्रा में घी के साथ देने से संखिया का विष वमन होकर निकल जाता है। -व.च.

मयूर चन्द्रिका भस्म

भस्म विधि- मयूर (मोर) के पंख को दियासलाई या घी की बत्ती से जलाकर भस्म कर लें। पीछे पीस ले बाद में छान कर रख लें। ध्यान रहे, पंख का पिछला चन्द्रिका वाला भाग ही विशेष गुणयुक्त होता है। अतः उतने ही अंश को भस्म करें। मयूर पंख राजस्थान तथा ब्रज में विशेष मिलते हैं। अधिक मात्रा में भस्म बनानी हो तो हंडिया में भरकर पुट दें। -आ.प्र.

मात्रा और अनुपान- २ रत्ती मधु (शहद) से दें।

गुण और उपयोग- हिक्का (हिचकी) और वमन में लाभदायक है। इसकी भस्म का सेवन करने से हिक्का, वमन, श्वास, और कास रोग नष्ट होते हैं। इस भस्म को पीपल चूर्ण के साथ मधु मिलाकर चटाने से प्रबल हिचकी, श्वास और घोर वमन तथा उपद्रव युक्त वमन शीघ्र नष्ट होते हैं। मयूर चन्द्रिका में जो सुनहरा रंग दिखाई पड़ता है, उसमें अति न्यून अंश में स्वर्ण का भाग रहता है तथा मयूर चन्द्रिका में ताम्र का भाग विशेष होता है। इसी कारण इसका चमत्कारिक प्रभाव होता है। हिक्का (हिचकी) में इसके साथ जहरमोहरा खताई पिष्टी या भस्म १-२ रत्ती तथा रसादि रस १ गोली मिलाकर देने से अच्छा और शीघ्र लाभ होता है। वमन अधिक होने पर जहरमोहराखताई पिष्टी २ रत्ती, मयूर चन्द्रिका भस्म २ रत्ती, कपूर कचरी चूर्ण २ रत्ती मिलाकर जल या अर्क पुदीना या लाजमण्ड के साथ देना उत्तम गुणकारी है। तीव्र हिक्का तथा अत्यन्त तृषा के कारण रोगी बेचैन हो तो अश्वत्थ (पीपल)छाल के अंगारों को पानी में बुझाकर इस पानी को छानकर उसके साथ मयूर चन्द्रिका भस्म सेवन कराने से उत्तम लाभ होता है।

माणिक्य (पद्मरागमणि)

परिचय-माणिक्य नामक रत्न दो तरह का होता है। एक पद्मराग और दूसरा नीलगन्धि। जो मणि लाल कमल के समान लाल वर्ण हो तथा स्निग्ध, भारी, दीप्तिमान, गोल, विस्तृत तथा समानावयव युक्त हो, उसे पद्मरागमणि कहते हैं ओर जो नील वर्ण तथा मध्य में रक्तवर्णयुक्त हो, उसे नीलगन्धि माणिक्य कहते हैं। भस्म के लिये दोनों लिए जाते हैं। वैज्ञानिकों के मतानुसार यह ॲल्युमिनियम और ऑक्सीजन का यौगिक है। इसमें लोहे तथा क्रोमियम के मिश्रण का लाल रंग आता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व ४ तथा काठिन्य ९ हैं।

शोधन विधि-माणिक्य के छोटे-छोटे टुकड़ो को पोटली में बाँध कर नींबू के रस में एक प्रहर तक (दोलायंत्र में) २ स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध माणिक्य के टुकड़ों को इमामदस्ते में कूट कपड़छन चूर्ण कर समभाग मैनशिल, गन्धक और हरताल लेकर बड़हल के रस में सबको एकत्र घोंटकर गोला बना सराब-सम्पुट में बन्द कर २-३ सेर कण्डों की आँच दें। ऐसे ८ पुट देने से उत्तम भस्म तैयार होती है।

दूसरी विधि- माणिक्य के टुकड़ों को दृढ सराब या कुठाली में रखकर खूब तेज अग्नि में धोंकनी से लाल कर त्रिफला के क्वाथ मे बुझावें। इस प्रकार तब तक तपातपा कर बुझावें जब तक कि माणिक्य के टुकड़े सफेद न हो जायें। लगभग ६-७ बार बुझाने से सफेद हो जाते हैं। तदनन्तर पानी से धुलाई करें।

तीसरी विधि- उपरोक्त प्रकार से शोधित माणिक्य के टुकड़ों को इमामदस्ते में सूक्ष्म चूर्ण करे ग्वारपाठे के रस की भावना देकर मर्दन कर पुट दें। इस प्रकार ७-८ पुट देने से उत्तम भस्म बन

जाती है।

माणिक्य पिष्टी- शुद्ध माणिक्य को महीन चूर्ण कर अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्क के साथ लगातार खूब खरल करे। ऐसा करने से बहुत मुलायम और उत्तम पिष्टी तैयार होती है। यह पिष्टी भस्म से अधिक सौम्य होती है।

मात्रा और अनुपान- चौथाई रत्ती से आधी रत्ती, दिन में दो बार मधु, मलाई, मक्खन, मिश्री आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसकी भस्म या पिष्टी नपुंसकता, धातु-क्षीणता, हृदय रोग, वात-पित्त-विकार, ग्रहदोष, भूतबाधा और क्षय रोग दूर कर शरीर की धातुओं को पुष्ट बनाती है तथा बल-वीर्य और बुद्धि-वृद्धि के लिये बहुत ही लाभदायक है। दीपन होने के कारण मन्दाग्नि में सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

उत्तम माणिक्य भस्म मेधावर्द्धक, मधुर रस, शीतवीर्य, रसायन गुणयुक्त, उत्पादक अंगों के लिए बलदायक, आयुवर्द्धक तथा उत्तम वात, पित्त और कफ दोषहर है। इसके सेवन से कफ का प्रकोप शान्त होता है। यह अंगों में स्निग्धता उत्पन्न करती है और क्षय रोग को नष्ट करती है। जननेन्द्रिय की शिथिलता इसके सेवन से दूर होकर उसमें उत्तेजना आती है। पाण्डुरोग की जीर्णावस्था में रक्ताणुओं की अत्यन्त कमी एवं श्वेताणुओं की तीव्र वृद्धि होती देखी गयी हैं। इस अवस्थ में माणिक्य पिष्टी १ रत्ती को कसीस भस्म १ रत्ती और स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती के साथ मधु या वेदाना अनार के रस में मिलाकर देने से आश्चर्यजनक लाभ होते देखा गया है।

मोती

उत्तम मोती के लक्षण- जो मोती आकाश में तारों के समान चमकदार, चिकना, मोटा, गोल (यदि पूरा गोल न भी हो, किन्तु आबदार हो तो ले लेना चाहिए), चन्द्रमा जैसा सफेद और तौल में भारी हो, वह उत्तम होता है, भस्म या पिष्टी के लिये ऐसा ही मोती लेना चाहिए। उत्तम मोती को धान की भूसी से रगड़ने या गो-मूत्र में लवण मिलाकर मलने से मोती की चमक में कोई परिवर्तन नहीं आता है।

मोती की परीक्षा विधि- एक हाँडी में गो-मूत्र १ सेर भर डाल कर उसमें १ छटाँक साँभर नमक पीस कर डाल दें, फिर उस हाँडी पर दोलायन्त्र की तरह एक लकड़ी रख मोती की पोटली को उस लकड़ी से इस तरह बाँधें कि पोटली गो-मूत्र में डूबी रहे और पेंदे से ऊपर से लटकती रहे, इस हाँडी को चूल्हे पर चढ़ा ६ घण्टे की आँच देने के बाद मोती को पोटली में से निकाल धान की भूसी से मलकर देखें कि मोती के रंग में फर्क तो नहीं आया। यदि अच्छा मोती होगा, तो रंग ज्यों का त्यौं ही बना रहेगा और नकली होगा तो मोती का रंग मैला-सा आबरहित हो जायेगा।

नोट- जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि देशों में नकली कलचर मोती बहुत बातें हैं, जो देखने में प्राकृतिक मोती से भी अच्छे और आबदार मालूम होते हैं, परन्तु ये मोती भस्मों के लिये अच्छे नहीं होते। बसरा के मोती सबसे अच्छे होते हैं। औषधि के कार्य के लिये अविद्ध मोतियों के बड़े-बड़े टुकड़े को काम में लेने चाहिए।

शोधन विधि- मोती को अच्छे स्वच्छ कपड़े की पोटली में बाँधकर जयन्ती (जैत) के रस में दोलायन्त्र विधान से तीन घण्टे तक स्वेदन करने से मोती शुद्ध हो जाता है।

दूसरी विधि- मोती को नींबू रस में डालकर एक प्रहर रखें, बाद में गरम जल से धोकर सुखाकर रख लें।

भस्म विधि- मिट्टी के एक सकोरा में ग्वारपाठे का गूदा रखकर उस पर मोती के दाने रखें और ऊपर से फिर ग्वारपाठे का गूदा रख दूसरा सकोरा रख (सराब-सम्पुट बना) लघुपुट में फूँक दें। इससे मोती के दाने कोमल (हाथ से मलने पर भुर-भुर) हो जाते हैं। अब इसको ग्वारपाठे के स्वरस में घोंटकर २ पुट और दे दें, तो अच्छी भस्म बन जाती है।

दूसरी विधि- शुद्ध किये हुए मोतियों को एक उत्तम खरल में डालकर गोदुग्ध के साथ अच्छी तरह घोंटकर सुखा ले। अब इस चूर्ण को एक सम्पुट में बन्द करके लघुपुट में फूँक दें। इस तरह लघुपुट देने से मोती की चन्द्रमा के समान शुभ्र भस्म हो जाती है। र.त.

वक्तव्य- मोती भस्म नं. 1 उपरोक्त विधि से अच्छे बारीक बसरई मोती भस्म बनाने पर वह नं. १ की कहलाती है।

मोती पिष्टी- अच्छे पानीदार बसरई मोती (छोटे अविद्ध दाने) लाकर उसको गरम पानी से धोकर, सुखा खूब साफ किये हुए लोहे के इमामदस्ते में कूटकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर लें। फिर अच्छे (न घिसने वाले) पत्थर के खरल में डालकर १ दिन नींबू के रस में मर्दन करें। नींबू का रस सूख जाने पर उत्तम गुलाब के अर्क में या चन्दनादि अर्क में मर्दन करें। आँख में डालने के अंजन जैसी सूक्ष्म पिष्टी हो जाय, तब छाया में सुखा, कपड़छन करके शीशी में रख लें। - सि.यो.सं.

मोती पिष्टी नं. १- अच्छे बारीक बसरई मोती की पिष्टी बनाने पर वह नं. १ की मोती पिष्टी कहलाती है।

मोती भस्म नं. १ चन्द्रपुटित- मोती पिष्टी नं. १ को बनाते समय चन्द्रमा की चाँदनी में रखकर सुखाने से वह मोती भस्म नं. १ चंद्रपुटित बन जाती है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ मधु, मक्खन, मलाई, च्यवनप्राश, गुलकन्द, आँवले का मुरब्बा, दाडिमावलेह, खमीरे गाजबान, ब्राह्मी शर्बत आदि के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान- हृदय की धड़कन में मोती की पिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण वर्क चौथाई रत्ती, खमीरे गाजबान या शहद (मधु) में मिलाकर चाटने से हृदय की धड़कन मिट जाती है।

कम्पवायु में- मोती पिष्टी १ रत्ती, विषमुष्टिकावलेह १ तोला में मिलाकर देने से कम्पवायु मिट जाती है।

नेत्रों की ज्योति वृद्धि के लिये- मोती पिष्टी २ रत्ती, त्रिफलादि घृत के साथ मिश्री मिला कर सेवन करने तथा इसी का अंजन करने से नेत्र की ज्योति बढ़ती है।

कामोद्दीपन के लिये- १ रत्ती मोती पिष्टी को १ रत्ती वंग भस्म में मिलाकर मक्खन या घी के साथ सेवन करें, हो सके तो चाँदी का वर्क भी चौथाई रत्ती मिला दें। इससे काम शक्ति बढ़ती है।

पित्त-विकार में- मोती भस्म आधी रत्ती, गिलोय (गुर्च) सत्व ४ रत्ती मे मधु या मक्खन मिलाकर मिश्री के साथ सेवन करने से पित्त-विकार नष्ट होता है।

अधिक वीर्यपात के कारण हुए ज्वर में- अधिक वीर्यपात के कारण यदि ज्वर हुआ हो तो उसमें अधिक खुश्की हो, बार-बार गश्त आता हो, कमजोरी भी बहुत हो, तो ऐसी स्थिति में मोती भस्म १ रत्ती, चाँदी वर्क चौथाई रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती, वंशलोचन १ रत्ती, छोटी इलायची १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती- इन सबको एकत्र कर शहद या शर्बत अनार में मिलाकर चटाने से १५ मिनट में ही चूर्ण लाभ करता है।

गुण और उपयोग- मोती की अग्निपुटी भस्म में उत्तम जाति का कैल्शियम रहता है। अतः मनुष्य के शरीर में कैल्शियम की कमी से जितने रोग होते हैं, उन सब में मोती की अग्निपुटी भस्म का व्यवहार करने से अच्छा लाभ होता है।

इसकी भस्म मधुर और शीतल होती है तथा राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, वीर्य की कमजोरी और दुर्बलता आदि रोगों का नाश करती हैं। खाँसी, श्वास, कफ, क्षय और मन्दाग्नि को दूर करके यह मनुष्य को हृष्ट-पुष्ट बनाती है।

अग्निपुटी मोती भस्म की अपेक्षा मोती पिष्टी एवं उससे भी अधिक मोती भस्म नं. १ चंद्रपुटित अधिक गुणदायक है। अग्नि संयोग न होने के कारण मोती पिष्टी भस्म से अधिक सौम्य होती है। अग्निपुटी भस्म की अपेक्षा इसका प्रयोग भी विशेष होता है तथा लाभप्रद भी है। यह पिष्टी जीर्णज्वर, रक्तपित्त, दिमाग की कमजोरी, सिरदर्द, पित्त की वृद्धि, दाह, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि को दूर करती है।

इसके सेवन से पित्त की तीव्रता और अम्लता कम हो जाती है तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। शीतवीर्य होने के कारण यह मूत्रमार्ग एवं सर्वांग के दाह और पित्त-वृद्धि को रोकती है। अनिद्रा रोग में मोती पिष्टी से यथेष्ट लाभ होता है।

अत्यन्त क्रोध, जागरण, ज्यादा पढ़ने, विशेष धूप में घूमने, पैत्तिक पदार्थों का विशेष सेवन आदि करने से मस्तिष्क की सिराओं में आघात पहुँचता हैं जिससे सिर घूमने लगता है, विचार-शक्ति कम हो जाना, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी की बात अच्छी न लगना, बोलने में कठोरता आ जाना, निद्रा का अभाव या कम होना, दिमाग में गर्मी बढ़ जाना आदि लक्षण होने पर मुक्तापिष्टी का उपयोग बहुत अच्छा लाभ करता है, क्योंकि यह पिष्टी गुलाब जल में घुटने के कारण विशेष सौम्य होती है और यह पित्तशामक भी है तथा उपरोक्त सभी उपद्रव पित्त बढ़ जाने से ही होते हैं। अतएव इसका प्रयोग बहुत लाभकारक है।

किन्हीं भी कारणों से जब मन में क्षोभ पैदा होता, या तेज शराब, गाँजा, भाँग, धतूरा आदि तीक्ष्ण, उष्ण और विकासी पदार्थों के अति सेवन से मस्तिष्क की विकृति होकर माथा खराब (पैत्तिक उन्माद) हो जाय, तो तब ऐसी स्थिति में मुक्तापिष्टी का उपयोग बहुत अच्छा गुण करता है। परंतु इसमें केवल मुक्तापिष्टी न देकर स्वर्णमाक्षिक भस्म और प्रवालपिष्टी मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है।

मोती शीतवीर्य है। अतः गर्मी के मौसम में धूपजन्य प्रदाह को शान्त करने के लिए आँवला-मुरब्बा के साथ इसका प्रयोग करना चाहिए। गर्मी के दिनों में कड़ी धूप में घूमने-फिरने, अग्नि

के पास ज्यादा काम करने, रात में विशेष जागरण इत्यादि कारणों से नाक, मुँह तथा गुदामार्ग से रक्त गिरने लगता है। साथ ही साथ, पाँव, कपाल, नेत्र अथवा सर्वांग में दाह होने लगता है, जिससे दिमाग खाली हो जाता हो एवं बेचैनी ज्यादा बढ़ जाती है। रोगी को कहीं भी शान्ति नहीं मिलती है। ऐसी हालत में मुक्तापिष्टी का शर्बत खस के साथ देने से बहुत लाभदायक होता है। कारण, यह शीतल होने से रक्तरोधक है। रक्तवाहिनी सिरा पर भी इसका असर होता है। अत: पित्त का शमन करते हुए रक्त की विकृति को शान्त कर उसमें गाढ़ापन पैदा कर देती है, जिससे रक्त का स्राव रुक जाता है।

सूजाक या उपदंश होने के बाद या पैत्तिक पदार्थों के अधिक सेवन या अन्य कई कारणों से पित्त बढ़ने या पेशाब में उष्णता (तीक्ष्णता) बढ़ कर मूत्रमार्ग में जलन होने से रोगी व्याकुल हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में मुक्तापिष्टी देने से शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि शीतवीर्य होने की वजह से मूत्रल भी है। इसका प्रभाव मूत्राशय या मूत्रनलियों पर होता है।

अन्तर्दाह- ज्यादा रक्त (खून)गिरने से अन्य कारणों से हो तो इसमें पिष्टी का उपयोग करना अच्छा है, किन्तु स्त्रियों को अपत्यपथ (योनिमार्ग) द्वारा रक्तस्राव मे या प्रसव के बाद उत्पन्न हुए रक्तस्राव में मुक्तापिष्टी की अपेक्षा वंग भस्म विशेष लाभकर है। हाँ, श्वासरोग में यदि दाह (अन्तर्दाह) हो, तो मुक्तापिष्टी ही देना अच्छा है।

रक्तचाप बढ़ जाने या दिल की धड़कन बढ़ जाने पर मोती पिष्टी १ रत्ती को अनाद बेदाना के रस और मधु में मिलाकर देने से शीघ्र ही शान्ति मिलती है। खमीरे गाजबान के साथ इसके कुछ काल तक नियमित प्रयोग से हृदय बहुत शक्ति-सम्पन्न बन जाता है।

बार-बार आँख आने (उठने) में मुक्तापिष्टी की मक्खन तथा मिश्री के साथ उपयोग शीघ्र लाभ करता है।

क्षय (राजयक्ष्मा) में- जब दाह, प्यास, ज्यादा, बुखार, बेचैनी आदि लक्षण हों, तो मुक्तापिष्टी का प्रयोग किया जाता है। क्षय के आरम्भ से अन्त तक जैसे प्रवाल पिष्टी का उपयोग करने से लाभ होता है, वैसे ही पित्तजन्य क्षय में आरम्भ से आखिर तक मुक्तापिष्टी का उपयोग गुणप्रद है। क्षय में होनेवाले रात्रि, स्वेद मे भी मोती पिष्टी लाभदायक है। रक्तष्ठीवन में शर्बत अडूसा के साथ देने से उपयोगी है।

पित्तज अम्लपित्त में- जब कण्ठ में जलन हो, लाल मिर्च लगने से जैसी जलन होती है वैसी जलन हो, गर्मी के साथ खट्टी डकारें हों तथा खट्टी वमन हो तो मुक्तापिष्टी में अभ्रक भस्म का मिश्रण करके दाड़िमावलेह में मिलाकर देने से तुरन्त लाभ होता है।

पैत्तिक अतिसार में जब पीले और पतले दाहयुक्त जल जैसे दस्त अधिक हों, गुदा और पेट में दाह हो, तो मुक्तापिष्टी को बेल के मुरब्बा के साथ देने से दाह दूर होकर पित्त की शान्ति हो जाती है और अतिसार भी बन्द हो जाता है।

वैसे ही रक्तार्श में दाह रक्तस्राव जलन के साथ होना, खून गर्म-गर्म गिरना और खून गिरने के बाद दाह होना, ऐसी दशा में मुक्तापिष्टी का उपयोग नागकेशर चूर्ण और मक्खन के साथ करने से पित्त शान्त होकर दाह कम हो जाता है और पित्त की शान्ति के साथ-साथ रक्त का भी अवरोध हो जाता है, जिससे रक्त का गिरना बन्द हो जाता है।

मूत्राघात अथवा मूत्रकृच्छ्र के साथ पेशाब के रास्ते से यदि खून गिरता हो, साथ में जलन तथा

मूत्र थोड़ा-थोड़ा आता हो और पेशाब करने में तकलीफ मालूम पड़ती हो, तो नारियल के पानी के साथ मुक्तापिष्टी के उपयोग से पित्त शान्त होकर दाहादि उपद्रव नष्ट हो जाते और रक्त का आना भी बन्द हो जाता है। यह मूत्रल होने से पेशाब भी साफ लाती है।

रक्तपित्त रोग के कारण या रक्त प्रदर अथवा अत्यार्तव के कारण योनि-मार्ग द्वारा जलन के साथ और अधिक परिमाण में रक्त निकलने के साथ ही खुजली होने पर रोगिणी कभी-कभी अधिक व्याकुल हो जाती है, ऐसे समय गुलकन्द अथवा धारोष्ण गो-दुग्ध के साथ मुक्तापिष्टी देने से बड़ा लाभ होता है। साथ ही खुजली और दाह शान्ति के लिये योनि में सौ बार का धोया हुआ घी का फाया भी रखवा देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

अनुलोमक्षय- इसमें रस धातु के क्षय से रोग शुरू होता है ओर उत्तरोत्तर सब धातुएं क्षीण होती जाती हैं। शरीर दुर्बल हो जाता है, अतिसार हो जाता है, मुँह में छाले पड़ जाते है तथा सम्पूर्ण शरीर में दाह, पेट में जलन इत्यादि लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। मुक्तापिष्टी के सेवन से ये सब लक्षण दूर होकर दाह कम हो जाता तथा रस-रक्तादि धातुएँ भी पुष्ट हो जाती हैं। - धात्वक

नेत्र रोग में- मोतीपिष्टी १ रत्ती, मक्खन-मिश्री या त्रिफलादि घृत १ तोला के साथ सेवन करना लाभदायक है।

क्षय रोग में- मोतीपिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा के साथ च्यवनप्राश में मिलाकर देने से लाभ होता है। दाह, बेचैनी, तीव्र ज्वर, प्यास आदि पित्त प्रधान लक्षण हों, तो मोतीपिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती घृत के साथ देने से विशेष एवं निश्चित रूप से फायदा करती है।

उर:क्षत में- मोतीपिष्टी २ रत्ती, लाक्षा चूर्ण २ रत्ती, च्यवनप्राशावलेह १ तोला में मिला कर सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

हृदय की निर्बलता में- मुक्तापिष्टी १ रत्ती, अकीकपिष्टी १ रत्ती आँवले के मुरब्बे के साथ देना अच्छा है। ऊपर से अर्जुनारिष्ट १। तोला या अर्जुन घृत १ तोला में पावभर दूध मिलाकर पीना चाहिए।

पित्त प्रधान कास और श्वास रोगों में- मोतीपिष्टी १ रत्ती, च्यवनप्राश १ तोला या सितोपलादि चूर्ण १ माशा मधु में मिलाकर सेवन करने से रोग शीघ्र शान्त हो जाता है। जीर्णज्वर में रोगी अत्यन्त दुर्बल तथा शक्तिहीन हो जाता है। ऐसी दशा में मुक्तापिष्टी १ रत्ती, स्वर्ण वसन्त मालती १ रत्ती, गिलोयसत्व २ रत्ती- इन स को एकत्र मिलाकर मधु के साथ दें।

तेज शराब, गाँजा आदि के अधिक सेवन करने से पित्त दूषित होकर उन्माद रोग हो जाता है। इसमें स्वर्णमाक्षिक भस्म आधी रत्ती, प्रवाल पिष्टी आधी रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती में मिलाकर कुष्माण्डावलेह या ब्राह्मी घृत १ तोला में मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है।

गर्मी के मौसम में- उष्ण आहार-विहार के कारण नाक, मुँह, गुदा एवं मूत्र आदि मार्गों से रक्त निकलने लगता है तथा कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य को गर्मी के कारण बेचैनी आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में मोतीपिष्टी १ रत्ती, गुलकन्द २ तोला, आँवले के मुरब्बे में मिलाकर देने से लाभ होता है।

दिमाग की कमजोरी में- १ रत्ती मुक्तापिष्टी, स्वर्णवर्क चौथाई रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती, मलाई के साथ सेवन करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

पैत्तिक-सिर दर्द में- मोतीपिष्टी १ रत्ती, बादाम का हलुवा एक छटाँक में मिलाकर सेवन

करने से शीघ्र फायदा होता है। ४० दिन तक लगातार इसके सेवन करने से स्थायी लाभ होता है। पित्त की अम्लता और तीक्ष्णता की अधिक वृद्धि होने पर मोतीपिष्टी १ रत्ती शर्बत अनार के साथ देना हितकर है।

पित्तज प्रमेह में-दाह और उष्णता बढ़ जाने पर मोतीपिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी आधी रत्ती और गिलोय सत्व २ रत्ती मिला कर सारिवादिहिम या चन्दन शर्बत के साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र, मूत्र के साथ रक्त जाता हो या पेशाब के रास्ते खाली रक्त जाता हो तो मोतीपिष्टी १ रत्ती, कुकरौंधे का रस १ तोला, मधु मिलाकर दे से तुरंत गुण करती है। दूध की लस्सी के साथ देने से भी उत्तम लाभ करती है।

अनिद्रा में- मोतीपिष्टी १ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म आधी रत्ती में मिलाकर मक्खन के साथ सेवन करें।

गर्भोपद्रव या गर्भ की पुष्टि के लिये- मोतीपिष्टी १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर आँवले का मुरब्बा १ तोला या दूध के साथ देने से गर्भ पुष्ट हो जाता है। इसमें सेन्द्रिय कैल्शियम होने से गर्भिणी में विटामिन्स की कमी को दूर कर देती है।

मौक्तिक शुक्ति (मोती सीप)

परिचय- समुद्र के अन्दर दो प्रकार की सीप होती हैं, एक सीप वह जो मोती पैदा करती है और दूसरी सीप वह जिसमें मोती पैदा नहीं होते। इसमें प्रथम प्रकार को मोती की सीप तथा दूसरे को जल सीप कहते हैं। मोती की सीप बहुत बड़ी और दलदार तथा अन्दर में मोती के ही समान चमकवाली होती है, इसी सीप की भस्म बनायी जाती है।

शोधन विधि- अच्छी, बड़ी छेद-रहित, वजनदार मोती की सीप लाकर उसको मिट्टी के घड़े में डालकर ऊपर से जल और थोड़ा नींबू का रस गेर कर मन्दाग्नि (मन्द आँच) पर एक घण्टा पका लें, पीछे जल से निकाल कर धो करके सुखा लें। सीप के पीछे के काले छिलके को भी लोहे की पत्ती से खुरच कर छुड़ा देना चाहिए।- सि.यो.सं.

भस्म विधि- इसकी भस्म कौड़ी भस्म की तरह बनावें।

दूसरी विधि- एक हाँडिया में नीचे आधा सेर ग्वारपाठे का गूदा भरकर ऊपर सीपों को रखकर फिर ऊपर आधा सेर गूदा रखकर कपडमिट्टी कर गजपुट में फूँक दें। स्वांग शीतल होने पर निकालकर कागजी नीम्बू के रस में मर्दन कर पुनः पुट दें। इस विधि से उत्तम मुलायम भस्म बन जाती है, इसमें दूध की भावना या चन्दनादि अर्क की भावना देकर सुखा रखें।

पिष्टी- शुद्ध मुक्ताशुक्ति को लेकर अच्छे साफ किए हुए लोहे के इमामदस्ते में कूट-कपड़छन चूर्ण कर लें, पीछे पत्थर की खरल में चन्दनादि अर्क अथवा गुलाब जल के साथ तब तक खरल करें, जब तक खूब महीन हो जाय, फिर छाया में सुखाकर कपड़छन कर शीशी में भर लें।- सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती शहद, ताजा मक्खन या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- मोती सीप चूने का सेन्द्रिय कल्प है। गुण-धर्म मे यह मोती की अपेक्षा गुणों में कुछ कम है। अग्निपुटी भस्म की अपेक्षा पिष्टी विशेष लाभदायक होती है। क्षय, श्वास, खाँसी, जीर्णज्वर, नेत्रदाह, हृद्रोग, पित्तज दाह, पित्तप्रधान अरुचि, पित्तज परिणामशूल, यकृत, वमन, पित्तातिसार, अम्लपित्त, रक्त और श्वेतप्रदर आदि के दोष तथा आमाशय, यकृत, प्लीहा,

ग्रहणी आदि स्थानों पर इसका विशेष असर होता है।

वास्तव में यदि देखा जाय तो शुक्ति, शंख, कपर्दक से सब एक ही सेन्द्रिय चूने के प्रकार हैं, परन्तु शुक्ति भस्म शंख की अपेक्षा कम तीव्र है। इन तीनों भस्मों के गुणधर्म भी पृथक्-पृथक् हैं। शंख और कपर्दक (कौड़ी) भस्म में साधर्म्य है, तथा मुक्ता और मुक्ताशुक्ति भस्म में विशेष साधर्म्य हैं। यदि मुक्ताशुक्ति भस्म, मोती भस्म की तरह बनाया जाय, तो मुक्ताशुक्ति भस्म भी विशेष गुणकारी हो सकती है, परन्तु ऐसा न होकर मुक्ताशुक्ति भस्म खुला गजपुट द्वारा बनाया जाता है, इसीसे उसमें तीव्रता आ जाती है। किन्तु उतनी तीव्रता नहीं आती, जितनी कपर्दक या शंख भस्म में रहती है। अतएव शुक्तिभस्म छोटे बच्चे, कोमल प्रकृतिवाले स्त्री और पुरूषों को भी दिया जाता है।

अम्लपित्त रोग में शुक्तिभस्म २ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती के साथ दाड़िमावलेह या आँवला के मुरब्बा में मिलाकर देने से पित्त की शान्ति होकर सब उपद्रव कम हो जाते हैं। विदग्धाजीर्ण में जब खट्टी डकारें दाह के साथ आती हों, गले में हरदम जलन रहती हो तो शंख भस्म की अपेक्षा मुक्ताशुक्ति भस्म देना अच्छा है। कोमल प्रकृतिवालो को रसाजीर्ण हो गया हो तो शंख भस्म की अपेक्षा शुक्ति भस्म ही देना ठीक है, क्योंकि इसमें तीव्रता कम होती है। अतः कोमल प्रकृतिवाले इसे अच्छी तरह सहन कर लेते हैं और इस भस्म के सेवन से अग्नि (जठराग्नि) प्रदीप्त हो कच्चे अन्न को पचा देती है, जिससे पुनः अजीर्णादि विकार नहीं होते।

पित्तातिसार में शुक्ति भस्म दाड़िमावलेह या शर्बत अनार अथवा मक्खन के साथ दें, इसी तरह पित्तजन्य वमन में शुक्ति भस्म का उपयोग मोसम्बी रस और मिश्री मिला कर करने से दूषित पित्त शमन होकर छर्दि (वमन) बन्द हो जाती है।

पित्तजन्य गुल्म में शुक्ति भस्म देने से पित्त विकार शान्त हो जाता और साथ ही अपनी तीव्रता गुण के कारण यह गुल्म को भी गला देती है। पित्तज गुल्म, अष्ठीला या विद्रधि के समान मांसपिण्ड की वृद्धि होकर कठोर नहीं बनता, अतः इसे गलते देर नहीं लगती है।

रक्तगुल्म में भी मौक्तिक भस्म का उपयोग किया जाता है बशर्ते कि साथ में पित्त दोष की अधिकता हो, पित्तज अर्थात पित्त से होने वाले दर्द में शौक्तिक भस्म मधु या बादाम के हलुआ के साथ दें, मूत्रकृच्छ्र, दाँत या और किसी भी राह से खून गिरने की आदत पड़ गयी हो तो वैद्य लोग शंख या कपर्दक भस्म का प्रयोग करना अच्छा समझते हैं, किन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ है कि यदि इसमें शुक्ति भस्म दिया जाय तो अच्छा लाभ दिखलाती है। कोष्ठगत वायु भी शौक्तिक भस्म के सेवन से शान्त हो जाता है।

पित्त की विकृति से उत्पन्न होनेवाली अरुचि मे जब मुँह का स्वाद फीका हो गया हो, मुँह से दुर्गन्ध आती हो, खट्टा, मीठा, चरपरा या कड़वा मुँह हो गय हो, तो शुक्ति भस्म देने से बहुत लाभ होता है।

क्षय की प्रत्येक अवस्था में मोती सीप भस्म २ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, गिलोय सत्व ३ रत्ती, च्यवनप्राश या आँवले के मुरब्बा के साथ सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिला कर दिन भर मे तीन बार दें। खाँसी और श्वास ज्यादा बढ़ी हुई हो, तो शुक्ति भस्म २ रत्ती, वासावलेह १ तोला में मिलाकर देने से तुरन्त लाभ होता है।

जीर्ण ज्वर में- बसन्तमालती १ रत्ती, शुक्ति भस्म २ रत्ती, गुर्च सत्व २ रत्ती मधु के साथ देना बहुत हितकर है।

नेत्ररोग में-त्रिफला घृत १ तोला के साथ शुक्ति भस्म २ रत्ती मिलाकर दें, हृदय रोग में शुक्ति भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, अर्जुन घृत मे मिलाकर दें, ऊपर से गो-दुग्ध या अर्जुनारिष्ट १

तोला बराबर जल मिलाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पित्त विकार में आँवले का मुरब्बा, मक्खन, मलाई, गुलकन्द आदि के साथ मुक्ताशुक्ति पिष्टी का उपयोग करना अच्छा है। अरुचि और वमन में मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती, नींबू के रस मे या मिश्री की चाशनी में या कमला नींबू के रस के साथ देना चाहिए।

परिणाम शूल में- हिंग्वष्टक चूर्ण ३ माशा, शंख भस्म २ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी २ रत्ती, इन सब को एकत्र मिलाकर गर्म जल से दें। यकृत शूल में नवायस लौह ४ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती मधु के साथ दें।

पित्तातिसार में- अनार का शर्बत या बेल के मुरब्बे के साथ मुक्ताशुक्ति पिष्टी २ रत्ती की मात्रा में दें। अम्लपित्त रोग में मुक्ताशुक्ति पिष्टी २ रत्ती, कौड़ी भस्म १ रत्ती, मिश्री १ माशा में मिला मधु के साथ दें। रक्तप्रदर में मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, मधु में मिलाकर अशोकारिष्ट के साथ दें, श्वेत प्रदर में मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती, गोदन्ती भस्म २ रत्ती, चावल के धोवन के साथ मिश्री २ माशे में मिलाकर दें।

राजावर्त (लाजवर्द)

परिचय- जो राजावर्त (लाजावर्द) स्वच्छ, चमकीला, मलरहित, स्निग्ध (चिकना) और नीलवर्ण भारी तथा मयुर के कण्ठ के सदृश प्रकाश वाला हो, उसे उत्तम राजावर्त समझना चाहिए। इसका विशिष्ट गुरुत्व २।। और काठिन्य ५।। होता है। यह प्राय: मध्य एशिया में पाया जाता है। यह प्रसिद्ध उपरत्न है।

शोधन विधि- नींबू के रस में यवक्षार और गोमूत्र मिलाकर दोलायन्त्र द्वारा दो या तीन बार एक-एक प्रहर तक स्वेदन करने से राजावर्त शुद्ध हो जाता है। -र.र.स.

दूसरी विधि- राजावर्त को शिरिष पुष्प के रस और अदरक दोनों को एकत्र मिलाकर दोलायन्त्र विविध से एक प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।-र.र.स.

भस्म विधि- शुद्ध राजावर्त लेकर इमामदस्ते में महीन चूर्ण बनाकर समान भाग गन्धक और नींबू के रस के साथ खरल में घोंटकर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस तरह ७पुट देने से उत्तम और मुलायम भस्म तैयार होती है।

नोट- रसामृत के अनुसार नींबू के रस की बजाय भृंगराज के स्वरस से ७ पुट देने से उत्तम भस्म बनती है।

मात्रा और अनुपान- १-२ रत्ती, दिन भर में २ बार मिश्री, मलाई, मधु या घृत से दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पित्त प्रकोप शांत होता है, और शरीर मे मांसादि धातुओं की वृद्धि होने से शरीर मोटा हो जाता है। यह पाण्डुरोग, प्रमेह और चय रोग को नष्ट करता है। इसके सेवन से पुरातन मदात्यय रोगजन्य उपद्रव शान्त हो जाते हैं और वमन तथा हिक्का रोग नष्ट होते हैं।

राजावर्त (लाजवर्द) के भस्म में समभाग रजत (चाँदी) भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म मिला, गो-घृत, शहद और मिश्री के अनुपान से मदात्यय रोग में दें। इसी तरह राजावर्त भस्म में रस-सिन्दूर और ताम्र भस्म, मुलेठी चूर्ण मिला कर रखें। इसमें ये उचित मात्रा लेकर शहद और गौ-घृत के साथ सेवन से भी मदात्यय रोग नष्ट हो जाता है। राजावर्त भस्म में समान भाग अभ्रक

भस्म और कान्त लौह भस्म मिलाकर कुछ दिन तक सेवन से प्रमेह रोग नष्ट होता है।

वक्तव्य- यूनानी वैद्य लाजवर्द के चूर्ण को जल से विशेष विधिपूर्वक धोकर प्रयोग करते हैं, वह भी उत्तम है। इसकी विधि आचार्य यादवजी कृत 'रसामृत' नामक ग्रन्थ में पृष्ठ सं. ८१ पर वर्णित हैं।

रौप्य (चाँदी)

परिचय- चाँदी एक सुप्रसिद्ध धातु है। हिन्दुस्तान में बहुत प्राचीन काल से यह औषध प्रयोग के काम में आती है। इसकी गणना खनिज द्रव्यों में की जाती है। इसकी खान, अमेरिका, सिलोन और चीन में है। बहुत-सी बड़ी-बड़ी नदियों की रेत में भी चाँदी के छोटे-छोटे कण पाये जाते हैं, हिन्दुस्तान के अंदर भी कई बड़ी-बड़ी नदियों के रेत में भी चाँदी के छोटे-छोटे कण पाये जाते हैं। इसका विशिष्ट गुरुत्व १०.५ है तथा १६० शतांश ताप पर यह पिघलती है। इसके अतिसूक्ष्म १/१००० इंच तक पतले पत्र (वर्क) बन सकते हैं।

भस्म करने योग्य चाँदी- तोल में भारी, चिकनी, कोमल और आग में तपाने तथा तोड़ने में सफेद, घन की चोट सहन करनेवाली, सुन्दर वर्णयुक्त और चन्द्रमा के समान निर्मल, इन गुणों से युक्त चाँदी भस्म के लिये अच्छी होती है।

वक्तव्य- बाजार से १०० टंच की चाँदी लेकर उसके पत्र बनाकर शोधन कर भस्म बनाना भी उत्तम है।

शोधन विधि- चाँदी के (कंटकवेधी) पत्रों को आग में तपा-तपाकर तैल, गो-मूत्र, मट्ठा, कांजी और कुलथी के क्वाथ में २-३ बार बुझाने से चांदी शुद्ध होती है।

भस्म विधि- चाँदी के पत्र से दूनी हरताल को सत्यानासी के क्वाथ में महीन पीसकर, शुद्ध चाँदी के पत्रों पर लेप कर, सुखाकर, सम्पुट में रख, कपड़-मिट्टी कर १ सेर कण्डों की आँच का पुट दें। दूसरे पुट में आधी और तिसरी पुट में चौथाई हरताल लेवें, इस प्रकार १० पुट दें। क्रमशः आँच थोड़ी-थोड़ी बढ़ाती जायें, पीछे गुलाब के फुलों के स्वरस में पीसकर, टिकिया बना, सुखाकर, सराब-सम्पुट में रख ५ सेर कण्डों की आँच दें। ऐसे तीन पुट देने से उत्तम भस्म बनती है और इसी भस्म को रस-रसायन के काम में लावें।-सि.यो.सं.

वक्तव्य- चौथे पुट से १० पुट तक प्रतिबार चौथाई भाग हरताल मिलाकर ही पुट दें।

नोट- रौप्य भस्म एक बार में ५ से २० तोले तक बनावें। इससे ज्यादा एक बार में भस्म करने में अच्छी भस्म नहीं बनती है।

दूसरी विधि- चाँदी के शुद्ध कंटकवेधी पत्रों को कैंची से खूब महीन काट लें। इसमें दूना हिंगुल (सिंगरफ) मिला नींबू के रस में घोंट, गोला बना, कपरौटी की हुई मिट्टी की हाँडी में रखें, इस हाँड़ी के मुख पर दूसरी हाँडी औंधी रखकर सन्धि बन्द करके सुखा लें। इस ऊर्ध्वपातन यन्त्र को आँच पर रखें, आँच थोड़ी-थोड़ी देते रहें, ऊपरवाली हाँडी की पेंदी पर कपड़ा भिगों-भिगों कर रखते जाये जिससे हाँडी की पेंदी ठंडी बनी रहे। इस तरह ४-५ घण्टे तक आँच देने के बाद आँच बन्द कर दें। स्वांग-शीतल हो जाने पर सावधानी से हाँडी को नीचे उतार कर खा लें, उसमें ऊपर की हाँडी में लगा हुआ पारा निकाल कर रख लें। यह औषधियों में काम लेने में उत्तम होता है और नीचे से चाँदी निकाल कर पुनः सिंगरफ में डाल कर गोला बना पूर्ववत् यन्त्र में रख कर भस्म करें। ऐसे १० पुट देने से चाँदी की भस्म हो जायेगी, फिर इसे घीकुमारी के रस

में घोंट कर छोटी-छोटी टिकिया बना, धूप में सुखाकर, सराब-सम्पुट में बन्द कर १ सेर कण्डों की आँच में फूँक दें। ऐसे ५-७ पुट देने से उत्तम और मुलायम भस्म बन जाती है। -र.सा.सं.

तीसरी विधि- शुद्ध रौप्य के पत्रों के छोटे-छोटे टुकड़े कर रौप्य (चाँदी) की तौल के बराबर शुद्ध गन्धक और शुद्ध तबकी हरताल मिला, नींबू के रस या इमली के पानी से भावित कर, सराब-सम्पुट में रख करके सन्धि बन्द कर हल्की पुट दें। स्वांग-शीतल होने पर निकालकर कुटवा करके पुनः गन्धक, तबकी हरताल, चाँदी के तौल से आधी मिलाकर पुनः नींबू-रस या इमली के पानी से भावित करके पुट दें। स्वांग-शीतल होने पर निकालकर घुटाई करवाकर नींबू-रस या इमली के पानी से भावित कर पुट देते रहे। इस प्रकार करीब २१ पुटों में भस्म तैयार हो जाती है प्रतिबार पुट से निकालकर घुटाई करना आवश्यक है। -र.सा.सं. के आधार पर स्वानुभूत विधि

मात्रा और अनुपान- १ रत्ती, सुबह-शाम मधु, घृत, मलाई, मक्खन, मिश्री आदि के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

शारीरिक दाह में- मिश्री १ माशा और चाँदी भस्म आधी रत्ती मिला कर दें। ऊपर से धनिये का हिम पिला दें।

बढ़े हुए वात और पित्त-दोष में- चाँदी भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण २ रत्ती, मधु के साथ आँवले के मुरब्बे के साथ दें।

प्रमेह में- चाँदी भस्म १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण, दालचीनी चूर्ण और तेज पत्र का चूर्ण प्रत्येकी ३-३ रत्ती में मिलाकर शिलाजीत के साथ गोली बना मलाई या मक्खन के साथ दें।

मस्तिष्क की दुर्बलता में- चाँदी भस्म १ रत्ती को प्रवालपिष्टी १ रत्ती और स्मृति सागर रस १ रत्ती के साथ देकर ब्राह्मी शर्बत पिलावें।

अथवा- चाँदी भस्म १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, शिलाजीत १ रत्ती, शहद के साथ दें।

पाण्डु रोग में- चाँदी भस्म १ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती, त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च) काचूर्ण ४ रत्ती मिला कर शहद से दें।

सूखी खाँसी में- चाँदी भस्म १ रत्ती, प्रवाल चंद्रपुटी १ रत्ती, शु. टंकण २ रत्ती मिलाकर शर्बत अडूसा से दें।

ज्वर में- चाँदी भस्म १ रत्ती, छोटी पीपल चूर्ण और इलायची चूर्ण २-२ रत्ती में एकत्र मिलाकर दें। धनिये का अर्क २ तोला ऊपर से पिला देने से नवीन ज्वर दूर हो जाता है।

उदर वात में- चाँदी भस्म १ रत्ती को भुने हुए जीरे के ४ रत्ती चूर्ण एवं भुनी हींग चूर्ण १ रत्ती के साथ गरम जल से देने पर उत्तम लाभ होता है।

वायु-दर्द में- चाँदी भस्म १ रत्ती, बच का चूर्ण १ माशे मिलाकर सेवन करें, ऊपर से गो-दुग्ध पाव भर पीवे।

अनिद्रा में- चाँदी भस्म १ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती मिलाकर गाय के गरम दूध से दें।

उन्माद और अपस्मार में- चाँदी भस्म १ रत्ती, बच और ब्रह्मदण्डी का चूर्ण ३-३ रत्ती, घी के साथ दें।

स्नायु दौर्बल्य में-चाँदी भस्म १ रत्ती को अभ्रक शतपुटी १ रत्ती के साथ मक्खन में मिलाकर दें।

हिचकी (हिक्का) में- चाँदी भस्म १ रत्ती, आँवला व छोटी पीपल के चूर्ण २-२ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ दें।

नेत्र रोग में- चाँदी भस्म १ रत्ती को मुलेठी चूर्ण ४ रत्ती के साथ महात्रिफलादि घृत में मिलाकर दें।

वीर्य-वृद्धि के लिये- चाँदी भस्म १ रत्ती, मोती भस्म आधी रत्ती, वंशलोचन, छोटी इलायची, केशर का चूर्ण प्रत्येक दो-दो रत्ती शहद में मिलाकर दें। ऊपर से गोदुग्ध मिश्री मिला हुआ पीवें अथवा चाँदी भस्म १ रत्ती को प्रवाल भस्म १ रत्ती के साथ मक्खन में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से त्वचा का वर्ण निखर जाता है। अतः यह त्वच्य है। यह भस्म वातहर और कफ प्रकोप नाशक है। इस रस में कषाय रस के अतिरिक्त अम्लरस, सर तथा उत्तम लेखन है। यह भस्म वयःस्थापक तथा बलवर्धक है। यह शीत होने से पित्त प्रकोपजन्य दाह में लाभ करती है। मस्तिष्क के पोषक होने से स्मरण-शक्ति बढ़ाती है और शरीर में ओज-शक्ति की पुष्टि करने से कान्तिवर्द्धक है। इसके सेवन से तृष्णा तथा मुख-शोष शान्त होता है। शिरोविकार के कारण होनेवाले चक्करों में विशेष लाभ करती है। गर्भाशय-शोधक के लिए यह बहुत उत्तम है। इसके सेवन से पित्त प्रकोपजन्य रोग तथा प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं। शरीर में से वात-प्रकोप को दूर करने के कारण वातिक संस्थान को स्वस्थ सबल और क्षोभरहित करने के कारण यह आयुष्य कही जाती है। आँतों में वात प्रकोपजन्य विदग्धाजीर्ण में यह विशेष लाभदायक है। मदात्यय के कारण होनेवाले अग्निमांद्य को दूर करती है। ज्वर, विशेषतः पुरातन ज्वरों और प्लीहोदर रोग को शान्त करती है। क्षय रोग के लिए स्वर्ण भस्म के समान ही गुणदायक है। नाड़ीशूल और अपस्मार के लिए उत्तम द्रव्य है।

रौप्य भस्म विपाक में मधुर, कषाय और अम्ल रसात्मक, शीतल, सारक, लेखन, रुचिप्रद और स्निग्ध होती है। यह बृंहण गुण होने के कारण प्रकुपित वात को शमन करती है। बीसों प्रकार के प्रमेह, वात रोग, पित्त-विकार, नेत्र रोग, क्षय, वात-प्रधान कास, प्लीहा वृद्धि, धातुक्षीणता, अपस्मार आदि रोगों में रौप्य भस्म का उपयोग अति लाभदायक है। यह मूत्रपिंडों का शोधन कर उन्हें शुद्ध और बलवान बनाती है।

चाँदी भस्म बृंहण है। अतएव वातवाहिनी सिरा और रक्तवाहिनी स्नायुओं पर इसका असर ज्यादा पड़ता है। इसीलिए यह वातनाशक भी कही गयी है। पुराने पक्षाघात तथा कलायखंजादि रोगों में बहुत शीघ्र यह अपना प्रभाव दिखलाती है। रक्तवाहिनी सिरागत वायु के प्रकोप होने से शरीर में दर्द तथा रक्तवाहिनी सिरा का संकोच और जकड़ जाना, अन्तरायाम बहिरायाम और कुलंजादि वात रोगों की उत्पत्ति होती है। इस वातप्रकोप का शमन रौप्य भस्म से बहुत शीघ्र होता है, क्योंकि यह वातवाहिनी सिरा और रक्तवाहिनी सिरा में प्रवेश कर रक्त और वायु का संचालन अच्छी तरह से करती है और रक्त तथा वायु का शरीर में संचालन होने से वातादिक दोष हो ही नहीं सकते। अतः उपरोक्त वातजन्य विकार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण रक्तचापवृद्धि रोग में भी इसका उपयोग से उत्तम लाभ होता है।

यदि उपरोक्त वात-विकार केवल वातजन्य ही हों, तो रौप्य भस्म से अच्छा हो जायेगा

अन्यथा अन्य दोषों से संयुक्त होने पर धातुगर्भित योगराज गुग्गुल देना उत्तम होगा।

वातवाहिनी सिरा की विकृति रौप्य भस्म के सेवन से दूर होकर, उसमें साम्यता भी आ जाती है। अतएव अपस्मार, उन्माद और विशेषतया आक्षेपक की प्रकोपावस्था में रौप्य भस्म का सेवन करने से बहुत लाभ होता है। स्त्रियों को वात प्रधान भूतोन्माद में रौप्य भस्म का सेवन करना श्रेष्ठ हैं, कारण वात प्रकुपित हो कर वातवाहिनी नाड़ी और रक्तवाहिनी में विकृति (विकार) उत्पन्न कर देता है, जिससे मनोवाहिनी सिरा दूषित हो उपरोक्त अपस्मारादि विकार उत्पन्न हो जाते हैं ऐसी अवस्था में रौप्य भस्म देने से प्रकुपित वात शान्त होकर उससे होनेवाले अपस्मारादि मानसिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रकुपित वात या पित्त के कारण नेत्र रोग हो तो रौप्य भस्म का उपयोग करना अच्छा है। ज्यादा क्रोध, परिश्रम या सूर्य-किरणों की प्रखरता से दृष्टि (आँख) में विकार उत्पन्न हो गया हो, तो इन रोगों के लिये एकमात्र रौप्य भस्म ही उत्तम है। यदि साथ में मोती पिष्टी या प्रवाल चंद्रपुटी मिलाकर दी जाये तो सोने में सुगन्ध जैसा उत्तम कार्य होता है।

शुक्र-क्षय से उत्पन्न हुए रोगों में रौप्य भस्म और वंग भस्म दोनों काम करते हैं। विशेष शुक्र क्षय होने से वायु प्रकुपित हो जाता हैं, जिससे कमर-दर्द तथा खिचाव होना, मूत्र-मार्ग में दाह तथा दर्द होना इत्यादि लक्षण हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में रौप्य भस्म और वंग भस्म मिला कर देने से शुक्र पुष्ट होकर विकृत वात भी शान्त हो जाता है।

इसी तरह कीटाणुजन्य क्षय में स्वर्ण भस्म मिश्रित दवा हितकर हैं, क्योंकि स्वर्ण भस्म कीटाणु नाशक है। अतएव, राजयक्ष्मा आदि कठिन और संक्रामक रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है, किन्तु साथ ही सर्वांग में दाह, आँखें और मूत्र पिण्ड में जलन हो, तो रौप्य भस्म का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि इसका प्रभाव मूत्रपिण्ड पर विशेष पड़ता है और यह दाह को भी शान्त करती है। अतः दाह-शमन के लिये इसका प्रयोग अकेले या सुवर्ण भस्म के साथ अवश्य करें।

अर्श (बवासीर) वात जन्य या पित्त जन्य इनमें से किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हो, तो रौप्य भस्म का उपयोग करना चाहिए। यदि रक्त भी निकल रहा हो तो भी अर्श रोग में रौप्य भस्म बहुत उपयोगी है। यदि बवासीर के मस्से बढ़ गये हों, तो उन मस्सों को निकलवा दें, फिर रौप्य भस्म का सेवन करें। रक्तार्श (खूनी बवासीर) में दर्द विशेष होता हो, या मस्सों में चिनचिनाहट (खुजली) होती हो अथवा सुई चुभोने सदृश पीड़ा होती हो, तो रौप्य भस्म देना अच्छा है और यदि मस्सों में जलन, वहां की खाल (चमड़ी)श्याम (काले) वर्ण की एवं कठोर हो गयी हो, तो गन्धक रसायन के साथ रौप्य भस्म देने से गन्धक रक्तशोधन का काम करता है और रौप्य भस्म दाह-जलन आदि को शान्त करती है। इस तरह दोनों मिलकर उपद्रवों को नष्ट कर रोगी को स्वस्थ बना देते हैं।

पित्त की दृष्टि से उत्पन्न होनेवाले जलोदर रोग में रौप्य भस्म का उपयोग करना चाहिए। क्योंकि यह भस्म पित्त की विकृति दूर कर उनसे होनेवाले उपद्रवों को शान्त करती है और शरीर में रक्तकणों को बढ़ा कर शरीरस्थ जलीयांश भाग को भी सुखा देती और जलोदर रोग से मुक्त कर रोगी को स्वस्थ बना देती हैं।

विकृत वातजन्य अम्लपित्त में प्रधानतः आमाशय या कोषस्थ वातवाहिनियों में क्षोभ उत्पन्न हुआ हो तो रौप्य भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। इस रोग में बीमारी कुछ दिन के लिये छूट

जाती और फिर किसी प्रकार के कुपथ्यादि होने पर शीघ्र ही उत्पन्न हो जाती है। ऐसे अम्लपित्त रोग के लिये 'रौप्य भस्म' बहुत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त पेट बढ़ कर यह रोग हुआ हो, और उसमें दर्द भी रहता हो, तो रौप्य भस्म का प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है, किन्तु शारीरिक शिथिलता और इन्द्रियों की आसक्ति विशेष हो, तो रौप्य भस्म के साथ वंग भस्म मिला कर देना चाहिए।

शुष्क कास (खाँसी) में- रौप्य भस्म प्रवाल पिष्टी में मिला कर वासावलेह के साथ अथवा आँवले के मुरब्बे के साथ देने से शीघ्र लाभ करती है। क्योंकि इनके साथ रौप्य भस्म देने से यह कफ को ढीला कर वातजन्य रूक्षता नष्ट कर देती और गले की फुन्सियाँ भी मिटा देती है।

वात प्रधान या वात-पित्त प्रधान पाण्डु रोग में रक्त कणों की कमी हो जाती है। विशेष मानसिक चिन्ता अथवा मन में किसी तरह का भारी आघात होने से भी शरीर में रक्त कणों की कमी हो जाती है, जिससे शरीर पीला-पीला-सा दिखाई पड़ता हैं। इसमें मन्दाग्नि रहना, भूख कम लगना, क्रमशः कमजोरी बढ़ते जाना, कब्ज रहना आदि-आदि लक्षण होते हैं। ऐसे समय में रौप्य भस्म को लौह भस्म अथवा मण्डूर भस्म के साथ देना अच्छा है। इससे रक्तकणों की वृद्धि हो शरीर के सब अवयव पुष्ट हो जाते हैं और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

जठराग्नि का कार्य सुचारू रूप में चलाने के लिये समान वायु की आवश्यकता होती है। यदि समान वायु दूषित हो जाय तो जठराग्नि मन्द हो जाती है, जिससे अन्नादिक (खाये हुए) पदार्थ कच्चे ही आमाशय में पड़े रह जाते हैं। अतः समान वायु को सुधारकर जठराग्नि प्रदीप्त करने के लिये रौप्य भस्म का प्रयोग करें।

कोथ (कुर्थ)- यह रोग भयंकर है। एक बार जिसे पकड़ लेता है, उसका पुनर्जन्म ही होता है। इस रोग में शरीर के अन्दर रस-रक्तादि धातु सड़ने लगते हैं। जिस भाग में सड़ना प्रारम्भ होता है, उस भाग में दर्द भी होने लगता है तथा उस भाग की त्वचा (चमड़ी) काली पड़ने लगती है। साथ ही कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है। यह रोग अक्सर पुराने प्रमेह, सूजाक या उपदंश वाले रोगियों को हो जाया करता है और इस रोग का प्रधान कारण प्रकुपित वात या प्रकुपित पित्त है। इसमें रौप्य भस्म देने से प्रकुपित वातादिकों का सुधार हो रस-रक्तादिक का भी सुधार हो जाता है।

रौप्य भस्म बल्य भी है, अतएव, स्रोतसों के संकोच से रक्तादि धातुओं का भ्रमण ठीक तरह न होने की वजह से शरीर के बाह्य अवयव हाथ-पैर आदि में थकावट आने लगती है और शक्ति क्षीण हो जाती है। इसमें रौप्य भस्म का उपयोग करना बहुत अच्छा होता है। स्रोतादिकों का संकोच दूर हो अच्छी तरह से रस-रक्तादि धातुओं का परिभ्रमण होने लगता है, जिससे शारीरिक थकावट एवं कमजोरी आदि दूर हो जाती है।

रौप्य भस्म बुद्धिवर्धक भी है। बुद्धि का कार्य साधक पित्त के संयोग से अच्छी तरह होता है। यदि साधक पित्त में किसी प्रकार की विकृति आ गयी हो और बुद्धि सुचारू रूप से अपना कार्य नहीं कर पाती हो, तो इस विकृति को दूर करने के लिये रौप्य भस्म देना अच्छा है, क्योंकि यह मध्य अर्थात् बुद्धि को बढ़ाने वाली है।

उपदंश या सूजाक होने के पश्चात् स्रोतों के संकुचित होने के कारण अगर नपुंसकता आ गई हो, तो रौप्य भस्म १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, शिलाजीत २ रत्ती में मिलाकर धारोष्ण दूध के साथ देने से विशेष लाभ होता है। यह मांसपेशियाँ और रक्तवाहिनियों को बलवान बनाती है और

आयु, वीर्य, बुद्धि तथा कान्ति को भी बढ़ाती है।

बीसों प्रकार के प्रमेह पर रौप्य भस्म १ रत्ती, शहद या मलाई के साथ दें और ऊपर से १ तोला ईसबगोल की भूसी को आधा सेर गो-दुग्ध में खीर बना कर मिश्री मिला कर खिला दें अथवा शिलाजीत १ रत्ती अथवा रौप्य आधी रत्ती दोनों एकत्र मिलाकर मलाई के साथ सेवन करें तो इस प्रयोग से २१ दिन में प्रमेह दूर हो जाता है।

विशेष शारीरिक परिश्रम अथवा मानसिक चिन्ता, भय, शोक आदि कारणों से वात बढ़ जाता है और मस्तिष्क की शक्ति कमजोर हो जाती है। ऐसी अवस्था में रौप्य भस्म १ रत्ती असगन्ध का चूर्ण १ माशा मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ करती है।

पित्त-विकार में रौप्य भस्म आधी रत्ती, गुलकन्द १ तोला या आँवले के मुरब्बे के साथ देने से पित्त-विकार शमन हो जाता है।

वात प्रधान या पित्त प्रधान नेत्र रोगों में रौप्य भस्म आधी रत्ती, त्रिफलादि घृत १ तोला, मिश्री १ तोला मिला कर सेवन करें और प्रात:सायं त्रिफला के जल में आँख धोने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

शुक्रजन्य क्षयादि रोगों में रौप्य भस्म १ रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती मलाई के साथ देना उत्तम है, किन्तु यदि शुक्र-क्षय में वात-प्रकोप होकर कमर, पीठ, आदि स्थानों में दर्द हो, पेशाब में जलन और अधिक दर्द आदि उपद्रव हो, तो रौप्य भस्म १ रत्ती, वंशलोचन और छोटी इलायची चूर्ण २-२ रत्ती मिलाकर मधु से दें, वात प्रधान शुष्क कास (खाँसी) में रौप्य भस्म आधी रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिला मलाई या मक्खन के साथ देने से लाभ होता है।

यकृत या प्लीहा-वृद्धि में रौप्य भस्म आधी रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती के साथ मिला कर देना श्रेष्ठ है।

रस-रक्तादि धातु बढ़ाने के लिये रौप्य भस्म आधी रत्ती, मोती भस्म आधी रत्ती में मिला मक्खन और मिश्री के साथ देना चाहिए।

अपस्मार, हिस्टीरिया, उन्मादादि मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में रौप्य भस्म आधी रत्ती, बच और ब्राह्मी का चूर्ण ४-४ रत्ती घी के साथ देने से अधिक लाभ होता है।

खूनी और वादी दोनों प्रकार के बवासीर में रौप्य भस्म आधी रत्ती, शक्कर लौह भस्म 1 रत्ती. ईसबगोल की भूसी ६ मासे के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

वक्तव्य- सभी धातुओं में चाँदी (रौप्य) विशेष सौम्य होने के कारण पित्त-विकारों तथा वात-पित्तजन्य विकारों में इसके उपयोग से उत्तम लाभ होता है। १०० टंच की चाँदी शुद्ध चाँदी होने के कारण बिना विशेष शोधन के भी प्रयोग कर सकते हैं। आजकल चाँदी के वर्कों का भी प्रचलन बढ़ रहा है, किंतु भस्म में उससे अधिक गुण है।

लौह

परिचय- लौह मुण्ड, तीक्ष्ण और कान्त भेद से तीन प्रकार का होता है। इनमें मुण्ड लौह के तीन, तीक्ष्ण लौह के छ: और कांत लौह के ५ भेद होते हैं। प्रत्येक के लक्षण और भेद नीचे दिये जाते हैं।

मुण्ड लौह के तीन भेद

१. मृदु लौह के लक्षण- जो लौह आग में तपाने से शीघ्र गल जाय और हथौंडे या घन से

पीटने पर चूर्ण होकर बिखरे नहीं और मृदु कोमल हो, उसको मृदु लौह कहते हैं।

२. कुण्ठ लौह- जो लौह बड़ी कठिनता से घन की चोट देने पर चूर्ण हो या पसर जाय, उसे कुण्ठ लौह कहते हैं।

३. कड़ार- जो लौह घन से पीटने पर जल्दी चूर्ण हो जाय और तोड़ने पर भीतर से काले रंग का हो, उसे कड़ार लौह कहते हैं।

तीक्ष्ण लौह के ६ भेद

१. खार लौह के लक्षण- जो लौह कठोर और ऊँची-नीची टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से रहित हो तथा तोड़ने पर पारद के समान चमकदार और मोड़ने से शीघ्र मुड़ जाये यह खार लौह कहलाता है।

२. सार लौह के लक्षण- जिस लौह की धार विशेष चोट मारने से टूट जाय, उसे सार लौह कहते हैं। यह पीली भूमि में उत्पन्न होता है, और इसमें टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

३. हून्नाल लोह के लक्षण- जो लौह काला होते हुए पाण्डु वर्ण का हो तथा रेंडीबीज के छिलके की रेखाओं के समान स्पष्ट रेखाओं से युक्त हो और तोड़ने पर अत्यन्त कठिन हो, उसको हून्नाल लौह कहते हैं।

४. तरावट्ट लोह- यह लौह चमकदार और शीघ्र टूटनेवाला होता है।

५. वाजिर लौह के लक्षण- जो लौह अत्यंत कठिन, चमकदार और अत्यंत सटी हुई रेखाओं से युक्त हो तथा काले वर्ण का हो, उसको वाजिर लौह कहते हैं।

६. काल लौह के लक्षण- जो लौह नीलिमा लिये काले वर्ण का हो, तथा भारी चिकना, चमकदार एवं घन की चोट से भी जिसकी धार न टूटे, उसको काल लौह कहते हैं।

कान्त लौह के ५ भेद

१. भ्रामक लौह के लक्षण- जो लौह अपनी विशेष शक्ति द्वारा दूसरे लौह को चंचल कर देता है, उसको भ्रामक लौह कहते हैं।

२-३ चुम्बक और कर्षक के लक्षण- जो लौह अपने प्रभाव से दूसरे लौह को खींच कर चुम्बित कर (अपने में सटा) लेता है, उसे चुम्बक लौह कहते हैं। और जो लौह अपने प्रभाव से दूसरे लौह को अपनी तरफ खींचता हैं, किंतु पकड़े हुए नहीं रहता, उसे कर्षक लौह कहते हैं।

४. रोमकांत लौह के लक्षण- जिस कांत लौह के तोड़ने पर बालों के समान रेखाएँ देखने में आवें, उसे रोमकांत लौह कहते हैं।

इन लौहों में मुण्ड, लौह कड़ाही, तवा इत्यादि बनाने के लिये और तीक्ष्ण लौह तलवार आदि बनाने और इसका चूरा भस्मादि के काम आते हैं तथा कांत लौह में भ्रामक और चुम्बक औषधि-कार्य में आते हैं। अन्य रसायन (पारदगन्धकादि) काम में आते हैं। अतएवं औषधि कार्य में तीक्ष्ण और कांत लौह ही लेना चाहिए।

५. कांत लौह के लक्षण- कांत लौह के पात्र में पानी भर कर उसमें तेल की बूँदे डालने से वह फैलती नहीं तथा उसमें हींग रख देने से उसकी गन्ध नष्ट हो जाती है, और नीम के पत्तों का लेप करने से उसकी कड़वाहट चली जाती है। कांत लौह के पात्र में दूध पकाने से वह शिखराकार ऊँचा हो जाता, किंतु बाहर नहीं निकलता है।

नोट- जिस लौह की भस्म बनानी हो, उसे रेती से रेतवा कर बुरादा बनवा लें या लोहे के कारखानों में से लौह के महीन पत्र छिले हुए आते हैं, वहीं पत्र मंगवा कर शोधन करके भस्म के काम में लें।

सबसे अच्छा लौहे का बुरादा ताले बनाने वालों के यहाँ बहुत तादाद में मिल सकता है। यह बुरादा तीक्ष्ण लौह का रहता है। इसकी भस्म बहुत मुलायम तथा लाल वर्ण की होती है। अतः भस्म के लिये यह बुरादा बहुत श्रेष्ठ है। पुरानी तलवार, घड़ी की कमानी, रेती (कानस), सेफ्टीरेजर की ब्लेड-इनका लोहा भी विशुद्ध फौलाद का होने से भस्म बनाने में बहुत अच्छा है।

शोधन विधि- लौहे का बुरादा अथवा चूरा को आग पर तपा-तपाकर तिल तैल, गौ-मूत्र, कांजी, मट्ठा, कुल्थी काढ़ा इनमें ७-७ बार बुझा लेने से लोहा शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध तीक्ष्ण लोहे का चूर्ण ४० से ६० तोला लें, उसमें १२ वाँ हिस्सा हिंगुल का चूर्ण मिला, ग्वारपाठे (घीकुमारी) के रस में मर्दन कर टिकिया बना-सुखा कर सराब-संपुट में बन्द कर कपड़मिट्टी करके धूप में सुखा, गजपुट में फूँक दें। ऐसे ७ पुट ग्वारपाठे के रस में, ७ पुट गो-मूत्र में, ७ पुट त्रिफला के क्वाथ में मर्दन करके गजपुट दें। सात पुट तक प्रत्येक पुट में १२ वाँ हिस्सा हिंगुल मिलावें और ६ से १२ घण्टे तक खूब घोंटे। इस प्रकार के २१ पुट में लोहे की अच्छी भस्म हो जाती है। हिंगुल के स्थान में शुद्ध मनःशिला का चूर्ण मिला ऊपर लिखी हुई विधि से भस्म बनाने से भी अच्छी भस्म बनती है।

लौहे को आक का दूध, पुनर्नवा, जामुन और अडूसा के रस में मर्दन करके पुट देने से भी अच्छी भस्म बन जाती है।

नोट- लौह, मण्डूर, कसीस, अभ्रक और माक्षिक इसकी भस्मों को ताजा आँवले और भांगरे के स्वरस की ३-३ भावना दे सुखा कर पीछे प्रयोग करने से विशेष गुणकारी होती है।

दूसरी विधि- शुद्ध तीक्ष्ण लोहे के चूर्ण को त्रिफला- क्वाथ के साथ घोंट कर उसमें थोड़ा-सा भात मिलाकर टिकिया बनाकर सुखा लें। फिर सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट की आँच में रख दें। इस प्रकार ५ पुट देने से समस्त कार्यों में व्यवहार करने योग्य लाल रंग की लौह भस्म तैयार होती है।

तीसरी विधि- शुद्ध लौह के कपड़छन चूर्ण को दिन भर गो-मूत्र से मर्दन कर टिकिया बना सुखाकर सराब-सम्पुट में बंद कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार तीन बार गोमूत्र, तीन बार त्रिफला क्वाथ में, तीन बार ग्वारपाठे के रस में और तीन बार पुनर्नवा के स्वरस में मर्दन कर गजपुट में फूँक दें। तेरहवें पुट में लौह चूर्ण का १२ वाँ भाग शुद्ध हिंगुल मिला अर्क-दुग्ध में मर्दन कर आधे गजपुट की अग्नि दें। इस प्रकार हिंगुल मिला सरावों में भरकर सन्धि बंद कर तीव्र अग्नि में पुट दें। इस प्रकार सात पुट देकर दो पुट और देवें। इस विधि से पंद्रह पुटों में लौह की उत्तम भस्म बन जाती हैं।- रसामृत,

चौथी विधि- लौहे की कड़ाही अथवा हाँड़ी में त्रिफला क्वाथ और गो-मूत्र में २-३ महीन रखकर गलाया हुआ लौह चूर्ण लेकर इमामदस्ते में कूटकर बारीक चलनी से छानकर त्रिफला क्वाथ की भावना देकर सराबों में भरकर सन्धि बन्द कर तीव्र अग्नि में पुट दें। इस प्रकार सात पुट देकर अच्छी घुटाई कराकर पानी के साथ कपड़े से छानकर कड़ाही में आँच लगने पर नीचे की आँच कम कर दें। शीतल होने पर निकालकर, घुटाई करवाकर रखें। इस प्रकार काले जामुन के रंग की भस्म बनेगी।- र.त. के आधार पर

पाँचवीं विधि- (साधारण लौह भस्म) त्रिफला के काढ़े को इतना औंटावे कि कुछ गाढ़ा हो जाये। उसमें शुद्ध लोहे के चूर्ण को घोंट टिकिया बना, धूप में सुखाकर सराब-सम्पुट में बंद कर गजपुट में फूँक दें। इसी तरह ४-५ पुट देने से साधारण लौह भस्म तैयार हो जाती है।

लौह भस्म शतपुटी- लौह भस्म को त्रिफला क्वाथ से भावना देते हुए १०० बार गजपुट में फूँकने से लौह भस्म शतपुटी तैयार हो जाती है।

अभ्रक भस्म में लिखित विधि के अनुसार ही इसमें भी पुटों की संख्या बढ़ती जाती है, केवल भावना इसमें त्रिफला क्वाथ की ही लगती है। यह साधारण लौह भस्म की अपेक्षा गुणों में श्रेष्ठ तथा शीघ्र प्रभावकारी होती है।

लौह भस्म सहस्त्रपुटी- लौह भस्म को त्रिफला क्वाथ की भावना देते हुए १००० बार गजपुट में फूँकने से सहस्त्रपुटी लौह भस्म तैयार हो जाती है। इसमें भी अभ्रक भस्म के समान ही पुटों की संख्या बढ़ती जायेगी। भावना केवल त्रिफला क्वाथ की ही लगेगी। यह सभी प्रकार की लौह भस्मों में सर्वश्रेष्ठ और आशु लाभकारी रसायन और योगवाही है।

वक्तव्य- पुटों के विषय में रसायन शास्त्री श्री श्यामसुंदराचार्यजी ने अपनी पुस्तक रसायनसार में पूर्वाचार्यों के मतों का उल्लेख किया है- उसका सारांश यह है कि ११० पुट देने हों तो औषधि स्वरस या क्वाथ की भावना देकर प्रतिबार पुट देना चाहिए, किन्तु जिस भस्म में सौ से अधिक अर्थात् सहस्त्र आदि पुट देने हों, तो औषधि-स्वरस या क्वाथ की प्रति दश भावना देने के पश्चात् एक बार पुट देना चाहिए, यह दश पुटी समझी जायेगी। इसी क्रम से प्रति दश भावना के बाद एक पुट देते हुए १०० बार पुट देने से वे १० X १०० = १००० पुट हो जाते हैं।

फौलाद लौह भस्म (तीक्ष्ण लौह भस्म)

शुद्ध किया हुआ असली फौलाद का बुरादा २० तोला, संखिया सफेद १ तोला, भीमसेनी कपूर १।। माशे-सबको एकत्र कर ग्वारपाठे के रस में १२ घण्टे तक मर्दन कर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा मिट्टी के कुल्हड़ में बन्द कर कपड़मिट्टी करके सुखाने के बाद ५ सेर कण्डों की आँच में फूँक दें। जब आग ठण्डी हो जाय तो कुल्हड़ में से भस्म को निकाल लें, फिर दूसरी बार इस भस्म को हरताल १ तोला और भीमसेनी कपूर १।। माशे मिलाकर घीकुमारी के रस के साथ घोंट कर टिकिया बना, सुखा सराब-सम्पुट में रख गजपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर भस्म निकाल लें। इसी तरह तीसरी बार १ तोला आँवलासार गंधक और १।। माशे भीमसेनी कपूर के साथ और चौथी बार १ तोला पारा और १।। माशे भीमसेनी कपूर मिला घीकुमारी के रस में मर्दन कर टिकिया बना मिट्टी के कुल्हड़ (कुज्जे) में बन्द कर गजपुट में आँच दें। इस तरह ४ पुट दें।

इसके बाद उपरोक्त दवाओं के साथ पुनः उपरोक्त क्रम से प्रत्येक ३-३ पुट देने से १६ पुट हो जाएँगे।

फिर भस्म को लोहे की कड़ाही में डाल, समान भाग बीरबहुटी मिलाकर नीचे मंद आँच दें। जब सब बीरबहूटी जल जाय, तब भस्म को किसी तवे से ढक कर ३ घंटे तक खूब तेज आँच देकर छोड़ दें। स्वांग-शीतल होने पर भस्म को निकाल सुरक्षित रख लें। - चि.चं.

वक्तव्य- उपरोक्त भस्म के सेवन से अतुल बल-वीर्य और कांति की वृद्धि होती है। अतः हमारे यहाँ अतुल शक्तिदाता योग नाम से भी इसका प्रयोग किया जाता है।

सेवन विधि- इस भस्म की मात्रा ४ चावल से १ रत्ती तक है। एक मात्रा भस्म लेकर मक्खन या मलाई के साथ खाकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गोदुग्ध पीना चाहिए।

पथ्य में- अनार, सेब, अंगूर, घी, शक्कर (चीनी) हलुवा, दूध, रबड़ी, मलाई, मक्खन आदि तरावट और पौष्टिक पदार्थ खाना चाहिए।

अपथ्य- लाल मिर्च, तेल, खटाई, स्त्री-प्रसंगादि इस भस्म के सेवनकाल में त्याग दें।

गुण- इस भस्म के सेवन से नया रक्त बनता है। इक्कीस दिन तक खाने से चेहरा लाल-सूर्ख हो जाता है। यह भस्म अत्यन्त कामोद्दीपक है। इसकी ६-७ मात्रा खाते ही कामवासना बलवती होने लगती है और ४० दिन में तो बहुत ही लाभ हो जाता है। मूत्रमेह, पाण्डु और यकृत रोगियों के लिए भी यह अक्सीर चीज है। ६-७ दिन में ही आदमी का वजन ४-५ पौंड बढ़ जाता है।

नोट- उपरोक्त सेवन-विधि, पथ्य, गुणादि का जो वर्णन किया गया है, वह सिर्फ फौलाद भस्म का समझना चाहिए। इसके आगे जो वर्णन किया जायेगा। वह लौह भस्म के विषय में होगा।

रोगानुसार अनुपान

शरीर पुष्टि के लिए- लौह भस्म २ रत्ती, बड़ी पीपल का चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ देना चाहिए।

कफ रोग नाश के लिए- लौह भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, पीपल चूर्ण २ रत्ती मधु के साथ दें।

रक्त पित्त में- लौह भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, मिश्री १ माशा मिला दूर्वा-स्वरस के साथ दें।

बल-वृद्धि के लिए- लौह भस्म २ रत्ती, वंगभस्म १ रत्ती, असगन्ध का चूर्ण ४ रत्ती, मक्खन या मलाई के साथ या गरम दूध के साथ दें।

पाण्डू रोग में- लौह भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती में मिला पुनर्नवा रस के साथ दें।

प्रमेह में- लौह भस्म १ रत्ती, नाग भस्म १ रत्ती, हल्दी चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ दें।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में- लौह भस्म १ रत्ती, शिलाजीत सूर्यतापी ४ रत्ती में मिला धारोष्ण दूध के साथ दें।

वात ज्वर में- लौह भस्म १ रत्ती, अदरक का रस और शहद के साथ मिलाकर दें।

सन्निपात ज्वर में- लौह भस्म २ रत्ती, अदरक का रस और काली मिर्च का चूर्ण ३ रत्ती में मिला कर दें।

पैत्तिक रोगों में- लौह भस्म १ रत्ती, मिश्री ३ माशे घी के साथ दें अथवा दाडिमावलेह से दें।

कफज रोगों में- लौह भस्म २ रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती मधु के साथ दें।

संधि रोगों में-लौह भस्म १ रत्ती, दालचीनी, छोटी इलायची और तेजपात का चूर्ण प्रत्येक २-२ रत्ती मधु के साथ दें।

खाँसी में- लौह भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, वासा-रस में मधु मिला कर दें।

मन्दाग्नि में- लौह भस्म २ रत्ती, दाख और पीपल चूर्ण के साथ दें।

जीर्ण ज्वर में- लौह भस्म १ रत्ती, यशद भस्म आधी रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ दें।

श्वास रोग में- लौह भस्म १ रत्ती को अभ्रक भस्म १ रत्ती में मिलाकर घी के साथ दें।

कामला रोग में- लौह भस्म १ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, प्रवालपिष्टी १ रत्ती, हर्रे और हल्दी का चूर्ण ३-३ रत्ती मिलाकर मधु के साथ दें।

पक्तिशूल में- लौह भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण २ माशे में मिला घी के साथ दें।

गुण और उपयोग में- लौह भस्म-पाण्डु, रक्त-विकार, उन्माद, धातु-दौर्बल्य, संग्रहणी, मंदाग्नि, प्रदर, मेदोवृद्धि, कृमि, कुष्ठ, उदर रोग, आमविकार, क्षय, ज्वर, हृदयरोग, बवासीर, रक्तपित्त, अम्लपित्त, शोथ आदि अनेक रोगों में अत्यन्त गुणदायक है।

यह रसायन और बाजीकरण है। लौह भस्म मनुष्य की कमजोरी दूर कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बना देती है। भारतीय रसायनों में लौह भस्म का प्रयोग सबसे प्रधान है। यह रक्त को बढ़ाने और शुद्ध करने के लिए सर्व प्रसिद्ध औषध है।

हमारे प्राचीन वैद्यक ग्रंथों में और आधुनिक (आजकल के) अंग्रेजी वैद्यक में प्राय: सब रोगों की औषध योजना में लौह का उपयोग किया जाता है। अनुपान की भिन्नता से यह सब रोगों का नाश करती है। फिर भी कफयुक्त खाँसी, दमा, जीर्ण-ज्वर और पाचन-क्रिया बिगड़ने से उत्पन्न हुई मंदाग्नि, अरूचि, मलबद्धता, कृमि आदि रोगों में यह विशेष फायदा करती है। पौष्टिक, शक्तिवर्धक, कान्तिदायक और कामोत्तेजक आदि गुण भी इसमें विशेष रूप से है।

लौह भस्म किसी भी प्रकार का हो, सेवन करने से पूर्व यदि दस्त साफ आता हो, तो अच्छा है, नहीं तो इस भस्म के सेवन-काल में रात को सोते समय त्रिफला चूर्ण में मिश्री मिला कर दूध के साथ सेवन करें। इससे दस्त साफ होता रहता है और इसकी गर्मी भी नहीं बढ़ने पाती, क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि लौह भस्म के सेवन-काल में दस्त कब्ज हो जाता है, जिससे गर्मी भी बढ़ जाती है। इसी को दूर करने के लिए त्रिफला और दूध का सेवन किया जाता है।

लौह भस्म रक्ताणुवर्द्धक और पाण्डुरोगनाशक है। पाण्डु चाहे किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हो, रक्ताणुओं की कमी होकर श्वेत कणों की वृद्धि हो जाना ही 'पाण्डू रोग' कहलाता है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि कुछ रोज तक शरीर के ऊपरी भाग में फीकापन दिखाई पड़ता है और बाद में पुन: लाली छा जाती है, किंतु यह वास्तविक पाण्डु रोग नहीं है। वास्तविक पाण्डु रोग तो वही है, जिसमें श्वेत-कणों के प्रभाव से शरीर पर बराबर फीकापन बना रहे चमडी रूक्ष (सूखी) हो जाय, रंजक पित्त (जिसके द्वारा रक्त में लाली बनी रहती है) का नाश हो जाय, इत्यादि लक्षण होने पर पाण्डु रोग समझना चाहिए और ऐसे पाण्डु रोग में लौह भस्म से बहुत फायदा होता है।

पाण्डु रोग में भी पित्तजन्य अर्थात् पित्त की दृष्टि से होनेवाला पाण्डु रोग और हलीमक में इसका विशेष उपयोग होता है। कृमिजन्य या धातु-क्षीणताजन्य पाण्डु रोग में कृमिघ्न और पौष्टिक औषधियों के मिश्रण के साथ लौह भस्म देने से बहुत फायदा होता है। आँतों में पैदा होनेवाले कीटाणुओं से भी पाण्डु रोग की उत्पत्ति होती है। उसमें वायविडंग के चूर्ण और अजवायन के फूल के साथ लौह भस्म का प्रयोग करना बहुत श्रेष्ठ है। कारण लौह भस्म का रक्त पर बहुत शीघ्र प्रभाव होता है। यह श्वेताणुओं को कम कर रक्ताणुओं (रक्त-कणों) को बढ़ाता है। अतएव पाण्डु रोग में इसके प्रयोग से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

धातुविकार- वातवाहिनी या मांसपेशी अथवा कण्डराओं (सिराओं) के संकोच के कारण

शरीर के उन-उन प्रदेशों में विशेष दर्द होने लगे, तो कान्त लौह भस्म, जो सिंगरफ के द्वारा भस्म किया हुआ हो, उसका प्रयोग करना अच्छा है।

ज्यादा रक्तस्राव होने से रक्तवाहिनी सिरा, मस्तिष्क आदि में ज्यादा शून्यता आ गयी हो, साथ ही थोड़ी-थोड़ी पीड़ा भी हो, घबराहट कमजोरी से चक्कर आना आदि लक्षण उत्पन्न होने पर लौह भस्म के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यदि रक्त-पित्त में रक्तस्राव के बाद उपरोक्त उपद्रव हुए हों, तो लौह भस्म रक्तचन्दनादि काढ़ा या लोहासव के साथ देना अच्छा होगा, क्योंकि यह भस्म पित्त-विकार दूर कर रक्त में गाढ़ापन एवं रक्तवाहिनी शिरा में चेतना (शक्ति) पैदा कर स्राव को रोक देती है, फिर इससे होने वाले उपद्रव अपने-आप शान्त हो जाते है।

किसी कारण से पित्त विकृत होकर आँखें लाल हो जायें, हाथ-पैरों में पसीना आने लगे, सिर में भी ज्यादा पसीना आवे, मुँह-लाल और पसीने से भींगा हुआ रहे, मन में अशांति (व्याकुलता), रक्तवाहिनी शिरा में रक्त का संचार जल्दी-जल्दी हो, जिससे सम्पूर्ण शरीर गर्म हो जाय और हृदय तथा नाड़ी की गति में वृद्धि हो, त्वचा का स्पर्श करने से ज्यादा गरमी मालूम हो, ऐसे समय में लौह भस्म देने से बढ़ा हुआ पित्त शांत होकर इससे होने वाले उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। क्योंकि लौह भस्म पित्त-विकार शामक है और इसका प्रभाव रक्त और पित्त पर ज्यादा होता है, इसलिए यह बढ़े हुए पित्त को तथा इसके द्वारा विकृत हुए रक्त को शीघ्र शान्त कर देती है।

पाचक पित्त की विकृति में लौह भस्म देने से बहुत उपकार होता है, क्योंकि लौह भस्म पाचक पित्त के विकार को दूर कर उसे प्रदीप्त कर देती है, जिससे अपचन आदि दोष मिट जाते हैं और अन्न ठीक तरह से पचने लगता है। यह कार्य लौह भस्म के द्वारा अच्छी तरह होता है।

अतिसार अथवा संग्रहणी में पक्वाशय और ग्रहणी एकदम कमजोर हो जाने से बहुत पतले दस्त बार-बार आने लगते हैं, ऐसे समय में लौह भस्म शक्ति बढ़ाने के लिए दी जाती है। यदि संग्रहणी में बल-मांसादि क्षीण होकर कमजोरी आ गयी हो, तो लौह भस्म देने से अच्छा फायदा होता है, क्योंकि लौह शक्तिवर्धक है।

खूनी बवासीर की प्रारंभिक अवस्था में लौह भस्म का उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे रक्त रुकने के बजाय और गिरने लगता है, परन्तु पित्त-प्रधान या वात प्रधान खूनी बवासीर के प्रारम्भ में जब रक्त गिरने के कारण ज्यादा कमजोरी मालूम होती हो, चक्कर आता हो, शरीर में गर्मी ज्यादा बनी रहती हो, तो ऐसी हालत में लौह भस्म देना अच्छा है, क्योंकि अधिक रक्तस्राव होने से रक्तवाहिनी सिरायें एवं शरीर पोषक धातुएँ कमजोर हो जाती हैं, जिससे इतने उपद्रव उत्पन्न होते हैं। लौह भस्म के प्रयोग से रक्तवाहिनी सिरा में धारण-शक्ति पैदा हो जाती है और रक्त में भी अच्छा अन्तर पड़ जाता है, साथ ही शरीर को पोषण करनेवाली धातुएँ पुष्ट हो जाती हैं, जिससे शारीरिक दुर्बलता एवं पाण्डुता आदि का नाश हो जाता है। हृदय में पीड़ा होने के बाद श्वास रोग हो गया हो तो लौह भस्म बहुत शीघ्र काम करती है।

मलेरिया ज्वर विशेष दिन तक रह जाय या जाड़ा देकर बुखार दूसरे-तीसरे रोज आ जात है, तो इसमें कच्चे पानी अथवा ज्वरावस्था में ही कुछ-कुछ खाते रहने आदि कारणों से प्लीहा बढ़ जाती है अथवा ऊपर कहे हुए ज्वर में मात्रा से ज्यादा या अधिक दिन तक कुनैन खाते रहने से व्याकुलता, कुछ-कुछ सूजन (शोथ) मुँह पर हो जाना, मुँह की कांति नष्ट हो जाना, सुनाई कम देना इत्यादि लक्षण होने पर लौह भस्म के सेवन से ये सब विकार दूर हो जाते हैं। प्लीहा-वृद्धि के कारण शरीर पीला-पीला सा दिखाई दे तो उसमें भी लौह भस्म देना श्रेष्ठ है। कुछ रोगी ऐसे भी होते हैं, जिनको लौह भस्म अनुकूल नहीं पड़ती। ऐसे रोगियों को सोनामक्खी की भस्म या

मण्डूर भस्म देना अच्छा है।

सर्वाङ्ग शोथ में लौह भस्म बहुत शीघ्र लाभ करता है। इसमें लौह भस्म देने से शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि होकर देह में उत्पन्न जलीय भाग शुष्क होने लगता है और जैसे-जैसे रक्त कणों की वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे शोथ भी कम होने लगता है और पाण्डु (पीलापन) भी मिट जाता है, यदि सूजन के साथ-साथ प्लीहा भी बढ़ी हुई हो तो, लौह भस्म में ताम्र भस्म मिलाकर देना अच्छा है।

कफ या पित्तजन्य प्रमेह में लौह भस्म का प्रयोग करना अच्छा है। इस रोग में लौह भस्म के उपयोग से प्रमेह रोग से उत्पन्न कमजोरी दूर हो जाती है। यदि पेशाब बार-बार हो और थोड़ी-थोड़ी मात्रा में हो, तो लौह भस्म में यशद भस्म मिलाकर देना अच्छा है।

जीर्ण ज्वर, पाण्डु, क्षय आदि रोगों से अधिक दिन तक रोगी रहने के बाद जब रोग से छुटकारा मिल जाता है, तब रोगी में शक्ति बहुत कम रह जाती है और रक्त कण भी निर्बल हो जाते हैं, जिससे शरीर की सिराएँ एवं हाथ-पैर आदि चुस्त (सशक्त) न होकर ढीले-ढीले से दिखाई पड़ने लगते हैं। इन कमजोरियों को दूर करने के लिये तथा शरीर में दोष और धातुओं को पुष्ट करने तथा रक्त की निर्बलता को दूर कर शरीर के अवयवों (हाथ-पैर आदि) को पुष्ट कर ताकत पहुँचाने के लिए लौह भस्म अमृत के समान गुण करती है।

पित्तजन्य कुष्ठ रोग में- ज्यादातर त्वचा और रक्त दोनों दुष्ट हुए रहते हैं। इस रोग में त्वचा का वर्ण लाल हो जाता है और अंगुलियों एवं फोडों में से पानी-सा स्राव होना, थोडा-सा भी त्वचा छिल जाने या कट जाने पर घाव होकर पक जाना और उसमें से दुर्गन्धियुक्त पीब निकलना, अंगुलियों की त्वचा रूक्ष होकर फट जाना, एक घाव होने पर उसके चारों ओर की छोटी-छोटी फुन्सियों को खुजलाने पर पतला पानी-सा स्राव होना आदि लक्षण होते हैं, क्योंकि लौह भस्म का सबसे मुख्य कार्य दूषित रक्त का संशोधन कर रक्ताणुओं को बढ़ाना है। यह पित्तघ्न होने के कारण दूषित पित्त को दूर करती है और इस रोग में ये ही दोनों विशेष दूषित रहते हैं। अतः लौह का असर रक्त और पित्त पर शीघ्र होता है, जिससे उक्त विकार नष्ट हो जाते हैं।

नोट- कुष्ठ रोग की चिकित्सा में पहले जिस दोष की प्रधानता हो, उसकी चिकित्सा करते हुए, फिर उसके साथ या उसके पीछे जो दोष कुपित हुए हों, उनकी चिकित्सा करें। इस नियमानुसार प्रथम पित्त-दोष और बाद में रक्तदुष्टि की चिकित्सा करने से कुष्ठ रोग अच्छा हो जाता है।

लौह भस्म रसायन भी है, अतः यह रस-रक्तादि धातुओं को उत्पन्न कर शरीर के सब अवयवों में यथा-समय पहुँचाती रहती है, जिससे शरीर के सब अवयव पुष्ट होते रहते हैं, क्योंकि रक्तधातु के कणों से ही शरीर के अवयवों का पोषण होता रहता है और ये रक्तकण लौह भस्म के सेवन से ही पुष्ट होते हैं। इन्हीं परिपुष्ट रक्तकणों की वजह से शरीर की सब इन्द्रियाँ (हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक आदि) संगठित तथा बलवान और अपने कार्य करने में समर्थ रहती है। ये सब कार्य लौह भस्म के द्वारा अच्छी तरह होते रहते हैं। शिलाजीत, अभ्रक भस्म, त्रिफला चूर्ण, आमला चूर्ण, भृंगराज चूर्ण इनमें से किसी भी द्रव्य के साथ लौह भस्म सेवन करने से (रसायन विधि से) रसायन के उत्तम गुण प्राप्त होते हैं।

छोटे-छोटे बच्चों को लौह भस्म के स्थान पर मण्डूर भस्म देना अधिक हितकर है, क्योंकि मण्डूर भस्म लौह भस्म की अपेक्षा लघुपाकी और सौम्य है। बड़ी आयुवालों के लिये कान्तलौह भस्म देना अच्छा है। स्वस्थ (नीरोग) मनुष्य को अगर कमजोरी मालूम हो, तो कान्तलौह भस्म देना चाहिए। जो मानसिक या शारीरिक किसी प्रकार की व्याधि से पीड़ित नहीं हैं, उन्हें लौह

भस्म के सेवन से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

यदि वातवाहिनी सिरा या स्नायुओं के संकोच से शरीर में दर्द होता हो, तो कान्त लौह भस्म देने से शिरा और स्नायुओं का संकोच दूर होकर रक्त संचालन (खून का आवागमन) अच्छी तरह होने लगता है, जिससे शरीर के दर्द शीघ्र मिट जाते हैं। यदि दर्द आमवातजन्य हो, तो महायोगराज गुगल, महावात-विध्वंसन रस आदि का प्रयोग करना चाहिए।

यदि शरीर में शुक्र की कमी अथवा अण्डकोष की निर्बलता के कारण नपुंसकता उत्पन्न हो गयी हो, तो लौह भस्म के सेवन से दूर हो जाती है, क्योंकि लौह भस्म अण्डकोष को ताकत देती है और शुक्र की कमी की पूर्ति कर शुक्र को भी बढ़ाती है, जिससे शरीर की कान्ति बढ़ती है और शरीर के सब अवयव बलवान हो जाते हैं। शरीर बलवान होने से रोगोत्पादक (रोग उत्पन्न करने वाले)कीटाणुओं के विष का असर शरीर पर नहीं होता। इस दृष्टि से लौह भस्म विषघ्न है।

कामला रोग में पित्त, पित्ताशय से निकलकर कोष्ठ में नहीं जाता, बल्कि रक्त में जाकर मिलता है। ऐसे समय में पित्ताशय अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। त्वचा, नख, मूत्र आदि पीले हो जाते हैं। इस रोग में मण्डूर भस्म के साथ कान्त-लौह भस्म देने से विशेष लाभ होता है।

पाण्डु रोग में यकृत् (लीवर) की क्रिया बिगड़ने पर रंजक पित्त अच्छी तरह अपना कार्य नहीं कर पाता, वहीं पित्त रूधिर में मिलकर उसके स्वाभाविक रंग को बदल देता है। इसी को 'पीलिया' कहते हैं। ऐसी अवस्था में लौह भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, कुटकी चूर्ण १ माशा अथवा कुटकी की क्वाथ बना मधु के साथ देने से आशातीत लाभ होता है।

कृमिजन्य पाण्डु रोग में-लौह भस्म १ रत्ती, वायविडंग चूर्ण १ माशा, कबीला ३ रत्ती गुड़ में मिलाकर देने से फायदा होता है।

पित्त विकार में- नेत्र लाल हो जाना, अधिक स्वेद आना, बेचैनी होना आदि विकारों में लौह भस्म २ रत्ती, दालचीनी, इलायची, तेजपात- इन सबका चूर्ण १-१ माशा कमिला घी और मिश्री के साथ देना चाहिए।

उन्माद रोग में- लौह भस्म १ रत्ती, सर्पगन्धा चूर्ण १ माशा, ब्राह्मी रस और मधु में मिलाकर सेवन करावें। ऊपर से सारस्वतारिष्ट १। तोला बराबर जल मिला कर भोजनोपरान्त दें।

अश्मरी रोग में- लौह भस्म १ रत्ती, हजरूल्‌यहूद भस्म १ रत्ती के साथ मिला मूली के रस से दें।

धातुदौर्बल्य में- लौह भस्म १ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती, अश्वगंधा चूर्ण १ माशा में मिलाकर गो-दुग्ध के साथ दें।

संग्रहणी में-अन्न का परिपाक ठीक-ठीक न होने से जठराग्नि निर्बल हो जाने के कारण अपचित दस्त होते हों, तो लौह भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, भुना हुआ जीरा का चूर्ण १ माशा, मधु के साथ देने से फायदा होता है।

मन्दाग्नि में- लौह भस्म २ रत्ती, त्रिकटु (सौंठ, पीपल, मिर्च) का चूर्ण १ माशा में मिलाकर मधु के साथ देने से मन्दाग्नि दूर हो जाती है। सब प्रकार के प्रदर रोग में लौह भस्म १ रत्ती, त्रिवंग भस्म १ रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती, मिश्री १ माशे में मिलाकर मधु के साथ दें।

ऊपर से अशोकारिष्ट या पत्रांगासव २।। तोला बराबर जल मिलाकर पिलावें।

श्वेत प्रदर में- लौह भस्म १ रत्ती, गोदन्ती भस्म २ रत्ती, रालचूर्ण ४ रत्ती के साथ पत्रांगासव या लोधासव से दें।

मेदो-वृद्धि में- लौह भस्म २ रत्ती, त्रिफला चूर्ण ३ माशे में मिला मधु के साथ देने से मेद (चर्बी) की वृद्धि रुक जाती है।

रक्त चाप की कमी में- लौह भस्म शतपुटी १ रत्ती को सिद्ध मकरध्वज आधी रत्ती के साथ घोंटकर मधु में मिलाकर देने से उत्तम लाभ होता है।

रक्ताल्पताजन्य रजोरोध में- लौह भस्म १ रत्ती, कासीस भस्म १ रत्ती, शुद्ध टंकण २ रत्ती, एलुआ चूर्ण २ रत्ती के साथ पुराने गुड़ में मिलाकर दें।

मण्डल कुष्ठ, पामा (खुजली) आदि रक्त-विकार में लौह भस्म १ रत्ती, नीम के पंचांग का चूर्ण १ माशा, आँवला चूर्ण १ माशा में मिला कर अर्क उशबा के साथ दें। ऊपर से खदिरारिष्ट या सारिवाद्यासव २.५ तोला बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दें। पेट के दर्द में लौह भस्म ४ रत्ती, गो-मूत्र द्वारा पकाई गयी छोटी हरड़ का चूर्ण १ माशा और गुड़ मिलाकर गर्म पानी के साथ दें।

रोगोन्मुक्त होने के बाद शरीर अत्यंत निर्बल हो जाता है। साथ ही रस-रक्तादि धातु भी निर्बल रहते हैं। इस शक्तिहीनता को दूर करने के लिये लौह भस्म २ रत्ती, च्यवनप्राशावलेह १ तोला में मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

पुराने ज्वर में- लौह भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ देने से लाभ होता है। हृदय की कमजोरी में लौह भस्म १ रत्ती, अकीक भस्म १ रत्ती, मधु में मिलाकर दें। बाद में अर्जुनारिष्ट २।। तोला बराबर पानी मिलाकर भोजन के एक घण्टा बाद दें।

रक्तार्श (खूनी बवासीर) में- अधिक रक्त गिर जाने से शोथ और पाण्डु के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। ऐसी दशा में लौह भस्म २ रत्ती, नागकेशर चूर्ण १ माशा, मिश्री मिला मक्खन के साथ देने से तत्काल लाभ होते देखा गया है।

रक्तपित्त में- लौह भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण में मिला वासा-रस और मधु के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है। आँवला-मुरब्बा की चाशनी अथवा दाड़िमावलेह से देने पर भी उत्तम लाभ होता है।

शोथ रोग में- लौह भस्म २ रत्ती, पुनर्नवा चूर्ण १ माशे में मिला गो-मूत्र से दें। यकृत, प्लीहा-वृद्धि पर लौह भस्म १ रत्ती, ताम्र भस्म १ रत्ती मधु के साथ दें। भोजनोत्तर लौहासव २.५ तोला बराबर जल मिलाकर देने से अच्छा फायदा होता है।

नेत्र रोगों में- लौह भस्म १ रत्ती, त्रिफला चूर्ण ६ रत्ती और मुलेठी चूर्ण २ रत्ती के साथ महात्रिफला घृत में मिला कर दें।

नोट- लौह भस्म साधारण, तीक्ष्ण लौह भस्म, कान्त लौह भस्म, लौह भस्म शतपुटी, लौह भस्म सहस्रपुटी से उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ होती हैं। नयी बनी हुई भस्म के कुछ समय रखी भस्म में सौम्यता आ जाती है। तीक्ष्ण रोगों में नयी बनी हुई भस्म अच्छी है।

शंख

परिचय- यह एक समुद्री कीड़ा है, जो समुद्र में तथा उसके आसपास की बड़ी-बड़ी नदियों

में पैदा होता है। शंख के दो भेद होते हैं। एक दक्षिणावर्त और दूसरा वामावर्त। दक्षिणावर्त शंख संयोग से ही कभी किसी को मिलता है। लोकोक्ति है कि जिसके घर में दक्षिणावर्त शंख रहता है उसके घर से लक्ष्मी कभी नहीं जाती है। औषधि कार्य में वामावर्त शंख ही लिया जाता है, क्योंकि यह अधिक तादाद में मिलता है।

भस्म के लिये- निर्मल, चंद्रमा के समान उज्ज्वल और चमकदार तथा छेररहित शंख के टुकड़े लेना अच्छा है। शंखनाभि की भस्म विशेष अच्छी मानी जाती है।

शोधन विधि- अच्छे छिद्ररहित बड़े और वजनदार शंख के टुकड़ें लें, उनको मिट्टी के घड़े में डालकर, उसमें जल और नींबू का रस डाल कर १ घण्टा मन्द आँच पर पकावें, बाद में निकाल कर गर्म जल से धो कर सुखा कर रख लेने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध शंख के छोटे-छोटे टुकड़ों को घीकुमारी के गूदा में मिलाकर एक मिट्टी की हाँडी में रख संधिबंद करके गजपुट में रख आँच दें। स्वांग-शीतल होने पर निकाल कर रख लें, और यदि भस्म खूब सफेद न हो (कच्चा ही रह गया हो) तो नींबू के रस में खरल कर छोटी-छोटी टिकिया बना कर धूप में सुखा गजपुट में फूँक दें। १ से २ पुट में खूब मुलायम तथा सफेद और तीक्ष्णता रहित शंख भस्म तैयार हो जाती है।

उक्त विधि से शोधित शंख के टुकड़ों को १० सेर कण्डों की या लकडी के कोयलों की आँच में फूँक दे। शंख अच्छी तरह फूँक जाने पर अंगुली से दबाने से चूर्ण जैसा हो जाता है। पीछे उसको पत्थर के खरल में तीन बार नींबू के रस की भावना देकर छाया में सुखा करके पीसकर कपड़छन करके रख लें। एक आँच में चूर्ण न हो तो पुनः आँच देकर चूर्ण बनने योग्य बना लें। -आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान- ४ से ८ रत्ती, नींबू के रस, मिश्री अथवा गर्म जल के साथ अजीर्ण में और बेल के मुरब्बे के साथ संग्रहणी में तथा काकड़ासिंगी और पीपल चूर्ण २-२ रत्ती के साथ हिक्का में दें।

गुण और उपयोग- इसकी भस्म संग्रहणी, नेत्र का फूला, पेट की पीड़ा (दर्द) और तारुण्य पीटिका (युवावस्था में मुँह पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकलती है, उनको तारुण्य पीडिका या युवान पीडिका कहते हैं) को दूर करती है। यकृत, प्लीहा-वृद्धि, गुल्म, अजीर्ण, मन्दाग्नि, अफरा आदि को भी नष्ट करती है।

इस भस्म में कैल्शियम का अंश बहुत रहता है, अतः कैल्शियम की कमी से शरीर के अन्दर जितने विकार पैदा होते हैं। उनमें यह बहुत लाभ पहुँचाती है। इसमें कुछ फास्फोरस का भी अंश रहता है। मंदाग्नि या यकृत के विकार से होने वाले उपद्रवों में भी यह भस्म बहुत लाभ पहुँचाती है। बच्चों के ब्रांकोन्यूमोनिया (पसली चलना) और डब्बे की बीमारी में श्रृंग भस्म के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

शंख भस्म में क्षार के गुण-धर्म बहुत अंश में रहने से इसे क्षार भी कहते हैं। शंख भस्म और कौडी भस्म दोनों के गुणों में बहुत साम्य है, क्योंकि दोनों सेन्द्रिय चूने के कल्प हैं। फिर भी कौडी भस्म से इसमे विशेष गुण हैं, उन्हीं का विवेचन यहाँ किया जायेगा।

शंख भस्म ग्राही- स्तम्भनकारक है। अतएव, अतिसार में, विशेषतः पक्वातिसार में सुहागे का फूल २ रत्ती, अफीम चौथाई रत्ती, जायफल का चूर्ण १ रत्ती में शंख भस्म ४ रत्ती मिलाकर मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसे शंखोदर रस भी कहते हैं।

ग्रहणी रोग में, जिसमें बार-बार और पतले दस्त हों, कोष्ठ में दर्द हो, और दर्द के साथ थोड़ा-थोड़ा पतला दस्त भी हो, ऐसी दशा में शंख भस्म देने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि शंख भस्म में ग्राहक गुण होने से यह भस्म दस्त को रोकती है तथा क्षारीय होने से आमपाचन कर शूल को भी नष्ट करती है। इसलिए पर्पटी आदि योगों को भी शंख भस्म के साथ मिलाकर दिया जाता है। इससे आम का पाचन एवं तीव्रशूल (पीड़ा) का शमन होता है। स्तम्भक होने के कारण दस्त के वेग भी कम जो जाते हैं।

पित्त के दूषित होने से जो कोष्ठ में शूल होता है या पित्तजन्य अतिसार और कफ पित्त कोष्ठ-शूल में जब पेट में वायु भरकर पेट फूल जाय और दर्द भी हो, कोष्ठ की क्रिया बंद हो जाय, अन्न का परिपाक ठीक से न हो, जिससे खट्टी डकारें जलन के साथ आवें-ऐसी परिस्थिति में शंख भस्म देने से बहुत लाभ होता है। शंख भस्म से पेट में भरे वायु का शमन और जठराग्नि प्रदीप्त होकर अन्न अच्छी तरह पचने लगता है, जिससे पेट फूलना या खट्टी डकारें आना बन्द हो जाता है।

अन्न का परिपाक ठीक तरह से न होने के कारण आमाशय या पक्वाशय में दर्द होने लगे, तो शंख भस्म नींबू के रस के साथ या घृत में मिलाकर देने से लाभ होता है। पित्त प्रकृतिवाले को शंख भस्म उतना लाभ नहीं करती, जितना वात और कफ प्रकृति वाले को लाभ करती है।

यकृत और प्लीहा के बढ़ जाने से ये दोनों अपनी क्रिया करने में असमर्थ हो जाते हैं, जिससे अन्नादिक पचने और रस-रक्तादि धातु ठीक तरह से बनने में बाधा पड़ने लगती है। परिणाम यह होता है कि शरीर दुर्बल और पीला-पीला सा दिखाई पड़ने लगता है मन्दाग्नि शांत हो जाती है भूख कम लगती है इत्यादि उपद्रव उपस्थित हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में शंख भस्म के उपयोग से यकृत और प्लीहा की वृद्धि नष्ट हो जाती है तथा ये अपने-अपने काम को अच्छी तरह करने लग जाते हैं। यदि इसके साथ में मलावरोध भी हो, तो किसी रेचक औषधि के साथ शंख भस्म देना चाहिए।

पेट में वायु उत्पन्न होकर शूल होना, अफरा होना, अन्न न पचने के कारण जलन सहित खट्टी डकारें आना आदि उपद्रव होने पर शंख भस्म २ रत्ती, हिंग्वष्टक चूर्ण ३ माशे में मिलाकर गर्म जल से दें।

यकृत और प्लीहा के बढ़ जाने पर प्रायः क्षारीय (तीक्ष्ण) औषधियाँ देने की आवश्यकता होती है, परन्तु जब मलावरोध न हो तो अन्य क्षारीय औषधियों की अपेक्षा शंख भस्म को मण्डूर भस्म में मिलाकर कुमारी-आसव के साथ देने से बहुत लाभ होता है। मलावरोध हो, तो साथ में रेचक औषधियों का भी प्रयोग करना चाहिए। गुल्म रोग में वज्रक्षार चूर्ण के साथ शंख भस्म देना अच्छा है।

अजीर्ण, मन्दाग्नि और अफरा में १ से ४ रत्ती तक शंख भस्म नींबू-रस अथवा मिश्री के साथ या भूनी हींग १ रत्ती और घृत ६ माशे के साथ दिन में २-३ बार देने से फायदा होता है अथवा इसके योग से बनी शंख बटी और महाशंख बटी का भी प्रयोग गर्म जल से करना अच्छा है।

सब प्रकार के दर्दों में-काला नमक, भूनी हींग और त्रिकटु चूर्ण के साथ शंख भस्म देने से चमत्कारिक गुण होता है। पक्वातिसार और संग्रहणी में शंख भस्म बेल के मुरब्बे के साथ देने से फायदा होता है।

वक्तव्य- यकृत, प्लीहा, गुल्म, अजीर्ण, मन्दाग्नि, अतिसार, पेचिश, संग्रहणी, अम्लपित्त, उदरशूल आदि उदर सम्बन्धी सभी विकारों में शंख भस्म अमृततुल्य गुणकारी औषध सिद्ध हुई है।

स्फटिका (फिटकरी)

परिचय- फिटकरी एक प्रकार की खनिज मिट्टी से, जिसको देशी भाषा में रोल और अंग्रेजी में 'एलम शोल' कहते है, तैयार होने वाली वस्तु है। यह लाल और सफेद दो तरह की होती है। भारतवर्ष में फिटकरी बनानेवाले कई कारखाने हैं। सब से बड़ा कारखाना सिन्धु नदी के पश्चिमी किनारे पर 'काला बाग' नामक स्थान में है। जहाँ आज भी बहुत बड़े परिमाण में फिटकरी तैयार की जाती है। राजपुताने के अन्दर भी फिटकरी की मिट्टी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त मुम्बई, मद्रास और पंजाब में भी फिटकरी तैयार की जाती है। फिटकरी का सत्व पातन करने से एल्युमिनियम धातु प्राप्त होती है। आजकल अल्युमिनियम के बर्तन बहुत बनते हैं।

भस्म विधि- फिटकरी के टुकड़े को साफ करके छोटे-छोटे टुकड़े बना मिट्टी की हाँडी (जिसका पेट बड़ा हो) में रख कर ऊपर से किसी ढक्कन से ढक दें। फिर इसे गजपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर भस्म को निकाल लें। यह भस्म स्वच्छ, मुलायम और श्वेत वर्ण की होती है। बहुत से वैद्य फिटकरी को तवा पर रख कर, फुला कर इसकी खील बना महीन पीस करके भी काम में लाते हैं।

लाल फिटकरी भस्म- लाल फिटकरी ५ तोला लेकर घृतकुमारी के रस में खरल करें। जब रस सूख जाय तो फिर उसे एक भांगरे के रस में खरल करके उसकी टिकिया बना, धूप में सुखाकर, सराब-सम्पुट में बन्द कर ५ सेर कण्डों की आँच में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर भस्म को निकाल लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती, मधु, घी, शर्बत बनप्सा या रोगानुसार अनुपान से दें।

गुण व उपयोग- इसकी भस्म सूजाक, रक्तप्रदर, खाँसी, पार्श्वशूल, पुरानी खाँसी, राजयक्ष्मा, निमोनियाँ, रक्तवमन, विष-विकार, मूत्रकृच्छ्र, त्रिदोष, प्रमेह, कोढ, व्रण आदि को दूर करती है।

इसकी भस्म रक्त शोधक है। इसके सेवन से रक्तवाहिनी संकुचित हो जाती है, अतः यह बहते हुए रक्त को रोकती है। इसके सेवन से बढ़े हुए श्वास-कास के वेग भी कम हो जाते हैं। छाती में कफ जम कर बैठ जाने से खाँसी होने पर छाती में दर्द होने लगता है। इस खाँसी के आघात से फुफ्फुस खराब हो जाते है तथा उनमें भी दर्द होने लगता है। इस कफ को निकालने के लिए फिटकरी भस्म अमृत के समान गुण करती है। कभी-कभी फुफ्फुसों में ज्यादा कफ संचय हो जाने से फुफ्फुस कठोर हो जाते तथा अपने कार्य करने में भी असमर्थ हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में भी वह बहुत उपकार करती है।

हुपिंग कास (कुक्कुर खाँसी)- यह बीमारी बच्चों को अधिकतर होती है, इसमें इतने जोर की खाँसी उठती है कि बच्चे को वमन तक हो जाता है- ऐसी हालत में फिटकरी भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी आधी रत्ती, काकड़ासिंगी चूर्ण २ रत्ती में मिला मधु के साथ देने से बहत फायदा होता है।

यह भस्म विष-नाशक भी है। अतएव, सभी प्रकार के विषों पर इसका प्रभाव अच्छा होता है। नाग (शीशा) धातु की कच्ची भस्म के सेवन करने से पेट में दर्द होता हो, तो फिटकरी भस्म १ रत्ती, अफीम 1/4 रत्ती, कपूर 1/4 रत्ती मिलाकर पानी के साथ सेवन करने तथा रात में एक मात्रा मृदु विरेचन चूर्ण दूध से लेने पर प्रातः दस्त भी साफ हो जाता है और पेट का दर्द शान्त होकर विष-दोष भी दूर हो जाता है।

इसी तरह तत्काल काटे हुए सर्प के रोगी को फिटकरी भस्म १ माशे को ५ तोला घी में मिलाकर पिलाने से कुछ देर के लिए विष का वेग आगे न बढ़ कर रुक जाता है।

बिच्छु के विष में भी १ तोला फिटकरी को ५ तोला गर्म पानी में मिलाकर रूई के फाहा से काटे हुए स्थान पर इस पानी को बार-बार रखने से बिच्छू का विष दूर हो जाता है।

प्लेग रोग में- लाल फिटकरी भस्म के प्रयोग से बहुत फायदा होता है। प्लेग में जब बुखार बहुत तेज हो, गर्मी के मारे रोगी व्याकुल हो जाय, साथ-साथ प्रलाप भी हो तब फिटकरी भस्म ३ रत्ती, मिश्री १ माशे में मिलाकर देने से बहुत फायदा होता है, परन्तु दवा देने के बाद १ घण्टा तक पानी नहीं देना चाहिए। बाद में १ तोला धनियाँ आधा सेर पानी में पकावे आधा पाव पानी शेष रहने पर छानकर पीने को दें। साथ ही साथ गिल्टी पर असगन्ध को पानी में घिसकर दिन भर में २-३ बार लेप करें और दूध-भात पथ्य में दें। इस प्रयोग से अनेक रोगी बच गये हैं।

मलेरिया (पारीवाले ज्वर) में- जब बार-बार ज्वर आता हो, ज्वर का वेग किसी दवा से कम न होता हो, तो लाल फिटकरी भस्म ४ रत्ती में शुद्ध संखिया सफेद १/१० रत्ती मिलाकर मधु के साथ बुखार आने से १ घण्टा पहले देने से २-३ पारी के बाद शीत ज्वर अवश्य रुक जाता है।

नेत्र रोग के लिये फिटकरी एक अक्सीर चीज है। इसके २ रत्ती चूर्ण को १।। तोला गुलाब जल में मिला, इस लोशन को आँख में डालते रहने से आँखों की सुर्खी और आँखों में कीचड़ का आना बन्द हो जाता है। आँख के अंदर एक प्रकार का बाल उगता है, जिसको 'परबाल' कहते हैं। इस रोग में कच्ची फिटकरी की डली ४ तोला को मिट्टी के बर्तन में आँच पर चढ़ावें। जब फिटकरी पिघल जाय, तब उसमें सोना गेरू का चूर्ण १ तोला डालकर लकड़ी से चला कर एक जीव कर लें, फिर इसको नीचे उतार कर खरल में घोंटकर महीन चूर्ण बना कपड़छान कर रख लें।

इसे अंजन की तरह आँख में लगाने से परबाल रोग बहुत शीघ्र दूर हो जाता है। आँखें स्वच्छ हो जाती है तथा आँखों में पुनः किसी तरह की बीमारी होने की सम्भावना नहीं रहती है। नेत्र-रोग के लिये यह अंजन बहुत ही मुफीद है।

व्रणरोपण के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। छुरी, तलवार या कुल्हाड़ी आदि के आघात से अगर कोई घाव हो गया हो और उसमें से खून निकलता हो, तो कच्ची फिटकरी को बारीक पिसकर घी के साथ मिलाकर उसको घाव पर रख ऊपर से रूई का फाहा रख, पट्टी बाँधकर देने से खून का बहना तुरन्त बंद हो जाता है और घाव बिना पके भर जाता है। फिटकरी के साथ समभाग मुर्दासंग मिला कर कपड़छन करके व्रणों पर छिड़कने से व्रण (घाव) भर जाते हैं। यह कीटाणुनाशक होने से संक्रामकता को भी नष्ट करती है।

इसी तरह स्त्रियों के ज्यादा रक्तस्राव होने पर या नाक से अधिक खून बहने पर फिटकरी भस्म को मिश्री के साथ खिलाने और नकसीर में इसकी भस्म को सुंघाने से बहुत शीघ्र फायदा होता है, क्योंकि फिटकरी में ग्राही गुण है तथा यह चमड़े एवं सिराओं को संकुचित करती है।

रसकपूर या पारा के विशेष सेवन करने से अथवा और किन्हीं कारणों से मुँह में छाले पड़ गये हो और मसूढ़ों में जखम हो गये हों, तो फिटकरी के पानी से कुल्ले करने से लाभ होता है। मौलश्री छाल के चूर्ण में थोड़ी-सी फिटकरी मिलाकर मंजन करने पर हिलते हुए दाँत मजबूत हो जाते हैं।

गर्भाशय से अगर खून बहता हो, तो गन्दनाबूटी के स्वरस में फिटकरी को घोल कर उसमें कपड़ा तर करके गर्भाशय में रखने से खून आना बन्द हो जाता है। गर्भाशय बाहर निकल आने एवं गुदभ्रंश पर भी इसका प्रयोग (पिचकारी देने से) लाभदायक है।

छाती से रक्त आने पर- जब किसी कारण से छाती में विशेष चोट लगने से खून आने लगे, तो ४ रत्ती फिटकरी भस्म, २ माशे मिश्री में मिलाकर २ पुड़िया बना, प्रातः सायं देने से खून

आना बंद हो जाता है। बाद में कमजोरी दूर करने एवं भीतर के घाव को भरने के लिये प्रवाल पिष्टी मिलाकर अनार के शर्बत के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। शरीर में चोट लग जाने पर उस स्थान पर रक्त जम जाता है, उसे ठीक करने के लिये १।। माशा फिटकरी को फाँककर ऊपर से दूध पीना चाहिये, तीन-चार बार लेने से ही आराम होता है।

नोट- घरेलू दवाओं में फिटकरी अपूर्व चमत्कारी दवा है और यह सुगमता से मिल भी सकती है। अतएव, इसके गुण-धर्म के वर्णन में कच्ची फिटकरी के भी उपयोगों का वर्णन वाचकों के लाभार्थ किया गया है।

श्रृंग भस्म

भस्म विधि- हरिण या साँभर के अच्छे पुष्ट (भरे हुए) सींग लें, उनके ४-५ अंगुल के बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर ऊपर-नीचे कण्डे देकर गजपुट की अग्नि दें। स्वांग-शीतल होने पर निकालकर चूर्ण कर, ग्वारपाठे के रस में पीस टिकिया बना-सुखाकर सराब-सम्पुट के बीच में रखकर लघुपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर खरल में पीस कर कपड़छान कर शीशी में भर लें। -सि.यो.सं.

नोट- प्रथम बार सींग जलते समय उसमें बड़ी दुर्गंध आती है। अतः उन्हें खुली जगह में पुट देना चाहिए।

दूसरी विधि- श्रृंग के छोटे-छोटे टुकड़े कर एक हांडी में नीचे ऊपर घृतकुमारी के छिले हुए टुकड़े और बीच-बीच में श्रृंग के टुकड़े भर कर सकोरे से हाँडी का मुख बंद कर चूल्हे पर चढ़ा तेज आँच लगानी चाहिए, जिससे श्रृंग के टुकड़े हाँडी के अन्दर ही जल जाये। फिर इन टुकड़ों को घृतकुमारी के रस में घोंट कर टिकिया बना ऊपर लिखी विधि से भस्म बनानी चाहिए। इस विधि से बनाई हुई भस्म विशेष गुणयुक्त होती है।

वक्तव्य- अर्कदुग्ध में टिकिया बनाकर पुट देने से भी श्रृंग भस्म उत्तम बनती है और यह कफ रोगों में विशेष गुण करती है।

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती, सुबह-शाम, शहद या गाय के घी के साथ दें।

गुण व उपयोग- यह श्रृंग भस्म कास, श्वास, पार्श्व-शूल, न्यूमोनिया, ब्रोंकाइटिस, इन्फ्लूएंजा, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था, हृदयशूल, सर्दी, जुकाम, पायरिया, बालकों का सूखा रोग आदि में महोपकारी है। इस भस्म का मुख्य गुण-कफ और श्वास का नियमन करना, फुफ्फुसों में रहे हुए कफ-दोषों को साम्यावस्था में स्थापित कर फुफ्फुस-कोषों और हृदय को शक्ति देना, क्षय की प्रथमावस्था में क्षय के कीटाणुओं का नियमन कर क्षय को बढ़ने न देना आदि है। श्वास, कास में सहायक औषधियों के साथ श्रृंग भस्म बहुत काम करती है।

कास-रोग में विशेषतया कफजन्य कास (खाँसी) में यह बहुत फायदा करती है। कफज कास में जब दूषित नया कफ रोज बन रहा हों, अन्न में अरूचि, भूख कम लगें, निद्रा ज्यादा आती हो तो ऐसी अवस्था में श्रृंग भस्म के उपयोग से बहुत फायदा होता है। यह भस्म नवीन कफ को बनने से रोकती है तथा दूषित कफ को छाँट कर बाहर निकाल देती है, जिससे खाँसी भी कम हो जाती है और कफ दोषों से उत्पन्न उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

किंतु वातज कास में अर्थात् सूखी खाँसी जिसमें कफ नहीं निकलता हो, उसमें इस भस्म का प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि इससे गले में खुश्की और बढ़ जाती हैं, जिससे खाँसी कम न होकर और बढ़ ही जाती है।

बच्चों के सब प्रकार की खाँसी में विशेषतया कुकुर खाँसी में श्रृंग भस्म आधी रत्ती और अभ्रक भस्म आधी रत्ती, शुद्ध टंकण १ रत्ती-तीनों को मिलाकर माँ के दूध या मधु के साथ देने से बहुत लाभ होता है। शर्बत अडूसा, शर्बत मुलेठी, शर्बत गुलबनप्सा के साथ देने से भी अच्छा लाभ होता है।

न्यूमोनिया- न्यूमोनिया होने के बाद छाती में कफ का संचय अधिक हो जाता है और जब तक यह संचय बना रहता है, तब तक अनेक तरह से उपद्रव उत्पन्न होते रहते हैं। खाँसने पर यह कफ बदबूदार, पीला और चिकना निकलता है। इस दूषित कफ को शीघ्र निकलाने के लिये श्रृंग भस्म का प्रयोग करना उत्तम है और पुनः दूषित कफ नहीं बने एवं शारीरिक अवयव निर्दोष तथा शक्तिशाली बने रहें, इसके लिए रससिंदूर या मकरध्वज के साथ श्रृंग भस्म का उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। छाती पर सेंधानमक तथा कडुवा तैल अथवा नारायण तैल या रूमीमस्तंगी को पुराने घी में मिलाकर मालिश करनी चाहिए।

यदि फुफ्फुस में भी विकार आ गया हो, तो श्रृंग भस्म के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में रससिंदूर मिलाकर देने से फुफ्फुस के विकारो का शमन हो रोगी शीघ्र अच्छा हो जाता है। उरस्तोय (प्लुरेसी) रोग में फुफ्फुसावरण कला में जल-संचय होरक ज्वर, कास आदि उपद्रव हो जाते हैं, फेफड़े भारी रहते हैं और श्वास लेने में भी कष्ट होता है। पार्श्वशूल रहता है। इस रोग में भी श्रृंग भस्म जल का शोषण कर उत्तम लाभ करती है।

हृद्रोग में किन्ही कारणों से कमजोरी आ गयी हो, तो श्रृंग भस्म में अकीम भस्म मिला कर देने से हृदय की निर्बलता दूर हो जाती है, क्योंकि श्रृंग भस्म हृदय को पुष्ट करने वाली है, अतः हृदय को सशक्त बनाती है और निर्बल नसों में बल पहुँचा कर सबल बना देती है, जिससे हृदय में रक्त का आवागमन अच्छी तरह से होने लगता है और हृदय भी पुष्ट होकर अपना कार्य करने से समर्थ हो जाता है।

राजयक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में श्रृंग भस्म के प्रयोग से अपूर्व लाभ होता है। यदि क्षय-रोग की प्रथमावस्था से श्रृंग भस्म का सेवन करना शुरू कर दे तो यक्ष्मा रोग आगे नहीं बढ़ सकता तथा रोगी भी बच जाता है। क्षय रोग के लिए यह सर्वोत्तम औषध है।

सर्दी (जुकाम) प्रतिश्याय की नवीनावस्था में नाक से पानी अधिक गिरता है, सिर में दर्द, आँखों की पलकें भारी हो जाना, नाक से श्वास न लेकर मुँह से ही श्वास लेना, कुछ-कुछ बुखार भी बना रहना इत्यादि लक्षण होते हैं। यह बीमारी बहुत भयंकर होती है, क्योंकि यदि जुकाम रूक जाता है, तो खाँसी उत्पन्न हो जाती है और यह खाँसी ऐसा उग्र रूप धारण कर लेती है कि कभी-कभी तो यह क्षय के रूप में परिणत हो रोगी को परेशान कर देती है। अतः इस रोग को प्रारंभ में ही दूर करने के लिए श्रृंग भस्म का प्रयोग करना चाहिए। इस भस्म के प्रयोग से मस्तिष्क में रूकी हुई रतूबत निकल जाती है और जुकाम भी शीघ्र ठीक हो जाता है। कभी-कभी दुष्ट जल या ऋतु के कारण कफ का संख्य विशेष परिणाम में हो जाता है। यह बढ़ा हुआ कफ श्वास-नलिका में इस तरह प्रवेश किए हुए रहता है कि श्वास लेने में भी कठिनाई होती है। खाँसी आने पर सफेद और पतला कफ निकलने पर कुछ देर के लिए शान्ति मिल जाती है, किंतु फिर पुर्ववत ही हालत हो जाती है, जिससे रोगी बहुत घबराया हुआ-सा रहता है। ऐसी

परिस्थिति में श्रृंग भस्म १ रत्ती, मल्लचंद्रोदय आधी रत्ती, त्रिकटु चूर्ण 3 रत्ती में मिलाकर मधु के साथ देने से बहुत फायदा होता है। ऊपर से तुलसी की पत्ती और काली मिर्च की चाय भी देते रहने से बहुत अच्छा रहता हैं, किंतु यदि कफ पक गया हो, तो मल्लचंद्रोदय न देकर अभ्रक भस्म आधी रत्ती, सितोपलादि चूर्ण में मिलाकर मधु के साथ देना हितकर है।- औ.गु.घ.शा.

सर्दी(जुकाम) की खाँसी में श्रृंग भस्म १ रत्ती को शर्बत बनप्सा के साथ देने से बहुत फायदा होता है। न्यूमोनिया और पार्श्वशूल में श्रृंग भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती मधु के साथ तथा ब्रोंकाइटिस में श्रृंग भस्म १ रत्ती, मल्लसिंदूर आधी रत्ती में मिलाकर पान के रस और मधु में मिलाकर देना बहुत उपकारी है।

इन्फ्लुएंजा के बाद अवशिष्ट दूषित कफ बहुत समय तक कष्ट देता है तथा दुर्गन्धयुक्त पीले रंग का चिकना कफ निकलता रहता है। इसके लिए श्रृंग भस्म १ रत्ती, मल्लचंद्रोदय आधी रत्ती, मुलेठी और बहेड़ा की मींगी का चूर्ण २-२ रत्ती, मिश्री १ माशे में मिला वासा-स्वरस १ तोला और मधु में मिला कर सेवन करने से इस रोग में शीघ्र लाभ होता है। बच्चों के मृद्रस्थिरोग (सूखारोग) में भी श्रृंग भस्म के सेवन कराने से अच्छा लाभ होता है।

कफ को निकालने के लिए मिश्री का अनुपान और कफ को सुखाने के लिए मधु या पान के रस का अनुपान देना अच्छा है।

प्लूरसी (उरस्तोय) में श्रृंग भस्म २ रत्ती, गोदन्ती भस्म १ रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती मधु मिलाकर ऊपर से मुलेठी का क्वाथ देना अच्छा है।

न्यूमोनिया में गोदन्ती हरताल भस्म २ रत्ती, श्रृंग भस्म १ रत्ती पान के रस के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

राजयक्ष्मा में श्रृंग भस्म १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती दोनों मिलाकर सितोपलादि चूर्ण मिलाकर घी के साथ दें, बाद में च्यवनप्राश १ तोला की मात्रा में देने से रोग निर्मूल हो जाता है।

हृदय-शूल में श्रृंग भस्म १ रत्ती, मक्खन के साथ देना चाहिए। पार्श्वशूल में पुष्कर-मूल चूर्ण ४ रत्ती के साथ गरम जल से दें।

वृक्क व्रण या मूत्रस्तंभ में श्रृंग भस्म १ रत्ती, वंग भस्म आधी रत्ती, १ माशा मिश्री मिलाकर दूध की लस्सी के साथ देना चाहिए।

संगेयशव

परिचय- यह एक अति कठिन पत्थर है। यह जैतूनी पिलाई लिये हरा तथा हरापन लिये सफेद रंग का होता है और तासकन्द तथा लद्दाख से आता है।

शोधन विधि- सगेयशव को आग में तपा-तपा कर २१ बार गावजबाँ के अर्क में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध संगेयशव के टुकड़ों को महीन चूर्ण बना ग्वारपाठे के रस में घोंट कर छोटी-छोटी टिकिया बना धूप में सुखा सराव-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। ऐसे २-३ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

दूसरी विधि-(पिष्टी)-शुद्ध संगेयशव को छोटे-छोटे टुकड़े कर महीन चूर्ण बना कपड़े से छान कर अर्क गुलाब में ७ दिन तक लगातार घोंटते रहें। जब सुर्मा जैसी महीन पिष्टी बन जाय, तब छाया में सुखाकर शीशी में भर कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती, मधु या शर्बत बनप्सा अथवा मिश्री की चाशनी या खमीरे-गावजबाँ में मिला कर दें।

गुण और उपयोग- इसका प्रभाव हृदय पर सबसे ज्यादा होता है। किसी भी कारण से हृदय कमजोर होकर उसकी गति में वृद्धि हो गयी हो, शरीर की कांति नष्ट हो गयी हो, भूख कम लगती हो, कमजोरी बढ़ रही हो, सिर में दर्द होता रहता हो, कभी-कभी कफ बढ़ जाने से शरीर में भारीपन मालूम हो, तो संगेयशव १ रत्ती, मकरध्वज आधी रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर मधु के साथ या च्यवनप्राश १ तोला के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

शुक्र की निर्बलता में भी इसका प्रयोग किया जाता है। वातवाहिनी नाड़ी की कमजोरी के कारण शुक्र पतला होकर पेशाब के साथ या अनायास ही अथवा स्वप्नदोषादि के कारण निकल जाता है, तो संगेयशव भस्म २ रत्ती, वंग भस्म आधी रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती, मक्खन या मलाई के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

यह मस्तिष्क की दुर्बलता नाशक एवं बुद्धिवर्धक भी है। अतएव, स्मरणशक्ति के ह्रास होने पर इसकी भस्म ब्राह्मी चूर्ण के साथ प्रयोग करें और ऊपर से सारस्वतारिष्ट १ तोले की मात्रा में बराबर जल मिला कर दें।

नोट- युनानी चिकित्सकों का कहना है कि संगेयशव पत्थर की ताबीज बना कर गले में धारण करें और उस ताबीज की डोर इतनी लम्बी हो कि संगेयशव पत्थर हृदय पर लटकता रहे, इससे हृदय की बीमारी कभी नहीं होती है।

संगजराहत भस्म

परिचय- संगजराहत एक प्रकार का सफेदी लिये हल्के रंग का मुलायम और चिकना पत्थर होता है। इसे संस्कृत में दुग्ध पाषाण और हिन्दी में संगजराहत या घीया पाठा एवं अंग्रेजी में (Talc या Soft stone) कहते हैं। यह सिकता और मैग्नेशिया का यौगिक (Magnesium silicate) है। औषधि-प्रयोग के अतिरिक्त आजकल इसका प्रयेग (Talcum powder) और (Tooth powder) दन्तमंजनों आदि सौंदर्य प्रसाधनों में बहुत होता है।

भस्म विधि- गाबजबाँ के क्वाथ में १४ बार बुझाये हुए गोदन्ती के समान उज्ज्वल संगजराहत के ४० तोला टुकड़ों को ऊपर-नीचे हाँडी में २ सेर घीकुमारी के गूदे के बीच में रा सम्पुट में रख कर अग्नि देवें। स्वांग-शीतल होने पर भस्म निकालकर सूक्ष्म पीस लें और सुरक्षित रखें।

दूसरी विधि- संगजराहत ५ तोला, नीम की हरी पत्ती १ पाव। नीम के पत्तों का भुर्ता (कल्क) में संगजराहत रखकर ऊपर कपड़ा लपेट दें, और निर्वात स्थान में ७ सेर उपलों की अग्नि दें। स्वांग-शीतल होने पर सूक्ष्म मर्दन कर रखें।-यू.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ४ से ८ रत्ती तक प्रातः सायं मक्खन या मलाई के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रक्तष्ठीवन, रक्त वमन, मूत्ररक्त, रक्तार्श, नासागत रक्तपित्त, असृग्दर और रक्तामाशय (रक्त प्रवाहिका) के लिये अपूर्व गुणकारी औषध है। सारांश यह है कि सभी प्रकार के रक्तस्राव के लिये यह अतीव गुणकारी एवं अनुभूत सिद्ध औषध है।

पूयमेह में प्रातः सायं मक्खन के साथ २१ दिन तक सेवन करावें। प्रदर रोग में चावल के धोवन के साथ तथा आँतों में क्षत और शोथ होकर रक्त एवं पूय मिश्रित अतिसार रोग में गिलोय सत्व और शहद तथा मट्ठा या बकरी के दूध के साथ दें। उरः क्षत, जीर्णज्वर, रक्तपित्त और रक्तयुक्त कफज कास में मलाई-मिश्री अथवा समान भाग सोना गेरू मिलाकर शर्बत अनार के साथ सेवन करें। छुरी-चाकू आदि लगने से होने वाले रक्तस्राव को बन्द करने के लिये घाव के ऊपर इस भस्म को थोड़ा सा लेकर दबा देना चाहिए।

यह भस्म पूयमेह सूजाक, श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर, धातु दौर्बल्य, उरःक्षत, अतिसार, मुखपाक, दाह, रक्तपित्त आदि रोगों को नष्ट करती है। कर्णस्राव में आधी या एक रत्ती इस भस्म को कान में डालकर ऊपर से नींबू रस की २-२ बूंदे डालते रहने से थोड़े ही दिनों में बहुत लाभ हो जाता है।

आमायिक प्रयोग- स्वच्छ दुग्ध पाषाण चूर्ण को यवक्षार के साथ जल में मिलाकर कुछ दिन तक निरंतर लेप करने से सिध्मकुष्ठ नष्ट हो जाता है। १ रत्ती दुग्ध पाषाण के चूर्ण को कुछ दिन तक जल के साथ सेवन करने या दूध के साथ सेवन करने से सायंकालीन मंद वेग ज्वर नष्ट हो जाता है। दुग्ध पाषाण के सूक्ष्म चूर्ण को अभिघात (चोट) या व्रणों पर छिड़कने से वे शीघ्र ठीक हो जाते हैं तथा रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह शरीर के भीतरी अवयवों में होनेवाले रक्तस्राव, रक्तातिसार, रक्तार्श, प्रदर आदि रोगों में बहुत लाभकारी है।

संगजराहत शीतवीर्य, ग्राही, व्रणरोपण, रक्त-स्तम्भक और दन्तरोगहर है। इसे दही में मिलाकर अतिसार और प्रवाहिका में देते हैं। नागकेशर और खूनखराबा के समान भाग चूर्ण के साथ देने से रक्त-पित्त, रक्त प्रदर तथा रक्तार्श में उत्तम लाभ करता है, राल का चूर्ण ४ रत्ती और संगजराहत भस्म ४ रत्ती को चावलों के धोवन के साथ देने से श्वेत प्रदर और धातु स्राव में विशेष उपयोगी है। संगजराहत चूर्ण ४ भाग में कपूर, कबाबचीनी, माजूफल, फिटकरी भस्म १-१ भाग का चूर्ण मिलाकर दन्तमंजन करने पर दाँतों से गिरने वाला रक्त एवं पूय निकलना बन्द होकर दाँत और मसूढ़े स्वच्छ एवं दृढ़ हो जाते हैं।

संगयहूद (हजरुल्यहूद)

परिचय- इसको पत्थर बेर भी कहते हैं। यह बेर के सदृश एक-सवा इंच लम्बा एवं गोलाकार खाकी रंग का पत्थर होता है। इस पर ठीक बेर की गुठली जैसी रेखाएँ होती हैं। यूनानी वैद्यक में यह मूत्रल और पथरी को तोड़ कर निकालने वाला माना गया है। इसका उपयोग विशेषतः यूनानी चिकित्सक करते रहे हैं, किन्तु इसमें अनेक उपयोगी गुण देखकर इसका समावेश आयुर्वेदिक चिकित्सा के अन्दर किया गया है।

शोधन विधि- संगयहूद को आग में तपा-तपा कर ७ बार कुल्थी के क्वाथ में बुझाने से शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि- शुद्ध संगयहूद पत्थर को इमामदस्ते में कूट कर सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण कर पत्थर के खरल में 3 दिन तक मूली के स्वरस में मर्दन कर टिकिया बना सुखा लें। फिर इसे सराब-सम्पुट में बंद कर लघुपुट में रख कर आँच दें। स्वांग-शीतल होने पर टिकिया निकाल पीस कर शीशी में भर लें।

पिष्टी- हजरूलहूद को गरम जल से धोकर कपड़े से पोंछा कर, सुखा कर, सुक्ष्म कपड़छन चूर्ण करके खरल में डालकर अर्क गुलाब या चन्दनादि अर्क में तीन दिन तक मर्दन कर छाया में सुखा करके शीशी में भर ले। कई लोग केले के स्तम्भ के स्वरस या मूली के स्वरस की सात भावना देकर भी इसकी पिष्टी बनाते हैं।

यह पिष्टी मूत्रल, पित्तशामक, वमनहर, अश्मरी-शूलहर एवं अश्मरी तथा शर्करा को तोड़कर मूत्र मार्ग से निकलनेवाली है। मूत्रावरोध में इसे घिसकर पेंडू पर लेप भी किया जाता है।

मात्रा और अनुपान- २ रत्ती से ४ रत्ती की मात्रा में नारियल के पानी या अश्मरी नाशक क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह अश्मरी (पथरी) नाशक और मूत्रल है। किसी भी तरह रूके हुए पेशाब को खोलने में यह उत्तम है। यदि पथरी बहुत बड़ी न हुई हो तो, कुछ दिन लगातार इसका प्रयोग करने से बिना आपरेशन के ही पेशाब के रास्ते पथरी को गला कर यह निकाल देती है। मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र और शर्करा आदि में पेशाब साफ आने के लिये इसका प्रयोग करना बहुत लाभदायक है।

वक्तव्य- हजरुलहूद भस्म २ रत्ती को यवक्षार २ रत्ती के साथ मिला गोक्षुरादि क्वाथ के साथ पथरी के कई रोगियों पर हमने प्रयोग कर आश्चर्यजनक लाभ अनुभव किया है। बिना ऑपरेशन (शस्त्र क्रिया) के पथरी को गलाकर निकालने में अद्भुत लाभ करती है।

स्वर्ण

परिचय- जो सोना तपाने पर लाल (सुर्ख) हो जाय, कसौटी के ऊपर कसने से केसरिया रंग का हो जाय, चाँदी और ताँबे के अंश से रहित हो और स्निग्ध, नरक तथा भारी हो, ऐसा सोना उत्तम होता है। भस्म के लिए ऐसा ही सोना देखकर लेना चाहिए। सुवर्ण का विशिष्ट गुरुत्व १९.४ तथा द्रवणांक १०६४^{0} शतांश तापमान है। १०० टंच का सोना अच्छा होता है।

अग्राह्य स्वर्ण- जो सोना मोड़ने या हथौड़े की चोट मारने पर कठोर, तौल में हल्का, रूक्षवर्ण, कसौटी पर रगड़ने, तपाने तथा काटने पर श्वेतवर्ण वाला हो, वह सोना अग्राह्य है। ऐसे सोने में चाँदी तथा ताँबे का मिश्रण पाया जाता है।

शोधन विधि- सोने का कंटकवेधी पत्रा (आजकल मशीन द्वारा सोने का बहुत पतला पत्र बनवा लिया जाता है। इसको भस्म के लिये लेना चाहिए।) लेकर आग में तपा-तपा कर तैल, तक्र, गो-मूत्र, कांजी और कुल्थी के क्वाथ में ३-३ बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है या वर्क अथवा कुन्दन बनवा लिया जाय। वर्क और कुन्दन बनाने के पहले ही स्वर्ण पत्रों को तैल-तक्र आदि में शुद्ध कर लेना चाहिए।

दूसरी विधि- पहले स्वर्ण के सूचि वेध पत्रों को लेकर कैंची से काटकर इनके बहुत छोटे-छोटे टुकड़े बना लें। अब इन टुकड़ों को मिट्टी लिप्त किये काँच के पात्र में रखकर इस पात्र को त्रिपादिका पर रखकर इसके नीचे सुरादीपक जलाएँ और पात्र में थोड़ा-थोड़ा करके लवण-द्राव और लवण-द्राव से चतुर्थांश शोरकद्राव तब तक डालें जब तक सम्पूर्ण स्वर्ण गल न जाये। स्वर्ण के अच्छी तरह गल जाने के बाद फिर इसको और पकायें जिससे द्राव की अधिकता कम हो जाये। अब इसी पात्र में थोड़ा जल डालकर पकायें। इसके अनन्तर इसमें थोड़ा-थोड़ा करके चणकाम्ल (Oxalid Acid) तब तक डालें जब तक स्वर्ण के अति सूक्ष्म कण कांच-पात्र के तल में न बैठ जायँ। अब इसको अग्नि से पृथक् करके स्वर्ण के कणों को सावधानी से जल से

तब तक धोये जब तक कि उनमे अम्लता रहे। पश्चात् इन कणों को सुखाकर रख लें। यह शुद्ध स्वर्ण कहा जाता है।- र.त.

तीसरी विधि- एक अच्छी दृढ़ मूषा में एक भाग स्वर्ण, पाँच भाग चाँदी दोनों को एकत्र गलावें। जब दोनों द्रव रूप हो जायें तब एक लोह पात्र में जल भर उसको जोर से हिलाकर उसमें द्रव को डाल देने से छोटे-छोटे रवे बन जाएँगें। उनको जल से निकाल, सुखा करके एक आतशी शीशी को लोहे के तिपाई पर रखकर उसमें डालें और नीचे स्पिरिट के लैम्प की अग्नि देवें। पीछे उसमें सोरकाम्ल (नाइट्रिक एसिड) थोड़ा-थोड़ा करके डालें। जब सोरकाम्ल हरे रंग का हो जाय तब उसको दूसरे कांच पात्र में डालें। इस प्रकार जब तक सोरकाम्ल में हरा रंग आवे तब तक सोरकाम्ल बदलते जावें, जब सोरकाम्ल में हरा रंग न आवे तब समझना चाहिए कि अब सुवर्ण सर्वथा शुद्ध हो गया है। तब शीशी को नीचे उतार कर सुवर्ण को परिस्रुत जल से बार-बार धोकर साफ (अम्लता रहित) करके सुखा लेवें। सोरकाम्ल जो कांच पात्र में इकट्ठा किया गया था उससे थोड़ा लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) मिलाने से उसमें धुली हुई चाँदी नीचे बैठ जायेगी। इस प्रक्रिया से सोना-चाँदी दोनों विशुद्ध और सूक्ष्म चूर्ण के रूप में पृथक् - पृथक् उपलब्ध होंगे। -रसामृत (फुटनोट वाली विधि)

भस्म विधि- चंद्रोदय (मकरध्वज) बनाते समय शीशी के तल-भाग में जो सोना रह जाता है, उसमें समभाग संखिया मिला, तुलसी की पत्ती के स्वरस में ७ दिन तक घोंट, टिकिया बना-सुखा, दो सकोरे के बीच में रख, सन्धि स्थान पर कपड़मिट्टी कर १ सेर कण्डों की आँच में निर्वात-स्थान में पुट दें। पीछे सम्पुट से टिकिया निकाल उसमें पुनः आधा भाग शुद्ध संखिया मिला प्रथम पुट की तरह पुनः पुट दें। तीसरी बार या आगे जब तक भस्म न हो जाय चौथाई संखिया मिला पुट देते रहें, भस्म हो जाने के बाद, तुलसी-पत्र रस में ३ दिन मर्दन करें। १०-१२ पुटों में लाल रंग की भस्म तैयार होती है। फिर इस भस्म को गुलाब, कमल और मौलसरी के फूलों के स्वरस में १-१ दिन घोंट कर पुट देने से उत्तम भस्म बनती है। -सि.यो.सं.

नोट- सोना, चाँदी और शीशे की भस्म बनाते समय यह ध्यान रखें कि थोड़ी-सी भी आँच अधिक होने पर ये तीनों धातुएँ गल कर गाढ़ा पिण्ड बन जाती हैं, अतएवं प्रारम्भ में आधा सेर से १ सेर तक कण्डों की आँच दें। फिर जैसे-जैसे अग्निसह होता जाय वैसे-वैसे आँच भी बढाते जायें। सोने की भस्म १ बार में १ से ५ तोले तक बनावें।

दूसरी विधि- शुद्ध कंटकवेधी स्वर्ण के शुद्ध पत्रों को कैंची से बहुत बारीक-बारीक कतर लें। इसमें दुगुना पारा मिलाकर दोनों को एकत्र घोंट पिट्ठी बनावें। इस पिट्ठी को तुलसी-पत्र के रस में तीन दिन तक लगातार मर्दन कर टिकिया बना, धूप में सुखा, सराब-सम्पुट में बंद कर आधा सेर कण्डों की आँच में फूँक दें। इस तरह ५-७ पुट देने से ही भस्म हो जाती है। पर यह भस्म काली होगी। इसी काली भस्म को लेकर १-२ पुट खुला ही देने से सुर्ख (लाल) रंग की हो जाती है।

तीसरी विधि- विशुद्ध स्वर्ण के सूचीवेध्य-पत्रों को खरल में डाल उसमें समभाग शुद्ध पारद मिला, तीन दिन तक नींबू के रस में मर्दन कर जल से अच्छी तरह धो लें, अब इसमें सोने से आधा भाग श्वेतपाषाण (संखिया) का चूर्ण मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस में तीन दिन तक मर्दन करके द्रवभाग को सुखा कर चूर्ण कर लें। अब इस चूर्ण में स्वर्ण के बराबर भाग शुद्ध गन्धक मिला सम्पुट में बंद कर लघुपुट में फूँक दें। इस प्रकार तब तक पुट दें जब तक चन्द्रिका रहित भस्म न हो जाय, निश्चंद्र भस्म होने पर इसको कचनार की छाल के स्वरस की भावना देकर तीन पुट दें। इस विधि से बनी हुई स्वर्ण भस्म जामुन के रंग की तरह होती है। -र.त.

मात्रा और अनुपान- चौथाई से आधी रत्ती तक मधु, मक्खन, मिश्री, मलाई, गिलोय, सत्व, च्यवनप्राशावलेह आदि के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान- वातप्रकोपयुक्त ज्वर में स्वर्ण भस्म को रससिंदूर के साथ पीस कर बेल की छाल के स्वरस के साथ दें। पित्तज्वर में स्वर्ण भस्म में रससिन्दूर मिलाकर पित्तपापड़े के स्वरस के साथ दें। इसी तरह ज्वरों को दूर करने के लिये स्वर्ण भस्म को रससिंदूर के साथ मिलाकर तुलसी-पत्र स्वरस के अनुपान से दें। जीर्णज्वर में स्वर्ण भस्म और अभ्रक भस्म मिलाकर शहद के साथ दें। पुरानी संग्रहणी में स्वर्ण भस्म को रसपर्पटी और शंख भस्म मिलाकर उचित अनुपान के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

पुराने पाण्डु रोग में- गुर्च सत्व, स्वर्ण भस्म और लौह भस्म को एकत्र मिलाकर शहद के साथ सेवन करें।

राजयक्ष्मा में- स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, रससिन्दूर और मुक्तापिष्टी एकत्र मिला कर शहद के साथ दें। गर्भाशय-शुद्धि के लिये स्वर्ण-भस्म को क्षीरकाकोली और चोपचीनी चूर्ण में मिला कर सेवन करें। पुराने फिरंग (उपदंश) को नष्ट करने के लिए स्वर्ण भस्म में रसपुष्प मिलाकर इसको रक्तशोधक गुर्च, केसर, अनन्तमूल आदि वनौषधियों के क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिये। चरकोक्त श्वासहर शुंठी चूर्ण आदि द्रव्यों के साथ सेवन करने से भयंकर श्वास रोग नष्ट हो जाता है। नवीन या पुराने अम्लपित्त में स्वर्ण भस्म आँवले के चूर्ण में मिलाकर सेवन करें। अपस्मार तथा योषापस्मार में स्वर्ण भस्म को रससिन्दूर, अभ्रक भस्म तथा शंखपुष्पी चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। शिरःकम्प रोग में स्वर्ण भस्म को बला (खरेंटी) क्वाथ के साथ सेवन करें। स्वर्ण भस्म में समभाग बनी पारद-गंधक की कज्जली और पुनर्नवा चूर्ण मिलाकर गो-मूत्र के अनुपान से सेवन करने से अण्डकोष में होनेवाली सूजन मिट जाती है। स्वर्ण भस्म को मुनक्का, पिप्पली चूर्ण, कायफल तथा मुलेठी चूर्ण में मिला कर कुछ दिनों तक सेवन करने से कण्ठ-स्वर कोमल और सुरीला बन जाता है।

लाल चंदन, नागकेशर अथवा कमलकेशर, नीलोफर, मुलेठी, खाँड, मजीठ, केशर आदि रक्तशोधक तथा रक्त वर्द्धक द्रव्यों के साथ स्वर्ण-भस्म सेवन करने से स्त्रियों में सुंदरता की वृद्धि होती है। त्रिदोषजन्य उन्माद रोग में स्वर्ण भस्म को सोंठ, लौंग और काली मिर्च के चूर्ण में मिला कर शहद के साथ सेवन करने से लाभ होता हे। स्वर्ण भस्म को बच, गिलोय, सोंठ तथा शतावर चूर्ण के साथ ६ मास लगातार सेवन करने से मेधा (धारणा) शक्ति की वृद्धि होती है। स्वर्ण भस्म को शालपर्णी, विदारीकन्द, असगन्ध और काँच के बीज के चूर्ण के साथ तीन मास तक निरंतर सेवन करने से कृश शरीर वाले मनुष्य हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

नागकेशर चूर्ण में स्वर्ण भस्म मिलाकर ऋतुकाल में स्त्री को सेवन कराने से उसके गर्भाशय में गर्भधारण की शक्ति उत्पन्न होती है, गर्भाशय में अनेक उपद्रवयुक्त शोथ को दूर करने के लिये स्वर्ण भस्म को शिलाजीत, लौह भस्म और चाँदी की भस्म में मिलाकर दशमूल कषाय के अनुपान से सेवन करें।

शरीर में अकाल में उत्पन्न जरा-प्रभाव को दूर करने के लिए स्वर्ण भस्म को च्यवनप्राश तथा मकरध्वज और अभ्रक भस्म के साथ सेवन करना चाहिए।

गुण और अनुपान- इसकी भस्म, स्निग्ध, मधुर, किंचित् तिक्त, शीतवीर्य और रसायन गुणवाली है। पाककला में मधुर, बृंहण, हृद्य और स्वर-शुद्धिकारक है। सुवर्ण भस्म, प्रज्ञा, वीर्य, स्मृति, कांति ओर ओज को बढ़ाने वाली है। यह क्षय (राजयक्ष्मा), धातुक्षीणता, जीर्ण ज्वर, मन्द ज्वर, बराबर आनेवाला ज्वर, त्रिदोष, मस्तिष्क की दुर्बलता, पुराना श्वास, कास, दाह, पित्त रोग,

पित्तज उन्माद, विषविकार, पित्तप्रधान प्रमेह, दृष्टि क्षीणता, प्रदर, नपुंसकता आदि रोगों में इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ है। युनानी मतानुसार स्वर्ण अनुष्णाशीत (मातदिल), बल्य, मन प्रसन्न करनेवाला, वाजीकर, शामक, हृदय और मस्तिष्क तथा यकृत को बल देनेवाला है। मद, उन्माद, शुक्रप्रमेह, नपुंसकता, स्नायुदौर्बल्य, उर:क्षत, राजयक्ष्मा, जीर्ण विकारों में विशेष लाभकारी है।

जिस प्रकार स्वर्ण को सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, ठीक उसी प्रकार शारीरिक व्याधि दूर करने में भी वह बहुत महत्व रखता है। अत्यन्त क्षीणावस्था को प्राप्त मृतप्राय रोगी को भी जीवन शक्ति प्रदान करने की अद्भुत शक्ति स्वर्ण भस्म में पायीं जाती है।

वैसे तो सभी रोगों में स्वर्णघटित औषधों से चमत्कारिक लाभ होता है, किंतु राजयक्ष्मा, संग्रहणी, जीर्णज्वर, स्नायुदौर्बल्य, नपुंसकता आदि व्याधियों में तो स्वर्ण भस्म के बिना रोग आराम होना ही कठिन है। दिल को ताकत पहुँचानेवाली औषधियों में स्वर्ण भस्म का सर्वप्रथम स्थान है। स्वर्ण भस्म का कार्य रक्त को निर्दोष बनाकर हृदय को पुष्ट तथा रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियों को सबल करना है। अर्जुन, कपूर, कुचला, डिजिटेलिस पत्र आदि में जो हृदय पुष्ट करने के गुण हैं, उनसे बिलकुल भिन्न गुण स्वर्ण भस्म है। यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वर्ण भस्म बहुत कम मात्रा में देने से उत्तम लाभ करती है।

अनुलोमन क्षय में स्वर्ण भस्म विशेष लाभदायक है। इसी तरह कण्ठमाला में भी स्वर्ण भस्म से उत्तम लाभ होता है। दोनों प्रकार की धातुक्षीणता अर्थात् रस-रक्तादि धातुओं की क्षीणता में तथा केवल शुक्र धातु की क्षीणता में स्वर्ण वसन्त मालती, वसन्त कुसुमाकर और स्वर्णघटित औषधों से विशेष लाभ होता है। स्वर्णघटित बृहद् विषम ज्वर-हर लोह और पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि औषधियों से कालाज्वर या किसी तरह न आराम होनेवाला मलेरिया ज्वर जड़ से नष्ट हो जाता है।

सैंकड़ों इंजेक्शन और वर्षों डॉक्टरी चिकित्सा करने पर भी जो रोगी अच्छे न हुए वे स्वर्णघटित औषधों से अच्छे होते देखे गये हैं। त्रिदोष (सन्निपात) में बृ. कस्तूरी भैरव, सुवर्ण समीरपन्नग रस आदि स्वर्णघटित दवाओं से रोगी की प्राण-रक्षा होती है। मस्तिष्क की निर्बलता में स्वर्ण भस्म सर्वोत्तम साबित हुई है। स्वर्ण मिश्रित मकरध्वज गुटिका, बृहत् वातचिन्तामणि आदि महौषधियाँ अत्यंत कष्टदायक दिमाग की कमजोरी दूर करने के लिये सुप्रसिद्ध औषध है।

पुराना कास-श्वास किसी भी तरह आराम न होता हो तो बृहत् श्वास चिन्तामणि, महालक्ष्मी विलास रस आदि स्वर्णघटित दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। इन दवाओं से निश्चित रूप से लाभ होता है। तीव्र विष-विकार के शमन होने पर भी शरीर में कुछ अंश विष का रह जाता है। उस विष-विकार को दूर करने के लिये स्वर्ण भस्म का प्रयोग थोड़ी मात्रा में करते रहना लाभप्रद है। स्वर्णभस्म सेवन करने वालों पर विष का प्रभाव प्राय: बहुत कम होता है।

क्षय रोग के समान भयंकर और दुर्जय रोग में स्वर्ण भस्म का उपयोग बहुत लाभदायक है। जिस प्रकार आयुर्वेद के आचार्यों ने क्षय रोग में सुवर्ण की उपयोगिता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, उसी प्रकार आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकों ने भी इस भयंकर व्याधि में स्वर्ण भस्म की उपयोगिता को दिल खोलकर स्वीकार किया है। जैसे वैद्यगण स्वर्ण भस्म अथवा उससे बनी औषधें क्षय रोगियों को देते हैं, वैसे पाश्चात्य चिकित्सकों ने सुवर्ण के इंजेक्शन तथा दूसरी बनावटें क्षय रोगियों के लिये तैयार की है और उनका प्रचुर मात्रा में वे लोग उपयोग भी करते हैं।

इसका कारण यह है कि स्वर्ण तेजस्वी होते हुए भी यह एक सौम्य पदार्थ है। यह हृदय, मस्तिष्क, स्नायुजाल, मूत्रपिण्ड और शरीर के प्रत्येक अंग पर एक प्रकार का स्फूर्तिदायक प्रभाव डालता है, जिससे शरीर का ओज और कांति बढ़ती है, शरीर में स्फुर्ती और मन में उमंग पैदा होती है और रक्त संचालन की क्रिया में रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है, जिससे रोग के कीटाणु रक्त में नहीं बढ़ सकते।

सुवर्ण भस्म हृदय को शक्ति प्रदान कर पुष्ट बनाती है। यह दूषित रक्त को शुद्ध कर हृदय को पुष्ट करते हुए वातवाहिनी और रक्तवाहिनी सिराओं में शक्ति प्रदान करती है। सुवर्ण भस्म में यह गुण अन्य भस्मों से कहीं ज्यादा है।

विष-विकार-स्थावर या जांगम विष का जो शरीर पर बुरा असर पड़ता है अर्थात् अशुद्ध संखिया, सींगिया (मीठा तेलिया) आदि स्थावर विष के खाने से और सांप, पागल कुत्ता, बिल्ली आदि जंगम प्राणियों के काट खाने से जो विष शरीर में व्याप्त होकर अपना असर प्रकट करता है, इस तरह के विष-विकार को दूर करने के लिये स्वर्ण भस्म का प्रयोग करना चाहिये। ऐसी अवस्था में विष का वेग अन्य उपचारों द्वारा बन्द कर देने के बाद भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में स्वर्ण भस्म का बारबार प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि स्वर्ण विषघ्न है। अतएव, विष-विकार को दूर करने के लिये इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

सुवर्ण कीटाणु नाशक है। अतएव, क्षयरोग में सुवर्ण का उपयोग अनेक तरह से किया गया है। कहीं स्वतन्त्र रूप से और कहीं यौगिक रूप से इसका प्रयोग करने का आयुर्वेद में वर्णन है। क्षय की किसी भी अवस्था में स्वर्ण भस्म का प्रयोग कर सकते हैं। आयुर्वेद के आचार्यों ने देश, काल, बल आदि का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विचार करके ही अनेक तरह से स्वर्ण का प्रयोग क्षयरोग में किया है।

किन्तु क्षयरोग में जब ज्वर का वेग बहुत ज्यादा हो, पित्त के मारे मन व्याकुल हो, प्यास की भी विशेषता हो, ऐसी अवस्था में स्वर्ण भस्म नहीं दें, क्योंकि कभी-कभी देखा गया है कि ऐसी अवस्था में स्वर्ण भस्म देने से ज्वर का टेम्प्रेचर (गर्मी) और भी बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि स्वर्ण देने से क्षय के कीटाणु मरने लग जाते हैं। वे जैसे जैसे मरते जायँ, वैसे-वैसे शरीर के बाहर निकलते जाएँ, तो ज्वर आगे न बढ़ कर काम होने लगता है, और रोगी भी अच्छा हो जाता है, किन्तु यदि वे मरे हुए कीटाणु बाहर नहीं निकल पाएँ, तो उनका विष सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर ज्वर को और भी बढ़ा देता है। अतः रोगी की अवस्था, प्रकृति और बल देख कर स्वर्ण भस्म का प्रयोग करना चाहिए।

क्षय रोग की पूर्वरूपावस्था में स्वर्ण भस्म देने से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि उस समय में क्षय रोग उत्पन्न करने वाले दूषित दोष अथवा कीटाणु स्वर्ण भस्म के प्रयोग से आगे नहीं बढ़ पाते हैं। कारण इस भस्म का प्रधान कार्य रक्त-प्रसादन अर्थात् रक्त के विकार को दूर कर स्वच्छ बनाकर रोगोत्पन्न करने वाले कीटाणुओं का नाश करना है। अतः क्षय रोग होने से पूर्व ही यदि स्वर्ण भस्म का सेवन कराया जाय, तो इस रोग के उत्पन्न होने की आशंका नहीं रहती है।

उरःक्षत रोग में- जब मुँह से ज्यादा रक्त निकलने लगे तो चिकित्सा रक्त-पित्त की ही तरह करें किंतु उन औषधियों के साथ या स्वतंत्र रूप से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में सुवर्ण भस्म का भी प्रयोग करते हैं, क्योंकि इस रोग में कमजोरी बहुत शीघ्र आ जाती है, जिससे हृदय कमजोर होकर हार्ट फेल होने की सम्भावना बनी रहती है। अतः हृदय में ताकत पहुँचाने के लिये स्वर्ण भस्म देना अच्छा है। इससे रक्त-प्रसादन होकर हृदय भी पुष्ट हो जाता है।

पित्तज और कफज उन्माद- होने पर सुवर्ण भस्म धमासे के क्वाथ के साथ देना हितकर है, क्योंकि इसकी भस्म विकृत कफ और पित्त से उत्पन्न विकार को दूर कर हृदय को शुद्ध रक्त द्वारा पुष्ट करते हुए मानसिक विचार जिससे मन विकृत रहता है, उसे दूर करके मन में सान्त्वना पैदा करती है।

खाँसी-श्वास, जिसमें पित्त अथवा वात की प्रबलता हो, उसमें सुवर्ण भस्म देने से बहुत फायदा होता है।

राजयक्ष्मा का विष जब आंतड़ियों या ग्रहणी में पहुंच जाता है, तब अंतड़ियाँ और ग्रहणी दोनों दूषित हो जाते हैं, जिससे बार-बार पतले दस्त आने लगते हैं, ये दस्त जैसे-जैसे बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे शरीर भी कमजोर होता जाता है। कभी-कभी आंतों में क्षत (खराश) हो जाने से भी रक्त गिरने लगता है। ऐसी अवस्था में स्वर्ण भस्म देना अच्छा है, कारण इस भस्म के प्रभाव से यक्ष्मा बढ़ानेवाले दूषित विष नष्ट होकर आंतों में भी सुधार हो जाता, जिससे पतला दस्त होना रूक जाता है। साथ ही अन्य विकार भी शान्त हो जाते हैं।

कुष्ठ रोग में भी सुवर्ण भस्म का उपयोग अच्छा होता है, क्योंकि इससे रक्त का प्रसादन हो त्वचा कोमल हो जाती है और त्वचागत विकृत पित्त भी शान्त हो जाता है, जिससे शरीर की कान्ति अच्छी हो जाती तथा क्षुद्र कुष्ठ अथवा त्वचा के रोग नष्ट हो जाते हैं। महाकुष्ठ उत्पन्न करने वाले कीटाणु भी इस भस्म के सेवन से नष्ट हो जाते हैं। निर्गुण्डी मूल चूर्ण १ माशा में १/८ रत्ती स्वर्ण भस्म मिलाकर जल के साथ देने से कुछ ही समय में कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है।

आन्त्रिक ज्वर आदि पुराने बुखारों में स्वर्ण-भस्म के प्रयोग से दो काम होते हैं। पहला तो यह कि शरीर में फैले हुए विष द्वारा दूषित रक्त का विष दूर कर शुद्ध रक्त का शरीर में संचालन करना और दूसरा कार्य पुरानी बीमारी की वजह से हृदय कमजोर हो जाता है, जिससे हृदय की गति बढ़ जाती है, रक्त की कमी के कारण नाड़ी की गति भी क्षीण हो जाती है। इस विकार को दूर करना अर्थात् रक्त-प्रसादन कर हृदय की कमजोरी दूर होकर हृदय पुष्ट हो जाता है तथा रक्त की पूर्ति होकर नाड़ी की गति में भी सुधार हो जाता है।-औ.गु.ध.शा. तथा अनुभव के आधार पर

हृदय को पुष्ट और बलवान बनाने के लिये स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, अकीक भस्म १ रत्ती में मिलाकर, शहद या अदरख रस के साथ दें। क्षय (राजयक्ष्मा) की प्रथम और द्वितीयावस्था में स्वर्ण भस्म, आधी रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, श्रृंग भस्म आधी रत्ती, गिलोय सत्व २ रत्ती में मिला मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। पित्तप्रधान या वात प्रधान श्वास-कास में द्राक्षासव के साथ स्वर्ण भस्म का सेवन करना परम हितकर है। दाह में स्वर्ण-भस्म चौथाई रत्ती, मोती पिष्टी आधी रत्ती में मिला, आँवले के मुरब्बा के साथ देना श्रेष्ठ है। पित्त रोग और पित्तप्रधान उन्माद रोग में स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, ब्राह्मी और बच के चूर्ण २-२ रत्ती, मधु के साथ दें और भोजनोत्तर सारस्वतारिष्ट १ तोला बराबर जल मिलाकर सेवन करावें। सिर में हिमकल्याण तैल की मालिश करावें। इस रोग में स्वर्ण मिश्रित दवाईयाँ बहुत फायदा करती है।

पैत्तिक प्रमेह में-स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, वंग भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती, ताजे आँवले या गिलोय (गुर्च) के स्वरस के साथ देने से शीघ्र ही लाभ करती है। अथवा स्वर्णघटित औषधियाँ देने से भी काफी लाभ होता है। नेत्रों की दृष्टि में विकार उत्पन्न होने पर स्वर्ण भस्म अष्टमांश रत्ती, कांस्य भस्म १ रत्ती में मिला, त्रिफलादि घृत के साथ दें। यदि दस्त में कब्जियत भी रहती हो, तो रात को सोते समय त्रिफला चूर्ण या और कोई हल्का विरेचन ले लेने से कब्जियत दूर हो जाती है। भयंकर प्रदर (श्वेत रक्त दोनों) में स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, श्वेतांजन १ रत्ती, मुक्ताशुक्ति १ रत्ती में मिलाकर चौलाई की जड़ का चूर्ण १ माशा अथवा इसके क्वाथ

के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। नपुंसकता में स्वर्णघटित मकरध्वज आधी रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती और स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती की मात्रा में मलाई के साथ देने से बहुत फायदा होता है। ग्रहणी में स्वर्ण पर्पटी से मृतप्राय रोगी अच्छे होते हैं। ग्रहणी में स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती सोंठ और भुने हुए जीरे का चूर्ण २-२ रत्ती मिलाकर मधु के साथ देने से अपूर्व लाभ होता है।

स्वर्णमाक्षिक

परिचय -सोनामक्खी एक उपधातु है। इसमें बहुत अल्पांश में स्वर्ण होने तथा इसके गुणों में सोने के गुण कुछ अल्पता में होने और इसमें स्वर्ण-जैसी कुछ चमक होने से इसको 'स्वर्ण माक्षिक' कहते हैं।

शास्त्रों के कथनानुसार स्वर्ण माक्षिक का उपधातु निश्चित होता है, क्योंकि इसमें कुछ स्वर्ण के गुण और सहयोग होते हैं, परंतु वास्तव में यह लौह धातु या उपधातु है। विश्लेषण करने पर इसमें लौह, गंधक और अल्पांश में ताँबे का भाग पाया जाता है। इसको लौह समास निश्चित किया गया है। इस विश्लेषण से भी यह उपधातु निश्चित होता है। स्वर्णमाक्षिक और रौप्य माक्षिक-भेद से इसके दो भेद होते हैं।

जो स्वर्णमाक्षिक बाहर से देखने में स्निग्ध, भारी, नीली-काली चमकयुक्त तथा कसौटी पर रगड़ने पर कुछ-कुछ स्वर्ण समान रेखा खिंचने वाला, कोण रहित, सोने के समान वर्णवाला हो, उसे स्वर्ण माक्षिक समझें।-र.त.

शोधन विधि- स्वर्णमाक्षिक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण तीन पाव, सेंधा नमक एक पाव मिलाकर लोहे की कड़ाही में डाल ऊपर से बिजौरा या जम्बीरी नींबू का रस इतना डालें कि चूर्ण डूब जाये। फिर इस कड़ाही को अग्नि पर रख कर कलछी से चलाते रहें। जब चूर्ण अग्निवर्ण हो जाय तब चलाना बंद कर आँच भी बन्द कर दें। स्वांग-शीतल होने पर जल से ४-५ बार धो दें, जिससे सेंधा नमक का अंश निकल जाय। जल को सावधानी से निकालें अन्यथा स्वर्ण माक्षिक का महीन चूर्ण भी जल के साथ जायेगा। फिर इसको धूप में सुखाकर रख लें।-र.सा.सं.

भस्म विधि- शुद्ध स्वर्ण माक्षिक आधा सेर, शुद्ध गंधक एक पाव- दोनों एकत्र मिला बिजौरा नींबू के रस में डाल कर एक दिन बराबर मर्दन कर इसकी छोटी-छोटी टिकिया बना, सुखा, सराब-संपुट में बन्द कर कपड़मिट्टी करके सुखा लें। पीछे गजपुट में रख कर फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर निकाल, ग्वारपाठा में मर्दन कर टिकिया बना सुखा सराब-संपुट में बंद कर लघुपुट में रखकर आँच दें। इस प्रकार प्रायः 10 पुट में जामुन के रंग की भस्म हो जाती है। स्वर्ण माक्षिक की भस्म एक बार में आधा सेर या तीन पाव से ज्यादा नहीं बनावें।-सि.यो.सं.

दूसरी विधि- स्वर्ण माक्षिक कोणरहित डाली के रूप में आता है। इसमें स्वर्ण जैसी चमक प्रायः दिखाई देती है। इसके छोटे-छोटे टुकड़ें करके उनमें मिले हुए पत्थर अलग निकाल बाद में चमकदार एवं अच्छे माल को इमामदस्ते में कूट कर मूल द्रव्य से चतुर्थांश सेंधा नमक तथा निम्बू का रस या इमली का पानी मिलाकर सराबों में बन्द कर तीव्र अग्नि में पुट देवें। शीतल होने पर निकाल कर घुटाई कर एक कड़ाही में डालकर पानी डालकर धुलाई करावें। ऐसा करने से नमक पानी के साथ घुलकर निकल जावेगा। सब नमकीन पानी के निकल जाने के बाद सुखाकर घृतकुमारी रस या एरण्ड बीज-क्वाथ की भावना देकर पुट देवें। इस प्रकार कुल ७ पुट लगने पर पूर्व विधिवत् छानकर घुटाई करवा देवें। इस प्रकार यह काले जामुन के रंग की भस्म बनती है।- र.सा.सं. के आधार पर स्वानुभूत

मात्रा और अनुपान- १ रत्ती से २ रत्ती मधु (शहद), घी, गिलोय सत्व, मक्खन, मिश्री आदि के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- कुछ चिकित्सकों का विश्वास है कि स्वर्ण माक्षिक भस्म स्वर्ण भस्म के अभाव में इसलिए दिया जाता है कि इसमें स्वर्ण का कुछ अंश रहता है, किंतु यह सिर्फ भ्रम है वास्तव में स्वर्ण माक्षिक लौह का सौम्य कल्प है। हाँ, लोह में जो कठोरता, उष्णता और तीव्रता आदि गुण रहते हैं, वे भस्म में नहीं हैं। लोह का अति सौम्य कल्प होने से यह कमजोर, सुकुमार एवं नाजुक स्त्री-पुरुष तथा बालकों के लिये अत्यंत उपयोगी है।

स्वर्ण माक्षिक भस्म- विपाक के मधुर, तिक्त, वृष्य, रसायन, योगवाही, शक्तिवर्द्धक, पित्तशामक, शीतवीर्य, स्तम्भक और रक्त-प्रसादक है। पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, निद्रानाश, दिमाग की गर्मी, पित्त विकार, नेत्ररोग, वमन, उबकाई, अम्लपित्त, रक्तपित्त, व्रणदोष, प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, शिरःशूल, विष विकार, अर्श, उदर रोग कण्डु, कुष्ठ, कृमि, मदात्यय और बाल रोगों में यह विशेष उपयोगी है। विशेषकर कफ-पित्तजन्य रोगों में यह बहुत लाभदायक है।

यद्यपि पाण्डु, कामला आदि रक्ताल्पता की प्रधान औषध लौह भस्म है, किन्तु यदि लौह भस्म से रोग का शमन न हो, तो लौह का सौम्य कल्प मण्डूर का प्रयोग करें। अगर मण्डूर से भी सफलता नहीं मिले तो स्वर्ण माक्षिक भस्म का प्रयोग करना चाहिए। स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, कसीस भस्म आधी रत्ती, माणिक्य भस्म आधी रत्ती के साथ मधु में मिलाकर देने से रक्ताणुओं की वृद्धि होकर पाण्डु रोग समूल नष्ट हो जाता है। बच्चों को गहरी निद्रा लाने का तो इसमें प्रधान गुण है।

केवल पित्तविकार या कफ-पित्त संसर्गजन्य विकार में इसकी भस्म अच्छा काम करती है। अतएव पित्तजशिरःशूल या अम्लपित्त अथवा पित्तज परिणामशूल में इसका अनुपान-भेद उपयोग होता है।

वात-पित्तात्मक शिरःशूल हो तो सूतशेखर रस के साथ स्वर्ण माक्षिक भस्म का उपयोग होता है, किन्तु जिस शिरोरोग में वमन, मुँह का स्वाद कषैला, अन्न में अरुचि और वमन होते ही सिर दर्द कम हो जाय, आदि लक्षण उपस्थित हो तो उसमें सूतशेखर रस साथ में न देकर केवल स्वर्ण माक्षिक भस्म ही देना ठीक है। पुराने शिरःशूल में इस भस्म से बहुत ही फायदा होता है।

पित्तजन्य नेत्ररोग में स्वर्ण माक्षिक भस्म का उपयोग (खाने और आंजने) दोनों तरह से करना चाहिए। इसमें भी प्रधान दोषपित्त और रक्त की विकृति ही है। अतः स्वर्ण माक्षिक भस्म के सेवन से लाभ होता है।

क्षय रोग- अनुलोम अथवा प्रतिलोम क्षय दोनों प्रकार के क्षय में धातुओं का क्षय होकर रोगी निरन्तर अशक्त होता जाता है। मंद ज्वर हरदम बना रहता है, खाँसी तथा रक्तपित्त आदि उपद्रव भी हो जाता है, ऐसी अवस्था में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, स्वर्ण वसंतमालती १ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, च्यवनप्राश १ तोला तथा मधु में मिलाकर देने से उत्तम लाभ होता है। क्षय की प्रथम तथा द्वितीय अवस्था में रोगियों को इस योग के कुछ समय निरंतन सेवन से रोगमुक्त होते देखा गया है।

पित्त दूषित हो जाने पर रक्त और रक्तवाहिनी सिराएँ और हृदय ये सब (जो उसके आश्रय में रहनेवाले हैं) दूषित हो जाते हैं, इसके दूषित होने पर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं,

और जैसे-जैसे वे रोग पुराने होते जाते हैं, वैसे-वैसे हाथ पाँव और मुँह पर शोथ उत्पन्न होने लगता है। ऐसी दशा में स्वर्ण माक्षिक भस्म देने से शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि स्वर्ण माक्षिक भस्म हृद्य तथा रक्त-प्रसादक होने के कारण इन सब विकारों को दूर कर देती है।

जब पित्त विदग्ध होकर रक्त में जा मिलता है, तब रक्तवाहिनी सिराएँ पतली हो जाती हैं और रक्त में दूषित पित्त की गर्मी अधिक बढ़ी जाने से रक्तवाहिनी की पतली सिराएँ फूट जाती हैं, जिनके द्वारा दूषित रक्त या प्रवाह होने लगता है। यह रक्त अधोमार्ग (गुदा, लिंग) अथवा उर्ध्वमार्ग (मुख, कान, नाक आदि) द्वारा निकलने लगता है। दोषों के विशेष होने से रोम-छिद्रों द्वारा भी निकलने लगता है। यही 'रक्तपित्त' है। इस रोग में माक्षिक भस्म से बहुत फायदा होता है। इससे दूषित पित्त शमित होकर रक्त भी गाढ़ा होने लगता है, जिससे रक्तवाहिनी सिराएँ पुष्ट होती हैं और उनमें रक्त को अपने अंदर धारण करने की शक्ति उत्पन्न होती है, फिर रक्तस्राव होना अपने आप बन्द हो जाता है।

पेट के अन्दर आमाशय बढ़ जाने और पेट के भीतर त्वचा विकृत होने तथा उदर में व्रण हो जाने से अम्लपित्त रोग होता है। शास्त्र में इन सब की गणना अम्लपित्त में की गयी है। व्रणजन्य अम्लपित्त को छोड़कर शेष अम्लपित्तों में स्वर्ण माक्षिक भस्म बहुत लाभदायक है।

आमाशय बढ़कर उत्पन्न होने वाले अम्लपित्त रोग में यह अपने स्तम्भक और शामक तथा स्वादुगुण के कारण पित्त को नियमित करती है तथा उसमें सौम्यता स्थापित करती है। फिर भीतर पिच्छिल (स्निग्ध) त्वचा की विकृति से जो अम्लपित्त होता है, उसमें माक्षिक अपने लवणत्व के प्रभाव से फायदा करती है। उदर-पित्तोत्पादक अथवा रसोत्पादक पिण्ड की विकृति होने से उत्पन्न हुई विकृति में माक्षिक भस्म में विद्यमान लौह अंश और बल्यत्व गुण के कारण आकुंचन (खिंचाव) तथा बल-प्राप्ति होकर कार्य होता है।

माक्षिक में लौह के अंश होने से यह शक्तिवर्द्धक है। नाक से रक्त आता हो, चक्कर आता हो, कमजोरी ज्यादा मालूम पड़े ऐसे समय में स्वर्ण माक्षिक भस्म देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

जीर्णज्वर में जब कि दोष धातुगत होकर धातुओं का शोषण कर रोगी को विशेष कमजोर बना देते हों, उठने-बैठने एवं जरा भी चलने-फिरने में रोगी विशेष कमजोरी (अशक्तता) अनुभव करता हो, तो स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण १ माशा मधु के साथ से देने से उत्तम लाभ होता है।

मद्य (शराब) आदि का सेवन करने से मदात्यय रोग हो जाता है। इसमें स्वर्ण माक्षिक भस्म के सेवन से मद्यजनित गर्मी कम हो जाती है।

विसूचिका- अजीर्णजन्य विसूचिका में वमन बन्द करने के लिये स्वतंत्र रूप से या किसी औषध (सूतशेखर रसादि) के साथ इसे देने से वमनादि उपद्रव शीघ्र शान्त हो जाते हैं। विसूचिका रोग शान्त हो जाने के बाद निर्बलता दूर करने के लिये भी स्वर्णमाक्षिक भस्म का उपयोग करना अच्छा है।

वातजन्य या वात-पित्तजन्य हृद्रोग- हृदय चंचल हो, बार-बार घबराहट होना, जम्भाई आना, पसीना आना, सर्वांग में कम्प होना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर स्वर्ण माक्षिक भस्म देने से लाभ होता है। यह भस्म हृद्य है, अतः हृदय की चंचलता दूर कर हृदय को शुद्ध रक्त द्वारा पुष्ट बनाता है।

शीतज्वर में- कुनैन सेवन करने के बाद प्लीहा-वृद्धि होकर प्लीहा बढ़ जाने से पेट बढ़ गया हो और सर्वांग में शोथ, घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न हो गये हो तो ऐसी स्थिति में स्वर्ण माक्षिक भस्म का उपयोग करना श्रेष्ठ है, क्योंकि कुनैन के अति सेवन से उत्पन्न हुए विकार इससे दूर हो जाते हैं। कुनैनजन्य विकार को दूर करने के लिये इससे अच्छी दवा कोई नहीं है।

रक्त विकार में- स्वर्ण माक्षिक भस्म देना अच्छा है, क्योंकि यह रक्त-प्रसादक है अर्थात् रक्त के विकार को दूर कर परिशुद्ध रक्त शरीर में संचालित करती है, जिससे दूषित रक्त से होनेवाले संपूर्ण विकार शान्त हो शरीर सुंदर और स्वस्थ बन जाता है।-औ.गु.ध.शा.

पाण्डु और कामला रोग में- स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती में मिला कर शहद (मधु) के साथ अथवा कच्ची मूली का रस निकाल कर उसके साथ देना चाहिए। जीर्ण ज्वर में स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, वर्द्धमान पिप्पली के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

निद्रा नाश एवं पित्तज उन्माद में- रात्रि को सोते समय स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, जटामांसी, नेत्रवाला और रक्तचंदन के क्वाथ में मधु मिलाकर देने से निद्रा आने लगती है। दिमाग की गर्मी शान्त करने के लिये स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, कुष्माण्डावलेह ६ माशे के साथ देना अच्छा है। स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, प्रवाल चंद्रपुटी २ रत्ती के साथ मिला दूध के साथ देने से अनिद्रा रोग में उत्तम लाभ होता है।

पित्तविकार में-स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती शर्बत बनप्सा या शर्बत अनार के साथ देना लाभदायक है। नेत्र रोग में नेत्र की जलन और लाली दूर करने के लिये स्वर्ण-माक्षिक भस्म १ रत्ती, मक्खन और मिश्री मिलाकर सेवन करें। साथ ही गुलाब-जल भी आँख में डालते रहें। वमन एवं उबाकाई में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, बेरे की गुठली की मींगी १ नग के साथ देने से अच्छा फायदा होता है।

अम्लपित्त की सभी अवस्था में स्वर्णमाक्षिक का मिश्रण लाभप्रद है। यदि केवल स्वर्णमाक्षिक भस्म ही देना हो, तो स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, आँवला रस के साथ दें। आँवला रस के अभाव में मधु के साथ दें।

रक्त पित्त में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, प्रवालचंद्र पुटी १ रत्ती, गिलोय सत्व ३ रत्ती, दूर्वा स्वरस अथवा वासा (अडुसा) के पत्तों के रस के साथ मधु मिलाकर देना श्रेष्ठ है।

रक्तविकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती मधु में मिलाकर ऊपर से महामंजिष्ठादि अर्क २ तोला अथवा सारिवाद्यासव १ तोला बराबर जल के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पित्तज प्रमेह में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, वंगभस्म आधी रत्ती, गिलोय सत्व ३ रत्ती, मुक्ताशुक्ति पिष्टी १ रत्ती मिलाकर, द्राक्षावलेह अथवा शर्बत बनप्सा के साथ देने से शीघ्र ही फायदा होता है।

मूत्रकृच्छ्र में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, यवक्षार ४ रत्ती में मिलाकर पानी के साथ देना चाहिए। पित्तज सिरदर्द में स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, शुक्ति भस्म १ रत्ती, मक्खन और मिश्री के साथ दें। विष विकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती मधु के साथ कुछ दिनों तक लगातार सेवन करने से विशेष लाभ होता है।

रक्तार्श और पित्तार्श में- स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, नागकेशर असली, तेजपात और छोटी इलायची का चूर्ण २-२ रत्ती, मधु के साथ देने से लाभ होता है।

उदर रोग में यकृत और प्लीहा बढ़ जाने पर स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, मूलीक्षार २ रत्ती, गो-मूत्र के साथ देने से लाभ होता है। कृमि विकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, वायविडंग चूर्ण ३ रत्ती में मिला तुलसी-पत्र-रस के साथ दें।

मदात्यय रोग में- स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण ४ रत्ती, कुटकी और पुनर्नवा, गिलोय (गुर्च) के क्वाथ के साथ दें। मसूरिका रोग में स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती, मोतीपिष्टी आधी रत्ती, कंचनार-छाल के क्वाथ के साथ देने से मसूरिका का आभ्यन्तरीय विकार शीघ्र बाहर निकल आता है। कुनैन के विकार में स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, मिश्री १ माशे में मिलाकर गो-दुग्ध के साथ देने से कुनैन जनित विकार शांत हो जाते हैं।

रौप्यमाक्षिक

परिचय- रौप्य माक्षिक, स्वर्ण माक्षिक का ही दूसरा भेद है, यह चाँदी के समान श्वेत एवं चमकदार होता है। इसमें अल्पांश में चाँदी का मेल होने से यह रौप्य माक्षिक कहलाता है। चाँदी के अभाव में इसका प्रयोग किया जाता है, इसमें चाँदी की अपेक्षा कुछ न्यून गुण है। इसमें रौप्य (चाँदी) के ही केवल गुण नहीं हैं, किन्तु इसमें अन्य द्रव्यों का संयोग भी होने से और भी बहुत गुण है। -बृ. र. रा. सु.

वक्तव्य- आधुनिक रसायन शास्त्रियों के विश्लेषणानुसार रौप्य माक्षिक में चाँदी का मिश्रित होना नहीं पाया जाता है।

शोधन विधि- रौप्य माक्षिक को ककोड़ा, मेंढासिंगी, जम्बीरी नींबू इनके प्रत्येक के रस में सात-सात बार धूप में मर्दन करने से उत्तम प्रकार से शुद्धि हो जाती है।

दूसरी विधि- रौप्य माक्षिक को एक कपड़े की पोटली में बाँधकर दोलायंत्र-विधि से वासा (अडूसा) पत्र के स्वरस में दो प्रहर तक स्वेदन करने से उत्तम प्रकार से शुद्धि हो जाती है।

भस्म विधि- शुद्ध रौप्य माक्षिक को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण कर कुलथी के क्वाथ के साथ एक दिन तक मर्दन करें। पश्चात् तिल तैल और बकरी के मूत्र में एक दिन मर्दन कर टिकिया बनायें और सुखाकर सम्पुट में बंद कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार सात बार पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

दूसरी विधि- शुद्ध रौप्य माक्षिक के चूर्ण में शुद्धगंधक चतुर्थांश मिलाकर बड़हल (लकुच) के स्वर में मर्दन कर टिकिया बना कर सुखा लें। पश्चात् संपुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार ७ पुट देने से उत्तम भस्म बन जाती है।

तीसरी विधि-शुद्ध रौप्य माक्षिक चूर्ण को लेकर चतुर्थांश सेंधा नमक तथा इमली का पानी डालकर भट्टी पर चढ़ाकर तीव्र अग्नि दें और कोंचे (कलछें) से चलाते रहे। चलाते-चलाते जब चूर्ण रक्तवर्ण-सा हो जाय तब उतार कर शीतल कर लेवें। शीतल होने पर इसमें पानी डालकर खूब धुलाई करावें। जब तक नमकीन पानी आता रहे तब तक धुलाई करावें। नमकीन पानी निकल जाने पर सुखाकर सराब-सम्पुट में बंद कर मन्द अग्नि में पुट देवें। इस प्रकार १०-११

पुट देने से निश्चंद्र उत्तम भस्म बन जाती है। यदि १०-११ पुट देने पर भी निश्चंद्र भस्म न हो, तो पुन: चौथाई भाग गंधक मिलाकर पुट दें। इस प्रकार लाल रंग की भस्म बन जाती है। -र.सा.सं. से किंचित् परिवर्तित स्वानुभूत विधि

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक शहद और घी विषम भाग और गिलोय सत्त्व के साथ या मक्खन-मिश्री आदि के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस भस्म में रौप्य का कुछ अंश रहता है, अत: इस भस्म का रौप्य भस्म के अभाव में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग करने से बीसों प्रकार के प्रमेह, कुष्ठ रोग, कृमिरोग, शोथ, पाण्डु रोग, अपस्मार तथा अश्मरी (पथरी) आदि रोग नष्ट होते हैं। विशेष-गुण-धर्म स्वर्ण माक्षिक भस्म के समान ही है।

हरिताल (तवकिया)

परिचय- यह दो प्रकार का होता है। १-पत्र (तवकिया) हरिताल और २- पिण्ड हरिताल, इनमें पत्र हरिताल ही औषध के काम में आता है। पत्र हरिताल सोने के समान रंगवाला होता है, इसमें अभ्रक के समान पत्र मिलते हैं। इसी को तवकिया या वर्की हरिताल कहते हैं, यही गुण और प्रभाव में श्रेष्ठ भी होता है। यह मल्ल का यौगिक है। इसे पीत मल्ल नामक मल्ल का भेद भी माना गया है। उग्र विष है।

भस्म के योग्य हरिताल- जो हरताल स्वर्ण के समान पीतवर्ण, भारी, स्निग्ध और छोटे-छोटे पत्रों वाला तथा चमकदार होता है, वही हरिताल भस्म के लिये श्रेष्ठ है।

शोधन विधि- पत्र (वर्की) हरिताल के चने बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर कपड़े में बाँध कर मिट्टी की हाँड़ी में पेठे के स्वरस में दोलायंत्र-विधान से धीमी आँच पर ६ घण्टा पकावें, पीछे मिट्टी या काँच के बर्तन में नींबू के रस में डालकर भिगो दें। प्रतिदिन नींबू का रस बदलते रहें। ऐसे सात दिन नींबू के रस में रखने के बाद जल से धोकर सुखा लें। -सि.यो.सं.

भस्म विधि- पलाश की जड़ का क्वाथ शहद के समान गाढ़ा बना इससे ३ बार उक्त विधि से शुद्ध हरताल की भावना दें पश्चात् भैंस के मूत्र की भावना देकर खरल करके गोला बना लें, फिर सराव-सम्पुट में बन्द कर कपड़मिट्टी करके सुखा कर दस जंगली कण्डों की आँच में रख दें। ऐसे १२ पुट देने से हरताल की भस्म हो जाती है।-र.र.स.

दूसरी विधि- शुद्ध तवकिया हरिताल को २१ दिन पीपल वृक्ष की छाल के स्वरस या क्वाथ में मर्दन कर गोला बनाकर धूप में सुखावें। पश्चात् एक बड़ी हाँडी लेकर उसमें आधे भाग में पीपल वृक्ष की लकड़ियों को जलाकर की हुई राख भरकर उसके ऊपर उक्त गोले को रखकर हाँडी के शेष भाग को भी पीपल की राख से भर दें। बाद में एक सकोरे से हाँड़ी का मुख बन्द कर हाँड़ी पर सात कपड़मिट्टी करके सुखा लें और गजपुट में रख कर १००० उपलों की आँच दें। इस प्रकार चार प्रहर में हरिताल की श्रेष्ठ भस्म बन जाती है। पश्चात् जरा-सी इस भस्म को लेकर गरम लोहे की सलाख पर डालें, यदि धुआँ न निकले तो भस्म शुद्ध जानें अन्यथा पुन: इसी प्रकार हाँड़ी में डालकर निर्धूम बना लें।

मात्रा और अनुपान- १/४ से आधी रत्ती शहद या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह भस्म स्निग्ध, उष्ण, कटु एवं अग्नि-दीपक है। वातरक्त कुष्ठ, उपदंश (गर्मी), चर्मरोग, उर्ध्वश्वास, विषमज्वर, शीतांग, कफ-वात प्रधान भयंकर सन्निपात, वातरोग, मृगी, भगन्दर आदि रोगों की नाशक और उत्कृष्ट रसायन है।

जिस वातरक्त में-संपूर्ण शरीर चमक उठे, कभी-कभी धमनियाँ फड़कने लगे, हड्डियों में दर्द हो, शोथ हो जाय, शोथ की त्वचा रूक्ष होकर फट जाय, हाथ-पाँव की धमनियों में खिंचाव हो अंगुलियाँ टेढ़ी हो जायें, जिससे चलने में दिक्कत हो, हाथ की भी अंगुलियाँ टेढ़ी हो जायें, हाथ-पैर का सन्धिबन्धन हो, जिससे अंगुलियों की संचालनादि क्रिया बंद हो जाये, खिंचाव, जहाँ शोथ हो वहाँ की त्वचा काली तथा सुन्न हो जाये, सम्पूर्ण अंग जकड़ जाय, शीतल जल या वायु से द्वेष होना आदि लक्षण होने पर हरताल भस्म के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। इस रोग का प्रधान कारण दूषित वात और रक्त है। अत: इनकी विकृति दूर होने से और जितने विकार हैं, वे सब दूर हो जाते हैं।

यदि वातरक्त के शोथ में शून्यता आ गयी हो, सम्पूर्ण शरीर में जड़ता उत्पन्न हो गई हो, कहीं भी स्पर्श करने से स्पर्श ज्ञान मालूम न हों, सब अंगों में खुजली हो, वेदना (दर्द) कम हो और शरीर भी कफ प्रधान होने के कारण शीतल हो, तो हरताल भस्म का उपयोग अवश्य करना चाहिए।

हरताल भस्म वातरक्त के उपद्रवों में भी लाभ करती है। जैसे-निद्रा-नाश (नींद न आना), अरूचि, श्वास, मांस गलना, शिर की नसें अकड़ जाना, बार-बार मूर्च्छा होना, आँखों से धुंधलापन दिखाई देना, शरीर में ज्यादा दर्द होना, प्यास लगना, ज्वर, शोथ का पक जाना, चक्कर आना, शरीर में थकावट, अंगुलियाँ टेढ़ी हो जाना, शरीर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ उत्पन्न होना इत्यादि बड़े भयानक उपद्रव होते हैं। इसमें बार-बार मूर्च्छा होना, असाध्यावस्था के चिन्ह हैं। इन उपद्रवों में हरताल भस्म देने से लाभ होता है।

यह रोग अधिक दिनों तक रहनेवाला तथा बहुत भयंकर होता है। इस रोग में सबसे ज्यादा खराबी यह है कि रोग कुछ दिन के लिए अच्छा होकर फिर कुछ रोज बाद उत्पन्न हो जाता है। थोड़ा सा भी आहार विहार में अन्तर पड़ जाने पर इसका प्रादुर्भाव पुन: हो जाता है। किसी-किसी रोगी को तो वातरक्त शमित और विसर्प रक्त दूषित होकर छोटे-छोटे फोड़े-फुन्सियाँ तथा शरीर पर छोटे-छोटे चकते भी हो जाते हैं और सम्पूर्ण अंग काला पड़ जाते हैं। इन लक्षणों के उपस्थित होने पर हरताल भस्म का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इससे दूषित रक्त शुद्ध हो जाता है और वातवाहिनी सिराओं का भी संकोच दूर होकर शुद्ध रक्त का संचार शरीर में होने से रक्त-विकार-जन्य दोष दूर हो जाते हैं।

यद्यापि, वातरक्त और कुष्ठ की संप्राप्ति में अन्तर है, अंत: लक्षणों में भी अन्तर पड़ जाते हैं, परंतु कुष्ठ रोग में भी हरताल भस्म वातरक्त के समान ही गुण करती है। त्वचा के रोग और पामा (खुजली), कच्छु, दद्रु (दाद) आदि उपकुष्ठों में हरताल भस्म की अपेक्षा गन्धक रसायन विशेष लाभ करता है। हाँ, इनमें भी यदि कोई रोग बहुत पुराना हो गया हो, किसी तरह भी नहीं छूटता हो, जिसकी जड़ जम गई हो, तो किसी रक्त-शोधक दवा के साथ हरताल भस्म सेवन करना अच्छा है। शेष कुष्ठ रोगों में दोष और दुष्यों की प्रधानता देखकर ही इसका प्रयोग करना चाहिए। पित्त-प्रधान कुष्ठ की अपेक्षा वात और कफ -प्रधान कुष्ठ रोग में यह विशेष लाभ करती है। उचित अनुपान के साथ मात्रानुसार हरताल भस्म के सेवन से कुष्ठ रोग अवश्य दूर हो जाता है।

उपदंश (सिफलिस) रोग की नई व पुरानी दोनों अवस्थाओं में यह भस्म गुणकारी है। उपदंश की प्रारम्भिक अवस्था में जब कि शरीर की ऊपरी त्वचा पर इसका असर नहीं हुआ हो अर्थात् चकत्ते नहीं हुए हों, तो ऐसी अवस्था में पारद भस्म, रसकपूर आदि देना अच्छा है, परन्तु यदि उपदंश के विकार बाहरी त्वचा पर आ गये हों, (जैसे चट्टे हो जाना, शरीर में खुजली होना आदि) तो हरताल भस्म का भी प्रयोग करें। उपदंश के सब उपद्रवों और सब अवस्थाओं में हरताल भस्म देना उत्तम है। उपदंश के उपद्रव अर्थात् उपदंश होने के बाद कई प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें मुख्य उपद्रव गलित कुष्ठ और गुदशुक (मांस कीलक) हैं। इन दोनों में हरताल भस्म का बहुत अच्छा असर होता है।

उपदंश जन्य कुष्ठ और निज कुष्ठ में बहुत अंतर होता है। उपदंशजन्य कुष्ठ उपदंश होने के बाद होता है। इसमें दोष दृष्य नहीं होते, अन्य कुष्ठों के समान इसके भेद या लक्षण भी नहीं होते। इसमे तो एक ही प्रकार का लक्षण होकर धीरे-धीरे गलित कुष्ठ में परिणत हो जाता है। सर्वप्रथम कान की बाली (लौ), नाक के अग्र भाग और गाल पर लाल-लाल चकते होकर फिर सम्पूर्ण शरीर में वैसे ही चकते होने लगते हैं। हाथ-पाँव की अंगुलियाँ फूलने लगतीं, इनमें स्पर्श-ज्ञान का अभाव हो जाता है और इतनी शून्यता आ जाती है कि जलने तक का भी ज्ञान नहीं होता। बाद में धीरे-धीरे सूजन फूटने लगती हैं और उसमें से पीब निकलने लगती है। सर्वांग में शोथ (सूजन) हो जाता, शरीर का अंग विकृत हो टेढ़ा-मेढ़ा होने लगता है, जिससे रोगी देखने में डरावना मालूम पड़ता है। इस अवस्था में भी हरताल भस्म देने से अच्छा लाभ होता है।

हरताल भस्म वातरक्त की अचूक दवा है। विशेषतया वात या कफ प्रधान वातरक्त के लिए तो बहुत ही अच्छी दवा है। इस रोग में हरताल भस्म आधी रत्ती घी के साथ खाकर ऊपर से गुर्च का क्वाथ पीने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसी तरह कफ प्रधान वात-रक्त में हरताल भस्म आधी रत्ती, करंज के पत्तों के रस में मिश्री मिलाकर देना हितकर है। वातरक्त शमन हो जाने पर भी किसी-किसी को खुजली, फोडे-फुन्सी आदि रक्त दुषित हो जाने पर चकत्ते होना आदि उपद्रव होते हें, ऐसी अवस्था में हरताल भस्म आधी रत्ती, चोपचीनी चूर्ण ४ रत्ती में मिला मधु से देना ऊपर से खदिरारिष्ट २ तोला या महामंजिष्ठादि अर्क २ तोला पिलाना अच्छा है।- औ.गु.ध. शा.

कुष्ठ रोग में- हरताल भस्म २ रत्ती, वाकुची चूर्ण १ माशा, सारिवाद्यासव के साथ देना हितकर है। पुराने उपदंश रोग में हरताल भस्म आधी रत्ती, गन्धक रसायन १ रत्ती, अनन्तमूल का क्वाथ या अर्क के साथ देना हितकर है। चर्म-रोग में हरताल भस्म आधी रत्ती, गिलोय सत्व ४ रत्ती मधु के साथ दें, ऊपर से मंजिष्ठादि अर्क पीने को देने से यह रोग दूर हो जाता है। शीतांग और कफ प्राधान्य सन्निपात में हरताल भस्म आधी रत्ती अदरख-रस के साथ देने से मूर्च्छा और शीतांगपना आदि दूर होकर रोगी जल्द ही होश में आ जाता है। उर्ध्वश्वास रोग में बहेड़ा की मींगी या सोमलता चूर्ण २-२ रत्ती के साथ हरताल भस्म १/२ रत्ती मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है। अपस्मार (मृगी) में हरताल भस्म आधी रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण १ माशे में मिलाकर घी और मिश्री के साथ देना श्रेष्ठ है। विषम ज्वर में कुनैन की जगह इसका व्यवहार करें। वातव्याधि में दशमूल क्वाथ के साथ देना लाभप्रद है।

❖❖❖

कूपीपक्व-रसायन-प्रकरण

इस प्रकरण में पारद और गंधक के योग से कूपीपक्व द्वारा अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम दवाएँ तैयार करने एवं उनके गुण-धर्म के विषय में विवेचन किया जायेगा।

रस-शास्त्रियों का मत है कि पारद अनेक प्रकार के रोगों का नाशक है, अतएव इसका नाम रस, रसेन्द्र, सूत, पारद आदि रखा गया है। रस-शास्त्रियों ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए इसके नामों का बड़े ही सुंदर ढंग से वर्णन किया है। यथा-

रसनात् सर्व धातूनां रस इत्यभिधीयते।
जरारूङ्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसो मतः।।
रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तितः।
देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः।।
रोगपंकाब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः।। -र.र.स.

अर्थात् सुवर्ण, रजत (चाँदी) आदि धातुओं का भक्षण करने से यह रस कहलाता है। अथवा-जरा (बुढ़ापा), व्याधि (रोग) और मृत्यु का नाश करने के लिये इसका भक्षण किया जाता है। अतएव इसे 'रस' कहा जाता है। अभ्रक आदि आठ महारस तथा गंधकादि उपरसों में श्रेष्ठ होने से 'रसेन्द्र' कहलाता है। संस्कारित करके सेवन करने से शरीर को मजबूत करने के कारण तथा वेधक संस्कार द्वारा स्वर्ण-रजतादि धातुओं के निर्माण का सिद्धिदायक होने से यह 'सूत' कहलाता है। व्याधि रूपी कीचड़ के समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों को उससे पार करने के कारण 'पारद' कहलाता है। आगे जहाँ इसके गुणों का वर्णन किया है, वहाँ लिखते हैं-

मूर्च्छातों गदहृत्तथैव खगतिं धत्ते निबद्धोऽर्थदः।
तद- भस्मामयबाधकादिहरणं दृकपुष्टिकातिन्तप्रदम्।।
वृष्यं मृत्युविनाशनं बलकरं कान्ताजनानन्दम्।।
शार्दूलातुलसत्वकृत् क्रमभुजां योगानुसारस्फुटम्।।

हमारे प्राचीनाचार्यों ने बहुत सूक्ष्म रूप से अनेक क्रियाओं द्वारा इसके कूपीपक्व रस, पर्पटी, बटी, भस्मादि अनेक कल्प बना और रोगादिकों पर परीक्षा कर इसके गुणों का संस्कृत-साहित्य में वर्णन किया है।

इसी आधार पर तत्कालीन रस-शास्त्रियों ने पारद मिश्रित अनेक औषधियाँ बना कर प्रयोग करना शुरू किया। इसमें उन्हें अपूर्व सफलता मिली। सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही, कि बहुत थोड़ी मात्रा में और शीघ्र फल देने वाली यह अपूर्व औषध निकली।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरूचेरप्रसंगतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः।।
तथा च-
साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्ववेदिभिः।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोतःऽश्रेष्ठ उच्यते।।

अर्थात्-साध्य बीमारियों के लिए तो आयुर्वेद तत्वज्ञों द्वारा अनेक तरह की दवाओं का उल्लेख किया गया है, किन्तु यह (रस) असाध्य रोगों में भी हितकर होता है। इसी कारण रस (पारद या पारदीय औषधों) को सब औषधों से श्रेष्ठ कहा जाता है।

आज भी इसकी कज्जली या भस्म आदि (रस सिंदूर आदि) के योग से अनेक साध्य-असाध्य रोगों में लाभ पहुँचाया जाता है। अन्य चिकित्सा-पद्धति वालों के लिए यह आश्चर्य की बात है कि वैद्य लोग प्राय: सब रसों में पारद मिलाते हैं तथा वे सब रोगों में प्रयोग करके सफलता प्राप्त करते हैं।

आजकल उन्नत कहे जाने वाले चिकित्सा व्यवसायियों में इस बात का उद्योग हो रहा है, कि ऐसी औषध मनुष्यों को सेवन कराते रहना चाहिये, जिससे उनके अन्दर रोगों का, आक्रमण सहसा न होने पावें। इस प्रकार की पद्धति को वे लोग 'प्रतिषेधक चिकित्सा' कहते हैं, और इस काम के लिए अनेक प्रकार की 'सिरप' और इन्जेक्शन व्यवहार में लाये जाते हैं, किन्तु उनका अभी तक निश्चित फलप्रद व्यापक गुण स्थित नहीं हुआ है। अमेरिका और जर्मनी में इस प्रकार के अनेक परीक्षण हो रहे हैं, और वहाँ पर भी पारद के यौगिकों पर ही विशेष मत मिल रहे हैं, कि यह संक्रामक रोग निवारक है और थोड़ी-सी मात्रा में भी अच्छा लाभ प्रदान करता है। अस्तु।

इसके निरन्तर सेवन से शरीर मे मल संचय नहीं हो पाता और शरीर की जो स्वाभाविक क्रियाएँ हैं, वे सतत होती रहती हैं। इसके सेवन से रक्तगण बढ़ते हैं, जिससे मनुष्य बलवान रहकर बराबर अपने कार्य करने में समर्थ रह सकता है, परंतु उनके अभी तक जितने भी यौगिक प्रयोग सामने आये हैं, वे सभी विषात्मक हैं और अधिक समय तक सेवन कराने से शरीर में संग्रहीत हो सहसा पारदीय विष उत्पन्न कर मारक हो सकते हैं। इसी भय से उन देशों में अभी तक इसका प्रचार रूका हुआ है।

परन्तु जर्मनी ने हमारे 'जरारूङ्मृत्युनाशन:' वाक्य की परीक्षा प्रारंभ कर दी है, और वे लोग चंद्रोदय का निर्माण तथा उपयोग भी करने लगे हैं। जर्मनी का बना हुआ चन्द्रोदय आज भारतवर्ष के बाजारो में अनेक जगह बिकते हुए देखा जाता है। यदि यही क्रम चालू रहा, तो थोड़े समय मे जर्मन चन्द्रोदय का उपयोग सम्पूर्ण संसार में होने लगेगा।

पारद का सुवर्ण और गंधक योग से 4 दिन की निरन्तर आँच से बना हुआ यह रक्त वर्ण का चन्द्रोदय अथवा मकरध्वज या मकरध्वज के यौगिक विधि-पूर्वक अल्प मात्रा में निरंतर सेवन (पथ्यपूर्वक) करें, तो बिना किसी प्रकार के विष-प्रभाव से मनुष्य सबल रह कर अपना नित्य नैमित्तिक कार्य भली-भाँति कर सकता है।

पारद के गुणों का जो वर्णन लिखा हुआ है, वह प्राय: सब ठीक ही है, किन्तु आवश्यकता है, कि उनका ज्ञान-पुर:सर उपयोग किया जाये तो असम्भव प्रतीत होनेवाले गुण भी प्रत्यक्ष और सिद्ध-फलप्रद हो सकते हैं।

पारद और कूपीपक्व रसायन

यह बात ध्यान में रखने की है कि आयुर्वेद में अकेले पारद का उपयोग औषध के लिये बहुत कम होता है। विशेषकर गंधक के साथ इसको मिलाकर कज्जली करके अथवा इससे कूपीपक्व रस तैयार किये जाते हैं। इन रसों में मकरध्वज, चन्द्रोदय, रससिन्दूर, मल्ल सिन्दूर आदि आम तौर से प्रसिद्ध हैं, तथा इन रसों को बनाने के लिये भी विशेष प्रकार की विधियाँ प्रचलित हैं, जिनका ज्ञान होना प्रत्येक औषधि निर्माता वैद्य के लिये अत्यावश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आयुर्वेदिक रसायनशाला में कूपीपक्व रस-निर्माण के यंत्र तथा उनकी विधियाँ प्रधान स्थान रखती हैं। इसलिये यहाँ पर थोड़ा-सा कूपीपक्व रस-निर्माण के सम्बन्ध में विवेचन करना आवश्यक है।

कूपीपक्व रसों को तैयार करना वैद्य समाज में बहुत कठिन माना जाता है। कई बार औषधि कच्चे रह जाती है और कई बार जैसा रंग चाहिए वैसा तैयार नहीं होता। इस पर विचार करने से दो-तीन कारण ही इसके प्रधान मालूम पड़ते हैं।

सबसे पहला कारण इन रसों को दी जाने वाली आँच के विषय में ठीक ज्ञान का न होना है। रसायनशास्त्र या धातुवाद के अन्दर आँच का समुचित ज्ञान होना परमावश्यक है। गंधक और पारद के यौगिक (मिश्रण) बनाने के लिये कितनी आँच की आवश्यकता होती है, इसका ज्ञान जब तक हमे नहीं होगा, तब तक हम कूपीपक्व रसायन को ठीक बनाने में सफल नहीं हो सकते, इसके लिये नीचे लिखी बातों का ज्ञान होना परमावश्यक है। कूपीपक्व रसायन की ४ स्थितियाँ होती हैं। यथा-

१. द्रव होना। २. उड़नशील होना। ३. गले में जाकर लगना। ४. अधिक उत्ताप से द्रव्य का नष्ट हो जाना।

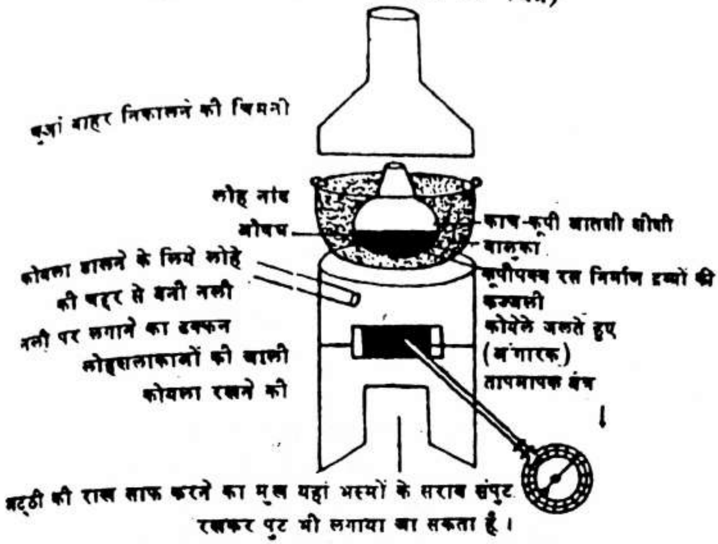
ये बातें यदि प्रत्येक कूपीपक्व-रसायन-निर्माण के प्रारम्भ में ध्यान में रखी जाये तो रस तैयार करते समय उसके बिगड़ने या यौगिक के न बनने या शीशी टूटने का भय नहीं रहता। इसमें कोई संशय नहीं कि हमारे प्राचीन रसायनाचार्यों ने प्राचीन रसग्रंथों में मन्द और तीव्र इस प्रकार से आँच देने के लिये लिखा है, परन्तु मंद से कितनी मंद आँच की तरफ आचार्यों का ध्यान था, इसका कहीं स्पष्ट उल्लेख देखने में नहीं आता। यहीं बात मध्यम और तीव्र आँच के विषय में है। जो लोग रसक्रिया करने के अभ्यस्त हैं, वे तो अपने अन्दाज से भी काम चला लेते हैं। किन्तु जो इस क्रिया में नवीन प्रवेश करना चाहते हैं, उनके लिये तो इसे समझने में बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। यही कारण है कि उन लोगों द्वारा बनाया गया कूपीपक्व रसायन कभी तो बहुत अच्छा बन जाता है और कभी अनेक तरह की परेशानी उठाने पर नहीं बन पाता है एवं कभी-कभी तो तीव्राग्नि का परिमाण अत्याधिक कर देने आदि असावधानियों से शीशी टूटकर पूरा द्रव्य ही नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए आँच को मन्द, मध्यम, तीव्र स्थिति के परिमाण का सम्यक् ज्ञान होना परमावश्यक है।

इसी कमी को दूर करने के लिये पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने कई प्रकार के ताप-मापक यंत्र बनाये हैं, जिनसे हम किसी भी आँच का प्रमाण बिल्कुल सही तौर पर ज्ञात कर सकते हैं। इन्हीं यंत्रों में एक 'थर्मोस्कोप' नामक यंत्र हैं, जो भट्टी के द्वार के सामने रखा जाता है। इसमें एक लाल रंग का काँच लगा रहता है। यह काँच, आँच की किरणों को शोषित करता है और उन किरणों के प्रभाव से उसके अन्दर सुई घूमती है। जितनी आँच होती है, उसी अंक पर वह सुई जाकर ठहरती है। इस यंत्र की सहायता से हम ताप-ज्ञान अच्छी तरह कर सकते हैं। (देखें चित्र पृ. १९१ पर) वास्तव में अगर कूपीपक्व रसायन बनाते समय हमे ताप का ज्ञान अच्छी तरह हो जाये, तो हम इस कार्य में कभी असफल नहीं हो सकते।

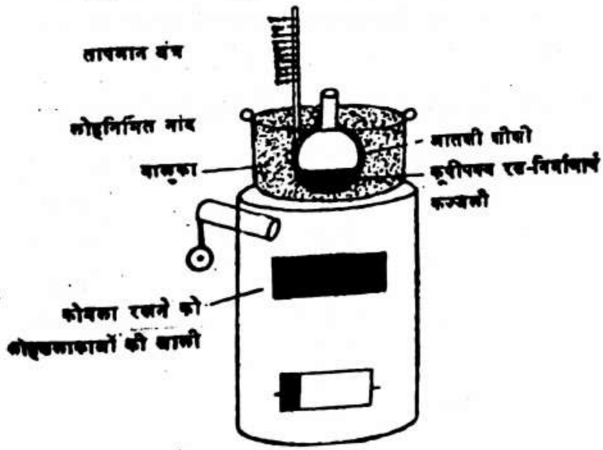
उत्ताप का सिद्धांत

यह देखा जाता है कि मौलिक पदार्थों के यौगिक पदार्थों के निर्माण का कार्य तथा उस यौगिक के पुनः मौलिक रूप में पहुँचने का कार्य प्रकृति अपनी उत्ताप, प्रकाश, विद्युत, काल आदि अनेक शक्तियों द्वारा सदा करती है। प्रकृति में विभिन्न पदार्थों की रचना व विनाश का कार्य कितने उत्ताप पर किस प्रकार से कितने समय में होता है, इसी बात को देखना और समझना रसायन-शास्त्र का कार्य है।

बालुका यन्त्र (प्रथम प्रकार का चित्र)



बालुका यन्त्र (द्वितीय प्रकार का चित्र)



जितने भी धातु-उपधातु और वायु तत्व हैं, ये परस्पर जब एक दूसरे से मिलते हैं या मिलना चाहते हैं, तो इस मिलन में या तो इनके भीतर का उत्ताप यौगिक बनाने में सहायक होता है या बाह्य उत्ताप सहायता पहुँचाता है। जब तक उत्ताप, प्रकाश विद्युतादि शक्तियों की सहायता नहीं मिलती कोई भी पदार्थ, एक रूप से दूसरे रूप में परिणत नहीं होते।

पाठक कहेंगे कि पांशुजम्, कैल्शियम, फास्फुरिका आदि कुछ धातु, अधातु तत्व ऐसे भी ज्ञात हुए हैं, जिन्हें खुली हवा में रखने पर वे अपने आप बिना उत्ताप के यौगिक बना लेते हैं। इनको

उत्ताप की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती, किन्तु ऐसा समझना भूल है। ऋतु परिवर्तन से शीतकाल, उष्ण काल का आगमन इस बात को सूचित करता है कि साधारण दशा में भी पृथ्वी पर कुछ न कुछ गरमी रहती है। पृथ्वी पर विद्यमान उत्ताप को देखने पर ज्ञात हो जायेगा कि शीतकाल में भी २०-३० अंश की उष्णता बनी रहती है, तथा उष्ण काल मे वह बढ़कर ९०-१०० अंश की हो जाती है। इस समय साधारणतया निर्धारित किया हुआ शून्य ताप उसको कहते हैं, जिस पर जल जमकर बर्फ बन जाता है। यह शून्य की मात्रा (सीमा) हमारी बनाई हुई है, वास्तव में प्राकृतिक नहीं, नैसर्गिक उत्ताप की संख्या तो इससे (शून्य से) बहुत नीचे अर्थात् २७१° शतांश नीचे जाकर प्रारम्भ होती है। इस मात्रा पर यदि कैल्शियम, पांशुजम्, फास्फुरिका आदि को उष्मजन के साथ मिलाकर रख भी दें तब भी वह निष्क्रिय रहते हैं, मिलने का नाम तक नहीं लेते, मानों उनमें कोई सत्ता है ही नहीं। इसीलिये साधारण स्थिति में तो बाह्याभ्यंतरित ताप रहता ही है, जो उनको क्रियाशील करता है। पदार्थों के यौगिक निर्माण तथा उनके विच्छेद के लिये भी तो शक्ति चाहिए। वह शक्ति सदा उत्ताप, प्रकाश आदि के रूप में ही काम करती रहती है।

किसी पदार्थ की रचना के लिए कितनी और कैसी शक्ति की कितने समय तक आवश्यकता है? इसको समझना ही पदार्थ-निर्माण विद्या को समझना है। जब तक हमें उत्तापादि शक्तियों की सही मात्रा और समय का ज्ञान न होगा, हम कभी भी पदार्थों के सही यौगिक निर्माण नहीं कर सकते। धातुवाद या रसायनशास्त्र में तो यह बात विशेष कर समझने की वस्तु होती है। कोई रसायनशास्त्री तब तक रसायन शास्त्री नहीं बन सकता, जब तक वह प्रत्येक व्यवहृत होनेवाले पदार्थों की इस स्थिति को न जानता हो। तत्वों के द्रवांक और क्वथनांक की एक सारणी हमने इसलिए यहाँ नीचे दर्शाई है, ताकि वैद्य उससे मौलिक पदार्थों के द्रवणांक व क्वथनांक को ठीक प्रकार से जान सकें।

मौलिक पदार्थों के द्रवणांक और क्वथनांक की सारणी

नाम पदार्थ		द्रवणांक शतांश में	क्वथनांक शतांश में
अञ्जनम्		६३०	१४४०
एलुमीनियम	शु.	६५६	१८००
इरीदियम		२२९०	२५५०
औस्मियम्		२२००	३७५०
काडमियम्		३३२	७८०
क्रोमियम्		१४८९	२२००
कौबाल्टम्		१५६४	२७५०
कैल्शियम्	शु.	७८०	–
जर्मेनियम्		५८०	–
जिर्कोनियम्		१३००	२०००
तंगस्तनम्		३०८०	३७००
टायटेनियम्		२५००	–
तन्तुलम्	शु.	२९१०	३६००
ताम्रम्		१०८४	२३१०

नाम पदार्थ		द्रवणांक शतांश में	क्वथनांक शतांश में
थैलियम्		१६९	–
निकलम्		१४५२	२३३०
पलादियम्		१७१०	२४५०
पारदम्		३८२	६७५
पांशुजम्	शु.	६२.०४०	७५८
प्लाटिनम्		१७१०	२४५०
प्रीजियोदीमियम्		९४०	–
बिस्मिथम्		२६९	२४२०
बरियम्		८५०	–
बेरीलियम्		८५०	–
मैंगनजम्		१२०७	१९००
मैग्नीशियम्	शु.	६३३	१९००
मोलिवदेनियम्		२२०५	११२०
यशदम्		४१९.०	३२००
रजतम्		९६२	९१८.०
रूबीडियम्	शु.	३९.००	१९५५
रूथेनियम्	बा.	१९००	६९६
रौडियम्		१९०७	२५२०
लीथियम्		१८०.१	२५००
लैन्थेनम्		८१०	१४००
लौहम्		१५०५	–
बंगम्		२३२	२४५०
वनाडियम्		१६२०	२२७०
समेरियम्	शु.	१६५०	२५००
सीसम्		३२७	–
सीजियम्	शु.	४५०	१५२५
सीरियम्	शु.	६२३	६७०
सैंधजम्	शु.	९५.६	९२१
स्ट्राशियम्		९००	८७७
स्वर्णम्		१०६३	–
सोमलिका	शु.	२००	१९५५
वालिका		११४.०५	
टंकणिका		२०००.०२५	४४४.५
नैलिका		११४२	१८४.३५०
स्फुरिका	शु.	४४.१	२८७

कज्जलिका और शैलिका ये दोनों तत्व द्रव नहीं होते।

किसी पदार्थ में उत्ताप की मात्रा जानने की सरल विधि क्या है?

इस समय प्रत्येक वस्तु की मात्रा को तोलने के लिये विद्वानों ने ऐसे-ऐसे अच्छे मापक यंत्र निर्माण कर लिये हैं कि जिनकी सहायता से दृश्य-अदृश्य, भौतिक-अभौतिक सभी प्रकार के पदार्थों के परिमाण को सही-सही जाना जा सकता है।

मोमबत्ती, लैम्प, गैसबत्ती, विद्युतबत्ती, चूल्हा और भट्टी, आदि में कितना ताप बना रहा है; इसको नापने के लिए विद्वानों ने कई प्रकार के यंत्र बनाये हैं, जिनका नाम 'उत्ताप-मापक-यंत्र' (थर्मोस्कोप-थर्मामीटर) है। साधारण उत्ताप-मापक-यंत्र तो पारद को काँच की नली में बन्द करके बनाया जाता है, जो थर्मामीटर नाम से प्रसिद्ध है। किंतु जहाँ २०० शतांश से १२०० शतांश तक के अधिक उत्ताप को नापना हो, वहाँ यह काम नहीं देता। यहाँ तो प्लेटिनम् निकिल क्रोमियम आदि धातु-मिश्रित धातु की डण्डी के उच्च उत्ताप-मापक-यंत्र बनाये जाते हैं, जिनके आगे ताप सूचक या ताप लेखक सूई लगी होती है, जो आगे चलती हुई उत्ताप की मात्रा को बताती हुई चलती है।

एक और उत्ताप-मापक-यंत्र ताप-किरण-शोषण के सिद्धान्त पर बना है। यह यंत्र भट्ठी में नहीं लगाया जाता प्रत्युत इस यंत्र के रक्तवर्ण-ताल (लाल-रंग का शीश लगे भाग) को भट्ठी के द्वार के सामने करके रखने से जो तापकिरणें लाल वर्ण के शीशे पर पड़कर अभिशोषित होती हैं, उन शोषित किरणों के प्रभाव से लेखांकन करने वाली सूई गतिशील होती है और वह अभिशोषित मात्रा के अनुसार ताप की मात्रा को अंकित कर देती है। इस यंत्र का नाम थर्मोस्कोप है। इससे उत्ताप की मात्रा का सही-सही ज्ञान होता है। इसी प्रकार अन्य कई प्रकार के उत्ताप-मापक-यंत्रों का भी आविष्कार हुआ है।

कौन-कौन से रस कितनी उत्ताप मात्रा पर बनते हैं?

पारद के यौगिक निर्माण करते समय तीन-चार बातों को ठीक प्रकार से समझ लेना आवश्यक है।

१. - जो यौगिक बनता है, वह कितने उत्ताप पर यौगिक में परिणत होता है?

२. - यौगिक बनने पर वह कितने उत्ताप पर जाकर उड़ने लगता है?

३. - यौगिक निर्माण और बाष्पी-भवन के निर्माण में कितना अंतर रहता है?

४.- कितने उत्ताप पर जाकर इसका यौगिक विच्छेद होता है?

ये बातें यदि प्रत्येक यौगिक निर्माण के सम्बन्ध में ज्ञात हों, तो कूपीपक्व रस तैयार करते समय उसके बिगड़ने या यौगिक के बदल जाने या टूट जाने का भय नहीं रहता।

कण रूप रस सिंदूर-निर्माण विधि

एक गुना गन्धक और छः गुना पारद डाल कर खरल करें तो इसमें का कुछ पारद कज्जली में परिणत हो जाता है, कुछ बाकी रह जाता है। इन दोनों को एक लौह सम्पुट में रखकर लगभग २०० शतांश अग्नि पर घंटा-डेढ़ घंटा रखें तो ये दोनों परस्पर मिलकर यौगिक में परिणत हो जाते हैं। इसे शीतल करके निकालने पर नीचे छोटे-छोटे चमकीले कण के रूप में इन दोनों का यौगिक द्रव्य प्राप्त होता है। अब इसे काँच की कूपी में डालकर और काँच कूपी का मुख बंद करके, अग्नि पर चढ़ा दें, और २७० से २८०° शतांश का मध्यम उत्ताप देते रहें, तो बहुत ही उत्तम, खस्ता (अर्थात्) कण (रवा) रूप में रस सिंदूर शीशी के तल भाग से कोई २-३ इंच

१. समय के परिणाम का सम्बन्ध पाच्य द्रव्य के परिमाण पर निर्भर करता है। थोड़ा पाच्य द्रव्य हुआ तो थोड़ा समय लगता है, किन्तु यदि पाच्य द्रव्यों का परिमाण अधिक हुआ तो समय अधिक लगेगा।

ऊपर शीशी में लगा हुआ मिलेगा। जब आप शीशी तोड़कर रस सिंदूर निकालेंगे तो सारा रस सिन्दूर छोटे-छोटे कणों में टूट जायेगा। इसकी रचना वैसी ही होगी जैसा कि जर्मनी की मर्क कम्पनी का मकरध्वज होता है। यदि इसमें बलि (गन्धक) की मात्रा अधिक डाल देवें तो फिर सिन्दूर की पपड़ी जो उड़कर कणों के रूप में जमती चली जाती है, जिसके मध्य में बलि की बाष्प में घुसकर जमती चली जाती है। वे मिलकर उसे कठोर कर देती हैं। यौगिक निर्माण से यदि बलि (गन्धक) अधिक न हो तो रस सिन्दूर कभी कठोर पपड़ी का नहीं बनता।

रससिन्दूरादि कूपीपक्व रसों को कभी एक बार में नहीं बनाना चाहिए-

वैद्य रस सिन्दूर बनाते समय कज्जली को जिस शीशी में चढ़ाते हैं, उसी शीशी में उसको एक ही बार में पका लेते हैं, यह विधि ठीक नहीं है। पहले पारद और बलि (गन्धक) को मिश्र बर्तन में बंद करके पकाकर यौगिक बना लेना चाहिए। यदि इसमें कुछ स्वर्ण मिलाकर यौगिक बनाया जाय तो पारद-बलि और स्वर्ण की विद्यमानता में शीघ्र यौगिक बना लेता है, इसमें स्वर्ण उत्प्रेरक का काम देता है। पारद के यौगिक बन जाने पर फिर उसे निकाल कर दूसरी काँच की कूपी में चढ़ाकर फिर उसे कण रूप में निर्माण करना चाहिए। रस सिन्दूर का यौगिक २५५० शतांश के लगभग उत्ताप पर बाष्प में परिणत होता है ओर २७०.२-८०° शतांश के उत्ताप पर वेग से उड़ता रहता है। यदि उत्ताप अधिक बढ़ जाय तो शीशे के गले पर लगने वाली बलि में वह आकर लगता है, और वहाँ का बलि फिर जलने लगता है। अत: इसके उत्ताप को ध्यान से देखते रहना चाहिए।

रसायनाचार्यों ने मंद, मध्यम और तीव्र अग्नि देने का आदेश दिया है। हम तो उसका अभिप्राय यही समझते हैं कि मन्द अग्नि पर तो यौगिक निर्माण क्रिया होती है और मध्यम तथा तीव्र अग्नि पर उसे बाष्पशील करके जमा लेते हैं। शास्त्र वर्णित मन्द-मध्यम और तीव्र अग्नि का अभिप्राय उत्ताप की न्यून, मध्यम और तीव्र मात्रा की ओर संकेत है। वह मन्द अग्नि जिस पर यौगिक निर्माण करते हैं, और वह मध्यम तथा तीव्र अग्नि जिस पर रस उड़कर कूपी के गले पर आकर लगते हैं।

यह देखा गया है कि सब रस एक ही मात्रा का उत्ताप नहीं लेते, हर एक रस भिन्न-भिन्न उत्ताप पर बनते हैं। हम उनमें से रस कपूर का उदाहरण देते हैं।

रसकपूर-निर्माण-विधि उदाहरणार्थ-

रसकपूर बनाते समय रस सिन्दूर की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में उत्ताप की आवश्यकता होती है। रसकपूर १७५° शतांश के उत्ताप पर यौगिक निर्माण करता है और इसी उत्ताप पर बाष्पशील होने लगता है और २५२° शतांश के उत्ताप पर तो इसका यौगिक विच्छेदित होने लगता है। अत: इसको रस सिन्दूर जैसा मंद-मध्यम और तीव्र उत्ताप नहीं देना चाहिए। यदि हम रस कपूर चढ़ाकर रस सिन्दूर वाला उत्ताप इसको दे दें, तथा वालुका पर धान डालकर उसकी खील बनने की प्रतिक्षा करें तो प्रतीक्षा तक के समय में ही इसका परिणाम यह होगा कि या तो शीशी टूट जायेगी या पारद भिन्न होकर यौगिक बिगड़ जायेगा, अत: इसे बड़ी सावधानी से कम आँच (उत्ताप) पर बनाना चाहिए।

रस कपूर में पारद के एक परमाणु से लवणजन के दो परमाणु जब संयुक्त होते हैं तब रस कपूर का एक अणु बनता है। रस कपूर पारद और लवणजन वायु का यौगिक है। जब तक बलिकाम्ल (गंधक के तेजाब) का आविष्कार नहीं हुआ था, तब तक इसे निम्नलिखित विधि से बनाते थे।

रसकपूर-निर्माण-की हमारी अनुभूत विधि

शुद्ध पारद ३० तोला, नौसादर १५ तोला, फिटकरी १५ तोला, सुहागा ८ तोला, नमक ८ तोला, सज्जीकाली १० तोला, कसीस हरा ५ तोला, यवक्षार २ तोला, सोमल १ तोला, लेकर इन सब वस्तुओं को कूटकर उसमें पारद मिला दें, और इसे एक बड़े घड़े में डालकर उसका मुख बंद करके अग्नि पर चढ़ा दें। इसको १८०-१८५° शतांश के उत्ताप पर लगभग ७-८ घंटे रखें, फिर शीतल होने दें। पश्चात् घड़े को तोड़क देखें उक्त वस्तुओं के ऊपर के भागों में रस कपूर सूच्याकार कणों की तुर्रियाँ दिखायी देगी। जहाँ तक उस पदार्थ में रस कपूर का मिश्रण होगा, वहाँ तक वह वस्तु-भाग बहुत भारी होगा। उसे एकत्र करके एक काँच कूपी में डालकर पुन: शीशी का मुख बन्द करके वालुका यंत्र में चढ़ाकर लगभग १७५° शतांश के उत्ताप पर उसे ७-८ घंटा अग्नि दे। ऐसा करने से सारा रस कपूर उस द्रव्य से निकलकर शीशी के गले के आसपास जाकर लग जाएगा। उक्त विधि से हमने बीसों बार रस कपूर तैयार किया है। बहुत उत्तम बनता है। इस विधि से बनाने में कभी-कभी पारद का कुछ-न-कुछ अंश अयौगिक रूप मे जैसा का तैसा रह जाता है। यह त्रुटि है। इतना होते हुए भी यह रस कपूर आधुनिक समय के बाजारू रस कपूर से उत्तम और गुणदायक होता है, किंतु इस विधि से रसकपूर बनाने से व्यापारिक रूप में सस्ता नहीं पड़ता। इसी प्रकार इसके निर्माण की और भी विधियाँ हैं, किन्तु इन विधियों से बना रस कपूर महंगा पड़ता है। अत: इसके बनाने की कोई अन्य विधि ढूढ़ी जाने लगी।

दारचिकना बनाना

जितना रस कपूर हो उतना उसमे पारद डालकर पीस लें, और उसमे सोमल, फिटकरी, सुहागा और मैगनीज कीऊष्माइद अष्टमांश मिलाकर इसको फिर उसी १७५° शतांश के उत्ताप पर चढ़ाकर पाक करें, तो पुन: डाला हुआ पारद उस रस कपूर के साथ संयुक्त होकर एक दूसरा लवणाइद (ता.ल.) नामक यौगिक निर्माण करता है। जिसको दारचिकना या केलोमल कहते हैं। इस यौगिक के सूच्याकर कण नहीं बनते, प्रत्युत यह सफेद पपड़ीदार डाली बनता है।

रसकपूर और दारचिकने में अन्तर

रसकपूर १०० भाग ठण्डे जल में लगभग ६।। भाग से कुछ अधिक घुल जाता है और उबलते हुए जल मे यह एक तोला तल में ६ माशे तक घुल जाता है। यह हलाहल और ईथर में भी घुल जाता है, किन्तु दारचिकना न तो जल में घुलता है, न हलाहल (अल्कोहोल) में, न ईथर में, पवनाम्ल में या अम्लराज में अवश्य घुल जाता है। यह रस कपूर से अधिक विषाक्त होता है और त्वचा पर लेप करने से त्वचा को जला डालता है और इसका जख्म (घाव) देर से भरता है। यह तीव्र रेचक है। -कू.प.र.नि.वि.

दूसरी बात, जिन चीजों को हम रस निर्माण के लिये उपयोग में लेते हैं उनकी शुद्धता और उत्तमता तथा उसके परिमाणों की तरफ हमको पूरा ध्यान देना चाहिए। शास्त्र में जो निर्माण प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है, उसके आधार पर तथा वैज्ञानिक तत्व को समझते हुए हम निर्माण-कार्य करें तो अधिक उत्तम औषध बन सकती है।

रससिन्दूर, मकरध्वज इत्यादि कूपीपक्व रसों को बनाते समय हम उसमें दुगुना, चौगुना और छ: गुना गन्धक जला देते हैं और यह भी निश्चित बात है कि जितना अधिक गन्धक जलने से उस यौगिक की रसायन-क्रिया में कौन-कौन से प्रभाव उत्पन्न होते हैं और यह क्यों अधिक प्रभावशाली होता है, उसका भी पूरा ज्ञान होना चाहिए, ताकि हमारी क्रिया विशेष रूप से सफल हो।

कूपीपक्व रस अनेक प्रकार के होते हैं। उन सभी को समझने के लिये साधारणतया दो भेद किये जा सकते हैं। पहला 'तलस्थ' और दूसरा 'उर्ध्वलग्न'।

पारद जितनी देर तक अग्नि पर स्थित रहेगा, उतना ही गुणकारी होगा, अतएव, तलस्थ प्रकार विशेष गुणदायक होता है।

कूपीपक्व रसों के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें

पारद के साथ धातुओं का मिश्रण करना- पारद के साथ नाग, बंग, स्वर्ण, चाँदी इत्यादि धातुओं को मिलाना हो, तो उसे दो प्रकार से मिलाया जा सकता है-

(१) पहली विधि तो यह है कि धातु को गलाकर उसी गली हुई धातु में पारा डालकर मिला दें। फिर उसे अग्नि पर से उतारकर रख लें।

(२) दूसरी विधि यह है कि सोना, चाँदी के वर्क को खरल में डाल पारद के साथ घोंट लें।

पारद के साथ गन्धक मिलाना- गन्धक के साथ पारद को डालकर, खरल में घोंटने से काले रंग की कज्जली बन जाती है। कूपीपक्व रसों को बनाते समय जहाँ गन्धक और पारे की कज्जली में अन्य धातु भी मिलाना हो, वहाँ प्रथम कज्जली बना फिर उसमें अन्य धातु मिलावें। अगर पारद से धातुओं का मिश्रण करना हो, तो प्रथम धातुओं का मिश्रण करके फिर गन्धक के साथ उसकी कज्जली बनानी चाहिए।

भावना देना- अनेक कूपीपक्व रसों में भावना भी देनी पड़ती है। ऐसे रसों में जिस वनस्पति के रस की भावना देनी हो, उसका रस एक साथ न डाल कर धीरे-धीरे उतना ही रस डालें जिससे दवा तर हो जाय, फिर घोंटे। जब दवा गाढी हो जाय तब फिर स्वरस डालें। इस तरह जब पूरा स्वरस समाप्त हो जाय, तब दवा को घोंटकर खुश्क बना धूप में सुखाकर, कूपीपक्व रस के लिये आतशी शीशी में भरकर चढ़ाये।

कूपीपक्व रस बनाते समय अगर उस कूपीपक्व में शास्त्र विधिनुसार गन्धक अधिक डाला जाता है, तो उसका द्रव्य होने के बाद जलना आवश्यक हो जाता है। ऐसे समय में जब कि शीशी के मुँह पर गन्धक जलने लगता है और शीशी के मुँह से गन्धक की लपटें उठने लगती हैं तो कई वैद्य घबरा जाते हैं कि कहीं शीशी टूट न जाये और वास्तव में यदि शीशी का मुँह तंग हो और उस तंग मुँह में गन्धक भर जाय तो शीशी टूटने का डर भी रहता है, ऐसे समय में लोहे की छड लेकर उसको शीशी के गले में फेरना चाहिए। यदि गन्धक जल गया हो तो लोहे की सलाई (छड़) को आग में लाल करके उससे गंधक को नीचे (शीशी में) गिरा देना चाहिए। इस प्रकार उस शीशी का मुँह तब तक खुला रखना चाहिए जब तक वेग से ज्वाला निकलना बंद न हो जाय। जब गन्धक जल जाता है तब रस-निर्माण होता है। उस समय शीशी में खड़िया मिट्टी की बनाई गई डाट लगा गुड़ और चूना मिलाकर उससे संधि बंद कर देना चाहिए।

ऊर्ध्वलग्न रसों में जब गन्धक पारद से अधिक डाला जाता है, तब उसका जलना निश्चित रहता है। उस समय यदि आँच लगने के कारण गन्धक जलने से रह जाय तो आँच की मात्रा बढ़ा दें। फिर यदि शीशी के भीतर काफी आँच न लग रही हो तो एक मिट्टी का छोटा घड़ा लेकर उसके पेंदे में इतना बड़ा छेद कर दें जो उस शीशी के मुख भाग को खुला रखकर बाकी वालुकायंत्र को अपने पेट में छिपा लें। उस घड़े को वालुका यंत्र पर इस प्रकार औंधा करके ढक देना चाहिए कि वह वालुकायंत्र को चारों तरफ से ढक लें, इस क्रिया से थोड़ी देर में ही गन्धक जलने लगेगा और उसकी लपटें भी ऊपर निकलने लगेंगी।

गन्धक की ज्वाला केवल रस सिन्दूर, मकरध्वज इत्यादि रसों में ही नहीं अपितु सभी ऊर्ध्वलग्न रसों में न्यूनाधिक गन्धक जलकर ज्वाला अवश्य उठती है। ज्वाला उत्पन्न होने पर ही इस बात का अनुमान होता है कि अब गन्धक जलने पर रस-निर्माण होगा। जब तक गन्धक नहीं जलेगा तब तक रस भले ही यौगिक निर्माण कर लें, किन्तु वह तल में ही बैठा रहेगा।-कूपी.वी.

अष्टमूर्ति रसायन

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गंधक ६ तोला, शुद्ध हिंगुल १ तोला, शुद्ध मैनशील १ तोला, शुद्ध सोमल १ तोला, शुद्ध हरिताल ६ माशे, शुद्ध रसकपूर ९ तोला, मुर्दासंग ६ माशे, फिटकरी का फूला १ तोला, स्वर्ण वर्क ६ माशे, चाँदी वर्क ६ माशे लेकर (इन सबको मिलाने से इनका भार २२ तोला होता है) प्रथम पारद के साथ स्वर्ण वर्क और चाँदी वर्क मिला कर मर्दन करें, फिर गन्धक मिलाकर सूक्ष्म कज्जली बनावें। पश्चात् अन्य औषधियों को मिला कर सूक्ष्म मर्दन करके कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर दें। फिर वालुकायंत्र में रखकर लगभग ३० घण्टे तक क्रम से मंद, मध्यम और तीव्र अग्नि देकर रसायन सिद्ध कर लगभग १०-१२ घण्टे बाद गन्धक का धुआँ निकल जाने पर (गंधक जल चुकने पर) तुरन्त डाट लगा २० घण्टे तीव्र अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर शीशी के गले में लगे रसायन को निकाल कर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान-१ से २ रत्ती तक अदरख के रस में घिसकर शहद मिला कर दिन में २ बार दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन जीर्ण, उपदंश, परिवर्तित ज्वर, विषम ज्वर, सन्निपात, क्षय, संन्यास (रक्तज मूर्च्छा), भूतोन्माद, अपस्मार, मूत्राघात, कलायखंज (लंगडापन), अपतानक, अपतन्त्रक, धनुष्कप आदि वात विकारों तथा वात-कफ के विकारों को समूल नष्ट करता है।

यह रसायन जीर्ण फिरंग रोग के उपद्रवों के शमन करने के लिये अत्युत्तम औषध है। जिस फिरंग रोगी के विकार अस्थि-पर्यंत पहुँच गये हों, अस्थिव्रण, दाँतों में क्षत, दन्तवेष्ट शोथ, तालु व्रण, मुँह से लालास्राव इत्यादि उपद्रव हो गये हों, इस प्रकार के क्षीण और कृश रोगी को इस रसायन का सेवन करना अतीव लाभदायक है। फिरंग रोगानुबन्ध जन्य क्षय रोग, मस्तिष्क में रक्त दबाव वृद्धि जनित संन्यास, प्रसूता के बच्चों का मरना, उन्माद, अपस्मार, वातबस्ति, वातकुण्डलिका, मूत्राघात, कलायखंज (जिसमें मनुष्य सीधा खड़ा नहीं रह सकता), अपतानक, अपतंत्रक, धनुष्कम्प और आयाम आदि वात विकार तथा अन्य विषजनित रोग इस अष्टमूर्ति रसायन के प्रयोग से सत्वर शमन हो जाते हैं। यदि आक्षेपकादि वात रोग निरनुबन्ध (स्वतंत्र), जीर्णावस्था में हों (फिरंग रोग जनित हों) तो भी आक्षेप शमन के लिये इस रसायन का सेवन अच्छा उपयोगी है।

बार-बार आने वाले परिवर्तित ज्वर से रोगी बहुत कृश, दुर्बल और हताश हो गया हो, सर्वांग में दाह, शरीर कृष्ण वर्ण का, नाखून विकृत और नीलवर्ण के हो गये हों, स्थान-स्थान पर रक्त के धब्बे होते हों, छोटी-छोटी फुँसियाँ सारे शरीर में हो गई हों, इस प्रकार की दशा में इस रसायन का प्रयोग उत्कृष्ट लाभप्रद है।

कृष्ण ज्वर में त्वचा बिल्कुल काली हो जाती है, ज्वर शीत लगाकर आता है, पीत फेनयुक्त वमन, मूत्र पहले की अपेक्षा कृष्ण, अथवा अत्यन्त लाल या अत्यन्त काला होना इत्यादि लक्षण युक्त ज्वर के जीर्ण हो जाने की अवस्था में अत्यन्त दुर्बलता आने पर इस रसायन के प्रयोग से रोगी को नवजीवन प्राप्त होता है।

जीर्ण ज्वर में शरीर कृश होता हो, या आन्त्रिक या सन्निपात में वात-प्रधान लक्षण अधिकांश में प्रतीत होते हों तथा शरीर कृश या दुर्बल हो ऐसे रोगियों को इस रसायन का सेवन अत्यंत गुणकारी है, किन्तु आन्त्रिक सन्निपात में रक्तस्थ दोष विशेष हों अर्थात दाह, रक्तवमन, मोह, शरीर पर मण्डल आदि हों तो इस रसायन के साथ अथवा कुछ ही देर पश्चात् प्रवाल मुक्ता या अन्य सौम्य औषधि भी देनी चाहिये।

उन्माद के विशेषतः भूतोन्माद के आक्षेप में इस रसायन का बहुत अच्छा उपयोग होता है। इसके प्रयोग से मस्तिष्कगत वातवाहिनियों के केंद्र पर तत्काल प्रभाव होता है। हृदय की क्रिया उत्तेजित हो जाती है और सेन्द्रिय विष नष्ट होकर उन्माद शमन हो जाता है।

उपदंश विष के रक्त में लीन हो जाने पर गर्भाशय और उससे संबंधित अवयवों में विकृति होने पर प्रसव काल में अत्यंत त्रास होता है और संतान भी जीवित नहीं रहती। कदाचित् जीवित रही भी तो उपदंश विष से विविध व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह दशा बार-बार प्रतीत होती रहती है। ऐसी दशा में उन्माद होता है, तो रोगिणी हताश, दीन, कृश और निर्बल हो जाती है। असहनशीलता इतनी बढ़ जाती है कि उसकी इच्छा के विरुद्ध थोड़ा सा भी कार्य हुआ कि मूर्च्छित हो जाती है और आक्षेप आने लगते हैं। इस प्रकार की लक्षणयुक्त स्थिति में अष्टमूर्ति रसायान का प्रयोग उत्तम कार्य करता है।

कलायखंज हो जाने पर मनुष्य सीधा नहीं चल सकता, पैर टेढ़े पड़ते हैं। सन्धि बंधनों में शिथिलता आ जाने से चलने में विलक्षणता दृष्टिगत होती है। पैरों की शक्ति नष्ट होती हैं। रोगी बड़े कष्ट से चलता है, अच्छी तरह खड़ा भी नहीं रह पाता, पैर काँपते रहते है। इस रोग में त्रिकास्थि के उपरिस्थित कशेरुकाओं में से पहले और दूसरे कशेरुका के भीतर सुषुम्ना मुख ओर उसके समीपस्थ वात नाड़ियों की विकृति होती है। इस रोग के अनेक निमित्त कारणों में से एक कारण उपदंश विष भी है। यदि रोग की सम्प्राप्ति उपदंश जनित हो, तो अष्टमूर्ति रसायन के प्रयोग से शीघ्र ही उत्कृष्ट लाभ होता है।

अष्टमूर्ति रसायन शक्तिवर्द्धक, ओजस्कर, हृदयोत्तेजक, जन्तुघ्न, बल-मांस-वर्द्धक और आक्षेपघ्न है। इस रसायन का वात और कुछ पित्त दोष, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा या दूष्य एवं सहसार, शिरोब्रह्मसुषुम्ना अन्य नाड़ीचक्र, वात-वाहिनियाँ, स्नायु, फुफ्फुस, हृदय और वृक्क इन सब पर विशेष प्रभाव होता है। -औ.गु.ध. शा.

चन्द्रोदय (बहिर्धूम)

शुद्ध पारद ३२ तोला पत्थर के खरल में डाल, उसमें ४ तोला सोने के वर्क एक-एक करके मिलाकर, नींबू का रस डालकर एक दिन मर्दन करें। दूसरे दिन उसको धोकर उसमें शुद्ध गन्धक ६४ तोला मिला कज्जली करें। फिर एक दिन लाल फूल वाले कपास के फूलों के रस में और एक दिन ग्वारपाठे के रस में मर्दन कर सुखा लें। पीछे एक अच्छी आतशी शीशी या काली बोतल पर कपड़मिट्टी चढा, सुखाकर उसमें कज्जली भर दें। (एक काली बोतल में २५ तोला कज्जली भरनी चाहिए) बाद में एक लोहे के या मिट्टी के नांद या घड़े में, नीचे एक अंगुल बालु (रेत) बिछाकर उस पर शीशी रख, शेष भाग में शीशी के गले तक बालू भर कर चूल्हे पर चढ़ा नीचे क्रमशः मन्द, मध्य और तेज आँच दें।

इस क्रिया में प्रथम गन्धक ऊपर आने लगेगा। गन्धक जम कर शीशी का मुँह बन्द न हो जाय, इसलिए जब गन्धक ऊपर आने लगे, तब एक लोहे की सलाई अग्नि में तपा कर शीशी के अंदर गले तक फिरावें। जब सारा गन्धक जल जाय तब शीशी के मुँह पर खड़िया मिट्टी या मुलतानी मिट्टी की डाट लगाकर ऊपर से गुड़ या शहद में मिला हुआ चूना लगा दें। पीछे १२ घण्टे की तीव्र अग्नि दें। बाद में आँच देना बंद कर दें। जब अपने आप ठण्डा हो जाय तब शीशी को निकाल, ऊपर की कपड़मिट्टी को हटाकर, शीशी के मध्य में मिट्टी के तेल में भिगोई हुई

सुतली लपेट उसको दियासलाई से जलाकर ठण्डे पानी के छींटे देकर शीशी तोड़ दें। इस क्रिया से आसानी से बीच से शीशी टूट जाती है। पीछे शीशी के गले हुए चन्द्रोदय को सावधानी से निकाल कर रख लें। -सि.यो.सं.

नोट- शीशी के तल में स्वर्ण भस्म मिलेगी, उसे सुरक्षित निकालकर रखें, यह स्वर्ण भस्म की शक्ल में मिलती है, किंतु वास्तव में यह निरुत्थ भस्म नहीं रहती अत: इसको परिशुद्ध भस्म बनाने के लिये कज्जली के साथ ५-७ पुट देकर भस्म बना लेनी चाहिए।

चन्द्रोदय (अन्तर्धूम)

स्वर्ण वर्क ४ तोला, शुद्ध पारद ३२ तोला, शुद्ध गन्धक ६४ तोला, लेकर प्रथम पारद में स्वर्ण वर्क एक-एक मिलाकर मर्दन करें, जब स्वर्ण वर्क अच्छी प्रकार मिश्रण हो जाये तो गन्धक मिलाकर सूक्ष्म कज्जली बनायें। फिर एक दिन लाल कपास के फूलों के रस में और एक दिन ग्वारपाठे के रस में दृढ मर्दन कर सुखा लें। पश्चात् एक अच्छी एवं सुदृढ तथा सात कपड़मिट्टी करके सुखाई हुई काँच की कूपी में, शीशी के तीन भाग खाली रहें और एक भाग कज्जली से भर जायें इतनी कज्जली भर दें। यदि ३ भाग से भी अधिक शीशी खाली रहे अर्थात् कज्जली से शीशी एक भाग से भी कम भरे तो अधिक उपयोगी रहेगा। इस प्रकार उस शीशी के मुँह पर खड़िया मिट्टी की डाट लगाकर गुड और चूने के मिश्रण से उस शीशी को सन्धि बंद कर दें। बाद में मिट्टी से लिप्त चार तह कपड़े को शीशी के मुँह पर लपेट कर उसके ऊपर अच्छी प्रकार मिट्टी का लेप करके धूप में खूब सुखा लें। जब शीशी खूब सुख जाय, तब उस शीशी को बालुका यंत्र में रखकर और शीशी के गल तक बालुका भरकर, इस बालुका-यंत्र को तालादि भस्मकारी भट्टी पर रखकर पहले मन्द-मन्द अग्नि दें। बाद में प्रतिदिन क्रम से, अग्नि को थोड़ी-थोड़ी तेज करते जावें और बालु से ऊपर निकले हुए शीशी के गले को बार-बार स्पर्श करते रहें। शहद शीशी का गला इतना तत्प हो जाय कि जिसको स्पर्श न कर सकें, तब जान लें कि कज्जली गले तक उफन कर आ गई है, अत: भट्टी से तुरंत ही लकड़ी निकाल कर आँच बंद कर दें, अन्यथा शीशी फुट जायेगी। पुन: जब शीशी के गले को स्पर्श करने पर हाथ न जले तो समझ ले कि गन्धक अपने स्थान पर जा बैठी है तब फिर पूर्ववत् अग्नि देना शुरू करें, परन्तु बार-बार शीशी के गले को स्पर्श कर परीक्षा करते रहें। जब-जब शीशी का गला अति तीव्र तप्त हो जाय तब-तब ही अग्नि की भट्टी से लकड़ी अलग कर मन्द करते रहें। इस प्रकार आठ दिन तक अग्नि को प्रतिदिन क्रम से तीव्र करते हुए अग्नि दें।

प्रतिदिन अग्नि तेज करने का यह अभिप्राय है कि जब तक कज्जली का बल नहीं घटा है, तब ही यदि प्रथम दिन से ही अग्नि तीव्र कर दी जाएगी, तो शीशी अवश्य फूटेगी और आठ दिन तक मन्दाग्नि ही देते रहें तो एक माह दें तो भी शीशी का पाक नहीं होगा। इस प्रकार आठ दिन तक अग्नि देने पर जब तीव्राग्नि लगाने पर भी शीशी का गला तप्त न हो तो समझ लें कि चन्द्रोदय बन गया है। तब अग्नि देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शीशी के गले में ठँसे हुए चन्द्रोदय से अग्नि का मार्ग रुक जाता है और अग्नि शीशी के गले को तप्त करने में असमर्थ रहती है एवं शीशी तप्त न होने की दशा में फूट भी नहीं सकती इस प्रकार चन्द्रोदय की सिद्धी हो जाने पर शीशी जब स्वांग-शीतल हो जाय तो तब विधि-पूर्वक चन्द्रोदय निकाल कर सुरक्षित रखें।

-सि.यो.सं. का पूर्वोक्त योग अन्तर्धूम विधि सं.

वक्तव्य- बहिर्धूम विधि से निर्मित चन्द्रोदय की अपेक्षा अन्तर्धूम विधि से निर्मित चन्द्रोदय बहुत अधिक गुणकारी होता है, क्योंकि इस विधि से गन्धक धूम्र (धुआँ) बाहर न निकल कर पारद के अंदर ही जीर्ण कराया जाता है और लगातार ८ दिन तक अग्नि पर पाक किया जाता है। पारद को अधिक समय तक गन्धक के साथ अग्नि पर जीर्ण कराने और वह भी अन्तर्धूम विधि से निश्चित ही उसके गुणों में उत्कृष्टता कारक है। जिसको चन्द्रोदय के पूर्ण गुणों का अनुभव करना हो उनको अन्तर्धूम विधि से निमित्त चन्द्रोदय का व्यवहार का लाभ उठाना चाहिए। चन्द्रोदय की अन्तर्धूम विधि क्लिष्ट एवं अनुभव साध्य होने के कारण इस विधि से बहुत कम लोग ही अर्थात् जिन्हें कूपीपक्व रसायनों के निर्माण का पूरा अनुभव है वे ही लोग बना पाते हैं। इसमे आँच की कमी या बेशी होने पर ठीक नहीं बन पाता है।

षड्गुण बलिजारित पारद

गन्धक जारण की सुगम विधि- षड्गुण गन्धक जारण के लिये बालुका यंत्र में काँच कूपी की बजाय एक अत्यन्त मजबूत मिट्टी का प्याला, या लोहे का प्याला (प्याला लोहे का ही लें तो अधिक ठीक रहेगा, क्योंकि अग्नि के तीव्र ताप के कारण लोहे के प्याले के टूटने या चटके का भय नहीं रहता) रखें और उस यंत्र को चूल्हे पर रखकर नीचे अग्नि जलावें। जब गन्धक अग्नि के संयोग से तैल रूप हो जाय तो उसमें गन्धक के बराबर शुद्ध पारद डाल दें। जब पहले का गन्धक आधा जीर्ण हो जाय तो फिर उसमें डालकर जीर्ण कर लें। कुछ गन्धक शेष रहने पर ही यंत्र को चूल्हे से उतारकर प्याले को अन्य बड़े प्याले से ढँक दें ताकि पारद उड़े नहीं। ठंडा हो जाने पर बड़े प्याले में उड़कर लगे पारद को तथा नीचे वाले प्याले में जमे हुए पारद-गन्धक पिण्ड को खुरच कर निकाल कर पीसकर डमरू यंत्र विधि से पारद को अलग कर लें। कुछ लोग पाँच गुना गन्धक विधि से जीर्ण कराके शेष एक गुना गन्धक काँच कूपी में जलाकर रस एक तोला सिन्दूर बनाकर पीसकर डमरू यंत्र विधि से पारद निकाल कर रखते हैं।

कोई-कोई रसाचार्य पारद की अपेक्षा द्विगुण या समगुण गन्धक देकर रस सिन्दूर-वत् पाक करके रस सिन्दूर बनाते हैं। इस प्रकार पुनः पुनः गन्धक मिलाकर पाक करते हैं। इस विधि से षड्गुण गन्धक के जीर्ण होने पर सिन्दूर को (हिंगुल से पारद निकालने की विधि से) डमरू यंत्र में डालकर पारद निकाल लें और इच्छानुसार प्रयोग करें। यह षड्गुण बलिजारित पारद रस-रसायनों के निर्माण में उपयोग करने से रस-रसायान उत्कृष्ट एवं आशुफलप्रद होते हैं।

वक्तव्य- बड़ी आतशी शीशी में बनाने पर एक बार में बनाया जा सकता है, किन्तु काली बोतलों में बनाने पर २५ तोला कज्जली प्रत्येक बोतल में भरने के हिसाब से ४ बोतलों में पूरी कज्जली आयेगी एवं ४ बार में ही बनाना होगा। चन्द्रोदय और मकरध्वज वास्तव में इस एक ही योग के नाम है अतः चन्द्रोदय की मात्रा, अनुपान सेवन-विधि, गुण-धर्म भी वही है जो मकरध्वज के साथ लिखे गये हैं।

मकरध्वज

सोने का वर्क १ तोला, शुद्ध पारा ८ तोला, शुद्ध गन्धक १६ तोला लें। फिर सुवर्ण के वर्क को थोड़ा-थोड़ा करके पारद के साथ घोंटे, जब सब वर्क पारद के साथ मिलकर एक जीव हो जाये तब उसमें थोड़ा-थोड़ा गन्धक मिला रोज ६-७ घंटे के हिसाब से कम-से-कम ७-८ दिन तक (इसे जितना अधिक दिन तक घोंटा जाता है, मकरध्वज उतना ही अच्छा बनता है) घोंटे। फिर

ग्वारपाठे के रस (ग्वारपाठे को कपड़े में निचोड़ कर निकाला हुआ रस) में घोंटकर लाल कपास के पुष्प-स्वरस में (रस तरंगिणीकार ने अंकोल की जड़ के स्वरस की भावना देने को लिखा है) एक या दो दिन तक मर्दन कर धूप में सुखाकर ७ बार कपरौटी की हुई आतशी शीशी में कज्जली भर बालुकायंत्र में रख २४ घंटे के हिसाब से मृदु, मध्य और तीव्र आँच दें। स्वांग-शीतल होने पर उतार कर, शीशी के गले में लगा हुआ लाल मकरध्वज निकाल लें। - र. तरंगिणी

शीशी के तल भाग में सोने की जो भस्म मिले उसमें कज्जली मिलाकर भस्म बना लें। उपरोक्त विधि द्विगुण बलिजारित मकरध्वज की है।

मकरध्वज की परीक्षा- जो मकरध्वज कड़ा न हो, अंगुली से जरा दबाने पर ही टूट जाय, जिसका चूर्ण रवेदार, चमकदार एवं स्निग्ध-सा प्रतीत हो तथा जो जला हुआ न दिखे, वह उत्तम है।

जो मकरध्वज देखने में काला या पीतवर्णयुक्त-लालवर्ण का हो तथा अंगुली से जोर से दबाने पर भी जिसका चूर्ण न हो या जिसका चूर्ण रवेदार न हो, उसे गुणहीन और कच्चा समझें।

नोट- मकरध्वज तैयार होने पर उसमें ९८४ ग्राम मकरध्वज में १६ ग्राम स्वर्ण भस्म मिलाकर खरल में अच्छी प्रकार घुटाई कर मकरध्वज स्वर्णयुक्त तैयार किया जाता हैं। उत्तम मकरध्वज तभी तैयार हो सकता है जब बालुकायंत्र में आँच यथा योग्य लगेगी। आँच मे किसी प्रकार की न्यूनाधिकता होने से गन्धक कच्चा रह जाता है और मकरध्वज का अधिकांश भाग उड़ जाता है तथा जो कुछ भी प्राप्त होता है वह रंग में कुछ काला-जला हुआ-सा तथा गुणहीन होता है। अत: आँच पर खूब ध्यान रखना चाहिए।

षड्गुण बलिजारित मकरध्वज

सोने का वर्क ४ तोला, षड्गुण बलिजातिर पारद ३२ तोला, शुद्ध गन्धक ६४ तोला लें। प्रथम पारद में सोने के वर्कों को १-१ करके मिला खरल मे मर्दन कर एक जीव कर लें, पश्चात् गन्धक मिला, घोंटकर सूक्ष्म कज्जली करें और इस कज्जली को ग्वारपाठे के रस में मर्दन कर सुखाकर सात कपड़मिट्टी कर सुखाई हुई काँच कूपी में भर दें और बालुका यंत्र में रखकर मृदु-मध्य और तीव्र क्रम से तीन दिन की अग्नि देकर पाक करें। स्वांग-शीतल हो जाने पर काचकूपी को मध्य भाग से तोड़कर गले में उड़कर लगे लाल पुष्प के सदृश रस को निकाल कर सुरक्षित रख लें। - भै.र. (विनोदलाल सेन कृत टीका)

वक्तव्य- यह षड्गुण बलिजारित मकरध्वज अत्युत्तम होता है। आयुर्वेद शास्त्र में मकरध्वज क जिन अद्‌भुत और चमत्कारी गुणों के वर्णन हैं, वे सब गुण, विधि-पूर्वक बनें इस मकरध्वज में पाये जाते हैं। मकरध्वज के निर्माण में उपयोग किये जानेवाले पारद को अष्ट संस्कारित कर पश्चात् उसमे षड्गुण बलि (गन्धक) जारित किया जाये और इसके बाद इससे षड्गुण बलिजारित मकरध्वज तैयार किया जाय, तो बहुत ही श्रेष्ठ चमत्कारिक गुणों से पूर्ण सर्वोत्तम मकरध्वज तैयार होता है। इसे सिद्ध मकरध्वज भी कहा जाता है।

मधु मकरध्वज

मकरध्वज ७ रत्ती को खरल में महीन पीसकर उसमें मधु २।। तोला को मिलाकर खूब अच्छी तरह घुटाई कर शीशी में भरकर रख लें।-अनुभूत प्रक्रिया

मात्रा और अनुपान- २ माशे से ४ माशे तक आवश्यकतानुसार दिन-रात में २ बार अथवा सुबह-शाम दें।

वक्तव्य-मकरध्वज को मधु के साथ खरल में अच्छी तरह घोंटकर सेवन करने से ही वह उत्तम एवं शीघ्र प्रभाव करता है, किन्तु हरेक व्यक्ति के पास खरल उपलब्ध न होने के कारण उसे मकरध्वज सेवन करने एवं उसके अमोघ गुणों का लाभ उठाने से वंचित रहना पड़ता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये हमने मकरध्वज को मधु के साथ खरल में अच्छी तरह घुटाई करके शीशी में भरकर तैयार मधु मकरध्वज लोगों को प्राप्त हो सके एवं वे उसे सुविधापूर्वक सेवन कर सकें इस उद्देश्य से उपरोक्त योग मधु मकरध्वज नाम से प्रस्तुत किया है। हमारे अनुभवानुसार इससे लोगों को मकरध्वज का सेवन कर उसके गुणों का लाभ प्राप्त करने में बड़ी सुविधा हुई है और यही कारण है कि इस मधु मकरध्वज का प्रचार चिकित्सकों एवं जनता में बहुत बढ़ रहा है।

गुण और उपयोग- उपरोक्त प्रकार से मकरध्वज को मधु के साथ खरल में अच्छी तरह मर्दन हो जाने से 'मर्दनम् गुण वर्द्धनम्' के अनुसार उसके गुणो में अतीव वृद्धि हो जाती है और मकरध्वज के शास्त्रोक्त सभी गुण उसके सेवन से विशिष्ट रूप से प्राप्त होते हैं।

मकरध्वज रसायन और योगवाही होने के कारण सभी रोगों की जीर्ण तथा असाध्य अवस्था में सेवन करने पर रोग नष्ट करने में अद्भुत प्रभावशाली है। विशेषत: वात विकारों, कफ विकारों, सन्निपात, दिल की कमजोरी, स्नायु दौर्बल्य, स्मरणशक्ति की कमी, रस-रक्तादि धातुओं की कमी, नपुंसकता आदि विकारों को मिटाकर रोगी को हृष्ट-पुष्ट एवं बल-क्रांति और स्फूर्ति युक्त बना देता है। यह वय:स्थापक एवं उत्तम रासायनिक गुणों से युक्त है।

सिद्ध मकरध्वज

यदि उपरोक्त मकरध्वज निर्माण-काल में स्वर्ण १ तोला की जगह ४ तोला डाल दिया जाय और पारा ८ तोला (पारा अष्ट संस्कारोंयुक्त होना चाहिए।) तथा गन्धक १६ तोला ही रहे। इसके अतिरिक्त और जितनी भी क्रियाएँ हैं, वे सब पूर्वोक्त मकरध्वज के समान ही की जायें अर्थात् लाल कपास के पुष्प का स्वरस और घृतकुमारी के रस में घोंट कर, सुखाकर आतशी शीशी में भरकर बालुकायंत्र द्वारा पकाते हुए मृदु, मध्य और तीक्ष्ण आँच के द्वारा पारद में छ: गुना गन्धक जारण क्रमश: किया जाय, तो यही सिद्ध मकरध्वज कहलाता है। सर्वप्रथम शंकर भगवान ने बनाकर इसका सेवन सिद्धों का कराया था। अत: इसे सिद्ध मकरध्वज कहते हैं।

नोट- जब तक शीशी में से पीले रंग का धुआँ निकलता रहे, तब तक शीशी का मुँह बंद नहीं करना चाहिए। जब धुआँ निकलना बंद हो जाय, तब शीशी के मुँह में डाट लगा दें, शीशी के गले में मकरध्वज लगा हुआ मिलता है, तथा शीशी की दीवारों के भीतर भी थोड़ा बहुत मकरध्वज लगा रहता है। उन सबको सावधानीपूर्वक छुड़ा कर रख लें।

यदि शीशी के नीचे के भाग में अधपकी कज्जली रह गयी हो, तो उसमें समान भाग गन्धक मिलावट के अंकुरों के रस तथा ग्वारपाठे के रस में घोंटकर सुखाकर आतशी शीशी में पूर्वोक्त विधि से पुन: बालुकायंत्र द्वारा मकरध्वज बना लें।

मकरध्वज की विशेषता- यह एक ऐसी सर्वश्रेष्ठ महौषध है, जिसके समान सर्व रोग-नाशिनी महौषध संसार के किसी भी पैथी (चिकित्सा) में नहीं है। बड़े-बड़े डॉक्टरों ने यह बात

मान ली है कि मकरध्वज के जोड़ की दवा दूसरी है ही नहीं। इसके द्वारा अगणित प्राणी काल के मुँह से बचते हैं। बहुत से डॉक्टर इसका इंजेक्शन देते तथा स्वतन्त्र रूप से सेवन भी कराते हैं।

यह तो सब लोग जानते हैं कि ताकत बढ़ने से प्रत्येक रोग में फायदा होता है। मकरध्वज के सेवन से मनुष्य की ताकत बहुत बढ़ जाती है। यह हृदय और स्नायुमण्डल को यथाशीघ्र ही ताकतवर बनाता है। मकरध्वज के सेवन से शरीर का वजन निश्चित रूप से बढ़ता है। यह बल, वीर्य, कांति आदि के लिये सर्वश्रेष्ठ दवा है। शीघ्रपतन के लिये भी बहुत लाभप्रद दवा है। नपुंसकता, नामर्दी के लिये भी मकरध्वज बहुत गुणकारी है। बच्चों से लेकर बुड्ढों तक को एक सा फायदा करता है। मरणासन्न रोगी को जब और किसी दवा से लाभ नहीं होता है, तब यही मकरध्वज और कस्तूरी उसके प्राण-रक्षक होते हैं। मकरध्वज की महत्ता इसी से जानी जा सकती है, कि जो मरते हुए रोगी को देने से उत्तम फायदा करता है, तो साधारण, साध्य और कष्टसाध्य रोगों में कितनी जल्दी लाभ कर सकता है। बहुत-से धनी-मानी इसका सेवन बराबर करते हैं, जिससे वे लोग जल्दी रोगग्रस्त नहीं हो पातें। शरीर में किसी कारणवश रक्त की कमी हो जाय, तो मकरध्वज का सेवन उस हालत में अमृत के समान गुण करता है। किसी भी रोग के कारण शरीर में कमजोरी आ जाने पर मकरध्वज के सेवन से बहुत शीघ्र कमजोरी दूर हो जाती है। बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सब इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। भैषज्य रत्नावली में लिखा है:-

एतदभ्यासतश्चैव जरामरणानाशनम्।
अनुपानविधानेत निहन्ति विविधान् गदान्।।

इसके सेवन से शरीर की झुर्रियाँ, बालों का सफेद होना आदि रोगों का नाश होता है और आयु की वृद्धि भी होती है। जो इस रस का सेवन करते हैं, वे अनेक स्त्रियों को रति द्वारा प्रसन्न कर सकते हैं। रति के अन्त में इसके सेवन से शक्ति का ह्रास नहीं होता है। जो बराबर इसका सेवन करते हैं, उनके ऊपर स्थावर-जांगम किसी भी प्रकार के विष का असर नहीं होता है।

यह विशेषकर राजयक्ष्मा और कफजन्य बीमारियों को बहुत शीघ्र दूर करता है तथा हृदय की दुर्बलता को नष्ट कर उसे ताकतवर बनाता है। रक्त-प्रसादन करता है। शुक्र पुष्ट करता, रोगात्पादक कीटाणुओं का नाश करता, विष-विकार को दूर करता है, उन्माद, अपस्मार (मृगी) रोग में भी लाभ करता है। यह रसायन, बाजीकरण और योगवाही है।

मात्रा और अनुपान- १ रत्ती से ३ रत्ती तक पान के रस, शहद, घी, मिश्री, मक्खन, मलाई, दूध (गाढ़ा और औटाया हुआ) आदि के साथ तथा रोगानुसार अनुपान के साथ देने से लाभ होता है।

सब प्रकार के मकरध्वज की साधारण सेवन-विधि- एक रत्ती मकरध्वज को उत्तम पत्थर की खरल में डालकर ५ मिनिट तक खूब महीन पीसना चाहिए, यदि खरल न हो तो बढ़िया पत्थर पर सिलवट (लोढ़ा) से पीसा जा सकता है, परन्तु पत्थर पर पीसने से उसका बहुत-सा अंश व्यर्थ चला जाता है और खरल की तरह उसकी उत्तम घुटाई भी नहीं होती- इसलिये पत्थर की खरल में ही घोंटना अच्छा है।

अच्छी तरह घुट जाने के बाद इसमें ६ माशा असली शहद मिलाकर १५ मिनट तक फिर

घोटें, क्योंकि शहद में अच्छी तरह मकरध्वज न घुटने से पूरा-पूरा लाभ नहीं करता है। फिर जिस रोग के लिये देना हो, उस रोगनाशक औषधियों का रस या चूर्ण मिला कर रोगी को खिला देना चाहिए। ताजी-हरी दवा का रस १ तोला और सूखी दवा का चूर्ण ३ माशा मिलाना चाहिए। चूर्ण मिलाने पर शहद १ तोला मिलावें। दवा का पानी काढ़ा २।। तोला दें।

रोगानुसार अनुपान

वातज्वर में- बच का चूर्ण १ माशा, बड़ी इलायची के बीज १ माशा, मिश्री १ तोला, मकरध्वज १ रत्ती, सब को एकत्र मिलाकर मधु से दें।

पित्तज्वर में- मकरध्वज आधा रत्ती, गिलोयसत्व २ रत्ती, पित्तपापड़ क्वाथ में मिश्री मिला कर उसके साथ दें।

कफज्वर में- मकरध्वज २ रत्ती, तुलसी, अदरक, पान-इन तीनों का रस १-१ माशा शहद ६ माशे में मिला कर दें।

साधारण ज्वर में-मकरध्वज १ रत्ती, अदरक का रस १ माशा, शहद (मधु) १ माशा के साथ दें।

सन्निपात ज्वर में- मकरध्वज २ रत्ती, ब्राह्मी का रस १ माशा और मधु १ माशा में मिला कर दें।

मोतीझरा में- मकरध्वज १ रत्ती को मोतीपिष्टी आधी रत्ती के साथ मधु मे मिलाकर चटा दे। ऊपर से लौंग का क्वाथ पिला देना चाहिए।

मलेरिया ज्वर में- मकरध्वज १ रत्ती करंजबीज का चूर्ण १ माशा मधु में मिलाकर देना चाहिए।

जीर्ण ज्वर में- मकरध्वज १ रत्ती, २ नग छोटी पीपल का चूर्ण शहद के साथ दें।

ज्वरातिसार में- मकरध्वज १ रत्ती, शहद १ माशा, सौंठ, पानी में घिसकर १ माशा सबको एकत्र मिलाकर दें।

आँव के दस्त में- मकरध्वज १ रत्ती, बेलगिरी चूर्ण १ माशा मधु में मिलाकर चटावें।

खून के दस्त में- मकरध्वज १ रत्ती को, अतीस चूर्ण २ रत्ती के साथ कुड़ा की छाल का रस अथवा अडूसे की जड़ की छाल का रस, शहद या अनार का रस १ तोला, शहद २ माशा में मिला कर दें।

पतले दस्त में- मकरध्वज १ रत्ती को सफेद जीरे का चूर्ण १ माशा में मिलाकर शहद के साथ दें।

संग्रहणी में- मकरध्वज एक रत्ती, सफेद जीरे का चूर्ण १ माशा में मिलाकर शहद के साथ दें।

अजीर्ण रोग में- मकरध्वज १ रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, त्रिकटु चूर्ण ४ रत्ती के साथ मधु में मिलाकर दें। ऊपर से अजवायन का अर्क २।। तोला पिला दें।

---

१. शास्त्रीय मतानुसार तथा अनुभव सिद्ध है कि ***'मर्दनम् गुणवर्धनम्'*** अर्थात् रस-रसायन एवं कूपीपक्व रसायनों को अच्छी तरह घोंटकर सेवन करने से उनके गुणों में अपूर्व वृद्धि होती है। पत्थर के छोटे खरलों के अभाव में घुटाई की सर्वसाधारण लोगों को बड़ी कठिनाई होती थी।

इसे दूर करने के लिये श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. ने अपने यहाँ तामड़ा तथा कसौटी पत्थर के छोटे खरलों की बिक्री की व्यवस्था की है।

बवासीर में- मकरध्वज १ रत्ती, सूरण (जमीकंद) का चूर्ण १ माशा, मिश्री ६ माशे के साथ दें।

हैजा में- प्याज का रस १ तोला और शहद २ माशा मिलाकर मकरध्वज १ रत्ती की मात्रा में देने से विशेष लाभ होता है।

कब्जियत में- मकरध्वज २ रत्ती, ५ तोले त्रिफला के क्वाथ में शहद २ माशे मिलाकर दें।

अम्लपित्त में- आँवले का रस १ तोला या क्वाथ २।। तोला, और शहद अथवा परवल के पत्ता का रस, गिलोय (गुर्च) का रस, अनार के कोमल पत्तों का रस १ तोला या मिश्री, सौंफ, धनियाँ को १२ घण्टे भिगो कर उसके जल के साथ भी देना हितकर है।

पाण्डु रोग में- कुटकी का काढ़ा २।। तोला, या कुटकी का चूर्ण ३ माशे, मकरध्वज १ रत्ती, मधु अथवा पुराने गुड़ के साथ दें।

राजयक्ष्मा में- मकरध्वज २ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण ३ माशे, शहद के साथ दें।

खाँसी में- मकरध्वज १ रत्ती, मुलेठी का क्वाथ ५ तोला, या मुलेठी चूर्ण ६ माशे अथवा अडूसे की छाल का रस या कंटकारी रस १ तोला अथवा पीपल और बच का चूर्ण १।। माशे और शहद के साथ मकरध्वज १ रत्ती की मात्रा में दें।

स्वरभंग में- मकरध्वज १ रत्ती, बच या ब्राह्मी का चूर्ण १ माशा मधु के साथ दें।

अरुचि में- नींबू का रस १ तोला और शहद के साथ दें।

मृगी रोग में- बच का चूर्ण १ माशा और शहद के साथ दें।

उन्माद में- मकरध्वज १ रत्ती, को उन्मादगजांकुश रस १ रत्ती के साथ घोंटकर मांसादि क्वाथ से दें या ब्राह्मी का रस २ तोला और ३ माशे शहद के साथ दें।

वातव्याधि में- एरंड की जड़ का रस १ तोला में १ माशा शहद के साथ १ रत्ती मकरध्वज दें।

आमवात में- सोंठ का चूर्ण १।। माशा और शहद अथवा केवल शहद के साथ चाटकर ऊपर से सनाय, बड़ी हरड़ और अमतलास मिलाकर २।। तोले, पानी SI(पावभर =२) भर में पकाये ५ तोला पानी शेष रहने पर छान कर पिला दें।

वायुगोला में- भुनी हुई हींग का चूर्ण २ रत्ती एवं गर्म पानी के साथ दें।

हृदय रोग में- मकरध्वज आधी रत्ती को मोतीपिष्टी आधी रत्ती के साथ घोंटकर अर्जुन की छाल का रस १ तोला या चूर्ण ३ माशे शहद के साथ दें।

मूत्रकृच्छ्र में- गिलोय (गूर्च) का पानी (हिम) १० तोला और मधु में मिलाकर दें।

मूत्राघात में- मकरध्वज १ रत्ती, मधु में मिलाकर चटा दें। ऊपर से तृणपंचमूल क्वाथ १ तोला पिला दें।

सूजाक में- मकरध्वज आधी रत्ती को ४ रत्ती यवक्षार में मिलाकर गर्म पानी के साथ दें।

पथरी में- कुल्थी का क्वाथ एवं शहद के साथ दें।

धातुस्राव में- कच्ची हल्दी का रस, गिलोय और आँवला तथा नीम की छाल, सेमलमूल या भृंगराज का रस, इनमें से किसी एक चीज के रस के साथ मधु मिलाकर दें।

स्वप्नदोष में- रात को सोते समय कपूर चौथाई रत्ती कबाबचीनी का चूर्ण १ माशा, शहद १ तोला मिलाकर चटाएँ। ऊपर से २।। तोले चूने का पानी पिला दें।

शीघ्रपतन में- मकरध्वज १ रत्ती को कौंच के बीच का चूर्ण या असगन्ध चूर्ण १ माशा, शहद के साथ अथवा सेमल की जड़ का रस या बिदारीकन्द का रस अथवा शतावरी का रस १ तोला शहद मिलाकर दें।

मधुमेह में- जामुन की गुठली का चूर्ण २ माशे व शहद के साथ दें।

वीर्य वृद्धि एवं स्तम्भन के लिये- लौंग, अकरकरा, दालचीनी, केशर, कपूर और जायफल के चूर्ण १ माशा के साथ मकरध्वज १ रत्ती को घोंट कर गरम दूध के साथ दें।

कृशता में- असगन्ध चूर्ण १ माशा और दूध के साथ दें।

रक्ताल्पता (खून की कमी में)-मक्खन और मिश्री अथवा लौह भस्म २ रत्ती के साथ मधु से दें।

उदर रोग में- पीपल चूर्ण १ माशा या शुद्ध कसीस चूर्ण १ रत्ती के साथ और मधु के साथ दें। अथवा छोटी हर्रे का चूर्ण ३ माशे, काला नमक १ माशा मिलाकर गर्म जल के साथ दें।

गर्मी (आतशक) में- अनंतमूल का फाण्ट ५ तोले एवं शहद के साथ दें।

शीतला (चेचक) में- मकरध्वज १ रत्ती को रुद्राक्ष चूर्ण १ रत्ती के साथ घोंटकर करेले के पत्तों का रस १ तोला और मधु या तुलसी की पत्ती का रस ६ माशे एवं शहद मिलाकर दें।

मुखरोग में- मकरध्वज आधी रत्ती कपूर १ रत्ती और कत्था चूर्ण ३ रत्ती के साथ घोंटकर मधु अथवा मक्खन से दें।

शोथरोग में- मकरध्वज आधी रत्ती को मण्डूर भस्म ३ रत्ती के साथ घोंटकर पुनर्नवा का रस और शहद के साथ दें।

रक्तप्रदर में- अशोक-छाल का चूर्ण ३ माशे और शहद अथवा अशोक-छाल २ तोला डालकर औंटाया हुआ दूध १ पाव या गिलोय का रस १ तोला एवं शहद मिलाकर दें।

श्वेतप्रदर में- चावल के धोवन का पानी २।। तोले व शहद के साथ अथवा राल का चूर्ण १ माशा, शहद में मिलाकर दें।

प्रसूत रोग में- मकरध्वज १ रत्ती को प्रतापलंकेश्वर रस १ रत्ती के साथ घोंटकर मधु के साथ दें। ऊपर से दशमूल का क्वाथ पिला दें।

नाड़ी छूटने की अवस्था में- मकरध्वज २ रत्ती, कस्तूरी चौथाई रत्ती, कपूर आधी रत्ती, तुलसी पत्र-स्वरस और शहद के साथ दें।

शक्ति बढ़ाने के लिये- मकरध्वज १ रत्ती, फौलाद भस्म आधी रत्ती के साथ घोटकर बेदाना

का रस, मलाई, मक्खन, अंगूर का रस, शतावरी का रस, पान का रस और शहद उचित मात्रा में दें।

नोट-शास्त्रानुसार उत्तम बनाये गये मकरध्वज में सर्व रोग नाश करने की शक्ति है। आजकल बहुत से धूर्त लोग नकली मकरध्वज बनाकर बेचने लगे हैं। उस मकरध्वज के सेवन से लाभ की जगह नुकसान होता है। जिन रोगों में मकरध्वज की मात्रा नहीं लिखी गयी है, वहाँ साधारणतया १ से २ रत्ती का उपयोग करें। इसके अतिरिक्त वैद्य को चाहिए कि देश-काल और रोगी के बलाबल के अनुसार दें। मकरध्वज साधारण से मकरध्वज षडगुणबलिजारित, सिद्ध मकरध्वज, सिद्ध मकरध्वज (स्पेशल) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है।

गुण और उपयोग- मकरध्वज में सुवर्ण का आंशिक संयोग रहता है, अत: यह उत्तेजक, हृदय के लिये बलदायक, रक्त-दोष को दूर कर परिपुष्ट बनानेवाला और कीटाणु नाशक है।

क्षय (राजयक्ष्मा) की द्वितीयावस्था में जब क्षय के कीटाणु शरीर में व्यापक रूप से अपना प्रभाव जमा लिये हों, रोगी दुर्बल, कान्तिहीन हो, बुखार और खांसी की वृद्धि हो, क्रमश: रक्त की भी कमी हो रही हो, ऐसी दशा में मकरध्वज का सेवन करना बहुत लाभदायक है। यद्यपि सुवर्ण रहने के कारण यह कुछ अपना उत्तेजक प्रभाव रक्त-वाहिनी नाड़ियों पर डालता है, जिससे रोग के उपद्रव कुछ बढ़े हुए मालूम होने लगते हैं, किन्तु जब क्रमश: रक्त सुवर्ण के उत्तेजक प्रभाव को सहन करने मे समर्थ हो जाता है और यह दवा भी शरीर में उचित मात्रा में पहुंच कर अपना व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण शरीर में फैला देती है, तब क्षय के कीटाणुओं का नाश होकर रोग को आराम होने लगता है और क्रमश: रोग की गति नीचे होने लगती है। प्रारंभ में मकरध्वज की मात्रा बहुत कम रखें, क्योंकि कभी-कभी ज्वर की गर्मी इससे अधिक हो जाती है।

रक्तजन्य कीटाणुओं को नाश कर रक्त को सबल बनाना इस रसायन का प्रधान कार्य है। अतएव, यह आन्त्रिक क्षय, फुफ्फुसावरण प्रदाह, न्यूमोनिया, उरस्तोय (प्लुरसी) तथा संक्रामक रोगों में जब हृदय की शक्ति निर्बल हो गयी हो, तो ऐसी स्थिती में हृदय का सर्वप्रथम बल पहुँचाना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये मकरध्वज विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि यह बल्य तथा रक्तप्रसादक है। कुछ मनुष्यों का अधिक वय तक भी शरीर की अवयवों का उचित विकास नहीं हो पाता अर्थात् रसरक्तादि की निर्बलता के कारण शरीर दुबला-पतला और कांतिहीन दिखाई पड़ता है। यदि लड़की हुई तो जवानी आने पर भी उसके नितम्ब (चूतड़), स्तन, मुख-मण्डल आदि छोटी लड़की के समान ही सूखे हुए रहते हैं, हर समय वह मन्द-बुद्धि सी पड़ी या बैठी रहती है। उसका काम-काज करने को जी नहीं चाहता या बहुत धीरे-धीरे काम करती है। यदि पुरुष हुआ तो उसमें वीर्य की कमी रहने की वजह से उसका शरीर सूखा, निस्तेज तथा ठिगना सा दिख पड़ता है। ऐसी अवस्था में मकरध्वज देने से रस रक्तादि पुष्ट होकर शरीर के अवयवों में प्रवाहित होने लगते हैं और इनकी वृद्धि भी होने लगती है, सब अवयव भी पुष्ट होने लगते हैं, जिससे रोगी हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

शरीर की कोई भी इंद्रिय जब निर्बलता के कारण अपना काम करने में असमर्थ हो जाती है, अर्थात् आँख से अच्छी तरह देख न सकना, कान से न सुनना आदि ऐसी अवस्था में भी मकरध्वज बहुत लाभ करता है, क्योंकि यह विकृति वात और पित्त के दूषित होने के कारण होती है। इसमें मकरध्वज देने से उक्त दोषों की विकृति दूर हो परिशुद्ध रक्त द्वारा उन इन्द्रियों की नसें

पुष्ट और सबल हो जाती हैं, जिससे वे इन्द्रियाँ अपना काम करने में समर्थ हो जाती हैं। धातु मिश्रित औषध का प्रभाव जैसे शरीर के अवयव अथवा रस-रक्तादिकों पर पड़ता है उसी प्रकार मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय पर भी पड़ता है।

अधिक शुक्र-पतन या वातवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी के कारण उत्पन्न हुई नपुंसकता नष्ट करने के लिए मकरध्वज का सेवन करने से विशेष लाभ होता है। -औ.गु.ध.शा.

सिद्ध मकरध्वज-स्पेशल (स्वर्ण-मुक्ता-कस्तूरीयुक्त)

षड्गुण बलिजारित एवं अष्टादश संस्कारित पारद से निर्मित मकरध्वज ४ तोला, स्वर्ण भस्म १ तोला, कस्तूरी १ तोला, मोती भस्म २ तोला, स्वर्ण बंग ४ तोला लेकर प्रथम मकरध्वज को खरल में डालकर अत्यंत सूक्ष्म मर्दन करें। पश्चात् अन्य सभी द्रव्यों को मिला एक जीव होने तक महीन पीसकर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती दिन में दो बार सुबह-शाम दें और बच्चों को उनकी उम्र के अनुसार कम मात्रा में दें। आवश्यकतानुसार दिन में दो से अधिक बार भी दिया जा सकता है। अनुपान में मधु, मक्खन, मिश्री, मलाई-मिश्री, दूध या पान का रस और मधु या अदरक-रस और मधु के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- अष्टादश संस्कारित एवं षड़्गुणबलिजारित पारद से निर्मित मकरध्वज, स्वर्ण भस्म, कस्तूरी और मोती भस्म आदि से निर्मित यह योग आयुर्वेद जगत् की सर्वश्रेष्ठ परमोत्कृष्ट औषध है। अनुपान भेद से समस्त प्रकार के रोगों में इसका सफल प्रयोग होता है। यह औषध शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता को मिटाकर शरीर में नवीन शक्ति एवं स्फूर्ति उत्पन्न करती है। पौरुष शक्ति को बढ़ाने तथा शरीर में नवीन शक्ति एवं स्फूर्ति को उत्पन्न करती है। पौरुष शक्ति को बढ़ाने तथा शरीर को कांतिमय बनाने के लिये यह सर्व प्रसिद्ध है। इस औषध का विशेष प्रभाव स्नायु मण्डल वातवाहिनी नाड़ियों, मस्तिष्क और हृदय पर शीघ्रता से होता है। अत: यह हृदय एवं स्नायु मंडल को क्रियाशील बनाने में आशुलाभकारी है। इसके अतिरिक्त ज्वर, निमोनिया, सर्दी, जुकाम, कफ, खाँसी, श्वास, फुफ्फुसीय, विकार, राजयक्ष्मा, उर:क्षत, नाड़ी क्षीणता, शोष, शीतांग आदि रोगों में इस औषध का सफल एवं चमत्कारिक प्रयोग होता है, उन्माद, अपस्मार, मृगी, मूर्च्छा, मस्तिष्क की दुर्बलता में इसके प्रयोग से आश्चर्यजनक उत्कृष्ट लाभ होता है। इस औषध के प्रयोग से रस-रक्तादि सप्त धातुओं की वृद्धि होकर बल, वर्ण कान्ति तथा ओज और शारीरिक भार की निश्चित रूप से वृद्धि होती है तथा प्रमेह, मधुमेह, धातुदौर्बल्य, शुक्र की क्षीणता, वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन, नपुंसकता (नामर्दी) आदि को शीघ्र नष्ट करके वीर्य को गाढ़ा एवं निर्मल बनाता है और स्तम्भन शक्ति की वृद्धि करता है। त्वचा में झुर्रियाँ पड़ना, असमय में केश पकना एवं असयम में बुढ़ापा तथा हृदय की गति बंद होकर मृत्यु (हार्टफेल) से रक्षा करने के लिये परम श्रेष्ठ आशु फलदायक सर्वप्रसिद्ध औषध है। यह सर्वोत्तम रसायन, उत्कृष्ट बाजीकरण एवं योगवाही है। शरीर में किसी भी कारणवश रक्त की न्युनता हो जाने पर इसके सेवन से अमृत के समान उत्कृष्ट लाभ होता है और किसी भी कारण

वश आई हुई कमजोरी को शीघ्र नष्ट करता है। बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुष सबके लिये समान रूप से लाभकारी है। इस औषध को निरंतन सेवन करने से रोगप्रतिरोधक शक्ति की अपूर्व वृद्धि होती है। बहुत से साधन-सम्पन्न व्यक्ति तो शीत काल में इसका निरंतर सेवन करते हैं।

रससिन्दूर

१६ तोला शुद्ध पारद और १६ तोला शुद्ध गन्धक, दोनो को पत्थर के उत्तम खरल में डालकर खूब घोटाई करें। घोंटने से काले वर्ण की कज्जली बन जायेगी। इसको इतना घोंटना चाहिए कि कज्जली अंगुली पर रगड़ने से अंगुली की रेखा में प्रवेश कर जाय। अनन्तर इसको सात कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी या मजबूत काली बोतल में भरकर हाँडी में रखें, और शीशी के गले तक बालू भर दें, इस बालुकायंत्र को भट्ठी पर रख मन्द-मन्द आँच देना प्रारम्भ करें। ३-४ घण्टे बाद आँच को थोड़ी तेज कर दें। इसके बाद भी ३-४ घण्टे के अन्तर से आँच और तेज कर दें। इस तरह मृदु, मध्य और तीक्ष्ण आँच से यह रस-सिन्दूर तैयार हो जायेगा।

शीशी का गला साफ करने के लिये बीच-बीच में लोहे की शलाका को गर्म कर शीशी का गला साफ करते रहें। सम्पूर्ण कज्जली उड़कर शीशी के गले में लग जाने की परीक्षा यह है कि लोहे की शलाका को पेंदे तक पहुँचावें। शीशी का तल भाग खट्-खट् आवाज के साथ बजेगा तथा शलाका में कुछ भी लगा हुआ नहीं आयेगा।

ध्यान रखने की बात यह है कि द्रव्य जितना अधिक होगा, आँच भी उतनी ही देर तक देनी होगी। यहाँ तक कि आधा-आधा सेर पारा गन्धक को ३-३ दिन-रात पकाना पड़ता है। साथ ही यह भी बात है कि तेज आँच लगने वाली भट्ठी होगी तो रस-सिन्दूर जल्दी तैयार हो जायेगा। प्राय: १० घंटे में हो जाता है। जब सम्पूर्ण द्रव्य ऊपर चढ़ जाय तो शीशी का मुँह खड़िया मिट्टी या ईंट के टुकड़े की डाट से बन्द कर ऊपर से गुड़-चूना लगा दें। थोड़ी देर खूब तेज आँच लगाकर आँच बंद कर दें। स्वांग-शीतल हो जाने पर शीशी को सावधानी से चन्द्रोदय में लिखित विधान से तोड़कर रस-सिन्दूर निकाल लें। यह खूब चमकदार लाल और मृदु तथा वजनी होना चाहिए। यदि इन गुणों से रहित हो तो इसे उत्तम न समझें।- आरोग्य प्रकाश

नोट- बालुकायंत्र की हाँडी के पेंदे में एक कनिष्ठिका अंगुली के समान छिद्र करके उस पर शीशी रखकर फिर बालू भरने का कई वैद्य विधान मानते हैं और कई हाँडी के छिद्र में भीतर की तरफ एक अभ्रक का पत्र रखकर उस पर शीशी रख बालुका भरने को कहते हैं। किन्तु हमारे अनुभवानुसार छिद्र पर बिना अभ्रक का पत्र लगाये ही शीशी रखने से आँच उत्तम लगती है, अभ्रक अग्नि-ताप रोधक होने से आँच के ताप को रोकता है जिससे शीशी के पेंदे में आँच नहीं पहुँच पाती।

रससिन्दूर (तलस्थ) अन्तर्धूम

समभाग शुद्ध पारद और गन्धक लेकर कज्जली बना आतशी शीशी में भरकर डाट लगा दें और इस डाट को गुड़ और चूना से अच्छी तरह बंद कर दें। अब जमीन में एक हाथ लम्बा-चौड़ा गड्ढा बना इसके बीच में शीशी को रख शीशी के चारों तरफ जहाँ तक कज्जली हो वहाँ तक बालू से भर दें। बचे हुए खुले भाग के ऊपर गड्ढे में जंगली कण्डा भर अग्नि जलाकर पुट दें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी को निकालकर इसके गल-प्रदेश में चिपका हुआ रक्तवर्ण का रस-सिन्दूर

निकाल लें। इस यंत्र को 'अंध:सैकतयंत्र' कहते हैं। इस विधि से बनाया हुआ रस-सिन्दूर अन्तर्धूम होने के कारण अत्यन्त गुणशाली होता है।- र.त.

वक्तव्य- अध:सैकतयंत्र की आँच का सम्यक् ज्ञान न होने से अनुभवी लोग ही बना सकते हैं। अत: प्राय: लोग बालुकायंत्र में ही शीशी प्रारम्भ से ही मुख बन्द कर पाक करते हैं।

रससिन्दूर (अर्द्धगन्धकजारित)

शुद्ध पारा ८ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, नौसादर २ तोला इन सबको एकत्र मिला कर बिजौरा नींबू के रस में खूब अच्छी तरह मर्दन करके सुखा लें, फिर कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर बालुकायंत्र में इस शीशी को रख क्रमवृद्धि अग्नि द्वारा पाक कर लें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी के गले में लगे हुए लाल वर्ण के रस सिन्दूर को निकाल कर रखें।

नोट- इसमें गन्धक आधा भाग होने से गन्धक जलाने में समभागिक रससिन्दूर की अपेक्षा आधा समय लगना चाहिए, किन्तु ये सब बातें आँच की उत्तमता पर निर्भर हैं।

रससिन्दूर (द्विगुणगन्धकजारित)

शुद्ध पारा ८ तोला, शुद्ध गन्धक १६ तोला, दोनो को एकत्र कर खरल में कज्जली बना लाल कपास के फूलों के रस से (अभाव में कपास की जड़ की छाल के रस से) मर्दन कर कज्जली को धूप में सुखा, कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर कर बालुकायंत्र में रख क्रमवृद्धि अग्नि से २५ घण्टे तक पकावें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी के गल-प्रदेश में लगा हुआ रक्तवर्ण का रससिन्दूर निकाल कर शीशी में रख लें।

षड्गुण बलिजारित रससिन्दूर

शुद्ध गन्धक ४८ तोला, शुद्ध पारद ८ तोला लेकर इन दोनों द्रव्यों को खरल में डालकर इनकी अत्यन्त सूक्ष्म कज्जली बनावें। पश्चात् इस कज्जली को ग्वारपाठा-स्वरस के साथ दृढ़ मर्दन कर सुखा लें। फिर सात कपड़मिट्टी की हुई दृढ़ काँचकूपी में उपरोक्त कज्जली को भरकर इस काँचकूपी को बालुकायंत्र में रख कर क्रमवृद्धि रूप से सात दिन अग्नि देते हुए पाक करें। गन्धक जीर्ण होने पर डाट लगाकर पुन: उसे दो प्रहर की अग्नि देकर पाक करें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी में से रक्तवर्ण के चमकदार सुन्दर रससिन्दूर को निकाल कर सुरक्षित रखें।

मात्रा- १ से २ रत्ती, शहद अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

नवज्वर में- रससिन्दूर १ रत्ती, गोदन्ती हरिताल भस्म २ रत्ती में मिलाकर तुलसी पत्र-स्वरस अथवा अदरक या पान के रस के साथ दें।

जीर्णज्वर में- गिलोय, धनियाँ पित्तपापड़ा सब समान भाग लेकर इसका क्वाथ बना शहद मिलाकर दें।

प्रमेह में- कच्ची हल्दी का स्वरस अथवा गिलोय सत्व मिलाकर शहद के साथ दें।

प्रदर में- अशोक की छाल, खरेंटी, लोध्र प्रत्येक सम भाग लेकर इनके क्वाथ के साथ दें।

अर्श में- छोटी हरड़ के साथ दें।

अपस्मार में- बच के चूर्ण के साथ मिलाकर मांस्यादि क्वाथ से दें।

उन्माद रोग में- पेठे का स्वरस या ब्राह्मी चूर्ण ३ माशे के साथ दें।

श्वास रोग में- बहेड़े के छिलके के चूर्ण के साथ अथवा अडूसापत्र-रस के साथ दें।

कामला में- रससिन्दूर को स्वर्ण माक्षिक भस्म तथा कासीस भस्म के साथ मिला कर दारुहल्दी क्वाथ के साथ दें।

पाण्डू में- लौह भस्म के साथ मिलाकर त्रिकुटा, त्रिफला और अडूसा-स्वरस के साथ सेवन करावें।

मूत्रकृच्छ्र रोग में- शिलाजीत, छोटी इलायची के बीज का चूर्ण और मिश्री मिलाकर धारोष्ण दूध के साथ दें।

अजीर्ण में- सिन्दूर १ रत्ती को संजीवनी बटी १ गोली के साथ घोंटकर अदरक रस और मधु के साथ दें। ऊपर से अर्क अजवायन २।। तोला पिला दें अथवा सोंठ के क्वाथ के साथ दें।

उदरशूल में- रससिन्दूर १ रत्ती को शंख भस्म ४ रत्ती के साथ घोंटकर मधु में मिलाकर चटा दें, ऊपर से त्रिफला क्वाथ पिलावें, अथवा कालानमक और अजवायन का समभाग ३ माशे चूर्ण में मिला, ऊपर से गरम पानी में नींबू का रस निचोड़कर पिलावें।

मूर्च्छा में- रससिन्दूर १ रत्ती में पीपल चूर्ण २ रत्ती मिलाकर मधु के साथ दें तथा रोगी को कुएँ के शीतल पानी से स्नान करावें।

वमन विशेष होने पर- रससिन्दूर १ रत्ती को नींबू सत्व २ रत्ती के साथ घोंटकर छोटी इलायची के चूर्ण और मधु में मिलाकर दें या भाँग और अजवायन समभाग के चूर्ण २ माशे के साथ दें।

सर्वांग शोथ में- रससिन्दूर १ रत्ती को मण्डूर भस्म २ रत्ती के साथ घोंटकर मधु मिलाकर चटा दें। ऊपर से पुनर्नवासव २।। तोला बराबर शीतल जल के साथ दें।

भयंकर विस्फोट में- रससिन्दूर चतुर्जात (छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) चूर्ण के साथ मिलाकर गिलोय, नीम, खैर की छाल, इन्द्रजव-इनका क्वाथ बना इसके अनुपान के साथ दें।

गर्भाशय प्रदाह में-रससिन्दूर १ रत्ती, काकोली चूर्ण १ माशा में मिलाकर नारियल के जल के साथ दें।

पुराने प्रमेह में-रससिन्दूर १ रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती, शहद के साथ दें।

अति प्रबल वमन को रोकने के लिये- रससिन्दूर १ रत्ती, त्रिकटु चूर्ण, धनियाँ, जीरे का चूर्ण सबको मिलाकर ३ माशे के साथ लेकर कई बार चटावें।

अपस्मार में- रससिन्दूर २ रत्ती, ब्राह्मी, बच, शंखपुष्पी, कूठ, छोटी इलायची, प्रत्यश का चूर्ण समभाग लेकर २ माशे में मिला सारस्वतारिष्ट १ तोला बराबर जल के साथ दें।

भगन्दर में- त्रिफला और वायविडंग के साथ दें।

गुल्म में-छोटी हरड़ और सौंफ के क्वाथ के साथ दें, अथवा विड्लवण और अजवायन चूर्ण के साथ गर्म जल से दें।

वात-कफात्मक पुराने शिरःशूल में- रससिन्दूर १ रत्ती मधु से दें, ऊपर से दशमूल या पथ्यादि क्वाथ पिला दें।

पुराने व्रण में- कंटकारी, सुगन्धबाला, गिलोय तथा सोंठ क्वाथ के साथ देना चाहिए।

पुराने आमवात में- रससिन्दूर १ रत्ती, गुडूची, मोथा, शतावर, पीपल, हरड़, बच, मोथा और सोंठ के कषाय के साथ दिन भर में दो बार प्रयोग करें।

वाजीकरण के लिये- सेमल का कन्द और मूसली चूर्ण समभाग ३ माशा अथवा विदार्यादि गुणोक्त दवा के ३ माशा चूर्ण के साथ गोदुग्ध से दें।

धातुवृद्धि के लिये- रससिन्दूर १ रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती, स्वर्ण भस्म चतुर्थांश रत्ती मलाई के साथ दें। अथवा लौंग, केशर, जावित्री, अकरकरा, पीपल प्रत्येक १-१ भाग तथा कपूर, भाँग, अफीम और नाग भस्म आधा-आधा भाग लेकर, सबका यथा-विधि चूर्ण बनावें। एक माशा इस चूर्ण के साथ १ रत्ती की मात्रा में रससिन्दूर दें।

स्वप्न दोष के लिये- जायफल, लौंग १-१ भाग, कपूर और अफीम चतुर्थांश भाग-सबका यथाविधि चूर्ण बना लें। इसमें से ३ माशे चूर्ण में १ रत्ती रससिन्दूर मिला जल के साथ दें अथवा शीतल चीनी के कषाय के साथ दें।

शिरःकम्प में- रससिन्दूर १ रत्ती, असगन्ध का चूर्ण १ माशा, बला (खरेंटी) के क्वाथ से देना चाहिए।

मदात्यय रोग में- हींग, अजवायन, सोंठ, चव्य, धनियाँ और सोंचल नमक-चूर्ण के साथ रससिन्दूर का सेवन करना चाहिए।

परिणामशूल में- रससिन्दूर १ रत्ती, यवक्षार ४ रत्ती, सुहागे की खील ४ रत्ती- सबको एकत्र मिलाकर अर्क दशमूल या नारियल जल के साथ देना चाहिए।

रक्तप्रदर में- रससिन्दूर १ रत्ती पीपल की लाख का चूर्ण ४ रत्ती में मिला घोंटकर वासा-क्वाथ या लोध्र के क्वाथ के साथ दिन भर में दो बार देने से फायदा होता है।

मूत्राशय के रोग में- रससिन्दूर १ रत्ती, त्रिफला-हिम के साथ देना चाहिए।

बालकों के नवज्वर में- रससिन्दूर आधी रत्ती, गोदन्ती भस्म १ रत्ती मिला तुलसीपत्र-रस के साथ दें।

बच्चों के श्वास कास में- रससिन्दूर आधी रत्ती, शुद्ध टंकण १ रत्ती मिला मध से या छोटी कटेली के क्वाथ से दें।

शरीर-पुष्टि के लिये- रससिन्दूर २ रत्ती, गिलोयसत्व ४ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती मक्खन

के साथ मिश्री मिलाकर दें।

नोट- यद्यपि यहाँ अनेक रोगों पर अनुपान के साथ रससिन्दूर का प्रयोग करने के लिये लिखा गया है तथापि चिकित्सक को चाहिए कि देश, काल और रोगी के बलाबल के अनुसार रससिन्दूर की मात्रा तथा उसके अनुपानादि की व्यवस्था करें।

गुण और उपयोग- गुण-धर्म के हिसाब से यह उष्णवीर्य तथा रसायन है। रक्त की गति को बढ़ाना, रक्तगत दोष को नष्ट करना और हृदय को बल देना इसका प्रधान कार्य है। पारद- गन्धक का यह कल्प शरीर के अंगों की क्रिया को बढ़ाता है। अनुपान भेद से अनेक रोगों को इसका मिश्रण नाश करता है। अकेला रससिन्दूर पित्तप्रधान रोगों में नहीं देना चाहिए। यदि देना ही आवश्यक हो, तो इसके साथ कोई शीतवीर्य प्रधान औषध प्रवालपिष्टी, मोतीपिष्टी, कामदुधा रस, गिलोयसत्व आदि मिलाकर दें। कफजन्य विकार को यह बहुत शीघ्र दूर करता है। रस रक्त और मांसगत रोगों तथा श्वासेन्द्रिय के विकारों में यह अच्छा लाभ पहुँचाता है। न्यूमोनिया, उरस्तोय, संग्रहणी, पाण्डु, सन्निपात आदि में सहायक औषधियों के साथ इसका मिश्रण देना चाहिए। बलवीर्य की वृद्धि और रक्त शोधन आदि सभी कार्यों में इस रसायन का उपयोग किया जाता है।

कफ प्रधान सन्निपात, न्यूमोनिया, इन्फ्लुएंजा, श्वास रोग, पुराना कफज कास आदि रोगों में कफ संचित होकर रोग बढ़ते जाते हो, साथ ही दूषित कफ होने के कारण इनके उपद्रव भी बढ़ते जाते हों, तो ऐसे समय में रससिन्दूर बहुत अच्छा काम करता है, क्योंकि इसका प्रभाव फुफ्फुस और श्वासवाहिनी नाड़ी पर विशेष रूप से होता है। अतः यह दूषित और संचित कफ को सुलभता से बाहर निकाल कर कफ को शुद्ध कर देता है तथा फुफ्फुस के विकार (शोथादि) को भी दूर कर बलवान बना देता है।

रससिन्दूर अपने उत्तेजक प्रभाव के कारण दूषित कफ को शरीर से निकालता है, परन्तु सूखी खाँसी में रससिन्दूर अकेले न देकर प्रवाल भस्म चन्द्रपुटी या पिष्टी के साथ २ माशे सितोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राश १ तोला के साथ मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है।

कफजन्य कास में कफ निकालने वाले अनुपान (मुलेठी, छोटी इलायची बीज-चूर्ण, वासाक्षार, यवक्षार आदि) के साथ रससिन्दूर का प्रयोग करें। इससे कफचयन दूर हो जाता है, अर्थात् कफ जो संचित हुआ रहता है उसे पतला कर निकाल देता है जिससे कफ संस्थान स्वच्छ वं सबल बनते हैं। यदि यह कफ नहीं निकाला जाय, तो रस-रक्तादि वहन करनेवाली नाड़ियाँ दूषित हो ज्वरादिक उपद्रव उत्पन्न कर देती है, जिससे कभी-कभी इन्फ्जुएंजा रोग भी उत्पन्न हो जाता है। परिणाम यह होता है कि इन्फ्लुएंजा आदि की तीव्रावस्था शान्त होने पर भी यदि थोड़ा-बहुत भी यह दूषित कफ फुफ्फुस के किसी स्थान में लगा हुआ रह जाता है, तो वह कुछ ही समय बाद दुर्गन्धयुक्त हरे-पीले रंग का निकलने लगता है, ऐसी अवस्था में रस-सिन्दूर, मृगश्रृंग भस्म में मिलाकर देने से काफी लाभ होता है। जिन्हें बार-बार जुकाम (प्रतिश्याय) बना ही रहता है, ऐसे मनुष्यों के लिये रससिन्दूर का अभ्रक भस्म के साथ सेवन करना अमृत के समान गुणकारक है।

उरःक्षत रोग में यदि कफ के साथ खून न आता हों, केवल कफ, वह भी दुर्गन्धयुक्त और पीला निकलता हो, तो रससिन्दूर वासावलेह के साथ देने से विशेष फायदा करता है। इससे व्रण भर जाता है और दूषित कफ निकलकर कफ भी शुद्ध हो जाता है।

राजयक्ष्मा की द्वितीयावस्था में कफ के विशेष उपद्रव होने पर रससिन्दूर १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, सुवर्ण वर्क या भस्म चतुर्थांश रत्ती में मिलाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। क्षय की तृतीयावस्था में यदि उरःक्षत हो गया हो, तो इसमें प्रायः कोई भी दवा नहीं काम करती, परंन्तु यदि तृतीयावस्था के प्रारम्भ काल में कफ का विशेष प्रकोप हो, तो उस समय रससिन्दूर अभ्रक भस्म के साथ देने से अवश्य लाभ होता है।

किसी रोग या मानसिक क्षोभ आदि के कारण हृदय कमजोर हो गया हो, रक्तवाहिनी शिरा संकुचित हो गई हो, उचित परिमाण में रक्त-संवहन नहीं करती हो, साथ ही स्नायु भी कमजोर हो गयी हो तो ऐसी स्थिति में-रससिन्दूर का प्रयोग करने से रक्तवाहिनी नाड़ी विस्तृत हो परिपुष्ट रक्त हृदय में पहुँचा कर हृदय को बलवान बना देता है जिससे स्नायुओं की भी शिथिलता दूर हो स्नायुपुष्ट हो जाता है, और मनुष्य हर तरह से स्वस्थ दिखलाई पड़ने लगता है। -औ.ग.ध. शास्त्र

वक्तव्य- एक बार में छः गुना गन्धक जारण करने की अपेक्षा दो बार में अर्थात् प्रतिबार तीन गुना गन्धक जारण करने में सुविधा होती है। रससिन्दूर समगुण गन्धक जीर्ण, रससिन्दूर द्विगुण गन्धक जारित, रससिन्दूर षड्गुण बलिजारित- इन सबकी मात्रा अनुपान एक समान ही है। ये गुणों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। अर्थात् समगुण गन्धक जारित के स्थान पर द्विगुण गन्धक जारित का प्रयोग किया जाय, तो समगुण गन्धक जारित की अपेक्षा शीघ्र लाभ करता है। यदि द्विगुण गन्धक जारित की बजाय षड्गुण बलिजारित का प्रयोग किया जाय, तो उससे भी शीघ्र एवं श्रेष्ठतम लाभ करता है। यथा- 'गन्धे तु षड्गुणे जीर्णे सर्वरोगहरो रसः' हो जाता है।

ताल सिन्दूर

शुद्ध पारद ६ भाग, शुद्ध तबकिया हरताल १ भाग, शुद्ध सोमल और शुद्ध गंधक १-१ भाग, प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करें पश्चात् सबको एकत्र कर पत्थर की खरल में घोंटे। खूब उत्तम कज्जली बना लें, इस कज्जली को सात कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर बालुकायंत्र में रख १२ घण्टे तक आँच लगाने के बाद शीशी में डाट लगा लें। डाट लगाने के बाद कुछ समय तक आँच देकर बन्द कर दें। स्वांग-शीतल होने पर सावधानी से शीशी तोड़ कर ताल सिन्दूर निकाल लें। -सि.भै.म. माला.

नोट- इसमें डाट लगाकर भी कुछ समय तक तेज आँच देने का कारण यह है कि हरताल जल्दी नहीं उड़ता है।

इसी विधान में पारे के साथ यदि स्वर्ण-वर्क मिलाकर बनाया जाय, तो यही 'ताल चन्द्रोदय' हो जाता है।

मात्रा और अनुपान- १/२(आधे) से १ रत्ती शहद, अदरक रस या घी के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- कज्जली और हरतला के रासायनिक योग से बनने वाला यह रसायन शरीर के अन्दर रहने वाले विजातीय विकार को सहसा निकाल देता है। हरताल का सम्पूर्ण गुणधर्म इसमें रहता हें। अतः यह रक्तशोधक, जन्तुघ्न, कफ और कुष्ठनाशक है। उष्णवीर्य होने के कारण वात विकार को भी नष्ट करता है। आतशक और उसके उपद्रव वातरक्त, मलेरिया और चर्मरोगों में यह बहुत फायदा करता है। फेफड़े में संचित जल को यह जल्दी सुखाता हे। अतएवं कास-श्वास और उरस्तोय में तालसिन्दूर का मिश्रण बहुत काम करता है। हृदय रक्तवाहिनियों की गति में इससे सहायता मिलती है तथा रक्त के अणु इससे शुद्ध और पुष्ट होते हैं। जलीय अंश का शोषण करने के कारण जलोदर और शोथ में भी इसका अच्छा प्रभाव होता है। शीतांग

सन्निपात में यह उष्णता लाता है और गले में भरे हुए कफ को जल्दी निकाल देता है। बार-बार आनेवाले बुखारों का विष इससे नष्ट हो जाता है तथा आतशक के कारण होनेवाला गठिया रोग भी इससे ठीक हो जाता है।

क्षय की प्रथमावस्था में कफयुक्त कास (खाँसी) न हो, सिर्फ खाँसी ही हो तो तालसिन्दूर का अकेला प्रयोग न कर कफ को पिघलाने वाली दवा प्रवाल चन्द्रपुटी, वासाक्षार आदि का मिश्रण कर मधु या च्यवनप्राशावलेह के साथ दें। यदि कफ-वृद्धि ज्यादा हो जाय, तो तालसिन्दूर को अभ्रक या श्रृंग भस्म के साथ में मिला शहद से देना चाहिए।

मलेरिया ज्वर की सभी अवस्थाओं में इसका उपयोग किया जाता है, जैसे दूषित जल के कारण हुआ विषमज्वर, बार-बार आनेवाला ज्वर, एकतरा, तृतीयक तथा चौथिया ज्वर, जीर्ण ज्वर आदि रोगों में इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है, क्योंकि इन ज्वरों के दूषित कीटाणु रक्त में प्रवेश कर रक्त को दूषित कर देते हैं। अतः इन रोगों का प्रधान कारण दूषित रक्त या कीटाणु ही होते हैं और ताल सिन्दूर कीटाणुनाशक तथा रक्त शोधक होने से इन कीटाणुओं को नष्ट कर रक्त को शुद्ध करते हुए ज्वर को दूर कर देता है। अतः ताल सिन्दूर का प्रयोग इस रोग में बहुत शीघ्र फायदा करता है।

जलोदर में भी इसका उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। जलोदर रोग में यकृत और हृदय में विकृति हो जाती है। इसका कारण यह होता है कि रक्ताणुओं की कमी होकर शरीर में जल भाग की ही वृद्धि होती है, जिससे यकृत और हृदय दोनों अपने अपने काम करने में असमर्थ हो जाते हैं। ताल सिन्दूर यकृत और हृदय को बल पहुँचाता है, जिससे हृदय और यकृत में परिपुष्ट रक्त पहुँचकर उसे सशक्त बना देता और रक्ताणुओं की वृद्धि होने से जलीयांश भाग शोषित होने लगता है। अतः जलोदर एवं शोथ ये दोनों रोग इसके सेवन से दूर हो जाते हैं। औ.गु.ध. शा.

आतशक की सभी दशाओं और उसके उपद्रवों में ६ रत्ती चोपचीनी चूर्ण में १ रत्ती ताल सिन्दूर मिला कर दें। ऊपर से महामंजिष्ठादि अर्क पिला दें। कुष्ठ रोग में ताल सिन्दूर १ रत्ती, बाकुची चूर्ण ४ रत्ती, गो-मूत्र अथवा खदिरारिष्ट के साथ दें। समस्त चर्मरोगों में गुडूची स्वरस या मधु के साथ ताल सिन्दूर दें। कास, श्वास और कफ रोगों में अदरक रस और मधु से दें। मलेरिया तथा विषमज्वरों में तुलसी रस या मधु के साथ ऊपर से अर्क सुदर्शन पिला देने से बहुत लाभ होता है।

पञ्चसूत रस

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध हिंगुल ८ तोला, सवीर (सोमल) २ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, रससिन्दूर ६ तोला, रसकपूर ८ तोला लेकर प्रथम पारद-गन्धक की सूक्ष्म कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य औषधियाँ मिला, दृढ़ मर्दन कर छोटी दुद्धी के रस की ३ भावना देकर मर्दन करके सुखा लें। पश्चात् कपड़मिट्टी करके सुखाई हुई दृढ़ कांचकूपी में भरकर बालुका यंत्र में मन्द-मध्य तीव्र क्रम से अग्नि देवें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी के गले में लगे रस को निकाल कर सुरक्षित रखें। - औ.गु.ध.शा.

मात्रा और अनुपान- आधे से १ रत्ती तक आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार अदरक रस, तुलसी-पत्र-स्वरस और शहद के साथ मुलेठी, बहेड़ा, बाँस-पत्र और मिश्री के क्वाथ से दें या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन श्वास-कास, आमांशजन्य शूल, दुष्ट एवं कठिन वातरोग,

फुफ्फुसावरण शोथ (उरस्तोय-प्लुरसी), घोर सन्निपात आदि कठिन रोगों को शीघ्र नष्ट करता है।

इस रस का मुख्य प्रभाव कफ संस्थान पर होता है, इसी कारण इसमें कफ को शोषण करने की अपूर्व शक्ति निहित है। विशेषतया फुफ्फुसावरण एवं अन्य स्थानों में संचित दोषों का शोषण करता है। मल्लसिन्दूर और पंचसूत रस दोनों ही कफ-शोषण गुणप्रधान औषधि हैं, किन्तु पंचसूत रस मल्लसिन्दूर की अपेक्षा अधिक सौम्य और गुणकारी है। अर्थात् उष्णता एवं तीक्ष्णता में न्यून है। वातनाड़ियों की क्रिया मे शिथिलता जन्य व्यत्यय होने पर या अन्य दोष जन्य वात रोगों में पंचसूत रस का सेवन श्रेष्ठ लाभप्रद है।

फुफ्फुसावरण शोथ की अवस्था में शारीरिक क्रिया शिथिल एवं हृदय अशक्त हो जाता है। रोग के जीर्ण होने की दशा में फुफ्फुसावरण में जल संचय होने लगता है। इसको उरस्तोय (प्लुरसी), कुक्ष्युदर कहते हैं। इसमें कुक्षिशुल, शुष्क कास और ज्वर ये लक्षण होते हैं। कभी-कभी अधिक कष्ट के कारण रोगी खाँस भी नहीं पाता। इसमें तीव्रावस्था के बाद ही जलसंचय होता है। कभी-कभी फुफ्फुसावरण के समान मस्तिष्कावरण में भी शोथ उत्पन्न होकर जल संचित हो जाता है। इसमें पंचसूत रस का प्रयोग विशेष उपयोगी प्रस्थापक, ज्वर एवं शोथ-पीड़ानाशक उत्तम रसायन है।

फुफ्फुस, सन्निपात (न्यूमोनिया) के वेग का शमन होने पर फुफ्फुस कोषों में कफ संचित होकर फुफ्फुस की क्रिया में प्रतिरोध उत्पन्न कर देता है और श्वास-प्रश्वास के साथ घर-घर शब्द निकालता है। इस दशा में पंचसूत रस के प्रयोग से फुफ्फुस और हृदय उत्तेजित होकर इनकी क्रिया नियमित हो जाती है, और कफ का शोषण होकर रूपान्तर हो जाता है, किन्तु इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि यदि कफ के साथ रक्त आता हो, तो इस रस का प्रयोग कदापि न करें।

कभी-कभी श्वासवह स्रोतों में कफ संचित होकर श्वास-प्रश्वास में प्रतिबन्ध, घर-घर शब्द होना, श्वासावरोध, छिन्नश्वास, नाड़ी की गति विषम आदि लक्षणों में इस रस के प्रयोग से श्वास वह स्रोतों में संचित कफ का अति शीघ्र शोषण कर उनको शुद्ध बना देता है, किन्तु समीरपन्नग रस का कार्य इससे भिन्न है, समीरपन्नग कफ का स्राव कराने एवं कफ बाहर निकालने में श्वासवाहिनी शक्ति को सहायता पहुँचाता है और वातवाहिनी नाड़ियों पर भी उत्तम प्रभावकारी है।

छोटे बच्चों के स्कन्दग्रह, अहिपूतना आदि बालग्रह विकार मस्तिष्कावरण-विकृति से (मस्तिष्क में रहे हुए वात की विकृति के कारण से) हुए हों, तो ऐसी दशा में तीव्र विकार शमन होने के पश्चात् कफ प्रधान लक्षण होने पर इस रस का सेवन अमृत तुल्य लाभकारी है।

बालग्रह रोग अनेक कारणों से होता है, जिनमें ये दस कारण प्रधान है। उदर और आन्त्र की विकृति, या वात संचय, दन्तोद्भव, कृमि, मूत्र, द्वार की त्वचा चिपक जाने से मूत्रोंत्सर्ग में प्रतिबन्ध कर्णपाक, मृद्वस्थि, शीतला, विस्फोटक, रोमान्तिका आदि तीव्र पिडकायुक्त ज्वर, काली खाँसी, मस्तिष्कावरण शोथ, धनुर्वात या अपस्मार के पूर्वरूप ये उदर में वात संचय या विकृत दुग्ध या विकृत आहार-विहार से होते हैं और बालग्रह सदृश आक्षेप बार-बार आते रहते हैं। ऐसी दशा में उदरस्थ वातशमनार्थ पंचसूत रस का प्रयोग अपूर्व लाभकारी है।

माता के दुग्ध की विकृति या माता की मानसिक विकृति जन्य बच्चे को पेचिश या आक्षेप हों, या कीटाणु जन्य विष के प्रकोप से पेचिश उत्पन्न हुई हो, तो दुग्ध विकृति और कीटाणु विष एवं वात संचय को नष्ट करने के लिये कोई सौम्य विरेचक और मृदु यकृदुत्तेजक औषधि का प्रयोग करना चाहिये। ये सब गुण पंचसूत रस में पूर्ण रूप से निहित हैं। यह रस सौम्य विरेचक और मृदु

यकृदुत्तेजक है। तीव्र यकृत विकार में भी इसका प्रयोग होता है तथा आंत्र एवं कौष्ठिक जीवाणु-जन्य विष को नष्ट करता है। अतः गर्भवात, तीव्र यकृत्संकोच, अन्त्रस्थ जन्तुजन्य विकृति से उत्पन्न उदरवात रोग की तीव्रावस्था में इस रस का प्रयोग हितकारी है, किन्तु जीर्ण व्याधि में इससे लाभ नहीं होता।

पंचसूत रस कफ-वात, कफ प्रधान दोष, रस-रक्त-मांस ये दूष्य, फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण आदि कफ स्थान, पक्वाशय, बृहदन्त्र, ग्रहणी, सहस्त्रार सहस्तारावरण, वातवाही नाड़ियाँ स्नायु- इन सब पर विशेष प्रभावशाली है। फुफ्फुसावरण आदि स्थानों में संचित द्रव्य का शोषण करता है।

नोट- तीव्र औषधि होने के कारण इसका सावधानी से प्रयोग करना चाहिए। पित्तोल्बण विकारों में पंचसूत के प्रयोग से मुखपाक, दन्तवेष्ट-शोष एवं दन्तवेष्ट से रक्त गिरना इत्यादि उपद्रव होते है। अंत: आन्त्रिक सन्निपात (मोतीझरा) में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए, अधिक आवश्यक होने पर शामक एवं सौम्य औषधि के साथ प्रयोग करें।

मल्लसिन्दूर

शुद्ध पारद ९ तोला, शुद्ध गन्धक ५।। तोला, रस कपूर ९ तोला, शुद्ध संखिया ४।। तोला, प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली करें, पीछे उसमें रस कपूर और संखिया पृथक्-पृथक् पीस कर मिला ग्वारपाठा (घीकुमारी) के रस में दो दिन मर्दन कर सात कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर कर बालुकायंत्र में २ दिन पकावें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी को तोड़ कर शीशी के गले में जमे हुए मल्लसिन्दूर को निकाल तीन दिन पत्थर के खरल में पीस, खूब महीन होने पर शीशी में भर लें।

नोट- मल्लसिन्दूर बनाने में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। प्रारम्भ में कूपीस्थ द्रव्यों के पिघलने तक मन्द अग्नि दें, बाद में तेज अग्नि दें। लोहे की सलाई से बराबर शीशी के गले को साफ करते रहें। जब तक शीशी में गन्धक रहेगा, तब तक सलाई में गन्धक पिघला हुआ काले रंगा का देखने में आयेगा। करीब १०-१२ घण्टे मे इस गन्धक का जारण हो जाता है। फिर संखिया का धुआँ निकलने लगता है। इसी समय डाट लगा दें अन्यथा संखिया सब निकल जायेगा। गन्धक रहते हुए यदि डाट लगा दी जाती है तो गन्धक की गैस बन कर डाट को फेंक देती है या शीशी को तोड़ डालती है। अत: डाट सावधानी से लगावें। साथ ही संखिया के धुआँ से भी बचना चाहिए। मल्लसिन्दूर के लिये ३६ घण्टे की आँच पर्याप्त है। यदि मल्लसिन्दूर के योग में पारद से चतुर्थांश स्वर्ण वर्क मिलाकर बनाया जाय, तो इससे अधिक गुणकारी मल्लचन्द्रोदय बन जाता है।

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती, दिन में दो बार शहद और अदरक के रस के साथ या रोगानुसार अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- संखिया और कज्जली का यह रासायनिक कल्प अत्यन्त तीक्ष्ण और उष्णवीर्य है। पित्त प्रधान रोगों में और पित्त प्रकृति के पुरुषो को यह बहुत हल्की मात्रा में सौम्य औषध- सितोपलादि चूर्ण प्रवाल पिष्टी आदि के मिश्रण के साथ देना चाहिए और ठण्डा उपचार करना चाहिए। वात और कफ के विकारों में यह तीर की तरह शरीर में प्रवेश कर शीघ्र ही उत्तम फल दिखलाता है। जन्तुघ्न गुण के कारण रक्त में घुसे हुए मलेरिया, हैजा, गरमी (सिफलिस) आदि के कीटाणुओं को जल्दी नष्ट करता है। यह रक्तवाहिनियों में उत्तेजना पैदा करता है और हृदय की गति को बढ़ाता है। तेज बुखार में इसे नहीं देना चाहिए। आतशक के लिये तो इसे

न्यूसल्वर्सन इन्जेक्शन ही समझे। आतशक या सूजाक के कारण होनेवाले गठिया तथा अन्य उपद्रवों में भी बहुत शीघ्र लाभ देखा गया है।

पक्षाघात, आमवात, धनुष्टंकार आदि वात रोगों में और कफ सम्बंधी कास, श्वास, न्यूमोनिया, उरस्तोय, डब्बा आदि रोगों में आशातीत लाभ करता है। शीतांग और कफ प्रधान सन्निपात में यह अपूर्व प्रभाव दिखलाता है। स्त्रियों के हिस्टीरिया रोग में इसका बहुत जल्दी प्रभाव पड़ता है। एक सप्ताह में ही सब दौरे समाप्त हो जाते हैं। बुढ़ापे की दुर्बलता और पुराने दमे के रोग में मल्लसिन्दूर अमृत के समान गुण करता है। यह पाचक रस को पैदा करके भूख पैदा करता है और मूत्राशय तथा शुक्रप्रणालियों की कमजोरी को दूर करके रक्त उत्पन्न करता है। हस्तमैथुन से नामर्द हुए मनुष्य को इसे अवश्य सेवन करना चाहिए। हैजे और अजीर्णजन्य दस्तों के विष को यह जल्दी नष्ट करता है। वात, कफजन्य प्रमेह में यह रसायन अच्छा गुण दिखलाता है। अत: केवल बलवीर्य वृद्धि के लिये भी इसका सेवन किया जाता है। यह थोड़े ही दिनों में शरीर को पुष्ट बनाकर मैथुन-शक्ति को बढ़ा देता है। इसको प्रवालपिष्टी जैसी सौम्य औषध के साथ मिलाकर खिलाने से ज्यादा गर्मी नहीं मालूम होती है।

कफजन्य सन्निपात में- मल्लसिन्दूर का प्रयोग किया जाता है। सन्निपात की प्रारम्भिक अवस्था में इसका प्रयोग करने से सन्निपात की शक्ति कम हो जाती है तथा रोगी भी विशेष परेशान नहीं होता। कफ प्रकोप के कारण कंठ में कफ भरा हुआ रहता हो, घर-घर आवाज होती हो, साथ ही थोड़ा कफ भी निकलता हो, अधखुले नेत्र अक-बक बकना, तन्द्रा, बेहोशी, कभी-कभी निद्रा आ जाना, ज्वर की गर्मी भी ज्यादा न मालुम पड़े.... ऐसी अवस्था में मल्लसिन्दूर मधु के साथ देने से बहुत फायदा करता है।

दूषित जलवायु का कफकारक पदार्थ का विशेष सेवन करने से कफ प्रकुपित हो छाती में संचित होने लगता है। कफसंचित होने से फुफ्फुस और वातवाहिनी नाड़ी कमजोर हो जाती है, जिससे कफ जल्दी बाहर नहीं निकल पाता। फुफ्फुस की कमजोरी के कारण खाँसने में भी कष्ट होता है। ऐसी हालत में मल्लसिन्दूर के प्रयोग से वंचित कफ बाहर निकलने लगता है। मल्लसिन्दूर के साथ प्रवाल चन्द्रपुटी या अभ्रक तथा लौह भस्म आदि भी मिलाकर देने से बहुत फायदा होता है।

न्यूमोनिया या इन्फ्लुएंजा आदि रोगों में जिनका असर खास कर फुफ्फुस पर पड़ता है, ऐसे रोगों से मनुष्य जब ग्रस्त हो जाता है, तब फुफ्फुसों की कमजोरी के कारण श्वास लेने में भी कष्ट होता है और रोगी इतना कमजोर हो जाता है कि वह देर तक बातें भी नहीं कर सकता तथा उसका हृदय भी कमजोर हो जाता है। ऐसी दशा में मल्लसिन्दूर आधी रत्ती, मोती भस्म या पिष्टी १ रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती- इन्हें मधु या पान के रस में मिलाकर देने से लाभ होता है।- औ.गु.ध.शा.

मलेरिया (विषमज्वर) में मधु और तुलसी-पत्ती के रस के साथ दें। आतशक और सूजाकजन्य वात-विकारों में मंजिष्ठादि क्वाथ या सारिवादि हिम और मधु के साथ दें। पक्षाघात आदि विकारों में मल्लसिन्दूर आधी रत्ती मधु के साथ दें। ऊपर से महारास्नादि क्वाथ ५ तोला में मधु मिलाकर पिला दें। कफ और वातजन्य सन्निपात में मल्लसिन्दूर आधी रत्ती को श्रृंग भस्म १ रत्ती में मिला अदरक-रस के साथ देने से लाभ होता है। प्रमेह और बहुमूत्र में मल्लसिन्दूर आधी रत्ती, बंग भस्म १ रत्ती मधु के साथ दें। शुक्रक्षय में मल्लसिन्दूर आधी रत्ती, छोटी इलायची चूर्ण ४ रत्ती २ माशे मिश्री में मिला दूध के साथ दें। आतशक और उसके विकारों में मल्ल सिन्दूर आधी रत्ती मधु में

मिलाकर चटा दें। ऊपर से सारिवाद्यासव २ तोला बराबर पानी मिलाकर देना चाहिए। न्यूमोनिया, इन्फ्लुएंजा आदि रोगों में श्रृंग भस्म या गोदन्ती भस्म में मिलाकर पान के रस और मधु के साथ दें।

ताम्र सिन्दूर

शुद्ध ताम्र के तार ५ तोला, शुद्ध पारा १० तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला। प्रथम पारद-गन्धक की एकत्र कज्जली बना, इस कज्जली को आशी शीशी में भरकर ताँबा के तारो के छोटे-छोटे टुकड़े करके इसमें डाल दें, पश्चात् शीशी को बालुकायंत्र में रख, भट्ठी पर चढ़ा, ३६ घण्टे की आँच लगातार देने से यह तैयार होता है। स्वांग-शीतल होने पर पूर्वोक्त विधि से शीशी को तोड़कर शीशी के गले में लगे ताम्रसिन्दूर को निकाल लें। शीशी के पेंदे में ताम्रभस्म मिलेगी इसी और पुट देकर ठीक कर लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, मधु, पान या तुलसी पत्तों के रस से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- पारद गन्धक और ताम्र के योग से बनने वाला यह रसायन उष्णवीर्य है। यह रक्त-विकृतिजन्य रोग में बहुत फायदा करता है। ताम्र सिन्दूर यकृत-प्लीहा के रोग और अम्लपित्त तथा अपस्मार को दूर करने वाला एवं शूलनाशक है। इसके प्रयोग से शरीर में होनेवाले आक्षेप तथा खल्ली (वॉयटे) आना बन्द हो जाता है। पुराने मन्दाग्नि रोग तथा परिणामशूल के लिये बहुत उत्तम गुणकारी माना जाता है। आँतों में होनेवाले क्षय रोग की उत्तम औषध है।

आमाशय के लिये यह बल्य तथा आँतों के लिये ग्राही एवं उत्तम कीटाणुहर है। अतः विसूचिका की सभी अवस्थाओं में उत्तम लाभकारी है।

यह आँतों की वात-नाड़ियों के क्षोभ को शान्त करने के कारण शूल को नष्ट करता है। हृदय तथा श्वास की बढ़ी हुई गति कम करता है। नाड़ी-संस्थान में यह बल पहुँचाता है। त्वचा के विकारों को दूर करने के लिये यह उत्तम दवा है। इसके प्रयोग से बढ़ी हुई प्लीहा और यकृत कम हो जाता है।

आमाशय में उत्पन्न हुए कर्कट-स्फोट में और वात-कफ प्रधान मांसार्बुद में ताम्र सिन्दूर का अच्छा प्रभाव देखा जाता है। इसके प्रयोग से पित्ताशय की सूजन कम हो जाती है, जिससे पित्ताश्मरी नहीं हो पाती और यकृत से पित्त का स्राव ठीक तथा नियमित रूप से होने लगता है। अतएव, यह यकृत-शोथ वृद्धिजन्य जलोदर में अत्यन्त लाभ करता है। ताम्र सिन्दूर लेखन गुण के कारण पाचन-संस्थान की कफ-ग्रन्थि और गुल्म रोग में बहुत फायदा करता है। हैजा की अन्तिम अवस्था में जब हृदय-दुर्बलता के कारण नाड़ी क्षीण हो गयी हो, और शरीर ठण्डा हो गया हो तो ऐसी अवस्था में ताम्र सिन्दूर जवाहर मोहरा नं. १ या माती पिष्टी एवं कपूर के साथ देने से बहुत फायदा करता है। हैजा की प्रारम्भिक अवस्था में इसके प्रयोग से हैजे के कीटाणु मर जाते हैं, तथा हाथ-पैर में होनेवाली ऐंठन भी कम हो जाती है, ताम्र सिन्दूर मांसपेशी को बल देता है, हिक्का रोग में भी विशेष फायदा करता है। वात और कफ प्रधान हिक्का में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, बिजोरा नींबू के रस में देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वातजन्य खाँसी में जिसमें बहुत सूखी खाँसी आती हो, कफ नहीं निकलता हो, खाँसी विशेष जोर पकड़ती जा रही हो, खाँसते-खाँसते शरीर में खिंचाव होने लगे, श्वास भी रुकने लगे तथा मुँह नीला पड़ जाय, ऐसी अवस्था में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती,

सितोपलादि चूर्ण २ माशे में मिलाकर च्यवनप्राश के साथ दें। ऊपर से द्राक्षारिष्ट २।। तोला बराबर जल मिलाकर दें।

वमन की उग्रावस्था में- ताम्र सिन्दूर १ रत्ती, मयूरचन्द्रिका भस्म २ रत्ती, पीपल वृक्ष की छाल की भस्म ४ रत्ती, एकत्र कर मधु मिलाकर चटाने से शीघ्र लाभ होता है।

बालकों के आक्षेपजन्य रोग में- ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, जटांमासी चूर्ण १ माशे के साथ सेवन कराने से आक्षेप शान्त हो जाता है।

भयंकर कष्टरज (रजोरोध) में- जिसमें पेट और छाती में तीव्र दर्द हो, दर्द के मारे स्त्री चीखती हो तथा अण्ट-सण्ट बोलती हो साथ ही वमन भी होता हो, जी मिचलाता हो, हाँथ-पाँव में खिंचावट हो, ऐसी अवस्था में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती सम्भालू बीज, सोंठ, एलुआ और दालचीनी का चूर्ण २ माशे में मिलाकर कुमार्यासव के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

हैजा में- अत्यंत पतला-सफेद दस्ता होता हो, प्यास ज्यादा लगे, रोगी की सम्पूर्ण देह मे ऐंठन हो, नाडी की गति बिल्कुल क्षीण हो गयी हो, मुखमण्डल नीला तथा होंठ काले पड़ गये हो ऐसी हालत में ताम्र सिन्दूर आधी रत्ती, कस्तुरी आधी रत्ती, भीमसेनी कपूर आधी रत्ती-इन सबको एकत्र मिला मधु के साथ दें। ऊपर से सौंफ या अजवायन का अर्क २ तोला पिला दें। इससे हृदय सशक्त होकर नाड़ी की गति सुधर जाती है। दस्त भी कम होने लगते हैं, फिर क्रमश: रोगी अच्छा होने लगता है।

अपस्मार रोग में- होंठ नीले पड़ गये हों, मुख से झाग निकल रहा हो, आँखों की पुतलियाँ टेढ़ी पड़ गयी हों, रोगी रोता या चीखता हो, दाँतों को चबाता हो, ऐसी दशा में ताम्र सिन्दूर १ रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती मधु में मिलाकर चटावें तथा मांस्यादि क्वाथ पिलावें। इसमें शीघ्र लाभ होता है।

रजतसिन्दूर

शुद्ध पारा २० तोला, शुद्ध गन्धक २० तोला- इनकी कज्जली बना, कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में पक्की काली बोतल में भरकर १० तोला चाँदी के पत्रों के छोटे-छोटे टुकड़े करके उसमे डाल दें। पश्चात् बालुकायंत्र में रखकर कूपीपक्व निर्माणविधि से मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण अग्नि देकर पाक करें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी को तोड़कर गले में लगे हुए 'रजतसिन्दूर' को निकाल कर रख लें।-र.सा.की सिन्दूर निर्माण विधि से

मात्रा और अनुभव- १ से २ रत्ती प्रात: सायं मक्खन, मलाई अथवा मधु से दें।

गुण और अनुपान- यह रसायन रस-रक्तादि सप्त धातुओं का पोषण कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट एवं शक्ति युक्त बनाता है। दिल और दिमाग की कमजोरी, मेधा एवं स्मरणशक्ति की कमी, स्नायु दौर्बल्य, पाण्डु, कामला, वायु तथा पित्त के विकार आदि को शीघ्र नष्ट करता है। उदर वात के प्रकुपित होने पर उसका शमन करता है। किसी भी कारण से आयी हुई शारीरिक और मानसिक दुर्बलता को मिटाने में यह अतीव गुणकारी है।

पूर्णचन्द्रोदय रस

स्वर्ण वर्क ४ तोला को खरल में डालकर शुद्ध पारा ३२ तोला मिलाकर मर्दन करें। शुद्ध पारा में स्वर्ण वर्कों के अच्छी तरह विलीन हो जाने पर उसमें ६४ तोला शुद्ध गन्धक मिलाकर मर्दन करके कज्जली करें। पश्चात् कपास के लाल फूल तथा ग्वारपाठा के रस की १-१ भावना देकर

सुखाकर कपड़मिट्टी की हुई बोतलों में भरकर (तीन बोतलों में भरना ठीक है) बालुकायंत्र में रखकर मृदु, मध्य और तीक्ष्णाग्नि पर तीन दिन तक पकावें। पश्चात् स्वांग-शीतल होने पर शीशी को तोड़कर गले में लगे हुए नवीन किसलय वर्ण के इस रस को निकाल कर रख लें। पश्चात् इस रस में से ४ तोला रस तथा ४ तोला कपूर, जायफल, सफेद मरिच, लौंग-प्रत्येक ३-३ माशे तथा कस्तूरी तीन माशे लेकर खरल में पीसकर रख लें अथवा पान के रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोली बनाकर छाया में सुखाकर रख लें।

वक्तव्य- कितने ही वैद्य इसमें पाठान्तर भेद के अनुसार कपूर के समान ही जायफल, सफेद मरिच, लौंग इन तीनों को भी ४-४ तोला तथा कस्तूरी ६ माशा मिलाकर निर्माण करते हैं। तथा कुछ लोग सिर्फ कूपी-सिद्ध (पक्व) रसायन को ही पूर्णचन्द्रोदय के नाम से व्यवहार करते हैं। उनका मत है कि पूर्णचन्द्रोदय तो कूपी-सिद्ध रसायन ही है, शेष कर्पूर, जायफल, लौंग, मरिच, कस्तूरी तो इसके अनुपान हैं। हम स्वयं भी उनके इस युक्तिसंगत मत से सहमत हैं और इसी प्रकार उपयोग भी करते हैं।

मात्रा और अनुपान- केवल कूपीसिद्ध रसायन १ रत्ती को अनुपान द्रव्यों के चूर्ण २ रत्ती के साथ मिलाकर पान में रखकर खायें अथवा अनुपान-द्रव्य मिश्रित रसायन को २-४ रत्ती की मात्रा में पान में रखकर सेवन करें या पान के रस में घोंटकर बनाई गोली १-२ तक खाकर ऊपर से धारोष्ण या गरम दूध पीवें।

गुण और उपयोग- यह रसायन अत्यन्त बल-वीर्यवर्द्धक होने के कारण कामशक्ति को बढ़ाने में एवं स्तम्भन के लिये सुप्रसिद्ध महौषध है। इसके अतिरिक्त दिमाग की कमजोरी, खाँसी, श्वास, वातरोग, कफ रोग, स्नायु दौर्बल्य एवं बलि पलित आदि रोगों को नष्ट करता है। रस-रक्तादि धातुओं की वृद्धि कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट एवं शक्ति-सम्पन्न बनाता है तथा मुखमण्डल को कान्ति तथा ओजपूर्ण बनाता है। यह वयःस्थापक और रसायन है।

शिला-सिन्दूर

शुद्ध मैनशिल ५ तोला, शुद्ध पारा १० तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक को एकत्र मिला कज्जली करें। पश्चात् मैनशिल मिलाकर इस कज्जली को ग्वारपाठा के रस में घोंटकर सुखा, आतशी शीशी में भरकर बालुकायंत्र में रख २।। दिन-रात अग्नि दें। स्वांग-शीतल होने पर उतार कर सावधानी से शीशी के गले में लगे हुए शिला-सिन्दूर को निकाल लें।

वक्तव्य- मैनशिल कठोर पदार्थ होने के कारण मन्दाग्नि पर नहीं उड़ता है। अतः प्रारम्भ से ही तीव्र अग्नि दें। शीशी का मुख गर्म शलाका से चलाकर साफ करते रहना चाहिए एवं शलाका से देखने पर (सफेद बत्ती दिखने पर) डाट लगावें। इस औषध के योग में मैनशिल से चतुर्थांश स्वर्ण-वर्क मिलाकर बनाने से शिलाचन्द्रोदय कहलाता है और यह उक्त शिला-सिन्दूर से अधिक गुणकारक भी होता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, शहद (मधु) के साथ दें। ग्रीष्मऋतु में १ से ४ चावल की मात्रा में दे। इसका रंग कलोंसयुक्त चमकदार होता है।

गुण और उपयोग- नियमित रूप से कुछ दिनों तक इसका सेवन करने से कुष्ठ या खून की खराबी से उत्पन्न चर्म-विकार में आराम हो जाता है। जाड़ा देकर आनेवाला बुखार और शीतांग सन्निपात में इसके योग से बहुत लाभ होता है। गर्मी की अपेक्षा जाड़े में इसका उपयोग विशेष

करना चाहिए।

इसमें प्रधान औषध मैनशिल है। मैनशिल स्निग्ध, उष्ण और गुरु होती और यह लेखनकार्य करती है। यह कास और श्वास रोग-नाशक तथा कीटाणुजन्य रोगों को नष्ट करती है। इसके अतिरिक्त अग्निमांद्य, क्षय तथा अफरा, कब्ज और कण्डू को मिटाती है। यह नियमपूर्वक शुद्ध रूप में सेवन करने से हरताल की भाँति शरीर में रसायन-कार्य करती है। पुराने और नवीन ज्वरों में लाभदायक है। त्वचा के रोगों को नष्ट करके उसकी सुन्दरता को बढ़ाती है।

कास-श्वास रोग में- कफ या वात प्रधान कास हो, खाँसी बार-बार आती हो, साथ में सफेद तथा चिकना कफ निकलता हो, खाँसते-खाँसते आँखें तथा मुँह लाल हो जाते हों, अन्न में अरुचि निद्रा, देह में भारीपन आदि लक्षण उपस्थित होने पर शिलासिन्दूर १ रत्ती, त्रिकटु चूर्ण १ माशा में मिला वासा (अडूसा) स्वरस के साथ देने से विशेष लाभ होता है। यह दूषित कफ को निकाल कर श्वासनली को साफ करता तथा अपने उत्तेजक गुण के कारण हृदय और वातवाहिनी नाड़ी में उत्तेजना पैदा करता है।

स्थूलता को दूर करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। घी, दूध, गेहूँ आदि मेद (चर्बी) बढ़ानेवाले पदार्थों का अधिक सेवन करने तथा दिन भर गद्दी के सहारे बैठे रहने के कारण शरीर में चर्बी की वृद्धि हो जाती है। ऐसी हालत में थोड़ा-सा भी चलने पर मनुष्य थक जाता है। साँस चलने लगती है। पसीना दुर्गन्धियुक्त आने लगता है। भूख और प्यास के वेग को थोड़ी देर के लिये भी सहन नहीं कर सकता। शरीर आलसी हो जाता है और निद्रा अधिक आती है। ऐसी परिस्थिति में शिला सिन्दूर १ रत्ती मधु में मिलाकर देने से लाभ होता है। इस रसायन के सेवन से चर्बी बनना बन्द हो जाता तथा बढ़ी हुई चर्बी घटने लगती है और शरीर में एक तरह की नवीन स्फूर्ति पैदा हो जाती है।

नोट- इस रसायन के सेवन-काल में पौष्टिक पदार्थ का सेवन क्रमशः कम करते जाएँ और भोजन सिर्फ दिन-रात में दो बार ही करें। भोजन में जौ और चने की रोटी या चने का लड्डू आदि बनाकर (थोड़ी मात्रा) में सेवन करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

कण्ठमाला, गलगण्ड, अपची आदि रोग यदि अधिक पुराने न हों, ज्यादा से ज्यादा साल भर के अन्दर के ही हों तथा कफ प्रधान कुष्ठ, खुन की विकृति और रक्तवाहिनी की विकृति से स्थान-स्थान पर खून जम गया हो, चर्मरोग आदि व्याधि भी हों, तो ऐसी दशा में यह रसायन बहुत फायदा करता है, परन्तु ध्यान रखें कि ये रोग पुराने होने पर फिर किसी भी दवा से नहीं जाते हैं। अतः इन रोगों की प्रारम्भिक अवस्था से ही चिकित्सा शुरू करें।

यह रसायन कीटाणु-नाशक, उत्तेजना पैदा करने वाला तथा चिकना होने के कारण आमाशय और अन्त्र (आँत) में संचित आम-दोष तथा दूषित कीटाणु एवं विष को नष्ट करनेवाला है। यह कोष्ठ को सशक्त बना कब्जियत दूर करता है। उन्माद रोग में भी स्मृतिसागर रस आदि के साथ सेवन कराया जाता है।- औ.गु.ध.शा.

कुष्ठ रोग में शिला सिन्दूर १ रत्ती, बाकुची चूर्ण १ माशा और मधु में मिलाकर चटावें, ऊपर से खदिरारिष्ट १ तोला बराबर जल के साथ दें। मलेरिया बुखार में बुखार आने से पहले दो-दो घण्टे के अन्तर से एक-एक मात्रा तुलसी-स्वरस और मधु से दें। शीतांग-सन्निपात में अदरक के साथ दें।

समीरपन्नग रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध संखिया, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल-प्रत्येक समान भाग लेकर कज्जली करें, फिर इसे तुलसी-पत्र-स्वरस या ग्वारपाठे के रस में ३ भावना देकर सुखा कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरकर बालुका-यंत्र द्वारा २ दिन लगातार मन्द-मन्द आँच दें, ताकि कज्जली द्रव होकर धीरे-धीरे पकती रहे। स्वांग-शीतल होने पर इसे निकाल लें। यह रसायन शीशी के पेंदे में कठोर और काले रूप में मिलता है। यह तलस्थ रस है।

वक्तव्य- औ. गु. धर्म शास्त्र के अनुसार इसे १६ घण्टे पकाने पर गंधक जीर्ण हो जाने के बाद शीशी में डाट लगा ३६ घण्टे तेज अग्नि देकर ऊर्ध्वलग्न बनाने से भी उत्तम बनता है।

दूसरी विधि- शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध संखिया और शुद्ध हरताल समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके कज्जली बना, तुलसी-पत्ती के रस में घोंटकर, टिकिया बनाकर सुखा लें। पश्चात् एक सिकोरा इतना बड़ा लें कि उसमें अभ्रक पत्र बिछ जाय, उस पर दवा की टिकिया रख, दूसरे अभ्रक-पत्र से ढँक, सराब-सम्पुट में रखकर, तीन-चार कपड़मिट्टी कर सुखा, बालुका-यंत्र में ४ प्रहर की खूब तेज अग्नि दें। (कोई-कोई मंद अग्नि ही देने को कहते हैं, किन्तु मन्द अग्नि देने से रस का परिपाक ठीक हीं होता, जिसमें कुछ दिन बाद उसमें से बदबू आने लगती है और सर्दी पाकर वह फफुन्द भी जाता है, अंतः तीक्ष्णाग्नि द्वारा ही परिपाक करें) स्वांग-शीतल होने पर सम्पुट के अंदर से काले रंग की और कठोर टिकिया निकाल कर रख ले, यह तल लग्न रसायन है। -र.चं.

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती पान या अदरक रस या शहद इनमें से किसी एक के साथ, कफाधिक्य में अड़ूसा या मुलेठी और बनप्सा के साथ अथवा मिश्री के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- सम्प्रति इस रस को ऊर्ध्वलग्न बनाने की प्रथा भी चल पड़ी है। ऊर्ध्वलग्न भी लाभदायक होता है। इसकी मात्रा, उपयोग और गुण समान ही है, इस रसायन के सम्बन्ध में स्वामी हरिशरणानंदजी लिखते हैं कि 'इस रस की १ रत्ती की मात्रा में अर्द्धांग के अनेक रोगी मैंने अच्छे किये हैं, अर्द्धांग में जितना अच्छा लाभ इससे होता है, उतना अच्छा लाभ करनेवाला इस रोग के लिये एक भी रस नहीं मिला। इसके अतिरिक्त गृध्रसी के रोगी भी हमने अच्छे किये हैं।'

रक्तचाप अधिक बढ़ जाने तथा मस्तिष्क की केशिका फट जाने से ही रक्तस्राव मस्तिष्क के किसी भाग में होता है, उसी के कारण अर्धांग, सर्वांग या एकांग पात (लकवा) आदि रोगों का एकाएक प्रादुर्भाव हो जाता है। जिन व्यक्तियों को पक्षाघात होता है, उनका रक्तचाप प्रायः बढ़ा हुआ देखा जाता है। ऐसे समय में बड़े-बड़े डॉक्टर प्रथम रक्तचाप ठीक करने का उपयोग सोचते हैं, किंतु सफलता नहीं मिलती है, हमने देखा है कि यह ऊर्ध्वलग्न समीरपन्नग रस पक्षाघात में प्रारम्भ से दिया जाय तो बढ़े हुए रक्तचाप को भी कम कर देता है, और बहुत जल्दी रोगी स्वस्थ-लाभ करता है।

समीरपन्नग रस का स्नायु-निर्बलता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। शरीर में इससे कफ और रक्त की भी वृद्धि होती है। हम इसको शहद से देते हैं।

श्रीयुत् छाँगाणीजी के मतानुसार 'यह (दूसरी) सन्निपात की उत्तम औषध विशेषकर सान्धिक सन्निपात के लिये बहुत उपकारी है। कफ के बढ़ जाने पर इसका प्रयोग बहुत काम देता है।

...सन्निपात में नाड़ी की गति क्षीण हो जाने पर इसकी १-२ मात्रा से ही आशाजनक लाभ होता है।

इस रसायन में संखिया, हरताल और मैनशिल का योग है। ये तीनों अत्यंत उग्र तथा उष्ण वीर्य हैं। इन तीनों में संखिया की ही प्रधानता है। जो मनुष्य संखिया भस्म या इसका मौहर (भस्म) आदि सेवन करने में असमर्थ हो उसे इसका सेवन करना चाहिए, क्योंकि संखिया भस्म व उसके योग से यह सौम्य है। यह न्यूमोनिया, उन्माद, सन्निपात, कास, कुकास, सन्निपात ज्वर आदि में विशेष लाभ करता है।

इसमें संखिया होते हुए भी यह विशेष विषाक्त नहीं है, कारण, संखिया का विष रासायनिक क्रिया द्वारा कम होकर उसमें सौम्य गुण का प्रादुर्भाव हो जाता है। संखिया के मिश्रण से बननेवाले मल्लसिन्दूर, पंचसूत रस और समीरपन्नग रस हैं। इन तीनों के गुणों में बहुत सादृश्य भी है और विशेषता भी है। मल्लसिन्दूर में केवल संखिया की ही प्रधानता और मिश्रण है। अतएव, यह तीक्ष्ण तथा श्लैष्मिक कला को उत्तेजित करनेवाला है। पंचसूत रस में उतनी उग्रता नहीं है, अतः श्लैष्मिक कला को उत्तेजित नहीं करता, बल्कि दूषित कफ को छाँट कर बाहर निकाल देता है। समीरपन्नग रस तो इन सबसे विशेष सौम्य है। इसमें उतनी उग्रता नहीं है, जितनी उपरोक्त दोनों में हैं।

छाती या हृदय अथवा फुफ्फुस के किसी भाग में दूषित कफ संचित हो जाने से इन अवयवों में विकृति आ गयी हो, जिससे ये कमजोर हो अपने काम करने में असमर्थ हो गये हों, तो समीरपन्नग रस के प्रयोग से बहुत फायदा होता है इससे दूषित और संचित कफ निकल जाता है। समीरपन्नग रस के साथ चन्द्रपुटी प्रवाल और लौह भस्म का मिश्रण देने से विशेष लाभ होता है।

श्वास-नलिका या गले में कभी-कभी ज्यादा सूखी खाँसी या दमा का ज्यादा दौरा होने से इनमें खराश पैदा हो जाती है, जिससे खाने-पिने या खाँसने में भी बहुत कष्ट होता है। इसे दूर करने के लिए समीरपन्नग रस में सितोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राश या मधु में मिलाकर चाटने से खराश मिट जाती है तथा खाँसी भी कम हो जाती और कफ निकल जाने से श्वासनली भी साफ हो जाती है, जिससे दमा (श्वास) का वेग कम हो जाता है।

श्वास रोग में- श्वास रोग में यदि वात या कफ की प्रधानता हो सूखी खाँसी हो, कफ नहीं निकलता हो, श्वास ज्यादा फूलती हो, तो ऐसी दशा में कफ निकलने के लिये समीर-पन्नग रस, आधी रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, शुद्ध टंकण २ रत्ती मधु के साथ दें और ऊपर से मुलेठी, बनप्सा, मिश्री, बहेड़े का छिलका, अडूसे का पत्ता, इनका क्वाथ बनाकर पिलावें। इससे कफ बहुत शीघ्र निकलने लगता है तथा श्वास का वेग भी कम हो जाता है।

ऋतु और दोष के अनुसार पुरानी खाँसी में भी परिवर्तन होता है। अर्थात् वर्षा ऋतु में वातजन्य दोष की प्रधानता के कारण, ग्रीष्म ऋतु में पित्तजन्य एवं शीत ऋतु में कफजन्य खाँसी उत्पन्न होती है, परन्तु यह खाँसी सबको नहीं होती, प्रकृति के अनुसार होती है। ऐसी खाँसी कभी-कभी स्वयं शांत भी हो जाती है। जब दोष धातु में विलीन हो जाते हैं तब खाँसी भी कम हो जाती है फिर थोड़ा भी कुपथ्य होने पर यह दोष कुपित हो बार-बार खाँसी उत्पन्न कर देता है। ऐसे मनुष्य (रोगी) को बराबर पथ्य और संयम से ही रहना पड़ता है। जिससे रोगी कमजोर होता जाता है तथा रोग भी पुराना होता चला जाता है और उसकी जीवन-शक्ति निर्बल होती है। जीवनशक्ति निर्बल तथा कमजोर हो जाने पर और दोष के अंश शरीर में अत्यंत सुक्ष्म रूप में, बीज रूप में जम कर बैठ जाने पर रोगी कितना भी पथ्य-संयम, परहेज तथा दवाईयों का सेवन क्यों न करें, कुछ

भी लाभ नहीं होता। ऐसी दशा में रोग के बीज को नष्ट करना ही श्रेयस्कर है। इसके लिये समीरपन्नग रस का प्रयोग करना अच्छा है।

वातजन्य आक्षेप अर्दित जिव्हास्तम्भ धनुर्वात आदि रोगों में जब कफ की प्रधानता हो, तब समीरपन्नग रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है। इसी तरह स्नायुजन्य शूल में भी यह विशेष फायदा करता है। वात और कफ प्रधान उन्माद रोग में भी इसका उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। कफ की विशेष वृद्धि हो जाने पर मन्दाग्नि हो जाती है, जिसकी वजह से खाये हुए अन्न का ठीक-ठीक परिपाक नहीं होता और कफ की वृद्धि के कारण पित्त भी बहुत कम बन पाता है। ऐसी दशा में बढ़े हुए कफ को कम करने तथा पित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि दूर करने के लिए समीरपन्नग रस का सेवन करना बहुत हितकर है।

हैजे की उग्रावस्था में- बार-बार दस्त और वमन होते हों, प्यास ज्यादा लगती हो, नाड़ी क्षीण हो गई हो, सर्वांग में ऐंठन तथा शीतलता छा गई हो, कभी-कभी रोगी बेहोश हो जाय, पसीना खूब निकलता हो ऐसी भयंकर अवस्था में सोंठ और जायफल का महीन चूर्ण बना शरीर पर मालिश करें। इससे पसीना रूकता है तथा वात का शमन हो शरीर की ऐंठन कम हो जाती है। दस्त में भी कुछ अंतर पड़ जाता है और पसीना रूकने से पित्त जागृत हो खून में गर्मी पैदा कर देता है। जिससे शरीर थोड़ा-थोड़ा गर्म होने लगता है। साथ ही समीरपन्नग रस १ रत्ती, सुवर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती, अदरक रस के साथ देने से रोगी का शरीर गर्म हो जाता तथा बेहोशी दूर हो जाती है और रक्त में गर्मी पहुँचने के कारण रक्तवाहिनी नाड़ियाँ सबल हो जाती हैं तथा हृदय की निर्बलता दूर हो जाने से रोगी सशक्त हो जाता है। फिर सूतशेखर और संजीवनी बटी आदि का भी प्रयोग करते रहें। इस तरह रोगी क्रमशः अच्छी हालत में आने लगता है और उसकी दशा भी सुधरने लगती है। कुछ ही दिनों बाद रोगी स्वस्थ हो जाता है।

बद्धकोष्ठता के कारण दस्त कब्ज हो जाता है। यह कब्जियत दीर्घकालीन होने के कारण शरीर में दूषित कीटाणु उत्पन्न हो बढ़ने लगते हैं, जिससे शरीर में किसी-किसी को आक्षेप होने लगता है। यह आक्षेप (खिंचाव) जब तीव्रावस्था में पहुँच जाता है, तब छाती की धड़कन बढ़ जाती है, श्वास लेने में कष्ट का अनुभव होता है, सिर में दर्द तथा मन घबराने लगता है। ऐसी अवस्था में समीरपन्नग रस आधी रत्ती, प्रभाकर बटी १ गोली, अभ्रक भस्म १ रत्ती मे मिला अदरक रस या पान के रस अथवा तुलसी के रस के साथ देने तथा महानारायण तैल अथवा चन्दनादि तैल को गर्म कर छाती पर मालिश कने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इस रोग में दवा देने से पहले कैस्टर ऑयल की दस बूँद पाव भर दूध में मिलाकर पिला देने से उदरशुद्धि हो जाती है। फिर उदरशोधन के बाद दवा देने से विशेष लाभ होता है।

अध्यशन रोग- अर्थात् पहले जो खाया जाय वह पचे नहीं और उसी पर पुनः खा लेने को अध्यशन कहते है। इसमें आमाशय निर्बल हो जाता है और वह अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है जिससे पेट भारी बना रहता है तथा अपान वायु रूकी रहती है। हृदय में पीड़ा होती है, खट्टी डकारें जलन के साथ आती है, ऐसी हालत में समीर-पन्नग रस आधी रत्ती, शंख भस्म २ रत्ती, मुलेठी का चूर्ण अथवा सोंठ का चूर्ण १ माशा में मिला मधु के साथ दें। खाना खाने के समय हिंग्वष्टक चूर्ण घी मिलाकर पहले ५-७ ग्रास खाने के बाद फिर भोजन करें। इससे आमाशय की शिथिलता दूर हो वह सबल हो जाता है और अपना काम करने में समर्थ हो जाता है, साथ ही पित्त में भी उत्तेजना आकर जाठराग्नि प्रदीप्त हो, खाये हुए अन्न को पचाने लगता है। इस तरह धीरे-धीरे रोगी की हालत सुधरने लगती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

प्रकुपित वात कफ को सुखाकर खाँसी उत्पन्न कर देता है। यह खाँसी जब उठती है तब छाती, हृदय और शिर में दर्द होने लगता है। पसली में खिंचाव होने के कारण उसमें भी दर्द होता

है। इसका दौरा २-३ मिनिट तक लगातार होता रहता है, परन्तु यह दौरा पुराना होने पर होता है। ऐसी दशा में समीरपन्नग रस आधी रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती लौह भस्म आधी रत्ती, तालिशादि चूर्ण एक माशा मिलाकर शर्बत अनार या लऊकसपिश्तान के साथ दें। ऊपर से वासारिष्ट २ तोला बराबर पानी मिलाकर पिलावें।

सुवर्ण समीरपन्नग रस

सोने के वर्क १ तोला, पारा शुद्ध ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, शुद्ध संखिया ४ तोला, शुद्ध मैनशिल ४ तोला और शुद्ध हरताल ४ तोला लें। प्रथम पत्थर की खरल में पारा डालकर उसमें सोने के वर्क एक-एक करके मिलावें। जब सब वर्क मिल जायें, तब उसमें गन्धक मिला कज्जली करें, पीछे मैनशील संखिया और हरताल मिलाकर दो दिन ग्वारपाठे के रस में मर्दन कर सुखा लें। पीछे सात कपड़मिट्टी की हुई शीशी में भरकर बालुका यंत्र में २ दिन पकावें। अग्नि इतना रखें कि जिसमें कज्जली द्रव होकर पकती रहे। स्वांग-शीतल होने पर शीशी को तोड़ तलस्थ रस को निकाल कर, दो-तीन दिन, खूब महीन पीस कर शीशी में भर लें।

मात्रा और अनुपान-आधी रत्ती से १ रत्ती शहद (मधु)या अदरक रस और शहद मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह सब प्रकार के वातरोगों में विशेषत: अर्दित, पक्षाघात, कटिस्तंभ, पार्श्वशूल, कफाधिक्य, तमक श्वास और सन्निपात ज्वर में जब तन्द्रा पसीना ज्यादा आवे, सम्पूर्ण शरीर ठण्डा हो जाय-तब इन लक्षणों की उपस्थिति होने पर इस योग में अच्छा लाभ होता है। फिरंगोपदंश से जो वात रोग होता है उसमें भी इससे विशेष लाभ होता है। -सि.यो.सं.

चिन्ता, भय, शोक और क्रोध से उत्पन्न होने वाले योषापस्मार (हिस्टीरिया), उन्माद, वातजन्य निर्बलता आदि में इसका उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है। सिर में रक्त-संचरण क्रिया की वृद्धि में इसका उपयोग करते है। अस्थिशोष (हड्डी का गलना) तथा जंघास्थि वेदना एवं पुरातन फिरंगजन्य अण्डमांस की वृद्धि, चित्त का सदा खिन्न रहना, भ्रम, ग्लानि इन सब रोगों में यह बहुत लाभ करता है। इसके प्रयोग से पुराना कास रोग शांत हो जाता है। तीव्र पाण्डु रोग में जब रक्ताणुओं की कमी हो, श्वेताणुओं की वृद्धि होकर शरीर में पाण्डु रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं, तब इसके प्रयोग से रक्ताणुओं की वृद्धि होने लगती है, इसी तरह यह हृदय की निर्बलता दूर कर हृदय में ताकत पहुँचाता है कारण, इसमें स्वर्ण का संयोग रहता है। अतएवं हृदय को उत्तेजित कर हृदय की दुर्बल गति को सबल बना देता है। हरताल संखिया भस्म का प्रभाव श्वसन-संस्थान पर बल्य रूप में होता है। अतएव इसके सेवन से श्वासकाठिन्य दूर हो जाता है। लसीकार्बुद तथा लसीका ग्रन्थियों को नष्ट करने में यह अच्छा लाभ करता है।

नोट- शेष इसके गुण-धर्म साधारण समीरपन्नग रस के समान समझें। स्वर्णयुक्त होने के कारण उससे सौम्य एवं हृदय तथा उत्तामांगो को शक्ति पहुँचाने में विशेष लाभदायी है।

स्वर्णबंग (सुवर्णराजवंगेश्वर)

शुद्ध बंग ४ तोला, शुद्ध पारद २ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, नौसादर २ तोला और कलमी शोरा २ माशा लें। पहले लोहे की कड़ाही में बंग को पिघलाकर खरल में डाल दें, फिर उसमें पारा मिला मूसली में खूब घोंटे। घोंटने से इसकी पिट्ठी बन जायेगी। इस पिट्ठी को सेंधा नमक मिले हुए नींबू के रस से दो दिन खरल करने के बाद ५-७ बार स्वच्छ जल से धो दें, ताकि क्षार का अंश निकल जाय। जब तक काला पानी निकलता रहे तब तक इसी तरह जल से धोते रहें। फिर इस पिट्ठी को धूप में सुखा, गन्धक मिलाकर कज्जली बना लें। बाद में नौसादर और शोरा मिलाकर खूब महीन कज्जली बना, आतशी शीशी में रख, बालुकायंत्र द्वारा ४ प्रहर (१२ घण्टे)

तक आँच दें। आँच देते समय नौसादर उड़ जायेगा और उसका क्षार शीशी के गले में आकर लगेगा। इसको लोहे की गरम सलाई से साफ करते रहें। इस तरह १०-१२ घण्टे में गन्धक का जारण हो जाता है। शीशी के मुख से जब धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब सांडशी से पकड़ कर कूपी को बाहर निकाल कर रख दें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी के तल भाग में लगे हुए सुवर्ण के समान वर्ण वाले स्वर्ण बंग को शीशी तोड़कर निकाल लें। -रसामृत

भारत भैषज्यरत्नाकर में 'मस्कमृगांक रस' के नाम से इसका उल्लेख है।

वक्तव्य-इसमें कुछ माल ऊपर से काले से रंग का हो तो उसे चाकू या छूरी से खुरच कर कालापन अलग कर दें और सुनहरी रंग के माल को बर्तन में रख जल से धोकर सुखा लेने पर जल के साथ उसका नौसादर और शोरा निकल जाता है एवं स्वर्ण बंग विशेष अच्छा बन जाता है।

नोट- स्वर्ण बंग बनाते समय बंग को खूब पिघलाकर पत्थर के खरल में डालकर पारा मिलाकर घोंटने में सुविधा रहती है, अन्यथा पारा मिलाने में कठिनाई होती है। आँच इसमें मन्द ही देनी चाहिए। तेज आँच देने से बंग जलकर काला या बदसूरत हो जाता है। सोरा सिर्फ रंग लाने के लिये ही दिया जाता है। कुछ रसायनशास्त्रियों के मत से इस रसायन का रंग गिनीगोल्ड जैसा कुछ लालिमा लिए पीला होना चाहिए। यदि इसे सुवर्ण के समान पीला रंग एवं अम्ल स्वादरहित बनाना हो तो सुवर्ण बंग को कपड़े में रखकर गर्म पानी में धोकर, निकालकर सुखा लेना चाहिए। हमारे अनुभवानुसार अम्ल स्वादरहित बना लेने से विशेष गुणकारक एवं सौम्य होता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती मधु, मक्खन, मलाई आदि के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

श्वेत प्रदर में - सुवर्ण बंग १ रत्ती, यशद भस्म १ रत्ती, जटांमासी चूर्ण १ माशा, मधु मिलाकर सेवन करें। ऊपर से पत्रांगासव २ तोला बराबर जल मिलाकर दें।

शुक्रमेह में- स्वर्ण बंग १ रत्ती, यशद भस्म आधी रत्ती, ४ रत्ती इलायची चूर्ण मिलाकर मक्खन या मलाई के साथ सेवन करने से कैसा भी पुराना शुक्रमेह क्यों न हो बहुत शीघ्र दूर हो जाता है।

सूजाक में-स्वर्ण बंग २ रत्ती, १ माशा शीतलचीनी चूर्ण में मिलाकर दूध की लस्सी या ठण्डे जल के साथ देने से बहुत फायदा करता है।

प्रमेह में- स्वर्ण बंग १ रत्ती, कच्ची हल्दी का रस १ तोला, ६ माशे मधु में मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

प्रारम्भिक सूजाक में- स्वर्ण बंग १ रत्ती मधु में मिलाकर दें, ऊपर से अनन्तमूल का क्वाथ बनाकर अथवा चंदनासव २ तोला बराबर जल में मिलाकर देने से अच्छा फायदा होता है।

स्वप्नदोष दूर करने के लिए-स्वर्ण बंग १ रत्ती, सेमरकन्द के चूर्ण ६ माशे में मिलाकर दूध के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

बलवृद्धि के लिए- स्वर्ण बंग १ रत्ती, यशद भस्म आधी रत्ती, शतावरी चूर्ण ३ माशे में मिलाकर सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- स्वर्ण बंग शीतवीर्य, शीतगुण, रूक्ष सर, तिक्त, किञ्चित् लवण और अम्लरसयुक्त होता है। यह सम्पूर्ण शरीर को बल देनेवाला है, अत: रसायन है। यह प्रमेहनाशक,

बुद्धिवर्द्धक, बल्य और नेत्रों के लिये परम लाभदायक है। इसके लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से शारीरिक कान्ति बढ़ जाती है और भूख लगने लगती है। यह प्रमेहनाशक, बुद्धिवर्द्धक, बल्य और नेत्रों के लिये परम लाभदायक है। इसके लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से शारीरिक कान्ति बढ़ जाती है और भूख लगने लगती है। ऊर्ध्वजत्रु तथा श्वासनली आदि स्थलों में होनेवाले कफ प्रकोपजन्य रोग दूर होते हैं। यह उत्पादक अंगों के लिये उत्तम बल्य (वृष्य) है। इसके सेवन से मेदोविकार नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर में शुक्र धातु की उत्पत्ति होती है।

स्वर्ण बंग का विशेष प्रभाव शुक्रस्थान, मूत्रपिण्ड और वीर्य वाहिनियों पर होता है। अत: यह प्रमेह, नामर्दी, शीघ्रपतन, शुक्रस्राव आदि मूत्र और वीर्य-विकारों को जल्दी ठीक करता है। जीर्ण सूजाक और श्वेत प्रदर में इससे अच्छा लाभ होता है। सूजाक से उत्पन्न हुई नपुंसकता तथा स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रियों के सभी विकार इस रसायन से दूर हो जाते हैं। स्त्रियों के सोम रोग, अस्थिस्राव तथा श्वेतप्रदरजन्य क्षय में इसका लाभजनक प्रभाव होता है। वीर्य को पुष्ट कर शरीर को बलवान तथा फुर्तीला बना देता है।

निरन्तर कुछ दिनों तक इसका सेवन करने से शुक्र की कमी दूर हो कामवासना जागृत होती है। इसके सेवन से स्वप्नदोष बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है। शरीर का रंग निखर आता है तथा त्वचा भी सुंदर हो जाती है। पुराना कास तथा श्वास भी इससे नष्ट हो जाता है और जो मनुष्य रस-रक्तादि की कमी के कारण सूखता जा रहा हो वह इसके सेवन से मोटा हो जाता है। इसके गुणों के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। यह मनुष्यों के लिये बहुत लाभदायक दवा है। इसके सेवन से अपने स्थान से हटा हुआ गर्भाशय पुन: अपने स्थान पर आ जाता है। श्वास लेने में होनेवाला कष्ट दूर हो जाता है। राजयक्ष्मा रोग में रात्रि को आनेवाला स्वेद तथा बढ़ा हुआ कफ-प्रकोप शान्त हो जाता है।

शुक्र की दुर्बलता (अल्प परिमाण में होना) गठीला, दुर्गन्धित आदि दोषयुक्त होने से सन्तानोत्पादन में उत्पन्न हुई असमर्थता को दूर करने के लिए स्वर्ण बंग १ रत्ती, रस-सिन्दूर १ रत्ती, दोनों को एकत्र पीसकर शहद के साथ सुबह-शाम चाटें। नियमपूर्वक एक मास तक इसका सेवन करने तथा पथ्यपूर्वक रहने से शुक्र की दुर्बलता दूर हो जाती हैं।

जठराग्नि मंद हो जाने पर-आमाशय में कच्चे अन्न अधिक पड़े रहते हैं। इनमें सड़ाँद पैदा होकर विषाक्त कीटाणुओं की उत्पत्ति होती है। मन्दाग्नि की वजह से वृक्क भी निर्बल हो अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। अत: इन कीटाणुओं के विष बाहर न निकल कर संचित होते रहते हैं और वृक्क की निर्बलता के कारण बहुमूत्र या प्रमेह रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे रोगी क्रमश: क्षीण होने लगता है। ऐसी अवस्था में इस तरह की दवा का उपयोग करना चाहिए जो संचित विष को बाहर निकाल दें और विषाक्त कीटाणुओं से विष की उत्पत्ति न होने दें। इस कार्य के लिये स्वर्णबंग का प्रयोग करना अच्छा है, क्योंकि यह कीटाणुनाशक प्रमेह और बहुमूत्रनाशक है। इसके सेवन से मन्दाग्नि दूर हो भूख खूब लगती है और वृक्क भी अपना कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं।

गनोरिया (सूजाक) की उत्पत्ति अण्डाकृति कीटाणु गोनोकोकस द्वारा होती है। यह किसी स्त्री या पुरुष को होने पर उसके साथ संसर्ग करनेवाले दूसरे स्त्री-पुरुषों को भी हो जाता है। इस रोग में मूत्रनली के अन्दर जलन, शोथ, व्रण, और मवाद की उत्पत्ति हो जाती है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में स्वर्ण बंग के सेवन से व्रण रोपन हो मवाद कम हो जाता है, साथ ही जलन

कामला, पाण्डू, शिरोरोग में अनुपान विशेष के साथ इसका प्रयोग करने से अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं।

क्षय की द्वितीयावस्था में इसका प्रयोग किया जाता है, परन्तु ज्वर की गर्मी विशेष हो तो इसकी मात्रा बहुत थोड़ी देनी चाहिए अन्यथा गर्मी और बढ़ जायेगी। इसके प्रयोग से क्षय के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं तथा कास और ज्वर की शान्ति हो क्रमशः रोग नष्ट हो जाता है। इसमें सोना, चाँदी, ताम्र, अभ्रक आदि भस्मों का सम्मिश्रण है- अतः यह त्रिदोषनाशक है। सन्निपात में जब वात और पित्त का विशेष कोप हो, कफ का प्रकोप कुछ कम हो, श्वासोच्छवास में कष्ट होता हो, तब इस रसायन के सेवन से प्रकुपित वात तथा पित्त शान्त हो जाते हैं तथा इसके उपद्रव भी नहीं बढ़ते हैं।

इसमे ताम्र भस्म की मात्रा विशेष होने से-यह यकृत प्लीहा रोग और मूत्राशय को शुद्ध करता है तथा विषाक्त कीटाणुओं के विष को बाहर निकालता और मन्दाग्नि को दूर कर आमाशय स्थित आमान्न (कच्चा अन्न) को पचाता है। परिणामशूल को नष्ट करने के लिये यह उत्तम दवा है। इसके अतिरिक्त जीर्णज्वर और सम्पूर्ण शरीर में होनेवाले दर्द को भी शमन करता है।

इसमें चाँदी भस्म का भी मिश्रण है। अतएव, यह कषाय रस, स्निग्ध, रुचिकारक और उत्तम मेधावर्धक है। इसके सेवन से त्वचा मुलायम हो जाती है और उसे बल मिलता है। यह उत्तम वय:स्थापक तथा शरीर में बल प्रदान करता है। ओज शक्ति को बढ़ाता है। मस्तिष्क के पोषक होने से स्मृति, स्मरण शक्ति को भी बढ़ाता है। शिरो विकार से होनेवाले चक्कर में यह विशेष लाभदायक है। गर्भाशय-शोधन के लिये भी यह उत्तम है। इसके प्रयोग से पित्तप्रकोपजन्य रोग तथा प्रमेह आदि रोग दूर हो जाते हैं। शरीर में वात प्रकोप को दूर करने के कारण वातिक संस्थान को स्वस्थ-सबल और क्षोभरहित रखने के कारण यह आयुवर्द्धक भी है।

जब किसी रोग के उपद्रव-स्वरूप अथवा मधुमेह, प्रमेह या सूजाक में उपद्रव-स्वरूप शरीर के अवयवों में विकार उत्पन्न हो गये हो और उन दूषित अवयवों में दाह और शूल के साथ-साथ त्वचा काली पड़ गयी हो, कभी-कभी ज्वर भी हो जाता हो, तो इस प्रकार के वातिक तथा पैत्तिक दृष्टिजन्य कोथ रोग में इसका प्रयोग करना बहुत श्रेष्ठ है। सूजाक के पश्चात वातवाहिनियों के संकोच से होनेवाली नपुंसकता में भी इसका अच्छा प्रभाव होता है। अम्लपित्त में भी इसका प्रयोग लाभदायक है।

यह कोष्ठगत वायु की वृद्धि को शान्त करता है और रस-रक्तादि धातुओं में संचित पित्त तथा जत्रु (गले) से ऊपर के भाग, गला, कण्ठ, नासिका, मुख आदि भाग में प्रकुपित कफ को शान्त करता है। बुद्धि-स्मृतिहीन तथा डरपोक मनुष्यों के लिये यह बहुत अच्छी दवा है। निरन्तर मस्तिष्क से काम लेनेवालों के लिये तो यह परमोत्तम औषध है।

इसका असर विशेष कर वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। अतएव वातजन्य विकार के अनेक रोगों में- जैसे आक्षेपक वात, लंगडापन, वात प्रधानजन्य शुष्क कास और सर्वांग में दर्द आदि रोगों में यह अच्छा काम करता है। वात रोग में-स्वर्ण भूपति रस आधी रत्ती, शुद्ध कुचला आधी रत्ती मधु के साथ दें। ऊपर से दश मूलार्क या दशमूल क्वाथ पिला दें।

आमाशय में विकार उत्पन्न होने से फुफ्फुस, हृदय और शुक्राशय तथा यकृत जब निर्बल हो जाते हैं, तब वातवाहिनी नाड़ियों द्वारा इन अंगों की पूर्ति होती रहती है, किन्तु जब वातवाहिनी नाड़ी में ही दुर्बलता आ जाती है, तो अनेक प्रकार के वातजन्य रोगों का आक्रमण हो जाता है।

ऐसी अवस्था में आमाशय के विकारों को दूर करने तथा वातवाहिनी नाडी को सबल बनाने के लिये स्वर्णभूपति रस का प्रयोग किया जाता है।

– औ.गु.ध. शा.

स्वर्ण-सिन्दूर

शुद्ध पारा ३२ तोला, शुद्ध गन्धक ६४ तोला और सोने का वर्क ४ तोला लें। प्रथम पारे और वर्क को मिलाकर खरल कर लें। जब दोनों (पारा और सोना) अच्छी तरह मिल जायें तो गन्धक मिलाकर खरल करें। उत्तम कज्जली बन जाने पर ३ बार लाल कपास के फूलों के रस घीकुमारी स्वरस में खरल करें। फिर कज्जली को सुखाकर आतशी शीशी में डालकर बालुकायंत्र में कूपीपक्व विधि से मन्द, मध्य और तीव्र अग्नि क्रम से देकर ५ दिन-रात तक पकावें। स्वांग-शीतल होने के बाद शीशी के तल भाग में सोने की भस्म मिलेगी। इसे सुरक्षित रखकर विधिवत् पुट देकर रख लें। –र.सार.

वक्तव्य – भै.र. आदि कुछ ग्रंथों के अनुसार द्विगुण गन्धक के स्थान पर समान गन्धक डालकर भी बनाया जाता है, किन्तु वह उपरोक्त से गुणों में कम होता है।

मात्रा और अनुपान– आधी रत्ती से १ रत्ती, मधु, मक्खन, मिश्री, मलाई आदि के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग–इसके सेवन से अनेक रोगों का नाश होता है तथा धातु, अग्नि, बल, आयु, मेधा, कान्ति व काम-शक्ति की वृद्धि होती है। यह उत्तम रसायन और बाजीकरण है।

स्नायु विकार में– मस्तिष्क सम्बन्धी दुर्बलता के लिए यह बड़ा उत्तम रसायन है। अनुपान भेद से मकरध्वज की तरह यह अनेक रोगों में फायदा पहुंचाता है। इसके सेवन से बल-वीर्य, स्मरण-शक्ति और कान्ति बढ़ती है। साधारण ज्वर, सन्निपात ज्वर, सर्दी, जुकाम-खाँसी, मन्दाग्नि, संग्रहणी, अम्लपित्त, प्रमेह, सूतिका रोग आदि में यह बहुत अच्छा लाभ करता है। इसके नियमित सेवन करने से धातु-सम्बन्धी रोग अच्छे होते हैं। किसी रोग के बाद की कमजोरी और बुढ़ापे की दुर्बलता को दूर करने के लिये यह बहुत फायदेमंद है। साधारण कमजोरी को मिटाने के लिये यह बहुत अच्छा है।

ज्वर में– स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, पीपल चूर्ण ४ रत्ती, मधु के साथ दें। प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम) में स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, अदरक रस ६ माशा मधु मिलाकर दें।

खाँसी में–स्वर्ण सिन्दूर आधी रत्ती, अभ्रक भस्म आधी रत्ती, लौह भस्म आधी रत्ती में मिला मधु के साथ दें ऊपर से वासारिष्ठ २ तोला में बराबर जल मिलाकर दें।

संग्रहणी में– स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, भुने हुए जीरे का चूर्ण २ रत्ती- दोनों को शहद के साथ दें।

प्रमेह में– स्वर्ण सिन्दूर १ रत्ती, बंग भस्म आधी रत्ती, दोनों को एकत्र मिला मधु के साथ चटाने से अच्छा लाभ होता है।

वक्तव्य– स्वर्ण सिन्दूर, मकरध्वज और चन्द्रोदय (बहिर्धूम) इनके योग प्रायः समान ही है। अतः इनकी मात्रा, अनुपान, सेवन-विधि मकरध्वज के समान ही है।

व्याधिहरण रसायन

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध संखिया, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल और रस कपूर प्रत्येक ५-५ तोला लेकर पहले पारद गन्धक की कज्जली बनावें, फिर संखिया, मैनशिल आदि दवा डाल कर घोंटने के बाद आतशी शीशी में डाल, बालुकायंत्र में रख क्रम से मृदु, मध्यम और तीक्ष्ण आँच लगातार ३ दिन तक दें। बाद में आँच बन्द कर दें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी को निकाल औषध निकाल लें।

वक्तव्य- प्राय: १६ घण्टे में गन्धक जारण हो जाता है, इसके बाद शीशी का डाट लगाकर तेज आँच से पकाना चाहिए ताकि मैनशिल, हरतला आदि भी उड़कर शीशी के गले में लग जायें। तभी औषधि ठीक बनती है। आँच कम लगने पर मैनशिल, हरताल आदि उड़कर शीशी के गले में लग नहीं पाते और औषधि ठीक नहीं बनती है।

मात्रा और अनुपान- १/२ से १ रत्ती, घी, मधु अथवा अदरक या पान के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह नये पुराने उपदंश (आतशक) और उससे पैदा होनेवाले रक्त-विकार, सन्धिवात, गठिया, कुष्ठ, नासा एवं मुखव्रण, नाड़ीव्रण, अस्थिगतव्रण, बालों का अकाल में गिरना, निद्रानाश, नाखून सड़ना, पाण्डु, नेत्र-विकार वृक्कशोथ, अण्डवृद्धि, शोथ, चकत्ते पड़ना, गुद-शूक (गुदा में अंकूर निकलना) आदि उपद्रवों के लिये सर्वोत्कृष्ट औषध है।

उपदंश का विष हड्डी तक पहुँच गया हो, तो भी अल्प काल (थोड़े ही दिनों) में ही इस रसायन के सेवन से व्याधि नष्ट हो शरीर निरोग और स्वस्थ बन जाता है। उपदंश का प्रभाव गर्भ, गर्भाशय एवं संतानों पर भी पड़ता है। इसलिए अनेक प्रकार के चर्म, अस्थि और मज्जागत रोग हो जाते हैं। इनकी उत्पत्ति रोकने के लिए इस रसायन का सेवन करना चाहिए। यह उपदंशजन्य विष को नाश करने की अच्छी दवा है।

हरगौरी रस

शुद्ध पारद १५ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला लेकर इन दोनों को मिलाकर दृढ़ मर्दन कर सूक्ष्म कज्जली बनावें। फिर नवसादर १।। तोला मिलाकर धतूरे के पत्तों के रस की तीन भावना दें, मर्दन कर सुखा लें। पश्चात् दृढ़ कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर कर बालुकायंत्र में रख ३६ घण्टे की अग्नि देने से हरगौरी रस तैयार हो जाता है। १२ घण्टे मन्दाग्नि देने से गन्धक जीर्ण हो जाता है। -र.का.ध.

नोट- इस रसायन को बनाने में पहले क्षार शीशी के गल भाग में जमने लगता है। अत: क्षार जीर्ण होने तक बार-बार सावधानी से शीशी का मुख शलाका से भीतर से साफ करते रहना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक अभ्रक भस्म, पीपल चूर्ण और शहद के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ प्रयोग करें। दोष-काल और रोगी के बलानुसार मात्रा कम-अधिक करके देनी चाहिए।

गुण और उपयोग- इस रस में धतूरे के क्षार का प्रभाव होने के कारण रस सिन्दूर की अपेक्षा कफ को बाहर निकालने, वातप्रकोप नष्ट करने, आम संशोधन एवं ज्वर शमन में अधिक उत्कृष्ट उपयोगी है। क्षारीय प्रभाव के कारण यह रस हृदय को अधिक उत्तेजना पहुँचाता है। उसके

द्रव्य-शोधन-प्रकरण

आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में औषधि निर्माण में जिन द्रव्यों (वानस्पतिक, खनिज आदि)का उपयोग होता है, उनमें कितने ही द्रव्य तो इतने निर्दोष एवं सौम्य होते है कि उनके किसी प्रकार के शोधन की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात् वे बिना शुद्ध किये अपने असली रूप में ही उपयोगी किये जाते हैं। उनके तो सिर्फ उत्तम श्रेणी के एवं साफ स्वच्छ (कूड़ा-मिट्टी रहित) होना पर्यात है, किन्तु कुछ द्रव्य ऐसे भी है, जो अपने प्राकृतिक रूप में तीक्ष्ण, उग्र अथवा 'विषैले होते है, उनकी तीक्ष्णता और उग्रता अथवा विषैलेपन' को कम करने के लिये उनका शोधन (शुद्ध) करके ही उपयोग लिया जाता है। बिना शुद्ध किए उनका प्रयोग करने से औषधियाँ लाभ के स्थान पर हानिप्रद बन जाती है। अंत: औषधोपयोग में काम आने वाले जिन द्रव्यों को शोधन करके काम में लेने की आवश्यकता है उनमें से कुछ द्रव्यों की जिसकी भस्में बनायी जाती है, उनकी शोधन-विधि तो प्रत्येक की भस्म-विधि के साथ ही शोधन-मारण प्रकरण में लिखी जा चूकी है, क्योंकि किसी भी द्रव्य का पहले शोधन करने के पश्चात् ही उसकी भस्म बनायी जाती है। अत: अवशिष्ट शोधनीय द्रव्यों की शोधन-विधि इस द्रव्य शोधन प्रकरण में दी जा रही है। प्रत्येक द्रव्य को उसकी शोधन विधि इस द्रव्य शोधन-प्रकरण में दी जा रही है। प्रत्येक द्रव्य को उसकी शोधन-विधि के अनुसार शोधन करके ही उपयोग में लिया जाय, इस बात पर विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

अफीम की शोधन-विधि- अफीम को चौगुने पानी में घोल कर, कपड़े से छान लें। मंद आँच पर पकाकर गाढ़ा कर लें। पश्चात् उसको अदरक के रस की सात भावनाएँ देकर सुखाकर काम में लें।

कुचला की शोधन-विधि- अच्छे पुष्ट (भरे हुए), कुचले के बीज लाकर उनको मिट्टी या काँच के पात्र में गोमूत्र में भिंगो दे। दूसरे दिन उस गोमूत्र को निकाल कर नया गोमूत्र डाल दें इस प्रकार सात दिन गोमूत्र में भिगोये। आठवें दिन चाकू से छीलकर कूचले के ऊपर के छिलके तथा दो दल के बीच की जीभ निकाल दें। पीछे कपड़े में बाँधकर गाय के दूध में दोलायन्त्र में पकाकर कपड़े से निकाल, गरम जल से धो लें। कुचले को योगों में डालना हो तो उसी समय सरौते से छोटे-छोटे टुकड़े कर पीस डालें। सुखाने के बाद बड़े परिश्रम से चूर्ण होता है। -आ.प्र.

गूगल शोधन-विधि- गिलोय अथवा त्रिफला के क्वाथ में या दूध में गूगल को डाल दें और आग पर पकायें। जब गूगल गल जाय, तब धीरे-धीरे ऊपर का द्रव भाग छान लें, नीचे का कूड़ा-कर्कट छोड़ देना चाहिए। फिर गूगल के द्रव को आग पर पकाकर खूब गाढ़ा कर लें। पकाते समय थोड़ा सा (षोड़शांश) घी मिला देना चाहिए ताकि गूगल जलने नहीं पावे।

नोट-गिलोय- क्वाथ या त्रिफला काढ़ा अथवा दूध इन तीनों में से कोई भी एक चीज गूगल से दुगुने परिमाण में लेवें।

उसारे रेवन्दशोधन विधि- उसारे रेवन्द को अदरक के रस या सौंठ के क्वाथ की तीन भावना देने से शुद्ध होता है। -र.चं.सा.

कनेर मूल की शोधन-विधि- कनेर की जड़ के छोटे-छोटे टुकड़े करके कपड़े की पोट्टली में बांधकर दो घण्टे तक गो दूग्ध में दोलायन्त्र से उबाल लेने से शुद्ध हो जाती है। -र.चं.

गुञ्जा शोधन-विधि- सफेद गुंजा को कपड़े की पोट्टली में बाँधकर दोलायन्त्र में काँजी में १ प्रहर तक उबालने से शुद्ध हो जाती है।

कलिहारी-(लांगली) शोधन विधि- कलिहारी मूल के छोटे-छोटे टुकड़े करके २४ घण्टे तक गोमूत्र में भिंगोकर पश्चात् निकाल कर छाया में सुखा लेने से शुद्ध हो जाती है।

गैरिक-शोधन विधि- गैरिक का चूर्ण कर गाय के दूध की (एक) भावना देने से शुद्ध हो जाता है।

वक्तव्य- गैरिक में कोई खास तीक्ष्णता, उग्रता एवं विषैलापन न होने से बिना शोधन किये ही प्राय: व्यवहार करते है।

जयपाल-शोधन विधि- जमालगोटे के छिलके एवं जीभ रहित बीजों को (कपड़े की ढीली पोट्टली में बाँधकर) समान भाग जल मिले भैंस के गोबर में दबाकर रखें। पश्चात् निकालकर गरम जल से धोकर नींबू के रस में दो-तीन बार पीस कर कोरे घड़े के कपालों (खपड़ों) पर लेप कर सुखाकर रस ले तो स्नेह रहित एवं शुद्ध हो जाता है। -र.रा.सु.

कंकुष्ठ (मुर्दासंग) शोधन-विधि-बिजौरा नींबू के रस और अदरक के रस की ३-३ भावना देने से मुर्दासंग शुद्ध हो जाता है।

धतुरा बीज शोधन-विधि- धतुरे के बीजों को चार प्रहर गोमूत्र में भिंगोकर तदनन्तर निकाल कर सुखाकर भूसी (छिलका) दूर करके रखने से शुद्ध होता है। -र.रा.सु.

दूसरी विधि- अच्छे पके हुए धतूरा बीज को कपड़े की पोट्टली में बाँधकर दोलायन्त्र में गाय के दूध में तीन घण्टे मंद-मंद आँच पर पकावे। बाद में गरम जल से धोकर सुखाकर रख लें।

पारद-शोधन विधि- पारा को (षोडशांश) हल्दी चूर्ण और ग्वार पाठा-रस से एक दिन घोंटकर ऊर्ध्वपातन यंत्र से ऊर्ध्वपातन कर लेने से शुद्ध हो जाता है। -र.सा.सं.

दूसरी विधि- पारद को ग्वारपाठा-रस और चित्रकमूल क्वाथ से १-१ दिन तथा मकोय के रस से १।। दिन घोंटकर काँजी से धोकर रख लें। -र.सा.सं.

तीसरी विधि- ग्वारपाठा, चित्रकमूल, लाल सरसों, बड़ी कटेरी और त्रिफला क्वाथ से पारा को मर्दन कर गरम काँजी से धोकर रखने से पारा शुद्ध हो जाता है। - रस.चि.म.मणिप्रभा टीका

भांग शोधन विधि- भांग को कपड़े में बाँधकर जब तक जल में हरा रंग आता रहे, तब तक जल से धोवें। पश्चात् कपड़े से निचोड़ कर छाया में सुखा लें। -सि.यो.सं.

भिलावा शोधन-विधि- अच्छे पके और पुष्ट भिलावों को १ दिन गोमूत्र में तथा ३ दिन गाय के दूध में भिगोकर रखें। प्रतिदिन जल से धोकर दूसरे नये द्रव्य में भिगोवें पीछे कपड़छान किये हुए ईंट के चूर्ण से खूब मसल कर जल से धोकर सूखा लें।-सि.यो.सं.

दूसरी विधि- भिलावों के ऊपर की टोपी काटकर ईंट से रगड़कर ईंट के चूर्ण में ३ दिन तक दबाकर रखें। बाद में निकाल कर, पानी से धोकर सुखा लें। -प्रचलित विधि

फिटकरी शोधन विधि- फिटकरी के टुकड़े कर मिट्टी के बर्तन या लोहे की साफ कड़ाही में डालकर आँच पर रखकर फुलाकर द्रव को सुखाकर फूला बन जाने पर उतार कर पीस करके रख लें। -आ. प्र.

लशुन शोधन विधि- लशुन को छीलकर ३ दिन तक छाछ में भिगोयें, रोज छाछ बदलकर ताजा छाछ डाल दिया करें। पश्चात् जल से धोकर सुखा लेने से लशुन शुद्ध व दुर्गंधरहित हो जाता है। – र.सा.सं.

मैनशिल शोधन विधि- मैनशिल का चूर्ण कर अगस्ति पत्र-स्वरस या अदरक के रस की तीन भावना देकर सुखाकर रखने से शुद्ध हो जाती है। –र.सा.सं.

रसोत (रसांजन)-शोधन-विधि- बाजार से ली हुई रसोत को कूटकर जल (चौगुने) में भिंगोकर मसलकर गला दें, पश्चात् २४ घण्टे तक रखा रहने दें। बाद में साफ कपड़े से जल को छानकर साफ कड़ाही में डालकर मन्द-मन्द आँच पर पकाकर अवलेह जैसा गाढ़ा होने पर उतार कर निकाल करके रख ले। –र.त.सा.

रसकपूर शोधन विधि- रसकपूर को १६ गुने घी में दोलायन्त्र में १२ घण्टे तक मन्दाग्नि से पकाने से शुद्ध हो जाता है। –र.त.सा.

शिलाजीत शोधन विधि- आधा सेर त्रिफला को जौकुट करके ३२ सेर पानी में पकावें। जब चौथाई पानी शेष रहे तब उतारकर छान लें। इस छने हुए जल में तीन पाव शिलाजीत पत्थर के टुकड़े डालकर २४ घण्टे तक भींगने दें फिर पानी को उबाल कर ऊपर से साफ पानी को नितार कर (निकालकर)साफ लोहे की कड़ाही में डालकर मन्द-मन्द आँच पर पकावें। जब पानी रबड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय तो उतार कर रख लें। यदि शिलाजीत पत्थरों में और रह गयी हो तो इसी प्रकार और जल डालकर, पकाकर जल नितारकर कड़ाही में डालकर गाढ़ा करके रख लें।

बच्छनाग (वत्सनाभ विष) शोधन विधि- जो बच्छनाग तोड़ने पर भीतर से ठोस और चिना हो उसके छोटे-छोटे (चने के बराबर) टुकड़े कर, मिट्टी या काँच अथवा चीनी के या कलईदार पात्र में डाल ऊपर सब डूब जाय इतना गोमूत्र डालकर २४ घण्टे तक पात्र को ढककर रख छोड़े। दूसरे दिन पहला गोमूत्र निकालकर नया गोमूत्र भरें, इस प्रकार तीन दिन करें। पीछे गोमूत्र से निकाल, जल से धो, एक कपड़े में पोट्टली बाँधकर गाय के दूध में दोलायन्त्र में ३ घण्टे मन्द अग्नि पर पकावें, बाद में कपड़े से निकाल जल से धोकर सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य- वत्सनाभ, श्रृंगिक विष, सींगिया विष, मीठा विष, मीठा तेलिया ये सब नाम बच्छनाग के ही हैं। र.रा.सु. आदि कई ग्रंथों में केवल गोमूत्र में ३ दिन भिंगोकर जल से धोकर सुखाकर रखने का ही शोधन विधान है। कितने ही लोग ऐसे भी शुद्ध करते है। -र.रा.सु.

स्त्रोतोंजन और सौवीराज्जन (काला सुरमा) शोधन विधि- त्रिफला के काढ़े या भृंगराज के रस की भावना देने से शुद्ध होते हैं। -र.रा.सु.

टंकण (सुहागा) शोधन विधि- सुहागा को लोहे की साफ कड़ाही में डालकर आँच पर रखकर पानी जलाकर फुलाकर लावा (खील) जैसा बनाकर पीसकर रख लें। -रसामृत

हिंगुल शोधन विधि- हिंगुल को कपड़े की पोट्टली में बाँधकर दोलायंत्र में जंबीरी नींबू के रस में एक प्रहर तक स्वेदन कर पश्चात् सात बार बकरी के दूध की भावना देकर पीसकर सुखाकर रख लें। -र.रा.सं.

दूसरी विधि- हिंगूल को खरल में पीसकर अदरक के रस की ७ भावना देकर सुखा लेने से शुद्ध हो जाता है। -र.त.

हींग-शोधन विधि- हींग के टुकड़े कर, कड़ाही में डालकर घी (चतुर्थांश) में भूंजने (फुला लेने) से चूर्ण- बटी आदि के उपयोग लायक शुद्ध हो जाती है, किन्तु पारद युक्त रसायन औषधियों में मिलाना हो तो हींग को कमल के पत्तों के रस में ६ घंटे तक धूप में भावना देने से शुद्ध होती है।

पित्त शोधन विधि- पित्त को कड़वे निम्ब के पत्तों के रस में ३ भावना देकर जल से धोकर सुखा लेने पर शुद्ध हो जाता है।

सर्प विष की शोधन विधि- सर्प विष को गोमूत्र में डालकर तीन दिन सूर्य के ताप में रखें। फिर सुखा लेने पर शुद्ध हो जाता है। -र.च.

सिंदूर शोधन विधि- सिन्दूर को नींबू के रस में घोंटकर धूप में सुखावें। पश्चात् चावलों के पानी (तण्डूलोदक) की भावना देकर सुखाने से शुद्ध हो जाता है। -र.रा.सु.

कासीस शोधन विधि- कासीस को १ दिन जम्बीरी नींबू के रस की भावना देकर धूप में सुखा लेने से शुद्ध हो जाता है। -र.रा.सु.

सफेद सुरमा शोधन विधि- सफेद सुरमा को पीसकर गुलाब जल की भावना देकर सुखा लेने से शुद्ध हो जाता है। -स्वानुभूत

समुद्र फेन शोधन विधि- समुद्र फेन को नींबू के रस के साथ पीसकर सुखा लेने से शुद्ध हो जाता है। -र.रा.सु.

❖❖❖

रस-रसायन-प्रकरण

इस प्रकरण में पारा, गन्धक और सिंगरफ आदि रस-उपरसों, धातु-उपधातुओं की भस्मों, विष-उपविषों, प्राणिज द्रव्यों, काष्ठौषधियों एवं वनस्पतियों आदि के योग से बनी हुई दवाओं की निर्माण-विधि तथा इनके गुण-धर्मों का वर्णन किया जायेगा, परन्तु वर्णन करने से पूर्व कुछ बातें ऐसी हैं, जिनके विषय में जानकारी प्राप्त करा देना अच्छा है।

रस पारा का नाम है अत: पारद और पारद के खनिज सिंगरफ तथा गन्धक आदि के संयोग से जितनी दवाइयाँ बनती हैं, वे चाहे चूर्ण रूप में हों या गोली रूप में, सब रस संज्ञक हैं। अर्थात् उनकी गणना रस-रसायन के अंदर होती है।

जिन दवाओं में पारा-गन्धक के साथ अन्य धातुओं (भस्मों)या काष्ठादि औषधियों का सम्मिश्रण करना हो, उनमें सर्वप्रथम पारा और गन्धक डालकर खूब घोंट कर कज्जली बनावें। कज्जली की घोंटाई जितनी अधिक होगी, दवा उतनी ही अधिक गुणकारी होगी। कज्जली जब सुर्मा की तरह महीन तथा चन्द्रिकारहित और चिकनी हो जाय तब उसमें दूसरी दवा मिलाकर पुन: घोंटें।

पारा, गन्धक, विष (बच्छनाग), हिंगुल (सिंगरफ), टंकण (सुहागा), फिटकरी, कुचला, अफीम, भाँग, धतूरा बीज, जयपाल, मैनशिल, हरताल आदि दवाइयाँ उपरोक्त विधि से शुद्ध करके ही दवा में डालनी चाहिए। ये अशुद्ध डालने से लाभ की जगह नुकसान करती है।

जहाँ अन्य समस्त औषधियाँ निष्प्रयोजन सिद्ध होती हैं, वहाँ रस-रसायन अपने अनन्य प्रभाव से बहुत उत्तम लाभ करके सबको आश्चर्य में डाल देते हैं। इनके सेवन से वृद्धावस्था तक का निरोध होता है। रोगों का नाश हो, शरीर में परिशुद्ध रस-रक्तादि का संचार होता है तथा शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। पारद के योगवाही एवं अल्पमात्रोपयोगी होने के कारण उसके साथ मिश्रित किये गये द्रव्यों के गुणों को वह अपनी विलक्षण शक्ति के प्रभाव से अत्यंत बढ़ा देता हैं। अतएव आयुर्वेदीय रस-रसायनों का चिकित्सा जगत में अतीव महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ इंजेक्शन जैसी आशुलाभकारी औषधियाँ एवं सल्फाड्रग्ज जैसी तीव्र औषधियाँ भी असफल हो जाती हैं और असाध्य समझ कर त्यागे हुए कितने ही कठिन रोगों से पीड़ित रोगियों को भी आयुर्वेदीय रस-रसायनों के सेवन से पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करते देखा जाता है।

रसों के समान गुणकारी, हानिरहित अन्य दवा मिलना कठिन है, परन्तु वे सब गुण तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब रस-रसायन शास्त्रोक्त रीति से तैयार किये गये हों अन्यथा लाभ के स्थान में हानि भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त रसों में जो धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, रस, उपरस, विष, उपविष आदि व्यवहृत होते हैं, उन्हें भी विधिवत् शोधन-मारण करके ही प्रयोग में लेना चाहिए। यदि कहीं किसी औषध विधान में शोधन करने की स्पष्ट आज्ञा नहीं दी गयी हो, तो भी इन द्रव्यों को शोधन करने के बाद ही दवा में डालना चाहिए, यह सामान्य नियम है।

अगस्ति सूतराज रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल १-१ तोला, शुद्ध धतूरे के बीज २ तोला तथा शुद्ध अफीम २ तोला। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना फिर अन्य दवाओं का महीन चूर्ण कर सबको मिलाकर भाँगरे के रस में घोटें। लगातार तीन रोज तक घोंटने के बाद एक-एक रत्ती की गोली बनाकर रख लें। - यो.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रातः दोपहर और सायंकाल घृत और काली मिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करने से प्रवाहिका रोग नष्ट हो जाता है तथा जीरे और जायफल के चूर्ण के साथ देने से सभी प्रकार के अतिसार और त्रिकटु चूर्ण तथा मधु के साथ देने से हर प्रकार के वमन-कफ और वात के विकार, अग्निमान्द्य तथा निद्रानाश दूर होता है।

गुण और उपयोग- संग्रहणी, अतिसार, वमन, पेट का दर्द, आमांश, कफ-वातविकार, अग्निमांद्य, अनिद्रा, आमाशय व पक्वाशय की विकृति से उत्पन्न होने वाले जल स्राव को कम करता तथा सूजन, दाह, आदि रोगों को नष्ट करता है।

आमातिसार में इसका प्रयोग करने से उतना लाभ नहीं करता जितना कफ-वात प्रधान पक्वातिसार में करता है। विशेष कर जब कि बार-बार दस्त लगते हो, फेनयुक्त दस्त होते हों, पेट में दर्द होता हो, यह दर्द बीच-बीच में बन्द होकर पुनः उठता हो, जिससे रोगी को अधिक कष्ट होता हो, ऐसी हालत में अगस्ति सूतराज रस त्रिकटु चूर्ण और मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इसमें अफीम पड़ी हुई है। अतः यह पीड़ा नाशक होने की वजह से पेट के दर्द को शांत कर देता है और ग्राही होने से दस्त को भी बन्द (कम) कर देता है।

वात प्रधान ग्रहणी में और लक्षणों के साथ पेट में आक्षेप (खिंचाव)शूल होता है। यह शूल अक्सर आँतों में उत्पन्न होता है। अन्न ठीक से नहीं पचना, खट्टी डकार आना, गुदा में कैंची से काटने जैसी पीड़ा होना, अन्न पचने के बाद पेट फूल जाना, दस्त कभी पतला, कभी गाढ़ा भी होना इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर इस रसायन के सेवन से लाभ होता है।

कोई-कोई वैद्य इस रोग में औषध प्रयोग करने से पूर्व बस्ति (अनुवासन बस्ति) देने के लिये कहते हैं, परन्तु वैद्य को अपनी सुविधानुसार कार्य करना चाहिए। ग्रहणी, अतिसार या संग्रहणी जब पुराने हो जाते हैं, तो रोगी की आँत, कोष्ठ एवं गुदा की अवलियाँ कमजोर हो जाती हैं। जिससे वे मल को रोक नहीं सकती, ऐसी दशा में कभी-कभी अनजान में ही दस्त हो जाता हैं या जब दस्त का वेग होता हो, तब बहुत तेज वेग मालुम पड़ता है। दस्त पतला और दर्द के साथ होता है। दस्त हो जाने पर भी आँत एवं कोष्ठ में दर्द होता ही रहता है, जिससे रोगी को बार-बार दस्त के लिये जोर लगाना पड़ता है। रोगी कांखने लगत है तो काँच बाहर निकल आती है। दर्द का वेग इतना जोर का रहता है कि रोगी यदि विशेष कमजोर हुआ तो वह बेहोश भी हो जाता है। ऐसी हालत में अगस्ति सूतराज रस बहुत अच्छा काम करता है।

मूत्र (पेशाब) के साथ कभी-कभी छोटे-छोटे पत्थर के कण अथवा शर्करा जाने लगती है, मूत्राशय विकृत हो जाता है, फिर वेदना होने लगती है। कभी-कभी यह वेदना इतना उग्र रूप धारण कर लेती है कि रोगी परेशान हो जाता है। पेशाब भी खुलकर (साफ) नहीं आता। अतः बस्ति देश में भी दर्द होने लगता है। ऐसी हालत में इस तरह की औषधि योजना करनी चाहिए, जिससे पत्थर के कण या शर्करा गलकर सुविधानुसार निकल जायें और पेशाब खुलकर आने लगे। अतः सर्वप्रथम दर्द कम करने के लिए अगस्ति सूतराज रस का उपयोग करना चाहिए, परंतु ध्यान रखे कि यह औषध ग्राही है। इसलिए इसका किसी मूत्रल (पेशाब लाने वाली) दवा जैसे यवक्षार या गोक्षुरादि चूर्ण आदि के साथ प्रयोग करें अन्यथा यह पेशाब कम कर देगा।

पित्तस्राव की कमी के कारण यकृत में रहनेवाला पित्त गाढ़ा होकर सूख जाता है और छोटे-छोटे कण रूप में हो पथरी का रूप धारण कर लेता है। ये कण देखने में बाजरे के सदृश और

अधिक संख्या में होते हैं। इसमें से यदि कोई कण वायु के द्वारा नलिका में होकर ग्रहणी में जाने लगता है, तब पेट में दर्द उत्पन्न होता है। चूँकि वायु के कारण ही यह उपद्रव होता है, अत: यह दर्द भी वात प्रधान ही होता है, किन्तु चिकित्सा करते समय पित्त बढ़ाने वाली दवा दें जिससे पित्त बढ़ कर उस पित्त का स्राव होना शुरू हो जाय। ऐसी हालत में ताम्र भस्म, करेले के पत्ते के रस में मिलाकर दिया जाता है अथवा कुटकी चूर्ण के साथ देते हैं या स्वर्णप्रधान सूतशेखर रस भी देते हैं, परन्तु यदि दर्द ज्यादा हो और उस दर्द के मारे रोगी बहुत परेशान हो, तो सर्वप्रथम इसी उपद्रव को कम करने का प्रयत्न करें। इस दर्द को दूर करने के लिये अगस्ति सूतराज रस बहुत अच्छी दवा है, क्योंकि इसमें अफीम की मात्रा विशेष होने से उसका असर सर्वप्रथम वातवाहिनी नाड़ी पर होता है और इसीलिए यह वेदना शामक भी कहा गया है। अत: इस दवा से दर्द बहुत शीघ्र आराम हो जाता है। -औ.गु.ध.शा.

अग्निकुमार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा १-१ तोला, शुद्ध बच्छनाग ३ तोला, कौड़ी भस्म और शंख भस्म २-२ तोला और काली मिर्च ८ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना उसमें भस्मे और अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छान चूर्ण मिला, जम्बीरी नींबू के रस में तीन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। - भै.र.

वक्तव्य- कुछ आचार्यों के मतानुसार कौड़ी भस्म और शंख भस्म को नेत्र भाग का अर्थ तीन भाग करके ३-३ तोला भी लेते हैं।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली जल के साथ दें। वर्षा ऋतु में होने वाले दस्तों में तथा अग्निमांद्य में छाछ (मट्ठे) के साथ दें। पान का रस या शहद के साथ भी यह अच्छा गुण करता है। पुराने अतिसार में चावल के धोवन के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- पाचक अग्नि के मंद होने से उत्पन्न अजीर्ण, मन्दाग्नि, संग्रहणी, कब्ज आदि रोगों में अग्निकुमार रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है। आँतों में मल इकट्ठा होना, पेट में दर्द तथा पेट भारी रहना, पतली टट्टी होना आदि शिकायतें इसके सेवन से बहुत जल्दी मिट जाती हैं। अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये तथा अजीर्ण को मिटाने के लिये यह रस अच्छा काम करता है।

इसका उपयोग कफप्रधान और वातप्रधान या कफ-वातप्रधान अजीर्ण रोग में किया जाता है, और इसमें यह अच्छा गुण भी करता है। इसमें काली मिर्च की मात्रा सबसे अधिक होने के कारण यह उष्णवीर्य है। अत: पित्तजन्य अजीर्ण में इसका प्रयोग जहाँ तक हो, नहीं करना चाहिए। पित्तजन्य अजीर्ण में प्रयोग करने से उल्टा ही फल होता है। अर्थात् पित्त की शान्ति न होकर वृद्धि हो जाती है जिससे पेट तथा हाथ-पाँव, आँख आदि में विशेष रूप से जलन होने लगती है, मन बेचैन हो जाना तथा जी मिचलाने लगना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

अजीर्ण में- पेट और देह भारी मालूम पड़े, वमन होने की इच्छा हो, गाल और नेत्र सूज जाएँ, जैसा पदार्थ (खट्टा-मीठा) खाया हो वैसी ही डकारें आवें, तो ऐसी अवस्था में सर्व प्रथम रोगी को उपवास करा आमपाचन करने के बाद, अग्निकुमार रस देने से शीघ्र लाभ होता है। जिस अजीर्ण रोग में वायु की प्रधानता रहती है, उसमें बद्धकोष्ठ होने के कारण दस्त हो जाता है। ऐसी हालत में अग्निकुमार रस छाछ (मट्ठा) या दही के पानी के साथ देने से विशेष लाभ करता है।

कफ प्रधान हैजा में बार-बार वमन होना, जी मिचलाना, पेट में दर्द होना, पेट भारी मालूम पड़ना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, और अजीर्ण से उत्पन्न हैजा में कफ या पित्त के प्रकुपित होने पर वमन होता है। यह वमन पिच्छिल (चिकना) तथा बदबुदार होता है। पित्त से उत्पन्न हैजा में खट्टा और गर्म वमन होता है। कफ प्रधान हैजा में अग्निकुमार रस अर्क सौंफ के साथ देने से लाभ होता है। पित्त-प्रधान हैजा में -शंख, कौड़ी, या शुक्ति की भस्म अनार के रस से साथ दे और ऊपर से ठंडा पानी में अर्क कपूर ४-५ बूंद डाल कर पिला दिया करें।

एक दूसरा कीटाणुजन्य (संक्रामक) हैजा भी होता है। इसमें कीटाणुनाशक औषधियाँ यथा-संजीवनी बटी, विसूचिकानाशक बटी, लशुनादि बटी आदि का उपयोग करना चाहिए।

किसी-किसी की प्रकृति ऐसी होती है कि बराबर प्रतिश्याय (जुकाम) बना ही रहता है जिससे मन्दाग्नि भी बनी रहती है। मन्दाग्नि होने के कारण अन्नादि का पाचन ठीक से नहीं हो पाता है, फिर पेट फूल जाना, खट्टी डकारें आना, बदन भारी मालूम पड़ना, थोड़ा-थोड़ा सिर में दर्द भी होना-ये सब उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में अग्निकुमार रस के उपयोग से मन्दाग्नि दूर हो जाती है और प्रतिश्याय भी नष्ट हो जाता है, क्योंकि यह उष्णवीर्य होने के कारण पाचकाग्नि को प्रदीप्त कर पाचन-क्रिया को सुधार देता है, इसी गुण के कारण प्रतिश्याय को भी मिटा देता है।

कास रोग में- श्वासवाहिनी नली में कफ के संचय हो जाने से श्वासोच्छ्वास में कठिनाई होती है, फिर खाँसी होने लगती है। इसमें कफाधिक्य के कारण अन्न के प्रति अरुचि, मन्दाग्नि, पेट फूलना, अपचन के कारण जी मिचलाना, खट्टी और चटपटी चीजें खाने की विशेष इच्छा होना, दूध-दही आदि खाने की बिल्कुल इच्छा न होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर अग्निकुमार रस गर्म जल से देना अच्छा है, क्योंकि यह कफघ्न है, अतः श्वासवाहिनी नली से कफ को निकाल कर साफ कर देता है, जिससे श्वास लेने में तकलीफ नहीं होती। साथ ही कफ वृद्धि के कारण जो अफरा आदि उपद्रव उत्पन्न हुए रहते हैं, उनहें भी दूर कर रोगी को स्वस्थ कर देता है।

गुल्म रोग- कफजन्य गुल्म या वातजन्य गुल्म रोग में- अधोवायु की प्रवृत्ति नहीं हो, मुख और गला सूखने लगे, हृदय, पसली, कन्धा और शिर में दर्द हो, उपद्रव होने पर तथा कफ प्रधान होने के कारण दिन में निद्रा ज्यादा हो, खाने की इच्छा नहीं हो आदि उपद्रवों को शांत करने के लिए अग्निकुमार रस का सेवन करना अच्छा है, क्योंकि यह वातकफघ्न है। अतः वात और कफ के विकारों को दूर करता है, किन्तु फिर भी यह गुल्म नहीं पचा सकता है, इसके लिये अन्य दवा भी करनी चाहिए।

छर्दि (वमन) रोग- कफ का संचय विशेष होने पर मन्दाग्नि हो जाती है, जिससे पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने के कारण खाना अच्छी तरह से हजम नहीं हो पाता। आमाशय में आम (कच्चे अन्न) का संचय होने से जी मिचलाने लगता है। वमन भी होने लगता है। वमन में कफ का ही भाग (झाग) विशेष रूप से निकलता है। पेट बराबर भारी बना रहता है, पेट कुछ-कुछ फूला हुआ भी रहता है। ऐसी हालत में अग्निकुमार रस का प्रयोग अर्क अजवायन के साथ करने से बहुत फायदा करता है। क्योंकि यह पित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि को दूर करता है और कफ विकार को भी नष्ट करता है। फिर पाचन-क्रिया दुरुस्त हो अन्न का परिपाक भी ठीक होने लगता है तथा वमनादि उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

अग्निसूनु रस

कपर्दक भस्म १ तोला, शंख भस्म २ तोला, शुद्ध गन्धक और पारद समान भाग मिलाकर की हुई कज्जली १ तोला, काली मिर्च का चूर्ण ३ तोला-इन सबको खरल में एकत्र मिलाकर नींबू के रस में घोंटकर गोली बनाने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली प्रातः सायं घृत और चीनी के साथ अथवा पीपल चूर्ण और शहद के साथ अथवा तक्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रस के सेवन करने से भयंकर ग्रहणी रोग, शोष, ज्वर, अरुचि, शूल, गुल्म, पाण्डूरोग, उदररोग, अर्श और मन्दाग्नि आदि उदररोग नष्ट हो जाते हैं। घृत और चीनी के साथ देने से दुबले-पतले मनुष्यों को मोटा-ताजा बना देता है। यह रस दीपक, पाचक और शूलनाशक होने के कारण उपरोक्त विकारों में बहुत उत्तम लाभ करता है।

अग्नितुण्डी बटी (रस)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, अजवायन, त्रिफला, सज्जीखार, यवक्षार चित्रकमूल की छाल, सेंधा नमक, जीरा सफेद भुना हुआ, सौवर्चल नमक, समुद्र लवण, वायविडंग, शुद्ध सुहागा, प्रत्येक समान भाग और सब दवाओं के समान भाग शुद्ध कुचला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना, पीछे अन्य द्रव्यों को कपड़छन चूर्ण मिलाकर, जम्बीरी नींबू के रस में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना कर सुखा कर रख लें। -भै.र.

वक्तव्य- इस योग में त्रिफला शब्द से हरड़, बहेड़ा, आमला प्रत्येक एक-एक भाग डालें। सज्जी को चौगुना पानी में गलाकर चार तह के कपड़े से छानकर उसका क्षार बनाकर उसे डालें। सौवर्चल नमक को कुछ लोग काला नमक तथा कुछ लोग मनिहारी नमक मानते हैं। दोनों में कोई भी डाल सकते हैं। शुद्ध कुचला का कपड़छन चूर्ण मिलाना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह दीपन, पाचक और वात नाशक है। इसमें कुचला का अंश विशेष है। अतः अधिक दिन तक लगातार सेवन नहीं करना चाहिए। स्नायुमण्डल, वातवाहिनी और मूत्रपिण्ड पर इसका खास असर होता है। मन्दाग्नि, आध्मान, अजीर्ण, स्वप्नदोष और शूल पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

यह हृदय को बल देती है और बल की वृद्धि भी करती है। नवीन वात रोगों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसके सेवन से कृमि रोग नष्ट होता है तथा रोग छूटने के बाद रही हुई कमजोरी को भी दूर करता है।

छोटे बच्चों के और रक्त का दबाव बढ़े हुए रोगों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यह दवा सभी इन्द्रियों को उत्तेजित करती है। अतः किसी भी रोग में उत्तेजनार्थ इसका प्रयोग कर सकते हैं। वृद्धावस्था (बुढ़ापा) आ जाने से मनुष्य के शरीर और इन्द्रियों में शिथिलता आ जाती है, इसी तरह और भी कई तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ये सब इसके सेवन से नष्ट हो जाती हैं।

रसाजीर्ण में- अन्न खाने की इच्छा नहीं होती। पेट भारी मालूम पड़ता तथा कठोर हो जाता है, शरीर में आलस्य बना रहता है, किसी कार्य में मन नहीं लगता, डकारें बराबर आती रहती हैं,

इसका प्रयोग किया जाता है और उसमें यह आशातीत लाभ भी करता है।

अजीर्णकण्टक रस

सुहागे की खील, पीपल, शुद्ध बच्छनाग और हिंगुल १-१ तोला, काली मिर्च २ तोला, सब चीजों को एकत्र कर कूटने वाली दवाओं का कूट कर कपड़छन कर लें, फिर इसमें सिंगरफ और सुहागे की खील मिला जम्बीरी नींबू के रस में खरल कर मटर के बराबर (एक-एक रत्ती की) गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। -भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रातः सायं भोजन के बाद कागजी नींबू के रस के साथ अथवा ताजा जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- अधिक भोजन या गरिष्ठ, बासी आदि भोजन करने से उत्पन्न अजीर्ण, मन्दाग्नि, कब्जियत आदि इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। यह मन्दाग्नि को नष्ट कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। इसकी दो-तीन मात्रा खाने से ही भूख खूब खुलकर लगती है और भोजन भी ठीक-ठीक पचने लग जाता है। किसी तरह का भी अजीर्ण हो, उसे नष्ट करने के लिये इसका प्रयोग अवश्य करें।

अजीर्णारि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक ४-४ तोला, बड़ी हरड़ ८ तोला, सोंठ, पीपल, मिर्च, सेंधा नमक १२-१२ तोला, शुद्ध भाँग १६ तोला लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना फिर उसमें अन्य औषधियों को कूट, कपड़छन चूर्ण कर मिला, धूप में सात भावना नींबू के रस की देकर, घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर धूप में सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली भोजन के बाद गरम जल से दें।

गुण और उपयोग- यह जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला है तथा अजीर्ण को पचा कर दस्त साफ लाता है। इसके सेवन से मन्दाग्नि, अजीर्ण, कब्जियत, पेट फूलना आदि रोग दूर हो जाते हैं। मात्रा से यदि अधिक भोजन कर लिया हो, तो उसे भी यह पचा देता है। सब प्रकार के अजीर्ण के लिये यह उत्तम और गुणकारी दवा है।

अर्धांगवातारि रस

शुद्ध पारा २० तोला, भस्म ४ तोला दोनों को खरल में डालकर जम्बीरी नींबू के रस में एक दिन घोंटे, पश्चात् सूख जाने पर शुद्ध गन्धक २० तोला मिला कज्जली करके नागरपान के रस में घोंटकर गोली या टिकिया बनाकर सुखाकर बड़ी मूषा में रखकर मुँह बन्द करके (ढक्कन लगा कपड़मिट्टी से सन्धिरोध करके) सुखाकर लघुपुट देकर पकावें। स्वांग-शीतल होने पर मूषा का ढक्कन हटाकर रस को निकालकर खरल में पीसकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक, त्रिकटु चूर्ण ४ रत्ती और मधु में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन अर्द्धांगवात में श्रेष्ठ लाभदायक महौषधि है। कफ तथा पित्त प्रकृति वाले, मेदस्वी तथा मन्दाग्नि वाले अर्द्धांगवात के रोगियों को इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है, क्योंकि इसमें पारद का ताम्र भस्म के साथ संयोग होने के कारण यह रस तीक्ष्ण प्रभावशाली होकर कफ, मेदवृद्धि, मन्दाग्नि, पित्तदोष इनको मिटाकर अर्द्धांगवात का शमन करता

है। इस रस की तीक्ष्णता एवं उष्णता से वातवाहिनियों एवं रक्तवाहिनियों में जमें हुए कफ और मेद को गलाकर अथवा जलाकर नष्ट करके उनकी क्रिया को सुव्यवस्थित करता है।

अर्द्धनारीनटेश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक प्रत्येकी १-१ तोला, शुद्ध विष २ तोला, शुद्ध जमालगोटा २ तोला और काली मिर्च का चूर्ण ४ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली बनावें फिर शेष औषधियों को भी मिलाकर त्रिफला के काढ़े से मर्दन करें तथा ५ भावनाएँ उसी (त्रिफले के काढ़े की) देकर छाया में शुष्क करके रख लें। -र.सा.सं.

वक्तव्य- यह योग रसेन्द्र सारसंग्रगह और रस चण्डांशु में है। मूलपाठ दोनों मे समान है। रसे.सा.सं. के टीकाकार आचार्य घनानन्दजी पंत के मतानुसार मरिच का परिणाम पारा और गन्धक दोनों में चौगुना लेना चाहिए तथा रस चंडांशु के टीकाकार वैद्य दत्ता बल्लाल बोरकर के मतानुसार सिर्फ पारद से चौगुना लेना चाहिए। रसयोग सागरकार ने पारद से चौगुना लिखा है, अतः यही हमने भी ठीक माना है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक जम्बीरी नींबू के रस में घिस कर जिस भाग में ज्वर हो अथवा जिस भाग का ज्वर उतारना हो उस भाग में नस्य दें।

गुण और उपयोग- यह सन्निपात, तन्द्रा, निद्रा न आना, सिर दर्द, कास, श्वास, मूर्च्छा, कफ की प्रबलता आदि में नस्य देने से शीघ्र लाभ होता है।

'रत्नाकर औषध योग' में लिखा है कि बकरी के एक थन से दूध निकाल कर उस दूध से इसका नस्य दिया जाय, जो जिस भाग के स्तन का दूध होगा शरीर के उसी आधे अंग का ज्वर उतर जायेगा। यदि समस्त शरीर के ज्वर उतारना हो तो इसे अदरक रस के साथ नस्य दें।

'रसेन्द्रसार संग्रह' में लिखा है कि केवल इस रस को एक ओर की नाक-छिद्र में नस्य दें, तो शरीर के उस (आधे) भाग का ज्वर दूर हो जाता है। आधा ज्वर उतर जाने पर नासिका के दूसरे छिद्र में नस्य दें, तो शेष (आधा) भी ज्वर उतर जाता है। इसका प्रयोग विषमज्वर में ही अधिकतर करना चाहिए। सन्निपात में यदि प्रयोग करना हो, तो मात्रा दोगुनी कर देने से लाभ होता है, परन्तु नस्य अदरक के स्वरस में मिलाकर दें।

रसों की शक्ति अचिन्त्य है। इनकी शक्ति की विवेचना नहीं की जा सकती हैं। कुछ रस ऐसे भी होते हैं जो अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा एक विचित्र प्रभाव दिखा कर बड़े-बड़े विद्वानों को मोह में डाल देते हैं।

इस रस में इतनी अलौकिक शक्ति है कि शरीर में बढ़ी हुई ज्वर की गर्मी को खींच कर वह स्वाभाविक स्थिति पर ला देता है। इसका प्रभाव खास कर उन केन्द्रों में होता है, जहाँ शरीर की प्राकृतिक गर्मी को बढ़ाकर सम्पूर्ण शरीर में फैला दिया जाता है, अतः यह नस्यमात्र से ही ज्वर की गर्मी को दूर कर देता है।

स्वामी हरिशरणानन्दजी लिखते हैं कि,'कुछ रसों में ऐसी भी शक्ति है जो मस्तिष्क के उत्तादोत्पादक केन्द्र के विर्चलन को ठीक कर देती है। इससे शरीर के उत्ताप की मात्रा नॉर्मल हो जाती है। हो सकता है कि इसका यही प्रभाव उक्त केन्द्र पर होता हो।' इस कार्य में यह सुप्रसिद्ध योग है। इसके इस विलक्षण प्रभाव के प्रत्यक्ष चमत्कार की कई घटनाएँ वृद्ध वैद्यों से सुनी गई है।

अमरसुन्दरी बटी

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, रेणुका, पीपला-मूल, चित्रक-मूल छाल, लौह भस्म, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, इलायची छोटी, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, वायविडंग, अकरकरा, नागरमोथा- प्रत्येक दवा १-१ तोला और गुड़ दूना (४० तोला) मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बनावें। -यो.चि.

नोट- गुड़ की चाशनी बनाकर कुटी हुई दवाओं का चूर्ण चाशनी में मिलाकर गोली बनाने में सुविधा रहती है अन्यथा गोली पिघल जाती है तथा गुड़ कहीं ज्यादा कहीं कम हो जाता है। जिससे गोली अच्छी नहीं बन पाती। अतः चाशनी बनाकर ही गोली बनावें।

मात्रा और अनुपान- १ से ३ गोली तक गरम जल से दें।

गुण और उपयोग- यह अस्सी प्रकार के वात के रोगों की प्रसिद्ध दवा है। उन्माद, मृगी, श्वास, खाँसी, बवासीर और सन्निपात में इस दवा के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। पेट में वायु भर जान से पेट फूल जाता हो, इस समय इसकी २-३ गोली गरम जल के साथ देने से तत्काल लाभ होता है। मोतीझरा में यह अच्छा लाभ करती है, प्रसूत एवं सन्निपात में दशमूलक्वाथ के साथ देने पर विशेष लाभ करती है।

वात रोगों में- इसका उपयोग विशेषतः किया जाता है। प्रधानतया आक्षेपयुक्त वात रोग यथा-पक्षाघात, अर्दित (लकवा), अपतन्त्रक आदि में यह बहुत शीघ्र फायदा पहुँचाती हैं। क्योंकि शरीर में इसका असर वातवाहिनी नाड़ियों पर सर्व प्रथम हाता है, और उपरोक्त रोग होने पर वातवाहिनी नाड़ी क्षुभित हो संकुचित हो जाती है। जिससे रक्त का संचार अच्छी तरह नहीं हो पाता और जहाँ रक्त का संचार नहीं होता है, वहाँ अनेक तरह के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन उपद्रवों को नष्ट करने तथा वातवाहिनी नाड़ी को सुधारने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। राजस्थान के वैद्य इसका बहुत प्रयोग करते हैं।

अमरसुन्दरी बटी (कस्तूरी युक्त)

सौंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सम्भालू के बीज, पीपलामूल, चित्रक-मूल-छाल, लौह-भस्म, दालचीनी, इलायची छोटी, तेजपात, नागकेसर, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, वायविंडंग, अकरकरा, नागरमोथा- प्रत्येक १-१ तोला और लता कस्तूरी ३ माशा लें। प्रथम पारा- गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् कस्तूरी को छोड़ शेष द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर, मिला, जल के साथ मर्दन करें। अच्छी घुटाई हो जाने पर अन्त में कस्तूरी मिलाकर दृढ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें। -योग चि. म. से किञ्चित्परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- पूर्ण आयु वालों को १ से २ गोली तक, दिन में दो-तीन बार शुद्ध या सुखोष्ण जल के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण- यह औषध पूर्वोक्त साधारण अमरसुन्दरी से अधिक गुणदायक और शीघ्र प्रभावकारी है। समस्त प्रकार के कठिन वात रोग, विशेषतया वातज उन्माद, अपस्मार (मृगी), सन्निपातज्वर प्रलाप, पेट में वायु भर जाना आदि रोगों में शीघ्र ही लाभ पहुँचाती है। मोतीझरा (टायफाइड), कास, दुस्तर श्वास रोग में इसके प्रयोग से बहुत उत्कृष्ट लाभ होता है। शेष गुण-धर्म अमरसुन्दरी बटी, साधारण के समान है, कफज रोगों में तथा कफप्रधान सन्निपात में अदरक रस, तुलसीपत्र और मधु के साथ देने से विशेष लाभ होता है। प्रस्तुत वात तथा सन्निपात में दशमूलक्वाथ के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

अपूर्वमालिनी बसन्त

वैक्रान्त भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म, बंग भस्म, प्रवाल भस्म, रससिन्दूर लौह भस्म, शुद्ध टंकण, शंखभस्म- ये सब द्रव्य समान भाग लेकर खरल में एकत्र पीसकर खस के क्वाथ, शतावरी का रस या क्वाथ, हल्दी का रस या क्वाथ इन तीनों की सात-सात भावना देकर उपरोक्त द्रव्यों की तरह ही लता कस्तूरी और कपूर भी समान भाग मिलाकर घोंटकर १-१ रत्ती की टिकिया बनाकर छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान - १ टिकिया से २ टिकिया तक प्रातः सायं गिलोयसत्व २ रत्ती, मिश्री २ रत्ती, तीनों को खरल में मधु के साथ घोंटकर दें अथवा २ रत्ती छोटी पीपल के चूर्ण और मधु के साथ घोंटकर दें।

गुण- यह रस जीर्णज्वर और धातुगतज्वर तथा मन्द-मन्द ज्वर रहना, खाँसी, क्षय, श्वास, रक्त की कमी, पाण्डु, कामला, हलीमक, रक्तपित्त, प्रमेह, ज्वर के बाद की दुर्बलता आदि विकारों को मिटाने में अतीव उपयोगी है। अनुलोम अथवा प्रतिलोम दोनों प्रकार के क्षय को नष्ट करता है। रस-रक्तादि समस्त धातुओं की वृद्धि कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट, बल-वर्ण और कान्तियुक्त बना देता है। प्रमेह रोग में गिलोय सत्व और मिश्री तथा मधु के साथ देने से अथवा हल्दी के रस और मधु से देने से विशेष लाभ होता है।

अमीर रस

सेंधानमक ५ छटाँक को खूब महीन पीसे। इसमें ३ छटाँक नमक लेकर एक तवे पर ४ इंच गोलाकार में डाले। उस नमक पर सच्चे गोटे (चाँदी) का तार आधा तोला रख कर फिर रसकपूर १ तोला, रूमी सिंगरफ १ तोला, दाल चिकना १ तोला- ये तीनों चीजें छोटे-छोटे टुकड़े करके डाल दें। फिर उसके ऊपर गोटे का तार आधा तोला डालकर चीनी मिट्टी के बड़े प्याले से ढँक दे और पूर्व शेष दो छटाँक सेंधा नमक में कतीरा-गोंद आधी छटाँक मिला कर पानी से पीस कर सन्धिबन्ध कर दें। इस तवे को चूल्हे पर चढ़ा कर तीन पहर तक आँच दें। प्याले के ऊपर वाले भाग को भींगे हुए कपड़े रखकर ठण्डा रखें। फिर शीतल होने पर प्याले को उलट कर दवा को सुरक्षित रखें। इसमें कुछ कण पारे के होते हैं। उनको अलग करके शेष दवा को शीशी में रख लेना चाहिए। - आरोग्य प्रकाश

वक्तव्य- इस योग को बनाते समय सफेद संखिया १ तोला भी मिलाने से विशेष उत्तम गुणकारी होता है। प्याले में पेंदे में रखा भीगा कपड़ा कुछ गरम हो जाये तब उसे हटाकर दूसरा भीगा कपड़ा रख दें, ऐसे ही बदलते रहे

मात्रा और अनुपान- १ या २ रत्ती, मुनक्का में भर कर या कैपसूल में रख कर रोगी को निगलवा दें, दाँत से न चबायें।

गुण और उपयोग- रसकपूर, दाल चिकना और सिंगरफ- इन तीन प्रधान चीजों के कारण अमीर रस आतशक और उसके उपद्रवों के लिये 'रामबाण' औषध है। यह तीव्र रक्त शोधक है,

१.यह मूल योग सिद्ध भैषज्यमणिमाला नामक ग्रन्थ का है, हमने यहाँ आरोग्य-प्रकाश से उद्धृत किया है। जयपुर के सुप्रसिद्ध वैद्यराज स्व. लक्ष्मीरामजी स्वामी की शिष्य-परम्परा से यह योग विशेष-प्रचलित है। इसके प्रयोग से नया-पुराना सभी प्रकार का उपदंश रोग निश्चित रूप से मिट जाता है।

अत: यह आतशक के कीटाणुओं को नष्ट करता है। रक्तवाहिनी तथा वातवाहिनी के विक्षोभ को दूर करने के कारण यह अर्द्धांग और सन्धिगत वात को भी दूर करता है। वात और कफ प्रकृति के लोगों के सूजाक में भी इससे लाभ होता है। गर्मी (आतशक) की सभी दशाओं और उसके कारण होनेवाले उपद्रवों के लिये यह बहुत ही अच्छी दवा है।

सूजाक व आतशक के कारण होने वाले गठिया या अन्य वात-विकारों में मज्जिष्ठादि क्वाथ के साथ अमीर रस का प्रयोग करना चाहिए। दवा सुबह-शाम दो बार सेवन करें। नये रोगों में १० दिन तथा पुराने रोगों में २१ दिन सेवन कराने से प्राय: लाभ हो जाता है। दाँतों से दवा न लगने पावे। अत: मुनक्का में रख कर इसे निगल जाना चाहिए। पथ्य में दूध, चने की रोटी, मिश्री और हलवा मात्र खाने को दें। नमक, मिर्च, तैल, खटाई से सख्त परहेज करावें। दवा सेवन के पश्चात् भी लगभग उतने ही दिन तक और परहेज करावें।

अमृतार्णव रस

हिंगलोत्थ पारा और शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, सुहागे की खील, कपूर, धनियाँ सुगंधवाला, नागरमोथा, पाठा, जीरा सफेद ओर अतीस प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें और उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर बकरी के दूध से पीसकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। -भै.र.

वक्तव्य- मूल पाठ में बटी का प्रमाण ४ रत्ती है, किन्तु आजकल के नाजुक प्रकृति के लोगों के लिये २ रत्ती की मात्रा उचित है।

मात्रा और अनुपान- १ गोली से ३ गोली दिन भर में धनियाँ और जीरे के चूर्ण के साथ या शुद्ध भाग के चूर्ण अथवा शाल बीज चूर्ण के साथ मिला मधु के साथ अथवा बकरी के दूध के साथ, शीतल जल अथवा भात के माँड के साथ- इनमें से किसी एक चीज के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह अतिसार (पतले दस्त होना), संग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त और मंदाग्नि आदि रोगों में बहुत लाभ करता है। यह गुल्म, कास आदि रोगों में भी फायदेमंद है।

अतिसार में- कफज और वातज अतिसार में यह विशेष उपयोगी है। बार-बार पतले दस्त हों और दस्त होने के समय अपान वायु का शब्द विशेष हो, मन्दाग्नि हो, पेट में भारीपन तथा आँतों में दर्द भी होता हो, ऐसी हालत में इसका सेवन करना बहुत फायदेमंद है।

बवासीर - ज्यादा खून निकल जाने के कारण शरीर में रक्ताणुओं की कमी हो कर पाण्डु के लक्षण दिखाई देते हैं। शरीर में थोड़ा भी रक्त का संचय होने पर उसका क्षय (नाश) हो जाना, पेट में आवाज होना, मन्दाग्नि रहना, भूख कम लगना, खून ज्यादा निकलने से शरीर रक्तहीन मालूम पड़ना, धीरे-धीरे कमजोर भी होते जाना, ऐसी हालत में इसकी १ गोली सुबह-शाम शीतल जल के साथ देने से लाभ होता है। इसी तरह गुल्म रोग में भी यह वेदना (दर्द) शामक गुण करता है।

अमृतकल्पनिधि रस

शुद्ध विष २ तोला, कपर्दक भस्म ५ तोला, काली मिर्च का चूर्ण ९ तोला-तीनों को खरल में डालकर जल से मर्दन करें। गोली बनने योग्य हो जाने पर १-१ रत्ती की गोली बनाकर सुखा कर रख लें। -यो. र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार अदरक के रस और मधु के साथ अथवा गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रस पित्त और कफदोषजन्य ज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, उदरशूल, आमदोष आदि विकारों को नष्ट करता है। अजीर्ण के साथ ज्वर भी हो, जी मिचलाता हो, कै (वमन) होने की सम्भावना प्रतीत होती हो, तो गरम पानी में थोड़ा-सा नमक मिला कर और आधे नींबू का रस निचोड़ कर उसके साथ इस रस की एक या दो गोली खिला देने से शीघ्र ही विकार का शमन होकर रोगी को शान्ति अनुभव होती है। शुद्ध विष का सम्मिश्रण होने के नाते विसूचिका के सेन्द्रिय विष को नष्ट करने में भी यह अतीव उपयोगी है। विसूचिका में इसे प्याज के रस के अनुपान के साथ देना उत्तम है। ज्वर और प्रतिश्याय में भी तुलसी के रस और मधु के साथ देने से उत्तम लाभ होता है।

अश्विनीकुमार रस

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, अफीम, शुद्ध विष, पीपलामूल, लवंग, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध हरताल, सुहाग की खील, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक-प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बना हरताल, बच्छनाग, जमालगोटा और सुहागा क्रमशः इन सब को मिलाने के बाद अन्य औषधियों को कूट, कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर पहले गाय के आधा सेर दूध के साथ खरल करें, फिर आधा-आधा सेर भांगरे के रस और गो-मूत्र के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -अनुपान तरंगिणी

मात्रा- १ से २ गोली रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

पित्त प्रमेह में हल्दी स्वरस के साथ और मूत्रकृच्छ्र नष्ट करने के लिये पञ्चतृणमूल क्वाथ के साथ दें। नपुंसकता दूर करने के लिये मधु के साथ और ज्वर-नाशन के लिये सोंठ को पत्थर पर घिस कर उसके साथ दें। सर्वसाधारण प्रमेह में तुलसी पत्र के रस के साथ और मुख की दुर्गन्धि नष्ट करने के लिये तज के साथ दें। उष्णवात में कबाबचीनी का चूर्ण १ माशा के साथ ठण्डे पानी से सेचन करें। शीतज्वर में -कपास की जड़ के स्वरस के साथ दें। ऐकाहिक (एकतरा) ज्वर में तुलसी-पत्र स्वरस में सोंठ घिर कर मधु के साथ देना चाहिए। तृतीयक ज्वर में काली मिर्च और जीरे का चूर्ण १ माशा मिलाकर तुलसी-पत्र स्वरस के साथ दें। प्रतिश्याय (जुकाम) में पान-स्वरस और मधु के साथ दें। शिर-दर्द में नींबू रस केसाथ सेवन करें। प्लीहा-वृद्धि तथा उदर रोग में इन्द्रायण के रस के साथ दें। जीर्ण ज्वर में गुडूची रस के साथ, और बल बढ़ाने के लिये बादाम के शर्बत के साथ दें। सूतिका रोग में हल्दी स्वरस और घी के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- पेट की वायु बिगड़ने से होने वाले उदर रोग में और जाड़ा देकर आनेवाले बुखार में तथा वायु के अन्य विकार में और पैत्तिक प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

छोटी आँत (पक्वाशय) और बड़ी आँत (मलाशय) में दोषों का संचय हो जाने से अनेक तरह के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। पक्वाशय में दोष जब प्रकुपित होते हैं, तो उससे (पक्वाशय) में शिथिलता आ जाती है, जिससे वह अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। परिणाम यह होता है कि खाये हुए अन्नादिक पदार्थ बिना पचे ही वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं और उसमें से दुषित-

विषाक्त कीटाणु की उत्पत्ति होने लगती है। उन कीटाणुओं के विष रक्तवाहिनी नाड़ियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैल कर शरीर के अनेक अवयवों को दूषित कर कई प्रकार के विकार उत्पन्न कर देते हैं। जिससे कोष्ठ-शूल, बहुमूत्र, पतला दस्त होना आदि उपद्रव हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में अश्विनीकुमार रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह अन्त्रस्थ दोषों को सुधार कर पक्वाशय को उत्तेजित करता है और विषाक्त कीटाणुओं को भी नष्ट कर देता है।

कोष्ठबद्धता- दस्त की कब्जियत की हालत में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए, परन्तु मल-संचय हो जाने से शरीर में जलीयांश की वृद्धि हो जाती है, जिससे प्रतिश्याय (जुकाम), प्रमेहादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में अश्विनीकुमार रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि इसमें जयपाल पड़ा हुआ है। अतः यह मल-संचय को दूर कर शरीर में बढ़े हुए जलीयांश भाग को भी दूर कर देता है।

पैत्तिक प्रमेह में भी इसका प्रयोग होता है। पित्त प्रमेह में पित्त प्रकुपित हो जाने के कारण पित्त का स्राव विशेष रूप में होने लगता है। यह स्राव काला, नीला, हरा आदि रूपों में होता है। तद्नुसार ही प्रमेह रोग भी उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में पेशाब बहुत कम मात्रा में, किन्तु कई बार होता है। पेशाब करने पर भी पेशाब होने की आशंका बनी रहती है। प्यास ज्यादा लगती है, विशेषकर शीतल जल या शीतल पदार्थ खाने-पीने की इच्छा होती है, हाथ और पाँव की हथेली और पगतली (तलवा) में विशेष रूप से जलन होती है। ऐसी अवस्था में- अश्विनीकुमार रस देने से विशेष लाभ होता है।

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र में भी बार-बार पेशाब करने की आदत बनी रहती है। इसमें पेशाब करने के समय बहुत तकलीफ होती है। मूत्र-नली में जलन तथा बहुत कोशिश करने (जोर लगाने-कीछने) के बाद थोड़ा-सा पेशाब वह भी जलन के साथ होता है। ऐसी अवस्था में अश्विनीकुमार रस का सेवन करना लाभदायक है।

कोष्ठ में- दूषित मल-संचय हो जाने के कारण कभी-कभी बुखार हो जाता है। यद्यपि इस बुखार की गर्मी ज्यादा बढ़ी हुई नहीं मालुम पड़ती, किंतु रोगी के शरीर में आलस्य, कोई भी काम करने की इच्छा न होना, भूख कम लगना, दिन-प्रतिदिन कमजोरी बढ़ते जाना, अन्दरुनी मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर अश्विनीकुमार रस का सेवन करना बहुत हितकर है। इससे मल संचय दूर हो जाता है और पाचन क्रिया भी ठीक हो जाती तथा बुखार भी नष्ट होता है। -औ.गु.धु.शा.

अश्वकंचुकी रस

शुद्ध पारा और गन्धक, सुहागे की खील, शुद्ध विष, सोंठ, पीपरी, मिर्च, आँवला, हर्र, बहेड़ा, शुद्ध हरताल-प्रत्येक एक-एक भाग, शुद्ध जमालगोटा तीन भाग लेकर प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बना, अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला, भाँगरे के रस में २१ भावना देकर खरल में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनावें। इन्हें छाया में सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली, जल के साथ दे अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार अनुपान

अश्वकंचुकी रस यथोचित अनुपान के साथ प्रयोग करने और उचित पथ्य पालन करने से अनेक रोगों का नाश करता है।

वातशूल-क्षय-खाँसी और श्वास में- अश्वकंचुकी रस की १ गोली मूली के रस या अदरक के रस के साथ छोटी पीपल चूर्ण तथा शहद इन तीनों को एकत्र मिलाकर इनके साथ दें।

वलीपलित रोग में- शहद के साथ देने से लाभ होता है। सहिजन (शोभांजन) की जड़ के रस और गाय के घी के साथ सेवन करने से शूल और ज्वर का तथा छाछ (मट्ठा) के साथ सेवन करने से अजीर्ण रोग का और कमल के रस के साथ सेवन करने से शीत ज्वर का नाश होता है। पुनर्नवा के रस के साथ सेवन करने से पाण्डु रोग का नाश होता है। शक्कर (चीनी) और जीरे के चूर्ण के साथ सेवन करने से पित्तज्वर का शमन होता है। देवदारू, बच और कूट के काढ़े से अस्थिगत वायु रोग का, जायफल के चूर्ण के साथ बवासीर का तथा त्रिकटु के साथ सेवन करने से वात शूल का नाश होता है। गो-दुग्ध के साथ सेवन करने से पुरुषत्व उत्पन्न होता है। पुत्रजीवक (जीयापोत) के रस के साथ सेवन करने से बन्ध्यापन रोग दूर होता है। सर्पदंश में- नींबू के रस में पीस कर लेप करने से सर्प का विष नष्ट होता है। अजवायन और बच का चूर्ण १ माशा में १ गोली अश्वकंचुकी मिला कर खाने से कटिशूल (कमर का दर्द) दूर हो जाता है। इसकी १ गोली को श्वास-कास रोग में शहद और बाँसा स्वरस के साथ दें। ज्वर में तुलसी रस के साथ, सब दिन आने वाले ज्वर में-ग्वारपाठा के रस के साथ देना चाहिए। त्रिफला के रस के साथ देने से ऊर्ध्वश्वास का नाश होता है। सिरदर्द, प्रतिश्याय तथा आधाशीशी में जायफल चूर्ण १ माशे में मिलाकर गरम जल के साथ, सूतिका रोग में तुलसी रस तथा शहद के साथ देना चाहिए। अतिसार में- अश्वकंचुकी रस दही या गोमूत्र के साथ देना चाहिए। ग्रहणी में मट्ठा अथवा जायफल चूर्ण १ माशा के साथ दें। अग्निमांद्य में कसौंदी के रस और सुहागे के फूल (खील) के साथ देना। बुद्धि-वृद्धि के लिये ब्राह्मी रस के साथ दें। शरीर की कान्ति बढ़ाने के लिये पान के रस के साथ देना चाहिए। थूहर के दूध या निर्गुण्डी-रस के साथ सेवन करने से गुल्म का नाश होता है। सन्निपात ज्वर में अजवायन चूर्ण के साथ अदरक रस मिलाकर दें। वात-व्याधि के लिये भाँगरे की जड़ का स्वरस अजमोद और भाँग के चूर्ण के साथ अथवा त्रिफला चूर्ण और असगंध चूर्ण १ माशा में मिला शहद के साथ देना चाहिए।

धनुर्वात में- विष्णुकान्ता की जड़ का चूर्ण १ माशे के साथ अश्वकंचुकी १ गोली शहद मे मिलाकर दें। प्रमेह के लिये पेठे के रस के साथ दें। धातुक्षीणता में गोखरू चूर्ण ३ माशे में १ गोली मिला गो-दुग्ध के साथ दें।

शुक्र (धातु) बढ़ाने के लिये शतावरी चूर्ण में मिला धारोष्ण दूध के साथ दें। एरण्ड तैल के साथ अश्वकंचुकी १ गोली देने से विरेचन होता है। आमले का चूर्ण और मिश्री के साथ खाने से बढ़ा हुआ पित्त शान्त हो जाता है।

उदर रोग में त्रिफला चूर्ण और एरण्ड तैल के साथ देना चाहिए। भाँगरे की जड़ के रस । प्याज के रस के साथ सेवन करने से शोथ (सूजन) और करंज की जड़ की छाल के साथ सेवन करने से कृमि रोग नष्ट होता है। उष्णवात में जीरे का चूर्ण २ माशा के साथ शहद मिला कर सेवन करने से लाभ होता है।

-अनुपान तरंगिणी

गुण और उपयोग - अश्वकंचुकी रस ही अश्वचोली, घोड़ाचोली आदि नामों में प्रसिद्ध है। इसमें हरताल, जमालगोटा आदि औषधियाँ (ये उग्र एवं उष्णवीर्य हैं) पड़ने के कारण यह उष्णवीर्य है। इसी उष्णता को शान्त करने के लिये इसमें भावना देने का विशेष विधान है।

अर्थात् भाँगरे के रस की भावना जितने दिनों तक दी जायेगी, यह दवा उतनी ही सौम्य होगी तथा इसके रस की विशेष भावना देने से यकृत रोग के ऊपर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है और जमालगोटा एवं हरताल आदि की उग्रता शमन हो जाती है।

श्वास रोग में- दूषित जलवायु के कारण प्रकुपित कफ श्वास रोग उत्पन्न कर देता है। यह श्वास वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ या अन्त में उत्पन्न होता है। इसमें कफ प्रधान सब लक्षण होते हैं और यह श्वास प्रतिवर्ष वर्षा-ऋतु में अपना प्रभाव दिखलाता है। इसमें सफेद रंग का कफ अधिक मात्रा में और गाढ़ा-गाढ़ा निकलता है। श्वास के दौरे का असर ज्यादा नहीं मालुम पड़ता, भीतर ही भीतर इसका प्रकोप होता रहता है। अतः रोगी विशेष घबराया हुआ तथा बेचैन रहता है। छाती में अधिक कफ बैठने के कारण भारीपन मालूम होता है। अत्याधिक कफ-वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो जाती है। अतः भूख भी कम लगती है तथा जो थोड़ा-बहुत खाया भी जाता है, तो वह पचता नहीं। पेट फूल जाता है, शरीर में आलस्य होता तथा तन्द्रा अवस्था में रोगी पड़ा रहता है। ऐसी अवस्था में अश्वकंचुकी का प्रयोग करना बहुत लाभदायक है, क्योंकि यह कफघ्न है, अतः प्रकुपित कफ को शान्त कर श्वास रोग को दूर करता है तथा पित्त को जागृत कर पाचकाग्नि को भी प्रदीप्त करता है। अतः अन्नादि का पाचन भी अच्छी तरह होने लगता है, जिससे पेट फूलना आदि दूर हो भूख लगती है।

पसली चलना- छोटे-छोटे बच्चों को ज्यादा कफ हो जाने के कारण श्वास लेने में बहुत दिक्कत होती है, जिससे फुफ्फुस एकदम निर्बल होकर अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। उस अवस्था में श्वास की गति बढ़ जाती है। यह गति इतनी बढ़ जाती है कि पसली तक चलने लगती है। बच्चे की सांस ज्यादा बढ़ जाने से उसे अधिक तकलीफ होती है तथा बुखार हो जाता है। कफ की वृद्धि हो जाने के कारण गला रुका हुआ-सा रहता है। साँस लेने के साथ पसली में गड्ढे पड़ जाते हैं। ऐसी दशा में अश्वकंचुकी रस की आधी गोली माँ के दूध अथवा पान के रस के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। इसी तरह कफ की विशेष वृद्धि होने पर तथा ऐसी हालत में कहीं ठण्डी हवा भी लग गई तो बच्चों को बहुत जल्दी निमोनिया हो जाता है। इसमें भी श्वास की गति बढ़ जाती है तथा ज्वर बहुत तेज हो जाता है। खाँसी भी साथ-साथ होने लगती है। पसली में दर्द होने लगता है। ऐसी अवस्था में अश्वकंचुकी रस का प्रयोग मधु और अदरक रस के साथ किया जाता है। इसके सेवन से कफ छँट कर दस्त के साथ निकलने लगता है तथा मुँह के द्वारा भी कफ खाँसी के साथ निकल जाता है। जिससे कफ के जितने उपद्रव रहते हैं, वे अपने-आप कम हो जाते है, फिर धीरे-धीरे रोगी भी स्वस्थ हो जाता है।

यकृत वृद्धि- यकृत की बीमारी छोटे-छोटे बच्चों को अधिकतर होती रहती है, क्योंकि बाल्यावस्था में यकृत एकदम मुलायम रहता है तथा यह परिपुष्ट नहीं होने की वजह से कमजोर (नाजुक) रहता है। अतः थोड़ा-सा भी अपथ्य होने पर इसमें खराबी उत्पन्न हो जाती है। यदि कफ-प्रधान यकृत-वृद्धि हो अर्थात् प्रकुपित कफ के कारण यकृत बढ़ गया हो, तो इसमें आँखों की पलकें कुछ सूजी हुई रहना, निद्रा अधिक होना, बच्चा सुस्त बना रहना, सफेद दस्त होना, कास (खाँसी) होना, कंठ से घर-घर आवाज निकलना, हाथ-पैर कुछ सूजे हुए प्रतीत होना आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्था में अश्वकंचुकी रस का उपयोग करने से बढ़ा हुआ कफ कम हो जाता है, तथा कफ-वृद्धि के कारण जितने उपद्रव होते हैं, वे सब शान्त हो जाते हैं। अश्वकंचुकी का प्रभाव यकृत पर विशेषतया होता है। अतः यकृत के भी विकार को दूर कर अपनी प्राकृतिक अवस्था पर ले आता है। फिर धीरे-धीरे बच्चा नीरोग हो जाता है।

…सौम्य होगी तथा
…ाव पड़ता है और

…कर देता है। यह
…लक्षण होते हैं ओर
…का कफ अधिक
…ालुम पड़ता, भीतर
…था बेचैन रहता है।
…फ-वृद्धि के कारण
…या भी जाता है, तो
…में रोगी पड़ा रहता
…कि यह कफघ्न है,
…ागृत कर पाचकाग्नि
…ाता है, जिससे पेट

…श्वास लेने में बहुत
…में असमर्थ हो जाता
…है कि पसली तक
…होती है तथा बुखार
…। साँस लेने के साथ
…के दूध अथवा पान
…द्ध होने पर तथा ऐसी
…हो जाता है। इसमें
…भी साथ-साथ होने
…का प्रयोग मधु और
…साथ निकलने लगता
…के जितने उपद्रव रहते
…ता है।

…ती रहती है, क्योंकि
…की वजह से कमजोर
…पन्न हो जाती है। यदि
…ा हो, तो इसमें आँखों
…ना, सफेद दस्त होना,
…सूजे हुए प्रतीत होना
…से बढ़ा हुआ कफ कम
…ब शान्त हो जाते हैं।
…भी विकार को दूर कर
…ो जाता है।

प्लीहा-वृद्धि में भी इसका उपयोग किया जाता है, परन्तु एक बात का ध्यान रखें कि कफ प्रकोपजन्य बीमारी में ही इसका असर होता है, पित्त प्रधान रोगों में यह फायदा न करके हानि ही करता है। अतः पित्तजन्य रोगों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

कोष्ठशूल- कफ-वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो जाने से क्रमशः आमाशय में कच्चे अन्न संचित होने लगते हैं। धीरे-धीरे यह संचय अधिक हो जाने से दस्त में कब्जियत हो, कोष्ठ में शूल होने लगता है। यह उपद्रव ज्यादा बैठे रहने वाले आलसी, चिकने पदार्थ का अधिक सेवन करने वाले तथा मांसाहारी लोगों को विशेषतया होता है। इस रोग में मल संचय होने के कारण आँत कमजोर होकर अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती है, फिर पाचक पित्त भी मन्द हो जाता है, जिससे पचन क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है। परिणाम यह होता है, कि अच्छी तरह से रस-रक्तादि बन नहीं पाते। पेट कुछ बढ़ जाता है, क्योंकि शरीर में रक्त की वृद्धि न होकर जल भाग की ही वृद्धि होने लगती है अतः पेट बड़ा हो जाता तथा रोगी शक्ति-क्षय के कारण कमजोर हो जाता है और शरीर कान्तिहीन एवं रक्तकणों की कमी की वजह ये पाण्डुवर्ण का हो जाता है। ऐसी अवस्था में अश्वकंचुकी रस के उपयोग से शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इसमें जमालगोटा पड़ता है। अतः इसमें रेचकत्व धर्म होना स्वाभाविक है। इस दवा से संचित मल निकल जाते हैं। जिससे आँत पुनः सबल हो अपना कार्य करने लगती है। इस दवा से संचित मल निकल जाते हैं। जिससे आँत पुनः सबल हो अपना कार्य करने लगती है तथा पित्त भी जागृत हो पाचकाग्नि को प्रदीप्त कर पाचन क्रिया को सुधार देता है। रस-रक्तादि भी अच्छी तरह बनने लग जाते हैं। फिर रोगी क्रमशः स्वस्थ होने लग जाता है।

पुराने अतिसार में भी यह अच्छा काम करता है। अतिसार जब पुराना हो जाता है, तब सफेद और लसदार मल दस्त में आने लगते हैं। इसको कोई-कोई मज्जा का गिरना, कह देते हैं, और असाध्य कह कर चिकित्सा बन्द कर देते हैं, परंतु वास्तविक बात यह है कि पुराने अतिसार में आँतों की श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है, तथा उसमें से बराबर स्राव होता ही रहता है। स्राव कफ प्रधान दोष के कारण होने से ही सफेद मल वाला दस्त होता है। अश्वकंचुकी रस के सेवन से श्लैष्मिक कला की मोटाई तथा बराबर होनेवाला स्राव भी कम हो जाता है। फिर अन्य उपद्रव भी धीरे-धीरे कम हो जाते हैं।

इसमें यदि अग्नि-दीपन, पाचन और स्तम्भन (दस्त बन्द करने वाली) दवा देंगे, तो कुछ भी लाभ नहीं होगा जब तक कि मूल कारण को आप दूर नहीं कर लेते हैं। दस्त बन्द करने वाली दवा देने से मल-संचय में और वृद्धि होती जायेगी और रोग बढ़ता ही जायेगा। अतः प्रथम दोष जो रोग का मूल कारण है उसे दूर करने के बाद ही यह रोग दूर हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसी तरह पुरानी संग्रहणी में-आँतों में जहां पर घाव (क्षत) हो जाते हैं, उस स्थान से श्लैष्मिक कला के साथ रक्त बराबर निकलता रहता है, यह स्राव मल के साथ होता है। ऐसी अवस्था में एरण्ड तैल (कैस्टर ऑयल) ५-७ बूंद पाव भर दूध में डालकर पीवें और कोष्ठ शुद्धि करने के बाद ही दवा का प्रयोग करें। कोष्ठ शुद्ध करने के लिये नाराच घृत भी काम में ले सकते हैं।

कोष्ठ में मल-संचय होने के कारण वात की वृद्धि हो जाती है। यह प्रकुपित वायु हृदय से जाकर दर्द उत्पन्न करता है। रोगी को एकाएक झटके (आक्षेप) आने लगते हैं, जिससे रोगी बेहोश हो जाता है, श्वास लेने में कष्ट होता है, मुँह में कभी-कभी झाग आने लगता है और कण्ठ से कबूत के कूजन के समान आवाज आने लगती है। मल-संचय के कारण पेट बहुत कमजोर हो जाता है तथा कभी-कभी वायु के झटके इतने जोर के आते हैं कि रोगी का शरीर मुड़ जाता है। इसको शास्त्रकार ने अपतानक या अपतन्त्रक नाम से उल्लेख किया है। इस रोग में

कोष्ठ-शुद्धि करने के बाद ही चिकित्सा करने से लाभ होगा। अत: कोष्ठ-शुद्धि के लिये अश्वकंचुकी का प्रयोग करना अच्छा है। -औ.गु.ध.शा.

अर्शकुठार रस

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला, लौह भस्म और ताम्र भस्म ८-८ तोला, दंतीमूल, सौंठ, काली मिर्च, पीपल, सूरणकन्द, वंशलोचन, शुद्ध टंकण, यवक्षार, सेंधा नमक प्रत्येक २०-२० तोला, स्नूही (सेहुण्ड) का दूध ३२ तोला, गो-मूत्र १३८ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। बाद में गो-मूत्र और सेहुण्ड-दूध को अग्नि पर चढ़ाकर मन्द-मन्द आँच से पाक करें। जब पकते-पकते गाढ़ा हो जाय, तो कज्जली और उपरोक्त द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर मर्दन करें, गोली बनाने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना सुखाकर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक, प्रात: सायं, दस्तावर औषधियों के क्वाथ के साथ अथवा जल या गुलकन्द के साथ भी दिया जाता है।

गुण और उपयोग- अर्श (बवासीर) में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। यदि बवासीर ज्यादा दिन का न हो, तो मस्से सूख जाते है, बवासीर में प्राय: कब्ज की शिकायत रहने से साफ दस्त होने में बहुत तकलीफ होती है, परन्तु इसके सेवन से कब्ज नहीं होने पाता, दस्त साफ होने लगता है।

अर्श (बवासीर) खुनी और बादी भेद से दो प्रकार का होता है। खूनी में तो मस्सों द्वारा खून निकलता रहता है और बादी में खून नहीं निकलता। मस्सों में वायु भर जाने से मस्से फूल जाते हैं और उनमें से सुई-चुभोने-सी पीड़ा होती रहती है। इसमें रोगी की परेशानी अधिक बढ़ जाती है, परन्तु दस्त कब्ज दोनों में हो जाता है, अत: जब तक दस्त साफ होता रहता है, बवासीर वाले को तब तक किसी प्रकार की विशेष तकलीफ नहीं होती, किन्तु दस्त कब्ज होते ही तकलीफ होने लग जाती है। इस कब्जियत को दूर करने के लिये ही अर्शकुठार रस का प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से कोष्ठ शुद्ध होकर मल-संचय दूर हो जाता है तथा प्रकुपित वायु भी शांत हो जाती है, परन्तु यह जितना जल्दी गुण कफ या वात प्रधान अर्श में करता है, उतना रक्तज में नहीं। यदि रक्तार्श नवीन हो तो उसमें भी यह गुण करता है। रक्तातिसार में इसको कुटजावलेह या कुटज छाल के क्वाथ से देने से लाभ होता है।

बादी बवासीर में- गर्म जल के साथ या गुलकंद के साथ देने से लाभ होता है इससे दस्त साफ होता है तथा वायु का प्रकोप भी कम हो जाता है, जिससे मस्से में दर्द नहीं होता है।

आनन्दभैरव रस (कास)

शुद्ध पारा, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, सौंठ, काली मिर्च, पीपल, शुद्ध टंकण, पीपल-प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम पारा- गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उस कज्जली को भाँगरा-स्वरस की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें, पश्चात् अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों को सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करके उपरोक्त कज्जली में मिलावें और बिजौरा नींबू के रस की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना सुखा कर सुरक्षित रख लें।-र.रा.सु.

वक्तव्य- कुछ लोग सिर्फ व्योष मे ही पीपल लेते हैं। आगे 'टंकण मगधासमम्' से शुद्ध टंकण पीपल के बराबर लेते हैं, किन्तु 'व्योष' शब्द से पृथक् 'मगधा' शब्द का उल्लेख पीपल

को दो बार लेने का द्योतक है। अतः दो बार ही पीपल लेना चाहिए। र.रा.सुंदर में इसका मूल पाठ नीचे लिखे अनुसार है।-यथा

पारदं गन्धकं चैव भृंगराजेन मर्दयेत्।
हिंगुलं च विषं व्योषं टंकणं मगधासमम्।
मातुलुंगरसैर्मर्द्य रसमानन्द भैरवम्।।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक अदरक का रस, पान का रस और मधु के साथ या कुटज (कुड़ा) की छाल के क्वाथ या अनार के शर्बत अथवा साधारण जल से दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से खाँसी, श्वास, अतिसार, ग्रहणी, सन्निपात, अपस्मार, ज्वररोग, प्रमेह, अजीर्ण और अग्निमांद्य रोग नष्ट होते हैं।

कफ विकार में - कफ की वृद्धि होकर शरीर में भारीपन होना, देह पसीने से भींगा रहना, थोड़ा-थोड़ा बुखार होना, आलस्य होना, किसी भी काम में मन न लगना, जम्भाई आना, भूख न लगना, उपवास करने पर भी खुल कर भूख न लगना, मन्दाग्नि, जी मिचलाना इत्यादि लक्षणों में आनन्दभैरव रस देने से विशेष फायदा होता है, क्योंकि इसका असर श्लैष्मिक कला पर विशेष होता है। अतः यह कफ का शोषण कर उसके उपद्रवों को भी शान्त कर देता है।

यह रस पित्त को उत्तेजित करता है। अतः पित्तजन्य विकार या ज्वर में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि प्रयोग करें तो किसी कफवर्द्धक दवा के साथ या इसी तरह के अनुपान के साथ कफ-ज्वर में भी आमदोष पच जाने पर इसका प्रयोग करने में फायदा होता है।

प्रतिश्याय जनित कास (खाँसी) में- जुकाम होकर पक जाने पर कफज कास की उत्पत्ति होती है। इसमें खाँसी आने के बाद कफ अधिक मात्रा में निकलता है तथा कफ का रंग कुछ-कुछ पीलापन लिये हुए सफेद रहता है। शिर में थोड़ा-थोड़ा दर्द तथा भारीपन बना रहता है। श्वास लेने में भी दिक्कत होती है, ऐसी हालत में आनन्दभैरव रस को पान के रस के साथ या लगे हुए पान में रखकर देने से लाभ होता है। प्रारम्भिक प्रतिश्याय (जुकाम) में यह नहीं देना चाहिए, क्योंकि इसमें बच्छनाग पड़ा हुआ है, जो अपनी तेजी के कारण कफ को सुखा देता है, जिससे जुकाम रूक जाता है और शिर में दर्द तथा कभी-कभी अर्धावभेदक एवं सूखी खाँसी भी उत्पन्न कर देता है, अतः फायदा के बदले रोगी को हानि उठानी पड़ती है।

कफ प्रधान श्वास रोग में- श्वास के दौर के साथ-साथ कफ का भी प्रकोप विशेष रहता है। इसमें खाँसी के साथ कफ ज्यादा मात्रा में निकलता है तथा नवीन कफ भी बनता रहता है। श्वास नाभि तक न पहुंच कर हृदय तक ही रह जाता है, जिससे रोगी बेचैन हो जाता है। ऐसी अवस्था में आनन्दभैरव रस का प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि इस रसायन से कण्ठ के भीतर श्वास मार्ग की श्लैष्मिक कला पर असर होता है और यह कफ को निकालता है जिससे श्वासनली साफ हो जाती है और श्वास लेने में असुविधा भी नहीं होती तथा नवीन कफ की उत्पत्ति बन्द हो जाती है।

कफजन्य अतिसार में- कफ की वृद्धि होने के कारण अन्न में अरुचि तथा पाचक पित्त की विकृति के कारण मन्दाग्नि हो अपचन होने से अतिसार उत्पन्न हो जाता है। इससे पेट में भारीपन तथा आँतों की श्लैष्मिक कला में क्षोभ होकर पतला दस्त होने लगता है। अतः अपचित तथा झागदार दस्त होते हैं। ऐसे समय में कफ-वृद्धि को रोकने तथा आन्तरिक क्षोभ को दूर करने के

लिये आनन्दभैरव रस का प्रयोग कुटज क्वाथ के साथ करने से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह ग्राही है। अत: आँतों को सबल कर दस्त को रोकता है और पित्तवर्धक होने के कारण पित्त को उत्तेजित कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, जिससे अन्न का पाचन ठीक होने लगता है और अतिसार भी बन्द हो जाता है।

साधारण कोष्ठशूल- कफ बढ़ाने वाले पदार्थ का विशेष सेवन करने से कोष्ठबद्ध हो कर पेट में वायु भर जाता है, फिर पेट फूला हुआ तथा कड़ा मालूम पड़ने लगता है। पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द के साथ कोष्ठ में भी दर्द होने लगता है दस्त पतले किन्तु थोड़ी सी मात्रा में बार-बार होते हैं, दस्त होने पर भी पेट में भारीपन बना ही रहता है एवं मीठा-मीठा दर्द भी होता है। ऐसी अवस्था में आनन्दभैरव रस का उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। -औ.गु.ध.शा.

आनन्दभैरव रस (ज्वर)

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, सोंठ, फूला हुआ सुहागा और जायफल प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च और छोटी पीपल २-२ तोला लेकर पृथक्-पृथक् इन्हें खूब महीन पीस कर वजन कर लेना चाहिए। पहले शुद्ध हिंगुल को खरल में डाल कर पीसने के बाद सभी चीजों को उसमें डाल कर जम्बीरी नींबू के रस में घोंटना चाहिए। अच्छी तरह घुट जाने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -र.सा.सं.एवं आरोग्य प्रकाश

वक्तव्य- आनंदभैरव रस का यह योग बहुत प्रचलित योग है। ज्वर, अतिसार, जुकाम, खाँसी आदि में उत्तम गुणकारी है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रात: सायं अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह आनन्दभैरव रस सब तरह के बुखार में दिया जा सकता है। साधारण ज्वर में इसकी १-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ देने से लाभ होता है। जब बुखार बहुत जोर का हो और कम न होने के कारण रोगी घबराता हो, तो आनन्दभैरव रस एक गोली, अदरक का रस १ तोला और शहद १ तोला मिलाकर दिन-रात में तीन बार देने से बढ़ा हुआ बुखार (टेम्प्रेचर) अवश्य कम हो जाता है। यदि बुखार कम नहीं करना हो तो सिर्फ शहद के साथ आनन्दभैरव रस प्रात: सायं देना चाहिए। इससे बुखार धीरे-धीरे पचकर उतर जाता है। अतिसार में जायफल को घिस कर उसके पानी के साथ अथवा सोंठ के पानी या बेलगिरी के काढ़े के साथ देने से उत्तम लाभ करता है।

आमवातारि रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, त्रिफला, चित्रकमूल की छाल ४ तोला, शुद्ध गूगल ५ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर अन्य दवाओं के चूर्ण तथा शुद्ध गूगल को मिला कर बारीक पीस कर एरण्डी के तेल के साथ खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली सुबह-शाम गरम जल के साथ देना चाहिए अथवा दशमूल या महारास्नादि क्वाथ या एरण्ड तैल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन करने से अति प्रबलतम वात-दोष नष्ट हो जाता है। आमवात रोग में जिस समय हाथ-पैरों या सारे बदन में सूजन हो गयी हो, सूई चूभने जैसी पीड़ा होती हो, उस समय इस दवा के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। जब तक यह दवा सेवन करें

तब तक वायु बढ़ाने वाले पदार्थों का सेवन करना छोड़ दें और गरम जल का ही व्यवहार करें। इस दवा के सेवन से आमवात रोग में बहुत उत्तम लाभ होता है। अन्य वात रोगों में भी यह अच्छा लाभ करता है।

आरोग्यवर्द्धिनी बटी (रस)

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, लौह भस्म १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, हर्रे, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक २-२ तोला, शुद्ध शिलाजीत ३ तोला, शुद्ध गुग्गुलु ४ तोला, चित्रकमूल छाल ४ तोला और कुटकी २२ तोला लें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य भस्मों तथा शुद्ध शिलाजीत और शेष द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिलावें। पीछे गुग्गुलु को नीम की ताजी पत्ती के रस में दो दिन तक भिगो, हाथ से मसल, कपड़े से छान, उसमें अन्य दवा मिलाकर मर्दन करें। नीम की ताजी पत्ती के रस में मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -र.र.स.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ गोली रोगानुसार जल, दूध, पुनर्नवादि क्वाथ या केवल पुनर्नवा का क्वाथ, दशमूल क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन उत्तम पाचन, दीपन, शरीर के स्रोतों का शोधन करनेवाला, हृदय को बल देनेवाला, मेद को कम करनेवाला और मलों की शुद्धि करनेवाला है। यकृत प्लीहा, बस्ति, वृक्क, गर्भाशय, आन्त्र, हृदय आदि शरीर के किसी भी अन्तरावयव के शोथ में, जीर्णज्वर, जलोदर और पाण्डु रोग में इस औषध से अधिक लाभ होता है। पाण्डुरोग में यदि दस्त पतले और अधिक होते हों, तो इसका प्रयोग न कर पर्पटी के योगों का प्रयोग करना चाहिए। सर्वांग शोथ और जलोदर में रोगी को केवल गाय के दूध के पथ्य पर रखकर इसका प्रयोग करना चाहिए। यकृत की वृद्धि के कारण शोथ हो, तो पुनर्नवाष्टक क्वाथ में रोहेड़ा की छाल और शरपुंखामूल १-१ भाग अधिक मिलाकर उसके अनुपान से इसका प्रयोग करें। यदि हृद्रोगजन्य शोथ हो तो आरोग्यवर्द्धिनी बटी के साथ 'डिजिटेलिस पत्र' चूर्ण आधी से १ रत्ती और जंगली प्याज (बन पलाण्डू) का चूर्ण १-२ रत्ती मिलाकर पुनर्नवादि या दशमूल-क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करें। जीर्णफुफ्फुसधरा कला शोथ में इसके साथ श्रृंग भस्म ४-८ रत्ती मिलाकर भारंगी-मूल, पुनर्नवा, देवदारु और अडूसा के क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करें। मेद (चर्बी) कम करने के लिये रोगी को केवल गाय के दूध पर रख कर महामंजिष्ठादि क्वाथ के अनुपान से इसका सेवन करावें। -सि.यो.सं.

यही बटी बृहदन्त्र तथा लघु अन्त्र की विकृति को नष्ट करती है, जिससे आन्त्र-विष-जन्य रक्त की विकृति दूर होने से कुष्ठ आदि रोग हो जाते हैं। इससे पाचक रस की उत्पत्ति होती है और यकृत बलवान होता है। अतः यह पुराने अजीर्ण, अग्निमांद्य और यकृत दौर्बल्य में लाभ करती है। सर्वांग शोथ में होने वाले हृदय-दौर्बल्य को यह मिटाती है और मूत्र-मार्ग से जलांश को बाहर निकाल शोथ को कम करती है। पाचन शक्ति को तीव्र करके धातुओं का समीकरण करने के कारण यह मेदोदोष में लाभदायक है। मलावरोध नष्ट करने के लिये यह उत्तम औषध है। दुष्ट व्रण में वात-पित्त की अधिकता होने पर इसके सेवन से लाभ होता है। शरीर-पोषक ग्रन्थियों की कमजोरी या विकृति से शरीर की वृद्धि रूक जाती है और शरीर निर्जीव सा हो जाता है। इस तरह जवानी आने पर भी स्त्री और पुरुष में स्वाभाविक चिन्हों का उदय नहीं होना ऐसी अवस्था में इस बटी के निरन्तर प्रयोग से लाभ होते देखा गया है। यह पुराने वृक्क-विकार में भी लाभ करती है। प्रमेह और कब्ज में अपचन होने पर भी यह लाभ करती है। हिक्का रोग में भी इसके प्रयोग से हिक्का नष्ट हो जाती है। परन्तु यह बटी गर्भिणी स्त्री, दाह, मोह, तृष्णा, भ्रम और पित्त प्रकोपयुक्त रोगी को नहीं देना चाहिए। -र.वि.

कुष्ठ रोग की प्रारम्भिक अवस्था में- इसका उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। पुराने कुष्ठ रोगों में अर्थात् जब रक्त और मांस दूषित हो, मवाद-रूप में परिणत होकर बहने लगे जैसा गलित कुष्ठ; तो इसमें यह लाभ नहीं करती है। विशेषतया वात और कफ-प्रधान या वात-कफ प्रधान कुष्ठ-जैसे कपाल, मण्डल, विपादिका, चर्मदलादि और अलसक पर इसका प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। इस दवा के सेवन-काल में पथ्य में बराबर दूध का ही सेवन करना चाहिए।

औदुम्बर कुष्ठ में शरीर की त्वचा विकृत और रूक्ष हो जाती है तथा स्पर्श-ज्ञान का लोप हो जाता है। अर्थात् जहाँ धब्बे पड़ जाते हैं उसे स्पर्श करने से उसको छूने तक का ज्ञान नहीं होता है। ये धब्बे लाल और ऊपर उठे पके हुए गूलर-फल के समान होते हैं। उसमें से पसीना अधिक निकलता रहता है। ऐसी अवस्था में केवल आरोग्यवर्द्धिनी न देकर गन्धक रसायन के साथ इसे देना अच्छा है और भोजनोपरान्त खदिरारिष्ट २ तोला बराबर जल मिश्रित कर के दोनों समय देना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है।

कभी-कभी रक्त विकृति के कारण शरीर में लाल चट्टे पड़ जाते हैं, उनसे खुजली होती है तथा बाद में पूय पड़ जाता है। कभी-कभी खुजलाने पर लाल चट्टे होकर मवाद भर जाता है। ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी बटी महामंजिष्ठादि अर्क के साथ या नीम की छाल के क्वाथ के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

रक्त और मांस की विकृति के कारण त्वचा विकृत हो जाती है। इसमें कफ और वायु की प्रधानता रहती है। अत: जहाँ की त्वचा विकृत हो जाती है, वहाँ की त्वचा रूक्ष होकर फट जाती है और उसमें से थोड़ा-थोड़ा मवाद भी निकलने लगता है। खुजलाने पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ होकर पक जाती हैं, इसमें सुई कोंचने जैसी पीड़ा होती है। यह स्थान कठोर बन जाता है। ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी बटी का उपयोग दूध के साथ करावें तथा ऊपर से सारिवाद्यासव २ तोला बराबर जल मिलाकर पिलावें। गन्धक रसायन से भी अच्छा लाभ होता है।

वात-पित्त-कफ दोषों से उत्पन्न ज्वरों में इसके प्रयोग से लाभ होता है। इसी तरह बद्धकोष्ठ जनित ज्वर, आमाशय की विकृति से अपचन जनित ज्वर बहुत दिनों तक बराबर आनेवाला ज्वर और पित्त की विकृति से उत्पन्न होने वाले ज्वरों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

मल-संचय हो जाने के कारण कफ की वृद्धि हो मन्दाग्नि हो जाने पर जी मिचलाना, वमन होना तथा उसमें कफ की झाग (फेन) निकलना, भूख न लगना, पेट भारी हो जाना, भोजन करने के बाद ही जी मिचलाना तथा वमन होने की इच्छा होना, कभी-कभी वमन भी हो जाना, खाँसी, कफ सफेद तथा लेसदार गिरना ऐसी अवस्था में आरोग्यवर्द्धिनी दें। इससे मल-संचय दूर हो कफ के विकार दूर हो जाते हैं और यह पित्त को बलवान बनाकर मन्दाग्नि को दूर करती है, जिससे अन्नादि का भी पाचन ठीक से होने लगता तथा कफ नष्ट हो जाने से वमनादि उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

यह गुटिका दीपन-पाचन भी है। अर्थात् पाचक पित्त की कमजोरी से अन्नादि की पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है, जिससे अपचन बराबर बना रहता है। आजकल ऐसे रोगों की कमी नहीं है और इस रोग से छुटकारा पाने के लिये लोग अनेक प्रकार के खट्टे-मीठे तथा चरपरे-जायकेदार चूर्ण का उपयोग करते है। ऐसे चूर्ण के सेवन से तात्कालिक लाभ तो होता है, परन्तु बाद में रोग फिर जैसा का तैसा ही हो जाता है।

इसके लिये आरोग्यवर्द्धिनी बटी का उपयोग करना बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि यह पाचक पित्त को सबल बना, पाचन-शक्ति प्रदान करती है, जिससे मन्दाग्नि दूर हो, अन्नादि की पाचन-क्रिया ठीक होने लगती तथा भूख भी खुल कर लगने लगती है।

हृदय की निर्बलता में- मल-संचय अधिक होने के कारण बद्धकोष्ठ हो जाता है। जिससे कफादि की वृद्धि हो जाती और मन्दाग्नि भी हो जाती है। फिर अन्नादिक का पाचन ठीक से न होने के कारण रस-रक्तादि भी उचित परिमाण में नहीं बन पाते। अत: रक्तकणों की वृद्धि न होकर शरीर में जल भाग की ही वृद्धि होती रहती है। ऐसी अवस्था में सर्वांग में सूजन होकर हृदय कमजोर हो जाता है, जिससे हृदय अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। ऐसे समय में आरोग्यवर्द्धिनी बटी पुनर्नवादि क्वाथ के साथ देने से बहुत लाभ करती है।

प्राचीन मलावरोध होने से आँत में मल चिपक जाता है, जिससे आँत में सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति हो मल शुष्क हो जाता है। मल शुष्क हो जाने से आँत की दीवारें सख्त (कठोर) हो जाती है। फिर आँतों की क्रिया में अन्तर पड़ जाता है और उसमें दर्द भी होने लगता है। यह दर्द साधारण चूरण-चटनी आदि से नहीं दबता, जब तक कि मल की शुद्धि न की जाय। यह कार्य आरोग्यवर्द्धिनी बटी त्रिफला क्वाथ के साथ अच्छी तरह कर देती है। इससे मल पिघल कर बाहर निकल आता है तथा आँतों में कोमलता आ जाती है और वह अपना कार्य भी अच्छी तरह से करने लग जाती है।- औ.गु.ध.शा.

इच्छाभेदी रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, काली मिर्च, सोंठ का चूर्ण- प्रत्येक एक-एक तोला और शुद्ध जयपाल (जमालगोटा) चूर्ण ३ तोला लें। पहले पारद-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य दवाओं को मिलाकर घोंटे। फिर जल से १ दिन खूब घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। (कोई-कोई इस दवा का सिर्फ चूर्ण ही बनाकर रखते हैं।) -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली (१ से २ रत्ती) प्रात: शीतल जल या चीनी के शर्बत के साथ दें।

गुण और उपयोग- रोगी की इच्छानुसार पेट को शुद्ध करने वाला यह तेज विरेचन है। यह कफ और वात को दूर करता है तथा आँतों में संचित विकार (मल) को निकालता और शूल को नष्ट करता है। रोगों की चिकित्सा करने से पहले पेट साफ कर लेना है, वह पेट में गर्मी उत्पन्न करता एवं कभी-कभी ज्यादा दस्त भी ला देता है। अत: नाजुक स्त्री, पुरुष, बालक तथा गर्भवती स्त्रियों को नहीं देना चाहिए। इससे ज्यादा दस्त लगने पर गरम पानी पी लेना चाहिए। विरेचन के बाद खिचड़ी और दही खाना चाहिए।

जुलाब लेने की विधि- जब गोली खाने के बाद दस्त आना आरम्भ हो जाय तो एक दस्त आने के बाद तो दो-तीन घूँट ठंडा जल पी लें। इसी प्रकार जितना घूँट पानी पिया जायेगा उतने ही दस्त आयेंगे। यही इस दवा में विशेषता है। जब दस्त बन्द करना हो तो थोड़ा-सा गर्म जल पी लेने से दस्त बन्द हो जाता है। बाद में दही-भात खायें। जुलाब लेने के पहले दिन घी मिली खिचड़ी खाकर कोष्ठ स्निग्ध कर लेना चाहिए। अत्यावश्यक होने पर बिना स्निग्ध कोष्ठ के भी ले सकते हैं, इसकी गोली को चूर्ण कर बराबर चीनी मिलाकर भी दे सकते हैं।

यह रसायन रक्त-दोष, उपदंश, कुष्ठ, अजीर्ण, आम-वृद्धि, मलवृद्धि, कृमि, मलावरोध, कफ प्रधान जलोदर आदि रोगों के नाश करने के लिये उत्तम है। कफ प्रधान जलोदर रोग में जल का शोधन करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

कफ-वृद्धि के कारण कफवाहिनी स्त्रोतों का अवरोध हो जाता है और वायु की वृद्धि होकर शरीर में आक्षेप-जन्य बीमारी हो जाती है, जिससे अपतन्त्रक, अपतानक आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कोष्ठ-शोधन करने तथा कफ के अवरुद्ध (रूके हुए) स्त्रोतों का शोधन करने के लिये विरेचनीय औषध की आवश्यकता होती है। इसके लिये इच्छाभेदी रस बहुत उपयोगी है।

पक्वाशय में मल संचय विशेष होने पर आँते दूषित होने से ही सेन्द्रिय विष उत्पन्न होता है। यह विष इतना उग्र होता है कि सम्पूर्ण शरीर में फैलकर रस-रक्तादि धातुओं को विकृत करके कुष्ठ सदृश रोग उत्पन्न कर देता है। इस रोग में समस्त शरीर पर काले या लाल चकत्ते, खुजली सहित उत्पन्न होते हैं। जिससे रोगी अधिक बेचैन रहता तथा आँत में मीठा-मीठा दर्द भी होता रहता है। ऐसी अवस्था में इच्छा भेदी रस के उपयोग से विशेष लाभ होता है। -औ.गु.ध.शा.

इंदुशेखर रस

शुद्ध शिलाजीत, अभ्रक भस्म, रस सिन्दूर, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध हरिताल-इन सबके समान भाग लेकर खरल में एकत्र पीसकर भृंगराज, अर्जुन, निर्गुण्डी, अडूसा, स्थानकमल, जलकमल और कुड़ा इसके प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ की ११ भावना देकर मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर एक-एक रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रखें। -भै.रं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक मधु या जल के साथ सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इस रस के सेवन करने से गर्भिणी स्त्री के होने वाले ज्वर, खाँसी, श्वास, सिरदर्द, रक्तातिसार, संग्रहणी, वमन, अग्निमांद्य, आलस्य, दुर्बलता, प्रदर, हृदयरोग, स्नायु-दौर्बल्य,भ्रम आदि विकार शान्त होते हैं। इसमें शिलाजीत, अभ्रक भस्म, रस-सिन्दूर और प्रवाल भस्म ये द्रव्य शरीर पुष्टिकारक और रसायन हैं, लौह भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म रस-रक्तादि धातुवर्द्धक एवं यकृत और प्लीहा की क्रिया को सुधारने वाले हैं। शुद्ध हरिताल सेन्द्रिय विषनाशक, धातु शोधक एवं ज्वरघ्न और कास-श्वास-नाशक है। इन सब द्रव्यों के संमिश्रण एवं उपरोक्त भावना-द्रव्यों की भावनाओं के संयोग से निर्मित यह रस उत्तम गुणकारी है।

उदयादित्य रस

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला लें। दोनों को खरल में डालकर कज्जली करें। पश्चात् ग्वारपाठा के रस से घोंट कर गोला बना कर, सुखा कर उसे मिट्टी की हंडिया में रख कर उसको पारद से दुगुने वजन की शुद्ध ताम्र की कटोरी को उल्टी रख कर ढँक दें और सन्धि को मुलतानी मिट्टी लगा कर बन्द कर दें तथा पश्चात् हण्डिया के खाली आधे भाग को पलाश की राख से भर दें, तथा उसमें आवश्यकतानुसार थोड़ा-थोड़ा गोबर का रस डालते जाये, इस प्रकार चूल्हे पर हाँडी को रख कर दो प्रहर तक पकायें। पश्चात् स्वांग-शीतल होने पर राख हटा कर, ताम्र की कटोरी सहित दवा को निकालकर खरल में डाल कर महीन पीस कर कठूपर, चित्रक, त्रिफला, अमलतास, वायविडंग, बाकुची-बीज इनमे पृथक् -पृथक् क्वाथ से एक-एक दिन भावना देकर, घोंटकर, सुखा कर, पीस कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक दवा को खैर के क्वाथ में समान भाग वाकुची चूर्ण डाल कर गाढ़ा होने तक पका कर इसमें से ३ माशा लेकर इसके साथ खायें तथा ऊपर से थोड़ा अर्क-दुग्ध या त्रिफला-क्वाथ पीवें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से ३ दिन या सात दिन में कुष्ठ पर स्फोट (छाला) पड़ता (उठता) है। इस छाले पर नीले पंचांग गुञ्जा, कासीस, धतुरा, हंसपादिका, हुलहुल, अम्लपर्णी इनको समान भाग लेकर जल से पीस कर एक सप्ताह तक बारबार इस लेप को लगाते रहें। स्फोट शान्त होने तक लगाते रहें। श्वेत कुष्ठ को नष्ट करने के लिये यह अतीव श्रेष्ठ किन्तु उग्र प्रयोग हैं।

नोट- इस प्रयोग के उग्र होने के कारण यह कुष्ठ स्थान पर स्फोट (फफोला) उत्पन्न करता है। इन स्फोटों में कुष्ठकारक दोष और दूष्य दूषित जल के रूप में होते हैं जो कि स्फोटों के फूट जाने पर शरीर से बाहर निकल जाते हैं और विकार नष्ट हो जाता है किन्तु इन स्फोटों के निकलने पर इनमें बड़ी जलन एवं खुजलाहट होती है, जिसकी वेदना से रोगी कष्ट-असहिष्णु हुआ तो घबरा जाता है, ऐसी स्थिति में उपरोक्त दवाओं का लेप लगाने से शान्ति मिलती है। जहाँ तक हो सके यह रस कष्ट-सहिष्णू दृढ़ प्रकृति के लोगों को ही सेवन करना चाहिए। यह रस ३ या ७ दिन तक प्रतिदिन केवल एक बार ही सेवन कराया जाता है। स्फोट उत्पन्न होने पर इसका प्रयोग अवश्य बन्द कर देना चाहिए।

उन्मत्त रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, काली मिर्च प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना लें। फिर सोंठ, पीपल और काली मिर्च को कूट-कपड़छन चूर्ण बना कर कज्जली में मिलाकर धतूरे के पत्तों के रस में १ दिन मर्दन कर शुष्क करके रख लें। -रससंकेत कलिका

गुण और उपयोग- यह औषध खाने की नहीं है, नाक में नस्य के समान सूंघने की है। सन्निपात ज्वर में संज्ञाहीन (बेसुध) होने पर तथा तन्द्रा अर्थात् आँख की झँपझपी होने पर और अपस्मार, मूर्च्छा आदि रोगों में संज्ञाहीन हो जाने पर इस नस्य के प्रयोग से लाभ होता है।

उपदंशकुठार रस

कंकुष्ठ (मूर्दासंग), कूठ दोनों एक-एक तोला लें तथा शुद्ध तूतिया आधा तोला, तीनों को खरल में पीसकर अदरक के रस के साथ घोंटे। गोली बनाने योग्य होने पर एक-एक रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान-नए एवं पुराने उपदंश रोग को नष्ट करने में इसका उपयोग किया जाता है। इसके एक या दो सप्ताह सेवन करने से ही रोग ठीक हो जाता है। विकार अधिक उग्र रूप में हो तो तीन या चार सप्ताह तक भी सेवन किया जा सकता है।

सूचना- इसके प्रयोग काल में मीठे और खट्टे पदार्थ, मांस, दूध, कुष्माण्ड (कुम्हडा) का सेवन नहीं करना चाहिए। कुछ चिकित्सकों का मत है कि इसके सेवन में तूतिया के कारण किसी को वमन हो तो उस रोगी को आम का अचार या नींबू खिलाना चाहिए इससे तुत्थ की वमन कराने की शक्ति कम हो जाती है।

उन्मादगजकेशरी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनशिल और धतूरे के बीज समान भाग लेकर चूर्ण करके बच के क्वाथ की और ब्राह्मी रस की ७-७ भावना देकर रखें। -र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती, घृत के साथ मधु अथवा पान के रस से दें।

गुण और उपयोग- यह वातादि दोष (त्रिदोष) जन्य उन्माद (पागलपन), अपस्मार (मृगी) आदि की श्रेष्ठ दवा है। दिमाग की कमजोरी से होने वाले रोग-मूर्च्छा (बेहोशी), हिस्टीरिया, अनिद्रा आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। भूतोन्माद, प्रेत-पिशाचादि जन्य पागलपन के लिये भी इसका प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

यह मन और बुद्धि को प्रसन्न तथा विकसित करता और धातुओं (रस-रक्तादि) की विषमता को दूर कर समता स्थापित करता है। वात-वृद्धि के कारण त्वचा रूक्ष हो गयी हो, तथा शरीर दुबला और श्याम (काला) वर्ण का हो तो इस रसायन के देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है, इससे वात की शान्ति होकर उससे उत्पन्न होनेवाले विकार भी दूर हो जाते हैं। वात-प्रधान रोगों को शान्त करने के लिये ब्राह्मी रस के स्थान पर महारास्नादि क्वाथ के रस से भावना देने से उत्तम और शीघ्र लाभ पहुँचता है।

उन्मादगजांकुश रस

शुद्ध पारा, ४ तोला लेकर उसको धतूरे का पत्र-स्वरस, महाराष्ट्री (पीपल) का स्वरस या क्वाथ और कुचले के क्वाथ के साथ दृढ़ मर्दन कर ऊर्ध्वपातन यन्त्र से उड़ा लें और उसमें ५ तोला ताम्र भस्म मिलाकर जल के साथ मर्दन कर टिकिया बनाकर सुखा लें। पश्चात् इन टिकियों को सिकोरों में रखें, टिकिया के ऊपर नीचे शुद्ध गन्धक २।। तोले का सूक्ष्म चूर्ण एवं बीच में टिकिया रखें और सिकोंरो की सन्धि बन्द करके (कपड़मिट्टी कर) सुखावें फिर लघुपुट में रखकर फूंक दें। इस प्रकार ७ पुट दें। बाद में इस पुट लगाये हुए पारद में शुद्ध गन्धक ५ तोला मिला कज्जली करें, शुद्ध धतूरे का बीज, शुद्ध विष ५-५ तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके मिलावें तथा अभ्रक भस्म ५ तोला मिला, पश्चात् ३ दिन तक जल के साथ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती, गोली बनाकर, सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में दो बार सुबह-शाम विषम भाग घृत और मधु के साथ या ब्राह्मी स्वरस के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से वातज, कफज, पित्तज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, उन्माद रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अपस्मार (मृगी) रोग की यह श्रेष्ठ औषध है एवं मस्तिष्क की दुर्बलता से होनेवाले विकार, मूर्च्छा, बेहोशी, हिस्टीरिया, अनिद्रा आदि रोग नष्ट होते हैं। विशेषतया भूतोन्माद प्रेत-पिशाचादि जनित उन्माद (पागलपन) रोग के लिये उत्कृष्ट औषध है।

एकांगवीर रस

रससिन्दूर, शुद्ध गंधक, कान्त लौह भस्म, बंग भस्म, नाग भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, तीक्ष्ण लौह भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल सब समान भाग लेकर चूर्ण करने योग्य दवाओं को कूटकर कपड़छन चूर्ण कर, भस्मादिक दवा मिला, १ दिन तक खूब घोंटे। फिर उसे त्रिफला, त्रिकुटा, संभालू, चित्रक, भृंगराज, सहजना, कूठ, आँवला, कुचला, आक धतूरा और अदरक के रस में यथाक्रम ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली प्रातः सायं शहद अथवा वातनाशक क्वाथ के साथ देवें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पक्षाघात (लकवा), अर्दितु, गृध्रसी, एकांगवात, अर्धांग वात आदि वात विकारों में अच्छा लाभ होता है, किन्तु पक्षाघात में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। इस रस में कान्त लौह भस्म, नाग भस्म, अभ्रक भस्म आदि उत्तम तथा जल्दी फायदा करने वाली दवाएँ पड़ी हुई हैं, अतः यह दवा वात विकारों में निश्चित रूप से लाभ पहुँचाती है। यह रसायन बहुत तीक्ष्ण है, अतः वात प्रधान या कफ-वातप्रधान विकारों में विशेष लाभदायक है। साथ ही यह बृहण, जीवनीय, विषघ्न और कीटाणुनाशक भी है।

शारीरिक अवयवों (हाथ-पाँव, आँख, कान, नाक आदि) की चेतना शक्ति और इनकी क्रिया (संचालनादि क्रिया) का नष्ट हो जाना ही पक्षाघात कहलाता है। इन दोनों में से किसी एक का ह्रास हो जाने से अपूर्ण पक्षाघात तथा दोनों शक्ति का नाश हो जाने से सम्पूर्ण पक्षाघात कहा जाता है। कई कारणों से होने की वजह से इसके भेद भी अनेक होते हैं, जिनमें सबसे विशेष त्रासदायक उपदंशजन्य होता है, क्योंकि इस पक्षाघात में रक्त और वातवाहिनी दोनों नाड़ियाँ दूषित हो जाती हैं। अतः यह अधिक दिन तक कष्ट देता है। कभी-कभी विष की उग्रता के कारण अथवा शीत वायु का शीत प्रदेश और शीतकाल में ठंडी चीजों का सेवन विशेष करने से भी पक्षाघात हो जाता है। हृदय की निर्बलता के कारण मानसिक दुःख की वेदना सहन करने में असमर्थ मनुष्य को भी यह रोग होता है। ऐसे मनुष्य को जब विशेष मानसिक क्षोभ होता है, तो अकस्मात् सम्पूर्ण शरीर की वातवाहिनी और रक्तवाहिनी नाड़ियाँ दूषित हो जाती हैं और उनमें दूषित रक्त-संचय होने के कारण पक्षाघात हो जाता है। रक्त संचय की अधिकता से रक्तवाहिनी नाड़िया उसका भार वहन करने में असमर्थ हो जाती हैं। अतः वे नाड़ियाँ फूट जाती हैं और उनमें से रक्तस्राव होने लगता है।

पक्षाघात की उत्पत्ति में जैसे साधारणतया इसके दो कारण (चेतना शक्ति का ह्रास तथा उसकी क्रिया का नाश होना) होते हैं। इसी तरह उसकी चिकित्सा में भी दो भेद होते हैं, एक तो विकृत रक्त का सुधारना और दूसरा दूषित रक्तवाहिनी नाड़ी के घावों को पूर्ण करना। ऐसी दशा में आयुर्वेदोक्त दूषित रक्त का सुधार करने वाली प्रसिद्ध दवाइयाँ जैसे शुद्ध शिलाजीत, ताप्यादि लौह, गुग्गुल, स्वर्णमाक्षिक भस्म आदि के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता हैं, जिससे रोगी को पुनः कष्ट होने लगता है। अतः इन झटकों को दूर करने के लिये अर्थात् स्थायी रूप से रोग निवृत्ति के लिये इसका उपाय करना चाहिए। यह कार्य तभी हो सकता है, जब दूषित वायु का सुधार होगा, क्योंकि रक्तसंचालन क्रिया वायु के ऊपर निर्भर हैं, वायु जितनी तीव्र गति से उसे संचालित करता है, वह (रक्त) उतने जोरों से चलता है। अतः यदि वायु की गति में वृद्धि हो गयी हो तो उसे शान्त कर अपनी अवधि के अन्दर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वायु अपनी गति पर आ जायेगा तो रक्त की गति भी मर्यादित हो जायेगी। यह प्रकृति सिद्ध बात है, क्योंकि इसका प्रभाव खासकर वातवाहिनी नाड़ी पर होता है। अतः यह उत्तेजित वायु को शान्त कर देता है तथा दूषित रक्त को भी सुधारता है। हृदय को बलवान बनाना भी इसका एक प्रधान कार्य है।

धनुर्वात- शरीर के किसी भी भाग में घाव हो जाय, और वह अधिक दिनों तक बहता ही रहे, उसकी चिकित्सा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाय, तो धनुर्वात के उत्पादक कीटाणुओं का प्रवेश उसके द्वारा हो जाता है। ये कीटाणु रक्तवाहिनी और स्नायुस्थित वायु को दूषित कर शरीर को नवा (टेढ़ा कर) देते हैं। इसे ही धनुर्वात कहते हैं। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में बार-बार झटके आते रहते हैं। ये झटके इतने जोर के आते हैं कि रोगी की आँखें मिच जाती हैं। कभी-कभी दर्द के मारे बेहोशी भी हो जाती है, दाँती बंध जाती हैं इत्यादि भयंकर लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। इसकी उग्रावस्था में कालकूट रस से बहुत लाभ होता है, किन्तु जब उग्रावस्था शान्त हो जाय तब एकांगवीर रस का सेवन करना उपयोगी है। -औ.गु.ध.शा.

कनकसुंदर रस

शुद्ध गन्धक, शुद्ध सिंगरफ, शुद्ध सुहागा, शुद्ध विष (बच्छनाग), काली मिर्च, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध धतूरे के बीज समान भाग लेकर भाँग के रस से एक प्रहर मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें-यो.चि.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली दिन में २ बार जल, मट्ठा या सौंफ के अर्क से दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन अतिसार, संग्रहणी और ज्वरातिसार में विशेष उपयोगी है। छोटे-छोटे बच्चों को दाँत निकलने के समय जब पतले दस्त होने लगते हैं, उस अवस्था के लिये यह बहुत श्रेष्ठ दवा है। यह अग्नि-दीपक और वेदनाशामक है। उष्णवीर्य होने के कारण पित्त प्रधान रोगों में इसका उपयोग किसी सौम्य औषध के साथ करना चाहिए। संग्रहणी और अतिसार में यदि आम दोष न हो, तो इसका उपयोग करना अच्छा है। इस रस के द्वारा शरीर स्थित वेदना दूर होती है और पाचक पित्त पर्याप्त मात्रा में बनता है।

छोटे-छोटे बच्चों के दाँत निकलते समय पतले दस्त होने लगते हैं, परन्तु यदि इसमें वात विशेष प्रकुपित हो जाता है, तो बच्चे की परेशानी बढ़ जाती है। इसमें-पतले और अपचित दस्त होने लगते हैं, दस्त में दूध फटा हुआ तथा छीछलेदार निकलता है। दस्त पीला और पानी-सा होता है। बच्चा दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता जाता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। अधिक समय तक रोता ही रहता तथा एक जगह स्थिर न रहकर घूमने की विशेष इच्छा हो जाती है। ऐसा बच्चा घूमने से बड़ा खुश रहता है। बच्चा बार-बार मसूढ़े को दबाता रहता है और उसे नींद बहुत कम आती है। आँखों की पलकें सूजी हुई रहती हैं तथा थोड़ा बुखार भी हो जाता है, ऐसी दशा में कनकसुंदर रस मधु में मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह रसायन वातशामक है, अतएव यह वात को शमन कर देता है, फिर इसके उपद्रव धीरे-धीरे अपने-आप शान्त हो जाते हैं।

आँव मिश्रित संग्रहणी और ग्रहणी में आम को पचाने के लिये प्रथम दो-एक रोज लंघन कराने के बाद ही इसका प्रयोग करना चाहिए। दस्त बार-बार और आँव मिश्रित थोड़ा रक्त के साथ गिरना, दस्त के समय पेट में विशेष कर आँतों में मरोड़ जैसी वेदना होना, यह वेदना ज्यादा जोर से छींकने पर कम मालूम होना प्रभूति लक्षणों में कुछ वैद्य अफीमवाली दवा देकर उस वेदना का शमन करने की निरर्थक चेष्टा करते हैं। अफीम स्तम्भक होने की वजह से आँतों में स्थित सूक्ष्म (छोटी) मांस-पेशियाँ संकुचित हो आँव और दूषित रक्त को रोक देती हैं, जिससे दस्त में तो कमी पड़ जाती किन्तु यह दूषित रुका हुआ आँव और मल अवसर पाकर बहुत उग्ररूप धारण कर विशेष कष्ट देता है। अत: अफीमवाली दवा न देकर कनकसुंदर रस देने से विशेष लाभ होता है, क्योकि इसमें भाँग का रस तथा धतूरे के बीज पड़े हुए हैं। ये दोनो वात-नाशक तथा पीड़ा नाशक हैं। अत: ये दोनों कार्य साथ-साथ ही हो जाते हैं।

वातातिसार में- दस्त बार-बार और थोड़े होते हों, दस्त में फेन भी आवे और आँव मिला हुआ दस्त हो, तो वातातिसार समझना चाहिए। अतिसार में प्रधानतया आँतों की श्लैष्मिक कलाओं में से स्राव होता है। ऐसी दशा में अफीम मिश्रित स्तम्भक औषधियाँ देने से आँव रुक जाता है, किन्तु कुछ दिनों के बाद फिर वह प्रकुपित होकर अतिसार उत्पन्न कर देता हैं। अतएव केवल दस्त बन्द करने वाली दवा का प्रयोग न कर स्राव को भी जो रोक दे ऐसी दवा का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिये 'कनकसुदंर रस' बहुत उपयुक्त दवा है, क्योंकि इसमें धतूरे के बीज

पड़े हुए हैं, जो स्राव को कम करने वाले हैं और भाँग वात को शमन करते हुए दस्तों को भी कम कर देती है। अतः इसका प्रयोग करना उत्तम है।

किसी गरिष्ठ (वायुकारक) पदार्थ के भोजन कर लेने से पेट फूल जाता हो तथा जलन के साथ डकारें आती हों और पतले दस्त भी लगते हों, कुछ-कुछ बुखार भी हो जाया करता हो, तब आमजन्य विकार को पचा देता तथा दस्त भी कम हो जाते हैं।

अग्निमांद्य- पाचक पित्त की कमी के कारण मन्दाग्नि हो जाती है और खायी हुई चीजें अपचित रूप में ही आमाशय में पड़ी रह जाती हैं। आमाशय निर्बल एवं शिथिल हो अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। पाचक पित्त की निर्बलता के कारण आमाशय, पित्ताशय और अन्याशय कमजोर हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अपचित (बिना पचे हुए) दस्त का होना प्रारम्भ हो जाता है, ऐसी स्थिति में कनकसुंदर रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। -औ.गु.ध.शा.

कपूर रस (कर्पूरादि बटी)

कपूर, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अफीम, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजव, शुद्ध सुहागा प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम कपूर और अफीम को जल के साथ घोंटे। उनके अच्छी तरह मिल जाने पर अन्य वस्तुओं का सूक्ष्म कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर जल से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। -सि.यों.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली जल अथवा शहद या अनार के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन कपूर और हिंगुल तथा अफीम के मिश्रण के कारण अतिसार में अच्छा लाभ करता है। पेचिश में दही के साथ देने से लाभ होता हैं, किन्तु इसके देने से पहले एरण्ड तैल से पेट का आँव निकाल दें। आँव रहित दस्तों और खूनी दस्तों में इसका कार्य अच्छा होता हैं। संग्रहणी में भी कपूर रस का मिश्रण हितकर होता है। हैजा में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है। कपूर और अफीम के मिश्रण होने की वजह से दस्त और वमन दोनों दूर हो जाते हैं। पित्तातिसार में यह विशेष लाभदायक है।

संग्रहणी रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है, किन्तु वातज और पित्तज संग्रहणी में यह फायदा करता है। वात-जन्य संग्रहणी में वात प्रकुपित होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है जिससे अपचन और खट्टी डकारें आना, मुँह और कण्ठ में जलन, कमजोरी, आँखों के सामने अन्धकार छा जाना, पेट में दर्द, सन्धि (जोड़ों) में दर्द, हृदय निर्बल पड़ जाना, अरूचि, मुँह का स्वाद फीका हो जाना, खाना थोड़ा-सा भी खाने के बाद पेट में दर्द, दस्त पतला और थोड़ा-थोड़ा बार-बार होना, संडास में देर तक बैठे रहना, दस्त की हाजत बराबर बनी रहे- ऐसी हालत में कर्पूर रस के प्रयोग से विशेष और शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इसमें अफीम वेदना को दूर करती और जायफल आँतों में ग्राहक-शक्ति उत्पन्न कर दस्त रोकने की क्षमता उत्पन्न करता है, फिर धीरे-धीरे रोग अच्छा हो जाता है। इसी तरह पैत्तिक संग्रहणी में भी इसका प्रयोग किया जाता है।- औ.गु. ध.शा.

कफकुठार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, लौह भस्म, ताम्र भस्म सब बराबर लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर लौह भस्म और ताम्र भस्म को मिलायें तथा

काष्ठौषधियों को कूटकर -कपड़छन चूर्ण कर कज्जली के साथ मिला छोटी कटेली के फलों के रस, कुटकी और धतूरे के पत्तों के स्वरस की भावना देकर घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली पान से रस और मधु के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रस अत्यंत क्षीण है। अत: पित्त से उत्पन्न होने वाले रोग में इसका प्रयोग किसी सौम्य औषध के साथ करना चाहिए।

कफ विकार में- छाती में कफ संचय होकर खाँसी उत्पन्न हो गयी हो या खाँसी के साथ कफ कम निकलता हो, दाती पर कुछ बोझ-सा मालूम पड़े, खाँसने पर छाती में दर्द हो, साँस लेने में **कष्ट** हो, ऐसी दशा में कफ को पिघला कर बाहर निकालने के लिये कफकुठार रस का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इनमें लौह भस्म होने से कफ पिघल कर निकलने लगता है, श्वासनली के साफ हो जाने के कारण श्वासोच्छवास लेने में भी कष्ट नहीं होता है।

इसी तरह-जब कफ विशेष प्रकुपित होकर खाँसी उत्पन्न कर देता है, साथ में ज्वर और खाँसी के साथ कफ भी निकलता है और नवीन कफ भी बनता रहता है, जिससे ज्वर और खाँसी नहीं रुकती। ऐसी बढ़ी हुई खाँसी को दबाने के लिये कुछ वैद्य अफीम का प्रयोग कर बैठते हैं, किन्तु इससे सिवाय नुकान के लाभ कुछ भी नहीं होता, क्योकि अफीम स्तम्भक है। अत: कुछ देर के लिये खाँसी को बन्द तो कर देता है, किन्तु यह संचित और दूषित कफ पुन: प्रकुपित हो खाँसी और ज्वर को उत्पन्न कर देता है। ऐसी अवस्था में कफकुठार रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि इसमें धतूरे के रस के अतिरिक्त कुटकी और कटेली के फलों के रस की भावना देने से यह बढ़े हुए कफ का स्राव करता है और श्वास-कष्ट को भी शमन करता है।

कफ ज्वर में- कफ प्रकोप के कारण मन्द-मन्द ज्वर होना, नाड़ी की गति भी मन्द हो, शरीर गीला-सा बना रहना, भूख मन्द हो जाना, निद्रा ज्यादा आना, पसीना चलते रहना, मुँह भारी मालूम पड़ना, आवाज में भारीपन रहना, पेशाब स्वच्छ तथा साफ न होना, आलस्य बना रहना, खाँसी के वेग बढ़ने के साथ-साथ छाती में दर्द बढ़ते रहना, कफ निकलने पर वेदना कम होना- ऐसी स्थिति में कफ कुठार रस उपयोग करने से अच्छा लाभ होता हैं। -औ.गु.ध.शा.

कफकेतु रस

शंख भस्म, पीपल, सुहागे की खील, शुद्ध वत्सनाभ-प्रत्येक १-१ तोला लेकर एकत्र कर खरल करके, अदरक के रस की तीन भावना देकर १-१ रत्ती की गोली बना सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान-१से २ गोली चार-चार घण्टे के बाद अदरक-रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- कफजन्य बुखार, खाँसी, श्वास और जुकाम में इस दवा से बहुत लाभ होता है। कफ के विकारो में सिरदर्द और कण्ठ में कफ जमा होने पर इसका सेवन करना बहुत उपकारी है।

कफचिन्तामणि रस

रससिन्दूर ३ तोला, शुद्ध हिंगुल, सुहागे की खील, इन्द्रजौ, भाँग के बीज और काली-मिर्च प्रत्येक १-१ तोला लेकर अदरक के रस में एक प्रहर तक घोंटकर, चने के बराबर (१-१ रत्ती की)गोलियाँ बना-सुखा कर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ गोली तक अदरक रस तथा मधु से या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से वात और कफ के रोग नष्ट होते हैं। कफ की विशेषता होने पर अन्य औषधियों की अपेक्षा यह विशेष फायदा करता है, क्योंकि इसमें रससिन्दूर है। अत: यह कफ को शमन करता है। यह वाजीकरण तथा पौष्टिक रसायन भी है।

कल्पतरु रस

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध मीठा तेलिया १ तोला, शुद्ध मैनशिल १ तोला, विमल (रूपामक्खी) भस्म १ तोला, सुहागा की खील १ तोला, सोंठ, पीपल २-२ तोला तथा कालीमिर्च १० तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना फिर अन्य दवाओं को कूट, कपडछन चूर्ण कर कज्जली में मिला, आठ घण्टे तक घोंटे तब सब दवा एक रस हो जाय तब शीशी में भरकर रख लें।-भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, अदरक-रस और मधु के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- यह रस खाने और सूँघने दोनों कामों में आता है। इस रसायन के सेवन से वात-कफ-ज्वर अर्थात् दूषित वायु और कफ से उत्पन्न बुखार, खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) एवं बुखार में अंगों का जकड़ना तथा दर्द होना, मुख और नाक से लार और पानी टपकना, अग्निमांद्य, अरूचि आदि नष्ट हो जाते हैं। इसका नस्य देने से कफ और वायु से उत्पन्न सिरदर्द दूर होता है तथा मूर्च्छा (बेहोशी), प्रलाप, छींक की रुकावट आदि में भी बहुत लाभ होता है। ज्वर पीड़ित रोगी की छाती में कफ भरा हो, श्वास प्रकोप, घबराहट आदि लक्षण हों तो इस रस के सेवन करने से उत्तम लाभ होता है।

कल्याणसुन्दर रस

रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, चाँदी भस्म, सोना भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध सिंगरफ- ये सब चीजें समान भाग लेकर चित्रक के क्वाथ में घोंटें। फिर हस्तिशुण्डी के रस की सात भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली प्रात: सायं गरम जल के साथ दें। फुफ्फुस विकारों में मधु और अदरक रस के साथ, धातु क्षीणता में धारोष्ण दूध के साथ तथा हृदय और मस्तिष्क के रोगों में सेव या आँवले के मुरब्बे के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- स्वर्ण, अभ्रक आदि उत्कृष्ट उत्पादानों के कारण यह उत्तम रसायन हैं। फेफड़े के विकारों पर इस रसायन का बहुत अच्छा प्रभाव होता है। न्यूमोनिया और उरस्तोय (फुफ्फुसावरण में प्रदाह होकर जल भर जाना) में संचित कफ और जल का शोषण करके यह सब उपद्रवों को नष्ट करता है। यह हृदय और मस्तिष्क को बल देता है तथा इसके विकार, शूल, भ्रम, मूर्च्छा, संन्यास आदि को दूर करता है। सुखी खाँसी, श्वास, अरुचि, मन्दाग्नि तथा मूत्रपिण्ड के विकार भी इससे नष्ट हो जाते हैं। प्रमेह, नपुंसकता और बलवृद्धि के लिये भी यह अच्छी दवा है। राजयक्ष्मा में बढ़े हुए कफ के स्रोतों के अवरुद्ध हो जाने पर इस रसायन के सेवन करने से कफ का शोषण कर स्रोतों को साफ कर फुफ्फुसों को बल प्रदान कर, रोग को निर्मूल कर देता है।

कस्तूरीभैरव रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, जायफल, जावित्री, कालीमिर्च, छोटी पीपल, कस्तूरी और कपूर इन सबको समभाग लें। पहले, पान के रस में शुद्ध हिंगुल और बच्छनाग का मर्दन करें। बाद में अन्य दवाओं का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला पान के रस में

मर्दन करें गोली बनाये योग्य हो जाने पर कस्तूरी और कपूर मिला घोंट कर १-१ रत्ती की गोली बना, छाया में सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं.तथा रसामृत

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली पान के रस अदरक के रस और मधु में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसका उपयोग वात ज्वर, कफज्वर और वात-प्रधान ज्वर तथा सन्निपात ज्वर में करें। सन्निपात ज्वर में जब पसीना अधिक आकर शरीर ठण्डा होने लगे, हाथ-पाँव ठण्डे हों और नाड़ी क्षीण होने लगे, तब इससे विशेष लाभ होता है। इस योग में यदि बच्छनाक के स्थान में शुद्ध कुचला और अम्बर एक-एक भाग डालकर योग तैयार करें, तो यह नाड़ी एवं हृदय की दुर्बलता और वात-रोगों में विशेष लाभ देता है और वाजीकर गुणयुक्त होता है।

वात-श्लैष्मिक या पित्त-श्लैष्मिक ज्वर की प्रथमावस्था में-खाँसी, सर्वांग में वेदना और ज्वर के तीव्र होने पर इसका सेवन कराया जाता है। सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था में जब उपद्रव कम हो, रोग दु:साध्य न हो गया हो, तन्द्रा संधियों में वेदना, पसलियों में दर्द, खाँसी आदि लक्षण हों, तो विशेष उपकार होता है। यह मस्तिष्क की ओर रक्त-संचार को अधिक नहीं होने देता है, प्रसूत ज्वर में भी यह अच्छा काम करता है। यह रसायन होने के कारण कमजोरी को दूर कर शरीर में बल और वीर्य की वृद्धि करता है। पैत्तिक विकार में प्रवाल चन्द्रपुटी, मुक्ताशुक्ति पिष्टी आदि किसी सौम्य औषध के साथ देना चाहिए। मौक्तिक ज्वर (Typhoid Fever)में प्रारंभ से अन्त तक सभी अवस्थाओं में इसे सेवन कराते रहने से रोग निरुपद्रव रूप से अपनी अवधि के अनुसार ठीक हो जाता है।

कस्तूरीभैरव रस (बृहत्)

कस्तूरी, कपूर, ताम्रभस्म, धाय के फूल, केवाँच के बीज, रौप्य भस्म, सुवर्ण भस्म, मोतीपिष्टी या भस्म, प्रवाल भस्म, लौह भस्म, पाठा, वायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, खस, शुद्ध हरताल या माणिक्य रस, अभ्रक रस और आँवला ये सब द्रव्य समभाग लें। पहले वनस्पतियों का सूक्ष्म (कपड़छन) चूर्ण कर, भस्म में मिला, आक के पत्तों के रस से दो दिन मर्दन करें। पीछे उसमें कस्तूरी और कपूर डालकर एक दिन आक के पत्तों के रस से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना कर छाया में सुखा लें। -भै.र.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ गोली, अदरक का रस या पान के रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रस सोना, मोती, प्रवाल, कस्तूरी आदि गुणकारी बहुमूल्य औषधियों के योग से बनता है। अत: यह स्वल्प कस्तूरी भैरव रस से विशेष गुणकारी है। इस रस का सब प्रकार के सन्निपात ज्वरों में अधिक पसीना, शीतांग (शरीर ठण्डा हो जाना), प्रलाप (अब-बक बकना), तन्द्रा, नाड़ी की क्षीणता आदि लक्षणों में दोषों का बलाबल देख कर अदरक का रस, पान का रस और मधु इनमें से किसी एक के साथ दें। सूतिकाज्वर में देवदार्वादि क्वाथ के साथ दें। विषम ज्वर में अदरक रस और मधु के साथ देना चाहिए।

नवीन वात-पैत्तिक, वात-श्लैष्मिक या पित्त-कफ ज्वर यदि क्रमशः प्रबल होकर १०४ या १०५ डिग्री तक पहुँच जाय और उसमें तन्द्रा, कास, प्यास और अतिसार आदि लक्षण दिखाई दें, ज्वर का विराम न होकर ज्वर कष्टसाध्यावस्था में पहुँच रहा हो तो इसका प्रयोग करना चाहिए। तिजारा, चौथिया प्रभृति मलेरिया ज्वर जब दीर्घकाल होकर पूरा शान्त होने के बाद या पूरा शान्त

हुआ हो और उसमें अतिसार, खाँसी आदि उपद्रव और तापांश अचानक बढ़ जाय तो इस रसायन का सेवन करना चाहिए।

शीतांग, सन्निपात आदि ज्वरों में भी असह्य दाह, पसीना, खाँसी, तन्द्रा, पार्श्वशूल, नाड़ी क्षीण होना, नाड़ी अपना स्थान छोड़ दें, ज्ञानहीनता, कम्प, देह शीतल हो जाना प्रभृति कष्टसाध्य लक्षण होने पर और कभी ज्वर का तापमान १०४ से १०५ तक हो अथवा एकदम तापमान में गिरावट (९५-९६ तक आ जाय) हो जाय अथवा निमोनिया या प्लूरिसी के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हों तो इस रसायन का प्रयोग दिन-रात में तीन-चार बार करें, परन्तु यदि रक्त का संचार मस्तिष्क की ओर अधिक हो रहा हो और उसी के कारण तापांश अत्यंत बढ़ा हुआ हो, मूर्च्छा हो तथा श्वास भी प्रबल हो तो इसका प्रयोग न करें।

द्विदोषज या मलेरिया और सन्निपात ज्वरों की विरामावस्था में जब लक्षण या उपद्रव कम हो रहे हों और ज्वर प्रतिदिन नियत समय पर बढ़ जाता हो अथवा किसी भी समय पूरा न हटता हो, भूख न लगती हो तो दिन में सिर्फ एक बार इसका प्रयोग करें।

इसी प्रकार सतत आदि-धातुस्थ विषम ज्वरों मे भी अथवा जब प्लीहा-वृद्धि के कारण होनेवाला ज्वर स्वभावत: ही या किसी अपथ्य के कारण नवज्वर की तरह बढ़ जाय या दीर्घकालिक हो जाय और कभी ज्वर उतरता न हो तो सर्वज्वरहर लौह बृहत् के साथ इस रसायन का सेवन करावे। सूतिकारोग की तरुणावस्था में भी पूर्ववत ज्वराधिक्य तथा कास आदि उपद्रव होने पर अल्प मात्रा में इसका सेवन कराया जा सकता है।

विसूचिका में भी जब रोगी को श्वेत रंग का वमन और दस्त हो रहें हो, मूत्रावरोध हो मुख का वर्ण नीला और आँखें अन्दर को धँस गई हों, नाड़ी क्षीण हो गई हो, तो इस रसायन के सेवन कराने से लाभ होता है। मौक्तिक ज्वर (Typhoid Fever) में प्रारम्भ से ही इसे लौंग के पानी के साथ सेवन कराते रहने से रोग निरुपद्रव रूप से रहते हुए अपनी अवधि पर ठीक हो जाता है। इस रोग की यह सुप्रसिद्ध दवा है।

कस्तूरीभूषण रस

रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, सुहागे की खील, लता कस्तूरी, सौंठ, पीपल, कालीमिर्च, दन्ती की जड़, भाँग के बीज, कपूर प्रत्येक समभाव लेवें। प्रथम काष्ठौषधियों को कूट, कपड़छन चूर्ण बना लें, फिर भस्मों में मिलाकर अदरक रस की सात भावनाएँ दें। बाद में अदरक के रस में लता कस्तूरी और कपूर को खूब घोंटकर दवा में मिलाकर, कुछ देर तक घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें। -भै.र. (विनोदलाल सेन)

वक्तव्य- कालीमिर्च को विशेष विधि से धोकर उन्हें सफेद वर्ण की बना ली जाती है-ये सफेद मिर्च के नाम से किराना विक्रेताओं के यहाँ मिलती है। काली मिर्च के स्थान पर इनको डालकर बनाने से यह योग रंग-रूप तथा गुणों में भी अच्छा बनता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली, सुबह-शाम अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- कफ वातजन्य रोग, मन्दाग्नि, पित्तकफाधिक्य रोग त्रिदोषज घोर कास, श्वास, क्षय, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, विषम ज्वर प्रभृति रोगों का नाशक है।

श्लैष्मिक या वातश्लैष्मिक की (Influeza) प्रथमावस्था में तन्द्रा, कास, पार्श्वशूल आदि लक्षण हों, ज्वरताप अधिक हो तो इसका सेवन करना चाहिए। इसी प्रकार श्लेष्मप्रधान या वातश्लेष्मप्रधान सन्निपात ज्वरों की प्रथमावस्था में कास, तन्द्रा, सिर-दर्द, सर्वांगशूल और पार्श्वशूल आदि लक्षण हों, ज्वर १-३ डिग्री से ऊपर हो तो इसका सेवन करना चाहिए। त्रिदोष (सन्निपात ज्वर) में जिस समय हाथ-पैर ठण्डे हो रहे हों या नाड़ी की गति क्षीण होती जा रही हो, उस समय कस्तूरीभूषण रस देने से नाड़ी की गति ठीक हो जाती है और हाथ-पैर भी गरम होने लगते हैं। सन्निपात ज्वर में अवस्थानुसार दूसरी औषधियों का तो प्रयोग करते ही रहना चाहिए, किन्तु साथ ही साथ कस्तूरीभूषण रस का प्रयोग करते रहने से सन्निपात ज्वर में नये उपद्रव नहीं बढ़ पाते हैं। शोथयुक्त विषम ज्वर में और कास-श्वास में भी इसके सेवन से लाभ होता है। सतत ज्वर अर्थात् मोतीझरा (Typhoid) में लौंग के पानी के साथ सुबह-शाम सेवन कराने से दोषों का पाचन होकर ज्वर ठीक हो जाता है। पुनराक्रमण की सम्भावना भी नहीं रहती है।

क्रव्याद रस

शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला, ताम्र भस्म २ तोला, लौह भस्म २ तोला, शुद्ध टंकण १६ तोला, विड (काला) नमक ८ तोला, काली मिर्च ४० तोला। पहले पारा गन्धक की कज्जली बना, फिर लौह भस्म और ताम्र भस्म डालकर खूब महीन घोंटना चाहिए। इसके बाद पर्पटी की तरह गला कर एरण्ड के पत्तों पर पर्पटी बना और इस पर्पटी का चूर्ण बना एक लोहे के पात्र में डालकर उसमें ४ सेर जम्बीरी नींबू का रस और डाल दें। यदि पात्र कलई किया हुआ या स्टेनलेस स्टील का बना हो तो और अच्छा। फिर इसको मन्द-मन्द आँच से जलायें। जब गाढ़ा हो जाय तब इसमें पीपल, पीपला-मूल, चव्य चित्रक और सोंठ के क्वाथ से पचास भावना दें, फिर अम्लवेत के क्वाथ से भी पचास भावना देकर सुखाकर रख लें। सूखने पर भूना सुहागा (शुद्ध टंकण), विडनमक और काली मिर्च कूट कपड़छन चूर्ण बना इसमें मिला दें। बाद में चणकाम्ल (चना के क्षार का पानी) की सात भावना देकर सुखा लें, शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें, अथवा २-२ रत्ती की गोली बनाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ गोली तक सेंधा नमक मिला हुआ मट्ठा (छाछ) या नींबू का रस अथवा साधारण जल से भोजनोत्तर देना चाहिए।

गुण और उपयोग- अत्यंत गरिष्ठ भोजन (देर से पचनेवाले) गेहूँ आदि, घृत से बने भोज्य पदार्थ अति मात्रा में खाये हों तो इसकी एक गोली नमक मिली हुई छाछ (मट्ठा) के साथ सेवन करने से खाया हुआ गरिष्ठ भोजन शीघ्र ही पच जाता है तथा अग्नि पुनः प्रदीप्त हो जाती है और भूख भी लगती है।

यह रस संचित आँव को नष्ट करता तथा अनुपयुक्त उदर की वृद्धि (निकली हुई तोंद) और शरीर की स्थूलता को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह अर्श, शूल, गुल्म रोग, प्लीहा, ग्रहणी, रक्तस्राव, वातिक-ग्रन्थि आदि रोगों का नाशक है।

आम और कफ को पचाकर पाचक पित्त को यह सबल बना देता है। अजीर्ण, हैजा, गुल्म, अफरा और अरुचि में यह बहुत जल्दी लाभ करता है। भूख की शिकायत (कमी) रहनेवालों के लिए हितकर दवा है। जलोदर में भी अन्य दवाओं के साथ इसका मिश्रण लाभदायक होता है।

पाचक पित्त की कमजोरी से जठराग्नि मन्द हो जाती है, जिससे खायी हुई चीजें अच्छी तरह नहीं पचती है। क्रमशः आम रस का संचार होने लगता है। आम का संचय विशेष रूप में होने

से आमाजीर्ण, रसशेषाजीर्ण आदि विकारों की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त पेट में दर्द, दस्त में कब्जियत, पतला दस्त होना आदि उपद्रव भी होने लगते हैं। ऐसी अवस्था में क्रव्याद रस को छाछ के साथ देने से दूषित आमरस पच कर बाहर निकल जाता है तथा इससे पाचक पित्त भी बलवान हो जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

अजीर्ण रोग पुराना हो जाने पर कोष्ठ में मल-संचय होने लगता है। इस मल-संचय से दूषित विष की उत्पत्ति होती है और यह विष आँतों में अधिक दिनों तक रह कर समस्त शरीर को दूषित बना देता है, जिससे हैजा, अलसक, विलम्बिका आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे समय में क्रव्याद रस का उपयोग करना चाहिए। क्योंकि यह संचित मल को ढीला करके निकाल देता और पित्त को जागृत करके पाचन क्रिया को सुधार कर इससे होनेवाले उपद्रव को भी रोक देता है।

विषमज्वर- मलेरिया बुखार अधिक दिन तक आने के बाद ज्वर छूटने पर भी प्लीहा बढ़ जाती है। साथ ही अग्नि भी मन्द हो जाती है, ज्वर भीतर-ही-भीतर बना रहता है, शरीर में आलस्य, भारीपन, कोई भी कार्य करने की इच्छा नहीं होना, सिर में भी दर्द बना रहना, रक्ताणुओं की कमी के कारण देह पाण्डुवर्ण का हो जाना, शरीर दुर्बल, अरूचि होना आदि लक्षण हैं। प्लीहा सख्त (कठोर) और बढ़ी हुई मोटी-सी मालूम पड़ती है। ऐसी अवस्था में क्रव्याद रस कुमार्य्यासव या लोहासव के साथ देने से अच्छा लाभ करता है।

कफ प्रधान अर्श (बवासीर) रोग में मस्से मोटे एवं श्वेतवर्ण के होते हैं। उनकी पीड़ा अधिक होती हो, चिपचिपे (लसदार) झागदार दस्त होते हों, एक बार शौच जाने पर पेट में भारीपन एवं गुड़गुड़ाहट और पुनः शौच जाने की शंका बनी रहती हो आदि लक्षणों में इस रस को शुण्ठी चूर्ण और सैंधव नमक मिला मट्ठे के साथ सेवन कराने से बहुत लाभ होता है।

कफाधिक्य के कारण जठराग्नि मन्द होने से ग्रहणी-संग्रहणी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह कफजन्य होने के कारण इसके लक्षण भी कफज ग्रहणी की तरह ही होते हैं। ऐसी अवस्था में दीपन और पाचन औषधि देने की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए क्रव्याद रस गर्म जल के साथ देना अच्छा है।

श्वास रोग- मन्दाग्नि हो जाने की वजह से अजीर्ण हो जाता है, जिससे वायु की वृद्धि हो समूचे पेट में वायु भर जाता है और इस वायु का निस्सरण नीचे से न होकर ऊर्ध्वगामी हो जाता है। जिससे बार-बार डकारें आने लगती हैं। वायु की वृदिध के कारण श्वास की गति में भी तेजी आ जाती है, जिससे श्वास ज्यादा चलने लगती और हृदय निर्बल हो जाता है। फुफ्फुस के आस-पास बलगम (कफ) भर जाने के कारण फुफ्फुस भी बिगड़ जाता है। ऐसी अवस्था में क्रव्याद रस के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। —औ.गु.ध.शा.

कृमिकुठार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, वायविडंग, शुद्ध हींग, इंद्रजौ, वच, कमीला (कम्पिल्लक), करंज बीज को सेंकर निकाला हुआ मगज, पलाश के बीज, अनार के मूल की छाल, सुपारी, डीकामाली, छिला हुआ लहसुन, सोंचर नमक, अजवायन का सत्व-ये सब समान भाग लें, कूट-कपड़छन चूर्ण बना कर खरल में डालकर ग्वारपाठा रस की तीन भावना देकर घुटाई को गोली बनाने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक सुबह-शाम उसके ऊपर से नागरमोथा का क्वाथ पीवें।

गुण और उपयोग- यह रस पेट के कीड़ों को नष्ट करने में बहुत उत्तम गुणकारी है। मधुर पदार्थों का अधिक सेवन करने से बच्चों तथा बड़ों के भी पेट में कीड़े (केंचुवे) पड़ जाते हैं। ये कीड़े लम्बे, चपटे, गोल, आकड़ेदार पतले, सफेद सूत्राकार इत्यादि कई प्रकार के होते हैं। आयुर्वेद में कृमियों की २० जातियाँ बताई गई हैं। ये कीड़ें पेट में उत्पन्न हो जाने पर अन्त्रस्थ रसों का चूषण करते रहते हैं और आँतों में चिपके रहते हैं, इनके कारण ग्लानि, भ्रम, मुख से लार गिरना, पेट तथा गुदा में कैंची से काटने जैसी पीड़ा, कब्ज, आनाह, मल शुष्क होने, अनिद्रा, पाण्डु, शोथ आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इस रस के २१ दिन या आवश्यकतानुसार अधिक समय तक प्रयोग करने से कृमि रोग समूल नष्ट होकर उसके कारण उत्पन्न विकार भी शमन हो जाते हैं। इसके प्रयोग काल में प्रति तीसरे या चौथे दिन रात को सोते समय 'पंचसकार चूर्ण' ३ माशा गरम जल से सेवन करना चाहिए ताकि कोष्ठ शुद्धि होकर मरे हुए कृमि बाहर निकल जायें।

गुण और उपयोग- यह दवा कृमिरोग (पेट के कीड़े पड़ जाने) में बहुत गुणकारी है। बच्चों को विशेष कर यह रोग होता है, जिससे बच्चे पीले पड़ जाते हैं। इस समय, इस दवा का प्रयोग करना चाहिए। पेट में कीड़े पड़ जाने के कारण पेट-दर्द, सिर-दर्द, पाण्डु रोग आदि उपद्रव हो जाते हैं। उनको भी यह शान्त करता है।

पेट में कृमि हों और दस्त भी साफ होता हों, तो ऐसी अवस्था में कृमिकुठार रस के सिर्फ ७ रोज के सेवन से कीड़े मर कर पेट से बाहर निकल जाते हैं। यदि दस्त साफ न होता हो तो, विडंगादि चूर्ण या कबीले का चूर्ण या एरण्ड तैल (कैस्टर आयल) इसमें से किसी एक का प्रयोग करा पहले जुलाब दें। बाद में कृमिकुठार रस देने से शीघ्र फायदा होता है, क्योंकि जुलाब देने से कीड़े कमजोर पड़ जाते और मर भी जाते हैं। जिससे बड़ी सुविधा से बाहर निकल आते हैं। यदि पेट में कृमि अधिक हो गए हों, तो तुरन्त निकालने की कोशिश करें। ऐसी हालत में रात के समय कृमिकुठार १ गोली सेण्टोनीन में मिला कर देना और सुबह कैस्टर आयल (शु. अण्डी के तेल)१० बूंद पाव भर दूध में मिला कर पिला देना भोजन के बाद देते रहने से फिर कृमि रोग सर्वदा के लिये नष्ट होता है।

कृमिमुद्गर रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, अजमोद ३ तोला, वायविडंग ४ तोला, शुद्ध कुचला ५ तोला, ढाक (पलाश) के बीज ६ तोला, लेकर सब को यथा-विधि चूर्ण की एकत्र मिला मर्दन करके रख लें। -र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती शहद के साथ दें, ऊपर से नागरमोथा का क्वाथ पिलावें। इसे ३ दिन तक सेवन करने के बाद चौथे दिन जुलाब लेना चाहिए।

गुण और उपयोग- कृमिमुद्गर रस कृमिकुठार रस से तीक्ष्ण और उग्रवीर्य है। यह कफ-संचय से होने वाले कृमियों को शीघ्र नष्ट करता है। कृमि रोग के कारण उत्पन्न होनेवाले अरुचि, अफरा, वमन, पेट-दर्द आदि लक्षण उत्पन्न होने पर कृमिमुद्गर रस का सेवन करने से बहुत फायदा होता है, क्योंकि कफ से जो कृमि उत्पन्न होते हैं, वे प्राय: आमाशय में ही उत्पन्न होते हैं और यहीं रहते भी हैं। कृमिमुद्गर रस अपनी तीक्ष्णता के कारण कफ को नष्ट कर पित्त को उत्तेजित करता है। जिससे आमाशय के विकार नष्ट हो जाते हैं।

आमाशय में जब कृमि उत्पन्न होते हैं, तो तब आमाशय के चारों तरफ चक्कर लगाया करते हैं। ये कृमि, लाल, नीले, काले, सफेद आदि अनेक रूप के होते हैं। तब इनकी संख्या बढ़ जाती हैं, तो पेट में दर्द, अन्न में अरुचि, भूख नहीं लगना, वमन होना, हिचकी आना आदि लक्षण दोष-वृद्धि होकर प्रकट होते हैं। ऐसे समय में शारीरिक धातुओं की वृद्धि भी नहीं होती, जिससे मनुष्य दुर्बल और कमजोर हो जाता है। फिर अनेक तरह से उपद्रव-खाँसी, जुकाम आदि उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कृमिमुद्गर रस के उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

कोष्ठ (पक्वाशय) में कृमि उत्पन्न होने से दोष-वृद्धि होकर ज्वर, जी मिचलाना, देह में खुजली, कही देह मे खुजलाने से लाल चट्टे पड़ जाना इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में कृमिमुद्गर रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

यह दवा उत्तेजक होने के कारण कभी-कभी नाजुक प्रकृति अथवा उष्ण प्रकृतिवाले रोगी को नुकसान भी कर जाती है। इसका कारण प्रथम तो यह होता है कि जब तक किसी भी दवा को जीवनीय शक्ति की सहायता नहीं मिलती है, गुण नहीं कर सकती। जीवनीय शक्ति की सहायता के लिए कोष्ठ को मजबूत बनाना या उसका शोधन करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि कोष्ठ के अवयवों की निर्बलता के कारण जीवनीय शक्ति का भी ह्रास हो जाता है। अतएव, कृमिघ्न दवा देने के बाद जुलाब देना लिखा है, जिससे कृमिघ्न दवा जुलाब के साथ बाहर निकल जाय और कीड़े भी साथ-साथ नष्ट हो जायें।

वक्तव्य- मूल ग्रंथ पाठ में इसकी मात्रा परिणाम लिखी हैं, किन्तु इसमें कुचला का सम्मिश्रण होने से इतनी मात्रा में बहुत अधिक है एवं विष का प्रभाव भी हो सकता है। अत: २ से ४ रत्ती की मात्रा उचित है।

कामदुधा रस (मौक्तिक युक्त)

मोती पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, मुक्ताशुक्तिपिष्टी, कौड़ी भस्म, शंख भस्म, सोना-गेरु और गिलोय सत्व समान भाग लेकर सब को एकत्र कर खरल करें। जब एक जीव (अच्छी घुटाई) हो जाय तब शीशी में सुरक्षित रख लें।- र.यो.सा.

मात्रा और अनुपान- २ रत्ती जीरे का चूर्ण और मिश्री मिलाकर ज्वरादि में और आँवले के चूर्ण के साथ घृत मिलाकर अम्लपित्त में दें। दाड़िमावलेह अथवा मौसंबी रस के साथ देने से भी बहुत लाभ करता है।

गुण और उपयोग- यह रसायन सौम्य होने से चंचल चित्त, चिन्ता-फिक्र करने वाले, गर्भवती स्त्रियों और बच्चों के लिये अच्छा उपयोगी है। सौम्य होने के कारण इस दवा से कभी गर्मी बढ़ने की सम्भावना नहीं रहती। यह पित्त-विकार, अम्ल-पित्त, चक्कर आना, मस्तम शूल, दिमाग की कमजोरी, मूत्र विकार, मुँह आना, बवासीर में खून गिरना, दाह और जीर्णज्वर, मूर्च्छा, भ्रम, पागलपन, अपस्मार, उन्माद, अर्धांगवायु, काली खाँसी, क्षय, दमा, उरक्षत आदि में उपयोगी है। सभी प्रकार के पित्त विकारों में इसके सेवन से बहुत उत्तम लाभ होता देखा जाता है। महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के चिकित्सक इसका बहुत प्रयोग करते हैं।

यह रसायन शीतवीर्य प्रधान है। अतएव इसका असर रक्तवाहिनी और वातवाहिनी नाड़ी तथा वृक्क (मूत्राशय) पर विशेष होता है। अर्थात् पित्त की वृद्धि से रक्त में गर्मी आकर रक्त की गति में वृद्धि हो जाती है, जिससे रक्त का संचार बहुत तेजी से होने लगता है। इसी तरह वात की वृद्धि होकर शरीर में अनेक तरह के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। मूत्राशय में भी पित्त की तेजी के कारण मूत्रकृच्छ्रादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में इन अवयवों में बहुत जलन होती

है। इस जलन तथा उपद्रव को दूर करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त मस्तिष्क-विकार, आमाशय की निर्बलता तथा सामान्य रक्तस्राव जैसे-गर्मी की वजह से नाक फूटना, मुँह से रक्त आना आदि रक्त पित्तजन्य दोषों की शान्ति के लिए भी इसका प्रयोग करना चाहिए।

किसी भी रोग से मुक्त होने के बाद शरीर में कैल्शियम की कमी हो जाने से कमजोरी आ जाती है। इस रसायन के सेवन से यह कमजोरी दूर हो जाती है और शरीर पुष्ट हो जाता है। अधिक दिन ज्वर रहने से प्लीहा और यकृत इनमें से एक या कभी-कभी दोनों बढ़ जाते हैं, जिससे शरीर में रक्त की कमी, ज्वर, मन्दाग्नि, देह में आलस्य बना रहना, शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाना आदि उपद्रव होने पर कामदुधा रस का प्रयोग करने से बहुत फायदा होता है, क्योंकि इसमें शंख और कौड़ी की भस्म पड़ी हुई है और ये दोनों भस्में अपनी तीक्ष्णता के कारण प्लीहा और यकृत की वृद्धि को रोक देते हैं, तथा मन्दाग्नि दूर कर जठराग्नि को भी प्रदीप्त कर पाचन क्रिया को सुधारती हैं, जिससे रस रक्तादि धातु उचित परिणाम में बनने लगते हैं और शरीर भी नीरोगी एवं पुष्ट हो जाता है।

आजकल मलेरिया रोकने के लिए कुनैन की शर्तिया दवा मानी जाती है। अतएव, कुनैन का प्रयोग भी आँख मुँद कर किया जाता है, परन्तु इस बात पर बहुत ध्यान दिया जाता है कि यदि कुनैन का सेवन विशेष किया जायेगा तो इससे लाभ होने के बजाय अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे-कान से कम सुनाई पड़ना, दृष्टि में अन्तर पड़ जाना, मन्दाग्नि, कमजोरी, भ्रम, मूर्च्छा आदि। इन रोगों को दूर करने के लिए कामदुधा रस का प्रयोग करना अच्छा होता है।

रक्तपित्त में- पित्त प्रकुपित हो जाने से रक्त भी विकृत हो जाता है। फिर रक्तवाहिनियाँ कमजोर होकर जगह-जगह से फूटने लगती हैं और इनमें से रक्त निकलना शुरू हो जाता है। इसमें सम्पूर्ण शरीर में दाह, पित्त की तेजी के कारण चक्कर आना, चक्कर के बाद आँखों के सामने अंधेरा छा जाना, हृदय निर्बल हो जाना, पेशाब जलन के साथ होना, खून बहुत गर्म निकलना, ऐसी दशा में कामदुधा रस, दुर्वा स्वरस अथवा शर्बत अनार के साथ देने से बहुत शीघ्र बहुत लाभ करता है। आँवला, मुरब्बा के साथ भी अच्छा लाभ करता है।

पित्त प्रधान सिर-दर्द में- रोगी बहुत तेज स्वभाव वाला हो जाता है। छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा हो जाना, आँखे लाल हो जाना, सिर में दाह होना, ज्यादा जोर से हँसना, बोलना एवं किसी की बात अच्छी न लगना, विचार-शक्ति का ह्रास हो जाना ऐसी अवस्था में कामदुधा रस से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह पित्त की वृद्धि को शान्त कर साम्यावस्था में ला देता है, फिर इसके उपद्रव भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।

धूप में अधिक चलने, आग के पास अधिक बैठने, ज्यादा मानसिक श्रम करने आदि कारणों से नेत्र कमजोर हो जाते हैं, साथ ही सिर में दर्द भी होने लगता है। विचार शक्ति का ह्रास हो जाता है और याददाश्त में भी कमी हो जाती है, ऐसी अवस्था में कामदुधा रस मक्खन या धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से अच्छा असर दिखलाता है।

अम्लपित्त में- जब आमाशयस्थ पित्त प्रकुपित हो जाता है, तो जलन के साथ खट्टी डकारें आने लगती हैं और पित्त विदग्ध हो जाने से (जल जाने से)कड़ुवा वमन होने लगता है। ऐसी अवस्था में कामदुधा रस को सूतशेखर के साथ आँवले का स्वरस और घी मिलाकर देने से बढ़े हुए पित्त का शमन हो, पित्त अपनी प्राकृतिक अवस्था में आ जाता है। फिर सब कार्य अच्छी तरह

से होने लगते हैं। इसमें गेरू पड़ा हुआ है, जो पित्तशामक और स्तम्भक है। अतएव, यह बढ़े हुए पित्त का स्राव कम कर उसे सौम्य बना देता है।

अतिसार में- पित्तातिसार और रक्तातिसार में लघु अन्त्र (छोटी आँत) और बड़ी आँत की आभ्यन्तरिक त्वचा में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। इससे उदर में जलन, जल पीने की बार-बार इच्छा होना, जलन के साथ दस्त होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्था में-कामदुधा रस के प्रयोग से उत्तम कार्य होता है।

उन्माद रोग में पित्त की विकृति के कारण पाचन-क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है, जिससे अन्नादिक का पाचन ठीक-ठीक न होने से पेट में विषाक्त गैस उत्पन्न हो जाती है और पित्तगुण-प्रधान होने से इस (गैस) का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है, जिससे उन्माद जैसा विकार उत्पन्न हो जाता है। ऐसी अवस्था में मन चंचल हो जाता है। असन्तोष, हृदय निर्बल हो जाना, जिससे बार-बार चक्कर आना, चक्कर आकर बेहोश हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होने पर कामदुधा २ रत्ती को २ माशा ब्राह्मी चूर्ण या शंखपुष्पी चूर्ण में मिलाकर मिश्री के साथ देना चाहिए और सिर में श्रीगोपाल तैल, महाचन्दनादि तेल, हिमसागर तैल आदि की मालिश करानी चाहिए।-औ.गु.ध.शा.

कामदुधा रस (साधारण)

गिलोय सत्व ४ तोला, स्वर्णगैरिक १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला लेकर तीनों द्रव्यों को एकत्र मिला कर दृढ़ मर्दन कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ रत्ती तक दोषबलानुसार, प्रदर में गो-दुग्ध के साथ या चावल के धोवन के साथ दें। पित्त-प्रकोप में गो-घृत और शक्कर मिश्रित गो-दुग्ध के साथ दें। प्रमेह में पीपल चूर्ण और मधु से दें। रक्तपित्त में दूर्वा-स्वरस और मिश्री के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का दोषानुसार अनुपान के साथ प्रयोग करने से पित्त एवं उष्णताजन्य समस्त प्रकार के रोग नष्ट होते हैं और रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तातिसार, भ्रम (चक्कर आना), उन्माद, विशेषतः पित्तज उन्माद, अम्लपित्त, सोमरोग, प्रमेह, विशेषतया पित्तज प्रमेह रोगों में उत्कृष्ट लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त पित्त के विकारों में और नाक, गुदा, योनि एवं लिंग से होनेवाले रक्तस्राव मे तो इस औषध के प्रयोग से शीघ्र अभूतपूर्व लाभ होता है और जीर्णज्वर, दाह तथा पित्तज्वर में भी लाभकारी है।

कामधेनु रस

शुद्ध गन्धक और आँवला-कली चूर्ण इन दोनों को समान भाग लेकर आँवला रस और सेमल मूसली के रस की ७-७ भावना देकर छाया में सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ रत्ती सुबह-शाम धारोष्ण दूध, मधु अथवा न्यूनाधिक मात्रा में घी और मधु मिलाकर दें, ऊपर से दूध पिला दें।

गुण और उपयोग- यह बल-वीर्य-वर्द्धक, कामोद्दीपक तथा पौष्टिक रसायन है, इसके सेवन से प्रमेह, विशेषकर शुक्रमेह, ध्वजभंग आदि नष्ट होकर शरीर में कामशक्ति अधिक मात्रा में उत्पन्न होती है। वीर्य की कमी से उत्पन्न नपुंसकता, इन्द्रिय की शिथिलता, सुस्ती आदि इससे बहुत जल्दी ठीक हो जाती हैं। यह रस-रक्तादि धातुओं को शुद्ध करके बढ़ाता तथा नवयौवन प्रदान करता है।

पाचन-क्रिया में जब विकृति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् पाचक पित्त की निर्बलता के कारण

भोजन किए हुए पदार्थ का ठीक-ठीक पचन नहीं होने से रस-रक्तादि धातु अच्छी तरह नहीं बन पाती हैं, जिससे रस-रक्तादि धातुओं का क्रमशः क्षय होकर शरीर कमजोर होने लगता है। फिर अनेक उपद्रव खड़े हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग किया जाता है।

जीर्णज्वर में- आयुर्वेद में लिखा है कि 'त्रिसप्ताहव्यतीते तु जीर्ण-ज्वरःप्रोच्यते बुधैः' अर्थात् २१ दिन के बाद ज्वर, जीर्णता मे परिणत हो जाता है। इसमें मन्दाग्नि होने से पाचन-क्रिया ठीक-ठीक नहीं होती है। अतएव, शरीर में रक्तकणों की कमी हो जाने से रक्त का क्षय हो जाता है। रक्तकणों की कमी के कारण शरीर कान्तिहीन हो जाता है तथा ज्वर, प्यास, जलन, चक्कर आना, मन में बेचैनी, नाड़ी की गति में वृद्धि इत्यादि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

विषम ज्वर की तीव्र अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु जब विषमज्वर पुराना हो जाता है, तब ज्वर का विष रक्तादि धातुओं को दूषित करता है, ऐसी अवस्था में कामधेनु रस का प्रयोग करने से रस-रक्तादि धातुओं का शोधन होकर अच्छा फायदा होता है।

पैत्तिक प्रमेह में- बराबर ज्यादा मात्रा में पीतवर्ण का पेशाब होना, प्यास ज्यादा लगना, सम्पूर्ण शरीर में जलन, पसीना ज्यादा निकलना आदि लक्षण होने पर कामधेनु रस, प्रवाल भस्म, चन्द्रपुटी तथा गिलोय सत्व के साथ मिलाकर देने से लाभ करता है।

अम्लपित्त रोग में आमाशय की विकृति के कारण अन्न का पचन ठीक से न होकर आमाशय मे ही अन्न अधिक काल तक पड़ा रहना, जिससे पेट में भारीपन, जी मिचलाना, मुँह का स्वाद नष्ट हो जाना, खाया हुआ अन्न कुछ समय में जलयुक्त दुर्गन्धयुक्त होकर वमन के द्वारा बाहर निकल आना, खट्टी डकारें आना-प्रभृति लक्षण होते हैं तथा अम्लपित्त की असाध्यावस्था में पानी तक नहीं पचता है। पानी पीने के बाद तुरन्त वमन हो जाता है। ऐसी अवस्था मे कामधेनु रस देने से आमाशय में रहनेवाला पित्त जागृत होकर पाचन क्रिया को सुधार देता है, जिससे अन्नादिक पचने से बाधा नहीं होती है तथा इसके शामक प्रभाव के कारण विदग्ध पित्त की अम्लता के कारण होनेवाले वमन, खट्टी डकारें, अरुचि, जी मिचलना आदि लक्षण भी शमित हो जाते हैं।

कामलाहर रस

शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, त्रिफला चूर्ण १६ तोला, यवक्षार ८ तोला, शुद्ध सज्जीखार ८ तोला, नौसादर सत्व ८ तोला लेवें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना, उनमें अन्य दवा मिला, ३ घण्टे तक मर्दन करके शीशी मे भर कर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ माशा दिन में ३ बार मक्खन निकाली हुई छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग करने से समस्त प्रकार के पाण्डु रोग, कामला, कुम्भकामला और हलीमक आदि रोग नष्ट होते हैं। विशेषतया कामला रोग में इस रस के प्रयोग से सत्वर लाभ होता है। इसके अतिरिक्त शोथ रोग, मूत्रकृच्छ्र एवं समस्त प्रकार के रक्त-विकारों को नष्ट करता है। इस रसायन के सेवन काल में मक्खन निकाली हुई छाछ और भात के पथ्य पर रहना रोगी के लिये विशेष लाभकारी है। गन्ना, मोसम्बी, सन्तरे का रस और नारियल का पानी पिलाना चाहिए। यह औषध साधारण मृदु रेचक भी है। इस औषध के सेवन काल में कब्ज की शिकायत रहे तो कुटकी चूर्ण या पंचसकार चूर्ण या मैगसल्फ देकर उदर की शुद्धि कर लेना चाहिए। मूत्रावरोध या मूत्रदाह होने की अवस्था में नारियल का पानी पिलाना विशेष लाभदायक है।

कामाग्नि सन्दीपन रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध मैनशिल प्रत्येक ४-४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर इसमें अन्य दवाओं का चूर्ण मिलाकर, इन्हें शु. धतूरे के बीज, अदरक, जयन्ती और भाँगरे के रस में सात-सात भावना देकर सुखा लें। फिर इस कज्जली को आतशी शीशी में भरकर ६ दिन तक वालुकायन्त्र द्वारा पाक करें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी के गले में लगी हुई लाल रंग की रससिन्दूर जैसी दवा लेकर रख लें। फिर इसके सेवन काल में इसमें छोटी इलायची -बीज चूर्ण, जावित्री चूर्ण, शुद्ध कपूर, कस्तूरी, मिश्री, काली मिर्च और असगन्ध समान भाग लेकर चूर्ण बना, मिला-कर सेवन करें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३-३ रत्ती मक्खन-मलाई और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से ओज और बल की पुष्टि तथा काम की वृद्धि होती है और यह रसायन समस्त इन्द्रियों को आनन्द देने वाला है।

इस रसायन का असर वातवाहिनी और शुक्रवाहिनी नाडी पर विशेष होता है। यह उत्तेजक भी है अत: शुक्र को उत्तेजित करते हुए मन में भी उत्तेजना पैदा करता है एंवं मानसिक अभिघातजन्य नपुंसकता को मिटाने में बहुत उत्तम लाभकारी है। इस रसायन के सेवनकाल में दूध और पौष्टिक पदार्थ तथा फलों का विशेष सेवन करना चाहिए।

कामिनीविद्रावण रस

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केशर, पीपल, जायफल, जावित्री, चन्दन-प्रत्येक १-१ तोला शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गन्धक प्रत्येक चौथाई तोला और शुद्ध अफीम ४ तोला लें। प्रथम सिंगरफ, गन्धक और अफीम को एकत्र घोंट कर रखें। फिर शेख दवा को कूटकर, कपड़छन चूर्ण कर शीतल जल से घोंट कर २-२ रत्ती की गोली बना, छाया में सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान-१-१ गोली रात को सोने से एक घण्टा पूर्व दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह वीर्य को गाढ़ा कर स्तम्भन करता है एवं शुक्रवह नाड़ियों को बलवान बनाता है। शीघ्रपतन वालों के लिये बहुत लाभदायक है, क्योंकि यह उत्तम वीर्य स्तंभक है। यह ध्यान रखने की बात है कि इसमें अफीम का अंश विशेष है। इससे दस्त में कब्जियत हो तो सुबह गर्म दूध पीना चाहिए। अप्राकृतिक मैथुन अथवा हस्त मैथुन या स्वप्नदोष आदि के कारण उत्पन्न शीघ्रपतन की शिकायत तथा वीर्य के पतलेपन को मिटाने में यह रसायन बहुत श्रेष्ठ लाभदायक है।

कालकूट रस

शुद्ध बच्छनाग विष ११ तोला, शुद्ध पारद ३ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला, शुद्ध मैनशिल ६ तोला, ताम्र भस्म ४ तोला, सुहागे की खील ६ तोला, शुद्ध हरताल भस्म ९ तोला, चित्रकमूल ९ तोला, त्रिकटू १२ तोला, त्रिफला १० तोला, भुनी हींग १ तोला और बच १ तोला लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर अन्य औषधियों को कूट, कपड़छन चूर्ण मिला, मैनशिल, हरताल, भस्म, सुहागे की खील, ताम्र भस्म आदि क्रमश: मिलाकर १-१ प्रहर अदरक, चित्रकमूल, जम्बीरी नींबू, लहसून, करंजपत्र, आक की जड़, कलिहारी, संभालू, पान, अंकोल-मूल, सहजन की जड़, पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) और पंचकमूल इनके रस या क्वाथ में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।-वै.चि.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम अदरक रस के साथ या मधु से दें। पश्चात् पान चबायें या पान के रस और मधु के साथ भी इसे दे सकते हैं।

गुण और उपयोग- यह रसायन अत्युग्र सन्निपात, ग्रन्थिक सन्निपात, धनुर्वातादि किसी प्रकार का तीव्र वात-विकार हो विशेष कर बेहोशी, प्रलाप, आँखों की तन्द्रा, श्वास, कफयुक्त खाँसी, कम्प, हिचकी इत्यादि लक्षणयुक्त वात, कफ की अधिकता व सन्निपात ज्वर में लाभदायक है।

यह रसायन अत्युग्र है। अतएव, इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। सर्वसाधारण वैद्य या नवीन वैद्य अर्थात् जो इस दवा के प्रयोग करने के विधान से अपरिचित हों, ऐसे वैद्यों को खूब सोच-विचार कर प्रयोग करना चाहिए। अन्तिमावस्था में जब मकरध्वजादि दवाएँ नाकाम हो जाएँ, नाड़ी लुप्त हो रही हो, शरीर ठण्डा हो रहा हो, सिर्फ हृदय की चाल बनी हुई हो, तथा जब कभी थोड़ी-बहुत श्वास की गति मालूम पड़ती हो, तो ऐसी विकट परिस्थिति में इसका प्रयोग करना चाहिए।

इस रसायन के सेवन से हृदय बलवान हो जाता है। फिर नाड़ी की गति में कुछ वृद्धि होने लगती है। इसके सेवन से रक्त का दबाव बढ़ जाता है, जिसके नेत्रों में लाली छाई हुई रहती हो, त्रिदोष में पित्त प्रधान हो, रोगी को रक्त दबाव वृद्धि की शिकायत रहती हो, ऐसी अवस्था होने पर यह दवा नहीं देनी चाहिए। क्योंकि यह वैसे ही अत्युग्र दवा है। कभी-कभी इसकी तीव्रता के कारण रक्तवाहिनियाँ फट भी जाती हैं, जिससे रक्तस्राव होने लगता है। मोतीपिष्टी या प्रवाल चन्द्रपुटी, गुडूची सत्व आदि सौम्य औषधियों के साथ मिलाकर देने से इसकी उग्रता कम हो जाती है।

कफोल्वण सन्निपात में- नाड़ी की गति क्षीण हो सम्पूर्ण शरीर में जड़ता, मस्तिष्क में भारीपन, दिमाग शून्य मालूम होना, विचार-शक्ति का एकदम ह्रास हो जाना, ज्ञान-शक्ति का नष्ट हो जाना, शरीर में मन्द-मन्द दर्द बना रहना, नेत्रों की पलके भारी हो जाना, आँख खोलने तथा मूँदने में भी परिश्रम मालूम पड़ना, प्रकाश में रहने की इच्छा, शीतल पदार्थ से द्वेष, आँख से कीचड़ बहना, नाक से कफ का स्राव होना, नासिका से कोई चीज सूँघने पर उसकी गन्ध का ज्ञान न होना, जिव्हा कुछ मोटी तथा सफेद मलयुक्त हो जाना, इत्यादि लक्षण उत्पन्न होने पर कालकूट रस के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है।

वात और कफजन्य विकारों में श्वासोच्छवास तथा खाँसी में गम्भीरता आ जाती है। खाँसी के साथ सफेद रंग का लसदार तथा गठीला कफ निकलता है। श्वास लेने पर थोड़ा-थोड़ा कष्ट होता है। नाड़ी की गति मन्द और भारी हो जाती है। ऐसी हालत में कालकूट रस के सेवन से प्रकुपित वात और कफ शान्त हो जाते हैं तथा श्वास की गति में सुधार हो जाता है। यह रसायन हृदय की शिथिलता दूर कर हृदय की गति को बढ़ा देता है।

इन्फ्लुएन्जा ज्वर में- इसमें प्राय: वात और कफ की वृद्धि होती है। अत: इसी के विकार (उपद्रव) उत्पन्न होते हैं। इस रोग के प्रारंभ में सौम्य औषधियों द्वारा चिकित्सा करने से उपद्रव बढ़ने नहीं पाता और शीघ्र इच्छा भी हो जाता हैं, किन्तु यदि इसकी उपेक्षा की गई तो उपद्रव बढ़ते ही जाते हैं। इसमें वात के लक्षणों में दो भेद हो जाते है। प्रथम में-रोगी की ज्ञान शक्ति रहती है, पसीना खुब निकलता है, कण्ठ हिलने (काँपने)लगता है, कभी-कभी जोर से चिल्लाने लग जाता है, इत्यादि लक्षण होने पर तो महावातविध्वंसन आदि रस देना ही ठीक है। दूसरे में-नाड़ी की गति मन्द हो जाय, रोगी सुस्त पडा रहे, बोले तक भी नहीं, थोड़ा ज्वर बना ही रहे, तो ऐसी अवस्था में कालकूट रस अदरक रस के साथ देना आवश्यक है। इसके प्रयोग से नाड़ी की गति में सुधार होकर रोगी में चेतना आ जाती है एवं बढ़े हुए कफ और वात का शमन भी हो जाता है। धनुर्वात रोग में भी इसका प्रयोग किया जाता है। यदि इसमें कफ संयुक्त वायु का प्रकोप हो तो यह रसायन बहुत जल्द लाभ पहुँचाता है। कभी-कभी प्रसूता स्त्री को बच्चा होने

के बाद उचित व्यवस्था न होने से अथवा शीतल पदार्थ या ठण्डी हवा लग जाने से भी धनुर्वात हो जाता है।

प्रसूता को धनुर्वात रोग हो जाने से ही उसकी नसें खिंची हुई-सी रहती हैं तथा नसों में विकृति उत्पन्न हो जाती है, जिससे प्रसव के बाद रक्त का स्राव (जो दूषित रक्त रहता है) अच्छी तरह नहीं निकल पाता, जिससे और भी कष्ट बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में कालकूट रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह अपनी तीक्ष्णता के कारण वातदोष को दूर करते हुए दूषित रक्त को भी बाहर निकाल देता है। जिससे प्रसूता में फिर नवजीवन आ जाता है।

नोट- यह रसायन अत्यन्त तीक्ष्ण है। अत: पित्त प्रधान रोगों एवं पित्त प्रकृतिवालों, गर्भवती स्त्रियों तथा सुकुमार स्त्री-पुरुषों और नाजुक बच्चों को यह नहीं देना चाहिए। इसके अतिरिक्त बवासीर, मुँह आना, खुन गिरना, गर्म मिजाज और अतिशय कमजोरी में भी नहीं देना चाहिए।

कालारि रस

शुद्ध पारद ९ माशा, शुद्ध गन्धक १५ माशा, शुद्ध बच्छनाग ९ माशा, छोटी पीपल ३० माशा, लौंग १२ माशा, धतूरे के बीज ९ माशा, सुहागे की खील ९ माशा, जायफल १५ माशा, काली मिर्च १५ माशा और अकरकरा ९ माशा लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर उसमें अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला, करीर, अदरक-स्वरस और नींबू-इन प्रत्येक के रस में ३-३ दिन मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।-यो.चि.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली अदरक का रस, तुलसी का रस, ७ से २१ लौंग का अर्धावशेष क्वाथ इनमें से किसी एक अनुपान से वात ज्वर, कफ ज्वर और कफवाताधिक सन्निपात में दें। सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था में तगरादि क्वाथ के साथ या ७ लौंग, ३ माशा ब्राह्मी की ताजी पत्ती, ३ माशा जटामांसी और तीन माशा शंखाहुली के क्वाथ के अनुपान से दें। विषम-ज्वर में जायफल चूर्ण १।। माशा के साथ देकर ऊपर से दूध पिला दें। अथवा नीम के पत्तों के स्वरस की भावना दी हुई गोदन्ती भस्म के साथ दे सकते हैं।

गुण और उपयोग- यह रसायन साधारण ज्वर, सन्निपात ज्वर और विषम-ज्वर में भी दिया जाता है। विषम ज्वर में तो कुनैन की जगह इसका प्रयोग करना चाहिए। सन्निपात में उत्पन्न श्वास-कास-हिक्का प्रलाप आदि शमन करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। वात-कफ का शमन करते हुए ज्वर के उपद्रवों को भी यह दूर करता है। वात और कफ प्रधान सन्निपात में इस रस के प्रयोग से दोषों के बढ़े हुए प्रकोप का शमन होकर उपद्रव शान्त हो जाते हैं एवं पाचन होकर ज्वर ठीक हो जाता है।

कासकुठार रस

शुद्ध सिंगरफ, काली मिर्च, शुद्ध गन्धक, त्रिकुटा और सुहागे की खील प्रत्येक समभाग लेकर मर्दन कर रख लें।-र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- १-२ रत्ती, सुबह-शाम अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन पानी से ज्यादा भींग जाने अथवा अन्य शीतोपचार से उत्पन्न ज्वर, शीतांग सन्निपात अथवा कफ-प्रधानजन्य ज्वरों में विशेष फायदा करता है। जिस ज्वर में अंग जकड़ जाता है, सम्पूर्ण शरीर में दर्द होता रहता है, उसमें इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। किन्तु जिस ज्वर में कफ ज्यादा हो, खाँसी अधिक होती हो और खाँसी के साथ कफ ज्यादा निकलता हो, तो ऐसी अवस्था में कासकुठार के सेवन से अच्छा लाभ होता है। कफदोष से उत्पन्न शिर:शूल जिसमें वेदना अधिक होती हो, शिरभारी मालूम पड़ता हो, ऐसी अवस्था में

कासकुठार रस देने से शीघ्र लाभ करता है, क्योंकि इसमें गन्धक पड़ा हुआ है जो जन्तुघ्न है और त्रिकटु (सौंठ, पीपर, मिर्च) दीपन-पाचन है। यह दवा उष्णवीर्य-प्रधान है, अतः कफ-विकार और रोगवर्धक कीटाणुओं को नाश करने वाली है। -औ.गु.ध. शा.

कासकर्तरी रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, पीपल, हरड़, बहेड़ा, अडूसामूल-छाल ये प्रत्येक एक से दूसरे को द्विगुण लें, अर्थात् शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, पीपल ४ तोला, हरड़ ८ तोला, बहेड़ा १६ तोला, अडूसामूल छाल ३२ तोला लेकर प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला बबूल के क्वाथ की इक्कीस भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोली बना सुखा कर सुरक्षित रखें। -र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार शहद के साथ दोषानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रस समस्त प्रकार के कास रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। इसके प्रयोग से पुराना दुर्गंधयुक्त एवं संचित कफ पतला होकर थोड़ा ही खाँसने से सरलतापूर्वक निकल जाता है। यह रस विशेषतः वात-कफजन्य कास में उत्कृष्ट लाभ करता है। पित्तज कास रोग में भी मिश्री के साथ खाने से अच्छा लाभ होता है। बार-बार होनेवाली खाँसी में एवं गले की खराबी के कारण होनेवाली खाँसी में इस रस की एक-एक गोली मुँह में रखकर दिन-रात में ६-७ गोली तक चूस लेने से फेफड़े, श्वास-प्रणाली और गले में जमा कफ साफ हो जाता है और खाँसी समूल नष्ट हो जाती है।

कासकेशरी रस

शुद्ध हिंगुल, काली मिर्च, नागरमोथा, शुद्ध टंकण, शुद्ध सींगिया वत्सनाभ - ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् सब को एकत्रित मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस में दृढ़ मर्दन कर गोली बनाने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बनाकर सुखा कर रखें। -वृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार अदरक-रस और शहद के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग करने से समस्त प्रकार के कास रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा समस्त प्रकार के श्वास रोग में विशेषतः नवीन श्वास रोग में उचित अनुपान के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकार के कफजनित विकार, कफ ज्वर, वात ज्वर एवं वात-कफज ज्वर तथा अन्य वात-कफज विकारों में उपयोगी है।

कफकर्त्तरी रस

जावित्री २ तोला, इलायची २ तोला, पुराना वाँस ४ तोला, पुनर्नवामूल ४ तोला, कटेरी फल २ तोला, तम्बाकू के डण्ठलों की अन्तर्धूम राख २ तोला लें। प्रथम सूखे अपामार्ग का पंचाग १ सेर लेकर लोहे की एक बड़ी कड़ाही में डाले और ऊपर से उपरोक्त दवायें डाल कर उन पर १ सेर का सूखा अपामार्ग पंचाग और डालकर अग्नि लगा दें। पश्चात् बाँस के डण्डे से इधर-उधर करके अच्छी प्रकार से जला दें, ताकि अच्छी तरह राख हो जावे, कोयला न रहने पावे। यदि कोई औषधि ठीक से न जलने लगे तो और अपामार्ग पंचांग डालकर जला लें और राख करके सूक्ष्म कपड़छन पीसकर रख लें। पश्चात् जितना इस तैयार औषध का वजन हो, उस वजन से आठवां

भाग भुना सुहागा और सोलहवाँ भाग शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली को अच्छी प्रकार मिला, दृढ़ मर्दन करके सुरक्षित रखें। -आरोग्य प्रकाश से किञ्चित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- २-२ रत्ती दिन में २-३ बार नागरबेल के पान में रखकर दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन को पान में रख कर खाने के पश्चात् रोगी से धीरे-धीरे इसका रस चूसने को कहें और खाने के बाद इस औषधि से अभूतपूर्व लाभ देखने को मिलता है। यह औषधि श्वास रोग में अत्यन्त उपयोगी है। यहाँ तक कि दो या तीन मात्रा औषधि खाते ही दमा का वेग शमन हो जाता हे। दमा का वेग शान्त हो जाने पर प्रतिदिन दो मात्रा में औषधि रोगी को सेवन करावें। इसके सेवन से संचित दूषित कफ बिना कष्ट के सरलता के साथ थोड़ा खाँसने से ही निकल जाता है। यह कफ पका और दिन-रात में करीब एक पाव से आधा सेर तक निकल जाता है। कफ निकल जाने से रोगी दुर्बल अवश्य हो जाता है किन्तु इस औषधि के अपूर्व प्रभावशाली गुण के कारण श्वास (दमा)का वेग कई-कई वर्ष तक के लिए बन्द हो जाता है। यह औषधि कफ को काट-काट कर बाहर निकाल देती है, अतः इस औषधि का नाम कफकर्तरी रस यथार्थ ही रखा गया है।

कुमारकल्याण रस

रससिन्दूर, मोती भस्म, स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म बराबर-बराबर लेकर घीकुमारी के रस में घोंट कर मूँग के समान गोलियां बना लें।

वक्तव्य- मूँग स्थान भेद से छोटे-बड़े होते हैं। अतः आधी-आधी रत्ती वजन परिमाण की गोलियाँ बनाना उत्तम है। रससिन्दूर के स्थान पर मकरध्वज डाल कर इस योग को बनाया जाये तो अधिक गुणकारी बनता है। ऐसा हमारा अनुभव है।

मात्रा और अनुपान- बच्चों के लिए आधी गोली, माता के दूध अथवा मिश्री से यह बच तथा शहद के साथ दें। पूरी उम्रवालों के लिए १ गोली, रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- स्वर्ण, मोती, रससिन्दूर आदि कीमती चीजों से तैयार किए इस रस का नाम के अनुसार ही गुण भी है। हृदय,फुफ्फुस, मस्तिष्क, ज्ञानेन्द्रिय, यकृत, उदर, मूत्रपिण्ड आदि सभी अंगों के विकारों को नष्ट कर शरीर को यह पुष्ट बनाता है। बालकों के सभी रोग, कास, श्वास, क्षय, संग्रहणी, डब्बा, वमन आदि पर यह सुन्दर कार्य करता है। स्वस्थ बच्चों को भी यदि एक सप्ताह तक इसका सेवन कराया जाय, तो उन्हें यह पुष्ट बना देता है और चेचक तथा मोतीझरे की बीमारी से बचाता है।

बच्चों की तरह यह बड़ों को भी दिया जा सकता है। उत्तम रसायन होने के साथ ही यह रस योगवाही भी है। शारीरिक शक्ति की रक्षा के लिए दूसरी औषधियों के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। बच्चों को होनेवाले बालशोष अर्थात् सूखा रोग में गोदन्ती भस्म के साथ मिलाकर इसका सेवन कराने से रोग को नष्ट कर बच्चों को स्वस्थ एवं सबल बना देता है। बाल पक्षाघात, आक्षेपक आदि वात-विकारों में भी यह उत्तम लाभ करता है।

कुमुदेश्वर रस

स्वर्ण भस्म, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, मोती भस्म या पिष्टी, शुद्ध टंकण, चाँदी भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म ये प्रत्येक १-१ तोला लेकर एकत्र मिला, खरल में डाल कर काँजी के साथ मर्दन करके एक गोला-सा बना लें। इस गोले को मिट्टी के दो शराबों में बन्द करके सन्धिबन्धन कर कपड़मिट्टी करके सुखा लें । पश्चात् लवण-यन्त्र में रख कर दिन भर चूल्हे पर रख कर पाक करें अथवा मृदु पट में रख कर पकावें। स्वांग शीतल होने पर सूक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रखें। -र.सा.सं.

वक्तव्य- इस योग में र.च. और र.यो.सा. की अपेक्षा र.सा.सं. के पाठ में अन्तर है। र.चं. और र.यो.सा. में स्वर्ण भस्म, रससिन्दूर १-१ भाग, मोती भस्म २ भाग, रससिन्दूर से चतुर्थांश टंकण और शुद्ध गन्धक सब के बराबर लेने को लिखा है, तथा रौप्य भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म का पाठ नहीं है तथा र.सा.सं. पाठ में स्वर्ण भस्म, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, मोती भस्म, रौप्य भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म- ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेने का उल्लेख है एवं शुद्ध टंकण रससिन्दूर से चतुर्थांश लेने का उल्लेख है, किन्तु कोई-कोई चिकित्सक इस योग के र.सा.सं. के पाठ में भी मतभेद मान कर टंकण सहित समान भाग लेते हैं और रस इस शब्द से शुद्ध पारद लेते हैं, एवं कोई कोई रस इस शब्द से खर्पर भस्म लेने का भी विधान करते हैं। हमारी राय में र.सा.सं. वाला योग ठीक है। हम 'रस' इस शब्द से पारद लेते हैं, और सभी द्रव्य टंकण सहित समान भाग लेते हैं।

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती काली मिर्च चूर्ण और घी के साथ या मधु के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- स्वर्ण, मोती, रससिन्दूर आदि उत्कृष्ट बहुमूल्य उत्पादनों से निर्मित रस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के राजयक्ष्मा रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। विशेषत: राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में इसके प्रयोग से बहुत अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरित पुराने जीर्ण ज्वर, पुरानी खाँसी और श्वास तथा इनसे होनेवाले उपद्रव, प्रबल ज्वर, पार्श्वशूल, हृदय की धड़कन, हृदय की दुर्बलता, निद्रानाश, उदरवायु की प्रबलता आदि लक्षणों में अच्छा लाभ होता है। यह रसायन सौम्य होने के कारण इसका हृदय पर बहुत अच्छा प्रभाव होता है। दिमाग तथा वात नाड़ियों को बल प्रदान करता है। रस-रक्तादि सातों धातुओं की वृद्धि कर बल, वर्ण, कान्ति तथा ओज की वृद्धि करता है।

कुष्ठकुठार रस

रस सिन्दूर, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, आँवला, हर्रे, बहेड़ा बकायन छाल, चित्रक, गुग्गुलु और शुद्ध शिलाजीत प्रत्येक ४-४ तोले, करंज के बीज का चूर्ण और अभ्रक भस्म १६-१६ तोले लेकर सबको यथाविधि मिलावें। गुग्गुलू को पानी में गलाकर मिलावें, सब दवा को एकत्र कर खरल में खूब घोंटे। जब अच्छी तरह दवा घुट जाय, तब इसमें घी मिलावें। बाद में घी के साथ थोड़ा शहद मिलाकर जल के साथ ४-४ रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रख लें। -रसेन्द्र सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम जल से दें।

यदि इसके सेवन से अत्याधिक ताप हो तो गुड़हल का फूल और धनिये का चूर्ण १ तोला परिमाण में लेकर, मिश्री मिलाकर सेवन करावें अथवा नागबला की जड़ का चूर्ण और शहद एवं शहद के साथ थोड़ा सा घी मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- कुष्ठरोग विशेषत: असाध्य ही होते हैं, किन्तु रोग निवारण के लिये उपाय करना मनुष्य का कर्तव्य है। कुष्ठ जैसी बीमारी के लिए जरूरी है कि अधिक समय तक दवा सेवन की जाय, किन्तु प्राय: देखा जाता है कि कुष्ठ रोगी थोड़े दिन तक दवा खाकर फायदा नहीं होने से, रोग से निराश हो, दवा का सेवन करना बन्द कर देता है, किन्तु यह उचित नहीं। कुष्ठ रोगी को कम-से-कम ४१ दिन तक दवा नियमपूर्वक सेवन करनी चाहिए।

इस रसायन का प्रयोग विशेष कर गलितकुष्ठ में-अंगुलियाँ कान, नाक आदि सड़ गये हों, देह से दुर्गंध निकलती हो, मक्खियाँ चारों तरफ भिनकती हों, ऐसी हालत में किया जाता है।

कुष्ठ रोग में- रक्त मांस-त्वचा आदि विकृत हो जाते हैं। इसमें त्वचा सड़ी हुई मालूम पड़ती है, गलित कुष्ठ में अंगुलियों के पर्व (पोर) गलकर गिर जाते हैं। फिर भी दर्द कम नहीं होता इसमें चींटी काटने की-सी वेदना होती रहती है। जहाँ अंगुलियाँ गलकर गिर जाती हैं, वहाँ से लसीका स्राव होने लगता है। शरीर में आलस्य इतना बढ़ जाता है कि हाथ-पाँव उठाने और रखने में दिक्कत मालूम पड़ती है। जिस करवट से रोगी पड़ा हुआ रहता है, उसे बदलने की इच्छा नहीं होती। शरीर की त्वचा फटी हुई सी हो जाती है। घाव में से दुर्गन्धित मवाद निकलता है। स्पर्शज्ञान एकदम नष्ट हो जाता है। ऐसी अवस्था में कुष्ठकुठार रस का सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

इसमें-रससिन्दूर योगवाही और रसायन है। गन्धक-त्वचागत दोष का नाश करनेवाला तथा रक्तशोधक है। लौह-भस्म शक्तिवर्धक तथा रक्तप्रसादक है। ताम्र भस्म यकृत को उत्तेजित करनेवाली और पित्तस्रावक तथा ग्रहणी के विकारों को नष्ट करनेवाली है। गुग्गुलु-रसायन, योगवाही, वातशामक व कोष्ठशोधन करनेवाला है। त्रिफला-रसायन और मृदु विरेचक है। महानिम्ब (बकायन छाल) दोष और दूष्यों को शोधन करनेवाला द्रव्य है। शिलाजीत-धातु परिपोषण क्रम को सुधारनेवाला है। करंजबीज रक्त प्रसादक, संशोधक व त्वचागत कुष्ठ के दोष शमन करनेवाला है। अभ्रक भस्म-धातु परिपोषणक्रम को व्यवस्थित करता है और मानसिक आघात (क्षोभ) जन्य दोष को नष्ट करनेवाला और शारीरिक अवयवों में शक्ति बढ़ानेवाला, जीवनीय और बल्य है। इस तरह से यह औषधि गलित कुष्ठ में उत्तम लाभकारी है।

कुष्ठकालानल रस

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध टंकण, ताम्र भस्म, लौह भस्म और पीपल प्रत्येकी १-१ भाग लें, प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्यान्य भस्में एवं पीपल चूर्ण मिला नीम के पञ्चांग का क्वाथ और त्रिफला क्वाथ तथा अमलतास के पत्तों के रस में क्रमशः एक-एक भावना देकर मर्दन करें और गोली बनाने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रख लें।-रसे.चि.म.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ गोली तक सुबह-शाम जल के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उचित अनुपान के साथ प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकार के रक्त विकार, त्वचा के रोग, वातरक्त आदि नष्ट होकर शरीर सुन्दर, कोमल और कान्तिमान हो जाता हैं। इस रसायन का प्रभाव विकृत दोष और दूष्यों पर मुख्य रूप से होता है। इसके प्रयोग के साथ ही यदि खदिरारिष्ट अथवा महामंजिष्ठाद्यरिष्ट या महामंजिष्ठादि क्वाथ २ तोला को समान भाग जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय सेवन किया जाये तो दोष और दूष्यों के शोधन और शमन का काम भी बड़ी उत्तमता से हो जाता है।

खंजनिकारि रस

मल्लसिन्दूर, रौप्यभस्म और शुद्ध कुचले का कपड़छन चूर्ण प्रत्येक समभाग लें। प्रथम मल्लसिन्दूर को खूब महिन पीसें, पीछे उसमें अन्य दवा मिला अर्जुन वृक्ष की छाल के क्वाथ की ७ भावनाएँ देकर मूँग के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा लें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य-मूँग स्थान भेद से छोटे-बड़े होते हैं। अतः आधी-आधी रत्ती की गोलियाँ बनाना ठीक है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली सबेरे-शाम गाय के दूध या दशमूल क्वाथ के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- मल्लसिन्दूर, रौप्य और कुचला का यह उत्तम योग अत्यन्त उग्र एवं उष्णवीर्य है। इसके सेवन से पक्षाघात (लकवा), धनुष्टंकार, गठिया आदि पुराने से पुराने वातरोग में आराम होते हैं। आतशक, सूजाक आदि के उपद्रव से पैदा हुए वातरोगों के लिए भी रामबाण तुल्य काम करता है। वात और कफ सम्बन्धी कास-श्वास, न्युमोनिया, उरस्तोय, डब्बा, शीतांग सन्निपात आदि में यह लाभदायक है।

पित्तविकारों में इसका प्रयोग किसी सौम्य औषध के साथ करना चाहिए। अन्य औषधियों से लाभ न होने पर ही इस उग्रवीर्य किन्तु प्रचण्ड लाभकारी ब्रह्मास्त्ररूपी महौषधि का प्रयोग करना चाहिए।

गंगाधर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, कुड़े की छाल, अतीस, लोध्र, बेलगिरी और धाय के फूल सब समान भाग ले। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करें। तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियों का कूट-कपड़छन चूर्ण मिलाकर ३ दिन तक पोस्त के डोडे के क्वाथ में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम, छाछ के साथ, रक्तातिसार में कुड़े की छाल के क्वाथ से, आमातिसार में नागरमोथा के रस का क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन अतिसार, आमातिसार तथा रक्तातिसार में बहुत लाभ करता है। इसमें अतीस पड़ी हुई है, अतएव आमातिसार में विशेष गुणदायक है। पारद, गन्धक, अभ्रक भस्म आदि द्रव्यों के मिश्रित होने से मन्दाग्नि और संग्रहणी में यह अग्नि को प्रदीप्त कर आम का पाचन एवं बढ़े हुए दस्त के वेगों को कम करता है। बेलगिरी और धाय के फूल एवं कुड़ाछाल का मिश्रण भी आमपाचन और स्तम्भन की दृष्टि से बहुत उपयोगी उपादान है।

गदमुरारि रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनशिल, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, शुद्ध बच्छनाग विष ३ माशे लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य भस्म और बच्छनाग का सूक्ष्म चूर्ण मिला अदरक के रस में १२ घंटे तक दृढ़ मर्दन कर आधी-आधी रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रखें।-र.त.सा.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम सुखोष्ण जल के साथ या अदरक रस के साथ अथवा तुलसी पत्र स्वरस के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रस का प्रयोग करने से आम प्रधान जीर्ण ज्वर का नाश होता है। यह रसायन अनेक दिनों तक रहनेवाले ज्वरों में धातु परिपोषण क्रम को धीरे-धीरे सुधार कर रोग का शमन करता है। जिन ज्वरों के दोष धातुओं में लीन रहते हैं, उनमें गदमुरारि रस का सेवन अत्यन्त लाभकारी है। रसगत ज्वर, पित्तगत ज्वर एवं व्यवस्थित रीती से चिकित्सा न हुई हो ऐसा सन्निपात ज्वर, बहुत समय का जीर्ण, विषम ज्वर, क्षय रोग की प्रथमावस्था का ताप, अतिसार सहित जीर्ण ज्वर आदि में यह रसायन उत्कृष्ट लाभ करता है।

रसगत ज्वर में सर्वांग में जड़ता, हाथ-पैर-टुटना, उबाक आना, वमन, अरुचि, छाती में भारीपन, मुखमंडल निस्तेज, कृशता आदि लक्षण उपस्थित होने पर इस रसायन के सेवन से

अच्छा उपकार होता है। कफ के साथ रक्त आना एवं थूक में रक्तागम, रक्त मिश्रित कफ के गिरने पर भी श्लैष्मिक या श्वसनक ज्वर के लक्षण न हों तथा फुफ्फुस आदि भी विकृति शून्यों, तृषा, अंगदाह, दूषित विचार आना, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, प्रलाप सन्धिशूल आदि लक्षणों में इस रस को ब्राह्मी क्वाथ, वासा-स्वरस या दूर्वा-मूल-स्वरस के साथ देना लाभकारी है।

अत्यन्त तृषा, बार-बार शौच एवं लघुशंका होना, सर्वांग दाह, हस्त-पाद तल दाह, हस्त-पाद नाड़ी आकुंचन, हस्त-पाद पटकन, व्याकुलता, पंखे से वायु करते रहने पर कुछ अच्छा लगना आदि लक्षणों में से इस रस का नागरमोथा-क्वाथ के साथ प्रयोग करना लाभप्रद है।

अति प्रस्वेद, अति तृष्णा, बार-बार मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुख से दुर्गन्ध आना, प्रस्वेद से शरीर में दुर्गन्ध निकलना, अरुचि, शरीर के किसी भी भाग में स्पर्श सहन न होना आदि लक्षण होने पर इस रस को शहद और जल के साथ देना लाभकारी है।

हस्त-पाद की नाड़ी का आकुंचन, सर्वांगशूल, श्वास बेचैनी, वमन, अतिसार, आदि लक्षणों में प्रवालपिष्टी और श्रृंग भस्म मिलाकर पिया वासाँ-स्वरस या क्वाथ के साथ शहद मिलाकर देना लाभकारी हैं।

भ्रम, श्वास, हिक्का, कास, शीत न लगना या शरीर अकस्मात् शीतल हो जाना हस्त-पाद की शून्यता, वमन, अन्तर्दाह, हृदय, मूत्राशय और पार्श्वभाग में वेदना अत्यंत बलपूर्वक श्वास लेना आदि लक्षणों में सुदर्शन चूर्ण के क्वाथ के साथ इस रस के प्रयोग से सत्वर उत्कृष्ट लाभ होता है।

न्यूमोनिया (श्वसनक ज्वर), इन्फ्लूएन्जा (वात-कफ-ज्वर) और मधुरा ज्वर के अति जीर्ण होने पर तीव्र औषधि का प्रयोग नहीं किया जाता। ऐसी दशा में शनैः-शनैः कार्यकारी औषधि देना श्रेयस्कर है। इसमें गदमुरारि रस का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ है। इस रस का उपयोग कर्णक, भुग्ननेत्र, चित्त, विभ्रम और अभिन्यास सन्निपात इनकी जीर्ण अवस्था में भी उत्तम होता है।

विषम ज्वर की योग्य चिकित्सा न होने या प्रारम्भ में ही चिरकारी होने पर दीर्घकाल तक स्थाई हो जाता है। इसमें निश्चित प्रकार का व्यक्त रूप नहीं होता, अर्थात् चातुर्थिक ज्वर के सदृश या सन्तत ज्वर के समान सर्वदा ज्वर रहता हो, ऐसा नहीं होकर दिन में किसी भी समय अनियमित रूप से आना, कभी कम कभी अधिक कभी शीत लगकर, कभी बिना शीत लगे, कभी तृषा अधिक कभी कतई न लगना, आदि अनियमित लक्षण होते हैं, ज्वर आने पर सर्वांग शूल एवं ज्वर उतर जाने पर भली प्रकार चलना-फिरना आदि लक्षण होते हैं। ऐसे ज्वर में विषम ज्वर के कीटाणु या सेन्द्रिय विष के रूप के कारण स्पष्ट प्रकाशित नहीं होते, केवल ज्वर दीर्घकाल तक रहता है। परिणामस्वरूप कृशता, अपचन, निर्बलता, कान्तिहीनता, मलावरोध आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी दशा में इस रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

क्षय की प्रथमावस्था में सामान्य ज्वर, शुष्क कास, सर्वांगशूल, नाड़ी का तीव्र वेग तृषा, दाह आदि लक्षण होने पर इसके साथ प्रवाल पिष्टी और श्रृंग भस्म मिलाकर देने से लाभ होता है।

गण्डमालाकण्डन रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक आधा तोला, ताम्र भस्म १।। तोला, मण्डूर भस्म ३ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल २-२ तोला, सेंधा नमक आधा तोला, कंचनार की छाल का चूर्ण, गुग्गुलु १२-१२ तोला लें। पहले पारा और गन्धक की कज्जली बनावें फिर इसमें अन्य औषधियों का कूट कपड़छन चूर्ण मिला (गुग्गुल में गोघृत मिलाकर कूटकर नरम करें, फिर सब औषधियों को और गुग्गुल को एकत्र मिला अच्छी तरह कूटकर) ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम कचनार की छाल के क्वाथ से या ताजे जल से दें।

गुण और उपयोग-गलगण्ड, गण्डमाला (कण्ठवेल-घेघा) अपची और गाँठवाले फोड़े फुन्सियाँ पर इस दवा का अच्छा प्रभाव होता है। गण्डमाला रोग की यह उत्तम दवा है।

यह रस कफ प्रकृतिवालों का बहुत शीघ्र लाभ पहुँचाता है। गण्डमाला वालों को अक्सर बद्धकोष्ठ हो जाता है। उनके लिये भी यह रस बहुत उत्तम है। यह मन्दाग्नि को दूर कर पाचक पित्त को जागृत करता है।

गण्डमाला या गलगण्ड की ग्रन्थियाँ शरीर में सर्वदा विद्यमान रहती ही हैं। ये ग्रन्थियाँ दोनों कॉरक्ड (बक्षण) गले के नीचे और कण्ठ में होती है। इनमें जब कफ दूषित होकर मिल जाता है और साथ में वायु भी मिला होता है तब इन ग्रन्थियों की वृद्धि होने लगती है। इनके वृद्धि काल में गांठ में दर्द होता तथा बुखार भी हो जाता है। मन्दाग्नि और बद्ध कोष्ठता तो हो ही जाती है। अतः कमजोरी भी बढ़ने लगती है। हाथ-पैर में भी फूटनी होने लगती है। कभी-कभी ये गाँठे पककर फूट भी जाती हैं। फिर भी दर्द कमी नहीं होता। फूटने पर ये बहने लगती है, उचित उपचार करने पर भी बहती जाती हैं। कभी नहीं भी भरतीं। स्राव बराबर होता रहता है और ये बहुत दिन में जाकर भरती हैं। अतः यह व्याधि बहुत कठिन होती है। इसमें चिकित्सा की उपेक्षा करने पर इसकी जड़ बहुत मजबुत हो जाती है। फिर लाचार हो शस्त्र-क्रिया ही करानी पड़ती है। ऐसे भयंकर रोग से बचने के लिये यह रस दिया जाता है, क्योंकि इस औषधि में कज्जली-योगवाही तथा रसायन है। ताम्रभस्म-ग्रन्थि और मेदा को पचानेवाली है। मण्डूर-रक्तकणों को बढ़ानेवाला व शक्ति प्रदान करनेवाला है। काँचनार की छाल अपने प्रभाव से गण्डमाला के विष को नट करने वाली है। त्रिकटु-पाचक तथा रसायन है। सेंधानमक पाचक है। गुग्गुलु-रक्त का प्रसादन करनेवाला व शोथ को नष्ट करनेवाला तथा व्रण का लेखन कर भरनेवाला है। इस प्रकार यह रस उपरोक्त लक्षणों में बड़ा गुणकारी सिद्ध हुआ है।- औ.गु.ध.शा.

गन्धक रसायन

गाय के दूध से ३ बार शुद्ध किया हुआ गन्धक ६४ तोला लें। उसको पत्थर के खरल में डाल, दालचीनी, तेलपात, छोटी इलायची और नागकेसर इन प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण समान भाग में लेकर, इस चूर्ण को रात में द्विगुणित जल में भिगों दे। सबेरे हाथ से मलकर कपड़े से छाने हुए जल से ताजी गिलोय के स्वरस से हर्रे और बहेड़े के क्वाथ से आँवला, सोंठ, भाँगरा और अदरक इनके स्वरस से ८-८ दिन मर्दन कर अर्थात् प्रत्येक के जल क्वाथ या स्वरस में ८-८ दिन भावना दें। प्रत्येक भावना में ३ से ६ घण्टा मर्दन करके सुखाने के बाद भावना दें। अन्त में सुखाकर पीसकर उसमें समान भाग मिश्री का चूर्ण मिलाकर शीशी में भर लें।

मात्रा और अनुपान- ४-८ रत्ती सबेरे-शाम जल, दूध, मंजिष्ठादि क्वाथ, महातिक्त घृत के कल्क द्रव्यों का क्वाथ अथवा खदिरारिष्ट के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से कुष्ठ, रक्त विकार जन्य फोड़ा-फुन्सी, चकतों का पड़ना आतशक (गर्मी) के सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। धातु-क्षय, प्रमेह, मन्दाग्नि और उदर शुलादि में भी यह लाभदायक है। यह रस-रक्तादि सप्त धातु शोधन एवं बलवीर्य-वर्द्धक, पौष्टिक एवं अग्निदीपक है तथा कफ और आमाशय के रोगों में लाभदायक है।

इस रसायन का प्रधान कार्य- किसी भी कारण से दूषित हुए रक्त तथा चर्म को सुधारना है।

रक्त की अशुद्धि से इससे आगे जो बननेवाली धातुएँ हैं, वे भी शुद्ध नहीं बन पाती तथा वे धीरे-धीरे निर्बल होती चली जाती हैं। इस रसायन के सेवन से शुद्ध रक्त बनने लगता है और शुद्ध रक्त बनने पर इससे बननेवाली धातुएँ भी शुद्ध तथा पुष्ट होने लगती हैं, एवं अशुद्ध रक्त जनित विकार भी नष्ट हो जाते हैं।

पित्त प्रधान रोगों में इस रसायन का विशेष उपयोग होता है तथा दाह होना, जलन के साथ पेशाब होना, हाथ-पैर में जलन होना, मस्तिष्क के भीतर, कण्ठ-जिव्हा आदि में जलन होना, शीतल जल से स्नान करने की इच्छा होना या शीतल पदार्थ खने की इच्छा होना इत्यादि लक्षण पित्त की दुष्टि से उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में गनक रसायन के प्रयोग से ये सब शान्त हो जाते हैं।

शरीर में छोटी-छोटी फुंसियाँ होना, खुजली ज्यादा होना, खुजलाने पर थोड़ा-बहुत रक्त भी निकल जाना, ऐसी अवस्था में गन्धक रसायन देने से बहुत फायदा होता है।

उपदंश, सूजाक आदि विषाक्त रोगों के पुराने हो जाने पर शरीर में इस रोग के विष व्याप्त हो जाते हैं। इस विष के प्रभाव से वातवाहिनी नाड़ियाँ विकृत हो वात-सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे शरीर के भीतर अवयव कमजोर होकर अपने कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। विशेषकर आँते कमजोर हो जाती हैं, जिससे बद्धकोष्ठता हो जाती है। ऐसी अवस्था में पहले स्नेहन बस्ति का प्रयोग करें, फिर गन्धक रसायन से सेवन करावें।

उपदंश रोग जब पुराना हो जाता है, तो जोड़ों में सूजन, मसूढ़ों से स्राव होना, शरीर में कभी-कभी गाँठ पड़ जाना, कमजोरी विशेष मालूम होना, हाथ-पांव काँपने लगना, बदन में दर्द होना, छोटी-छोटी फुँसियाँ निकल आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इनमें गन्धक रसायान के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

इसी तरह सूजाक जब पुराना हो जाता है, तो सम्पूर्ण शरीर में जलन होने लगती है। जैसे- पेशाब करते समय जलन होना, जननेन्द्रिय को दबाने से दर्द होना, थोड़ा-थोड़ा मवाद भी निकलना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में गन्धक रसायन ४ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती में मिलाकर सुबह-शाम तथा दोपहर को मधु के साथ मिश्री मिलाकर देने से लाभ होता है।

बद्धकोष्ठ में नीम के पंचांग का चूर्ण १ माशा, गन्धक रसायन २ रत्ती मिलाकर त्रिफला के क्वाथ के साथ दें। खुजली, ददगुमण्डल, कुठ तथा छोटी-छोटी फुंसियों के लिए गन्धक रसायन शक्कर (चीनी) और घी में मिलाकर दें। धातु विकार में दूध के साथ दें। कच्चा पारा या शरीर में प्रवेश किए हुए किसी धातु के विष व उष्णता दोष को दूर करने के लिए गन्धक रसायान ३ रत्ती आँवले के मुरब्बे के साथ दें।

अठारह प्रकार के कुष्ठ विकार, शीतपित्त, दर्द, व्रण तथा अनेक प्रकार के क्षुद्ररोग भी इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। धातुओं को शुद्ध कर बढ़ाने में यह श्रेष्ठ रसायन है।

गर्भचिन्तामणि रस बृहत्

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण भस्म, लौह भस्म, रौप्य भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध हरिताल, वंग भस्म, अभ्रक भस्म ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम पारा गन्धक या कज्जली बनावें पश्चात अन्य सभी भस्मों को एकत्र मिला ब्राह्मी स्वरस या क्वाथ, वासा-स्वरस, भांगरा-स्वरस, पित्त-पापड़ा का क्वाथ, दशमूल क्वाथ इनकी क्रम से पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर दृढ़ मर्दन करें और गोली बनाने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना सुखाकर

रखें।-भै.र. (विद्योतिनी टीका)

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का विधिवत् उचित अनुपान के साथ प्रयोग करने से गर्भावस्था में गर्भिणी को होने वाले समस्त विकार नष्ट होकर गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु का अच्छी प्रकार से पोषण होता है। सन्निपात ज्वर को शीघ्र नष्ट करता है, विशेषतया गर्भिणी स्त्री के सन्निपात ज्वर की सर्वश्रेष्ठ, अपूर्व लाभदायक एवं बलदायक औषधि है। इसके अतिरिक्त गर्भिणी को होनेवाले विकार दाह, प्रदर, अरूचि, वमन, अतिसार, दुर्बलता, भ्रम आदि विकार नष्ट होते हैं। इस रसायन का प्रथम मास से ही निरन्तर सेवन करते रहने से गर्भस्थ शिशु को उत्तम बल मिलता है, इससे बच्चा बलवान और हृष्ट-पुष्ट होता है। कभी-कभी गर्भावस्था में अचानक होनेवाला रक्तस्राव भी, इसको प्रवालपिष्टि के साथ प्रयोग करने से शीघ्र बन्द हो जाता है।

गर्भपाल रस

शुद्ध सिंगरफ, नागभस्म, वंगभस्म, दालचिनी, तेजपात, छोटी इलायची, सोंठ, पीपल, मिर्च, धनियाँ, स्याहजीरा, चव्य (चाव), मुनक्का और देवदारु-प्रत्येक १-१ तोला, लौह भस्म आधा तोला लेकर सबको कोयल (सफेद अपराजिता) के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम गुडूची-सत्व और मधु से या धारोष्ण दूध के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- नाग, वंग और हिंगुल के प्रधान उपादानों से बना हुआ यह रस सगर्भा स्त्री के समस्त विकारों को नष्ट करता है। सूजाक, आतशक अथवा दुग्ध-दोष के कारण गर्भपात होने की संभावना में मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ इसका सेवन करना चाहिए। गर्भिणी के अतिसार, ज्वर, पाण्डु, मन्दाग्नि, मलावरोध, शिर:शूल, अरुचि आदि विकारों में आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग किया जाता है।

गर्भपात रस गर्भिणी- रोग की प्रसिद्ध दवा है। अतएवं यह गर्भाशय की अशक्ति या बार-बार गर्भस्त्राव अथवा गर्भपात होना आदि विकारों में मुख्यतया उपयोग किया जाता है।

जिस स्त्री को गर्भ या सूजाक होने के कारण गर्भाशय कमजोर हो, गर्भ-धारण करने में असमर्थ हो, गर्भस्राव या पतन की सम्भावना रहे, उसे गर्भपाल रस के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। इसमें रक्तशोधक औषधि के साथ गर्भपाल रस देना चाहिए।

मानसिक चिन्ता या हिस्टिरिया आदि दोषों के कारण भी गर्भपात या गर्भस्राव हो जाता है। ऐसी स्थिति में मुनक्का-क्वाथ के साथ गर्भपात रस दें।

उपदंश के कारण गर्भाशय दूषित हो, गर्भ-धारण करने में सर्वथा असमर्थ हो जाने से वंध्यापन दोष आ गया हो, तो गर्भपाल रस के साथ अष्टमूर्ति रसायन या वंगेश्वर रस मिलाकर देने से उक्त दोष मिट जाते हैं। स्त्री की बीजवाहिनी शक्ति कमजोर हो जाने से अथवा जननेन्द्रिय की विकृति से गर्भधारण नहीं होता हो या गर्भ-स्थापन ही न होता हो, तो ऐसी स्थिति में वंग भस्म या त्रिवंग भस्म के साथ गर्भपाल रस के सेवन से गर्भस्थापन में सहायता मिलती हैं।

कभी-कभी गर्भवती स्त्री को गर्भ-धारण से लेकर प्रसवावस्था पर्यंत अनेक तरह के उपद्रव होते रहते हैं। जैसे-भोजन करते ही वमन हो जाना, पेट में अन्न नहीं रहना, चक्कर आना, घबड़ाना, कमर में दर्द होना आदि लक्षण होने पर गर्भपाल रस के साथ कामदुधा रस, प्रवाल या

स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

किसी-किसी स्त्री को गर्भ-धारण होकर प्रसव भी अच्छी तरह हो जाने के पश्चात् प्रसूतिगृह में ही अथवा प्रसूतिगृह के बाहर होने पर दो-चार महीने बाद सन्तान की मृत्यु हो जाती है और यह मृत्यु एक तरह की आदत के रूप में परिणत हो जाती है, जिससे बार-बार सन्तान का मृत्युजन्य दुःख स्त्री को भुगतना पड़ता है। यह दोष रज-वीर्य की विकृति के कारण अथवा माता के दुग्ध-दोष से यकृत या उदर-विकार होने पर होता है। चाहे किसी भी दोष से यह विकृति क्यों न हो, गर्भपाल रस के सेवन से सब दोष दूर हो जाते हैं।

इसमें-हिंगुल योगवाही तथा रसायन है। नाग और बंग भस्म गर्भाशय पुष्ट करने वाली है। त्रिजात, जीरा तथा मुनक्का-ये तीनों पित्तशामक, बल्य और कोष्ठ में क्षोभ को दूर करनेवाले हैं। लौह भस्म बलदायक और गर्भाशय की विकृति को नष्ट कर पुष्ट करने वाली है। सफेद अपराजिता-वातवाहिनी नाड़ी को सुधारती है तथा गर्भ-स्थापन कर गर्भाशय को पुष्ट करती है। यह मूत्र प्रवर्तक तथा शीतवीर्य है। -औ.गु.धु.शा.

गर्भविनोद रस

सोंठ, कालीमिर्च, पीपल मिलित ३ तोला, शुद्ध हिंगुल ४ तोला, जावित्री ३ तोला, लौंग ३ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ तोला, लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर लें। पश्चात् अन्य भस्में एवं हिंगुल मिला जल के साथ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रख लें। -भै.रं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में दो बार सुबह-शाम जल या मधु के साथ अथवा मिश्री-मक्खन के साथ अथवा गोदुग्ध के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- प्रथम मास से ही इस रसायन का सेवन करने से गर्भावस्था में होनेवाले समस्त विकार जैसे वमन, जी मिचलाना, कण्ठ में दाह होना, ज्वर, अतिसार, अफरा आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह औषध उत्तम दीपन-पाचन, गर्भवर्द्धक, गर्भपोषक, गर्भस्थ शिशु एवं गर्भिणी को निरापद बनाये रखने में लाभप्रद है।

ग्रहणीकपाट रस

शुद्ध पारा २ तोला, शुद्ध गन्धक १० तोला, शुद्ध अफीम ४ तोला, कौड़ी भस्म ७ तोला, शुद्ध बच्छनाग विष १ तोला, काली मिर्च ८ तोला और शुद्ध धतूरे के बीज २० तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करे, फिर सब औषधियों को एकत्र मिला जल से खरल कर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। -र.यो.सा. ५१८

मात्रा और अनुपान-१-२ गोली सफेद जीरे का चूर्ण १ माशा और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से भयंकर अतिसार, संग्रहणी और पुराने अतिसार दूर हो जाते हैं, तथा आमविकार नष्ट हो अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। संग्रहणी की सब अवस्था में चाहे वह वातज, पित्तज या कफज जिस दोष से उत्पन्न हुई हो इसका प्रयोग किया जाता है विशेष कर पेट में दर्द हो, बार-बार दस्त लगे और जलन के साथ दस्त हो, दस्त में आँव का अंश आवे तथा मरोड़ के साथ दस्त हों, थोड़ा खून भी मिला हुआ हो तथा दस्त बहुत थोड़ा हो ऐसी अवस्था में ग्रहणी कपाट रस अच्छा काम देता है। इसके सेवन से आँव का पाचन हो, अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, जिससे पाचन-क्रिया ठीक होने लगती और रक्ताणुओं की वृद्धि हो जलीयांश भाग सूखने लगता है। इस रसायन में धतूरे के बीज और अफीम ये दोनों वेदनाशामक तथा ग्राही होने के कारण शीघ्र लाभ पहुँचाते हैं। इसको शंख भस्म के साथ मिलाकर सेवन करने से आवजन्य शूल

को शमन करने एवं आँव के पाचन करने में विशेष लाभ होता है। पक्वातिसार में इसके प्रयोग से स्तम्भन होता है।

ग्रहणीकपाट रस (दूसरा)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अतीस, बड़ी हर्रे, अभ्रक भस्म, यवक्षार, सज्जीखार, सुहागे की खील, मोचरस, बच और शुद्ध भाँग-समान भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना उसमें शेष दवाओं का चूर्ण मिला जम्बीरी नींबू के रस के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें। -यो.रं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली शहद, शंख भस्म, घी और मिर्च के चूर्ण के साथ या छाछ के साथ दें। बच्चों को आधी गोली दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सब प्रकार के अतिसार, ग्रहणी, ज्वर, शूल, अग्निमांद्य, अरूचि और आमवात रोग को नष्ट करता है। यद्यपि संग्रहणी तथा ग्रहणी रोग के लिए अनेक दवाओं का वर्णन है। उनमें पुरानी ग्रहणी या संग्रहणी के लिए तो पर्पटी कल्प का उपयोग करना उत्तम बतलाया गया है किन्तु नयी ग्रहणी में ३ प्रकार की दवाओं का उपयोग किया जाता है। यथा १ कज्जली (पारा-गन्धक) योग २-कज्जली-हिंगूल (पारा-गन्धक-हिंगुल) योग और ३-केवल सिंगरफ योग, इन तीनों में से आन्त्र दोष को दूर करने के लिए कज्जली और सिंगरफ योग और केवल आमाशय के विकार को नष्ट करने के लिए सिंगरफ प्रधान योगों का प्रयोग किया जाता है।

इस रसायन का उपयोग विशेषकर बच्चों के कफ-जन्य अतिसार में किया जाता है। जैसे- दस्त झाग (फेन) दार और सफेद हो, दस्त में अपचित अन्न गिरे, दस्त की मात्रा अधिक हो, आँत और गुदा की अवलियाँ कमजोर हो जाएँ, जिससे अनजान में भी दस्त हो जाएँ, कभी-कभी वमन भी हो जाये, ऐसी दशा में ग्रहणी कपाट रस देने से शीघ्र लाभ होता है।

किसी विशेष कारण से मानसिक आघात पहुँचने पर पाचक पित्त विकृत हो जाता है जिससे अन्नादिक ठीक तरह से नहीं पचता, ऐसी अवस्था में दस्त पतले होने लगते हैं। इसको शास्त्र में शोकातिसार के नाम से कहा गया है। ऐसा मनुष्य कहीं भी चैन से नहीं बैठ सकता। बार-बार उसकी मानसिक चिन्ता बढ़ती ही जाती है तथा अतिसार रोग में भी वृद्धि होती रहती है। ऐसी अवस्था में ग्रहणी कपाट रस से बहुत फायदा होता है।

इस रसायन में कज्जली जन्तुघ्न (कीटाणु-नाशक), रसायन तथा योगवाही है। अतीस बल को बढ़ाने वाला, यकृत के पित्त का स्राव करनेवाला, पाचक और ज्वरघ्न है। अभ्रक शक्तिवर्द्धक, रसायन और मानसिक विकार को नष्ट करनेवाला है तथा क्षय (राजयक्ष्मा) में भी हितकर है। तीनों क्षार पाचक और यकृत को उत्तेजित करनेवाले है। मोचरस संग्राही और स्तम्भक व भाँग संग्राही, दीपक तथा पाचक है। -औ.गु.ध.शा.

ग्रहणी गजकेशरी रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हिंगुल, लौह भस्म, जायफल, बेलगिरी, मोचरस, शुद्ध बच्छनाग, अतीस, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, धाय के फूल, भाँग, हर्रे, कैथ का गूदा, नागरमोथा, अजवायन, चित्रक, अनार की छाल, सुहागे की छाल, इन्द्रजौ, शुद्ध धतूरे के बीज और तालमखाना प्रत्येक दवा समान भाग तथा अफीम इन सबका चौथाई भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, तत्पश्चात् उनमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिला कर धतूरे के

पत्र-स्वरस में खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली जायफल के पानी और मधु के साथ अथवा छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से रक्त-शूल और आमयुक्त ग्रहणी, पुराना अतिसार और पीड़ायुक्त भयंकर विसूचिका(हैजा) नष्ट होती है।

संग्रहणी की प्रकोपावस्था में इस रसायन का उपयोग किया जाता है। विशेष कर वातज संग्रहणी में दर्द के साथ बारबार अधिक दस्त होना, अन्न ठीक से न पचना, अन्न का पाक खट्टा होना, शरीर की त्वचा रूक्ष हो जाना, कण्ठ और मुख सुखना, दृष्टिमांद्य, कानों में शब्द (सायं-सायं आवाज) होना, पसली, जंघा और पेडू में दर्द होना, कभी-कभी दस्त की वृद्धि के साथ वमन भी होने लगना, जिससे लोगों को हैजे की सम्भावना हो जाय, हृदय में दर्द हो, शरीर दुर्बल हो जाय, जीभ का स्वाद जाता रहे, गुदा में करतन जैसी पीड़ा उत्पन्न हो, द्रव पदार्थ खाने की इच्छा हो, मन में ग्लानि, अन्न पचने के बाद पेट फूल जाय, और भोजन करने पर मन की स्वस्थता का अनुभव हो, पेट में गाला-सा अनुभव हो, प्लीहा-वृद्धि की आशंका हो, तो ग्रहणी गजकेशरी रस का उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह रसायन उत्तम पाचक, दीपक तथा स्तम्भक है, अतिसार, प्रवाहिका एवं ग्रहणी में इन्हीं तीनों गुणों की प्रधान आवश्यकता होती है। अतः इन विकारों में इसके सेवन से बहुत अच्छा उपकार होता है।

गुल्मकालानल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टंकण, ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, प्रत्येक २-२ तोला, यवक्षार १० तोला, नागरमोथा, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, गजपीपल, हर्रे, बच और कूठ का चूर्ण प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना पश्चात् अन्य औषधियाँ मिला कर पित्तपापड़ा, नागरमोथा, सोंठ, अपामार्ग और पाठे के क्वाथ की पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर खरल में खूब घोटें। फिर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम हर्रे के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन गुल्म-रोग में प्रयोग किया जाता है। वात-प्रधान गुल्म रोग में तो इससे आश्चर्यजनक लाभ होता है।

गुल्म के कई भेद होते हैं यथा-रूग्णावस्था में आँतों के भीतर मलों का ग्रन्थि-रूप में हो जाना तथा आँत के भीतर वायु भर कर कभी ऊपर तो कभी नीचे की ओर गाँठ सदृश बन कर संचार करना-यह भी गुल्म का ही एक भेद है। पेट के अन्दर पतली-पतली मांस-नसों का एक दूसरे से मिलकर गांठ-रूप में बन जाना या केवल अफरा आदि के कारण गाँठ उत्पन्न होने को भी गुल्म कहते हैं। यही गुल्म विशेष प्रचलित है और गुल्म रोग में प्रायः लोग इसी गाँठ का अनुभव भी करते हैं। इसके अतिरिक्त एक 'रक्तगुल्म' भी होता है, जो अक्सर स्त्रियों को होता है और इसका उत्पत्ति स्थान बीजाशय या गर्भाशय है। अतएवं इसकी चिकित्सा के लिए शास्त्रकारों की आज्ञा है कि ***'मासे व्यतीते दशमें चिकित्स्य'*** अर्थात् दशम मास बीतने पर इसकी चिकित्सा करें। इसके सब लक्षण प्रायः पैत्तिक गुल्म की तरह होते हैं।

यह रसायन वातिक (वात प्रधान) गुल्म में अच्छा काम करता है। वातज गुल्म की गति कभी नाभि की ओर तो कभी बस्ति की तरफ होती है और कभी-कभी पसली की तरफ भी होती है। गुल्म कभी बड़ा, कभी छोटा मालूम होना, दर्द भी कभी कम, कभी ज्यादा, मलावरोध, अपानवायु का भी अवरोध होना, गला और मुख का सूखना, शरीर का वर्ण नीला, अथवा लाल

हो जाना, शीत ज्वर, हृदय, पसली कंधा और मस्तिष्क में पीड़ा होना, खाली पेट में गुल्म (गाँठ) का प्रकोप होना, और भोजन करने पर शान्त हो जाना इत्यादि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में गुल्म कालानल रस का प्रयोग गोघृत के साथ करने से फायदा होता है।

पित्तगुल्म की प्रारंभिक अवस्था में अर्थात् जब तक ज्वर, प्यास, मुख और अंगों में लाली आदि की उत्पत्ति न हुई हो, तब तक दूषित पित्त को मल द्वारा निकालने के लिये विरेचन रूप में इस रसायन का प्रयोग किया जाता है।

इसमें कज्जली योगवाही और रसायन है। ताम्र भस्म तीक्ष्ण, उष्णवीर्य और क्षार गुण के कारण कफघ्न है। यवक्षार कफघ्न और वातानुलोमक है। नागरमोथा आमपाचक है। पिप्पली रसायन और पाचक है। सोंठ व मरिच दीपक-पाचक है। हरीतकी सूक्ष्म विरेचक है। पाठा मूत्रल और कफघ्न है। -औ.गु.ध.शा.

कफज गुल्म में गोमूत्र के साथ देने से यह रसायन गुल्म को गलाने या पाचन कर निकालने में अच्छा कार्य करता है। पित्तज गुल्म में इस रसायन को शंख भस्म के साथ मिलाकर नींबू की सिकंजी के साथ देने से गुल्म का छेदन और भेदन करता है, साथ ही पित्त को भी प्रकुपित नहीं होने देता है।

गुल्मकुठार रस

नाग भस्म, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, कान्तलौह भस्म- प्रत्येक समान भाग और ताम्र भस्म सबके बराबर लें, इन्हें जम्बीरी नींबू के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम अदरक-स्वरस, सज्जीखार, यवक्षार चूर्ण के साथ अथवा शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन गुल्म, आमजन्य विकार हृदय के दर्द, पसली के दर्द और उदर शूल आदि रोगों को नष्ट करता है। यद्यपि इसमें पारद नहीं है, किन्तु रासायनिक भस्मों के यौगिक प्रयोग होने से इसका रसप्रकरण में पाठ है।

ज्यादा शोक-चिन्ता आदि करने या मन में आघात पहुँचने से पाचक पित्त कमजोर हो जाता है और पचन-क्रिया में गड़बड़ी होने लगती है। फिर मन्दाग्नि हो जाती है। मन्दाग्नि हो जाने से वात प्रकुपित हो गुल्म रोग उत्पन्न कर देता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी से बात करने की इच्छा न होना, मानसिक चिन्ता में वृद्धि, शरीर कान्तिहीन हो जाना, अपनी जिन्दगी से निराश हो जाना, दुर्बलता, मुख की कान्ति बदल जाना आदि लक्षणों से युक्त रोगी को इसका प्रयोग करना चाहिए।

पित्त प्रधान गुल्म में-ज्वर, प्यास की अधिकता, जल पीने पर तुरन्त फिर जल पीने की इच्छा बनी रहे, मुख और सम्पूर्ण देह में ललाई, पसीना ज्यादा आना, भोजन पचने की अवस्था में दर्द होना, गुल्म को छूने से विशेष दर्द होना, कभी-कभी गुल्म के दर्द से बेहोश हो जाना इत्यादि उपद्रव होने पर गुल्मकुठार रस का नागकेसर, इलायची, सौंठ और पीपल के क्वाथ के साथ दें। इससे पित्त की शान्ति हो इसके उपद्रव भी शान्त हो जाते है और गुल्म भी गल जाता है।

रक्तज गुल्म में भी इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। रक्तज गुल्म नवीन प्रसूता स्त्री के अपथ्य करने अथवा अपक्व गर्भपात होना या ऋतुकाल में अपथ्य भोजन करने से वायु प्रकुपित होकर उस स्त्री के रक्त (जो ऋतु के समय निकलनेवाला था) को गुल्मरूप (गाँठ के रूप) में बना देता है। इसके सब लक्षण पैत्तिक गुल्म की तरह ही है। विशेषकर-यह गुल्म एक जगह

स्थिर रहता है। मुख से पानी निकलना, मुँह पीला पड़ जाना, स्तन का अग्रभाग काला हो जाना इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे गर्भ का संदेह होने लगता है। क्योंकि गर्भावस्था में भी उपरोक्त लक्षण उत्पन्न होते हैं, किन्तु गर्भ में निम्नलिखित लक्षण विशेष होने से गर्भज्ञान हो जाता है। यथा गर्भ चार-पाँच महीने बाद इधर-उधर चलने लगता है और गुल्म एक जगह स्थिर रहता है तथा गुल्म बस्ति के समीप एक जगह चिपका हुआ रहता है, गर्भ के अंग-प्रत्यंगों का चालन (स्फुरण) होता है, गुल्म पिण्डाकार रहता है। इन भेदों से गुल्म और गर्भ के अन्तर की परीक्षा करने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। रक्तगुल्म का निर्णय हो जाने पर गुल्मकुठार रस का प्रयोग करना बहुत लाभप्रद होता है।

रक्त गुल्म की चिकित्सा दस माह बीतने पर करने को बताया है। कोई इसका आशय गर्भ से समझते हैं, किन्तु यह समझना उचित नहीं है, क्योंकि कभी-कभी ग्यारह महीने के बाद भी प्रसव होते देखा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ गर्भ के समय व्यतीत करने के आशय से ही नहीं लिखा गया। इसका आशय यह है कि गुल्म जब पक्वाशय में आ जाये, तब दवा दें। इसमें गुल्मकुठार रस किसी सौम्य औषध उशीरासव, सारिवाद्यासव अथवा अन्य सौम्य अनुपान के साथ प्रयोग करने से फायदा होता है।

पैत्तिक अम्लपित्त में- जब पेट मे गुड़-गुड़ आवाज हो, खट्टी डकार आती हो, जलन हो, मलावरोध हो, बार-बार अम्लपित्त के उपद्रव हों, ऐसी हालत में गुल्मकुठार रस का सेवन अदरक रस, शहद तथा सज्जीखार एवं यवक्षार के साथ करना चाहिए।

इस रसायन में-नाग भस्म बलदायक और रक्त प्रसादक है। बंग भस्म गर्भाशय को बल देता है तथा गर्भाशय में दूषित रक्तादि को अनुलोमन करके बाहर निकालती है। अभ्रक भस्म सब धातुओं का परिपोषण करता है और रसायन व योगवाही है। कान्त-लौह भस्म धातुओं को नियमित करता है तथा रक्त प्रसादक और शक्तिवर्द्धक है। ताम्र भस्म तीक्ष्ण, व्यवायी (शरीर में शीघ्र फैलनेवाला) और विकाशी है। जम्बीरी नींबू का रस-दीपक-पाचक तथा सुक्ष्मस्रोतोनुगामी है।-औ.गु.ध.शा.

चतुर्भुज रस

रससिन्दूर २ तोला, स्वर्ण भस्म, शुद्ध मैनशिल, लता कस्तुरी, शुद्ध हरताल प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर सबको एकत्र मिला ग्वारपाठे के रेस में एक दिन तक दृढ़ मर्दन करके गोला बनावें, पश्चात् उस गोले को एरण्ड के पत्तों में लपेट कर धान के ढेर मे तीन दिन तक दबा रहने दें, तीन दिन के पश्चात् निकाल कर एरण्ड के पत्तों को पृथक् निकाल, गोला को मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, दिन में दो बार सुबह-शाम शहद के साथ चटाकर ऊपर से त्रिफला क्वाथ या मांस्यादिक्वाथ पिलावें या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उचित अनुपान के साथ प्रयोग करने से वात संस्थान की विकृति से उत्पन्न सभी रोगों में उत्कृष्ट लाभ होता है। अग्नि बलानुसार इस रसायन के प्रयोग से बलीपलित विकार नष्ट होकर शरीर सुदृढ़ और सुन्दर बनता है। इसके अतिरिक्त अपस्मार, ज्वर, खाँसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षयरोग, हस्तकम्प, शिर:कम्प एवं सर्वांग कम्प, इन रोगों को विशेषत: नष्ट करता है। और वात-पित्त तथा कफोत्थित रोगों को नष्ट करता है। जो रोग समस्त प्रकार की औषधियों तथा वमन-विरेचन आदि पंचकर्म योग और मन्त्र तथा अन्य विविध उपचार आदि से

नष्ट नहीं हुए हैं, ऐसे असाध्य रोगों को भी यह रस निश्चय ही नष्ट करता है।

इस रसायन में उत्तेजक, आक्षेप निवारक, रसायन और सेन्द्रिय विषनाशक गुण हैं। अतः इस रस का वातवाहिनी नाड़ियों और वात केन्द्र पर तत्काल प्रभाव होता है। इस कारण से यह रस उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, हिस्टीरिया (अपतन्त्रक) और इतर वात प्रकोपजनित व्याधियों को नष्ट करता है। इसमें मानसिक प्रसन्नता मिलती है। उन्माद, हिस्टीरिया आदि में इस रस का जटामांसी क्वाथ या ब्राह्मी-अर्क या शंखपुष्पी स्वरस या शर्बत के साथ सेवन करने से अपूर्व चमत्कारी लाभ होता है।

गर्भाशय में दोष उत्पन्न होने की दशा में इस रस के सेवन के साथ शर्बत गुलबनप्सा दिन में दो बार पिलाने से उक्त दोष नष्ट हो जाते हैं। हिस्टीरिया, अपस्मार आदि में इस औषधि के सेवन के प्रथम दिन से ही अच्छा लाभ दृष्टिगत होने लगता है तथा निद्रा भी अच्छी आने लगती है और दौरे का वेग कम हो जाता है।

हृदय दौर्बल्य, शक्तिपात, श्वास-कृच्छ्रता, मूर्च्छा और सन्निपात में शीतांग की दशा में अदरक-रस और शहद के साथ देने से तत्काल लाभ होता है, रोगी की मूर्च्छा (बेहोशी) नष्ट होकर शीघ्र उष्णता आ जाती है और हृदय व्यवस्थित रूप से कार्य करने लगता है। इसी प्रकार यह रस प्रसूता के आक्षेप और बच्चों के धनुर्वात को भी नष्ट करने में उत्कृष्ट लाभकारी है।

कण्ठ नलिका, आमाशय, अन्त्र, मूत्रनलिका, पित्तनलिका और महाप्राचीरा पेशी आदि स्वाधीन मांस-पेशियों का आक्षेप होने पर इस रसायन के सेवन से सत्वर चमत्कारी लाभ होता है। महाप्रचीरा प्रभावित होने से हिक्का रोग में अच्छा लाभ होता है। इन रोगों में जटामासी के क्वाथ के साथ देना विशेष लाभकारी है।

हिस्टीरिया, जीर्णपक्षाघात, अर्दित, गृध्रसी और कटिवात आदि वातजन्य विकारों में निर्गुण्डी पत्र स्वरस और शहद के साथ देने से और ऊपर से रास्नादि अर्क पिलाने से अच्छा लाभ होता है। वृद्धावस्था की निर्बलता या व्याधिजन्य गात्रकम्प, शिरःकम्प आदि पर त्रिफला चूर्ण और शहद के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

विद्याध्ययन, मानसिक श्रम, चिन्ता, अधिक जागरण आदि कारणों से शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाता है और अग्निमांद्य, कास, मस्तिष्क में भारीपन, जीर्णज्वर, कोष्ठबद्धता, हस्तपाद मर्दन, अनुत्साह, बेचैनी, नाड़ी क्षीणता, स्वप्नदोष होना, वीर्य की निर्बलता आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में त्रिफला, पीपल और शहद के साथ इस रस के सेवन से अग्नि प्रदीप्त होकर मलावरोध नष्ट हो जाता है और मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति होकर मस्तिष्क बलवान हो जाता है तथा रोगी मनुष्य बलवान, पुष्ट और नीरोग हो जाता है। कोष्ठबद्धता न होने की दशा में ब्राह्मीघृत या ब्राह्मी अर्क के साथ सेवन कराना विशेष लाभप्रद है।

राजयक्ष्मा की द्वितीय अवस्था में यह रस अच्छा उपकारक है। प्रथमावस्था में जब शुष्ककास हो, उस दशा में इस रस का सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि कस्तुरी युक्त औषधि से किसी-किसी रोगी के कण्ठ में शुष्कता की वृद्धि होकर श्वास -नलिका में उत्तेजना पैदा हो जाती है, एवं क्षय की द्वितीयावस्था में शुष्क कास न रहने पर कफ बढ़ने लगता है। उस दशा में इस रस का सेवन वचा चूर्ण १ रत्ती और पान के रस के साथ सेवन कराने से क्षय के कीटाणु नष्ट होते हैं और कफ सरलता से बाहर निकल जाता है एवं ज्वर का निवारण होकर पाचन क्रिया प्रबल हो जाती है और शनैः शनैः रोगी को शांति मिलने लगती है, इस रस में स्वर्ण भस्म का मिश्रण होने से यह हृदय को अपूर्व बल-प्रदान करता है तथा रक्त प्रसादन कार्य में भी अच्छी सहायता करता है। कीटाणुनाशक और सेन्द्रिय विषनाशक है, त्वचागत पित्तविकारों का शमन करता है। स्वर्ण

में वृष्य गुण अधिक होने के कारण नपुंसकता को भी नष्ट करता है।

रससिन्दूर रसायन, उत्तेजक, कफनाशक, हृद्य और कीटाणु नाशक है स्वर्णभस्म शीतवीर्य, रसायन, हृद्य बुद्धिवर्द्धक, वृष्य, बृंहण, कीटाणुनाशक एवं विषनाशक है। मैनशिल हरताल उत्तेजक, कफ वातनाशक, आक्षेपघ्न, कीटाणुनाशक एवं विषनाशक है। कस्तुरी आक्षेपहर, उत्तेजक, निद्रापद है। ग्वारपाठा उदरशोधक है।

नोट- इस रस में रससिन्दूर, मैनशिल, हरताल आदि उग्र औषधियाँ होने के कारण पित्त प्रधान रोगी तथा उष्ण प्रकृति के रोगियों को इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक मोती पिष्टी या प्रवालपिष्टी आदि सौम्य औषधियों के साथ मिलकर करना चाहिए।

हृदय की गति बढ़ जाने और मस्तिष्क में रक्त-वृद्धि होने की दशा में इस रस का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

चतुर्मुख रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लौह भस्म और अभ्रक भस्म ४-४ तोला तथा स्वर्ण भस्म १ तोला लें। प्रथम पारा-गंधक की कज्जली बना उसमें अन्य भस्में मिला, घृतकुमारी रस में घोंटकर गोला बना, धूप में सुखा, एरण्ड-पत्र में लपेटकर, सूत से बाँधकर, धान की कोठी में तीन दिन तक रहने दें। चौथे दिन उसमें से निकाल कर महीन पीस कर १-१ रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली, सुबह-शाम त्रिफला चूर्ण १।। माशे से ३ माशे और शहद ६ माशे से १ तोला में मिला कर सेवन करें।

गुण और उपयोग- स्वर्ण, अभ्रक, कज्जली आदि के योग से बननेवाली यह दवा वातज रोगों के लिये बहुत फायदेमन्द है। मूर्च्छा, हिस्टीरिया, मृगी और उन्माद रोग पर इस दवा का अच्छा असर होता है। हृदय की बीमारियों को दूर करके हृदय को मजबूत करना इस रसायन का खास गुण है। क्षय, खाँसी, अम्लपित्त, पाण्डु और प्रसूत-ज्वर या प्रसूत के बाद होने वाली कमजोरी में इस दवा का प्रयोग करके लाभ उठाना चाहिए। यह पौष्टिक और रसायन भी है। इसीलिए किसी बीमारी के बाद की कमजोरी या साधारणतया होने वाली कमजोरी में इस दवा से अच्छा लाभ होता है।

क्षय रोग की सब अवस्था में- चतुर्मुख रस का उपयोग किया जाता है। क्षय रोग में जब ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई रहती है, तब क्षय रोग नाशक दवा देने में कुछ विचार भी करना पड़ता है कि कहीं गर्मी और भी न बढ़ जाये, किन्तु चतुर्मुख रस के लिए यह प्रश्न ही नहीं उठता है। ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई हो या मन्द हो गयी हो, प्रत्येक अवस्था में इसका उपयोग कर सकते हैं, क्योंकि इसमें स्वर्ण क्षयोत्पादक-कीटाणुओं को नाश करने वाला तथा अभ्रक धातुओं की निर्बलता दूर कर बलवान बनाने वाला है। यही दो गुण इस रसायन में प्रधान है। लौह आदि शक्तिवर्द्धक पदार्थों का भी सम्मिश्रण इसमें हैं।

चतुर्मुख रस का सबसे विशेष प्रभाव ग्रहणी, आन्त्र, बड़ी आँत और आमाशय आदि स्थानों पर होता है। अतएव क्षयोत्पादक कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न विषाक्त गैस से जब आँते दूषित हो निर्बल होने लगती हैं और अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती हैं, तब चतुर्मुख रस के प्रयोग से लाभ होता है। इस रसायन का प्रधान कार्य शारीरिक निर्बलता दूर कर रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट करते हुए शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाना है।

अधिक शोक-चिन्ता आदि कारणों से मानसिक क्षोभ हो जाता है। इससे पाचक पित्त कमजोर

होकर मन्दाग्नि तथा आमाशय की क्रिया शिथिल हो जाती है। ऐसी हालत में जो कुछ भी खाया-पिया जाता है सब आमाशय में यथावत् रह जाता है। भूख भी नष्ट हो जाती है, पेट भारी बना रहता है, अन्न में अरुचि, जी मिचलना, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, शरीर कमजोर हो जाना, रस-रक्तादि धातु क्रमशः क्षीण होना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी हालत में चतुर्मुख रस १ गोली, बड़ी हरें का चूर्ण ३ माशे के साथ मिला कर शहद (मधु) से दें, क्योंकि इसका असर पचनेन्द्रियों पर पड़ता है। अतः यह सर्वप्रथम पाचकपित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि दूर करते हुए उसे प्रदीप्त करता है, जिससे अन्नादिकों की पचन-क्रिया ठीक होने से रस-रक्तादि धातु भी अच्छी तरह धन कर शरीर क्रमशः हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

जठराग्नि मन्द हो जाने से अन्नादिक का पाचन अच्छी तरह नहीं होता है। इसका प्रभाव पक्वाशय पर भी पड़ता है। पक्वाशय शिथिल हो अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाता है, जिससे अन्नादिक के जल भाग और किट्ट भाग का विभाजन भी ठीक-ठीक नहीं हो पाता। ऐसी अवस्था में पेट भारी मालूम पड़ना, जी मिचलना, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, कुछ ज्वर भी हो जाना, भोजन करने की इच्छा न होना, अन्न में अरुचि तथा यकृत अशक्त होने से पित्तोत्पत्ति भी कम होती है। कभी-कभी अतिसार भी हो जाता है। रोगी कान्तिहीन हो जाता है और उसकी बोलने की शक्ति भी घट जाती है, ऐसे पित्तजन्य लक्षणों में चतुर्मुख रस के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

कभी-कभी आँतों की कमजोरी से अन्न सम्यक् रूप से पचित न होकर कुछ अपचित रूप में शेष रह जाता है। यह अपचित अन्न क्रमशः संचित होने लगता है और इसकी वजह से अनेक तरह के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द होना, पेट भारी बना रहना, बद्धकोष्ठता, अपान (अधो) वायु का रुक जाना, रोगी का उदास और बेचैन रहना-ऐसी अवस्था में भी इस रसायन का उपयोग करना चाहिए।

पाचक पित्त की निर्बलता के कारण अन्नादिकों का पाचन ठीक न होने पर रसादि धातु भी अच्छी तरह से नहीं बन पाती और धीरे-धीरे रस-रक्तादि धातुएँ कमजोर होने लगती है। ऐसी हालत में रोगी कमजोर, कान्तिहीन तथा उदास रहने लगता है। इन दोषों को दूर कर धातु-पुष्टि के लिए चतुर्मुख रस का उपयोग करना अच्छा है।

क्षय रोग की प्रारम्भिक अवस्था में- पित्त-प्रकोप के कारण आँख, हाथ, पैर, छाती तथा पसली आदि में जलन होना, शरीर में दर्द तथा सर्वांग में दाह आदि लक्षण होने पर चतुर्मुख रस बहुत कम मात्रा में प्रयोग करना चाहिए। साथ में प्रवाल चन्द्रपुटी का भी सम्मिश्रण कर देने से बहुत उत्तम और शीघ्र लाभ होता है।

प्रमेह रोग में- मन्दाग्नि होने के कारण ज्यादा आराम से बैठने, परिश्रम नहीं करने, बराबर बैठे रहने आदि कारणों से प्रमेह रोग होता है। इसके प्रारम्भ में मूत्र (पेशाब) अधिक होता है, प्यास ज्यादा लगती, पानी पी लेने पर तुरन्त फिर पानी पीने की इच्छा होती, कमजोरी बढ़ने लगती है, हाथ-पैरों में जलन, पसीना बहुत आना आदि लक्षणों में चतुर्मुख रस का उपयोग करने से शीघ्र ही लाभ होता है।

इस रसायन में-कज्जली योगवाही और रसायन है। लौह और अभ्रक शक्तिवर्द्धक तथा धातुओं को पुष्ट करने वाला है, सुवर्ण राजयक्ष्मा के कीटाणुओं का नाश करने वाला, शक्तिवर्द्धक एवं रक्त को प्रसन्न करने वाला है। भावना द्रव्य घृतकुमारी या अग्निदीपक, पाचक, बलवर्द्धक, रसायन और पुष्टिकर है। -औ.गु.ध.शा.

इस रसायन के सेवन से कठिन वात रोगों एवं ज्ञानवाही तन्तुओं की निर्बलता, मस्तिष्क

विकार, अपस्मार, उन्माद, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) आदि विकारों में बहुत उत्तम लाभ करता है।

चन्द्रकला रस

शुद्ध पारा, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, मोती पिष्टि २ तोला, कुटकी, गिलोय सत्व, पित्तपापड़ा, खस, छोटी पीपल, श्वेत चन्दन (नेत्रबाला), अनन्तमूल, वंशलोचन प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला लेवे। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करें, पीछे उसमें भस्में तथा अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला कर नागरमोथा, मीठा अनार, दूध, केवड़ा, कमल, सहदेई, शतावरी, पित्तपापड़ा इनका क्वाथ या स्वरस बना प्रत्येक की १-१ भावना और मुनक्का क्वाथ की ७ भावनाएँ दें। प्रत्येक भावना में १-१ दिन मर्दन करें और छाया में सुखाकर पुनः दूसरी भावना दें। अन्त में एक तोला कपूर मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य- मूल ग्रंथ पाठ में वंशलोचन के साथ गोली बनाने का उल्लेख है, किन्तु उसमें परिमाण कम-बेशी हो जाता है, अतः कुटकी आदि के समान ही १ तोला वंशलोचन भी मिलाकर पश्चात् भावनाएँ देकर गोली बनाने से वंशलोचन के गुणों में भी विशेष वृद्धि हो जाती है, जिससे औषधि में सौम्य गुणों की अभिवृद्धि होती है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली सुबह-शाम, ठंडा जल, दाड़िमावलेह, अनार का रस, उशीरासव, अशोकारिष्ट या पेठे के स्वरस से दिन में दो बार दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन-समस्त पित्तज और वात-पित्तज रोगों का नाशक तथा आन्तरिक एवं बाह्यदाह को शान्त करने वाला है। शरद ऋतु तथा ग्रीष्म ऋतु में यह विशेष उपयोगी है। यह रस ज्वर, अन्तर्दाह, प्यास की अधिकता, जलन, तापमान की अधिकता, स्वेदाधिक्य, रक्तचाप-वृद्धि, हृदय की दुर्बलता, घोर संताप, भ्रम, मूर्च्छा, स्त्रियों का श्वेत प्रदर व रक्त प्रदर, रक्त-पित्त का वमन और मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, कामला रोग को नाश करता है।

चन्द्रकला रस का विशेष प्रभाव रक्तवाहिनी नाड़ी तथा रक्त-संचालिनी क्रिया पर होता है। रक्त में जब दूषित पित्त मिल जाता है, तब रक्त का दबाव बढ़ जाने से भी भीतर जलन होना, शरीर के ऊपरी भाग में भी गर्मी मालूम पड़ना, चक्कर आना, मूर्च्छा होना, रक्त-विकृति तथा रक्तवाहिनी नाड़ियाँ कमजोर हो अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा कर देती है, ऐसी अवस्था में रक्तवाहिनी नाड़ी, दूषित पित्त तथा रक्त को सुधारने के लिए चन्द्रकला रस का प्रवाल चन्द्रपुटी के साथ मधु में मिला कर या मोसम्बी रस के साथ उपयोग करना बहुत गुणकारी है।

पैत्तिक (पित्तजन्य) मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में- जलन के साथ थोड़ा पेशाब न होना, पेट में दर्द होना, मूत्रनली में दाह तथा अन्तर्दाह होना-ऐसी स्थिति में चन्द्रकला रस का उपयोग यवक्षार और मिश्री चूर्ण के साथ करने से विशेष लाभ होता है। मन्दाग्नि के कारण आमाशय में कच्चा अन्न (अपरिपक्व अन्न) रह जाने से कुछ दिनों के बाद उसमें विषाक्त गैस उठती है और इसका उर्ध्वगमन होता है। अतएव मस्तिष्क में भी इसके विकार का असर पहुँचता है, जिससे कभी-कभी चक्कर, बेहोशी आदि उपद्रव हो जाते हैं। यह विषाक्त गैस (बाष्प) रक्त को दूषित कर ज्वरादिक उपद्रव भी उत्पन्न कर देती है। इन उपद्रवों को दूर करने के लिये चन्द्रकला रस का त्रिफला क्वाथ के साथ उपयोग किया जाता है।

रक्तचाप (रक्त दबाव) में- जब पित्त की तीक्ष्णता के कारण रक्त में उफान उत्पन्न होता है, तब रक्त ऊपर की ओर चलता है, जिसमें निम्नलिखित लक्षण होते हैं। यथा- दोनों आँखें लाल हो जाना, लाल वर्ण और कुछ गम्भीर-सा हो जाना, मस्तिष्क की शिरायें विशेष कर कपाल

पर रक्त की मोटी-मोटी शिरायें उभर आना, दाह और चक्कर उत्पन्न होना, अण्ट-सण्ट बोलना, ज्वर हो जाना, रक्तवाहिनी शिराओं का मोटा हो जाना आदि। इस तूफानी रक्त के दौरे के लिए चन्द्रकला रस को मोती पिष्टि के साथ देने से बहुत सरलता के साथ नीचे उतार देता है तथा पित्त को शान्त करते हुए दूषित रक्त को भी सुधार देता है।

पित्तोल्वण (पित्ताधिक्य) सन्निपात ज्वर में- ज्वर की गर्मी इतनी बढ़ जाती है कि रोगी बर्दाश्त नहीं कर सकता। कभी-कभी इससे रोगी बेहोश भी हो जाता है। आँखें सुर्ख (लाल) हो जाती हैं, कपाल की नसें तन जाती हैं और खून उभर आने से दर्द होने लगता है, जिससे रोगी बार-बार गर्दन चलाता रहता है। बार-बार गर्दन चलाने से कुछ आराम अनुभव होता है। शिर का दर्द इतना तेज होता है मानो कोई हथौड़ा से मार रहा हो या भाला से खोद रहा हो। रोगी व्याकुलता से बोलने में भी असमर्थ हो जाता है। ऐसी भयंकर अवस्था में सन्निपात की जो उचित दवा हो वह तो करें ही, किन्तु उसके साथ चन्द्रकला रस भी सारिवादिहिम या पर्पटादि क्वाथ को हिम विधि से बना कर उसके साथ देते रहने से इन बढ़े हुए दोषों को शीघ्र शान्त कर देता है।

रक्तस्राव- शरीर में गर्मी विशेष बढ़ जाने से देह में जलन, शिर में दर्द तथा आँखें लाल होकर नाक-मुँह आदि से रक्त-स्राव होने लगता है। गर्मी के कारण रक्त बिल्कुल पतला हो जाता है। कभी-कभी वह स्राव रुकना कठिन हो जाता है। ऐसे लक्षण होने पर चन्द्रकला रस १ गोली, पीपल की लाख १ रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, मिश्री १।। माशें में मिला दूध के साथ दें। ऊपर से उशीरासव या वासारिष्ट बराबर जल मिलाकर पिलावें।

राजयक्ष्मा की दूसरी अवस्था में खाँसी विशेष हो, ज्वर की मात्रा भी अधिक हो, रक्त-वमन हो, छाती में दर्द, कमजोरी बराबर बढ़ती ही जाये ऐसी अवस्था में रक्तस्राव को रोकना तथा केवल रोगी की शक्ति की रक्षा करना प्रथम कर्तव्य होता है। इसके लिये चन्दकला रस १ गोली, प्रवाल चन्द्रपुटी १ रत्ती, गिलोयसत्व ४ रत्ती में मिलाकर, दाड़िमावलेह अथवा शर्बत अनार के साथ देने से पूर्ण फायदा होता है।

रक्तपित्त में- पित्त की तीक्ष्णता के कारण रक्तवाहिनी नाड़ियों की श्लैष्मिक-कला विकृत होकर फूट जाती है, फिर उसके द्वारा रक्त बहने लगता है। यह रक्त मुँह और नाक के मार्ग से निकलता है। यह रोग कभी स्वतंत्र रूप से और कभी उपद्रव रूप से भी हो जाता है। यदि इस रोग के साथ उदर में वेदना, दर्द होकर वमन द्वारा रक्त गिरना, साथ ही देह में जलन, प्यास, पेट में जलन आदि पित्त-प्रकोपजन्य लक्षण हो तो चन्द्रकला रस का वासा, दूर्वा, कुष्माण्ड, आँवला इनमें से किसी एक के स्वरस तथा मिश्री में मिलाकर उपयोग अवश्य करें, इससे बहुत फायदा होता है।

रक्तप्रदर में- जैसे पुरुष वर्ग में आजकल प्रतिदिन प्रमेह तथा शुक्र विकार की वृद्धि होती जा रही है, उसी प्रकार स्त्री वर्ग में भी रक्त-प्रदर, श्वेत प्रदर, अत्यार्तव, रजःकृच्छ्रता आदि व्याधियों की बाढ़ सी आ गयी है। स्त्रियों के गर्भाशय, बीजकोष या अपत्यपथ (योनी) में किसी प्रकार की विकृति के कारण दर्द के साथ मासिक-धर्म होने या विशेष मात्रा में रजःस्राव होने से रक्त विकृत हुआ रहता है। अतः हाथ-पाँव में जलन, शरीर कमजोर होते जाना, उठने-बैठने में आँखों के सामने चिनगारियाँ छूटना, चक्कर या अंधेरी आना, भूख कम लगना, आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति में चन्द्रकला रस और पीपल की लाख के चूर्ण के साथ, अशोक की छाल के क्वाथ अथवा अशोकारिष्ट के साथ (बराबर जल में मिलाकर) देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

पैत्तिक (पित्तजन्य) प्रमेह में- पित्त से उत्पन्न होने वाला अथवा पित्त-प्रधान प्रमेह कई तरह

के होते हैं, उनमें कालमेह-जिसमें काला पेशाब होता है। नीलमेह-जिसमें नीलवर्ण का पेशाब होता है। हारिद्रमेह-जिसमें हल्दी के रंग के समान पीला पेशाब होता है। इन रोगों में पित्त की तीक्ष्णता से सर्वांगदाह, प्यास की अधिकता, बार-बार जल पीने पर भी तृषा की निवृत्ति नहीं होती, पेशाब की मात्रा में कमी, किन्तु पेशाब अधिक होना, कण्ठ सूखना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में चन्द्रकला रस आँवला स्वरस के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। इससे पित्त की तीक्ष्णता कम होकर रक्तस्थित और त्वचास्थित दाह कम हो जाता है और धीरे-धीरे इससे होने वाले उपद्रव भी शान्त होने लगते हैं।

इस रसायन में- कज्जली विकाशी-व्यसायी (फैलने वाली) और रसायन है। ताम्र पित्तसारक और पित्त स्थान को शक्ति प्रदान करने वाला तथा यकृत में से अधिक पित्तस्राव को रोकने वाला है, अभ्रक-रसायन एवं सूक्ष्म स्रोतों में प्रवेश करनेवाला, पित्तशामक और वातवाहिनी नाड़ियों के क्षोभ को नाश करने वाला तथा वातशामक है। नागरमोथा आम को पचाने वाला तथा मूत्र लाने वाला है। केवड़ा-मूत्रल और दाह शान्त करने वाला है। शतावरी-शक्तिवर्द्धक और मूत्र लाने वाली है। कुटकी-पित्तस्राव कराने वाली और यकृत को शक्ति देनेवाली तथा ज्वरनाशक है। गुडूची (गिलोय) सत्त्व-पित्त और दाह-शामक तथा मूत्र लाने वाला है। पिप्पली-रसायन है। चन्दन-मूत्रल और दाह-नाशक है। मुनक्का- पित्तशामक, हृदय को बल देने वाला, शक्ति बढ़ाने वाला तथा दाह-नाशक है। वंशलोचन-शीतवीर्य एवं शक्तिवर्द्धक द्रव्य है। इन सब द्रव्यों के संम्मिश्रण एवं भावनाओं के संयोग से यह रस अतीव सौम्यगुणसम्पन्न बन जाता है। पित्तप्रधान विकारों में इसका प्रचुर प्रयोग प्रचलित है।

-औ.गु.ध.शा. से किंचित् परिवर्तित

चन्द्रकान्त रस

रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, तीक्ष्ण लौह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध गन्धक-सब समान भाग लेकर एक दिन स्नुही (सेहुण्ड) के दूध में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली सुबह-शाम, गोदन्ती हरताल भस्म और मधु के साथ सेवन करें अथवा बादाम के हलुवा में मिलाकर खाकर ऊपर से गरम दूध पीयें। जलेबी की चाशनी में मिलाकर चाटने और ऊपर से गरम जलेबी और दूध पीने से बड़ा अच्छा लाभ होता है।

गुण और उपयोग- रससिन्दूर, अभ्रक, तीक्ष्ण लौह, ताम्र आदि भस्मों के योग से बने इस रस के सेवन से वात-पित्त कफादि किसी भी दोष से उत्पन्न शिरोरोग दूर हो जाता है। अर्धावभेदक (आधाशीशी) सूर्यावर्त (सूर्य के साथ घटने-बढ़ने वाला सिर-दर्द) में इसके सेवन से निश्चय लाभ होता है। शरीर में रक्त की कमी के कारण होने वाली मस्तिष्क में शून्यता अथवा सिर-दर्द में भी प्रवाल चन्द्रपुटी के साथ इसको मधु में मिलाकर या दूध के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। जीर्ण प्रतिश्याय में भी कपाल में कफ संचित होकर सिर-दर्द उत्पन्न कर देता है, उसमें इसे गोदन्ती भस्म के साथ मिला शर्बत गुलबनप्सा के साथ देने से उत्तम लाभ होता है। अनन्तवात नामक शिरोरोग में भी यह उत्कृष्ट लाभदायक औषध है।

चन्द्रशेखर रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, मिर्च २ तोला, सुहागे की खील २ तोला, मिश्री ७ तोला-इन सबको एकत्र कर खरल में घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, अदरक-रस और मधु अथवा ठण्डे जल के साथ दें। रक्त-पित्त में आँवले के मुरब्बे से और बच्चों को माता के दूध से दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से जीर्ण ज्वर, रक्त पित्त, श्वास-खाँसी आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। बच्चों की खाँसी, ज्वर, पसली चलना आदि बीमारियों में इसका उपयोग बहुत लाभदायक है।

इस रसायन का विशेष उपयोग पित्तश्लेष्मा ज्वर में-शरीर में दाह, तन्द्रा, अरुचि, कभी-कभी अंग में दाह हो और कभी किसी अंग में ठण्ड लगे ऐसे लक्षण उत्पन्न होने पर होता है। इस ज्वर में कफ रुक जाता है और पित्त पतला होकर कफ से मिल जाता है। ये दोनों आमाशय से स्रोतों को रोक देते हैं, जिससे आमाशय का पित्त मन्द होकर ज्वर उत्पन्न कर देता है। ऐसे ज्वर में चन्द्रशेखर रस देने से तुरन्त लाभ होता है, क्योंकि इसमें सुहागा की खील कफघ्न होने की वजह से दूषित कफ को निकालकर आमाशयस्थ पित्त को जागृत कर देता है। फिर यह जागृत जठराग्नि अपना-कार्य करने में समर्थ हो जाती है और ज्वरादि भी कम होने लग जाते हैं।

इस रसायन में- कज्जली कीटाणुनाशक, रसायन और विकाशी है। मिर्च-तीव्र पाचक और उत्तेजक है। सुहागा-आक्षेप नाशक, पाचक, कफ पतला करनेवाला और प्रसन्नताकारक है।

चन्द्रशेखर रस (गोरोचन युक्त)

अभ्रक भस्म, लौह भस्म, ताम्र भस्म, मण्डूर भस्म, कान्त लौह भस्म, शुद्ध टंकण, गोरोचन, सुगन्धवाला चूर्ण- प्रत्येक १-१ भाग लेकर एकत्र मिला, श्वेत अपराजिता के स्वरस या क्वाथ में एक दिन मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में तीन बार सुबह-दोपहर और शाम को अपराजिता के रस या सुदाब के रस अथवा सम्भालु के रस के साथ दें या अदरक रस और शहद के साथ अथवा माता के दूध के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उचित अनुपान के साथ प्रयोग करने से बच्चों के समस्त प्रकार के रोग यथा-दूध का वमन होना, हरे-पीले फटे दस्त होना, पेट में अफरा हो जाना, सूखा रोग, जीर्ण ज्वर, रक्त पित्त, श्वास, खाँसी, स्तन्यदोष, सन्निपात, अजीर्ण, अतिसार, शुल, जुकाम (नाक बहना), बच्चों का धनुर्वात, डब्बा रोग (पसली चलना) आदि रोगों को शीघ्र नष्ट करता है तथा इसके सेवन से बच्चे हृष्ट-पुष्ट एवं निरोग रहते हैं।

चन्द्रशेखर रस (गोरोचन रहित)

अभ्रक भस्म, लौह भस्म, ताम्र भस्म, मण्डूर भस्म, कान्त लौह भस्म, ताम्र भस्म, मण्डूर भस्म, कान्त लौह भस्म, शुद्ध टंकण, सुगंधवाला चूर्ण-प्रत्येक एक-एक भाग लेकर एकत्र मिला श्वेत अपराजिता के रस में पूरे एक दिन दृढ़ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर सुरक्षित रख लें।

(र.यो.सा. वाला पूर्वोक्त योग गोरोचन छोड़ कर)

मात्रा और अनुपान- आधी-आधी गोली दिन में दो-तीन बार आवश्यकतानुसार अदरक-

रस और शहद के साथ या आँवले के मुरब्बा के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से बच्चों के समस्त प्रकार के जीर्ण ज्वर, रक्तपित, श्वास, कास इन रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। रक्तपित्त रोग में आँवला मुरब्बा के साथ देने से अच्छा लाभ करता है। इसके अतिरिक्त बालशोष, बच्चों के यकृत विकार, अजीर्ण, अग्निमांद्य, रक्ताल्पता आदि विकारों को शीघ्र नष्ट करता है।

चन्द्रामृत रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तोला, सुहाग की खील २ तोला, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, चव्य, धनियाँ, जीरा, सेंधा नमक-प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य भसमें मिलाकर घोंटे। फिर शेष द्रव्यों को कूट-कड़छन चूर्ण बना, मिलाकर अडूसे के पत्तों के स्वरस की भावना देकर घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ गोली शहद में मिला कर चटावें और ऊपर से बकरी-दूध, गोजिव्हादि क्वाथ, द्राक्षारिष्ट या शर्बत जूफा पिलावें। यदि खाँसी में कफ के साथ रक्त आता हो तो १ गोली इस रस को, ५ रत्ती नागकेसर का चूर्ण और ५ रत्ती खून खराबे के चूर्ण के साथ मिलाकर १ तोला लाल कमल के स्वरस के साथ देवें। खाँसी के साथ श्वास भी हो तो लाल-कमल स्वरस के साथ देवें अथवा १ गोली चन्द्रकान्त रस के साथ ५-७ रत्ती सोमलता का चूर्ण मिला कर शहद के साथ देवें। शुष्क कास में मिश्री चूर्ण या मुलेठी चूर्ण के साथ मिलाकर देने से शीघ्र लाभ करता है। शुद्ध टंकण अथवा वासा, कण्टकारी, अपामार्ग इनमें से किसी के क्षार के साथ भी लाभकारी है।

गुण और उपयोग- यह पाँचों प्रकार की खाँसी के लिये लाभदायक है। जिस खाँसी में खून आता हो तथा खाँसते-खाँसते दाह, प्यास एवं मूर्च्छा आ जाती हो, उस हालत में इस दवा का अच्छा असर होता है। यदि जीर्ण ज्वर के साथ खाँसी हो और मन्दाग्नि, काम आदि की भी शिकायत हो तो इस रसायन का प्रवाल चन्द्रपुटी और तालिसादि चूर्ण में मिला शर्बत गुलबनप्सा के साथ अवश्य प्रयोग करें, इससे कफ नरम होकर आसानी से निकलने लगता है, रक्त आना भी बन्द हो जाता है, दाह और प्यास की शान्ति होकर रोगी को आराम हो जाता है। अनुपान-भेद से सभी प्रकार के कास तथा श्वास रोग में यह उत्तम लाभकारी सुप्रसिद्ध औषध है।

चन्द्रांशु रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, बंग भस्म प्रत्येक दवा समान भाग लेकर पारा- गन्धक की कज्जली बना, पश्चात् अन्य भस्में मिला कर घृतकुमारी के रस में घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, जीरा-क्वाथ, गो-दुग्ध, जटामांसी- क्वाथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से गर्भाशय-दोष, योनि-शूल, योनि में पीड़ा एवं दाह होना तथा योनि की स्थान-भ्रष्टता (अपने स्थान से टल जाना, विकृत हो जाना आदि), योनि में खाज (खुजली) चलना तथा रजोदोष, कामवासनाओं की शान्ति न होने के कारण उत्पन्न हिस्टीरिया आदि विकार शीघ्र दूर हो जाते हैं। इससे गर्भाशय बलवान हो जाता है और उसमें गर्भाशय की शक्ति पैदा होती है।

चन्द्रोदय रस (रसगन्धकवंगाभ्रकल्प)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, बंग भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येकी समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें बंग भस्म और अभ्रक मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस में घोंटकर गोला बना, सम्पुट में बन्द कर साधारण गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार जम्बीरी नींबू के रस में घोंटकर ७ पुट दें। फिर घीकुमारी और चित्रक-स्वरस की पृथक्-पृथक् ७-७ भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बना सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, जीरे के चूर्ण और गुड़ के साथ जीर्णज्वर में घृतकुमारी रस के साथ, कास-श्वास में त्रिफला क्वाथ के साथ, उन्माद में गुर्च (गिलोय) क्वाथ के साथ और धनुर्वात में दशमूल-क्वाथ के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

गुण और उपयोग- यह चन्द्रोदय रस स्वर्णमिश्रित चन्द्रोदय रस से पृथक् है। अतएवं इसके गुण में भी अन्तर है। यह चन्द्रोदय रस गन्धक, बंग और अभ्रक का यौगिक रासायनिक कल्प है। इसका उपयोग शुक्रक्षय-विकार में उत्पन्न होने वाले अग्निमांद्य, बद्धकोष्ठ, जीर्णज्वर, उन्माद, अपस्मार आदि में होता है।

विषमज्वर में- कभी-कभी विषम ज्वर अधिक दिन तक हैरान करता है, जिससे दोष और दूष्य दोनों निर्बल हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि शरीर में रोग-निरोधक शक्ति नहीं रहती, जिससे अनेक तरह के अन्य रोग भी उपद्रव रूप में उत्पन्न होने लगते हैं। इसमें शुक्रक्षय भी होता है, अत: मन्दाग्नि हो जाता है, रस-रक्तादि धातुओं की कमी के कारण शरीर का रंग पीला हो जाने पर इस चन्द्रोदय रस के देने से विशेष लाभ होता है। इसके सेवन से ज्वर, मन्दाग्नि और धातु-क्षय आदि दोष नष्ट होते हैं।

कभी-कभी विशेष शुक्रक्षय होने से श्वासवाहिनी और फुफ्फुस अशक्त हो खाँसी तथा श्वास की वृद्धि हो जाती है। ऐसे कास-श्वास को दूर करने और रोगी को स्वस्थ बनाने के लिये इस चन्द्रोदय रस का उपयोग करना चाहिए।

विशेष काल तक काम-शास्त्र का अध्ययन करने या स्त्री विषयक दूषित भावनाओं का बराबर विचार-मनन-चिंतन आदि करने सिवाय कुछ काम नहीं करना, ऐसे विचार करने वाले कामोन्मत हो जाते है और उनके सामने चाहें कोई भी स्त्री सुंदर वेश में आ जाये तो उसके प्रति विचार दूषित होने लगते हैं और कभी-कभी दूषित विचार प्रकट भी हो जाता है। इस तरह की दूषित भावना अधिक दिन तक रहने से कामेच्छा प्रबल हो जाती है, किन्तु इनकी पूर्ति न होने से मन और शरीर दोनों दूषित हो जाते हैं। बार-बार इच्छा करने पर इसकी पूर्ति नहीं होने से मानसिक आघात हो उन्माद हो जाता है। युनानियों ने इनका नाम 'प्रेमोन्माद' रखा है।

इसमें रोगी को मनोविभ्रम हो जाता और बराबर स्त्री-विषयक ही बातें करना रहता है। जब कभी खूब हँसता और कभी रोने-चिल्लाने लगता है। बार-बार चुम्बन करने की चेष्टा करता है। यदि कभी शुक्र स्राव हो जाता तो रोगी बहुत व्याकुल (बेचैन) हो जाता है। इस रोग का मूल कारण किसी सुन्दर स्त्री को देखना या रासते चलती औरतों को देखकर अधिक चिन्तन करना है। ऐसी हालत में यह चन्द्रोदय रस अच्छा काम करता है।

हिस्टिरिया में- जब दौरे बार-बार होते हों, स्त्री कमजोर और दुबली होती जाती हो, ऐसी दशा में चन्द्रोदय रस देने से हिस्टिरिया के आक्षेप (झटके-दौरे) बंद हो जाते हैं, तथा शारीरिक शक्ति भी बढ़ने लगती है।

धनुर्वात में- जो धनुर्वात शारीरिक अभिघात अर्थात् शरीर में किसी प्रकार की चोट लगने अथवा अत्यन्त रक्तस्राव होने के कारण उत्पन्न होता है। ऐसे धनुर्वात में विशेषतया इसका उपयोग शोणित-स्थापना या शोणित स्तम्भन के लिए किया जाता है। यह चन्द्रोदय रस मानसिक दोषनाशक, आक्षेप को नष्ट करनेवाला और वायु की गति को नियमित करने वाला तथा शुक्रक्षय-विकार को नष्ट करने वाला है।

इस रसायन में- कज्जली रसायान व कीटाणुनाशक तत्व है। बंग-शुक्र-दोषनाशक, रसायन, बलवर्द्धक तथा मेदोदोष-शामक है। अभ्रक रसायन, वातवाहिनी नाड़ी-शामक और धातुओं को पुष्ट करने वाला तथा उन्माद रोग नाशक है। जम्बीरी नींबू का रस पाचक तथा दीपक है। ग्वारपाठा जीवनीय, रसायन, मृदुविरेचक, शोणित को प्रसादन करने वाला है। चित्रक रक्त का दबाव नियमित करनेवाला और वातवाहिनी नाड़ी शामक तथा तीक्ष्ण व पाचक है।-औ.गु.ध.शा.

चन्द्रकान्ति रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, चन्द्रिकारहित, रौप्य भस्म, शुद्ध हरताल, कांस्य भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म-प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग, बंग भस्म ९ भाग लेकर प्रथम पारा- गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य भस्मों को एकत्र मिला कर मर्दन करें और आम की छाल का क्वाथ, आँवला-स्वरस या क्वाथ, कुल्थी का क्वाथ लज्जालु-स्वरस, बड़ की जटा का क्वाथ, सेमल की जड का स्वरस या क्वाथ इनकी प्रत्येक की क्रम से ३-३ दिन भावना देकर दृढ़ मर्दन करें पश्चात् सुखाकर मर्दन कर जितना सब द्रव्यों का वजन हो उतना जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, जावित्री ये प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर सूक्ष्म कपड़छन किया हुआ इनका चूर्ण मिला आँवले के रस से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर सुरक्षित रख ले।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली आवश्यकतानुसार दिन में दो बार आँवला-स्वरस और शहद के साथ अथवा मधु से या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट होते हैं। यह अत्यन्त वृष्य तथा रसायन है। क्षीण पुरुषों की क्षीणता नष्ट करके उनकी अंग-वृद्धि करता है और ध्वजभंगादि रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। मूत्राघात, अश्मरी, अत्यन्त दारुण मधुमेह रोग, उग्र मूत्रातिसार आदि रोगों को नष्ट करता है, तथा पाँचों प्रकार के कास रोग, उग्र राजयक्ष्मा रोग, वन्हिमांद्य, भगन्दर आदि रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है, जिस प्रकार इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट करता हैं। समस्त प्रकार के अम्लपित्त, आठों प्रकार के शूल रोगों में भी इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है। वर्तमान काल में धातुक्षीणता रोग के प्रसार का प्रमुख कारण अश्लील काम मुद्राओं के चित्र देखना, सिनेमा, खेल आदि तथा अश्लील गाने सुनना है। अश्लील साहित्य पढ़ने तथा काम विषयक चिन्तन करने से मानसिक भाव क्षुब्ध होकर मन और मस्तिष्क को अशान्त एवं दुर्बल बना देते हैं। परिणामस्वरूप शुक्रस्थान में उष्णता एवं शुक्रवाहिनी नसों में उत्तेजना उत्पन्न होकर स्वप्नदोष या धातुक्षीणता उत्पन्न हो जाती है। इसे मिटाने के लिए इस रस का सेवन तथा विचारों की शुद्धि सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

चिन्तामणि चतुर्मुख रस

रससिन्दूर ४ तोला, लौह भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक २-२ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला लेकर प्रथम रससिन्दूर को खरल में डालकर मर्दन करें, पश्चात् अन्य भस्में मिलाकर ग्वारपाठे के रस में दृढ़ मर्दन कर गोला बनावें और उस गोले को एरण्ड के पत्तों में लपेटकर तीन दिन तक धान के

ढेर में दबा कर रखें। तीन दिन के पश्चात् निकाल कर एरण्ड के पत्तों को गोले के ऊपर से हटाकर गोले को खरल में दृढ़ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बनाकर, सुखा कर सुरक्षित रखें।
-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, त्रिफला चूर्ण और मधु के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- रस सिन्दूर और स्वर्ण मिश्रित इस योगवाही रसायन का सेवन करने से बलीपलित प्रकार के वातज रोग नष्ट होते हैं। अपस्मार, अति कठिन घोर उन्माद तथा अन्य वायु से होनेवाले रोग-पक्षाघात, अर्दित, अपतन्त्रक, दण्डापतानक, धनुर्वात, आक्षेपक आदि कठिन वात रोगों को नष्ट करता है।

विशेषतया इसके प्रयोग से हिस्टीरिया (अपतंत्रक), मृगी और उन्माद रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा हृदय रोगों को नष्ट कर उसको बलवान बनाता है, क्षय, कास, प्रमेह, अम्लपित्त, पाण्डु, प्रसूत ज्वर या प्रसूत के बाद होनेवाली निर्बलता में इसके सेवन से अच्छा उपकार होता है। यह औषधि पौष्टिक एवं रसायन है, अत: बीमारी के बाद की कमजोरी या किसी अन्य कारणवश होने वाली निर्बलता में इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है। अधिक शुक्रक्षय के कारण प्राप्त हुई निर्बलता में वंग भस्म और प्रवाल भस्म के साथ इस रसायन के प्रयोग से विशेष उपकार होता है। वात रोगों में महारास्नादि क्वाथ, रास्नासप्तक क्वाथ, लशुन, पक्व दुग्ध या रसोन घृत आदि वातनाशक अनुपान के साथ तथा उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया आदि मन और मस्तिष्क के विकारों में मांस्यादि क्वाथ के अनुपान के साथ या महाचैतस घृत अथवा पञ्चगव्य घृत या ब्राह्मी घृत एक तोला को एक पाव दूध में मिला कर उसके साथ देने से उत्तम लाभ करता है।

चौंसठप्रहरी पीपल

छोटी पीपल का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण १० तोला, पीपल बड़ी का फाण्ट १० तोला लेकर चूर्ण में मिलाकर, खरल में डाल कर ६४ प्रहर तक मर्दन करें पश्चात् छाया में सुखाकर पीस करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती तक, दिन में दो बार शहद या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसमें पीपल के समस्त गुण रहने के साथ-ही-साथ पीपल के रस में ६४ प्रहर तक घुटाई होने के कारण गुणों में विशेष वृद्धि हो जाती है। यह औषध वात एवं कफजनित विकार, कास, श्वास, अग्निमांद्य, अरूचि, अम्लपित्त, हिचकी, पाण्डु, अर्श, शूल आदि विकारों में बहुत उत्तम लाभ करता है। इसके अतिरिक्त प्रसूत ज्वर, शीतज्वर, कफ ज्वर, जीर्ण ज्वर आदि में केवल इसका अथवा अन्यान्य औषधियों के अनुपात रूप में अधिकतर उपयोग होता है। यह औषध प्रसूता स्त्री के स्तन्य (दुग्ध) की वृद्धि करता है। हृदय की शिथिलता में मधु के साथ देने से तत्काल बल मिलता है। बेहोशी में नस्य रूप में इसके प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। जीर्ण ज्वर तथा यक्ष्मा के काययुक्त जीर्णज्वर की अवस्था में बसन्तमालती के साथ इसका प्रयोग सर्वप्रसिद्ध एवं शीघ्र फलदायक है।

चिन्तामणि रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, बंग भस्म, शुद्ध शिलाजीत सूखा और अम्बर प्रत्येक १-१ तोला, स्वर्ण भस्म चौथाई तोला, मोती पिष्टि और रौप्य भस्म प्रत्येक आधा-आधा तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली कर उसमें अम्बर, शिलाजीत तथा अन्य भस्में

मिलाकर चित्रक की जड़ के क्वाथ में तथा भाँगरे के स्वरस में १-१ दिन मर्दन करें। पीछे अर्जुन वृक्ष की छाल के क्वाथ में सात दिन मर्दन करके १-१ गुंजा (रत्ती) की गोलियाँ बनाकर, उसे छाया में सुखाकर शीशी में रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, शहद में चटा कर ऊपर से बला (बरियार) की जड़ का क्वाथ पिलावें।

वक्तव्य- खमीरे गावजवाँ, आँवला मुरब्बा, सेब का मुरब्बा, दूध, च्यवनप्राश आदि अनुपानों के साथ में सेवन कराने से भी यह रसायन बहुत अच्छा लाभ करता है।

गुण और उपयोग-सब प्रकार के हृदय रोग, हृदय शूल और हृदय की बढ़ी हुई गति में अत्यन्त लाभदायक है। वातवाहिनियों की निर्बलता, हिस्टीरिया आदि में इसका प्रयोग करना उत्तम है। हृदय रोग के साथ यकृत-शोथ और उदर-रोग हो तो इसके साथ आरोग्यवर्द्धिनी बटी मिला कर देना चाहिए। इससे अच्छा लाभ होता है। रक्तचाप वृद्धि और हृदय की दुर्बलता के कारण बढ़ी हुई हृदय की धड़कन को मिटा कर दिल को मजबूत बनाने और रक्तचाप को शमन करने में प्रवालचन्द्रपुटी या मोती पिष्टि के साथ इसके सेवन से बहुत श्रेष्ठ लाभ होता है।

जयमंगल रस

पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, ताम्र भस्म, बंग भस्म, सोनामक्खी भस्म, सेंधा नमक, काली मिर्च-प्रत्येक एक-एक तोला, स्वर्ण भस्म २ तोला, कान्तलौह भस्म तथा चाँदी भस्म १-१ तोला लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना फिर उसमें अन्य भस्में तथा कूट कपड़छन किया हुआ काष्ठौषधियों का चूर्ण मिला सब को एकत्र घोंटकर धतूरे के पत्ते का रस, हरसिंगार के पत्तों का रस, दशमुल का क्वाथ और चिरायते के क्वाथ की ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर सुरक्षित रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली जीरे के चूर्ण और शहद या गुडूची स्वरस और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- स्वर्ण, लौह, बंग, ताम्र, हिंगुलोत्थ, पारद, स्वर्णमाक्षिक जैसे प्रधान उपादानों के कारण उत्तम गुणकारी होने से यह रस बहुत उपयोगी है। पुराने बुखार के लिए तो यह बहुत प्रसिद्ध दवा हैं। यह दोषों का शमन कर, दिमाग में शान्ति पहुंचाता है। हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस, मूत्रपिण्ड आदि सभी शारीरिक अंगो पर इसका अच्छा प्रभाव होता है। सभी प्रकार के पुराने बुखार, बिगड़ हुए ज्वर, धातुगत ज्वर और ज्वरों के उपद्रव इसके सेवन से शान्त हो जाते हैं। अनुपान भेद से सभी विकारों में इस रसायन का उपयोग किया जाता है, यह बल-वीर्य की वृद्धि कर शरीर की रस-रक्तादि धातुओ को पुष्ट करता है। किसी भी रोग के कारण हुई कमजोरी में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है।

जीर्णज्वर में- शरीर में अधिक दिन तक ज्वर रह जाने के कारण रस-रक्तादि धातु तथा दोष-दूष्य आदि निर्बल हो जाते हैं। फिर इनमें रोगों के उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं को रोकने की शक्ति नहीं रहती तथा हृदय कमजोर हो जाता है। अत: विष प्रधान दवा देने में संशय होता रहता है। ऐसी अवस्था में जय-मंगल रस बहुत शीघ्र लाभ करता है।

कभी-कभी अचानक इतने जोर से आदमी डर जाता है कि उसके कारण बुखार आ जाता है। इससे हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। वातवाहिनी नाड़ियाँ अस्थिर हो जाती हैं, जिससे शरीर काँपने लगता है और मन चंचल हो जाता है। कभी-कभी तो उन्माद-सा हो जाता है। ऐसी भयंकर परिस्थिति में जयमंगल रस के उपयोग से अच्छा लाभ होते देखा गया है। इसमें स्वर्णमाक्षिक और रजत भस्म तथा स्वर्ण भस्म के संयोग के कारण यह मस्तिष्क के लिये उत्तम शान्तिप्रद और बलकारक है। बंग और स्वर्णमाक्षिक का संयोग धातुओं की परिपुष्टि के लिये

उत्कृष्ट लाभकारी है। ताम्र-भस्म, सैंधव नमक और काली मिर्च का सम्मिश्रण दोषों का पाचन कर अग्नि को प्रदीप्त करने में उत्तम कार्य करता है। धतूरा-पत्र-रस, हरसिंगार, दशमूल क्वाथ, चिरायता क्वाथ की भावनाओं के कारण यह रस-रक्तादि धातुओं में सूक्ष्म रूप से अवस्थित रोगोत्पादक दोषों का उल्लेख न कर उनको निर्मूल एवं शोधन तथा शमन करने में उत्कृष्ट प्रभावशाली महौषधि है।

जलोदरारि रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनशिल, हल्दी, शुद्ध जमालगोटा, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, चित्रक की छाल इनका चूर्ण प्रत्येक का २-२ तोला लेवें, प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना मैनशिल मिला कर रख लें, फिर अन्य औषधियों के कूट-कपड़छन किए हुए महीन चूर्ण मिला, दन्तीमूल, सेंहुड़ और भाँगरे के रस की सात-सात भावनाएँ देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली पुनर्नवा रस अथवा दशमूल-क्वाथ के साथ दें। उदर तथा यकृत रोग में घृतकुमारी रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- कज्जली, मैनशिल और जमालगोटे के प्रधान सम्मिश्रण के कारण यह रस परम संशोधक और तीव्र रेचक है। जलोदर में संचित जल को यह बाहर निकालता है और सुखाता भी है, साथ ही जिस कारण से जल-संचय होता है, उस कारण को भी नष्ट कर देता है। यकृत विकार और उदर रोगों में इसका अच्छा प्रभाव होता है।

जलोदरारि रस (दूसरा)-पीपल,ताम्र भस्म और हल्दी का चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध जमालगोटे के बीज सब को बराबर लेकर सब को एक दिन थूहर (सेंहुड) के दूध में घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -र.का. धे.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग-यह रसायन उपरोक्त से तीव्र विरेचक है। इसकी एक गोली लेने से ही अत्यन्त पतले दस्त होने लगते हैं, जिससे जलोदर कम हो जाता है। शरीर अत्यन्त दुर्बल होना, हृदय में दर्द, पतले दस्त होना, पेट फूला रहना, पाण्डुता, आँखें पीली या नीली-सी हो जाना, सर्वांग शोथ होना, इन लक्षणों से जलोदर हो जाने की आशंका हो जाती है, या जलोदर हो ही जाता है। ऐसी अवस्था में पेट में संचित जल तथा सर्वांग शोथ दूर करने के लिये इस रस का प्रयोग करना अच्छा है।

पहले यकृत व प्लीजा की वृद्धि को जलोदर उत्पन्न हो जाता है, और वह जलोदर कफ प्रधान हो तो इसमे निम्न लक्षण होते हैं-पेट में भारीपन, सर्वांग में जड़ता, पेशाब हो किन्त सफेद और चिकना, मलावरोध, सूजन विशेषकर पाँवों में-आदि लक्षण होने पर जलोदरारि रस का सेवन करना चाहिए। इससे (दस्त) जुलाब होकर सूजन कम हो जाती है तथा जल निकल जाने से पेट भी छोटा हो जाता है।

इस रसायन में- पिप्पली कटुरसात्मक, पाचक और सूक्ष्म स्रोतोनुगामी है। ताम्र तीव्र, पाचक, यकृत-पित्तस्रावकारक और यकृत तथा प्लीहा वृद्धि को कम करता है। हल्दी-रक्त-प्रसादक, हृदय को प्रसन्न करने वाली और कुछ स्तम्भक है। सेंहुड़-शोथहर, तीव्र-रेचक, तीक्ष्ण, उष्ण और व्यवायी है। जयपाल-तीव्र रेचक होने से दूषित मलों और जल के संचय को शरीर से बाहर निकाल कर उत्तम संशोधन एवं रोग का शमन करता है। -औ.गु.ध.शा.

जवाहर मोहरा नं. १ (स्वर्ण-मुक्ता-कस्तूरी-अम्बर-युक्त)

माणिक्य पिष्टी १ तोला, पन्ना पिष्टी २ तोला, मुक्ता पिष्टी २ तोला, प्रवाल पिष्टी ४ तोला, संगेयशव पिष्टी ४ तोला, कहरवा पिष्टी २ तोला, वर्क चाँदी १ तोला, वर्क सोना १ तोला, दरियाई नारियल का चूर्ण ४ तोला, अबरेशम कतरा हुआ २ तोला, जदवार (निर्विषी) का चूर्ण २ तोला, जावित्री कस्तूरी १ तोला, तथा अम्बर २ तोला लेवें। इन्हें खूब उत्तम पत्थर के खरल में (जो घिसने वाला न हो ऐसे खरल में) प्रथम सब पिष्टियाँ और चूर्ण डालकर उसमें सोने-चाँदी के वर्क एक-एक करके मिलावें और मर्दन करते रहें- जब सब वर्क मिल जाएँ, तब अर्क गुलाब थोड़ा-थोड़ा डालकर १४ दिन तक बराबर मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें। अथवा बिना गोली बनाये ऐसे ही सुखा कर महीन पीसकर शीशी में भरकर रख लें।-सि.यो.सं. (द्वि. संस्करण)

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली या एक-एक रत्ती दिन में २ बार शहद या खमीरें गावजबाँ के साथ दें। ऊपर से दूध या केवड़ा या गावजबाँ अथवा वेदमुश्क का काढ़ा या गावजवाँ के फूलों का अर्क पिला दें।

गुण और उपयोग- यह हृदय को बल देनेवाला उत्तम योग है। दिल की घबराहट, हृदय की धड़कन, हृदय की दुर्बलता से थोड़ा भी चलने पर दम भर जाना और दिल की धड़कन आदि में इससे बहुत फायदा होता है।

जवाहर मोहरा नं. १ विशेष-गुण-धर्म- स्वर्ण, रौप्य, अम्बर, कस्तूरी आदि बहुमूल्य एवं उत्कृष्ट गुणकारी उपादानों से निर्मित यह महौषधि हृदय और मस्तिष्क को बल देने से अपूर्व गुणकारी है। इसके सेवन से दिल की धड़कन नाडी की क्षीणता और अनियमितता, स्वेद अधिक आना, हृदय की दुर्बलता के कारण थोड़ा-सा भी चलने पर दम फूलना (श्वास भर जाना) और दिमाग की कमजोरी से होनेवाले भ्रम, विस्मृति आदि लक्षणों में इस औषधि के सेवन से अतीव उत्कृष्ट लाभ होता है।

महाधमनी या हृदय की धमनी की रक्ताभिसरण क्रिया में प्रतिबंध होने पर हृदय में शूल उत्पन्न हो जाता है और रोगी अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। अतः सर्वप्रथम शूल को शमन करके, पश्चात् हृदय को सबल बनाने और भावी आक्रमण की उत्पत्ति को रोकने के लिये जवाहर मोहरा नं. १ का सेवन उत्कृष्ट गुणकारी है। इसके प्रयोग से हृदय बलवान होकर भावी आक्रमण की संभावना नष्ट हो जाती है। हृदय रोग में जब तक रोगी का हृदय सबल न हो तब तक पूर्ण विश्राम करना परमावश्यक है।

बार-बार १।।-२ वर्ष के अन्दर ही सन्तानोत्पत्ति होने पर माता अत्यन्त कमजोर और निर्बल हो जाती है। परिणामस्वरूप सन्तान भी कमजोर होती है। इनके संरक्षण के लिये प्रवाल पिष्टी मिला कर जवाहर मोहरा नं. १ का सेवन विशेष लाभकारी है। उचित औषधि सेवन न कराने की दशा में माता हृदय रोग से पीड़ित हो जाती है और होनेवाली सन्तान का भी हृदय कमजोर हो जाता है।

जवाहर मोहरा (साधारण)

माणिक्य पिष्टी, पन्ना पिष्टी, मुक्ता पिष्टी-ये प्रत्येक २-२ तोला, प्रवाल पिष्टी ४ तोला, संगेयशव पिष्टी ४ तोला, कहरवा पिष्टी २ तोला, चाँदी वर्क १ तोला, दरियाई नारियल का चूर्ण ४ तोला, अबरेशम कतरा हुआ २ तोला, जदवार (निर्विषी) चूर्ण २ तोला, लेकर चाँदी के वर्कों को छोड़कर शेष सब द्रव्यों को (सब पिष्टियाँ, भस्में और चूर्ण) खरल में डालकर १-१ करके चाँदी के वर्क मिलावें, फिर थोड़ा-थोड़ा, गुलाब का अर्क मिलाकर १५ दिन तक मर्दन करें, पश्चात् सुखा कर महीन पीस करके सुरक्षित रखें। -सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक, दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार शहद के साथ या खमीरा गावजवाँ के साथ दें, ऊपर से दूध या केवड़ा अथवा वेदमुश्क का काढ़ा या गावजवाँ के फूलों का अर्क पिलावें।

गुण और उपयोग- माणिक्य, पन्ना, मोती, कहरवा, चाँदी का वर्क आदि उत्तम द्रव्यों से निर्मित इस औषधि के प्रयोग से समस्त प्रकार के हृदय रोग और समस्त प्रकार के मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं। महाधमनी की रक्त परिभ्रमण क्रिया में रुकावट सम्बन्धी विकार हृदय-शूल, धड़कन, घबराहट, नाड़ी-क्षीणता आदि विकारों को नष्ट कर हृदय को बलशाली एवं सुपुष्ट बनाता है। इसके अतिरिक्त सन्निपात, मानसिक आघात, अतिरिक्तस्राव, आगन्तुक आघात, जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, मोतीझरा आदि के अधिक दिनों तक रहने की दशा में शक्तिपात होकर हृदय निर्बल हो जाता है और नाड़ी की गति तेज, निद्रानाश, पाचन-क्रिया की कमी, शरीर कृश होना, आदि लक्षण होते हैं। इनमें गिलोय सत्व के साथ इस औषधि का सेवन करने से उक्त दोष, नष्ट होकर शीघ्र लाभ होता है तथा थोड़े ही दिनों में रोगी स्वस्थ हो जाता है।

ज्वरांकुश रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध धतूर-बीज, सोंठ, शुद्ध टंकण, शुद्ध हरिताल प्रत्येक समान भाग लेकर, प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना लें। फिर शेष औषधियों को कूट-कपड़छन कर, महीन चूर्ण बना, कज्जली मिलाकर, भृंगराज के रस से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली अदकर-स्वरस और मधु से दें। कफ ज्वर में पीपल-चूर्ण और मधु से देवें। पित्त ज्वर में सितोपलादि चूर्ण के साथ, मलेरिया से सुदर्शन अर्क क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग-यह रसायन ज्वर में होने वाली वेदना का नाश करता और वात-पित्त-कफ द्वंद्वज तथा मलेरिया से उत्पन्न होने वाले ऐकाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक, ज्वर, संतत और सतत ज्वर के साथ होने वाले पतले दस्त, अपचन, पेट में वायु भर जाना तथा पेट फूल जाना आदि विकारों को दूर करने के लिये बहुत प्रसिद्ध दवा है।

वात प्रधान ज्वर में- ज्वर कभी कम तथा कभी ज्यादा होना, निद्रा न होना, शरीर जकड़ जाना, हाथ-पैरों में दर्द होना तथा जोड़ों में विशेष पीड़ा होना, शरीर काँपना, माथे में दर्द, देह में आलस्य बना रहना, दाँती बँध जाना, बार-बार रोंगटे खड़े हो जाना (रोमांच होना) मुँह का स्वाद नष्ट हो जाना, बद्धकोष्ठ (दस्त नहीं आना), पेशाब का रंग लाल-काला होना, पेट में दर्द तथा वायु भर जाना, सुखी खाँसी आना, अण्ट-सण्ट बोलना आदि लक्षण उपस्थित होने पर तुलसी रस और मधु में मिला कर ज्वरांकुश रस देने से अच्छा लाभ होता है।

कफ प्रधान ज्वर में- शरीर जकड़ जाना, ज्वर भीतर-ही-भीतर बना रहना, शरीर में आलस्य, अंग टूट रहा है ऐसा अनुमान होना, कपड़ा हटाने पर ठण्ड मालूम पड़ना, जी मिचला कर मुँह में पानी भर आना, पेट में भारीपन बना रहना, वमन होना, आग के पास या सूर्य की रोशनी में रहने की इच्छा होना आदि लक्षण होने पर पान के रस और मधु में मिलाकर ज्वरांकुश रस देने से कफ-विकार दूर होकर उससे उत्पन्न होने वाले उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

कफ-वात ज्वर में- शरीर गीला बना रहना, सन्धियों (जोड़ों) में तथा गर्दन और सिर में दर्द होना, निद्रा ज्यादा, देह भारी, मस्तक भारी हो जाना, नाक से पानी गिरना, खाँसी होना, पसीना

व विकलना तथा शरीर में दाह आदि लक्षण होने पर अदरक रस और मधु में मिला कर यह रसायन देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है।

इसी तरह सन्तत और सतत ज्वर तथा विषम ज्वर एवं जीर्ण ज्वरादि में भी इसका प्रयोग उचित अनुपानों के साथ किया जाता है।

इस रसायन में- कज्जली कीटाणुनाशक, कोष्ठ-दोषनाशक और योगवाही है। बच्छनाग ज्वरनाशक, नाड़ी की बढ़ी हुई गति को शमन करने वाला और वेदना (पीड़ा) शामक है। शुद्ध हरताल कीटाणुनाशक तथा विकृत दोषों के लिए प्रतिविषात्मक द्रव्य है। धतूर-बीज वेदना (पीड़ा) शामक, वातनाशक और आँतों के पिच्छिल स्राव को रोकने वाला तथा कफघ्न है। पिकर पाचक, अग्नि-प्रदीपक, कुछ पसीना लाने वाला और उत्साह बढ़ाने वाला है। अतएव यह आलस्य का नाश करता तथा अग्नि-प्रदीपक भी है। पारी से आने वाला मलेरिया बुखार में ज्वर आने के ६ घण्टे पूर्व से दो-दो घण्टे के अन्तर से इसकी एक-एक गोली बताशे में रखकर, चबाकर गरम पानी पी लेने से दो-तीन बार के प्रयोग से ज्वर का वेग आना बन्द हो जाता है। - औ.गु.ध.शा.

ज्वरमुरारि रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक,शुद्ध हिंगुल-प्रत्येक १-१ तोला, लौंग ६ माशा, काली मिर्च ४ तोला, शुद्ध धतूर-बीज ८ तोला, निशोथ १ तोला लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें पश्चात् हिंगुल मिला सब द्रव्यों को एकत्र मर्दन कर दन्तीमूल क्वाथ की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बनाकर, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- ज्वर में अजीर्ण, अपचन और अतिसार भी हो तो इस रस का उपयोग करना चाहिए। इसके उपयोग से दोषों का पाचन होकर दोषों का परिपाक हो जाता है, जिससे ज्वर भी छूट जाता तथा शरीर की ऐंठन आदि भी अच्छी हो जाती है। गुल्म, आमवात और उदर रोग में भी इसका उपयोग किया जाता है।

इस रसायन का विशेषतया उपयोग- आमजनित ज्वर और लगातार ज्यादा दिन तक बराबर आने वाले ज्वर के कारण धातुओं की निर्बलता दूर कर ज्वर दोष को मिटाने के लिए तथा रस-रक्तादि धातुओं में लीन ज्वर-दोष, अर्थात् रस-रक्तगत ज्वर, विषम ज्वर तथा जीर्ण ज्वरादि में प्रयोग किया जाता है। यह रसायन जीर्ण ज्वर को दूर कर धीरे-धीरे धातुओं की पुष्टि करता है। दोषों के पाचन कराने के लिये नवीन अथवा तरुण ज्वर में भी इसके उपयोग से अत्यन्त लाभ होता है।

पित्त-वृद्धि के कारण- प्यास ज्यादा लगना, पतले दस्त होना, सर्वांग में जलन, हाथ-पैर के तलवों में जलन तथा ऐंठन, कफ के साथ रक्त आना, साधारणतया थूक में भी रक्त आना, वमन, चक्कर, बेहोशी, प्रलाप, शरीर के जोड़ों में दर्द होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर ज्वरमुरारि को प्रवालचन्द्रपुटी अथवा चन्द्रकला रस में मिलाकर होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर ज्वरमुरारि को प्रवालचन्द्रपुटी अथवा चन्द्रकला रस में मिलाकर अडूसा के क्वाथ या दूर्वा-स्वरस के साथ अथवा शंखाहुली चूर्ण के साथ देने से बहुत फायदा करता है।

इसी तरह सम्पूर्ण बदन में दर्द होना, श्वास की गति में वृद्धि, गर्मी से मन में बेचैनी, पतले दस्त और वमन होना, नाड़ी की गति क्षीण और शरीर में कमजोरी विशेष होना आदि लक्षण होने पर ज्वरमुरारि रस प्रवाल पिष्टी और श्रृंग भस्म के साथ दें। अनुपान में कटसरैया (पियाबाँसा) का स्वरस या क्वाथ दें अथवा शर्बत गुलबनप्सा को जल में मिलाकर पिलावें।

पुराने विषम ज्वर में- विशेष कर पारी से आने वाले ज्वर में या जो ज्वर कभी शाम, क दोपहर, कभी रात में आये, उपद्रव का भी कोई ठीक न हो ऐसे विषमज्वर में और जिसमें ज्व आने पर प्यास ज्यादा लगे, समूचे बदन में दर्द हो तथा ज्वर का वेग कम होने पर रोगी स्वस्थ हो जाये इत्यादि लक्षणयुक्त विषमज्वर में रोगी निर्बल तथा कान्तिहीन हो जाता है, मलावरोध और मन्दाग्नि हो जाती है तथा पचन क्रिया में भी गड़बड़ी हो जाती है। ऐसी दशा में ज्वरमुरारि रस, अर्क सुदर्शन अथवा सुदर्शन चूर्ण के फाण्ट के साथ देने से तथा शरीर में लाक्षादि तैल की मालिश करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

ज्वरारि-अभ्र

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला, धतूर- बीज २ तोला और त्रिकटु ५ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना फिर कपड़छन कि हुए अन्न औषधियों के महीन चूर्ण को मिलाकर जल से घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियां बना सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम दें। जीर्णज्वर और विषम ज्वर में हरसिंगार के पत्तों के रस में मधु मिलाकर अथवा तुलसी के पत्तों का रस और मधु या गिलोय का रस और मधु से दें। लीवर या तिल्ली में शरपुंखा की जड़ के क्वाथ से दें। मन्दाग्नि में नींबू का रस मिलाये हुए जल से शोथ में पुनर्नवा रस और मधु से श्वास-कास में वासा (अडूसा) स्वरस के साथ मधु मिलाकर देना चाहिए।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, सन्निपात ज्वर, विषम ज्वर, धातुगत विषमज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म, शोथ, हिचकी, श्वास-कास, अग्निमांद्य और अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं।

वात-पित्त या कफ के प्रकोप से या सन्निपात से होने वाले ज्वर में यह दवा बहुत फायदेमन्द हैं, पुराने ज्वर, धातुगत ज्वर और विषम ज्वर में यह दवा फायदेमन्द है। तिल्ली, लीवर, मन्दाग्नि, श्वास-कास और सूजन में भी इसके सेवन से लाभ होता है। दोषों का पाचन करने, अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विष को नष्ट करने, अग्नि को बढ़ाने एवं वेदना शमन करने तथा बल बनाये रखने के लिए इस रस का अत्युत्तम उपयोग होता है।

ज्वरशूलहर रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक ये प्रत्येक ५-५ तोला लेकर सूक्ष्म कज्जली बनावें, इस कज्जली को एक मजबूत लोहे की कड़ाही में रखें, पश्चात् इस कज्जली पर शुद्ध ताम्र की एक कटोरी या तश्तरी अधोमुख (उल्टी) रखकर सन्धि बन्द करके धूप में सुखा लें। पश्चात् इस कज्जली युक्त पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे अंगूठे के बराबर मोटी लकड़ी की मन्द मन्द अग्नि दो प्रहर तक जलावें। स्वांग-शीतल होने पर उतारकर सिद्ध रस को निकाल सूक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती तक पान का रस और शहद के साथ आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग करने से समस्त प्रकार के ज्वरों में उत्कृष्ट लाभ होता है। इसके सेवन से चातुर्थिक आदि समस्त विषम ज्वर, नवीन ज्वर, सन्निपात ज्वर नष्ट होते हैं। इसके सेवन से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। यदि इस रस का सेवन ज्वर से अस्पष्ट

लक्षण (पूर्वरूप) होने की अवस्था में किया जाये तो उपद्रव शान्त होकर ज्वर होने का सन्देह नहीं रहता। ज्वर में दोषों की आम अवस्था में होने वाले कोष्ठशूल अथवा सर्वांगशूल में इसके प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है।

जीर्णज्वरांकुश रस

रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, नाग भस्म, ताम्र भस्म, कान्तलौह भस्म, वैक्रान्त भस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध टंकण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ और कूठ (पुष्करमूल) ये सब द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम रससिन्दूर को खरल में डालकर सूक्ष्म मर्दन करें, पश्चात् अन्य भस्में और अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहैड़ा, आँवला, नागरमोथा, भाँगरा, निर्गुण्डी इनके स्वरस या क्वाथ में पृथक्-पृथक् ३-३ दिन तक मर्दन करें, गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रखें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार जल या शहद अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

वक्तव्य- ग्रन्थ के मूलपाठ में एक माशा की मात्रा लिखी हैं, किन्तु तीक्ष्ण द्रव्यों से निर्मित इस रसायन की इतनी मात्रा अधिक है, २ रत्ती की मात्रा उचित है। अत: २-२ रत्ती की ही गोली बनाना उचित है।

गुण और उपयोग- इस रसायन का सेवन करने से समस्त प्रकार के जीर्ण ज्वर नष्ट होते हैं और क्षय, कास, मन्दाग्नि, पाण्डूरोग, हलीमक, गुल्म, उदररोग और अर्दित रोग को यह नष्ट करता है तथा ग्रहणी, बवासीर और अनेक प्रकार के अरोचक रोगों में लाभकारी है। धातुगत जीर्णज्वर के धातुओं में लीन सूक्ष्म अंश को नष्ट कर शरीर में कान्ति तेज, बल और वीर्य की वृद्धि करता है। इसमें रससिन्दूर, वैक्रान्त भस्म तथा अभ्रक भस्म का संयोग त्रिदोष नाशक एवं बल्य तथा हृदय एवं मस्तिष्क को शान्तिदायक है। शुद्ध हिंगुल एवं शुद्ध गन्धक कीटाणुनाशक तथा शुद्ध विष ज्वर नाशक, स्वेदप्रवर्तक तथा हृदय की गति का नियमन करना है। ताम्र भस्म अग्नि को सन्दीपन करती है एवं कान्तलौह भस्म रस-रतादि की अभिवृद्धि एवं रक्ताणुओं का निर्माण करती है, नाग भस्म बल और वीर्य का पोषण करती है, कूठ तथा शुद्ध टंकण पाचक तथा दोषों का लेखन करके विस्रंसन करने का कार्य करते हैं।

ज्वरसंहार रस

सौंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, कुटकी, नीम की छाल, कूठ (पुष्करमूल), नागरमोथा, सफेद सरसों, इन्द्रजौ, सेंके हुए सुहागे की खील, रक्तचन्दन (नेत्रबाला), अतीस, समीरा (इसके अभाव में काली जीरी) प्रत्येक २-२ तोला तथा रससिन्दूर या शुद्ध हिंगुल सबके सम्मिलित चूर्ण से आधा लें। प्रथम रससिन्दूर को बारीक पीस लें, पीछे अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिला कर अदरक, तुलसी और निर्गुण्डी के पत्तों के रस में ३-३ दिन मर्दन करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली या एक-एक रत्ती गोदन्ती भस्म के साथ मिला कर जल या किसी ज्वरघ्न कषाय के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- ज्वरसंहार रस अनुपान विशेष से सब प्रकार के ज्वरों में विशेषत: कफ और वात ज्वर में अधिक लाभ करता है। इसको गोजिव्हादि क्वाथ के अनुपान के साथ देने से कफ ज्वर में कफ पक कर ज्वर शीघ्र उतार देता है और जुकाम तथा खाँसी भी जल्दी ठीक हो जाती है। कफ ज्वर में पार्श्वशूल हो, तो इसके साथ २ से ४ रत्ती मृगश्रृंग भस्म और श्वसनक

ज्वर (न्यूमोनिया)हो,तो इसके साथ श्रृंग भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती मिलाकर दें औ ऊपर से गोजिव्हादि कषाय या भारंग्यादि कषाय में थोड़ा-सा नौसादर और यवक्षार मिलाकर दें। ज्वरसंहार रस का तरुण और जीर्ण दोनों प्रकार के ज्वरों में प्रयोग कर सकते हैं। यह कीटाणुनाशक, दोष-पाचक,शोधक,बल्य एवं उत्तम शामक होने के कारण ज्वर की प्रत्येक अवस्था में निर्भय होकर किया जा सकता है। आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी का यह बहुत बार का परीक्षित योग है।

ज्वरकेसरी रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और शुद्ध जमालगोटा प्रत्येक दवा समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिला, भाँगरे के रस में एक दिन घोंट कर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली मिश्री के साथ सेवन करने से पित्त ज्वर, काली मिर्च के चूर्ण के साथ देने से सन्निपात ज्वर और पीपल तथा जीरे के चूर्ण के साथ देने से दाहयुक्त ज्वर नष्ट होता है।

गुण और उपयोग- इस रसायन में जमालगोटा की मात्रा विशेष है। अतएवं बद्धकोष्ठजन्य विकार (ज्वर-मन्दाग्नि) आदि में इसका उपयोग विशेषतया किया जाता है। यह रस दोषों का पाचक एवं उत्तम शोधक तथा जन्तुनाशक होने के कारण तरुण ज्वर में प्रयोग करने पर दोषों का पाचन कर शोधन कर देता है, किन्तु मृदु कोष्ठवाले रोगियों को सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि जयपाल के कारण यह रेचक है।

तारकेश्वर रस

रससिन्दूर, लौह भस्म, बंग भस्म, अभ्रक भस्म- इन सब दवा को समभाग लेकर प्रथम रससिन्दूर को खरल में पीसकर महीन बना लें, फिर उसे मधु में जल मिलाकर उससे घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -भै.रं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, शहद में मिला कर दें। ऊपर से गूलर के पके फलों का चूर्ण १ तोला शहद में मिलाकर सेवन करावें।

गुण और उपयोग- बहुमूत्र की बीमारी में जब पेशाब अधिक होने लगे अथवा पेशाब के साथ चीनी या धातु जाने लगे, तो उस समय तारकेश्वर रस के सेवन से जल्दी लाभ होता है। यह बंग, रससिन्दूर, अभ्रक लोह आदि के योग से तैयार किया जाता है। अतएवं यह वीर्यवर्द्धक, मूत्रदोषहर, शुक्रदोषनाशक, वातनाशक, बल्य एवं रसायन गुणयुक्त है और मूत्रकृच्छ्र की शिकायत को भी दूर करता है। शुक्र की कमी अथवा वीर्यवाहिनियों की अशक्तता के कारण उत्पन्न नपुंसकता को मिटाने में यह रसायन अत्युत्तम कार्य करता है। जायफल और अकरकरा के चूर्ण १ माशा में मिलाकर गरम दूध के साथ देना चाहिए।

तालकेश्वर रस

शुद्ध हरताल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध पारा, सेन्धा नमक और शुद्ध सुहागा १-१ तोला तथा शुद्ध गन्धक और शंख भस्म प्रत्येक २-२ तोला लेकर, प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना, पश्चात् उसमें भस्मों तथा अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस में घोंटकर औषध के ३० वाँ भाग शुद्ध बच्छनाग मिला, महीन खरल करके शीशी में भर कर रख

लें।-भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- २ से ३ रत्ती सुबह-शाम। बावची चूर्ण डेढ़ माशे और मधु तथा घृत न्यूनाधिक मात्रा में मिलाकर इसके साथ देना चाहिए। ऊपर से खदिरारिष्ट या मंजिष्ठादि क्वाथ या अर्क पिलाना चाहिये।

गुण और उपयोग- यह रस सब प्रकार के कुष्ठ रोग की महौषधि है। कुष्ठ जैसी भयंकर बीमारी में जल्दी कोई दवा असर नहीं करती। अतएव, इस रोग में इस दवा के सेवनकाल में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। लगातार महीनों दवा सेवन करने से लाभ होता है। केवल औषध सेवन-मात्र से ही इस रोग में लाभ नहीं होता, क्योंकि इस रोग का कारण अतएव औषधि सेवन के साथ-साथ उचित आहार-विहार का पालन करते हुए देवोपासना (पूजा-पाठ आदि) तथा दान-पुण्य करना परमावश्यक है। उपरोक्त नियमों का पालन करते हुए अगर तालकेश्वर रस का सेवन किया जाये तो अवश्य ही कुष्ठ रोग से छुटकारा मिल सकता है। एक बार में अधिक काल तक दवा सेवन करने की अपेक्षा तीन सप्ताह दवा सेवन के पश्चात् एक महीने दवा बन्द कर पुनः २१ दिन दवा सेवन करके एक महीने के लिये दवा बन्द कर दें। इस प्रकार पाँच-सात बार प्रयोग करने से रोग निर्मूल हो जाता है। औषधि सेवन काल में तैल, मिर्च, मसाला, नमक, खटाई, दही, दूध, मछली, मांस, शराब आदि का परहेज करना चाहिए। गेहूँ या जौ के साथ चने मिलाकर, पिसाये आटे की रोटी, चीनी और घी के साथ खाना चाहिए।

त्रिपुरभैरव रस

शुद्ध बच्छनाग १ तोला, सोंठ २ तोला, पीपल ३ तोला, काली मिर्च ४ तोला, ताम्र भस्म ५ तोला और शुद्ध हिंगुल ६ तोला लेकर सबको अदरक के रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह, दोपहर तथा शाम मधु के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- साधारण-नवीन ज्वर के लिये तो यह बहुत लाभकारी औषध है। कफ और वातजन्य ज्वर के लिये तो यह बहुत उपयोगी है। नवीन ज्वर में ज्वर दोष पचाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। प्रतिश्याय (जुकाम) होने पर सिर-दर्द, बुखार, सर्दी आदि विकारों में त्रिपुरभैरव रस, गोदन्ती भस्म या श्रृंग भस्म में मिला अदरक रस या पान के रस और मधु के साथ देने से बहुत लाभ होता है। पित्त ज्वर तथा उष्ण प्रकृति के रोगियों को इसका सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें ताम्र भस्म पित्तवर्द्धक एवं तीक्ष्ण तथा उग्रवीर्य होने से ज्वर का वेग एवं दाह, प्यास आदि बढ़ जाती हैं।

त्रिभुवनकीर्ति रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, सुहागे की खील (फूला) और पीपलामूल इन सबको समान भाग लेकर, कूटकर कपड़छन कर महीन चूर्ण बना, तुलसी, अदरक और धतूरे के रस की ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- इसकी १ - १ गोली दिन में तीन-चार बार अदरक - रस और मधु के साथ या तुलसी और बिल्वपत्र के फाण्ट के साथ अथवा किसी ज्वरघ्न क्वाथ के अनुपान के

साथ दें।

गुण और उपयोग–यह उष्णवीर्य और ज्वरघ्न रस सब तरह के ज्वरों में विशेषत: वात तथा कफ ज्वरों के लिये अच्छी औषध है। यों तो वात के सभी विकारों में इसका प्रयोग हो सकता है, लेकिन बुखार उतारने के लिये इसका ज्यादा उपयोग होता है। बढ़े हुए तापमान को कम करके हृदय और नाड़ी की तेजी को कम करता है और पसीना लाकर बुखार को उतार देता है। पित्त प्रधान प्रकृति वाले को इसकी ज्यादा मात्रा नहीं देनी चाहिए। अत्यन्त आवश्यकता होने पर किसी सौम्य एवं हृदय को बल देने वाली प्रवाल पिष्टी, अभ्रक भस्म, माक्षिक भस्म जैसी सौम्य दवा के साथ मिलाकर देना चाहिए। शरीर में संचित विकार को भी यह निकालता है। त्रिभुवनकीर्तिरस में शुद्ध बच्छनाग पड़ा है। अतएव, इसका प्रभाव नाड़ी पर बहुत शीघ्र होता है। नाड़ी की गति क्षीण हालत में इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिए। बच्छनाग की वजह से यह उग्रवीर्य है। इसीलिये नाड़ी मन्द हो जाती है। बच्छनाग के इस प्रभाव को शमन करने के लिये शुद्ध हिंगुल, त्रिकुटा, पीपलामूल तथा तुलसी स्वरसादि का भी सम्मिश्रण किया गया है। फिर भी बच्छनाग की उग्रता कुछ न कुछ मौलिक रूप में रहती ही है।

इस रसायन का प्रभाव– हृदय, मूत्रपिण्ड, त्वचा आदि पर होता हुआ स्वेदवाहिनी ग्रन्थियां जागृत होकर बहुत शीघ्र भीतर से बाहर पसीना निकाल देती है। शरीर में जल भाग की वृद्धि हो पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है। ये सब कार्य इस रसायन के उपयोग से होते हैं।

नवीन ज्वर में– लंघन (उपवास) कराकर आमदोष पच जाने पर इस रसायन का उपयोग होता हे। इस ज्वर में निम्नलिखित उपद्रवों में से यथा–नाडी की गति कभी तेज, कभी कम किन्तु नाड़ी बलवती बनी रहती है, सिर में दर्द होना, शरीर काँपने लगना, सर्दी विशेष होने से छींक ज्यादा आना, पीठ और छाती में दर्द होना, यह दर्द चलने पर ज्यादा मालूम होना, गर्म पदार्थ खाने की इच्छा, मुँह का स्वाद बिगड़ जाना, सूखी खाँसी होना, कण्ठ में दर्द, कण्ठ की ग्रन्थि (उपजिव्हा टॉन्सिल) बढ़ जाने से बोलने और पानी पीने तक में भी दर्द होना, शरीर के जोड़ों में विशेष दर्द होना आदि कोई भी उपद्रव होने पर त्रिभुवनकीर्ति रस के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

कफ प्रधान ज्वर में– ज्वर का वेग कम हो, शरीर में आलस्य, चलने–फिरने की इच्छा न हो निद्रा ज्यादा हो, थोड़ी–थोड़ी पीड़ा समूचे शरीर में हो, नाक और मुँह से पतला कफ निकलना, हाँथ–पाँव में ऐंठन, गर्दन में दर्द इत्यादी लक्षण उपस्थित होने पर यह रसायन गोदन्ती भस्म के साथ देने से विकृत कफ दूर हो जाता है और कफ–विकार से उत्पन्न उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

न्यूमोनिया में– इस रसायन के साथ अभ्रक भस्म, श्रृंग भस्म और चन्द्रामृत रस मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है। आन्त्रिक सन्निपात में– पित्त प्रधान होने पर यदि इस रस का उपयोग करना हो तो किसी सौम्य औषधि यथा प्रवाल चन्द्रपुटी, गिलोय सत्व आदि के साथ करना चाहिए। इससे पित्त की तीक्ष्णता बहुत शीघ्र शान्त हो जाती है।

इन्फ्लुएंजा में– यदि पैत्तिक लक्षण दाह, घबराना आदि न हो, सिर्फ कफ के लक्षण यथा– शरीर में थोड़ा–थोड़ा दर्द होना, हाथ–पैरों की अंगुलियों के जोड़ों (सन्धियों) में दर्द होना, पहले जुकाम होकर कफ सूख गया हो और सूखी खाँसी हो, कण्ठ में दर्द हो तथा इस खाँसी के कारण फुफ्फुस के आसपास में शोथ हो गया हो तो त्रिभुवनकीर्ति रस को शुद्ध टंकण और अपामार्ग क्षार के साथ मधु में मिलाकर उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

छोटी माता (चेचक) में– सब फुन्सियाँ एक बार में ही नहीं निकल जाती है, अतएव यह

बहुत कष्टदायक होती है, क्योंकि इसकी विषाक्त गैस अन्दर रहने से अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न कर देती है। इसमें रोगी को साधारणतया- आँखों से पानी निकलना, सर्दी मालूम होना, ज्वर, मुँह पर लाल-लाल दाने उग आना, बेचैन रहना इत्यादि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति में- इस रोग की विषाक्त गैस को अन्दर से निकालने और कफ-दोष को शान्त करने के लिये त्रिभुवनकीर्ति रस का उपयोग दशमूल क्वाथ या लौंग के पानी से करना अच्छा है।

इस रसायन में हिंगुल-कीटाणु और कफ दोषनाशक तथा पतले कफ को गाढ़ा कर शोथ कम करनेवाला हैं। बच्छनाग-ज्वरघ्न, पसीना लानेवाला और शोथनाशक है। पिप्पली और पीपलामूल उत्तेजक, पाचक और दीपक हैं। सोंठ-स्वेद (पसीना) लाने वाली, ज्वरनाशक और अग्निदीपक है। तुलसी-पसीना लाने वाली और उत्तेजक है। धतूरा रस-वेदना (दर्द) नाशक, शोथघ्न, ज्वरनाशक तथा पसीना लाने वाला है। सुहागा-आक्षेपघ्न, कफनाशक, कफ को पतला करने वाला तथा आँतों में से विषाक्त गैस को बाहर निकालने वाला है।

त्रिमूर्ति रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लौह भस्म समभाग लेकर तीनों की कज्जली बनाकर उसे एक दिन सम्भालू के पत्तों के रस और एक दिन मूसली के क्वाथ में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली लोध्र चूर्ण और शहद के साथ दें। त्रिकुट, चव्य, चित्रक तथा पीपलामूल के चूर्ण के साथ देने से शोथ रोग और त्रिफला चूर्ण के साथ देने से आमवात रोग अच्छा होता है। षडूषण, त्रिफला, पञ्च लवण तथा बाकुची इनके आधा तोला चूर्ण के साथ सेवन करने से अग्निमान्द्य, गुल्म, अजीर्ण नष्ट होते हैं।

गुण और उपयोग- इस रसायन के उपयोग से आमवात, शोथ रोग, कफ-विकार और अग्निमांद्य, दोष, शूल, गुल्म, पाण्डु, कामला, हलीमक, मेदवृद्धि, उदररोग आदि विकार शान्त होते हैं। यह उत्तम आमपाचक, मेदघ्न, शूलनाशक, रक्तवर्द्धक, बल्य एवं रसायन गुण युक्त है।

त्रिविक्रम रस अश्मरी

ताम्र भस्म २० तोला को २० तोला गाय के दूध में मन्दाग्नि पर पकावें। जब सब दूध सूख जाय, तब २० तोला पारा और २० तोला शुद्ध गन्धक डाल, कज्जली बना, सब को १ दिन सम्भालू के पत्तों के रस में घोंट कर गोला बना, सुखा कर सम्पुट में बन्द कर दें। इस सम्पुट को बालुकायन्त्र में रखकर १ प्रहर तीव्राग्नि (तेज आँच) देकर पकावें। जब स्वांग-शीतल हो जाये, तो औषध को निकालकर पीस करके रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती, प्रातः सायं हजरूलयहूद की भस्म ३ रत्ती कर मिला मधु के साथ दें। ऊपर से बिजौरा नींबू की जड़ ६ माशा लेकर २।। तोला पानी में पीसकर पिला दें अथवा एक पाव पानी में पकाकर चौथाई शेष रहने पर छानकर पिला दें।

गुण और उपयोग- पथरी की बीमारी हो जाने के कारण पेशाब करने में बहुत तकलीफ होती है तथा गुर्दों में दर्द होने लगता है। ऐसी हालत में त्रिविक्रम रस के सेवन से पथरी गल कर नष्ट हो जाती और गुर्दों का दर्द सदा के लिये बन्द हो जाता है। मूत्र नलिका में पथरी के कारण पेशाब में रूकावट हो जाती है या कष्ट से बूँद-बूँद उतरता है। ऐसी स्थिति में इसे यवक्षार १ माशा तथा शीतल पर्पटी ४ रत्ती के साथ ठण्डे पानी से देने से पेशाब खुलकर साफ आने लगता है एवं रोगी को बड़ा आराम मालूम पड़ता है। नाभि के नीचे बस्ति प्रदेश पर कलमी शोरा को

थोड़े से जल से गाढ़ा-सा पीसकर लेप करने से भी मूत्र खुलकर आने लगता है।

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हीरा भस्म (अभाव में वैक्रान्त भस्म), स्वर्ण भस्म, चाँदी भस्म, ताम्र भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, मोती भस्म, शंख भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध हरताल और शुद्ध मैनशिल-प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना फिर अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको सात दिन तक चित्रक की जड़ के क्वाथ में और ३-३ दिन आक के दूध, संभालू के रस, सूरण (जमीकन्द) के रस तथा सेहुण्ड के दूध में घोंट कर सुखा-पीसकर उसे पीली कौड़ियों से भर दें, फिर सुहागे को आक के दूध मे पीसकर उससे कौड़ियों का मुख बन्द कर दें। पश्चात् इन्हें सम्पुट में बन्द कर कपड़मिट्टी करके सुखाकर गजपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर निकाल का कौड़ी सहित पीसकर सब दवा के बराबर रससिन्दूर और उससे चौथाई वैक्रान्त भस्म मिलाकर सहिजन मूल की छाल के क्वाथ के ७ भावना तथा चित्रक मूल के क्वाथ की २ भावना देकर घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, वातरोग-गठिया, लकवा, पक्षाघात आदि रोगों में रास्नादि क्वाथ या दशमूल-क्वाथ के साथ मधु मिलाकर दें। कफ विकार में अदरक रस और मधु से दें, पित्त-विकार में मिश्री और घी के साथ दें। स्नायविक दुर्बलता एवं कमर-दर्द में असगन्ध और चोपचीनी क्वाथ के साथ मधु मिलाकर दें।

गुण और उपयोग-हीरा, स्वर्ण, मोती अभ्रक, रजत, लौह आदि बहुमूल्य औषधियों तथा शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल आदि तीक्ष्ण एवं उग्रवीर्य औषधियों तथा रससिन्दूर और वैक्रान्त आदि वयः स्थापक और धातुवृद्धिकारक पदार्थों से निर्मित यह त्रिदोषनाशक, बल-वीर्यवर्द्धक और पौष्टिक रसायन है। इसके सेवन से वातरोग, स्नायविक दुर्बलता, पागलपन, अपस्मार, अपतन्त्रक, विष, खाँसी, क्षय, श्वास, वातविद्रधि, पाण्डु, राजयक्ष्मा, शूल, शोथ, संग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, तिल्ली, जलोदर, अश्मरी, तृषा, हलीमक, उदर रोग, भगन्दर, ज्वर, अर्श और कुष्ठादि अनेक भयंकर रोग नष्ट हो जाते हैं। इस रसायन का नियमपूर्वक अधिक दिनों तक सेवन करते रहने से पलित (बाल सफेद होने) का नाश होकर शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है।

यह रसायन शरीर में बहुत शीघ्र बल-वृद्धि करता है। अतएव इस दृष्टि से यह ओज बढ़ाने वाला, जीवनीय तथा बलवर्द्धक है। इसका प्रभाव शरीर के अन्तरावयवों पर विशेषकर हृदय, फुफ्फुस, रक्तवाहिनी तथा वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। पित्त-प्रधान दोष में अथवा पित्तानुगामी विकारों में इससे विशेष लाभ नहीं होता है, किन्तु पित्त-विकार में यदि देना ही हो तो किसी सौम्य औषध के साथ दें, क्योंकि यह उष्णवीर्य और तीक्ष्ण भी है। कफवातात्मक विकारों में यह बहुत अच्छा लाभ करता है। श्लैष्मिक-सन्निपात, श्लेष्म-वृद्धि, श्वसनक (न्यूमोनिया) ज्वरादि में विशेष रूप से फायदा करता है। सन्निपात में इस रसायन के प्रयोग से उत्तेजक कार्य होता है। इसके सेवन से नाड़ी एवं हृदय की गति क्षीण नहीं हो पाती, क्योंकि यह रक्तवाहिनी और वातवाहिनी नाड़ियों को बल देता है, इसीलिए यह हृदय और नाड़ी की गति में क्षीणता (कमी) नहीं आने देता है। हृदय-शूल होने पर भी इसका उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। हृदय-शूल में भी रक्त का दबाव तथा वातवाहिनी की विकृति रहती है। इन दोषों को दूर करने के लिए त्रैलोक्यचिन्तामणि रस का प्रयोग करना अच्छा है।

न्यूमोनिया या इन्फ्लुएंजा में दोनों स्वतन्त्र रूप में हो या किसी रोग के उपद्रव यथा कफ-वातज्वर, कफज्वर या आन्त्रिक सन्निपातादि रोगों के उपद्रव रूप में उत्पन्न हुए हों, इसका प्रधान कारण छाती में कफ-संचय और फुफ्फुससावरणो में शोथ होना है। इस रोग के लक्षण बहुत भयानक होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में तो इसका पता लगना कठिन हो जाता है कि इसमें कौन दोष प्रधान है, किन्तु लक्षण उत्पन्न होने से स्पष्ट हो जाता है। कफ-संचय होने के कारण श्वासवाहिनी नली रूक जाती है, जिससे फुफ्फुस में जितनी वायु जानी चाहिए उतनी नहीं जाती और रक्तवाहिनी नाड़ियों द्वारा रक्त का संचार (वायु की कमी के कारण) ठीक तरह से न होने से हृदय भी कमजोर हो जाता है, जिससे रोगी की हालत दिन-प्रतिदिन और भी चिन्ताजनक होती चली जाती है। ऐसी अवस्था में त्रैलोक्यचिन्तामणि रस के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वर्षा-ऋतु में अधिक ठण्डी हवा के सेवन अथवा ज्यादा ठण्डी चीजों के सेवन से या छाती में अधिक कफ-संचय हो जाने या किसी तरह के मानसिक आघात पहुँचने के कारण हृदय में एकाएक दर्द होने लगता है। इससे सम्पूर्ण शरीर भारी मालूम पड़ना, हाथ-पाँव में शून्यता, समूची देह में झनझनाहट, मन्दाग्नि, जी मिचलाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, ऐसी हालत में त्रैलोक्यचिन्तामणि रस के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

यह रसायन- पाचक पित्त (जठराग्नि) को जगाने वाला है। जठराग्नि जगाने के लिये जितने पाचक चूर्ण (हिंग्वष्टक, भास्कर आदि) के प्रयोग किये जाते हैं, उनका असर अस्थायी होता है अर्थात् जब तक दवा का असर रहता है, तभी तक अग्नि भी प्रदीप्त रहती है, असर कम हो जाने पर फिर मन्दाग्नि हो जाती है, किन्तु त्रैलोक्यचिन्तामणि रस द्वारा अग्नि प्रदीप्त होने पर स्थायी रह जाती है, क्योंकि इसका कार्य आमाशय, अग्न्याशय, यकृत, ग्रहणी और आँतों पर विशेषतया होता है। यह रस-रक्तादि धातुओं के निर्माण में भी सहायता देता है। यदि कफ-वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो तो इस रसायन के उपयोग से शीघ्र लाभ होता है।

यह रसायन ओजवर्द्धक भी है। इसी सोमात्मक ओज के ऊपर शरीर निर्भर है। यह ओज हृदय में रह कर सम्पूर्ण अवयवों को पुष्ट करता रहता है। इसकी क्षीणता होने पर शारीरिक क्रिया में अन्तर पड़ने लगता है। ऐसी हालत में ओज-शक्ति को बढ़ाने के लिए त्रैलोक्यचिन्तामणि रस का उपयोग किया जाता है। इसलिए यह हृदयोत्तेजक भी कहा जाता है।

यह रसायन में हृदय को बल देने वाला, ओज-शक्तिवर्द्धक, पाचक क्रिया को सुधारने वाला, बल वृद्धिकारक, अति वीर्यवान, धातुओं की विषमता दूर कर साम्य स्थापित करने वाला है, कफ प्रधान या कफवातप्रधान विकारों पर इसका असर बहुत अच्छा होता है।

इस रसायन में- कज्जली-कीटाणुनाशक, रसायन और हृदय को उपकारक है। हीरा भस्म-हृद्य, वातवाहिनी नाड़ियों को उत्तेजना देने वाली, रक्त प्रसादक तथा रसायन है। सुवर्णभस्म-विषघ्न, रक्त प्रसादक, हृदय व मन में प्रसन्नताकारक है। रौप्य भस्म-पाचक, दीपक, उदर वातशामक और यकृत-पित्त स्रावक है। तीक्ष्ण लौह भस्म-रक्त प्रसादक, शक्तिदायक व रक्ताणुवर्द्धक है। अभ्रक भस्म मनःप्रसन्नताकारक वातनाशक और धातुओं का पोषण करने वाली है। मुक्ता भस्म-दाहनाशक, आल्हादजनक और पित्तशामक है। शंख भस्म पाचक, दीपक माधुर्योत्पादक व पित्तशामक है। प्रवाल-पित्तशामक, दाहशामक और शक्तिदायक है। हरिताल भस्म-कफ संरोधनाशक, रोगाणुनाशक, तीक्ष्णवीर्य और दूषित रक्त सुधारक है। मैनशिल-रसायन, ज्ञानतन्तुओं और मस्तिष्क को बल्य, ज्वरघ्न व श्वास-कास नाशक है। रससिन्दूर-धातुवर्द्धक, वातनाशक और योगवाही है। वैक्रान्त भस्म-धातु-पोषक, रसायन एवं बल्य है। इन सबके संयोग से बना यह रसायन अत्यन्त गुणकारी महौषधि है। -औ.गु.ध.शा. के आधार पर

दन्तोद्भेदगदान्तक रस

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल-छाल, सोंठ, अजमोद, अजवायन, हल्दी, मुलेठी, देवदारू, वायविडंग, छोटी इलायची, नागकेसर, नागरमोथा कचूर, काकड़ासिंगी, विड्नमक, अभ्रक भस्म, शंख भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् इसमें उपरोक्त भस्में मिलाकर गो-दुग्ध के साथ ६ घण्टे तक दृढ़ मर्दन करें, गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर रखें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में दो बार जल या शहद अथवा माता के दूध के साथ दें और गोली का चूर्ण कर शहद में मिलाकर दिन में ३ बार दन्तपाली पर घर्षण करें।

गुण और उपयोग- इस रस के सेवन से बच्चों के दाँत आने के समय होने वाले अतिसार, ज्वर, धनुर्वात आदि विकार नष्ट होते हैं, और बच्चों के दाँत शीघ्र ही बिना कष्ट के सरलता से निकल आते हैं।

बच्चों के दाँत आते समय मसूढ़ों (दन्तवेष्ट) में कण्डू होती है और उससे एक प्रकार का विषमय रस उत्पन्न होता है, जिसे बच्चा निगलता रहता है। परिणामस्वरूप आमाशय के भीतर होने वाली पाचन-क्रिया विकृत हो जाती है। फिर यकृत निर्बल होने से जब आन्त्र में भी यकृत पित्त द्वारा उसका रूपान्तर नहीं हो सकता, उस दशा में हरे-पीले एवं फटे हुए दुग्धमय दस्त होने लगते हैं। यदि इस विष का शोषण रक्त में होता है, तो साथ ही ज्वर भी उपस्थित हो जाता है। वातनाड़ियों और वात केन्द्र पर अधिक प्रभाव होने की दशा में आक्षेप भी आने लगते हैं। इन सम्पूर्ण विकारों का मूल कारण वह विषमय रस है। यह रसायन आमाशय में उत्पन्न होने वाले रस (Gastric Juice)और यकृत से निकलने वाले पित्त (Bille) का स्त्राव अधिक कराता है एवं उसे सबल बनाता है। इस क्रिया से उस दन्तपाली घर्षणजन्य विषमय रस का सरलता से रूपान्तर हो जाता है। पश्चात् ज्वर, अतिसार, आक्षेप विकारों को उत्पन्न करने में वह विषयम रस असमर्थ हो जाता है। बच्चों के दाँत निकलते समय अनेक प्रकार के उपद्रव हो जाते हैं। जैसे- पीले या पतले दस्त होना, दूध की उल्टी होना, रोना, चिल्लाना, उदरशूल, अपचन, अरुचि, ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी दशा में इस रस के प्रयोग से उक्त सभी उपद्रव नष्ट होकर बच्चों के दाँत बिना कष्ट के निकल आते हैं।

दुर्जलजेता रस

शुद्ध बच्छनाग २ तोला, कौड़ी भस्म ५ तोला, काली मिर्च का चूर्ण ९ तोला, इन सब को कूट कर कपड़छन चूर्ण बना करके एकत्र मिलाकर अदरक रस में घोंट कर मूँग के बराबर (एक-एक रत्ती) की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रातः दोपहर और शाम को पान के रस और मधु या अदरक रस और मधु अथवा गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग-दूषित जल से उत्पन्न विकार या दूषित वायु से पैदा होनेवाले रोग तथा मौसम परिवर्तन के समय उत्पन्न विकार इनमें इस रसायन का उपयोग होता है। छर्दी ज्वर, अजीर्ण, अफरा, कब्ज, शूल, श्वास, खाँसी आदि रोगों में भी यह लाभदायक है। पहाड़ी स्थानों की यात्रा से लौटकर आये हुए कितने ही लोगों को जल दोष के कारण भयंकर अतिसार की शिकायत हो जाती है, उसमें यह रस उत्तम लाभ करता है।

नोट- भोजन के पहले सोंठ, राई और हरें की चटनी खाने से अथवा महार्द्रक (बन-अदरक) और यवक्षार का चूर्ण गर्म पानी के साथ लेने से भिन्न-भिन्न देशों के पानी का दूषित असर नहीं होता है।

कफ प्रधान मलेरिया ज्वर, अधिक वर्षा होने के कारण ज्यादा दिन तक गीली रहने की वजह से पृथ्वी दूषित हो जाती है, उस पर नंगे पाँव घूमते-फिरते शरीर में कफ वृद्धि होकर बुखार हो जाता है। इस ज्वर के प्रारंभ में शरीर गीला रहना, मुँह में कफ मिला हुआ या साबुन घुला-सा मालूम पड़ना तथा मुँह का स्वाद मीठा होना, शरीर में दर्द, चेहरा भारी हो जाना, पीठ में विशेषकर कमर में अधिक दर्द होना, सिर में दर्द आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में दुर्जलजेता रस के उपयोग से पृथ्वी-जन्य दूषित विष नष्ट हो जाता है और कफ का ह्रास होकर ज्वर दूर हो जाता है।

कफ वृद्धि- शरीर में जब कफ की अधिकता हो जाती है, तो सबसे पहले भूख कम हो जाती है, क्योंकि बढ़ा हुआ कफ आमाशय में रहने वाले अग्नि को ढँक देता है, अर्थात् उसकी शक्ति नष्ट कर देता है, जिससे पाचन-क्रिया में गड़बड़ी होने लगती हैं। फिर मन्दाग्नि, पेट भरा हुआ सा ज्ञात होना, खाने की इच्छा न होना, पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द, जी मिचलाना आदि लक्षण उपस्थित होने पर दुर्जलजेता रस का व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि यह दीपक और पाचक भी है।

इस रसायन में बच्छनाग- ज्वरनाशक, पसीना लाने वाला तथा बढ़ी हुई नाड़ी की गति को ठीक करने वाला है। कौड़ी भस्म-पाचक, दीपक और स्तम्भक है। काली-मिर्च-दीपक, पाचक और पसीना लाने वाली है। -औ.गु.ध.शा.

नवरत्नकल्पामृत रस

माणिक्य पिष्टी, नीलम पिष्टी, पन्ना पिष्टी, पुखराज पिष्टी, वैडूर्य पिष्टी, गोमेद पिष्टी, मुक्ता पिष्टी-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला रौप्य भस्म, राजावर्त पिष्टी- ये प्रत्येक द्रव्य २-२ तोला, स्वर्ण भस्म, लौह भस्म, यशद भस्म, अभ्रक भस्म- ये प्रत्येक ६-६ माशे, शुद्ध गुग्गुल, शुद्ध शिलाजीत, गुडूचीघन-प्रत्येक द्रव्य ११-११ तोला, गो-घृत आवश्यकतानुसार ५-७ तोला लेकर प्रथम पिष्टी और भस्मों को एकत्र मिला कर खरल करें, फिर गुग्गुलु ओर गुडूचीघन को थोड़ा-थोड़ा घी डाल कर कूटते जावे और उसमें थोड़ा-थोड़ा उपरोक्त भस्म मिलाते जावें, फिर शिलाजीत को जल में घोल कर उसमें मिलावें, और खरल में डाल कर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनाने योग्य हो जाने पर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रखें।-र.त.सा.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली तक दिनमें दो बार -सुबह शाम दूध से या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

रोगानुसार लाभकारी अनुपान- अन्त्र शोधनार्थ हरीतक्यादि क्वाथ के साथ दें। उदर कृमि रोग में- वायविडंग ३ माशे के क्वाथ के साथ दें। दीपन-पाचनार्थ हरड़ और त्रिकटु क्वाथ के साथ दें। शोथ जलोदर आदि में पुनर्नवादि क्वाथ के साथ दें। गर्भाशय आदि के पोषणार्थ-अरविन्दासव या सितोपलादि चूर्ण के साथ दें। अस्थि संस्थान के पोषणार्थ सितोपलादि चूर्ण और प्रवाल पिष्टी के साथ दें। गर्भाशय शोधनार्थ-अशोकारिष्ट या कार्पासारिष्ट के साथ दें, यकृत बल-वृद्धि के लिए भृंगराजासव के साथ दें। वृद्धावस्थाजनित निर्बलता में-त्रिफलारिष्ट के साथ दें। जीर्णज्वर-जनित निर्बलता में अमृतारिष्ट या पीपल चूर्ण और शहद के साथ दें। मन्द-मन्द

ज्वर पर महासुदर्शन फाण्ट के साथ दें। वात-विकृतिजनित विकारों पर महारास्नादि क्वाथ के साथ दें। सूजाक, प्रमेह और मूत्र विकृति पर-सारिवाद्यासव और लोध्रासव के साथ दें। हिस्टीरिया और उन्माद पर अश्वगन्धारिष्ट के साथ दें। स्वप्नदोष और वीर्य ऱ्हास में शतावरी के दुग्धावशेष क्वाथ के साथ दें। कण्ठमाला और अर्बुद आदि में-कांचनार त्वक् क्वाथ के साथ दें। मस्तिष्क और हृदय की शिथिलता में-खमीरे गावजबाँ या अर्जुनारिष्ट के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह नवरत्न कल्पामृत रस उत्तम रसायन महौषधि है। इसका एक वर्ष तक कल्प रूप मे भी उपयोग होता है। यह औषधि वातहर, पित्तशामक, वातानुलोमक, विषनाशक, रक्त प्रसादक, मस्तिष्क पुष्टिकर और हृद्य है। रस-रक्तादि सब धातुओ को पुष्ट एवं सबल बनाता है, ओज की वृद्धि करता है और मुखमण्डल कान्ति-युक्त बनाता है। अर्श, प्रमेह, मधुमेह, क्षय, जीर्णज्वर, श्वास-कास, मूत्राघात, मूत्र में पूय जाना, जीर्ण वात रोग, आमवात, उदावर्त, गैस बढ़ना, अंतर्विद्रधि, अर्बुद, कण्ठमाला, मदात्यय, हृदय-रोग और विसूचिकादि की जीर्णावस्था में शक्ति प्रदान करने एवं विकृत धातुकणों को नष्ट कर नवीन सत्वयुक्त कणों की पूर्ति करने के लिए रोग की मुख्य औषधि के साथ मिला कर प्रयोग किया जाता है।

यह रसायन, आयुर्वेद-शास्त्र की दिव्य औषधि है। यह समस्त इन्द्रियों, शारीरिक अवयवों एवं नाड़ियों के भीतर मल, आम, मेद, विष, कीटाणु या विजातीय द्रव्य संचित हो जाने पर उसे निकालकर बाहर फेंकता है। ओर जीवन विनियम (चयापचय क्रिया) को नियमित बनाता है। वात नाड़ियों, हृदय, मस्तिष्क और वृक्क आदि इन्द्रियों को सबल बनाता है। अतः विभिन्न रोगों में यह रस अपूर्व सहायता करता है।

तन्द्रा, आलस्य रहना, शान्त निद्रा न आना, किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने की इच्छा न होना, थोड़े ही परिश्रम से थकावट आ जाना, हाँफने लगना, मस्तिष्क में घड़ी चलने के समान ठक्-ठक् लगना, बार-बार चक्कर आना, रोगी का जीवन से निराश हो जाना, इस प्रकार की अवस्था में रोगियों को यह कल्प नवजीवन प्रदान करता है।

इन्द्रियों और अवयवों की रचना में विकृति होना, आमविष के कारण जीवन विनिमय क्रिया सदोष बन कर शक्ति का अत्यन्त ऱ्हास हो जाना, ऐसे रोगियों को ४ से ६ माशे भाँगरे का रस शक्कर के साथ अथवा भृंगराजासव के साथ इस कल्प का सेवन कराने पर चमत्कारिक लाभ होता है

इस कल्प मे शिलाजीत के साथ जवाहरों और स्वर्ण आदि धातुओं की भस्मों का मिश्रण है, अतः इस औषधि का रसायन गुण और भी दिव्य बन जाता है, अर्थात् शिलाजीत और रत्न आदि द्रव्यों के मूल गुणों में अपूर्व वृद्धि हो जाती है, अर्थात् शिलाजीत और रत्न आदि द्रव्यों के मूल गुणों में अपूर्व वृद्धि हो जाती है। यह कल्प वात पित्तशामक श्रेष्ठ रसायन है और इस कल्प के गुणों के परिणामस्वरूप सप्त धातुओं की पुष्टि थोड़े ही दिनों में प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो जाती है।

गुग्गुल का मिश्रण करने से आमविष को नष्ट करने और वात-नाड़ियों को सबल बनाने में अच्छी सहायता मिलती है। गुग्गुलु के संयोग से जीर्ण वातरोग, आमवात, सन्धिवात, जीर्ण सूजाक, फिरंग रोग, कण्ठमाला, अन्तर्विद्रधि आदि रोगों में अच्छा लाभ मिलता है। शिलाजीत का मिश्रण सप्तधातुवर्द्धक पौष्टिक एवं रसायन है।

गिलोय को आचार्यों ने त्रिदोषहर माना है, यह वृद्धिगत दोष को घटा कर और घटे हुए दोष की वृद्धि कर तीनों दोषों को साम्यावस्था में लाती है। यह गुण गुडूचीघन के मिश्रण द्वारा गुडूची का योग होने पर जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्माजन्य ज्वर, वीर्यस्त्राव, मदात्यय, पित्तप्रकोप, दाह,

निद्रानाश, मस्तिष्क या मन में उग्रता आदि पर आमलकी रसायन या च्यवनप्राशावलेह के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

इस कल्प का उपयोग कई चिकित्सकों ने अनेक रोगियों से पथ्य पालन सह एक वर्ष पर्यंत कराया है। इस कल्प के प्रयोग से विविध रोगों से जर्जरित कृश और बलहीन हुए मनुष्यों को भी आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त हुआ है।

नवरत्न राजमृगांक रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म, खर्पर भस्म, वैक्रान्त भस्म, कान्त लौह भस्म, बंग भस्म, नाग भस्म, हीरा भस्म, प्रवाल भस्म, विमल भस्म, माणिक्य रस, पन्ना भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रौप्य माक्षिक भस्म, मोती भस्म, पुखराज भस्म, शंख भस्म, वैडूर्य भस्म, ताम्र भस्म, मुक्ताशुक्ति भस्म, शुद्ध हरिताल, अभ्रक भस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध मैनशिल, गोमेदमणि भस्म या पिष्टी, नीलम भस्म प्रत्येक १-१ भाग लेकर प्रथम पारा- गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य समस्त भस्मों को मिलाकर गोखरू, पान कटेरी, गोरखमुण्डी, पीपल, चित्रकमूल छाल, ईख की जड़, गिलोय, हुरहर, अरणी, मुनक्का, शतावर, कंकोल, मिर्च, जावित्री, नागकेसर-इन सबके क्वाथ से पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। फिर एक पात्र में सेंधा नमक का चूर्ण भुरककर उसमें मृगांक के समान कम-से-कम एक दिन की अग्नि देकर पाक करें, फिर स्वांग शीतल होने पर औषधि को निकालकर पूर्वोक्त द्रव्यों के रस या क्वाथ की भावना देकर मर्दन करें। सबसे अन्त में इसी के समान शीतल जल के साथ कस्तूरी की भावना देकर मर्दन करें और गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना, छाया में सुखाकर रख लें। -र.रा.स.

मात्रा और अनुपान- आधी गोली से १ गोली तक, सेंधा नमक पीपल चूर्ण और शहद के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- अनेक-बहुमूल्य रत्नों एवं उत्पादनों से निर्मित इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के शोथ और पाण्डु रोग नष्ट होते हैं तथा यह उपद्रवयुक्त वातव्याधि रोग बीसों प्रकार के प्रमेह रोग को शीघ्र नष्ट करता है। वात-रक्त रोग में हरड़ का चूर्ण और गुड़ के साथ प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। गम्भीर ज्वर में गिलोय सत्व, पीपल चूर्ण और शहद के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है। अफरा, अरुचि, मन्दाग्नि, कास-श्वास, मृगी वातोदर, संग्रहणी, हलीमक और समस्त प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है तथा रस-रक्तादि धातुओं की पुष्टि करता है एवं तारुण्य स्थैर्यकारक है। पृथक्-पृथक् रोगानुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करने से समस्त रोगों को नष्ट करता है।

नवज्वरेभसिंह रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, नाग भस्म, काली मिर्च, सोंठ और पीपल १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाग आधा तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। तत्पश्चात् उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिलाकर २ दिन जल में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और अनुपान- यह रसायन ज्वर की प्रत्येक अवस्था में दिया जाता है। किन्तु ज्वर की

प्रारम्भिक अवस्था (नवज्वर) में इसके उपयोग से अधिक लाभ होते देखा गया है। धातुगत ज्वर और ग्रहणी विकार में भी यह बहुत फायदा करता है।

ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में लंघन (उपवास) कराने के बाद दोष-पाचन के लिए गुडूच्यादि क्वाथ आदि का उपयोग न करके इस रसायन का ही उपयोग किया जाय तो बहुत अच्छा लाभ होता है, विशेष कर कफ-वात प्रधान ज्वर में तो दोषों का पाचन होकर बहुत ही लाभ होता है।

नवजीवन रस

शुद्ध कुचला २ तोला, लौह भस्म २ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल-इनका मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण २ तोला लेकर प्रथम रससिन्दूर को सूक्ष्म खरल करें, पश्चात् भस्में और अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला अदरक के रस में दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- दिन में २ बार सुबह-शाम अदरक-रस और मधु के साथ, या पान का रस और मधु के साथ या गरम जल के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रस का सेवन करने से मनुष्य को वास्तव में नवजीवन प्राप्त होता है और पाचक रस अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है, अतः यह रस दीपक और आमरस को पचाने के कारण पाचक है। यह स्वस्थ शरीर में बल उत्पन्न करता है। ज्ञानवाही तथा चेष्टावाही नाड़ियों की शक्ति को बढ़ाता है। शुक्रवहा नाड़ियों में उत्तेजना जागृत कर काम-शक्ति एवं स्मरण शक्ति को बढ़ाता है। आन्त्रिक शूल तथा उदराध्मान को शीघ्र नष्ट करता है। मलबन्ध को नष्ट कर पुरातन अर्थात् जीर्णातिसार रोग को शीघ्र नष्ट करता है। अर्धावभेदक (आधाशीशी) शिरःशूल में भी शीघ्र लाभ करता है और शरीर में रक्त की वृद्धि करता है। शरीर के किसी भी भाग में होने वाले वातिक शूलों का नाशक तथा मानसिक परिश्रमजन्य शिथिलता को नष्ट करता है। इसके साथ अभ्रक भस्म मिलाकर घृत या मक्खन के साथ सेवन करने से मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाता है और बंग भस्म तथा प्रवाल भस्म मिलाकर मलाई या मक्खन के साथ सेवन करने से वीर्य की वृद्धि होकर कामशक्ति को बढ़ाता है।

नष्टपुष्पान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, बंग भस्म, सुहागे की खील, चाँदी भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली कर उसमें अन्य औषधियाँ मिला, उसे गिलोय (गुर्च), त्रिफला, दन्तीमूल, हरसिंगार, छोटी कटेली, मकोय, देवदारु, जीवन्ती, कूठ, बड़ी कटेरी, हल्दी, तालीस-पत्र, वेत की कोपल, गोखरू, वासक (अडूसा), और खरेटी के स्वरस या क्वाथ की पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना दें। तत्पश्चात् सेंधा नमक, मूलेठी, दन्तीमूल, लौंग, वंशलोचन, रास्ना, गोखरू प्रत्येक ३-३ माशे लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना उपरोक्त औषध मे मिला कर उसे १-१ दिन जयन्ती और तुलसी रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली सुबह-शाम तिल के क्वाथ में गुड़ मिला कर दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन उग्र और उष्णवीर्य है। जब मासिक धर्म रूक गया हो या

दर्द के साथ थोड़ा-थोड़ा होता हो अथवा पूरी उम्र होने पर भी रजोदर्शन नहीं हुआ हो तो इसका प्रयोग करें। रजोरोध के कारण स्त्रियों की आँखों में जलन, अनिद्रा, हाथ-पैरों में फूटन तथा तलवों में जलन, सिर-दर्द, कटि और पृष्ठशूल, हृच्छूल, उन्माद, हिस्टीरिया, वात एवं पित्त के विकार आदि अनेक विकार हो जाते हैं। इस रस के सेवन से मासिक धर्म साफ होने लगकर विकारों की शान्ति हो जाती है। जिन स्त्रियों के शरीर में रक्त की कमी के कारण मासिक धर्म नहीं होता हो, उनको कसीस भस्म या लौह भस्म के साथ इस रस को सेवन करने से शरीर में रक्त की वृद्धि होकर मासिक धर्म नियमित रूप से होने लगता है।

नृपतिवल्लभ रस

शुद्ध पारा,शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, सुहागे की खील, जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, भुनी हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधा नमक प्रत्येक ४-४ तोला और काली मिर्च ८ तोला लें। प्रथम पारा- गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य भस्मों और वनस्पतियों के महीन चूर्ण को मिला, आँवले के स्वरस के घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली गर्म जल या मट्ठा (छाछ) के साथ दें। संग्रहणी में- भुना हुआ जीरा का चूर्ण और मधु के साथ दें। आँव के दस्तों में- नागरमोथा का रस और मधु के साथ या धान्यपंचक क्वाथ से दें। अतिसार (पतले दस्तों में)-जायफल को पानी में घिसकर मधु के साथ और मन्दाग्नि में नींबू के रस और ताजे मट्ठे अथवा जल के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

गुण और उपयोग-संग्रहणी और सभी प्रकार के अतिसार रोग के लिए यह रसायन बहुत श्रेष्ठ दवा है। इसके सेवन से मन्दाग्नि, ज्वर, आँव के दस्त, अतिसार, हृदय का दर्द, बवासीर आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। कमजोर हुई ग्रहणी कला को फिर से सबल बना इसकी क्रिया को ठीक करने के लिए यह बहुत ही उत्तम पाचक, दीपक, स्तम्भक, रोचक और बलवर्द्धक दवा है। रक्तातिसार में हीराबोल चूर्ण २ रत्ती के साथ मिला बेल के मुरब्बा के साथ, पित्तातिसार में बेदाना, अनार के रस में मिलाकर देने से बहुत उत्तम लाभ होता है।

नाराच रस

शुद्ध पारा, सुहागे के खील, काली मिर्च का चूर्ण-प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध गन्धक, पीपल ओर सोंठ प्रत्येक २-२ तोला तथा जमालगोटा ९ तोला लें प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों के चूर्ण मिलाकर, जल से खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती चावल के पानी के साथ प्रातः ४ बजे देना चाहिए।

नोट- इस रस को खाने के बाद थोड़ा-थोड़ा ठण्डा पानी पीने से सुखपूर्वक विरेचन होता है। यदि इस रसायन के सेवन से पेट मे दाह एवं जलन हो, तो भी ठण्डा पानी पीना चाहिए। विरेचन हो जाने के बाद दिनान्त में मूँग की खिचड़ी खा लेनी चाहिए।

गुण और उपयोग- यह रसायन गुल्म, कब्ज, प्लीहा आदि उदर-विकारों में विरेचन के लिये अच्छा है। जमालगोटा का मिश्रण होने के कारण यह तेज जुलाब है। यह पेट में जमे हुए दूषित मल को निकालकर पेट साफ करता है। गर्भवती स्त्रियों और बच्चों को देने के पहले उनकी शारीरिक अवस्था देखकर अल्प मात्रा में ही सेवन कराना चाहिए।

इस रसायन में-कज्जली-दूषित कीटाणुनाशक व रसायन है। त्रिकटु-पाचक दीपक और कफघ्न है। सुहागे की खील-कफ निकालने वाली और बढ़े हुए गुल्म को घटाने वाली है तथा कुछ पाचक भी है। जैपाल (जमलगोटा) तीव्र विरेचक और मल को पतला कर ज्यादा मात्रा में दस्त द्वारा निकालने वाला है। -औ.गु.ध.शा.

नारायण ज्वरांकुश रस

शुद्ध संखिया, शुद्ध वत्सनाभ विष, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरिताल, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, कपर्दक भस्म, शुद्ध भांग, शु. धतूरा बीज, शुद्ध टंकण-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर सबको एक मिलाकर अदरक के रस में तीन दिन मर्दन करे। गोली बनने योग्य होने पर आधी-आधी रत्ती की गोली बना, सुखा कर रखें।

मात्रा और अनुपान -१-१ गोली दिन में तीन बार जल के साथ दें। ज्वर होने पर उतारने के लिए और न होने पर रोकने के लिए दिन में तीन बार दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का सेवन करने से शीत ज्वर, सन्निपात ज्वर, विसूचिका, विषम ज्वर आदि रोगों को नष्ट करता है। इस औषधि के प्रयोग से पसीना अधिक आता है। अतः पसीना आने की दशा में रोगी का शरीर वस्त्र से ढँका रहे और अन्दर ही अन्दर पसीना पोंछते रहे। यह रसायन सन्निपात ज्वर को विशेष रूप से नष्ट करता है।

नागार्जुनाभ्र रस

सहस्त्रपुटी वज्राभ्रक भस्म ७ दिन अर्जुन की छाल के रस में घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।

वक्तव्य- प्रायः लोग साधारण अभ्रक भस्म को ही ७ दिन अर्जुन छाल स्वरस की भावना देकर बनाते है। यह उपरोक्त से कुछ न्यून गुण होते हुए भी उत्तम लाभ करता है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से हृदय रोग, सब प्रकार के शूल, अर्श, हृल्लास, छर्दि, अरूचि, अतिसार, अग्निमांद्य, रक्त-पित्त, क्षत, क्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त, पाण्डु, कामला और विषम ज्वरादि रोग नष्ट होते हैं। यह श्रेष्ठ रसायन भी है, अतः वीर्यवर्द्धक है।

यह रसायान सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म में अर्जुन की छाल के क्वाथ की अनेक भावनाएँ देकर बनाया जाता है। ये दोनों ही द्रव्य हृदय की शक्ति बढ़ाने में सर्वोत्तम है। अतएव यह हृदय रोगों के लिये बड़ी अच्छी दवा हे। इससे हृदय की कमजोरी, धड़कन, हृदय में दर्द होना आदि हृद्रोग अच्छे हो जाते हैं। हृदय की अनियमित गति को नियमि करने के लिए इसका सेवन बहुत लाभदायक है। मन्दाग्नि, पाण्डु, कामला, सूजन, अम्लपित्त, रक्तपित्त और विषम ज्वर आदि रोगों में भी यह औषध अच्छा काम करती है। बल,वीर्य, कान्ति और शक्ति बढ़ाने में भी इसका उपयोग किया जाता है। स्नायुदौर्बल्य तथा मस्तिष्क की कमजोरी दूर करने में भी इसके सेवन से बहुत लाभ होता है।

नित्यानन्द रस

सिंगरफ से निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, कांस्य भस्म, बंग भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध तूतिया, शंख भस्म, कौड़ी भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, लौह

भस्म, वायविडंग, सेन्धा नमक, सोंचर नमक, विड्नमक, समुद्र नमक, काच नमक, चव्य पीपलामूल, हाऊ बेर, बच, कपूर, पाठा, देवदारु, इलायची, विधारा-बीज, निशोथ, चीतामूल और दन्ती-ये सब दवा समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य भस्में तथा शोधित द्रव्यों एवं काष्ठ-औषधियों का कूट कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिला सब को हर्रे के क्वाथ की एक भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम शीतल जल या गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह श्लीपद (फीलपाँव) की सर्वोत्तम औषध है। इसमें आँवला कफ और वात-जनित रोग अर्बुद (देर से बढ़ने तथा न पकने वाली मांस की गाँठ)अपची, गण्डमाला, भयंकर वात-रक्त, अन्त्र-वृद्धि (आँत उतरना) आदि रोगों में भी यह फायदेमन्द है। फीलपाँव की यह खास दवा है। अतएव इसका उपयोग इस रोग में विशेषतया होता है।

श्लीपद (फीलपाँव)- यह रोग दूषित जलवायु से उत्पन्न होने के कारण कफ-वातप्रधान होता है, डॉक्टरी मतानुसार यह व्याधि फाइलेरिया (Filaria) नामक कीटाणु से होती है। इस रोग के प्रारम्भ में शरीर के किसी भी मांसल हिस्से में सूजन हो जाती है- साथ ही थोड़ा ज्वर भी रहने लगता है। जैसे-जैसे ज्वर का वेग बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे सूजन भी बढ़ती जाती है। ज्वर का वेग कम होने पर सूजन भी कम होने लगती है, फिर सूजन मिट जाती है। जब धीरे-धीरे यह रोग शरीर के अन्दर पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमा लेता है, तब प्रकट होता है। विशेषकर पाँव में ही इसका प्रकोप होता है। कभी-कभी हाथ, औष्ठ(होंठ), अण्डकोष, लिंग आदि स्थानों में भी शोथ हो जाता है। इस रोग में त्वचा का रंग काला हो जाता है और उसमें दर्द भी होता है। ज्वर, खुजली, पैर की जड़ मोटी हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिती में इस रसायन का अधिक दिन तक सेवन करने तथा सूजन पर तैल आदि की मालिश करने से लाभ होता है।

इस रसायन में-कज्जली-कीटाणुनाशक, योगवाही और रसायन है। ताम्र-यकृत-पित्तस्रावक और कफ नाशक है। बंग-कृमिघ्न, कफ तथा मेदनाशक है। हरताल-कफनाशक, कीटाणुनाशक, किंचित विरेचक और शोथहर है। कौड़ी-मधुरता उत्पन्न करने वाली और पित्तस्रावक है। त्रिकटु-पाचक और दीपक है। त्रिफला रसायन है। लौह-कांस्य-योगवाही और रसायन है। त्रिकटु-पाचक और दीपक है। इन सबके संयोग से बना होने के कारण शक्तिवर्द्धक और पीपलामूल-पाचक तथा दीपक है। इन सबके संयोग से बना होने के कारण यह रस वात-कफनाशक, कीटाणुनाशक, शोथघ्न, शक्तिवर्द्धक, रसायन, पाचक तथा दीपक एवं जलीयांश शोषक है।

निद्रोदय रस

रससिन्दूर, वंशलोचन, शुद्ध अफीम-प्रत्येक ६-६ माशा, धाय के फूल और आँवले का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण २-२ तोला, लेकर सब को खरल में डालकर, भाँग की पत्तियों के रस में ३ दिन घोंटें। फिर इसमें १२ तोला मुनक्का पीसकर मिला दें और ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनावें।

वक्तव्य- मूल ग्रन्थ पाठ में आठ रत्ती परिमाण की गोलियाँ बनाने का विधान है परन्तु इतनी बड़ी गोली लेने में असुविधा होने से ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनाकर मात्रा में एक के बजाय दो गोली कर दी गयी है।

मात्रा और अनुपान- २-२ गोली रात को सोते समय जल या दूध अथवा मलाई मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन में अफीम पड़ी हुई है। अतएव, इसका प्रभाव सर्वप्रथम संज्ञावाहिनी नाड़ियों पर तथा हृदय और मांसपेशियों पर ज्यादा होता है। यह पीड़ाशामक तथा कुछ स्तम्भक भी है। निद्रा लाना इसका खास गुण है। यदि किसी रोग अथवा मानसिक कष्ट का दर्द के मारे निद्रा नहीं आती हो, रोगी बराबर छटपटाता और परेशान होता हो, तो ऐसी स्थिति में निद्रोदय रस के सेवन से पीड़ा (दर्द)दूर होकर निद्रा आती है। भांग के रस में घुटाई करने से इसमे निद्रोत्पादक गुणों की पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। इसमें वंशलोचन और आमला शीतवीर्य एवं शामक होने से अहिफेन की उष्णता का शमन कर देते हैं।

नीलकण्ठ रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शंख भस्म, शुद्ध नीलाथोथा समान भाग लें। इन सबकी कज्जली बना, उसे बन्दाल (देवदाली) के रस की २१ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम जम्बीरी नींबू के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- बढ़े हुए कफ या पित्त के कारण जी मचलाना तथा वमन करने की इच्छा होना किन्तु वमन नहीं होना। इस रस को नींबू रस के साथ देने से वमन होकर शीघ्र लाभ करता है।

पंचवक्त्र रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, काली मिर्च, सुहाग की खील और पीपल, ये सब चीजें समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियों का कूट-कपड़छन किया हुआ महिन चूर्ण मिला, सबको १ दिन धतूरे के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान-१-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ अदरक रस मिला कर दें। इससे केवल शहद के साथ देकर ऊपर से आक की जड़ की छाल के क्वाथ में सोंठ, पीपल, मिर्च का महीन चूर्ण मिलाकर पीने से सन्निपात तथा कफ रोगों में बहुत फायदा करता है।

अग्निवृद्धि के लिए- अर्क (आक) मूल के रस या क्वाथ और शहद में मिलाकर इसका सेवन करें। वातज्वर में- दही के पानी के साथ और भयंकर सन्निपात में अदरक रस के साथ दें। अजीर्ण ज्वर में- जम्बीरी नींबू के रस के साथ तथा विषम ज्वर में जीरे के चूर्ण और गुड़ के साथ दें।

महाघोर- तीव्र सन्निपात ज्वर में पूर्ण युवा पुरुष को इसकी ३ गोली, स्त्री, बालक वृद्ध और कमजोरों को २ गोली और अत्यन्त दुर्बल तथा छोटे बच्चों को आधी से १ गोली अवस्थानुसार देनी चाहिए।

गुण और उपयोग- यह रसायन वात-कफ प्रधान ज्वर, सन्निपात ज्वर, इन्फ्लुएंजा, तन्द्रा, आलस्य, सर्वांग में दर्द आदि रोगों में अत्यन्त उपयोगी है। यह रस नवीन ज्वर को १ प्रहर में, मध्य ज्वर और अजीर्ण ज्वर को तीन दिन में तथा सन्निपात ज्वर को सात दिन में दूर करता है।

तीक्ष्ण और उष्णवीर्य होने के कारण पित्त प्रधान ज्वरों में इस रस का उपयोग नहीं किया जाता। कफ और वात प्रधान ज्वर सन्निपात व इन्फ्लुएंजा आदि रोगों में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। इस रसायन का प्रभाव मूत्रपिण्ड पर भी पड़ता है। किन्हीं कारणों से पेशाब रुक

जाने अथवा खुलकर पेशाब लाने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

शरीर में विशेष कफ-संचय हो जाने से नाड़ी की गति भारी हो जाती है तथा नाड़ी कुछ तेज चलने लगती है। हृदय की धड़कन कम हो जाना,हाथ-पैरों में दर्द होना, सिर इधर-उधर पटकना, श्वास और कास की वृद्धि होना, खाँसी के साथ सफेद और चिकना कफ गिरना, कफ गिरने पर कुछ शान्ति मिलना, शरीर में भारीपन, तन्द्र, प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होने पर इस रसायन का उपोग करना चाहिए।

कफ-वात प्रधान सन्निपात में भी निर्भयतापूर्वक इसका उपयोग करना चाहिए, परन्तु यदि सिर्फ कफ प्रधान ही सन्निपात हो तो मल्लसिन्दूर, समीरपन्नग रस, हेमगर्भ रस तथा त्रैलोक्य चिन्तामणि रसादि का प्रयोग करें।

न्यूमोनिया में-कफ और वायु, दूषित होकर ज्वर उत्पन्न कर देता है, इससे पसली (पाँजर) में पीड़ा होना, श्वासोच्छवास में कष्ट तथा दर्द, दर्द के मारे चलने में असमर्थ होना, गर्म उपचार (सेंकना आदि) या दबाने से पसली का दर्द कम मालूम पड़ना, शरीर के जोड़ों में दर्द, कभी-कभी बेहोश हो जाना, प्रलाप, नींद न आना आदि लक्षणों की उपस्थिति में इस रसायन के उपयोग से प्रकुपित कफ और वायु शान्त हो जाते हैं। फिर दर्द कम होकर धीरे-धीरे रोग भी अच्छा हो जाता है। इस ज्वर का प्रारम्भ होते ही दवा का उपयोग करना चाहिए।

इस रसायन में- कज्जली-कीटाणुनाशक तथा रसायन है। बच्छनाग-पीड़ा को नाश करनेवाला तथा ज्वरनाशक है। कालीमिर्च-पाचक और दीपक है। सुहागे की खील-आक्षेपक तथा दूषित कीटाणुनाशक है। पिप्पली -रसायन, दीपन और पाचन है। धतूरा-दर्दनाशक है। इसके संयोगग के कारण यह रस उपरोक्त गुणों से युक्त उत्तम रस-कल्प बन जाता है। -औ.गु.ध.शा.

पंचामृत रस

पारद भस्म (या रससिन्दूर), अभ्रक भस्म और लौह भस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध बच्छनाग और गुर्च तथा त्रिफला के क्वाथ में शुद्ध किया हुआ गूगल और नैपाली ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -र.र.स.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, बनतुलसी का रस और दूध के साथ अथवा मधु के साथ दें या पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती, मरिच चूर्ण ४ रत्ती और घृत १ तोला के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग क्षय रोग में जब ज्वर विशेष मात्रा में बढ़ा हुआ रहता है, तब किया जाता है। क्षय रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ज्वर कम रहने पर यदि इस रसायन का प्रयोग करना हो, तो इनके प्रवाल, गुर्चसत्व आदि सौम्य दवाओं का सम्मिश्रण कर लेना आवश्यक है।

क्षय रोग की द्वितीय या तृतीयावस्था में क्रमशः रक्तादि धातुओं की क्षीणता होने लगती है, जिससे रोगी दुर्बल तथा कमजोर हो जाता है एवं कफ की भी वृद्धि हो जाती है। ऐसी अवस्था में इस रसायन का उपयोग करने से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

ज्यादा शुक्रपात होने के कारण शरीर में रस-रक्तादि धातुओ की भी क्षीणता होने लगती है, जिससे शरीर कमजोर हो, ज्वरादिक उपद्रवों के साथ राजयक्ष्मा रोग से रोगी ग्रसित हो जाता है। इसी तरह स्त्रियों को अधिक दिन तक प्रदर की शिकायत रहने के कारण शरीर कमजोर होकर राजयक्ष्मा रोग हो जाता है। इसमें रोगिणी बहुत कमजोर हो जाती है। मन्दाग्नि हो जाती है। ज्वर

का वेग बढ़ा हुआ रहता है, रोगिणी अपनी जिन्दगी से निराश हो जाती है, शरीर रक्ताणुओं की कमी के कारण पाण्डुवर्ण का हो जाता तथा रोगिणी चलने-फिरने में भी असमर्थ रहती है। ऐसी दशा में पंचामृत रस के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इस रसायन में-पारद भस्म-रसायन और कीटाणुनाशक है। अभ्रक-भस्म धातुओं का परिपोषक तथा उन्हें व्यवस्थित करने वाली है। लौह-शक्तिवर्द्धक तथा रक्ताणुओं को बढ़ाकर रक्त को पुष्ट करने वाला है। शिलाजीत-रसायन, प्रमेह एवं धातुक्षय नाशक, योगवाही तथा धातुओं को पुष्ट करने वाला है। बच्छनाग-ज्वरघ्न और गुग्गुलु-वात नाशक, रसायन तथा योगवाही है। इनके सम्मिश्रण से बना यह रस उपरोक्त सभी गुणों से परिपूर्ण एवं संयोगजन्य अन्य विशिष्ट गुणों से युक्त होता है।

प्रतापलंकेश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध बच्छनाग १-१ तोला, काली मिर्च का चूर्ण ३ तोला, लौह भस्म ४ तोला, शंख भस्म ८ तोला और अरण्य उपलों (बनगोइठा) की भस्म १६ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिलाकर सबको एकत्र घोंट कर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- कितने ही वैद्य जल अथवा दशमूलक्वाथ से घोंटकर इसकी दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाते हैं।

मात्रा और अनुपान- २-४ रत्ती सुबह-शाम, अदरक के स्वरस के साथ देने से प्रसूत वात और भयंकर सन्निपात दूर होता है। शुद्ध गूगल, गिलोय का रस तथा त्रिफला क्वाथ के साथ देने से यह वात-व्याधि, अर्श तथा कफ रोग को नष्ट करता है।

गुण और अनुपान- प्रसूत रोग के लिए यह रसायन अमृत समान है। इस रसायन के सेवन से प्रसूत रोग और उससे पैदा होनेवाली अनेक तरह की शिकायतें नष्ट हो जाती हैं। प्रसूत ज्वर, खाँसी, धनुर्वात, दन्तबन्ध (दाँत लगना), उन्माद रोग, भयंकर सन्निपात, अतिसार, ग्रहणी आदि रोगों में यह विशेष लाभप्रद है। इसके प्रयोग से गर्भाशय में दूषित व संचित रक्त का स्राव होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

प्रसूत ज्वर-प्रसूता स्त्रियों के लिये यह ज्वर बहुत ही भयंकर और कष्टदायक होता है। जिस प्रसूता स्त्री को यह ज्वर पकड़ लेता है, उसकी हालत बहुत खराब हो जाती है। इतना ही नहीं, इस ज्वर के साथ और भी अनेक तरह के उपद्रव खड़े हो जाते हैं। अतएवं इस ज्वर से सर्वदा सावधान रहना चाहिए।

यह ज्वर अधिकतर सूतिकागृह की गन्दगी एवं मूर्ख दाईयों की अज्ञानता से होता है। प्रसव हो जाने के बाद गर्भाशय में से दूषित जल, रक्त लसीका आदि का स्राव होना आवश्यक है, इससे गर्भाशय परिशुद्ध हो जाता तथा वह पुनः पूर्वस्थिति में आ जाता है। यदि कदाचित यह स्राव होने मे किसी तरह की गड़बड़ी हुई तो वह दूषित गर्भजल और रक्तादि पेट में सेन्द्रिय विष की उत्पत्ति कर देते हैं। फिर प्रसूत ज्वर हो जाता है। यह विष क्रमशः समस्त शरीर में फैल कर अपना प्रभाव दिखलाता है और साथ ही ज्वर की भी वृद्धि करता रहता है।

प्रसूतावस्था में वात और कफ की प्रधानता रहती है। अतएव इसके लक्षण भी वात-कफात्मक ही होते हैं। प्रसूत ज्वर होने के पूर्व शरीर में जाड़ा (ठण्डा) लगता है, फिर बुखार हो जाता है। इसमें नाड़ी की गति तेज और भारी हो जाती है। रोगिणी बेचैन रहती है, मुँह सूजने

लगता तथा ज्वर की विशेष तेजी के कारण रोगिणी बेसुध हो जाती है। कभी-कभी अण्ट-सण्ट भी बक देती है। सिर में दर्द बना रहता, कभी-कभी वात-प्रकोप विशेष हो जाने पर दाँती बँध जाती अर्थात् दाँतों के दोनों जबड़े बैठ जाते हैं। इस लक्षण में प्रतापलंकेश्वर अदरक-स्वरस के साथ दें और ऊपर से दशमूलारिष्ट १। तोला बराबर पानी मिलाकर देने से शीघ्र फायदा होता है, क्योंकि प्रतापलंकेश्वर का प्रभाव खासकर गर्भाशय और वातवाहिनी नाड़ी पर होता है। अतएव, यह गर्भाशय को पूर्व स्थिति में लाकर प्रकुपित वात को शान्त कर देता है।

प्रसूतावस्था में-कफसंचय विशेष हो जाने पर ज्वर की उत्पत्ति हो जाती है। यह ज्वर धीरे-धीरे न्यूमोनिया में परिवर्तित हो जाता है, प्रसूता के लिये न्यूमोनिया बहुत भयंकर व्याधि है, क्योंकि एक तो वैसे ही कमजोरी रहती है। दूसरे न्यूमोनिया होने से और भी कष्ट बढ़ जाता है। इसमें ज्वर होना, कास (खाँसी), पार्श्व-पीड़ा, मन्दाग्नि, अरुचि आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रतापलंकेश्वर देने से संचित कफ कम हो जाता है तथा बुखार भी कम होने लगता है। धीरे-धीरे रोगिणी भी स्वस्थ हो जाती है।

वात प्रकोप होने पर- धनुर्वात, गृध्रसी, खल्ली, विश्वाची आदि रोगों को दूर करने के लिये भी प्रतापलंकेश्वर देना अधिक हितकर है। साथ ही दशमूल क्वाथ पीने के लिए तथा दशमूल तैल मालिश के लिए प्रयोग करना चाहिए।

प्रसूतावस्था मे अधिक मानसिक चिन्ता या किसी प्रकार के आकस्मिक (अचानक) शोक समाचार सुनकर विशेष चिन्तित होने से रोगिणी की वातवाहिनी नाड़ी क्षुभित हो जाती है, जिससे श्वास की गति बढ़ जाती है और वह धीरे-धीरे वातज श्वास में परिणत होकर, वातज श्वास के लक्षण उत्पन्न कर देता है। ऐसी अवस्था में वातवाहिनी नाड़ी के शमन तथा श्वास-गति को नियमित करने के लिए प्रतापलंकेश्वर का प्रयोग करना श्रेष्ठ है।

गर्भाशय में दूषित जल या रक्तादि रह जाने से गर्भाशय दूषित हो जाता है, जिससे शरीर भारी होना, भूख नहीं लगना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, जी मिचलना, कम्प होना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ये लक्षण रोग प्रारम्भ होने पर होते हैं। क्रमशः जब यह रोग पुराना हो जाता है, तब सम्पूर्ण शरीर में फैल कर निम्न लक्षण प्रकट करता है। यथा-सम्पूर्ण शरीर में सूजन आ जाना, पेट में दर्द, पतले दस्त बार-बार और अधिक परिमाण में आना आदि। ऐसी स्थिति में लोग पर्पटी देने का विचार करते हैं, किन्तु इसमें पर्पटी न देकर प्रतापलंकेश्वर देने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति का कारण गर्भाशय की अशुद्धि है। अतएव शोधन के लिए इसका प्रयोग करना चाहिए।

इस रसायन में-कज्जली-योगवाही रसायन और हृद्य (हृदय को बल देनेवाली) है। अभ्रक-मानसिक चिन्ता को दूर करने वाला तथा रक्तगत दोषों को शमन करने वाला है। लौह-गर्भाशय का शोधन कर दूषित रक्त को निकालने वाला तथा गर्भाशय को शक्ति प्रदान करने वाला है। शंख भस्म-कण्ठशोधक और दीपक-पाचक है। कालीमिर्च-कफनाशक है। बच्छनाग-ज्वरघ्न और वेदना (दर्द) नाशक है। उपलों की राख (भस्म)-गर्भ-कोष्ठ शोधक है। अतः इनके सम्मिश्रण से बना यह रस उपरोक्त सभी गुणों के करने में अत्यन्त प्रभावशाली है। -औ.गु.ध.शा.

प्रदरान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, बंग भस्म, चाँदी भस्म, खर्पर (अभाव में यशद भस्म) कौड़ी भस्म-प्रत्येक ३-३ माशे, लौह भस्म ३ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सबको १ दिन ग्वारपाठे (घीकुमारी) के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम दूर्वा के रस या आँवला-स्वरस और मधु के साथ अथवा गुड़हल (जपा) पुष्प को पार भर पानी में रात को भिगों कर सुबह मसलकर छानकर उस पानी के साथ मिश्री मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से स्त्रियों का नये, पुराने सफेद या लाल किसी भी प्रकार का प्रदर हो, नष्ट हो जाता और दुर्बल रोगिणी स्त्रियों को यह रस सबल (स्वस्थ) बना देता है। इससे प्रदर रोग में उत्पन्न हुई शिकायते जैसे कमर और पेडू में दर्द होना, हाथ-पैरों के तलवे और आँखों में जलन होना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, भूख नहीं लगना आदि समस्त विकार मिट जाते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भाशय सबल होकर गर्भधारण करने में पुनः समर्थ हो जाता है।

पुरुषों के लिये प्रमेह और स्त्रियों के लिये प्रदर ये दोनों व्याधियाँ बहुत खतरनाक है। ये ऐसे दारुण रोग हैं कि जवानी में ही बुढ़ापा लाकर शरीर को जर्जर बना देते हैं। जीवित रहते हुए भी मनुष्य मुर्दा (निर्जीव) सा बन जाता है। इस रोग की प्रकोपावस्था में शरीर कान्तिहीन हो जाता तथा खून की कमी होने से शरीर का रंग पीला हो जाता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी की बात अच्छी नहीं लगना, अग्निमांद्य, हाथ-पैर और आँखों में जलन, थोड़ा भी चलने पर हृदय की गति बढ़ जाना, पेट में भारीपन, स्राव गर्म ओर जलसदृश पतला होना आदि लक्षण होने पर प्रदरान्तक रस के सेवन से बहुत लाभ होता है। इसके साथ मधूकाद्यवलेह दूध के साथ देने से और भी विशेष लाभ होता है। इसके सेवन-काल में रक्त प्रदर की व्याधि में अशोकारिष्ट का सेवन करना तथा श्वेतप्रदर में पत्रांगासव या चन्दनासव का भोजनोत्तर समभाग जल में मिलाकर सेवन करने से शीघ्र एवं उत्तम लाभ होता है।

प्रदररिपु रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागभस्म प्रत्येक १-१ तोला, रसौत ३ तोला, लोध्र चूर्ण ६ तोला लें। प्रथम पारा तथा गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको एक दिन वासा-रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -यो.र.

वक्तव्य-रसौत में मिट्टी मिली होती है अतः अठगुने जल में घोलकर, छानकर गाढ़ा कर लेना चाहिए या दारू हल्दी के क्वाथ से स्वयं रसौत बनाकर प्रयोग करें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम खूनखराबा १ माशा और मधु से चटाकर ऊपर से चावल का पानी या अशोक की छाल का क्वाथ पिलाना चाहिए।

गुण और उपयोग- जैसे पुरुष को शुक्रपात विशेष होने से शुक्र पानी जैसा पतला होकर बहने लगता है, वैसे ही स्त्रियों को भी अधिक दिनों तक प्रदर की शिकायत होने से रज पानी जैसा पतला हो स्राव होने लगता है और यह स्राव बिना मालूम पड़े भी हो जाता है, जैसे निद्रावस्था में या कहीं बैठे-बैठे ही अथवा ज्यादा चलने-फिरने आदि से भी हो जाता और वह रूग्णा को मालूम भी नहीं पड़ता है। इसमें गर्भाशय बहुत कमजोर हो जाता है। बद्धकोष्ठता होने से पेट में मल संचय होता है। ऐसी अवस्था में इस रसायन के साथ बंग भस्म मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है। बद्धकोष्ठता दूर करने के लिए कुमार्यासाव या पत्रांगासव १।। तोला बराबर जल मिलाकर देना चाहिए। बढ़े हुए प्रदर में अर्थात् जिस समय रक्त का प्रवाह जोरों से हो उस समय इसका प्रयोग करना चाहिए तथा भोजनोत्तर अशोकारिष्ट २ तोला में समान भाग जल मिलाकर पिलाना विशेष लाभदायक है।

प्रमेहगजकेशरी रस

बंग भस्म, सुवर्ण भस्म, कान्त लौह भस्म, पारद भस्म या (रससिन्दूर), मोती भस्म या मोती पिष्टी, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपान ओर नागकेसर का चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर, घृतकुमारी के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर, सुखाकर रख लें। -र.सा.सं.

वक्तव्य- ग्रंथ के मूलपाठ के अनुसार इसकी दो-दो माशे की गोलियाँ बनाने का उल्लेख है, किन्तु स्वर्ण, मोती, रससिन्दूर, लौह भस्म और बंग भस्म के सम्मिश्रण से बनने वाले इस बहुमूल्य एवं तीक्ष्ण प्रभावशाली योग की मात्रा अत्याधिक है। अत: एक-एक रत्ती परिमाण की गोलियाँ बनाना उचित है। मात्रा में एक से तीन गोली तक दी जा सकती है।

दूसरा- लौह भस्म, नाग (सीसा) भस्म, बंग भस्म प्रत्येक १-१ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, शुद्ध शिलाजीत ५ तोला और गोखरू ६ तोला लें। सबको एकत्र मिलाकर नींबू के रस में ७ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली दिन में दो बार जल या गुड़मार बूटी के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और दाह आदि को नष्ट करता है। शुक्रस्राव को केवल ३ दिन में ही रोक देता है। इसके सेवन से मधुमेह में शर्करा की मात्रा कम होती है। इसके द्वारा अग्न्याशय की विकृतिजन्य पाचनक्रिया की न्यूनता से शारीरिक धातु-उपधातुओं की विकृति दूर हो जाती है और अग्न्याशय सबल होने पर शर्करा की अधिक उत्पत्ति नहीं होती है।

मधुमेह में होनेवाले अधिक पेशाब, प्यास, मुँह सूखना, भूख अधिक न लगना, आँखों के सामने अंधेरा छा जाना, भ्रम होना, कानों में आवाज होना, बेचैनी, सिर-दर्द आदि लक्षण आदि पर यह रस बहुत फायदा करता है। मधुमेह में वात प्रकोप के कारण सर्वांग में दर्द, रक्तवाहिनी नाड़ियों में वात प्रकोप होना, कलाय खंज (लंगड़ापन), चलने में पाँव काँपना, शरीर में सन्धियों की शिथिलता तथा उनमें अधिक दर्द होना, इन लक्षणों में इस दवा के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

पुराने मूत्रकृच्छ्र रोग में इसका उपयोग किया जाता है। इसमें मूत्र का वेग तो मालूम पड़ता है, किन्तु मूत्राशय से लेकर मूत्रनली के बीच किसी चीज की रूकावट हो जाने से पेशाब खुलकर न होकर कठिनता से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होता है। कठिनता से पेशाब होने के कारण ही इस रोग का नाम 'मूत्रकृच्छ्र' पड़ा है। पुराने सूजाक वाले रोगियों को अक्सर यह रोग हो जाया करता है। इसमें सुवर्ण बंग के साथ इस रसायन का प्रयोग करने से फायदा होता है। दूसरे योग की अपेक्षा प्रथम योग विशेष प्रभावशाली है, किन्तु प्रमेह अथवा मधुमेह में द्वितीय योग विशेष गुणकारी है, इसके सेवन से इन्शुलीन जैसा प्रभाव होता है।

प्रवाल पंचामृत रस

प्रवाल पिष्टी या भस्म २ तोला, मोती पिष्टी या भस्म, शंख भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म या पिष्टी, कौड़ी भस्म- प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र मिलाकर उसमें सबके बराबर (५ तोले) आक का दूध डालकर १ दिन घोंटकर गोला बना, सराबसम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर उसमें से भस्म को निकाल, पीस करके सुरक्षित रख लें। -यो.रं.

नोट- आक (अर्क) दुग्ध के पुट देने से इसमें कुछ उग्रता आ जाती है। अतएव कोई-कोई वैद्य इसे गो-दुग्ध में खरल करने की सलाह देते हैं। एक बार पुट देने से रंग स्वच्छ-सफेद न आये तो एक-दो पुट और देकर रंग सफेद बना लेना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती सुबह-शाम। गुल्म तथा उदर रोगों में पुनर्नवा क्वाथ के साथ दें। पित्त प्रधान रोगों में सितोपलादि चूर्ण और मधु अथवा गुलकन्द या आँवला के मुरब्बा के साथ, कास-श्वास में अदरक-रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- पित्ताशय, क्लोम, यकृत और प्लीहा के कार्यों पर इसका खास प्रभाव पड़ता है। यह तीक्ष्ण, क्षारीय और शीतवीर्य है। अतः कफ और पित्तजन्य रोगों में अधिकतर उपयोग किया जाता है। इस रसायन के सेवन से गुल्म, प्लीहा, आनाह (पेट फूलना), उदर रोग, खाँसी, अग्निमान्द्य, कफ और वातज रोग, अजीर्ण, डकारें ज्यादा आना, हृद्रोग, ग्रहणीविकार, अतिसार, प्रमेह, मूत्र-दोष, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी आदि रोग दूर होते हैं। सभी प्रकार के गुल्म रोगों में विशेषतः रक्तगुल्म में यह उत्तम गुणकारी महौषधि है। गुल्म कुठार रस या गुल्म कालानल रस, कांकायन बटी, सूरण बटक आदि के साथ इसका प्रयोग करना चाहिए।

यह पित्त के विकारों को ठीक करता और उसकी विकृति से उत्पन्न होने वाले उपद्रवों-आन्त्र-प्रदाह, गले में जलन, जलन के साथ दस्त होना, आँव से पैदा हुई संग्रहणी आदि को भी यह नष्ट करता है। इसके सेवन से हृदय और मस्तिष्क को बल मिलता है तथा फुफ्फुस से रुके हुए दोष भी निकल जाते हैं।

जहाँ कहीं मन्दज्वर के साथ शुष्क -साधारण कास (खाँसी) हो अथवा ज्वरादिक किसी प्रकार के उपद्रव न होते हुए भी शरीर दिन-प्रतिदिन दुर्बल हो रहा हो तो ऐसी अवस्था में यह रसायन बहुत फायदा करता है। ज्वर बराबर रहता हो, साथ में शुष्क कास-श्वास, पसली में दर्द आदि लक्षण हो तो प्रवाल पंचामृत मृगश्रुंग भस्म १ रत्ती के साथ प्रयोग किया जाता है। यक्ष्मा में अधिक ज्वर रहना, खाँसी भी अधिक होना, कफ दुर्गन्धियुक्त निकलना, पसीना ज्यादा आना, विशेषकर प्रातःकाल पसीना ज्यादा आना, प्यास ज्यादा लगना, कमजोरी आदि लक्षणों में गुडूची सत्त्व १ रत्ती, सुवर्ण भस्म एक चौथाई रत्ती के साथ इस रसायन का सेवन करना चाहिए। प्रसव के बाद स्त्रियों की दुर्बलता दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

कफ प्रकोपजन्य मूत्रकृच्छ्र में इस रसायन का उपयोग चावल के धोवन (पानी) के साथ करना चाहिए। बद्धकोष्ठ में आँतों की कमजोरी के कारण ही प्रायः मलबन्ध हो जाया करता है। ऐसी दशा में रससिन्दूर १ रत्ती, कुटकी चूर्ण ४ रत्ती, आठ नग दाख, हरीतकी चूर्ण १ माशा के साथ इसे मिलाकर गर्म जल या गर्म दूध के साथ सेवन करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। मूत्रकृच्छ्र रोग में-गोखरू क्वाथ के साथ बहुत फायदा होात है। रात्रि में अधिक पसीना आने पर वंशलोचन और मधु के साथ दिन में ३ बार इसके सेवन से लाभ होता है। बच्चों की तेज खाँसी में अभ्रक भस्म आधी रत्ती, रससिन्दूर चौथाई रत्ती, कंटकारी क्षार १ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ देने से लाभ होता है। छोटे-छोटे बालकों के ज्वरकास अथवा अर्थात् 'ब्रांको न्यूमोनिया' में इस रसायन को अभ्रक भस्म आधी रत्ती, रससिन्दूर चौथाई रत्ती, कायफल चूर्ण १ रत्ती में मिलाकर मधु के साथ देने से फायदा होता है। कास-श्वास में इस रसायन को रससिन्दूर १ रत्ती तथा वंशलोचन चूर्ण २ रत्ती में मिलाकर आँवले के मुरब्बा के साथ देना चाहिए।

पाचक पित्त की विकृति के कारण अन्नादिक पाचनक्रिया ठीक से नहीं होती है। जिससे खट्टी डकारें आने लगती हैं, पेट फूला हुआ तथा भारी मालूम पड़ता है। पेट में मन्द-मन्द दर्द होना, शरीर में आलस्य, किसी भी काम में मन न लगना आदि लक्षण होने पर प्रवाल पंचामृत जम्बीरी नींबू के रस के साथ देने से बहुत शीघ्र गुण करता है।

पित प्रधान यकृत-वृद्धि में त्वचा, आँखें, नाखून, मूत्र आदि सब पीले हो जाते हैं। पैरों में कुछ सूजन आ जाती है, पेट कुछ बढ़ जाता, यकृत का किनारा कुछ मोटा हो जाता है, घबराहट, बेचैनी, हाथ-पैरों में जलन आदि लक्षण होने पर दही के पानी के साथ प्रवाल पंचामृत रस के प्रयोग से बढ़ा हुआ पित्त शान्त हो जाता है, साथ ही यकृत-वृद्धि में भी कमी होने लगती है।

पित्त प्रकुपित होकर अतिसार हो गया हो और फिर उसी अतिसार ने संग्रहणी का रूप धारण कर लिया हो, तो ऐसी स्थिति में पर्पटी का उपयोग न कर प्रवाल पंचामृत का प्रयोग करना श्रेष्ठ है, क्योंकि पर्पटी कज्जली योग से बनने के कारण कुछ उष्ण-वीर्ययुक्त होती है। अतएव, यह पित्त को शान्त न कर कुछ बढ़ा ही देती है और प्रवाल पंचामृत पर्पटी की अपेक्षा सौम्य और पित्तशामक है। अत: इसके उपयोग से पित्त शान्त हो जाता है तथा पित्त से उत्पन्न हुए उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

इस रसायन में-प्रवाल-पित्तशामक और मूत्रल है। मोती-दाह और पित्तशामक, मूत्रल तथा रक्त-प्रसादक है। शंख, मौक्तिक व कौड़ी की भस्में पाचक, अग्नि-प्रदीपक ओर स्तम्भक है। -औ.गु.ध.शा.

पांडुपंचानन रस

लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म प्रत्येक ४-४ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, दन्तीमूल, चव्य, कालाजीरा, चित्रकमूल, हल्दी, दारूहल्दी, निशोथ, मानकन्द, इन्द्रजौ, कुटकी, देवदारू, बच, नागरमोथा-प्रत्येक का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला और सब चूर्ण से दुगुना मण्डूर भस्म तथा मण्डूर से अठगुना गो-मूत्र में मण्डूर भस्म डालकर पकावें। जब पाक गाढ़ा हो जाय तो उसे ठंडा कर उसमें लौह भस्मादि और उपरोक्त काष्ठौषधियों का चूर्ण डालकर मिला दें और ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। अथवा सुखाकर पीसकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली या ३-३ रत्ती सुबह-शाम गरम जल अथवा गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग पाण्डु, कामला, हलीमक आदि रोगों में किया जाता है। इसके प्रयोग से यकृत-विकार, तिल्ली का बढ़ना, स्थायी कब्ज आदि रोग नष्ट होकर पाचकाग्नि की वृद्धि होती है। कुछ दिनों तक लगातार सेवन करने से पाण्डुजनित शरीर का शोथ (सूजन) और पीलापन दूर होकर बल, वीर्य, कान्ति और रक्त की वृद्धि होती है।

पाशुपत रस

शुद्ध पारा १तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, तीक्ष्ण लौह रस ३ तोला और शुद्ध बच्छनाग ६ तोला लें। प्रथम पारा- गन्धक की कज्जली बना, फिर अन्य औषधें मिला, सबको एक दिन चित्रकमूल के क्वाथ में घोंटे। फिर सोंठ, पीपल, मिर्च २-२ तोला, लौंग, इलायची ७-७ तोला, जायफल और जावित्री आधा-आधा तोला, पाँचों नमक (समभाग) २।। तोला तथा सेहुण्ड, आक, तिन्तडीक, अपामार्ग (चिरचिरा) और पीपल वृक्ष इनके क्षार प्रत्येक २-२ तोला , हर्रे, यवक्षार, सज्जीखार, भूनी हुई हींग, जीरा और सुहागे की खील १-१ तोला लेकर सबका बारीक चूर्ण करके उपरोक्त भावना दी हुई औषधि में मिला सब सामान के वजन का सातवाँ भाग धतूरे के बीजों की भस्म मिलाकर सबको एक दिन नींबू के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर रख लें।-यो.त.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम। इसे उदर रोगों में लालमूली के रस के साथ, अतिसार में मोचरस के साथ, संग्रहणी में सेंधानमक मिश्रित तक्र (छाछ) के साथ शूल में

सेंधानमक, सोंठ, और पीपल के चूर्ण के साथ, वातव्याधि में सोंठ और सोंचर नमक के साथ, पित्तज रोगों में मिश्री और धनिया के चूर्ण के साथ और कफज रोगों में पीपल चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रस समस्त उदर-विकारों के लिये रामबाण है। इसके सेवन से अग्नि प्रदीप्त होकर खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह हजम हो जाता है। अनुपान भेद से यह उदर रोग मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी, अतिसार, बवासीर, आदि को नष्ट करता है और हैजा में भी लाभदायक है। यह रस पाचक, दीपक, अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विष नाशक, शूलघ्न, रोचक, वेदनाशामक और तीक्ष्ण प्रभावशाली योग है।

पीयूषवल्ली रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, चाँदी भस्म, लौह भस्म, सुहागे की खील, रसौत, माक्षिक भस्म, जावित्री, अजवायन, लौंग, श्वेतचन्दन, नागरमोथा, पाढ, जीरा, धनियाँ लाजवन्ती, अतीस, लोध, कुड़ा की छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, जायफल, बेलगिरी, नीम की पत्ती, शुद्ध धतूरे का बीज, दाड़िम का छिलका, हरड़ धाय के फूल और कूठ-प्रत्येक समभाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य भस्में तथा औषधों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिलाकर भाँगरे के रस में सात दिन घोंटकर चने के बराबर गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-सि.यो.सं.

वक्तव्य- यह मूल योग भै.र. ग्रहण्याधिकार का है। कई वैद्य लाजवन्ती के स्थान पर मजीठ, पाढ़ के स्थान पर पाठा ठीक मानते हैं।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली सुबह-शाम। अतिसार, संग्रहणी और बवासीर में इसबगोल के लुआब या भुना हुआ बेल और समान भाग गुड़ अथवा भुना हुआ जीरा और मधु के साथ दें। आँव, गुल्म, तिल्ली, कामला आदि में कुमारी रस या धान्य-पंचक काढ़ा के साथ दें। जलन, प्यास, वमन आदि में धनिया एवं लौंग के औंटाये हुए जल से अथवा अनार के रस से देना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह रस कठिन से कठिन संग्रहणी, प्रबल अतिसार, बवासीर, आमशूल आदि रोगों का नाशक है। पेट में संचित आँव तथा काला-पीला -रक्तमिश्रित दस्तों में लाभदायक है। तिल्ली, गुल्म, पाण्डु रोग, कामला, भोजन में अरुचि, जलन, प्यास की अधिकता, वमन आदि रोगों में अनुपान-भेद से यह बहुत लाभ करता है। संग्रहणी और अतिसार की प्रबलता में इसका उपयोग सर्वथा सफल होता है। यह उत्तम, आमपाचक, संग्राही, उदरवात शामक, शूलघ्न, अन्त्रस्थ सेन्द्रिय विषनाशक, बलवर्द्धक, सौम्य योग है- पुराने आँव तथा संग्रहणी में शंख भस्म के साथ इसका प्रयोग विशेष लाभदायक है।

पित्तान्तक रस

जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीशपत्र, श्वेत चन्दन (खश), स्वर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल भस्म या पिष्टी, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, कपूर प्रत्येक १-१ भाग, रौप्य भस्म सब द्रव्यों के बराबर लेकर प्रथम चूर्ण कराने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् चूर्ण और समस्त भस्में एकत्र मिला धनियाँ के क्वाथ के साथ दृढ़ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोली बना, छाया में सुखाकर रख लें।-रसामृत

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार चन्दन का अर्क या चन्दन भिंगोया हुआ जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के पित्त जनित रोग नष्ट

होते हैं तथा कोष्ठाश्रित पित्त या शाखाश्रित पित्त, शूल रोग, अम्लपित्त, पाण्डु रोग, हलीमक, अर्श(बवासीर) वमन, भ्रम इन रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। हस्तपाल तल दाह या स्वतन्त्र दाह रोग या किसी रोग में उपद्रव रूप दाह होने पर उसको शीघ्र नष्ट करता है। यह महारसायन समस्त पित्त प्रधान रोगों को नष्ट करने में अतीव लाभकारी है।

पीयूष सिन्धु रस

समान भाग पारा-गन्धक की कज्जली बना, बालुकायन्त्र में पाक करें। इस प्रकार ६ बार पाक करके ६ गुना गन्धक जारण करके रस-सिन्दूर बनावें। इस प्रकार षड्गुण बलिजारित रससिन्दूर १ तोला, स्वर्णभस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक प्रत्येक १-१तोला मिलाकर सूरणकन्द, दन्तीमूल, गोरखमुण्डी, मकोय, कलिहारी, भाँगरा, आक, चित्रकमूल-इनके स्वरस या क्वाथ से क्रमशः सात-सात बार भावना देकर मर्दन करें। गोला बनाने योग्य होने पर इसका गोला बना, एरण्ड के पत्तों में लपेट कर तीन दिन तक धान के ढेर में दबा रखें। तीन दिन पश्चात् निकाल कर गोले को सूक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रखें। -र.चि.म.

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक मधु या रोगानुसार अनुपान के साथ आवश्यकतानुसार दिन में २ बार दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से भयंकर अर्श रोग, ग्रहणी रोग, शूलरोग, पाण्डु रोग, अम्लपित्त, क्षयरोग- इनको शीघ्र नष्ट करता है। ६ मास तक इस रसायन का सेवन करने से वृद्धावस्था (बुढापा) नहीं रहता। इसके सेवन से कान्ति और वीर्य की वृद्धि होती है, यह अत्यन्त पुष्टिकारक है। इसके सेवन काल में खटाई तैल और स्त्री-प्रसंग से परहेज करना विशेष लाभदायक है।

पुष्पधन्वा रस

रससिन्दूर, नाग भस्म, लौह भस्म, बंग भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक समभाग लें। इन्हें धतूरे के रस, भाँग (कोई विजयसार लेते हैं), मुलेठी, सेमल की मूसली, और नागर बेल (पान) के रस की एक-एक भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, शहद या घी या औटाये हुए मिश्री मिले हुए दूध अथवा मक्खन-मिश्री आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन कामोत्तेजक, बल वीर्य, और शक्तिवर्द्धक एवं उत्तम बाजीकरण है। इसके नियमित सेवन से वीर्यस्राव, वीर्य-विकार, ध्वजभंग, बन्ध्यत्व आदि रोग नष्ट होते हैं। यह रस स्त्रियों के बीजाशय के योग्य विकास न होने से उत्पन्न बन्ध्यत्व दोष और पुरुषों के शुक्रस्त्राव की दुर्बलता से पैदा हुई नपुंसकता की अव्यर्थ औषधि है।

ज्यादा स्त्री-प्रसंग करने से शुक्र (वीर्य) पतला हो जात है। ऐसे समय में उत्तेजना (काम की इच्छा) होने पर सिर में दर्द होने लगता है और यह दर्द तब तक होता रहता है, जब तक वीर्यस्त्राव नहीं हो जाता अथवा किसी प्रेमी को अपनी प्रेमिका से सम्मिलन न होने के कारण उसको चित्त-विभ्रम (उन्माद) हो गया हो, तो इन दोनों अवस्थाओं में पुष्पधन्वा रस के उपयोग से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह रस वीर्यवाहिनी शिरा को शक्ति प्रदान कर उसे वीर्य धारणा करने में समर्थ बनाता है तथा जननेन्द्रिय की नसों में रक्त का संचार कर उसकी शिथिलता दूर कर उन्हें पुष्ट करता है। स्तम्भक और वृष्य होने से यह शुक्रधारक तथा शक्तिवर्द्धक भी है।

जैसे पुरुषों को कभी मनोव्याघात या और भी किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण स्त्री-प्रसंग करने की इच्छा नहीं होती, उसी तरह कभी-कभी स्त्रियों को भी यह शिकायत हो जाती है। यदि उक्त समय में पुरुष-संगम की इच्छा नहीं होती हो अथवा युवावस्था आने पर भी उचित

अंगों के विकास न होने से समागम की इच्छा नहीं होती हो, तो ऐसी अवस्था में पुष्पधन्वा रस के उपयोग से मानसिक क्षोभ दूर हो जाते और स्त्रियोचित अंगों की पुष्टि होने लगती तथा बाद में कामोत्तेजना भी होने लगती है।

गर्भाशय- सूजाक या उपदंश के विष के कारण दूषित हो गया हो, जिससे योनिमार्ग से पतला और बदबूदार स्त्राव भी होता हो, तो इस दूषित विष तथा स्त्राव को रोक कर गर्भाशय को शोधन करने के लिये इस रसायन का उपयोग किया जाता है। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है।

इस रसायन में- रससिन्दूर-बलवर्द्धक, उत्तेजक और योगवाही है। नाग भस्म- स्तम्भक, बल्य और मेहनाशक है। अभ्रक भस्म-मानसिक कष्ट से उत्पन्न हुए मनोविकार नाशक, धातुओं को परिपुष्ट करने वाला, योगवाही और रसायन है। बंग-मेह (प्रमेह) नाशक, वृष्य, बल्य तथा स्तम्भक है। लौह भस्म-रक्त बढ़ाने वाला और बलवर्द्धक है। धतूरा-दर्दनाशक, आल्हाद-जनक और वृष्य व शुक्र उत्पन्न करनेवाला तथा स्तम्भक है। मुलेठी-जीवनीय, बल्य और रसायन है। नागवेल (पान) उत्तेजक तथा बल्य है।- औ.गु.ध.शा.

पूर्णचन्द्र रस

रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, शुद्ध शिलाजीत, वायविडंग, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक समान भाग लेकर इन्हें घृत और मधु में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।- भै.र.

वक्तव्य- मधु और घृत के योग से बनी गोलियाँ सूखती नहीं है। अतः कितने ही वैद्य जल से घोंटकर गोलियाँ बनाते हैं, और घृत और मधु को अनुपान में देते हैं।

मात्रा और अनुपान- १ गोली प्रातः और १ गोली रात को सोते समय मक्खन, मलाई या मिश्री मिला, गर्म दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- रात्रि में ज्यादा पेशाब होने पर और स्वप्नदोष के लिये यह अत्यन्त हितकर है। पेट में कृमि हो, आध्मान् (पेट फूलना), निद्रा पूरी न आती हो, बुरे स्वप्न दिखाई दें और इसी हालत में वीर्य-स्त्राव हो जाय, ऐसी हालत में यह रस विशेष फायदा करता है। दुर्बल पुरुषों को यह पुष्टि के लिए दिया जाता है।

इसके सेवन से सब प्रकार के धातु-रोग निर्मूल हो जाते है, तथा शरीर में नया खुन और नया जोश उत्पन्न होता है। दिल और दिमाग में ताकत आ जाती है। स्तम्भक शक्ति और काम-शक्ति की जागृति होती है। बाजीकरण के लिये इसका प्रयोग अधिक लाभदायक है। कुछ अधिक समय तक इसे सेवन किया जाये तो शरीर में रस-रक्तादि धातुओं की अभिवृद्धि करके शरीर को हृष्ट-पुष्ट एवं शक्तिशाली बना देता है।

पूर्णचन्द्र रस (बृहत्)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक २-२ तोला, लौह भस्म, अभ्रक भस्म ४-४ तोला, चाँदी भस्म और बंग भस्म २-२ तोला, सुवर्ण भस्म, ताम्र भस्म, कांस्य भस्म, जायफल, लौंग, इलायची बीज, जीरा, दालचीनी, कपूर, फूल प्रियंगु और नागरमोथा-प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें काष्ठौषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर, ग्वारपाठा, त्रिफला और एरण्ड मूल के रस की पृथक्-पृथक् एक-एक भावना देकर, गोला बना, एरण्ड के पत्तों में लपेट कर अनाज के ढेर में दबा दें। ३ दिन बाद ढेर से निकाल पत्तों में से औषध को निकाल कर खरल करके चने के बराबर (एक-एक रत्ती की) गोलियाँ बना लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु, मक्खन, मिश्री एवं मलाई के साथ दें या लगाये हुए पान में रखकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह रस बल्य, रसायन एवं बाजीकरण है तथा अष्ठीला, खाँसी, श्वास, अरूचि, आमशूल, हृच्छूल, पित्तजन्य शूल, अग्निमांद्य, अजीर्ण, पुरानी संग्रहणी, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डूरोग, प्रमेह और वातरक्तनाशक है।

इस रसायन के सेवन से मेधा और वाक् शक्ति की वृद्धि होती है तथा मनुष्य अत्यन्त बलवान, कान्तियुक्त व रूपवान हो जाता है। यह रस स्त्री, पुरुष तथा दुर्बल रोगियों के लिये अत्यन्त हितकर है।

यह सभी प्रकार के रोगों में फलप्रद है, किन्तु इसका सबसे ज्यादा प्रयोग प्रमेह नपुंसकता तथा जननेन्द्रिय के विकारों में होता है। यह रसायन शुक्राणुओं की नवीन रचना करता है तथा रजाणुओं के उत्पत्तिक्रम को ठीक करता है। अति मैथुन या मैथुन से थके हुए पुरुषों में यह फिर से नवीन ताकत लाता है। शुक्रस्त्राव, श्वेतप्रदर तथा बहुमूत्र को यह अतिशीघ्र ठीक करता है। मस्तिष्क में धारणा शक्ति बढ़ने से हृदय को बल मिलता है तथा वीर्यवाहिनी नाड़ियों में चेतना आती है। किसी भी रोग से उत्पन्न कमजोरी इससे दूर हो जाती है। सन्निपात, ग्रहणी, क्षय आदि की कठिन दशा में इसका मिश्रण हृदय को शक्ति देता है। इसके सेवन से रसायन गुणों की प्राप्ति होती है, स्वस्थ रहते हुए मनुष्य दीर्घायु होता है। यह रस हृदय, मस्तिष्क, रस-रक्तादि धातुओं और इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाता है। शुक्र और ओज की विशेष वृद्धि कर काम शक्ति को भी बढ़ाता है।

बसंतकुसुमाकर रस

प्रवाल भस्म या पिष्टी, चन्द्रोदय या रससिन्दूर, मोती पिष्टी या भस्म, अभ्रक भस्म-प्रत्येक ४-४ तोला, रौप्य (चाँदी) भस्म, सुवर्ण भस्म २-२ तोला, लौह भस्म, नाग भस्म और बंग भस्म प्रत्येक ३-३ तोला लेकर सबको पत्थर के खरल में डालकर अडूसे की पत्ती का रस, हल्दी का रस, गन्ने का रस, कमल के फूलों का रस, मालती के फूलों का रस, शतावरी का रस, केले के कन्द का रस और चन्दन भिंगोया हुआ जल या चन्दन-क्वाथ प्रत्येक की सात-सात भावना दें। प्रत्येक भावना में ३-६ घण्टा मर्दन करना चाहिए। अन्त की भावना के समय उसमें २ तोला अच्छी कस्तूरी मिलाकर ३ घण्टा मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा लें। इस योग में यदि २ तोला अम्बर भी मिला दें, तो यह विशेष गुणकारक होता है। - सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम। नपुंसकता और वीर्य स्त्राव में धारोष्ण गोदुग्ध, मस्तिष्क के विकारों में आँवले के मुरब्बे, रक्त-पित्त और रक्त प्रदर में वासा-रस और मधु के साथ, कास-श्वास और क्षय में चौसठ प्रहर पीपल के साथ मधु मिलाकर दें। अम्लपित्त में कुष्माण्ड अवलेह के साथ हृदयरोग में अर्जुन छाल के क्वाथ से प्रमेह में गुडूची स्वरस और मधु के साथ तथा मधुमेह में जामुन की गुठली का चूर्ण और शिलाजीत के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह हृद्य, बल्य (बलवर्धक) उत्तेजक, वृष्य, बाजीकरण और रसायन है। स्वर्ण, मोती, अभ्रक, रससिन्दूर आदि बलवर्द्धक द्रव्यों के संयोग से बनने के कारण यह सभी रोगों के लिए बहुत फायदेमन्द है। स्त्री-पुरुषों के जननेन्द्रिय सम्बन्धी विकारों पर इसका बहुत अच्छा और तात्कालिक प्रभाव पड़ता है। मधुमेह बहुमूत्र और हर तरह के प्रमेह, नामर्दी, सोमरोग, श्वेतप्रदर, योनि तथा गर्भाशय की खराबी, वीर्य का पतला होना या गिरना व वीर्य सम्बंधी शिकायतों को जल्दी दूर कर शरीर में नयी स्फूर्ति पैदा करता है। वीर्य की कमी से होने

वाले क्षयरोग की यह बहुत उत्तम दवा है। हृदय और फेफड़े को इससे बल मिलता है। हृदय की कमजोरी, शूल तथा मस्तिष्क की निर्बलता, भ्रम, याददाश्त की कमी, नींद न आना आदि विकारों को दूर करता है। पुराने रक्तपित्त, कफ, खाँसी, श्वास, संग्रहणी क्षय, रक्तप्रदर, श्वेत प्रदर, खून की कमी और बुढ़ापे तथा रोग छूटने के बाद की कमजोरी में इस रसायन का प्रयोग बहुत लाभदायक है। अनुपान भेद से अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। मधुमेह रोग की यह प्रसिद्ध औषध है।

छोटी आयु में अप्राकृतिक ढंग (हस्तमैथुन, गुदामैथनु आदि) से वीर्य नाश करने से अथवा ज्यादा स्त्री-प्रसंग (मैथुन) करने से वीर्य पतला हो जाता है, ऐसे मनुष्य का स्त्री-विषयक चिन्ता करने मात्र से वीर्य-पतन हो जाता है। ऐसी स्थिति में बसन्तकुसुमाकर के सेवन से बहुत शीघ्र फायदा होता है, क्योंकि यह रसायन और वृष्य होने के कारण वीर्यवाहिनी शिरा तथा अण्डकोष में ताकत पहुँचाता है, जिससे वीर्यवाहिनी शिरा में वीर्य धारण करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

पुराने नकसीर रोग में इसका उपयोग किया जाता है। किसी-किसी मनुष्य की आदत-सी हो जाती है कि अधिक गर्म पदार्थ के सेवन या धूप में विशेष चलने-फिरने आदि से नाक फूटकर रक्त निकलने लगता है। इसे भाषा में नकसीर या नक्की छूटना कहते हैं। इसमें भी इसको शर्बत अनार, दाड़िमावलेह, आँवला-मुरब्बा या गुलकन्द के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है। साथ ही दूर्वादि घृत की मालिश भी सिर में करनी चाहिए।

जिस स्त्री को समय से ज्यादा दिन तक और अधिक मात्रा में रजःस्राव होता हो, उसके लिए भी यह दवा बहुत उपयोगी है। शरीर में खून (रक्त) ज्यादा पतला हो जाने से ऐसा होता है। ऐसी स्त्री को शरीर के किसी अंग में जरा-सा कट जाने या खुर्च जाने अथवा सूई आदि चुभ जाने से बहुत खून निकलता है, जो बहुत देर में बन्द होता है। ऐसी स्थिति में रक्त गाढ़ा करने के लिये बसन्तकुसुमाकर रस का प्रवालपिष्टी के साथ उपयोग करना लाभप्रद है।

बुढ़ापे में सब इन्द्रियाँ प्रायः शिथिल हो जाती हैं, किन्तु सबसे ज्यादा शरीर के अन्तरवयवों में आँतों की शिथिलता होने से यह अपने कार्य करने में असमर्थ हो जाती है, जिससे अन्नादिकों का पचन-कार्य ठीक से नहीं हो पात। इसका प्रभाव हृदय और फुफ्फुसों पर विशेष पड़ता है। फिर कास और श्वास की उत्पत्ति होती है। यह वृद्धों के लिये बहुत भयंकर व्याधि है। इसमें बसन्तकुसुमाकर रस का अभ्रक भस्म के साथ प्रयोग जादू-सा असर करता है। इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने, रसरक्तादि धातुओं की वृद्धि कर हृदय, मस्तिष्क को बल प्रदान करने, शारीरिक कान्ति बढ़ाने, शुक्र ओर ओज को बढ़ाकर स्वास्थ्य को स्थिर बनाने में यह रस परमोत्तम रसायन का कार्य करता है। -औ.गु.ध.शा. के आधार पर

बसन्ततिलक रस

लौह भस्म, बंग भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म या वर्क, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म, चाँदी भस्म, मोती भस्म या पिष्टी, जायफल, जावित्री, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर इनका कूट-कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण और उपरोक्त भस्म प्रत्येक दवा सम भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर, त्रिफला के क्वाथ में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर, छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-३ गोली सुबह-शाम मधु मिले हुए गिलोय रस अथवा शतावरी के रस से दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से वातज-पित्तज और कफज तथा सान्निपातिक अनेक रोगों का नाश होता है। विशेषतया वातव्याधि, अपस्मार, विसूचिका, उन्माद और शरीर की स्तब्धता तथा सभी प्रकार के प्रमेह का नाश होता है।

लौह, बंग, स्वर्ण, मोती आदि बहुमूल्य वृष्य और धातु पौष्टिक औषधियों के योग से बना हुआ यह रस सब प्रकार के प्रमेह रोगों में उपयोगी है। यह वाजीकरण और वीर्यवर्धक भी हे। बहुमूत्र और चीनी की बीमारी (डायबिटिज) में नागभस्म के साथ इसका अच्छा प्रभाव होता है, अपस्मार (मृगी) के लिये भी यह बहुत फायदेमन्द है। यह उदर-वातशामक, धातुवर्धक, शुक्र तथा मूत्र के दोषों का नाशक, वीर्यवर्द्धक तथा हृदय और मस्तिष्क को बल प्रदायक एवं उत्तम निद्राजनक और श्रेष्ठ रसायन है।

बहुमूत्रान्तक रस

रससिन्दूर, लौह भस्म, बंग भस्म, शुद्ध अफीम,गूलर-फल के बीज, बेल की जड़ की छाल और तुलसी समान भाग लेकर, प्रथम रससिन्दूर को खरल में घोंटकर लौह और बंग भस्म, शुद्ध अफीम मिला काष्ठौषधियों को कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना, मिला कर गूलर के फलों के रस में सब को घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- बहुमूत्र, मधुमेह (पेशाब में चीनी आने) में जामुन की गुठली और गुड़मार का चूर्ण १-१ माशा, गुलर का रस और मधु के साथ १-१ गोली सुबह-शाम दें। प्रमेह में गुर्च के रस और मधु से दें। नपुंसकता-नामर्दी और शीघ्रपतन दोष दूर करने के लिये मिश्री मिला, खूब, औटायें दूध के साथ दें।

नोट-यदि इसके सेवन से प्यास अधिक लगे तो सारिवा, मुलेठी, मुनक्का, दाभ (कुश), चीड़ का बुरादा, लालचन्दन, हर्रे का बक्कल, महुआ के फूल-सब समान भाग लेकर, काढ़ा बना, ठण्डा करके पिलाना चाहिए अथवा इन चीजों को रात में पानी में भिगों दें और प्रात:काल छानकर पिलावें।

गुण और उपयोग- यह रसायन मधुमेह और बहुमूत्र तथा सोम रोगों के लिये बहुत उपयोगी है। प्रमेह और शीघ्र पतन, वीर्य की कमी आदि में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

वडवानल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पीपल पाँचों नमक-प्रत्येक पृथक्-पृथक्, काली मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सज्जीखार, जवाखार और शुद्ध सुहागा-इन सबका कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर अन्य सभी दवाओं को चूर्ण मिलाकर खरल करें। फिर निर्गुण्डी के रस में एक दिन भावना दें, खरल कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनाकर, सुखाकर रख लें। -र.सा.सं.

वक्तव्य- पञ्चलवण शब्द से सैन्धव नमक, विड्नमक (काला), सामुद्र नमक, साम्भरनमक, सौवर्चलनमक (मनिहारी नमक)-इन पाँच लवणों को पृथक्-पृथक् समान भाग में लिया जाता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली दिन में दो बार दें। जम्बीरी या कागजी नींबू का रस जल में मिलाकर उसके साथ सौंफ अर्क अथवा अर्क अजवायन के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह रसायन अजीर्ण, मन्दाग्नि, गुल्म, शूल आदि के लिए उत्तम है। इसके सेवन से खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह से पच जाता है और अग्नि की भी वृद्धि होती है।

वातचिन्तामणि रस (बृहत्)

स्वर्ण भस्म १ तोला, चाँदी भस्म २ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, मोती भस्म या पिष्टी ३ तोला, प्रवाल भस्म या पिष्टी ३ तोला, लौह भस्म ५ तोला, रससिन्दूर ७ तोला लें। प्रथम रससिन्दूर को खूब महीन पीसें, फिर अन्य सब दवाओं को मिलाकर ग्वारपाठे के रस में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली यथावश्यक दिन में तीन-चार बार मधु (शहद) से दें।

गुण और उपयोग- आयुर्वेद में वात रोगों के लिए इस औषधि की प्रशंसा है। इसके सेवन से सब प्रकार के वात और पित्त-सम्बन्धी रोग जड़-मूल से नष्ट हो जाते हैं। नींद न आना, मस्तिष्क की ज्ञानवाहिनी नाड़ियों के दोष से उत्पन्न होने वाली बीमारी और हिस्टीरिया आदि में इसके सेवन से बड़ा लाभ होता है।

यह रस हृदय और मस्तिष्क के लिए उत्तम बलकारक, वात-कफ नाशक व वाजीकरण है। सब प्रकार के वात रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। आक्षेपक और हिस्टीरिया में मांस्यादि क्वाथ के अनुपान से दें। सन्निपात ज्वर में जब प्रलाप, मोह, नाड़ी की क्षीणता, हाथ-पाँव काँपना पसीना, अधिक होकर शरीर ठण्डा पड़ जाना इत्यादि लक्षण हों, तो इसके प्रयोग से लाभ होता है। प्रलापावस्था में तगरादि क्वाथ के साथ इसका प्रयोग करें। हृद्रोगों में अर्जुन छाल का रस या चूर्ण के साथ प्रयोग करने से उत्तम लाभ होता है। पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात, अपतानक, दण्डापतनाक आदि कठिन वातरोगों में रसोनसिद्ध घृत में मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है। जीर्ण वातरोगों में जब कि रोगी अत्यन्त कमजोर हो जाता है और चलने-फिरने में भी अशक्तता अनुभव करता है, ऐसी स्थिति में इस महौषधि का सेवन कराने से कायाकल्प जैसा उत्तम लाभ होता है।

वातकुलान्तक रस

जावित्री,शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागकेसर, शुद्ध मैनशिल, बहेड़ा, जायफल, छोटी इलायची बीज और लौंग-प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें जावित्री डालकर ब्राह्मी रस में ३ घण्टा मर्दन करें, फिर शेष दवाओं का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला, ब्राह्मी के रस में एक दिन मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में तीन-चार बार, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, लौंग और जटामांसी क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन-अपस्मार, मूर्च्छा (बेहोशी), हिस्टीरिया, आक्षेपक, अपतानक, दण्डापतानक, धनुर्वात, पक्षाघात आदि वात रोग और सूतिकारोग-जन्य वातरोग आदि को नष्ट कर

---

१. मांस्यादि क्वाथ-जटामांसी १ तोला, असगन्ध चौथाई तोला, खुरासानी अजवायन के बीज १।। माशा-इनको जौकुट कर १० तोला जल में पकाकर ४ तोला जल बाकी रहने पर कपड़े से छानकर दें।

२. तगरादि क्वाथ-तगर (यूनानी आसारून), पित्तपापड़ा, अमलतास का गूदा, नागरमोथा, कुटकी, जटामांसी (बालछड़), असगन्ध, ब्राह्मी, मुनक्का, लालचन्दन, दशमूल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटा गोखरू, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, अरणी, गम्भारी, सोनापाठा, पाटला (पाढ़लछाल), बेलछाल और शंखपुष्पी-ये सब द्रव्य समान भाग लेकर जौकुट अधकचरा (दरदराकूट) कर रख लें। इसमें से १ तोला दवा को १६ तोला जल में पकावें। जब ४ तोला जल बाकी रहे, तब कपड़े से छान कर रोगी को दें।

करता तथा मन को प्रसन्न करता और सन्निपात ज्वर में उपद्रव रूप से उत्पन्न प्रलाप (अक-बक करना), चित्तविभ्रम आदि उपद्रवों को दूर कर अच्छी नींद लाता है। वातरोगों तथा मानसिक एवं मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में उत्तम और शीघ्र लाभकारी महौषधि है।

इस रसायन का सबसे अधिक प्रभाव मस्तिष्क और वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। अतएव मानसिक आघात से उत्पन्न होनेवाले रोगों में इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी तरह आक्षेपजन्य विकारों में अर्थात् वातवाहिनी नाड़ियों की विकृति से रक्त का संचार ठीक-ठीक नहीं होने से शिराओं में खिंचावट पैदा होने लगती है, तब धनुर्वात आदि रोग नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि यह वातवाहिनी नाड़ियों की विकृति को दूर करता है, जिससे रक्त का संचार ठीक तरह होने लग जाता है। इस रसायन में पारद जैसे योगवाही द्रव्य और कस्तूरी जैसे व्यवायी और विकाशी, तीक्ष्ण एवं उष्णवीर्य और उग्र प्रभावशाली द्रव्य के संयोग से इसके गुणों में बहुत वृद्धि हो जाती है।

वातगजांकुश रस

पारद भस्म (रससिन्दूर), लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, हर्रे, ककड़ासिंगी, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपल, अरनी की जड़ की छाल, सुहागा प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, फिर उसमें काष्ठौषधियों का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण तथा अन्य चीजें कज्जली में मिलाकर गोरखमुण्डी और सम्भालू के रस में १-१ दिन घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मजीठ के क्वाथ में पीपल चूर्ण मिलाकर अथवा रास्नादि क्वाथ या दशमूल क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- आयुर्वेद-शास्त्र में इस रसायन की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "सप्ताहाद्गृध्रसी हन्तिदारुणं सान्निपातिकम्" अर्थात् यह रसायन दारुण सन्निपातज गृध्रसी को भी ७ दिन में ही नष्ट कर देता है। इस रसायन की उत्तमता इससे ज्ञात हो जाती है कि यह कोष्टुशीर्षक, अवबाहुक, मन्यास्तम्भ, उरूस्तम्भ, हनुस्तम्भ और पक्षाघात आदि रोगों में भी विशेष फायदा करता है।

वात और कफ से उत्पन्न वातरोगों में इसका प्रभाव बहुत अच्छा होता है। मेदस्वी (जिनकी चर्बी बढ़ी रहती है) पुरुषों के लिये तो यह बड़ी अच्छी दवा है,क्योंकि यह वातविकारों के साथ मेदोरोग को भी रोग नष्ट करता है।

वातरक्तान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुलु, वायविडंग, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, बाकुची, पुनर्नवा की जड़, देवदारु, चित्रक, दारुहल्दी और सफेद कोयल (अपराजिता) की जड़ प्रत्येक समान भाग लेकर पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें कपड़छन किया हुआ काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण मिलाकर, सबको एकत्र मिलाकर त्रिफला और भाँगरे के रस की ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -र.रा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम नीम के पत्ते, फूल और छाल के समभाग का महीन चूर्ण बना, इसमें से ४ माशा चूर्ण को दवा के साथ मिलाकर घी के साथ चटा दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से अत्यन्त कठिन और सभी तरह के वातरक्त रोग नष्ट होते हैं। वात-रक्त रोग की किसी भी अवस्था में इस रसायन का प्रयोग किया जा सकता

है। रक्त दूषित हो जाने से शरीर में खाज, खुजली, फोड़े, फुन्सी आदि उत्पन्न हो जाने पर भी इससे लाभ होता है। वातरक्त में गुडुची रस २ तोला और मधु तीन माशा में मिलाकर देने से भी बहुत उत्तम लाभ होता है।

वान्तिहृद रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, शंख भस्म प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् लौह भस्म और शंख भस्म को मिलाकर घृत-कुमारी, धतूरा और चाँगेरी रस की १-१ भावना दें। गोला बना, सराबसम्पुट में बन्द कर, ७ बार कपड़मिट्टी कर सुखा, भूधरपुट में २ सेर कण्डे की आँच में फूँक दें। स्वांग शीतल हो जाने पर दवा निकाल खरल करके रख लें।

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती दिन में ३ बार शहद के साथ अथवा अजमोदा और वायविडंग का समान भाग किया हुआ चूर्ण १ माशे में शहद के साथ दें।

नोट- वमन में यदि प्यास लगे, तो पीपल की छाल को जला, अंगारों को पानी में बुझाकर, वही पानी छानकर पिलाना चाहिए।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग सब प्रकार के वमन नष्ट करने के लिए किया जाता है। विशेष कर पैत्तिक विकार से उत्पन्न वमन में जिसमें कण्ठ में जलन हो, खट्टी डकारें आती हों, पेट फूला हुआ रहता हो, खाने के बाद तुरन्त वमन हो जाना आदि लक्षण होते हों, ऐसी स्थिति में दूषित पित्त को सुधारने के लिये वान्तिहृद् रस का उपयोग किया जाता है। पुदीना के रस या अर्क के साथ सेवन करने से सत्वर लाभ होता है। मयूर चन्द्रिका भस्म के साथ मिलाकर देने से वमन और हिक्का में उत्तम लाभदायक है। अजमोद और वायविडंग समभाग मिलाकर बनाये १ माशा चूर्ण के साथ देने से कृमिरोग में लाभ होता है।

पैत्तिक परिणामशूल- अर्थात् पित्त के दूषित हो जाने से जो शूल होता है, उसमें होनेवाला अथवा अन्नद्रव शूल में होने वाला वमन तथा अम्लपित्त में होनेवाला वमन या खाना खाते समय किसी घृणित पदार्थ के देखने, स्पर्श या भोजन के साथ किसी तरह भूल से पेट में चले जाने से मन बिगड़ जाता है, जिससे उलटियाँ होने लग जाती हैं, आदि किसी भी प्रकार का वमन क्यों न हो, सब में इस रसायन से लाभ होता है। पैत्तिक परिणामशूल वमन में नारियल जल के साथ दें। अन्नद्रव शूल तथा अम्लपित्तजन्य वमन में आँवला चूर्ण १ माशा या लवंगादि चूर्ण १ माशा और मधु में मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है।

वातविध्वंसन रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नाग भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, पीपल, सुहागे की खील, कालीमिर्च, सोंठ-प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिला, सबको १ प्रहर तक घोटें। फिर उसमें शुद्ध बच्छनाग का चूर्ण ४।। तोला मिलाकर त्रिकटु के क्वाथ, त्रिफला के क्वाथ, चित्रक के क्वाथ, भाँगरे के रस, कूठ के क्वाथ, सम्भालू के रस, आक के दूध (अभाव में पत्र-स्वरस), आमले के रस, अदरक के रस और नींबू के रस की ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मांस्यादि क्वाथ में मधु मिलाकर या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से वातसम्बन्धी होने वाले रोग, शूल, पेट-दर्द, कफ से होने वाले रोग, ग्रहणी, सन्निपात, मूढ़वात और सूतिका रोग तथा मन्दाग्नि एवं गर्भाशयजन्य विकार आदि रोगों का नाश होता है।

इस रसायन का प्रधान कार्य वातवाहिनी नाड़ियों पर होता है। प्रकूपित वात के कारण जब वातवाहिनी नाड़ियाँ दूषित हो, अनेक प्रकार के आक्षेप सहित वातरोगों को जैसे-पक्षाघात, अपतन्त्रक, अपतानक आदि व्याधियाँ तीव्र वेदना के साथ उत्पन्न कर देती हैं अथवा और भी किसी कारणवश वातवाहिनी नाड़ी दूषित होने पर, शरीर के किसी भी भाग में (सुई चुभोने के सदृश) वेदना होने लगती हो या शरीर में प्रकुपित वात के लक्षण दिखाई पड़ते हों, तो इन अवस्थाओं में वातविध्वंसन रस के उपयोग से बहुत शीघ्र सफलता मिलती है, क्योंकि यह रसायन प्रकुपित वात तथा वातजन्य किसी भी प्रकार के दर्द को शान्त करने में विचित्र प्रभाव दिखलाता है।

सन्धिवात (जोड़ों में दर्द होना) तथा आमवात में-जब रोगी दर्द के मारे बेचैन हो, सूजन हों, बिच्छू काटने की-सी पीड़ा हो तो ऐसे भयंकर रोग में संचित आम को दूर करने तथा भयंकर वेदना को नष्ट करने के लिए वातविध्वंसन रस का उपयोग करना अति हितकर है। इस रोग की यह श्रेष्ठ औषधि है।

वातज सिर-दर्द में- अचानक सिर में दर्द उत्पन्न होता है। यह दर्द बहुत भयंकर होता है, मालूम पड़ता है कि सिर में कोई लोहे की कील ठोक रहा है। रोगी इस दर्द के मारे परेशान हो जाता है। रात्रि में यह दर्द विशेष बढ़ जाता है। दर्द झटके के साथ होता है। दर्द कुछ सेकेण्ड के लिए कम हो जाता है, परन्तु फिर उग्ररूप में होने लगता है। सिर की दाहिनी तरफ यह दर्द अधिक होता है। दर्द के मारे रोगी रोने-चिल्लाने लगता है, कहीं चैन नहीं मिलती।

इसी तरह कभी-कभी अचानक पांजर (पसली), कोष्ठ (कोठा) तथा छाती में भयंकर वेदना होने लगती है। इसमें भी झटके के साथ दर्द होता है। रोगी को मालूम होता है कि कोई भाला या बर्च्छी आदि शस्त्र अन्दर घुसेड़ रहा है। इसमें भी रोगी पागल हो जाता है तथा रोने लगता है, इन दोनों अवस्थाओं में वात विध्वंसन रस के उपयोग से अपूर्व फायदा होता हे।

वात प्रकोप के कारण हृदय में दर्द, आक्षेप (झटके) के साथ हो और दर्द छाती तथा पीठ की और बढ़ रहा हो, तो वातविध्वंसन रस का सेवन करावें। इसमें भी वात प्रकोप से तीव्र दर्द होता है, रोगी बेचैन हो जाता है। परन्तु यदि दर्द की गति बाँयी तरफ हो तथा पसीना भी ज्यादा आवे तो ऐसी हालत में सिर्फ वातविध्वंसन रस न देकर पित्तशामक औषधियाँ-प्रवालपिष्टी, मुक्तापिष्टी आदि के साथ इसका प्रयोग करें, क्योंकि वात विध्वंसन रस पित्तशामक नहीं है। अतएवं, इसमें पित्तशमनार्थ प्रवाल तथा मुक्ता जैसी दवाओं का सम्मिश्रण आवश्यक हो जाता है।

सन्निपात में प्रकुपित वातदोष से रोगी अण्ट-सण्ट बोलने लगता है और बेचैन भी रहता है। सिर को एक जगह नहीं रखकर इधर-उधर पटकता रहे, चेहरा विशेष कर आँखों की पलकें कुछ भारी मालूम पड़े, जीभ काली, और काँटेदार हो आदि लक्षण उत्पन्न होने पर वात दोषों का शमन करने के लिये वातविध्वंसन रस का सेवन करना चाहिए।

बच्चा होने के बाद प्रसूता स्त्री में वात-प्रधान लक्षण विशेष देखने में आते हैं। इसमें कभी-कभी पेट में दर्द, सिर में दर्द तथा कोष्ठ में दर्द होने लगता है। यह दर्द भी झटके के साथ होता है। प्रसूता के लिए यह दर्द बहुत भयंकर होता हे। क्योंकि एक तो वह वैसे ही कमजोर रहती है, दूसरे इस दर्द में खाना-पीना सब छूट जाता है, जिससे कमजोरी और बढ़ जाती है। ऐसी दशा में वातदोष को शान्त करने के लिये वातविध्वंसन रस का उपयोग करना अच्छा है। -औ.गु.ध.शा.

दूसरा- शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागे की खील, पाषाण भेद, शुद्ध बच्छनाग, कौड़ी भस्म, शुद्ध हरताल और त्रिकुटे का कपड़छन किया हुआ चूर्ण प्रत्येक समभाग लेकर, प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना फिर उसमें अन्य औषधियाँ डालकर धतूरे के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनावें। -र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से सन्निपात, वात और कफ-विकार तथा सर्दी से होनेवाले विकार एवं मन्दाग्नि श्वास, कास आदि रोगों में लाभ होता है।

वातारि रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, त्रिफला चूर्ण मिश्रित ३ तोला, चित्रक मूल की छाल ४ तोला, शुद्ध गूगल ५ तोला, लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् शुद्ध गूगल को एरण्ड तैल में डालकर पतला करें और इसमें यह कज्जली तथा अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रख लें। वृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली गरम जल से या सोंठ और एरण्डमूल के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के वातरोग, उरूस्तम्भ ओर आमवात शीघ्र नष्ट होते हैं। इस रसायन को प्रातःकाल में सेवन करना चाहिए और औषधि खाने के पश्चात् सोंठ का चूर्ण खाकर एरण्ड मूल का क्वाथ पीयें। शरीर पर एरण्ड तैल की मालिश करके पीठ पर सेंकना चाहिए और निर्वातस्थान चाहिए। इस रसायन के सेवन से ठीक विरेचन हो जावें, तो स्निग्धोष्ण भोजन करना चाहिए। इस रसायन का एक माह तक ब्रह्मचर्य पालन के साथ सेवन करने से वायु से होने वाले रोग निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं। अन्त्रवृद्धि और मेद-वृद्धि रोग में इसको हरड़ के क्वाथ के साथ सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। भगन्दर, नासूर और श्वास रोग में भी इसका प्रयोग श्रेष्ठ हितकर है। इन रोगों में इसे महामंजिष्ठादि क्वाथ या अर्क के साथ देना चाहिए।

वातेभकेसरी रस

शुद्ध संखिया, काली मिर्च, लौंग चूर्ण, शुद्ध बच्छनाग, छुहारे की गुठली, जायफल और करीर की कोपल-प्रत्येक १-१ तोला, अफीम और मिश्री २-२ तोला लें। सबकों खरल में पीसकर बड़ के दूध में मर्दन कर, रससों के प्रमाण की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-सि.भै.म.

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली, आवश्यकता पड़ने पर दिन-रात में तीन बार भी दे सकते हैं।

गुण और उपयोग- न्यूमोनिया में इसे मिश्री के साथ देने से तत्काल लाभ होता है। कफ प्रधान कास, श्वास और सन्निपात में शहद के साथ देते हैं। मूर्च्छा में सफेद कत्था १ रत्ती, अकरकरा १ रत्ती में मिलाकर देने से फायदा होता है। रोगी शीघ्र ही होश में आकर बोलने लग जाता है। हिक्का में मूली के बीज के साथ अतिसार में छोटी हर्रे, सौंफ और जीरे के साथ दें। रक्तप्रदर में शहद या घी के साथ अतिसार में छोटी हर्रे, सौंफ और जीरे के साथ दें। रक्तप्रदर में शहद या घी के साथ प्रयोग करें। असाध्य समझे गये सिर दर्द में नकछिकनी के महीन चूर्ण में मिला, नस्य रूप में प्रयोग करें। पेट फूलने पर अदरक रस के साथ सेवन करें और चूहे की मिगनी का लेप नाभि पर करें। पारी से आनेवाले ज्वर में गुड़ के साथ दें। पैत्तिक ज्वर में चीनी

के साथ नामर्दी में घी, मलाई अथवा दूध-मिश्री के साथ दें। सूजाक में गुलकन्द के साथ, बाजीकरण में जायफल चूर्ण और कस्तूरी के साथ मिलाकर देने से अच्छा काम करता है। -र.वि.

इस रस में मल्ल, बच्छनाग और अफीम का सम्मिश्रण होने से यह अत्यन्त उष्णवीर्य एवं उग्र प्रभावशाली होता है। असाध्य वात रोगों में इसे सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। सेवनकाल में घी-दूध का सेवन भी करना चाहिए।

बालचन्द्र रस

स्वर्ण भस्म १ तोला, शुद्ध सोना गेरू ३ तोला, मुक्तापिष्टी १२ तोला लें। इन तीनों को एकत्र मिलाकर अच्छी तरह खरल कर सुरक्षित रख लें।-र.यो.सा.

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती दिन में ३-४ बार मक्खन-मिश्री, सत गिलोय, शर्बत अनार तथा दाड़ीमावलेह के साथ दें।

गुण और उपयोग- राजयक्ष्मा रोग में होने वाले उपद्रवों-वमन, जी मिचलाना, अतिसार(पतले दस्त आना), श्वास, जुकाम, सुखी खाँसी और रक्त-पित्त आदि को दूर करता है और कृत्रिम विष का नाशक है। मस्तक और वातवाहिनियों पर शामक असर पहुँचाता है तथा पाचन संस्थानगत सेंद्रिय विष को नष्ट करता है।-र.वि.

पित्तजनित विकारों, हृदय के विकारों तथा रक्तचाप वृद्धि में इस रसायन से अच्छा लाभ होता है। यह अतीव सौम्य एवं बलवर्द्धक महौषधि है।

बालज्वरांकुश रस

पारद भस्म,(रससिन्दूर), अभ्रक भस्म, बंग भस्म, चाँदी भस्म १-१ तोला, ताम्र भस्म और फौलाद भस्म तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, बहेड़ा, कसीस भस्म २-२ तोला लेकर सबका महीन चूर्ण करके उसे पान के रस की गई भावनाएँ देकर२-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-वृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- १-१गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग विशेषत: कफजन्य बीमारियों में किया जाता है। छोटे-छोटे बच्चों को सर्दी (कफ) के कारण ज्वर(बुखार), पतले दस्त, कभी-कभी दूध पीना भी बन्द कर दें, कफ के मारे बच्चा परेशान रहे, ऐसी हालत में इस रसायन के उपयोग से बहुत फायदा होता है। कफ-वृद्धि के कारण दूध पाचन ठीक तरह से न होना, उल्टी हो जाना, दस्त सफेद, पतला तथा फटा हुआ होना, ज्वर रहना, खाँसी, श्वास फूलना आदि कारणों की उपस्थिती होने पर भी इस रसायन के उपयोग से लाभ होता है। गर्भिणी स्त्री को हुए ज्वर में भी इसके प्रयोग से श्रेष्ठ लाभ होता है।

बालरोगान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ४-४ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ तोला लेकर तीनों को एकत्र कर, खरल में घोंट, महीन कज्जली बना लें। फिर उसे लौह के खरल में काले भाँगरे और सफेद भाँगरे तथा संभालू के पत्तों का रस एवं मकोय, ग्रीष्मसुन्दर, हुलहुल, पुनर्नवा, मण्डूकपर्णी और सफेद अपराजिता के स्वरस की १-१ भावना देकर उसमें २ तोला काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर १ प्रहर तक पत्थर के खरल में लौह की मूसली से घोंटकर सरसों के बराबर गोलियाँ बनाकर धूप में सुखा लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम माँ के दूध अथवा मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन बच्चों के सन्निपात ज्वर, खाँसी, प्रतिश्याय, आमदोष आदि रोगों को नष्ट करता है।

छोटे-छोटे बच्चों को दूध के दोष अथवा सर्दी(कफ) बढ़ जाने से खाँसी हो जाती है। ज्वर बना रहता है। खाँसी में नवीन कफ निकलना, पसली चलना, आँखें लाल, सांस लेने में कठिनता, अधिकतर रोते ही रहना, कभी-कभी दूध भी पीना बन्द कर देना आदि लक्षण होने पर इस रस का उपयोग किया जाता है। इससे बढ़ा हुआ कफ-दोष शान्त हो जाता है तथा कफ से होने वाले उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

कभी-कभी बच्चों को कफ-वृद्धि के कारण ज्वर होकर धीरे-धीरे न्यूमोनिया के रूप में परिणत हो जाता है। बच्चों को न्यूमोनिया होते देर नहीं लगती, परन्तु छूटने में बड़ी दिक्कत होती है। इस रोग में बच्चा बहुत परेशान हो जाता है। बच्चों के लिए यह बहुत दुःसाध्य बीमारी है। इसमें भी इस रस को अभ्रक भस्म के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

बच्चों को होनेवाली सूखी खाँसी में शुद्ध टंकण के साथ मिलाकर तथा बालकों को होने वाले सूखा रोग में गोदन्ती भस्म और कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म के साथ मिलाकर मधु के साथ देने से अच्छा उपकार होता है। बालकों को दूषित दूध के सेवन से या आँतों में गर्मी बढ़कर हुए हरे-पीले फटे दस्तों में इसे जहरमोहरा खताई पिष्टी के साथ मिला, सोंठ और जायफल की घूँटी से देना उत्तम है।

बालपञ्चभद्र रस

यशद भस्म ६ माशा, रससिन्दूर १ तोला, गोरोचन १ तोला, शुद्ध नमक १ तोला और गोदन्ती भस्म ८ तोला लें। सबकों एकत्र कर खरल में घोंटकर रख लें। -सि.यो.सं.

नोट- गोदन्ती भस्म की बजाय कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म डालकर बनाने पर भी यह रोग उत्तम बनता है और बाल रोग में विशेष लाभ करता है।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती शहद में मिलाकर चटायें और ऊपर से गाय का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग- छोटे-छोटे बच्चों को बराबर ज्वर रहने के कारण शरीर में रक्त की कमी हो जाने से शरीर दुर्बल और पाण्डू वर्ण का हो जाता है, जिससे शरीर पीला दिखता है। बच्चों की हड्डियाँ उभर आती हैं, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, अधिक काल रोता ही रहता है, सिर के बाल भी उड़ जाते हैं, श्वास लेने में भी कष्ट होता है दस्त फटे हुए पीले रंग के होते हैं, तथा मूत्र भी पीला होता है। ऐसी स्थिति में बाल पञ्चभद्र रस के उपयोग से फायदा होता है।

सूखा रोग- आजकल इस रोग का प्रसार बच्चों में बहुत जोरों से है। बच्चे इस विकराल रोग के पंजे में पड़कर असमय में ही अपनी जीवन-लीला सदा के लिए समाप्त कर देते हैं। इस दुष्ट रोग ने न जाने कितने होनहार भारतीय बच्चों को विलखती हुई माताओं की गोद से बलात् खींचकर उनकी गोद को खाली कर दिया है। न जाने कितने माता-पिताओं की भावी आशा को धूल में मिला, उन लोगों को धूर्त लोगों के चक्कर में धूल फँका-फँका कर इस संसार में भटकाया है। ऐसे कठिन रोग से अपनी सन्तान की रक्षा करना प्रत्येक के लिए आवश्यक है।

इस रोग का प्रारम्भ कफ प्रकुपित होकर ज्वर के साथ होता है। इसमें ज्वर की गति बराबर तेल ही बनी रहती है। कफ भी बढ़ता रहता है। बच्चा सूखता जाता हे। अस्थियों में चूने (कैल्शियम) की कमी के कारण हड्डियाँ कमजारे हो जाती, विशेषत: कमर के नीचे की हड्डियाँ

बिल्कुल नरम हो जाती हैं। जिससे बच्चा खड़ा होकर चल-फिर नहीं सकता। आँखें नीचे धँस जाती, गालों में गड्ढे पड़ जाते, कान की पाली (लौ) मोटी हो जाती, इसे दबाने से दर्द होता है, चूतडों (नितम्बों) की खाल लटकने लग जाती है। ऐसी भयंकर स्थिति में इस रसायन के उपयोग से बहुत फायदा होता है, क्योंकि इस रोग में कैल्शियम की पूर्ति करना आवश्यक रहता है, जो इस दवा से अच्छी तरह हो जाता है। यह दवा कफ और ज्वर को भी दूर कर शरीर में नवीन रक्त उत्पन्न करके, रोगी को स्वस्थ कर देती है।

डब्बा रोग- माता के कफकारक शीत आहार-विहार से या मौसम की खराबी अथवा दुग्धदोष आदि अन्य कारणों से छोटे बच्चों को कफ बढ़ कर प्रथम प्रतिश्याय हो जाता है, योग्य उपचार न होना या उपेक्षा के कारण फुफ्फुसों तथा आमाशय में कफ संचित होकर श्वास मार्ग का अवरोध करने लगता है, एवं ज्वर और खाँसी भी उत्पन्न हो, श्वास लेने पर पसलियों के दोनों तरफ नीचे के भाग में प्रश्वास के समय गड्ढे पड़ने लगते हैं। इस रोग में तुलसी का पान के रस के साथ मधु में मिलाकर इस रस के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

बालार्क रस (केशर- युक्त)

शुद्ध खपरिया या शहद भस्म, प्रवाल भस्म या पिष्टी, मृगश्रृंग भस्म, शुद्ध हिंगुल, गोरोचन, कचूर और केशर प्रत्येक समभाग लेकर ब्राह्मी-स्वरस में १-१ दिन मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर शीशी में भर लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन भर में २-३ बार शहद या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन बालकों के वात-कफ के विकार, अतिसार, कृमि-विकार, ज्वर, वमन और आक्षेपक में अत्यन्त लाभप्रद है। बाल-शोष तथा डब्बा रोग में भी यह लाभकारी है।

बालार्क रस (साधारण)

खर्पर भस्म (अभाव में यशद भस्म), प्रवाल भस्म, श्रृंग भस्म, शुद्ध हिंगुल, कचूर का चूर्ण-प्रत्येक १-१ भाग लेकर सबको ब्राह्मी स्वरस की भावना देकर अच्छी तरह मर्दन करें। गोली बनाने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें।

-सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में २-३ बार माँ के दूध से या जल अथवा शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रस का सेवन कराने से बच्चों के समस्त प्रकार के रोग यथा-ज्वर, अतिसार, हरे-पीले और फटे-से, सफेद तथा झागदार दस्त होना, अस्थिमार्दव, बालशोथ, डब्बा रोग, उदरकृमि आदि विकारों को नष्ट कर बच्चों का हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। यह मोतीझरा रोग में भी लाभ करता हे।

विद्याधराभ्र रस

शुद्ध पारद ९ माशे, शुद्ध गन्धक १ तोला, लौह या मण्डूर भस्म १६ तोला, अभ्रक भस्म ४ तोला, वायविडंग, नागरमोथा, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, गिलोय, दन्तीमूल, निशोथ, चित्रक, सोंठ, मिर्च और पीपल प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम मण्डूकपर्णी के रस से शुद्ध पारा- गन्धक की

कज्जली बनाकर फिर उसमें अन्य भस्में तथा कपड़छन किया हुआ काष्ठौषधियों का चूर्ण मिलाकर खरल करके सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- मूल ग्रन्थ के पाठानुसार इसमें घी और मधु मिलाकर रखने का विधान है, परन्तु ऐसा करने से जल्दी खराब होने और कटुगन्ध की शिकायत रहती है अत: चूर्ण रूप में रखना या जल से मर्दन कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर रखना एवं सेवन करते समय विषम मात्रा में घृत और मधु मिलाकर सेवन करना विशेष उपयोगी है।

मात्रा और अनुपान- २ से ३ रत्ती, दिन में दो बार शहद के साथ अथवा गोदुग्ध या शीतल जल के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह रसायन पेट-सम्बन्धी सभी तरह के रोगों के लिए बहुत गुणकारी है। इसके सेवन से परिणामशूल (भोजन पचने के समय पेट में दर्द होना), बहुत दिनों की मन्दाग्नि, अम्लपित्त, संग्रहणी आदि रोग आराम होते हैं। जीर्णज्वर, रक्तपित्त और राजयक्ष्मा में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

परिणाम शूल में-वात कुपित होकर कफ और पित्त को मन्द करके इस रोग को उत्पन्न करता है, इसमें भोजन के परिपाक काल में पेट फूलना तथा पेट में गुड़गुड़ आवाज होना, मलावरोध होना, शरीर में कुछ कम्प होना अथवा भोजन के बाद प्यास ज्यादा लगना, पेट में जलन होना, पसीना निकलना या वमन होना, पेट फूल जाना, थोड़ी-थोड़ी वेदना होना आदि लक्षण होने पर इस रसायन के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि यह वातशामक, अग्निदीपक एवं पाचक है। इसी तरह अम्लपित्त और संग्रहणी आदि रोगों में भी यह रस पाचक, दीपक तथा वातशामक गुण प्रधान होने के कारण लाभ करता है। मन्दाग्नि होने पर पाचक पित्त को उत्तेजित कर मन्दाग्नि-दोष दूर करता है। शंख भस्म के साथ मिलाकर शतावरी रस या नारियल के पानी के साथ देने से अथवा नारिकेल खण्ड के साथ मिलाकर शीतल जल के साथ देने से बहुत लाभ करता है। परिणामशुल के साथ कब्ज भी रहता हो तो हरीतकी चूर्ण के साथ उष्ण जल से देना हितकर है।

विश्वतापहरण रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, शुद्ध कुचला, शुद्ध जमालगोटा, हर्रे, पीपल, कुटकी, निशोथ, प्रत्येक सम भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का महीन चूर्ण मिलाकर १ दिन धतूरे के रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-वै.जी.

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली दिन में २ बार मधु या अदरक-स्वरस या मिश्री के शर्बत के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सब प्रकार के ज्वर जैसे-वात पित्त और कफजनित ज्वर धातु (रस-रक्तादि) गत ज्वर, जाड़ा देकर आने वाला विषमज्वर (मलेरिया ज्वर), अधिक दिन तक ठहरने वाले यकृत-प्लीहा वृद्धि के कारण आने वाले ज्वरों को दूर करता है।

इस रसायन का विशेष उपयोग, मलेरिया से होने वाले ज्वरों में होता है। लोगों का विश्वास है कि मलेरिया के लिए कुनैन से बढ़कर दूसरी कोई भी दवा नहीं है, परन्तु कुनैन के अधिक दिन तक लगातार सेवन करने से कई तरह के उपद्रव हो जाते हैं। जैसे-शरीर पीला हो जाना, कान में कम सुनना, रोशनी (आँख की) कम हो जाना, भुख नहीं लगना, कमजोरी अधिक होना,

रक्त दूषित होकर फोड़ा-फुन्सी आदि हो जाना, किन्तु इस दवा का आप कितने ही दिनों तक सेवन क्यों न करें कोई हानि नहीं होगी, बल्कि भूख बढ़ेगी और पाचनशक्ति में वृद्धि होगी। ज्वर तो सदा के लिए चला जायेगा। यह रसायन ज्वरघ्न तथा दीपक-पाचक और रेचक है। इसमें पारद, गन्धक एवं ताम्रभस्म तथा शुद्ध कुचला के सम्मिश्रित होने से यह अन्त्रस्थ सेंद्रिय विष को नष्ट कर देता है एवं शुद्ध जयपाल (दन्ती/बीज), हरीतकी, निशोथ सम्मिश्रित होने से यह मल के साथ ही अन्त्रस्थ विषदोष को दस्तों के द्वारा बाहर निकाल देता है। ज्वर में दोषों के परिपाक के पश्चात् इसे देने से विशेष लाभ करता है।

विसूची विध्वंसन रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सुहागे की खील, सोंठ, स्वर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध अफीम-प्रत्येक १-१ तोला और शुद्ध सिंगरफ सब दवाओं के बराबर (७ तोला) लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें सिंगरफ तथा अन्य दवा मिलाकर कुछ देर तक घोंटे। बाद में जम्बीरी नींबू का रस डालकर पत्थर के खरल में ६ घण्टा तक घोंट, सरसों के बराबर गोलियाँ बनाकर, छाया में सुखा कर रख लें। -भै.र

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन हैजा के लिए बहुत प्रसिद्ध है। विसूचिका की उस अवस्था में जब कि रोगी के हाथ-पैर ठण्डे हो गये हों, नाड़ी लुप्त हो गई हो, तो इस रस का उपयोग किया जाता है।

वेताल रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, काली मिर्च, शुद्ध हरताल समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों को मिलाकर सबको अच्छी तरह खरल करें। बाद में अदरक के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का विषम ज्वर और घोर सन्निपात ज्वर में प्रयोग किया जाता है। रोगी की मृतप्राय अवस्था में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

वेदनान्तक रस

शुद्ध अफीम ३ माशे, कपूर ३ माशे, खुरासानी अजवायन का महीन चूर्ण ३ माशे और रससिन्दूर ६ माशे में प्रथम रससिन्दूर को खूब महीन पीस कर उसमें खुरासानी अजवायन का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर, अफीम को पानी में घोलकर मिला दें, फिर भाँग की पत्तियों का रस मिलाकर घोंटे, गाढ़ा होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रातः सायं गर्म जल अथवा दूध या सोंठ अथवा अदरक-रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- शरीर के किसी भाग में कितना भी दर्द क्यों न हो रहा हो, इसके सेवन से नष्ट हो जाता है। इस रसायन का प्रभाव विशेषतया वातवाहिनी नाड़ी पर होता है। अतएव, वातजन्य विकारों में इसका उपयोग अधिक किया जाता है। वात प्रकोप के कारण वातवाहिनी

नाड़ियाँ विकृत हो जाती हैं, जिससे रक्त का संचार ठीक से नहीं होता फिर वहाँ की नसों में खिंचाव पैदा होने से दर्द प्रारम्भ हो जाता है। यह दर्द बहुत भयंकर तथा सर्वांगव्यापी होता है, इसमें रोगी दर्द के मारे परेशान हो जाता है, खून जम जाने के कारण दर्द में कमी नहीं होती, बल्कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, दर्द का वेग बढ़ता जाता है, अथवा कभी हाथ-पाँव, पीठ आदि इन स्थानों में ही वायु के प्रकोप के कारण दर्द हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह रसायन जादु-सा असर दिखाता है। पेट दर्द, सिर दर्द, कमर दर्द आदि में भी यह बहुत शीघ्र लाभ करता है।

यह रसायन अफीम और रससिन्दूर के संयोग से बनने के कारण स्तम्भक और वीर्य पुष्टिकारक भी है। नियमपूर्वक दूध-मिश्री मिला कुछ रोग तक सेवन करने से पतला शुक्र पुष्ट हो जाता है और शरीर बलवान तथा सुन्दर बन जाता है। निद्रा लाने के लिए यह परमोत्तम रसायन है। वातिक उन्माद रोग में भी इसका उपयोग थोड़ी मात्रा में करते रहने से लाभ होता है।

वक्तव्य- इस रस का प्रयोग विशेष वेदना (पीड़ा) होने पर ही करना चाहिए। बार-बार इसके प्रयोग से मनुष्य इसका आदी हो जाता है, और फिर उतनी मात्रा से अधिक मात्रा में लेने पर ही आराम अनुभव होता है।

बोलबद्ध रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सत्व गिलोय १-१ तोला लेकर कज्जली बनावें। फिर उसमें ३ तोला (हीरादोखी-खून-खराबा) का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिलाकर सबको एक दिन सेमल की छाल के रस या क्वाथ में घोंटकर २-२ रत्ती गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-वृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- २-२ रत्ती सुबह-शाम मिश्री मिला कर शहद के साथ देने से अम्लपित्त रोग दूर होता है। प्रमेह में इसे पीपल चूर्ण और शहद से दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन अम्लपित्त, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, रक्तप्रमेह, वातरक्त, विद्रधि, भगन्दर तथा पित्तजनित विकारों में फायदेमन्द है। नाक-मुँह-गुदा और योनि-मार्ग आदि किसी भी भाग से गिरता हुआ रक्त इसके प्रयोग से बन्द हो जाता है।

रक्तप्रदर में नियत समय से अत्याधिक दिन तक रजःस्राव होने पर स्त्री दुर्बल और कमजोर हो जाती है। इसका असर गर्भाशय पर भी पड़ता है, जिससे गर्भाशय कमजोर हो, गर्भ-धारण करने में असमर्थ हो जाता है। मन्दाग्नि हो जाती है, भूख नहीं लगती तथा हाथ, पाँव एवं नेत्रों (आँखों) में जलन होने लगती है ऐसी स्थिति में बोलबद्ध रस के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि यह दवा रक्त को बन्द करने वाली डंडी है। गर्भाशय को बलवान कर गर्भ-धारण शक्ति प्रदान करती है।

कभी-कभी खाने-पीने में गड़बड़ी हो जाने से पाचक पित्त कमजोर हो जाता है, फलस्वरूप अन्नादि का पाचन ठीक से नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में किसी-किसी स्त्री को वात-प्रकोप के कारण प्रदर में वृद्धि हो, सर्वांग में दर्द होना, अतिसार (पतले दस्त आना), पेट फुल जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे समय में बोलबद्ध रस के सेवन से फायदा होता है। साथ में भास्कर चूर्ण शंख भस्म के साथ मिला, खाना खाने के बाद गर्म जल के साथ देते रहने से प्रकुपित वायु का शमन होकर पाचनक्रिया ठीक से होने लगती है।

कफ-प्रकोप के कारण कास और श्वास की गति में वृद्धि हो गयी हो और साथ ही गर्भाशय की कमजोरी या शिथिलता की वजह से श्वेत प्रदर की शिकायत हो, तो ऐसी हालत में बोलबद्ध रस को त्रिवंग भस्म के साथ मिलाकर उपयोग करने से संचित कफ दूर हो जाता है तथा श्वेत प्रदर की भी शिकायत नष्ट हो गर्भाशय बलवान हो जाता है। इस रसायन का प्रभाव मूत्रेन्द्रिय,

पचनेन्द्रिय और रस-रक्तादि धातुओं के विकारों पर विशेष होता है।
खूनी बवासीर में प्रवालचन्द्रपुटी के साथ मिला, आयापान के रस २ तोला के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। रक्तपित्त में मोती सीप पिष्टी के साथ मिला वासास्वरस और मधु के साथ देने से उत्तम लाभ होता है।

बंगेश्वर रस (बृहत्)

वंग भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चाँदी भस्म, कपूर, अभ्रक भस्म १-१ तोला, स्वर्ण भस्म और मोती भस्म ३-३ माशे लें। प्रथम पारा- गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको भाँगरे के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें। ऊपर से गाय का दूध या बकरी का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन वंग भस्म, स्वर्ण भसम, चाँदी भस्म, अभ्रक भस्म, मोती भस्म आदि के योग से तैयार होता है। इसके सेवन से नये-पुराने, सब प्रकार के प्रमेह अच्छे होते हैं। मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, मूत्रमेह, मूत्रातिसार, वीर्य की क्षीणता, टट्टी-पेशाब के रास्ते से वीर्य जाना, स्वप्नदोष और शुक्रक्षय से उत्पन्न मन्दाग्नि, आमदोष, अरुचि, हलीमक, रक्त पित्त, ग्रहणीदोष, मूत्र और वीर्यदोष आदि सभी विकार नष्ट होते हैं। यह रसायन, वाजीकरण, आयु, बल, वीर्य, कान्तिवर्द्धक और दुर्बलता-नाशक है। आजकल नवयुवकों में चित्त की चंचलता के कारण मानसिक उत्ताप बढ़कर वीर्यवाहिनियों में विक्षोभ पैदा कर स्वप्नदोष की शिकायत उत्पन्न कर देता है, धीरे-धीरे इस रोग से धातुओं का प्रतिलोम क्षय होकर रोगी निस्तेज, ज्वर, दाह, खाँसी, दिल की धड़कन कोष्ठबद्धता, अंगप्रत्यंगों में दर्द तथा थकावट से पीड़ित रहता है। ऐसी सिथति में इस रस को प्रवाल भस्म और शुद्ध शिलाजीत के साथ देने से स्वप्नदोष नष्ट होकर उत्तरोत्तर धातुयें पुष्ट हो जाती हैं और वह व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ एवं बलवान और कान्तियुक्त हो जाता है।

बंगेश्वर रस (साधारण)

वंग भस्म, कान्तलौह भस्म, अभ्रक भस्म, नागकेसर-प्रत्येक १-१ भाग लेकर प्रथम नागकेसर का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् इसमें अन्य भस्में मिलाकर, ग्वारपाठा-स्वरस की ७ भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शहद से दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सभी प्रकार के प्रमेह रोग में अत्यन्त उपयोगी है। इसके सेवन से उदकमेह, मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र, मधुमेह, क्षय, कास, कुष्ठ, पाण्डु, हलीमक, शूल, श्वास, ज्वर, हिचकी, अग्निमांद्य और अरुचि का नाश होता है तथा अग्नि, वायु और कान्ति की वृद्धि होती है। सर्दी के दिनों में शुद्ध शिलाजीत के साथ मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से रस-रक्तादि धातुओं की अभिवृद्धि होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान हो जाता है। स्नायु-दौर्बल्य एवं ध्वजभंग रोग भी नष्ट हो जाता है।

भुवनेश्वर रस

सेन्धा नमक, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, बेलगिरि, गृहधूम (घर का धुआँ)-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर समस्त द्रव्यों को कूटकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् खरल

में डालकर जल के साथ मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोली बनाकर, सुखाकर लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ गोली तक दिन में दो-तीन बार आवश्यकतानुसार मधु या जल से अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रस का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के घोर अतिसार रोग नष्ट होते हैं और आमातिसार, पेचिश, मरोड़, संग्रहणी, मन्दाग्नि आदि में शीघ्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त अजीर्ण, उदरशूल, रसषेशाजीर्ण, उदरवातवृद्धि, अरोचक, मलदोष से उत्पन्न उदराध्मान, कोष्ठबद्धता आदि विकारों में उत्तम लाभ होता है। इसे शंख भस्म के साथ मिलाकर देने से आम का पाचन कर मरोड़ एवं उदर शूल को नष्ट कर देता है। कितने ही चिकित्सक इसमें पंचामृत पर्पटी या रस पर्पटी मिलाकर संग्रहणी में सेवन कराते हैं। इस प्रयोग से बहुत श्रेष्ठ लाभ होते देखा गया है। इस योग में त्रिफला मिश्रित होने के कारण मल का संचय नहीं होने देता है, फलस्वरूप संग्रहणी स्वयंमेव नष्ट हो जाती है।

मकरध्वज रसायन

स्वर्ण भस्म या वर्क २ तोला, वंग भस्म, कान्तलौह भस्म, मोती भस्म, जावित्री, जायफल, चाँदी भस्म, काँस्य भस्म, रससिन्दूर, प्रवाल भस्म, जावित्री, शुद्ध कपूर और अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा स्वर्ण-सिन्दूर ९ तोला लेकर, एकत्र कर, खरल कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-२ रत्ती सुबह-शाम, मधु और अदरक-रस के साथ अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक, उत्तेजक तथा शरीर में स्फूर्ति बढ़ाने वाला और वाजीकरण है। शुक्र सम्बन्धी सभी प्रकार के रोगों में सेवन करने से विशेष लाभ होता है। शुक्र-दोष या वीर्यवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी से उत्पन्न नामर्दी के रोग इसके सेवन से बहुत जल्दी अच्छे हो जाते हैं। इसका प्रभाव वीर्यवाहिनी नाड़ी तथा वातवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। किसी रोग से छुटकारा पाने के बाद शारीरिक दोष (वात, पित्त और कफ) तथा दूष्य (रस-रक्तादि) की कमजोरी के कारण शरीर कमजोर हो गया हो, शारीरिक अवयव कमजोर होकर अपने कार्य करने में असमर्थ हो गये हों, तो इस रसायन का सेवन अवश्य करना चाहिए। कुछ दिन तक गोदुग्ध या मक्खन अथवा मलाई के साथ सेवन करने से यह शरीर को सुन्दर कान्तिमान और हृष्ट-पुष्ट बना देता है। कुपीपक्व मकरध्वज से भी विशिष्ट गुण इसमें हैं। सभी प्रकार के प्रमेह, मधुमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, श्वेतप्रदर, कठिन वात रोग, हृदय और मस्तिष्क की दुर्बलता, खाँसी, श्वास, सन्निपात ज्वर आदि अनेक रोगों में उचित अनुपान के साथ देने से यह रसायन अमृत तुल्य लाभ करता है।

मकरध्वज गुटिका (स्वर्ण- युक्त)

जायफल, लौंग, कपूर, कालीमिर्च (छिलका उतारी हुई)- प्रत्येक १-१ तोला स्वर्ण भस्म या वर्क १ माशा, जावित्री १ माशा, मकरध्वज ४ तोला २ माशा लें। प्रथम मकरध्वज को खरल में डालकर सूक्ष्म मर्दन करें। पश्चात् चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके उसमें मकरध्वज मिलाकर मर्दन करें। सबके अन्त में कपूर और कस्तूरी मिलाकर जल के साथ अच्छी तरह मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना छाया में सुखाकर रख लें।

वक्तव्य- यदि पान के रस के साथ मर्दन कर गोलियाँ बनायी जाये, तो विशेष गुणकारी होती है। भैषज्य रत्नावली में 'स्वल्प चन्द्रोदय मकरध्वज' नामक योग है, उसमें रससिन्दूर के

स्थान पर मकरध्वज डाल कर बनाने से 'मकरध्वज गुटिका' बन जाती है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ लेकर ऊपर से गरम दूध पीयें या पान में रखकर, चबाकर ऊपर से गरम दूध पीयें।

गुण और उपयोग- अनुपान भेद से यह गुटिका अनेक रोगों को नष्ट करती है। वात-पित्त-कफ और त्रिदोष विकार, प्राकृतिक विकृति, उन्माद, मोह, मूर्च्छा, आदि रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। यह गुटिका अत्यन्त कामोत्तेजक, बलवर्धक और पुष्टिकारक है। यह दिल और दिमाग के लिये पुष्टिकारक, शीघ्रपतननाशक, स्तम्भनशक्ति वर्धक, नपुंसकतानाशक और बल-वीर्य बढ़ाने में अपूर्व गुणकारी है। इसके सेवन से क्षीण हुए धातु पुष्ट होकर शरीर का भार बढ़ने लगता है। नशीली वस्तु का सेवन किए बिना स्तम्भन शक्ति बढ़ाने के लिए यह प्रसिद्ध उत्कृष्ट औषध है। ढलती आयु में संभोग शक्ति बनाये रखने के लिए इस बटी का प्रयोग करना सर्वोत्तम है। गाढ़ी निद्रा और मानसिक बलवृद्धि के लिए भी यह अत्युतम औषध है।

मन्दाग्नि संहार

अशुद्ध भिलावें १० तोला, घी, शहद, एरण्ड तैल प्रत्येक १५-१५ तोला, अशुद्ध हिंगुल, लौंग, जावित्री, जायफल, सोंठ, पंचामृत पर्पटी- ये प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोला लेकर प्रथम १० तोला अशुद्ध भिलावों में से आधे भिलावें लेकर एक लोहे की कड़ाही में फैलाकर बिछा दें। पश्चात् उन भिलावों के ऊपर ५ तोला अशुद्ध हिंगुल के टुकड़े को रखकर शेष आधे भिलावे हिंगुल के ऊपर अच्छी प्रकार से रखे, हिंगुल पुर्णतः ढंक जाय फिर उसमें क्रम से घी, शहद और एरण्ड तैल डालकर कड़ाही के नीचे अग्नि जला दे-तीव्र अग्नि जलावें ताकि कड़ाही में अग्नि लग जावे, यदि अग्नि न लगे तो जलती लकड़ी से उसमें अग्नि लगा दें, जब भिलावे जलकर भस्म हो जावें तो अग्नि जलाना बन्द कर दें। स्वांग शीतल होने पर हिंगुल को निकाल दें और भिलावों की भस्मों को फेंक दें, पश्चात् हिंगुल को खरल में डालकर अच्छी तरह मर्दन करें। फिर लौंग, जावित्री, जायफल, सोंठ, इनका सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें और हिंगुल में पंचामृत पर्पटी (महीन पीसकर) तथा उपरोक्त चूर्ण मिलाकर जल के साथ दृढ़ मर्दन करें, गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रखें।

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली दिन में २ बार सुबह-शाम दही को चार तह के कपड़े में रख कर खूँटी पर लटकाकर पानी निकाल दें पश्चात् उस दही के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन इस बटी का सति पालन सह नियमित व्यवहार करने से समस्त प्रकार के मन्दाग्नि रोग और मन्दाग्नि जनित विकार शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दाग्नि के कारण खाया हुआ भोजन ठीक प्रकार से न पचना, कंठ में और छाती में जलन होना, खट्टी और वायु की डकारें आना, जी मिचलाना, भोजन के बाद सूस्ती आना, उदर में वायु भर जाना, और अक्सर अतिसार, संग्रहणी तथा पेचिश की शिकायत बनी रहना आदि विकारों में इस रसायन के सेवन से अपूर्व चमत्कारी लाभ होता है। इस औषधि के सेवन से उपरोक्त मन्दाग्निजनित समस्त विकार नष्ट होकर खाया हुआ अन्न उत्तम प्रकार से पचकर शरीर में रस-रक्तादि धातुओं का निर्माण उचित परिमाण में होने लगता है और उपरोक्त दोषों से आई हुई कमजोरी भी शीघ्र नष्ट हो जाती है।

इस रसायन में हिंगुल और पंचामृत पर्पटी का सम्मिश्रण विशेष गुणकारी है। इसमें हिंगुल

कीटाणुनाशक, आमाशयिक, दोषनाशक, विशेषत: आमाशयिक कफ को नियमित करनेवाला है इसका प्रभाव आमाशय की श्लैष्मिक कला एवं आँतों पर विशेष होता है। पंचामृत पर्पटी संग्रहणीनाशक, आन्त्रिक दोषनाशक, अग्निप्रदीपक एवं रसायन है। अत: इसके प्रयोग से मन्दाग्नि, आमदोष तथा संग्रहणी में बहुत आश्चर्यजनक उत्तम लाभ होता है।

मन्मथ रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक ४-४ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, शुद्ध कपूर १ तोला, वंग भस्म १ तोला, ताम्र भस्म ६ माशे, लौह भस्म १ तोला, बिधारा की जड़, जीरा, बिदारीकन्द, शतावरी, तालमखाना, बलामूल, काच के बीज, अतीश, जावित्री, जायफल, लौंग, भाँग के बीज, राल सफेद और अजवायन-प्रत्येक ३-३ माशे लेकर, जल से घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, गाढ़ा करके औटाया हुआ गो-दुग्ध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से नपुंसकता, नामर्दी, शीघ्रपतन आदि नष्ट होकर काम शक्ति की वृद्धि होती हे। यह रसायन सबके सेवन करने योग्य है, क्योंकि इसमें अफीम जैसा मादक द्रव्य नहीं है। विलासी पुरुषों के लिये जो हमेशा स्तम्भक (वाजीकरण) सम्बन्धी दवाओं की तलाश में घूमते रहते हैं, उनके लिए यह बहुत काम की चीज है। बलवर्द्धक और रसायन भी है।

वीर्य वाहिनी नाड़ियों की कमजोरी (शिथिलता) से जिनका वीर्य समागम काल में बहुत शीघ्र गिर जाता हो, उन्हें इस रसायन का सेवन अवश्य करना चाहिए। यह शुक्र विकार (वीर्य का पतलापन) दूर कर वीर्य को गाढ़ा कर देता है तथा बीजवाहिनी नाड़ियों में खून का संचार कर उसमें दृढ़ता उत्पन्न करता है। स्नायु दौर्बल्य के कारण या मानसिक अवसाद के कारण हुए ध्वजभंग दोष को मिटाने में भी यह अत्युत्तम गुणकारी है।

विलासी पुरुष अपने क्षणिक आनन्द के लिए कभी-कभी बहुत त्रासदायक काम कर बैठते है, जिससे उनकी जिन्दगी बर्बाद हो जाने की सम्भावना रहती है। ये लोग आवेश में आकर विषाक्त तिला (लेप) या ऐसी ही कोई दवा आदि खाकर वीर्य-स्तम्भन (वाजीकरण) करने की व्यर्थ चेष्टा कर बैठते हैं। कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि तिला लगाने से जननेन्द्रिय (लिंग) में फफोले (छाले) पड़ जाने से रोगी महीनों तकलीफ में पड़े रहते हैं। किसी-किसी को ऐसी दवा के खाने से रक्त दूषित होकर शरीर में फोड़े निकल आते हैं, ये फोड़े शीघ्र अच्छे होने वाले नहीं होते। ऐसे लोगों के लिए यह रसायन नियमपूर्वक रात को सोने से एक घण्टा पूर्व दूध के साथ खाकर, पान खा लेने के बाद स्त्री-प्रसंग करने से अपूर्व आनन्द मालूम होता है और किसी प्रकार का नुकसान भी नहीं होता। इसको लगातार कुछ अणिक समय तक सेवन करने से इन्द्रियों की शक्ति बढ़ना, वलीपलित का नाश, वय में स्थिरता, शरीर में मजबूती, कान्ति आदि रसायन के गुण प्राप्त होते हैं। शरीर को पुष्ट बनाने तथा शक्ति बढ़ाने के लिये इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से शुक्र बहुत जल्दी बनता है तथा शरीर में रक्त की वृद्धि होकर, शरीर कान्तिवान और पुष्ट हो जाता है। स्त्रियों के श्वेत प्रदर, गर्भाशय की कमजोरी, बीज कोषों की शिथिलता आदि नष्ट होकर उन्हें स्वस्थ एवं गर्भ धारण योग्य बना देता है।-औ.गु.ध.शा.

मधुमालिनी बसन्त

शुद्ध हिंगुल ८ तोला और खर्पर भस्म (अभाव में यशद भस्म) ८ तोला लेकर दोनों को

खरल में डालकर बड़हर रस की ७ भावना देकर छोटे-छोटे गोले बनाकर छाया मे सुखा लें। पश्चात् बेरी की लकड़ी के कोयलों की अग्नि पर लोहे की साफ कड़ाही में गोले रखकर उनके साथ ही शुद्ध हिंगुल के बराबर अर्थात् ८ तो. मुर्गी के अण्डे भी कड़ाही में रखकर लोहे की कलछी से बराबर चलाते रहें, जब मुर्गी के अण्डों का द्रव गोले में शुष्क हो जावे एवं गोले फूटकर सारा द्रव्य एक होकर शुष्क हो जावे एवं अण्डों के छिलके भी जलकर मुलायम हो जावे तब नीचे उतार कर कड़ाही से सब दवा को निकालकर, खरल में डालकर, पीसकर, दवा से आधे परिमाण में कचूर का चूर्ण और कचूर के समान भाग ही सफेद मिर्च का चूर्ण मिलाकर पुन: बड़हर के रस की ७ भावना देकर एक-एक रत्ती परिमाण की टिकिया बनाकर, सुखाकर रख लें। -र.यो.सा.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली मधु (शहद), सफेद जीरे का चूर्ण या दुग्ध से दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन शीतवीर्य और कफ तथा पित्त-प्रकोप का शमन करने वाला है। इसके सेवन से पुराने विषमज्वर, अधिक दिन से आने वाला पुराना ज्वर तथा रस-रक्तादि धातुगत ज्वर नष्ट हो जाता है।

यदि मलेरिया ज्वर को दूर करने के लिए ज्यादा कुनैन खा ली हो, जिससे शरीर पीला या दुर्बल हो गया हो, पेट, आँखें, शिर आदि में जलन होती हो, प्यास ज्यादा लगती हो, पसीना अधिक आता हो, रात में कुछ हरारत भी हो जाती हो, भूख कम लगती हो, शरीर में खून की कमी आदि उपद्रव होने पर इस रसायन के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। यह शीतवीर्य तथा पित्तशामक होने के साथ-साथ ज्वरघ्न भी है, प्रमेह, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, अर्श, श्वास, पुराना अतिसार तथा राजयक्ष्मा के विषैले कीटाणुनाशक एवं बल-वीर्यवर्द्धक भी है। इसके अतिरिक्त गर्भिणी की कमजोरी और बच्चों के सूखा रोगों के लिए भी यह बहुत श्रेष्ठ दवा है। राजयक्ष्मा की सभी अवस्थाओं में यह रस अमृत सदृश लाभकारी है। खाँसी, श्वास, पाण्डु, कामला, नेत्रों की दुर्बलता आदि में भी इसका प्रयोग श्रेष्ठ है।

जीर्णज्वर में- अधिक दिन तक लगातार ज्वर रहने से दोष (वात-पित्त-कफ) धातु (रस-रक्तादि) में मिलाकर उसे निर्बल करते हुए ज्वर उत्पन्न कर देते हैं। ऐसी दशा में रोगी निर्बल और कान्तिहीन हो जाता है, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि हो जाती है तथा धातु कमजोर हो जाती है। इन लक्षणों के उपस्थित होने पर मधुमालिनी बसन्त के साथ छोटी पीपल चूर्ण तथा गुडूची सत्व या सितोपलादि चूर्ण के साथ मधु मिलाकर देने से फायदा होता है। इसका प्रधान कार्य रसवाहिनी नाड़ियों तथा लसीका ग्रन्थियों पर होता है। रक्तकणों की वृद्धि में यदि कुछ बाधा देखने में आये तो इस रसायन में मण्डूर भस्म मिलाकर देना अच्छा है। साथ-साथ अमृतारिष्ट या लौहासव भी देते रहें।

छोटे-छोटे बच्चों की शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। कफ-वृद्धि के कारण मन्दाग्नि हो जाना, रुचिपूर्वक दूध नहीं पीना, मन्द-मन्द ज्वर भी बना रहना, धीरे-धीरे कमजोरी बढ़ते जाना, शरीर में खून की कमी, कमजोरी के कारण अथवा हड्डियों की कमजोरी की वजह से चलने में असमर्थ होना आदि लक्षणों में मधुमालिनी वसन्त का प्रयोग करने से लाभ होता है, क्योंकि यह कफ और ज्वरादि को दूर करता है, किन्तु सबसे बड़ा काम यह करता है कि कैल्शियम की वृद्धि कर, हड्डियों को मजबूत बनाता तथा स्नायुओं की दुर्बलता को नष्ट कर देता है, जिससे बच्चे पुष्ट हों, चलने फिरने लग जाते हैं।

वात और कफ की विकृति से जठराग्नि मन्द हो जाती है। फलस्वरूप अन्नादिक का अच्छी तरह से पचन नहीं हो पाता। फिर वायु का कोप विशेष हो जाने से पतले दस्त कम भी हो जाते

हैं। इसमें थोड़ा ज्वर होना, शरीर में दर्द, कुछ रोज के लिए दस्त कम भी हो जाते, परंतु फिर वही पुरानी रफ्तार शुरु हो जाती है। दस्त थोड़ी मात्रा में होना, कमजोरी, जी मिचलाना, थोड़ा भी भोजन करने पर नहीं पचना, खट्टी डकारें आना आदि लक्षण होने पर इस रसायन का प्रयोग करना चाहिए। इससे प्रकुपित वात और कफ शान्त हो जाते तथा जठराग्नि की वृद्धि होकर पचन क्रिया भी ठीक-ठीक होने लगती है। फिर धीरे-धीरे पतले दस्त भी आने बन्द हो जाते हैं।

रस-रक्तादिगत ज्वरों में भी इसका उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद का ऐसा सिद्धान्त है कि जैसे ज्वर के दोषों (वात, पित्त, कफ) में मिलाकर वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर आदि लक्षण प्रकट होते हैं, वैसे ही दूष्यों (रसरक्तादि) में भी मिलकर रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर आदि लक्षणों के साथ उत्पन्न होते हैं। इन ज्वरों में धातुगत (शुक्रगत) ज्वर (जिसे आयुर्वेद में असाध्य कहा गया है) को छोड़ और सभी अवस्था के ज्वरों में इसका प्रयोग करने से अभूतपूर्व सफलता मिलती है।

यह रसायन गर्भिणी के ज्वर को दूर करता तथा गर्भाशय एवं गर्भस्थ शिशु की भी रक्षा करता है। अधिक रज:स्राव या प्रदर आदि रोगों के कारण गर्भाशय कमजोर हो जाता है, जिससे वह अपना काम अच्छी तरह नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप गर्भाशय में बीज नहीं रुकता। यदि कदाचित् संयोग से ठहर गया तो मुश्किल से दो-तीन महीने तक किसी तरह रूका रहता, बाद में गर्भ नष्ट हो जाता है। किन्ही-किन्हीं स्त्रियों को तो इसकी आदत-सी पड़ जाती है। यदि गर्भ अधिक दिन तक रहा तो गर्भिणी को बुखार आने लगता है। ऐसी अवस्था में बच्चा पैदा हुआ तो वह कमजोर, दुर्बल, अल्पायु और रक्तहीन पैदा होता है। इन उपद्रवों से रक्षा करने के लिए मधुमालिनी बसन्त का उपयोग अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इस रसायन का सेवन करने से गर्भाशय के सब दोष मिट जाते हैं, तथा गर्भिणी का ज्वर दूर हो जाता और बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।-औ.गु.ध.शा.

महाज्वरांकुश रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग, शुद्ध धतूरा बीज ३ भाग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल-ये प्रत्येक द्रव्य ४-४ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला, जम्बीरी नींबू का रस और अदरक के रस की एक-एक भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रखें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम या आवश्यकतानुसार दिन में तीन-चार बार ४-४ घण्टे के अन्तर से ज्वर चढ़ने से पूर्व अदरक रस और मधु के साथ या दोषानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन वेदना शामक, ज्वरघ्न और पाचक है। वातज्वर, कफज्वर, द्वन्द्वज्वर, त्रिदोषज्वर और समस्त प्रकार के विषम ज्वर, एकांहिक,द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि ज्वरों को नष्ट करता है। यह रस शीत लगकर आने वाले और बिना शीत लगकर आनेवाले ज्वर तथा निरन्तर रहने वाले ज्वर और घटने-बढ़ने वाले ज्वरो में अत्यन्त उपयोगी है, तथा ज्वर के साथ उत्पन्न होने वाले विकार, अजीर्ण, पतले दस्त होना, उदरशूल, उदरवायु (अफरा) इत्यादि विकारों को नष्ट करता है। जीर्ण सन्धिवात (आमवात) में भी लाभप्रद है।

इस रस के प्रयोग से पसीना आता है और वेदना कम होती है तथा आम का पाचन होकर

ज्वर नष्ट हो जाता है। अजीर्ण या असात्म्य भोजन से पचनेन्द्रिय संस्थान के कार्य की विकृति होकर उत्पन्न ज्वर पर इस रस का उत्तम उपयोग होता है, विशेषतः वेदना सहन न करने वाले अधीर और चंचल रोगी के लिए यह रस विशेष उपकारक है।

सर्वांग में कम्प, ज्वर का अनियमित वेग, निद्रानाश, बार-बार छींके आना, शरीर जकड़ जाना, हाथ-पैर टूटना, प्रत्येक सन्धि में वेदना, मस्तिष्क और कपाल में दर्द, मुख में विरसता, मलावरोध, सारे शरीर में भारीपन, हाथ-पैर शून्य हो जाना, कानों में शब्द होना, दाँत प्रलाप, मूत्र का वर्ण पीला, लाल या काला-सा होना, उदरशूल, अफरा, बार-बार उबासी आना तथा लक्षणवृद्धि होने पर असहनशीलता, रोगी का बड़बड़ करते रहना, (पूछने पर रोगी कहता है कि प्रलाप करने पर अच्छा लगता है) इत्यादि वात प्रधान लक्षण होने पर यह महाज्वरांकुश रस दिया जाता है। ज्वर का मन्द वेग, अंगों में जड़ता, आलस्य, निद्रा-वृद्धि, अंग जकड़ा हुआ-सा लगना, कपड़ा उतारने पर शीत लगना, मुख में बार-बार पानी आना, उबाक, वमन, उदर में भारीपन, नेत्रों के आगे अंधकार, सूर्य के ताप में बैठने या अग्नि तापने की इच्छा एवं ताप में बैठने से अच्छा लगना, कास, अरुचि, बेचैनी आदि कफ प्रधान लक्षण होने पर इस रस का अच्छा उपयोग होता है।

कफ-वात ज्वर होने से अंग में जड़ता, अति गीलापन, मस्तिष्क जकड़ा हुआ-सा लगना, प्रत्येक मांसपेशी और सर्वांग में शूल होना, तन्द्रा, जुकाम, सदृश नाक से श्लेष्मस्राव होना, प्रस्वेद आना, हाथ-पैर और नेत्रों में दाह, भय लगना, क्रोध उत्पन्न होना, थकावट-सी लगना आदि लक्षणो में ज्वर विशेषतः मर्यादित होता है। ऐसी दशा में यह रसायन अच्छा लाभकारी है।

संतत विषम ज्वर अर्थात् ७ या १० दिन तक रहने वाले मियादी ज्वर में अति जड़ता, हाथ-पैर टूटना, अति प्यास (यह प्यास उष्ण जल या सोंठ, लौंग आदि पदार्थों के सेवन से कम हाती है), इस ज्वर में तथा एक दिन छोड़कर आने वाले ऐकाहिक ज्वर में (पारी से आने वाला ज्वर) इस रस का सेवन अत्यन्त लाभकारी है। ज्वर का वेग आने के ६ घण्टा पहले से १-१ गोली दो-दो घण्टे के अन्तर से बताशे में रखकर सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। अजीर्ण या अपथ्य सेवन से ज्वर आने पर कोष्ठस्थ विकृति होती है, फिर उबाक, लालास्राव, उदर में वायु भर जाना, अरुचि, उदर में मन्दशूल, थोड़ा-थोड़ा दस्त लगते रहना, अग्निमांद्य, किसी भी प्रकार के भोजन की इच्छा न होना, शारीरिक उत्ताप मर्यादित होना, प्रत्येक सन्धि में वेदना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के ज्वर पर इस महाज्वरांकुश रस का अच्छा प्रभाव होता है।

महागंधक रस

शुद्ध पारा और गन्धक दोनों समान भाग लेकर कज्जली बना, उसे मन्दाग्नि पर पिघला, पर्पटी बना लें, फिर उसमें जायफल, जावित्री, लौंग, नीम के पत्तों का चूर्ण १-१ तोला मिलाकर सबको पानी की सहायता से घोंटकर पिण्डाकार टिकिया बना लें, फिर उसे दो सीपियों में बन्द कर उस पर केले का पत्ता लपेट कर डोरा से बांध, ऊपर मिट्टी का एक अंगुल मोटा लेप कर दें। फिर उसे लघुपुट में पकाये, जब ऊपर वाली मिट्टी लाल हो जाये, तो उसे अग्नि से बाहर निकाल लें और ठण्डा होने पर उसके भीतर की औषध को निकालकर, पीसकर जल के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती, सुबह-शाम भुना हुआ जीरा और मधु के साथ या जल अथवा मीठे दाड़िम का रस और चावल के पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन स्त्री-पुरुष और बच्चों के लिए बहुत प्रभावशाली है। इसके सेवन से ज्वर नष्ट होता है, अग्नि प्रदीप्त होती और बल-वीर्य की वृद्धि होती है। यह रस दु:साध्य संग्रहणी, प्रवाहिका, प्रसूत रोग, श्वास, अतिसार, बच्चों के हरे-पीले और पतले दस्त, ज्वर आदि रोगों को नष्ट करने के लिए रामबाण है। स्त्रियों के प्रदर रोग में मौलश्री की छाल का चूर्ण ६ माशे या उसके क्वाथ के साथ देने से यह अच्छा लाभ करता है।

संग्रहणी की प्रकोपावस्था में इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। आँतों में शब्द होना, शरीर में दर्द, दुर्बलता, दस्त पतला चिकना तथा कुछ ठण्डा होना, दस्त होते समय कमर में दर्द अथवा बीच में दो-चार दिन कम होकर पुनः आँव के साथ दर्द सहित दस्त होना आदि लक्षणयुक्त संग्रहणी रोग में महागन्धक रस के प्रयोग से लाभ होता है। इस रसायन का असर आँतों पर ज्यादा पड़ता है तथा यह पाचक और अग्नि-प्रदीपक होने से बहुत शीघ्र फायदा करता है। अतिसार और प्रवाहिका रोग में आँतों को सबल बनाने तथा पाचक पित्त को उत्तेजित करने के लिये इस रसायन का उपयोग किया जाता है। आम पाचन और अग्नि दीपन के द्वारा प्राकृतिक रूप से स्तम्भन शक्ति उत्पन्न कर संग्रहणी रोग को नष्ट करने में यह निर्दोष एवं सौम्य योग है।

प्रसूत रोग की जीर्णावस्था में- वायु प्रकुपित होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है। जिससे भूख कम लगती तथा अन्नादिक पचने में गड़बड़ी होने लगती है। फिर पेट फूलना, पेट में गुड़गुड़ आवाज होना, कफ की वृद्धि होना, ज्वर और कास होना, शरीर दुर्बल तथा कान्तिहीन हो जाना, रक्त की कमी से देह पाण्डूवर्ण का हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में महागन्धक रसायन के प्रयोग से अपूर्व सफलता मिलती है। यह प्रकुपित वात को शान्त कर आँतों को सबल बना, अग्नि प्रदीप्त करता है।

महामृत्युञ्जय रस

शुद्ध हरिताल, शुद्ध विष, शुद्ध जयपाल-प्रत्येक १-१ भाग, शुद्ध हिंगुल और कत्था प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् सब द्रव्यों को एकत्र मिला सत्यानाशी के स्वरस या क्वाथ की एक भावना देकर अच्छी तरह मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर आधी-आधी रत्ती की गोली बना, सुखाकर सुरक्षित रख लें। -र.त.सा. से किञ्चित परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु और अदरक रस या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग नये-पुराने ग्रन्थिक सन्निपात ज्वर तथा विषम ज्वर में किया जाता है। यह हृदय को उत्तेजना देता, ग्रंथियों एवं रक्त में रहे कीटाणुओं को नष्ट कर प्लेग को दूर करता है, आम और कफ का शोषण कर मल और मूत्रावरोध को नष्ट करता है। जो दुष्ट ज्वर किसी भी औषधि से ठीक न होता हो उसमें महामृत्युंजय रस का सेवन कराने से लाभ होते देखा गया है। इसमें हिंगुल कीटाणुनाशक एवं बल्य है। हरिताल प्रतिविषात्मक द्रव्य होने से विषदोष नाशक, जयपाल रेचक होने से शोधक है, बच्छनाग ज्वरघ्न और नाड़ी की गति को सुधारता है।

मृत्युञ्जय रस

शुद्ध विष, काली मिर्च चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध हिंगुल (सिंगरफ) २ तोला लेकर सब को खरल में डाल जम्बीरी नींबूस्वरस से १ दिन घोंटकर मूँग के दाने के बराबर (एक-एक रत्ती) की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर दूर हो जाते हैं। वातज्वर में दही के पानी से दें, सन्निपात ज्वर में अदरक रस के साथ दें। अजीर्ण-जनित ज्वर में जम्बीरी नींबू के रस से दें, सन्निपात ज्वर नष्ट होने के लिये जीरे का चूर्ण और शहद के साथ मृत्युञ्जय रस देना अच्छा है।

गुण और उपयोग- ज्वर का वेग बढ़ा हुआ हो और रोगी भी बलवान हो तब उसकी पूरी मात्रा देनी चाहिए। इसकी पूरी मात्रा ४ गोली तक हैं। स्त्री, बालक, वृद्ध और दुर्बलों को इसकी आधी मात्रा अर्थात् २ गोली ही दें। दुर्बल और कमजोर बच्चों को चौथाई मात्रा में दें। यह नवीन ज्वर का वेग एक प्रहर के अन्दर ही कम कर देता है। मध्यम ज्वर तथा जीर्ण ज्वर का दो-तीन दिन में नाश करता है। सन्निपात और अजीर्ण ज्वर को एक सप्ताह में दूर करता है।

वात-पित्त ज्वर में- ज्वर की गति तीव्र हो, देह में जलन ज्यादा हो, प्यास ज्यादा हो, मूर्च्छा, चित्त-विभ्रम, सिर-दर्द, कण्ठ और मुँह का सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, आँखों के सामने अन्धेरा छा जाना, जोड़ों में दर्द होना आदि लक्षण उपस्थित हों और रोगी बलवान हो तथा कफ की वृद्धि भी नहीं हो, तब मिश्री या नारियल के जल के साथ मृत्युंजय रस देने से शीघ्र फायदा होता है।

सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था में तथा बारी-बारी से आनेवाले ज्वरों में जब ज्वर का ताप (टेम्प्रेचर) बढ़ा हुआ हो, सिर भारी हो या सिर में दर्द हो, तो दिनभर में तीन बार इस रसायन का प्रयोग करना चाहिए। यदि कोष्ठबद्धता हो तो अनुपान में केले के कोसे का रस अथवा अदरक रस और मधु से दें। पान के रस और मधु के साथ भी दे सकते हैं। यदि सन्निपात में श्वास और हिक्का की तेजी ज्यादा हो तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। बच्चे, गर्भिणी और राजयक्ष्मा से आक्रान्त रोगी को इस रसायन का सेवन नहीं करना चाहिए।

मध्यम ज्वर में या ज्वर उतर नहीं रहा हो, भूख नहीं लगती हो, शरीर भारी मालूम पड़े, तो ऐसी स्थिती में पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ मृत्युंजय रस का प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। जीर्ण ज्वर और विषम ज्वरों में यदि टेम्प्रेचर ज्यादा न हो, पाचनक्रिया ठीक हो, शरीर में कहीं सूजन न हो, तब इसका प्रयोग पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ करना चाहिए।

न्यूमोनिया में- रोग प्रारम्भ होने के पहले या दूसरे दिन जब कि ज्वर बहुत तीव्र हो, रोगी का मुखमण्डल लाल दिखाई देता हो और भयंकर कष्टदायक कास (खाँसी) के साथ श्वास की गति अधिक हो, तो इस रसायन के प्रयोग से वेग कुछ कम हो जाता है।

हृदयावरण में शोथ के कारण अथवा अन्य किसी शारीरिक भीतरी अंगों में शोथ से होने वाले ज्वरों के प्रथमावस्था में इस रस के प्रयोग से शीघ्र ही उसके प्रभाव शान्त हो जाते हैं।

औपसर्गिक मेह- अर्थात् सूजाक की प्रथमावस्था में जब इन्द्रिय के अग्र भाग में अधिक शोथ और लालीमा के साथ तीर्व दाह और दर्द होता हो, तो मृत्युंजय के प्रयोग से अभूतपूर्व लाभ होता है।

यह रस कीटाणुनाशक ज्वरघ्न, स्वेद प्रवर्तक, कफ-वातनाशक, कास-श्वासनाशक एवं नाड़ी की गति की तीव्रता को कम करने वाला है। सभी प्रकार के ज्वरों की यह सुप्रसिद्ध महौषधि है।

महालक्ष्मीविलास रस

अभ्रक भस्म ४ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, शुद्ध पारा २ तोला, बंग भस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म ६ माशे, ताम्र भस्म ३ माशे, कपूर २ तोला, जावित्री, जायफल, विधारे के बीज और शुद्ध धतूरे के बीज प्रत्येक १-१ तोला तथा सोना भस्म ६ माशे, रौप्य भस्म ६ माशे लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना शेष भस्में मिलाकर फिर कपड़छन किया हुआ काष्ठौषधियों

का चूर्ण मिलाकर, पान के रस में घोंट कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -भै.र. (विनोदलालसेन-टीका)

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम। क्षय रोग में चौंसठ प्रहरी पीपल और मधु के साथ, हृदय रोग में अर्जुन छाल के क्वाथ से प्रमेह, नपुंसकता, शुक्रस्राव और श्वेतप्रदर में दो रत्ती शिलाजीत और दूध के साथ, सन्निपात में पान के रस के साथ, वातव्याधि में रास्नादि या दशमूल क्वाथ के साथ संग्रहणी, प्रवाहिका ओर जीर्णोतिसार में सोंठ का चूर्ण और मधु के साथ, उदर-विकार में पुनर्नवा के रस के साथ, बल-वीर्य की वृद्धि के लिये मक्खन मिश्री के साथ तथा अजीर्ण और मन्दाग्नि में भुना हुआ जीरा और मधु के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। प्रतिश्याय में पान में रखकर सेवन करें। वात श्लेष्म ज्वर में अदरक रस और मधु से दें। जीर्ण शिर:शूल में पथ्यादि क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह सन्निपात जैसे भयंकर ज्वरों तथा वातज और कफज रोगों को नष्ट करता है। सब प्रकार के कुष्ठ और प्रमेह रोगों का भी यह नाशक है। नासूर, घोर व्रण, गुदा रोग, भयंकर भगन्दर, अधिक दिनों से उत्पन्न श्लीपद (फीलपाँव) रोग, गले की सूजन, अन्त्र-वृद्धि, भयंकर अतिसार, खाँसी, पीनस, राजयक्ष्मा, बवासीर, स्थूलता, देह से दुर्गंधयुक्त पसीना निकलना, आमवात, जिव्हास्तम्भ, गलग्रह, अर्दित गलगण्ड, वातरक्त, उदररोग, कर्णरोग, नाक के रोग, आँख के रोग, मुख की विरसता, सब प्रकार के शूल, सिर-दर्द, स्त्री रोग -इन सब रोगों को यह नष्ट करता है।

इस रसायन का प्रभाव विशेषतया हृदय और रक्तवाहिनी शिराओं पर होता है। किसी भी कारण से हृदय में दर्द होना, हृदय की गति में कमी-बेहोश हो जाना, हृदय धड़कना या हृदय कमजोर हो अपने कार्य में असफल होना आदि उपद्रव होने पर इस रसायन के प्रयोग से अति शीघ्र लाभ होता है।

न्यूमोनिया और इन्फ्लूएंजा में फुफ्फुस विकृत हो जाता है। फिर खाँसी, श्वास, ज्वर, हृदय के वेग में गति बढ़ जाना, नाड़ी तीव्र, जलन आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में इस रसायन के अभ्रक भस्म और गोदन्ती भस्म के साथ उपयोग से फुफ्फुसविकार नष्ट हो कर हृदय और नाड़ी की गति में सुधार हो जाता और कास, श्वास तथा ज्वरादि रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

आँतों के विकारों को शमन करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने से आँतें कमजोर और शिथिल पड़ जाती हैं, फिर ज्वर उत्पन्न हो जाता है, क्रमशः यह ज्वर, सन्निपात रूप में प्रकट हों, आन्त्रिक सन्निपात में परिणत हो जाता है, इसमें हृदय शिथिल हो जाना, समूचे बदन में दर्द, शरीर कान्तिहीन, सिर में दर्द खाँसी आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी भयंकर अवस्था में हृदय को ताकत देने एवं आँतों को सुधारकर उपद्रव सहित ज्वर को नष्ट करने के लिए महालक्ष्मीविलास रस का शंख भस्म के साथ प्रयोग किया जाता है।

कभी-कभी आन्त्रिक सन्निपात अधिक दिन तक रह जाने से रोगी बिल्कुल कमजोर हो जाता है। उसकी जीवनीय शक्ति निर्बल हो जाती है, हृदय की गति शिथिल तथा नाड़ी भी शिथिल चलने लगती है। रोगी का अस्थिमात्र ही शेष रह जाता है। ऐसी स्थिति में महालक्ष्मीविलास रस के मण्डूर या स्वर्णमाक्षिक भस्म के साथ प्रयोग से बहुतों को लाभ होते देखा गया है।

वात-कफ ज्वर में-शरीर ढीला रहना, सन्धियों (जोड़ों) में दर्द होना, निद्रा, देह भारी हो जाना, सिर में भारीपन, शरीर में दाह, स्नायुओं की विकृति, अंगुलियाँ शून्य हो जाना, नाड़ी की

गति क्षीण होना आदि उपद्रव होने पर महालक्ष्मीविलास रस श्रृंग भस्म के साथ प्रयोग से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह प्रकुपित वात-कफ-दोष को दूर कर उनके उपद्रवों को शान्त कर देता है और हृदय को बलवान बनाकर, नाड़ी की गति भी सुधार कर देता है।

हृदय रोग में- कमजोर मनुष्य को अधिक चिन्ता या शोक अथवा मानसिक परिश्रम करने से हृदय मे एक प्रकार की घबराहट उत्पन्न होती है। इसमें नाड़ी की गति क्षीण हो जाना, सम्पूर्ण शरीर पसीने से तर होना, माथे पर ज्यादा पसीना, चलना, शरीर में कुछ-कुछ कम्प, हृदय की धड़कन में वृद्धि, रक्तवाहिनी शिराओं में शिथिलता, जिससे रक्त के आवागमन में बाधा पड़ कर शरीर शिथिल हो जाना, कुछ काल के लिये देह का रंग विशेषकर मुँह काला हो जाना, कमजोरी के कारण चक्कर आना, आलस्य बना रहना, रुक-रुक कर श्वास आना, छिन्न श्वास के लक्षण उपस्थित हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में महालक्ष्मीविलास रस के मोती पिष्टी या प्रवाल चन्द्रपुटी के साथ मधु में मिला कर उपयोग से हृदय की निर्बलता तथा रक्तवाहिनी शिरा की शिथिलता दूर हो, सम्पूर्ण शरीर में रक्त का संचार हो, नयी स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है।

वातजन्य कास (खाँसी) में-यह खाँसी पुरानी होने पर सूखी खाँसी के रूप में परिणत हो जाती है। रोगी बहुत कमजोर हो जाता है। थोड़ा-सा भी परिश्रम करने पर खाँसी का प्रकोप हो जाता है। श्वास की गति तेज हो जाती, साथ ही खाँसी भी होने लगती है, जिससे रोगी घबरा जाता है और बेचैनी बनी रहती है तथा हृदय की गति भी बढ़ जाती है। कभी-कभी हाथ-पैरों में सूजन भी हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में महालक्ष्मीविलास रस के शु. टंकण या अपामार्ग क्षार के साथ मधु में मिलाकर प्रयोग करने से उत्तम लाभ होता है।

कफ-प्रकोप के कारण जठराग्नि मन्द हो जाना, मुँह का स्वाद मधुर तथा मुँह के अन्दर कफ लिया हुआ-सा बना रहना, अन्न में अरुचि, शरीर में सुस्ती, कोई भी काम करने की इच्छा न होना, कमजोरी अधिक मालुम होना, शरीर में दर्द होना, मन्द-मन्द ज्वर रहना, मन्दाग्नि और अपचन के कारण पतले दस्त होना, दस्त होने पर महालक्ष्मीविलास रस के प्रयोग से प्रकुपित कफ शान्त हो जाता और पाचक पित्त (जठराग्नि)प्रदीप्त होकर अन्नादिक पचाने में समर्थ हो जाता है।

जलोदर में- यकृत और प्लीहा की वृद्धि होकर पेट में जल-संचय होते-होते यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें हृदय एकदम कमजोर हो जाता और मन घबराता रहता है। पसीना आना, थोड़े से ही परिश्रम से थकावट, पेट में दर्द, रक्त की कमी, हाथ-पैर में सूजन, सिर भारी रहना और दर्द होना आदि लक्षण होने पर महालक्ष्मीविलास रस पुनर्नवाष्टक या केवल पुनर्नवा के क्वाथ के साथ देने से अधिक लाभ होता है।-औ.गु.ध.शा. के आधार पर

मूर्च्छान्तक रस

रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, शुद्ध शिलाजीत, लौह भस्म प्रत्येक १-१ भाग लेकर सब को एकत्र मिला करके शतावरी और विदारीकन्द के स्वरस या क्वाथ में १-१ भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनाने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखा कर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में दो बार सुबह-शाम सुखोष्ण दूध या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के मूर्च्छा रोग नष्ट होते हैं। इस रस का विशेष प्रभाव ज्ञानवाहिनी नाड़ियों पर शीघ्र होता है। यह रस मस्तिष्क और हृदय को उत्तम बल प्रदान करता है। इसके प्रयोग से रक्त में रक्ताणुओं की शीघ्र वृद्धि होती है, अतः

पाण्डु, कामला, हलीमक आदि रोगों में यह लाभकारी है। यह रस उत्तम वाजीकरण और रसायन है तथा सभी प्रकार के प्रमेह रोगों में भी अच्छा लाभ करता है और बल, वर्ण तथा ओज की वृद्धि करता है।

मधुवसन्तकुसुमाकर रस

वसन्तकुसुमाकर रस ७ रत्ती को २।। तोला मधु के साथ खरल में अच्छी तरह घोंट कर शीशी में रख लें।- स्वानुभूत प्रयोग-विधि

मात्रा और अनुपान- २ माशा से ४ माशा तक प्रातः सायं सेवन करें।

गुण और उपयोग- प्रमेह तथा धातु सम्बन्धी विकारों के लिए यह रस अत्यन्त गुणकारी और प्रसिद्ध औषध है। इसके अतिरिक्त दिल, दिमाग तथा शारीरिक सभी अवयवों में शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करता है। स्नायविक दौर्बल्य और इन्द्रिय शैथिल्य को मिटाने में श्रेष्ठ लाभकारी है। धातु विकारों में जब अन्य औषधियों के उपयोग से लाभ न दिखाई पड़े तो इस रसायन के सेवन से अवश्य लाभ होता है। धातुक्षीणता के कारण निस्तेज और जीर्ण-शीर्ण शरीर को रस-रक्तादि समस्त धातुओं से परिपूर्ण कर कायाकल्प जैसा हृष्ट-पुष्ट, बल, स्फूर्ति और ओजपूर्ण बना देता है।

वक्तव्य- वसन्तकुसुमार रस आयुर्वेद-शास्त्र का अत्यन्त सुप्रसिद्ध रसायन होने के कारण इसके सेवन की अनेक लोग कामना रखते हैं, किन्तु बिना उचित अनुपान मधु आदि के साथ खरल में अच्छी तरह मर्दन किये प्रायः लोगों को सेवन करना पड़ता था, किन्तु "मर्दन गुणवर्धनम्" इस शास्त्र-सिद्धान्त के अनुसार मर्दन औषधि के गुणों को बढ़ाने का आवश्यक संस्कार है। अतः लोगों की इस कठिनाई को देख कर एवं उनको यह मर्दन संस्कार युक्त श्रेष्ठ और तैयार मिले, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने वसन्तकुसुमाकर को उपरोक्त परिमाण में मधु के साथ मर्दन कर तैयार करके प्रयोग किया है और यह प्रयोग काफी सफल सिद्ध हो रहा है।

मुक्तापंचामृत रस

मोती या पिष्टी ८ तोला, मूंगाभस्म या पिष्टी ४ तोला, वंग भस्म २ तोला, शंख और मुक्ता शुक्ति भस्म १-१ तोला लें, सब को एकत्र मिला, दो प्रहर तक ईख के रस में घोंट कर गोला बना सुखा, सराब-सम्पुट में बन्द कर लघु-पुट (२ सेर कण्डों की आँच) में फूँक दें। इसी प्रकार गाय के दूध, तुलसी, बिदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावरी और हँसराज के रस में खरल करके एक-एक पुट देने से अच्छी भस्म तैयार हो जाती है। -रसामृत

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती पीपल के चूर्ण में मिलाकर ३-४ माह की ब्याई हुई गाय के दूध अथवा मधु से दें।

गुण और उपयोग- जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, क्षययुक्त कास (खाँसी) और अन्यान्य राजयक्ष्मा के उपद्रवों में यह लाभ करता है। इसके साथ स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती मिलाकर प्रयोग करने से और भी विशेष गुण करता है। श्वास, गुल्म, जीर्ण अतिसार, संग्रहणी, रक्तपित्त, अर्श, प्रमेह, आँतों की कमजोरी, हृदय की दुर्बलता, पित्त-विकार, रक्त का पतलापन, प्रदर रोग, पाण्डु, कामला, हलीमक आदि अनेक रोगों में बहुत उत्तम लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जवाखार-प्रत्येक समान भाग लें, कज्जली बनाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ रत्ती, मिश्री के साथ दें। ठण्डा जल या दूध की लस्सी ऊपर से पिला दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र और मूत्र-विकार को नष्ट कर पेशाब साफ लाता है। मूत्राघात, अश्मरी (पथरी), शर्करा, सिकता, वृक्कशूल, बस्तिशूल या तूनी-प्रतूनी, आँत-वृद्धि आदि किसी भी कारण से हुए मूत्रावरोध में ठण्डे पानी के साथ सेवन करने या फलों के रस से लेने पर मूत्र साफ होने लगता है।

मृंगाक पोट्टली रस

शुद्ध पारा ४ तोला, सोने का वर्क ४ तोला, दोनों को खूब घोंटे। जब पारद में स्वर्ण मिल जायें तो उसे १-१ दिन कंचनार, हुलहुल और कलिहारी के रस में घोंट, उसमें एक तोला सुहागा और ८ तोला मोती चूर्ण (पिष्टी) तथा १७ तोला शुद्ध गन्धक डाल कर खरल करें, फिर उसका गोला बना, धूप में सुखा लें। इस गोले को एक सम्पुट में बन्द कर ३-४ कपड़मिट्टी करके सुखा लें। फिर इस सम्पुट को सेंधा नमक के बारीक चूर्ण से भीर हुई हाँड़ी में नमक के बीच में दबा दें और हाँड़ी के मुख पर सकोरा से ढँक कर सन्धि-बन्द कर दें और उसे सुखाकर गजपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर गजपुट से औषध को निकाल, उसमें ४ तोला शुद्ध गन्धक मिला, पूर्वोक्त रसों में पुनः १-१ दिन खरल कर और उसी प्रकार सराब-सम्पुट में बन्द कर उस नमक की हाँड़ी में रख गजपुट की आँच में रख दें। स्वांग-शीतल होने पर रस को निकाल, खरल में महीन पीसकर सुरक्षित रख लें।-र.का.धे.

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती सुबह-शाम। ७ काली मिर्च के चूर्ण या ३ पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर दोषानुसार घी या शहद में मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से क्षय, ग्रहणी, कफ, खाँसी, अरुचि, दुर्बलता और कमजोरी दूर होती है। हृदयोत्तेजक, बलवर्द्धक, रक्तप्रसादक तथा धातुवर्द्धक है। क्षय रोग की दूसरी और तीसरी अवस्था में इस रसायन का उपयोग किया जाता है। जब ज्वर के साथ खाँसी रहे, नाड़ी की गति क्षीण हो, खून मिला हुआ कफ निकले, पसीना रात में अधिक आये, अग्निमांद्य हो, शरीर दुर्बल और कमजोर हों, उठने-बैठने की शक्ति नहीं रहे, ऐसी हालत में इस रसायन के प्रयोग से जल्दी लाभ होता है। इससे क्षय रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, फिर ज्वरादिक उपद्रव भी क्रमशः कम होने लगते हैं। धीरे-धीरे धातुओं की वृद्धि हो शरीर बलवान हो जाता है।

ग्रहणी दोष- इसमें आँतों में खराबी हो जाने से घाव हो जाते हैं। अतएव आँते कमजोर और शिथिल पड़ जाती है। दस्त के समय आँतों में दर्द होना, अपच हो कर दस्त पतला और झागदार होना, कमर में दर्द होना, पेट में ऐंठन बहुत जोर से उठना, मन्दाग्नि, आँतों की कमजोरी से दस्त असमय में होना, अनजाने में कभी-कभी दस्त होकर धोती खराब हो जाना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में आँतों को सबल बनाने, जठराग्नि को जागृत करने और पाचनक्रिया को सुधारकर दस्त को गाढ़ा करने के लिये इस रसायन का उपयोग करना श्रेष्ठ है।

बीमारी छूटने के बाद की शारीरिक कमजोरी को दूर करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। रस-रक्तादि धातुओं की कमजोरी से शरीर दुर्बल और कमजोर हो गया हो, रक्त की कमी हो गयी हो, मन्दाग्नि, खाई हुई चीजों का ठीक से न पचना, धातुक्षीणता आदि विकारों को शान्त करने के लिए यह रसायन बहुत लाभदायक है। -औ.गु.ध.शा.

मृगांक रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, मोती भस्म या पिष्टी २ तोला, सुवर्ण भस्म १ तोला, सुहागे की खील ३ माशे-इन सब चीजों को काँजी में घोंटकर गोला बना, सुखा, मूषा में बन्द करके एक घडे में आधे भाग में नमक नीचे रख उसमें मषा रख कर. ऊपर से आधा बचा

हुआ नमक डाल दें। इस घड़े को चार प्रहर आग पर रख कर पकायें। स्वांग-शीतल होने पर घड़े में से मूषा निकाल, खोल कर दवा निकाल पीसकर रख लें।-भै.र.आरोग्य-प्रकाश

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती सुबह-शाम, १० पीपल अथवा १० कालीमिर्च का चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह राजयक्ष्मा के लिए बहुत प्रसिद्ध दवा है। इसके सेवन से पुराना ज्वर, पुरानी खाँसी, श्वास और हृदय के रोगों में बहुत लाभ होता है यह फुफ्फुस और श्वास-यन्त्रों की खराबी दूर कर उसकी क्रिया को ठीक करता है। क्षय के कीटाणु इसके सेवन से नष्ट होते हैं, तथा फेफड़े और हृदय को बल मिलता है।

विशेष गुणधर्म- यह रसायन राजयक्ष्मा की बहुत प्रसिद्ध औषध है। इसके प्रयोग से जीर्णज्वर, पुरानी खाँसी, श्वास और हृदय के रोगों में बहुत लाभ होता है तथा फुफ्फुस और श्वास-यन्त्रों की विकृति को नष्ट कर उनकी क्रिया को ठीक करता है। क्षयोत्पादक कीटाणुओं को नष्ट करने की यह परमौषधि है। हृदय और फुफ्फुस को इससे उत्तम बल मिलता है। इसका प्रयोग शुष्क कास और कफोत्पत्ति नष्ट हो जाने के बाद करना विशेष उपयोगी है।

क्षय रोग की प्रथमावस्था में शुष्क कास हो जाती है। इस समय फुफ्फुसों की श्लैष्मिककला को स्निग्ध बनाने तथा कीटाणुओं की ग्रन्थियों को नष्ट करने के लिए प्रवाल पिष्टी और सितोपलादि चूर्ण के साथ बहुत कम मात्रा में मृगांग रस को विषम भाग शहद और घृत के साथ सेवन करना हितकारी है। द्वितीयावस्था में कफ गाढ़ा, श्वेत और पीला हो जाता है। उन दशा में कफ को बाहर निकालने एवं कीटाणुओं की वृद्धि को रोकने के लिए तथा विष को नष्ट कर फुफ्फुसों को निर्दोष बनाने के लिए अभ्रक भस्म और श्रृंग भस्म के साथ मृगांग रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। इसके साथ अनुपान रूप में कासकण्डनावलेह का प्रयोग करना भी विशेष उपयोगी है। कफ के रक्त आने की अवस्था में अनुपान रूप में वासावलेह का प्रयोग करना भी विशेष उपयोगी है। कफ के साथ रक्त आने की अवस्था में अनुपान रूप में वासावलेह का प्रयोग करना भी विशेष लाभदायक है। तृतीयावस्था में फुफ्फुसों में बड़े-बड़े कोटर (गड्ढे) हो जाते हैं। कफ हरे-पीले वर्ण का दुर्गन्धियुक्त और गाँठदार निकलता है। ऐसी दशा में अभ्रक भस्म, श्रृंग भस्म और वासावलेह के साथ मिलाकर मृगांक रस सेवन करना लाभकारी है। अन्य कोई लक्षण उपस्थित होने पर उस लक्षण के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त धातु क्षीणता, जीर्ण ज्वरजन्य निर्बलता, संग्रहणी, कास, श्वास, कुष्ठ, पाण्डु आदि रोगों से उत्पन्न निर्बलता नष्ट करने के लिए काली मिर्च चूर्ण २ रत्ती अथवा चौंसठप्रहरी पीपल २ रत्ती और मधु के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ इस रस का प्रयोग किया जाता है।

मृतसंजीवनी रस

शुद्ध हिंगुल ४ तोला, शुद्ध जमालगोटा ३ तोला, सुहागे की खील २ तोला, शुद्ध बच्छनाग १ तोला लेकर १ प्रहर तक अच्छी तरह खरल करके महीन चूर्ण बनाकर, अदरक के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह, दोपहर और शाम सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक और सेंधा नमक के चूर्ण में मिलाकर अदरक-रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से सन्निपात, विषमज्वर, आँव के दस्त, वातशूल गुल्म, प्लीहा, जलोदर, शीतपूर्व और दाहपूर्व ज्वर तथा अग्निमांद्य व वायु का नाश होता है।

इस रसायन का उपयोग वात-कफात्मक विकारो में अधिक होता है। सन्निपात ज्वर में वात दोष के अधिक होने पर प्रलाप, शरीर में दर्द होना और सिर भारी होना, पेट में अफरा होना, बद्धकोष्ठ आदि में इस रसायन के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। यह त्रिदोष-शामक और ज्वर को नष्ट करनेवाला है। इसमें जमालगोटा की मात्रा विशेष होने से यह दूषित (संचित) मल को निकालकर दूर करता है, जिससे ज्वर की गर्मी कम होकर शरीर कुछ हल्का हो जाता है। दूषित मल निकल जाने पर इसे देना बन्द कर अन्य दूसरी दवा देनी चाहिए अन्यथा अधिक दस्त हो जाने पर रोगी की कमजोरी बढ़ जाती है।

विषमज्वर- पुराना होने पर दूसरे-तीसरे दिन किसी-न-किसी समय जाड़ा देकर बुखार आ जाता हो, नाड़ी की गति भी तेज तथा ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई मालूम पड़े, शरीर में खून की कमी के कारण पाण्डू वर्ण का हो जाये, कमजोरी, मन्दाग्नि, दस्त में कब्जियत आदि अनेक उपद्रवयुक्त विषमज्वर में यह रसायन बहुत फायदा करता है, परन्तु ज्वर आने से २ घण्टे पहले ही इसे खिला दें अन्यथा ज्वर और दवा की गर्मी से रोगी परेशान हो जाता है।

आमवात में- जोड़ों में सूजन के साथ दर्द हो, शरीर जकड़ा हुआ हो, हाथ-पाँव फैलाने और सिकोड़ने में अधिक तकलीफ हो, दस्त साफ न होते हो, पेट में वायु भर जाने के कारण पेट भारी मालूम पड़े, रक्त का संचार अच्छी तरह न होने के कारण शरीर सुत्र सा मालुम हो, ऐसी हालत में इससे बहुत फायदा होता है। इसमें बच्छनाग का मिश्रण होने वातवाहिनी नाड़ी को सुधारकर रक्त का संचार अच्छी तरह करा देता है। फिर धीरे-धीरे दर्द और सूजन आदि भी दूर हो जाती है। -औ.गु.ध.शा.

महामृगांक रस

स्वर्ण भस्म १ भाग, रससिन्दूर २ भाग, मोती भस्म ३ भाग, शुद्ध गन्धक ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, रौप्य भस्म ४ भाग, प्रवाल भस्म ७ भाग, शुद्ध टंकण २ भाग लें। इन समस्त द्रव्यों को एकत्र मिला बिजोरा नींबू के रस की तीन भावना देकर तीन दिन मर्दन करें। पश्चात् गाला बनाकर तीव्र धूप में सुखावें। फिर सेंधा नमक के भरे पात्र में-बीच में गोला को रखकर पात्र का मुँह सराब से बन्द कर कपड़मिट्टी से सन्धि बन्द कर दें और इस लवणपूरित पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर १२ घण्टे तक क्रम से मन्द और मध्य आँच देकर गन्धक जारण करें। स्वांग-शीतल होने पर गोले को निकालकर सूक्ष्म मर्दन करें और औषध का ६४ वां भाग हीरा भस्म (अभाव में १६ वां भाग वैक्रान्त भस्म) मिला अच्छी तरह मर्दन कर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती तक दिन में दो बार काली मिर्च चूर्ण और विषम भाग घृत और मधु के साथ दें, या पीपल चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन विविध प्रकार के उपद्रव सहित क्षय, जीर्णज्वर, गुल्म, विद्रधि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, कास, अरूचि, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, आठ प्रकार के महारोग, ग्रहबाधा, पाण्डूरोग, कामला और पित्त प्रकोप जनित समस्त रोगों को नष्ट करता है। यह रसायन क्षय की सभी अवस्थाओं में उत्तम लाभकारी है। मस्तिष्क में शान्ति उत्पन्न कर गाढ़ी निद्रा लाता है। कीटाणुओं को नष्ट कर ज्वर शमन करता है। शारीरिक शक्ति को बढ़ाकर शनैः-शनैः रोगी को थोड़े ही दिनों में आशाप्रद लाभ करता है।

जिन रोगियों के अस्थिसंस्थान में निर्बलता आयी हो, या जिन रोगियों को निद्रानाश, वृक्क विकृति, वातवाहिनियों में क्षोभ और शुक्रक्षय आदि लक्षण हों, उन क्षय रोगियों के लिए यह रसायन अमृततुल्य लाभकारी है।

नोट- इस रसायन के सेवनकाल में शक्तिवर्द्धक और शुक्रवर्द्धक भोजन करना चाहिए। पारद के विरोधी पदार्थ करेला और ककारादि वर्ग के पदार्थ, हींग, बैंगन, तैल, अधिक नमक, क्षार, अतितीक्ष्ण पदार्थों का त्याग तथा ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़तापूर्वक करना चाहिए।

वक्तव्य- महामृगांक रस का गोला पाक हो जाने के बाद निकालने पर उसका वर्ण पीले-लाल रंग का होना चाहिए। यदि गन्धक का पूर्ण जारण न हुआ हो तो पुनः तीन घण्टा या अधिक समय तक अग्नि देकर गन्धक जारण करें। गोले का वर्ण रक्ताभ हो जाना चाहिए। गन्धक ठीक जीर्ण न होने पर रंग काला रहता है। यदि ऐसा हो, तो पुनः ४-६ घण्टे अग्नि दें। भूल से यदि अग्नि तीव्र दी गई, तो पारद उड़ जाने से रस गुणहीन हो जाता है।

महावातविध्वंसन रस

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नाग भस्म, वंग भस्म, लौह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, पीपल, शुद्ध टंकण, सोंठ, काली मिर्च ये प्रतयेक द्रव्य १-१ भाग लें और वत्सनाभ विष ४॥ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् त्रिकटु क्वाथ, त्रिफला क्वाथ, चित्रक मूल, छाल, क्वाथ, भांगरा स्वरस, कूठ- क्वाथ, निर्गुण्डी पत्र स्वरस, आक का दूध, आँवला क्वाथ, अदरक स्वरस, नींबू का रस, इनकी प्रत्येक की तीन-तीन भावना देकर तीन-तीन दिन मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखाकर सुरक्षित रखें।-र.च.

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली दिन में दो-तीन बार दें। तीव्र वात रोगों में अदरक रस और शहद के साथ या भांगरा स्वरस और शहद के साथ और आमवात में एरण्ड तैल या घृत अथवा सुखोष्ण जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन वात रोग नष्ट होते हैं और शूल, कफ, प्रकोप जनित रोग, ग्रहणी, सन्निपात, अपस्मार, मन्दाग्नि शरीर का स्पर्श शीतल होना, पित्तोदर, प्लीहावृद्धि, कुष्ठ, अर्श, स्त्रियों के गर्भाशय विकृति जन्य रोग, सूतिका रोग इन सबको शीघ्र नष्ट करता है।

यह रसायन वात-वृद्धि और वातवाहिनियों के क्षोभ का शमन करने वाली उत्तम शामक औषध है। साथ ही इस औषधि में शूल नाशक गुण भी विशेषांश में विद्यमान रहते हैं। यह वातवाहिनियों के क्षोभ में उपयोगी होने से अपतानक, अपतन्त्रक, आक्षेपक और तीव्र वेगवाले आशुकारी पक्षाघात में वात-वृद्धि के लक्षण अधिक होने पर इस रसायन के सेवन से वात प्रकोप का शमन होकर वात साम्य स्थापित होता है। किसी भी निमित्त से उत्पन्न किसी भी रोग में वातवाहिनियों में क्षोभ होने पर एवं रांग की तीव्रावस्था में महावातविध्वंसन रस का सेवन उपयोगी है। केवल वात प्रधान विकार होने पर इस रसायन से अच्छा उपकार होता है, परन्तु दोष-वात-पित्तात्मक हों, तो सूतशेखर रस का सेवन उपयोगी है।

वातवाहिनियों के कार्य में किसी कारण से रुकावट होने पर वात क्षोभ उत्पन्न होता है, फिर किसी भी अवस्था में शूल उत्पन्न होने की दशा में इस रसायन का सेवन कराना लाभप्रद है। यद्यपि आमवात और सन्धिवात की जीर्णावस्था में योगराज गुग्गुलु और गोक्षुरादि गुग्गुलु का सेवन उपयोगी है, तथापि जब अंगों में बिच्छू के दंश के समान अत्यन्त तीव्र वेदना, विशेषतः शोथ स्थान में भयंकर वेदना, शूल, बेचैनी, प्रलाव आदि लक्षण हों, तब आमशोषक और वेदनाशामक ये दोनों कार्य इस रसायन के प्रयोग करने से सरलतापूर्वक उत्तम प्रकार से हो जाते हैं, और रोगी को थोड़े ही समय में बहुत लाभ हो जाता है। आमवात रोग की तीव्रावस्था की यह अप्रतिम औषध है।

कभी-कभी मानसिक रोगों से भी वात क्षोभ होकर वेदना होती है। अपस्मार, उन्माद, मनोव्याघात आदि विकारों में होने वाली वेदना में विशेषत: द्राक्षारिष्ट या अभ्रक भस्म प्रधान औषधि दी जाती है, किन्तु जो शूल शारीरिक दोषों से विशेषत: वात दुष्टि से उत्पन्न होता है, उस शूल पर इस रसायन का विशेष कार्य होता है। इससे वात-प्रकोप नष्ट होकर साम्य-भाव स्थापित होता है। इसी कारण से किसी भी प्रकार के शूल में इस रसायन के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है। स्थान भेद और दोष-दूष्य भेद के अनुसार अनुपान की उचित कल्पना करके देना विशेष उपयोगी है।

केवल वातक्षोभजन्य शिर:शूल अति त्रासदायक होता है। उस समय अत्यन्त व्याकुलता और शरीर में कील गाड़ने सदृश भयंकर वेदना होती है। रोगी अपनी गर्दन (गला), इधर-उधर फिराता है और बेचैनी बढ़ती जाती है तथा निरर्थक विचार आना विशेषत: मस्तिष्क के दायें पार्श्व में अतिशय पीड़ा आदि लक्षण होते हैं, यहाँ तक कि पीड़ा के मारे रोगी सिर पीटता, रोता चिल्लाता है। इस प्रकार कुछ समय दर्द होकर बाद में स्वयंमेव कम हो जाता है, अर्थात् वेदना का वेग सहन करने लायक होता जाता है। कुछ ही समय में फिर पहले के समान वेदना होने लगती है, इस प्रकार बार-बार आक्षेप सदृश तीव्र वेग के रूप में वेदना होती रहती है। इस प्रकार के शिर:शूल में इस रसायन का सेवन अत्यंत लाभकारी है।

शिर:शूल के समान कुक्षिशूल, उर:शूल, पार्श्वशूल इनमें भी अकस्मात् तीव्र शूल होने लगता है, फिर कुछ समय के लिये वेदना कम होकर पुन: शिर:शूल सदृश तीव्र और असह्य शूल होने लगता है। यह असह्य शूल छूरा भोंकने सदृश होता है। इस प्रकार के रोगों में वात विध्वंसन रस कफघ्न अनुपान के साथ सेवन करना उपयोगी है।

हृदय के शूल में उक्त प्रकार की आक्षेप सदृश वेदना होने पर इस रसायन के सेवन से अच्छा लाभ होता है, परन्तु जब तीव्र वेदना हृदय से निकलकर बायें हाथ की ओर फैलती हो, और साथ में घबराहट, प्रस्वेद आदि लक्षण प्रतित होते हों, उस दशा में इस रसायन का प्रयोग न करके (स्वल्प मात्रा में सूतराज रस या कुक्त अथवा प्रवाल प्रधान) शामक औषधि देनी चाहिए।

वातक्षोभजन्य छाती या पीठ के शूल में महावातविध्वंसन रस का सेवन विशेष गुणकारी है। इसी प्रकार फुफ्फुस प्रदाह के प्रारम्भ में छाती में शूल चलता हो और वात क्षोभ से वेदना होती हो तथा वेदना के साथ मर्यादित ज्वर एवं शोथ होने की दशा में हो तो इस रस का सेवन उत्कृष्ट लाभकारी है। वातक्षोभजन्य उदरशूल में भी यह रस उपयोगी है। उदर पीड़ा-विकार में विशेष लाभ करता है। इसमें उदर के भीतर विविध अवयव, उनकी क्रिया और उनमें विकार, तीनों का सम्बन्ध रहता है, अत: इस कारण से रोग निर्णय में कठिनाई होती है। उदर की परीक्षा करने पर पचनेन्द्रिय के विकार, मूत्रपिण्ड, मूत्रमार्ग या मूत्राशय के विकार, अन्य विकृति और उनमें शल्य तथा सर्व कोष्ठ में व्यापक वात नाड़ियों में विकृति, सगर्भा स्त्री रोगिणी होने पर गर्भाशय विकार इन सबका विचार करना पड़ता है। इनमें वातक्षोभजन्य शूल में इसका प्रयोग विशेष गुणकारी है। यह शूल भी आक्षेप, सदृश बड़े जोर से उत्पन्न होता है और उतने ही वेग से शमन भी होता है।

श्लैष्मिक और श्वसनक सन्निपात की प्रथमावस्था में यदि कफ विकृति सामान्य और वात प्रकोप अधिक हो तो महावात विध्वंसन रस का सेवन उपयोगी है, परन्तु जब गले में कफ की घर-घर आवाज होती हो, तो उस दशा में इस रस के सेवन से विशेष अधिक लाभ नहीं होता।

आन्त्रिक, सन्निपात (मधुरा), ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) और सान्धिक सन्निपात में बेहोशी, कण्ठ चलते रहना, प्रलाप, चित्त, विभ्रम, नेत्र भरे से ज्ञात होना, जिव्हा शुष्क (कभी जिव्हा काली भी हो जाती है), जिव्हा पर कार्ट, इस प्रकार की वात-क्षोभयुक्त दशा में इस महावातवि

वंसन रस का सेवन सर्वप्रसिद्ध अपूर्व लाभकारी निर्भय औषधि है।

प्रसूता स्त्रियों को ज्वर न होने पर भी मक्कल शूल होता है, जिसमें भयंकर शिरःशूल बस्ति कोष्ठ और गर्भाशय में अति तीव्र शूल या आक्षेप के समान वेदना-गर्भाशय से निकलकर बस्ति और उदर में फैल जाना आदि लक्षणों में महावातविध्वंसन रस का सेवन अत्यन्त लाभकारी है।

इस रसायन का कार्य वातवाहिनियों, वातवह मण्डलों और वातसंस्थानों पर क्षोभनाशक होता है। यह रस वात दोष तथा मांस और अस्थि इन दूष्यों पर लाभ पहुँचाता है। इस रस में कज्जली कीटाणुनाशक और योगवाही है। नाग, वंग, लौह, शक्तिवर्द्धक और बल्यत्व के कारण वातशामक है। ताम्र आक्षेपनाशक और वातशामक है। अभ्रक भस्म वातवाहिनियों पर बल्य और शामक प्रभाव करती है। सुहागा कीटाणुनाशक और शामक है तथा वत्सनाभ अवसादक, क्षोभनाशक और शूलघ्न है।

गृध्रसी रोग को पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में वातनाड़ी शूल के अन्तर्गत माना जाता है। इस रोग के प्रारम्भ में बेचैनी, पैरों में झनझनाहट, नाड़ियों का खिंचाव आदि लक्षण होते हैं। फिर नितम्बप्रदेश, जंघा के सामने या पीछे या बाहर शूल उत्पन्न होता है। इस रोग में असह्य पीड़ा होती है। निद्रा नहीं आती, इस दशा में कितने ही सप्ताह या मास व्यतीत हो जाते हैं। किसी-किसी को इस रोग में ज्वर भी हो जाता है। ज्वर का तापमान १०२,१०३ या १०५ तक बढ़ जाता है, फिर वमन, घबराहट, भयंकर शीर्ष शूल, छाती में वेदना, बेहोशी, आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में महावात-विध्वंसन रस आधी रत्ती, आम का मुरब्बा ३ माशे, भाँगरे का रस १ तोला मिलाकर उसमें से थोड़ा-थोड़ा करके तीन-चार बार दें। इस प्रकार दिन में २ बार तैयार करके देते रहें तथा विषगर्भ तैल में तारपीन तैल और कपूर मिलाकर मालिश करते रहने से वेदना का तत्काल शमन हो जाता है। -औ.गु.ध.शा. के आधार पर

याकूती रसायन

माणिक्यपिष्टी, पन्नापिष्टी, मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, कहरवापिष्टी, चन्द्रोदय, सोने के वर्क, अम्बर, जावित्री, अबरेशम कतरा हुआ और केशर प्रत्येक २-२ तोला, बहमन सफेद, बहमन लाल, जायफल, लौंग और सफेद मिर्च प्रत्येक का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला लें। प्रथम चन्द्रोदय को खूब महीन पीसें, पीछे उसमें अन्य द्रव्य तथा सोने के वर्क मिलाकर, उत्तम गुलाब के अर्क में २१ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। कस्तूरी और अम्बर आखरी (२१ वें) दिन मिलाना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम मधु, मक्खन, मलाई, दूध, खमीरे-गावजवान, च्यवनप्राश, आँवला मुरब्बा आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के प्रयोग से हृदय की दुर्बलता, सन्निपात ज्वर आदि में नाड़ी क्षीणता, देह शीतल हो जाना, स्वेदाधिक्य, हृदय की दुर्बलता के कारण थोड़ा-सा भी चलने में दम भर जाना और हृदय का स्पन्दन बढ़ जाना आदि लक्षण नष्ट होते हैं।

इस रसायन का सन्निपात में सेवन करने पर तत्काल नाड़ी को बल मिलता है, घबराहट नष्ट होती है तथा तन्द्रा और मानसिक विकृति नष्ट होती है। वात और पित्त प्रकोपज सन्निपात में भी इसका प्रयोग अच्छा होता है।

हृदयेन्द्रियाँ निर्बल बनने, विविध रोगों के कारण रक्त को योग्य पोषण न मिलने और मस्तिष्कगत हृदय केन्द्र विकृत हो जाने से हृदय की क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है।

मस्तिष्कगत हृदय केन्द्र विकृत हो जाने से हृदय की क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। इसमें यदि हृदयेन्द्रिय या पर्दे पर शोथ न आया हो, तो इस रसायन का सेवन कराने से हृदय की क्रिया नियमित हो जाती है। फिर हृदयवेदना, हृदयस्पन्दन के ताल में अनियमितता या अस्वाभाविक हृदयस्पन्दन वृद्धि तथा इनसे उत्पन्न पाचक क्रिया विकार उदर में वायुसंग्रह, निस्तेजता, दम भर जाना आदि लक्षण नष्ट होते हैं।

अति मानसिक श्रम से मस्तिष्क निर्बल बन जाता है। फिर स्मरणशक्ति का ह्रास, आलस्य, मन मे विविध कल्पना आती रहना, मानसिक व्याकुलता, निस्तेजता, शारीरिक कृशता, अग्निमान्द्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इसमें याकूती के सेवन से अच्छा लाभ होता है। शुक्र का दीर्घकाल तक दुरूपयोग होने पर शुक्रक्षय हो जाता है, मुखमंडल श्याम, निस्तेज हो जाना, कोई भी कार्य करने का उत्साह न रहना, आलस्य, अग्निमान्द्य वीर्य अति पतला हो जाना, शरीर शुष्क हो जाना, क्रोधी और संयमी बन जाना आदि लक्षण उपसिथत होते हैं। इस अवस्था में ब्रह्मचर्य पालन करते हुए इस रसायन के सेवन से उक्त विकार नष्ट होकर शरीर सबल और तेजस्वी हो जाता है।

क्षय रोग, जीर्ण ज्वर, दुर्बलताजन्य कास, स्नायु दौर्बल्य,मस्तिष्क विकार, तीव्र वात विकार आदि में इस रसायन के उपयोग से अतीव श्रेष्ठ लाभ होता है। हमने स्वयं भी अनेक बार इन विकारों में इस रसायन से आश्चर्यजनक लाभ होते देखा है।

योगेन्द्र रस

रससिन्दूर २ तोला, स्वर्ण भस्म या वर्क, कान्तलौह भस्म, अभ्रक भस्म, मोती भस्म और बंग भस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर बसको एक दिन घृतकुमारी के रस में घोंटकर गोला बनावें, फिर एरण्ड के पत्तो मे लपेट, डोरा से बाँध धान के ढेर में ३ दिन तक दबाकर छोड़ दें। पश्चात् निकालकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें और सुखाकर सुरक्षित रख ले।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, मधु और अदरक-रस के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें। पित्त-विकार मे त्रिफला जल और मिश्री के साथ, हिस्टीरिया में मिश्री मिल जटामांसी के क्वाथ से, हृदय रोग में अर्जुन-छाल के क्वाथ और ताकत के लिये मक्खन, मलाई या दूध के साथ दें। वातरोगों में रसोन घृत और मिश्री में मिलाकर दें या एरण्डमूल रस और मधु से दें।

गुण और उपयोग- यह उन्माद, मूर्च्छा, हिस्टीरिया, वातज-पित्तज रोग, गृध्रसी, पक्षाघात, अर्दित, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, शरीरेन्द्रियों की दुर्बलता आदि के लिये बड़ी अच्छी दवा है। स्वर्ण, कान्त मोती, बंग, अभ्रक आदि उत्तम धातु भस्मों के योग से बना हुआ यह रसायन हृदय रोग, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और राजयक्ष्मा के लिये बहुत उपकारी है। यह बल, वीर्य, स्मृतिवर्द्धक तथा अनेक रोगनाशक है। बीमारी के बाद की कमजोरी और साधारण कमजोरी को दूर कर बल बढ़ाने के लिए इस रसायन का उपयोग अधिकतर किया जाता है।

इस रसायन का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों, मन, मस्तिष्क और रक्तवाहिनी नाड़ियों पर विशेष रूप से होता है। यह प्रकुपित वात को शान्त करता तथा मूत्रपिण्ड पर भी इसका प्रभाव होता है। पित्त-प्रकोप जन्य दाह, बेचैनी, अनिद्रा आदि को भी यह दूर करता है।

हृदय के रोगों मे भी इसके प्रयोग से बहुत सफलता मिलती है। यह रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट कर शरीर को बलवान बनाता है और वीर्यदोष, स्वप्नदोष, वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन आदि दोषों को दूर करता तथा पाचकपित्त को उत्तेजित कर पाचनक्रिया को सुधारता है।

वात-पित्त प्रधान पक्षाघात रोग के लिये यह सर्वोत्तम दवा है। यह रोग वातवाहिनी और रक्तवाहिनी शिराओं की विकृति से होता है। इस रोग की प्रकोपावस्था में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। रोग पुराना हो जाये या मध्यमावस्था में रहे तो इस रसायन के उपयोग से बहुत शीघ्र फायदा होता है।

सभी प्रकार के प्रमेह का उपचार न करने पर पुराने होकर मधुमेह के रूप मे परिणत हो जाते हैं। मधुमेह पुराना हो जाने पर धातुओं की निर्बलता होकर वायु का प्रकोप, गृध्रसी, पक्षाघात, दण्डापतानक, अपतानक, अन्तरायाम, वहिरायाम आदि कई कठिन वातरोग हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में इस रसायन को ३-४ महीने लगातार सेवन कराने से उत्पन्न लाभ होता है।

रक्तपित्तकुलकण्डन रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, प्रवाल भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, नाग भस्म, बंग भस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको चन्दन,कमल, मालती की कलियाँ, वासक के पत्ते, धनियाँ, गजपीपल, शतावर, सेमल की छाल, बड़-जटा इनके क्वाथ या स्वरस की एक-एक भावना देकर खरल में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया मे सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, शहद और वासक के रस या कूष्माण्डरस, दूर्वा रस अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन रक्तपित्त रोग के लिये बहुत गुणदायक है। रक्तपित्त के लिये इससे अच्छी दूसरी दवा नहीं है। नया-पुराना कैसा भी रक्तपित्त हो इसके सेवन से शीघ्र लाभ होता है। इसक अतिरिक्त रज:स्राव, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, खूनी बवासीर, प्रमेह, राजयक्ष्मा, श्वास, खाँसी आदि मे भी इसका अच्छा उपयोग होता है। धातु-क्षीणता, वीर्य का पतलापन, स्वप्नदोष, शुक्राल्पता आदि वीर्य विकारों में भी इसके उपयोग से बहुत उत्तम लाभ होता है।

यह रसायन सौम्यगुण प्रधान होने के कारण पित्तशामक और रक्तप्रसादक है। रक्तस्थित दूषित कीटाणूओं तथा यक्ष्मा के कीटाणूओं को भी नष्ट करता है और गर्भाशय को बल देता है। इसके सेवन से रसरक्तादि धातुओं की पुष्टि होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान तथा कान्तियुक्त हो जाता है।

रत्नगर्भपोट्टली रस

रससिन्दूर, हीरा भस्म (अभाव में वैक्रान्त भस्म), स्वर्ण भस्म, चाँदी भस्म, नाग भस्म, लौह भस्म, ताम्र भस्म, मोती भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल भस्म, शंख भस्म, शुद्ध तूतिया-प्रत्येक समान भाग लेकर, एकत्र मिलाकर, सात दिन तक चित्रक के क्वाथ में घोंटे फिर उसे छाया में सुखाकर बड़ी-बड़ी कौड़ियों में भर दें और सुहागे को आक के दूध में घोंटकर उससे उन कौड़ियों का मुँह बन्द कर दें, फिर उसे सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूँक दें। स्वांगशीतल होने पर सम्पुट से दवा निकालकर उसे (कौड़ी सहित) पीस लें। फिर उसमें सम्भालू और अदरक के रस की ७-७ तथा चित्रक-क्वाथ की २१ भावना देकर सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती सुबह-शाम पीपल, कालीमिर्च, घी तथा शहद से दें। खाँसी, क्षय और श्वास में चौंसठप्रहरी पीपल के साथ मधु मिला कर दें। अतिसार संग्रहणी में भुने हुए जीरे का चूर्ण और मधु से दें। वात-व्याधि में रास्नादि क्वाथ के साथ तथा अश्मरी और

में गोखरू क्वाथ के साथ दें। भगन्दर और कुष्ठ रोगों में खदिर का काढ़ा या मंजिष्ठादि क्वाथ मधु मिलाकर दें। बवासीर (अर्श) रोग में आँवले का रस या जमीकन्द के चूर्ण के साथ दें। धातुओं को पुष्ट करने के लिये च्यवनप्राश के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

गुण और उपयोग- हीरा, स्वर्ण, मोती, रजत आदि बहुमूल्य औषधियों द्वारा निर्मित यह क्षय (राजयक्ष्मा), खांसी, श्वास, संग्रहणी आदि भयंकर रोगों का नाशक है। यह और दीपन-पाचन तथा शक्तिवर्द्धक रसायन है। वातव्याधि, अश्मरी, कोढ़, प्रमेह, भगन्दर, बवासीर आदि महारोगों में इसका सेवन करना बहुत लाभदायक है। ज्वर, और सन्निपात रोगों में नाड़ी की गति क्षीण हो जाने पर यह अपना अद्भूत गुण दिखाता है। यह क्षीण रस-रक्त-बल-वीर्य आदि सप्त धातुओं का पोषण कर शरीर को सबल एवं बनाने में श्रेष्ठ है।

विशेष गुणधर्म- क्षय रोग की द्वितीय और तृतीय अवस्था में इस रस के प्रयोग से अच्छा होता है। मात्र प्रथमावस्था में (जिनको शुष्क कास हो उनको) यह रस लाभ नहीं करता। रस के प्रयोग से पूयप्रधान कफ का शोधन होने लगता है, और नवीन उत्पत्ति रूक जाती है फुफ्फुसों के क्षत शीघ्र भर जाते हैं। इस रस मे मिश्रित ताम्र और तृत्थ के कारण पूयशोधन का सरलता से हो जाता है। इस रसायन के उपादानों में हीरा या वैक्रान्त, रससिन्दूर, स्वर्ण आदि कीटाणुनाशक है। इस कारण ज्वर का तापमान १०२ डिग्री तक बढ़ जाये अथवा अधिक बढ़ तो कम होने लगता है। मुक्ता, प्रवाल, शंख आदि क्षतों की रोपण क्रिया में उत्तम सहायता करते हैं। नागभस्म रस रक्तादि सप्त धातुओं का पोषण करती है। इस हेतु से यह रत्नगर्भ पोट्टली वातकफ प्रकृति के रोगियों के लिये आशीर्वाद स्वरूप उत्तम गुणकारी है।

इस रस के साथ अभ्रक और श्रुंग भस्म मिलाकर देने से शीघ्र एवं और भी विशेष लाभ होता है। जिन रोगियों को खाँसी रात के समय अधिक कष्ट देती हो, उनको सितोपलादि चूर्ण और तथा मधु के साथ इस रस का प्रयोग करने से कष्ट निवारण होकर शान्ति मिल जाती है।

जिनके आमाशय और यकृत निर्बल हो गये हों, उनको उदर और आन्त्रिक पाचन क्रिया की विकृति हो जाती है, फिर आम विष रक्त में शोषित होता रहता है, और विविध प्रकार के रोग होते रहते हैं। इस मूल कारण को नष्ट करने में (रत्नगर्भ पोट्टली) के प्रयोग से अच्छी सफलता मिलती है। साथ ही रस-रक्तादि धातुओं में प्रविष्ट हुए विष को भी जलाता है। फलतः शक्ति के विकार से उत्पन्न हुए रोग अग्निमांद्य, अपचन, अरुचि, मलावरोध, अतिसार, अर्श, संग्रहणी और प्रमेहादि रोग तथा रक्त मे विष-प्रवेशजन्य रोग, क्षय,कुष्ठ, वातव्याधि आदि रोगों को नष्ट करता है।

यकृत के निर्बल हो जाने पर पित्त की उत्पत्ति कम होने लगती है, जिससे रक्त में आमदोषजन्य विष मिश्रण होने के बाद पित्त की रचना और भी बिगड़ जाती है। पित्त में जो अश्मरी उत्पादक पदार्थ है वह पृथक् होता रहता है और उससे वृक्क तथा मूत्राशय में शर्करा, सिकता और अश्मरी की रचना होने लगती है। कितनी ही सुकुमार स्त्रियों को किसी-किसी समय पित्ताशय में अश्मरी हो जाती है और यह अश्मरी बहुत कष्ट देती है, इसमें भयंकर शूल चलने के साथ ही वमन भी होता है और रूग्ण स्त्री बहुत व्याकुल और हताश हो जाती है। इस रोग के उत्पादक दोष इस रस के सेवन से नष्ट हो जाते हैं ओर रोग सरलता से नष्ट हो जाता है।

जिनके रक्त में आम विष की वृद्धि हो जाती है, उनकी वातनाड़ियों को दूषित रक्त के पोषण मिलने के कारण अनेक वातरोग जैसे कटिवात, हाथ-पैरों में शूल चलना, रसायन के प्रयोग से शीघ्र नष्ट हो जाता है। साथ ही इसमें मिश्रित स्वर्ण, रौप्य आदि द्रव्यों से वातनाड़ियों को पोषण मिलने लगता है। अत: समस्त वात रोगों में इस रसायन का सेवन अत्यन्त उपयोगी है। कुष्ठ आदि रोगों की उत्पत्ति कीटाणुओं द्वारा होती है, इस प्रकार की आधुनिक चिकित्सकों की मान्यता है। आयुर्वेद के मतानुसार वात-पित्त-कफ (त्रिदोष) निर्बल हो जाने से इस रोग की उत्पत्ति होती है। रत्नगर्भ पोट्टली रस से वात-पित्त-कफ त्रिदोष सबल हो जाते हैं, जिससे कीटाणुओं का नाश होकर रक्तादि धातुएँ शुद्ध और सबल हो जाती हैं अत: इससे गलितकुष्ठ, वातरक्त, अस्थिक्षय, कण्ठ-माला, क्षय आदि रोग नष्ट होते हैं।

सूचना- पित्त प्रधान प्रकृति वाले मनुष्यों को उष्णता अधिक रहती हो, प्यास अधिक लगती हो, पसीना अधिक आता हो, निद्रा कम आती हो तथा व्याकुलता रहती हो तो ऐसी दशा में इस रस का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

रत्नगिरि रस

शुद्ध पारा, स्वर्ण माक्षिक भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, चाँदी भस्म प्रत्येक २-२ तोला, शुद्ध गन्धक २४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर, सबको भाँगरे के रस में ३ दिन घोंटकर पर्पटी के समान बनावें (घृत लिप्त कलछी में मन्दाग्नि पर उक्त कज्जली को पिघलाकर गाय के गोबर पर बिछे हुए केले के पत्ते पर डाल दें, और उसके ऊपर दूसरा केला का पत्ता रखकर गोबर से दबा दें, जब शीतल हो जाय तो पर्पटी निकाल ले) फिर उसे बारीक पीस कर सुरक्षित रख लें।-र.यो.सा.द्वि.भाग, योग सं.४६

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती सुबह-शाम या ज्वर के अवस्थानुसार पीपल और धनियाँ के चूर्ण के साथ मधु में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन नये बुखार को उतारने में बड़ा अच्छा काम करता है। वात-पित्त और कफ दोष से उत्पन्न ज्वर इसके सेवन से छूट जाता है। बलकारक भस्मों में योग से बने होने के कारण यह रसायन बुखार से उत्पन्न हुई दुर्बलता को नष्ट कर रोगी को पूर्ण शक्ति प्रदान करता है।

जो ज्वर बराबर बना रहता हो, कफ प्रधान हो, पित्त भी अनुगामी हो, (इस तरह का ज्वर अधिकतर बच्चों को होता रहता है) इसके लिए यह रसायन बहुत उपयोगी है। इससे ज्वर की गर्मी कम हो जाती है तथा पित्त भी कम हो जाता है।

ज्वर उतारने के लिये पसीना लाना आवश्यक रहता है। यह काम इस रसायन द्वारा बहुत शीघ्र होता है। इस रसायन को धनियाँ के हिम (फांट) के साथ देने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

रत्नगिरि रस (साधारण)

शुद्ध मैनशिल, शुद्ध टंकण, शुद्ध हिंगुल, जायफल, लौंग-ये तीन द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् समस्त द्रव्यों को एकत्र मिला तुलसी-पत्र-स्वरस, अदरक-स्वरस और हुलहुल के स्वरस की पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना देकर मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रखें। र.त.सा.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में दो बार सुबह-शाम मधु या जल के साथ रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से वातज्वर, कफज्वर, मन्दाग्नि, आन्त्रिक ज्वर, वात-कफ (वातबलासक) भूयिष्ठ रोगों में अनुपान भेद से इसका प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है। विशेषत: विषमज्वर में इसके सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

यह औषध बड़े मनुष्यों एवं बच्चों को निरन्तर रहनेवाले ज्वर को उतारने की अमोघ एवं निर्भय औषध है। इस रसायन को धनियाँ और मिश्री के हिम के साथ देने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। एवं रक्त में रहे हुए विष को जलाकर पसीने के साथ बाहर निकाल देता है तथा कोष्ठ में संचित आम-विष का पाचन कर ज्वर को समूल नष्ट कर देता है।

निर्बल हृदयवालों के लिये इस रसायन का सेवन विशेष उपयोगी है, क्योंकि निर्बल हृदयवालों को बच्छनाग प्रधान औषध देने से लाभ की अपेक्षा हानि की विशेष सम्भावना रहती है और मियादी ज्वर में भी जब बच्छनाग प्रधान औषधि से हानि की सम्भावना हो, इस दशा में इस रस का प्रयोग अपूर्व लाभकारी है।

इसके अतिरिक्त समस्त वातरोग, उदर वात, गुल्म और अतिसार पर भी इस रसायन का अच्छा प्रभाव होता है तथा दुर्जल (अस्वच्छ जल) पीने से होनेवाला ज्वर और प्रसूत ज्वर में भी इसका प्रयोग अत्यन्त लाभकारी है।

रसकपूर

शुद्ध पारद, गेरू मिट्टी, ईंट का चूर्ण, खड़िया मिट्टी, फिटकरी, सेन्धा नमक, वल्मीक मृत्तिका (वामी की मिट्टी), खारा नमक और बर्तन रंगनेवाली लाल मिट्टी-ये सब समान भाग लेकर पारे के अतिरिक्त अन्य समस्त औषधियों को कूट-कपड़छन चूर्ण बना लें। फिर उस चूर्ण में पारद मिलाकर एक प्रहर तक खरल करें, अब इस चूर्ण को कपड़मिट्टी की हुई एक हाँडी में भर कर उसी के बराबर की दूसरी हाँडी उलट करके ढँक दें और दोनों के जोड़ को कपड़मिट्टी से बन्द कर दें। एक कपड़मिट्टी सूख जाने पर दूसरी बार फिर कपड़मिट्टी करें। इस प्रकार तीन बार कपड़मिट्टी लगाकर जोड़ से अच्छी तरह बन्द करें। तदनन्तर इसे सुखाकर यंत्र को चूल्हे पर चढ़ा दें और निरन्तर चार दिन तक पकावें। पश्चात् आँच बन्द कर के चौबीस घण्टे तक यंत्र को अंगार पर ही रहने दें। तत्पश्चात् हाँडी के स्वांग-शीतल होने पर जोड़ को सावधानीपूर्वक खोलकर ऊपर की हाँडी मे लगे हुए कपूर के सदृश रस को निकाल लें।

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती कैप्सूल में रखकर निगल जायें।

गुण और उपयोग- इसे लौंग, सफेद चन्दन, कस्तूरी और केसर के चूर्ण के साथ खाने से उपद्रवयुक्त फिरंग रोग (उपदंश) नष्ट होता है तथा अग्नि, बल, वीर्य और कामशक्ति की वृद्धि होती है। (रस कपूर का सेवन किसी सुयोग्य वैद्य की देख-रेख में करना चाहिए।)नाड़ी व्रण (नासूर),भगन्दर, न भरनेवालो घाव (दुष्टव्रण) इसके प्रयोग से ठीक हो जाते हैं। इसके सेवन-काल में नमक, मिर्च, तैल, गुड़, खटाई आदि चीजों से सख्त परहेज रखना आवश्यक है।

रसपीपरी (जावित्री-युक्त)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, मिर्च, पीपल, काकड़ासिंगी, अतीस, नागरमोथा, मोचरस, जायफल, जावित्री, सुहाग की खील, छोटी पीपल प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना शेष काष्ठौषधियों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर पारे के अष्टमांश जावित्री मिला, जल संयोग से मूँग के बराबर गोलियाँ बना लें अथवा महीन पीसकर कपड़छन कर रख लें। - आ.प्र.

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती चार-चार घण्टे बाद अदरक के रस और मधु से दें। पतले दस्त होने पर जायफल को पानी में घिसकर उसके साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह औषध बच्चों के लिये अमृततुल्य गुणकारी है। अनुपान भेद से इससे बच्चों के अनेक रोग ठीक होते हैं। सर्दी, जुकाम, कफ, खाँसी, बुखार, कमजोरी, वमन, पतली टट्टी आदि बाल रोगों में यह दवा अच्छा काम करती है। माता की तरह बच्चों की रक्षा करती है।

इस दवा का उपयोग बिहार प्रान्त के घर-घर में बच्चों की बीमारियों में किया जाता है। वहाँ की साधारण जनता भी इस दवा से इतनी परिचित है कि बच्चों को किसी भी तरह की बीमारी होने पर इसे निर्भयतापूर्वक दिया करती है और इससे फायदा भी अच्छा होता है।

रसपीपरी (साधारण)- उपरोक्त रसपीपरी के योग मे कस्तूरी न मिलाकर बनाने से वह रसपीपरी (साधारण) बन जाती है, सर्वसाधारण लोग जो कीमती दवा नहीं ले सकते हैं, उनके लिये यह उत्तम दवा है। इसमें उपरोक्त से कुछ ही न्यून गुण है। मात्रा, अनुपान, सेवन-विधि, गुण-धर्म प्राय: समान ही है।

रसराज रस

रससिन्दूर ४ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, सुवर्ण भस्म, मोती पिष्टी, प्रवाल भस्म या पिष्टी ६-६ माशे, लौह भस्म, रौप्य भस्म, बंग भस्म, असगन्ध, लौंग, जावित्री, जायफल, काकोली- प्रत्येक ३-३ माशे लें। प्रथम रससिन्दूर को खूब महीन पीस कर उसमें अन्य भस्में तथा वनस्पतियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिलाकर, एक दिन ग्वारपाठे और मकोय के रस में मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु से चटा कर ऊपर से गाय का गरम दूध पिलावें।

गुण और उपयोग- यह शक्तिदायक और त्रिदोषनाशक है। वात रोगों में विशेषतया पक्षाघात, अर्दित, अपतन्त्रक, आक्षेपक, कान में आवाज होना, अन्तरायाम, बहिरायाम, अपतानक, दण्डापतानक, सिर में चक्कर आना, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, धनुर्वात आदि कठिन से कठिन वात रोगों में यह रामबाण की तरह अचूक काम करता है। रक्त प्रसादक गुण के कारण यह ब्लडप्रेशर में भी अच्छा काम करता है। हृदय तथा मस्तिष्क के सभी विकारों तथा स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रिय के रोगों में और फुफ्फुस की खराबी में भी इस रसायन से लाभ होता है। प्रमेह, नपुंसकता और गुर्दे की कमजोरी को दूर करके यह नयी शक्ति पैदा कर देता है। अधिक विषय-भोग के कारण पैदा हुए सभी विकारों में इसका प्रयोग करना चाहिए। हृदय को बलवान बनाकर बल-वृद्धि और कान्ति बढ़ाने के लिये यह अच्छी दवा है।

पक्षाघात, अर्दित आदि वात रोगों में इस रसायन का विशेष उपयोग होता है। इन रोगों में वातवाहिनी नाड़ियों का विकृति होने से रक्त का संचार अच्छी तरह नहीं होता। यह विकृति यदि सम्पूर्ण शरीर की नसों में व्याप्त हो जाती है, तो सर्वांग वात, यदि शरीर के किसी भाग की नसें विकृत हो गई तो विकृत भाग क्रमश: शक्तिहीन व बेकार होने लगता है। यह विकार शरीर के किसी भी अंग में उत्पन्न हो सकता है। इस रोग में रसराज के प्रयोग से वातवाहिनी नाड़ियों के विकार का शमन हो जाता है तथा रक्त का भी अच्छी तरह संचार होने लगता है।

वीर्य विकार- शरीर में वीर्य की कमी, वीर्य अधिक पतला हो जाना और वीर्यवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी से वीर्य का शीघ्र पतन हो जाना, स्वप्नदोष हो जाना, अथवा लड़कपन में अप्राकृतिक ढंग (हस्तमैथुनादि) से शुक्र का नाश हो जाने से नपुंसकता हो गई हो तो रसराज का प्रयोग मक्खन, मलाई, मिश्री या दूध के साथ करने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। यह

शुक्रवर्द्धक होने के कारण वीर्य बढ़ाकर शरीर को पुष्ट व वीर्य को गाढ़ा करता है। इसका प्रभाव वीर्यवाहिनी शिरा पर भी पड़ता है। अतएव उसकी कमजोरी दूर कर शुक्रधारण करने की शक्ति उत्पन्न करता है।

मूत्रपिण्ड या वृक्क पर भी इसका प्रभाव होता है। वृद्धावस्था में शारीरिक अवयवों में शिथिलता आ जाने से बार-बार पेशाब होने लगता है। युवा मनुष्यों को भी रस-रक्तादि धातुओं की कमी की वजह से शरीर कमजोर होने पर उक्त शिकायत हो जाती है। इस विकार को दूर करने के लिये रसराज रस का उपयोग किया जाता है। यह पाचन-क्रिया को सुधारकर अग्नि प्रदीप्त करता है, जिससे अन्नादिकों का पाचन ठीक से होने लगता है, फिर रसरक्तादि धातु भी अच्छी तरह बनने लगती और धीरे-धीरे रोगी भी पुष्ट हो जाता है। इसी तरह वृद्धि के लिये भी यह शरीर में शक्ति पैदा कर मूत्रपिण्ड की शिथिलता दूर कर देता है और फिर पेशाब उचित परिमाण में होने लगती है।

रक्तचाप (ब्लडप्रेशर)- आजकल यह रोग बहुत देखने में आता है। इस रोग के रोगी की आँखें तथा मुँह लाल बने रहते हैं। जब यह रोग तीव्रावस्था में पहुँचाता है, तब रक्त का प्रवाह ऊपर की तरफ चलता है। उस समय रोगी का चेहरा तमतमाया हुआ सा अर्थात् मुखमण्डल लाल और कपाल में लाल-लाल नसें तनी रहती हैं। आँखें सूर्ख हो जाती है, सिर में चक्कर आने लगता है, रोगी का टेम्प्रेचर बढ़ जाता है, प्यास ज्यादा लगने लगती है, ठण्डा पानी पीने से कुछ देर के लिए शान्ति मिल जाती है, परन्तु फिर पूर्ववत् ही हो जाता है। इस तूफानी दौरे को कम करने के लिए इसका प्रयोग मोती पिष्टी के साथ करना बहुत उपयोगी है।

रसमाणिक्य रस

शुद्ध वंशपत्री (तबकी) हरताल को चूर्ण कर श्वेत अभ्रक-पत्रों पर बिछाकर उस पर दूसरे श्वेत अभ्रक पत्रों को रखकर बेर के पत्तों के कल्क से या मुलतानी मिट्टी और कपड़े से उसकी सन्धि बन्द कर दें, पश्चात् जब तक अभ्रक पत्रों का रंग गहरे लाल वर्ण का न हो जाय, तब तक बेर के कोयलों की तीव्र अग्नि पर पकायें, फिर नीचे उतार कर स्वांग शीतल होने पर उसमें से माणिक्य के टुकड़ों के सदृश रस को निकाल कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- आधी से १ रत्ती तक विषम भाग शहद और गो-घृत या मक्खन-मिश्री के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रस का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ रोग, वातरक्त, विसर्प, विपादिका(बिवाई)विचर्चिका तथा अनेक प्रकार के त्वचा रोग, भगन्दर, नाड़ी व्रण (नासूर), नासा रोग,मुख रोग,विस्फोटक आदि रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त उपदंश, दुष्ट व्रण, कास, श्वास,हृदयावरोध,वातश्लेष्मज्वर, विषमज्वर, सन्निपात ज्वर विशेष पुण्डरीक कुष्ठ, चर्मदल कुष्ठ और मण्डल कुष्ठ तथा आमवात रोग नष्ट करता है। यह श्वेत कुष्ठ में भी उत्कृष्ट लाभ करता है।

रसादि रस (चूर्ण)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कपूर, श्वेत चन्दन(नेत्रबाला), जटामांसी, नेत्रवला (खस), नागरमोथा, खस, छोटी इलायची, दरियाई नारियल-प्रत्येक द्रव्य एक-एक भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला, गुलाब या चन्दनादि अर्क में दो-तीन दिन तक दृढ़ मर्दन करें, गोली बनाने के योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना, छाया में सुखाकर रखें या बिना गोली बनायें इसे छाया में सुखाकर, चूर्ण करके सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.द्वि.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में तीन बार मुँह में रखकर चूसें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सौम्यवीर्य,पित्तशामक तथा दाहनाशक है। कभी-कभी बुखार का टेम्प्रेचर (गर्मी) इतनी बढ़ जाती है कि रोगी प्यास और दाह से बैचेन हो जाता है। सिर व आँखों में जलन, आँखें सुर्ख (लाल) हो जाना, मुँह पर लालिमा, बार-बार करवट बदलना, पानी पीने के लिये बहुत शोर करना, दाह के कारण जमीन पर लेटने का प्रयत्न करना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी हालत में इस रसायन के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह रसायान बढ़े हुए पित्त का शमन करता हैं तथा सौम्य गुण होने से तृषा (प्यास) को शान्त करता है। इस दवा के साथ-साथ बकरी के दूध की पट्टी पेट और कपाल पर करीब १५-२० मिनट तक देते रहने से बहुत शीघ्र ही उपरोक्त उपद्रव कम हो जाते तथा बुखार की गर्मी कम हो रोगी शान्तिपूर्वक सो जाता है।

राजमृगांक रस

रससिन्दूर ३ तोला, स्वर्ण भस्म १ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध हरिताल, शुद्ध गन्धक प्रत्येक २-२ तोला लेकर सबको एकत्र मिलाकर दृढ मर्दन करें, पश्चात् इस चूर्ण को शुद्ध कौड़ियों में भर दें और बकरी के दूध में घोंटे हुए टंकण (सुहागा) से कौड़ियों का मुख बन्द करके धूप में सुखा करके सराब-सम्पुट में रख, सन्धि बन्द कर गजपुट में फूँक दें, स्वांग-शीतल होने पर निकाल कर कौड़ियों सहित दवा को सूक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती सुबह-शाम समान भाग मिश्रित काली मिर्च और पीपल के २ रत्ती चूर्ण के साथ विषम भाग गोघृत और शहद के साथ मिलाकर दें अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ या सितोपलादि चूर्ण के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से समस्त प्रकार के राजयक्ष्मा रोग नष्ट होते हैं। विशेषत: राजयक्ष्मा की प्रथम और द्वितीयावस्था में इस रसायन के सेवन से अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकार के जीर्णज्वर, जीर्ण कास, श्वास, मन्दाग्नि, अजीर्ण, रक्तपित्त इन रोगों को नष्ट करता है और क्षयोत्पादक कीटाणुओं को नष्ट कर रक्ताणुओं की वृद्धि करता है। दिल और दिमाग को ताकत देकर मानसिक अशान्ति को दूर करता है तथा फुफ्फुसीय व्रणों का रोपण कर उनको निर्दोष एवं बलशाली बनाता हैं।

रामबाण रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, लौंग का चूर्ण-प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च का चूर्ण २ तोला, जायफल का चूर्ण ६ माशे लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सबको तिन्तड़ीक के क्वाथ या रस में घोंट कर मूँग के बराबर (एक-एक रत्ती) की गोलियाँ बना लें।-भै.र.

वक्तव्य- तिन्तड़ीक से कुछ लोग इमली लेते है। किन्तु वास्तव में तिन्तड़ीक डॉसरिया है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम। ज्वर में मधु के साथ, आमविकार में उष्ण जल या छाछ के सथ, कास श्वास में अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन पाचक, अग्निदीपक और ग्राही है। मूत्र और पसीने के साथ अन्दरूनी विकार निकालता है। आमवात, अतिसार, संग्रहणी कास-श्वास और ज्वर में इससे अच्छा लाभ होता है।

पाचक पित्त की विकृति के कारण मन्दाग्नि हो जाने पर अन्नादि का पाचन ठीक-ठीक न होने से आम संचित होने लगता है। पेट में दर्द, दस्त में कब्जियत, पेट भारी रहना, जी मिचलाना आदि लक्षणों में इस रसायन के सेवन से बहुत लाभ होता है।

लघ्वानन्द रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, शुद्ध विष, अभ्रक भस्म-प्रत्येक १-१ तोला काली मिर्च चूर्ण ८ तोला, शुद्ध सुहागा ४ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर अन्य द्रव्य मिला, मर्दन कर, भाँगरा तथा अम्लवेत के रस से पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर, एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम पान में खाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह रसायन पाण्डु रोग, अरुचि, वात रोग, भ्रम, मन्दाग्नि, ग्रहणी तथा वात-कफ ज्वरों का नाश करता है।

लवंगाभ्रक रस

लौंग, अतीस, नागरमोथा पाठा (पाढ़), बेलगिरि, धनियाँ, धाय के फूल, मोचरस, जीरा, लोध्र, इन्द्रजौ, खस, राल, काकड़ासिंगी, सेन्धा नमक, सोंठ, पीपल खरैंटी मूल छाल, यवक्षार, शुद्ध अफीम, रसौत-प्रत्येक १-१ भाग, अभ्रक भस्म ५ भाग लौंग सब द्रव्यों के बराबर अर्थात् २६ भाग लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् उसमें यवक्षार, अफीम, अभ्रक भस्म आदि द्रव्य मिलाकर नागरमोथा के क्वाथ की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.द्वि.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली दिन में ३-४ बार जल के साथ रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के अतिसार रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त चिरकालिक ग्रहणी रोग, अग्निमांद्य, प्रवाहिका और अम्लपित्त रोग को नष्ट करता है। यह रसायन उत्तम ग्राही, दीपक, पाचक और स्तम्भक है तथा शोथयुक्त ग्रहणी रोग, पाण्डु, कामला इनको भी नष्ट करता है। आमातिसार और प्रवाहिका में धान्यपंचक क्वाथ के साथ देने से तथा पक्वातिसार में जायफल घिसकर पानी में मिला उसके साथ देने से उत्तम लाभ होता है। ग्रहणी रोग में भुवनेश्वर रस और शंख भस्म के साथ उपयोग करने से श्रेष्ठ उपकार होता है, अम्लपित्त में दाड़िमावलेह या आँवले के मुरब्बा के साथ देना उपयोगी है।

लघुमालिनीवसन्त

खर्पर भस्म (अभाव में यशद भस्म)५ तोला, सफेद मिर्च का चूर्ण २।। तोला, शुद्ध हिंगुल ५ तोला लेकर सबको एकत्र मिला गो-दुग्ध से निकाले हुए १। तोला मक्खन के साथ खरल में डालकर मर्दन करें, फिर १०० नींबू का रस निकालें ओर उसे फिल्टर पेपर से छान कर थोड़ा-थोड़ा मिलाकर घुटाई करें। लगभग ५-७ दिन में मक्खन का चिकनापन नष्ट होने पर २-२ रत्ती की गोली या वर्ति बना, छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली तक पीपल चूर्ण और शहद के साथ या दूध से अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से जीर्ण ज्वर,धातुगत ज्वर, विषमज्वर, अतिसार, क्षय, अर्श, ताप, मन्दाग्नि, शूल, वात विकार, प्रदर, रक्तार्श, रक्तप्रदर और नेत्र रोग नष्ट होते हैं। स्वर्णमालिनी वसन्त से इसमें कुछ न्यून गुण है, क्योंकि दोनों योगों में खर्पर मुख्य द्रव्य है। रसवाहिनी और रसोत्पादक पिण्ड में विकृति होने पर यह रसायन अमृततुल्य लाभ करता है।

जीर्णज्वर में दोष रस-रक्त, मांस मेदा आदि किसी भी धातु मे प्रवेश करता है, उस दशा में शुक्रगत ज्वर को छोड़ कर अन्य धातुओं में रहे हुए ज्वर को नष्ट करने में इस रसायन के सेवन से अपूर्व उपकार होता है। कभी-कभी जीर्ण ज्वर में प्लीहा-वृद्धि, रस-धातुगत ज्वर, मन्दाग्नि, हस्त-पाद में सूक्ष्म उष्णता आदि लक्षण होने पर इस रसायन के सेवन से अच्छा लाभ होता है। जीर्ण शीतपूर्वक ज्वर जब क्विनाईन के प्रयोग से भी नहीं जाता है, तब इस रसायन के सेवन से रक्तकणों की शुद्धि और उचित वृद्धि होकर ज्वर का शमन हो जाता है।

लक्ष्मीनारायण रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, कुटकी, अतीस, पीपल इन्द्रजौ, अभ्रक भस्म, सेन्धा नमक प्रत्येक समभाग लेकर सबको एकत्र खरल करके दन्तीमूल और त्रिफला के रस में पृथक्-पृथक् ३-३ दिन तक घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम अदकर रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से वात-पित्त और कफात्मक ज्वर, हैजा, विषम ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, रक्तातिसार, आम-शूल, सूतिका रोग और वात-व्याधि का नाश होता है।

यह रसायन पसीना लाकर ज्वर को उतारता है तथा रक्तादि धातुओं में से दूषित कीटाणुओं को निकाल देता है। अधिक दिनों तक ज्वर रहने पर दोष धातु (रस-रक्तादि) में लीन होकर धातुगत ज्वर उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्था में लक्ष्मी नारायण रस के उपयोग से रसादि धातुगत ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

इसका प्रभाव वातानुबन्धी अर्थात् वात-विकार के उत्पन्न हुए ज्वरों पर भी पड़ता है। जैसे पक्षाघात, अपतन्त्रक-अर्दित आदि रोगों में होनेवाले ज्वर को भी यह शीघ्र दूर करता है।

बच्चों का धनुष्टंकार रोग- इसमें रह-रह कर वायु के आक्षेप (झटके) आते रहते हैं। झटके आने पर बच्चा बेहोश हो जाता, मुट्ठी बन्ध जाती श्वास रूक जाती तथा शरीर की नसें कभी ढीली और कभी कड़ी हो जाती हैं। यह रोग बच्चों के लिए बहुत खतरनाक है। ज्वर का टेम्प्रेचर (गर्मी)१०४ से १०५ तक होते देखा गया है। सौ में ७५ बच्चों की मृत्यु इस रोग से हो जाती है। ऐसे भयंकर रोग के लिए यह रसायन बहुत उपयोगी है। इस दवा से प्रकुपित वात की शान्ति होकर रक्त-संचार ठीक से होने लगता है और धीरे-धीरे वात के झटके भी कम होने लगते हैं। झटके की अवधि १२-२४ घण्टे तक हैं। झटके कम होन पर २-४ रोज में बुखार भी कम हो जाता है।

स्त्रियों को बच्चा पैदा होने के बाद ठण्डी हवा लग जाने से वात प्रकुपित होकर ज्वर हो जाता है। यदि शीघ्र ही इसका प्रतिकार नहीं किया गया, तो सिर में दर्द, अधिक प्यास, सम्पूर्ण शरीर में दर्द, ज्वर की गर्मी बहुत बढ़ी हुई तथा कभी-कभी कमजोरी से भयंकर बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित हो हाते हैं। ऐसी स्थिति में इस रसायन के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इस रसायन के सेवनकाल में दशमूल क्वाथ या दशमूल-अर्क अथवा दशमूलारिष्ट भोजनोत्तर पीने को अवश्य दें। शरीर में दशमूल तैल या नारायण तैल की मालिश करावें। इससे प्रकुपित वात शान्त हो जाता तथा शरीर में नवीन रक्त की वृद्धि होती है।

पाचन क्रिया में गड़बड़ी होने के कारण आँखें खराब हो जाती है, जिससे ज्वर, अतिसार, आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। आँतों की विकृति से उत्पन्न ज्वर में लक्ष्मीनारायण रस के प्रयोग

से बहुत शीघ्र फायदा होता है। यदि उपेक्षा की गयी तो यही ज्वर आन्त्रिक-सन्निपात या अतिसार में परिणत हो जाता है, जिससे रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। अतिसार होने पर रोगी की शक्ति बहुत जल्दी क्षीण होने लगती है। दस्त बहुत पतला और दुर्गन्धयुक्त होता है। दस्त एक बार में साफ न होकर बार-बार होता है। ऐसी हालत में लक्ष्मीनारायण रस का उपयोग से लाभ होता है, क्योंकि इसका प्रभाव विशेषत: अन्त्र, यकृत तथा ग्रहणी पर होता है। -औ.गु.ध.शा.

लक्ष्मीविलास रस (नारदीय)

अभ्रक भस्म ४ तोला, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा २-२ तोला, कपूर, जावित्री, जायफल, विधारे के बीज, शुद्ध धतूरे के बीज, भाँग के बीज, विदारीकन्द, शतावर, नागबला-छाल (गंगरेन), अतिबला (कंघी), गोखरू, हिज्जल (समुद्रशोष) बीज-प्रत्येक एक-एक तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिला कर बसको पान के रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम अदरक रस और मिश्री के साथ देने से जीर्ण ज्वर और भयंकर वातज रोग नष्ट होते हैं। विषमज्वर में पीपल चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य और प्रत्याख्येय चारों प्रकार सन्निपातजनित उपद्रवों को शीघ्र नष्ट करता है। इस रसायन के प्रयोग में यह नियम नहीं है कि वात प्रधान या पित्त प्रधान अथवा कफ दोषोत्थ रोगों को ही नष्ट करें बल्कि किसी भी दोष से उत्पन्न सभी प्रकार के रोगों को यह रसायन शीघ्र नष्ट करता है और समदर्शीवाली युक्ति इस रसायन के सेवन से समूल चरितार्थ होती है। अठारह प्रकार के कुष्ठ बीस प्रकार के प्रमेह-नाड़ी, व्रण (नासूर), दुष्ट व्रण, गुदा रोग (अर्श), भगन्दर, रक्त-मांसाश्रित कफ-वात प्रधान श्लीपद(फीलपाँव) मेदगत, धातुगत, जीर्ण अथवा वंशानुगत गलशोथ, अन्त्रवृद्धि, दारुण अतिसार समस्त प्रकार का कठिन आम-वात रोग, जिव्हा-स्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्ण रोग, नासा रोग, अक्षी रोग, मुख रोग पाँचों प्रकार का कास रोग, राजयक्ष्मा, स्थूलता, (मेदवृद्धि रोग) पसीने में दुर्गंध आना, सर्वशूल, कुक्षिशूल, शिर:शूल, प्रसूता स्त्रियों का मक्कल शूल तथा अन्यान्य प्रसूत रोगों को नष्ट करता है और पुरुषों के ध्वजभंग आदि रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन से वृद्ध पुरुष भी तरुणों जैसी शक्ति और स्फुर्ति सम्पन्न हो जाता है। इस रसायन का सेवन करने वालों को इन्द्रिय शिथिलता और श्वेत केश (केशों का पकना) आदि विकार नहीं होते। काम-शक्ति और नेत्रज्योति (दृष्टि) की अपूर्व वृद्धि होती है।

यह रसायन आयुर्वेद-शास्त्र की अत्यन्त उत्कृष्ट और वीर्यवान औषधि है। यह उत्तम हृदयोत्तेजक (हृदय के लिए बलशाली) है। इस औषधि के प्रयोग से तीव्र से तीव्र हृदय विकार में शान्ति पूर्वक उत्तेजना और रक्तवाहिनी की विस्फारिता एवं जीर्ण हृदय विकार में हृद्यगुणकारी है। इसके हृद्यगुण के कारण हृदय को शान्ति एवं शक्ति मिलती है। इस औषधि का परिणाम पुरीतती, हृदयावरण, वाम और सव्य पार्श्व पटल (बाईं और दाईं ओर से आच्छादित करने वाले कपाट) और हृदय को अलिन्दनिलय इन विभागों पर उत्तम प्रकार से होता है।

जिस प्रकार ब्राण्डी आदि औषधियों के सेवन से हृदयोत्तजना पश्चात् बलात् अवसादकता की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार इस औषधि के सेवन से अवसादकता की प्राप्ति नहीं होती । इस औषधि के प्रयोग से नाड़ी की गति सुधारने के पश्चात् दीर्घ काल तक वैसी ही बनी रहती है।

श्वसन और श्लैष्मिक सन्निपात में हृदय की निर्बलता सम्बन्धी संशय होने पर इसके प्रयोग से लाभ होता है। इन रोगों में आगे भी आवश्यकता के अनुसार इस रस के सेवन से कास, श्वास, ज्वराधिक्य, फुफ्फुस प्रदाह, नाड़ी, और हृदय का वेग अधिक बढ़ना ये लक्षण शीघ्र नष्ट होते हैं और फुफ्फुस शोथ को कम करके श्वास तथा कास का वेग शमन करता है। सन्निपात की तृतीयावस्था में कफ प्रकोप से गले में घर-घर शब्द होना, तन्द्रा, बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित होने की दशा में इस रस का प्रयोग न करके मल्ल सिन्दूर, पंचसूत या समीर पन्नग रस देना विशेष उपयोगी है। आन्त्रिक सन्निपात में कभी-कभी भूल से या प्रमादवश ज्वर की अवधि बढ़ जाती है। ऐसी दशा में रोगी की स्थिति भयंकर करुणाजनक हो जाती है। मन पर किंचित् विरोधी विचार आने के साथ मन भी अवस्थ हो जाता है एवं ज्वरस्थ-विष से संघर्ष करते-करते जीवनीय शक्ति भी क्षीण हो जाती है। परिणामतः मस्तिष्क विविध पीड़ाओ से ग्रस्त हो जाता है, ऐसी दशा में इस रसायन के सेवन से आशाप्रद लाभ हो कर शीघ्र ही जीवनदान मिलता है, ऐसी दशा में इस आन्त्रिक सन्निपात के अन्त में हृदय-क्षीणता, नाड़ी-मांद्य, मुखमण्डल निस्तेज होना, भ्रम, मन्द-मन्द मनोमय प्रलाप आदि लक्षणों में इसके प्रयोग से अच्छा उपकार होता है।

लक्ष्मीविलास रस (रसेन्द्र-कास)

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध हरिताल ४ तोला, खर्पर भस्म २ तोला, बंग भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, कान्त लौह भस्म, कांस्य भस्म, शुद्ध गन्धक-ये प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् सब द्रव्यों को एकत्र मिला, काले भाँगरे के रस के साथ तीन दिन तक मर्दन करें, फिर कुलथी के क्वाथ या स्वरस के साथ तीन भावना देकर मर्दन करें। शुष्क हो जाने पर इसमे छोटी इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, जीरा सफेद, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, तगर, दालचिनी, वंशलोचन-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करके मिला दें और सबको भाँगरा-स्वरस और कुलथी-क्वाथ की भावना देकर मर्दन करें। गोली बनाने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रखें।-र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में २-३ बार पान के रस और मधु से या अदरक रस और मधु से या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कास रोग नष्ट होते हैं। इस रस के सेवन काल में मछली मांस, दूध तथा स्निग्ध भोजन पथ्य है। इसके अतिरिक्त यह रसायन क्षय रोग, श्वास रोग ज्वरसहित या ज्वररहित, हलीमक, पाण्डुरोग, शोथ, शूलरोग, प्रमेह और बवासीर को नष्ट करता है। मन्दाग्नि को नष्ट कर शरीर में बल की वृद्धि करता है। इस रसायन के सेवन-काल में शोक, अम्लपदार्थ, भुने हुए द्रव्य तथा आग तापना या धूप में बैठना वर्जित है।

लीलाविलास रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनायें, फिर उसमें अन्य भस्में मिला, सबको आँवले और बहेड़ के रस या क्वाथ मे तीन दिन तक घोंट कर एक दिन भाँगरे के रस की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शहद, दाड़िमावलेह, कुष्माण्डावलेह या स्वरस और दूवा-स्वरस या फटे हुए दूध के पानी के साथ अथवा आँवले के रस या च्यवनप्राश के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन पित्त की तीव्रता और अम्लता को कम कर अम्पपित्त को शान्त करता है। तृष्णा (प्यास), वमन, हृदय-दाह, कृमि, पाण्डु, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र और नेत्र-दाह के लिये उत्तम है। गुण-धर्म के हिसाब से यह रस उदर और यकृत की क्रिया को ठीक कर पाचक रस को बढ़ाता है और शरीर में बल वृद्धि भी करता है।

लोकनाथ रस

शुद्ध बुभुक्षित पारा २ तोला तथा शुद्ध गन्धक २ तोला लेकर कज्जली बनावें। फिर इसको ८ तोला कौड़ी लेकर उसमें भर दें। बाद में १ तोला सुहागा को गाय के दूध में पीस कर उससे कौड़ियों का मुख बन्द कर दें, फिर भीतर की तरफ चूना पुते हुए सराब में ८ तोला शंख के छोटे-छोटे टुकड़े और ये कौड़ियाँ भर कर उस पर उसी प्रकार का दूसरा सराब रखकर दोनों की सन्धि बन्द कर दें और कपड़मिट्टी करके सुखा लें। फिर इसे गजपुट में रखकर फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर सम्पुट से औषधि को निकाल, कौड़ियों को शंख समेत पीस कर रख लें।

नोट- कई लोग कौड़ियों की जगह कपर्दक भस्म और शंख के टुकड़े की जगह शंख भस्म मिला दूध से टिकिया बना, सुखा कर सराब-सम्पुट में रखकर लघुपुट दे कर पीस कर रखते हैं। इस प्रकार बनाने से भी उत्तम बनता है।

मात्रा और अनुपान- ४ से ६ रत्ती सुबह-शाम। वात रोग में काली मिर्च का चूर्ण और घृत के साथ, पित्त रोग में मक्खन के साथ और कफ रोग मे मधु के साथ देना चाहिए। धनियाँ का छिलका दूर करके भून लें। फिर इसे पीसकर चूर्ण बना मिश्री मिला २ माशा चूर्ण में लोकनाथ रस ६ रत्ती मिलाकर पानी के साथ लेने से अरुचि नष्ट होती है। धनियां और गिलोय (गूर्च) के क्वाथ के साथ लोकनाथ रस २ रत्ती मधु के साथ देने से ज्वर नष्ट होता है या मधु-पिप्पली के साथ दें। रक्त पित्त, कफ, कास, श्वास- इन रोगों के लिए अडुसा और सुगन्धवाला में मधु तथा मिश्री मिलाकर लोकनाथ रस २ रत्ती की मात्रा में मधु से चाटकर उक्त क्वाथ पीने से अच्छा लाभ होता है। निद्रा नहीं आती हो और अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि आदि रोग हो तो लोकनाथ रस ६ रत्ती, अग्नि पर भुनी हुई भाँग आधी रत्ती दोनों को मधु में मिला कर चटावें। शूल और अजीर्ण रोग नाश करने के लिये काला नमक, छोटी हरड़ और पीपल का महीन चूर्ण २ माशे, लोकनाथ रस ६ रत्ती गरम जल के साथ दें। प्लीहा, वमन, अर्श और रक्तपित्त के लिये लोकनाथ रस ६ रत्ती अनार के रस या अनार शर्बत के साथ देने से लाभ होता है। नकसीर के लिये दूर्वा-रस में मृगश्रुंग को घिस कर इसके साथ लोकनाथ रस देना चाहिए। वमन और हिचकी रोग के लिये मोरपंख की भस्म, बेर की मींगी, मिश्री और मधु के साथ लोकनाथ रस ६ रत्ती की मात्रा में मिला कर दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन अतिसार, संग्रहणी, अरूचि, मन्दाग्नि, गुल्म, यकृत, प्लीहा-विकार एवं कास-श्वास में लाभदायक है। कफ -प्रधान रोगों में कफ-शोषण या कफ निकालने के लिये इस रसायन का विशेष उपयोग किया जाता है।

पुराने कफातिसार में- मन्दाग्नि, भूख न लगना, दस्त सफेद और पतला कई बार होना, चेहरा फीका होता जाना, शरीर कान्तिहीन दिखलाई देना आदि लक्षण होने पर लोकनाथ रस के उपयोग से विशेष लाभ होता है। यह कफ-दोष को नष्ट करता है तथा पाचक पित्त को जागृत करके मन्दाग्नि दूर करता है। जिससे अन्नादि का पाचन ठीक-ठीक होने लगता है। यह आँतों को भी सबल बना देता है। फिर धीरे-धीरे दस्त की मात्रा कम होकर रस-रक्तादि की वृद्धि होती है तथा शरीर कान्तिमय होता जाता है।

कफ प्रकोप के कारण फुफ्फुस में शिथिलता आ गई हो वह अपना कार्य करने मे असमर्थ हो गया हो, साथ ही मन्दाग्नि, अन्न में अरुचि, जी मिचलाना, गला भारी हो जाना आदि लक्षण की उपस्थिती होने पर लोकनाथ रस के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

प्रकुपित कफ के कारण मन्दाग्नि हो जाने से आम का संचय होने लगता है। फिर आँते कमजोर हो जाती हैं और पतले दस्त आने लगते हैं। इसमें दुर्गंधयुक्त आँव मिला हुआ कफ के समान दस्त होता है, किन्तु दस्त ज्यादा नहीं होता। दस्त के समय मरोड़ उठती है तथा बहुत कींछने(काँखने) पर थोड़ा-सा आँवसहित दस्त होता है। इसमें मल भाग कम रहता हैं। रोगी बार-बार चिन्ता में मग्न रहता है। पेट में भारीपन भूख न लगना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी परिस्थिति में लोकनाथ रस के उपयोग से कफ-दोष कम हो जठराग्नि तेज हो जाती है और आँते भी मजबूत हो अपना काम ठीक तरह से करने लग जाती है, जिससे आँव बनना बन्द हो जाता है। फिर धीरे-धीरे दस्त भी कम होने लगते हैं।

ग्रन्थिवाले रोग में- जैसे ग्रान्थिकक्षय, ग्रान्थिक सन्निपात (प्लेग), गला, काँख आदि में गाँठ होने पर इसका उपयोग अधिकतर किया जाता है, क्योंकि इनमें कफ-दोष ही प्रधान रहता है। और इसी कारण गाँठें होती हैं। यदि पेट में ग्रन्थि (गाँठ) हो गयी हो और ज्वर भी हो गया हो तो पहले उदर शोधन कराकर इस रसायन का प्रयोग करना चाहिए। आजकल गले में गाँठ हो जाना बहुत प्रचलित हैं। इससे चेहरा बिल्कुल खराब हो जाता है। यह गाँठ पित्ताधिक्य होने से लाल, कफाधिक्य होने से सफेद दिखाई पड़ती है। इसी दोषानुसार जलन, गला भारी हो जाना, आवाज में भारीपन, गला फूला होना आदि लक्षण होते हैं। इस रोग में लोकनाथ रस बहुत फायदा करता है, क्योंकि यह कफ-शोषण करता है तथा इसमें संचित दोषों को बाहर निकालता है।

कफ प्रधान कास-श्वास तथा गुल्म रोग, यकृत विद्रधि और वृक्क विद्रधि की अपक्वावस्था एवं बाह्य विद्रधि की पक्वावस्था में यह अच्छा कार्य करता है।

प्रसूता स्त्रियों को कफ बढ़ जाने के कारण खाँसी, जुकाम, मन्दाग्नि, अरुचि आदि के साथ ज्वर हो, तो लोकनाथ रस देने से बहुत फायदा होता है।-औ.गु.ध.शा.

लोकनाथरस (बृहत्)

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, ताम्र भस्म २ तोला, लौह भस्म २ तोला, वराटिका भस्म ९ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अभ्रक भस्म मिला ग्वारपाठे के रस की भावना देकर मर्दन करें। पश्चात् अन्य भस्में मिलाकर मकोय के स्वरस की भावना देकर मर्दन करें। गोला बनने योग्य होने पर गोला बना, सुखाकर सराब-सम्पुट में बन्द कर लघुपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर निकालकर, सुक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रखें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-३ रत्ती तक आवश्यकतानुसार दिन में दो बार मधु और पीपल चूर्ण के साथ दें। ऊपर से ६ तोला गो-मूत्र पिलावें या गुड और हरीतकी चूर्ण के साथ या गुड़ और जीरा चूर्ण के साथ दें। शंखपुंखामूलत्वक् चूर्ण के साथ देना विशेष उपयोगी है।

गुण और उपयोग- इस रसायन का विधिवत नियमानुसार सेवन करने से समस्त प्रकार के कठिन से कठिन प्लीहोदर और यकृत रोग नष्ट होते हैं। हृदयान्तर्गत अग्रमांस वृद्धि और अन्य सभी प्रकार के भयंकर उदर रोग, जीर्ण ज्वर, गुल्म रोग, दारुण कामला रोग नष्ट होते हैं। यह उत्तम अग्निवर्द्धक है तथा शूल रोग, शोथ आदि रोगों में भी इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। इस रसायन के सेवन के साथ कुमार्यासव का सेवन कराने से विशेष एवं शीघ्र लाभ होता है। यकृत और प्लीहा (तिल्ली) की सुप्रसिद्ध महौषधि है।

लौह रसायन

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग लेकर कज्जली बनावें, पश्चात् लौह भस्म ३ भाग मिलाकर एक प्रहर मर्दन करें, बाद में ग्वारपाठे के रस से तीन दिन तक धूप में मर्दन करें। गोला बनने योग्य होने पर गोला बना, उस गोले को एरण्ड के पत्तों में लपेट कर एक ताम्रपात्र में रख दें, उस ताम्रपात्र के ऊपर दूसरा ताम्रपात्र ढँककर तीन दिन तक धान्यराशि में दबा दें। तीन दिन बाद गोले को निकाल कर सूक्ष्म मर्दन करें और धूप में रखकर बनतुलसी का स्वरस, त्रिकटु-क्वाथ, अडूसा-स्वरस, गिलोय कास्वरस, चित्रकमूल-क्वाथ इनकी पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना देकर मर्दन करें। पश्चात् इसको लौहपात्र में डालकर त्रिफला-क्वाथ, निर्गुंडी-स्वरस, अनार की छाल का स्वरस या क्वाथ, कमलनाल का रस, भाँगरे का रस, कुरण्टक का रस, पलास छाल का रस, केले के कन्द का रस, विजयसार का क्वाथ, नीली का रस, गोरखमुण्डी का रस या क्वाथ, बबूल की फली का रस, गंगरेन की छाल का क्वाथ, शतावर का क्वाथ, गोखरु का क्वाथ, पाताल गरुड़ी का रस, इनमें से जो प्राप्त हो, उनकी पृथक्-पृथक् तीन-तीन भावना देकर मर्दन करें। शुष्क हो जाने पर सूक्ष्म पीसकर सुरक्षित रख लें।-शा.सं.

मात्रा और अनुपान- १से ३ रत्ती, दोष और बलानुसार प्रातः सायं दें। शरीर में वलि (झुर्रियों)पड़ने, केशों के असमय पकने या झड़ने आदि में विषम भाग घी और शहद के साथ चाटकर ऊपर से त्रिफला क्वाथ पीवें। मन्दाग्नि, श्वास, कास, पाण्डु, कफ तथा वात विकारों में पीपल चूर्ण मधु के साथ दें। वात, रक्त, मूत्रदोष, संग्रहणी, बवासीर और अण्डकोष की वृद्धि में गिलोय के रस और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- रोगोचित अनुपान के साथ इन रसायन क सेवन से अनेक प्रकार के रोग समूल नष्ट होते हैं। पीपल चूर्ण और मधु के साथ इस रसायन का सेवन करने से मन्दाग्नि, श्वास, कास, पाण्डु, यकृत प्लीहा एवं कफ और वातजनित समस्त रोग नष्ट होते हैं। गिलोय रस और मधु के साथ सेवन करने से वात-रक्त, मूत्रदोष, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, संग्रहणी, अर्श, वृषण या आन्त्रवृद्धि आदि रोगों को नष्ट करता है। यह रसायन बल, वर्ण, वीर्य और आयु की वृद्धि करता है। रस-रक्तादि सप्तधातुओं की पुष्टि करने वाला एवं समस्त रोगों को नष्ट कर शरीर को सुदृढ़ बनाने वाला यह उत्तम रसायन है।

शक्रवल्लभ रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, चाँदी भस्म, स्वर्ण भस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म ३-३ माशे, वंशलोचन १ तोला और भाँग के बीजों का चूर्ण ४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिलाकर सबको भांग के रस में खरल करके २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर, छाया में सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम मिश्री मिले हुए गर्म दूध के साथ दें।

वक्तव्य-इस रोग में भाँग के बीजों का परिमाण अधिक होने से मर्दन करने पर बीजों से तैल निकल कर औषधि को तर कर देता है, जिससे गोलियाँ बनाने में बड़ी कठिनाई होती है। अतः तैलांश को शोषण करके गोलियाँ बनाने में सुविधा हो इसके लिये १ तोला असगन्ध चूर्ण मिलाकर गोली बनाना अच्छा है।

गुण और उपयोग- यह रसायन समस्त वीर्य-विकारजन्य रोगों के लिये अमृत के समान गुणकारी है। अप्राकृतिक मैथुन (हस्तमैथुन) आदि दुष्कर्मों से अथवा विषय भोग की अधिकता से जिन पुरुषों की जननेन्द्रिय में शिथिलता आ गयी हो तथा शारीरिक बल का ह्रास हो गया हो

उनके लिये इस रसायन का उपयोग परम उपयोगी है। शीघ्र पतन, नपुंसकता (नामर्दी) और वीर्य की कमी से पैदा होने वाले रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं। इसके सेवन से शरीर में पुनः यौवन-शक्ति पैदा हो जाती है। यह रसायन अत्यन्त स्तम्भक, वाजीकरण और स्त्रियों के मद को नष्ट करने वाला है।

शंखोदर रस

शंख भस्म ४ तोला, शुद्ध अफीम १ तोला, जायफल और सुहागे की खील १-१ तोला लेकर सबको एकत्र मिला अत्यन्त बारीक खरल करके रख लें, अथवा जल के साथ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर सुरक्षित रख लें। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- आधी से २ रत्ती तक सुबह-शाम मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का अतिसार (पतले दस्त) तथा आमजनित शूल में बेल के काढ़े में गुड़ मिला, उसके साथ उपयोग किया जाता है। इसके सेवन से अजीर्ण-विकार नष्ट हो जाता है। यह रक्तातिसार (खूनी अतिसार) और रक्तार्श (खूनी बवासीर) में लाभदायक है। इसमें अफीम होने की वजह से यह वेदना-शामक है। अतएवं दस्त के साथ होने वाले दर्द को यह दूर करता है। इस रसायन का उपयोग आमातिसार और संग्रहणी की प्रारम्भिक अवस्था में नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें अफीम पड़ी हुई है जो अपने स्तम्भक गुण के कारण संचित आँव को रोक देती है। फिर शरीर में शोथ आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह शोथ प्रथम हाथ-पाँव आदि में होता है। आन्त्र में किन्ही विशेष कारणों से शिथिलता आ गई हो, तो इस दवा के सेवन से आँतें सबल होकर अपने-अपने कार्य में समर्थ हो जाती हैं। पक्वातिसार में इसका उपयोग अमृततुल्य गुणकारी है। इसमें शंखभस्म एवं सुहागा आमपाचक और शूलघ्न होने से आमातिसार में भी दिया जा सकता है।

नोट- इस रसायन में अफीम है। अतएव छोटे-छोटे बच्चों, सगर्भा स्त्री एवं जिसे अफीम का नशा ज्यादा चढ़ता हो तथा कमजोर रोगी को इस दवा का सेवन नहीं करावें। यदि आवश्यकतानुसार देना ही पड़े तो थोड़ी मात्रा में दें।

शशिशेखर रस

लौह भस्म, अभ्रक भस्म और रससिन्दूर प्रत्येक समान भाग लेकर, एकत्र कर, घृत-कुमारी के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाक रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम एरण्ड मूल क्वाथ और सोंठ चूर्ण अथवा बड़ी हर्रे के क्वाथ और शहद से दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से अण्डकोषों का बढ़ना और अन्त्रवृद्धि रोग में लाभ होता है। रोग के प्रारम्भ होते ही यदि पथ्य-परहेज के साथ इसका नियमित रूप से कुछ दिनों तक सेवन किया जाय तो अवश्य ही लाभ होता है। यह लौह अभ्रक और रससिन्दूर का कल्प होने से रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट कर शरीर को पुष्ट एवं बलवान बनाता है। पाण्डु, कामला, हलीमक, स्नायविक दुर्बलता एवं कठिन वात रोगों में भी उत्तम लाभदायक है। बंग भस्म और शुद्ध शिलाजीत के साथ हल्दी के रस और मधु में मिलाकर देने से सभी प्रकार के प्रमेहों में विशेष गुणकारी है।

श्रृंगाराभ्र रस

कृष्णाभ्रक भस्म ८ तोले, कपूर, जावित्री, नेत्रवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी,

तालीस पत्र, दालचीनी, नागकेसर, कूठ, धाय के फूल ३-३ माशें, आँवला, बहेड़ा, सोंठ, पीपल कालीमिर्च, प्रत्येक १।।-१।। माशें, इलायची के बीज और जायफल ६-६ माशें, शुद्ध गन्धक १ तोला एवं शुद्ध पारा ६ माशे लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य काष्ठौषधियों के कपड़छन किये हुए महीन चूर्ण तथा भस्म को एकत्र मिला, पानी के साथ घोंटकर चना (उबले हुए चने) के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम। श्वास कास और कफ के दर्द में अदरक रस के साथ मधु मिलाकर, अम्लपित्त में परवल के पत्ते का रस या आँवले के स्वरस अथवा क्वाथ से, ज्वर और मन्दाग्नि में पान के रस और मधु के साथ, शरीर में ताकत बढ़ाने के लिये मधु के साथ चाटकर ऊपर से दूध पीना चाहिए।

गुण और उपयोग- इस दवा के सेवन से फुफ्फुस और श्वासयन्त्रों की बीमारी में बहुत लाभ होता है। श्वास, कफ, खाँसी, छाती या पसली में दर्द होना, शोथ आदि रोग इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। अभ्रक का मिश्रण होने से यह अम्लपित्त, पाण्डू और आमवात में लाभदायक है। वात,पित्त और कफ -इन तीनों दोषों की विकृति में इसका अच्छा प्रभाव होता है। यह बल्य (बलवर्द्धक) वृष्य और रसायन है।

कफ-वात प्रधान रोगों में इसका प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। इसमें कफाधिक्य में खाँसी विशेष होना, खाँसी के साथ कफ सफेद चिकना और अधिक मात्रा में निकलना, मुँह और सिर भारी मालूम पड़ना, सिर में दर्द, छाती में कफ जमा हो जाना, फुफ्फुस में शिथिलता आ जाना, श्वास लेने में तकलीफ होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में इस रसायन के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। साथ ही बढ़ा हुआ कफ और खाँसी भी कम हो जाती है। रक्तपित्त, पीनस (दुष्ट प्रतिश्याय), नेत्ररोग, प्रमेह, शूलरोग, गुल्म, तृषा प्यास की अधिकता, प्लीहा तिल्ली, मेदवृद्धि, विषदोष आदि विकारों में भी उचित अनुपान के साथ देने से अच्छा लाभ करता है। इसमें अभ्रक भस्म की प्रधानता है। कुछ समय लगातार मक्खन या मलाई के साथ सेवन करने से स्नायविक दुर्बलता मिटाकर अत्यन्त काम शक्ति बढ़ाता है। खाँसी और श्वास की सुप्रसिद्ध महौषध है।

श्लेष्मकालानल रस

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध विष ४ तोला, त्रिकटु मिलित ८ तोला, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पुष्करमूल, अजमोद, अजगन्धिका (वनतुलसी), वायविडंग, कायफल, चव्य, सेन्धा नमक, काला नमक, सामुद्र नमक, साम्भर नमक, मनिहारी नमक, लौंग, निशोथ, दन्तीमूल ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला धूप में तुलसी स्वरस की ७ भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनाने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना, छाया में सुखाकर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली तथा दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार पान का रस, तुलसी कारस या अदरक का रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से समस्त प्रकार की कफज व्याधियाँ नष्ट होती हैं और जुकाम, ज्वर, पार्श्वशूल, मन्दाग्नि, उदरशूल, शिर:शूल, सर्वांग पीड़ा, जड़ता, तन्द्रा, अलसक इन रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। इस योग में कफनाशक गुण होने के साथ ही यह उत्तम पाचक और अग्निदीपक भी है। अत: संचित कफ और आमदोष का पाचन कर कफज विकारों का शमन करने में उत्तम गुणकारी सिद्ध होता है।

श्वासकुठार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, शुद्ध मैनशिल-प्रत्येक १-१ तोला, कालीमिर्च ८ तोला, तथा सोंठ, मिर्च और पीपल २-२ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला, अच्छी तरह घोंटकर रख लें अथवा जल से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ रत्ती या गोलियाँ चार-चार घंटा बाद, कास-श्वास में अदरक के रस या पीपल चूर्ण और मधु के साथ तथा शिरोरोग में पान के रस और मधु या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन खाने और सूँघने दोनों कार्यों में लिया जाता है। बेहोशी, मृगी, हिस्टीरिया और सन्निपात में इसके सूँघने (नस्य लेने) से रोगी को चेतना आती है। पित्तज कास-श्वास को छोड़कर यह सभी प्रकार के कास-श्वास में लाभ करता है। शिरोरोग में यदि वात-कफ प्रधान हो, तो यह बहुत शीघ्र लाभ करता है। आधा-शीशी, जुकाम, स्वर भेद, क्षय रोगों में भी इससे अच्छा लाभ होता है।

श्वास रोग स्वतंत्र रूप से हो या उपद्रव रूप से, दोनों तरह के श्वास रोग में यह अच्छा काम करता है, किन्तु जिस रोग में हृदय कमजोर हो गया हो और साथ-साथ श्वास भी उपद्रव रूप में हो ऐसे रोगों में इस रसायन का उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह अपनी उग्रता के कारण हृदय को और कमजोर बना देता है।

श्वास रोग की प्रारम्भिक अवस्था में यदि उचित औषधादि की व्यवस्था नहीं की जाये तो वह जवानी में ही बुढ़ापा ला देता है। किसी-किसी को तो आदत-सी हो जाती है या यों समझें कि प्रकृति ही ऐसी हो जाती है कि जरा-सी ठण्डी हवा या शीतोपचार होने, वर्षा ऋतु या जाड़े की ऋतु प्रारम्भ होने, सूर्य की प्रचंड किरणों की गर्मी लगने तथा खटाई या मधुर पदार्थ के सेवन करने आदि से श्वास का दौरा शुरू हो जाता है। जब यह दौरा शुरू होता है तब मनुष्य (रोगी) यदि खड़ा रहता है, तो असावधान (सहसा) हो बैठ जाता है, या किसी के सहारे खड़ा हो जाता है, मन बेचैन हो जाता है, कफ निकालने की अनेक व्यर्थ चेष्टायें करता हैं, किन्तु कफ नहीं निकलता। कफ निकालने के लिए मिश्री की डली, जेठी मधु (मुलेठी) आदि कफ निःसारक दवा मुँह में रखकर चबाने पर भी चैन नहीं पड़ती, ऐसी भयंकर स्थिति में यह रसायन जादू सा असर करता है। इससे बढ़ा हुआ कफ शान्त होकर श्वास का वेग कम हो जाता है, जिससे रोगी को शीघ्र ही सान्त्वना मिल जाती है। ज्वर, सन्निपात, अपस्मार, प्रतिश्याय आदि रोगों में भी इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

श्वास-कास-चिन्तामणि रस

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, लौह भस्म ४ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, मोती भस्म ६ माशे, सुवर्ण भस्म १ तोला इन सबको एकत्र खरल कर कटेरी के रस, अदरक के रस और बकरी के दूध तथा मुलेठी के क्वाथ और पान के रस से क्रमशः ७-७ भावना देकर आधे रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम। श्वास रोग में बहेड़े की मींगी चूर्ण और मधु के साथ कास रोग में पीपल-चूर्ण और मधु के साथ, कास (खाँसी) में अदरक का रस और मधु के साथ बलवृद्धि के लिए मलाई के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह रसायन हृदय को बल देने वाला, हितकर और शक्ति बढ़ानेवाला है। फेफड़े पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव होता है। संचित विकारों को निकालना और फेफड़े को सबल बनाना इसका प्रधान कार्य है। नये-पुराने सभी प्रकार के श्वास रोग में इससे बहुत लाभ होता है। दमे के जिन रोगियों को रात-दिन परेशानी रहती है, उन्हें इसका सेवन अवश्य करना चाहिए। कठिन और पुराने कास (खाँसी) में इसका प्रयोग होता है। यह आँत, यकृत, मूत्राशय तथा हृदय की क्रिया को ठीक करता है एवं वीर्य को पुष्ट करता है। इसका अधिक प्रयोग श्वास रोग में ही किया जाता है और इससे उचित लाभ भी होता है। इन्हेक्शन आदि से हताश रोगी भी इससे शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। बच्चों की कुकुर खाँसी और शोथ रोग भी इससे ठीक हो जाते हैं। क्षय, पाण्डु, कामला, हलीमक, यकृत, प्लीहा, मन्दाग्नि आदि रोगों में भी इसके सेवन से अत्युत्तम लाभ होता है। रस-रक्तादि धातुओं की पुष्टि करके शरीर को बलवान बनाता है।

श्वासचिन्तामणि रस (बृहत्)

लौह भस्म २ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध पारद ६ माशा, स्वर्ण माक्षिक भस्म ६ माशा, मोती भस्म ३ माशा, स्वर्ण भस्म ३ माशा लें। इन सबको खरल में एकत्र डालकर कण्टकारि-रस, अदरक रस, बकरी का दूध, मूलेठी का क्वाथ-प्रत्येक की १-१ भावना देकर घुटाई करें। गोली बनने योग्य हो जाने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती, प्रातः सायं बहेड़ा चूर्ण ४ रत्ती और मधु के साथ अथवा आवश्यकतानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- नये पुराने श्वास रोग तथा खाँसी को नष्ट करने में यह रस अतीव गुणकारी है। यह श्वास संस्थान की विकृति एवं फेफड़ों की दुर्बलता को नष्ट कर श्वास और खाँसी रोग को निर्मूल कर देता है। शारीरिक निर्बलता और रोग प्रतिरोधिनी शक्ति की शरीर में कमी होने पर ही श्वास और खाँसी जैसे भयंकर और कष्टदायक रोगों की उत्पत्ति होती है। इस रसायन में स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म आदि अत्यन्त शक्तिवर्द्धक एवं रसायन गुणकारी तथा पारद-गन्धक की कज्जली जैसे सेन्द्रिय विषनाशक एवं योगवाही पदार्थों के सम्मिश्रण से युक्त इस रस को कुछ समय तक निरन्तर सेवन करने से शरीर में रस-रक्तादि समस्त धातुओं की वृद्धि होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट और शक्ति-सम्पन्न बन जाता है।

श्वास अथवा खाँसी रोग के बढ़े हुए वेग के कारण जब रोगी अत्यन्त बेचैन हो जाता है, चलने-फिरने, उठने-बैठने तथा जरा-सा भी शारीरिक अथवा दिमागी श्रम करने की शक्ति नहीं रहती है, साथ ही स्नायविक दुर्बलता बढ़ जाने के कारण रोगी दिन-रात चिन्तित रहता है ऐसी स्थिति में भी इस रस की कुछ मात्राएँ सेवन करते ही रोगी को चमत्कारिक लाभ का अनुभव होने लगता है एवं कुछ समय तक निरन्तर सेवन करने से तो रोगी शक्ति-सम्पन्न होकर रोग मुक्त हो जाता है, इस रस के साथ ही च्यवनप्राश भी सेवन किया जाय तो सोने में सुगन्ध जैसा उत्तम कार्य करता है।

शिरःशूलादिवज्र रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म प्रत्येक ४-४ तोले, शुद्ध गुग्गुलु १६ तोले, त्रिफला चूर्ण ८ तोले तथा कूठ (पुष्करमूल), मुलेठी, गोखरु, वायविडंग और दशमूल प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिलाकर दशमूल क्वाथ में घोंटे और हाथ में घी लगाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। -भै.र.

वक्तव्य- दशमूल के प्रत्येक प्राप्य द्रव्य की मात्रा एक-एक तोला डालना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली सुबह-शाम १ माशा गोदन्ती हरिताल भस्म और मिश्री मिलाकर बकरी या गाय के दूध के साथ अथवा जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से वातज-पित्तज और कफज सब प्रकार के सिर दर्द नष्ट होते हैं।

सिर दर्द-स्वतन्त्र अथवा किसी रोग के उपद्रव रूप से दो तरह के होते हैं। स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद में ११ प्रकार के सिर-दर्द बताए गये हैं। यथा- वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्त के प्रकोप से, क्षय व कृमि से, सूर्यावर्त, अनन्तवात, अर्धावभेदक,शंखक इस तरह सब ११ हैं। इसके अतिरिक्त प्राय: देखा जाता है कि कोई भी रोग क्यों न हो सिर दर्द उसमे होता ही है। ऐसा क्यों होता है? सम्पूर्ण शरीर का केन्द्रस्थान सिर है। यहीं से शरीर रूपी दुनिया का संचालन होता है। अतएवं, शरीर के किसी भी अवयव में तकलीफ होते ही उसका असर प्रथम मस्तिष्क पर पड़ता है। अत: जब तक वह अंग स्वस्थ नहीं हो जाता, सिर-दर्द होता रहता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रात में विशेष जागरण, अधिक परिश्रम, मानसिक चिन्ता, जुकाम आदि कारणों से भी सिर दर्द होने लगता है, क्योंकि उक्त सब कारण वातप्रकोपक हैं। अत: इन कारणों से वात-प्रकुपित हो, सिर में दर्द होने लगता है, किन्तु इसमें दवा की उतनी आवश्यकता नहीं होती। ये दर्द तो प्राय: उपचार मात्र से ही ठीक हो जाते हैं, इसमें वात-शमन करने वाला उपचार करना पड़ता है। इनमें यदि शिर:शूलादिवज्र रस का उपयोग किया जाय, तो बहुत सफलता मिल सकती है, क्योंकि इस रसायन में गुग्गुलु की मात्रा विशेष होने से इसका प्रभाव वात और रक्तवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। गुग्गुल वात प्रशमन के लिए प्रसिद्ध है और दर्द बिना वात के होता नहीं। अतएवं यह रसायन हर प्रकार के सिरदर्द में फायदा करता है।-औ.गु.ध.शा.

अर्द्धावभेदक (धूबा या अर्द्धकपाली), सूर्यावर्त (प्रातःकाल सूर्योदय से दोपहर तक बढ़ने वाला सिर-दर्द) में गोदन्ती भस्म के साथ मिला पथ्यादि क्वाथ के साथ कुछ समय तक लगातार सेवन करने से रोग जड़ से मिट जाता है। कितने ही रोगियों पर प्रयोग करके हमने इस उत्तम लाभजनक अनुभव किया है। मस्तिष्क की कमजोरी के कारण होने वाले सिर-दर्द में इसके सेवन के साथ साथ बादाम और मिश्री को मक्खन में मिलाकर या दूध के साथ सेवन करने बहुत उत्तम एवं स्थायी लाभ होता है। इसके सेवन से दिमाग पुष्ट हो जाता है।

शिवताण्डव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, रससिन्दूर, शुद्ध हरताल-प्रत्येक १-१ तोला, कालीमिर्च का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ४ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर शेष औषधियों का मिलाकर अदरक स्वरस के साथ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन तीक्ष्ण और उष्ण-वीर्य प्रधान है। सन्निपात की उग्रावस्था में जब दाँती बन्ध गई हो शरीर ठंडा पड़ गया हो, पसीना ज्यादा आता हो, कफ की वृद्धि हो रही हो, आँखों की पुतलियाँ तथा नेत्र टेढ़े हो गए हों, नाड़ी की गति बहुत मन्द हो गयी हो, ऐन्द्रिक (इन्द्रियों की) शक्तियाँ क्षीण हो गयी हो-ऐसी भयंकर परिस्थिति में इस रसायन के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि यह अपना तीक्ष्णता के कारण कफदोष नष्ट कर पित्त को जागृत

करता और फिर पित्त खून में मिलाकर सम्पूर्ण शरीर में दौड़ता है। जिससे सारा शरीर गर्म हो जाता है और शिथिल हुए अवयवों में भी ताकत आ जाती है, जिससे वे अपनी क्रिया करने में समर्थ हो जाते हैं।

शीतज्वरारि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध हरताल, ताँबे की भस्म, शुद्ध तूतिया-प्रत्येक १-१ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधि मिलाकर सबको त्रिफला के क्वाथ में खरल कर गोला बना, सराब-सम्पुट में बन्द कर लघुपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर औषध को निकाल आक और थूहर (सेहुण्ड) के दूध तथा दन्तिमूल और काली निशोथ के क्वाथ की सात-सात भावना देकर, उड़द के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। -शा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली ज्वर आने से १ घंटा पहले तक कुल ४ गोली तक काली मिर्च के चूर्ण ४ रत्ती, गुड़ १ माशा और तुलसी-पत्र १ माशे में मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से शीत पूर्व (जाड़ा देकर आनेवाले) ज्वर, दाह पूर्व ज्वर, विषम ज्वर, ऐकाहिक, तृतीयक और चतुर्थिक ज्वर, सतत, सन्तत आदि विषम ज्वर नष्ट होते हैं।

शीतपित्तभंजन रस

शुद्ध पारद ३ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, कासीस भस्म ३ भाग, ताम्र भस्म ३ भाग, लेकर सबकों खरल में एकत्र डालकर भृंगराज-स्वरस और शरपुंखा-स्वरस या क्वाथ की ७-७ भावना देकर टिकिया बना, सुखा सराब-सम्पुट में रखकर पुट देंवे। पश्चात् स्वांगशीतल होने पर सम्पुट से दवा को निकालकर पीसकर पुनः भृंगराज स्वरस की तथा शरपुंख-स्वरस या क्वाथ की १-१ भावना देकर टिकिया बना-सुखा, सराब-सम्पुट कर हल्की आँच की पुट देवें। पश्चात् पुनः इसी प्रकार भृंगराज स्वरस और शरपुंखा स्वरस या क्वाथ की १-१ भावना देकर टिकिया बना, सुखा सराब-सम्पुट कर हल्की आँच की पुट देवें। स्वांग-शीतल होने पर दवा को निकालकर खरल में पीसकर रख लें।-र.यो.सा.

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती तक प्रातः सायं घृत और मिश्री में मिलाकर अथवा मधु के साथ देकर ऊपर से त्रिफला क्वाथ या सारिवादि हिम पिलावे।

गुण और उपयोग- यह रस शीतपित्त (पित्ती निकलना), उदर्द (दाफड़), कोठ(चकत्ते पड़ना) आदि विकारों में उत्तम लाभ करता है। यह पित्त का रेचन और शोधन करके शमन करने में अद्भुत प्रभावशाली है। पाण्डु, कामला, हलीमक, उदररोग, यकृत, प्लीहा, शोथ, अजीर्ण, कफज गुल्म, अश्मरी आदि विकारों में भी इसके प्रयोग से श्रेष्ठ लाभ होता है। इसमें ताम्र भस्म तीक्ष्ण एवं उग्र स्वभाव वाली होने के कारण इसके सेवन काल में तीक्ष्ण एवं गरम पदार्थों का परहेज रखना आवश्यक है।

शीतभंजी रस

शुद्ध पारद, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमालगोटा-प्रत्येक १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर हिंगुल और जमालगोटे का सूक्ष्म चूर्ण मिला दन्तीमूल क्वाथ में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बनाकर, सुखाकर सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मिश्री के साथ आवश्यकतानुसार पान या तुलसी पत्र रस और मधु अथवा सप्तपर्ण (छतीवन) और कटकरंज के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन शीतज्वर, ठंड लगकर आनेवाले बुखार (मलेरिया बुखार) की उत्तम दवा है। इसे उक्त अनुपान के साथ सेवन करने से शीतज्वर, पारी का बुखार, इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि ज्वर नष्ट हो जाते हैं। मलेरिया बुखार में कुनैन की जगह इस दवा का उपयोग करना उत्तम है। ज्वर छूटने के बाद कुनैन की तरह इससे कोई नुकसान भी नहीं होता। इसमें जमालगोटा का सम्मिश्रण होने से यह विरेचक है, अतः जिन रोगियों को कब्ज भी रहता हो उसके लिए विशेष उपयोगी है। जिनका कोष्ठ मृदु हो, उन्हें गर्भिणी, बालक, वृद्ध तथा दुर्बल को नहीं दें।

शूलगजकेशरी रस

शुद्ध पारद १भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध ताम्र की कटोरी या ताम्र भस्म ३ भाग लेकर प्रथम पारा- गन्धक की सूक्ष्म कज्जली बनावें। पश्चात् उस कज्जली को जल के साथ मर्दन कर ताम्र की कटोरी पर लेप कर दें और सुखा लें। सूख जाने पर इस कटोरी को सराब-सम्पुट में रखकर लवण पूरित मिट्टी के पात्र में आधे भाग लवण भरकर पश्चात् उस कटोरी युक्त सम्पुट को रखें और शेष खाली पात्र को लवण से भरकर सन्धि बन्द करके (कपड़मिट्टी कर) सुखा लें। पश्चात् गजपुट में रखकर फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर कटोरी सहित औषधि निकाल कर सूक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रखें।

वक्तव्य-इस रसायन में ग्रन्थकार ने ताम्र की कटोरी पर कज्जली का लेप करके सुखा कर कटोरी को यन्त्र में रख गजपुट की अग्नि देकर पाक करने को एवं पश्चात् कटोरी सहित पीसकर रखने को लिखा है, किन्तु इसे एक बार पकावें या अनेक बार पकावें ऐसा कुछ भी उल्लेख नहीं है। एक बार पाक करने से ताम्र की पूर्णतया भस्म नहीं होती और वान्ति-भ्रान्ति दोष उसमें विद्यमान रहते हैं। अतः ताम्र की कटोरी की अपेक्षा ३ भाग ताम्र भस्म को पारद गन्धक की उपरोक्त कज्जली मे मिलाकर जल के साथ मर्दन कर टिकिया बना, सुखा सराब-सम्पुट में रखकर लवण-यन्त्र में पाक कर रस निर्माण किया जाय तो एक बार में ही ठीक परिपाक हो जावेगा, और रस भी अधिक गुणकारी बनता है, ऐसा हमारा अनुभव है।

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती सुबह-शाम गर्म जल या सोंठ घिस कर मधु में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सब प्रकार के शूल, परिणाम शूल (अन्नपाक के समय पेट में दर्द होना), कृमि,प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, उदररोग, मन्दाग्नि, संग्रहणी, अम्लपित्त आदि रोगों को नष्ट करता है। इस औषध के सेवन से थोड़ी देर बाद भुनी हींग, सोंठ, जीरा, बच और काली मिर्च का चूर्ण ३ माशा से ६ माशा तक गरम पानी के साथ खाने से अधिक फायदा होता है। अरुचि और अफरा में भी इसका सेवन कराया जाता है। वात,पित्त, कफ या किसी दोष से उत्पन्न शूल को यह शीघ्र नष्ट कर देता है।

यह रसायन वात-कफ-शामक तथा पित्त को जागृत करने वाला है। इसका प्रभाव आँतों पर विशेष पड़ता है। यह यकृत और ग्रहणी विकार को भी नष्ट कर देता है।

प्रकुपित कफ-पित्त को आच्छादित कर मन्दाग्नि पैदा कर देता है। फिर पाचन ठीक-ठीक न होने से अजीर्ण होने लगता है और शूल रोग प्रायः अजीर्ण से ही उत्पन्न होता है। आमाशय में आमान्न (कच्चा अन्न) ज्यादा संचित (इकट्ठा) हो जाने से आँतों पर दबाव पड़ता है। फिर पेट में भयंकर दर्द, गुड़-गुड़ आवाज होना, जी मिचलाना, शरीर में आलस्य, छाती में भारीपन, खट्टी डकार, दस्त होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर इस रसायन के प्रयोग से प्रकुपित कफ-दोष शान्त हो पित्त उत्तेजित होकर जठराग्नि जागृत हो जाती है और पाचन-क्रिया में सुधार होने से सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

अम्लपित्त में-रोग की प्रकोपावस्था प्रारम्भ होने से पूर्व भोजन के बाद ही पेट में दर्द होना प्रारम्भ हो जाता है। यह दर्द ही इसकी उग्रावस्था का सूचक है। क्रमश: यह दर्द यहाँ तक बढ़ जाता है कि रोगी का खाना तक बन्द हो जाता है, दूध आदि लेने लग जाता है, तथापि मन्दाग्नि होने के कारण आमाशय में इतनी शिथिलता आ जाती है कि वह दूध को भी नहीं ठहरने देता। जब तक वमन होकर वह दूध बाहर नहीं निकल जाता रोगी को शान्ति नहीं मिलती है। यह अवस्था बहुत भयंकर होती है, रोगी कमजोर और परेशान हो जाता है, ऊर्ध्ववायु के प्रकोप से डकारें बहुत जोर-जोर से आने लगती है। ऐसी अवस्था में शुलगजकेशरी के प्रयोग से अति शीघ्र लाभ होता है। यह प्रकुपित वात को शान्त कर पाचक-अग्नि को प्रदीप्त करता है, जिससे अन्नादि का पाचन होने लगता है और आमाशय सबल हो, अपना कार्य करने में समर्थ हो जाता है तथा दर्द भी बन्द हो जाता है।

वृक्कशूल और पित्तशूल- इनमें भी इसका उपयोग किया जाता है। पित्तशूल यकृत से एक नली पक्वाशय में गई है। उसी नली द्वारा यकृत से पित्त निकलकर पक्वाशय में जाता है और भोजन को पचाने में सहायता करता है। कभी-कभी यह पित्त सूखकर पत्थर जैसा कठिन हो जाता है और यकृत के मुँह या नली में आकर रुक जाता है। इससे बहुत भयंकर दर्द होता है। इस दर्द के साथ जी मिचलाना, पित्त का वमन द्वारा निकलना, प्यास ज्यादा लगना, मुँह सूखना, शरीर में जलन, मन बेचैन रहना-ये उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में गर्म जल में घृत मिलाकर (इस अनुपान) के साथ यह दवा देने से अच्छा लाभ होता है।

वृक्क शूल में भी इसी तरह जो नली वृक्क (गुर्दे) मूत्राशय में गयी है, उसमें भी पथरी होकर भयानक दर्द होता है। यह दर्द वृक्क स्थान से लेकर जननेन्द्रिय तक होता है। इसमें भी वमन होना, पेशाब में जलन, दस्त की शंका बनी रहना, पेशाब जरा-जरा सा होना आदि लक्षण होते हैं। इस रोग में भी पथरीनाशक दवा के साथ-साथ इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है।-औ.गु.ध.शा.

उदरशूल, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, अम्लपित्त इन रोगों में शंख भस्म के साथ देने से विशेष लाभ होता है। ऊपर से गरम पानी में नींबू निचोड़कर पिलाना चाहिए।

शूलकुठार रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सुहागे की खील, हर्रे, बहेड़ा, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध हरताल, ताम्र भस्म, शुद्ध जमालगोटा समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियों का महीन चूर्ण मिलाकर भाँगरे के रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-वृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम काली मिर्च या अदरक रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- वातप्रकोप, अजीर्ण अथवा अन्य किसी भी कारण से उत्पन्न पेट-दर्द इससे शीघ्र आराम हो जाता है। यह रसायन रेचक है। अत: इसके सेवन से दस्त भी होता है। विष्टब्ध और अजीर्णजन्य शूल में इसका विशेष उपयोग होता है।

इस रसायन में जमालगोटे का मिश्रण होने से विष्टब्धाजीर्ण में विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। मन्दाग्नि होने से पेट में मल-संचय होने लगता है, फिर पेट में शूल, पेट फूलना, आँतों में मरोड़ उठना, मल बन्ध, अधोवायु का अवरोध आदि लक्षण होने पर इसके उपयोग से मल बंध दूर हो अधोवायु का निष्कासन होने लगता है और अग्नि प्रदीप्त होकर अन्नादि का पचन भी ठीक तरह से होता है।

शूलान्तक रस

सोंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, निशोथ, चित्रक मूल छाल-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग शुद्ध पारद आधा भाग, शुद्ध गन्धक आधा भाग, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, वायविडंग-ये प्रत्येक २-२ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करके मिलावें, फिर भस्में मिलाकर सब द्रव्यों को एकत्र कर खरल में डालकर त्रिफला क्वाथ की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना सुखाकर सुरक्षित रखें

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार काँजी के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन से कठिन शूल रोग नष्ट होते हैं। परिणामशूल रोग में इसके सेवन से विशेष लाभ होता है। इसके अतिरिक्त अम्लपित्त एवं तज्जन्य शूल, वमन, अन्नद्रवशूल और सान्निपातिक शूल रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। आमशूल, यकृत और प्लीहा शूल आदि में भी लाभकारी है। यह मन्दाग्निनाशक होने के कारण आमरस का पाचन कर, रस शेषाजीर्ण को भी नष्ट करता है, इसमें पारद-गन्धक के साथ लोह भस्म और अभ्रक भस्म एवं त्र्युषण, त्रिफला और त्रिमद को सम्मिश्रण होने से यह रस रक्त में रक्ताणुओं की वृद्धि एवं रस-रक्तादि धातुओं की वृद्धि करने वाली तथा पाण्डु, कामला, हलीमक, शोथ, उदर विकार, स्नायु दौर्बल्य आदि विकारों में भी अतीव गुणकारी, निर्दोष एवं सौम्य औषधि है।

शूलनाशन रस

रससिन्दूर, शंख भस्म, शुद्ध गन्धक, सोंठ, पीपल, सेन्धानमक, अम्लवेत और सफेद जीरा प्रत्येक समभाग लें। काली मिर्च २ तोला और सब औषधों के आधा कुचला चूर्ण लेकर सबकों एकत्र खरल में डालकर अदरक और सहिजन के रस के साथ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह शाम गर्म जल अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन दीपन-पाचन होने के कारण अग्निमांद्य, अतिसार, ग्रहणी तथा विसूचिका रोग को नष्ट करता है। पाचक पित्त को बढ़ाने के कारण यह शारीरिक शक्ति बढ़ाता, कान्ति को सुन्दर बनाता तथा शारीरिक अवयवों में ताकत उत्पन्न करता है। इसके कुछ दिनों तक लगातार प्रयोग करने से गुल्म रोग नष्ट हो जाता है। वातजन्य शूल, विशेषकर उदर शूल के लिए यह उत्तम परिक्षित औषध है। इस योग में कूल योग का आधा शुद्ध कुचला सम्मिश्रित होने से यह मन्दाग्नि और वात रोगों में बहुत उपयोगी और शीघ्र प्रभावकारी औषधि है, अन्त्रस्थ कीटाणुनाशक होने से कृमिरोग में भी विशेष हितकर है।

शोथकालालन रस

चित्रकमूल की छाल, इन्द्रजौ, गजपीपल, सेन्धानमक, पीपल, लौंग, जायफल, शुद्ध टंकण, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक-ये द्रव्य पृथक्-पृथक् १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् भस्में एवं अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बना सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर जल के साथ दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना, सुखाकर सुरक्षित रखें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली सुबह-शाम, तालमखाना स्वरस के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का सेवन करने से समस्त प्रकार के शोथ रोग नष्ट होते हैं और साध्य तथा असाध्य आठों प्रकार के ज्वरों को यह नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त कास, भयंकर प्लीहोदर रोग, प्रमेह, मन्दाग्नि, शूल रोग, संग्रहणी इनको नष्ट करता है। इस प्रकार अनुपान-भेद से अनेक रोगों का नाश करता है।

पुनर्नवा-स्वरस और मधु के साथ देने से भी शोथ रोग में बहुत लाभ होता है। उदर रोगी एवं गुल्म रोगों में इसे मधु में मिलाकर सेवन कराने के पश्चात् ५ तोला गोमूत्र साफ कपड़े से छानकर पिलाने से अतीव लाभ करता है। मन्दाग्नि और शूल रोग में शंख भस्म मिलाकर अदरक रस और नींबू के रस के साथ देने से बहुत उपकार होता है।

सन्निपात भैरव रस

शुद्ध हिंगुल ४।। तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, शुद्ध बच्छनाग २ तोला, शुद्ध धतूर बीज ३ तोला २ माशा, सुहागे की खील १ तोला १ माशा- इन सबको एकत्र मिला जम्बीरी नींबू के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम अथवा रोगी के दोष-बल की अवस्थानुसार अदरक रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन सन्निपात ज्वर के लिए बहुत उत्तम है। सन्निपात ज्वर की प्रत्येक अवस्था में इसका उपयोग किया जाता है, किन्तु पित्ताधिक्य अर्थात् जिस सन्निपात में पित्त-दोष बढ़ा हुआ हो और पित्तजनित उपद्रव भी बढ़े हुए हों यथा-मुँह सूखना, प्यास लगना, सिर में चक्कर आना, देह में जलन, हाथ-पाँव और आँखों में भी जलन, पतला दस्त होना, ज्वर का तापमान बहुत बढ़ना आदि लक्षण हों, तो इस दवा का उपयोग नहीं करना चाहिए। यदि देना ही हो तो किसी सौम्यगुणयुक्त औषधि के साथ प्रयोग करें।

वात-कफ प्रधान दोषों में यह विशेष फायदा करता है अर्थात् जिस सन्निपात में देह व सिर में दर्द, खाँसी, कफ की अधिकता, कभी निद्रा आवे और कभी नहीं भी आवें, सिर को इधर-उधर ज्यादा पटकना, जीभ काली या सफेद वर्ण की हो जाना, मुँह का जायका मीठा, तन्द्रा, पसीना चलना आदि उपद्रव हो तो उसमें यह रसायन बहुत शीघ्र लाभ करता है। कास, श्वास, विषमज्वर, वातबलासक ज्वर, वातश्लेष्म ज्वर, फुफ्फुसावरण शोथ (प्लुरसी और निमोनिया) में यह उत्तम लाभकारी है।

समीरगजकेशरी रस

शुद्ध नवीन अफीम, शुद्ध कुचला चूर्ण और काली मिर्च का चूर्ण प्रत्येक समान भाग लेकर सबको एकत्र खरल करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- १ गोली सुबह खाकर बाद में पान खाना चाहिए।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से कुब्जता (कुबड़ापन) खंजवात (लंगड़ापन), गृध्रसी, अपबाहुक, शोष, कम्प, अपतानक, विसुचिका, अरुचि और अपस्मार रोग नष्ट होते हैं। अफीम और कुचला के सम्मिश्रण के कारण यह स्नायुमण्ड को शक्ति प्रदान कर काम शक्ति को बढ़ाता है एवं स्तम्भन करता है।

यह रसायन अति उग्र और उष्णवीर्य है तथा प्रबल वात-कफनाशक है। वात-वाहिनी नाड़ियों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। वात-प्रकोप के कारण विकृत स्नायुओं पर भी इसका कार्य उत्तम होता है। वातजनित आक्षेप वाले रोगों में यह अधिक फायदा करता है।

नोट- इसमें कुचला और अफीम का मिश्रण है। अतएव इस दवा का प्रयोग सोच-समझ कर करना चाहिए। अति दुर्बल, गर्भवती स्त्री, छोटे बच्चों को तथा जिनका हृदय कमजोर हो या हृदय सम्बन्धी कोई बीमारी हो, ऐसे रोगियों को यह दवा नहीं देने चाहिए।

सर्वतोभद्र रस

अभ्रक भस्म २ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, हिंगुलोत्थ पारा ६ माशा, कपूर, केसर, जटामांसी, तेजपात, लौंग, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, गजपीपल, कूठ(पुष्करमूल) तालीश-पत्र, धाय के फूल, दालचीनी, नागरमोथा, कालीमिर्च, सोंठ, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और पीपल-प्रत्येक ३-३ माशा लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें अभ्रक-भस्म और केसर डालकर पान के रस में केसर अच्छी तरह मिल जाय, इतना घोंटे। पीछे अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला, पान के रस में मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली, सुबह-शाम पानी, कच्चे नारियल का जल, मीठे दाड़िम का रस या चन्दनादि अर्क के साथ दें, अथवा पान में रखकर खिलावें या शहद अथवा मिश्री में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- विदग्धाजीर्ण, तृषा, आमदोष, विसूचिका, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, मूर्च्छा, ग्रहणी रोग, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त और रक्तपित्त इन रोगों में सर्वतोभद्र रस का प्रयोग किया जाता है। पित्त-विकृति वालों के लिए पाचन की खराबी में इससे अच्छा लाभ होता है। यह उत्तम दीपन और पाचन है।

सर्वांगसुन्दर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर कज्जली बना, पर्पटी, विधान से बनाई हुई पर्पटी २ तोला लें। फिर जायफल, जावित्री, लौंग, निम्ब पत्र, निर्गुण्डी के पत्ते और छोटी इलायची के दाने १-१ तोला लेकर चूर्ण बना ले। पर्पटी को खूब महीन पीसकर काष्ठौषधियों का कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण मिला, पानी के साथ बारह घंटे तक खरल कर, गोला बना, मोतीसीप (मुक्ताशुक्ति) में बन्द कर कपड़मिट्टी करके लघुपट में रख दें। स्वांग-शीतल होने पर सम्पुट निकाल मिट्टी ऊपर से हटाकर दवा निकाल, खरल में महीन पीसकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १से २ रत्ती सुबह-शाम। बच्चों को इसकी चौथाई मात्रा में दें। बच्चों के लिये माता का दूध या मधु के साथ देना अच्छा है। रक्तस्राव-सम्बन्धी विकारों में वासा रस और मधु के साथ, अतिसार और संग्रहणी से सोंठ चूर्ण और मधु के साथ दें। रक्तप्रदर में मौलसरी की छाल या अशोक-छाल के क्वाथ के साथ देने से यह बहुत शीघ्र रक्त को बन्द कर देता है।

गुण और उपयोग- यह रसायन अग्निदीपक, बलवर्द्धक और बालकों का परम हितकारी है। बालग्रह ज्वर, अतिसार, दूषित दूध के विकार आदि सभी बाल रोग में यह बहुत अच्छा काम करता है। बच्चों के हरे-पीले-दस्त, अपच, संग्रहणी, वमन और शोष रोगों में इसका मिश्रण बहुत उपकारक है। बच्चों की तरह स्त्री-पुरुषो के अतिसार, ज्वरातिसार, आमानुबन्ध, संग्रहणी और उसके उपद्रव इससे ठीक हो जाते हैं। पित्तातिसार, प्रदाह, अम्लपित्त, रक्तप्रदर, शिरोभ्रम, अंशुघात, नेत्रदाह, प्रवाहिका, तथा रक्त-स्राव सम्बन्धी रोगो में इसका प्रयोग किया जाता है। प्रसूतातिसार और प्रसूता की संग्रहणी में भी इससे बहुत लाभ होता है।

यह रसायन वात-कफ शामक और रक्त-निरोधक है। कफप्रधान रोगों में इसके प्रयोग से

बहुत लाभ होता है।

आयुर्वेद के मतानुसार बच्चों में कफ की वृद्धि होने से उसकी प्रकृति भी कफात्मक होती है, अतएव कफ-सम्बन्धी रोग बच्चों को अक्सर हो जाया करते हैं। कभी-कभी कफ बढ़ जाने के कारण बच्चों को पतले दस्त होने लगते हैं। दस्त पतले, सफेद रंग के और फल हुए से बार-बार होना, वमन होना, पेशाब ज्यादा और सफेद होना आदि उपद्रव उत्पन्न होने पर सर्वांगसुंदर रस से बहुत फायदा होता है। इससे बढ़ा हुआ कफ दस्त के रस्ते निकल जाता है और आँतों की विकृति दूर होकर, आँत निर्दोष और सबल हो जाती है जिससे दस्त भी गाढ़े होने लगते हैं और धीरे-धीरे कमजोरी दूर हो, बच्चा स्वस्थ हो जाता है।

ज्वरातिसार के प्रारम्भ में हरे-पीले रंग के दस्त होने के साथ-साथ ज्वर भी होने लगता है और धीरे-धीरे यह ज्वर १०२-१०३ डिग्री तक पहुँच जाता है। इससे प्यास ज्यादा लगना, बेचैनी तथा वमन आदि उपद्रव होते हैं। रोग की उग्रावस्था में दूध भी नहीं पचता, ज्वर की गर्मी के मारे बच्चा ठण्डा जल पीने या पृथ्वी पर सोने की इच्छा करता है। ऐसे समय में दूध बन्द कर मोसम्बी, अनार या अंगूर के रस या ग्लूकोज पानी में डालकर अथवा बकरी के दूध में मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। बार्ली भी दे सकते हैं। साथ-साथ सर्वांगसुन्दर रस भी शंख भस्म के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देते रहें, तो बहुत शीघ्र लाभ होता है।

संग्रहणी की पुरानी अवस्था में मल के साथ रक्त भी जाता हो ओर आँव का अंश कम हो, आँतों में दर्द व मरोड़ उठती हो, दस्त बार-बार होते हों, ऐसी हालत में सर्वांग सुन्दर रस, शर्बत अनार या कुटजावलेह में मिलाकर देने से अवश्य फायदा होता है।

अतिसार होने पर यदि समुचित चिकित्सा नहीं हुई तो यह रोग प्रवाहिका के रूप में बदल जाता है। इसमें दस्त बहुत और अनेक बार होते हैं। आँतों की कमजोरी एवं गुदावलियों की शिथिलता से दस्त नहीं रूकता, वेग आने पर तुरन्त बाहर निकल आता हैं, जिसमें कपड़े भी खराब हो जाते हैं। इसकी उग्रावस्था में काँच भी निकलने लगती है। ऐसी अवस्था में आँतों को सबल बनाने तथा जठराग्नि प्रदीप्त करने और दस्त को बाँधने के लिये सर्वांगसुन्दर रस का उपयोग किया जाता है। भाँग की पोटली बना कडुए तैल में डुबोकर पोटली को जरा गर्म कर गुदामार्ग को सेंकने से काँच निकलना बन्द हो जाता है।

बच्चों के पारिगर्भिक रोग में- आयुर्वेद-शास्त्र के मतानुसार गर्भवती माता का दूध पीने से बच्चे को यह रोग होता है, क्योंकि यह दूध भारी होने की वजह से गुरुपाकी होता है, जिसे छोटे बच्चे हजम नहीं कर सकते। परिणाम यह होता है कि दूध पेट में ज्यों का त्यों पड़ा रहता है, इसमें पेट बढ़ जाता है और हाथ-पाँव सुखकर पेट आगे निकल आता है। आँखें सफेद हो जाती है, भूख नहीं लगती, पतले दस्त होते, ज्वर भी होता है। खाने की इच्छा न होते हुए भी खाने के लिए रोते रहना, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, कान्तिहीनता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में सर्वांगसुन्दर स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, कान्तिहीनता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में सर्वांगसुन्दर रस प्रवालचन्द्रपुटी के साथ देने से बहुत लाभ होता है। माता का दूध बन्द कर देना हितकर है।

रक्तप्रदर यदि किसी दवा से अच्छा होता हुआ न दिखे तो मौलसरी की छाल का चूर्ण ३ माशा के साथ सर्वांगसुन्दर रस देने से २-४ रोज में ही आश्चर्यजनक लाभ करता है। यह कई बार का परिक्षित है।

सर्वांगसुन्दर रस (यक्ष्मा)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक १-१ तोला, सुहागे की खील २ तोला, मोतीपिष्टी, प्रवाल भस्म,

शंख भस्म प्रत्येक १-१ तोला, सुवर्ण भस्म ६ माशे लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य दवा मिला, नींबू के रस में खरल कर गोला बना, सराब-सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूँक दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर उसमें लौह भस्म ६ माशें, शुद्ध हिंगुल ३ माशे मिलाकर खूब महीन खरल कर सुरक्षित रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती शहद, पिप्पली चूर्ण या अदरक रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के राजयक्ष्मा रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त घोर वात-पित्ताद्भव ज्वर, दारुण सन्निपात ज्वर, अर्श रोग, ग्रहणी दोष, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर तथा सभी प्रकार के वात जनित रोगों और विशेषत: कफजनित रोगों को नष्ट करता है। इस रस के सेवन से फुफ्फुसों की क्रिया में सुधार होकर उचित बल मिलता है। यह सगर्भा और प्रसूता स्त्री, बालक, वृद्ध आदि सबको निर्भयतापूर्वक दिया जा सकता है। नवीन संग्रहणी रोग में भी अनेक रोगियों को मुखपाक, तीव्रातिसार, अरुचि, पाण्डू, उदर में वायु संचित होना, जिव्हा पतली लेसदार और निस्तेज होना, अच्छी निद्रा न आना, सिर के बाल गिरते रहना-आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। उसमें यह रस उत्तम लाभ पहुँचाता है। इससे आमाशय और आन्त्र दोनों की क्रिया नियमित हो जाती है। रोगोत्पादक कीटाणुओं को नष्ट कर और आम विष के जलाकर के रक्ताणुओं की वृद्धि कर, शरीर को स्वस्थ और सबल बना देता है।

राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था में शुष्क कास और मन्द ज्वर के साथ किसी-किसी को दाह, मुखपाक और अधिक निर्बलता रहती है। इस दशा में सितोपलादि चूर्ण १ माशा को घी और शहद के साथ दिन में तीन बार देने से कास, ज्वर और दाह आदि लक्षणों सहित राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है। राजयक्ष्मा की द्वितीयावस्था में गाँठदार कफ गिरना, दोपहर के बाद ज्वर बढ़ जाना, किसी-किसी को दाह, मुखपाक, अरुचि, पतले दस्त आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी दशा में इस रस का सेवन अभ्रक भस्म और श्रृंगभस्म १-१ रत्ती मिलाकर शहद के साथ करने से उत्तम लाभ होता है। कफ में दुर्गंध हों, आमाशय में अम्ल रस हो तो लौहवान सत्व और मुलेठी चूर्ण २-२ रत्ती के साथ मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। कफ में रक्त गिरने की दशा में वासावलेह के अनुपान से देना विशेष उपयोगी है।

उग्र औषधि या तम्बाकू आदि का अधिक सेवन या मानसिक चिन्ता और चिरकाल तक आहार-विहार में स्वच्छन्दता के कारण पित्त का प्रकोप होकर उदर रोग की उत्पत्ति होती है और जल सदृश पतला तथा उष्ण रक्तस्राव होता रहता है, साथ ही अग्निमांद्य, मुखपाक, उदर में भारीपन, छाती और कण्ठ में दाह, घबराहट, मस्तिष्क की उग्रता निद्रानाश, मासिक धर्म देर से या असमय पर थोड़ा तथा पीड़ा सहित होना, शरीर का वर्ण श्याम और शुष्क हो जाना, निर्बलता के कारण आँखों के आगे अंधेरा होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी दशा में मधूकाद्यवलेह के साथ इस रस का १-२ मास तक सेवन करने से रोग का शमन होकर शरीर सबल, स्वस्थ और कान्तियुक्त हो जाता है।

स्वच्छन्दभैरव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग २-२ तोला और जायफल चूर्ण १ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें जायफल का चूर्ण तथा कपड़छन किया हुआ पीपल चूर्ण ३।। तोला मिला जल से खरल कर आधी रत्ती-आधा रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- आधी-आधी रत्ती सुबह-शाम, पान का रस, अदरक रस या गूमा रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के सेवन से जाड़ा देकर आनेवाल ज्वर, नवीन ज्वर, विषम

ज्वर, हैजा, पीनस, प्रतिश्याय (जुकाम), जीर्णज्वर, अग्निमांद्य, वमन और सिरदर्द अच्छे हो जाते हैं।

यह रसायन उष्णवीर्य प्रधान है। इसका प्रभाव श्लैष्मिक कलाओं पर विशेष पड़ता है। साथ ही यह वात-शामक भी है। यह दोष और दूष्य दोनों को पचाता व अग्नि प्रदीप्त करता है।

ज्वर रोग की यह प्रधान दवा है। नवीन ज्वर में उपवास कराने के बाद ज्वर और दोष का पाचन कराना आवश्यक रहता है, उस स्थिति में इसके प्रयोग से ये दोनों काम हो जाते हैं। यदि ज्वर बढ़ता ही गया या वह विषमज्वर में बदल गया, तब भी इससे बहुत लाभ होता है।

ज्वर में मन्दाग्नि हो जाना स्वाभाविक बात है। किसी-किसी को ज्वर छुट जाने पर भी मन्दाग्नि दोष दूर नहीं होता, जिससे भूख नहीं लगती, कमजोरी बनी रहती है। शरीर में आलस्य तथा रक्त की कमी, अन्न पर अरुचि आदि उपद्रव बने रहते हैं। ऐसी अवस्था में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। यह रसायन दोष का पाचन करते हुए अग्नि को भी प्रदीप्त करता है, जिससे भूख लग कर अन्न पर रूचि होती और धीरे-धीरे कमजोरी भी दूर हो जाती है। इसके साथ सुदर्शन अर्क भी देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। जुकाम दूर करने के लिये भी इस रसायन का उपयोग शर्बत गुलबनप्सा से किया जाता है।

जीर्णज्वर में- शरीर कमजोर हो गया हो, हृदय की गति कमजोर हो गयी हो, बुखार नहीं छूटता हो तो इसे देना चाहिए।

सर्पगन्धा चूर्ण योग

अत्यन्त सूक्ष्म पिसा हुआ रससिन्दूर ३ माशे, सर्पगन्धा का सूक्ष्म, कपड़छन चूर्ण ५ तोला लेकर दोनों को एकत्र मिला एक घण्टा तक अच्छी तरह खरल करके सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ माशा, प्रात:-सायं जल से या दूध से या अर्क गुलाब से दें।

गुण और उपयोग- आजकल हृदय-सम्बन्धी रोगों का प्रसार सभी वर्ग के लोगो में (विशेषत: जिनको बैठकर मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य अधिक करना पड़ता है) अत्यन्त तीव्रता से हो रहा है। इस रोग का प्रमुख कारण तीक्ष्ण औषधियों का अधिक सेवन करना, अत्यन्त पौष्टिक भोजन करना एवं शारीरिक परिश्रम न करना है। फलत: मेद वृद्धि होकर मधुमेह, हृदय रोग आदि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती है। आयुर्वेद के मतानुसार हृदय रोग ५ प्रकार का होता है। किन्तु आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार हाई ब्लडप्रेशर (रक्तचाप वृद्धि) और लो-ब्लडप्रेशर (रक्तचाप की क्षीणता) भी हृदय रोग होते हैं। इसमें हाई ब्लडप्रेशर में हृदय एवं नाड़ी की गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है और कभी-कभी तो रक्तचाप की वृद्धि के कारण, मस्तिष्क में अधिक रक्त परिभ्रमण के कारण, मस्तिष्क की नस तक फट जाती है और परिणामत: रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसी रक्तचाप की वृद्धि में अचानक हृदय की गति का रूक जाना भी सम्मिलित है। हाई ब्लडप्रेशर रोग के प्रारम्भ में बेचैनी, अनिद्रा, घबराहट, चिड़चिड़ापन आदि लक्षण होते हैं। इनमें इस रसायन का सेवन करना अत्यन्त उपयोगी है। इसके प्रयोग से रक्तचाप कम होकर गाढ़ी निद्रा आती है और शनै:शनै: मोती या प्रवाल पिष्टी मिलाकर देने से हृदय बलवान होता है। इसके अतिरिक्त अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), उन्माद और नवीन अपस्मार रोग में भी इससे अच्छा लाभ होता है।

स्वर्ण वसन्तमालती

स्वर्ण भस्म या वर्क १ तोला, मोती पिष्टी या भस्म २ तोला, शुद्ध हिंगुल ३ तोला, काली मिर्च (छिलके उतार कर साफ की हुई लें) का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ४ तोला, खर्पर भस्म या यशद भस्म ८ तोला लें। प्रथम हिंगुल को पीसकर यदि सुवर्ण का भस्म लिया हो तो सब द्रव्यों को एक साथ मिलाकर तीन घण्टा मर्दन करें। यदि सोने का वर्क लिया हो, तो इसमें अन्य द्रव्य मिलाकर पीछे सोने का वर्क एक-एक करके मिलाते जायें, जब तक सोने का वर्क अच्छी तरह मिल न जाये मर्दन करते रहे। फिर उसमें गाय के दूध से या छाछ से निकाला हुआ मक्खन २ तोला मिलाकर एक दिन मर्दन करें। (यद्यपि शास्त्रीय विधान कलांश मक्खन देने का मिलता है, परन्तु इसमें प्रायः चतुर्थांश अथवा इतना मक्खन मिलावे, जिससे आटा गूँथे हुए जैसा हो जाय)। पीछे कागजी नींबू का कपड़े से छना हुआ रस मर्दन योग्य डालकर (एक दिन मे जितना रस सूखे उतना ही डालें) प्रतिदिन मर्दन करें। जब तक मक्खन की चिकनाई दूर न हो जाय बराबर घोंटते रहें। सामान्यतः मक्खन की चिकनाई दूर करने के लिये मध्यम आकार के ९५ नींबू का रस आवश्यक होता है। फिर एक-एक रत्ती की टिकिया बना, छाया में सुखा कर रख ले।-सि.यो.स.

मात्रा और अनुपान- एक से दो रत्ती सुबह शाम। छोटी पीपल का चूर्ण दो रत्ती और मधु के साथ देकर ऊपर से गाय का दूध दें, अथवा सितोपलादि चूर्ण एक माशा और मधु के साथ अथवा च्यवनप्राशावलेह के साथ दें। धातुक्षीणता,प्रमेह, प्रदर, बहुमूत्र और सोम रोग में दो रत्ती शिलाजीत, एक रत्ती वसन्तमालती, धारोष्ण दूध के साथ दें। मन्दाग्नि-विकार में भुने हुए जीरे का चूर्ण और मधु मिलाकर दें।

इसका उपयोग अभ्रक भस्म एक रत्ती, प्रवाल पिष्टी एक-दो रत्ती, हरिण श्रृंग भस्म चार रत्ती, गुडूची सत्व एक माशा और सितोपलादि चूर्ण एक माशा के साथ मिलाकर मधु और दूध के अनुपान से भी किया जाता है।

१. गाय का दूध दस तोला, उतना ही पानी मिलाकर उसमें एक छोटी पीपल और ६ माशे मिश्री डाल कर दूध औटावें, जब पानी जल कर दूध मात्र शेष रहे, तब उबले हुए पीपल में एक रत्ती वसन्तमालती मिलाकर सेवन करें और ऊपर से दूध पी लें।

२. पित्त प्रकृति वाले को सफेद जीरे का चूर्ण और मिश्री या जीरा और गुड़ या आँवले के मुरब्बे के साथ दें अथवा अनार के रस में मिश्री मिलाकर या दाड़िमावलेह के साथ दें।

३. कफ प्रकृति वाले को ६ माशे शहद में पीपल का चूर्ण दो रत्ती, वसन्तमालती डेढ़ रत्ती मिला कर सुबह-शाम दें। इससे जीर्ण ज्वर, कास, दमा, अग्निमांद्य और कफ रोग दूर हो जाते हैं।

४. ज्वर न हो किन्तु स्वप्नदोष हो, तो ३ माशे शहद, ६ माशे मक्खन और ६ माशे मिश्री, १ रत्ती वसन्तमालती मिला कर दें।

५. यदि दूध हजम होता हो, तो पाव भर गाय के धारोष्ण दूध में मिश्री १ तोला और गाय का घी ६ माशा मिला कर दें।

६. स्त्रियों के रक्तप्रदर में चावल के धोवन के साथ देना लाभदायक है।

७. यदि पित्तजन्य दाह हो और पेशाब लाल हो, तो गिलोय का सत्व २ रत्ती, प्रवाल चन्द्रपुटी २ रत्ती एवं वसन्तमालती १ रत्ती का मिश्रण मिश्री और शहद के साथ दें। ऊपर से खस या चन्दन का शर्बत पिलावें।

गर्भवती स्त्रियों व बच्चों को कफ विकार हो, तो आधी मात्रा में दे। धातु क्षय वाले यदि इस दवा को निमयपूर्वक ४१ दिन तक सेवन करें, तो धातु पुष्ट हो जाता है।

गुण और उपयोग- यह रसायन जीर्ण-ज्वर तथा सप्तधातुगत ज्वर, राजक्ष्मा, रोग छूटने के बाद की कमजोरी, स्त्रियों का श्वेत-रक्त-प्रदर, पाण्डूरोग, ग्रहणी रोग, अग्निमांद्य, गण्डमाला, अन्त्रक्षय, फुफ्फुस कला का शोथ, बालशोष (सूखा रोग)- इन रोगों में विशेष लाभ करता है। यह जठराग्नि और धात्वाग्नि की परिपाक-क्रिया को सुधारकर उनकी विकृति से होनेवाले सब रोगों को दूर करता है और शरीर के बल वर्ण-युक्त तथा पुष्ट करता है। मस्तिष्क की स्फूर्ति और बल पैदा करना इसका खास कार्य है। स्त्री-पुरुष और बालकों के लिये सब ऋतुओं में यह फायदा करता है।

आयुर्वेद शास्त्रकारों का यह कहना है कि 'सर्वरोगे बसन्त' अर्थात् सब रोगों के लिये बसन्तमालती अच्छी दवा है यह सर्वथा युक्तिसंगत और सत्य बात है। यह शरीर के प्रत्येक अंग को बल देती तथा अनेक रोगों का नाश करती है। इस रसायन द्वारा जो बल प्राप्त होता है, वह स्थायी होता है। यद्यपि कुचला भी उत्तेजक और बलप्रद है, किन्तु इसके द्वारा जो बल मिलता है वह उतनी ही देर के लिये, जब तक कि उत्तेजना का प्रभाव रहता है। बाद में पुनः पूर्ववत ही हो जाता है। इसका कारण यह है कि कुचला से जो बल मिलता है, वह धातुओं की विकृति को दूर न करते हुए बल देता है, परन्तु वसन्त मालती प्रत्येक धातु की विकृति को दूर करते हुए बल प्रदान करता है, इसीलिए इसके द्वारा मिला हुआ बल स्थायी रहता है, क्योंकि ऐसा नियम है कि पूर्व धातु से पर धातु की वृद्धि होती है। पूर्व धातु जितना पुष्ट होगा पर धातु उतना ही बलवान होगा। यथा-रस जितना अच्छा, परिपुष्ट तथा विशुद्ध रहेगा, रक्त उतना ही सुन्दर तैयार होगा। इसी तरह आगे भी समझे। धातुओं की पुष्टि के ऊपर ही त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) का भी बल निर्भर है और त्रिदोष शरीर की भित्ति है। अतः इसे सबल बनाना परमावश्यक है। त्रिदोष में किसी एक दोष में गड़बड़ी होने पर शरीर के प्रत्येक अवयव में कुछ न कुछ विकार आ ही जाता है। इन सब कामों को अच्छी तरह सम्पादित करने के लिये वसन्तमालती का उपयोग किया जाता है और उसके द्वारा शरीर का प्रत्येक अवयव सबल और पुष्ट हो जाता है।

यह रसायन पाचक और दीपक होने से मन्दाग्नि के लिये भी प्रयोग किया जाता है। किसी भयंकर व्याधि से मुक्त होने के बाद धातु क्षीण हो जाने से शरीर बहुत कमजोर हो जाता है, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि बनी रहती, जो थोड़ा-बहुत कुछ खाया भी गया, तो पाचक रस की उत्पत्ति न होने के कारण अजीर्ण-सा बना रहता है, जिससे रस-रक्तादि धातु भी पुष्ट नहीं हो पातें। ऐसी अवस्था में वसन्तमालती के प्रयोग से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर अजीर्ण-दोष को नष्ट करती है तथा पाचनक्रिया को सुधार कर रस-रक्तादि धातुओं को बल प्रदान करती है। यह शरीर के वर्ण को निखार देती है। धीरे-धीरे कमजोरी दूर हो, रोगी स्वस्थ और कान्तिवान हो जाता है।

सुवर्ण कीटाणुनाशक है, अतएव राजयक्ष्मा में उत्पन्न कीटाणुओं को नाश करने की शक्ति इसके द्वारा प्राप्त होती है। राजयक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में सूखी खाँसी, ज्वर विशेषकर रात को ज्वर की गर्मी बढ़ जाना, प्रातः पसीना आना तथा रस-रक्तादि धातुओं की क्रमिक क्षीणता के कारण शरीर का धीरे-धीरे कमजोर होता जाना, ऐसी परिस्थिति में वसन्तमालती के उपयोग से बहुत लाभ होता है। अनुपान में प्रवाल चन्द्रपुटी और गुर्च सत्व १-१ रत्ती मिलाकर आँवले के

मुरब्बे के साथ दें। इससे कफ ढीला होकर निकलने लगता है और बुखार की गर्मी भी क्रमशः कम होने लगती है। सब से प्रधान कार्य यह होता है कि इस योग से शारीरिक बल का नाश नहीं हो पाता।

मलेरिया ज्वर में- जाड़ा देकर बुखार आता है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि अनेक प्रकार की सिद्धौषधियाँ-कनैन, सोमल कल्प आदि दिये जाने पर भी यह बुखार नहीं रुकता है, रोगी दवा लेने से भी घबराने लगता है, प्लीहा वृद्धि भी हो जाती है, शरीर दुर्बल और पाण्डुवर्ण का हो जाता है, अन्न में अरूचि, अग्निमांद्य आदि लक्षण हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में यह रसायन अपना अपूर्व चमत्कार दिखलाता है। सुवर्ण और मोती के मिश्रण की वजह से इसमें रोगप्रतिकारक अपूर्व शक्ति है। यह अपनी शक्ति द्वारा रोग की शक्ति कम कर उस पर विजय प्राप्त करके रोगी को सब उपद्रवों से मुक्त कर स्वस्थ बना देता है। इस दवा के सेवन के साथ ही प्लीहा नाश करने के लिये लोहासव रोहितकारिष्ट आदि दवाओं को सेवन करना चाहिए।

रक्तस्राव- स्त्रियों का अधिक रज:स्राव होने या बच्चा होने के समय ज्यादा रक्त निकल जाने पर अन्य धातुओं की भी क्षीणता होने लगती है, जिससे शरीर कमजोर तथा कान्तिहीन हो जाता है, अग्निमांद्य व वात-प्रकोप के कारण सम्पूर्ण शरीर में दर्द, हाथ-पैर और अंगों में जलन, भूख नहीं लगना, निरुत्साह, स्वभाव चिड़चिड़ा, गुस्सा ज्यादा, रक्त की कमी से शरीर पीला हो जाना आदि लक्षण होने पर वसन्तमालती देने से अच्छा लाभ होता है। कभी-कभी इन लक्षणों के साथ शरीर सूज जाता है। प्रधानतया दोनों पैर और मुख पर सूजन होती है। ऐसी स्थिति मे मण्डूर या लौह भस्म के साथ वसन्तमालती देना अच्छा है। साथ में दशमूलारिष्ट या अश्वगन्धारिष्ट का भी सेवन करना बहुत लाभदायक है।

स्त्रियों के श्वेतप्रदर में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में यह बहुत शीघ्र और अच्छा फायदा करता है। यह गर्भाशय और योनिस्थित श्लैष्मिक-कला को बल देता है, जिससे स्राव अपने आप रुक जाता है। इस तरह पुरुषों की धातु-क्षीणता में अत्याधिक स्त्री-प्रसंग या अप्राकृतिक ढंग से शुक्र का नाश करने या स्वप्न दोष आदि कारणों से शुक्र धातुह्रास हो जाने से शरीर कमजोर, मन्दाग्नि (भूख न लगना), विचार और स्मरणशक्ति का नाश हो जाना, किसी कार्य में उत्साह न होना किसी से बोलने की भी इच्छा न होना, एकान्तप्रिय होना, मस्तिष्क शून्य मालूम पड़ना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसका कारण यह है कि शुक्र की क्षीणता होने से अन्य धातुएँ भी निर्बल हो जाती हैं तथा शरीर के अन्तरवयव भी कमजोर हो जाते हैं। इन सब की कमजोर को दूर करने तथा शुक्र को पुष्ट करने के लिए वसन्तमालती का प्रयोग किया जाता है।

जीर्ण ज्वर के लिये तो यह प्रसिद्ध औषध है, पुराने अतिसार तथा पुराने संग्रहणी में बल व मांस क्षीण होने पर शक्ति का नाश हो जाता है। इस अवस्था में शारीरिक शक्ति की रक्षा के लिये इस दवा का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।-औ.गु.ध.शा.

नेत्रों से चिपड़ (गीड़) अधिक निकलना, लाली बनी रहना, दृष्टि की दुर्बलता आदि नेत्रविकारों में भी इसके प्रयोग से उत्तम लाभ होता है। मस्तिष्क की कमजोरी या अधिक परिश्रम के कारण उत्पन्न सिरदर्द में मक्खन और मिश्री के साथ देने से बड़ा उत्तम लाभ होता है।

स्मृतिसागर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनशिल, स्वर्णमाक्षिक भस्म और ताम्र भस्म- ये

सब समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर बच के क्वाथ की २१ भावना और ब्राह्मी क्वाथ की २१ भावना देकर सुखा लें। फिर मालकांगनी तैल की १ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना सुरक्षित रख लें। -र.यो.सा.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम घी के साथ दें, अथवा गरम दूध में ब्राह्मी घृत मिलाकर उसके साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिये परमोपयोगी है। इसके सेवन से स्नायविक दुर्बलता मिटती है। मस्तिष्क की कमजोरी से पैदा होनेवाले रोग-मूर्च्छा, उन्माद, मृगी, हिस्टीरिया आदि में इसका प्रयोग करना बड़ा लाभदायक है। ज्ञानवाहिनी नाड़ियों को इसके सेवन से बल और चेतना प्राप्त होती है।

इस रसायन का विशेष उपयोग मानसिक रोगों में होता है। मनोविभ्रम के कारण होनेवाले उन्माद रोग में यह बहुत काम करता है। यह रोग मानसिक चिन्ता, दुख, शोक, भय, कार्य में दिनरात लिप्त रहने, गाँजा, शराब, भाँग आदि का अधिक व्यवहार करने, अति स्त्री-प्रसंग, माथे में चोट लगने से तथा पुराने आतशक आदि कारणों से उत्पन्न होता है। इन कारणों में प्रधान कारण मानसिक प्रकृति या ज्ञानवाहिनी नाड़ी की शिथिलता (कमजोरी) है। पित्त की वृद्धि हो रक्त में एकाएक गर्मी बढ़ जाती है, फिर यह गर्मी मस्तिष्क की ओर जाकर वहाँ की नाड़ियों को कमजोर बना देती है जिससे दिमाग ठीक-ठीक काम नहीं करता, भूल पर भूल होना, जरूरी काम भी भूल जाना, चित्त अस्थिर (चंचल), चंचलता के कारण किसी काम में मन न लगना, आलस्य, नींद न आना, भूख कम लगना, विशेष चिन्ता ये लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। किसी-किसी मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वह किसी की भी बात नहीं सुनता, असहनशीलता बहुत बढ़ जाता है। रोग मानसिक और शारीरिक दोष के भेद से दो प्रकार के होते हैं। दोषात्मक के अनेक लक्षण शास्त्र मे वर्णित है। इसके अतिरिक्त देव और पितृगृह सम्बन्धी भी होते हैं। कोमल प्रकृतिवालों को यह रोग शीघ्र हो जाता है। इसलिये स्त्रियाँ इस रोग से शीघ्र ही आक्रान्त हो जाती है।

हिस्टीरिया (गर्भाशयोन्माद)- यह रोग जवान लड़कियों को उनकी संभोग इच्छा की तृप्ति नहीं होने पर अधिकतर होता है। बड़ी आयुवाली स्त्रियों को प्रायः यह रोग कम होता है इनमें भी जो लड़कियाँ अधिक चंचल, ज्यादा गुस्सेवाली तथा सहनशक्ति की कमी वाली हों उन पर इस रोग का बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त अधिक चिन्ता, शोक, भय, पारिवारिक कष्ट, आकस्मिक मानसिक आघात, प्रसूत रोग, मासिक धर्म की गड़बड़ी आदि कारणों से भी होता है। कभी-कभी पति से विद्वेष होने के कारण भी यह रोग उत्पन्न होते देखा गया है।

हिस्टीरिया रोग का दिमाग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दिमाग अधिक परेशान होने पर रोग विशेष रूप से प्रगट होता है। यदि दिमाग की परेशानी मामूली रही, तो रोग भी मामूली ही हालत में रहता है। अतः रोग-परीक्षा करते समय दिमाग की तरफ खूब ध्यान रखना चाहिए। दिमाग ज्ञान और चेतना का केन्द्र है। दिमाग की गड़बड़ी के कारण ही ज्ञानेन्द्रियों में भी गड़बड़ी पैदा होती है, अतएव इस रोग में देखने, सुनने, सूँघने, बोलने या छूने मे विकार पैदा हो जाता है। किसी-किसी हिस्टीरिया रोग में दृष्टि मारी जाती है, तो किसी में सामने देखने में फर्क मालूम पड़ता है। कोई ऊँचा सुनता है, तो कोई बिल्कुल नहीं सुनता, किसी-किसी की बोली बन्द हो जाती है, किसी को स्पर्श-ज्ञान का इतना ह्रास हो जाता है कि सुई चुभोने पर भी जल्दी उसे मालूम नहीं देता। इसी प्रकार किसी की सूँघने की शक्ति ही मारी जाती है।

हिस्टीरिया का प्रधान लक्षण मूर्च्छा या बेहोशी का दौरा है। यह दौरा किसी किसी को २४ घण्टे से ४८ घण्टे तक निरन्तर होते देखा गया है। अनेक रोगियों में निरन्तर और बार-बार जल्दी दौरा होते देखा गया है। ऐसी अवस्था में होश आते ही पुनः दौरा आ जाता है। बेहोशी की हालत में दाँत बैठ जाते, शरीर अकड़ जाता है। रोगिणी हाँथ-पैर पटकती है, कभी-कभी मृगी रोग की तरह मुंह से फेन भी निकलने लगता है, किन्तु हिस्टीरिया रोग में मृगी की तरह शरीर नीला नहीं होता तथा आँखों की पुतलियाँ फिर नहीं जाती और न ज्ञान-शक्ति का एकदम लोप ही हो जाता, रोगिणी को भीतरी ज्ञान कुछ -कुछ बना रहता है। इस रोग में स्मृतिसागर रस के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

नोट- आजकल उन्माद रोग के लिये सर्पगन्धा का विशेष उपयोग किया जाता है। और फल भी अच्छा मिलता है। मैने पटना मे ऐसे दो उन्माद रोगियों को सर्पगन्धा से अच्छा किया, जिसको डॉक्टर ने भी जवाब दे दिया था। अतएव, स्मृतिसागर रस के साथ सर्पगन्धा के चूर्ण का भी अवश्य प्रयोग करना चाहिए।

हिस्टीरिया में यदि पित्त की अधिकता के कारण चक्कर आना, दाह होना, कमजोरी के कारण आँखों के सामने अन्धेरा छा जाना आदि लक्षण हों, तो स्वर्णमाक्षिक भस्म और प्रवालपिष्टी के साथ स्मृतिसागर रस मिश्री मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है।

यदि प्रकुपित कफ और मासिक धर्म की गड़बड़ी के कारण यह रोग हो, तो केवल स्मृतिसागर रस का ही प्रयोग करना चाहिए।

बच्चों के धनुष्टंकार रोग में भी इस रसायन का उपयोग किया जाता है। इस रोग में बार-बार दौरा होता है, दौरे के समय बच्चा बेहोश हो जाता, श्वास की गति धीमी पड़ जाती, नाड़ी क्षीण, शरीर ठण्डा वायु के झटके से हाथ-पैर अथवा सम्पूर्ण शरीर चलायमान हो जाना आदि लक्षण होते हैं। इस हालत में 'स्मृतिसागर रस' के सेवन कराने से लाभ होता है। इससे प्रकुपित वात शान्त हो जाता है। बच्चों के लिए यह बहुत भयंकर रोग है। अतः इसमें खूब सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिए।

इसी तरह अधिक शीत लगने, ठण्डी हवा अथवा गीली जगह में सोने, ज्यादा देर तक पानी में भींगने या गीले वस्त्र अधिक देर तक पहनने से वात-प्रकुपित हो शरीर के एकभाग के अंग को विकृत कर देता है। इसमें शरीर में चिनचिनी-सी होना, उस भाग के इन्द्रियांश शिथिल और अकर्मण्य हो जाना, बोलने में भी कष्ट होना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति में 'स्मृतिसागर रस' के उपयोग से वातवाहिनी नाड़ी की विकृति धीरे-धीरे दूर होने लगती है और रक्त का संचार भी होने लगता है। फिर क्रमशः हाथ-पाँव आदि में भी ताकत आ जाती है।

आक्षेप जनित वात रोगों में संज्ञावाहिनी शक्ति की क्षीणता (ह्रास) होने अथवा मस्तिष्क सम्बन्धी कोई भी बीमारी हो, तो स्मृतिसागर रस का उपयोग किया जाता है।

किसी-किसी मनुष्य की स्वस्थ रहते हुए भी स्मरणशक्ति बिल्कुल कम होती है। ऐसे लोगों में कफ-वृद्धि अवश्य रहती है, क्योंकि स्मृति (स्मरण) शक्ति को नाश करने में कफ का सबसे प्रधान हाथ रहता है। कफाधिक्य के कारण चेतनाशक्ति आच्छादित हो जाती है, फिर विचारने या किसी चीज को स्मरण करने की शक्ति लुप्त हो जाती है। इस शक्ति को सबल और सचेष्ट बनाने के लिए स्मृतिसागर रस का उपयोग करना लाभदायक है।-औ.गु.ध.शा.

सिद्धप्राणेश्वर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म ४-४ तोला तथा सज्जीखार, सुहागे की खील, यवक्षार पाँचों नमक (सेन्धा, काला, विड् नमक, सांभर और सामुद्र नमक) हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ,

मिर्च, पीपल, इन्द्रजौ, सफेद जीरा, काला जीरा, चित्रकमूल, अजवायन, शुद्ध हींग, वायविडंग, और सौंफ इनक चूर्ण १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला अच्छी तरह जल से खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर सुरक्षित रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली चार-चार घण्टे बाद दें। दिन में चार बार तक दें। पान के रस और मधु के साथ चटाकर ऊपर से गर्म जल पिला दें। धान्य-पंचक क्वाथ या वत्सकादि क्वाथ के साथ अथवा अर्क सौफ के साथ देने से भी अच्छा लाभ होता है।

गुण और उपयोग- यह रसायन पाचक, दीपन, कोष्ठगत, वात-नाशक, और जीर्णज्वरनाशक है। ज्वरातिसार, पेट में कैंची से काटने की तरह दर्द, बार-बार अपचित और पतला दस्त होना, नाड़ी की गति क्षीण होना, सम्पूर्ण शरीर में दर्द, अन्न में अरुचि, तन्द्रा, अन्न और पानी की इच्छा न होना, ऐसी अवस्था में यकृत कमजोर होकर अपना काम करने में असमर्थ हो जाता है। इस हालत में सिद्धप्राणेश्वर रस का उपयोग करने से लाभ होता है।

इस रसायन में-कज्जली-योगवाही, रसायन और आन्त्रिक विष को दूर करने वाली है। अभ्रक भस्म-रसायन ओर रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट करने वाली है। सज्जीखार-यकृत को शक्ति देने वाला और पाचक है। जीरा-पाचक और वातहर है। पाचों नमक-पाचक ओर यकृत शक्तिवर्द्धक है। हींग-वातहर और शूलघ्न है। इन्द्रयव-यकृत से पित्तस्राव कराता है, अतएव यकृत् शक्तिवर्द्धक है। चित्रकमूल-पाचक और दीपन है।-औ.गु.ध.शा.

सिद्धदरदामृत रस

चार तोला की शुद्ध हिंगुल की एक डली लेकर उसको चारों ओर से सूत के तागे से खूब अच्छी तरह से लपेट दें। पश्चात् इसको एक लोहे की कड़ाही या कड़ाही सदृश मिट्टी के पात्र में रखकर चूल्हे पर चढ़ावें और कड़ाही में १६ तोला परिमाण प्याज का रस और २ तोला परिमाण बड़ का दूध डालकरनीचे चूल्हें में अग्नि जलावें। जब जलीयांश शुष्क हो जाये तो कड़ाही को नीचे उतारकर शीतल होने पर हिंगुल के टुकड़े को निकाल कर फिर उस कड़ाही को अच्छी प्रकार साफ करके चूल्हे पर चढ़ावें और उसमें लौंग का चूर्ण २ तोला डालकर उसके ऊपर हिंगुल के खण्ड को भली प्रकार टिका दें। फिर इस हिंगुल खण्ड के ऊपर २५ तोला भिलावा फलों को इस प्रकार रखें, जिसके ऊपर को पतला नोकदार और नीचे को चौड़ा आकार (जैसा बाजार में टोकरियों में लगाया गया आटा होता है) बन जाय। अब भिलावा फलों के बीच के छिद्रों को लौंग के चूर्ण से अच्छी प्रकार से बन्द कर दें, और नीचे चूल्हें में अनि जलाकर पाक करें। जब भिलावें जल जावें, तब इनको बीच से हटाकर इनमें हिंगुल से दश गुना (४० तोला), घृत थोड़ा-थोड़ा डालकर इसे भी जलावें। अब कड़ाही को नीचे उतारकर, शीतल करके, हिंगुल को अच्छी प्रकार पोंछ एवं साफ करके खरल में सूक्ष्म मर्दन कर रखें। इस योग को प्रथम शिवजी ने सिद्ध लोगों को दिया था। अतः यह योग संसार में सिद्धदरामृत नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती या आवश्यकतानुसार दिन में दो बार पान के रस और शहद से या अदरक रस और शहद अथवा रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

नोट- इस रसायन की पूर्ण मात्रा आधी रत्ती है, किन्तु रोगी के बल, दोषादि को दृष्टि में रखकर मात्र घटाई-बढ़ाई भी जा सकती है।

गुण और उपयोग- यह रसायन श्रेष्ठ बल-वीर्यवर्ध, ओजवृद्धिकर और पौष्टिक है। इसके सेवन से उरूस्तम्भ, आमवात, पक्षाघात आदि भयंकर वातजन्य रोगों में विशेष लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त दारुण शीतांग सन्निपात में भी यह शीघ्र लाभ करता है और पुरातन सान्निपातिक प्लीहा तथा नपुंसकता को नष्ट करता है। रोगानुसार विशेष अनुपानो के साथ प्रयोग करने पर अनेक रोगों को नष्ट करने में उत्कृष्ट गुणदायक महौषध है। मन्दाग्नि और संग्रहणी में, कपड़े में दही को लटकाकर पानी निकाल कर उसे गाढ़े दही में १ माशा शुण्ठीचूर्ण और आधी रत्ती यह औषध मिलाकर सेवन करने से बहुत अच्छी भूख लगती है। इससे पाचकाग्नि अच्छी बढ़ जाती है और पाचनक्रिया सुधर जाती है। अतः संग्रहणी में यह श्रेष्ठ लाभ करती है।

सिन्दूरभूषण रस

रससिन्दूर २ तोला, स्वर्ण भस्म या वर्क ६ माशा, अफीम ६ माशा, शुद्ध कपूर ६ माशा, छोटी इलायची बीज चूर्ण १ तोला, वंशलोचन चूर्ण १ तोला लेकर सबको एकत्र खरल में नागरमोथा के क्वाथ के साथ खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु या छाछ (मट्ठा)के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन वातनाशक, संग्रहणी, तथा आन्त्रिक विकारों का नाश करने वाला है। पुराना अतिसार और संग्रहणी के लिए यह बहुत उत्तम है। यह बलवर्द्धक और शरीर के किसी भी हिस्से में उत्पन्न दर्द का नाश करने वाला है। स्नायु मण्डल को शक्ति प्रदान कर काम-शक्ति को जागृत करता एवं स्तम्भन करता है। रस रक्तादि धातुओं को पुष्ट करने में भी उत्तम है।

सुधानिधि रस (शोथ)

मण्डूर भस्म १० तोला, धनियां, सुगन्धबाला, नागरमोथा, सोंठ और सेंधानमक का चूर्ण १-१ तोला लें। प्रथम काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण कर फिर मण्डूर भस्म के साथ मिलाकर गोमूत्र, भांगरा, पुनर्नवा, काला भांगरा, संभालू और मण्डूकपर्णी इनके रस की पृथक्-पृथक् १४-१४ भावना देकर खरल में खूब महीन घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली मट्ठा या भांगरे के रस के साथ सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- किसी भी कारण से पैदा हुए नये-पुराने शोथ (सूजन) रोग की यह उत्तम दवा है। रोगी नमक छोड़ कर मट्ठे के साथ इसका व्यवहार करें तो कुछ ही दिनों में सूजन जड़ से मिट जाती है। विशेषतः पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर तथा संग्रहणी से उत्पन्न शोथ में यह अत्यन्त लाभदायक है।

शोथ रोग- स्थानिक और सर्वांगिक भेद से दो तरह के होते हैं। स्थानिक शोथ रोग, हाथ, पैर, मुख आदि शरीर के किसी भाग में होता है। संपूर्ण शरीर में एक साथ सूजन हो जाने को सर्वांगिक शोथ (सूजन) कहते हैं। जहाँ सूजन होती है, वह स्थान नरम और पिलपिला-सा हो जाता है, क्योंकि वहाँ के रक्त में जल भाग विशेष हो जाने से त्वचा नरम हो जाती तथा वह स्थान फूल भी जाता है। यह सूजन पहले कारण भेद से विशेष स्थानों पर होती है। यथा- हृदय की बीमारी के कारण होनेवाली सूजन पहले जांघ और हाथों पर होती है। तिल्ली और जिगर के कारण उत्पन्न होने वाली सूजन पहले पेट पर होती है। मल-संचय से उत्पन्न होनेवाली सूजन पहले पैर और मुँह पर होती है। रज और खराबी से उत्पन्न स्त्रियों की सूजन पहले पैर और मुँह पर होती है। सूजन के साथ अरुचि, ज्वर, दुर्बलता शरीर की त्वचा शुष्क होना आदि लक्षण भी होते है।

इस रसायन का प्रधान कार्य रक्तस्थित जल भाग को सुखाकर रक्ताणुओं की वृद्धि करना है।

शोथ-रोग में रक्ताणुओं की कमी होकर जलीय भाग बढ़ जाते हैं। अतएव जलीय भाग को शुष्क कर रक्ताणुओं को बढ़ाने के लिए ही इस रसायन का उपयोग किया जाता है। साथ ही यह दीपन-पाचन भी है। यह जठराग्नि को दीप्त कर पाचनक्रिया को सुधारता हृदय को ताकत देता और शारीरिक बल को बढ़ाता है।

सुधानिधि रस (रक्तपित्त)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णमाक्षिक भस्म, लौह भस्म-प्रत्येक समान भाग लेकर पारा गन्धक की कज्जली बनावें। फिर सबको एकत्र मिला, त्रिफला-क्वाथ में लौह, मात्र में खरल कर, सुखाकर, पीसकर के सुरक्षित रख लें।-यो.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती सुबह-शाम, दूर्वा का रस या कमल के पत्तों का रस १ तोला ओर मधु १ तोला से दें। इस दवा के सेवन काल में भोजन के बाद उशीरासव १।। तोला में बराबर जल मिलाकर पिलावें। प्रवाल चन्द्रपुटी या प्रवाल पिष्टी के साथ आँवला मुरब्बा में मिलाकर देने से विशेष लाभ करता है।

गुण और उपयोग- इस रसायन का उपयोग विशेषत: रक्तपित्त में किया जाता है। नाक, मुँह, गुदा, मूत्रेन्द्रिय आदि कहीं से भी रक्त निकलता हो, उसमें यह बहुत लाभ पहुँचाता है। जिन लोगो की नाक से खून गिरता है, उनके लिए बहुत लाभदायक है। इस रसायन के सेवन के समय गोदुग्ध को लौह पात्र में गरम कर रात्रि में सोते समय लें। यह रसायन पित्त शामक तथा रक्तरोधक है।

रक्त पित्त में प्यास ज्यादा लगना मुँह सूखना, ज्वर, देह मे जलन आदि उपद्रव होते हैं। इसमें सुधानिधि रस के उपयोग से बहुत लाभ होता है, क्योकि इसमें स्वर्णमाक्षिक और लौह भस्म का संमिश्रण होने से यह रक्त को रोकता तथा रक्ताणुओं की वृद्धि करते हुए शारीरिक बल भी बढ़ाता है।

नकसीर -(नक्की छूटने में) किसी-किसी को ग्रीष्म ऋतु में गर्म पदार्थों के सेवन से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसमें भी पित्त की वृद्धि ही प्रमुख है, अतएव सुधानिधि रस का प्रयोग किया जाता है और इसका फल भी अच्छा ही होता है।

वक्तव्य- कुछ ग्रन्थों में इसे लौहमूषा में रखकर भूधर यन्त्र में पकाने का एवं पश्चात् त्रिफला की भावना देने का भी विधान है, किन्तु अधिकतर ग्रंथों में उपरोक्त विधान से ही बनाने का उल्लेख है। हमने भी इस प्रकार बनाकर प्रयोग करके उत्तम गुणकारी अनुभव किया है।

सुवर्णमालिनी वसन्त रस (बृहत्)

स्वर्ण भस्म (या वर्क)३। तोला, प्रवाल पिष्टी ३।।। तोला, शुद्ध हिंगुल ६। तोला, सफेद मिर्च चूर्ण १० तोला, कस्तूरी १। तोला, गोरोचन १। तोला, नाग भस्म २।। तोला, वंग भस्म ३।।। तोला, अभ्रक भस्म ३।। तोला, केशर १। तोला, मोती पिष्टी ५ तोला, छोटी पीपल का चूर्ण १। तोला, खर्पर (अभाव में यशद) भस्म १३।। तोला लेकर कस्तूरी, केशर और गोरोचन को छोड़कर शेष द्रव्यों को एकत्र मिला, मक्खन ३।।। तोला डालकर मर्दन करें। पश्चात् नीबू रस ३ सेर ५ तोला मिलाकर (मक्खन की स्निग्धता नष्ट होने तक) घुटाई करावें। तैयार होने पर कस्तूरी, केसर और गोरोचन पीसकर मिलावें, पश्चात् सूक्ष्म पीसकर सुरक्षित रखें।-र.यो.सा.

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक दिन में दो बार सुबह-शाम दें। जीर्णज्वर और श्वास-कास में पीपल चूर्ण और मधु के साथ दें। क्षयरोग में मक्खन-मिश्री के साथ दें। हृदय रोगों में मधु के साथ चटाकर ऊपर से अर्जुन छाल का क्वाथ मिलावें, दुर्बल अथवा साधारण रोगों

में मधु से चटाकर ऊपर से गो-दूध पिलावें।

गुण और उपयोग- स्वर्ण, मोती, केशर, कस्तूरी, गोरोचन आदि बहुमूल्य उपादानों से निर्मित यह श्रेष्ठ रसायन क्षय, जीर्णज्वर, धातुगत विषमज्वर, प्लीहा वृद्धि, यकृद्विकार, मन्दाग्नि, स्त्रियों का प्रदर रोग, मस्तिष्क की निर्बलता, कास-श्वास, धातु क्षीणता, हृदयरोग, मस्तिष्क शूल आदि में उत्कृष्ट लाभकारी है। किसी रोग से अथवा व्यायाम या वृद्धावस्था के कारण आयी निर्बलता इस रसायन के सेवन से नष्ट होती है और राजयक्ष्मा जैसे भयंकर रोग एवं हृदय की दुर्बलता के लिए विशेष लाभप्रद है।

यह औषधि बालक, वृद्ध, युवा, सगर्भा स्त्री इन सबके लिए समानरूप से लाभप्रद है। सब धातुओं में और सब दोषों में ओर सभी प्रकार की प्रकृतिवालों के लिए निर्भयता-पूर्वक इस औषधि का प्रयोग किया जा सकता है। तरुण स्त्रियों के मासिक धर्म में रक्त अधिक जाना, रक्तप्रदर या श्वेत प्रदर के पश्चात् होनेवाली पाण्डुता एवं दुर्बलता में यह औषधि अमृत-तुल्य लाभप्रद है।

यह रसायन रसवाहिनी नाड़ियों, रसोत्पादक पिण्ड, यकृत प्लीहा आदि की विकृति में सत्वर लाभ करता है। यकृत और प्लीहा के दोष (वृद्धि अथवा शिथिलता) को दूर कर पाचन क्रिया को नियमित बनाना इस औषधि का प्रधान कार्य है। इस कारण से अल्प समय में ही इसके प्रयोग से रस-रक्तादि धातुओं की वृद्धि होकर शरीर सशक्त हो जाता है एवं अनुपान-भेद से अनेक रोगों का नाश करता है।

क्षय में- विशेषतः कीटाणुजन्य क्षय रोग की प्रथमावस्था में शरीर का बल बढ़ाने और रोग-प्रतिकार क्षमता बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य इस रसायन के प्रयोग से सरलता से हो जाता है। रोग प्रतिकार क्षमता बढ़ जाने पर क्षयोत्पादक कीटाणुओं का नाश स्वयमेव हो जाता है। कफज क्षय की प्रथमावस्था में शुष्क कास, मन्द ज्वर, विशेषतः सायंकाल को तापमान बढ़ना, दिन-प्रतिदिन निर्बलता की वृद्धि होना और प्रातःकाल स्वेद अधिक आना आदि लक्षणयुक्त दशा में प्रवालपिष्टी और सितोपलादि चूर्ण मिला कर इस रसायन का सेवन कराने से विशेष और शीघ्र लाभ होता है।

जीर्ण ज्वर में प्लीहा-वृद्धि और अग्निमांद्य आदि विशेष रूप से होते हैं। इनमें तथा अधिक समय तक शीतपूर्वक ज्वर एवं आन्त्रिक आदि सान्निपातिक ज्वर के पश्चात् जीर्ण ज्वर हो, इस रसायन का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है।

इसके अतिरिक्त अनुलोमक्षय, प्रतिलोमक्षय, अतिव्यवाय तथा अन्यथाव्यवाय (हस्तमैथुन आदि) कारण जन्य शुक्रक्षीणता एवं ओजक्षीणता में भी इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

स्त्रियों के श्वेतप्रदर रोग में यह रसायन अत्यन्त लाभप्रद है। श्वेतप्रदर में भी अनेक प्रकार हैं। इसमें गर्भाशय या योनि मार्ग की श्लैष्मिक कला में उष्णता होकर प्रदर हुआ हो और रोग नवीन हो तो गिलोयसत्व और शहद के साथ इस रसायन का सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है। बीजाशय की विकृति और व्रण आदि के कारण से प्रदर हो, तो इसके साथ प्रदरान्तक लौह, प्रदरान्तक रस आदि औषधियों का सेवन तथा बाह्य उपचार भी करना विशेष उपयोगी है।

स्वर्णमालिनी वसन्त (लघु)

स्वर्ण भस्म या वर्क १ तोला, मोती भस्म या पिष्टी २ तोला, शुद्ध हिंगुल ३ तोला सफेद मिर्च का चूर्ण ४ तोला, खर्पर (अभाव में यशद) भस्म १ तोला लेकर प्रथम सबको एकत्र मिलाकर

मक्खन के साथ मर्दन करें। पश्चात् कपड़े से छने कागजी नींबू के रस के साथ थोड़ा-थोड़ा रस डालकर तब तक मर्दन करें जब तक कि मक्खन की स्निग्धता नष्ट न हो जाय। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की बत्ती बना, सुखाकर सुरक्षित रखें। सामान्यतया मक्खन की स्निग्धता नष्ट करने के लिये ९५ नींबू का रस पर्याप्त होता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक सुबह-शाम पीपल चूर्ण २ रत्ती और मधु के साथ चटाकर ऊपर से धारोष्ण गो-दुग्ध या मिश्री मिश्रित सुखोष्ण गो-दुग्ध पिलावें अथवा सितोपलादि चूर्ण एक माशा और मधु के साथ दें। -र.यो.सा.

गुण और उपयोग- यह रसायन जीर्णज्वर, सप्त धातुगत ज्वर, राजयक्ष्मा रोग से छूटने के बाद की निर्बलता, स्त्रियों का श्वेतप्रदर या रक्तप्रदर, अग्निमांद्य, मस्तिष्क की निर्बलता, कास-श्वास, धातुक्षीणता, हृदयरोग आदि में उत्कृष्ट लाभकारी है। शरीर में बल, वर्ण और ओज की वृद्धि करता है तथा पुष्टिकारक है। मस्तिष्क में स्फूर्ति और बल उत्पन्न करना इस औषधि का प्रधान कार्य है। इसके प्रयोग से ज्ञानवाही तन्तु और चेतना केन्द्र को अपूर्व शक्ति मिलती है। यह रसायन बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष तथा सगर्भा स्त्री सबके लिए समान रूप से लाभकारी औषधि है। यह किसी भी जीर्णविकार जन्य दुर्बलता में श्रेष्ठ उपकार करती है। विशेष गुण-धर्म स्वर्णमालिनी वसन्त बृहत् के समान ही है।

सूतशेखर रस नं. १ (स्वर्ण युक्त)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, शुद्ध सुहागा, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध धतूरे के बीज, ताम्र भस्म, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेसर, शंख भस्म, बेलगिरी, और कचूर प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, शेष दवाओं का कपड़छन चूर्ण मिला २१ दिन भांगरे के रस में मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ (बत्ती जैसी) बना, छाया में सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शहद १।। माशा, गाय का घी ३ माशा, मीठे बेदाने या दाड़िम का रस, दाड़िमावलेह या शर्बत अनार अथवा लाजमण्ड के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन के उपयोग से अम्लपित्त, वमन, संग्रहणी, खाँसी, गुल्म, मन्दाग्नि, पेट फूलना, हिचकी आदि रोग नष्ट होते हैं। श्वास तथा राजयक्ष्मा में भी इसका प्रयोग किया जाता है। यह रसायन पित्त और वातजन्य विकारों को शान्त करता है। विशेषतया पित्त की विकृति जैसे अम्लता या क्षीणता या आमाशय अथवा पित्ताशय में पित्त कमजोर हो अपना कार्य करने में असमर्थ हो गया हो, तो उसे सुधारता है। अतएव इसका प्रयोग अम्लपित्त में खट्टा वमन, कोष्ठ में दर्द होना, उदावर्त आदि पित्त-विकृति रोगों में प्रायः अधिक किया जाता है। यह पित्तदोषनाशक होते हुए हृदय को बल देनेवाला तथा संग्राही (दस्त को बाँधने वाला) भी है। इसलिए राजयक्ष्मा की प्रथम और द्वितीयावस्था में तथा संग्रहणी और अतिसार आदि वात प्रधान रोगों में दस्त कम करने तथा हृदय को बल पहुँचाने के लिए इसे देते हैं। सूखी खाँसी-जिसमें कफ नहीं निकलता हो और रात में खाँसी का प्रकोप ज्यादा होता हो, तो सूतशेखर रस को सितोपलादि या तालिसादि चूर्ण के साथ उपयोग करने से खाँसी दूर हो जाती है।

यह पाचक पित्त की विकृति को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है और कोष्ठ में होनेवाले दर्द को दूर करता है, क्योंकि यह वेदना-शामक भी है, परन्तु यह अफीम की तरह शीघ्र ही वेदना (दर्द) का शमन नहीं करता, क्योंकि यह अफीम जैसा तीक्ष्ण-वीर्य प्रधान नहीं है। यद्यपि

इसका प्रभाव दर्द में धीरे-धीरे होता है, परन्तु स्थायी होता है। यह उपद्रव को शान्त करते हुए मूल रोग को नष्ट करता है।

जैसे- अम्लपित्त में वात-प्रकोप से दर्द होता है और पित्त-प्रकोप के कारण खट्टा वमन होता है, ये लक्षण प्रधानतया देखने में आते हैं। सूतशेखर रस वात-पित्तशामक गुण के कारण उपरोक्त दोनों विकारो को नष्ट करते हुए अम्लपित्त रोग को भी नष्ट कर देता है। इसलिए इसका प्रभाव धीरे-धीरे किन्तु स्थायी होता है।

सूतशेखर रस का प्रभाव वातवाहिनी और रक्तवाहिनी शिराओं पर भी होता है। रक्तपित्त की गति में वृद्धि हो जाने के कारण हृदय और नाड़ी की गति में वृद्धि हो जाने के कारण हृदय और नाड़ी की गति में वृद्धि हो जाती है। इसको सूतशेखर रस कम कर देता है। इस रसायन से रक्तवाहिनी नाड़ी कुछ संकुचित हो जाती है, जिससे बढ़ी हुई रक्त की गति अपने-आप रुक जाती है। रक्त की गति कम होने पर हृदय की गति भी ठीक रूप से चलने लगती है, जिससे हृदय को कुछ शान्ति मिल जाती है, अतएव यह हृद्य है।

आन्त्रिक सन्निपात में- पित्ताधिक्य होने पर सिर में दर्द, अण्ट-सण्ट बोलना, नींद न आना, प्यास, पीलापन लिये जलन के साथ दस्त होना, रक्त की गति में वृद्धि होना, सूखी खाँसी, पेशाब में पीलापन आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस, प्रवाल चन्द्रपुटी और गिलाये सत्व में मिलाकर देने से पित्त की शान्ति हो जाती तथा बढ़ी हुई रक्त की गति कम हो जाती है। फिर धीरे-धीरे रोगी अच्छा होने लगता है।

शरीर में वात और पित्त की वृद्धि से रक्त दूषित हो जाने पर रक्त का संचार सीधा न होकर कुछ टेढ़ा-मेढ़ा होने लगता है। यह संचार माथे की तरफ ज्यादा होता है। जिससे सिर मे चक्कर आने लगता है, रोगी को मालूम होता है कि समस्त संचार घूम रहा है। रोगी बैठा हुआ रहे तो भी उसे मालूम होता है कि वह चल रहा है या ऊपर, नीचे आ-जा रहा है। इसमें आँखें बन्द हो जाती हैं, माथा शून्य होता है और कानों में सनसनाहट होने लगती हैं, हृदय की गति शिथिल हो जाती हैं, रोगी कभी-कभी घबराने भी लगता है। ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस शंखपुष्पी चूर्ण १ माशा और यवासा चूर्ण १ माशा के साथ मिश्री मिला, गो-दुग्ध या ठण्डे जल के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

आक्षेप जन्य वायु रोग में- जैसे धनुष्टंकार, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), अपतानक, धनुर्वात आदि रोगों में भी इसका उपयोग होता है, परन्तु ये रोग वात-पित्तात्मक होने चाहिए।

कभी-कभी स्त्रियों को बच्चा पैदा होने के बाद अथवा मासिक धर्म खुल कर न होने से या दर्द के साथ होने पर चक्कर आने लगता है। यह चक्कर रह-रह कर आता है। इससे गर्भाशय में दर्द होना, कोष्ठ में दर्द होना, घबराहट और कमजोरी बढ़ते जाना, थोड़ा-थोड़ा वमन होना, बेचैनी, वमन होने के बाद पेट में दर्द होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में सूतशेखर रस के उपोग से वातजन्य आक्षेप तथा पित्तज दोष शान्त हो जाते हैं।

वातज सिर-दर्द में- सिर में कील ठोंकने के समान पीड़ा होने से रोगी का व्याकुल हो जाना, सम्पूर्ण माथे में दर्द होना, दर्द के मारे रोगी का पागल-सा हो जाना, रोना चिल्लाना आदि लक्षण होते हैं और पित्तज सिर दर्द में-सिर में जलन के साथ दर्द होना, कफ और मुँह सूखना, वमन होना आदि लक्षण होते है। इसमें सूतशेखर रस बहुत फायदा करता है।

आमाशय की श्लैष्मिक कला में सूजन के साथ छोटे-छोटे पतले व्रण हो जाते हैं, फिर इसमें

कड़े अन्न का संयोग होने से दर्द होने लगता है और वह अन्न वहाँ पर रहकर सड़ने लगता है और जब वमन के साथ वह अन्न निकल जाता है तब कुछ शान्ति मिलती है। ऐसी अवस्था में सूतशेखर रस देने से आमाशय के व्रण का रोपण हो जाता तथा पित्त का स्राव भी नियमित रूप से होने लगता और अपचन आदि विकारों के नष्ट होने से दर्द भी नहीं होतीा है। -औ.गु.ध.शा.

सूतशेखर रस (स्वर्ण-रहित)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रौप्य भस्म, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध टंकण, ताम्र भस्म, दालचीनी, तेजपान, छोटी इलायची, नागकेसर, शंख भस्म, बेलगिरी, कचूर प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली, बनावें। पश्चात् अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सुक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। फिर कज्जली चूर्ण और भस्म इन सबकों एकत्र मिला भाँगरे के रस की २१ भावना दें। अथवा भांगरे के रस से २१ दिन मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।-सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

वक्तव्य- आचार्य यादव जी कृत सिद्धयोग संग्रह में सूतशेखर रस नाम से जो योग है, उसे स्वर्णसहित बनाने पर वह सूतशेखर रस स्वर्णयुक्त कहा जाता है और बिना स्वर्ण डाले जो बनाया जाता है, उसे स्वर्णरहित सूतशेखर रस कहा जाता है। साधारण परिस्थिति के लोग जो अर्थाभाव के कारण स्वर्ण सहित सूतशेखर नहीं बना सकते या खरीद सकते उन्हें यदि स्वर्ण रहित सूतशेखर का सेवन कराया जाये, तो यह भी पर्याप्त लाभ करता है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शक्कर अथवा मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- अम्लपित्त, भ्रम रोग (चक्कर आना), मूत्रकृच्छ्र, सूर्यावर्त रोग, रक्तपित्त, मुँह को छाले आदि पित्त-जनित रोग इस रसायन के सेवन से नष्ट होते हैं। इस रसायन में स्वर्ण को छोड़कर अन्य सब द्रव्य पूर्वोक्त सूतशेखर स्वर्णयुक्त के समान ही है, किन्तु स्वर्ण न होते हुए भी इसमें अपूर्व चमत्कारिक गुण हैं। यह प्रकुपित वात को शान्त करता है तथा पित्त-विकृति के कारण उत्पन्न होनेवाले रोगों का नाश करता है। अम्लपित्त, उन्माद, चक्कर आना आदि पित्त-जनित रोगों में इससे बहुत लाभ होता है।

पित्त-प्रकोप के कारण नींद न आना, गला सूखना, जलन होना, आँखों में दाह होना, सम्पूर्ण शरीर घूमते हुए मालूम होना, पेट में जलन, आदि रोगों में यह रसायन बहुत फायदा करता है, यह रक्त-स्तम्भक तथा रक्त प्रसादक और बलवर्द्धक भी है।

पूर्वोक्त सूतशेखर रस स्वर्ण-युक्त के समान ही इसके भी गुणधर्म हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि उसमें स्वर्ण का सम्मिश्रण होने से वह विशेष सौम्य और हृदय तथा मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने में विशिष्ट प्रभावशाली है शेष सभी गुण दोनों में समान हैं।

सूतिकारि रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली कर सबकों एकत्र मिलाकर मण्डूकपर्णी के रस में १ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह शाम त्रिकटु चूर्ण मिले हुए दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- स्त्रियों के बच्चा पैदा होने के बाद ज्वर, हाथ पाँव में जलन, खाँसी,

प्यास की अधिकता, भोजन में अरूचि, सूजन, मूत्रमार्ग से धातु जैसा सफेद पदार्थ का निरन्तर स्राव होना आदि अनेक प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे स्त्रियाँ बहुत कमजोर हो जाती है। ऐसी स्त्रियों का दूध भी दूषित हो जाता हैं, जिसके पीने से बच्चा भी रोगी हो जाता है। बच्चे को तरह-तरह के रोग आ घेरते हैं। इस रसायन के सेवन से प्रसूता के सब उपद्रव नष्ट होकर अग्नि तथा बल की वृद्धि होती है। प्रसूत रोग के लिए यह उत्तम औषधि है।

सूतिकाभरण रस

स्वर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, शुद्ध हरिताल, शुद्ध मैनशिल, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, कुटकी ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् काष्ठौषधियों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण बनाकर एवं अन्य भस्मों को एकत्र मिला कर आक का दूध, चित्रकमूल, छाल का क्वाथ, पुनर्नवा, मूल-स्वरस या क्वाथ की १-१ भावना देकर १-१ दिन मर्दन करें। टिकिया बनने योग्य होने पर छोटी-छोटी टिकिया बना, सुखा, सराव-सम्पुट में रखकर सन्धिबन्द कर धूप में सुखा, लघुपुट में फूँक दे। स्वांग-शीतल होने पर निकाल कर सूक्ष्म मर्दन कर सुरक्षित रखें। -यो.र.

वक्तव्य- मूल ग्रन्थ के पाठानुसार गजपुट की अग्नि देने का विधान है, किन्तु स्वर्णयुक्त बहुमूल्य रसायन होने के कारण यह स्वल्प प्रमाण में ही बनाया जाता है और उतने थोड़े परिमाण के द्रव्यों को गजपुट देना युक्तिसंगत नहीं है, अतः लघुपुट में ही पकाना उचित हैं।

मात्रा और अनुपान- १/२ से १ रत्ती तक आवश्यकतानुसार दिन में दो बार रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का सेवन करने से सभी प्रकार के सूतिकारोग एवं प्रसूत में होने वाले रोग विशेषतः धनुर्वात और त्रिदोषज व्याधियाँ शीघ्र नष्ट होती है।

सूतिका रोग का प्रधान कारण सूतिका-विष है, जो कि प्रसव के समय आवश्यक स्वच्छता न रहने या मलिन वस्त्र या अन्य मलिन वस्तु अथवा मूर्ख दाई के गन्दे हाथों का स्पर्श होने पर बाहर का सेन्द्रिय विष योनिमार्ग में प्रवेश कर जाता है एवं प्रसवकाल की वेदना, प्रसवकाल में योनिमुख या गर्भाशयमुख में व्रण हो जाना, अपरा (आँवल) पतन से गर्भाशय की श्लैष्मिक कला में क्षोभ हो जाना, शोथ और व्रण में विष का प्रवेश हो जाना आदि कारणों से दोष प्रकुपित होकर उसका प्रभाव सर्वांग में होकर सूतिका ज्वर उत्पन्न हो जाता है। इसमें ज्वर के सामान्य लक्षणों के साथ योनि स्राव में दुर्गन्ध आना, गर्भाशय स्पर्श करने पर वेदना, रक्तयुक्त या श्वेत एवं दुर्गन्धयुक्त स्राव होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में इस रसायन के सेवन से श्रेष्ठ लाभ होता है। साथ ही उत्तर बस्ति से योनि मार्ग एवं गर्भाशय का प्रक्षालन करना चाहिए। यह कार्य किसी क्रियाकुशल नर्स (दाई) आदि से ही करना चाहिए, क्योंकि प्रसव हो जाने के बाद गर्भाशय अत्यन्त कोमल हो जाता है। थोड़ी-सी असावधानी होने पर लाभ के स्थान पर हानि हो जाती है।

सूतिका-विष और उससे उत्पन्न दोष-प्रकोप का परिणाम वातवाहिनियों और स्नायु विशेषतः शरीर के बहिमार्ग में स्थित स्नायु-प्रतान पर होकर धनुर्वात की उत्पत्ति होती है। वातवहमण्डल में सुषुम्ना के अग्रभाग और त्रिकास्थि के अन्तर्गत में स्थित जल में दोषदुष्टि अधिक होती है। फिर सर्वांग में आक्षेप आने लगता हैं, झटके के कारण समस्त शरीर धनुष के सदृश मुड़ जाता है जो शरीर के भीतर की ओर मुड़ता है उसे अंतरायाम कहते हैं। धनुष्कम्प आदि शब्द लक्षण द्योतक हैं। इस प्रकार धनुर्वात रोग सूतिका स्त्री एवं अन्य मनुष्यों को भी होता है। अन्य मनुष्यों को होने में सूतिका-विष कारण नहीं होता। सूतिका-विष को समान चोट आदि कारणों से उत्पन्न

आगन्तुक व्रण में भी सेन्द्रिय विष का प्रवेश होकर धनुर्वात होता है। इन दोनों प्रकार की अवस्थाओं में इस रसायन का अच्छा प्रयोग होता है।

सूतिका-विष से उत्पन्न सन्निपात ज्वर में यह रसायन उत्तम कार्य करता है। सान्निपातिक अवस्था में जो-जो स्थान विकृत हों और उसमें वेदना अधिक हों, तो इसमें सूतिकाभरण रस के सेवन से उत्कृष्ट लाभ होता है।

श्लैष्मिक सन्निपात में उर:शूल का विशेष लक्षण हो या सूतिका को श्लैष्मिक सन्निपात हुआ हो तो इस रस का विशेष उपयोग होता है। हृदयशूल में भी इसके सेवन से शीघ्र लाभ होता है। कुक्षिशूल और साथ ही आक्षेप होने पर इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है।

संक्षेप में यह रस सूतिका विषघ्न, आक्षेपनाशक, कीटाणुनाशक और ज्वरनाशक है। गर्भाशय, वातवाहिनियों, सुषुम्ना के मुख और अग्रभाग पर शामक प्रभाव दिखलाता है। वातादि दोष और रस, रक्त, मांस, स्नायु, कण्डरा आदि दूष्यों पर यह विशेष प्रभावकारी है।

सूतिकाविनोद रस (बृहत्)

अभ्रक भस्म ६ माशा, शुद्ध तूतिया २ तोला, सोंठ १ तोला, काली मिर्च २ तोला, पीपल ३ तोला, जावित्री २ तोला सबको एकत्र मिलाकर १ प्रहर सम्भालू के रस में घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु या गो-दुग्ध से अथवा दशमूल क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- प्रसूत रोग की यह प्रसिद्ध दवा है। इसके सेवन से प्रसूत ज्वर, शूल, विष्टम्भ, अजीर्ण आदि वातरोगजन्य विकार नष्ट हो जाते हैं।

वक्तव्य- कुछ ग्रन्थों में ''व्योमकम्'' अभ्रकवाची शब्द के स्थान पर 'रोमकम्' (व्योमकलवण) का उल्लेख है, किन्तु गुणों की दुष्टि से 'व्योमकम्' ही उचित है।

सोमनाथ रस

लौह भस्म १ तोला, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, छोटी इलायची, तेजपान, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन-छाल, खस, गोखरु, वायविडंग, जीरा, पाठा, आँवला, अनार की छाल, सुहागे की खील, सफेद चन्दन, शुद्ध गुग्गुल, लोध्र, शाल वृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल और रसौत-इनका चूर्ण ६-६ माशा लेकर पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें लौह भस्म तथा अन्य औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला, बकरी के दूध में खरल करके ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली शहद या बकरी के दूध से सुबह-शाम दो बार दें।

गुण और उपयोग- यह स्त्रियों के सोम-रोग की प्रसिद्ध दवा है। इस रोग में सफेद रंग का ठण्डा, दुर्गन्ध रहित, साफ पेशाब बार-बार होता है। शरीर धारण करने वाली धातु पेशाब के साथ निकलती रहती है, जिससे स्त्रियों की शक्ति का धीरे-धीरे ह्रास होकर शरीर अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। हमेशा प्यास बनी रहती है। मस्तिष्क सुन्न हो जाने के कारण मूर्च्छा (बेहोशी), प्रलाप (अक-बक-बकना) आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इस रसायन के सेवन से सोम-रोग और उससे उत्पन्न होने वाली सभी प्रकार की शिकायतें दूर हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त रक्तप्रदर, योनि का दर्द, कोष्ठशूल, मेढ़शूल, बहुमूत्र आदि रोग भी इससे अच्छे होते हैं।

सोमनाथ रस (बृहत्)

हिंगुलोत्थ पारद १ तोला को प्रथम नीम पत्तों के रस में मर्दन करें। फिर मूषकपर्णी के रस से शोधित गन्धक १ तोला लेकर, दोनों को एकत्र मिला सूक्ष्म कज्जली बनावें, फिर ग्वारपाठा के रस से मर्दित लौह भस्म ४ तोला लें। अभ्रक भस्म, बंग भस्म, रौप्य भस्म, खर्पर (अभाव में यशद) भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म या वर्क- ये प्रत्येक द्रव्य आधा-आधा तोला लेकर सब द्रव्यों के एकत्र मिला ग्वारपाठा के रस में मर्दन करें। पश्चात् मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) के रस के साथ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोली बना सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ दें और ऊपर से बकरी या गाय का दूध पिलावें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन से कठिन सोम रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह बीसों प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र,मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र और कठिन मूत्राघात को नष्ट करता है।

सोम रोगों में शरीर निर्माणकारी मुख्य धातु मूत्र में घुलकर निरन्तर निकलती रहने से धातुओं का प्रतिलोम क्षय प्रारम्भ हो जाता है, जिससे शरीर अत्यन्त कृश, कान्तिहीन, हाथ-पैरों में फूटन एवं हस्त-पादतल में जलन, स्वेद अधिक आना, मामूली परिश्रम से भी भारी थकावट आना, ज्वर, अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार, सिर भारी एवं वेदनायुक्त रहना, कमर और गर्दन तथा पृष्ठ वश में दर्द रहना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस स्थिति में इस रसायन को प्रवाल भस्म और सितोपलादि चूर्ण के साथ शुद्ध शिलाजीत और मधु मिलाकर देने से बहुत उत्तम लाभ होता है।

सोमेश्वर रस

शाल की छाल, अर्जुन की छाल, लोध्र, कदम्ब की छाल, अगर, लाल चन्दन, अरणी-मूलत्वक्, हल्दी, दारुहल्दी, आँवला, अनारदाना, गोखरु-बीज, जामुन की मींगी, बीरण-मूल (खस)-ये प्रत्येक द्रव्य २-२ तोला, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, धनियाँ, नागरमोथा, छोटी इलायची, तेजपान, पद्मकाष्ठ, लौह भस्म, रसौत, पाठा, वायविडंग, शुद्ध टंकण और जीरा-ये प्रत्येक द्रव्य आधा-आधा तोला, शुद्ध गुगल २ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् अन्य द्रव्यों का सुक्ष्म कपड़छन चूर्ण और भस्में मिला मर्दन करें, फिर गुग्गुल मिलाकर घृत (कुल योग से षोडशांश) के साथ दृढ़ मर्दन कर, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रखें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम काले तिल या पका केला के साथ या आँवला स्वरस और मधु के साथ दें। अनुपान में (ऊपर से)बकरी का दूध अथवा नारियल का पानी देना विशेष उपयोगी है।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन सोमरोग नष्ट होते हैं और वात प्रमेह को यह शीघ्र नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त एक-दोष, जनित, द्विदोषज और सन्निपात-जनित उग्र प्रमेह रोग को नष्ट करता है तथा चिरकालिक प्रमेह एवं पिडिकादि उपद्रव युक्त प्रमेह को नष्ट करता है एवं मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उपदंश अनेक प्रकार की पिडिकायें व्रण (घाव), विस्फोट, अर्बुद, कण्डू, वात-पित्त, यकृतप्लीहा, गुल्मरोग समस्त प्रकार के शूल रोग, अर्श रोग, कास, विद्रधि और चिर कालीन सोमरोग इनको शीघ्र नष्ट करता है और शरीर में बल-वर्ण तथा जठराग्नि की वृद्धि करता है।

सोमयोग

रससिन्दूर १ भाग, सोम (सोमलता) चूर्ण २० भाग लेकर प्रथम रससिन्दूर को खरल में

डालकर सूक्ष्म मर्दन करें, पश्चात् उसमें सोमलता का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला अच्छी तरह मर्दन करें। पश्चात् शीशी में भरकर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- ५से १० रत्ती तक अकेला या अभ्रक भस्म या भागोत्तर गुटिका अथवा चन्द्रामृत रस के साथ मिलाकर जल या मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस औषधि का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन श्वास रोग नष्ट होते हैं। श्वास (दमा) का दौरा उठने की अवस्था में इस औषधि के सेवन से दौर का वेग कम हो जाता है तथा कफ पतला होकर सरलता से बाहर निकल जाता है और रोगी शीघ्र ही शान्ति अनुभव करने लगता है। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकार के कास रोग, पार्श्वशूल, न्यूमोनिया आदि में भी उचित अनुपान के साथ सेवन करने से आशाप्रद लाभ होता है।

न्यूमोनिया (पार्श्वशूल) में श्रृंग भस्म और हृदय रोग में प्रवालपिष्टी और श्रृंग भस्म के साथ मिलाकर देना विशेष लाभकारी है। कफ प्रधान श्वास रोग में कुछ समय निरन्तर सेवन कराने से बहुत उत्तम लाभ होता है। इस योग से कई रोगियों को तो जड से ही इस रोग से छुटकारा मिलते देखा गया है, एवं शरीर में रस-रक्तादि धातुओं की वृद्धि होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं कान्तिमान हो जाता है, ऐसा हमारा अनेक बार का अनुभव है। आचार्य श्री यादवजी त्रिक्मजी ने इस योग पर बहुत बार प्रयोग कर बड़ा उत्तम अनुभव किया है।

हरिशंकर रस

पारद भस्म (रससिन्दूर) तथा अभ्रक भस्म दोनों समान भाग लेकर एक सप्ताह तक आँवला और हल्दी स्वरस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर शीशी में सुरक्षित रख लें। - र.र.स.

मात्रा और अनुपान- १-२ रत्ती सुबह-शाम ५ तोला चावल के पानी में १।। से ३ माशे तक बकायन के बीज को पीसकर ६ माशा घी मिलाकर इसके साथ दें।

वक्तव्य- मूल ग्रंथ पाठ में इसकी मात्रा १ माशा लिखी है, परन्तु इस योग में रससिन्दूर और अभ्रक भस्म ये ही दो द्रव्य हैं, जो कि दोनों ही १ रत्ती से ३ रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग किये जाते है, अतः वर्तमान काल में अल्प सत्व मनुष्यों के लिये १-३ रत्ती की मात्रा उचित है।

गुण और उपयोग- पूय प्रमेह (सूजाक) में यह विशेष फायदा करती है, पेशाब में जलन होना, पेशा से खून आना अथवा पीब निकलना तथा बस्ति-प्रदेश में जलन आदि होना इन्हें दूर करता है। प्रमेह रोग के लिये भी यह बहुत उत्तम रसायन है। इसके सेवन से वातवाहिनियों तथा रक्तवाहिनियों पर भी बड़ा उत्तम प्रभाव होता है अतः सभी प्रकार के वात रोगों में इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है। कफजन्य विकार भी नष्ट करता है। स्नायु मण्डल तथा मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाता हे।

हिंगुलेश्वर रस

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग चूर्ण और पिप्पली चूर्ण २-२ तोला लें, इन सबको एकत्र कर, खरल में जल के साथ मर्दन कर, १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ अथवा अदरक-रस में शहद मिला कर दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन आमवात-शामक ओर वातज्वरनाशक है। तीव्र ज्वर, देह-दर्द तथा सन्धिस्थान (जोड़ों) के तीव्र वेदनायुक्त आमवात में यह रसायन बहुत लाभ करता है।

वात ज्वर में जाड़ा देकर बुखार आना, शरीर काँपना, शरीर में ऐंठन, सिर में अधिक दर्द आदि लक्षणों की उत्पत्ति होने पर हिंगुलेश्वर के उपयोग से बहुत फायदा होता है।

नवज्वर में- आमदोष-पाचन के लिये इस रसायन का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा दोष-पाचन का कार्य अच्छी तरह होता है। इसके अतिरिक्त बार-बार आने वाले विषम ज्वर में रोकने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। जीर्ण ज्वर में भी इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है, परन्तु हृदय की कमजोरी होने पर इस दवा का उपयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें बच्छनाग का मिश्रण है, जो हृदयावसादक है।

हिरण्यगर्भ पोट्टली

शुद्ध पारद १ तोला, स्वर्ण भस्म २ तोला, मोती भस्म ४ तोला, शंख भस्म ६ तोला, शुद्ध गन्धक ३ तोला, कौड़ी भस्म ३ तोला, सुहागे की खील चौथाई तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियाँ मिलाकर सबको नींबू के रस में घोंटकर गोला बना, सुखा, मूषा में बन्द कर कपड़मिट्टी करके सुखाकर गजपुट में फूँक दें। स्वांग-शीतल होने पर सम्पुट में से दवा निकालकर पीस कर सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ रत्ती, सुबह-शाम घी और शहद तथा काली मिर्च के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन अग्निमांद्य, संग्रहणी, विषमज्वर, अर्श, पीनस, श्वास, कास, अतिसार, पाण्डु, शोथ, उदररोग, यकृत और प्लीहा-विकार नाशक है। यह एकदोषज, द्विदोषज और सन्निपातिक रोगों में अमृत के समान गुण करता है। वात-कफजन्य रोगों में इसके उपयोग से विशेष लाभ होता है।

अग्निमान्द्य- कफ की वृद्धि होने पर जठराग्नि मन्द हो जाती है, जिसमें भूख न लगना, अन्न में अरूचि, जी मिचलाना, कब्जियत, शरीर में आलस्य आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसमें हिरण्यगर्भ पोट्टली के उपयोग से शरीर में कफ की वृद्धि रुक जाती है और जठराग्नि प्रदीप्त होकर शेष उपद्रव भी नष्ट हो जाते हैं।

वातकफात्मक संग्रहणी और अतिसार- इस रोग में भी इस रसायन का उपयोग करने से लाभ होता है, क्योंकि इस रसायन का प्रभाव अन्त्र पर काफी अच्छा होता है। यह रसायन आँतों को सबल बनाकर, दस्त को बाँधता है।

यह रसायन हृदय को बल देनेवाला, शरीर में जीवनीय शक्ति को बढ़ा कर शरीर को सबल बनाने वाला है। शीतांग सन्निपात में जब शरीर बिल्कुल ठण्डा पड़ गया हो, नाड़ी लुप्त हो रही हो, हृदय की गति धीमी चल रही हो तब यह अमृत के समान काम करता है। संग्रहणी या अतिसार के शरीर बिल्कुल खोखला हो गया हो, निर्बलता ज्यादा आ गयी हो, संग्रहणी (दस्त) किसी तरह नहीं रुकती हो ऐसी भयंकर दशा में यह रस रामबाण की तरह काम करता है। राजयक्ष्मा में सूखी खाँसी और ज्वर दोनों वृद्धि पर हों, दिनबदिन उपद्रव बढ़ते ही जाते हों, शारीरिक शक्ति का भी नाश होता जाता हो, तो इस रसायन के सेवन से शीघ्र लाभ होता हैं। अनुपान भेद से प्रायः सभी रोगो में इसका प्रयोग कर उत्तम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यह योगवाही रसायन है।

हृदयार्णव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताम्र भस्म १-१ तोला लेकर तीनों की एकत्र कज्जली बना १-१ दिन त्रिफला और मकोय के रस में मर्दन कर, चना-प्रमाण की (एक-एक रत्ती की) गोलियाँ

बना, सुखा कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह शाम मकोय के फल १ तोला और त्रिफला चूर्ण १ तोला को २० तोला जल में पकावें। पाँच तोला जल शेष रहने पर मल कर छान लें, बाद में इस क्वाथ के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का प्रभाव हृदय रोग पर बहुत होता है। हृदय की कमजोरी, हृदय की अधिक धड़कन, हृदय-दर्द आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। इस रसायन के सेवन से हृदय की गति नियमित हो जाती तथा हृदय सबल हो जाता है।

हृत्पिण्ड में रोग होने से छाती में दर्द और हृदय सर्वदा धक्-धक् करता रहता है। यद्यापि छाती में अन्य बीमारी या चोट के कारण भी दर्द उत्पन्न हो जाता है, किन्तु उसके लक्षण भिन्न होते हैं। इसमें थोड़ा-सा परिश्रम करने से हृदय की धड़कन बढ़ जाना, मन चंचल, मृत्यु का भय और मूर्च्छा होने के लक्षण निद्रा की कमी, पसली और छाती में दर्द, नाड़ी की गति तेज होना आदि लक्षण होते हैं। इसमें हृदयार्णव रस का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है। पित्तजनित हृद्रोगों में इसका प्रयोग मोती पिष्टी या प्रवाल पिष्टी आदि सौम्य औषधियों के साथ मिलाकर करना चाहिए, क्योंकि अकेले प्रयोग करने से इसमें पड़ी ताम्र भस्म की उग्रता के कारण पित्त की वृद्धि होकर लाभ के बदले हानि की सम्भावना ही अधिक है। अनुपान में आँवला-मुरब्बा, सेब का मुरब्बा आदि देना लाभदायक है।

अधिक व्यायाम (कसरत), भय, शोक, अत्यन्त गर्मी आदि के कारणों से भी हृदय दूषित हो जाता है। हृदय की गति बन्द होने से तत्काल मृत्यु हो जाती है जिस को 'हार्ट फेल' कहते हैं। कभी-कभी हृदय में इतने जोर का दर्द उठता है कि रोगी बेचैन हो जाता है। यदि यह शूल कुछ और बढ़ा तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। ऐसी भयंकर परिस्थिति में भी मृगश्रृंग भस्म के साथ हृदयार्णव रस देने से अच्छा लाभ होता है।

हृदयरोगी को विश्राम की अधिक आवश्यकता रहती है, अत: परिश्रम बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। यदि रोगी दुर्बल हो, तो ज्यादा चलने-फिरने न दें, अन्यथा हृदय की कमजोरी से रोगी की तुरन्त मृत्यु हो सकती है। हृदय की कमजोरी में मकरध्वज, मुक्ता पिष्टी, सोना भस्म आदि ताकत पहुँचाने वाली दवाओं का भी सेवन करना श्रेष्ठ है।

हेमाभ्रक-सिन्दूर

अभ्रक भस्म, रससिन्दूर स्वर्ण भस्म-इन तीनों को समान भाग लेकर खरल में डालकर अदरक के रस से घोंटकर सुखाकर और पीसकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १रत्ती प्रात: सायं मधु में मिलाकर रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन क्षयरोग, क्षयज पाण्डु रोग, क्षयज कास, कुष्ठ रोग, स्नायु दौर्बल्य, कठिन वात रोग, हृदय की दुर्बलता, मस्तिष्क विकार, वातवाहिनियों का संकुचित होना आदि विकारों में उत्तम गुणकारी है। इस रसायन को ४० दिन तक सेवन करना चाहिए। अनुलोमक्षय और प्रतिलोमक्षय दोनों प्रकार के क्षय रोगों में इसके सेवन से श्रेष्ठ लाभ होता है। किसी भी जीर्ण विकार में उत्पन्न हुई दुर्बलता को नष्ट करने में यह अद्भुत प्रभावशाली है। पाण्डु, कामला, हलीमक आदि रक्ताल्पताजन्य रोगों में इसके कुछ काल तक नियमित सेवन करने से रस-रक्तादि समस्त धातुओं की वृद्धि होकर शरी हृष्ट-पुष्ट एवं शक्ति-संपन्न बन जाता है।

हेमगर्भ पोट्टली रस

निकाल कपड़मिट्टी हटा कर गोले को निकाल लें। जब गोला पककर कुछ गुलाबी रंग लिये श्वेतवर्ण का हो जाय, तो उसको खरल में १ दिन घोंट कर शीशी में भर लें। गोला यदि श्याम वर्ण का हो, तो पूर्वोक्त विधि से एक दिन फिर पकावें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ रत्ती, चौथाई तोला गाय के घी में मिलाकर चटावें।

गुण और उपयोग- खाँसी, दमा, क्षय, संग्रहणी, जीर्णज्वर, ग्रहणी और अपची में इसका प्रयोग करें। यह मृगांक रस से विशेष गुणप्रद है। अतः इसका प्रयोग करना अच्छा है। राजयक्ष्मा को सभी अवस्थओं में इसका सेवन निर्भय होकर कराया जा सकता है। इसके सेवन से सभी उपद्रवों सहित राजयक्ष्मा नष्ट हो जाता है। शारीरिक धातुएँ पुष्ट होकर बल, वर्ण और कान्ति की वृद्धि होती है।

हेमनाथ रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म १-१ तोला तथा लौह भस्म, कपूर, प्रवाल भस्म और बंग भस्म ६-६ माशे लेकर सबको एकत्र मिला खरल करें, कज्जली हो जाने पर उसे अफीम के पानी, केले के फूलों के रस और गूलर के रस की सात-सात भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम गुडूची स्वरस, मधु तथा जामुन की गुठली का चूर्ण और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन प्रमेह रोग के लिए बहुत उत्तम है। मूत्राशय, वृक्क और वीर्यवाहिनी नाड़ियों की दुर्बलता को दूर कर उनकी क्रिया को ठीक करता है। पेशाब के साथ वीर्य-स्राव को रोकता है। स्त्रियों का सोम रोग एवं श्वेत-प्रदर इस रसायन से बहुत शीघ्र ठीक हो जाता है। बहुमूत्र, प्रमेह, नपुंसकता, शीघ्र पतन, वीर्य का पतलापन, कमर का दर्द, पैरों की हड़कन (फूटनी) स्वप्नदोष, मधुमेह और दुर्बलता दूर करने के लिए इसका प्रयोग विशेषतया किया जाता है। यह योगवाही एवं रसायन होने के कारण अनुपान-भेद से वात, कफ एवं त्रिदोष से उत्पन्न सभी विकारों में उत्तम लाभदायक है। इसमें शुद्ध पारद के स्थान पर रससिन्दूर डालकर बनाने से बहुत उत्तम गुणकारी बनता है।

क्षयान्तक रस

लौह भस्म और रससिन्दूर १-१ तोला, मोती भस्म और स्वर्ण भस्म प्रत्येक ३-३ माशा, गुर्च का सत्व १ तोला, त्रिफला १ तोला, केशर ३ माशा और कस्तूरी १ माशा लेकर सबको एकत्र मिला कर ३ दिन वासा (अडूसा) के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, मधु (शहद) या घी के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन पौष्टिक, शक्तिवर्द्धक, हृदय को बल देने वाला तथा रक्तकणों की वृद्धि कर जीवनीय शक्ति प्रदान करने वाला है। इसके सेवन से राजयक्ष्मा, पाण्डु, सिर दर्द, जीर्ण ज्वर, प्रमेह, उदर रोग, अग्निमांद्य, सोमरोग, धातुविकार, वात और कफजन्य रोगों का नाश होता है। क्षय रोग के लिये यह बहुत प्रसिद्ध औषध है।

क्षुद्बोधक रस

सोंठ, पीपल, मिर्च १-१ तोला, सेन्धा नमक २ तोला, शुद्ध गन्धक ३ तोला लेकर सबको

एकत्र मिला, नींबू के रस में खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर, छाया में सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-४ गोली सुबह-शाम, गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन दीपन-पाचन है। किसी भी कारण से अग्नि मन्द होकर भूख न लगती हो, अन्न में अरुचि हो, जी मिचलाता हो, पेट भारी रहता हो, वमन की इच्छा हो या वमन हो जाता हो, अपच दस्त होते हो, या कब्ज रहता हो आदि उपद्रव होने पर यह रसायन अद्भुत कार्य करता है।

क्षुधासागर रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सेंधा नमक, काला नमक, सामुद्र लवण, विड् लवण, साम्भर लवण, यवक्षार, सज्जीखार, सुहागे की खील-प्रत्येक १-१ भाग, शुद्ध बच्छनाग २ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, शेष औषधियों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला, पानी के साथ ३ दिन तक खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम ५ नग लौंग का चूर्ण (लगभग ४ रत्ती) मिला कर गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह रसायन कफ और वातजन्य विकार में विशेष फायदा करता है। कफ बढ़ जाने या वात-प्रकोप के कारण आमाशय कमजोर हो गया हो, जिससे आम संचित होकर जठराग्नि मन्द हो गयी हो, भूख न लगती हो, अपच होकर दस्त होते हों, पेट फूला हुआ हो, दस्त पतले और फेनयुक्त होते हों, पेट में आवाज हो तो इसका उपयोग गुणकारक होता है। इसके सेवन से आम का पाचन होकर जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है, जिससे बड़ी अच्छी कड़ाके की भूख लगने लगती है। उदरशूल, गुल्म, उदावर्त, उदरवात प्रकोप आदि विकारों में शंख भस्म के साथ मिलाकर गरम पानी में नींबू का रस निचोड़कर उसके साथ या शंखद्राव-मिश्रित जल अथवा अर्क अजवायन के साथ सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

❖❖❖

गुटिका-बटी प्रकरण

वटके मोदकः पिण्डी गुडो वर्तिस्तथा बटी।
वटिका गुटिका चेति संज्ञावान्तरभेदतः ।।

अर्थात्- वटक, मोदक, पिण्डी, गुड़, वर्ति, बटी और बटिका तथा गुटिका इनकी बनावट एक ही प्रकार की है। केवल आकार और परिमाण में भेद होता है। इन औषधों में प्रधान भाग काष्ठौषधियों का रहता है।

गुटिका-बटी का परिचय-औषधियों के महीन चूर्ण को मधु, गुड़, खाण्ड आदि की चाशनी में मिलाकर अथवा औषधियों को जल, स्वरस या क्वाथ आदि में पीसकर या पाक करके जो गोलियाँ बनाई जाती हैं, उन्हें गुटिका या बटी कहते हैं। गोलियों को हाथ से बनाने पर वे छोटी-बड़ी बन जाती हैं। ठीक साईज की नहीं बन पाती हैं और मशीन से बनाने पर एक निश्चित साइज की बनती हैं। अत: ऐसा ही करना ठीक है।

भावना-विधि- जितने द्रव पदार्थ से औषध अच्छी तरह भींग जाये उतना ही द्रव पदार्थ लेकर भावना देनी चाहिए, अथवा जिस चीज के क्वाथ से भावना देनी हो, वह भाव्य (जिसे भावना देनी है) द्रव्य के बराबर लेकर अठगुने पानी में पकावें और आठवाँ भाग शेष रहने पर छान कर उससे भावना दें।

यदि गोलियों को धूप में सुखाने के लिये लिखा हो तो धूप में अन्यथा छाया में सुखाना चाहिए, क्योंकि धूप और छाया के प्रभाव से भी दवाओं के गुण में अन्तर पड़ता है। आजकल दवाओं को सुखाने के लिये बिजली को शोषण-मंजूषिका (Electrical Dry Chamber) चल पड़ी हैं, इनका प्रयोग बड़ी-छोटी सभी रसायनशालाओं में किया जा रहा है। इनमें एक निश्चित तापमान पर दवाओं, गोलियों एवं टेबलेट्स (चक्रिकाओं) के लिये बनाये गये दाने (Granules) आदि को सब ऋतुओं में गर्द-गुबार वर्षा आदि में विघ्नोंरहित बड़ी उत्तमतापूर्वक सुखाया जा सकता है।

स्वादिष्ट, हाजमा करने वाली गोलियाँ भोजन के बाद और रोगनाशन के लिये सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ लेनी चाहिए। जिन बटियों में कूचला या अफीम हो उनकी मात्रा (खुराक) १ गोली से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। जायकेदार और पाचक गोलियाँ बिना अनुपान के भी मुँह में रखकर चूसते रहना चाहिए। मात्रा जितनी लिखी हो उससे कम-ज्यादा करने से नुकसान होता है। कम खाने से गुण नहीं करती और ज्यादा खाने से शरीर में लाभ के बदले नुकसान पहुँचाती है। बच्चों को आयु के अनुसार मात्रा में दवा देनी चाहिए।

गोलियों पर वर्क चढ़ाना- यदि गोलियों पर वर्क (सोना-चाँदी आदि के) चढ़ाने हो तो पहले उन्हें मुगलई बेदाना के लुआब से अच्छी तरह तर कर लें, फिर उन पर सोने या चाँदी के, जैसी आवश्यकता हो, वर्क डालकर हाथ से मल दें, और चीनी के चौड़े मुँह वाले बरतन में डालकर तेजी के साथ उस बरतन को गोल कायदे में चक्की के समान चारों ओर घुमाना चाहिए। इस क्रिया से गोलियाँ सुन्दर बन जाती है। इस काम को कोटिंगपैन (Coating pan) यन्त्र द्वारा उत्तमता से किया जा सकता है। इस यन्त्र से चीनी का स्तर (Sugar coating) भी किया जाता है।

गोली-सेवन करते समय गोलियों को महीन पीसकर अनुपान के साथ मिलाकर सेवन किया जाय तो जल्दी असर होता है। कठिन गोलियों को बिना पीसे नहीं खायें अन्यथा कभी-कभी ये गोलियाँ ज्यों-की-त्यो दस्त के साथ बाहर निकल आती हैं।

जिन दवाओं के योगों में या भावनाओं में कोई लसदार (चेपदार) द्रव्य नहीं होता हैं, उनकी गोलियाँ बनाना कठिन होता है। किसी-किसी दवा की गोली तो बिल्कुल ही नहीं बन पाती हैं। ऐसी दवाओं में योग के कुल वजन से २५ वां या ३० वां भाग शुद्ध बबूल के गोंद का चूर्ण (Gum Accacia Powder)मिला दिया जाये तो उनमें लस पैदा होकर गोलियाँ बनायी जा सकती है।

आजकल गोली बनाने की प्रक्रिया में भी काफी सुधार हो चुके हैं, जिन द्रव्यों की गोलियाँ खाने में खराब जायके की या खराब गन्धवाली होती हैं, उन पर चीनी का स्तर (Sugar Coating) करके स्वादिष्ट बना लेना चाहिए।

अग्निवर्द्धक बटी

काला नमक, नौसादर, गोल मिर्च और आक के फूलों की लौंग (आक के फूलों के भीतर जो चतुष्कोणाकार भाग होता है, उसको आक के फूलों की लौंग कहते हैं।)- इन चारों को सम भाग लेकर कूट-कपड़छन किए हुए कुल चूर्ण से सोलहवाँ भाग नींबू सत्व मिला, निम्न रस के साथ मर्दन कर चने के बराबर गोलियाँ बना,धूप में सुखा कर रख लें। -सि.भै.म.मा. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- 1-1 गोली दिन में 4 गोली तक गर्म जल से दे या मुँह में डालकर चूस लें।

गुण और उपयोग- यह अत्यन्त स्वादिष्ट और पाचक रस उत्पन्न करने वाली है। इससे भोजन पच कर भूख खूब लगती और दस्त साफआता है। एक-दो गोली खाते ही मुँह का बिगड़ा हुआ स्वाद ठीक हो जाता है। यह गोली मन्दाग्नि, अरुचि, भूख न लगना, पेट फूल जाना, पेट में आवाज होना, दस्त-कब्ज रहना, खट्टी डकारें आना आदि दोषों को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करती और भूख बढ़ाती है। जिन्हें बार-बार भूख कम लगने की शिकायत हो, उन्हें यह गोली अवश्य लेनी चाहिए।

अजीर्ण की शिकायत अधिक दिनों तक बनी रहने पर पित्त कमजोर हो जाता और कफ तथा आँव की वृद्धि हो जाती हैं। इसमें हृदय भारी हो जाना, पेट में भारीपन बना रहना, शरीर में आलस्य, किसी भी काम में उत्साह नहीं होना, हृदय की गति और नाड़ी की चाल मन्द हो जाना आदि लक्षण होने पर यह बटी देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह पित्त को जागृत कर, कफ और आँव के दोष को पचाकर बाहर निकाल देती है और पाचक रस की उत्पत्ति कर भूख जगा देती है। उदरशूल में गरम पानी के साथ २ गोली लेने से तुरन्त रामबाण की तरह लाभ करती है।

अपतन्त्रकारि बटी (हिस्टीरियाहर बटी)

घी में सेंकी हुई हींग १ तोला, कपूर १ तोला, गांजा आधा तोला, खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती दो तोला, तगर (यूनानी आसारून) २ तोला, सबका कपड़छन चूर्ण कर जटामांसी के फाण्ट में पीसकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं. से किंचित परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- २ गोली एक बार में देकर ऊपर से मांस्यादि क्वाथ पिलावें। इसी प्रकार दिन में ३-४ बार आवश्यकतानुसार दें।

गुण और उपयोग- अपतन्त्रकारि (हिस्टीरियाहर) बटी का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ी और मस्तिष्क पर विशेष होता है।

अपतन्त्रक (हिस्टीरिया)- आयुर्वेदीय मतानुसार रूक्षादि कारणों से प्रकुपित वायु अपने स्थान को छोड़कर हृदय में जाकर पीड़ा उत्पन्न करता है। इसमें मस्तक और कनपटी में पीड़ा होती

है, शरीर को धनुष के समान नवा कर मूर्च्छित (बेहोश) कर देता है । रोगी कष्ट के साथ साँस लेता, नेत्र पथरा जाते या बन्द हो जाते हैं तथा कबूतर के समान कूजने की-सी आवाज निकलती है। यह रोग प्राय: युवावस्था वाली लड़कियों को काम-वासना की अतृप्ति के कारण अथवा मासिक-धर्म साफ न होने से या मानसिक अभिघात, चिन्ता, शोक, क्रोध, भय आदि कारणों से वात प्रकुपित हो कर होता हैं। ठण्डे मिजाज वाली लड़कियों की अपेक्षा गरम मिजाज वाली लड़कियों को ही अधिक होता है। ३० वर्ष से ऊपर की उम्रवाली स्त्रियों में यह रोग बहुत कम पाया जाता है।

कई रोगियों को बेहोशी का दौरा २४ घण्टे तक निरन्तर होते देखा गया है। बहुतों को तो बार-बार और जल्दी दौरा होता है। ऐसी दशा में रोगी को कुछ होश आते ही तुरन्त मूर्च्छा हो जाती है। बेहोशी की हालत में दाँती बँध जाती, शरीर अकड़ जाता तथा रोगी हाथ-पैर पटकने लगता है। इसमें अपतन्त्रकारी बटी के प्रयोग से बहुत शीघ्र फायदा होता है। यह बटी वायुनाशक होते हुए मनोवाहिनी शिरा को भी चैतन्य-शक्ति प्रदान करती है। यदि निरन्तर नियमपूर्वक २४ दिन तक इस गोली का सेवन कराया जाये, तो फिर हिस्टीरिया आने का कभी सन्देह ही नहीं रहता हे।

अमृतप्रभा बटी

काली मिर्च, पिपलामूल, लौंग, हरड़, अजवायन, तिन्तिड़ीक, अनारदाना, विड्नमक, सेंधा नमक, सोंचर नमक-प्रत्येक १-१ भाग, पीपल, यवक्षार, चित्रकमूल-छाल, स्याह जीरा, सफेद जीरा, सोंठ, धनियाँ, छोटी इलायची आँवला-प्रत्येक २-२ भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण कर लें, और बिजौरा नींबू के रस की ३ भावना देकर मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-यो.चि.म.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली दिन में दो बार प्रात:-सायं सुखोष्ण जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस बटी का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के अजीर्ण रोग समूल नष्ट होते हैं और प्रकुपित आम या कफ-दोष का पाचन कर जठराग्नि प्रदीप्त करती है। इसके अतिरिक्त अरुचि, आध्मान, ग्रहणी रोग, अर्श, पाण्डू रोग, शूल रोग और अन्य उदर रोगों को नष्ट करती है। यह उत्तम वातानुलोमक और दीपक-पाचक है।

अमृतमञ्जरी गुटिका

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, पीपल, काली मिर्च, शुद्ध टंकण, जावित्री-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम हिंगुल को खरल में डालकर सूक्ष्म मर्दन करें। पश्चात् अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण कर उसमें मिलाकर जम्बीरी नींबू के रस के साथ अच्छी तरह मर्दन करें। गोली बनाने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली, दिन में २-३ बार अदरक रस और शहद के साथ दें या उष्ण जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस बटी का उपयोग करने से कठिन सन्निपात रोग शीघ्र नष्ट होते हैं और समस्त प्रकार के अग्निमांद्य, अजीर्ण, भयंकर आमवात आदि रोगों को यह शीघ्र नष्ट करती है। इसके अतिरिक्त पाँचों प्रकार के कास रोग और श्वास रोग, सम्पूर्ण अंग जकड़ जाना, जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, विशेषत: क्षयजनित कास रोग आदि शीघ्र नष्ट होते हैं।

इस रोग में हिंगुल उत्तम कीटाणुनाशक है, अत: इसका विसूचिका एवं क्षय के कीटाणुओं को नष्ट करने में विशेष प्रभाव होता है। यह रसायन, उत्तम कीटाणुनाशक, कफदोष एवं आमदोष नाशक है। इसके प्रयोग से कफ का नाश होकर फुफ्फुसों को बल मिलता है। यह उत्तम दीपक और पाचक है।

अर्शोघ्नी बटी

निंबोली (नीम के फल के मींगी) २ तोला, बकायन के फल के मींगी २ तोला, खून-खराबा (यूनानी-दमउल अखवेन) २ तोला, तृणकांत (यूनानी-कहरवा) मणि की अर्क गुलाब से बनाई हुई पिष्टी १ तोला, शुद्ध रसौत (दारूहल्दी का घन सत्व) ६ तोला लें। प्रथम निंबोली और बकायन की मींगी को खूब महीन पीसें। पीछे अन्य द्रव्य मिला, घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -सि.यो.सं.द्वि. संस्करण

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम दिन में तीन-चार बार मट्ठे से या ठण्डे पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह दोनों प्रकार के बवासीर (खूनी-बादी) के लिए उत्तम दवा है। खूनी बवासीर में जब जोरों को रक्तस्राव हो रहा हो, तो इस बटी के प्रयोग से बहुत शीघ्र रक्त बन्द हो जाता है। नियमित रूप से इस बटी का सेवन करने से बवासीर जड़-मूल से नष्ट हो जाती है। वादी के बढ़े हुए कठोर मस्से सूख जाते हैं। यह दस्तावर, वायुनाशक और रक्तरोधक है।

आनन्ददा बटी

शुद्ध अफीम १ तोला, जावित्री उत्तम ३ माशा, कपूर ३ माशा, काली मिर्च का चूर्ण १ तोला, रससिन्दूर १ तोला, जायफल का चूर्ण, जावित्री चूर्ण, केसर शुद्ध -हिंगुल-प्रत्येक ६-६ माशा लेकर सबको एकत्र खरल में डाल कर भाँग के पत्तों के रस की ३ भावना दें। जब गोली बनने योग्य हो जाय, तब २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।-र.वि.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, रात में सोने से एक घण्टा पूर्व मलाई, दूध या पान के बीड़े में रख कर खायें।

गुण और उपयोग-इसके सेवन से शरीर में बल, वीर्य, वर्ण तथा पाचक अग्नि की वृद्धि होती है। मैथुन से १ घण्टा पूर्व १ गोली मलाई के साथ सेवन कर पुरुष मदमस्त स्त्रियों के साथ इच्छानुसार रमण कर सकता है। वीर्य-स्तम्भन और बल-वृद्धि के लिए मलाई या दूध के साथ इस बटी का कुछ रोज तक सेवन करने से अच्छा लाभ होता है।

आदित्य गुटिका

बच,सोंठ, जीरा, काली मिर्च, शुद्ध बच्छनाग, हींग भुनी, चित्रक की छाल- प्रत्येक दवा समान भाग लेकर,महीन चूर्ण करके भाँगरे के रस में घोंटकर, चने के बराबर (दो-दो रत्ती) की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -वै. जीवन

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग- इस बटी के सेवन से सब प्रकार के शूल, अग्निमांद्य, पेट फूलना, अजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं।

इस गुटिका का असर वातवाहिनी नाड़ी तथा पाचक पित्त पर विशेष होता है, किसी कारण से प्रकुपित वायु जठराग्नि को मन्द कर पाचक पित्त को कमजोर बना देती है, जिससे मन्दाग्नि और उदर में अन्य कई तरह के वात-सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे-भुख न लगना, अजीर्ण, पेट भारी मालूम पड़ना, दर्द होना, आलस्य बना रहना, बद्धकोष्ठ आदि। ऐसी दशा में इस गुटिका के सेवन से अच्छा लाभ होता है। यह दीपक, पाचक और वायु शामक है तथा पाचक पित्त को उत्तेजित करने से अग्नि प्रदीपक भी है।

आमवातारि बटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, तृतिया, सुहागे की खील, सेंधा नमक सभी प्रत्येक दवा १-१ तोला, शुद्ध गुग्गुल १४ तोला, निशोथ की जड़ और चित्रक की जड़ ३.५-३.५ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन चूर्ण मिला, एकत्र कर, घी के साथ घोंट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम रास्नादि क्वाथ या अण्डी (एरण्ड) की जड़ के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह औषध पाचक, भेदक तथा आमवात, गुल्म, शूल, उदर रोग, यकृत प्लीहोदर, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, अरुचि, ग्रन्थिशूल, सिर दर्द, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, विद्रधिक, अन्त्र-विद्रधि, बवासीर और गुदा के समस्त रोगों का नाशक है।

वक्तव्य-र.यो.सा. में ताम्र के स्थान पर अभ्रक भस्म तथा निशोथ (त्रिवृत्ता) के स्थान पर त्रिफला का उल्लेख है, परंतु आमवात में ताम्र भस्म अधिक उपयोगी है। त्रिवृत्ता के स्थान पर चाहें तो त्रिफला भी ले सकते हैं।

एलादि बटी

छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी-प्रत्येक ६-६ माशा, पीपल २ तोला, मिश्री, मुलेठी, पिण्ड खजूर, मुनक्का ४-४ तोला। प्रथम मुनक्का और पीण्ड खजूर को खूब महीन पीसकर इसमें अन्य दवाओं का कपड़छन चूर्ण मिलाकर सबको शहद में मिला छोटे बेर के बराबर गोलियाँ बना कर रख लें।

वक्तव्य-पिण्ड खजूर और मुनक्का को बीज निकाल कर लें। मिश्री के स्थान पर दानेदार चीनी भी पीस कर मिलाना उत्तम है, अथवा दानेदार चीनी और शहद की चाशनी बनाकर उसमें पिसी हुई सब चीजों को मिलाकर मर्दन कर गोली बनाने से गोली खाने में सुविधा होती एवं टिकाऊ भी अधिक बनती है।

मात्रा और अनुपान- १से ४ गोली, दिन भर में चूसें या दूध के साथ लें।

गुण और उपयोग- इस गोली से सूखी खाँसी, क्षय की खाँसी, रक्तपित्त, मुँह से खून गिरना, बुखार, वमन, मूर्च्छा, प्यास, जी घबराना, स्वरभेद और पित्त के विकारो में बहुत लाभ होता है। यह पित्तशामक और कफदोष दूर करने वाली है। सूखी खाँसी में कफ बैठकर छाती में चिपका हुआ रहता है, जिससे श्वास लेने अथवा खाँसी आने पर विशेष तकलीफ होती है। खाँसी में कफ नहीं निकलने से छाती और सिर में दर्द होने लगता है। कभी-कभी तो रक्त भी आना शुरु हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस गोली से बहुत फायदा करता है। यह पित्त को शमन कर, कफ को पिघला करके बाहर निकाल देता है तथा इसके सेवन से एक तरह की तरी बनी रहती है, जिसकी वजह से खाँसी नहीं आती है। इस गोली को चूसने से ही विशेष लाभ होता है।

कर्पूरादि बटी

कपूर २ तोला, जायफल, सुपारी, लौंग, छोटी इलायची के बीज, कबाब चीनी, शुद्ध टंकण, शुद्ध फिटकरी, मिश्री-प्रत्येक १-१ तोला, कत्था ३ तोला, लेकर सब द्रव्यों को कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् त्रिफला क्वाथ, बबूल की छाल का क्वाथ, गूलर के पत्ते का क्वाथ-इनकी पृथक्-पृथक् एक-एक भावना देकर मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख ले। -अनुभूत योग

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में ५-६ बार मूख में रख कर अकेले ही या मिश्री के टुकड़ों के साथ चूसें।

गुण और उपयोग- इस बटी को मुख में रखकर इसका रस चूसने से मुँह में छाले पड़ना (मुँह आ जाना), मुँह से बदबू आना, दाँतों से पीब निकलना और दन्तवेष्ट रोग (पायरिया) आदि मुख के रोगों ओर गले के रोगों को शीघ्र लाभ करती है। जिव्हागत रोग, जिव्हा लाल हो जाना, फट जाना, जड़ता रहना-इनमें शीघ्र लाभ करती है। शुष्क कास रोग में मिश्री के टुकड़ों के साथ चूसने से गला साफ होकर शीघ्र ही लाभ होता है।

कफघ्नी बटी

कपूर ६ माशा, कस्तूरी ६ माशा, लौंग २ तोला, काली मिर्च, पीपल, बहेड़ा, कुलिंजन, प्रत्येक २-२ तोला, अनार के फल के बक्कल ४ तोला और खैरसार सब दवा को समान भाग लेकर पानी में खरल करके मूँग के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गेली, सुबह-दोपहर और शाम को चूसे या गर्भ जल से लें।

गुण और उपयोग- नवीन कफ में इसका उपयोग विशेष किया जाता है। सर्दी-जुकाम की वजह से कफ की वृद्धि होकर ज्वर होना, सिर में दर्द, आँखों से पानी चलना, खाने की इच्छा न होना, दस्त में कब्ज आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में इस बटी के सेवन से विशेष लाभ होता है। यह बटी विकृत कफ दूर करती है, तथा कफ-सम्बन्धी उपद्रवों को भी दूर कर आरोग्य प्रदान करती है।

वक्तव्य- वृहत्रिघण्टुरत्नाकर में इसी योग को 'कफाघ्नि बटी' नाम दिया है।

कृमिघातिनी गुटिका

काली जीरी, हल्दी, पीपल, कबीला (कम्पिल्लक), स्वर्णगैरिक, निशोथ, हरड़, पलाश (ढाक) के बीज- प्रत्येक समान भाग लेकर सबको एकत्र कूटकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् जल के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, (बच्चों को आधी या चौथाई गोली) शहद या ताजे पानी से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इस बटी के सेवन से बीस प्रकार के कृमि-विकार, ज्वर, मन्दाग्नि, अतिसार, वमन, पेट फूलना, अजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं। कृमि रोग विशेष कर बच्चों को होता है, जिससे बच्चा सूखने लगता है। पेट में दर्द होना, ज्यादा रोना, पतला दस्त होना, पेट कड़ा रहना तथा ज्वर इत्यादि लक्षण इस रोग में होते हैं। ऐसी हालत में कृमिघातिनी गुटिका सेवन कराने से कृमि रोग नष्ट हो जाता है और साथ ही इसके उपद्रव भी दूर हो जाते हैं, बालक, तरुण और वृद्ध सभी को इस दवा से फायदा होता है।

वक्तव्य- कुछ लोग काली जीरी के स्थान पर बाकुची भी लेते हैं, क्योकि ग्रन्थ के मूल पाठ में 'शशिलेखा' शब्द है, जो बाकुची और काली जीरी दोनों का ही वाचक है, किन्तु कृमि रोग में बाकुची की अपेक्षा काली जीरी बहुत अधिक गुणकारी होने से इस योग में काली जीरी ही डालना चाहिए। काली जीरी स्वतन्त्र रूप से भी कृमि रोग पर बहुत उत्तम सिद्ध हुई है इसके अनेक परीक्षण हो चुके हैं।

कांकायन बटी (अर्श)

हरड़ का वक्कल २० तोला, काली मिर्च, जीरा और पीपल ४-४ तोला, पीपलामूल ८ तोला, चव्य १२ तोला, चीता १६ तोला, सोंठ २० तोला, शुद्ध भिलावा ३२ तोला, जिमिकन्द ६४ तोला, यवक्षार ८ तोला और गुड़ सबसे दूना लेकर यथाविधि ४-४ रत्ती की बटक बना लें।-बंगसेन

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली, सुबह-शाम मट्ठा के साथ दें।

गुण और उपयोग- खूनी और वादी दोनों प्रकार के बवासीर के लिए यह बहुत अच्छी दवा है। इसके सेवन से बवासीर के मस्से सूख जाते हैं और बवासीर में कब्ज रहने के कारण मलत्याग के समय जो तकलीफहोती है, वह भी मिट जाती है। बवासीर के साथ उपद्रव रूप में होने वाले अग्निमान्द्य तथा पाण्डू रोग आदि भी अच्छे हो जाते हैं इसके सेवन से मन्दाग्नि, उदरशूल, कोष्ठबद्धता आदि अर्श के मूलजनक विकार भी मिट जाते हैं। अर्श (बवासीर) रोग की यह सुप्रसिद्ध औषधि है।

कांकायन बटी (गुल्म)

कचूर, पोहकरमूल, दन्ती, चित्रक, अरहर की जड़, अदरक, बच, निशोथ-प्रत्येक ४-४ तोला, हींग, १२ तोला, जवाखार ८ तोला अम्लवेत ८ तोला, अजवायन, जीरा, काली मिर्च और धनिया-प्रत्येक १-१ तोला, कलौंजी और अजमोद २-२ तोला सब का चूर्ण करके बिजौरा नींबू के रस में घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बनावें। -चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान- 2-3 गोली, सुबह-शाम और दोपहर गर्म जल, घृत या गो-दुग्ध के साथ सेवन करें। गो-मूत्र के साथ सेवन करने से पुराना कफज गुल्म, दूध के साथ सेवन करने से पित्तज गुल्म और मद्य तथा कांजी के साथ सेवन करने से वातज गुल्म नष्ट होता है। त्रिफला के क्वाथ या गो-मूत्र के साथ सेवन करने से सन्निपातज गुल्म और गाय के दूध के साथ सेवन करने से स्त्रियों का रक्त गुल्म नष्ट होता है।

गुण और उपयोग- यह बटी गुल्म रोग की प्रसिद्ध दवा है। अनेक बार की अनुभूत भी है। गुल्म रोग के अतिरिक्त बवासीर और हृदय रोग तथा कृमि रोग के लिये भी उपयोगी है।

कास बटी

लौंग ८ तोला, बहेड़ा ४ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, सकर तगाल ४ तोला, काकड़ा सिंगी ४ तोला, अनार का छिलका सूखा 1 तोला, दालचिनी २ तोला, खैरसार (कत्था) 10 तोला, मुलेठी का घन सत्व २० तोला, मुनक्का १० तोला, आक के फूल ५ तोला, नौसादर २ तोला, कपूर १ तोला, शुद्ध टंकण १ तोला, लेकर प्रथम मुनक्का और आक के फूलों को कूटकर चौंगुने जल में क्वाथ करें, जब चौथाई जल शेष रहे तब छानकर उसमें मुलेठी सत्व, नौसादर, कपूर और शुद्ध टंकण मिला दें। पश्चात् अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला अच्छी तरह मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर सुरक्षित रखें।-अनुभूत योग

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली मुँह में रखकर अकेली या मिश्री के टुकड़े के साथ चूसें। दिन-रात में ७-८ गोली तक चूसना चाहिए।

गुण और उपयोग- इस बटी का उपयोग करने से समस्त प्रकार के कास रोग नष्ट होते हैं। जब खाँसी जोर की आती हो और कफ न निकलता हो, तब इस बटी को मुँह में रखकर चूसने से खाँसी का वेग शीघ्र ही शान्त हो जाता हैं। गला और फेफड़ों तथा श्वास-प्रणाली में चिपका हुआ शुष्क कफ पतला होकर सरलता से निकल जाता है एवं गला साफ हो जाता है। यदि गला खराब होने के कारण खाँसी उठती हो, तो उसे भी यह बटी शीघ्र नष्ट करती है। इसके अतिरिक्त श्वास और स्वरभेद में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

इसमें लौंग, बहेड़ा, पीपल, काकड़ासिंगी, आक के फूल आदि कफघ्न द्रव्य होने से यह बटी कफज कास में भी उत्तम लाभ करती है। खाँसी के लिए यह वटी अत्युत्तम लाभदायक सुप्रसिद्ध औषध है। इसके गुणों की यथार्थता का हमें अनुभव मिल चुका है।

कासकर्तरी गुटिका

रससिन्दूर १ तोला, पीपल २ तोला, हरड़ का छिलका ३ तोला, बहेड़ा का छिलका ४ तोला, वासा ५ तोला, भारंगी ६ तोला, कत्था २१ तोला लेकर सबको यथाविधि चूर्ण बना, बबूल के क्वाथ की २१ भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, दिन भर में ४ बार मुँह में रखकर चूसें या गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- खाँसी, श्वास, यक्ष्मा की खाँसी तथा हिक्का (हिचकी)में बहुत फायदा करती है।

यह बटी श्वास-नली में से कफ को निकालने में (फुफ्फुस में यदि किसी तरह के विकार न हुए हों तो) बहुत शीघ्र लाभप्रद होती है।

पित्त की अधिकता से कफ सूखकर सूखी खाँसी होने लगती है, जिससे मुँह सूखना, आँख और हाथ-पैरों में जलन होना, खाँसी में कफ नहीं निकलना आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में पित्त-प्रकोप को शान्त करने के लिये इसका प्रयोग करना अच्छा है। यह दूषित (चिपका हुआ) कफ को बाहर निकालकर खाँसी को नष्ट कर देती हैं।

कस्तूरी गुटिका

स्वर्ण भस्म १ भाग, जावित्री २ भाग, रौप्य भस्म ३ भाग, केशर ४ भाग, छोटी इलायची के बीज ५ भाग, जायफल ६ भाग, वंशलोचन ७ भाग, जावित्री ८ भाग लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् उसमें स्वर्ण भस्म केसर, कस्तूरी मिला बकरी के दूध और पान के रस से तीन-तीन दिन मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रखें। -भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम दूध की मलाई के साथ सेवन करें या शहद अथवा पान के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस बटी के प्रयोग से शुक्रक्षय-जनित समस्त प्रकार के रोग शीघ्रपतन, वीर्य का पतलापन, प्रमेह-ये रोग नष्ट होते हैं, अति मैथुनजनित शिथिलता, शुक्रक्षीणता, समस्त प्रकार के मूत्ररोग, कास रोग, श्वास रोग, कफ एवं वात जनित विकारों को भी यह बटी शीघ्र नष्ट करती है। इस बटी का वीर्यवाहिनी नाड़ियों और वातवाहिनी नाड़ियों, हृदय, मस्तिष्क तथा फुफ्फुसों पर विशेष एवं शीघ्र प्रभाव होता है। यह बटी अत्यन्त वृष्य, वीर्यवर्द्धक और उत्तम रसायन है। समस्त प्रकार के वात रोगों में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। कुछ समय तक निरन्तर सेवन करने से रस-रक्तादि धातुओं की पुष्टि करके शरीर को हृष्ट-पुष्ट एवं कान्तियुक्त बना देती है।

कुटजघन बटी

कुड़ा के मूल की या वृक्ष की ताजी-हरी छाल लेकर, उसको जल से धोकर जौकुट कर १६ गुने जल में पकावें। जब आठवाँ हिस्सा जल बाकी रहे, तब उसको नीचे उतारकर ठण्डा होने पर स्वच्छ और मजबूत कपड़े से छान लें। फिर प्रारम्भ में मध्यम और पीछे मन्द आँच पर पकावें और लकड़ी के कोंचे से चलाते रहें, जब क्वाथ गाढ़ा होकर कोचे (लकड़ी) में लगने लगे तब नीचे उतार कर, सूर्य की धूप में गाढ़ा हो तब तक सुखावें। पीछे उसमें अतीस का चूर्ण गोली बनने योग्य मिला, ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली दिन में ३-४ बार ठण्डे जल के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- अतिसार, ग्रहणी और ज्वर मे जब पतले दस्त आते हों, तब इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

(कुर्स) कहरवा बटी

गिले अरमनी १.२५० तोला, निशास्ता (गेहूँ का सत्व)१। तोला, गुलाब के फूल १.२५०तोला, कहरवा पिष्टी १.७५० तोला, हब्बुलास १.७५० तोला, मीठे पानी का केकड़ा अन्तर्धूम में जलाया हुआ ३ तोला, कुल्फा के बीज ३ तोला, सफेद चन्दन ३ तोला, लौंकी (कद्दू) के बीज की मींगी ३ तोला, ककड़ी के बीज की मींगी ३ तोला, गिले मख्तूम १ तोला, प्रवाल पिष्टी १.५ तोला, कतीरा गोन्द १.५ तोला, वंशलोचन १.५ तोला, सादनज का चूर्ण (धोया हुआ) १.५ तोला बबूल का गोंद २ तोला, मुलेठी सत्व २ तोला, कपूर १.५ माशा- लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् अन्य द्रव्य तथा पिष्टी मिला बिहीदाने के लुआब में मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर ५-५ रत्ती की टिकिया सदृश गोली बना सुखाकर सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली दिन में दो बार सुबह-शाम पेठे के ताजे निकाले गये रस के साथ या अर्क गुलाब या वासा पत्र-स्वरस या उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस बटी का सेवन करने से उर:क्षत (राजयक्ष्मा) में होने वाला कफ मिश्रित रक्तस्राव या केवल रक्तस्राव शीघ्र नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त यह बटी रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, दाह रोग और पित्त रोग को नष्ट करती है। हृदय को और मस्तिष्क को इसके सेवन से अपूर्व बल मिलता है तथा अश्मरी में भी अच्छा लाभ होता है। दिल, दिमाग तथा फेफड़ों और मूत्र संस्थान को भी अच्छा बल मिलता है। यह सौम्य होने के कारण पित्त वृद्धि एवं उष्णताजन्य विकारों में भी लाभ करती है। यूनानी चिकित्सक इस औषध का विशेषकर उपयोग करते हैं।

खदिरादि बटी

खैरसार (कत्था) ४ तोला, जावित्री १ तोला, कंकोल मिर्च १ तोला, कपूर १ तोला, सुपारी १ तोला लेकर कपूर को छोड़कर शेष द्रव्यों को कूटकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें पश्चात् कपूर मिला कर जल के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-यो.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली करके दिन-रात में ४-५ गोली चूसनी चाहिए।

गुण और उपयोग- मुँह में छाले पड़ने और पक जाने पर इस बटी को मुँह में रखकर धीरे-धीरे चूसना चाहिए। स्वर भंग मे भी इसके चूसने से लाभ होता है। इसके अतिरिक्त दन्त तथा ओष्ठ रोग, जिव्हा-विकार और तालु आदि के रोगों में फायदेमन्द है। इसको मुख में रखने से मुँह का जायका ठीक हो जाता है, मुँह सूखता नहीं तथा कफ पिघलकर निकल जाता है।

खर्जूरादि बटी

खजूर (छुहारा या पिण्ड खजूर), मुनक्का, मुलेठी, खाँड-प्रत्येक ४-४ तोला, पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात-प्रत्येक २-२ तोला लेकर कूट, कपड़छन चूर्ण बना, शहद के साथ ३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, मुँह में रखकर चूसें। दिन-रात में ७-८ गोली चूसें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पीपासा, पित्तप्रकोप और रक्त-पित्त का नाश होता है। यह भी एलादि बटी के समान ही गुणकारी है। विशेषतया रक्त-पित्त में जब पित्त-प्रकोप के कारण रक्त में खलबली मचती है और रक्तवाहिनी शिरायें भी जगह-जगह पर फट जाती,

जिनसे रक्त निकलना शुरू हो जाता है। यह रक्त कभी-कभी नीचे के भाग (गुदा और जननेन्द्रिय) से भी निकलने लगता हे। विशेष प्रकोप होने पर रोम-छिद्रों द्वारा भी रक्त बहने लग जाता है। ऐसी दशा में खर्जूरादि बटी देने से पित्त-शमन हो, रक्त क बहना बन्द हो जाता है। साथ ही खाँसी होना, मुँह सूखना, प्यास जलन आदि उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं।

राजयक्ष्मा की खाँसी में भी इसका बहुत उपयोग होता है। यह ज्वर की बढ़ी हुई गर्मी को कम कर देती है तथा खाँसी को बिल्कुल बन्द कर देती है।

गन्धक बटी (राजबटी)

शुद्ध गन्धक २ तोला, सोंठ का महीन चूर्ण ४ तोला, सेन्धा नमक २ तोला- इन तीनों का महीन चूर्ण कर नींबू के रस में तीन दिन तक मर्दन कर, चने के बराबर गोलियाँ बना लें।-यो.चि. तथा आरोग्य-प्रकाश

मात्रा और अनुपान- भोजन के बाद १-१ गोली, गर्म जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह बटी दीपन-पाचन तथा जायकेदार होने से बहुत प्रसिद्ध है। अजीर्ण रोग को नाश करने के लिए यह बहुत लाभदायक है। भोजन के बाद २-४ गोली जल के साथ लेने से अन्न अच्छी तरह हजम हो जाता और दस्त भी साफ निकलता है। अरुचि, अजीर्ण, पेट दर्द, पेट में वायु का जमा होना, आँव की शिकायतें, कब्जियत, रक्तविकार और अम्लपित्त आदि रोगों में यह बटी बहुत फायदा करती है। जो लोग भोजन अच्छी तरह पचने के लिए सोडावाटर का व्यवहार करते हैं, उनके लिये उसकी अपेक्षा यह अमृत के समान गुणकारी है। इससे भोजन अच्छी तरह पचता है और खुलकर भूख लगती है और चित्त हमेशा प्रसन्न रहता है। इसके नियमित सेवन से किसी देश के जल का बुरा प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता। इसमें यह विचित्र और अद्‌भुत शक्ति है। अमीर-गरीब सभी के योग्य, उत्तम गुणदायक यह दवा हे। हैजा में भी इसके उपयोग से अच्छा लाभ होते देखा गया है। इसका नाम राजबटी भी प्रचलित है।

गुडूचीघन बटी (संशमनी बटी)

अंगूठे जितनी मोटी अच्छी ताजी हरी गिलोय लाकर पहले उसको जल से अच्छी तरह धो लें। पीछे उसके ४-४ अंगुल के टुकड़ें करके कूट लें। बाद में भीतर से खूब साफ की हुई लोहे की कड़ाही या पीतल के कलईदार बर्तन में चौगुने पानी में डालकर चतुर्थांश शेष क्वाथ करें। क्वाथ ठंडा होने पर अच्छे स्वच्छ वस्त्र से दो-तीन बार छान, कलईदार बर्तन में डाल कर जब तक हलुवा जैसा गाढ़ा न हो, तब तक पकावें, पीछे अग्नि पर से उतार कर गोली बनने योग्य हो, तब तक धूप में सुखा, २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ५ से १० गोली, दिन में ४-५ बार जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- हर प्रकार के ज्वर में इसे निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। जीर्ण ज्वर और राजयक्ष्मा के ज्वर में इसका अच्छा उपयोग होता है। प्रमेह, श्वेतप्रदर, मन्दाग्नि, दौर्बल्य और पाण्डू रोग में भी इससे अच्छा लाभ होता है। यह बलकारक और रसायन-गुणयुक्त है। इसी घन में चतुर्थांश अतीस का चूर्ण मिलाकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लें। इसमें से ५-१० गोली जल के साथ देने से विषम ज्वर में भी बहुत लाभ होता है। पित्तवृद्धि के कारण बढ़ी हुई गर्मी, अन्तर्दाह, प्यास की अधिकता, मन्द-मन्द ज्वर सा मालूम पड़ना, आँखों एवं हाथों-पैरों में जलन, पसीना आना आदि लक्षणों में इसको ठण्डे जल, अर्क खस, गन्ने का रस आदि सौम्य अनुपान के साथ देने से उत्तम लाभ होता है।

गुडूच्यादि मोदक

गुडूची का सत्व बना, उसमें खस, अडूसे के मूल की छाल, तेजपात, कूठ, आँवला, सफेद मूसली, छोटी इलायची, गुलशकरी, केसर, मुनक्का, नागकेसर, कमलकन्द, कपूर, श्वेत चन्दन,नेत्रबाला, मुलेठी,बरियार के मूल या बीज, अनन्तमूल, बंशलोचन, छोटी पीपल, धान का लावा (खील),असगन्ध, शतावर, छोटा गोखरू, कौंच के बीज, जायफल, कबाबचीनी, रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, बंग भस्म, और लौह भस्म-प्रत्येक १-१ तोला और गुडूची सत्व- इन सब दवाओं को समान भाग लें। प्रथम पत्थर के खरल में रससिन्दूर को खूब महीन पीस लें पश्चात् उसमें भस्म तथा अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर एक दिन मर्दन कर शीशी में भर लें।

मात्रा और अनुपान- १.५ से ३ माशा तक चूर्ण मिश्री, गाय का घी और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- क्षय, रक्तपित्त, हाथ-पैर की जलन, प्रदर, मूत्रकृच्छ, प्रमेह और जीर्ण ज्वर में इसका प्रयोग कर लाभ उठाते हुए अनेक बार देखा गया है।

चन्दनादि बटी

श्वेत चन्दन का बुरादा प्रतिनिधि (खश), छोटी इलायची के बीज, कबाबचीनी, सफेद राल, गन्ध-बिरोजा का सत्व, कत्था और आमला-प्रत्येक ४-४ तोला, गेरू २ तोला और कपूर १ तोला ले कपड़छन चूर्ण बना, उसमें १.५ तोला उत्तम चन्दन तैल (इत्र) तथा ४ तोला रसोत मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।- सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

नोट- रसोत शुद्ध करके या दारु हल्दी क्वाथ से बनाकर डालें।

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली, दिन में ३-४ बार ठंडे जल से दें अथवा दूध की लस्सी के साथ या शर्बत खश अथवा शर्बत चन्दन से दें।

गुण और उपयोग- यह पेशाब की जलन व पेशाब में मवाद जाने की उत्तम दवा है। सूजाक या मूत्रकृच्छ्र हो जाने पर पेशाब में भयंकर जलन,कड़की एवं वेदना होती है ओर मूत्र मार्ग से मवाद जाने लगता है। ऐसी अवस्था में इसके प्रयोग से सब उपद्रव दूर हो जाते हैं तथा अन्दर के घाव भी अच्छे हो जाते हैं और गिरता हुआ मवाद रुक जाता है।

सूजाक- इस रोग का जहर शरीर में घुसते ही अथवा दो-तीन दिन बाद ही रोग के लक्षण प्रगट हो जाते हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में मूत्रनली का मुँह सुरसुराता और खुजलाता है। पेशाब गर्म और लाल होती है। इसमें कुछ जलन होती है और मवाद भी आने लगता हे। इसके बाद सूजाक की असली अवस्था शुरू होती है, जिससे पेशाब करते समय भयानक यातना होती है। हरा,पीला या सफेद मवाद भी आने लगता हे, रात को सोते समय जननेन्द्रिय उत्तेजित हो जाती है, जिसके कारण रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। जननेन्द्रिय के अग्रभाग में सूजन और अण्डकोष तथा पेडू में प्रदाह होता है, जिससे मवाद आता रहता है। ऐसी दशा में चन्दनादि बटी के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इसका असर सीधे मूत्र-नली पर पड़ता है तथा मूत्रविकारनाशक और व्रणरोपक होने की वजह से इस रोग में बहुत शीघ्र फायदा करती है।

मूत्रकृच्छ्र में-इसका प्रयोग पेशाब साफ और खुलकर लाने के लिए किया जाता है-क्योंकि यह शीत-वीर्यप्रधान तथा मूत्र-नली की शोधक होने की वजह से इस रोग में भी बहुत लाभ करती है।

चन्द्रकला बटी

छोटी इलायची के बीज, कपूर, शुद्ध सूखा शिलाजीत, आँवला, जायफल, केसर, रससिन्दूर, बंग भस्म और अभ्रक भस्म समान भाग लें। प्रथम रससिन्दूर को खरल में खूब महीन पीसें। उसमें शिलाजीत, भस्में तथा अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिलाकर, हरी गिलोय तथा सेमल

मूल के स्वरस में ३-३ दिन मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली शहद में मिलाकर दें और ऊपर से गाय का दूध या प्रमेहनाशक क्वाथ पिलावें।

गुण और उपयोग- यह बीसों प्रकार के प्रमेह को नष्ट करती है, विशेषत: शुक्रमेह और स्वप्नदोष में इसका प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है। यह रसायन पौष्टिक तथा बल-वीर्यवर्द्धक है।

इसका प्रभाव वातवाहिनी और शुक्रवाहिनी शिराओं पर ज्यादा होता है। इसकी कमजोरी से ही स्वप्नदोष या पेशाब के साथ शुक्र निकलने लगता है। मर्ज पुराना होने पर शरीर कमजोर, दुर्बल, कान्तिहीन और आँखें निस्तेज हो जाती है। शरीर में रक्त की कमी की वजह से शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाता है, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि और अजीर्ण रहने लगता है। इस दवा के उपयोग से ये सब विकार दूर हो जाते हैं तथा शरीर भी सबल और सुन्दर बन जाता है।

चन्द्रप्रभा बटी

कपूरकचरी, बच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारु-हल्दी, पीपलामूल, चित्रकमूल-छाल, धनियाँ, बड़ी हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल, छोटी पीपल, सोंठ, काली मिर्च, स्वर्ण माक्षिकभस्म, सज्जीखार, यवक्षार, सेन्धानमक, सोंचरनमक, साँभर लवण, छोटी इलायची के बीज, कबाबचीनी, गोखरु और श्वेतचन्दन(खश)-प्रत्येक ३-३ माशे, निशोथ, दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी, बड़ी इलायची, बंशलोचन-प्रत्येक १-१ तोला, लौह भस्म २ तोला, मिश्री ४ तोला, शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध गूगल ८-८ तोला लें। प्रथम गूगल को साफ करके लोहे के इमामदस्ते में कूटें, जब गूगल नरम हो जाये, तब उसमें शिलाजीत और भस्में तथा अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण क्रमश: मिलाकर तीन दिन गिलोय के स्वरस में मर्दन कर, ३-३ रत्ती की गोलियाँ बनाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-३ गोली, सुबह-शाम धारोष्ण दूध, गुडूची क्वाथ, दारुहल्दी कर रस, बिल्वपत्र-रस, गोखरु-क्वाथ या केवल मधु से दें।

गुण और उपयोग- यह बटी मूत्रेन्द्रिय और वीर्य-विकारों के लिये सुप्रसिद्ध है। यह बल को बढ़ाती है तथा शरीर का पोषण कर शरीर की कान्ति बढ़ाती है। प्रमेह और उनसे पैदा हुए उपद्रवों पर इसका धीरे-धीरे स्थायी प्रभाव होता है। सूजाक, आतशक आदि के कारण मूत्र और वीर्य में जो विकार पैदा होते हैं, उन्हें यह नष्ट कर देती हैं। टट्टी-पेशाब के साथ वीर्य का गिरना, बहुमूत्र, श्वेतप्रदर, वीर्य दोष, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, भगन्दर, अण्डवृद्धि, पाण्डू, अर्श, कटिशूल, नेत्ररोग, तथा स्त्री-पुरुष के जननेन्द्रिय के विकारों में चन्द्रप्रभा बटी से बहुत लाभ होता है। पेशाब में जानेवाला एल्ब्युमिन इससे जल्दी बन्द हो जाता है। पेशाब में जलन, रुक-रुक कर देर में पेशाब होना, पेशाब मे चीनी आना (मधुमेह), मूत्राशय की सूजन और लिंगेन्द्रिय की कमजोरी इससे ठीक हो जाती है। यह नवीन शुक्र-कीटों को उत्पन्न करती है और रक्ताणुओं का शोधन तथा निर्माण करती है। थके हुए नौजवानों को इसका सेवन अवश्य करना चाहिए।

मूत्राशय में किसी प्रकार की विकृति होने से मूत्र दाहयुक्त होना, पेशाब का रंग लाल पेंडु में जलन, पेशाब में दुर्गन्ध अधिक हो, पेशाब में कभी-कभी शर्करा भी आने लगे, ऐसी हालत में चन्द्रप्रभा बटी बहुत उत्तम कार्य करती है, क्योंकि इसका प्रभाव मूत्राशय पर विशेष होने से वहाँ की विकृति दूर होकर पेशाब साफ तथा जलनरहित आने लगता है।

वृक्क (मूत्र-पिण्ड) की विकृति होने पर मूत्र की उत्पत्ति कम होती है, जिससे मूत्राघात सम्बन्धी भयंकर रोग वातकुण्डलिका आदि उत्पन्न हो जाते हैं। मूत्र की उत्पत्ति कम होने या पेशाब कम होने पर समस्त शरीर में एक प्रकार का विष फैलकर अनेक तरह के उपद्रव उत्पन्न

कर देता है। जब तक यह विष पेशाब के साथ निकलता रहता है, शरीर पर इसका बुरा प्रभाव नहीं होता, किन्तु शरीर में रुक जाने पर अनेक उपद्रव कर देता है। ऐसी दशा में चन्द्रप्रभा का प्रभाव मूत्रपिण्ड पर होने की वजह से विकृति दूर हो जाती तथा मूत्रल होने के कारण यह पेशाब भी साफ और खुलकर लाती है।

पुराने सूजाक में भी इसका उपयोग किया जाता है। सूजाक पुराना होने पर जलन आदि तो नहीं होती, किन्तु मवाद थोड़ी मात्रा में आता रहता है। यदि इसका विष रस-रक्तादि धातुओं में प्रविष्टि हो उसके शरीर के ऊपरी भाग में प्रकट हो गया हो, यथा-शरीर में खुजली होना, छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाना, लिंगेन्द्रिय पर चट्टे पड़ जाना आदि तो ऐसी दशा में चन्द्रप्रभा बटी-चन्दनासव अथवा सारिवाद्यासव के साथ देने से बहुत अच्छा लाभ करती है। यह रस-रक्तादि गत विषों को दूर कर धातुओं का शोधन करती तथा रक्त-शोधन कर उससे होने वाले उपद्रव को शान्त करती है। इसके सेवन से पेशाब शीघ्र खुलकर होने लगता है।

यह गर्भाशय को भी शक्ति प्रदान कर उसकी विकृति को दूर करके शरीर नीरोग बना देती है। अधिक मैथुन या जल्दी-जल्दी सन्तान होने अथवा सुजाक, उपदंश आदि रोगों में गर्भाशय कमजोर हो जाता है, जिससे स्त्री की कान्ति नष्ट हो जाती है, शरीर दुर्बल और रक्तहीन हो जाता है, भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि एवं वातप्रकोप के कारण समूचे शरीर में दर्द होना, कष्ट के साथ मासिक धर्म होना, रजःस्राव कभी-कभी १०-१२ रोज तक बराबर होते रहना आदि उपद्रव होने पर चन्द्रप्रभा अशोकघृत के साथ दें। फलघृत के साथ देने से भी लाभ होता है।

अधिक शुक्र क्षरण या रजःस्राव हो जाने से (स्त्री-पुरुष) दोनों की शारीरिक कान्ति नष्ट हो जाती है। शरीर कमजोर हो जाना, शरीर का रंग पीला पड़ जाना, मन्दाग्नि, थोड़े परिश्रम से हाँफना, आँखें नीचे से जाना, बद्धकोष्ठता, भूख खुलकर नहीं लगना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे समय में चन्द्रप्रभा का उपयोग करने से रक्तादि धातुओं की पुष्टि होती है तथा वायु का भी शमन होता है।

स्वप्नदोष या अप्राकृतिक ढंग से छोटी आयु में वीर्य का दुरुपयोग करने से वातवाहिनी तथा शुक्रवाहिनी नाड़ियाँ कमजोर हो शुक्र धारण करने में असमर्थ हो जाती है। परिणाम यह होता है कि स्त्री-प्रसंग के प्रारम्भकाल में ही पुरुष का शुक्र निकल जाता है अथवा स्वप्नदोष हो जाता है या किसी नवयुवती को देखने या उससे वार्तालाप करने मात्र से ही वीर्य निकल जाता है। ऐसी दशा में चन्द्रप्रभा बटी गुर्च के क्वाथ के साथ खाने से बहुत लाभ करती है।

वात-पैत्तिक प्रमेह में इसका अच्छा असर पड़ता है। वातप्रकोप के कारण बद्धकोष्ठ हो जाने पर मन्दाग्नि हो जाती है, फिर जीर्ण, अपच, भूख नहीं लगना, अन्न के प्रति अरुचि कभी-कभी प्यास ज्यादा लगना, शरीर शक्तिहीन मालूम पड़ना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था में चन्द्रप्रभा बटी के प्रयोग से प्रकुपित वायु शान्त होकर इससे होने वाले उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं तथा प्रमेह विकार भी दूर हो जाते हैं।

चित्रकादि बटी

चित्रकमूल की छाल, पीपलामूल, सज्जीखार, यवक्षार, सेन्धानमक, सोंचर नमक, काला नमक, सामुद्र नमक, सांभर नमक, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, घी में सेंकी हुई हिंग, अजमोद, चव्य प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना विजोरा या दाड़िम के रस में १ दिन मर्दन कर, चने के बराबर (2-2 रत्ती) गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। - च.सं.

वक्तव्य- 'अन्त: सम्मार्जने प्रायोऽजमोदा तु यवानिका' इस उक्ति के अनुसार अजमोदा के स्थान पर अजवायन डालकर बनाना उत्तम है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, जल के साथ भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- आमाशय के बिगड़ जाने पर अन्न ठीक से हजम नहीं होता हो, अर्थात खाये हुए पदार्थ का अच्छी तरह से परिपाक न होने पर आंवयुक्त कच्चा मल दस्त के साथ निकलता हो(इसकी चिकित्सा जल्दी नहीं करने से संग्रहणी हो जाती है) तो जल के साथ सुबह-शाम इसका सेवन करने से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है ओर भूख खुलकर लगने लगती है। अन्न का अच्छी तरह से परिपाक होने पर आँव का बनना बिल्कुल बन्द हो जाता है और पाचन-शक्ति ठीक हो जाती है। आँवपाचन के लिये यह बटी सर्वोत्तम लाभदायक है। पेट में वायु का या कफ का प्रकोप होने पर उदरशूल, विबन्ध, पेशाब कम होना आदि त्रासदायक कष्ट हो जाते हैं, उनमें इस बटी के सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

छर्दिरिपु बटी

कपूरकचरी के सूक्ष्म कपड़छन किये हुए चूर्ण को ३ घंटे तक चन्दनादि अर्क या गुलाब जल में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली, केवल या उसके साथ मयूर पिच्छ भस्म २ रत्ती, जहरमोहरा पिष्टी २ रत्ती मिलाकर लाजमण्ड या चन्दनादि अर्क के साथ या पोदीना अर्क के साथ दें।

गुण और उपयोग- सब प्रकार के छर्दि (वमन) में यह बटी उपयोगी है। विशेष कर पित्तप्रकोपजन्य छर्दि में इसका असर बहुत शीघ्र होता है। हैजे की छर्दि में भी इसका उपयोग किया जाता है।

जम्बीर-लवण बटी

जम्बीरी या कागजी नींबू का रस १२० तोला, सेन्धा नमक १२ तोला, सोंठ २.५ तोला, अजवायन २.५तोला, सज्जीखार २.५ तोला, छोटी पीपल २.५ तोला, घी में सेंकी हुई हिंग २.५ तोला, करंज के फल को थोड़ा सेंककर निकाला हुआ मगज २.५ तोला, काली मिर्च २.५तोला, छिला हुआ लहसुन २.५ तोला, सफेद पुनर्नवा के मूल २.५तोला, पीली सरसों २.५ तोला, सफेद जीरा भूना हुआ २.५ तोला, अतीस २.५ तोला और समुद्र लवण २.५ तोला लें। स्वच्छ सफेद कपड़े से छाने हुए जम्बीरी या कागजी नींबू के रस को काँच के बर्तन में डाल, उसमें सेन्धानमक का चूर्ण मिलाकर, बर्तन के मुँह पर सफेद कपड़ा बाँधकर उसको ४ दिन तक दिन में कड़ी धूप में रखें और रात को घर में रख दें। पाँचवें दिन उस रस को मजबूत मिट्टी के बर्तन में डालकर मन्द आँच पर पकावें और लकड़ी से चलाते रहें। जब गाढ़ा हो जाये तब उसमें अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला, नीचे उतार कर ठंडा होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली ठण्डे पानी के साथ भोजन के बाद या आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार दें।

गुण और उपयोग- यह गोली उत्तम दीपन-पाचन है। मन्दाग्नि, अरुचि, पेट का दर्द, अजीर्ण और आफरे में इससे अच्छा लाभ होता है। यह स्वादिष्ट, पाचक तथा रुचि को बढ़ाने में अपूर्व काम करती है।

जयन्ती बटी

शुद्ध बच्छनाग, पाठा, असगन्ध, बच, तालीसपत्र, काली मिर्च, पीपल और नीम की छाल का समान भाग चूर्ण लेकर सबको बकरी के मूत्र में घोंट कर चने के बराबर (२-२ रत्ती की गोलियाँ) बना छाया में सुखा कर रख लें।- र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम। पित्त ज्वर में गो-दुग्ध के साथ दें। सन्निपात ज्वर में इस बटी का काली मिर्च के चूर्ण और शहद के साथ दें। विषमज्वर में घृत के साथ और सब प्रकार के ज्वरों में त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च) चूर्ण के साथ दें। ज्वरयुक्त रक्त-पित्त में चन्दन के काढ़े के साथ दें। खाँसी में-शहद के साथ, पाण्डु और शोथ में दूध के साथ तथा पथरी और भयंकर मूत्रकृच्छ्र में चावलों के पानी के साथ दें। कुष्ठ में गो-मूत्र के साथ देना चाहिए। प्रमेह में केतकी की जड़ के साथ दें अथवा लोध्र, मोथा, हर्रे और जायफल के क्वाथ में शहद डाल कर पिलाने से भी प्रमेह रोग नष्ट होता है। त्रिदोषज गुल्म में आनन्दभैरव रस या जयन्ती बटी का गुड़ में मिला कर गर्म जल के साथ देने से त्रिदोषजगुल्म नष्ट होता है। भगन्दर रोग में सौंठ के साथ, ग्रहणी में छाछ के साथ और त्रिदोषज रक्त-पित्त में शीतल जल के साथ प्रयोग करना चाहिए।

जया बटी

शुद्ध बच्छनाग, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) नागरमोथा, हल्दी, नीम के पत्ते और वायविडंग चूर्ण समान भाग लेकर गोमूत्र में घोंट कर चने के बराबर गोलियाँ बनावें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम रोगानुसार अनुपान के साथ दें

गुण और उपयोग- रसेन्द्रसार संग्रहकार ने इन दोनों (जया और जयन्ता बटी) का अनुपान तथा गुण एक-सा ही लिखा है और वैद्य लोग इसी अनुपान के अनुसार प्रयोग करके लाभ भी उठा रहे हैं। इन दोनों प्रयोगों में बच्छनाग आया है, जो एक खास और विलक्षण गुण रखता है। बच्छनाग विष का प्रभाव प्रकुपित वात तथा ज्वर पर बहुत होता है।

यह बटी वात और पित्त को शमन करने वाली है, अतएव शरीर में किसी प्रकार का दर्द होने पर इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह विषमज्वर को भी नष्ट करती है। यदि दस्त में कब्जियत हो, तो जयन्ती बटी का ही प्रयोग करना चाहिए। उससे बद्धकोष्ठता दूर हो कर दस्त साफ आने लगता है और बुखार भी उतर जाता है।

जातिफलादि बटी (संग्रहणी)

जायफल, शुद्ध टंकण, अभ्रक भस्म, शुद्ध धतूर बीज-प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग, शुद्ध अफीम २ भाग लेकर प्रथम काष्ठौशधियों का कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् अन्य द्रव्य मिला, गन्धप्रसारणी पत्र-स्वरस या क्वाथ में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-भै.र.

दूसरा- जायफल, खजूर (छुहारा) और अफीम समान भाग लेकर पान के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम मट्ठा (छाछ) के साथ दें।

गुण और उपयोग- कफ-वात-प्रधान संग्रहणी, अतिसार आदि में इसका उपयोग किया जाता है। दस्तों के साथ आँव आता हो, अथवा दस्त आने के समय पेट में दर्द होता हो, पेट मे मरोड़ उठती हो, दस्त पतला और ज्यादा परिमाण में होता हो तथा कभी-कभी रक्त भी आने लगता हो, साथ ही पेट में भारीपन तथा अपचन आदि हो तो ऐसी दशा में इस रसायन का सेवन करना बहुत लाभदायक है।

जातिफलादि बटी (स्तम्भक)

अकरकरा १ तोला, सोंठ १ तोला, शीतल चीनी १ तोला, केशर १ तोला, पीपल १ तोला, जायफल १ तोला, लौंग १ तोला, सफेद चन्दन १ तोला, शुद्ध अफीम ४ तोला लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् अफीम और केशर मिला, जल के साथ दृढ़ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। -शा.सं.

वक्तव्य- शार्ङ्गधर संहिता-मध्यम खण्ड अध्याय में आकारकरभादि चूर्ण नाम से उपरोक्त योग है। इसी योग को हमने बटी रूप में बनाकर अनुभव किया है, बहुत उत्तम गुणकारी सिद्ध हुआ है।

मात्रा और अनुपान- रात को सोने के पूर्व १ गोली, खाकर गो-दुग्ध पीना चाहिए या मधु अथवा घृत के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- वीर्यस्तम्भन करने वाली जितनी दवाईयाँ होती हैं, वे प्राय: स्नायु-संकोच हुआ करती है। इसका प्रभाव वातवाहिनी और शुक्रवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। इसी कारण यह वीर्य का जल्दी क्षरण नहीं होने देती है। वीर्य-स्खलन उसी हालत में होता है, जब स्नायु ढीली पड़ जाती, इस दवा के प्रभाव से जब तक स्नायु कड़ी रहती है, तब तक वीर्य रुका रहता है और इसका प्रभाव दूर हो जाने पर शुक्र निकल जाता है।

नोट-इस दवा का प्रयोग बहुत होशियारी के साथ करना चाहिए, क्योंकि इसमें अफीम की मात्रा अधिक है। दूसरी बात इस दवा के सेवन करने के बाद तीन रोज तक दूध, मलाई रबड़ी आदि स्निग्ध पदार्थों का खूब सेवन करना चाहिए। अन्यथा क्षणिक आनन्द के लाभ में पड़कर बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ता है। खुश्की बढ़ जाती है, कमजोरी तथा शक्ति की कमी, किसी कार्य में मन नहीं लगना, शरीर की कान्ति नष्ट हो जाना, किसी की बात अच्छी न लगना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते है, कारण यह होता है कि जितनी देर से वीर्य निकलता है उतनी ही, ज्यादा परिमाण में वीर्य गिरता है, जिसकी पूर्ती तुरन्त होना कठिन हो जाता है। यह पूर्ति दूध, मलाई आदि स्निग्ध तथा पौष्टिक पदार्थों से शीघ्र हो जाती है।

तक्रबटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक १-१ माशा, शुद्ध बच्छनाग २ माशा, ताम्र भस्म ४ माशा, पीपल और मण्डूर भस्म १-१ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना लें, फिर अन्य औषधियों का चूर्ण मिला कर सब को ७ दिन तक काले जीरे के रस में घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। भै.र

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम तक्र (छाछ) के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- पुरानी से पुरानी ग्रहणी जब किसी भी दवा से अच्छी नहीं हो रही हो, रोगी दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा हो, दस्त की मात्रा तथा तादाद बढ़ती ही जाती हो, पेट की गड़बड़ी तथा आँतों की कमजोरी के कारण पाचन-क्रिया बिल्कुल मन्द पड़ गयी हो, तब इस बटी का उपयोग किया जाता है। यदि कल्प-रूप में इस दवा का उपयोग किया जाए, तो बहुत शीघ्र लाभ होता है। शोथ एवं ग्रहणी रोग में इस दवा का कल्प प्रारम्भ करते हुए इसके सेवन-काल में लवण और पानी एकदम बन्द कर दे। पानी की जगह केवल छाछ (मठ्ठा) पीने को दें। आहार में लघुपाकी तथा हल्का अन्न दें। इस क्रम से दवा सेवन कराने से दु:साध्य शोथ एवं संग्रहणी रोग अच्छा हो जाता है। पाण्डु, मन्दाग्नि रोग, यकृत् रोग, इनमें भी इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है।

त्रैलोक्य विजया बटी

भाँग का घन सत्व ३ तोला और बंशलोचन चूर्ण ३ तोला, दोनों को एक खरल में जल के साथ मर्दन कर अच्छी तरह सावधानी से १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।-र.वि.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम मधु से देना चाहिए।

गुण और उपयोग- इस बटी के सेवन से प्रलाप, उन्माद और वृक्कशूल नष्ट होता है। माहवारी के समय होने वाले रज:कष्टजन्य शूल को यह दूर करती है तथा राजयक्ष्मा की खाँसी को मिटाती है। इसके सेवन से पुरातन अतिसार नष्ट हो जाता और स्वप्न दोष बन्द हो जाता है।

इस बटी का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। दूध या मलाई के साथ सेवन करने से यह बाजीकर भी है, क्योंकि इसका प्रभाव जननेन्द्रिय एवं शुक्रवाहिनी शिराओं पर भी होता है। शरीर में कही भी किसी तरह की पीड़ा हो इस बटी के सेवन से तुरन्त लाभ होता है। रजकृच्छ्रता अर्थात् कष्ट से माहवारी होने पर इसका कार्य बहुत अच्छा होता है। यह दस्त को भी रोकता है, परन्तु यह अफीम की तरह मल बन्धक नहीं है। इसको थोड़ी मात्रा में सेवन करने से कुछ नशा आ जाने के कारण यह थकावट को भी दूर करती है।

दाड़िमादि बटी

अनारदाने का चूर्ण ८ तोला, गुड़ ३२ तोला, सोंठ, पीपल, मिर्च-प्रत्येक ५-५ तोला लेकर सब का चूर्ण बना, कपड़छन करके एकत्र घोंट कर, चने के प्रमाण की गोलियाँ बना लें।-वाग्भट

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली जल से या वैसे ही दिन भर मुख में रखकर चूसते रहे।

गुण और उपयोग- ये गोलियाँ रोचक, दीपक, स्वर को सुधारने वाली और पीनस, खाँसी तथा श्वासनाशक है।

कभी-कभी कफ की वृद्धि या मल-संचय के कारण मुँह का स्वाद फीका हो जाता है, तथा कफ की वृद्धि से मुँह में कफ लिपटा हुआ मालुम पड़ता है। अन्न में अरुचि, भूख न लगना, मन्दाग्नि, जी मिचलाना, देह में आलस्य बना रहना, निरुत्साह आदि लक्षण हो जाते हैं। ऐसी हालत में इस बटी से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इसमें अनारदाना की मात्रा विशेष होने की वजह से यह पाचक, अग्निदीपक तथा अरुचिनाशक है।

कितने ही आदमी इस गोली को शौक से भी लेते हैं। क्योंकि इसका जायका अच्छा होता है। अजीर्ण, पेट दर्द, भूख नहीं लगना, आदि विकारों में भी इसका सेवन किया जाता है।

दाड़िमपाक बटी

सोंठ, जायफल, शुद्ध अफीम, कच्चे अनार के बीज-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर इसको कूट करके चूर्ण बनावें। पश्चात् इस चूर्ण को (बीज निकाले हुए) अनार में भर कर उसके ऊपर मिट्टी का लेप चढ़ा कर सुखा लें। पश्चात् पुटपाक विधि से पाक करें। बाद में स्वांग-शीतल होने पर पुटपाक से औषधि को निकालकर अच्छी तरह मर्दन कर १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनावें और सुखाकर सुरक्षित रखें।-अमृतसागर

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम को मट्ठा (छाछ) के साथ या जल के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस बटी का सेवन करने से समस्त प्रकार के कठिन संग्रहणी और अतिसार रोग नष्ट होते हैं, किन्तु पक्वातिसार में इस बटी के सेवन से विशेष उत्कृष्ट लाभ होता है। यह औषधि उत्तम आमपाचक और स्तम्भक है। अत: इसके सेवन से आमदोष का पाचन एवं स्तम्भन ये दोनों कार्य उत्तम प्रकार से हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त रक्तातिसार और वमन को भी शीघ्र नष्ट करता है। विसूचिका (हैजा) की वमन और दस्तों में भी इसके प्रयोग से अपूर्व लाभ होता है। हैजा में वमन और अतिसार द्वारा शरीर का जलीयांश बाहर निकल जाने से प्यास की अधिकता होती है, जिससे गला सूखने लगता है और रोगी को बड़ा कष्ट अनुभव होता है। ऐसी

दशा में मिश्री की डली के साथ इस बटी को मुँह में रखकर चूसने से बड़ा अच्छा लाभ होता है। पानी में पीपल (अस्वस्थ) वृक्ष की छाल के अंगारों को बुझाकर उस पानी को छानकर रख लें। उसके साथ इस बटी को देने से वमन, अतिसार, दाह तथा प्यास का शमन उत्तम प्रकार से हो जाता है।

द्राक्षादि गुटिका

धोकर बीज निकाला हुआ मुनक्का और हर्रे के छिलके का चूर्ण दोनों समभाग लेकर इससे दूनी शक्कर मिलाकर, सबको एकत्र कर १-१ माशा की गोलियाँ बना लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-४ गोली सुबह-शाम शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह बटी पित्त और वात-शामक है। प्रकुपित पित्त के कारण उत्पन्न हुए रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। यह अम्लपित्त, कण्ठ और हृदय का दाह, तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रम, मन्दाग्नि और आमवातनाशक है। रात को सोते समय गरम दूध के साथ ४ गोली सेवन करने से प्रायः दस्त होकर तबीयत हल्की हो जाती है। प्राकृतिक कब्ज के रोगियों के लिए नित्य सेवन करने योग्य उत्तम निर्दोष औषधि है।

दुग्धबटी (शोथ)

शुद्ध विष १२ भाग, शुद्ध अफीम १२ भाग, लौह भस्म ५ भाग, अभ्रक भस्म ६० भाग लेकर सबको एकत्र मिला गो-दुग्ध के साथ मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- सूजन (शोथ)की बीमारी में जब किसी दवा से आराम नहीं होता तब दुग्ध बटी का सेवन करना चाहिए। संग्रहणी, मन्दाग्नि, पाण्डू रोग और विषम ज्वर में भी इस दवा से अच्छा लाभ होता है।

दुग्धबटी (संग्रहणी)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध हिंगुल, मोचरस और अफीम-प्रत्येक समान भाग लेकर दूध में घोंटकर १-१ रत्ती बराबर गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -भै.र. आरोग्य-प्रकाश

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम दूध के साथ अथवा संग्रहणी में भाँग के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- आँव सम्बन्धी विकार, अतिसार, प्रवाहिका और आमातिसार में इससे बहुत लाभ होता है। आँतों की सूजन को दूर करके उनमें ग्राही-शक्ति उत्पन्न करती है। संग्रहणी के साथ शोथ वाले रोगी पर इसका प्रभाव बहुत अच्छा होता हे। संग्रहणी के रोग में कभी-कभी हाथ-पाँव और मुख भी सूज जाता हैं। यह सूजन वात-कफात्मक होती है। पेट में आँव का संचय होने से भी सूजन हो जाती है। आँव का संचय भी उपरोक्त कारणों से होता है। यह बटी वात-कफ नाशक एवं पाचक तथा स्तम्भक है। अतएव, संग्रहणी को दूर करते हुए सूजन को भी यह नष्ट करती है।

पथ्य- केवल दूध भात देना चाहिए। नमक एकदम बन्द कर दें। प्यास लगने पर भी दूध ही देना चाहिए। यदि दूध देने पर भी प्यास न बूझे तो नारियल का पानी या अनार बेदाना का रस दे सकते हैं।

धनंजय बटी

सफेद जीरा, चित्रक, चव्य, कालाजीरा, बच, दालचीनी, इलायची, कचूर, हाऊबेर, तेजपात,

नागकेसर -प्रत्येक १-१ तोला, सौंफ ६ माशा, अजवायन, पीपलामूल, सज्जीखार, हर्रे, जायफल, लौंग-प्रत्येक २-२ तोला, धनिया और तेजपात ३-३ तोला, पीपल और सांभर नमक ४-४ तोला, काली मिर्च ७ तोला, निशोथ ८ तोला, समुद्र लवण, सेन्धानमक और सौंठ १०-१० तोले, चुक या अम्लवेत ३२ तोले, पकी इमली १६ तोले- सब का कूट-कपड़छन चूर्ण कर नींबू के रस में ३ दिन घोंट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- १-८ गोली दिन में गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह बटी दीपन-पाचन-अग्निवर्धक हैं तथा अजीर्ण, शूल, मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठ, पेट फूलना, अपचन, पेट का दर्द, आमाजीर्ण तथा विष्टब्धाजीर्ण को दूर करती है।

अजीर्ण रोग ३ प्रकार के होते है। यथा कफ-दोष से आमाजीर्ण, पित्त दोष से विदग्धाजीर्ण और वात दोष से विष्टब्धाजीर्ण ऐसे तीन भेद है। इनके अतिरिक्त रसशेषाजीर्ण भी होता है। इनमें दोषानुरुप चिकित्सा होने से जल्दी लाभ होता है। यथा- कफ से उत्पन्न आमाजीर्ण में कफ दोषनाशक, पित्तदोष में उत्पन्न विदग्धाजीर्ण में पित्त-दोषनाशक और वायु से उत्पन्न विष्टब्धाजीर्ण में वात दोषनाशक दवा का उपयोग करने से लाभ होता है।

यह बटी वात और कफ दोष नाशक है। अतएव, विष्टब्धाजीर्ण और आमाजीर्ण में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। सामान्यतया जिस अजीर्ण रोग में पेट में वायु भरा रहना, दर्द होना, विबन्ध, पेट में भारीपन और दर्द विशेष हो ऐसी दशा में धनंजय बटी देने से बहुत लाभ होता है। यह प्रकुपित वात और कफ-दोष को शान्त कर पक्वाशय में पाचक रस की उत्पत्ति कर अजीर्ण दोष को मिटा देती है, जिससे वायु का संचार हो कर दस्त साफ होने लगता हैं तथा भूख भी खुल कर लगती है।

नवज्वरहर बटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, सौंठ, पीपल, काली मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, जमालगोटा-प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर अन्य दवाओं का कपड़छन चूर्ण मिला सबको एक दिन गूमा के रस में घोंटकर उड़द के बराबर (१-१रत्ती की) गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें। -भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह बटी दीपन-पाचन है। ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में उपवास करने के बाद दोष-पाचन के लिए क्वाथ आदि देने की आवश्यकता होती है। इसमें दोष-पाचन के लिए इस बटी का प्रयोग करने से दोष-पाचन भी हो जाता तथा ज्वर भी धीरे-धीरे कम होने लगता है। यह साधारण रेचक भी है, क्योंकि इसमें जमालगोटा पड़ा हुआ है। अतः बद्धकोष्ठता को भी दूर करने के लिए इसका प्रयोग करना चाहिए। अन्य विरेचन योगों की अपेक्षा यह सौम्य है।

नाग गुटिका

शुद्ध बच्छनाग, पीपल, लौंग, पीपलामूल, जायफल, दालचीनी, जावित्री, सोंठ, अकरकरा, काली मिर्च, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध टंकण-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, केशर ३ माशा, जावित्री १ रत्ती लेकर काष्ठौषधियों को कूट कर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् अन्य द्रव्य मिला, अदरक और पान के रस में क्रम से १२-१२ घण्टे मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर आधा-आधा रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा लें।-औ.गु.ध.शा.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में दो बार सुबह-शाम पान के साथ या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह जुकाम, ज्वर, गला और छाती का दर्द, अरुचि, जुकाम से होने

वाला अतिसार, उबाक, सिर दर्द, अपचन के कारण उदर में भारीपन रहना आदि विकारों को नष्ट करती है।

इस गुटिका में प्रधान औषधि बच्छनाग होने से इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए। बच्छनाग शोथहर, ज्वरनाशक, अवसादक और पीड़ाहर है। इसके प्रयोग से नासिका और कण्ठ की श्लैष्मिक कला मे से होने वाला स्राव शोषण होकर कम हो जाता है। यह स्राव शरीर के किसी भी भाग से बाहर अवश्य निकलना चाहिए। इस बटी के प्रभाव से स्वेद अधिक होता है एवं मूत्रोत्पत्ति भी अधिक होती है। अत: प्रतिश्याय जन्य श्लेष्मस्राव शीघ्र कम हो जाता है और विकार कम हो जाने पर मूत्र की मात्रा भी कम हो जाती है।

मुँह में पानी भर जाना, उबाक, अरुचि आदि अपचनजनित विकार होने पर फेनयुक्त कफ गिरने की दशा में अग्निकुमार रस का सेवन किया जाता है, परन्तु शीतल स्थान में शयन करने पर, वर्षा के जल से भींगने पर शीत लग जाने से क्षुधा नाश होना, उदर में भारीपन, कब्ज, मस्तिष्क की जड़ता, अंग जकड़ना आदि लक्षणों के साथ ज्वर होने पर नाग गुटिका का प्रयोग करने से शीघ्र उत्कृष्ट लाभ होता है, किन्तू मूत्र का रंग पीला हो या मूत्र स्राव कम हो जाय, तो ऐसी दशा में इस बटी का सेवन बन्द कर देना चाहिए। यदि यह गुटिका बन्द न की गई तो लाभ की अपेक्षा हानि होने की अधिक सम्भावना रहती है।

शीत लग कर जुकाम और ज्वर हो जाने पर त्वचा में चिपचिपापन, सर्वांग मे जड़ता, आलस्य, जंभाई आना, मुँह में मधुरता या चिपचिपापन रहना, खाँसी आने पर छाती और कण्ठ में दर्द होना आदि लक्षणों युक्त दशा में इस बटी के प्रयोग से अत्यन्त आशाप्रद लाभ होता है।

इस गुटिका के योग में श्वेत बच्छनाग का मिश्रण करने पर यह योग मधुमेह, इक्षुमेह, हस्तिमेह, नामक प्रमेह रोगों में अच्छा लाभ करती है। इस योग के सेवन में मधु की उत्पत्ति कम न होकर केवल बार-बार होनेवाली मूत्र की शंका नष्ट होती है। मधु (शर्करा) की उत्पति कम करने के लिए नाग भस्म, बसन्तकुसुमाकर, जातिफलादि बटी, प्रमेह गजकेसरी का प्रयोग करना उत्कृष्ट लाभकारी है।

नाग गुटिका के प्रयोग से रस का संशोधन होने पर शरीर में शीतलता आदि गुण कम हो जाते हैं और बच्छनाग के संयोग से त्वचा में स्थित केशिकाओं के रक्त दबाव बढ़ जाता है, जिससे प्रस्वेद-वृद्धि होकर सेन्द्रिय विष त्वचा से बाहर निकल जाते हैं, इसी कारण से बच्छनाग-प्रधान औषधियाँ क्षोभजन्य ज्वर और क्षोभयुक्त अन्यान्य रोगों में अत्यन्त लाभकारी हैं।

पंचतिक्तघन बटी

सप्तपर्ण (छतिबन) के वृक्ष की हरी-ताजी छाल, करंज की हरी पत्ती, गुर्च (हरी), कालमेघ और कुटकी सब समभाग लें। इन सब को तथा कुटकी को भी अलग-अलग धोकर काढ़ा बनाने योग्य जौकुट करें। पीछे सबको अच्छे कलईदार बर्तन में अठगुने जल में पकावें। जब अष्टमांश जल बाकी रहे, तब नीचे उतारकर ठण्डा होने दें।

ठण्डा होने पर अच्छे कपड़े से उसको दो बार छानकर कलईदार बर्तन में पुन: पकावें। पकाते-पकाते क्वाथ जब कलछी में लगने लगे अर्थात् गाढ़ा हो जाये, तब बर्तन को नीचे उतार कर धूप में रखकर सुखावें। पीछे उसमें थोड़ा (चतुर्थांश) अतीस का चूर्ण मिला ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २-३ गोली दिन भर में ४ बार गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- विषम ज्वर (मलेरिया) के लिये अच्छी दवा हे। पारी का बुखार जब किसी दवा से नहीं रुकता हो, तब इसका उपयोग करना चाहिए। इसमें एक विशेषता यह है कि कुनैन की तरह सेवन करने पर भी नुकसानदायक नहीं है, बल्कि जिन लोगों को कुनैन के सेवन से शरीर में गर्मी, पसीना आना, हाथ-पैरों में दर्द, कानों में सनसनाहट, सिर में दर्द मस्तिष्क में खुश्की आदि लक्षण हो, उनको भी दूध या ठण्डे पानी के साथ इस बटी के सेवन से अच्छा लाभ होता है।

प्राणदा गुटिका

सौंठ १२ तोला, काली मिर्च १६ तोला, पीपल ८ तोला, चव्य ४ तोला, तालीसपत्र ४ तोला, नागकेशर २ तोला, पीपलामूल ८ तोला, तेजपात ६ माशा, छोटी इलायची १ तोला दालचीनी ६ माशा और खस ६ माशा, गुड़ १२० तोला लेकर गुड़ की चाशनी में अन्य समस्त औषधियों को कूट कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली दिन में दो बार दूध या ठण्डे जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह खुनी, बादी और प्राकृतिक दोष से उत्पन्न बवासीर के लिए सर्वोत्तम दवा है। इसके नियमित सेवन से बवासीर में खून गिरना बन्द हो जाता हे और बवासीर के मस्से सूखने लगते हैं। पाण्डू कृमि, पेट-दर्द, गुल्म, श्वास, खाँसी आदि रोगों में इस औषध से अच्छा लाभ होता है।

यह बटी मूत्रकृच्छ्र, श्वासरोग, गलग्रह, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कृमि, हृद्रोग, गुल्म, श्वास और खाँसी से पीड़ित रोगियों के लिए भी समान गुणकारी है।

नोट- यदि अर्श के साथ मलावरोध भी हो, तो इस योग में सौंठ के स्थान पर हर्रे डालनी चाहिए और यदि पित्तार्श में सेवन कराना हो, तो गुड़ के स्थान में समस्त चूर्ण से चौगुनी शक्कर डालनी चाहिए। गोलियाँ गुड़ या शक्कर की चाशनी बना, उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिला कर बनानी चाहिए। मूल ग्रन्थ में आधा-आधा तोला की गोलियाँ बनाने को लिखा है, किन्तु इतनी बड़ी गोली खाने में दिक्कत होती है और आजकल के रोगों के लिए यह मात्रा भी अधिक है, अत: ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना २ से ६ गोली तक सेवन करना अच्छा है।

प्लीहारि बटी

एलुवा, अभ्रक भस्म, कसीस और शुद्ध लहसुन-प्रत्येक समान भाग लेकर सब को तीन पहर गूमा के रस में घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से ४ गोली दिन में दो बार गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- प्लीहा (तिल्ली) के लिए यह अच्छी दवा है। इसके सेवन से पेट की बढ़ी हुई तिल्ली कट जाती है और तिल्ली के बढ़ जाने से होने वाले ज्वर, खाँसी, सूजन तथा मन्दाग्नि आदि रोग भी अच्छे हो जाते हैं। यकृत विकार (लीवर का बढ़ कर अपने कार्य में असमर्थ हो जाना) गुल्म, मन्दाग्नि, सूजन आदि में भी यह औषध फायदेमंद है।

प्रभाकर बटी

स्वर्णमाक्षिक भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन का चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर एकत्र मिला, अर्जुन-छाल के क्वाथ की १ भावना देकर अच्छी

तरह मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ दें। ऊपर से गौ-दुग्ध पिलावें या अर्जुन-छाल के क्वाथ के साथ दें। आँवला चूर्ण १।। माशा और मिश्री चूर्ण १।। माशा के साथ मिला कर देने से भी यह उत्तम कार्य करती है।

गुण और उपयोग- इस बटी का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के हृदय रोगों का नाश होता है और समस्त प्रकार के फुफ्फुसजन्य रोगों में भी इसके सेवन से उत्कृष्ट लाभ होता है तथा हृदय और फुफ्फुसों को अपूर्व बल मिलता है। इसके अतिरिक्त हृदय की अनियमित गति, धड़कन, थोड़े ही परिश्रम से श्वास फूलना, रक्ताल्पता, पाण्डु, कामला, हलीमक, शोथजन्य एवं यकृत-वृद्धिजन्य हृदय रोग, पार्श्वशूल, हृदयशूल, प्रमेह इनको शीघ्र नष्ट करती है। श्वास और कास नष्ट होकर शरीर में बल-वीर्य की वृद्धि होती है। यह उत्तम पुष्टिकारक तथा श्रेष्ठ रसायन है। इस बटी का प्रधान कार्य हृदय को बल पहुंचाना है। इस बटी के प्रयोग से हृदय एवं फुफ्फुस की मांसपेशियों तथा वात-नाड़ियों को अपूर्व बल मिलता है। कई रोगियों को हृदय की दुर्बलता के कारण दाहिनी नाड़ियों में क्षोभ उत्पन्न होकर रक्तचाप की वृद्धि हो जाती है, रोगी के मुखमण्डल का कंपोल भाग उभरा हुआ-सा, आँखें लाल रहना, मस्तिष्क में भ्रम, चक्कर आना, सारी चीजें घूमती हुई-सी नजर आना, अत्याधिक कमजोरी मालूम पड़ना, नीन्द न आना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में इस प्रभावक बटी के सेवन से बड़ा उत्तम लाभ होता है। रोगी को हृदय बलवान हो जाता है एवं मस्तिष्क-क्षोभ दूर होकर नीन्द भी अच्छी आने लगती है।

बालजीवन गुटिका

गोरोचन ३ माशा, एलुवा (मुसब्बर) ६ माशा, उसारे रेबन्द, केसर, कटेरी छोटी, जीरा, यवक्षार, सत्यानाशी के बीज प्रत्येक १-१ तोला लेकर महीन चूर्ण कर अदरक के रस में ५ घण्टे घोंटकर, मूँग के बराबर गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-ध.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली आवश्यकतानुसार शहद या माता के दूध से दें।

गुण और उपयोग- यह बच्चों की पसली चलना (डब्बा रोग), कब्जियत, अफरा, श्वास, कास, पेशाब रुकना आदि को दूर करती तथा बच्चे हृष्ट-पुष्ट बनाती है।

अक्सर बच्चों को कफ की वृद्धि के कारण कब्ज हो जाता है, जिससे बच्चे का पेट फूल जाना, दस्त नहीं होता, बच्चे अधिकतर रोते ही रहते, बच्चे का मुँह भरा हुआ सा मालूम पड़ता, कफ-वृद्धि के कारण श्वास लेने में भी दिक्कत होती तथा नाक का श्वास बन्द हो जाने से मुँह से ही सांस लेना पड़ता है आदि उपद्रव होने पर यह बटी देने से प्रकुपित कफ शान्त हो जाता और दस्त खुल कर होने लगता तथा दस्त के साथ ही कफ भी निकल जाता है।

बाल बटी

सफेद जीरा, छाया में सुखाकर हुआ पोदीना, बड़ी हर्रे, वायविडंग, लौंग, अतीस, सौंफ, जायफल, भाँग, रुमीमस्तंगी, कच्छपास्थि भस्म (कछुए की पीठ की भस्म), अपराजिता के बीज, जहरमोहरा की पिष्टी और केशर, समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण कर ग्वारपाठा के रस में घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर शीशी में रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम माँ के दूध अथवा शहद में मिलाकर चटा दें।

गुण और उपयोग- बच्चे को विकृत दूध अथवा कफ-वृद्धि के कारण दूध नहीं पचता। दूध पीने पर थोड़ी ही देर बाद उगल देता है अथवा पच गया तो अच्छी तरह से हजम न होने के

कारण फटे-फटे दस्त होने लगते हैं। रात में नींद नहीं आती, बराबर तो नहीं, किन्तु अधिक देर तक जागता और रोता ही रहता है। सर्दी जोर की हो जाती है, साथ-साथ खाँसी भी आने लगती है। इन उपद्रवों को दूर करने के लिए इस बटी का उपयोग करना सर्वोत्तम है।

विषमुष्ट्यादि बटी

एरण्ड तैल में भुन कर शुद्ध किया हुआ कुचला १ भाग, काली मिर्च १ भाग लेकर दोनों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् इन्द्रायण फल-स्वरस के साथ १२ घण्टे तक खरल करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -सि.भै.म.मा.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार जल के साथ दें वात रोगों में पान के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस बटी के उपयोग से नवीन ज्वर, विषम ज्वर, मन्दाग्नि, अजीर्ण, उदरवात, उदरशूल, जीर्ण वात रोग, पागल कुत्ते का विष आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, गृध्रसी, आमाशय और पक्वाशयिक वातप्रकोप तथा चेष्टा (ज्ञान) तन्तुओं की विकृति को शीघ्र नष्ट करती है।

वातवाहिनी नाड़ियों एवं स्नायुमण्डल का तनाव दूर होकर कठिन वात रोग को नष्ट करने में औषधि उत्तम एवं शीघ्र प्रभावकारी सिद्ध हुई है। अग्नि को बढ़ाकर भूख भी अच्छी लगती है तथा स्नायुमण्डल को शक्ति प्रदान कर काम-शक्ति को जागृत करती है।

नोट- इस योग में कुचले को विशेष सम्मिश्रण होने के कारण एक साथ दो सप्ताह से अधिक सेवन नहीं कराना चाहिए। तीन-चार सप्ताह बाद आवश्यकता हो, तो पुनः इस बटी का सेवन कराया जा सकता है। इसी क्रम से तीन-चार बार तक प्रयोग किया जा सकता है।

बोलादि बटी

हीरा बोल (मुरमकी) २ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, कसीस १ तोला, घी में सेंकी हुई हींग और एलुवा (मुसब्बर) १-१ तोला, सबको जटामांसी के क्वाथ में पीस कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखा कर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २-२ गोली, सुबह-शाम भोजन के आधा घण्टा बाद जल से दें।

गुण और उपयोग- स्त्रियों के मासिक धर्म की गड़बड़ी में इसका उपयोग किया जाता है। यह गर्भाशय को शक्ति प्रदान करती तथा मासिक धर्मसम्बन्धी उपद्रवों को भी दूर करती है। इसके सेवन से मासिक धर्म में रक्त का कम स्राव होना या अधिक स्राव होना दोनों ही प्रकार की खराबियाँ नष्ट होकर उचित परिमाण में नियमित मासिक धर्म होने लगता है।

व्योषादि बटी

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, अम्लवेत, चव्य, तालीसपत्र, चित्रकमूल, सफेद जीरा और तिन्तड़ीक १-१ तोला, दालचीनी,तेजपात और छोटी इलायची का सम्मिलित चूर्ण ९ माशा, सबको एकत्र कूट-कपड़छन चूर्ण कर २० तोला गुड़ की चाशनी बना, मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-शा.सं.

वक्तव्य- कई लोग दालचीनी, इलायची और तेजपात को अलग-अलग तीन-तीन शाण लेते हैं, किन्तु वृहन्निघण्टु रत्नाकर तथा शार्ङ्गधर संहिता के मूल पाठ में ''विसुगन्धिस्त्रिशाण'' लिखा है एवं योगचिन्तामणि में ''स्त्रिसुगन्धं त्रिभाग'' लिखा है, इससे दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची को सम्मिलित कर तीन शाण लेना ही उचित है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिनभर में ७-८ गोली तक गरम जल से दें या मुख में रखकर १-१ गोली चूसें।

गुण और उपयोग- सर्दी जुकाम की यह प्रसिद्ध दवा है। इसका उपयोग अधिकतर सर्दी-जुकाम, पीनस, नजला आदि रोगों में किया जाता है। यह नवीन कफ को बाहर निकालती है तथा बढ़े हुए कफ का शमन करती है साथ ही सर्दी से होने वाले उपद्रवों में यथा सिर में दर्द होना, सिर भारी रहना, भूख नहीं लगना आदि उपद्रवों को भी दूर करती है।

प्रतिश्याय- वर्षा में ज्यादा भींगने, ठंड लगने, कड़ी धूप में घूमने, पसीने में पानी पीने, रात्रि जागरण, दिवास्वप्न, अजीर्ण, एकाएक पसीना बन्द हो जाने आदि कारणों से जुकाम हो जाता है। कस्बों या शहरों में आजकल धुआँ तथा धूलमिश्रित वायु में ही अधिक रहना पड़ता है। अतएव, स्वच्छता के अभाव में यह रोग उत्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि देहातों की अपेक्षा कस्बे तथा शहरो में इस रोग का प्रसार विशेष देखने में आता है।

उक्त अपथ्य के कारण जुकाम उत्पन्न हो जाता है। नासिका और गले की श्लैष्मिक कला में शोथ (सूजन) होने से सर्दी और ज्वर दोनों हो जाते हैं। जुकाम होने पर बेचैनी सम्पूर्ण शरीर में दर्द, अंगडाई आना, नाक और आँख से जल बहना, छींक आना, सिरदर्द, सिर का भारीपन, खुश्क-खाँसी, स्वरभंग, अरूचि आदि विकार उत्पन्न होते हैं। अगर समय पर इसका उचित उपचार न हुआ तो जुकाम से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें मन्द-मन्द ज्वर, अरुचि, कफ, खाँसी, बलगम गिरना, नाक से दुर्गन्ध आना तथा दुर्गन्धयुक्त स्राव होना, सिर-दर्द आदि प्रधान उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसे भयंकर रोगों का नाश करने के लिए व्योषादि बटी का उपयोग करना चाहिए।

वृद्धिबाधिका बटी

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, ताम्र भस्म, कांस्य भस्म, बंग भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध तूतिया, शंख भस्म, कौंड़ी भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविडंग, विधारामूल, कचूर, पीपलामूल, पाठा, हपुषा, बच, इलायची के बीज, देवदारु, सेंधानमक, काला नमक, बिड्लवण, सामुद्र लवण और सांभर लवण-प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। फिर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छन चूर्ण तथा भस्में मिला कर हर्रे के क्वाथ में घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, ताजा पानी या बड़ी हरीतकी के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह नये-पुराने सभी तरह के अण्ड-वृद्धि रोगों को दूर करती है। आंत्रवृद्धि (हर्निया) में भी इससे उत्तम लाभ होता है। अण्डकोष में वायु भर जाना, दर्द होना तथा नये दुषित रस का उतरना, रक्त एवं जल भरना आदि सभी प्रकार के अण्डकोष के विकारों में यह दवा गुण करती है, किन्तु प्रारम्भिक अवस्था की अपेक्षा पुरानी अवस्था में जब अण्डकोष में जल भर गया हो, तब विशेष लाभ नहीं करती है। अतएव अण्ड-वृद्धि का आभास होते ही यह दवा शुरु कर देनी चाहिए ताकि आगे वृद्धि न हो, साथ ही कदम्ब-पत्र पर या एरण्ड पत्र पर घी का लेप कर उसे सेंक कर अण्डकोष पर लपेट लँगोटा से कस देना चाहिए। इससे प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभ होता है।

वृद्धिहरी बटिका

कुन्दरु का गोंद ४ तोला, कटकरंज के फल को सेंक कर निकाली हुई मींगी ४ तोला, इन्द्रजौ २ तोला, घी में सेंकी हुई हींग १ तोला, डीका माली (नाड़ी हींग) १ तोला, वायविडंग २ तोला

छिला हुआ लहसुन २ तोला, इन्द्रायन की जड़ २ तोला, अजमोद २ तोला, रुमी मस्तंगी २ तोला, काला नमक ४ तोला लेकर सबको एकत्र कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् ग्वारपाठे के रस में एक दिन मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २-२ गोली दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार ठण्डे जल से सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस बटी के उपयोग से समस्त प्रकार के वृद्धि रोग, विशेषत: वातज तथा कफज अण्ड-वृद्धि तथा अन्त्र-वृद्धि (आँत उतरना-हर्निया) रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह बटी उत्तम वातानुलोमक है। इसके प्रयोग से शीघ्र ही वायु का अनुलोमन होकर विविध प्रकार के उदर रोग और आध्मान नष्ट होते हैं, तथा कृमिरोग, उदरशूल, गुल्म और उदावर्त रोगों में भी अच्छा लाभ करती है। अन्त्रवृद्धि रोग प्राय: कब्ज की शिकायत रहने वाले लोगों को होता है। इस बटी के सेवन से दस्त साफ आता है और कब्ज भी नष्ट हो जाता है।

ब्राह्मीबटी (स्वर्णघटित)

अभ्रक भस्म, संगेयशव की भस्म या पिष्टी, अकीक की भस्म या पिष्टी, माणिक्य भस्म या पिष्टी, चन्द्रोदय, प्रवालभस्म या पिष्टी, कहरवा पिष्टी, स्वर्ण भस्म या वर्क, मोती पिष्टी या भस्म प्रत्येक ६-६ माशे, जायफल, लौंग, कूठ, जाविंत्रि, स्याह जीरा, छोटी पीपल, दालचीनी, अनीसून, असगन्ध, अकरकरा, धनिया, बंशलोचन, छोटी इलायची के बीज, शंखाहुली, श्वेत चन्दन (नेत्रबाला), सौंफ, तेजपात, रुमीमस्तंगी, पीपला मूल, चित्रकमूल की छाल और कुलिंजन प्रत्ये ४-४ माशा और जावित्री, अम्बर ब्राह्मी, निशोथ, अगर और केशर-प्रत्येक डेढ़-डेढ़ तोला लें। प्रथम चन्द्रोदय, केशर, कस्तूरी तथा अम्बर को खूब महीन पीसें, उसमें अन्य भस्में और पिष्टियाँ मिला कर सोने का वर्क एक-एक करके मिला लें, पीछे अन्य द्रव्यों का कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला एक दिन ब्राह्मी के स्वरस में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर शीशी में रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार मक्खन, मलाई, दूध आदि के साथ दें। शीतांग सन्निपात में दो-दो घण्टे बाद या आवश्यकतानुसार पान के रस या मधु से दें। मियादी बुखार में भी पान के रस और मधु से दें। मूर्च्छा और पागलपन आदि वातविकारों में दशमूल काढ़ा के साथ तथा अनिद्रा रोग में मांस्यादि क्वाथ के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह बटी स्नायविक दुर्बलता को दूर करने तथा स्मरणशक्ति और बुद्धि बढ़ाने के लिये आयुर्वेद में बहुत प्रसिद्ध है। इसके उपयोग से ज्ञानवाहिनी नाड़ियों की शक्ति बढ़ती है, शीताँग सन्निपात में बेहोशी और नाडी की गति क्षीण हो जाने पर इससे बड़ा लाभ होता है। दिमाग की कमजोरी, हृदय की दुर्बलता, अनिद्रा, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, पागलपन, स्मरणशक्ति का अभाव आदि मस्तिष्क-विकारों में यह बटी बहुत फायदेमन्द है। मोतीझरा और मियादी बुखार की बेचैनी, प्रलाप आदि में वैद्यगण इसका प्रयोग कर अपूर्व लाभ करते हैं। जीर्णज्वर के बाद की निर्बलता या किसी भी दीर्घ रोग से मुक्त होने के बाद की कमजोरी इस बटी से बहुत शीघ्र दूर हो जाती है।

ब्राह्मी बटी (चेचक)

ब्राह्मी ५ तोला, रससिन्दूर २ तोला, अभ्रक भस्म, बंग भस्म, शुद्ध शिलाजीत, काली मिर्च, पीपल वायविडंग-प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना ब्राह्मी के क्वाथ में घोंटकर चना बराबर गोलियाँ बना, सुखाकर सुरक्षित रख लें। -प्रचलित अनुभूत योग

यह बटी उपरोक्त बटी से गुण में किंचित् न्यून है। फिर भी छोटी-बड़ी चेचक, मोतीझरा, मियादी बुखार तथा कमजोरी दूर करने तथा ताकत और स्मरणशक्ति की वृद्धि के लिए उपयोगी है।

ब्राह्मी बटी (बुद्धिवर्धक)

छाया में सुखाई हुई ब्राह्मी २ भाग, शंखपुष्पी की पत्ती (छाया में सुखाई हुई) २ भाग, बच १ भाग, कालीमिर्च आधा भाग, गावजवाँ २ भाग, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ भाग, रससिन्दूर १ भाग लेकर प्रथम रससिन्दूर को खरल में डालकर सूक्ष्म मर्दन करें, पश्चात् अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करके मिलावें और जटामांसी के क्वाथ की १ भावना देकर मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें। -सि.भै.म.मा. के सरस्वती बटी के योग से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली, छोटी उम्र वालों को आधी गोली से १ गोली सुबह-शाम, गुलकन्द ३ माशा या बीजरहित मुनक्का को पीसकर १।। माशे के साथ देकर ऊपर से दूध पिलावें या रोगानुसार मधु, मक्खन, आँवले का मुरब्बा, ब्राह्मी शर्बत आदि अनुपान से देना लाभकारी है।

गुण और उपयोग- इस बटी का प्रयोग करने से मस्तिष्क की दुर्बलता सम्बन्धी समस्त प्रकार के विकार शीघ्र नष्ट होते हैं। स्मरण-शक्ति तथा बुद्धि को बढ़ाने में यह बहुत उपयोगी है। इसके सेवन से वातनाड़ियों एवं चेतना-केन्द, हृदय के रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। विद्यार्थी, अध्यापक, आफीसर, न्यायाधीश आदि जिनको मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य अधिक करना पड़ता है, उनके लिए इस बटी का प्रयोग अत्यन्त गुणकारी है। यह बटी बुद्धिवर्धक होने के अतिरिक्त अनिद्रा, हिस्टीरिया, मूर्च्छा आदि रोगों में भी श्रेष्ठ लाभ करती है। इस बटी के सेवन के साथ-साथ सुबह-शाम ब्राह्मी घृत ३ से ६ माशे तक दूध में मिलाकर पीना और भोजन के बाद दोनों समय सारस्वतारिष्ट का सेवन विशेष उपयोगी है।

भागोत्तर गुटिका

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गन्ध २ तोला, छोटी पीपल ३ तोला, हर्रे ४ तोला, बहेड़ा ५ तोला, अड़ूसा की जड़ की छाल या छाया में सुखाये हुए फूल ६ तोला, भारंगी की जड़ ७ तोला और मुलेठी ८ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनाकर, बाद में उसमें अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला, बबूल की अन्तर्छाल के क्वाथ की २१ भावना दें। २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।- सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम, मधु के साथ अथवा गोजिव्हादिक्वाथ या द्राक्षारिष्ट अथवा शर्बत जुफा के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह खाँसी और दमे की उत्तम दवा है। विशेषकर वात-पित्त प्रधान सूखी खाँसी में जब कफ नहीं निकलता हो, कफ सुखकर छाती में बैठ गया हो, खाँसी ज्यादा जोर पर हो, मुँह सूखना, आँखें लाल हो जाना, प्यास लगना, बुखार का भी कुछ-कुछ सन्देह होना, शरीर में दर्द, दम फूलना आदि लक्षण होने पर यह बटी 1)शर्बत जूफा के साथ देने से बहुत लाभ करती हे। यह दवा प्रकुपित वात और पित्त को शान्त कर उससे होने वाले उपद्रवों को भी शान्त कर देती है। छाती में जमें हुए कफ को पिघला कर बाहर निकालती और श्वासनली को साफ करती है।

---

१. शर्बत जूफा- मुनक्का ३० तोला, उन्नाव २० तोला, लहसोडे के पके और सूखे फल २० तोला, सूखा अंजीर २० तोला, सोसन की जड़ २० तोला, मुलेठी २० तोला, सौंफ की जड़ २० तोला, कपास की जड़ १० तोला, जूफा १० तोला, हंसराज १० तोला, बिहीदाना ५ तोला, अनीसून ५ तोला, सौंफ ५ तोला, जौं छिले हुए २ तोला, अलसी ३ तोला, जटामांसी ५ तोला, खतमी की बीज ५ तोला-सबको लेकर जौकुट करके तीन गुने जल में रात को भिंगो दें। सबेरे मन्द आँच पर पकावें। जब एक तिहाई जल रह जाये, तब ठंडा करके कपड़े से छान लें। पीछे उसमें ६ सेर चीनी मिलाकर पकावें। जब शहद जैसी चाशनी हो जाय, तब नीचे उतारकर ठंडा होने दें। जब ठंडा हो जाये, तब कपड़े से छानकर बोतल में भरकर रख लें।-सि.यो.सं.

मकरध्वज बटी

मकरध्वज ४ तोला, कपूर ४ तोला, जायफल ४ तोला, काली मिर्च (छिलका साफ की हुई) ४ तोला, जावित्री ३ माशा लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों को सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् मकरध्वज को खरल में डालकर सूक्ष्म मर्दन करें, फिर मकरध्वज में काष्ठौषधियों का चूर्ण, कपूर तथा कस्तूरी मिला, जल के साथ दृढ़ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाकर रख लें। -भै.रं.

वक्तव्य- यह योग भैषज्यरत्नावली में ''बृहच्चन्द्रोदय मकरध्वज'' के नाम से है, किन्तु वैद्य समाज में ''मकरध्वजबटी'' के नाम से अधिक प्रचलित है। कोई-कोई इसे सिद्ध मकरध्वज के नाम से भी व्यवहार करते हैं। इसे पान के रस से मर्दन कर गोली बनाने पर विशेष अच्छी बनती है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम अदरक-रस और मधु या मिश्री, मक्खन, मलाई अथवा दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- रोगानुसार विविध अनुपान भेद से इस बटी का प्रयोग करने से वात-पित्त-कफ और त्रिदोषजनित समस्त प्रकार के रोगों को नष्ट करती है। इस बटी का विशेष प्रभाव हृदय, मस्तिष्क, वातवाहिनी तथा शुक्रवाहिनी नाड़ियों पर होता है, अतः समस्त प्रकार के शुक्र विकार-अधिक मैथुनजनित या अप्राकृतिक मैथुन-जनित इन्द्रिय, शैथिल्य इस बटी के सेवन से शीघ्र नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त प्रमेह, शीघ्रपतन, वीर्य का पतलापन आदि विकार नष्ट होते हैं। यह उत्तम पुष्टिकारक, स्तम्भन-शक्तिवर्द्धक और नपुंसकतानाशक है। यह शरीर में बल, वीर्य और ओज की वृद्धि करती है।

मधूकाद्य गुटिका

मुलेठी, महुआ, मुनक्का, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात और इलायची प्रत्येक १-१ तोला, खाँड ८ तोला, मुनक्का, मुलेठी, खजुर ४-४ तोला लेकर कूटने योग्य औषधियों को कूटकर महीन (कपड़छन) चूर्ण बना लें। शेष चीजों को पत्थर पर पीस कर महीन कर लें। फिर सबको शहद में मिला १-१ माशा की गोली बना, सुखाकर रख लें।-बंगसेन

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-दोपहर और शाम, बकरी के दूध के साथ या मधु से दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से रक्तपित्त, खाँसी, छर्दि, अरुचि, मूर्च्छा, हिचकी, भ्रम, क्षतक्षय, स्वरभंग पुराना वातव्याधि, थूक में रक्त जाना, हृदय और पसली की पीड़ा, तृषा तथा ज्वर का नाश होता है।

यह दवा पित्त-प्रकोपजन्य उपद्रवों का नाश करती है। विशेषकर रक्त-पित्त में यह अधिक उपयोगी है। रक्त पित्त की किसी भी अवस्था में इसका प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है यह राजयक्ष्मा की खाँसी में भी काफी लाभ करती है। इसके सेवन से साधारण खाँसी भी अच्छी हो जाती है।

मरीच्यादि बटी

काली मिर्च १ तोला, पीपल १ तोला, यवक्षार ६ माशा, अनार का छिलका २ तोला गुड़ ८ तोला लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् गुड़ की चाशनी बनावें और उपरोक्त द्रव्यों का चूर्ण मिला, इमामदस्त में डालकर एकजीव होने तक कूटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-शा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, दिन-रात में ५-६ गोली मुँह में रखकर चूसे।

गुण और उपयोग- खाँसी के लिये मरिच्यादि बटी बहुत प्रसिद्ध दवा है। इससे सब तरह की खाँसी दूर हो जाती है। यह स्वरभंग, गले की खराबी, सर्दी, जुकाम, खाँसी आदि में फायदा पहुँचाती है।

कफ-वृद्धि के कारण कभी-कभी गले मे दर्द होने लगता है अथवा गलसुण्डिका बढ़ जाती है-जिसे अंग्रेजी में "टॉन्सिल" कहते हैं। इसके बढ़ जाने से खाना-पीना कठिन हो जाता है। गले में इतना दर्द बढ़ जाता है कि पानी तक नहीं पिया जाता, साथ ही गले के भीतर सूजन हो जाती तथा श्वासनली कफ से भरी हुई रहती है। कभी-कभी बुखार भी हो जाता है। ऐसी दशा में इस मरीच्यादि बटी का गर्म जल के साथ देना लाभदायक है।

मदनमंजरी बटी

रससिन्दूर, अभ्रक भस्म, बंग भस्म, प्रवालपिष्टी, केशर, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची के बीज, अकरकरा, सफेद मिर्च ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, स्वर्ण भस्म ६ माशे, कपूर ६ माशे, कस्तूरी(जावित्री) १.५माशे, अम्बर १.५ लेकर केशर, कस्तूरी, अम्बर को छोड़कर शेष भस्में और काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर पान के रस के साथ ३ दिन तक मर्दन करें, चौथे दिन केसर, कस्तूरी, कपूर और अम्बर को सूक्ष्म पीसकर मिला एक जीव होने तक मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें। -र.त.सा.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली आवश्यकतानुसार दिन में दो बार मिश्री मिले दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग-यह बटी उत्कृष्ट कामोत्तेजक, वीर्य-वर्द्धक और उत्तम बल्य है। नवयुवकों के लिये परम हितकारक है। इसके प्रयोग से वीर्य-वृद्धि होकर वह गाढ़ा और शुद्ध तथा सन्तानोत्पत्ति योग्य बन जाता है, शीतकाल में इस बटी का सेवन करने पर सत्वर लाभ होता है। इस योग में अफीम न होने से यह निर्दोष बाजीकरण एवं स्तम्भक औषधि है। यह औषधि स्वप्नदोष, पेशाब के साथ या पेशाब में घुलकर धातु का गिरना, बहुमूत्र, प्रमेह, कफ एवं वात के विकारों में बहुत श्रेष्ठ लाभ करती है। रस-रक्तादि धातुओं की पुष्टि कर शरीर को बलवान बनाकर ओज की वृद्धि करती है। वातवाहिनियों एवं स्नायु मण्डल तथा मस्तिष्क को सुदृढ़ बनाकर उनकी क्रियाओं को भली-भाँति सम्पादित कराती है। बल-वीर्य एवं स्मरण शक्ति बढ़ाने में यह अपूर्व गुणकारी सुप्रसिद्ध महौषधि है। कितने ही लोगों ने केवल इसी के प्रयोग द्वारा पर्याप्त धन और यश कमाया है।

मधुमेह नाशिनी गुटिका

त्रिवंग भस्म ४ तोला, गुड़मार की पत्ती १२ तोला, छाया में सुखाई हुई नीम की पत्ती १२ तोला, शुद्ध शिलाजीत शुष्क २४ तोला, लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् सब द्रव्यों को एकत्र मिला, सब के साथ मर्दन करें और ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। यदि इसमें 1 तोला स्वर्ण भस्म डाली जाये तो यह विशेष गुण करती है। -रसामृत

मात्रा और अनुपान- २ से ३ गोली दिन में ३-४ बार या आवश्यकतानुसार ताजी हल्दी का स्वरस और आँवला स्वरस के साथ दें या जामुन की गुठली का चूर्ण १ माशा, गूलर का चूर्ण १ माशा और ताजी गिलोय या बिल्वपत्र स्वरस आधा तोला के साथ दें।

गुण और उपयोग-त्रिवंग भस्म, गुड़मार की पत्ती, शिलाजीत आदि मधुमेह नाशक उत्तम द्रव्यों से निर्मित इस बटी के सेवन से मधुमेह रोग में शीघ्र ही आशाप्रद लाभ होता है। कुछ दिनों तक पथ्य और संयम के साथ इस बटी के सेवन से नवीन मधुमेह में शीघ्र लाभ होता है।

वक्तव्य- इस योग में स्वर्ण भस्म १ तोला, जामुन की मींगी का चूर्ण १२ तोला मिलाकर गूलर पत्र-स्वरस, गिलोय-स्वरस और विजयसार के क्वाथ की १-१ भावना देकर मर्दन कर बटी बनाने से इसके गुणधर्मों में अत्यन्त वृद्धि होती है।

इसके सेवन से प्रमेह रोग में अपूर्व लाभ होता है। इसके नियमित सेवन से मधुमेह रोग नष्ट हो जाता है। अतः यह 'मधुमेहारि' योग के नाम से भी व्यवहार किया जाता है। मधुमेह यह कठिन रोग है और इसका प्रसार भी आज कल अधिक हो रहा है प्रायः पौष्टिक भोजन करने वाले वे लोग जो शारीरिक श्रम का कार्य नहीं करते, केवल दिमागी कार्य करते हैं, उन लोगों को यह रोग अधिक होता है। बीज दोष से या वंश परंपरागत भी यह रोग होता है। कितने ही कम उम्र के बच्चों को भी यह रोग होते देखा गया है। इसमें होता यह है कि यकृत की पित्तोत्पादक ग्रन्थि पैंक्रियाज की क्रिया में विकृति आने पर वह भोजन द्रव्यों में जो मधुसार (शर्करा) रहता है उसे द्राक्षोज में परिणत नहीं कर पाती और वह शर्करा ऐसे ही पेशाब में घुलकर बाहर निकलती रहती है, जिससे शरीर में शक्ति बढ़ाने में मुख्य इन्धन द्राक्षौज नहीं मिल पाती या कम मिल पाती है, इससे शारीरिक धातुएँ निर्बल हो जाती है, रोगी के शरीर, दिल तथा दिमाग में अत्यन्त कमजोरी अनुभव होती है। किसी काम में मन नहीं लगता और चिन्ता, भ्रम तथा थकावट बराबर बनी रहती है। आधुनिक चिकित्सा में इसके लिये सबसे अच्छी दवा इन्सूलीन का इन्जेक्शन है रोगी के मूत्र में शर्करा की जाँच कराते रहें। जब भी शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है ये इन्जेक्शन लगवाने होते हैं, किन्तु इन इन्जेक्शनों की भी कितनी ही संख्या में लगवा चुकने पर भी रोग नहीं मिटता, केवल रोग को दबाये रखने की शक्ति इनमें है और ये इन्जेक्शन अधिक महंगे भी पड़ते हैं। इस प्रकार अधिक व्यय करने पर भी रोगी को इस बीमारी से मुक्ति नहीं मिलती और रोगी अपने जीवन से निराश हो जाता है। ऐसे कितने ही पीड़ित बन्धुओं को इस 'मधुमेह विनाशिनी बटी' एवं 'मधुमेहारी योग' के सेवन से अच्छा लाभ होते देखा गया है।

महाभ्र बटी

अभ्रक भस्म, शुद्ध मैनसिल, ताम्र भस्म, लौह भस्म, शुद्ध पारा, गन्धक, सुहागे की खील, यवक्षार, हर्रे, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ४-४ तोला, शुद्ध विष ४ माशा और काली मिर्च का चूर्ण ४ तोला लेकर सबको एकत्र मिला, गूमा, वासक और पान इनके रस मे पृथक्-पृथक् १-१ दिन घोंटकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना ले। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम दशमूल क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- यह बटी प्रसूत रोग के लिए बहुत उपयोगी है। बच्चा पैदा होने के बाद रस रक्तादि धातु तथा वात-पित्त और कफादि दोष निर्बल हो जाते हैं। ऐसी हालत में थोड़ा भी कुपथ्य होने से अनेक प्रकार के रोग आक्रमण कर देते हैं। फिर मन्दाग्नि, भूख न लगना, अन्न में अरुचि, उठने-बैठने में तकलीफ मालूम होना आदि उपद्रव प्रारम्भिक अवस्था में उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में यह बटी अमृत के समान गुण करती है। इसके सेवन से ज्वर शीघ्र छूट जाता है। यह बटी गर्भाशय को भी शक्ति प्रदान करती तथा शरीर में रक्त-वृद्धि करती है।

महाशंख बटी

पीपलामूल, चित्रकमूल की छाल, दन्तीमूल, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, पीपल, सज्जीक्षार, यवक्षार, शुद्ध टंकण, सेन्धा नमक, काला नमक, मनिहारी नमक, सामुद्र नमक, साँभर नमक,

काली मिर्च, सोंठ, शुद्ध विष, अजवायन, हरड़ (छोटी) शुद्ध हिंग, इमलीक्षार प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला, शंख भस्म २ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य द्रव्यों को कपड़छन चूर्ण कर एकत्र मिला आम्ल वर्ग के द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ के साथ अम्लता (खट्टापन) आने तक मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली भोजन के बाद खट्टे अनार के रस या बिजौरा नींबू के रस, मट्ठा, काँजी, सिरका, मद्य, गरम जल आदि किसी एक अनुपात के साथ दें।

गुण और उपयोग- अजीर्ण और वायु के कारण उत्पन्न हुए पेटदर्द तथा परिणाम शूल की यह उत्तम दवा है। इसके सेवन से अजीर्ण की शिकायत मिटती है। भोजन का परिपाक बहुत अच्छी तरह से होता है। मन्दाग्नि की समस्त शिकायतों को नष्ट कर यह जठराग्नि को प्रदीप्त करती है। इससे भूख खूलकर लगती है और अधिक गरिष्ठ चीज खा लेने या अधिक भोजन करने पर जो अचानक अजीर्ण हो जाता है उसे मिटाने के लिये यह बहुत अच्छी दवा है। इसके सेवन से ग्रहणी, अर्श, कुष्ठ, प्रमेह, भगन्दर, प्लीहा, अश्मरी, श्वास, खाँसी, उदर कृमि, पाण्डु, विबन्ध, अफरा आदि रोग भी नष्ट होते हैं। यह उत्तम पाचक और अग्निदीपक है।

मुक्तादि बटी

मोती पिष्टी २ तोला, सोने का वर्क ६ माशा, चाँदी का वर्क १ तोला, नागकेशर २ तोला, कमल के फूलों के अन्दर का केशर १ तोला, जीरागुलाब (गुलाब के पुष्प का केशर) १ तोला, केशर आधा तोला, कपूर चौथाई तोला, कहरवा १ तोला, जहरमोहरा खताई १ तोला, संगेयशव १ तोला, गोरोचन १ तोला और गोदन्ती भस्म सब दवा के बराबर लें। दोनों वर्कों को छोड़कर सबको कपड़छन चूर्ण करके पीछे उसमें वर्क १-१ करके मिलावें। फिर अच्छे गुलाब के अर्क में आठ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, गाय या माता के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- बच्चों के लिये यह बटी अमृत के समान लाभदायक है। बालकों के जीर्णज्वर, बालशोष (सुखारोग), दूध न पचकर, अपच हो दस्त हो जाना या उल्टी होना और खाँसी आदि रोगों के लिए रामबाण दवा है। इस बटी के सेवन से बच्चे हृष्ट-पुष्ट और नीरोग हो जाते हैं। बच्चों के शरीर में अस्थियों का निर्माण होने से सुधांश (Calcium) की अधिक आवश्यकता रहती है, कहते हैं इसके अभाव में अस्थियां कमजोर और लचीली एवं सार रहित हो जाती है जिसे (Rickets)मुडदुस रोग कहते हैं। इस बटी में गोदन्ती भस्म, मोतीपिष्टी, कहरवा, जहरमोहरा, संगेयशव ये द्रव्य उत्तम सुधांश व (Calcium) पोषक होने से यह इस रोग में बहुत लाभ करती है।

मेहमुद्गर बटी

रसौत, विड़नमक, देवदारु, बेलगिरी, गोखरु, अनारदाना, चिरायता, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला और निशोथ-प्रत्येक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण १-१ तोला, लौह भस्म सब दवा के बराबर तथा शुद्ध गुगल-४ तोला लेकर काष्ठौषधियों का एकत्र कूट, पश्चात् लौह भस्म और गुग्गुलु मिलाकर आवश्यकतानुसार घी डालकर ३-३ रत्ती गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। - भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रातः सायं. ताजे जल के साथ या बकरी के दूध से दें।

गुण और उपयोग- इस बटी के सेवन से सभी प्रकार के प्रमेह रोग और पेशाब के साथ वीर्य निकलना, स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी सभी शिकायतें मिट जाती है। मूत्रकृच्छ्र (जलन और

तकलीफ के साथ रुक-रुक कर पेशाब होना), पेशाब का रुक जाना, पथरी आदि मूत्राशय सम्बन्धी रोगों के लिए भी बहुत फायदेमन्द है। कामला, पाण्डु, धातुगत ज्वर, रक्तपित्त, ग्रहणी, आमदोष, अग्निमांद्य और अरुचि आदि रोग भी इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं।

रज:प्रवर्तनी बटी

सोया के बीज ५ सेर, गाजर के बीज ५ सेर, उलट कम्बल १० सेर, बाँस की जड ५ सेर लेकर, इन सबको जौकुट करके आठ गुना मिलाकर क्वाथ करें। पुन: इसी प्रकार आठ गुना जल मिलाकर क्वाथ करें। पश्चात् छानकर दोनों बार के क्वाथ को एकत्र मिलाकर अग्नि पर चढ़ा करके घन बना लें। उपरोक्त रीति से बनाया गया घन ३ भाग, हीराबोल २ भाग, शुद्ध टंकण १ भाग, हराकसीस १ भाग, मुसब्बर(एलुवा) १ भाग, शुद्ध हिंग १ भाग लेकर इन द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर घन में मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलिँ बना सुखाकर रख लें। -आनुभाविक योग

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह शाम मासिक धर्म होने के एक सप्ताह पहले गरम जल के साथ दें अथवा उलट कम्बल के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- स्त्रियों के मासिक धर्म रुक जाने पर कमर और पेडू में दर्द होना, हाथ-पैर के तलुओं तथा आँखों में जलन होना, हरारत रहना आदि विकारों को दूर करने के लिए यह दवा रुके हुए मासिक धर्म को जारी करने के लिए बहुत प्रसिद्ध है। मासिक धर्म की खराबी से उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को यह तुरन्त दूर करती है।

रत्नप्रभा बटिका

स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, अभ्रक भस्म, नाग भस्म, बंग भस्म, पीतल भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रौप्य भस्म, हीरा भस्म, (अभाव में वैक्रान्त भस्म), लौह भस्म, शुद्ध हरिताल, खर्पर भस्म इन सबको समान भाग लेकर खरल में एकत्र पीसकर केले के रस, काकमाची (मकोय) का रस, वासारस, जयन्ती रस और कपूर के जल प्रत्येक का एक-एक अहोरात्र भावना देकर घुटाई करें। गोली बनने योग्य होने पर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १गोली प्रात:काल खाकर ऊपर से खरेटी क्वाथ अथवा गरम दूध या भृंगराज स्वरस या क्वाथ २ तोला पीवे।

गुण और उपयोग- हीरा भस्म, स्वर्ण भस्म, मोती भस्म, अभ्रक, लौह, नाग, बंग, रौप्य, स्वर्णमाक्षिक आदि अनेक रासायनिक गुणकारी भस्मों तथा शुद्ध हरिताल के सम्मिश्रण से बनी यह बटिका अपने तीक्ष्ण एवं रासायनिक तथा योगवाही प्रभाव के कारण सभी प्रकार के स्त्री रोगों में अत्यन्त गुणकारी महौषधि है। जिन विकारों में अन्य सभी औषधियाँ असफल सिद्ध हो गयी हों वहाँ भी यह बटिका अपने चमत्कारिक दिव्य गुणों के कारण उत्तम लाभकारी सिद्ध होती है। इसके योगवाही गुणों के कारण रोगानुसार उचित अनुपान के साथ देने से यह बटिका सभी रोगों में उत्तम सिद्ध लाभ करती है। किसी भी रोग की जीर्ण एवं असाध्यावस्था में इसका उपयोग सफलता-प्राप्तकारक सिद्ध होता है। स्त्रियों के स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले, अत्यन्त दुष्ट प्रदर रोग, प्रसूत विकार, गर्भाशय दोष राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, हृदयरोग, स्नायुदौर्बल्य, धनुर्वात, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), पाण्डु, कामला, हलीमक आदि रोगों में इसका उपयोग विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है। रोगों के कारण जीर्ण-शीर्ण शरीर में रस रक्तादिधातुओं की वृद्धि कर हृष्ट-पुष्ट एवं शक्ति और स्फूर्तिसम्पन्न बनाने में यह बटिका अपना विशिष्ट प्रभाव रखती है। स्त्रियों की तरह पुरुषों के प्रमेह रोग, धातु-क्षीणता, क्षय, खाँसी, श्वास, स्नायु-दौर्बल्य, कठिन वात विकार आदि रोगों में

निश्चित लाभकारी और उत्तम महौषधि है।

रविसुन्दर बटी

शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अम्लवेत, सोंठ, पीपल, काली मिर्च और शुद्ध धतुर-बीज प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, फिर उसमें अन्य दवाओं का कपड़छन चूर्ण मिला सबको एकत्र कर स्नुही (सेहुण्ड) के दुग्ध की ३ भावना और दन्तीमूल, चित्रक, धतुर, निशोथ तथा अदरक इनके रस की ७-७ भावना देकर मूँग के बराबर (१-१ रत्ती की) गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम भोजन के बाद गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग- यह बटी वात व कफजन्य मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमाजीर्ण, रसशेषाजीर्ण, पेट-दर्द, पेट में वायु भर जाना, अपचित दस्त आदि होना इन रोगों में बहुत शीघ्र कार्य करती है।

अजीर्ण- कफ वृद्धि के कारण जठराग्नि मन्द हो जाती है। फिर पाचक रस की उत्पत्ति न होने से अन्नादि का पाचन ठीक तरह से नहीं हो पाता, जो कुछ भी खाया जाता है, सब आमाशय में जमा होता रहता है, इसमें पेट फूलना, पेट भारी हो जाना, जी मिचलाना, आलस्य, अपच होकर दस्त होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में रविसुन्दर बटी का उपयोग करना बहुत लाभकारी होता है। यह बढ़े हुए कफ दोष को शान्त कर पाचक पित्त (जठराग्नि) को प्रदीप्त करती है, जिससे अन्नादिक का पाचन ठीक से होने लगता है और धीरे-धीरे सब उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।

रेचक बटी

हर्रे का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ५ तोला, शुद्ध जमालगोटा १ तोला दोनों की सेहुण्ड (थूहर) के दूध में घोंटकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। -र.चि. म.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली रात को सोते समय गर्म जल या दूध से दें।

गुण और उपयोग- इस बटी के सेवन से सुखपूर्वक १-२ दस्त साफ हो जाते हैं। कदाचित यदि रेचक बटी हजम भी हो जाय तो यह किसी प्रकार का नुकसान नहीं करती है। विशेषकर आम-संचय को यह बहुत शीघ्र नष्ट करती है।

मन्दाग्नि के कारण आमाशय की शिथिलता से पेट में विशेष आम संचय हो जाता है, जिससे मलबद्ध हो जाता, दस्त खुल कर नहीं होता, पेट तथा शरीर में आलस्य बना रहता है। ऐसी अवस्था में आमदोष दूर करने के लिए इस बटी का उपयोग करना चाहिए।

लवंगादि बटी

लौंग ८ तोला, बहेड़े के छिलके ४ तोला, पीपल ४ तोला, सकरनिगार ३ तोला, काकड़ासिंगी २ तोला, अनार का सूखा छिलका ८ तोला, दालचिनी २ तोला, खैरसार या कत्था १० तोला, सतमुलेठी २० तोला, मुनक्का १० तोला, आक के फूल ५ तोला, नौसादर २ तोला, कपूर १ तोला और सुहागे की खील १ तोला लें। प्रथम मुनक्का और आक के फूल को कूटकर चौगुने जल में क्वाथ करें, जब चौथाई जल बाकी रह जाये तब कपड़े से छानकर उनमें मुलेठी सत्व, नौसादर, कपूर और सुहागे की खील मिलावें। पीछे अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला, मटर के बराबर गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, दिन भर में ५-७ गोली मुँह में रखकर चूसें।

गुण और उपयोग- खाँसी का दौरा रोकने के लिए यह बटी बहुत उपयोगी है। कफ नहीं

निकलता हो, पुरानी खाँसी हो, अधिक देर तक खाँसने पर जरा-सा पीले कफ का टुकड़ा निकल जाता हो, छाती में दर्द हो, शिर में दर्द हो, ऐसी हालत में इस बटी को मुँह में रखकर चूसने से कफ निकल जाता है और श्वासनली साफ हो जाती एवं खाँसी भी बन्द हो जाती है।

लवंगादि बटी दूसरी- लौंग, काली मिर्च, बहेड़ा के फल का छिलका १-१ भाग तथा खैरसार (कत्था) सबके बराबर लेकर यथाविधि कपड़छन चूर्ण बना, बबूल की छाल के क्वाथ में घोंटकर, चने बराबर गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। -वैद्य जीवन

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली करके दिन भर में ५-७ गोलियाँ चूसनी चाहिए।

गुण और उपयोग- खाँसी के लिए बहुत प्रसिद्ध बटी हैं। सूखी और गिली सभी तरह की खाँसी में लाभ करती है, गोली चूसने से गले की खराबी में उत्पन्न में बड़ा फायदा होता है। मुँह में छाले पड़ जाने पर भी इससे लाभ होता है।

लवण बटी

पाँचों नमक (सेन्धा नमक, काला नमक, सामुद्र नमक, सोंचर नमक, सांभर नमक) प्रत्येक पृथक्-पृथक्, यवक्षार, सज्जीखार,पीपल, काली मिर्च, सोंठ, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, अजवायन और भूनी हुई हींग-प्रत्येकी समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। फिर उसे बिजौरा नींबू के रस अथवा अनार के रस में घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

वक्तव्य- यही रोग चरक संहिता में चित्रकादि बटी के नाम से है। सिर्फ द्रव्यों के उल्लेख क्रम का अन्तर है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली गर्म जल से भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- यह अग्निदीपक तथा पाचक है। आमाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण जो क्रमशः कफवात दोष से उत्पन्न होते हैं, उनमें यह बटी बहुत फायदा करती है। यह संग्रहणी तथा आमातिसार में भी गुण करती है। आम पाचन तथा शूल को नष्ट करने में यह बटी अतीव गुणकारी सिद्ध हुई है। उदरवात के प्रकोप का शमन कर, अनुलोमन करती है। आँतों में संचित मल (कब्जदोष) का भेदन कर दस्त भी साफ लाती है।

लशुनादि बटी

छिलका निकाला हुआ लशुन २ तोला, जिरा सफेद, शुद्ध गन्धक, सेन्धा नमक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, घी में भुनी हुई हींग-प्रत्येकी १-१ तोला इन सब को यथाविधि कूट, कपड़छन चूर्ण बना नींबू के रस में ३ दिन तक घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -वैद्य जीवन

विशेष- छिले हुए लहसुन को ३ दिन तक छाछ में भिगोकर पश्चात् निकालकर जल से धोकर डालें।

मात्रा और अनुपान- १ से ४ गोली भोजन करने के बाद गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग- यह पेट में वायु भर जाने की उत्तम दवा है। इसके सेवन से मन्दाग्नि, उदर-वायु, पेट-दर्द आदि शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। यह दीपक-पाचक तथा वायुनाशक है। अजीर्ण और विसूचिका (हैजा) आदि रोगों में बहुत फायदा करती है। अजीर्ण के कारण पेट में वायु भर जाता है जिससे डकारें आने लगती हैं। इस वायु को पचाने तथा डकारें बन्द करने के लिए रस बटी बहुत उपयोगी है। पेट में वायु कुपित होकर उर्ध्व गति हो जाती है, सामान्य लोग इसे गोला बनना कहते हैं। दिमागी काम करनेवालों को यह शिकायत बहुत होती है। इसमें जी मिचलाने, शिर भारी रहना, दिल धड़कना, भ्रम, चक्कर आना, खट्टी डकारें आना, पेट फूलना या

अफरा आदि लक्षण होते हैं। इस बटी के प्रयोग से उर्ध्ववात का शमन शीघ्र ही हो जाता है।

शम्बूकादि बटी

क्षुद्र शंख(शम्बूक-घोंघा)भस्म,काली मिर्च,पाँचों नमक-प्रत्येक समभाग लेकर करमी (कलम्बी) शाक के रस में १ दिन घोंटकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -भै. र.

वक्तव्य- पाँचों नमक शब्द से सैन्धव नमक, काला नमक, सोंचर नमक, सामुद्र नमक, साम्भर नमक इन पाँचों को पृथक्-पृथक् लेना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली गर्म जल से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- यह आम को पचाती तथा अजीर्ण, मन्दाग्नि, पेट दर्द परिणामशूल पित्तज-शूल आदि रोगों को दूर करती है। इसके नियमित सेवन से उदर-सम्बन्धी किसी व्याधि के होने का डर नहीं रहता है, क्योंकि उदर सम्बन्धी व्याधियों का मूल अजीर्ण और कब्ज है। इसके सेवन करने से न तो अजीर्ण ही हो सकता है और न कब्ज ही होता है। अतएव उदर सम्बन्धी व्याधियों से रक्षा के लिये इसका नियमित प्रयोग करना अतीव श्रेष्ठ उपाय है।

शंख बटी

इमली क्षार ५ तोला, सेन्धा नमक, काला नमक, मनिहारी नमक, सामुद्र नमक, साम्भर नमक १-१ तोला लेकर इनको २० तोला नींबू के रस में घोल दें। पश्चात् शुद्ध शंख के टुकड़े ५ तोला को अग्नि में तपा-तपा कर तब तक बुझावें जब तक कि शंख के टुकड़े नरम होकर चूर्ण न होने लगें। फिर भुनी हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल ये चारों द्रव्य मिश्रित ५ तोला, शुद्ध पारद ३.७५० माशे, शुद्ध गन्धक ३.७५०माशे लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् उसमें शुद्ध विष ३.७५०माशे तथा उपरोक्त शंख के टुकड़ों का चूर्ण और शेष काष्ठौषधियों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर एकत्र मिला नींबू रस के साथ दृढ़ मर्दन करें और २-२ रत्ती की गोलियां बना सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली दिन में ३ बार गरम जल या रोगानुसार अनुपान से दें।

वक्तव्य- नींबू के रस का वजन अनुभव के आधार पर लिखा गया है। शंख के टुकड़े ५ तोले की अपेक्षा शंख भस्म ५ तोला डालकर बनाने से यह बटी उत्तम बनती है।

गुण और उपयोग- आयुर्वेद शास्त्र में पाचन संस्थान के लिए प्रयुक्त होने वाली औषधियों में यह सर्वोत्तम औषधि है। विष्टब्धाजीर्ण जन्य अफरा, उदरशूल, शूल और इनके कारण व्याकुलता होने पर शंखबटी के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। अधिक भोजन कर लेने की अवस्था में उदर में भारीपन या वेदना होने पर इस बटी का सेवन अत्यन्त लाभकारी है। वातवर्द्धक या गरिष्ठ भोजन खाने पर कुछ समय के पश्चात् उदर में खूब खिंचाव-सा होना ज्ञात होता है। यहाँ तक कि श्वास लेने में भी रुकावट एवं चलने-फिरने में असमर्थता हो जाती है। ऐसी अवस्था में शंखबटी के सेवन से आमाशयिक विबन्ध को उत्तेजना मिलने पर अलसीभूत आमाशयिक अन्न को अगे गति करने में सहायता पहुँचती है। पश्चात् उदर खिंचाव और व्यथा ये लक्षण कम हो जाते हैं। क्षुद्रान्त्रशूल में भी इस प्रकार की अवस्था होने पर इस बटी के प्रयोग से उत्कृष्ट लाभ होता है। इसके द्वारा अन्त्र की पुरःक्षरण क्रिया में वृद्धि होकर आन्त्रिक अवरोध नष्ट हो जाता है और अन्त्र को गति करने में सुविधा हो जाती है। इस प्रकार शूलोत्पादक सभी कारण नष्ट हो जाने पर शूल भी स्वयमेव शान्त हो जाता है। क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र के संगम स्थान पर अपक्व अन्न संचित होकर आनाह और भयंकर शूल उत्पन्न कर देता है, यह अजीर्ण जनित शूल उत्पन्न कर

[illegible] है। यह अजीर्ण-जनित शूल और इस प्रकार की अवस्था विष्टब्ध में होती है। ऐसी स्थिति में शंख बटी के सेवन से शीघ्र लाभ होता है। अन्यथा अपक्व अन्न सड़कर दोनों आँतों के सन्धि स्थान पर तीव्र अन्त्रपुच्छ प्रदाह (अपेण्डिसाइटिस) नामक तीव्र शूल उत्पन्न कर देता है। यदि इसकी शीघ्र ही चिकित्सा न की जाय तो रोगी की प्रायः एक सप्ताह में ही मृत्यु हो जाती है। इस रोग की मुख्य चिकित्सा तो शल्य क्रिया द्वारा ही होती है, परन्तु विष्टब्धाजीर्ण होते ही शंखबटी का सेवन चालू कर दिया जाय तो यह रोग होने की सम्भावना नहीं रहती है।

विदग्धाजीर्ण की अवस्था में कण्ठ में दाह, खट्टी डकार, उदर में जलन, भोजन के पश्चात अन्न का घण्टों जैसे का तैसे पड़ा रहना आदि लक्षणयुक्त अवस्था में शंख बटी का सेवन अपूर्व गुणकारी है।

अपक्व आहार, विदग्धाहारजनित मूर्च्छा, अत्याधिक भोजन, विष्टम्भकारक अन्न, कच्चे या अपक्व भोजन, पक्व या गरिष्ठ भोजन, शीतल पदार्थ या दुर्गन्धियुक्त भोजन का सेवन आदि कारणों से अतिसार उत्पन्न हो जाता है। इस विष से विष्टम्भ, वेदना, सिरदर्द, मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमर का जकड़ जाना, जृम्भा, अंग टूटना, प्यास की अधिकता, ज्वर, छर्दि, प्रवाहिका, अरुचि, अपचन आदि विकार हो जाते हैं। इस अन्न विष से विदाह होकर अन्त्र की श्लैष्मिक कला भी विकृत हो जाती है और जलीय धातु की वृद्धि होने लगती है पश्चात् यही जलीय धातु अपक्व आहार में मिश्रित होकर अत्यन्त तीव्र अतिसार होने लगते हैं। साथ ही आफरा भी हो जाता है और उदर में मन्द-मन्द वेदना या कभी-कभी तीव्र शूल भी होने लगता है। वे सब उपद्रव अन्न-विष जनित क्षोभ से होते हैं। इस अवस्था में भी यह बटी उत्तम कार्य करती है।

ग्रहणी रोग की अत्यंत तीव्र अवस्था में इस बटी के प्रयोग से आशाप्रद लाभ नहीं होता, किन्तु तीव्रावस्था प्राप्त होने से पूर्व अग्निमांद्य अजीर्ण, अन्न-विष के संख आदि पर इस बटी का अच्छा प्रभाव होता है। ग्रहणी रोग की तीव्रावसथा में भी कफप्रधान लक्षण और शूल होने की दशा में इस बटी के सेवन से अच्छा लाभ होता है और मन्दाग्नि होने पर अरुचि और शूल आदि लक्षण हों, तो इससे अच्छा उपकार होता है।

परिणामशूल की अवस्था में बिबन्ध, अफरा और कोष्ठ शूल आदि लक्षण या अन्न के आमाशय में अधिक समय तक रहने की दशा में शूल होने पर शंख बटी सर्वोत्कृष्ट लाभ करती है। जीर्ण बद्धकोष्ठ के विकार में क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र के सन्धि स्थान पर अन्त्र-पुच्छ, बृहदन्त्र, इन स्थानों में अफरा या कब्ज होकर भयंकर त्रास, शूल, घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न होने पर शंख बटी के सेवन से उत्तम लाभ होता है।

यह बटी वात-कफ जन्य दोष, रस दूष्य तथा आमाशय, यकृत, प्लीहा, ग्रहणी, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र इन स्थानों पर विशेष प्रभावकारी है।

शिलाजित्वादि बटी (स्वर्णयुक्त)

शुद्ध-शुष्क शिलाजीत, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म या वर्क, लौह भस्म, शुद्ध गुग्गुलु, शुद्ध टंकण-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर एकत्र मिला मर्दन करें, पश्चात् काले भांगरे के रस की १ भावना देकर दृढ़ मर्दन करे। गोली बनने योग्य होने पर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर सुरक्षित रखें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम। अनार का रस, दूध अथवा जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह पाण्डु, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहा, अर्श, भगन्दर, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, शुक्रदोष आदि रोगनाशक है। इसके सेवन से वीर्य की क्षीणता, इन्द्रिय शिथिलता, स्वप्नदोष, टट्टी और पेशाब के साथ वीर्य जाना आदि शुक्र सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं। यह बल-वीर्य वर्द्धक

भी है।

शिलाजित्वादि बटी

त्रिवंग भस्म ३ तोला, छाया में सुखाई हुई नीम की पत्ती तथा गुड़मार की पत्ती का चूर्ण १०-१० तोला और शिलाजीत १५ तोला लें। प्रथम शीलाजीत में त्रिवंग भस्म मिलावें, पीछे अन्य चूर्ण मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनावें। यदि इस योग को विशेष गुणकारी बनाना हो तो इससे आधा तोला सुवर्ण भस्म, मिला गोलियाँ बना कर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ४-४ घण्टे से ३-३ गोली करके दिन भर में १२ गोलियाँ ठण्डे जल के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- बहुमूत्र, इक्षुमेह और मधुमेह में इस योग से अच्छा लाभ होता है। आजकल बुद्धिजीवी लोगों में पेशाब में शक्कर (चीनी) जाने की शिकायत बहुतायत से पायी जाती है। इस विकार में शिलाजित्वादि बटी के इस योग को लगतार सेवन करते रहने से उत्तम लाभ होते देखा गया है।

शुक्रमातृका बटी

गोखरू-बीज, त्रिफला, तेजपात, इलायची-बीज, रसौत, धनियाँ, चव्य, जीरा, तालीसपत्र, सुहागे की खील और अनारदाना-प्रत्येक २-२ तोला, शुद्ध गुग्गुलु १ तोला, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लौह भस्म प्रत्येक ४-४ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधियों के चूर्ण मिलाकर सबको खरल कर लें। (या पानी के साथ ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।) -भै.र.

वक्तव्य- त्रिफला शब्द से हरड़, बहेड़ा, आमला तीनों द्रव्य पृथक्-पृथक् २-२ तोला डालें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली अनार के स्वरस, बकरी के दूध या जल से सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इस बटी का प्रभाव वातवाहिनी नाड़ी तथा वृक्क (मूत्रपिण्ड) एवं वातवाहिनी शिराओं पर विशेष होता है। इसके सेवन से वीर्यस्त्राव और वातज-पित्तज तथा कफज स्वप्नदोष, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि रोग में आराम होते हैं तथा वीर्य शुद्ध और गाढ़ा हो जाता है। यह रक्ताणुओं की वृद्धि कर मांस-ग्रंथियों को सुदृढ़ बनाती है। इससे मानसिक शक्ति बढ़ती है।

शूलवर्जिनी बटी

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, शंख भस्म- प्रत्येक २-२ तोला, शुद्ध सुहागा, भुंजी हुई हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, दालचीनी, तेजपात, तालीस-पत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा और धनियाँ प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र मिला कूट-कपड़छन चूर्ण बना कर ३ दिन आँवले के रस में घोंटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम। बकरी का दूध या ठण्डे पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से आठ प्रकार के शूल, प्लीहा, गुल्म रोग, अम्लपित्त, आमवात, कामला, पाण्डु, शोथ, गलग्रह, वृद्धि रोग, श्लीपद, भगन्दर, कास, श्वास, व्रण, कुष्ठ कृमि, हिचकी, अरुचि, अर्श, ग्रहणी रोग, अतिसार, विसूचिका, कण्डू, अग्निमान्द्य, पिपासा, पीनस और अन्य भी वातज, पित्तज तथा कफज रोग नष्ट होते हैं।

शूल रोग में इस रसायन का बहुत उपयोग होता है। हमारा अनुभव भी है कि जिस रोगी को मन्दाग्नि के कारण पेट में मन्द-मन्द दर्द बना रहता हो, उसे यह दवा विशेष लाभ करती है। हम

भोजन के बाद इस गोली को अर्क अजवायन या गर्म पानी के साथ देते हैं।

सर्पगन्धाघन बटी

सर्पगन्धा १० सेर, खुरासानी अजवायन की पत्ती या बीज २ सेर, जटामांसी १ सेर इनका जौकुट-दरदरा चूर्ण करके उसको अठगुने पानी में मन्द आँच पर पकावें और लकड़ी के कोंचे से चलाते रहें। जब अष्टमांश जल बाकी रहे, तब ठंडा होने पर दो बार कपड़े से छानकर फिर उस फोक में उतना ही जल डालकर पका कर दो बार कपड़े से छानकर दोनों बार के छने जल को मन्द आँच पर पकावें। जब क्वाथ कलछुल या लकड़ी के कोंचे में लगने लगे, इतना गाढ़ा हो जाय, तब उसको नीचे उतार कर धूप में सुखावें। जब गोली बनने योग्य हो जाये, तब उसमें एक पाव भांग का चूर्ण तथा घन से चतुर्थांश पीपला-मूल चूर्ण मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -सि.यो.सं. से किंचित संशोधित

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली रात्रि को सोते समय दूध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से मस्तिष्क को आराम मिलता है और अच्छी निद्रा आती है। अतएव यह उन्माद में भी लाभदायक है। डॉक्टर लोग भी सर्पिनी टैबलेट के नाम से सर्पगन्धा की गोलियों का ही प्रयोग करते हैं। यह बहुत कटु और उष्णवीर्य है। अतएवं, पित्त प्रकृति वालों को कभी-कभी इसके सेवनोपरान्त पसीना छुटने लगता है। मूर्च्छा तक भी कभी-कभी आ जाती है, परन्तु वातानुलोमन करने में इसका प्रयोग अच्छा होता है। अतएव यह हाई ब्लडप्रेशर को घटाती और निद्रा भी अच्छी लाती है। स्वेदन गुण विशिष्ट होने से स्रोतसों को खोलती हैं और नरम करती है। यदि इसे दूध के साथ उपयोग किया जाय, तो पित्तवर्द्धक गुण भी कम हो जाता है।

इसके सेवन से अनिद्रा, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), उन्माद, अपस्मार, रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसमें निद्रा भी अच्छी आती है।

सर्पगन्धा टेबलेट- सर्पगन्धा चूर्ण में षोडशांश स्टार्च और ३२ वाँ भाग शुद्ध बबूल के गोन्द का चूर्ण मिला पानी का छींटा देकर दाना बना, सुखा, टेबलेट मशीन से ३-३ रत्ती की टेबलेट बना कर रख लें। ब्लडप्रेशर में सुबह-शाम दो-दो टेबलेट दें। यह उत्तम लाभदायक है, अनिद्रा में भी श्रेष्ठ लाभ करती है।

सबीर बटी

सबीर, * केशर, लौंग का चूर्ण, श्वेतचन्दन का चूर्ण-प्रत्येक ४-४ तोला और कस्तूरी ६ माशे लें। प्रथम सबीर को खूब महीन पीसें, फिर उसमें केशर और कस्तूरी मिला कर पान के रस से घोंटें, जब खूब घुट जाय तब अन्य दवाओ को चूर्ण मिला कर पान के रस में १ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें।-सि.यो.स.

***सबीर बनाने की विधि**- फिटकरी, कलमी शोरा, नौसादर, कसीस, सेन्धा नमक, नीलामोथा और लोबान-प्रत्येक ४-४ तोला और पीला संखिया २ तोला लेकर सबको खरल में पीसे। पीसने से सब गीला हो जायेगा, तब उसे लोहे के तवे में डाल, अग्नि पर सुखा लें फिर खरल में डालकर उसमें ३० तोला पारा मिला, ३ दिन मर्दन कर ७ बार कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भरक बालुकायंत्र में पकावें। प्रारंभ में जब तक शीशी में जलयुक्त बाष्प निकलती रहे, तब तक शीशी का मुँह खुला रखें। जब जलांश रहित श्वेत वर्ण का धुआँ आने लगे, तब शीशी के मुँह को मुलतानी या खड़िया मिट्टी की डाट लगा, ऊपर चूना और गुड़ या प्लास्टर ऑफ पेरिस लगा दें। इसके बाद ६ घंटा और आँच दें। स्वांगशीतल होने पर शीशी को बाहर निकाल तोड़ कर गले में लगा हुआ श्वेत वर्ण का सबीर (रसकपूर) निकाल दें।

वक्तव्य- सबीर रसकपूर को ही कहते हैं। अतः बनाने में असुविधा हो, तो बाजार में तैयार बना हुआ रसकपूर मिलता है, उसे लेकर व्यवहार कर सकते हैं।

मात्रा और अनुपान-१-२ गोली सुबह-शाम निगल कर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गाय का (गरम कर पीने योग्य ठण्डा किया हुआ) दूध पिलावें।

गुण और उपयोग- फिरंगोपदंश के विष से होने वाले सब प्रकार के रोगों में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। कुष्ठ, भगन्दर, व्रणरोग, उपदंश-जन्य संधिवात (गठिया), शरीर में चकते पड़ना या रक्त विकार होना इन सब रोगों में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। गोली को बिना चबाये ही निगल लेना चाहिए।

पथ्य- इस गोली के सेवन-काल में खटाई, मिर्च, हींग, राई आदि गरम मसाले तथा करेला, सरसों, मूली, एरण्ड-खरबूजा इसका शाक नहीं खाना चाहिए।

सुदर्शन टेबलेट- सुदर्शन चूर्ण में षोडशांश स्टार्च और ९२ वाँ भाग शुद्ध बबूल के गोन्द के चूर्ण को मिला थोड़ा जल का छींटा देकर, दाना तैयार कर, टैबलेट बना लें। चूर्ण की अपेक्षा यह लेने में सुविधाजनक एवं उत्तम गुणकारी है।

सुखविरेचनी बटी

जमालगोटे के बीज को फोड़कर उसके मग्ज (मिंगी) की दो दाल कर लें। ऐसी २६ दाल को रात को एक कलईदार पात्र में उबलते हुए पानी में डालकर रात भर ढँक कर रख दें। सबेरे उस दाल को हाथ में मसल कर जल से धो लें, पीछे खरल में डाल उनको खूब घोंटे। दाल अच्छी तरह पिस जाने पर उसमें २ तोला सोंठ का कपड़छन चूर्ण मिला, जल से ८ घंटा मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखाकर रख लें। - सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ गोली रात को सोते समय शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसकी १ गोली लेने से ही प्रातः दस्त बगैर कष्ट के खुब साफ होता है। परंतु इस गोली के सेवन करने से पहले मूँग की खिचड़ी घी मिलाकर खिला दें, ताकि पेट स्निग्ध (चिकना) हो जाय। इस क्रिया के बाद रेचक की गोली लेने से काफी फायदा होता है। रेचन के बाद पथ्य में दही-भात खाने को दें।

सूरणबटक

सूरण कन्द, विधारा-बीज-प्रत्येक १६-१६ भाग, स्याह मूसली, चित्रकमूल-छाल प्रत्येक ८-८ भाग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वायविडंग, सोंठ, पीपल, शुद्ध भिलावा, पीपला-मूल, तालीसपत्र, प्रत्येक ४-४ भाग, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिर्च प्रत्येक २-२ भाग लेकर सब द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् सब द्रव्यों के दुगुने गुड़ की चाशनी बना, उपरोक्त द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर इमामदस्ते में डालकर मर्दन करें, गोली बनाने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें।-शा.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ गोली तक आवश्यकतानुसार सुबह-शाम गरम दूध या गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग-यह वटक अर्श रोग की सुप्रसिद्ध दवा है और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, इसके अतिरिक्त वात-कफज-ग्रहणी, श्वास, कास, क्षय रोग,प्लीहा रोग, श्लीपद (फीलपाँव), शोथ, हिक्का (हिचकी), प्रमेह, भगन्दर आदि रोग नष्ट होते हैं और असमय में केशों को पकने से रोकता है। यह शरीर एवं बुद्धिवर्धक उत्तम रसायन है।

संचेतन बटी

सोंठ, पीपलामूल, वायविड़ंग, चित्रक, दालचीनी, तेजपात, जावित्री, शुद्ध कुचला, शुद्ध बच्छनाग, मल्ल भस्म, ताम्र भस्म, कस्तूरी- प्रत्येक दवा समान भाग लेकर भांगरे के रस में १२ घण्टे तक खरल कर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। -औ.गु.ध.शा.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली तीव्र सन्निपात में २-२ या ३-४ घण्टे के बाद गरम जल के साथ दें। सन्निपात का वेग कम होने पर ६ या ८ घंटे से दें।

गुण और उपयोग- यह बटी हृदय, मस्तिष्क तथा वातवाहिनी नाड़ियों को चेतना देने वाली है तथा रक्त में गर्मी पैदा कर नाड़ी की गति का संचालन करती है।

सन्निपात में बेहोशी की हालत में इस बटी के उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है। कफ-वात प्रधान सन्निपात में इसका असर ज्यादा होता है। अन्तिमावस्था में-जब सर्वांग शरीर शीतल हो गया हो, नाड़ी की गति धीमी पड़ गई हो, चेतना-शक्ति क्षीण हो गई हो, ऐसी भयंकर परिस्थिति में इस बटी के उपयोग से थोड़ी देर के लिए समस्त शरीर में गर्मी उत्पन्न होकर हृदय नाड़ी तथा मस्तिष्क को उत्तेजित कर रोगी में चेतना आ जाती है। ऐसी दशा में हृदय को बल देने वाला मकरध्वज, मोती भस्म, स्वर्ण भस्म, हंसपोट्टली रस आदि का भी उपयोग करने से मृत्यु-मुख से रोगी निकल आता है।

संजीवनी बटी

वायविडंग, सोंठ, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला बच, गिलोय, शुद्ध भिलावा, शुद्ध बच्छनाग- प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम बच्छनाग और भिलावे को गो-मूत्र में खूब महीन पीसे, पीछे अन्य द्रव्यों को सुक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिला गो-मूत्र में मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -शा.सं.

मात्रा - १-२ गोली अदरक रस या मधु के साथ देनी चाहिए।

अनुपान- अजीर्ण से होने वाले ज्वर में और कफवात प्रधान ज्वर में अदरक के रस और मधु के साथ और सन्निपात ज्वर में ३-७ लवंग और १०-२० ब्राह्मी की ताजी पत्ती पीस, २-४ तोला जल में मिलाकर उस जल के साथ दें। ज्वर में पतले दस्त होते हों, तो २ रत्ती दवा और जायफल को जल में घिस कर उसके साथ देनी चाहिए। विषूची रोग में रोग का वेग तेज होने पर एक-एक घंटे से १-१ गोली को अर्क पुदीना या पुदीना के स्वरस से अथवा अर्क कपूर १० बूँद को जल में मिलाकर उसके साथ या प्याज के रस १ तोला के साथ दें। रोग का वेग कम होने पर ३-३ या ६-६ घण्टे से दवा दें। सर्प काटने पर तीन-तीन गोली एक साथ में दो-दो घण्टे से तीन-चार बार दें।

गुण और उपयोग- यह बटी पसीना लाने वाली, पेशाब साफ करने वाली तथा सर्पविष, कीटाणु एवं ज्वरनाशक है। यह आमदोष को भी पचाती है और उससे उत्पन्न होने वाले उपद्रव- ज्वर, विसूचिका आदि रोगों का भी नाश करती है। यह बच्छनाग-प्रधान दवा है, अतएव यह कुछ उष्ण स्वेदल और मूत्रल है। इन्हीं गुणों के कारण ज्वर में इसका प्रयोग करने से यह पसीना लाकर स्वेद-मार्ग से तथा पेशाब लाकर मूत्र मार्ग से ज्वर-दोष निकालकर ज्वर को दूर करती है।

मन्दाग्नि के कारण पेट में आमसंचय होने पर ज्वर हो जाता है। इसमें ज्वर होना, पेट में भारीपन, अपचित दस्त भी थोड़ा-थोड़ा होना, ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई हो, पसीना बन्द रहना, बेचैनी, सिरदर्द, पेट में भी दर्द बना रहना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी हालत में संजीवनी बटी के उपयोग से विशेष लाभ होता है, क्योंकि यह आम-दोष का पाचन करके ज्वर को भी दूर करती है तथा पसीना और मूत्र द्वारा भीतर के मल दोष को भी बाहर निकाल देती है।

अधिक खा लेने या बिना भूख की दशा में फिर खा लेने अथवा दूषित पदार्थ आदि के सेवन से पाचन-क्रिया में गड़बड़ी हो, अपचन हो जाता है। फिर पेट में दर्द, पेट भारी हो जाना, पतला

और अपचित दस्त होना, पेशाब कम मात्रा में होना, कै होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में आरम्भिक अवस्था बढ़ती हुई नजर आवे तो २-२ गोली १-१ घण्टे पर दें। इससे भी उग्रावस्था में ४-४ गोली आधा-आधा घण्टे से देने से अवश्य लाभ होता है। यह आमजन्य दोष को पचाते हुए वमन और दस्त को रोकती है तथा पेशाब साफ और खुलकर लाती है, जो इस रोग में विशेष कष्ट देने वाले होते हैं। साथ ही पाचक पित्त को जागृत कर अपचन दूर करती है। सन्तत ज्वर या मोतीझरा में इसकी एक-एक गोली लौंग के पानी से या सोंठ, अजवायन, सेन्धा नमक को तीन-तीन रत्ती ले जल के साथ पीसकर पानी में मिलाकर जरा गरम कर इसके साथ दें, इससे दोषों का पाचन होकर ठीक समय पर बुखार उतर जाता है।

सारिवादि बटी

सारिवा, मुलेठी, कूठ, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, फूलप्रियंगु, निलोत्पल, गिलोय, लौंग, हर्रे, बहेड़ा, आँवला-इनका चूर्ण १-१ तोला और अभ्रक भस्म, लौह भस्म १४-१४ तोला लेकर सबको एकत्र मिला भांगरे के रस, अर्जुन के क्वाथ, जव के क्वाथ, मकोय के रस और गुंजा क जड़ के क्वाथ की १-१ भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रातः काल धारोष्ण दूध या शतावर का रस अथवा लाल चन्दन के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह बटी कर्ण रोग, प्रमूह, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, नपुंसकता, जीर्णज्वर, अपस्मार, अर्श, हृद्रोग, स्त्री रोग आदि को नष्ट करती है।

इस बटी का उपयोग कर्ण रोग में विशेष किया जाता है। कान का बहना, कान में सायँ-सायँ आवाज होना, ऊँचा सुनना आदि को दूर करती है। किसी भी कारण से मस्तिष्क में उष्णता पहुँचने पर अथवा वातवाहिनियों में विकृति होने से कान बहरा हो गया हो, या कान में दर्द होता हो, तो इसके सेवन से दूर हो जाता है। कान के लिए यह उत्तम दवा है।

सौभाग्य बटी (प्रसूत)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध सिंगिया विष, लौंग, त्रिकुटा, कूठ, नागरमोथा, भुनी हुई हींग, बड़ी इलायची, जायफल, त्रिफला, सफेद जीरा, काला जीरा, सज्जीखार, यवक्षार, सेन्धा नमक, काला नमक, साम्भर नमक, सामुद्र नमक और पांगा (मनिहारी) नमक-ये २७ दवाएँ समभाग लेकर पहले पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर शेष २५ दवाओं का चूर्ण मिलाकर निर्गुण्डी, गूमा, अपामार्ग, अदरक और पान के रस की एकएक भावना देकर चने बराबर गोलियाँ बना लें। -आरोग्य-प्रकाश

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम दशमूल क्वाथ, दूध या जल से दें।

गुण और उपयोग- यह नुस्खा शास्त्रोक्त नहीं आनुभविक है, किन्तु रस पीपरी की तरह इसका भी नाम बिहार प्रान्त में सर्व-साधारण से लेकर पढ़े-लिखें सबकी जबान पर रहता है। प्रसूत रोग की तो यह खास दवा है। बहुत सी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो अपने स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने के लिए साल भर में एक या दो सप्ताह इस दवा का सेवन करना परमावश्यक समझती हैं और प्रतिवर्ष इसका सेवन भी करती हैं। प्रसूत में होने वाले ज्वर, मन्दाग्नि, आमदोष, शूल, वात, प्रकोप, अतिसार, कफदोष आदि में उत्तम गुणकारी है।

सौभाग्य बटी (सन्निपात)

शुद्ध टंकण, शुद्ध विष, श्वेत जीरा, सेन्धा नमक, सौवर्चल नमक, विड्नमक, सामुद्र नमक,सांभर नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़ बहेड़ा, आँवला, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद- ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें। पश्चात् अन्य

द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर एकत्र मिला, सफेद फूलवाली निर्गुण्डी, नीले फूलवाली निर्गुण्डी, भांगरा, अडूसा, अपामार्ग इनके स्वरस की १-१ भावना देकर मर्दन करें, गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोली बना, सुखाकर रखें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम अदरक स्वरस और मधु से या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग-इस बटी का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के सन्निपात रोग नष्ट होते हैं। अत्यंत शीतज्वर, दाहज्वर, प्रलेपक ज्वर, घोर मूर्च्छायुक्त ज्वर, तन्द्रा, समस्त इन्द्रियों को मूर्च्छित होना, साथ ही मन का भी मुग्ध होना और उर्ध्व श्वासादि रोग, घोर कफयुक्त कास, मूर्च्छा, अरुचि, तृष्णा, पार्श्वशूल सहित ज्वर को नष्ट कर मनुष्य को मृत्यु मुख से निकलकर उसकी रक्षा करती है।

हिंगुकर्पूरादि बटी

घी में सेंकी हुई असली हींग १ भाग, कपूर १ भाग, कस्तुरी १/८ भाग लेकर सबको एकत्र मिला दृढ़ मर्दन करें, १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

प्रथम हींग और कपूर को मिलाकर मर्दन करें, इन दोनों के मिलने से गिलापन आ जाता है, फिर कस्तुरी मिलाकर गोली बनावें, यदि गोली न बन सके तो १०-२० बूँद शहद मिलाकर गोली बनावें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य- कभी-कभी कपूर और हींग दोनों मर्दन करते-करते इतने अधिक गीले हो जाते है कि गोलियाँ नहीं बन पाती है। ऐसी स्थिती में योग से चतुर्थांश शुण्ठी चूर्ण मिलाने से गोलियाँ अच्छी तरह बन जाती है एवं गुणों में भी किसी प्रकार का अंतर नहीं आता ऐसा हमारा अनुभव है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली जल में या २-४ तोला दूध या अदरक रस ३ माशा और शहद के साथ दें। यदि गोली न निगल सकें तो गोली को अदरक के रस और शहद से मिलाकर जिव्हा पर लगा दें।

गुण और उपयोग- ज्वरावस्था में सन्निपात के लक्षण देखते ही इस बटी का सेवन कराना विशेष उपयोगी है। इससे नाड़ी की गति नियमित हो जाती है और हाथ-पाँव कांपना, कपड़ा फेंकना, उठ-बैठ करना, अण्ट-सण्ट बकना आदि लक्षण नष्ट हो जाते हैं। योषापस्मार (हिस्टीरिया) में इस बटी के सेवन से अच्छा लाभ होता है। श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया) में इस बटी से अच्छा लाभ होता हैं और कफपतला होकर निकल जाता है, कफकी दुर्गंध नष्ट हो जाती हैं और कफगत कीटाणुओं का नाश होता है।

हृदय रोग में कम्प, हृदय में वेदना, घबराहट, चक्कर आना आदि लक्षण हो तो इस बटी के सेवन से शीघ्र लाभ होता है। शीत ज्वर में इस बटी के प्रयोग से शीत, कम्प आदि लक्षण सरलता से नष्ट हो जाते हैं। यह बटी पसीना लाती है और बढ़े हुए शारीरिक उत्ताप को नष्ट करती है।

हिंग्वादि बटी

भुनी हींग, अम्लवेत, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, अजवायन, सेन्धानमक, विड्नमक, काला नमक-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर कपड़छन चूर्ण करें पश्चात् बिजौरा नींबू के रस की तीन भावना देकर तीन दिन तक मर्दन करें, गोली बनाने योग्य होने पर ३-३ रत्ती की गोली बना सुखा कर रखें। - चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली दिन में दो-तीन बार सेंधानमक, काली मिर्च, भुने जीरे के

चूर्ण मिश्रित मट्ठे के साथ सेवन करें या १-१ गोली मुँह में रखकर चूसें।

गुण और उपयोग-यह बटी उत्तम पाचक, दीपक और वातानुलोमक है। इस बटी के सेवन से अपचन जनित कठिन शूल रोग सत्वर नष्ट हो जाता है। आफरे को नष्ट कर, पाचन क्रिया को प्रबल बना, जठराग्नि की वृद्धि करती है।

आफरे में इस बटी का प्रयोग करने के साथ-साथ उदर पर एरण्ड तैल मलकर सेंक करें तो बाहर से भी अच्छी सहायता मिलती है। यदि अन्त्र के भीतर आम संचित होकर आँते चौड़ी और निर्बल हो गई तो दिन में दो बार प्रातः और रात्रि को १-२ माशे वायविडंग चूर्ण को शक्कर के साथ देवें और ऊपर से ५-१० तोला जल पिलावे। यदि साथ ही मलावरोध की भी शिकायत हो तो काला मुनक्का या गुलकन्द १-२ तोला देते रहें, इससे उदर साफ होने में विशेष सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त सौंफ को नमक का जल लगा थोड़ा सेंककर उसमें से थोड़ी-थोड़ी सौंफ दिन में ४-६ बार देते रहने से आम पाचन में विशेष सहायता मिलती है। प्रातःकाल ३-४ गोली खाने से आमाजीर्ण को नष्ट करती है, भोजन के पूर्व खाने में भूख में वृद्धि होती है तथा भोजन के बाद खाने से अन्न का परिपाक ठीक होता है। इस बटी का नियमित सेवन करने वालों को मन्दाग्नि और उदर सम्बन्धी विकार होने का भय नहीं रहता है।

क्षार बटी

शुद्ध बच्छनाग १ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, शंख भस्म ४ तोला, इमली क्षार ८ तोला, ताम्र भस्म १६ तोला, त्रिकुटा चूर्ण ३१ तोला, लेकर सबको एकत्र मिला तुलसी भाँगरा, बिजौरा नींबू और अदरक इनके स्वरस की पृथक्-पृथक् सात-सात भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।-र.र.स.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग- यह बटी तीक्ष्ण और दीपन-पाचन है। ग्रहणी, गुल्म, शूल, अग्निमान्द्य, अर्श, रक्तगुल्म और अरुचि नाशक है।

इस बटी का प्रयोग अग्निमांद्य, गुल्म और शूल रोगों में विशेष किया जाता है। यह अपनी तीक्ष्णता के कारण गुल्म को बहुत शीघ्र पचा देती है और जठराग्नि को प्रदीप्त कर मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को सुधार देती है।

क्षुधावती गुटिका

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रक भस्म, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, सोया, चव्य, जीरा, काला जीरा, पुनर्नवा, बच, दन्ती-मूल,घण्टाकर्ण, दण्डोत्पला-मूल निशोथ अनन्तमूल-प्रत्येक का कूटकर-कपड़छन किया हुआ महीन चूर्ण १-१ तोला और मण्डूर भस्म २ तोला लें। इन्हें अदरक के रस से मर्दन कर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें।-भै.र.

वक्तव्य- त्रिफला शब्द से हरड, बहेड़ा, आमला तीनों पृथक्-पृथक् १-१ तोला डालें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल या काँजी से दें।

गुण और उपयोग- यह गुटिका अम्लपित्त, प्लीहा, पेट फूलना, भूख न लगना, आमवात, परिणामशूल, अजीर्ण, पाँचों प्रकार के कास,श्वास आदि रोगों के लिए अच्छी है। भोजन के बाद १-२ गोली खा लेने से मन प्रसन्न हो जाता और भूख खूब लगती है। जी मिचलाना, मुँह का स्वाद खराब होना, कब्जियत तथा अपचन के लिए यह बटी बहुत फायदेमन्द है।

अम्लपित्त में- जब दर्द के साथ वमन होता हो, अन्न का पानी तक भी न पचता हो, शरीर दुर्बल और कमजोर हो गया हो, खट्टी डकारें आती हों, ऐसी अवस्था में इससे बहुत फायदा होता है। यह पित्त को शमन करते हुए जठराग्नि को दीप्त कर देती है। जिससे अन्नादिक का पचन ठीक

से होने लगता है। फिर धीरे-धीरे रोगी अच्छा हो जाता है।

क्षुधाकारी बटी

नींबू रस २.५ सेर को लोहे की साफ कड़ाही में डाल कर अग्नि पर पकावें, जब अष्टमांश शेष रह जाये, तब सेंधा नमक पिसा हुआ १ सेर, घी २.५ तोला, नीची १२.५ तोला मिला दें, पश्चात् सोंठ ७.५ तोला, मरिच ७.५तोला, पीपल ७.५ तोला, जीरा सफेद ७.५तोला, जीरा स्याह ७.५ तोला, शुद्ध टंकण ७.५तोला, अकरकरा ११.५ तोला, नींबू सत्व १२.५ तोला, इनका कपडछन किया हुआ चूर्ण मिलाकर मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। - सि.भै.म.मा.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार सेवन करें। यह बटी अत्यंत स्वादिष्ट एवं रोचक होने के कारण मुँह में रखते ही मुँह में लालास्राव होकर उसके साथ गोली पिघल कर पेट में पहुँच जाती है। अतः इसके सेवन में किसी अनुपान की आवश्यकता नहीं है।

गुण और उपयोग- यह बटी अरोचक, अजीर्ण, मन्दाग्नि, उदरशूल, खट्टी डकारे आना, पेट फूलना, पेट में वायु संचित होकर ऊपर को जाना (गैस बनना) आदि विकारों में उत्तम गुणकारी है। उपरोक्त विकारों से पीड़ित कितने ही व्यक्ति इस बटी का सेवन कर लाभ उठाते देखे गये हैं। अत्यन्त स्वादिष्ट और रोचक होने के कारण सभी लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं।

❖❖❖

पर्पटी प्रकरण

रसायन कल्प में पर्पटी का बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैं। आन्त्रिक विकार (अतिसार, संग्रहणी आदि) में जब किसी अन्य दवा से लाभ नहीं होता हो उस समय पर्पटी-कल्प से आशाजनक लाभ होने के कई उदाहरण मिले हैं, परन्तु यह लाभ तभी हो सकता है जब शास्त्रोक्त विधि से पर्पटी तैयार की गयी हो।

पर्पटी का प्रयोग विशेषतया ग्रहणी और मन्दाग्नि रोग में किया जाता है, क्योंकि यह आँतों की कमजोरी तथा विकृति को दूर करती, आँतों में से दुष्ट मलादि को बाहर निकाल फेंकती और आँतों की शिथिलता दूर कर उनमें शक्ति उत्पन्न करके कार्य करने में समर्थ बनाती है। पारद-गन्धक की कज्जली से यह एक अपूर्व चमत्कारी दवा तैयार होती हैं। इसका असर पक्वाशय और बृहदन्त्र में विशेष रूप से होता है।

पर्पटी-निर्माण-विधि

शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा दोनों समभाग लेकर अच्छी तरह कज्जली बना लें। अब इस कज्जली को एक लोहे की अन्दर से घी पुती हुई चमची (कलछी) में डाल इसे कोयले की अग्नि पर रखकर छुरी या लोहे की पत्ती से चलाते हुए पिघलावें, जब यह (कज्जली) पिघल कर कीचड़ की भाँति गीली-सी हो जाय तो गोबर के ऊपर बिछे हुए केले के पत्ते पर डाल दें, डालते ही एक दूसरे केले के पत्ते से (हाथ में गोबर लेकर केले के पत्ते पर डालकर) इसे फैलाकर दबाते हुए ढँक दें, और अच्छी तरह शीतल होने तक इसी तरह रहने दें। इस प्रकार केले के पत्ते से दबाने पर इसकी पतली पपड़ी बन जाती है, इसीलिये इसे पर्पटी कहा जाता है।

नोट- कज्जली को लोहे के चम्मच में डालने से पूर्व चम्मच में थोड़ा-सा घी लगा लेना चाहिए, जिससे द्रव्य उसमें चिपका न रह जाये और अग्नि से गन्धक जलने न पावे।

पर्पटी के पाक-मृदु(कोमल), मध्य तथा खर भेद से तीन तरह के होते हैं। इनमें मृदु तथा मध्य पाकयुक्त पर्पटी का औषध रूप में प्रयोग करना चाहिए। खरपाक पर्पटी सेवन योग्य नहीं होती।

पाक के लक्षण- मृदु पाकवाली पर्पटी तोड़ने पर कुछ मुड़कर टूट जाती है, मध्य पाक वाली बहुत आसानी से टूट जाती है, किन्तु खर पाक वाली पपड़ी ठीक न बनकर कुछ लाल वर्ण जैसा चूर्ण हो जाती है।

विशेषत: योगवाही होने से इन पर्पटियों में जिन-जिन पदार्थों को मिलाया जाता है, उनके गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं, परन्तु इनके स्वाभाविक गुण इससे कम नहीं होते। जैसे-रसपर्पटी में स्वाभाविक पर्पटी के गुणों के अतिरिक्त पारद का गुण भी रहता है। स्वर्णपर्पटी में स्वर्ण का गुण, ताम्र पर्पटी में ताम्र का गुण एवं पंचामृत पर्पटी में लौह और अभ्रक का गुण विशेष देखा जाता है।

रससिन्दूर कल्प और पर्पटी कल्प में गुण विषयक भेद इस तरह है कि रससिन्दूर, स्वर्णसिन्दूर या मकरध्वज सेवन करने के पश्चात् जब वे आमाशय से अन्तड़ियों (पक्वाशय) में पहुँचते हैं, तब उनमें बहुत कुछ रूपान्तर हो जाता है। रूपान्तर न होते हुए उनका कार्य पक्वाशय में ठीक-ठीक होने के लिए पर्पटी कल्प सहायक होता है। पर्पटी कल्प विशेषत: पक्वाशय और ग्रहणी विकार में ही उपयोगी होता है। पक्वाशय के विकारों पर तो पर्पटी कल्प बहुत ही उपयोगी है। पुराना अतिसार, ज्वर, ग्रहणी, प्रवाहिका आदि रोगों पर इसके समान आशुफलप्रद दूसरी कोई औषध नहीं है, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। सिन्दूर कल्प के समान इसका वियोजन आमाशय में नहीं होता, बल्कि पक्वाशय और ग्रहणी में होता हैं।

पर्पटी कृमिनाशक, पाचक, व्रण-शोधक, व्रण-रोपक और शक्तिवर्द्धक है। संग्रहणी-विकार में दूध या मट्ठा के साथ पर्पटी का उपयोग बहुत ही अच्छा कार्य करता है।

पर्पटी सेवन के नियम- प्रायः सभी पर्पटियों की सेवनीय मात्रा १ से २ रत्ती हैं। नियमानुसार १ रत्ती प्रति दिन बढ़ाते हुए इसे दिन में एक बार प्रातःकाल खाना चाहिए। अर्थात् प्रथम दिन १ रत्ती, दूसरे दिन २ रत्ती, तीसरे दिन ३ रत्ती, इस क्रम से १० रत्ती तक बढ़ावें। फिर प्रति दिन में उसी क्रम से एक-एक रत्ती कम कर इसका सेवन बन्द कर दें। यदि आवश्यकता हो तो पुनः क्रम बाँध कर बढ़ावें और घटावें। अधिक आवश्यकता पड़ने पर २ या ३ रत्ती की मात्रा में इसका सेवन सुबह-शाम (दोनों समय) किया जा सकता है।

अनुपान- रोग और रोगी के अनुकूल दूध, छाछ, दही का पानी और शहद आदि के साथ दें।

पथ्य- पर्पटी सेवन करने वाले मनुष्य को अत्यन्त तीक्ष्ण तथा विदाही पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। हो सके तो नमक भी नहीं खाना चाहिए। यदि नमक खाना आवश्यक हो तो बहुत थोड़ी मात्रा में सेन्धा नमक, आग पर भुना हुआ खाएँ। यदि ज्वर, खाँसी आदि उपद्रव न हो, तो पर्पटी के सेवनकाल में तक्र का सेवन बहुत अच्छा लाभ करता है। इस समय रोगी केवल छाछ का ही सेवन करें। छाछ गाय की होनी चाहिए। यदि केवल छाछ पर नहीं रहा जाय, तो उसके साथ पुराने चावलों का भात दें। अगर तक्र या छाछ अनुकूल न पड़े तो दूध का सेवन करें। जहाँ तक हो सके जल बहुत कम पीना चाहिए। यदि बिल्कुल ही जल न पिया जाय तो और अच्छा। अत्यन्त प्यास लगने पर अनार का रस, सन्तरा, मीठा नींबू या ईख का रस थोड़ा-थोड़ा पीवें। हरे या कच्चे नारियल का पानी भी पी सकते हैं।

प्रसूता स्त्री के शरीर में यदि सूजन हो और वह संग्रहणी रोग से ग्रसित हो तो बहुत सावधानीपूर्वक उसे पर्पटी का सेवन करना चाहिए। यद्यपि पर्पटी शोथ और संग्रहणी की अमोघ औषध है तथापि यह उस प्रसूता स्त्री के लिए फायदेमन्द नहीं, जिसका जरायु क्षेत्र क्लेद-युक्त है, योनि-मार्ग से दुर्गंधयुक्त जल बहा करता है या जिसके पेडू (बस्तिप्रदेश) में पीड़ा या भार-सा मालूम होता है।

नोट- इस प्रकरण में अक्षर-क्रम से पर्पटियों के नाम नहीं लिखे गये हैं।

रस-पर्पटी

पूर्वोक्त विधान से शुद्ध किए हुए पारद और गन्धक ५-५ तोला लेकर कज्जली बना लें। जब उसमें पारद के छोटे-छोटे कण (चमक) न दिखे और चूर्ण सुरमें के समान सूक्ष्म हो जाय, तब उसको घी से पुती हुई छोटी लोहे की कलछी या कड़ाही में डाल बेर के लकड़ियों की अग्नि पर एक लोहे का तवा रख, उस पर एक अंगुल मोटा बालू का अस्तर बिछाकर कड़ाही रखें। जब कज्जली गरम होने लगे तब उसको बीच-बीच में लोहे के छुरे से हिलाते रहे। जब सारी कज्जली अच्छी तरह से द्रव (पतली) हो जाय तब उसे जमीन पर गोबर बिछा उसके ऊपर केले का अखण्ड पत्ता रख दें और तुरन्त ही उस पर केले का दूसरा पत्ता रख गोबर से दबा, हाथ की हथेली का जोर लगा कर फैला दें। जब पर्पटी ठण्डी हो जाये तब निकाल कर शीशी में भर कर रख दें। - सि.यो.सं.भै.र.

नोट- सब प्रकार की पर्पटियाँ इसी विधि से बनानी चाहिए। सेवन करते समय पर्पटी को खूब महीन पीसकर उपयोग में लाना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती की मात्रा बढ़ाकर ७ या १० रत्ती तक रोग और रोगी का बलाबल देख कर दें। रोग अच्छा होने तक यही मात्रा देते रहें। जब रोगी रोग-मुक्त हो जाय तब प्रतिदिन १-१ रत्ती की मात्रा घटाकर औषध छुड़ा दें।

आचार्य यादवजी का कहना है- "मैंने एक दिन में एक बार १० रत्ती तक की मात्रा न देकर दिन में दो-तीन बार में १ से ३ रत्ती तक की मात्रा देकर प्रयोग किया है और इससे अच्छा लाभ होते देखा है" सामान्यत: पर्पटी का प्रयोग ४० दिन तक का है।

उन्माद रोग में - रस पर्पटी २ रत्ती, रास्नामूल चूर्ण १ माशा, गोघृत में मिलाकर सेवन करना चाहिए।

अपस्मार रोग में- रस पर्पटी २ रत्ती ब्राह्मी स्वरस के साथ सेवन करें।

संग्रहणी रोग में- रस पर्पटी २ रत्ती, सफेद जीरे का चूर्ण १ माशा। हींग आधी रत्ती मिलाकर मट्ठा के साथ देने से लाभ होता है।

उदरशूल में- एरण्ड तैल के साथ सेवन करें।

शोथयुक्त पाण्डु रोग में- शुद्ध गुग्गुल चूर्ण के साथ सेवन करें।

अर्श रोग में- रस पर्पटी २ रत्ती गोमूत्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

कुष्ठ रोग में- निम्ब का पंचांग, बावची और भांगरे का चूर्ण समान भाग २ माशा, पर्पटी २ रत्ती मिला शहद के साथ दें।

वातज्वर में- रस पर्पटी २ रत्ती दशमूल क्वाथ के साथ दें।

कफजन्य खाँसी में- १ माशे त्रिकटु चूर्ण के साथ २ रत्ती पर्पटी का सेवन कराना गुणदायक है।

गुण और उपयोग- पारद-गन्धक की कज्जली का यह पर्पटी कल्प पाचक, दीपक, जन्तुघ्न, शोधक और परम रसायन है। मन्दाग्नि, संग्रहणी, रक्त की कमी, पुराना अतिसार, पाण्डु, अर्श तथा पेट के सभी विकारों में रस पर्पटी का प्रयोग किया जाता है। यकृत विकार को ठीक करके यह पर्पटी पाचक रस उचित मात्रा में पैदा करती है। आँतों में व्रणों को भरने और उसमें से संचित विष को बाहार निकालने में पर्पटी सबसे अच्छी दवा है। ग्रहणी कला की दुर्बलता इससे ठीक हो जाती है और आँतों में पचाने की शक्ति बढती है। पाचन शक्ति इतनी मात्रा में बढ़ जाती है कि पाव भर दूध हजम न करने वाला आदमी रोज १०-१५ सेर दूध पचा जाता है। इससे विदग्ध पित्त के उपद्रव दूर हो जाते हैं और रक्त-शोधन व प्रसादन दोनों कार्य होते हैं। अतएव शोथ, कुष्ठ, जलोदर आदि रोगों में यह विशेष फायदा करती है।

पक्वाशय में कृमिजन्य विकार के कारण होने वाला अतिसार अथवा अन्न जब अपरिपक्वावस्था में ही आँतों में पड़ा रहने से दाह और दुर्गन्धयुक्त अतिसार प्रारंभ होता है, तो ऐसी अवस्था में ध्यान रखना चाहिए कि यकृत विशेष बिगड़ा हुआ नहीं होता। अतएव यकृत को उत्तेजित करने वाली या यकृत विकार को नष्ट करने वाली कोई दवा नहीं देनी चाहिए। केवल आँतों में रहनेवाले स्थानीय विकार को शमन करने के लिए औषध देने की आवश्यकता है। ऐसी हालत में विशेष लक्षण यह होता है कि रोगी की जीभ मटमैले रंग की हो जाती है, इसी से जान लेना चाहिए कि रोगी के अन्त्रस्थित दोष बिगड़े हुए हैं, और उसकी पाचन क्रिया ठीक नहीं है। ऐसी अवस्था में रसपर्पटी देनी चाहिए।

बच्चों के अतिसार में ''रसराज रस'' देने की राय कई वैद्यों की होती है, परन्तु सब बालकों के लिए यह अनुकूल नहीं पड़ता है। आप इसे चाहे जितनी कम मात्रा में दें, फिर भी बच्चों के पेट में दाह (जलन) मरोड़ आदि के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव इसे देकर रस-पर्पटी थोड़ी मात्रा में देने से बहुत लाभ होता है।

दूसरा अन्तर इन दोनों दवाओं में यह है कि जो अतिसार अत्यन्त तीव्र स्वरूप का होता है, जिसमें बार-बार एकदम उष्ण जल के समान अधिक परिमाण में या अल्प परिमाण में पतले दस्त होते हों, साथ ही पेट में कैंची के काटने की-सी पीड़ा हो, ज्वर से रोगी बेचैन हो, इस प्रकार के अतिसार में रसराज अच्छा काम करता है, किन्तु छोटे-छोटे बच्चों को इस प्रकार का अतिसार नहीं होता, उन्हें प्रायः श्वेत (सफेद) हरे-पीले वर्ण के पतले पतले दस्त ज्यादा परिमाण में होते हैं। कभी-कभी उन्हें अशान्ति भी होती है। जिव्हा मटमैली रहती है, कभी ज्वर रहता, कभी नहीं भी रहता, ऐसी दशा में रसराज की अपेक्षा रस-पर्पटी विशेष गुणदायक होती है। पर्पटी पहले कम मात्रा में दें, फिर क्रमशः मात्रा बढ़ाते जायें। बच्चों के लिये ४ रत्ती से ज्यादा नहीं दें, अन्यथा अतिमात्रा से हानी होगी।

अतिसार-विकार में कई बार कृमि का अनुबन्ध रहता है। ऐसी अवस्था में प्रथम कृमिनाशक दवा देकर एरण्ड-तेल के समान कोई हल्का जुलाब देने के पश्चात् रस पर्पटी दें। इससे अच्छा लाभ होता है। कृमि रहने से पर्पटी का प्रभाव अच्छी तरह नहीं पड़ता है, अतः कृमि दूर करना आवश्यक है।

रस पर्पटी में शोथनाशक तथा पाण्डुनाशक शक्ति भी पाई जाती है। तीव्रातिसार में कई कारणों से अन्त्र में प्रायः शोध हो जाया करता है, जिसके कारण अतिसार की तीव्रता और भी बढ़ जाती है। इस प्रकार की तीव्रावस्था में ''रस पर्पटी'' का उपयोग पहले न करें तो अच्छा हो। तीव्रावस्था की समाप्ति पर इसका उपयोग दाह और पित्तशामक औषधियों के साथ करने से शोथ एकदम नष्ट होकर अतिसार दूर हो जाता है।

आँतों की ग्राहक शक्ति बढ़ाने में ''रसपर्पटी'' अद्वितीय औषध है। प्रायः जीर्णातिसार में आँतों की ग्राहक शक्ति नष्ट हो जाती है, ऐसी स्थिति में अनाड़ी लोग अफीम या अन्य स्तम्भक औषधों का सेवन कराकर आँतों में नाम मात्र की क्षणस्थायी शक्ति पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु अफीम सदृश औषधियों से आँतों की वास्तविक शक्ति तो बढ़ती नहीं। हाँ! कुछ काल के लिए वह स्तम्भकता उत्पन्न कर देती है, जिससे ऐसा मालूम होता है कि अतिसार कम हो गया, किन्तु पश्चात् अतिसार का प्रकोप पुनः दुना हो जाता तथा आँते और भी शिथिल हो, शक्तिहीन हो जाती हैं, ऐसी अवस्था में इस प्रकार की औषधि देनी चाहिए, जो आँतों में चिरस्थाई शक्ति पहुँचावे। ''रसपर्पटी'' इस कार्य के लिए उत्तम है।

उपदंश के कई रोगियों को एक विचित्र त्रासदायक अतिसार शुरु हो जाता है। ऐसी स्थिति में केवल अतिसार की चिकित्सा करने से काम नहीं चलता, उस अतिसार का मूल कारण जो उपदंश का विष है, उसे भी नष्ट करना आवश्यक हो जाता है। ये दोनों कार्य ''रसपर्पटी'' द्वारा बहुत अच्छी तरह होते हैं।

आँतों में शोथ हो जाने से प्रायः एक प्रकार का विषैला ज्वर उत्पन्न हो जाया करता है। इसमें समान वायु का कोप विशेष रूप से होता है। ज्वर की प्रकोपावस्था में शोथ कम होकर व्रण-रूप में परिणत हो जाता है, साथ ही अतिसार का भी प्रकोप होता है। इसमें रोगी को भयंकर कष्ट और पीड़ा होती है। यह अवस्था प्रायः ३ से ६ सप्ताह तक रहती है और इस ज्वर का लक्षण तान्त्रिक सन्निपात से मिलता है। इसमें दस्त सफेद या पीले वर्ण के बार-बार होते हैं। पेट में पीड़ा बहुत होती है। ऐसी परिस्थिति में ''रस पर्पटी'' के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। यह शोथ दूर करती, व्रण भरती, उदर तथा आँतों की भयंकर पीड़ा को शमन करती, पाचन क्रिया को सुधारती और रोग के मूल कारण प्रकुपित समान वायु को शमन करती है।

रसपर्पटी- कई मनुष्यों को अनुकूल नहीं पड़ती। पित्त की अधिकता वाले तथा पित्त प्रकृति वाले रोगी को रस पर्पटी सहन नहीं होती। इससे पित्त की और वृद्धि हो जाती है। अतएव रोगी और रोगी का बल-स्वभाव देखकर ही इसका प्रयोग करना चाहिए।

गगन पर्पटी

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और अभ्रक भस्म १ भाग लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना उसमें अभ्रक भस्म मिला एक दिन मर्दन कर रस पर्पटी में कहे हुए विधान के अनुसार पर्पटी बनाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-३ रत्ती, दिन में २-३ बार शहद, दूध, छाछ या मीठे दाड़िम के रस के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह गगन पर्पटी मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास (दमा) तथा पुराने संग्रहणी रोग में विशेष गुणकारी है।

यह पर्पटी वात-कफ जन्य राजयक्ष्मा की खाँसी या यक्ष्मा रोग में अधिक दस्त होना, कमजोरी, कफ की वृद्धि आदि विकारों को नष्ट करती है।

शरीर में रक्त की कमी से देह पीली पड़ गई हो, साथ ही कफ की भी वृद्धि हो, मन्दाग्नि, भूख न लगना, पेट भारी रहना, अजीर्ण हो जाना आदि विकारों में लौह-पर्पटी के साथ इसका मिश्रण बहुत उपयोगी है।

ताम्र पर्पटी

ताम्र भस्म और शुद्ध पारा प्रत्येक ३-३ तोला, शुद्ध गन्धक ६ तोला, शुद्ध बच्छनाग का चूर्ण १ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली कर पीछे अन्य द्रव्य मिलाकर तीन दिन मर्दन कर, बाद में उपरोक्त (पर्पटी) विधि से पर्पटी बना लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-३ रत्ती प्रातः सांय छोटी इलायची और भुने हुए जीरे के चूर्ण के साथ सेवन करने से पुरानी ग्रहणी को, त्रिफला चूर्ण और मधु के साथ लेने से प्रमेह और पाण्डु रोग को, एरण्ड तेल के साथ लेने से सब प्रकार के शूल रोग को तथा बावची चूर्ण के साथ सेवन करने से दाद और श्वित्र-कुष्ठ को दूर करती है। ताम्र पर्पटी यकृत रोग, प्लीहावृद्धि और उदररोग के लिए अतीव उत्तम औषध है।

अतिसार में-बिल्वादि चूर्ण के साथ दें। ग्रहणी और पाण्डू रोग में यदि मुखपाक भी हो तो शतपत्रादि चूर्ण के साथ दें। यदि साथ में रोगी को अर्श (बवासीर) भी हो, तो नागकेसर चूर्ण के साथ दें। यदि रोगी को अम्पपित्त हो, तो रसादि बटी और जहरमोहरा पिष्टी के साथ अथवा द्राक्षादि चूर्ण के साथ ताम्र पर्पटी दें।

गुण और उपयोग- यह नये पुराने अतिसार-संग्रहणी, यकृत तथा प्लीहा-विकार की प्रसिद्ध दवा है। उदरविकार, प्रमेह, शूल, कुष्ठ, दाह, पाण्डु, अम्लपित्त आदि रोगों में भी यह अच्छा कार्य करती है।

इस पर्पटी में ताम्र के गुण विशेष पाये जाते हैं। केवल ताम्रभस्म का सेवन करना कठिन हो जाता है, अतएव कज्जली बना कर उसकी पर्पटी सेवन करने का विधान है। ताम्र तीक्ष्ण द्रव्य होने से इसका प्रभाव आभ्यन्तरिक पिच्छिल त्वचा में बहुत गहराई तक पहुँचता है और चिरकाल तक बना रहता है।

ताम्र का मुख्य उपयोग यकृत, प्लीहा तथा मूत्रपिण्ड के विकारों पर होता है। यदि यकृत विकार के कारण अतिसार हो गया हो ताम्र पर्पटी के सेवन से अधिक लाभ होता है। यकृत वृद्धि की अन्तिमावस्था में कई रोगियों को बहुत कष्टदायक अतिसार शुरू हो जाता है। इस अवस्था में ताम्र पर्पटी के सेवन से यकृत वृद्धि भी कम हो जाती है तथा यकृत वृद्धि से उत्पन्न अतिसार का भी शमन हो जाता है। इसी प्रकार प्लीहाजन्य अतिसार में भी इसका अच्छा असर होता है। मूत्रपिण्ड में शोथ हो जाने पर कई रोगियों को कष्टदायक अतिसार का सामना करना पड़ता है। उस दशा में ताम्र पर्पटी उसकी अच्छी सहायता करती है। सारांश यह है कि पित्तविभाजन-क्रिया में बाधा पड़ने से जो अतिसार उत्पन्न होता है, उसका निवारण ताम्र पर्पटी द्वारा बहुत अच्छी तरह हो जाता है।

स्वर्ण पर्पटी

अच्छे पत्थर के खरल में ८ तोला शुद्ध पारा और उसमें १ तोला सोने का वर्क १-१ करके मिलावें, फिर उस में ८ तोला शुद्ध गन्धक डाल कज्जली बना कर, रस पर्पटी विधान से पर्पटी बना लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती सुबह-शाम मधु में मिला कर दें। ऊपर से दूध पिला दें। क्षय रोग में चौसठ प्रहरी पीपल और शहद से दें। बकरी के दूध के साथ देने से यह बहुत शीघ्र लाभ करती है।

गुण और उपयोग- इसमें स्वर्ण और कज्जली का रासायनिक संस्कार होता है। अतएव इस पर्पटी में स्वर्णभस्म के प्रायः सभी गुण विद्यमान रहते हैं। यह पाचक, दीपक, रस-रक्तादि धातुवर्द्धक, वृष्य, योगवाही, जन्तुघ्न, त्रिदोष नाशक और बल-वीर्यवर्द्धक तथा उत्तम रसायन है। संग्रहणी और क्षय के अस्थि, चर्मविशेष रोगी भी इसमें अच्छे हो जाते हैं। संग्रहणी की कठिन अवस्था में इसका कल्प विधि से सेवन कराने से आँतों को काफी बल मिलता है। पाचक रस अधिक बनता है और हृदय को ताकत मिलती है। इसका प्रभाव प्रत्येक अंग पर होता है। आँतों की शुद्धि कर दिल और दिमाग को भी शुद्ध करती है। इसके सेवन से नष्ट हुए रक्ताणुओं की वृद्धि काफी संख्या में होती है, जिससे शरीर में एक तरह की नवीन स्फूर्ति पैदा हो जाती है और शरीर का नया कल्प ही हो जाता है। पाण्डु, प्रमेह और दमा में भी इससे बहुत लाभ होता है।

वैसे तो सब पर्पटियों के सेवन-काल में पथ्य-परहेज की आवश्यकता है, किन्तु स्वर्ण पर्पटी में पथ्य-परहेज पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है। इसमें इतना हल्का आहार होना चाहिए कि आँतों में किसी प्रकार की बाधा न पहुँच सके, प्रत्युत् उसकी पाचन-क्रिया आमाशय में ही बहुत अंशों में हो जाय। स्वर्ण पर्पटी के सेवन काल में भी दुग्ध सेवन करना सर्वोत्तम है।

स्वर्ण पर्पटी में कई मरणासन्न रोगियों के प्राण बचे है। यह उस अतिसार में अपूर्व काम करती है, जो बहुत पुराना होने के साथ कष्टदायक भी हो, और जिससे रोगी के पेट में विशेष पीड़ा न होते हुए जिस प्रकार किसी नल की डाट खोल देने से पानी बहने लग जाता है, उसी प्रकार रोगी को पतले दस्त होते हों रोगी को कुछ भी काँखना वगैरे न पड़ता हो। यद्यपि इसमें रोगी को ५-६ बार ही पाखाना जाना पड़ता है, किन्तु पाखाने इतने अधिक परिमाण में होते हैं कि रोगी के अंतड़ियों की शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है। उसका अस्थिपञ्जर मात्र ही शेष रह जात है। कभी-कभी वमन भी होने लगता है, परन्तु ज्वर नहीं होता, ऐसी संग्रहणी या अतिसार में स्वर्ण पर्पटी एक-एक रत्ती के अनुसार बढ़ाते हुए देनी चाहिए। निर्जन्तुक क्षय रोग की सामान्यावस्था में स्वर्ण पर्पटी अच्छा काम करती है, किन्तु क्षय की विशेषावस्था में यथा-उर:क्षत, मुख से रक्तस्राव होना और पित्त विकृति में इसका उपयोग ठीक-ठीक नहीं होता है।

स्वर्ण पर्पटी सेवन करने से पूर्व रोगी की मानसिक अवस्था की ओर ध्यान देना आवश्यक है। अविकृत मानसिक अवस्था में स्वर्ण पर्पटी जितना अच्छा काम करती है, उतना विकृत मानसिक अवस्था में नहीं। वात-प्रकोप के कारण अतिसार हुआ हो, तो यह पर्पटी विशेष काम नहीं करती। पैत्तिक विकार में भी इसका उपयोग विशेष नहीं किया जाता है।

अतिसारयुक्त कास-श्वास, पाण्डु, अशक्तता, हिक्का आदि विकारों में इस पर्पटी का उपयोग बहुत अच्छा है। यद्यपि शास्त्रकारों ने स्वर्ण पर्पटी के लिये "ज्वरापहा" ऐसा लिखा है, किन्तु अनुभव से पता लगा कि ज्वरावस्था में इसका असर कुछ भी नहीं होता है।

लौह पर्पटी

शुद्ध पारा १ तोला, तीक्ष्ण लौह भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना, उसमें लौहभस्म मिलाकर १ दिन मर्दन करें। पीछे रस पर्पटी में कही हुई क्रिया की तरह पर्पटी बना लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती दिन भर में २-३ बार दें। जीरे का चूर्ण और छाछ (मट्ठा), दूध या फलों के रस के अनुपान से दें। ५-६ दिनों के अन्दर १-१ रत्ती दें। बढ़ाते हुए छः रत्ती तक की मात्रा में सुबह-शाम शंख भस्म, हींग १ रत्ती और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- संग्रहणी, अम्लपित्त, मन्दाग्नि, पाण्डू रोग तथा यकृत की बीमारियों में और खून की कमी में लौह पर्पटी से बहुत लाभ होता है। संग्रहणी और आँव के दस्तों की तो यह रामबाण दवा है। पुराने अतिसार और कष्टसाध्य संग्रहणी में इसके कल्प से आशाजनक लाभ होता है।

लौह पर्पटी में लौह के विशेष गुण पाये जाते हैं। जिनके शरीर में रक्त की कमी हो गई हो या रक्त में जल भाग विशेष बढ़ कर शोथ हो गया हो उनके लिए लौह पर्पटी हितकारी है। यह पर्पटी विशेषकर उस अतिसार या संग्रहणी में, जिसमें शोथ, पाण्डु, कामला आदि उपद्रव हो गये हों, यकृत वृद्धि के कारण या पाकस्थली की विकृति से उत्पन्न संग्रहणी या अतिसार रोगों पर अच्छा काम करती है। यह रक्त को गाढ़ा कर उसकी वृद्धि करती है।

लौह पर्पटी (दूसरा योग)

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लौह भस्म प्रत्येक १-१ भाग लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् लौह भस्म मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। बाद में पर्पटी विधान से पर्पटी बना कर रख लें।- भै.र.

पञ्चामृत पर्पटी

शुद्ध पारद, लौह भस्म, अभ्रक भस्म और ताम्र भस्म १-१ तोला तथा शुद्ध गन्धक सब को एक समान भाग (चार तोला) लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, पीछे अन्य भस्में मिलाकर एक दिन मर्दन करके रस पर्पटी में लिखे विधान के अनुसार पर्पटी बना लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती दिन में २-३ बार दें। भुने हुए जीरे का चूर्ण और शहद के साथ चटाकर ऊपर से दूध, छाछ या दाड़िम आदि फलों के रस के साथ देना चाहिए।

श्रीयुत् यादव जी त्रिकमजी आचार्य सिद्धयोग संग्रह में लिखते हैं- "मैने पञ्चामृत पर्पटी में १-१ भाग वंग और यशद भस्म मिलाकर सप्तामृत पर्पटी बनायी है। पञ्चामृत पर्पटी से यह अधिक गुणकारी है। अन्त्रक्षय में रसामृत पर्पटी केवल या स्वर्ण पर्पटी के साथ मिलाकर देने से विशेष लाभ होते देखा गया है।"

गुण और उपयोग- यह संग्रहणी रोग की प्रसिद्ध दवा है। इसके अतिरिक्त अतिसार, पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, शूल और दमा में भी यह खूब लाभ करती है। संग्रहणी में मन्दाग्नि हो जाने पर यह दवा अग्नि को चैतन्य कर क्षुधा की वृद्धि करती है। संग्रहणी रोग में अन्न का परिपाक अच्छी तरह नहीं होता, रोगी के शरीर में नया खून भी नहीं पैदा होता, शरीर रक्तहीन होकर अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, भूख मारी जाती है, कमजोरी के कारण मन्द-मन्द ज्वर भी आने लगता है और शरीर क्रमशः क्षीण होने से अन्त में यक्ष्मा तक हो जाता है, ऐसी अवस्था में पञ्चामृत पर्पटी का सेवन अमृत के समान लाभ करता है। कठिन संग्रहणी में केवल दूध या मट्ठा के आधार पर पर्पटी सेवन करायी जाती है। साधारण-संग्रहणी या आँव के दस्त में हल्के अन्न का भोजन, मीठे फलों का रस, दूध, दही, मट्ठा आदि का भोजन करते हुए भी पर्पटी सेवन की जा सकती है।

पर्पटी में पञ्चामृत पर्पटी सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि अन्य पर्पटियाँ अपना कार्य शरीर के किसी विशेष अवयवों में ही करती है, किन्तु पञ्चामृत पर्पटी के कार्य कोष्ठान्तर्गत पचनेन्द्रियों पर शक्तिदायक, दोषनाशक एवं कीटाणु-नाशक भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इस पर्पटी का वियोजन पक्वाशय, ग्रहणी और वृक्क आदि स्थानों में विशेष होता है। उण्डूक तथा वृक्कों में उसका कुछ भाग शोषित होकर वहाँ के उत्ताप को शोषित करता है। कुछ भाग पक्वाशय, ग्रहणी और वृक्क सम्बन्धी धमनियों के द्वारा यकृत में पहुँचता है। इसमें जो ताम्र भस्म है वह यकृत में अपना विशेष कार्य करती है। लौहभस्म पक्वाशय में शक्तिदायक और स्तम्भन कार्य करती है। पारे की कज्जली और लौह भस्म पक्वाशय में शक्तिदायक और स्तम्भन कार्य करती है। पारे की कज्जली और लौह का वियोजन ग्रहणी में उत्तम लाभदायक होता है। इससे ग्रहणी की शिथिलता दूर होकर, वह दोषरहित हो जाता है। इसमें जो अभ्रक का भाग है, उसका कार्य आँतों अथवा पचनेन्द्रियों पर तथा श्वासवह स्त्रोतों पर विशेष उपयुक्त होता है।

पित्तजन्य विकारों पर ताम्र पर्पटी के अतिरिक्त अन्य पर्पटियाँ काम नहीं देती, किन्तु पञ्चामृत पर्पटी पित्त के विकारों पर भी अच्छा काम करती है। पञ्चामृत पर्पटी में ताम्र का योग होने से पित्त का निःसरण उत्तम प्रकार से होता है। ताम्र भस्म यकृत को शक्ति प्रदान कर पित्त भाग की रुकावटों को दूर करती है। ताम्र भस्म को तीव्र होने के कारण अलग से न देकर इसके द्वारा बनी दवाएँ यथा पञ्चामृत पर्पटी, ताम्र पर्पटी तथा सूतशेखरादि औषधों के सेवन से विशेष सुविधा मिलती है।

चिरकालीन संग्रहणी, अतिसार और अम्लपित्तादि रोगात्पन्न, अतिसारादि पर पञ्चामृत पर्पटी बहुत लाभदायक है। इस पर्पटी के साथ दूध या तक्र पूर्ण मात्रा में दे सकते हैं।

पुराना अतिसार (जिसमें क्षयजन्य विष का प्रायः अनुबन्ध रहता है।) के शमनार्थ भी पञ्चामृत पर्पटी एक अमोघ औषध है, क्योंकि इसमें अभ्रक भस्म का सम्मिश्रण है। वह क्षयजन्य विष को नष्ट करने वाला है।

पुराने अतिसार में स्वर्ण पर्पटी और पञ्चामृत पर्पटी दोनों देना चाहिए, किन्तु प्रश्न यह होता है कि स्वर्ण पर्पटी और पञ्चामृत पर्पटी ये दोनों किस अवस्था में देनी चाहिए। यद्यपि स्वर्ण पर्पटी शक्तिदायक और कीटाणुनाशक है, तथापि ज्वर की हालत अर्थात् ज्वरातिसार या ज्वरातिसारयुक्त क्षय में स्वर्ण पर्पटी विशेष लाभदायक नहीं है। ऐसी अवस्था में पञ्चामृत पर्पटी ही विशेष उपयोगी है। स्वर्ण पर्पटी कीटाणुनाशक होने पर भी पञ्चामृत पर्पटी के समान या शोधनयुक्त नहीं है।

पञ्चामृत पर्पटी में यकृत दोष शोधक ताम्र तथा क्षय-दोषघ्न एवं फुफ्फुसों के शक्तिदायक

अभ्रक होने से जिन क्षय विकारों में फुफ्फुस, यकृत, आँतें आदि अवयव दूषित हो गये हो, उसमें स्वर्ण पर्पटी की अपेक्षा पञ्चामृत पर्पटी ही विशेष उपयोगी सिद्ध हुई हैं। हाँ, यदि क्षय का विकार सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त नहीं हुआ हो, शरीर कृश हो, और बलवान अतिसार हो, अर्थात् केवल अँतड़ियाँ ही क्षय के विकार से विकृत हो गई हों, तो स्वर्ण पर्पटी का उपयोग करना लाभदायक है।

क्षय-विकार के अतिरिक्त अनुलोमक्षय या पुरानी प्रवाहिका में शरीर के अन्दर विशेषत: मुख से लेकर गुदावलि तक तथा आँतों की पिच्छिल (श्लैष्मिक-चिकनी) त्वचा पर छोटे-छोटे व्रण हो जाते हैं, ये व्रण विशेष कष्टदायक और जलन देने वाले नहीं होते, परन्तु इनकी वजह से रोगी को सफेद रंग का दस्त जलनसहित होता है। किसी-किसी को मुख पाक (मुँह में छाले पड़ जाना), लार बहना आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। यह लक्षण कभी-कभी वर्षों तक बना रहता है, फिर जैसे-जैसे मुख पाक कम होने लगता है, वैसे-वैसे दस्त भी कम आने लगते हैं। ऐसी स्थिति में पञ्चामृत पर्पटी देने से विशेष लाभ होता है।

यकृत विकार में यकृत से उचित परिमाण में पित्त का स्राव न होने या आँतों में पित्त उचित परिमाण में न पहुँचने से अनुलोमक्षय की उत्पत्ति हो जाती है। अतएव इसकी उत्पत्ति रोकने तथा यकृत से पित्त का स्राव नियमित रूप से काम करने के लिये पञ्चामृत पर्पटी का उपयोग किया जाता है।

पञ्चामृत पर्पटी का सबसे अच्छा उपयोग बालग्रह में होता है, जिसमें बच्चे चौंकने लगते हैं, हाथों की मुट्ठियाँ बँध जाती, कभी-कभी दाँत भी बैठ जाते हैं और एक तरह का दौरा-सा होता है, उसमें इस पर्पटी को छुहारे की गुठली पानी में घिसकर उसके साथ आधी रत्ती की मात्रा में देने से तुरन्त लाभ होता है।

उपदंश- विकार में भी पंचामृत पर्पटी शहद के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

पंचामृत पर्पटी (दूसरा योग)- शुद्ध गन्धक ८ तोला, शुद्ध पारद ४ तोला, लौह भस्म २ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, ताम्र भस्म ६ माशे लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य भस्में मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। फिर इसको अग्नि पर रखी हुई कलछी में थोड़ा पिघल जाने पर पर्पटी बना लें और सुरक्षित रखें।

नोट-इसके गुण-धर्म, मात्रा और अनुपान सब पूर्वोक्त योग के समान है।

बोल पर्पटी

शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर कज्जली बना, उसमें बोल (हीरादोखी-खूनखराबा) का कपड़छन किया हुआ चूर्ण कज्जली के बराबर मिलाकर, एकत्र घोंटकर पर्पटी विधान से पर्पटी तैयार कर लें। -र.रा.सु.

मात्रा और अनुपान- २-३ रत्ती, सुबह-दोपहर-शाम शहद और मिश्री के साथ दें या मक्खन अथवा हरी दूब के स्वरस से दें।

गुण और उपयोग- यह पर्पट रक्तपित्त (नाक या गूदा मार्ग से रक्तस्राव होने तथा योनि द्वारा रक्तस्राव, रक्तप्रदरादि), खूनी बवासीर और खून के प्रवाह इत्यादि का नाश करती है। इसके सेवन से शरीर के किसी भी स्थान से होता हुआ रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

कुछ लोग इसी योग में खूनखराबा की बजाय कृष्णबोल (एलुवा) मिलाकर पर्पटी बनाते हैं। कृष्णबोल के योग से बनी हुई बोलपर्पटी का कार्य पित्तोत्सर्जन के लिए ठीक होता है। यदि यकृत में पित्त-संचय के कारण विकार उत्पन्न हुआ हो,तो काला बोल की पर्पटी का सेवन करना चाहिए।

यकृत की कमजोरी अथवा यकृत वृद्धि से जो अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं, उन पर भी यह पर्पटी विशेष उपयोगी है।

कृष्णबोल पर्पटी का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य गर्भाशय को शक्ति पहुंचाना है, गर्भाशय की विकृति तथा नष्टार्तव, पीड़िताव्रव आदि विकारों मे यह अच्छा काम करती है। मासिकधर्म के समय स्त्री के पेट में या गर्भाशय मे जो तीव्र वेदना होती है, उसके निवारणार्थ अनेक प्रकार की पेटेण्ड औषधियाँ दी जाती है, उन सब में प्रायः कृष्णबोल की योजना अवश्य रहती है।

रक्तबोल पर्पटी के योग से निर्मित बोलपर्पटी का उपयोग रक्तवाहक नाड़ियों को संकुचित करता है। रक्तपित्त, उर:क्षत आदि विकारों में रक्त का अधिक परिमाण में स्राव होता है। उन विकारों पर रक्तबोल पर्पटी का विशेष उपयोग होता है। गर्भाशय और योनि-मार्ग से अनेक कारणों से कभी-कभी रक्तस्राव होना आरंभ हो जाता है, जिसे रक्तप्रदर कहते हैं। इस रोग को दूर करने के लिये यह पर्पटी बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

नोट -बोल लाल और काला भेद से दो प्रकार का होता है। काले बोल को एलिया-एलुवा और मुसब्बर तथा लाल बोल को हीराबोल और हीरादोखी तथा खुनखराबा कहते हैं। इनमें काला-बोल (मुसब्बर-एलुवा) बहुत काम में आता है। दोनों के वर्ण-रूप-गन्ध और स्वाद में भिन्नता है। काला बोल (एलुवा) ग्वारपाठे के रस से तैयार किया जाता है। आजकल औषधियों में विशेषत: इसका उपयोग होता है। यह विरेचक है और लाल बोल स्तम्भक है। काले बोल से यकृत से पित्त का स्राव अधिक होता है, किन्तु लाल बोल से यह कार्य नहीं होता। काले बोल से गर्भाशय के विकृत द्रव्य और रक्त साफ होकर बह जाते हैं। अतएव प्रसूता को भी यह दिया जाता है।

प्रसव होने पर दूषित रक्त साफ हो जाना चाहिए, परन्तु कभी-कभी रुक भी जाता है। दूषित रक्त को बाहर निकालने की आवश्यकता होती है। इसके लिये कुछ लोग कपास की जड़ काम में लाते हैं, यद्यपि इससे गर्भाशय को उत्तेजना मिल कर गर्भकोष्ठ तो शुद्ध हो जाता है, परन्तु फिर स्राव जो जारी होता है, वह अपने -आप बन्द नहीं होता, परिस्थिति ऐसी हो जाती है कि रक्त-प्रवाह जोरों से होने लगता है, जिसका रोकना मुश्किल हो जाता है। यह बात एलुवा में नहीं पायी जाती है। एलुवा के उपयोग से पहले दूषित रक्त बाहर निकल कर बाद में रक्त-प्रवाह स्वयं बन्द हो जाता है। इस रक्त-प्रवाह को रोकने के लिये काले बोल से बनी पर्पटी काम में लाना अत्युपयोगी है। अतएव रक्त-शोधन के लिये रक्त बोल द्वारा निर्मित पर्पटी और गर्भाशय शोधनादि के लिये एलुवा (कृष्णबोल) द्वारा निर्मित पर्पटी उपयोग में लेना चाहिए।

विजय पर्पटी

शुद्ध गन्धक ४ तोला, शुद्ध पारद २ तोला, रौप्यभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म ६ माशा, वैक्रान्तभस्म तथा मुक्तापिष्टी दोनों ३-३ माशा लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य भस्में मिलाकर एक दिन मर्दन करें, फिर पर्पटी विधान से पर्पटी बना लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती, दिन में २-३ बार दूध, छाछ, मधु, मीठे दाड़िम, मोसम्बी और मीठे अंगूर के रस-इनमें से किसी एक के साथ दें।

गुण और उपयोग- कृच्छ्रसाध्य ग्रहणी रोग, उपद्रव सहित राजयक्ष्मा, शोथ, पुराना अतिसार, पाण्डुरोग, प्लीहारोग, जलोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, हृद्रोग, पुराने विषमज्वर, वात तथा कफ से होनेवाले रोगों में विजय पर्पटी अत्युत्तम कार्य करती है। इसी प्रयोग से शरीर पुष्ट और बलवान होता है। जहाँ किसी अन्य पर्पटियों से लाभ होता न दिखाई दे वहाँ इसका प्रयोग करें। रोगी को उपरोक्त विकारों के साथ-साथ स्नायुमण्डल की कमजोरी अथवा हृदय की दुर्बलता भी हो और इनके कारण हृदय की धड़कन बढ़ना, चिन्ता, भ्रम, चक्कर, सिरदर्द चलने-फिरने एवं थोड़ा सा

भी श्रम कर लेने पर अतिशय कमजोरी अनुभव होती हो, तो विजय पर्पटी बहुत अच्छा काम करती है, क्योंकि इसमें स्वर्ण, मौक्तिक, वैक्रान्त जैसी स्नायुमण्डल, हृदय तथा शारीरिक दुर्बलता मिटाने वाली दिव्यौषधियों का मिश्रण है। सब पर्पटियों में यही सौम्य है, अत: पित्तवृद्धियुक्त पित्तविकृति वाले रोगियों को भी सेवन कराने से लाभदायक है।

मण्डूर पर्पटी

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, मण्डूर भस्म १ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना कर उसमें मण्डूर भस्म मिला कर एक दिन मर्दन कर पर्पटी बना लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती, दिन में २-३ बार मधु, भुने हुए जीरे का चूर्ण, मट्ठा या फल का रस आदि से दें।

गुण और उपयोग- यह पाण्डु, तिल्ली और यकृत विकार, मन्दाग्नि, शोथ, संग्रहणी आदि रोगों में अत्यन्त लाभदायक है।

यकृत-वृद्धि के साथ-साथ संग्रहणी और रक्त की कमी होने पर इस पर्पटी का उपयोग विशेष लाभकारक होता है।

श्वेत पर्पटी

अच्छा कलमी सोरा ४० तोला, फिटकरी ५ तोला और नौसादर २।। तोला लें। सब का मोटा चूर्ण कर मिट्टी की हाँडी में अग्नि पर पकावें। जब सब एक-द्रव (पतला) हो जाए, तब जमीन पर गोबर बिछा, ऊपर केले का बड़ा पत्ता रखकर उस पर डाल दें और तुरन्त ऊपर से केले का दूसरा पत्ता रखकर दबा दें। ठण्डा होने पर निकाल कर कपड़छन चूर्ण करके शीशी में भर दें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ५ से १० रत्ती, सुबह-शाम ठण्डा जल या कच्चे नारियल का पानी अथवा तक्र या दही की लस्सी से दें।

गुण और उपयोग- यह अच्छा मूत्रत (पेशाब लाने वाला), स्वेदल (पसीना निकालने वाला) तथा वातानुलोमक योग है। अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्र की उत्पत्ति कम होना, पेट का दर्द, अफरा और अश्मरी में इसका उपयोग करने से बड़ा उत्तम एवं शीघ्र लाभ होता है।

यह पर्पटी दीपन-पाचन भी है। अतएव, मन्दाग्नि और अजीर्ण या पेट में दर्द होने पर इसके उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। पेशाब का रुक जाना अथवा पित्त की गर्मी या और किसी कारण से पेशाब कम मात्रा मे या जलन के साथ होना, ऐसी हालत में बराबर मिश्री मिलाकर उचित अनुपान के साथ सेवन करने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह शीतवीर्य गुणयुक्त है और वृक्क (मूत्राशय) पर इसका प्रभाव विशेष रूप से होता है। अत: यह मूत्र-सम्बन्धी सभी विकारों को दूर कर देती है और इससे पेशाब भी साफ होता है। शरीर में प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होनेवाले (शारीरिक क्रियाओं के होने से उत्पन्न होनेवाले एवं बाहर से शरीर में पहुंचे हुए अनावश्यक मात्रा में) द्रव्य, लवण, क्षार, अम्ल, आदि पेशाब में घुलकर बाहर निकलते रहते हैं, पेशाब रुक जाने या कम मात्रा में उत्पन्न होने पर ये अनावश्यक द्रव्य शरीर में रुककर अपना दूषित प्रभाव उत्पन्न करने लगते हैं। अत: इनका बाहर निकालते रहने के लिये पेशाब का साफ होते रहना आवश्यक है। पेशाब कम उत्पन्न होने एवं रुक जाने पर शीतल पर्पटी के सेवन से खुलकर और साफ होने लगता है।

मल्लपर्पटी

२० तोला सफेद राल को लोहे की कड़ाही (कड़ाही में पहले घी चुपड़ दें) में डाल कर मन्द अग्नि पर पिघलावें, जब राल बिल्कुल पतला हो जाय तब २।। तोला शुद्ध मल्ल (संखिया सफेद) का महीन चूर्ण उसमें डाल कर जल्दी से अच्छी तरह चलाकर पिला दें एवं शीघ्रता से नीचे उतार पर्पटी बना लें।-सि.भै.म.

मात्रा और अनुपान- आधी रत्ती से १ रत्ती सुबह-शाम, मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से ज्वर, वातज्वर, कफ ज्वर अथवा वात-कफ ज्वर या और भी ज्वर के उपद्रव जैसे-वमन होना, श्वास की गति में बाधा पड़ना अथवा श्वास की गति तेज हो जाना, ज्वर की गर्मी (टेम्प्रेचर) अधिक हो जाना आदि विकार दूर होते हैं। कफ के तीव्र प्रकोप एवं उग्र सन्निपात जो कफ या वात प्रधान हो, उसमें इसके सेवन करने से अत्यन्त शीघ्र लाभ होता है।

इसमें मल्ल का सम्मिश्रण है, अतएव इसके गुण भी मल्ल के समान ही हैं। यह पर्पट हृदय और वातवाहिनी नाड़ी को उत्तेजित करनेवाली है। कयोंकि यह तीक्ष्ण और उष्णवीर्य गुणयुक्त है। अत: वात-सम्बन्धी विकारों पर इसका खास असर होता है।

प्राणदा पर्पटी

शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, बंग भस्म, काली मिर्च, शुद्ध बच्छनाग, प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध गन्धक ७ तोला लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषध मिलाकर अच्छी तरह खरल करके पर्पटी बनाने की क्रिया से पर्पटी बना लें।-बृ.यो.तं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ रत्ती, सुबह-शाम शहद के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पाण्डु, अतिसार, संग्रहणी, ज्वर, खाँसी, प्रमेह और अग्निमान्द्य का नाश होता है। पुरानी संग्रहणी में रस-रक्तादि धातु कमजोर हो गये हों, साथ ही आँते अपना कार्य करने में असमर्थ हो गयी हों, हृदय कमजोर, पाचक-पित्त का अभाव, दस्त में आँव का भी अंश आता हो, साथ ही दर्द भी हो, तो ऐसी दशा में प्राणदा पर्पटी अपने नामानुरूप रोगी को प्राणदान देती और रस-रक्त को पुष्ट कर क्रमशः रोग से विमुक्त कर देती है।

❖❖❖

लौह-मण्डूर-प्रकरण

शरीर में रक्त की कमी को पूर्ण कर शारीरिक धातुओ को समृद्ध बनाने के लिये लौह और मण्डूर प्रधान हें। आयुर्वेद में इसीलिये लौह का महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है। मात्रानुसार इसका सेवन करना बहुत लाभदायक है। अनेक परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चूका है कि शरीर-निर्माण के लिये लौह भी एक आवश्यक पदार्थ है, यह अनाजों विशेषतः शाक-सब्जियों, फलों आदि द्वारा हमारे शरीर में पहुँचता रहता है। हरी पत्ती के शाकों तथा अमरूद, गाजर, सेव, नासपाती, आम, केला, खजूर, चीकू, टमाटर, अंगूर, सन्तरा आदि फलों में लौह का अंश विशेष रूप से पाया जाता है। जो लोग शाक सब्जी, फल आदि नहीं खाते हैं उनके शरीर को आवश्यक परिमाण में लौह की मात्रा (खुराक) न मिलने के कारण अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं, जो औषधि रूप में ऊपर से लौह घटित (मिश्रित) दवाओं के योग या लौह मण्डूर भस्म आदि सेवन कराकर ठीक किये जाते हैं। इस प्रकार लौह का अत्यन्त महत्व सिद्ध होता है।

लौह का ही मैल मण्डूर है, अतएव इसका गुण भी लौह के गुणों से कुछ मिलता जुलता है। परन्तु लौह जैसी तीक्ष्णता मण्डूर में नहीं होती, मण्डूर कुछ सौम्य होता है। भस्म बनाने के लिए मण्डूर जितना पुराना होगा, उतना ही अधिक सौम्य एवं गुण विशिष्ट होगा। कम-से-कम 100 वर्ष का पुराना मण्डूर उत्तम समझा जाता है। कहते हैं कि अंग्रेजों के यहाँ आने से पूर्व हिन्दूस्तान में लोहा बहुत बड़े परिमाण में तैयार किया जाता था। जहाँ-जहाँ लोहा तैयार किया जाता था, उन-उन स्थानों में आज भी काफी अधिक परिमाण में मण्डूर मिल सकता है।

आयुर्वेद मतानुसार सौ वर्ष पुराना मण्डूर उत्तम, अस्सी वर्ष का पुराना मध्यम और आठ वर्ष का पुराना मण्डूर अधम माना जाता है। जो मण्डूर भारी, चिकना, ठोस, तोड़ने पर अंजन के समान तथा बिना छिद्र (गड्ढे) वाला हो, वह भस्म के लिये उत्तम होता है।

अग्निमुख लौह

निशोथ, चित्रकमूल, निर्गुण्डी, थूहर, गोरखमुण्डी, भूमि आमला, प्रत्येक ३२-३२ तोला लेकर सबको कूटकर १२।।। सेर ४ तोला पानी में पकावें, गाढ़ा हो जाने पर उतार कर ठण्डा होने पर उसमें वायविडंग १२ तोला, त्रिकुटा के प्रत्येक द्रव्य ३ तोला, त्रिफला सम्मिलित २ तोला, शिलाजीत ४ तोला, मैनसिल द्वारा भस्म किया हुआ तीक्ष्ण लोहभस्म ४८ तोला, घी, शहद और चीनी-प्रत्येक १ सेर ३ छटांक १ तोला मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें अथवा सुखा कर शीशी में भर कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम बवासीर में जमीकन्द चूर्ण या नीम की मिंगी का चूर्ण के साथ, मन्दाग्नि में गरम जल और नींबू-रस के साथ, सूजन और पाण्डू रोग में पुनर्नवा रस और मधु से दें।

गुण और उपयोग- यह दीपन-पाचन है। इसके सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा पाण्डु, शोथ, कुष्ठ, उदर-रोग, अर्श आमवात आदि रोगों का नाश होता है।

वादी बवासीर में अग्निमुख लौह के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसमें रक्त नहीं गिरता और गुदा की बाहरी अवली में भींगे हुए मटर या मुनक्का के समान मस्से दिखाई पड़ते हैं। इसमें दर्द बहुत होता है। बराबर कब्जियत रहने के कारण शौच के समय मल निकालने के लिये काफी जोर लगाना पड़ता है व काँखना पड़ता है। बादी बवासीर होने का मूल कारण कब्जियत है। ऐसी स्थिति में अग्निमुख लौह से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि यह दीपन-पाचन होते हुए रोचक भी है, जिससे संचित मल को ढीला कर बिना तकलीफ के दस्त साफ लाता है। दस्त साफ आने से वायु निकलती रहती है, फिर मस्से फूलने नहीं पाते और न इसमें दर्द होता है, बल्कि मस्से सूख जाते हैं।

पाण्डु और शोथ रोग में भी तिल्ली बढ़ जाने पर मन्दाग्नि से होने वाले अजीर्ण आदि रोगों में भी इसके उपयोग से काफी लाभ होता है। प्रकुपित वायु और कफको शान्त करने तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करने के लिये इस दवा का उपयोग किया जाता है। यह पाचक पित्त को जागृत कर मन्दाग्नि दूर कर देता है और अन्नादिकों का पाचन अच्छी तरह से करता है।

वक्तव्य- उपरोक्त परिमाण में घी, शहद और चीनी मिलाने से गोलियाँ नहीं बन पाती हैं। अतः घी के साथ-साथ कड़ाही में लौह भस्म को डालकर, अग्नि पर रखकर, तेज आँच देकर, घी को जला कर के लौह भस्म सिद्ध कर लें, पश्चात् शहद और चीनी की कड़ी चाशनी बनाकर उसमें अन्य दवाओं का चूर्ण और लौह भस्म मिला, मर्दन कर, गोली बनाने से ठीक बन जाती है।

अग्निमुख मण्डूर

४८ तोले मण्डूर (भस्म) को ८ गुने गोमूत्र में पकावें और पाक के अन्त में उसमें पीपल, पीपला-मूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, वायविडंग-प्रत्येक का कूट कपड़छन किया हुआ चूर्ण ४-४ तोला मिला, तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें।-भै.र.

वक्तव्य - त्रिकुटा के तीन द्रव्यों (सोंठ, मिर्च, पीपल) को तथा त्रिफला के तीनों द्रव्यों (हरड़,बहेड़ा, आमला) को पृथक्-पृथक् ४-४ तोला लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम घी और शहद के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से शोथ (सूजन) और पाण्डू रोग का नाश होता है। पाण्डु रोग पुराना हो जाने पर शरीर में जल भाग की वृद्धि हो जाती है, जिससे शरीर फूल जाता है। इसमें भूख नहीं लगती, मन्दाग्नि, अपचन, बद्धकोष्ठता आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में इस मण्डूर के सेवन से शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि हो जल भाग कम हो जाता है। यह दीपन-पाचन भी है, अतः पाचकपित्त (जठराग्नि) को प्रदीप्त कर मन्दाग्नि को दूर करता है, फिर भूख अच्छी तरह लगने लगती है।

अम्लपित्तान्तक लौह

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, मण्डूर भस्म, कान्तलौह भस्म, अभ्रक भस्म-प्रत्येकी १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य भस्में मिला, आँवला स्वरस या क्वाथ की भावना देकर मर्दन करें, गोली बनाने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुरक्षित रख लें। - भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली धनियाँ और हरड़ तथा सौंफ के क्वाथ के साथ अथवा रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस औषध के सेवन से समस्त प्रकार के अम्लपित्त रोग नष्ट होते हैं तथा समस्त प्रकार के शूल रोगों को नष्ट करने के लिये परम गुणकारी औषध है। यकृत और पित्ताशय की विकृति नष्ट करके पित्त की विदग्धता को नष्ट करना इस औषध का प्रधान कार्य है। अम्लपित्त-सम्बन्धी, शूल तथा अन्य पित्तविकारों में भी इससे अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त यकृत शूल, तृष्णा, मूत्रदाह, उदरशूल, पतले दस्त होना, बच्चों को दूध की उल्टी होना और गर्भवती स्त्रियों को वमन होना आदि विकार भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

अष्टादशांग लौह

चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, गिलोय, कुटकी, पटोलपत्र, जवासा, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, सोंठ, पीपल, मिर्च, चित्रक, हरड़, बहेड़ा, आँवला और वायविडंग सब समान भाग लेकर कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना लें। इन सबके समान भाग लौह भस्म मिला घी और शहद के साथ ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें।-या.प्र.

वक्तव्य- मधु और घृत के योग से अच्छी गोलियाँ बनना सम्भव नहीं हैं। अत: जल से मर्दन कर गोलियाँ बनावें तथा सेवन कराते समय अनुपान में मधु और घृत विषम मात्रा में मिलाकर दें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम छाछ के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह मण्डूर पीलिया (कामला),हलीमक और शोथ (सूजन) आदि की अमोघ दवा है। अनेक कटु-तिक्त औषधियों के साथ लौह का संयोग होने से श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, अर्श (बवासीर), संग्रहणी, आमवात, रक्तविकार, कुष्ठ और कफ के रोग भी नष्ट होते हैं।

अमृतार्णव लौह

सोंठ, मिर्च,पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला और लौह भस्म- प्रत्येक सम भाग और सबसे आधी शुद्ध शिलाजीत लें, फिर काष्ठौषधियों को कूट-कपड़छन कर, महीन चूर्ण बना, इसमें गिलोय के स्वरस की तीन भावना देकर, सुखाकर रख लें अथवा घी और शहद मिलाकर खरल करके बाद में ४-४ रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में दो बार शहद में मिला कर दें।

गुण और उपयोग- यह रक्तशोधक, दीपक, पाचक और शक्तिवर्द्धक है। इसके सेवन से सब प्रकार के कोढ़ वात-रक्त, अर्श (बवासीर) और उदर रोगों का नाश होता है।

प्रकुपित वात जब रक्त दुषित कर देता है, तब शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फोड़ा, छोटी-छोटी फुन्सियाँ, लाल-लाल चकत्ते, कोढ़, शरीर में खुजली आदि रोग हो जाते हैं। ऐसी हालत में रक्त-शोधन तथा प्रकुपित वायु को शान्त करने के लिये अमृतार्णव लौह का उपयोग करना अच्छा है, क्योंकि इसमें गुर्च रस की भावना देने से इसमें रक्तदोष नाशक गुण प्रबल रहता है तथा दीपन-पाचन होने की वजह से वायुनाशक भी है। अतएव वातरक्त फोड़ा फुन्सी के विकार में इस लौह का उपयोग करने से लाभ होता है।

कालमेघ-नवायस

सोंठ, पीपल, मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, नागरमोथा, वायविडंग, चित्रक-मूल की छाल प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला, लौह भस्म ९ तोला और कालमेघ का कपड़छन चूर्ण ९ तोला मिला तथा कालमेघ के क्वाथ की सात भावना दें, अच्छी तरह खरल करके, सुखा कर, पीसकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३-३ रत्ती सुबह-शाम गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- जीर्णज्वर या विषमज्वर के बाद की दुर्बलता, पाण्डु रोग और यकृत वृद्धि में यह लाभदायक है।

पूराना ज्वर- अधिक दिन तक ज्वर आने से शरीर दुर्बल और कमजोर हो जाता है। इसमें रक्त की कमी के कारण शरीर पाण्डु रंग का हो जाता है, फिर भूख नहीं लगती, दस्त-कब्ज हो

जाने के कारण मल-संचय होकर मन्दाग्नि हो जाती है। कभी रोग की वृद्धि हो, हाथ-पाँव भी सूज जाते हैं, मुँह पर भी सूजन आ जाती है, आँख कुछ पीली हो जाती तथा यकृत बढ़ जाता है, कभी-कभी यकृत और तिल्ली (प्लीहा) दोनों बढ़ जाते हैं। ऐसी अवस्था में इस दवा के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि कालमेघ ज्वर को दूर करने के लिये बहुत प्रसिद्ध दवा हैं। मलेरिया के लिए तो यह कुनैन के समान काम करता है, साथ ही ज्वर के कारण उत्पन्न उपद्रवों को भी यह सहज में ही शान्त कर देता है। ज्वर बन्द होने के बाद रक्ताणुओं की वृद्धि हो पाण्डु रोग का नाश हो जाता है, साथ ही सूजन भी कम हो जाती है।

कार्श्यहर लौह

वंशलोचन, सफेद पुनर्नवा, दन्ती, असगन्ध, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग, चीता, नागरमोथा, शतावर और खरेंटी-प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना लें और समान भाग लौह भस्म लेकर खरल करके रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३-४ रत्ती सुबह-शाम भाँगरे के रस के साथ अथवा शहद से दें।

वक्तव्य- ग्रन्थ के मूलपाठ में "श्वेता-पुनर्नवा" शब्द है, इससे कई लोग श्वेता शब्द से वंशलोचन और कई लोग श्वेत अपराजिता लेते हैं। कुछ लोग श्वेता-पुनर्नवा, एक ही शब्द मानकर सिर्फ पुनर्नवा ही लेते हैं। हमारी समझ में श्वेता शब्द से वंशलोचन और पुनर्नवा से सफेद पुनर्नवा लेना ठीक है।

गुण और उपयोग- यह बल-वीर्यवर्धक, अग्नि-दीपक, वृष्य और रसायन है। इसके सेवन से शरीर में स्फूर्ति व रक्त पैदा होता है तथा दुर्बलता, कमजोरी और रक्त की कमी दूर हो शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है। रस-रक्तादि धातुओं के क्षय हो जाने के कारण जो दुर्बल हो गये हों ऐसे मनुष्यों के लिए यह लौह बहुत शीघ्र लाभदायक है।

गुडूच्यादि लौह

गिलोय (गूर्च) का सत्त्व, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वायविडंग, नागरमोथा और चित्रक-प्रत्येक १-१ तोला लें। इनको कूट कपड़छन कर महीन चूर्ण बनावें और इन सब दवाओं के समान भाग लौह भस्म लेकर, एकत्र मिला कर, खरल कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- २ रत्ती, सुबह-शाम शहद या दूध के साथ अथवा गुर्च के क्वाथ या धनियाँ के काढ़े के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस लौह के सेवन से वात-रक्त तथा फोड़े-फुन्सी आदि आराम होते हैं। इसमें लौह की प्रधानता से रक्त शुद्ध होकर खून की वृद्धि होती है। पित्तजन्य विकारों में भी यह फायदा पहुँचाता है।

प्रकुपित पित्त के कारण रक्त दूषित होने से शरीर के ऊपर लाल चट्टे हो जाते हैं, कभी-कभी खुजलाने से भी चट्टे पड़ जाते हैं। उनमें खुजली विशेष होती है, फोडे-फुन्सियाँ निकल आती हैं तथा जलन भी होती है। शरीर में गर्मी अधिक बढ़ जाना, प्यास लगना, पेट तथा हाथ-पैरों में जलन, घी या मक्खन आदि शीतल उपचार से शान्त हो जाना, नया खून बनना बन्द हो जाना इत्यादि उपद्रव होने पर गुडूच्यादि लौह का उपयोग करना चाहिए। यह पित्तशामक और रक्तशोधक भी है।

चन्दनादि लौह

लाल चन्दन, सुगन्धवाला, पाठा, खस, पिपली, हरड़, सोंठ, कमल के फूल, आँवला, वायविडंग, नागरमोथा, चित्रकमूल-प्रत्येक दवा समान भाग लेकर, कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बनावें। इन चूर्णों के समभाग लौहभस्म मिला खरल कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- 2 रत्ती, सुबह-शाम गुडूची सत्त्व और मधु से ज्वर-रोग में नेत्रों की जलन, सिर-दर्द और चक्कर आने में मिश्री तथा मक्खन के साथ दें।

गुण और उपयोग- लौह भस्म का यह सौम्य योग है। बार-बार आनेवाला पारी का ज्वर, विषमज्वर तथा जीर्णज्वर में इसका अच्छा असर होता है। यह पाचन विकार को ठीक करके बढ़ी हुई रक्त की गति को ठीक कर देता है। नेत्रदाह (आँखों में जलन), सिर में दर्द, प्रदाह और पित्तजन्य विकारों में यह सौम्य गुणयुक्त होने से बहुत कार्य करता है। यकृत और प्लीहा-रोग में यह बहुत अच्छा काम करता है। यह जीर्णज्वर की प्रसिद्ध दवा है।

चन्द्रामृत लौह

सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, धनियाँ, चव्य जीरा और सेंधानमक-प्रत्येक का चूर्ण १-१ भाग तथा मैनसिल द्वारा भस्म किया हुआ लौहभस्म सबके बराबर लेकर एकत्र खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली सुबह-शाम नीलकमल के रस, कुलत्थी क्वाथ या शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से सब प्रकार की खाँसी, श्वास, ज्वर, भ्रम, दाह, तृषा, शूल, और जीर्ण-ज्वर का नाश होता है तथा अरुचि, जठराग्नि और बल-वर्ण की वृद्धि होती है।

इस लौह का गुणधर्म चन्द्रामृत रस के सदृश ही है। अन्तर इतना है कि इसमे लौह भस्म का वेग प्रबल हो अथवा श्वास का वेग भी हो तो इसे सितोपलादि चूर्ण के साथ मधु में मिलाकर देने से श्रेष्ठ लाभ होता है।

ताप्यादि लौह नं. १ (रौप्यभस्म युक्त)

हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक-मूल, वायविडंग-प्रत्येक २।।-२।। तोला, नागरमोथा, १।। तोला, पीपलामूल, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी, चव्य-प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म, लौह भस्म-प्रत्येक १०-१० तोला, मण्डूर भस्म २० तोला, मिश्री ३२ तोला-सबको बारीक पीसकर छान लें।

मात्रा और अनुपान- ३-३ रत्ती, दिन में दो बार, मूली के रस या गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पाण्डु, कामला, यकृत एवं प्लीहा के विकार, रक्त की कमी, सूजन, स्त्रियों के मासिक धर्म की गड़बड़ी आदि रोग अच्छे होते हैं। मलेरिया के बाद उत्पन्न एनीमिया की यह सबसे अच्छी दवा है। इससे खून की वृद्धि होकर शरीर की सब इन्द्रियाँ बलवान हो जाती है। बालकों के धनुर्वात एवं बालग्रह के लिए भी अत्युपयोगी है।

पाण्डू रोग- अधिक दिन बुखार आने या शीतज्वर-जाड़ा देकर बुखार आते रहने से शारीरिक रस-रक्तादि धातु एवं वात-पित्त, कफ तथा इनकी सहायक इन्द्रियों की शक्ति का क्षय हो जाने से शरीर की कान्ति ही बिगड़ जाती है तथा रक्त की कमी से शरीर पर कुछ-कुछ पीलापन, हृदय कमजोर, जठराग्नि मन्द, पाचन-क्रिया में गड़बड़ी, शरीर कमजोर हो जाना, रक्ताणुओं की कमी

के कारण शरीर में जल-भाग की वृद्धि होने से शरीर पर शोथ, त्वचा रुक्ष और फीकी हो जाना, रक्त का संचार अच्छी तरह न होने से मन अनुत्साहित बना रहना, किसी काम में मन न लगना, न किसी काम को करने की इच्छा ही होना, यहाँ तक कि उठने-बैठने में भी आलस्य जान पड़ना, हृदय में घबराहट, मुँह, हाथ, पैर, गाल और आँखों मे सूजन इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में ताप्यादि लौह के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है, क्योंकि इस दवा का असर जठराग्नि, हृदय और रक्त पर विशेष होता है। इसके सेवन से ज्वर के कीटाणू दूर हो जाते और पाचक पित्त उत्तेजित होकर जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है, जिससे खाये हुए पदार्थों का पाचन अच्छी तरह होने लगता है। फिर उत्तम रसरक्तादि बन कर रक्ताणुओं की वृद्धि हो, शरीरस्थ दूषित जलभाग सूख जाने पर शोथ भी नष्ट हो जाता और शारीरिक शक्ति की भी वृद्धि होने लगती है। शरीर में एक प्रकार की नवीन स्फूर्ति पैदा हो जाती तथा रोगी बहुत शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

कामला रोग-पाण्डु रोगावस्था में गर्म पदार्थ अर्थात् पित्त बढ़ाने वाले पदार्थों के सेवन करने से पित्त प्रकुपित हो, मांस और रक्त को दूषित कर, कामला रोग उत्पन्न करता है। इसमें-सम्पूर्ण शरीर तथा आँख, मल, मूत्र और त्वचा पीली हो जाती, कभी-कभी मल का रंग सफेद हो जाता है, दस्त पतला और कफ विशेष होने से झाग (फेन) युक्त आता है। अन्न में अरुचि, मन्दाग्नि आदि लक्षण हो जाते हैं, ऐसी हालत में ताप्यादि लौह का उपयोग करना बहुत लाभदायक होता है, क्योंकि यह लौह सौम्य-गुण प्रधान अर्थात् पित्तशामक, अग्निप्रदीपक और रक्ताणुवर्द्धक होने के कारण कामला में बहुत शीघ्र लाभ करता है, परन्तु जिस कामला में यकृत विकृत होकर कमजोर पड़ गया हो, उसमें इस लौह का असर कम होता है।

प्रमेह रोग- शारीरिक कमजोरी अथवा बुढ़ापे के कारण जब शारीरिक इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है, जब मूत्रपिंड भी कमजोर हो जाता है, जिससे बार-बार पेशाब करना पड़ता है, साथ ही रक्त भी कभी-कभी विकृत हो जाता है, जिससे प्रमेह, पीड़िका आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, इन विकारों को दूर करने के लिए ताप्यादि लौह का उपयोग करना अच्छा है, क्योंकि इसमें शिलाजीत का भी मिश्रण है, जो रक्तशोधक और मूत्राशय को बल देने वाला तथा शक्तिवर्द्धक है। यह दीपन-पाचन भी हैं।

आँतों की निर्बलता दूर करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। आँतों की निर्बलता के कारण ही दस्त-कब्ज हो जाता है जिससे मन्दाग्नि, भूख न लगना, अरुचि, मल-संचय आदि विकार उत्पन्न होते हैं, ऐसी अवस्था में यदि विरेचक औषधियों द्वारा मल-संचय दूर करने का यत्न किया जाय तो सर्वथा निष्फल हो जाता है, क्योंकि विरेचक औषधियाँ आँतों को और कमजोर बना देती हैं। परिणाम यह होता है कि वह औषधि पेट में ही रह जाती और वहाँ सड़ कर एक प्रकार की दूषित गैस की उत्पत्ति कर देती हैं, जिससे आम-संचय और भी बढ़ जाता तथा साथ ही बद्धकोष्ठता भी हो जाती है। ऐसी स्थिति में इस तरह की दवा का आयोजन करना अच्छा होता है, जो आँतों के बलवान बना उत्तेजित करें। इस कार्य के लिये ताप्यादि लौह बहुत उपयोगी है। यह धीरे-धीरे आँतों को सबल बना देता और संचित मल को भी पिघला कर निकाल देता है, फिर क्रमशः आँतें सबल हो जाती है और मल-संचय दूर हो, बद्धकोष्ठता मिट जाती है।

कभी-कभी पित्त प्रकोप के कारण फुफ्फुसों के भीतर दाह उत्पन्न हो जाता है, इसमें हृदय कमजोर हो जाता और कफ सूख कर छाती में बैठ जाता तथा सूखी खाँसी होने लगती है। कभी-

कभी तो प्रकुपित पित्त के कारण जलन इतनी बढ़ जाती है कि जितना भी पानी पिया जाये, तृप्ति ही नहीं होती। इसमें सूखी खाँसी देर तक होती रहती है। खाँसते-खाँसते पित्त वमन द्वारा निकलने पर कुछ देर के लिये शान्ति मिल जाती है। ज्यादा खाँसी होने की वजह से मुँह की नसें फूल-सी जाती हैं, जिससे चेहरा लाल-उभरा हुआ (फुला हुआ) मालूम पड़ता है। ऐसी दशा में ताप्यादि लौह च्यवनप्राश और सितोपलादि चूर्ण घी अथवा दाड़िमावलेह या शर्बत अनार के साथ देना चाहिए।

शोथ रोग- किसी रोग के कारण या स्वतन्त्र रूप से शरीर में रक्त की कमी से शरीर सूख गया हो तो ताप्यादि लौह के उपयोग से रक्ताणुओं की वृद्धि हो, शरीर का जलभाग सूख कर शोथ दूर हो जाता है। -औ.गु.ध.शा.

ताप्यादि लौह (साधारण)- उपरोक्त योग में रौप्यभस्म के स्थान पर रौप्यमाक्षिक भस्म डालकर बनाया जाता है। मात्रा-अनुपान, गुणधर्म उपरोक्त के समान ही हैं। -उपरोक्त योग से किंचित् न्यूनगुण है।

तारा मण्डूर

वायविडंग, चित्रक, चव्य, हर्रे, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल-प्रत्येक १-१ तोला, मण्डूर भस्म ९ तोला लेकर ७ छटाँक १ तोला गोमूत्र और ३।। छटाँक ६ माशा गुड़-सबका एकत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब गाढ़ा हो जाय तब ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा सुरक्षित रख लें। भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-३ गोली भोजन के पहले और भोजन के बाद शीतल जल से दोनों समय सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसका उपयोग विशेष कर पंक्तिशूल (भोजन पचने के समय जोरों से पेट में दर्द होना), पाण्डू (पीलिया), कामला, शूल, हाथ-पैर और सारे शरीर में सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, ग्रहणी, गुल्म, अम्लपित्त आदि रोगों में होता है। परिणामशूल में भी इससे काफी लाभ होता है।

वक्तव्य- ग्रन्थ के मूलपाठ में इसकी मात्रा १ कोल अर्थात् आधा कर्ष की लिखी है, किन्तु वर्तमान अल्प सत्व लोगों के लिए ६ रत्ती से १८ रत्ती की मात्रा पर्याप्त है।

त्रिफलादि लौह

त्रिफला (आँवला, हर्रे, बहेड़ा) मोथा, सोंठ, पीपल, मिर्च, वायविडंग, पोहकरमूल, बच, चित्रक और मुलेठी-प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण ४-४ तोला, लौहभस्म तथा शुद्ध गुग्गुल ३२-३२ तोला लें। सबको एकत्र कूट कर ४८ तोला शहद मिला ४-४ रत्ती की गोलियां बना सुखाकर रख लें। भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम, आमवात में दशमूल क्वाथ के साथ, पाण्डूरोग में गोमूत्र के साथ तथा परिणामशूल में गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से दुःसाध्य आमवात, पाण्डुरोग, हलीमक, परिणामशूल, शोथ और ज्वर आदि नष्ट होते हैं।

आमवात की उग्रावस्था में, जब गाँठों मे सूजन और दर्द जोरों से हो रहा हो, दस्त की कब्जियत, सम्पूर्ण शरीर में जकड़न, रक्त की गति में बाधा, वातवाहिनी नाड़ियों में विकृति आदि उपद्रव होने पर इस दवा का प्रयोग करने से अच्छा और शीघ्र लाभ होता है क्योंकि इसमें त्रिफला और त्रिकुटा का मिश्रण होने से यह बद्धकोष्ठता (कब्जियत) को दूर कर आमदोष को पचाता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। गुग्गुलु प्रकुपित वायु (वातवाहिनी नाड़ियों की

विकृति) को शमन करता है। इसमें लौहभस्म है, अतएवं इससे रक्त-संचालन-क्रिया अच्छी तरह होने लगती है। इस लौह का प्रधान कार्य प्रकुपित वात को शमन कर रक्त की कमी की पूर्ति करना है। यह बल वीर्यवर्द्धक भी है।

त्रिफला मण्डूर

मण्डूर भस्म और त्रिफला के महीन चूर्ण को समान भाग लेकर एकत्र खरल करके रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-४ रत्ती, सुबह-शाम १ माशा घी और ३ माशा शहद एकत्र मिला कर इसके साथ दें।

गुण और उपयोग- यह मण्डूर अम्लपित्त रोग में उत्पन्न होने वाले दर्द के लिए अच्छा है। इसके सेवन से पाण्डु, कामला, कब्ज आदि रोग अच्छे हो जाते हैं। विशेष कर प्लीहा की क्रिया को यह ठीक करता है। मलेरिया ज्वर के कारण प्लीहा-वृद्धि और ज्वर को दूर करता है। पाण्डू-कामला, हलीमक, शोथ, मन्दाग्नि, आदि रोगों में भी इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है। इसमें त्रिफला का सम्मिश्रण होने से कब्ज भी नहीं रहता है। रक्ताणुओं की वृद्धि कर शरीर में रस-रक्तादि धातुओं की वृद्धि करता है।

त्र्यूषणादि मण्डूर

सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चित्रक, दारुहल्दी की छाल, सोनामाखी भस्म, पीपलामूल और देवदारु-प्रत्येक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ८-८ तोला लें। इन दवाओं से दुगुना मण्डूर भस्म लेकर ८ गुने गोमूत्र में पकावें। गाढ़ा होने पर उसमें उपरोक्त चूर्ण मिलाकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर सुरक्षित रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मधु या गोमूत्र से दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पाण्डु, कुष्ठ, शोथ, उदररोग, उरुस्तम्भ, कफ, अर्श, कामला, प्रमेह, और प्लीहा का नाश होता तथा इसके सेवन से शरीर में नवीन रक्त की उत्पत्ति भी होती है।

पाण्डुरोगी के लिए यह महौषध है, पाण्डुरोग में अन्न के प्रति अरुचि, ज्वर, जी मिचलाना, विशेष प्यास लगना, देह में थकावट मालूम होना, सूजन, हृदय की कमजोरी, नाड़ी की गति मन्द हो जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाने पर त्र्यूषणादि मण्डूर के उपयोग से आशातीत लाभ होता है।

त्र्यूषणादि लौह

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आमला, चव्य, चित्रक, विड्लवण, काला नमक, वाकुची और सेंधानमक प्रत्येक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण १-१ भाग और लौह भस्म इन सब दवाओं के बराबर लेकर सबको एकत्र खरल कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- ४-६ रत्ती सुबह-शाम शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस लौह के सेवन करने से स्थूलता (मोटापन), प्रमेह और कुष्ठ रोग नष्ट होता है तथा बल-वर्ण और जठराग्नि की वृद्धि होती है। यह वायुशामक तथा वातविकार को दूर करने वाला है।

स्थूलता में- स्निग्ध (चिकना), मधुर (कफवर्द्धक) पदार्थों के सेवन करने से शरीर में चर्बी बढ़ जाती है। इसकी वृद्धि स्त्रियों में अधिक होती है, जिससे उन्हें सन्तानादि होना भी बन्द हो जाता है, क्योंकि चर्बी ज्यादा बढ़ जाने से गर्भाशय का मुँह बन्द हो जाता है। फिर गर्भधारण ही

नहीं होता। पुरुष में यदि चर्बी बढ़ जाती है तो पेट, चूतड़ आदि मांसल अंगों की वृद्धि हो जाती हैं, जाँघ मोटी हो जाती है, जिससे चलने में तकलीफ होती है। किसी-किसी में तो मोटापन इतना बढ़ जाता है कि वह अपने हाथ से आबदस्त (शौच) भी नहीं कर पाता है। जिसकी चर्बी बढ़ी रहती है, वह मनुष्य भीतर से कमजोर रहता है। थोड़ा ही परिश्रम करने पर हाँफने लगता हैं। ज्यादा मोटा होना भी रोग है। अत: मोटापन को दूर करने के लिए त्र्यूषणादि लौह का उपयोग करना चाहिए। इससे बादी छँटने लग जाती है और चर्बी विशेष न बन कर रक्त ही बनने लगता है तथा बढ़ी हुई चर्बी धीरे-धीरे सूख जाती है परन्तु इस दवा के सेवन-काल में जौ और चना की रुखी रोटी मात्र ही खाने को दें। भात या पूड़ी, दही, दूध, शक्कर आदि स्निग्ध और कफवर्द्धक पदार्थ बिल्कुल बन्द कर दें।

वक्तव्य- कुछ ग्रन्थों में इस योग के पाठ में त्रिफला के स्थान पर विजया शब्द है, जिसका अर्थ कई लोग हरीतकी और कुछ लोग भाँग भी करते हैं, किन्तु स्थौलयापकर्षण में त्रिफला विशेष उपयोगी होने से त्रिफला वाला पाठ ही अधिक उपयुक्त है।

धात्री लौह

आँवले का चूर्ण ३२ तोला, लौह भस्म १५ तोला, मुलेठी चूर्ण ८ तोला लेकर सबको खरल करके गिलोय-स्वरस की भावना देकर तेज धूप में सुखाकर (या ३-६ रत्ती की गोलियाँ बना) रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३-६ रत्ती भोजन के पहले और अन्त में घी या शहद के साथ सेवन करना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह परिणामशूल (खाने के बाद पेट में दर्द होना), पंक्तिशूल (भोजन पचने के समय पेट में दर्द होना), अजीर्ण, अम्लपित्त, कब्ज, गले में जलन, खट्टी डकारें आना आदि पैत्तिक रोगों में बहुत शीघ्र लाभ करता है। इसके सेवन से पाचनविकार अच्छा होता है तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है, सफेद बालों को काला करता है। बालकों के लिए भी यह बहुत हितकर है। वातपित्त-जन्य विकारों तथा कफ-पित्त-जन्य विकारों में भी यह बहुत श्रेष्ठ लाभदायक है। इसके कुछ समय लगातार सेवन करने से शारीरिक धातुओं की अभिवृद्धि होकर जीवनीय शक्ति में अच्छी वृद्धि होती है।

नवायस मण्डूर व लौह

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, वायविडंग और चित्रक मूल की छाल-प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण १-१ तोला और लौह भस्म या मण्डूर भस्म ९ तोला लेकर सबको एकत्र कर ३ दिन खरल करके रखें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ माशा सुबह-शाम घी या शहद अथवा छाछ या गोमूत्र के साथ दें। रक्त की कमी में दूध से, कृमिरोगों में वायविडंग की चूर्ण और मधु से, हृदय रोग में अर्जुन के क्वाथ से तथा पाण्डुरोग में पुनर्नवा-स्वरस और मधु से दें।

गुण और उपयोग- यह लौहकल्प पाचक, दीपक, रसायन और रक्तवर्द्धक है। इसके सेवन से रक्ताणुओं की वृद्धि होती और रक्त-गति का कार्य भी ठीक-ठीक होने लगता है। प्लीहा के दोष या पेट की खराबी से होनेवाले बुखार में इस दवा से अच्छा लाभ होता है। इसके सेवन से जठराग्नि तेज होती है तथा प्लीहा की विकृति दूर होती है। बच्चों में प्लीहा की वृद्धि बहुत जल्दी हो जाती है जिससे बच्चा सूखने लगता है, पेट कुछ आगे निकल आता है, ज्वर बराबर रहता है तथा दिन-प्रति दिन कमजोरी बढ़ती ही जाती है। ऐसी हालत में यह दवा अमृत के

समान काम करती है। शोथ, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, अर्श, उदर रोग, हृदय रोग, कृमि, भगन्दर आदि रोगों में इससे बहुत लाभ होता है। इसके सेवन से यकृत की क्रिया ठीक होकर पाचक और रंजक पित्त की निर्माण क्रिया नियमित रूप से होने लगती है। अतएव शोथ और रक्त की कमी में इसका उपयोग विशेष किया जाता है।

वक्तव्य- उपरोक्त योगो को लौह भस्म से तैयार करने पर नवायस लौह एवं मण्डूर भस्म से तैयार करने पर नवायस मण्डूर कहा जाता है। मण्डूर सौम्य एवं लौह से अधिक मात्रा में सेवन योग्य होने के कारण नवायस लौह की अपेक्षा नवायस मण्डूर कुछ अधिक मात्रा में सेवन किया जाता है।

प्रदरान्तक लौह

लौह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध हरताल, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, कौड़ीभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चित्रकमूल, वायविडंग, पाँचों नमक, चव्य, पीपल, शंखभस्म, बच, हाऊबेर, कूठ, कचूर, पाठा, देवदारु, इलायची और विधारा-सब चीजें समान भाग लेकर, सबको एकत्र खरल कर, पानी के साथ घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम मिश्री, घृत तथा शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रक्त और श्वेतप्रदर, कुक्षि, कटि और योनि-शूल, अरुचि, मन्दाग्नि आदि को नष्ट कर मासिक धर्म नियमित एवं साफ लाती है। पुराने एवं कष्टसाध्य प्रदर भी इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। गर्भाशय एवं बीज-कोष की शिथिलता में इसका उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।

प्रदर रोग- पुराना हो जाने पर स्त्रियों के अंग में रक्त की कमी होकर, देह पीली हो जाती, मन्दाग्नि, भूख नहीं लगना, कमजोरी, थोडे परिश्रम से हाँफने लगता, गर्भाशय और डिम्ब (बीजकोष) की कमजोरी से गर्भधारण नहीं होना, बराबर स्त्राव होते ही रहना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रदरान्तक लौह के उपयोग से बहुत लाभ होता है। इससे गर्भाशय तथा बीजकोष सशक्त होकर स्राव रुक जाता है और नवीन रक्त पैदा होने लगता है एवं धीरे-धीरे सभी उपद्रव शान्त होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

प्रदरारि लौह

५ सेर कुटज की छाल को जौकुट करके २५ सेर ९ छटाँक ३ तो. पानी में पकावें और ३ सेर ३ छ. १ तो. पानी शेष रहने पर छानकर, उसे पुनः पकाकर अवलेह जैसा गाढ़ा करें, फिर उसमें मजीठ, मोचरस, पाठा, बेल-गिरी, नागरमोथा, धाय के फूल और अतीस का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ४-४ तोला, अभ्रक और लोह भस्म ४-४ तोला मिला, गाढ़ा होने पर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम, प्रदर रोग में कुशा-मूल क्वाथ या अशोक छाल के क्वाथ से रक्त-पित्त तथा खूनी बवासीर में मक्खन, मिश्री या वासास्वरस के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- रक्त-स्राव को रोकने के लिए केवल लौह-भस्म ही काफी है, परन्तु अन्य रक्तरोधक यथा-कुटज छाल, मोचरस आदि दवाओं के सम्मिश्रण से यह बहुत ही गुणकारी दवा बन जाती है। अतएव, रक्तप्रदर में इससे शीघ्र शमन होता है। रक्तपित्त और रक्तार्श (खूनी बवासीर) में इससे लाभ होता है। रक्तस्राव से उत्पन्न हुई निर्बलता, अरुचि आदि इससे नष्ट होते हैं।

प्रदर रोग में तो इसका उपयोग किया ही जाता है, किन्तु इसके साथ ही रजो-विकार (मासिक धर्म की विकृति) में भी उपयोग करने से लाभ होता है। कभी-कभी रक्त की कमी से प्रकुपित वायु के कारण स्त्रियों को रज:स्राव के समय कई तरह के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। यथा-मासिक धर्म होने के समय कमर और कोष्ठ में दर्द होना। यह दर्द इतने जोरों का होता है कि कमजोर औरत कभी-कभी बेहोश हो जाती है अथवा रक्ताल्पता के कारण मासिक धर्म ठीक समय पर उचित मात्रा में न होना, या किसी-किसी को मासिक धर्म बहुत कठिनता के साथ होता है। इसमें भूख नहीं लगती, कमजोरी, पेट में दर्द और मन्दाग्नि हो जाना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में प्रदरारि लौह देने से बहुत गुण करता है।

रक्तपित्त और खुनी बवासीर में होनेवाले रक्तस्राव को, इसको सेवन कराकर बन्द करने के अनेक उदाहरण मिले हैं। ज्यादा रक्तस्राव होने से शरीर पाण्डू वर्ण का हो गया हो, कमजोरी, काम करने की शक्ति न होना, मन उत्साह-रहित होना, जीवन से निराश हो जाना, मन अप्रसन्न रहना, थोड़ा ही खून बनने पर सब निकल जाना, ऐसी हालत में भी प्रदरारि लौह द्वारा अनेक रोगी अच्छे हुए हैं।

पिप्पल्यादि लौह

छोटी पीपल, आँवला, मुनक्का, बेर की गुठली की गिरी, शहद, मिश्री, वायविडंग, पोहकरमूल-प्रत्येक १-१ भाग तथा लौह भस्म इन सब दवाओं के समान (८ तोला)लेकर काष्ठौषधियों का कपड़छन चूर्ण बनाकर, सबको एकत्र मिला कर रखें या जल से घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली दिन में २-३ बार शहद और बहेड़ा की मींगी के चूर्ण के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह कास, श्वास, हिचकी, वमन आदि रोगों को दूर करने के लिए अत्युत्तम दवा है। छाती में कफ जमा होकर बैठ जाने से बहुत खाँसने पर थोड़ा सा कफ निकलता है, जिससे रोगी को बड़ी परेशानी होती है। ऐसी हालत में इसकी २-३ मात्रा देने से शीघ्र लाभ होता है।

यह दवा पित्तप्रधान रोगों में विशेष उपयोगी और गुणदायक है। प्रकुपित वात या पित्त-कफ को सुखाकर छाती में बैठा (जमा) देता है, जिससे सूखी खाँसी आने लगती है। इसमें खाँसी का वेग थोड़ी-थोडी देर बाद आता है, किन्तु जब आता है, तब अधिक देर तक रहता है। खाँसते-खाँसते आँख सूर्ख (लाल) हो जाती हैं, चेहरा तमतमा जाता है, सांस फूलने लगती है, प्यास की अधिकता, शीतल पदार्थ खाने की विशेष इच्छा आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पिपल्यादि लौह को प्रवाल चन्द्रपुटी तथा अडुसा क्षार में मिला कर देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इससे कफ पिघल कर खाँसी के साथ निकलने लग जाता है, साथ ही पित्त भी शान्त हो जाता है। लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से खाँसी जड़ से चली जाती है। हिचकी और वमन में तथा प्यास की अधिकता में भी इसके सेवन से बड़ा उत्तम लाभ होता है। श्वास रोग में शुद्ध टंकण के साथ मधु में मिलाकर देने से श्रेष्ठ गुणकारी है।

पुनर्नवादि मण्डूर

पुनर्नवा, निशोथ, सोंठ, पीपल, मिर्च, वायविडंग, देवदारु, चित्रक, पोहकरमूल, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामुल और नागरमोथा-प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट-छान कर रख लें तथा मण्डूर भस्म ४० तोला लेकर आठगुने गोमूत्र में पका कर पुनर्नवा आदि के चूर्ण का प्रक्षेप दें। जब गाढ़ा हो जाय तो उसे घी लगे हाथ से ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-३ गोली सुबह-शाम शोथ रोग में गोमूत्र के साथ, पाण्डू रोग में पुनर्नवा-स्वरस के साथ और उदर रोग में त्रिफला क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- मण्डूर और पुनर्नवा का यह रासायनिक योग शरीर में खून को बढ़ाता है, सूजन को नष्ट करता है तथा आँतों को बलवान बनाता है।

यह समूचे शरीर की सूजन को नष्ट कर देता है। इसके प्रयोग से दस्त और पेशाब की क्रिया ठीक-ठीक होती है तथा रक्त की गति नियमित होकर शरीर में नया रक्त पैदा होता है। सूजन, पेट के रोग, प्लीहा, कृमि, बवासीर, वातरक्त, कफ, खाँसी, और आन्त्रिक क्षय में इससे अधिक लाभ होता है। इसका उपयोग शोथ रोग में विशेष किया जाता है। इसके सेवन-काल में दही और नमक का सेवन बन्द कर दिया जाये तो शोथ रोग में शीघ्र ही बहुत उत्तम लाभ होता है।

शोथयुक्त पाण्डुरोग में- पाण्डु रोग के पुराना हो जाने पर शरीर में जल भाग की वृद्धि से कफ-दोष बढ़ जाता है, साथ ही वायु भी प्रकुपित हो जाती है, जिससे शरीर में सूजन, मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठता, अन्न में अरुचि, मल-संचय से पेट आगे को निकला हुआ, हाथ, पाँव और मुँह पर सूजन की विशेषता, पेट में दर्द, प्लीहा-वृद्धि, ज्वर भी रहना, कमजोरी, रक्ताल्पता से शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाना आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में पुनर्नवादि मण्डूर के सेवन से बहुत लाभ होता हे। इससे सर्वप्रथम बद्धकोष्ठता (कब्जियत) दूर हो, दस्त पिघल कर आने लगते हैं और आँतें भी सबल बन जाती हैं। रक्ताणुओं की वृद्धि हो, शरीर का जल भाग सूखकर नष्ट हो जाता है। क्रमशः ज्वर और प्लीहादि विकार भी धीरे-धीरे कम होने लग जाते हैं। इस तरह कुछ ही दिनों में रोगी स्वस्थ हो जाता है। शोथ रोग की यह सुप्रसिद्ध महौषधि है।

पंचामृत लौहमण्डूर

लौह भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, अभ्रक भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, आँवला, नागरमोथा, वायविडंग, चित्रकमूल की छाल, पीपल, चिरायता, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, पोहरकमूल (कूठ), अजवायन, कालाजीरा, सफेद जीरा, कचूर, धनिया चव्य-प्रत्येक १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, पश्चात् अन्य चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। मण्डूर भस्म सब द्रव्यों के आधा भाग (१३ तोला) लेकर इसको चौगुने (५२ तोला) गोमूत्र और अठगुना (१०४ तोला) पुनर्नवामूल क्वाथ लें। प्रथम लौह को साफ कड़ाही में मण्डूर भस्म तथा लौह भस्म डालकर गोमूत्र में पकावें, फिर पुनर्नवा क्वाथ मिलाकर पकावें। पाक गाढ़ा होने पर उपरोक्त पारद-गन्धक की कज्जली, ताम्र-भस्म, अभ्रक भस्म तथा काष्ठौषधियों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण मिलाकर नीचे उतार कर मर्दन करें। शीतल होने पर इसमें ४ तोला मधु मिला मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रखें।

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली, दिन में दो बार सुबह-शाम तालमखाना-क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से शोथयुक्त जीर्ण संग्रहणी रोग, पाण्डु, कामला, अग्निमान्द्य जीर्णज्वर, प्लीहावृद्धि, गुल्म, उदररोग, यकृत वृद्धि, कास, श्वास, प्रतिश्याय आदि रोग नष्ट होते हैं। यह औषधि उत्तम शक्तिवर्द्धक है। इसका उपयोग, विशेषतः रोग की जीर्णावस्था में होता है। रोग जितना ही जीर्ण हो, अथवा रोगी की शक्ति जितनी कम हो, यह औषधि उतनी ही कम मात्रा में देनी चाहिए। मात्रा अधिक होने पर विरुद्ध क्रिया होकर हानि होने की सम्भावना रहती है।

आँतों में शोथ हो जाने पर अन्न की पाचन क्रिया दूषित हो जाती है। परिणामत: आहार रस और मलों की आगे सरकने की क्रिया व्यवस्थित नहीं होती। आम, मल, विष, कृमि, कीटाणु आदि सभी वृहदन्त्र में संचित होते रहते हैं। इस दशा में बड़ी कठिनाई से थोड़ा-थोड़ा मलत्याग होता है।

अन्त्र से जब आमविष का अधिक परिमाण में शोषण हो जाता है, तो ज्वर की उत्पत्ति होती है। यदि इस विष-शोषण क्रिया का नाश न हुआ हो तो यह ज्वर जीर्णता में परिणत हो जाता है,फिर शरीर कृश और निस्तेज हो जाता यदि- विष-शोषण भी रहता है तो ज्वर का विष धातुओं में लीन हो जाता है और सरलता से नष्ट नहीं होता है। इस प्रकार से उदर विकृति युक्त जीर्ण ज्वर में पञ्चामृत लौह मण्डूर के प्रयोग से रोग एक मास मे समूल नष्ट हो जाते हैं।

क्षुधा नाश, उदर को दबाने पर दर्द होना, भोजन बिना पचे ही मल बन जाना, शरीर का अतिसार के कारण निस्तेज और कृश होना इस प्रकार के संग्रहणी रोग में इस औषध का अच्छा प्रभाव होता है। इस रोग में यदि ज्वर, कास, श्वास आदि लक्षण हों, तो वे भी कुछ काल में नष्ट हो जाते हैं। फुफ्फुस, यकृत-प्लीहा और वृक्क स्थान को यह उत्तम बल प्रदान करता है और पाचन क्रिया को व्यवस्थित करता है। इस कारण से यकृत वृद्धि और इसमें उत्पन्न पाण्डु, कामला और उदर रोग भी नष्ट होते हैं।

वरुणाद्य लौह

वरूण की छाल और आँवला ८-८ तोला, धाय के फूल ४ तोला, हर्रे २ तोला, पृश्निपर्णी १ तोला, इनको कूट छानकर चूर्ण कर लें, पश्चात् लौह भस्म १ तोला और अभ्रक भस्म १ तोला लेकर सबको मिलाकर सुरक्षित रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ माशा, सुबह-शाम पथरी रोग में कुलथी का काढ़ा और यवक्षार ड़ेढ़ माशा के साथ दें। मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र में गोखरु जल या तृणपंचमूल क्वाथ के साथ और सूजाक में दूध या दही की लस्सी अथवा कच्चे नारियल के जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, सूजाक आदि रोगों में पेशाब न होने के कारण असह्य वेदना होती है और रोगी कष्ट से चिल्लाने लगता है। उस समय इस दवा के सेवन से लाभ होता है।

इस दवा का असर मूत्राशय और मूत्रनली तथा वृक्कों पर होता है क्योंकि यह मूत्रल एवं पथरी को तोड़कर निकालने वाला है। पेशाब की नली में गड़बड़ हो जाने अथवा पथरी या अन्य किसी भी कारण से पेशाब रुक गया हो, तो इस दवा को उचित अनुपान के साथ देने से तुरंत लाभ होता है, विसूचिका में भी यह पेशाब खुलकर लाता है। यह पथरी को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े करके या गलाकर पेशाब के साथ आसानी से आहर निकाल देता है। इसके साथ हजरुलयहूद भस्म भी मिलाकर दी जाये तो विशेष लाभ होता है।

बालयकृदरि लौह

सहस्त्रपुटी, अभ्रकभस्म, लौह भस्म, पारद-भस्म, (रससिन्दूर), जम्बीरी नींबू के बीज, अतीस, सरफोंका की जड़, लाल चन्दन, पाषाण भेद, प्रत्येक समान भाग लेकर, महीन चूर्ण बना, गिलोय (गुर्च) के रस में घोंटकर २-२ चावल की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -आ.वे.वि.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम मधु(शहद) अथवा माँ के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह लौह बच्चे के कष्टसाध्य यकृत-प्लीहा ज्वर, शोथ, विबन्ध (कब्जियत), पाण्डु, खाँसी, मुखरोग, मुख के छाले और उदर रोगों को नष्ट करता है।

बाल यकृत- विकृत दूध पीने, छोटी अवस्था से ही अन्नादि खिलाने अथवा बचपन में मिश्री, चीनी, लड्डू आदि विशेषतया खाने से बालकों का यकृत बढ़ जाता है। बच्चों को यह रोग बहुत सरलता से तथा जल्दी हो जाता है, क्योंकि बाल्यावस्था में बच्चों का यकृत बहुत नरम रहता है। अतएव थोड़ा-सा भी अपच हो जाने पर उसमें तुरन्त विकृति या रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फलतः बच्चा सूखने लगता है। रक्त की कमी से हाथ-पाँव सूखने लग जाते हैं तथा बच्चे का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। जिधर यकृत रहता है उसी के बल जमीन पर बच्चे को लेटने की इच्छा होती है। अवसर पाकर वह जमीन पर लेट भी जाता हैं। पेट आगे को निकला हुआ मालूम पड़ता है, ज्वर बराबर रहता है, दस्त पतले होते है, ऐसी अवस्था में बालयकृदरि लौह देने से बहुत लाभ होता है। इससे यकृतवृद्धि अथवा यकृत की विकृति यथा शीघ्र ही रुक जाती है और इसमें रससिन्दूर, अभ्रक और लौह भस्म के मिश्रण से यह रसायन बच्चों के लिये अमृत के समान गुणदायक बन जाता है। कफ-दोष या ज्वरादिक दोष भी इसके सेवन से दूर हो जाते हें और बच्चा बहुत शीघ्र हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

विषमज्वरान्तक लौह (पुटपक्व)

हिंगुलोत्थपारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला लेकर दोनों को खरल में डाल सूक्ष्म कज्जली बनाकर उस कज्जली को पर्पटी विधान से पर्पटी बनावें। पश्चात् उस पर्पटी को खरल में डालकर सूक्ष्म मर्दन करें। फिर उसमें स्वर्ण वर्क या भस्म ३ माशे, लौह भस्म २ तोला, ताम्र भस्म २ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, वंग भस्म ६ माशे, शुद्ध स्वर्ण गैरिक ६ माशे, प्रवाल भस्म ६ माशे, मोती भस्म ३ माशे, शंख भस्म ३ माशे, शुक्ति भस्म ३ माशे मिलाकर उपरोक्त कज्जली, स्वर्ण-वर्क आदि समस्त द्रव्य एकत्र मिला, मर्दन करें और बड़ी सीपों के अन्दर भरकर, उनका सन्धिरोध करके लघुपुट में डालकर स्वांगशीतल होने पर औषधि को निकालकर सूक्ष्म मर्दन करके रखें।

मात्रा और अनुपान- आधी से १ रत्ती तक सुबह-शाम पीपल चूर्ण, भुनी हींग, सेन्धा नमक के चूर्ण के साथ मिलाकर मधु के साथ दें। ऊपर से गर्म जल पिलावें या रोगानुसार अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस रसायन का सेवन करने से समस्त प्रकार के कठिन जीर्ण ज्वर रोग नष्ट होते हैं। विशेषतः विषम ज्वर में इसके प्रयोग से वरदान सदृश लाभ होता है। इसके अतिरिक्त वातज, पित्तज और कफोत्थ आठों प्रकार के ज्वर तथा एकतरा, तिजारी, चौथिया आदि पारी के सभी ज्वरों को नष्ट करता है और प्लीहा-विकृति, वृद्धि साध्य-असाध्य सभी प्रकार के गुल्म, सन्तत-सततादि विषम ज्वर इसके प्रयोग से नष्ट होते हैं। कामला, पाण्डु रोग, शोथ रोग, प्रमेह, अरुचि, संग्रहणी रोग, आमदोष एवं आमदोष से होनेवाले उपद्रवों को शीघ्र नष्ट करता है, तथा कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार इन रोगों को निःसन्देह नष्ट करता है। जठराग्नि को प्रदीप्त कर बल की वृद्धि करता है एवं वर्ण को सुन्दर बनाता है और मन को प्रसन्न रखता है।

विषमज्वरान्तक लौह (साधारण)

चिरायता, पित्तपापड़ा, देवदारु, पृश्निपर्णी, शुद्ध मैनसिल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, त्रायमाण, गिलोय, नीम की छाल, पटोलपत्र, मुर्वा, खर्पर (अभाव में यशद) भस्म, अभ्रक भस्म- प्रत्येक १-१ भाग लें। प्रथम काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण करें, फिर सब द्रव्यों के चूर्ण के बराबर तीक्ष्ण लौह भस्म लेकर सबको एकत्र मिला जल के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ गोली, शहद या गरम जल के साथ सुबह-शाम दे या चिरायता क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस लौह के सेवन करने से कठिन से कठिन ज्वर नष्ट होता है। विशेषत: पित्त प्रधान ज्वर और विषम ज्वर की यह उत्कृष्ट दवा है। इसके अतिरिक्त प्लीहा-वृद्धि यकृत विकार, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, कामला, कृशता और शोथयुक्त ज्वरों को यह नष्ट करता है।

विडंगादि लौह

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, काली मिर्च, जायफल, लौंग, पीपल, शुद्ध हरताल, सौंठ, सुहागा 1-1 तोला, लौह भस्म ९ तोला और वायविडंग चूर्ण १८ तोला लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर खरल करके रख लें। -र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- ४ से ६ रत्ती सुबह-शाम खुरासानी अजवायन के क्वाथ या प्याज के रस अथवा गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से उदर-कृमि, अर्श, अरुचि, मन्दाग्नि, विसूचिका (हैजा), शोथ, शूल, ज्वर, हिक्का, कास और श्वास का नाश होता है। कृमि रोग में इसका विशेषतया उपयोग किया जाता है। कृमि रोग में लम्बे, गोल, सूत्राकार, चपटे आदि अनेक प्रकार के कृमि आँतों में चिपके रहते हैं। इससे कब्ज, ज्वर हृल्लास आदि अनेक उपद्रव हो जाते हैं। आजकल यह रोग बहुत व्यापक है एवं इसी के कारण लोगों को कितने ही विकार का कष्ट भोगना पड़ता है। बच्चों को कृमिरोग विशेष रूप से होता है। इस रोग में विडंगादि लौह, कृमिकुठार रस, कृमिघातिनी बटी के कुछ काल तक नियमित प्रयोग से बड़ा उत्तम लाभ होता है। बीच-बीच में मृदुविरेचन औषधि लेकर पेट को साफ भी करते रहना चाहिए ताकि मरे हुए कृमि बाहर निकलते रहें।

मण्डूर बटक

सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, देवदारु, स्वर्णमाक्षिक भस्म, चित्रक, दारुहल्दी, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चव्य, पीपलामूल, नागरमोथा- प्रत्येक ४-४ तोला लेकर कूट छानकर चूर्ण कर लें, तथा इन सब दवाओं से दूना मण्डूर भस्म लेकर उसे अठगुने गोमूत्र में मन्दाग्नि पर पकावें। जब गाढ़ा हो जाय, तब दवाओं का चूर्ण मिला, घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली, सुबह-शाम गोमूत्र या छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह पाण्डु, कामला, यकृत, प्लीहा-वृद्धि, शोथ, प्रमेह, बवासीर, कफ-विकार, अजीर्ण आदि रोगों का नाश करता है। इससे रक्त की वृद्धि हो शरीर बलवान हो जाता है एवं उत्तरोत्तर सभी धातुएँ बलवान होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। मेदवृद्धि जन्य विकारों में भी यह उत्तम लाभकारी है।

यकृत-प्लीहारि लौह

हिंगुलोत्थ पारद, गन्धक, लौह भस्म, और अभ्रक भस्म १-१ भाग, ताम्र भस्म २ भाग, शुद्ध मैनसिल, हल्दी का चूर्ण, शुद्ध जमालगोटा, सुहागे की खील और शुद्ध शिलाजीत १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिलावें। फिर उसे दन्तीमूल, निशोथ, चित्रक, सम्भालू, त्रिकुटा, अदरक और भाँगरा इनके रस की पृथक्-पृथक् एक-एक भावना देकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। - भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम गोमूत्र या तक्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पुराने यकृत, प्लीहा के रोग, उदर रोग, पेट फूलना, ज्वर, पाण्डु, कामला, शोथ, हलीमक, अग्निमांद्य और अरुचि का नाश होता है। यकृत रोग में इसका विशेष रूप से उपयोग किया जाता है।

यकृत रोग- शरीर में यकृत जैसा दूसरा उपयोगी यन्त्र नहीं हैं। यकृत रोग शुरु होते ही जाड़ा देकर या बिना जाड़ा लगे भी बुखार आने लगता है। कुछ दिनों के बाद बुखार तो शान्त हो जाता है किन्तु यकृत रोग बना ही रह जाता है। क्रमशः रोग पुराना होने पर यकृत कठोर और पहले की अपेक्षा बड़ा भी हो जाता है। यकृत स्थान को दबाने से दर्द होना, परिश्रम करने से यकृत में दर्द होना, साथ ही मन्द-मन्द ज्वर बना रहना, आँव सहित मल आना, मुँह का स्वाद खराब हो जाना आदि लक्षण होते हैं। कब्जियत रहना और पेट में वायु भरना इस रोग के खास लक्षण हैं। जब रोग भयानक रुप धारण कर लेता हे। तब यकृत में फोड़ा होकर, यकृत संकोचन हो, रोगी की मृत्यु तक भी हो जाती है। इस रोग की उत्पत्ति पुराने मलेरिया बुखार आदि से होती है। आजकल शहरों में खान-पान की अनियमितता भी इस रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण है। दो-तीन वर्ष से लेकर ५-७ वर्ष तक की आयुवाले बच्चे को भी यह बीमारी हो जाती है, जिससे रोगी (बच्चे) के हाथ पैर सूजने लगते हैं। शरीर में खून कम हो जाता है और आँखें सफेद तथा रक्तहीन हो जाती है। ऐसी अवस्था में यकृत प्लीहारि लौह देने से बहुत फायदा होता है, क्योंकि यकृत रोग में सबसे पहले मन्दाग्नि हो जाती है। कारण यह है कि यकृत से पित्त निकल कर अन्न पचाने का जो काम होता है, वह कार्य यकृत में विकार होने से बन्द हो जाता है। अतएव मन्दाग्नि हो जाती है। उस विकार को दूर करने के लिए यह बहुत उत्तम है। इसके सेवन से और भी उपद्रव दूर हो जाते हैं।

मेदोहर विडंगादि लौह

वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, बेल-गिरी,श्वेत चन्दन, सुगन्धवाला, पाठा, खस, बलामूल ये प्रत्येक १-१ भाग लौह भस्म सब द्रव्यों को मिला कर कुल वजन के बराबर (१३ भाग) लेकर प्रथम काष्ठौषधियों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात लौह भस्म, मिला जल के साथ मर्दन करें। गोली बनने योग्य होने पर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ गोली तक सुबह-शाम मधु या गरम जल के साथ दें या जौ के पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस लौह का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के मेदरोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त सब प्रकार के प्रमेह रोगों को नष्ट करता है और उत्तम बल्य तथा कान्ति, आयु और बल की वृद्धि करता है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है एवं उत्तम बाजीकरण है। सोम रोग, कृमि रोग, पाण्डु रोग और कामला रोग इनमें भी उत्तम लाभप्रद है।

यकृदरि लौह

लौह भस्म २ तोला, अभ्रक भस्म २ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, बिजौररा नींबू की जड़ की छाल का चूर्ण ४ तोला, मृग-चर्म भस्म ४ तोला लेकर सबको एकत्र मिला अच्छी तरह मर्दन कर जल के साथ घोंट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम जल या गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- यकृत रोग नाश करने की यह प्रसिद्ध दवा है। यकृत में किसी तरह की बीमारी होने से पाचक रस उचित मात्रा में नहीं बन पाता, अतः अन्नादिक का पाचन ठीक से नहीं होता है, जिसके कारण रस-रक्त-वीर्य आदि शरीर को पुष्ट करने वाले सातों धातुओं की उचित परिमाण में पूर्ति नहीं हो पाती-पश्चात् शरीर सुखने लगता है, हाथ-पाँव पतले हो जाते हैं, पेट आगे निकल आता है, बराबर थोड़ा-बहुत बुखार आता है, और शरीर पीला पड़ जाता है एवं हाथ-पैर, मुँह, नेत्र और पेट पर सूजन भी हो जाती है। ऐसी अवस्था में यकृदरि लौह अमृत के समान गुण करता है। इसका प्रभाव सर्वप्रथम यकृत की पाचक रस उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थि (पेंक्रियाज)पर होता है, जिससे पाचक रस तैयार होने लगता और रक्त उचित मात्रा में बन कर शरीर पुष्ट और नीरोग हो जाता है। इसमें ताम्र भस्म का योग होने के कारण यह यकृत की क्रिया को उत्तेजित कर पाचक रस अधिक बनाने एवं रस धातु के परिपाक द्वारा रक्तादि उत्तरोत्तर धातुओं के निर्माण का श्रेष्ठ कार्य करता है।

यक्ष्मान्तक लौह

रास्ना, तालीसपत्र, कपूर, मण्डूकपर्णी, मैनसिल, सोंठ, पीपल, मिर्च, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, वायविडंग, नागरमोथा और चित्रकमूल-इनका कपड़छन किया हुआ चूर्ण १-१ भाग और लौह भस्म इन सब दवाओं को समान भाग लेकर सबको एकत्र घोंट कर रखें।

मात्रा और अनुपान- २-४ रत्ती सुबह-शाम धारोष्ण बकरी के दूध या वासा (अडूसा) स्वरस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से राजयक्ष्मा, पाण्डु, स्वरभंग, खाँसी और क्षत क्षय भी नष्ट हो जाते हैं। इससे बल-वर्ण, अग्नि तथा शरीर की पुष्टि होती है।

यक्ष्मारि लौह

स्वर्णमाक्षिक भस्म, वायविडंग का महीन चूर्ण शुद्ध शिलाजीत, लौह भस्म, हर्रे का महीन चूर्ण और घी तथा शहद प्रत्येक समान भाग लेकर सब को एकत्र खरल में घोंट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम पिप्पली चूर्ण और मधु से दें।

गुण और उपयोग- यक्ष्मा से उत्पन्न खाँसी, ज्वर, कफ-विकार आदि नष्ट होते हैं। उपरोक्त दोनों दवा राजयक्ष्मा में जब रोग पुराना हो गया हो, ज्वर और खाँसी का वेग बढ़ रहा हो, हृदय कमजोर, शरीर दुर्बल हो गया हो, नाड़ी की गति क्षीण, रक्त की कमी से शरीर का रंग पाण्डु वर्ण का हो गया हो, खाँसी के साथ रक्त भी आता हो तब इस दवा के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। इससे यक्ष्मा के कीटाणु नष्ट होते तथा ज्वरादिक उपद्रव भी कम हो जाते हैं। शरीर में नवीन रक्त की वृद्धि होने से शरीर की धातुएँ भी पुष्ट होने लगती है।

वक्तव्य- अनुभव में देखा गया कि मधु और घृत मिलाने से गोलियाँ ठीक नहीं बन पाती हैं। अतः इनको छोड़कर शेष द्रव्यों को एकत्र मिलाकर खरल करके रख लें। सेवन करते समय घी और मधु मिलाकर सेवन करना उपयोगी है।

योगराज लौह

हर्रे, बहेड़ा, आँवला, बाकूची, भाँगरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, गिलोय, चकौड़ (पंवाड़) के बीज, काला भाँगरा, नागरमोथा, आँवला, खैरसार, सेन्धा नमक, अजवायन, जीरा (दोनों), वायविडंग-प्रत्येक का कूट कपड़छन किया हुआ चूर्ण १-१ भाग और लौह भस्म सब के समान

लेकर सब को घोंटकर सुरक्षित रख लें।-र.र.स.

मात्रा और अनुपान- १-१ रत्ती सुबह-शाम, बावची चूर्ण २ माशा और शहद के साथ दें अथवा त्रिफला चूर्ण १ माशा और शुद्ध गन्धक २ रत्ती के साथ जल से दें।

गुण और उपयोग- कुष्ठ रोग में इसका उपयोग किया जाता है। कुष्ठ रोग होने पर रक्त और मांस में विकृति आ जाती हे, त्वचा भी दूषित हो जाती है, पाचक ओर रंजक पित्त की विकृति से परिशुद्ध रक्त न बनकर दूषित रक्त बनने लग जाता है, जिससे शरीर में हानि के सिवा लाभ नहीं होता। रक्त, मांस और त्वचा की विकृति से शरीर विवर्ण हो जाता है,कान्ति नष्ट हो जाती है, जरा-सी खुरच लग जाने पर भयंकर घाव हो जाता है, खून ज्यादा पतला और बहने लगता है तथा खून का रंग कालापन लिये हुए रहता है। शरीर में चट्टे पड़ने लग जाते हैं। ऐसी अवस्था में योगराज लौह के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

रक्तपित्तान्तक लौह

आँवला और पीपल का कपड़छन किया हुआ चूर्ण १-१ भाग तथा लौह भस्म सब दवा के बराबर लेकर एकत्र मिला, घोंटकर रखें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ रत्ती सुबह-शाम दूर्वारस और मिश्री के साथ दें। अम्लपित्त में अनार-बेदाना रस और मिश्री के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से रक्तपित्त और अम्लपित्त दोनों ही रोग नष्ट होते हैं। रक्तपित्त के लिए यह बहुत प्रसिद्ध दवा है। रक्तपित्त में रक्त ज्यादा निकल जाने के कारण शरीर का रंग पीला हो जाता है, हृदय कमजोर एवं नाड़ी की गति क्षीण, मन्दाग्नि, प्यास ज्यादा लगना, शरीर एकदम कमजोर हो जाना, ज्वर भी बना रहना, ऐसी दशा में रक्तपित्तान्तक लौह के उपयोग से प्रकुपित पित्त शान्त हो रक्त स्राव बन्द हो जाता है, क्योंकि यह दवा पित्तशामक, रक्त-प्रसारक तथा शक्तिवर्द्धक है। अम्लपित्त में अम्लता बहुत बढ़ जाती है। जिसके कारण खट्टी डकारें आना एवं वमन में खट्टा पित्त मिश्रित पदार्थ निकलता है, हृदय में जलन एवं विदग्धता रहती है। ऐसी स्थिति में इस दवा के प्रयोग से बड़ा अच्छा उपकार होता है।

रोहितक लौह

हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रकमूल-छाल, नागरमोथा और वायविडंग-प्रत्येक १-१ तोला, रोहेड़ा वृक्ष की अन्तर छाल ९ तोला, इन सब का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर, उसमें लौह भस्म या मण्डूर भस्म ९ तोला मिलाकर रोहेड़ा वृक्ष की अन्तर छाल के क्वाथ की सात भावना दें, छाया में सुखा, पीस कर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३-३ रत्ती, सुबह-शाम दूध या छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यकृत और प्लीहा की वृद्धि, शोथ, पाण्डू रोग और पुराने विषमज्वर में लाभदायक है।

यकृत और प्लीहा की वृद्धि होने पर मन्दाग्नि, भूख न लगना, जाड़ा देकर बुखार आना, रस-रक्तादि धातुओं की कमी के कारण शरीर दुर्बल और कान्तिहीन हो जाना, कभी-कभी शोथ और पाण्डु रोग भी हो जाना, ऐसी दशा में रोहितक लौह के उपयोग से अच्छे हुए कई रोगी देखने में आये हैं। इसका कारण यह है कि इस दवा में रोहेड़ा और लौह भस्म की प्रधानता है। रोहेड़ा यकृत-प्लीहा के विकार तथा उदर-रोग नष्ट करने के लिए प्रसिद्ध है। अतः इससे यकृत-प्लीहा की वृद्धि रुक जाती है और मन्दाग्नि आदि भी दूर हो जाती है। लौह भस्म नवीन रक्ताणुओं को

बढ़ाते हुए अन्य धातुओं और शरीर को पुष्ट कर रोगी को स्वस्थ बना देती है।

शिलाजित्वादि लौह

शुद्ध शिलाजीत, मुलैठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, स्वर्णमाक्षिक भस्म-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग, लौह भस्म सबके बराबर (६ भाग) लेकर प्रथम काष्ठौषधियों को कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् शिलाजीत और भस्में मिलाकर, जल के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुखाकर उसे सुरक्षित रखें।-भै.र

मात्रा और अनुपान- २-२ रत्ती सुबह-शाम दूध के साथ या रोगानुसार उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस लौह का उपयोग करने से समस्त प्रकार के राजयक्ष्मा रोग नष्ट होते हैं और रक्तक्षय, रक्ताल्पता (एनीमिया), जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, क्षय, कास, प्रमेह इनको नष्ट करता है। शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि कर नवीन रक्त को उत्पन्न करता है। बल, वर्ण और आयुवर्द्धक उत्तम रसायन एवं बाजीकरण है।

शंकर लौह

उत्तम कान्त लौह ६४ तोला को त्रिफला क्वाथ में घोंटकर छोटी-छोटी टिकिया बना, सुखा, सराब-सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें। इसी प्रकार अदरक, सफेद भांगरा, काला भांगरा, मानकन्द, भिलावा, चित्रक, जिमीकन्द, हस्तिकर्ण, पलाश-इनके रस और थूहर का दूध प्रत्येक की १-१ भावना देकर गजपुट दें। फिर त्रिफला ६८ तोले को अठगुना पानी में पका, अष्टमांश पानी शेष रहने पर छान करके उस क्वाथ में इस भस्म को मिला दें और ३२ तोला घी भी इसी में मिलाकर ताँबे के बर्तन में रख, चूल्हे पर चढ़ा दें, लोहे की कलछी से चलाते रहें। जब घी स्वच्छ होकर ऊपर आ जाये तो मृदु-मध्य तथा तीव्र अग्नि से पकाकर रख लें।-भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ रत्ती सुबह-शाम, मधु से अथवा गाय या बकरी के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह रसायन वात-पित्त, कुष्ठ, विषमज्वर, गुल्म, नेत्ररोग, पाण्डुरोग, अधिक निद्रा, आलस्य, अरुचि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, अपबाहुक, शोथ, विशेषतया रक्तस्राव, अर्श और वलीपलित रोगों के लिए अत्युत्तम है। यह बल, कान्ति तथा वीर्य-वर्द्धक है और शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट करके पुत्रोत्पादक शक्ति प्रदान करता है। रक्तार्श (खूनी बवासीर) में यह अमृत तुल्य गुण करता है। इसकी परीक्षा अनेक बार हो चुकी है।

रक्तार्श में- मस्से लाल अथवा बट-अंकुर के समान होते हैं और पित्तजन्य बवासीर के लक्षणों से युक्त होते हैं, दस्त उतरने में तकलीफ और मस्से दबने से उनमें गरम-गरम रक्त निकलता है। यह रक्त अधिक निकलने से शरीर पीले वर्ण का हो जाता है और त्वचा कठोर हो जाती है। नाड़ी की गति मन्द हो जाती है, खट्टी वस्तु तथा शीतल पदार्थ खाने की इच्छा, बल और शारीरिक शक्ति का ह्रास, मन में बेचैनी, दस्त का रंग काला-रुक्ष कठोर होना, अधोवायु का न खुलना अर्थात् वायु की अधोमार्ग से गति न होना इत्यादि लक्षण होते हैं। इसमें यह रसायन अमृत के समान गुण करता है, क्योंकि इस रसायन का प्रभाव आँतों पर विशेष होता है। आँतों में पहुँचकर यह कुछ मलबन्ध अवश्य उपस्थित कर देता है, किन्तु विशेष मलबन्ध नहीं होता है। क्योंकि इस रसायन में विरेचक द्रव्य-त्रिफलादि द्वारा भावना दी जाती है और इसका अनुपान भी पित्तविरेचक पदार्थ ही रहता है। जैसे आँतों के लिए यह बन्धक है, वैसे ही शरीर से होनेवाले रक्तस्राव के लिए भी ग्राही है। अतएव इसे रक्तार्श में प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होता है।

लौह आँतों की अन्त:कला द्वारा रक्त में प्रवेश करता है और वहाँ से यकृत में पहुँचता है। यकृत में इसके कुछ ऐसे ऐन्द्रिक संयोग बनते हैं, जो शरीर में लीन हो जाते हैं। यह रोग रक्त के रंजक द्रव्य के बहुत कुछ मिलते-जुलते होते हैं और सम्भवत: वही संयोग हीमोग्लोबिन में बदल जाते हैं। अतएव इस योग में इस रसायन के प्रयोग से रक्ताणुओं और रंजक द्रव्य की वृद्धि हो जाने से शरीर के प्रत्येक अंग में स्फूर्ति बढ़ जाती है और अवयव अपने-अपने कार्य करने में भी समर्थ हो जाते हैं। -औ.गु.ध.शा.

शोथारि मण्डूर

मण्डूर भस्म २८ तोला को संभालू, मानकन्द और अदरक-रस की १-१ भावना देकर सूखा लें, फिर अठगुने गोमूत्र में मन्दाग्नि पर पकावें, जब गाढ़ा होने लगे, तब इसमें हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल तथा चव्य का चूर्ण २-२ तोला मिला दें। ठण्डा होने पर १० तोला शहद मिला ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें या वैसे ही पीस कर चूर्ण रूप में ही रखें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १से २ गोली, सुबह-शाम गोमूत्र या पुनर्नवा-रस या दशमूल क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- यकृत प्लीहा या मल-संचय अथवा पाण्डू रोग आदि किसी भी कारण से शरीर सूज गया हो, साथ ही कफ खाँसी ज्वरादिक उपद्रव भी रहते हो तो इसके उपयोग से बहुत शीघ्र फायदा होता है। इसमें मण्डूर भस्म प्रधान है तथा गोमूत्र का क्षार भी सम्मिश्रित है, अत: यह यकृत, प्लीहा की विकृति को नष्ट करता है और शोथ को भी दूर करता है।

शोथारि लौह

सोंठ, मिर्च, पीपल इसका समभाग कपड़छन किया हुआ चूर्ण और जवाखार प्रत्येक १-१ तोला, लौह-भस्म इन सब दवाओं के समान भाग (४ तोला) लेकर, सब को एकत्र मिला, खरल कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २ से ६ रत्ती सुबह-शाम त्रिफला क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- पाण्डु रोग युक्त शोथ-पुराने पाण्डु-रोग में रस-रक्तादि धातु कमजोर होकर अपनी क्रिया करने में असमर्थ हो जाती है तब शरीर में रक्ताणुओं का ह्रास और जल भाग की वृद्धि होती है। रक्तवाही शिराओं में जल प्रवेश कर जाता है, जिससे शिराएँ फूल जाती हैं। शिराओं के फूलने से मांस भी फूल जाता है। इसमें रक्त की कमी के कारण शरीर का वर्ण कुछ सफेदी लिए होता है, सम्पूर्ण शरीर में सूजन फैल जाती है। यह सूजन कफजन्य होने के कारण दबाने में गड्ढा पड़ जाता है, फिर धीरे-धीरे गड्ढा पूरा हो जाता है। यह अवस्था कठिनता से अच्छी होनेवाली होती है। इस अवस्था में शोथारि लौह के उपयोग से आश्चर्यजनक लाभ होते देखा गया है। यह दवा दीपन, पाचन, कफनाशक और रक्तवर्धक भी है। अत: यह दवा पाचक पित्त को जागृत कर अच्छा रस बनाने में सहायक होती है और लौह भस्म कफ को नाश करते हुए शरीर में नवीन रक्त की उत्पत्ति कर, सब धातुओं को पुष्ट करती हुई, जल भाग को सुखाकर शोथ को नष्ट करके, रोगी को सबल बना देती है।

शोथोदरारि लौह

पुनर्नवा, गुर्च, चित्रक, इन्द्रायण की जड़, मानकन्द, सहिजन की छाल, हुल-हुल और आक की जड़ प्रत्येक ३२-३३ तोला लेकर बस को एक द्रोण पानी में पकावें और अष्टमांश शेष रहने

पर छान लें। फिर उसमें लौह भस्म ३२ तोला, घी ३२ तोला, आक का दूध ८ तोला, सेहुण्ड का दूध १६ तोला, शुद्ध गूगल ८ तोला, शुद्ध पारा २ तोला तथा शुद्ध गन्धक ४ तोला की बनी हुई कज्जली मिला कर पुन: पकावें। जब पाक तैयार हो जाय, तो इसमें शुद्ध जमालगोटा, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कंकुष्ठ, चित्रकमूल, जिमीकन्द (सूरण), घण्टाकर्ण, शरपुंखा, पलाश के बीज, क्षीरकंचुकी, तालमूली, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, वायविडंग, निशोथ, दन्तीमूल, हुलहुल, इन्द्रायन की जड़, पुनर्नवा और हड़जोड़ी- इनमें से प्रत्येक का दो-दो तोला चूर्ण मिलाकर खरल करके सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २ से ३ रत्ती सुबह-शाम पुनर्नवा के रस या काढ़े के साथ दें।

गुण और उपयोग- कभी-कभी पेट में पुराने संचित मल के कारण आँतें शिथिल हो, अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती हैं। फिर पेट में वायु भर जाता है तथा आँतें भी सूज जाती और साथ-साथ पेट की नसें भी फूल जाती हैं तथा यकृत-प्लीहा भी बढ़ जाते हैं। रक्त का संचालन ठीक न होने से रक्त दूषित हो मांस और चमड़े को भी दूषित कर देता है। इन कारणों से पेट पर सूजन आ जाती है। ऐसी अवस्था में शोथोदरारि लौह देने से अपूर्व लाभ होता है। इससे मल-संचय दूर हो शोथ रोग जड़मूल से नष्ट होता है, क्योंकि इसमें निशोथ, थूहर का दूध आदि रेचक द्रव्यों का सम्मिश्रण है तथा अभ्रक और लौहभस्म की वजह से धातुओं की पुष्टि होती है और नवीन रक्त का निर्माण होकर जल भाग सूख जाता है। फिर शोथ अपने आप नष्ट हो जाता है। धीरे-धीरे आँते भी सबल हो अपना कार्य करने लग जाती हैं। कुछ दिनों के बाद रोगी स्वस्थ हो जाता है।

सप्तामृत लौह

हर्रे, बहेड़ा, मुलैठी-इनका कपड़छन किया हुआ चूर्ण तथा लौह भस्म सबको १-१ भाग लेकर एकत्र मिला, खरल कर सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- ४-८ रत्ती संध्या के समय अथवा सुबह-शाम १ माशा घी और ३ माशे शहद में मिला कर चाटें और ऊपर से गौ या बकरी का दूध पी लें।

गुण और उपयोग- यह सब प्रकार के नेत्र रोगों की खास दवा है। इसके सेवन से दृष्टि-शक्ति की कमी, आँखों की लाली, आँखों में खाज होना, आँखों के आगे अन्धेरा होना आदि विकार और नेत्र-रोग अच्छे हो जाते हैं। इससे दस्त साफ आता है, अग्नि (जठराग्नि) प्रदीप्त होती है और लौह का प्रधान मिश्रण होने के कारण यह औषध रक्त को भी बढ़ाती है। इसको महात्रिफला घृत अथवा मधु में मिलाकर नियमित रूप से साल भर सेवन करने से नेत्रों की ज्योति बहुत अच्छी बढ़ जाती है, चष्मा लगने की आवश्यकता भी मिट जाती है। कई रोगियों की, जिनकी नेत्र-दृष्टि कमजोर होने से चष्मा लगाना पड़ता था, इसके सेवन से नेत्रों की ज्योति बढ़कर चष्मा हटा देने के कई उदाहरण हमने देखें हैं।

यह प्रयोग केवल नेत्र-रोगों को ही नष्ट नहीं करता, बल्कि दाँत, कान और गले से ऊपर उत्पन्न होने वाले रोगों में भी लाभप्रद है। यह अकाल (असमय) में बाल सफेद होने को रोकता है तथा पुरानी मन्दाग्नि को भी दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

इसके सेवन से शरीर में काम शक्ति की वृद्धि होती, मुख की कान्ति अच्छी हो जाती है तथा बाल अत्यन्त काले हो जाते हैं। यह रसायन वृष्य भी है।

समशर्कर लौह

लौंग, कायफल, कूठ, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रकमूल, पीपलामूल, बासा (अडूस), कटेली, चव्य, काकड़ासिंगी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, हर्रे, कचूर, कंकोसा, नागरमोथा-इनका चूर्ण तथा लौहभस्म, अभ्रकभस्म और जवाखार प्रत्येक १-१ तोला तथा मिश्री

या चीनी सब दवाओं के समान भाग लेकर, एकत्र खरल कर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३-४ रत्ती मधु के साथ सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से वातज, कफज, पित्तज और क्षयजन्य खाँसी, रक्तपित्त और श्वास रोग नष्ट होता है। यह दुर्बल व्यक्तियों के शरीर को पुष्ट कर बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि करता है।

यह दवा सौम्य गुण प्रधान होने के कारण पित्तशामक, रक्तशोधक तथा रक्तवर्द्धक भी हे। खाँसी की किसी भी अवस्था में विशेषकर पित्त के प्रकोप होने पर मुँह से कभी-कभी खून निकलना, ज्वर होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में समशर्कर लौह के उपयोग से अवश्य ही लाभ होता है, क्योंकि यह दवा सौम्य है- इसलिए प्रकुपित पित्त शमन कर कफ का कुछ अंश बढ़ा देती है और श्वास नली को शुद्ध कर बिगड़े हुए कफ को निकाल देती है फिर खाँसी स्वयं बन्द हो जाती है।

सर्वज्वरहर लौह

चित्रकमूल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, खस, देवदारु, चिरायता, पाठा, कुटकी, कटेली, सहिजन के बीज मुलैठी और इन्द्रजौ इनका चूर्ण १-१ तोला तथा लौह भस्म सब के बराबर लें। सबको पानी के साथ खरल कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें।-र.सा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह शाम हरसिंगार की पत्ती का रस और मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह सब तरह के ज्वरों के लिए प्रसिद्ध है। इससे वातज, पित्तज, कफज नये-पुराने ज्वर, सन्निपातज्वर, विषमज्वर, धातुगतज्वर तथा जाड़ा देकर आनेवाले ज्वर को आराम होता हैं। इसमें लौह का प्रधान मिश्रण होने के कारण यह मन्दाग्नि, अतिसार, प्लीहा, यकृत, गुल्म, आमवात, अजीर्ण, ग्रहणी, पाण्डु, शोथ, दुर्बलता आदि रोगों के लिए बहुत फायदेमन्द है। जीर्ण ज्वर में सुदर्शन फाण्ट के साथ इसका प्रयोग करने से धातुगत जीर्णज्वर तक इससे ठीक हो जाते हैं।

सर्वज्वरहर लौह (बृहत्)

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सोना भस्म, चाँदी भस्म और शुद्ध हरताल- प्रत्येक १-१ तोला तथा कान्तलौह भस्म ४ तोला, सबको एकत्र कर करेले के पत्ते का रस, दशमूल, पित्तपापड़ा और त्रिफला इनका काढ़ा, गिलोय, नागरपान, काकमाची, सम्भालू, पुनर्नवा और अदरक इने प्रत्येक के रस की ७-७ भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियँ बनाकर, छाया में सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम पुराना गुड़ और पीपल के महीन चूर्ण के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- ज्वर की हर हालत में इसका उपयोग किया जाता है। यह दवा अपनी अद्भुत शक्ति के कारण बहुत प्रसिद्ध है। किसी भी प्रकार का ज्वर क्यों न हो, ज्वर में शरीर का रक्त बहुत शीघ्र सुखने लगता है। रक्त की कमी के कारण ही ज्वर की शक्ति बढ़ती है। जब तक रक्त बलवान बना रहता है, वह अपनी प्रतिरोधक शक्ति द्वारा रोगों का आक्रमण नहीं होने देता। ज्वर ही एक ऐसा रोग है, जो धीरे-धीरे प्राकृतिक शक्ति का ह्रास कर अपनी शक्ति बढ़ा

लेता है और रोगी का शरीर जर्जर बना देता है। अतएव इसके चिकित्साकाल में रक्त को सबल बनाने का पूरा ध्यान रखा जाता है। रक्त सबल होने पर अन्य धातु भी बलवान हो जाती है। फिर रोग कमजोर हो अपने आप नष्ट हो जाते हैं। यही चिकित्सा का सार है। इस कार्य को समुचित रूप से निभाने के लिए बृहत् सर्वज्वरहर लौह का उपयोग किया जाता है। इसका असर सर्वप्रथम रक्त पर पड़ता है, और यह रक्त को सबल बना, रोग को पराजित करता है, फिर नवीन रक्त की उत्पत्ति कर शरीर को दोषादि से रहित तथा धातुओं को बलवान बना देता है। मैंने कई रोगियों पर इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

यह रसायन आठों प्रकार के ज्वरों में अत्युत्तम लाभ करता है। जीर्णज्वर, सन्ततादि ज्वर, क्षय से उत्पन्न ज्वर, धातुगत ज्वर, काम तथा शोक जन्य ज्वर, भूतावेश जन्य अर्थात् अभिघात और अभिचार जन्य ज्वर, अभिन्यास ज्वर, शीतपूर्वक अथवा दाहपूर्वक आने वाला ज्वर, विषमज्वर, एकाहिक, द्वयाहिक, तृतीयक, चातुर्थिक आदि प्रलेपकज्वर, पाण्डु, कामला, हलीमक, अग्निमान्द्य, खाँसी आदि अनेक विकारों को नष्ट करने में इसके प्रयोग से बहुत श्रेष्ठ लाभ होता हैं। रस-रक्तादि धातुओं की अभिवृद्धि कर शरीर को बल, वर्ण तथा कान्तियुक्त बना देता है।

❖❖❖

गुग्गुलु-प्रकरण

आयुर्वेद में गुग्गुलु का बहुत बड़ा महत्व है। समस्त वायु रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है, लेकिन इससे पूर्ण लाभ तभी हो सकता है जब कि यह शास्त्रोक्त विधि से शोधन कर खुब कुटाई के बाद तैयार किया गया हो।

अनेक बार गुग्गुलु का पाक किया जाता है और अनेक बार दवाओं में मिलाकर घी आदि के साथ कूटा जाता है। गुग्गुलु का पाक भी गुड़ आदि के समान ही किया जाता है, परन्तु गुड़ आदि का पाक सिद्ध होने पर पतला रहता है और गुग्गुलु का पाक घन (गाढ़ा) रहता है। यदि गुग्गुलु पानी में डालने से नीचे बैठ जाय और इधर उधर न फैले तो पाक सिद्ध समझना चाहिए।

यदि पाक न करना हो, तो अच्छे साफ गुग्गुलु को दवाइयों के चूर्ण में मिलाकर इमाम दस्ते में डाल, खूब कूटना चाहिए। कूटते समय बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा घी या एरण्ड तैल डालते रहना चाहिए। जितना भी अधिक कूटा जायेगा, उतना ही अच्छा गुग्गुलु बनेगा। प्राचीन वैद्यों का कथन है कि यदि गुग्गुलु में एक लाख बार मूसली की चोट पड़ जाये, तो वह सर्व रोगनाशक बना जाता है।

इसके चमत्कारिक गुण के प्रभाव से पाश्चात्य डॉक्टर भी अछूते नहीं रहें। इन लोगों ने भी इसका काफी अध्ययन किया है और वे लोग इसके गुण की उपयोगिता में कहाँ तक सफल हुए हैं, उसका कुछ अंश मात्र नीचे दे रहा हूँ। वे लिखते हैं-

गुग्गुलु के गुण कोपेबा और कबाबचीनी से मिलते-जुलते हैं। यह फटे हुए चमड़ों और श्लैष्मिक झिल्लियों पर अपना कृमिनाशक प्रभाव दिखलाता है। अत: योग में लिए जाने पर यह अग्निदीपक, शान्तिदायक और अफरा दूर करने वाला तथा पाचनशक्ति को बलवान बनाने वाला है। इसके सेवन से पेट में कुछ गरमी मालूम होने लगती है।

दूसरे-सभी 'ओलियोरेलजिन्स' की तरह यह भी रक्त के श्वेताणुओं को और 'फेगोसायटोसिस' नामक कोषाणुओं को बढ़ाता है। गुदा और श्लैष्मिक झिल्लियों को यह उत्तेजित करता है और उनकी ग्रन्थियों के कृमियों को नष्ट करता है। यह पसीना लानेवाला, मूत्रल, उत्तेजक और कफ निस्सारक भी है।

यह गर्भाशय को उत्तेजित करता और मासिक धर्म को नियमित करता है। बहुत समय तक इसका सेवन करने से भी किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

कभी-कभी इससे गुर्दे में जलन पैदा हो जाती है और शरीर पर कोपेबा की तरह कुछ फुंसियाँ हो जाती हैं, किन्तु इसका सेवन बन्द करते ही ये फुन्सियाँ मिट जाती है।

इसका लोशन दुष्टव्रणों को भरने तथा दांतों की सड़न, मसूड़ों की सूजन, पायोरिया, तालुमूलग्रन्थि का पुराना प्रदाह, कण्ठनली की जलन और गले में व्रणों को मिटाने के काम में लिया जाता है। यह लोशन इसके एक ड्राम टिंक्चर को १० औंस पानी में देने से तैयार होता है।

पुराने अग्निमान्द्य रोग में यह अग्निदीपक वस्तु की तरह काम में लाया जाता हे। यह उदर-यन्त्रों के ढीलेपन तथा पेशी की दुर्बलता को भी मिटाता है। पुराना नजला, अतिसार, आँतों की सूजन, आँतों के व्रण और बड़ी आँतों के पुरातन-प्रदाह में भी लाभदायक है।

फेफड़ों के क्षय में यह एक उत्तेजक और कृमिनाशक औषध के तौर पर दिया जाता है। इसके सेवन से ज्वर कम होता है, भूख बढ़ती है, कृमि नष्ट हो जाते हैं और जीवन शक्ति को बल

मिलता है। गुग्गुलु को कुछ समय तक नियमित सेवन करने से रासायनिक गुणों की भी प्राप्ति होती है, क्योंकि यह रसायन है।

जलोदर और पाण्डु रोग में तथा फुफ्फुस के व्रण-प्रदाह में भी यह बहुत उपयोगी है। स्नायविक दुर्बलता और साधारण कमजोरी को दूर करके यह काम-शक्ति को भी बढ़ाता है।

ज्वर-नली के प्रदाह, वायु नलियों के प्रदाह, कुक्कुर खाँसी और निमोनिया में प्रति 4-6 घण्टे के बाद इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

यह कुष्ठ रोगियों की भी हालत बहुत हद तक सुधारता है और इस व्याधि से उत्पन्न हुई अन्य व्याधियों को भी मिटाता है। मूत्राशय की जलन, सूजाक और पेंडू की सूजन में तीव्र लक्षणों के दूर हो जाने पर इसे देने से अच्छा लाभ होता है। गर्भाशयावरण की पूरानी सूजन में तथा नष्टार्तव में भी यह लाभदायक है। यह श्वेतप्रदर और अत्यधिक रजःस्राव में भी फायदा करता है। वात-विकार, आमवात, वातरक्त, प्रमेह-व्रण, अपची, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, कुष्ठ, कृमि, अन्य विकार श्लैष्मिककला का प्रदाह, स्नायु विकार आदि रोगों में गुग्गुलु का प्रयोग विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है।

अमृतादि गुग्गुलु

गिलोय १ सेर, गुग्गुलु आधा सेर, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, प्रत्येक आधा सेर, सब को जौ कूट कर १६ सेर पानी में पकावें। ४ सेर पानी शेष रहने पर छान लें और जब तक गाढ़ा न हो जाय पकाते रहें। फिर दन्तीमूल, त्रिकटु, वायविडंग, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी प्रत्येक २-२ तोला और निशोथ १ तोला लेकर सबका चूर्ण उपरोक्त गरम-गरम पाक में पकावें। ठण्डा होने पर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

नोट- त्रिकटु से सोंठ, मिर्च, पीपल और त्रिफला से हर्रे, बहेड़ा, आमला प्रत्येक द्रव्य को पृथक्-पृथक् २-२ तोला लेना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम गुर्च के क्वाथ के साथ अथवा गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से वातरक्त, कोढ़, अर्श, मन्दाग्नि, कुष्ठ, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाड़ीव्रण, आढ्यवात, सूजन आदि रोग नष्ट होते हैं। यह रक्तशोधक वात तथा बद्धकोष्ठ नाशक है।

वातरक्त में- इस गुग्गुलु का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। इस रोग में वात ही प्रधान है अर्थात् प्रकुपित वात रक्त को दूषित कर, इस रोग की उत्पत्ति करता है। इस रोग का असर सर्वप्रथम हाथ-पैर पर होता है। सम्पूर्ण शरीर में बहुत तेज दर्द होना, शरीर में सूजन, त्वचा रूक्ष हो जाना, नीली-नीली नसें शरीर पर दिखाई देना, रोग का कभी घटना और कभी बढ़ जाना, अंगुलियों की जड़ों में संकोच (सिकुड़न) और उसमें दर्द अधिक होना, शरीर में कम्प ओर चमड़े में स्पर्श ज्ञान का अभाव अर्थात् शून्यता आ जाना, ये वातप्रधान वातरक्त के लक्षण हैं। इसमें अमृतादि गुग्गुलु बहुत शीघ्र लाभ पहुँचाता है, क्योंकि इस दवा का असर सर्वप्रथम वातवाहिनी शिरा और रक्त पर होता है। अतः यह बहुत शीघ्र लाभ करता है। इसी तरह कुष्ठ, दुष्ट, व्रण, रक्त विकार आदि में भी इसका प्रयोग करने से काफी लाभ होता है।

वक्तव्य- ग्रन्थ में मूल पाठानुसार इसकी मात्रा १ कर्ष (एक तोला) है, किन्तु आजकल के अल्पसत्त्व प्राणियों को इतनी मात्रा सह्य नहीं होती। अतः २-३ रत्ती की गोली की मात्रा आयु, अग्नि और बलानुसार देना उचित है।

आभा गुग्गुलु

बबूल की छाल, सोंठ, पीपल, मिर्च, आँवला, हर्रे, बहेड़ा सब समान भाग लें, और शुद्ध गुग्गुलु सबके समान भाग लेकर पहले काष्ठौषधियों को कूट-कपड़छन चूर्ण बना, गुग्गुलु के साथ मिलाकर घी के सहारे एकत्र कूटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बनाकर, छाया मे सुखा कर सुरक्षित रख लें। -चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली दिन भर में २-३ बार गर्म जल या दूध से दें।

गुण और उपयोग- कहीं फिसल कर गिर पड़ने, किसी पेड़ आदि से नीचे गिर पड़ता अथवा डण्डा इतयादि की चोट लग जाने से हड्डियाँ टूट गयी हो, मोच आ गई हो, अथवा छाती में चोट लगकर दूषित खून आमाशय में जमा हो गया हो, तो इन उपद्रवों को दूर करने के लिए आभा गुग्गुलु का उपयोग किया जाता है। यह भग्न सन्धानकारक एवं पीड़ानाशक उत्तम योग है।

एकविंशति गुग्गुलु

चित्रक, त्रिफला, त्रिकटु, काला जीरा, कलौंजी, बच, सेन्धा नमक, अतीस, कूठ(पुष्करमूल), चव्य, इलायची, यवक्षार, वायविडंग, अजमोदा, नागरमोथा, देवदारु प्रत्येक समान भाग, गुग्गुलु सबके बराबर लेकर प्रथम काष्ठौषधियों का चूर्ण कर गुग्गुलु के साथ कूट, घी मिलाकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली, सुबह-शाम नीम की छाल के क्वाथ के साथ या गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से सब प्रकार के कुष्ठ, कृमि, दाद, घाव, संग्रहणी, चर्म विकार, बवासीर, मुखरोग आदि व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

इसका उपयोग- त्वचा और रक्त के विकारों में विशेषतया किया जाता है। प्रकुपित वात के कारण जो रक्त दूषित होता है, उस रक्त का रंग कुछ कालिमायुक्त हो जाता है और त्वचा भी रुक्ष हो जाती है। कहीं-कहीं खुजली भी हो जाती है। फिर चर्म रोग जैसे दाद, घाव (फोड़े-फुन्सियाँ) खुजली आदि उपद्रव हो जाते हैं, और रक्त विकृत होकर कुष्ठादि उत्पन्न कर देता है। ऐसी दशा में ''एकविंशति गुग्गुलु'' के उपयोग से बहुत फायदा होता है। यह प्रकुपित वायु को तो शान्त करता ही है, साथ ही दूषित रक्त की विकृति को भी दूर कर, शुद्ध रक्त बनाता है। अतएव उपरोक्त रोगी में यह गुग्गुलु बहुत लाभ करता है।

कांचनार गुग्गुलु

कांचनार की छाल ४० तोला, त्रिफला २४ तोला, त्रिकटु १२ तोला, वरुण की छाल ४ तोला, इलायची, दालचीनी, तेजपात-प्रत्येक १-१ तोला-सबको कूट कपड़छन चूर्ण बनावें। सब चूर्ण के बराबर शुद्ध गुग्गुलु मिला कर, कूट कर, घी या एरण्ड तैल के सहारे ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम कांचनार की छाल, वरना (वरुण) की छाल, गोरखमुण्डी और खैरसार की छाल या लकड़ी के बुरादे का क्वाथ बनाकर इसके साथ दें। यदि विशेष लाभ नहीं हो तो इसके साथ सुवर्ण भस्म अष्टमांश रत्ती और प्रवाल पंचामृत ३ रत्ती मिलाकर दें।

नोट- गुग्गुलु, गन्धक और रसौंत तीनों समभाग लेकर जल में पीस करके गण्डमाला पर लेप करने से भी बहुत लाभ होता है।

गुण और उपयोग- इस गुग्गुलु के सेवन से गलगण्ड, गण्डमाला (गले में कण्ठवेल होना), अपची, ग्रन्थि, अर्बुद (रसौली), गले में और नाक के भीतर गांठें बढ़ना, व्रण, गुल्म, कुष्ठ व भगन्दर आदि रोगों में अच्छा फायदा होता है।

कांचनार गुग्गुलु का उपयोग विशेषकर ग्रन्थि (गाँठ) नाश करने के लिए ही किया जाता है। ये गांठें वात और कफजन्य हुआ करती हैं। गलगण्ड और गण्डमाला की अपक्वावस्था अर्थात् जब इस रोग का प्रादुर्भाव ज्ञात हो, तभी से इसका उपयोग करना प्रारम्भ कर देने से २ महीने में शर्तिया लाभ होता है, ऐसा मेरा अनुभव है। पुराने विकारों में अधिक समय तक दें। इस दवा के सेवन के साथ ही यदि बांझ ककोड़े की जड़ का लेप कांजी में मिलाकर गले की गांठ पर किया जाय, तो अवश्य ही उक्त समय तक गांठ अच्छी हो जायेगी।

कैशोर गुग्गुलु

त्रिफला ३ प्रस्थ (२ सेर, ६ छटांक, २ तोला) और गिलोय १ प्रस्थ (६४ तोला) को कूट कर लोहे की कड़ाही में १९ सेर, ३ छटांक, १ तोला जल मिला कर काढ़ा बनाएँ, जब आधा जल शेष रहे तब उतार कर छान लें। उस काढ़े में ६४ तोला उत्तम गूगल डाल कर मन्द आग पर पकावें। जब गूगल पतला होकर काढ़े में मिल जाय, तब छन कर उसको फिर चूल्हें पर चढ़ा कर औंटावे और कलछुल से चलाते रहें, जिससे जलने या कड़ाही में गूगल लगने का भय न रहे। जब गूगल गाढ़ा अर्थात् गुड़पाक के समान हो जाय तब कड़ाही से निकाल कर उसमें त्रिफला ८ तोला, गिलोय ४ तोला, सोंठ,कालीमिर्च, पीपल और वायविडंग प्रत्येक २-२ तोला, जमालगोटे की जड़ और निशोथ १-१ तोला इन सब दवाओं का महीन चूर्ण करके ऊपर वाले गुग्गुलु में मिला कर घी या एरण्ड तैल से कूट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। -शा.सं.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम मंजिष्ठादि क्वाथ या गर्म जल अथवा दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से एकदोषज, द्विदोषज और पुराना शुष्क अथवा स्त्रावयुक्त घुटनों तक फैला हुआ वातरक्त, घाव, खाँसी, कोढ़, गुल्म, शोथ, उदररोग, पाण्डु, प्रमेह, अग्निमांद्य, विबन्ध, प्रमेह पीड़िका आदि का नाश होता है। इसके निरन्तर अभ्यास से वायु और रक्त-विकार सम्बन्धी सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह गुग्गुलु हर समय सेवन किया जा सकता है एवं इसके सेवन में किसी प्रकार का विशेष पथ्य परहेज भी नहीं करना पड़ता है। इसका उपयोग विशेषकर वातरक्त, कुष्ठ और रक्त विकार में किया जाता है।

गोक्षुरादि गुग्गुलु

११२ तोले गोखरु के पंचांग को कूट कर छः गुने जल में पकावें। आधा जल शेष रहने पर छान लें। फिर इसमें २८ तोला शुद्ध गुग्गुलु मिला कर गुड़पाक के समान गाढ़ा कर, उसमें निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्य मिलावें। सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा प्रत्येक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ४-४ तोला मिला, घी या एरण्ड तैल के साथ कूट कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना कर रख लें। -शा.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम गोखरु क्वाथ या प्रमेहहर क्वाथ के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- इस गुग्गुलु के सेवन से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र (रुक-रुक कर पेशाब होना), मूत्राघात, अश्मरी (पथरी), प्रदर रोग, वातरक्त, शुक्रदोष और मूत्राशयगत समस्त विकारों में

लाभ होता है। इस दवा का असर मूत्राशय और मूत्रनली तथा वीर्यवाहिनी शिराओं पर अधिक होता है।

मूत्रकृच्छ्र- यह रोग कई कारणों से होता है यथा सूजाक, पथरी, कृमि, मूत्रग्रन्थि का प्रदाह, जरायु की विकृति, वृक्क (गुर्दे) के विकार, आंव आदि से यह रोग उत्पन्न होता है। वृक्क (गुर्दे) के विकार से जब मूत्रकृच्छ्र होता है, तब वमन और दस्त की हाजत होती है। गुर्दे से वेदना (दर्द) उठकर बस्ति (पेडू) या जननेन्द्रिय तक जाती है। प्रधानतया मूत्रकृच्छ्र में बारम्बार पेशाब करने की इच्छा होती है और बड़े कष्ट के साथ बूंद-बूंद पेशाब या नहीं भी होती है। पेशाब के समय भयानक दर्द होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी अवस्था में गोक्षुरादि गुग्गुलु के उपयोग से बहुत-सा लाभ होता है, क्योंकि यह मूत्राशय और मूत्रनली के विकारों को शमन करता है जिससे पेशाब साफ और खुल कर आने लगता है।

मूत्राघात (मूत्रस्तम्भ)- यह भी बहुत खतरनाक रोग है। इस रोग में पेशाब की थैली में पेशाब भरा रहता है, किन्तु पेशाब उतरता नहीं है। नाभि के नीचे तलपेट (पेडू) फूल जाता है। पेशाब करने की इच्छा होती है, किन्तु पेशाब नहीं होता। फिर बेचैनी, तन्द्रा, मोह, बेहोशी आदि लक्षण होते हें। रोगी दर्द के मारे चिल्लाता रहता है, पेडू (बस्ति प्रदेश) फूल कर गाँठ-सी हो जाती है और वह दबाने में कठोर मालूम पड़ता और रोगी को उससे विशेष कष्ट होता है। इसमें रबर की सलाई जननेन्द्रिय में डाल कर पेशाब कराना चाहिए। साथ ही गोक्षुरादि गुग्गुलु का भी सेवन गोक्षुरादि क्वाथ के साथ यवक्षार और मिश्री मिलाकर करना चाहिए।

शुक्र-प्रमेह या शुक्र की क्षीणता में यह बहुत लाभ करता है। गो-दुग्ध के साथ कुछ दिनों तक लगातार इसका सेवन करने से शरीर में शुक्र की वृद्धि हों शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। यह वृष्य और रसायन भी है।

त्रयोदशांग गुग्गुलु

बबूल की फली या छाल, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावर, गोखरु, काला, निशोथ, रास्ना, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ का चूर्ण समान भाग लें और सब दवा के समान भाग शुद्ध गुग्गुलु और गुग्गुलु से आधा घी लेकर गुग्गुलु और अन्य द्रव्यों के चूर्ण को एकत्र मिलाकर थोड़ा-थोड़ा घी डालकर कूटें। जब गोली बनाने योग्य हो जाये, तब ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, छाया में सुखा कर रख लें। -भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम गर्म जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से वात-शूल, गठिया, पक्षाघात, लकवा, गृध्रसी वात, अस्थि, सन्धि, मज्जागत तथा स्नायु एवं कोष्ठस्थित वात रोग नष्ट होते हैं। इसके नियमित सेवन से कभी-कभी लूले-लंगड़े और पंगु तक अच्छे हो जाते हें। वातनाशक औषधियों के अनुपान के साथ देने से वातव्याधि नष्ट होती है।

वक्तव्य- अनुभव से देखा गया है कि गुग्गुलु से आधा घी मिलाने से गोलियाँ नहीं बन पाती हैं। अत: गुग्गुलु से चतुर्थांश घी मिलाकर गोलियाँ बनाना एवं अनुपान में गरम दूध में घी मिलाकर सेवन करना उचित एवं सुविधाजनक है।

त्रिफला गुग्गुलु

त्रिफला चूर्ण १२ तोला, पीपल का चूर्ण ४ तोला, शुद्ध गुग्गुलु २० तोला, सबको एकत्र कूट कर घी के साथ ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें। -शा.सं.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम त्रिफला क्वाथ या गो-मूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से सब प्रकार के वातजशूल, भगन्दर, सूजन, बवासीर आदि रोग बहुत शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। भगन्दर और बवासीर में कब्जियत हो जाने से तकलीफ अधिक होती है, किन्तु त्रिफला गुग्गुलु के सेवन से कब्ज नहीं होने पाता, बल्कि पुराना कब्ज भी दूर हो जाता है। अतएव, यह विशेष लाभदायक है।

यह दवा थोड़ी रेचक होते हुए वायुशामक और रसायन है। बवासीर या भगन्दर ये दोनों रोग ऐसे कष्टदायक है कि रोगी बेचैन हो जाता है। यदि बादी बवासीर हुआ हो तो मस्से फूल जाते हैं। उनमें दर्द होने लगता पेट में वायु भर जाती है, दस्त कब्ज हो जाता है, थोड़ा-सा दस्त होता भी है, तो बहुत कठिनता से। यदि खूनी बवासीर हुआ तो इसमें से रक्त निकलना प्रारम्भ हो जाता है। इसी तरह भगन्दर में दस्त-कब्ज होने से यह भी बढ़ जाता हे, जिससे अत्याधिक दर्द तथा पूय-स्राव होने लगता है। त्रिफला गुग्गुलु का इन रोगों में उपयोग करने से बहुत शीघ्र एवं उत्तम लाभ होता है।

त्रिफला गुग्गुलु (स्वनिर्मित)

हरड़, बहेड़ा और आँवला-प्रत्येक का चूर्ण १-१ भाग, शुद्ध गन्धक ३ भाग, शुद्ध गूगल ३ भाग लेकर गन्धक को सूक्ष्म मर्दन करके सब द्रव्य एकत्र मिला लें और एरण्ड तैल के साथ अच्छी तरह कुटाई करा कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुरक्षित रख लें। -आनुभविक योग

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम त्रिफला क्वाथ या गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस औषध का उचित पथ्य पालनपूर्वक उपयोग करने से समस्त प्रकार के वातजशूल, भगन्दर, शोथ, बवासीर (अर्श) और रक्त विकति नष्ट होते हैं। यह ग्रन्थोक्त त्रिफला गुग्गुलु से विशेष लाभदायक है। यह उत्तम रेचक, दीपन, पाचन तथा वायु-नाशक और रक्तशोधक है। वात-रक्त और कुष्ठ रोग को भी नष्ट करता है।

पंचतिक्त घृत गुग्गुलु

नीम की छाल, गिलोय, बासा, पटोल-पत्र, कटेरी छोटी-प्रत्येक ४०-४० तोला लेकर जौकुट करके २५।। सेर ८ तोला जल में क्वाथ करें, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छान लें। पश्चात् गो-घृत १२८ तोला, शुद्ध गुग्गुलु २० तोला तथा पाठा, वायविडंग, देवदारु, गजपीपल, सज्जीक्षार, यवक्षार, सोंठ, हल्दी, सौंफ, चव्य, कूठ, मालकाँगनी, काली मिर्च, इन्द्रजौ, जीरा, चित्रक मूल-छाल, कुटकी, शुद्ध भिलावा, बच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अजवायन-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर चूर्ण करके इनका कल्क मिलाकर, घृतपाक-विधि से पाक करें, घृतपाक सिद्ध हो जाने पर छानकर सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला, प्रात: आधा पाव दूध से दें।

गुण और उपयोग- इस औषध के उपयोग से विष दोष, वात रोग, कुष्ठ, नाड़ीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, उर्ध्वजंतुगत रोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, कास, शोष, हृदय रोग, पाण्डु रोग, गल रोग, विद्रधि और वातरक्त को नष्ट करता है, इसके अतिरिक्त अस्थि-क्षय, उपदंश आदि विकारों से उत्पन्न होने वाले नवीन या पुरातन घाव, फोड़ा-फुन्सी, चकत्ता, अपरस आदि रोगों में इससे अपूर्व लाभ होता है। यह रक्तशोधक और रक्तवर्द्धक भी है।

पुनर्नवादि गुग्गुलु

पुनर्नवा-मूल ४०० तोला, एरण्ड-मूल ४०० तोला, सोंठ ६४ तोला लेकर इनका जौकुट चूर्ण करके २५ सेर १ छटांक ३ तोला जल में क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। फिर इसमें शुद्ध गुग्गुलु ३२ तोला, शुद्ध एरण्ड तैल १६ तोला मिलाकर ताँबे की कलईदार या लोहे की कड़ाही में पाक करें। आसन्न पाक होने पर इसमें निशोथ २० तोला, दन्तीमूल चूर्ण ४ तोला, गिलोय ८ तोला, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक-मूल, छाल, सेन्धा नमक, शुद्ध भिलावा, वायविडंग-प्रत्येक २-२ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, पुनर्नवा-मूल ४ तोला लेकर इनका सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करके मिला कर थोड़ा-थोड़ा एरण्ड तैल देकर अच्छी तरह कुटाई कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखा कर रखें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-२ गोली, सुबह-शाम गरम जल या पुनर्नवादि क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसका विधिवत्, पथ्य पालनपूर्वक प्रयोग करने से कठिन-से-कठिन वात रक्त रोग नष्ट होता है और सभी प्रकार के वृद्धि रोग, गृध्रसी, जंघा, उरुत्रिक और बस्ति प्रदेश में होने वाले शूल, भयंकर आमवात, शोथ, जलोदर आदि रोगों को नष्ट करता है।

पञ्चामृत लौह गुग्गुलु

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, रौप्य भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक ४-४ तोला, लौह भस्म ८ तोला, शुद्ध गुग्गुलु २८ तोला लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करें, पीछे गुग्गुलु को लोहे की खरल में मुसली से थोड़े कड़वे तैल की छींटे देकर कुटें। जब गुग्गुलु नरम हो जाय तब उसमें कज्जली तथा अन्य भस्में मिलाकर ६ घण्टा मर्दन कर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, रख लें। -भै.र.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली, सुबह-शाम दूध से अथवा चोपचीनी, असगन्ध, एरण्डमूल, उशबा, सोंठ, और कडुवें सुरंजान के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- गृध्रसी, अपबाहुक, कमर और घुटने का दर्द तथा स्नायुओं में होने वाले वात विकार में यह अच्छा काम करता है। स्नायु-दौर्बल्य, मस्तिष्क की कमजोरी और उसके कारण होने वाला सिर-दर्द, अनिद्रा, मन्दाग्नि, पाण्डु रोग, उदरवात आदि विकारों में बहुत अच्छा लाभ होता है। रस-रक्तादि धातुओं की शुद्धि होकर शरीर को बल-वर्ण और कान्तियुक्त बनाता है।

महायोगराज गुग्गुलु

सोंठ, छोटी पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रकमूल की छाल, घी में सेंकी हुई हींग, अजवायन, पीली सरसों, जीरा दोनों रेणुका, इन्द्रजव, पाठा, वायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगीमूल, मूर्वा और वच प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण ३-३ माशे, हर्रे, बहेड़ा, आँवला समभाग तीनों का कपड़छन चूर्ण १० तोला, गिलोय और दशमूल के क्वाथ में शुद्ध किया हुआ गुग्गुलु १५ तोला, वंग भस्म, रौप्य भस्म, नाग भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, मण्डूर भस्म और रससिन्दूर-प्रत्येक ४-४ तोला लें। प्रथम काष्ठौषधियों का चूर्ण कर लें, पश्चात् रससिंदूर को खरल में अच्छी तरह घोंट कर अन्य भस्मों को तथा काष्ठौषधियों के चूर्ण को मिला, घोंटकर, शुद्ध गुग्गुलु में मिला, घी या एरण्ड तैल के साथ कूट कर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें। यह महायोगराज गुग्गुलु है। (यदि भस्म न मिले, तो बिना भस्म के भी तैयार कर सकते हैं, परन्तु भस्म वाला विशेष गुणदायक होता हैं)अन्य सब दवाओं को एकत्र मिला चूर्ण कर शुद्ध गुग्गुलु में मिलाकर एरण्ड के तेल के साथ इमामदस्ते में कूटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बनाकर, छाया में सुखाकर, रख लें। बिना भस्म मिलाये बनाए हुए को योगराज गुग्गुलु कहते हैं। -शा.सं.

विशेष नोट- महायोगराज गुग्गुलु के योग में स्वर्ण भस्म मिलाकर बनाने से औषधि विशेष गुणकारी होगी व उसे महायोगराज गुग्गुलु (स्वर्णयुक्त) के नाम से जाना जाता है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम निम्नलिखित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- समस्त वातविकार में रास्नादि क्वाथ से, वातरक्त में गिलोय के क्वाथ से, मेदोवृद्धि में शहद से, पाण्डुरोग में गोमूत्र से कुष्ठरोग में नीम की छाल के क्वाथ से, शोथ और शूल में पीपल के क्वाथ से, नेत्र रोग में त्रिफला-क्वाथ से, उदर रोगों में पुनर्नवा के क्वाथ से देना चाहिए।

वात रोगों की शान्ति के लिए- रास्ना, गिलोय, एरण्डमूल, दशमूल, प्रसारणी और अजवायन के क्वाथ में सेवन करना चाहिए।

पित्त रोगों की शान्ति के लिये- जीवनीयगण की औषधियों में से किसी एक के क्वाथ के साथ अथवा वासा, लाल-चन्दन, नेत्रवाला, मुनक्का, कुटकी, खजूर, फालसा, जीवक और ऋषभक के क्वाथ के साथ दें।

कफ रोगों की शान्ति के लिये-त्रिकुटा, गोमूत्र, नीम की छाल, पोहकरमूल, गिलोय, अजवायन, और पीपलामूल के क्वाथ के साथ सेवन करें।

व्रण, नासूर, ग्रन्थि, गण्डमाला, अर्बुद, प्रमेह में- त्रिफला-क्वाथ के साथ दें।

खुजली पीड़िका के लिये-दारुहल्दी और पटोलपत्र क्वाथ के साथ दें।

जलोदर और किलास कुष्ठ के लिये-हर्रे, पुनर्नवा, दारुहल्दी, गोमूत्र और गिलोय के क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह त्रिदोषघ्न रसायन सभी प्रकार के वातव्याधि, आमवात, अपस्मार, पक्षवात, सन्धिवात, वातरक्त, उदावर्त, मेदोवृद्धि, हृदय का जकड़ना, मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी, पुरुषों के वीर्यदोष एवं स्त्रियों के रजोदोष और शोथ, कामला, कुठ, नेत्ररोग आदि के लिए अत्यन्त लाभदायक है। असाध्य वात रोगों में भी इसका सफल प्रयोग होता है।

यह रसायन दीपन, पाचन, आमदोषनाशक, वातघ्न और धातु-परिपोषक है। इसका उपयोग प्रधानतया वात-विकारों में बहुत होता है। नये अथवा पुराने किसी भी प्रकार के आमवात रोग में इसका उपयोग बहुत सफल होता है।

वातरक्त-पाचकपित्त की कमजोरी के कारण रस या परिपाक अच्छा न होकर आम की उत्पत्ति हो, आम का संचय होने लगता है। आम संचित होने से वात प्रकुपित हो, रक्त को दूषित कर देता है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पेट फूलना, पेट में मीठा दर्द होना, कभी-कभी आँतों में दर्द होना, मूत्रोत्पत्ति कम होना, दस्त कब्ज, कभी पतला दस्त भी हो जाना, कमजोरी आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग का प्रारम्भ हाथ और पैरों से होता है। हाथ-पैरों की अँगुलियाँ मोटी तथा त्वचा रूक्ष और खुरदरी हो जाती हैं। इनमें दर्द, शून्यता, कहीं-कहीं काले चट्टे, ठण्डी हवा या पानी अच्छा न लगना आदि लक्षण इस रोग की प्रौढ़ावस्था में उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में, महायोगराज गुग्गुलु का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है। इससे पाचक पित्त सबल होकर, आम को पचाता है और प्रकुपित वात को शान्त कर रक्त को भी शुद्ध करता है।

नष्टार्तव- स्त्रियों का गर्भस्थान जब वायु-कफ और चर्बी से अत्यधिक व्याप्त हो जाता है, तब उनको मासिक धर्म होना बन्द हो जाता है और इसलिए सन्तान होना भी रुक जाता है। ऐसे समय में स्त्री को दो-एक लंघन करा, लगातार एक-डेढ़ महीन तक महायोगराज गुग्गुलु का

सेवन करना चाहिए। इससे गर्भाशय का मुँह खुल जाता है और मासिक धर्म भी ठीक से होने लगता है, तथा गर्भाशय गर्भधारण करने योग्य हो जाता है। फिर सन्तान भी होने लगती है।

स्नायुशूल- शरीर के प्रत्येक अंग से स्नायुशूल होता हो और उसमें दूसरी औषधियाँ निष्फल हो गई हो तो महायोगराज गुग्गुलु का सेवन अवश्य करावें। यदि यह शूल सूजाक के कारण उत्पन्न हुआ हो, तो मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ महायोगराज गुग्गुलु का सेवन करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

विशेष गुणधर्म- उन्माद, अपस्मार तथा अपतन्त्रक, हिस्टीरिया आदि विकारों में मांस्यादि क्वाथ के साथ इस औषधि के उपयोग से बहुत श्रेष्ठ उपकार होता है। मस्तिष्क की निर्बलता के कारण स्मरणशक्ति (याददाश्त्) क्षीण हो गई हो, किसी भी बात को थोड़ा सा भी सोचने पर सिर में दर्द हो जाता हो, मानसिक अस्थिरता के कारण चित्त में चंचलता, घबराहट आदि होते हों, तो महायोगराज गुग्गुलु को ब्राह्मी घृत में मिला कर गरम दूध के साथ सेवन करने से मस्तिष्क की शक्ति बढ़ कर सभी विकार शान्त हो जाते हैं। कफ एवं वात प्रकोपजन्य शिरःशूल रोग में पथ्यादि क्वाथ में पुराना गुड़ आधा तोला मिलाकर उसके साथ देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। शुक्राशय अथवा धातुक्षीणता रोग में शतावर्यादि चूर्ण और शुद्ध शिलाजीत के साथ मिला धारोष्ण दूध के साथ देने से बहुत लाभ करता है। शरीर में रक्त की कमी के कारण रक्तवाहिनियों में वायु प्रवेश करके एवं वातवाहिनियों में विक्षोभ उत्पन्न होकर हाथ-पैरों में ऐंठन, बांइटे, कम्प, आक्षेपक, अंगों में शून्यता और शिथिलता आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी दशा में इस औषधि को कासीस भस्म १ रत्ती के साथ अंगूर के रस और मधु में मिलाकर सेवन कराने से रक्त की वृद्धि और प्रकुपित वात की शान्ति ये दोनों ही कार्य बड़ी उत्तम रीति से हो जाते हैं तथा तज्जन्य सभी विकारों का शमन हो जाता है। इस औषधि का कार्य मुख्यतया वात और कफदोष तथा रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और शुक्र इन सातधातुओं और हृदय, मस्तिष्क, उदर, बस्ति, यकृत, अन्त्र, शिरा, स्नायु, वातवाहिनियाँ, वृक्क आदि पर प्रधान रूप से होता है। यह रक्तादि धातुओं की पुष्टि कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट एवं बलवीर्य तथा कान्ति और ओजपूर्ण बनाती है, वलिपलित विकार को समूल नष्ट कर देती है। यह औषध योगवाही और रसायन गुणों से युक्त एवं आयुर्वेदशास्त्र की सुप्रसिद्ध महौषधि है।

योगराज गुग्गुलु

चित्रक, पीपलामूल, अजवायन, कालाजीरा, वायविडंग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सेन्धा नमक, कूठ, रास्ना, गोखरु, धनियाँ, हर्रे, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, खस, यवक्षार, तालीसपत्र और तेजपत्र- इन सब का कपड़छन किया हुआ चूर्ण १-१ तोला, शुद्ध गुग्गुलु सब दवा के बराबर लेकर, गुग्गुलु में आवश्यकतानुसार थोड़ा-थोड़ा घी और थोड़ा-थोड़ा उपरोक्त चूर्ण मिला कर कूटें। जब सम्पूर्ण चूर्ण गुग्गुलू में अच्छी तरह मिल जाय, तो ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ६ गोली, सुबह-शाम वात-विकारों में दशमूल क्वाथ के साथ तथा बलवृद्धि और शरीर पुष्टि के लिए गो-दुग्ध के साथ दें।

वातरक्त में गोमूत्र या गिलोय (गूर्च) का रस और मधु के साथ दें। उदर-विकार में पुनर्नवा रस के साथ दें, शिरोरोग में गरम दूध से, मेद रोग में केवल मधु से, पित्त विकार में गुर्च या धनियां-क्वाथ के साथ और कफ दोष में अश्वगन्धादि क्वाथ या पीपल के क्वाथ से दें।

गुण और उपयोग- यह योगवाही रसायन धातुओं का पोषण करता है, वात और आम दोष को नष्ट करके तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। अनुपान-भेद से प्रायः सभी रोगों में इसका उपयोग

किया जाता है। वात-विकारों के लिए तो यह सर्वप्रसिद्ध औषध है। आमवात, गठिया, वातरक्त, भगन्दर, अरुचि, स्त्री-पुरुष के जननेन्द्रिय-विकार, कास-श्वास, धातुक्षीणता, बहुमूत्र, प्रमेह, अर्श और शिरोरोग को नष्ट करने में यह औषध बहुत प्रसिद्ध है। स्थायी कोष्ठबद्धता और स्त्रियों के प्रसव सम्बन्धी विकारो में इससे अच्छा लाभ होता है।

वातवाहिनियों के क्षोभ तथा रक्तवाहिनियों में संचित विष को निकालने में योगराज बहुत कार्य करता है। वृद्धों के लिए तो यह अमृत तुल्य है। जिनके पेट में वायु की गैस उठती हो, उन्हें इसका सेवन अवश्य करना चाहिए। यह दूषित विष के विकार को नष्ट कर बल और स्मृति की वृद्धि करता है।

योगराज गुग्गुलु की बनावट में त्रिफला और गुग्गुलु की प्रधानता है। आयुर्वेद में गुग्गुलु के अन्दर वातहर, शोधक, सारक, रोचक और कृमिनाशक तथा पौष्टिक गुण बतलाया है।

वातहर शब्द का अर्थ केवल वायु और पवन के दोषों को हरन वाला नहीं है, बल्कि ज्ञान-तन्तु और गति-तन्तु (वातवाहिनी नाड़ी) की खराबी को दूर कर उसका सुधार करना यह भी वातहर शब्द के अन्दर सम्मिलित है।

यह गुग्गुलु मस्तिष्क के तन्तुओं का पोषण करता है, पित्त वात-व्याधि में मज्जातन्तु (नर्व्हज) कमजोर पड़ जाते हैं और उनकी गति मन्द हो जाती है, उस वातव्याधि में यह अपना चमत्कारिक गुण दिखलाता है। ऐसी स्थिति में डॉक्टर और हकीम जहरीले कुचले की बहुत तारीफ करते हैं, और उसका उपयोग भी करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जहरीला कुचला वास्तव में एक बहुत अच्छा 'नरव्हाइन टॉनिक' है, परन्तु साथ ही इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि कुचला एक विष है और गुग्गुलु विष नहीं है। कुचले को २-४ महीने लगातार खाने से जिनकी वातव्याधि या धनुर्वात छूट चुका है, उन्हें फिर होने का डर रहता है, किन्तु इस गुग्गुलु को २-४ वर्ष तक लगातार सेवन करने पर भी किसी तरह की हानि नहीं होती।

अपने वातहर गुणों के कारण यह बिगड़े और कमजोर हुए तन्तुओं को बल देता है। ये तन्तु सम्पूर्ण शरीर में फैले हुए रहते हैं। विशेषकर मर्मस्थानों में तो इनका जाल-सा बिछा हुआ रहता है। उदाहरण- स्त्रियों का गर्भस्थान इन तन्तुओं से आच्छादित होने की वजह से गुग्गुलु की गर्भस्थान पर बहुत अच्छी क्रिया होती है, जिसके परिणामस्वरुप स्त्रियों को ऋतु-दोष सुधारने में और उनको सन्तानोत्पत्ति योग्य बनाने में गुग्गुलु बहुत सहायक होता है। यह बात शास्त्र और अनुभव से भी सिद्ध है।

वातहर के सिवाय यह उत्तम कृमिनाशक भी है। एलोपैथी की कृमिनाशक औषधियाँ प्रायः जहरीली हुआ करती है, परन्तु यह जन्तुघ्न होते हुए भी निर्विष औषध है। बिगड़े हुए रक्त को सुधारकर शरीर के अन्दर संचित भिन्न-भिन्न दोषों और जन्तुओं को नष्ट करने में यह बहुत ही प्रभावशाली औषध है। जब शरीर के मर्मस्थान बिगड़ते हैं और उनका योग्य प्रतिकार न होने से शरीर की रस-रक्तादि सप्तधातुएँ उत्तरोत्तर दूषित होती जाती है, उस समय योगराज गुग्गुलु अमृत के समान गुण करता है। शरीर के अन्दर मर्मस्थानों के लिए यह एक निर्भय कृमिनाशक औषध है।

वातहर और कृमिनाशक गुण के अतिरिक्त, इसमें रोचक, सारक और पौष्टिक गुण भी हैं। शरीर के अन्दर संचित दोषों को खोदकर निकाल देने की यह एक विश्वसनीय दवा है।

गुग्गुलु के अतिरिक्त योगराज गुग्गुलु का प्रधान द्रव्य त्रिफला है। यह त्रिफला आयुर्वेद की रसायन औषधियों, हर्रे, बहेड़ा, आमला का सम्मिश्रण है। त्रिफला, गुग्गुलु की उष्णता और उग्रता को कम कर उसके रासायनिक गुणों की वृद्धि करता है।

इस प्रकार, गुग्गुलु और त्रिफला का यह महान योग वात-विकार, आमवात, चर्मरोग, कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, ग्रहणी और भगन्दर के समान दुष्ट व्याधियों को नष्ट करने में समर्थ हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? अगर योगराज गुग्गुलु लम्बे समय तक उचित पथ्य-परहेज के साथ सेवन किया जाय तो यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि आयुर्वेद-शास्त्र में बतलाये गये रोगों में यह औषध बहुत उत्तम परिणामदायक होगी।

योगराज गुग्गुलु त्रिदोषनाशक माना जाता है। पित्त का कार्य पाचन वगैरह करना हहै, उसमें यदि शिथिलता आ जाय तो उसे यह दूर कर देता है। इसी प्रकार, कफ का कार्य सारे शरीर की रस-क्रिया को व्यवस्थित रखकर शरीर में स्निग्धता और तृप्ति प्रदान करने का है। इस कार्य में योगराज गुग्गुलु बहुत सहायता देता है। पित्त तथा रस को उत्पन्न करने वाले आशयों (सिस्टम्स) को यह योगराज नियमित करता है। इनको नियमित करने की शक्ति योगराज गुग्गुलु में इसलिए है कि मज्जातन्तु समूह के ऊपर यह अपना सीधा प्रभाव डालता है, मज्जातन्तुओं पर असर होने से सम्पूर्ण मर्मस्थान और पित्त तथा कफ की क्रिया भी नियमित हो जाती है, क्योंकि पित्त की क्रिया मज्जातन्तु और वायुचक्रों के अधीन रहती है। अतएव, आयुर्वेद के अन्दर कफ और पित्त को पंगु (लंगडा)बतलाया गया है। सच बात तो यह है कि शरीर का सारा व्यापार वात के अधीन है, योगराज गुग्गुलु इसी वात तत्व पर अपना असर डालकर उसकी क्रिया को व्यवस्थित कर देता है, और उसके द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह सम्पूर्ण दोषों को दूर करता है।-वैद्यकल्पतरु

रास्नादि गुग्गुलु

रास्ना, गिलोय, एरण्डमूल, देवदारु, सोंठ-प्रत्येक १-१ भाग लेकर कपड़छन चूर्ण करें, पश्चात् शुद्ध गूगल ५ भाग लेकर, एकत्र मिलाकर आवश्यकतानुसार घी डालकर खूब कुटाई करके, ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना कर सुरक्षित रख लें।-यो.र.

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम दशमूल क्वाथ या रास्नादि क्वाथ अथवा गर्म जल के साथ।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से गृध्रसी, आमवात, गठिया, संधिवात आदि अनेक वात-विकार दूर हो जाते हैं। कर्णरोग, शिरोरोग, नाड़ी व्रण, नासूर और भगन्दर में भी यह गुणकारी है।

लाक्षादि गुग्गुलु

लाख, अस्थिसंहार (हड़जोड़ लता विशेष), अर्जुन की छाल, असगन्ध और नागबला मूल-छाल- प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण समान भाग और शुद्ध गुग्गुलु सबके बराबर लेकर उसमें अन्य औषधियों के चूर्ण मिला, अच्छी तरह कूट लें। जब गोली बनने योग्य हो जाय, तब ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखा कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- अस्थि (हड्डी) के विकारों के लिए यह बहुत उत्तम औषध है। शरीर के किसी भी भाग की (हड्डी) में चोट लग गयी हो, या दर्द होता हो अथवा हड्डी टूट गयी हो, तो उसमें यह बहुत फायदा करता है। उर:क्षत, हृदय रोग, धातुक्षीणता, वात-विकार इन रोगों में भी यह उत्तम लाभदायक है।

सप्तविंशति गुग्गुलु

त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, गिलोय, चित्रकमूल, कचूर, बड़ी इलायची, पिपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, तुम्बरु (नेपाली धनियाँ-तेजबल के फल), पोहकरमूल, चव्य, इन्द्रायण की

जड़, हल्दी, दारुहल्दी, विड़नमक, काला नमक, यवक्षार, सज्जीखार, सेन्धा नमक और गजपिप्पली प्रत्येक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण १-१ तोला, शुद्ध गुग्गुलु ५४ तोला लें। प्रथम गुग्गुलु में थोड़ा घी मिला कर थोड़ा-थोड़ा चूर्ण मिला कर कूटते जायें। जब गोली बनाने योग्य हो जाय, तब ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम। दिन में दो बार मधु से दें। ऊपर से मञ्जिष्ठादि क्वाथ मिला दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से भगन्दर, बवासीर, नासूर, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण आदि में विशेष फायदा होता है। हृदय और पसली के दर्द, कुक्षि, बस्ति (पेडू), गुदामार्ग और मूत्रनली के विकार इसके सेवन से नष्ट होते हैं। अन्त्र-वृद्धि, श्लीपद, शोथ, कृमि, कुष्ठादि चर्म रोगों में भी उत्तम फल देने वाला है।

सिंहनाद गुग्गुलु

त्रिफला चूर्ण ११। तोला, शुद्ध गन्धक १। तोला, शुद्ध गूगल ३।।। तोला, एरण्ड तेल १ तोला लें। प्रथम कपड़छन किये हुए त्रिफला चूर्ण और शुद्ध गन्धक दोनो को मिला कर उसमें एरण्ड तैल मिला दें। पश्चात् गूगल को गरम पानी में घोलकर, छानकर उपरोक्त मिले हुए सामान में मिलाकर, इमामदस्ते में डालकर, खूब कुटाई करें। जितनी अधिक कुटाई होगी गूगल उतना ही अधिक गुणकारी तैयार होगा। पश्चात् ३-३ रत्ती की गोली बनाकर, सुखाकर रख लें। -बंगसेन से किंचित् परिवर्तित

वक्तव्य- ग्रन्थ के मूल पाठ में एरण्ड तैल का परिमाण ५ तोला है, किन्तु इतने परिमाण में देने से गूगल अत्यन्त गीला हो जाता है और उसकी गोली नहीं बन पाती है, चतुर्थांश एरण्ड तैल देने से गोली ठीक बनती है, अतः हमने इसी हिसाब से योग में लिखा है।

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली सुबह-शाम गर्म जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके प्रयोग से वात-रक्त, गुल्म, शूल, उदर, कुष्ठ तथा कठिन से कठिन आमवात रोग दूर होता है, नियमित रूप से इस गुग्गुलु का व्यवहार करने से आमवात, पक्षाघात, सन्धिवात आदि रोगों में आराम होते हैं। आमवात की यह श्रेष्ठ औषध है।

हरितक्यादि गुग्गुलु

हर्रे, सोंठ, और विधारे की जड़ का चूर्ण १-१ तोला लेकर सबको ६ तोला, गुग्गुलु में मिला आवश्यकतानुसार अण्डी का तैल मिलाकर एक दिन कूटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें।-वृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ गोली सुबह-शाम गर्म जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से आमवात, वातव्याधि, पीठ, कमर, जांघ आदि में दर्द, बद्धकोष्ठता आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वातघ्न, दीपन-पाचन और मृदुरेचक है। आमानुबन्धि वात में इसके उपयोग से कब्जियत दूर हो जाती है और पाचक रस की उत्पत्ति हो, आम-संचय नष्ट हो जाता है। रसायन एवं पुष्टिकारक होने से धातुओं की वृद्धि कर, शरीर को बलवान करता तथा इन्द्रियों को बढ़ाता है।

अवलेह-पाक-प्रकरण

क्वाथादीनां पुन: पाकात् घनत्वं सा रसक्रिया।
सोऽ वलेहश्च लेह:स्यान्तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता।।

अर्थात् क्वाथ (काढ़ा), स्वरस, फाण्ट आदि को फिर पकाकर जो गाढ़ा कियाजाता है, उसको रसक्रिया, अवलेह और लेह कहते हैं। (इसके पाक दो तरह के होते हैं, जो चाटने योग्य पतला हो वह अवलेह और जो गाढ़ा हो उसे पाक कहते हैं) इसकी मात्रा ४ तोला है किन्तु मात्रा का वास्तविक निश्चय रोगी की उम्र, बल तथा रोग स्थिति के अनुसार करना चाहिए। आजकल के अल्प बल वाले व्यक्तियों के लिए सामान्यत: १ तोला से २ तोला तक की मात्रा पर्याप्त है।

अवलेह में पड़नेवाली काष्ठौषधियाँ तथा सुगन्धित औषधियाँ अलग-अलग कूट-पीसकर डालें और दाख, नारियल की गिरी और बादाम, पिस्ता आदि के छोटे-छोटे टुकड़े करके मिलावें। खस के बीज और चिरौंजी आदि यथावत् ही रहने दें। जब पाक की चाशनी जमने योग्य हो जाय, तब उसमें पिसी हुई काष्ठौषधियों के चूर्ण (प्रक्षेप) मिलावें। इनके मिल जाने पर चाशनी कुछ गरम रह जाय तब इलायची, लौंग आदि सुगन्धित वस्तुओं को डालें फिर कलछी से चलावें, बाद में दाख आदि मेवा मिलावें, पाक की चाशनी कुछ कड़क लेने पर टिकाऊ बनती है।

केशर को जल मे पीसकर चाशनी में मिलावें। पाक में यदि अफीम डालना हो, तो दूध में पीसकर पाक में छोड़ें। यदि भांग डालनी हो, तो उसे मन्दाग्नि पर भूने और चूर्ण कर डाल देवें, फिर अवलेह को कलछी से चलावें, जिससे सब एक में मिल जाये, परन्तु इस बात पर ध्यान रखे कि प्रक्षेपवाली औषधि डालने के समय पाक के नीचे तेज अग्नि न हो, नही तो प्रक्षेपवाली औषधियों में अधिक ताप लगने से वे बलहीन हो जायेंगी। अतएव, प्राय: लोग अवलेह या पाक को अग्नि से नीचे उतारकर ही प्रक्षेप और सुगन्धित द्रव्य मिलाते हैं।

पाक में यदि भस्में या कस्तूरी आदि मिलानी हो तो कुछ प्रक्षेपद्रव्यों के चूर्ण के साथ खरल में घोंटकर, पश्चात् शेष प्रक्षेप चूर्ण में अच्छी तरह मिलाकर मिलावें। पाक को नीचे उतार कर थाली में जमावें, फिर सोने या चाँदी के वर्क लगाकर छोटी-छोटी कतली काटकर अच्छे पात्र में रखें। वर्क कुछ गरम-गरम में ही लगाने चाहिए। पाक ठण्डा होने पर वर्क नहीं चिपकते हैं। बरसात के समय यदि पाक या अवलेह बनाना हो, तो बहुत कम बनावें, जिससे जल्दी समाप्त हो जाय। ज्यादा बनाकर रखने से उसमें (फुफुडी-जाली) पड़ जाने से उसका स्वाद विकृत होकर गुणहीन हो जाता है। अत: थोड़ा बनाकर उसे लगातार दो-तीन दिन तक घाम में रखकर फिर उसे भली-भाँति बाँधकर रखें तथा यथासमय एक-दो महीने में उपयोग कर लें, जिससे वर्षाकाल में उसमें छोटे-छोटे जीव न उत्पन्न हो जायें।

पाक के लिए सफेद निर्मल और अच्छी मिठासदार मिश्री अथवा शक्कर लें। यदि उसमें मैल हो, तो उसे कड़ाही में चढ़ा, जल डालकर औंटावें। औटाते समय गाय का दूध और जल मिला, थोड़ा-थोड़ा दो-तीन बार डालकर शुद्ध कर लें। उसका मैल जब चाशनी पर आ जाये, तब एक पात्र पर दो लकड़ी रखकर उस पर जाली रखें। और उस पर कपड़ा बिछा चाशनी को कड़ाही में से लेकर झाली (टोकरी) में डालें तो चाशनी में से रस निकलकर कपड़े में से छिनता हुआ नीचे के पात्र में गिरता है। इसे हलवाई लोग 'बक्खर' कहते हैं। चीनी का मैल कपड़े और झाली में रहता है। इस प्रकार करने से चीनी का मैल निकलकर चीनी की चाशनी स्वच्छ हो जाती है। ऐसी स्वच्छ चीनी को अवलेह, पाक या मोदक बनाने के काम में लें। मोटे दाने की

शक्कर चीनी (दानेदार) में मैल कम होता है और मिठास अच्छी होती है। अत: इसकी चाशनी बनाना ठीक है। मिश्री के स्थान पर भी इस व्यवहार कर सकते हैं।

पूर्वोक्त प्रकार से औषधियाँ डालकर अवलेह जब तैयार हो जाता है तो वह करछी या कूचे से उठाने पर तार-सा बाँधकर उठता है। थोड़ा ठण्डा करके जल में डालने से जल में डूबकर एक जगह रह जाता है- बिखरता-फैलता नहीं। ठण्डा होने पर अँगुली से दबाने पर उसमें अँगुलियों की रेखा के निशान बन जाते हैं तथा जिस द्रव्य का अवलेह बना हो, उसकी सुगन्ध उसमें आने लगती है।

अवलेह में औषधियों के चूर्ण में मिश्री चौगुनी, गुड़ दुगुना और क्वाथादि द्रव (पतला) पदार्थ आवश्यकतानुसार डालें। द्रव पदार्थ (क्वाथ आदि) अधिक हो तो उसे आग पर पकाकर चाशनी बनाने के लिए आवश्यक मात्रा में शेष रख लें। आँवला आदि की पिट्ठी मिलानी हो तो प्रथम घी, तेल, आदि स्नेहों को कड़ाही में चढ़ाकर गर्म करना चाहिए और आँवले का कल्क, पेठा आदि स्नेह में भूनने योग्य पदार्थ हो उन्हें इसमें डाल कर भून लेना चाहिए। फिर जब कल्कादि भून जाएँ तो उनको उतार, अलग निकालकर, रख लें और साफ कड़ाही में क्वाथादि द्रव पदार्थ और चीनी, गुड़ आदि मिलाकर चाशनी पका लेना चाहिए। जब चाशनी तैयार हो जाय तो उसमें से एक-दो बून्द निकाल अंगुली से देखें, लच्छेदार तार छूटने लगे तो नीचे उतार कर प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर कौंचे आदि से खूब घोटना चाहिए और नीचे उतार कर ठण्डा होने पर शहद मिलाना हो तो मिलाकर मिट्टी या पत्थर अथवा चीनी मिट्टी या लकड़ी आदि के चिकने पात्र में भरकर रख लेना चाहिए। जिन अवलेहों में किस चीज की पिट्ठी नहीं हो, किन्तु घी या तेल आदि स्नेह द्रव्य पड़तें हों, तो फिर घी, तेल आदि को चाशनी में प्रक्षेप आदि मिलाते समय ही मिलाना चाहिए। पहले चाशनी पकाते समय मिला देने पर चाशनी चौकट (चीमड़) होकर सेवन करते समय अवलेह दाँतों में चिपकने लगता है।

अगस्त्य हरीतकी

बड़ी हर्रे १०० नग, जौ ४ सेर, दशमूल सवा सेर, चित्रक, पिपला मूल, अपामार्ग कपूर, कौंचर के बीज, शंखपुष्पी, भारंगी, गजपीपल, खरेंटी और पुष्कर मूल-प्रत्येक १०-१० तोला लें। बड़ी हर्रे और जौ को एक पोट्टली में बांधे और बाकी द्रव्यों को मिलाकर अधकुटा करके एक मन पानी में पकावें तथा इसी में उक्त पोट्टली रख दें। जब हर्रे और जौ उबल जाय तथा क्वाथ तैयार हो जाय, तो उतार लें। इस क्वाथ को छान कर उसमें उबाली हुई हरीतकी (हरड़) को मिलावें। फिर उसमें घृत और तैल ४०-४० तोला तथा गुड़ सवा छह से जौ पकावें। अवलेह सिद्ध होने पर तथा ठण्डा होने पर मधु ४० तोला और पिप्पली चूर्ण २० तोला मिलाकर सुरक्षित रख लें।-भै.र.

वक्तव्य- हरड़ ताजा मिले तो संख्या से लें अन्यथा सूखी साबुत १।। अथवा छिलका साढ़े बारह छटाँक लेने से उत्तम है।

मात्रा और अनुपान- इसमें से १-१ हरड़ प्रात: और सायंकाल खाकर अवलेह ४ तोला चाट लें। ऊपर से गरम जल या दूध पी लिया करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से दमा, क्षय, खाँसी, ज्वर, अर्श, अरुचि, पीनस तथा ग्रहणी रोग का नाश होता है। यह अवलेह रसायन तथा बल-वर्ण का देने वाला है। इस अवलेह में हर्रे की प्रधानता है। आयुर्वेद में हरीतकी के गुणधर्म का वर्णन बहुत विस्तार से है।

हर्रे का प्रधान कार्य शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर शरीर के प्रत्येक अंग की क्रियाशीलता को व्यवस्थित करना है। इन विजातीय तत्वों के बाहर निकल जाने के पश्चात् जठराग्नि प्रबल हो जाती, भूख लगने लगती है और बदहजमी तथा अपचन के कारण होने वाले संग्रहणी, अतिसार आदि रोग अच्छे होते हैं।

अगस्त्य हरीतकी- मृदु विरेचक है, इसीलिए अर्श (बवासीर) वाले को विशेष लाभ करती है। यह रसायन, कामोद्दीपक और अवस्था-स्थापक भी है। बद्धकोष्ठ वाले को गर्म जल के साथ सेवन करने से एक-दो दस्त साफ हो जाते हैं। अधिक दिनों तक इसके सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। हृदय और रक्तवाहिनी सिराओं की शिथिलता दूर करने के लिए इसका सेवन किया जाता है। रक्तभिसरण-क्रिया में सुधार होने से मस्तिष्क में रक्त अधिक पहुँचता है, जिससे मस्तिष्क में तरावट आती है। निद्रा अच्छी आती है, वीर्य गाढ़ा हो जाता है और स्त्री सम्भोग में आल्हाद उत्पन्न होता है, शरीर की कान्ति में परिवर्तन होकर वजन बढ़ जाता है, परन्तु कम-से-कम २-३ माह सेवन करने पर ये लाभ होते हैं। कफघ्न होने के कारण दमा, खाँसी, श्वास, यक्ष्मा आदि में बहुत उपकार करती है।

अभयादि मोदक

हर्रे, काली मिर्च, सोंठ, वायविडंग, आँवला, पीपल, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपात और नागरमोथा प्रत्येक १-१ तोला, जमाल गोटे की जड़ २ तोला, निशोथ ८ तोला इन सबको कूटकर कपड़छन कर, महीन चूर्ण बना, इसमें ६ तोला चीनी और जितने में गोली बन सके उतना शहद (मधु) मिला, १-१ तोले की गोली (मोदक) बना, सुरक्षित रख लें।- आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान- १-१ गोली प्रातः सायं ठण्डे जल से सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से बद्धकोष्ठता (कब्जियत), मन्दाग्नि, विषमज्वर, उदररोग, पाण्डू और वात रोग आदि रोग नष्ट होते हैं।

इसमें दन्ती और निशोथ ये दोनों विरेचक औषधियाँ हैं और इनमें भी निशोथ की मात्रा ज्यादा है। निशोथ विरेचन के लिए प्रसिद्ध दवा है। यही कारण है कि यह बद्धकोष्ठजनित रोगों में विशेषतया उपयोग किया जाता है और इसके उपयोग से लाभ भी होता है।

अमृतप्राशावलेह

जीवक, ऋषभक, विदारी कन्द, सोंठ, जीवन्ती, कचूर, सरिवन, पिठवन, माषपर्णी (बनमाष), मुद्गपर्णी(वनमूंग), मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर-काकोली कटेरी(छोटी-कटाई-भटकटैया), बड़ी कटेरी, सफेद पुनर्नवा, मुलेठी के वाच के बीज, शतावर, ऋद्धि, फालसा, भारंगी मूल, मुनक्का, गोखरू छोटा, छोटी पीपल, सिंघाडा, भुई आँवला, दुद्धी, कंधी, बरियारा, उन्नाव, अखरोट, पिण्डखजूर, बादाम, पिस्ता, चिलगोजा, खुरमानी, चिरौंजी-प्रत्येक १-१ तोला लें। इनका कपड़छन चूर्ण कर, जल में पीस कर कल्क बना लें फिर उसमें आँवले का रस ६४ तोला, ताजी शतावरी का रस ६४ तोला, बिदारी कन्द का स्वरस ६४ तोला, बकरी के मांस का रस ६४ तोला, बकरी या गाय का दूध ६४ तोला, गौ का घृत १२८ तोला मिलाकर घृतपाक-विधि से तैयार करें। घृत सिद्ध होने पर कपड़े से छानकर उसमें ३२ तोला शहद और मिश्री ६४ तोला तथा तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी और काली मिर्च-प्रत्येक का महीन चूर्ण २-२ तोला और वंशलोचन का चूर्ण १६ तोला सबको यथायोग्य मिलाकर कांच के बर्तन में सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- आधा तोला से १ तोला तक गौ या बकरी के दूध के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- यह उत्तम पौष्टिक है। खाँसी, क्षय, दमा, दाह, तृषा, रक्तपित्त और शुक्रक्षय में इसका प्रयोग करें। कृश और जिनके शरीर का वर्ण और स्वर क्षीण हो गया हो उनको तथा विशेष स्त्री प्रसंग करने वालों और रोगों से कृश हुए व्यक्तियों को यह पुष्ट करता है। राजयक्ष्मा और बच्चों के सूखा रोग में इसके सेवन से विशेष लाभ होता है।

नोट-इस योग में मांस-रस भी देने का विधान है। श्रीयुत् आचार्य यादवजी का कहना है कि जो मांसाहारी न हों, उन्हें मांस-रस के स्थान पर उड़द का क्वाथ डालकर यह योग तैयार करना चाहिए।

अमृतभल्लातक

अच्छे-पके और पुष्ट भिलावों को एक दिन गोमूत्र तथा तीन दिन गो-दुग्ध में भिगों कर रखें। प्रति दिन जल से धोकर दूसरे ताजे द्रव में भिगों दें। पीछे कपड़छन किए हुए ईट के चूर्ण से खूब मसलकर, जल से धोकर सुखा लें। इस प्रकार शुद्ध किए हुए भिलावे को औषधि के प्रयोग में लें।

२५६ तोला शुद्ध भिलावें की टोपी सरौते से काटकर दो टुकड़े कर १०२४ तोला जल में पकावें। जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उसको कपड़े से छानकर, उसमें दूध २५६ तोला, गो-घृत ६४ तोला मिलाकर मन्द आँच पर पकाकर खोवा बना लें, पश्चात् नीचे उतारकर, उसमें मिश्री का कपड़छन किया चूर्ण ६४ तोला मिलाकर, मथानी से मथकर, काँच या चीनी मिट्टी के पात्र में भर दें और सात दिन के बाद प्रयोग करें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १-१ तोला सुबह-शाम खाकर ऊपर से गाय का धारोष्ण अथवा गरम करके ठण्डा किया हुआ दूध पिलावें।

गुण और उपयोग- समस्त प्रकार के कफ और वातरोगों में विशेषतः जीर्ण प्रतिश्याय, पक्षाघात और कमर के दर्द में इसका उत्तम उपयोग होता है। यह योग उत्तम रसायन में वीर्यवर्द्धक और बाजीकरण है। इसका सेवन करने वाले मनुष्य को गरम भोजन, अधिक गरम जल से स्नान, धूप में बैठना या धूप में घूमना, अग्नि के पास बैठना निषेध है। इसके सेवन काल में यदि शरीर से कहीं खाज आने लगे तो वहाँ नारियल का तैल कुछ समय तक लगाना चाहिए।

अम्लपित्तहर पाक

त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मिर्च) त्रिफला, भृंगराज, दोनों जीरा, धनियाँ, कूठ, अजमोदा, लौह भस्म, अभ्रकभस्म, काकड़ासिंगी, कायफल, नागरमोथा, इलायची, जायफल, जटामांसी, तेजपत्ता, तालीसपत्र, नागकेशर, अजवायन, कचूर, मुलेठी, लौंग और लाल चन्दन समभाग लें। सोंठ का महीन चूर्ण कर सब चूर्ण के बराबर और मिश्री सबसे दुगुनी, गाय का दूध चौगुना मिलाकर पाक विधान से विधिवत् पाक तैयार कर सुरक्षित काँच के बर्तन या चिकने पात्र में रख लें।-वै.क.द्रु.

मात्रा और अनुपान- १-१ तोला सुबह-शाम गरम दूध या पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से अम्लपित्त, अरुचि, शूल, हृद्रोग, वमन, कण्ठदाह, हृदय की जलन, सिर-दर्द आदि रोग नष्ट होते हैं तथा यह बलवर्धक और पौष्टिक भी है। अभ्रकभस्म और लौह भस्म का सम्मिश्रण होने से यह अम्लपित्त में विशेष गुण करता है। अभ्रकभस्म अम्लपित्त के लिए महौषध है।

अश्वगन्धा पाक

असगन्ध के ४० तोले महीन चूर्ण को ६ सेर गो-दुग्ध में पकावें। गाढ़ा होने पर उसमें चतुर्जात (दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची)१। तोला, जायफल, केशर, वंशलोचन, मोचरस, जटामांसी, चन्दन, खैरसार, जावित्री, पीपलामूल, लौंग, कंकोल, पाढ़, अखरोट की गिरी, भिलावा की मींगी, सिंघाड़ा, गोखरू, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, लौहभस्म, प्रत्येक ७।।-७।। माशा लेकर काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण बना सबकों एकत्र मिला, चीनी की चाशनी में मिलाकर पाक-विधी से तैयार कर सुरक्षित रख लें। -यो.र.

वक्तव्य- मूलपाठ में शक्कर का तो उल्लेख है, किन्तु परिमाण का उल्लेख नहीं है। अन्य द्रव्यों के परिमाणानुसार ३ सेर शक्कर का परिमाण उचित है।

मात्रा और अनुपान- १-१ तोला सुबह-शाम शहद, गो-दुग्ध या जल से देना चाहिए।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से प्रमेह रोग नष्ट होता है, शुक्र की वृद्धि होती तथा शारीरिक कान्ति अच्छी बन जाती है। यह पौष्टिक, बलवर्द्धक तथा अग्नि-प्रदीपक है।

वात-पित्त प्रधान रोगों में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। शुक्र-विकार-जैसे धातु की कमजोरी, स्वप्नदोष हो जाना, पेशाब के साथ धातु जाना आदि विकारों में इसका निर्भय होकर प्रयोग करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त वात के कारण शरीर में दर्द हो तो इसमें भी यह दवा बहुत लाभ करती है। इसका असर वृक्क और शुक्राशय तथा वातवाहिनी नाड़ी पर विशेष होता है। अतएव यह उक्त रोगों में लाभ करता है।

अष्टांगावलेह

कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, त्रिकुटा, घमासा, काला जीरा-प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना कर रख दें। इस चूर्ण को शहद मिलाकर चाटें। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- १-२ माशा सुबह-शाम सेवन करें। कफाधिक्य में अदरक रस के साथ तथा पित्ताधिक्य में दूध के अनुपान से दें।

गुण और उपयोग- इसका उपयोग कफजनित रोगों में विशेष किया जाता है। जैसे-कफज्वर में खाँसी, श्वास अधिक होने पर या कफ छाती में बैठ गया हो, किन्तु निकलता न हो तो उस हालत में भी कफ निकालने के लिए इसें देते हैं। न्यूमोनिया आदि रोगों में भी कफ न निकलने पर खाँसी होने से भयंकर कष्ट होता है। ऐसी दशा में इस अवलेह से कफ सरलता से निकल जाता है और रोगी को आराम भी मिलता है। खाँसी सूखी हो तो इसमें एक भाग यवक्षार मिलाकर सेवन करने से कफ को पिघलाकर निकाल देता है।

आमलक्याद्यवलेह

यन्त्र द्वारा निकाला हुआ आमले का स्वच्छ रस ४ सेर को मन्दाग्नि पर पकावें, आधा सेर शेष रहने पर उतार लें, फिर पीपल २० तोला, मुनक्का २० तोला, मुलेठी २।। तोला, वंशलोचन २।। तोला और सौंठ २।। तोला लें। मुनक्का के बीज निकालकर पीस लें और शेष दवाओं का महीन चूर्ण बना, सबको एकत्र मिलाकर ६२।। तोला चीनी की चाशनी बना,उसमें इस चूर्ण को मिला दें। फिर पाव भर शहद मिलाकर सुरक्षित रख लें।-आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान- ६ माशा से १ तोला तक गो-मूत्र या छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसका उपयोग पाण्डु और कामला रोग में विशेष किया जाता है। पाण्डु रोग में यह बहुत ही लाभ करता है। इसमें आमले का स्वरस विशेष होने से यह रक्त कणों की वृद्धि कर पांडु रोग नष्ट करता है। रक्तपित्त, पित्तविकार, अम्लपित्त, अन्तर्दाह, बाह्यदाह, प्यास की अधिकता, हृदय की धड़कन बढ़ना आदि विकारों में भी उत्तम लाभदायक है।

आम्र पाक

पके आमों का रस १०२४ तोला, चीनी २५६ तोला, घृत ६४ तोला, सोंठ ३२ तोला, काली मिर्च १६ तोला, पीपल ८ तोला और जल २५६ तोला लें। चूर्ण करने योग्य औषधियों का चूर्ण करके सबकों एकत्र मिला, मिट्टी के बर्तन में पकावें और लकड़ी की कलछी से चलाते रहें। जब गाढ़ा हो जाये तब उतारकर निम्नलिखित चूर्ण मिला दें।

धनियाँ, जीरा, हर्रे, नागरमोथा, चीता, दालचीनी, जीरा, पीपलामूल, नागकेशर, छोटी इलायची, लवंग और जायफल-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर, इनको कूट कपड़छन चूर्ण बनाकर मिला दें, पाक जब ठण्डा हो जाये, तब शहद ३२ तोला मिलाकर सुरक्षित रख लें।-भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- इसे भोजन के पहले २ तोला से २।। तोला तक गो दुग्ध या जल के साथ लें।

गुण और उपयोग- यह अत्यन्त बाजीकरण, पौष्टिक, बलदायक, ग्रहणी, क्षय, श्वास, अम्लपित्त, अरुचि, रक्तपित्त और पाण्डुरोग-नाशक है।

केवल आम का ही रस यदि गोदुग्ध के साथ क्षय, संग्रहणी, श्वास, रक्तपित्त, वीर्यविकार आदि वाले रोगी को सेवन कराया जाये तो आशातीत लाभ होता है। इन रोगों में आम्रपाक से भी बहुत लाभ होता देखा गया है, कारण उत्तम जाति के आम के पके हुए रस में मनुष्य का पोषण करने वाले प्राय: सभी तत्व विद्यमान रहते हैं। इसके मीठे रस में विटामिन 'ए' और 'सी' दोनों प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इनमें से विटामिन 'ए' रोगी को जहर के विषों और कीटाणुओं के प्रभाव से बचाता है, और विटामिन 'सी' चर्म रोगों को नष्ट करता है।

दूध के साथ इस पाक को खाने से पौष्टिक और बलवर्द्धक गुणों में बहुत वृद्धि हो जाती है। यह पाक मृदुरेचक होने से दस्त भी साफ लाता है। अत: जिन लोगों को दस्त में कब्जियत रहती है, उनके लिये यह रेचका का भी काम करता है। आमाशय-सम्बन्धी रोगों में भी इससे लाभ होता है, अतएव संग्रहणी आदि रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। यह रक्त, वीर्य, मांस आदि धातुओं को बढ़ाता है।

वीर्यवर्द्धक होने के कारण शुक्र विकार वाले रोगी भी इससे लाभ उठाते हैं। शुक्र विकारवाले रोगी को प्राय: दस्त का कब्ज और शरीर में रक्त की कमी ये शिकायतें बनी ही रहती है। इन दोनों विकारों को दूर करने के लिये आम्रपाक का सेवन सर्वोत्तम है। अल्प शुक्र वाले व्यक्तियों को इसके सेवन से शुक्र की वृद्धि होकर कामशक्ति जागृत होती है।

आर्द्रक पाक

अदरक के छिले हुए छोटे-छोटे टुकड़े आधा सेर, गुड़ आधा सेर, और घी आधा पाव भर लें। प्रथम अदरक को घी में लाल होने तक खूब भूने, फिर गुड़ की चाशनी बना उसमें अदरक के टुकड़े मिलाकर इन दवाओं को चूर्ण मिलावें। सोंठ, जीरा, काली मिर्च, नागकेशर, जावित्री, इलायची, दालचिनी, तेजपत्र, पीपल, धनियाँ, काला जीरा, पीपलामूल और वायविडंग-प्रत्येक ६-६ माशे लेकर कपड़छन चूर्ण बना, उपरोक्त पाक में मिलाकर सुरक्षित रख लें।-भा.भै.र.

वक्तव्य- ग्रंथ के मूलपाठ में द्रव्यों के वजन का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। सुविधा के लिए हमने अनुमान के आधार पर द्रव्यों का परिमाण निश्चित किया है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से श्वास, कास, स्वरभंग, अरुचि, स्मरण-शक्ति की कमी, सूजन, ग्रहणी, शूल, आनाह, उदररोग, गुल्म आदि रोग नष्ट होते हैं।

वात और कफ प्रधान रोगों में इस पाक के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। यह कफघ्न है, अतएव श्वास, कास, स्वरभंग आदि रोगों में कफ-विकार दूर करने तथा श्वास नली को साफ करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

अन्नादिक से अरुचि होने पर अदरक और सेन्धा नमक मिलाकर भोजन से पूर्व ४-५ टुकड़े खा लेने की प्राचीन प्रथा है। आज भी बहुत लोग इस प्रथा को पालते हैं और तदनुसार इससे लाभ उठाते हैं। ऐसी दशा में अदरक-पाक खाने से पूर्ण लाभ होता है। वातघ्न होने के कारण पेट का दर्द या शरीर के किसी अंग में दर्द होने पर इस पाक के सेवन से बहुत लाभ होता है।

आरग्वधावलेह (अमलतास की स्वादिष्ट चटनी)

नींबू के १ सेर रस में अमलतास का गूदा आधा सेर डालकर २४ घण्टे भिंगोकर रखें। फिर कपड़े से छानकर इसमें दालचीनी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, भुनी हींग, बड़ी इलायची के बीज-प्रत्येक २।।-२।। तोला, सेन्ध नमक, काला नमक, भुना हुआ काला दाना, भुना जीरा और अजमोद ये प्रत्येक ५-५ तोला लेकर इनका चूर्ण कर उपरोक्त लुआब में मिलावें और मुनक्का बीज रहित १० तोला महीन पीसकर मिला दें। यह उत्तम स्वादिष्ट चटनी तैयार होगी। आरोग्यप्रकाश

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १तोला तक दोष, काल, बल और अवस्थानुसार गरम जल से दें।

गुण और उपयोग- इसका प्रयोग करने से दस्त साफ होता है। जिनको बदहजमी (अजीर्ण) के कारण कब्जियत (मलावरोध) रहता हो, उनके लिए यह उत्तम कोटि की श्रेष्ठ औषध है। यह औषधि उत्तम अग्निप्रदीपक, वातानुलोमक और मृदुसारक है।

आँवला-मुरब्बा

ताजे सुपुष्ट बड़े-बड़े आँवलों को बाँस की शलाका या जर्मन सिलवर अथवा पीतल के कलईदार काँटे से चारों और से अच्छी तरह से गोंद (छिद्र कर) दें। फिर चूने के निथरे हुए जल में २४ घंटे भिंगों दें। पश्चात् आँवले निकाल कर साफ पानी के साथ अग्निपर चढ़ा कर हल्का जोश देकर नीचे उतार लें और पानी से निकाल कर कुछ देर छाया में सुखा लें। आँवले से आधे वजन की शक्कर की २ तार की चाशनी बनाकर उसमें ये आँवले डालकर ८-१० दिन रखा रहने दें। बाद में उस चाशनी को निकाल दें और पुनः आँवले के समान वजन की शक्कर की चार तार की चाशनी बनाकर उपरोक्त आँवले मिला दें और कुछ समय अग्नि पर ही रसगुल्लों की तरह चाशनी में ही पकाकर उतार कर ठण्डा करके चाशनी सहित इमरतदान में भरकर रख दें। इस प्रकार बनाने से मुरब्बे में से अम्लता नष्ट हो जाती है और मुरब्बा उत्तम, स्वादिष्ट, मीठा एवं अधिक समय तक टिकाऊ बना रहता है तथा विशेष गुणकारी भी हो जाता है।- आनुभविक एवं प्रचलित योग।

मात्रा और अनुपान- १-२ आँवले, चाँदी के वर्क के साथ खाये या किसी पित्तशामक औषध के अनुपान रूप में भी लिया जा सकता है।

गुण और उपयोग- यह मुरब्बा अत्यन्त स्वादिष्ट और पित्तशामक है। इसके उपयोग से दाह, सिरदर्द, पित्तप्रकोप, चक्कर, नेत्र-जलन, बद्धकोष्ठ, अर्श, रक्तविकार, त्वचा दोष, प्रमेह और वीर्य के विकार नष्ट होते हैं। यह पित्तवृद्धि को शमन करता है और शरीर को बलवान बनाता है। प्रवाल भस्म (चन्द्रपुटित) या मोती पिष्टी के साथ खाने से पित्त विकार, अन्तर्दाह और जलन आदि में विशेष लाभकारी है।

एरण्ड पाक

अण्डी(एरण्ड) के बीज की गिरी १ सेर को ८ सेर दूध में पकावें, जब खोवा हो जाय तो गिरी को महीन पीसकर आधा सेर घी में मन्द-मन्द अग्नि में भून लें, जब खूब लाल हो जाय, तब त्रिकटू, लौंग, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, असगन्ध, सोया, रास्ना, पीपलामूल, रेणुका, शतावर, लौहभस्म, पुनर्नवा, काली निशोथ, खस, जावित्री, जायफल और अभ्रकभस्म, प्रत्येक १।-१। तोला लें, इसमें लौह और अभ्रकभस्म को छोड़कर शेष काष्ठौषधियों का कपड़छन महीन चूर्ण बना लें और ४ सेर चीनी की चाशनी बनाकर उसमें सब चीजों को मिला, पाक-विधान से पाक कर लें। -बृ.नि.र.

वक्तव्य- मूलग्रंथ-पाठ में द्रव्यों का परिमाण निश्चित नहीं है। अनुभव के आधार पर हमने निश्चित किया है। टिकाऊ बनाना हो तो दूध नहीं दें। एरण्ड बीजों की गिरी की दरदरा कूटकर घृत में भून करके यह तथा अन्य दवाओं का चूर्ण और भस्में सब सामान को चीनी की गाढ़ी चाशनी में मिला पाक जमा लेना चाहिए।

दूसरा योग- सुपक्व छिलका रहित एरण्ड बीज १ प्रस्थ, गो-दुग्ध ८ प्रस्थ में मिला कर मन्द-मन्द अग्नि पर पाक करके खोवा बना लें। खोवा बन जाने पर उसमें आधा प्रस्थ घृत मिलाकर उसे अच्छी तरह मन्द अग्नि पर भून लें। पश्चात् उसमें खाँड २ प्रस्थ मिलावें और उसमें सोंठ, काली मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, पीपलामूल, चित्रकमूल-छाल, चव्य, कचूर, बेल की छाल, अजवायन, जीरा सफेद, जीरा काला, हल्दी, दारुहल्दी, असगन्ध, खरैंटी के बीज, आकनादि पाठा, हाऊबेर, वायविडंग, पुष्करमूल, गोखरू, कूठ, बहेड़ा, हरड़, आँवला, देवदारू, काली विधारा, बबूल-गोन्द एलुआ, शतावर-प्रत्येक १-१ तोला लेकर एकत्र मिला सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर मिलावें। पश्चात् पाक जमाकर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- दूध डालकर बनाने से पाक जल्दी खराब हो जाता है, अत: टिकाऊ बनाना हो तो, बिना दूध डाल ही बनाना चाहिए। एरण्ड के छिलकारहित बीजों को इमामदस्ता में दरदरा कूट कर घी के साथ थोड़ा भून कर रख लें। पश्चात् चीनी की लच्छेदार चाशनी बना उसमें भुना हुआ एरण्ड बीज तथा अन्य प्रक्षेपवाली दवाओं का आक्षेप मिला कर जमा लें। इस प्रकार पाक बनाने से अधिक दिन टिकाऊ बनता हैं।

मात्रा और अनुपान- १से २ तोला तक गर्म दूध या पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से लकवा, पंगुवात, आमवात, ऊरूस्तम्भ, शरागत वायु, कटिवात, बस्तिवात, कोष्ठगतवात, वृषणवृद्धि, सूजन, उदरशूल, अपेण्डिसाइटिस आदि रोग नष्ट होते हैं। यह पाक सारक और वातनाशक दवाओं में अपना प्रधान स्थान रखता है।

कमजोर मनुष्यों की शक्ति बढ़ाने के लिए इसका सेवन करना बहुत लाभदायक है। इससे खाया हुआ अन्न हजम हो कर दस्त साफ होता है और शारीरिक शक्ति बढ़ती है। नवीन अर्दित रोगी के लिए यह अनुभूत और परिक्षित दवा है।

स्रंसन अथवा स्निग्ध होने के कारण यह पाक आँतों की श्लैष्मिक त्वचा को मुलायक करके उसमें जमी हुई मल की गाँठों को ढीला करके बहुत सरलता से बाहर निकाल देता है। यह पाक सौम्य और वातघ्न होने के कारण विशेष मात्रा से सेवन करने पर भी कोई ज्यादा हानि नहीं करता, सिर्फ दो-एक दस्त ज्यादे ला देता है। यह दुग्ध-वर्द्धक भी है। जिस स्त्री को दूध कम होता हो वह यदि इसका सेवन करें तो इसके सेवन से दूध बढ़ जाता है। अपेण्डिसाईटिस में-जब दर्द बहुत जोर का होने लगता है, दस्त भी साफ नहीं आता, ज्वर हो जाता हे, वमन होने लगता है, नाड़ी की गति तेज हो जाती, तो रोगी इन उपद्रवों से बेचैन हो जाता है। उस स्थिति में एरण्ड तेल मे हींग मिला कर उसकी बस्ति (एनिमा) दें और साथ ही इस पाक का भी सेवन करावें। इससे उपरोक्त सब उपद्रव दूर हो जाएँगें।

कण्टकार्यवलेह

पाँच सेर छोटी कटेरी को छोटे-छोटे टुकड़े कर २५।। सेर ८ तोला जल में पकावें। जब चौथाई जल बाकी रहे तब छान कर उस काढ़े में गिलोय, चव्य, चित्रक की जड़, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, पीपल, मिर्च, सोंठ, जवासा, भारंगी, रास्ना और कचूर प्रत्येक औषध ४-४ तोला लेकर चूर्ण बना लें। फिर १ सेर मिश्री लेकर उपरोक्त काढ़े में डालकर चाशनी बनावें। इसमें तिल तैल और गो-घृत ३२-३२ तोला डाल कर सब चूर्ण मिला दें। जब अवलेह सिद्ध हो जाय, तब उतार कर ठंडा कर लें। फिर इसमें ३२ तोला शहद, १६ तोला वंशलोचन और १६ तोला पीपल का चूर्ण मिलाकर सुरक्षित पात्र में रख लें। -शा.सं.

वक्तव्य- इस योग में जल का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण है। इस अवलेह को अधिक समय तक टिकाऊ बनाने के लिये चाशनी लच्छेदार गाढ़ी लेवें, पश्चात् नीचे उतार कर प्रक्षेप मिलायें तथा तैल और घी मिलावें। शहद चाशनी बनते समय मिलायें, शहद उत्तम न मिले तो उसकी बजाय पुराना गुड़ या चीनी दें।

मात्रा और अनुपान- १से २ तोला सुबह-शाम उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से श्वास, कास, हिचकी, कफ का छाती में जम जाना आदि रोग नष्ट होते हैं। इसका उपयोग विशेषकर खाँसी और श्वास-रोग में किया जाता है। खाँसी चाहे सूखी या गीली जैसी भी हो, दोनों में लाभ करता है। सूखी खाँसी में छाती में जमे हुए कफ को निकालता है और गीली खाँसी में दूषित नवीन कफ नहीं बनने देता है। इस तरह दोनों में यह गुण करता है। यह श्वास के दौर को भी रोकता है। इसके खाने से श्वासनली में चिपका हुआ कफ आसानी से पिघल कर निकल जाता है। फिर श्वास के आवागमन में सरलता हो जाने से श्वास का दौरा कम हो जाता है। ज्वरादिक उपद्रव में कभी-कभी खाँसी बहुत उग्र रूप धारण कर लेती है, जिससे रोगी परेशान हो जाता है। इससे कण्टकार्यवलेह के सेवन से ज्वर और खाँसी दोनों को लाभ होता है।

कामेश्वर मोदक

अभ्रक भस्म, कायफल, कूठ, असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, सफेद मूसली, गोखरू, तालमखाना, केला-कन्द, शतावर, अजमोद, उड़द, तिल, मुलेठी, नागबला, धनियाँ, कपूर, मैनफल, जायफल, सेंन्धानमक, भारंगी, काकड़ासिंगी, भांगरा, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, जीरा, काला जीरा, चित्रकमूल छाल, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, नागकेशर, श्वेत पुनर्नवा मूल, गजपीपल, मुनक्का बीजरहित, सन के बीज, बांसामूल की छाल, सेमल-मुसली,

हर्रे, आँवला, कौंच के बीज छिलका रहित-प्रत्येक १-१ तोला में भुनी भांग ११।। तोला, शक्कर ११५ तोला (१ सेर ७ छटांक), गोघृत १० तोला, मधु १० तोला लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् शक्कर की लच्छेदार चाशनी बनाकर शुद्ध भाँग तथा उपरोक्त द्रव्यों को चूर्ण और घृत मिलाकर नीचे उतार कर मधु मिला दें। शीतल होने पर १-१ माशे के मोदक बना लें। -र.यो.सा. ४

मात्रा और अनुपान- १माशा से ३ माशा तक गो-दुग्ध के साथ प्रातः काल दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से वीर्य-वृद्धि तथा वीर्यस्तम्भन होता है। यह मोदक वाजीकरण और कामाग्निसन्दीपन है। निर्बल पुरुषों को बल देता तथा उरःक्षत, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, अतिसार, अर्श, ग्रहणी, प्रमेह तथा श्लेष्मप्रकोप आदि अनेक व्याधियों को नष्ट करता है। यह बुद्धिवर्द्धक भी है।

कल्याणावलेह

हल्दी, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोद, मुलैठी, सेन्धानमक, प्रत्येक १-१ भाग लेकर महीन चूर्ण करके सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ माशे तक प्रातःसायं गोघृत मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस योग का पथ्यपूर्वक २१ दिन तक सेवन करने से मनुष्य श्रुतिधर (सुनकर ही बातों का स्मरण रखने वाला) हो जाता है। बादल तथा दुन्दुभी के समान गर्जन करने वाला एवं मत्त कोकिल के समान स्वर वाला हो जाता है। इसके अतिरिक्त जड़ता, गद्‌गद और मूकत्व रोग नष्ट करता है।

कासकण्डनाऽवलेह

बकरी के ५ सेर मूत्र को मन्दाग्नि पर पका कर गुड़पाक के समान गाढ़ा करके उसमें बहेड़े का चूर्ण ८ तोला, पीपल का चूर्ण ४ तोला, लौह भस्म ४ तोला, कटेली के फलों का चूर्ण ८ तोला मिलाकर सुरक्षित पात्र में रख लें। -वृ.यो.त.

मात्रा और अनुपान- २-४ माशे की मात्रा में शहद या गरम पानी के साथ प्रातः सायं सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पुरानी खाँसी जैसे-जो कफ बराबर बनता और गिरता रहता है, ऐसे कफ को निकलने में देर नहीं होती और उसमें किसी तरह की दुर्गन्ध भी नहीं आती, परन्तु जो कफ पुराना हो छाती में बैठ जाता है, खाँसने पर छाती में दर्द होने लगता है, ज्यादा खाँसी होने पर कफ का दुर्गन्धयुक्त टुकड़ा निकलता है, रोगी खाँसी बन्द होने के बाद हाँफने लगता है, रोगी को मन्द-मन्द ज्वर, मन्दाग्नि तथा किसी काम में मन न लगना, किसी से बात करने की भी इच्छा न होना, शरीर में रक्त का अभाव हो जाना आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे रोगों की चिकित्सा करने में वैद्य भी घबरा जाते हैं। कभी-कभी रोगी की खाँसी कुछ दब भी जाती है, परन्तु अपथ्यादि सेवन से पुनः उत्पन्न हो जाती हे। ऐसी अवस्था में इस अवलेह से काफी लाभ होता है, क्योंकि इसके सेवन से छाती में बैठा हुआ कफ पिघलकर बहुत सरलता से बाहर निकल आता है तथा नवीन विकृत कफ भी नहीं बनने देता है।

कुटजावलेह

कुटज की छाल ५ सेर लेकर जौकुट करके २५।। सेर ८ तोला जल में पकावें, ६ सेर ६ छटाँक २ तोला जल शेष रहने पर उतार कर छान लें, फिर उसमें शर्करा ८० तोला डालकर मन्द

मन्द अग्नि पर पकावें, पाक सिद्ध होने पर उसमें आकनादि पाठा, मंजीठ, बेल-गिरी, धाय के फूल, नागरमोथा, अनार का छिलका, अतीस, लोध्र की छाल, मोचरस, राल, रसौत, धनिया, खस सुगन्धवाला-प्रत्येक १-१ तोला लेकर इनका कपड़छन चूर्ण करके मिलायें। पश्चात् शीतल होने पर १० तोला मधु मिलाकर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- मधु उत्तम न मिले तो उसके स्थान पर चीनी अथवा पुराना गुड़ दें। टिकाऊ बनने के लिए चाशनी गाढ़ी बनानी चाहिए तथा घृत भी १६ तोला मिलाना चाहिए। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- ४-६ माशे की मात्रा में,शहद में मिलाकर प्रातः-सायं इसका सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से कच्चे-पक्के, रंग-बिरंगे और वेदनायुक्त सब प्रकार के अतिसार, दुःसाध्य संग्रहणी तथा प्रवाहिका (पेचिश) का नाश होता है।

मरोड़ के दस्तों में जब की भयंकर रीती से दस्त के साथ खून गिरता है, उस समय इस अवलेह के सेवन से बहुत जल्द लाभ होता है। चाहे जैसे भी खून के दस्त आते हों या जैसी भी वेदना के साथ दस्त होते हों, इसके उपयोग से शीघ्र लाभ होता है। रक्तातिसार के लिए इससे बढ़ कर दूसरी दवा नहीं है। बवासीर और रक्त-पित्त में भी इससे बहुत फायदा होता है। इसके सेवन से शरीर में ताकत आती है। चेहरे का पीलापन मिटता है ओर आँखों की ज्योति बढ़ती है। प्रमेह और कामला रोगों में भी इससे लाभ होता है। पुरानी आँव की शिकायत हो जाने पर भी इसके सेवन से कितने ही रोगियों को उत्तम लाभ होते देखा गया है।

कुष्माण्ड खण्ड

बढ़िया सफेद कोंहड़े (पेठे) के ऊपर का छिलका उतार दें। फिर इसके टुकड़े करके कलईदार ताँबे के बर्तन में जल डालकर और उसमें पेठा डालकर औंटावें, फिर उसको निचोड़कर रस निकाल कर थोड़ी देर धूप में सुखावें। इस रस-रहित द्रव्य को ४०० तोले वजन करके १ प्रस्थ (६४ तोला) घी में भूने। फिर १६ सेर पेठे के रस को आग पर पका कर ४०० तोला चीनी डालरक चाशनी बनावें। चाशनी तैयार होने पर नीचे उतार कर उसमें उपरोक्त भुना हुआ पेठा डाल दें। फिर पीपल, सोंठ, जीरा, सफेद-प्रत्येक ८-८ तोला और दालचीनी, इलायची, तेजपात, काली मिर्च तथा धनिया-प्रत्येक २-२ तोला-इनका कपड़छन चूर्ण तथा आधा प्रस्थ (३२ तोला) शहद मिला, अवलेह सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- १६ सेर पेठा के रस में चार सौ तोले चीनी डालकर चाशनी बनाने में समय बहुत लगता है एवं अधिक समय तक चीनी को आग पर पकाने से उसका स्वाद तथा गुण भी कम हो जाते हैं। अतः अकेले पेठा रस को पकाकर ४ सेर शेष बचने पर शक्कर मिला चाशनी बनाने पर स्वाद और गुण में उत्तम बनता है। इसी प्रकार उपरोक्त योग में हमने किया है। भै.रं. के मूल पाठ में कुष्माण्डरस का वजन नहीं लिखा है। उबाले हुए कुष्माण्ड को निचोड़ने पर जितना रस निकले उतना ही लेना चाहिए। यह भी ठीक है, क्योंकि चाशनी बनाने लायक तो यही पर्याप्त होता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला, बकरी दूध के अनुपान से सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस रोगी के अग्निबलानुसार यथोचित मात्रा में सेवन करने से रक्त-पित्त, क्षय, खाँसी, श्वास, छर्दि, ज्यादा प्यास लगना और ज्वर आदि का नाश होता है। यह अवलेह वृष्य, नवजीवन देनेवाला बलवर्द्धक, वर्णशोधक, उरःसन्धान-कारक, वृंहण, स्वर को

तीव्र करनेवाला, अत्युत्तम रसायन है।

रक्त-पित्त की यह बहुत अच्छी दवा है। जिन लोगों को रक्त-पित्त की शिकायत बराबर रहती हो उनके लिए इसका सेवन विशेष लाभदायक है।

इस अवलेह में कुष्माण्ड (कुम्हड़ा) प्रधान द्रव्य है। अत: इसका गुण-धर्म शीत-प्रधान है। अतएव यह रक्त-पित्तशामक है। इसलिए रक्त और पित्तप्रधान रोगों में इसका विशेष उपयोग किया जाता है।

खमीरे गावजवान (अम्बरी)

गुलाब के फूल, श्वेत चन्दन, बालछड़ (जटामांसी), उस्तखुद्दूस, आरेशम, नीलोफर, छरीला प्रत्येक १-१ तोला, बांदरजबूया १।। तोला, गावजवान के फूल ८ तोला- इन सबको ४० तोला गुलाब के अर्क में रात को भिंगों दें और प्रातः मन्द आँच पर पकावें। जब एक तृतीयांश द्रव शेष रहे तब नीचे उतार, शीतल होने पर हाथ से मसल कर कपड़े से छान लें। पश्चात् उसमें चीनी ४० तोला डालकर मन्द अग्नि पर अवलेह जैसा पकावें। जब अवलेह शीतल हो जाय तब उसमें कपूर १।। माशा, अम्बर १।। माशा और केशर ३ माशे अर्क गुलाब में पीस कर अच्छी तरह मिला दें और लकड़ी के घोंटने से इतना घोंटे कि चाशनी सफेद मायल (श्वेताभ) हो जाय। पश्चात् काँच की बरनी में भर कर सुरक्षित रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशे तक आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार दें, अनुपान में गो-दुग्ध पिलावें।

गुण और उपयोग- यह खमीरा हृदय, मस्तिष्क और पाचकसंस्थान को बल देता है। मस्तिष्क और हृदय अपना कार्य व्यवस्थित रूप में नहीं करते हैं, उस स्थिति में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। यह औषध प्राय: सभी प्रकृतिवालों के लिए अनुकूल रहती है। हृदय रोगों के लिए तो यह उत्कृष्ट दवा है ही, नेत्र दृष्टि और स्मरण शक्ति को भी बढ़ाती हैं।

खमीरे गावजवान

गावजवान का पत्ता ३।। तोला, गावजवान का फूल, छली हुई शुष्क धनियाँ (कश्नीज खुश्क मुकश्शर), श्वेत बहमन, रक्त बहमन, श्वेत चन्दन, आबरेशमन कतरा हुआ, बालंगु-बीज, फरंजमुश्क(रामतुलसी के बीज), बिल्लीलोटन (बादरंजबूया)-प्रत्येक १-१ तोला लेकर इन्हें रात को २ सेर जल में भिंगों कर प्रातः क्वाथ करें। जब तृतीयांश जल शेष रहे तब उतार कर ठण्डा होने पर मसल-छान कर १ सेर चीनी और पाव भर मधु मिलाकर चार तार की चाशनी बना कर ठण्डी होने पर बरनी में भर कर रख लें।-यू.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- इस खमीरा १ तोला में चाँदी का वर्क मिला कर १२ तोला अर्क गावजवान या ताजा जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह खमीरा दिल और दिमाग को पुष्ट करता है, दृष्टि को लाभ पहुँचता है। तृषा को नष्ट करता है और विद्वेष (वहशत) को नष्ट करता है। अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा उदर शुद्धि में सहायता पहुंचाता है।

गुलकन्द

मौसमी गुलाब के ताजे फूलों की डण्डियाँ निकाल कर फूलों की पंखुड़ियों को पृथक्-पृथक् करके, फूलों के वजन से दुगुनी चीनी मिला दें। पश्चात् कलईदार बरतन या एनामेल के तसले (पात्र) में थोड़ी-थोड़ी उन पंखुड़ियों और चीनी को मिला हाथ से मसल कर मर्तबान में डालते

जायें। कुछ दिन रखा रहने पर गुलकन्द तैयार हो जाता है।

कुछ लोग मर्तवान में नीचे थोड़ी मिश्री भी डाल दोनों की मिश्रित तह लगाते हैं। इस प्रकार तहों को लगा कर सबसे ऊपर भी मिश्री की तह लगाते हैं। फिर मर्तवान का मुँह बन्द कर कपड़मिट्टी करके एक मास तक रखते हैं।-इस प्रकार बनाते हैं।

मात्रा और अनुपान- १-२ तोला, आवश्यकतानुसार जल से या दूध से दें।

गुण और उपयोग- इसका उपयोग करने से दाह, पित्तदोष जलन, आन्तरिक गरमी बढ़ना और कब्ज के विकार नष्ट होते हैं तथा मस्तिष्क को शान्ति पहुँचाता है। इसके सेवन से स्त्रियों के गर्भाशय की गरमी शमित होकर अत्यार्तव (मासिक धर्म में अधिक रक्त जाना) रोग नष्ट होता है। हाथ-पैर और तलवों में जलन रहना, आँखों में जलन होना तथा गरमी के कारण त्वचा का रंग काला पड़ जाना, शरीर में अन्हौरियाँ (छोटी-छोटी दानेदार पिटिकायें) होना आदि विकारों में भी इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है।

गुलकन्द (प्रवालमिश्रित)

पुर्वोक्त विधि से बनाये हुए १०० तोला गुलकन्द में १ तोला ४ रत्ती प्रवाल पिष्टी मिलाकर रखने से गुलकन्द प्रवाल मिश्रित बन जाता है।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे १ तोला तक आवश्यकतानुसार जल या दूध के साथ प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- इस गुलकन्द में प्रवाल का मिश्रण है, जिसके कारण यह प्रवाल-रहित गुलकन्द से अधिक गुणकारी है। इसमें गुलकन्द के गुणों के साथ-साथ प्रवाल के गुणों का पूर्ण समावेश रहता है। जिससे यह कब्ज, प्यास की अधिकता, गरमी अधिक बढ़ जाना, ब्लडप्रेशर तथा दाह, पित्तदोष, रक्तपित्त आदि विकारों को नष्ट करता है। स्त्रियों के गर्भाशयिक दोषों को नष्ट करता है। गरमी के कारण आँखों में जलन होना, आँखों से गरम पानी निकलना, पेशाब लाल, गरम एवं जलन के साथ होना, पसीना अधिक निकलना, खाज-खुजली, अन्हौरी निकलना, त्वचा का रंग काला पड़ जाना आदि विकारों में उत्तम गुणकारी है। कितने ही लोग गरमी के दिनों में प्रातःकाल नित्य इसे सेवन करते हें। जिससे गरमी के कारण होने वाले विकारो का भय नहीं रहता है।

गोखरू पाक

६४ तोले गोखरू के महीन चूर्ण को २५६ तोला दूध में पका, खोवा बना कर इसे ३२ तोला गो-घृत में भून लें। फिर उसमें खैरसार (कत्था), लौंग, लौह भस्म, काली मिर्च, कपूर, सफेद आक की जड़, समुद्रशोख, सफेद जीरा, स्याह जीरा, हल्दी, आँवला, पीपल, नागकेशर, जावित्री, जायफल, अजवायन, खस, सोंठ और करंजफल की गिरी-प्रत्येक समभाग (१-१ तोला) लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के समान भाग मिश्री या चीनी की चाशनी बना कर उपरोक्त सब चीजें मिला दें। बाद में चीनी या मिश्री से आधा भाँग का चूर्ण लेकर मिला करके सुरक्षित रख लें।-यो. त.

वक्तव्य- मूलग्रंथ पाठ में प्रक्षेप औषधियों का परिमाण नहीं लिखा है। हमने अनुभव के आधार पर निश्चित किया है।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे तक दूध या ठण्डे पानी के साथ लें।

गुण और उपयोग- इसका उचित मात्रा में प्रातः सेवन करने से यह अर्श प्रमेह और क्षय का

नाश करता है, शरीर को पुष्ट करता है तथा काम-शक्ति बढ़ाता है।

इसका प्रभाव मूत्रपिण्ड और मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्मल त्वचा पर विशेष होता है। यह मूत्रपिण्ड को उत्तेजित करता है। बस्तिशोथ अथवा मूत्रपिण्ड की सूजन में जब कि मूत्र दुर्गंधपूर्ण और गन्दला आता हो, इसके सेवन से लाभ होता है। यह पौष्टिक और बलवर्द्धक है। अतएव, शुक्रजनित या प्रमेह रोग से उत्पन्न दुर्बलता को भी दूर करता है। इसी तरह स्त्रियों के गर्भाशय के विकार को दूर कर यह गर्भाशय को सशक्त बना देता है।

चन्दनादि अवलेह

बिजौरा नींबू का रस १ सेर, अनार का रस आधा सेर, नारियल का पानी आधा सेर, चीनी आधा सेर, चन्दन सफेद, वंशलोचन, धनियाँ, अनन्तमूल, शीतल चीनी, खस, केशर, गुलाब के फूल और गिलोय-सत्व-प्रत्येक १-१ तोला लें।

इसे बनाने की विधि यह है कि एक चीनी मिट्टी के पात्र में बिजौरा नींबू का रस अनार का रस, नारियल का पानी तथा चीनी डाल कर चाशनी बना लें। जब चाशनी ठीक हो जाय, तब नीचे उतार कर उक्त दवाओं का महीन (कपड़छन) चूर्ण मिला कर अवलेह तैयार करके सुरक्षित रख लें।-आरोग्य प्रकाश

मात्रा और अनुपान- १-२ तोला प्रातः, सायं जल या दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से हृदय-रोग, भ्रम, मूर्च्छा, वमन और भयंकर दाह का नाश होता है। अम्लपित्त में इसे प्रवाल भस्म चन्द्रपुटी २ रत्ती मिला कर सेवन करना लाभदायक है। इसके सेवन से पाचनशक्ति बढ़ती है तथा अरुचि और मन्दाग्नि नष्ट होती है।

चित्रक हरीतकी

चित्रक के मूल क्वाथ ४०० तोला, आँवले का स्वरस अथवा क्वाथ ४०० तोला, गिलोय का स्वरस अथवा क्वाथ ४०० तोला, दशमूल का क्वाथ ४०० तोला, बड़ी हर्रे का चूर्ण २५६ तोला, गुड़ ४०० तोला, इन सब को एकत्र करके पकावें। जब अवलेह जैसा हो जाय, तब उसमें सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, दालचीनी, तेजपात और इलायची-प्रत्येक ८-८ तोला और यवक्षार २ तोला लेकर इनका कपड़छन किया हुआ चूर्ण मिला कर रखें। दूसरे दिन उसमें ३२ तोला शहद मिला कर काँच के बरतन में भर दें।

वक्तव्य- शहद उत्तम न मिले तो इसके स्थान पर गुड़ चाशनी बनाते समय ही डाल दें। इसमें ६४ तोला घी और मिलाने से विशेष लाभदायक बनता है। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ६-६ माशा सबेरे-शाम गाय के गरम किये हुए दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- पुराने और बारम्बार होने वाले प्रतिश्याय (जुकाम) में इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है। खाँसी, पीनस, कृमि रोग, गुल्म, उदावर्त, अर्श, श्वास, मन्दाग्नि में भी यह श्रेष्ठ लाभ करती है।

आचार्य यादवजी कहते हैं- इसके सेवन काल में नाक में दिन में दो बार षड़बिंदु तैल डालने से विशेष लाभ होता है, इस योग में प्रक्षेप में कायफल का चूर्ण २ तोला और मिला देने से अधिक लाभ होता है।

पुराने या बिगड़े हुए जुकाम में यह बहुत ही लाभदायक है। सेवन करते समय, इसमें अभ्रक भस्म एक रत्ती मिला ली जाय तो इसके गुण भी बढ़ जाते हैं।

चोपचीनी पाक

चोपचीनी का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ४८ तोला, पीपल, पीपलामूल, मिर्च, सोंठ, दालचीनी, अकरकरा और लौंग का चूर्ण १-१ तोला तथा इन सब के बराबर चीनी लेकर चाशनी बना, उसमें सब चूर्ण मिला १-१ तोला के लड्डू बना लें। -यो.र

मात्रा और अनुपान- १-१ लड्डू प्रातः सायं चोपचीनी के क्वाथ या उष्ण जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से उपदंश (आतशक), व्रण, कुष्ठ, वातव्याधि, भगन्दर, धातुक्षय से उत्पन्न खाँसी, जुकाम और यक्ष्मा का नाश हो, शरीर पुष्ट हो जाता है।

नोट- प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रंथों में 'चोपचीनी' का उल्लेख नहीं मिलता है। संग्रह काल (मध्यकाल) में भाव मिश्र ने 'भावप्रकाश' में इसका उल्लेख किया और तभी से यह अपने विशेष गुण के कारण आयुर्वेदीय औषध कल्पों में आ गयी।

यूनानी ग्रंथ "मखजनुल अदबिया" नामक ग्रंथ में इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि- यह एक जाति की लता की जड़ है, जो चीन से आती है। इसके टुकड़े प्रायः एक बालिस्त या उससे छोटे भी होते हैं। कोई टुकड़ा कम गठन वाला, कोई अधिक गठानवाला, कोई चिकना, कोई खुरदरा, कोई वजनदार, कोई हलका, कोई सख्त, कोई मुलायम, कोई गुलाबी, कोई सफेद या काला रंग का होता है। इनमें अच्छी चोपचीनी वह होती है जो गुलाबी रंग की, स्वाद में मीठी, चिकनी, रेशा और गाँठरहित तथा पानी में डालने से डूब जाती हो। इसके अतिरिक्त जो हो उसको खराब समझे।

गुण और उपयोग- इस पाक में चोपचीनी प्रधान द्रव्य है, अतः सुजाक की वजह से पैदा हुई सन्धियों की सूजन और सन्धियों की अकड़न में तथा उपदंश की दूसरी अवस्था में इससे बहुत लाभ होता है। सुजाक और उपदंश की वजह से पैदा हुई रस-ग्रन्थियों की सूजन में इसके सेवन से सर्वप्रथम दर्द की कमी होती है पश्चात् सूजन उतरती है।

यह शरीर की सन्धियों और शिराओं के अन्दर प्रवेश करके अविकृत पित्त को सहायता पहुंचाता है, खून को साफ करता है, सन्धियों को मजबूत करता और पेशाब खुलकर लाता है। लकवा, हाथ-पैरों में सूजन और उपदंश की वजह से होनेवाले सिर-दर्द पुराना नजला आदि रोगों में यह लाभ करता है। खून को शुद्ध करना इसका प्रधान कार्य होने से फोड़-फुन्सी, घाव, खुन की गर्मी से उत्पन्न होने वाले रोगों में विशेष फायदा करता है। यह कामशक्तिवर्द्धक, वाजीकरण करनेवाला तथा शरीर को पुष्ट करने वाला है।

च्यवनप्राशावलेह

बेल की छाल, अरणी, अरलू, खंभारी, पाटला, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, काकड़ासिंगी, भुई आँवला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, गिलोय, बड़ी हर्रे, बला, ऋद्धि-वृद्धि (दोनों के अभाव में वाराहीकन्द), जीवक, ऋषभक (दोनों के अभाव में विदारी कन्द), कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, महामेदा (दोनों के अभाव में शतावरी), छोटी इलायची, कमल, सफेद चन्दन, विदारीकन्द, अडूसे की जड़, काकोली, क्षीर-काकोली (दोनों के अभाव में असगन्ध), काकनासा- प्रत्येक दवा का जौकुट चूर्ण ५-५ तोला लें।

पके हुए उत्तम आँवले गिन कर ५०० तथा जल १६ सेर, सब को कलईदार बरतन में डाल

कर पकावें। जब चौथाई पानी रह जाय, (ग्रंथ में अष्टमांश पानी रखने का पाठ है) तब चूल्हे पर से उतार लें और आँवले को एक तरफ रख कर पानी को छान कर सुरक्षित रख लें।

अब आँवले की गुठली निकाल कर एक मोटे कपड़े में रगडें ताकि आँवले का छिलका और तन्तु (रेशा) अलग हो जाय। फिर कपड़े से निकले हुए गुर्दे में गाय का घृत ३५ तोला डाल कर मन्द-मन्द आग से तब तक भूनते रहें, जब तक पानी का अंश जल न जाय। पानी का अंश जल जाने पर, घी बर्तन में फिर दिखने लगता है। अच्छी तरह पक जाने पर उतार कर नीचे रख दें। ऊपर जो काढ़ा (पानी) सुरक्षित रखने को लिखा है उसमें ३ सेर आधा पाव चीनी या मिश्री डाल कर चाशनी बना लें, तब उसमें भूने हुए आँवले मिला दें और वंशलोचन २० तोला, पीपल १० तोला, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर और छोटी इलायची में प्रत्येक ३-३ शाण लेकर इनका कपड़छन चूर्ण कर मिला दें। अवलेह जब ठंडा हो जाये, तब ३० तोला शहद मिलाकर सुरक्षित रख लें। -शा.ध.सं.

विशेष - लौंग का चूर्ण २।। तोला प्रक्षेप में देने से विशेष गुणकारी बनता है।

नोट- च्यवनप्राशावलेह में आँवला जितना पुष्ट और पकार हुआ रहेगा उतना ही अच्छा अवलेह तैयार होगा, क्योंकि इसमें आँवला ही प्रधान द्रव्य है। साधारणतया आँवला संग्रह करने वाले पके हुए आँवले को बाँस से झाड़ते हैं, जो जमीन पर गिर कर फूट-फूट कर रसहीन हो जाते हैं, और इनमें मिट्टी कंकड़ आदि भर जाते हैं। ये आँवले जल्दी ही सड़ जाते हैं। यदि सुखा कर रखें तो, इसमें बनी दवा का स्वाद खराब हो जाता है तथा उचित गुण भी नहीं करता है। अतएव च्यवनप्राश के लिए आँवले की उत्तम संग्रह-विधि यह है कि आँवले के पेड़ के नीचे जाल लगाकर एक आदमी पेड़ पर चढ़ जाय और डाल तथा टहनियों को जोर से हिला दें। जोर से हिलाने से पके हुए आँवले जाल में गिर जायेंगे। ये आँवले च्यवनप्राश के लिए उत्तम होते हैं।

आँवले भी देशी जंगली और कलमी (बड़े) इस प्रकार दो तरह के होते हैं, गुणों में देशी आँवले अच्छे होते हैं। अतः च्यवनप्राश बनाने में देशी आँवला ही काम में लेना चाहिए। देशी आँवला वजन में एक तोला से १।। तोला तक के होते हैं, किन्तु अधिकतर १ या १। तोला के ही होते हैं। संख्या से लेने पर हर बार वजन में कुछ-न-कुछ कमी-बेशी हो जाती हैं इससे च्यवनप्राश का स्वाद भी हर बार बदल जाता है। सेवन करने वाले प्रायः इसकी शिकायत करते हैं। अतः एक आँवले का वजन १। तोला मान कर ५०० आँवला की बजाय वजन से ७ सेर १३ छटाँक आँवला लेना ज्यादा अच्छा है। इस योग को कितनी ही बार बनाकर हमनें अनुभव किया है कि इसमें घी का परिमाण कम होने से आँवला पिट्ठी की सिकाई ठीक नहीं हो पाती है और इसलिये चरक में घी और तेल दोनों को मिलाकर १२ पल (छटाँक) देने का उल्लेख है, किन्तु आचार्य शारंगधर तेल देने के पक्ष में नहीं हैं। अतः घृत को ही दुगुने परिमाण में अर्थात् १४ पल (छटाँक) देने से ठीक रहेगा। इसी प्रकार चीनी का परिमाण भी कम होने के कारण स्वाद में अम्लता एवं तीक्ष्णता अधिक रहती है। जिसके कारण लोग व्यवहार करने में हिचकिचाते हैं। यदि इसमें चीनी का परिमाण भी दुगुना या अढ़ाई गुना, करके बनाया जाये तो उत्तम तथा स्वादिष्ट बन जाता है। अम्लता और तीक्ष्णता काफी कम हो जाती है। प्रायः वैद्य दुगूनी या अढ़ाई गुनी चीनी डाल कर भी बनाते हैं, बल्कि कुछ लोग तो अढ़ाई या तीन गुना चीनी डालकर भी बनाते हैं। शहद अच्छा नहीं मिल पाता है। अतः बाजारु, रद्दी और खराब शहद डालने की अपेक्षा शहद के स्थान पर भी चीनी ही डालनी उत्तम हैं।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला प्रातः समय गाय का बकरी के दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- अग्नि और बल का विचार कर क्षीण पुरुष को इस रसायन का सेवन करना चाहिए। बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण, स्त्री-संभोग से क्षीण, शोषरोगी, हृदय के रोगी और क्षीण स्वरवाले को इसके सेवन से काफी लाभ होता है। इसके सेवन से खाँसी, श्वास, प्यास, वातरक्त, छाती का जकड़ना, वातरोग, पित्तरोग, शुक्रदोष और मूत्रदोष नष्ट हो जाते हैं। यह बुद्धि और स्मरण-शक्तिवर्द्धक तथा मैथुन में आनन्द देने वाला है। इससे कान्ति, वर्ण और प्रसन्नता प्राप्त होती है तथा मनुष्य बुढ़ापा से रहित हो जाता है।-शा.सं.

च्यवन ऋषि इसे खाकर बूढे से जवान हो गये थे, अतः इसका नाम च्यवनप्राश हुआ। यह फेफड़े को मजबूत करता है, दिल को ताकत देता है, पुरानी खाँसी और दमा में बहुत फायदा करता है तथा दस्त साफ लाता हे। अम्लपित्त में यह बड़ा फायदेमन्द है, वीर्य विकार और स्वप्नदोष नष्ट करता है, राजयक्ष्मा में लाभकारी है एवं बल वीर्य, कान्ति शक्ति और बुद्धि को बढ़ाता है। बच्चों के अंगों-प्रत्यंगों को बढ़ाता है।

उत्तम च्यवनप्राश देखने में गहरे लाल रंग का सुगन्धित, मीठा, और आँवले के खट्टे मीठे स्वाद से पूर्ण होता है तथा दाँतों में वंशलोचन की किरकिराहट या जलांध की गन्ध मुँह में नहीं आती है।

च्यवनप्राश केवल बीमारों की ही दवा नहीं है, बल्कि स्वस्थ मनुष्यों के लिये उत्तम खाद्य भी है। जवानों की अपेक्षा वृद्ध इसका उपयोग अधिक करते हैं। ऐसा करने से उनका पेट साफ रहता है तथा भूख लगती है। रस-रक्तादि धातुएँ पुष्ट होने से शरीर में शक्ति का संचय होता है। स्मरणशक्ति तथा शरीर में स्फूर्ति की वृद्धि होती है।

किसी-किसी की धारणा है कि च्यवनप्राश शीत ऋतु में ही सेवन करना चाहिए, परन्तु यह सर्वथा भ्रान्त है। इसका सेवन सब ऋतुओं में किया जा सकता है। ग्रीष्म ऋतु में भी गरम नहीं करता, क्योंकि इसका प्रधान द्रव्य आँवला है, जो शीतवीर्य होने से पित्तशामक है।

सिर्फ आँवले का ताजा फल प्यास को शान्त करनेवाला, पेशाब खुलकर लाने वाला तथा अनुलोमक है। बाहरी और भीतरी प्रयोग में शीतल होने से आँवला पित्त को शान्त करता है। गरमी या पित्त प्रकोप से यदि हृदय में धड़कन और शूल हो तो च्यवनप्राश का सेवन करावें। पैत्तिक विकारों में इसे धारोष्ण या गरम करके ठण्डा किये हुए दूध के साथ दें। रक्त प्रदर, खूनी बवासीर, नक्सीर फूटना, पेशाब के रास्ते खून और पीब जाना आदि पित्त-प्रकोप जन्य रोगों को शान्त करने के लिए इसका सेवन किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से बचने के लिए च्यवनप्राश का सेवन करना बहुत अच्छा है।

पुराने रोगियों का रोग छूटने के बाद रोगियों की निर्बलता दूर करने के लिए इसका प्रयोग बहुत लाभप्रद है।

आँवले में जितनी अधिक मात्रा में खाद्योज (विटामिन)'सी' रहता है उतना सम्भवतः किसी दूसरे फल में नहीं होता। ताजे आँवले के रस में नारंगी के रस की अपेक्षा बीस गुना अधिक विटामिन 'सी' रहता है। एक आँवले में डेढ़-दो सन्तरों के बराबर विटामिन 'सी' रहता है। फल और सब्जियों को गरम करने, पकाने या सुखाने से उनके खाद्योज नष्ट हो जाते हैं, परन्तु आँवला इस विषय का अपवाद है। पकाने या सुखाने पर भी इसका खाद्योज नष्ट नहीं होता । यही कारण है कि जो ताजे आँवले का च्यवनप्राश नहीं बना सकते, वे सूखे आँवले को भिंगों कर च्यवनप्राश

बना, अपने मरीजों को देते हैं, यद्यपि ताजे आँवले की अपेक्षा यह गुण और स्वाद में कुछ न्यून अवश्य होता है, परन्तु तात्कालिक अभाव-पूर्ति के लिए उत्तम है। अत: जहाँ तक सम्भव हो ताजे आँवले से बने च्यवनप्राश का उपयोग करना चाहिए।

विटामिन "सी" ज्यादा होने से ही इसका प्राचन-संस्थान पर स्थायी रूप से पड़ता है, महास्रोत की प्राचीरों में बल आता है, पाचक-रसों की उत्पत्ति पर्याप्त मात्रा में होती है। अन्त्रों द्वारा पाचन, शोषण और मलो का निर्हरण नियमित रूप से होता रहता है।

फेफड़े (फुफ्फुस) पर भी इसका प्रभाव बहुत पड़ता है। अतएव खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, उर:क्षत आदि में इससे काफी लाभ होता है।

हृदय और रक्तवह संस्थान पर भी इसका असर होता है। अतएव हृदय की धड़कन, हृदय निर्बल हो जाना, रक्त-संचार में बाधा पड़ना, रक्त-संवहन क्रिया ठीक-ठीक न होना आदि विकारों में इससे लाभ होता है।

यह रसायन है, अतएव शुक्रजनित विकारों में तथा दुर्बल और वृद्ध मनुष्य के लिए अमृत-तुल्य कार्य करता है।

क्षय की प्रथमावस्था में यदि केवल धातुक्षीणता ही उसका प्रधान स्वरूप हो एवं क्षय के अन्यान्य लक्षण उत्पन्न नहीं हुए हो, साधारण कृशता, कमजोरी एवं कभी-कभी ज्वर का होना, थोड़े ही परिश्रम से ज्वर का बढ़ जाना या शैथिल्य-विशेष की प्रतीति होना आदि दशा में जो औषध धातु को पुष्ट करें, वहीं लाभदायक होती है, परन्तु उस औषध में विशेष उत्तेजक गुण नहीं होना चाहिए। हाँ, धातुओं को निर्मल करने का गुण अवश्य होना चाहिए, क्योंकि क्षीण हुए नि:सत्व धातु-घटकों के शरीर में वैसे ही बने रहने से भविष्य में राजयक्ष्मा की विशेष संभावना रहती है। अत: धातु-घटकों को निर्मल कर उनमें उत्पादन-शक्ति की वृद्धि करने वाली रासायनिक औषधें इस अवस्था में विशेष लाभ करती है।

च्यवनप्राशावलेह उक्त-गुणविशिष्ट आयुर्वेदीय उत्तम औषध हे। इसमें लगभग ४० द्रव्यों का संकलन है, जिनमें प्रमुख द्रव्य आँवला है, जो शारीरिक धातुओं को स्वच्छ कर उनकी विदग्धता को दूर करता हैं और परिणाम में अभिसरण एवं उत्पादन-क्रिया की वृद्धि कर धातु-पुष्टि करता है। आँवला के इसी गुण के सहायक द्रव्य च्यवनप्राश में मिलाये जाते हैं। अत: इस एक ही औषध से क्षय की प्रारम्भिकावस्था में उत्तम लाभ होता है। यदि सिर्फ च्यवनप्राश ही देना हो तो २ से ३ तोले की मात्रा में दें। इसमें सारकगुण होने से जिनका कोठा मुलायम हैं, उन्हें इसके प्रयोग से २-३ दस्त हो जाते हैं, किन्तु इससे कोई हानि नहीं होती। कुछ दिनों के बाद ज्यादा दस्त लगना अपने आप ही बन्द हो जाता है, जिनक कोठा सख्त हो या जिन्हें मलावरोध की शिकायत हो, उन्हें चाहिए कि दिन में च्यवनप्राश की मात्रा कम लें और रात्रि में अधिक लें, इससे प्रात: खुलकर दस्त आता है।

उक्त अवस्था में यदि अजीर्ण, आध्मान आदि विकार हो तो उनके विनाशार्थ भोजनोत्तर २।। तोला द्राक्षासव बराबर जल मिलाकर सेवन करें।

शारीरिक धातुओं एवं इन्द्रियों की शक्ति घंट जाने से उसी प्रमाण में पचनेन्द्रियों की शक्ति का भी ह्रास होता है और ठीक समय पर आहार न पचना, खट्टी डकारें आना, कण्ठ में जलन, दाह होना, मुँह में कफ लिपा-सा मालूम होना, प्यास, जी मिचलाना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में प्रात:सायं च्यवनप्राश तथा भोजानोत्तर द्राक्षासव के सेवन से बहुत लाभ होता है। इससे आभ्यन्तरिक धातु-पोषणकार्य को भी मदद मिलती है।

क्षय की इसी प्रारम्भिक अवस्था में च्यवनप्राश के साथ मुक्ताभस्म, प्रवाल भस्म तथा मृगश्रृंग आदि भस्मों का भी उपयोग किया जाता है। इन भस्मों का मुख्य गुण अन्न पचन करना तथा पचनेन्द्रियों और रस-रक्तादि धातुओं की अस्वाभाविक विकारी अम्लता तथा विषमता एवं क्षीणता को नष्ट करना है। मौक्तिक और प्रवाल में ये गुण विशेष पाये जाते हैं, परन्तु ध्यान रहे, पाचन-क्रिया को सुधारने के लिए मौक्तिक भस्म, शंख भस्म या कपर्दक भस्म का प्रयोग करना विशेष हितकर है और विदाहावस्था के प्रतीकारार्थ मौक्तिक सा प्रवाल भस्म का प्रयोग लाभदायक है। धातुओं की विषमता एवं क्षीणता को नष्ट करने के लिये भी मौक्तिक, प्रवाल, अभ्रक भस्म विशेष उपयोगी है।

मृगश्रृंग भस्म का सामान्य स्वरूप यद्यपि उपर्युक्त प्रवालादि भस्मों जैसा ही है, तथापि इसका कार्य कुछ भिन्न प्रकार का होता है। मौक्तिक, प्रवाल, शंख या शुक्ति में जितना पाचक और विदाहशामक गुण है, उतना इसमें नहीं है, परन्तु शरीरान्तर्गत अस्थिमय द्रव्यों का पोषण कार्य 'मृगश्रृंग' भस्म के द्वारा उत्तम होता है। धातु-क्षीणावस्था में तरुणास्थि या हड्डियों की संधियों में जो मृदु अवयव या भाग होता है, वह जब निःसत्व हो जाता है, मृगश्रृंग भस्म का प्रयोग विशेष लाभदायक है।

प्रवाल,मौक्तिक्या, मृगश्रृंग भस्म इनमें से जितना प्रयोग करना अभीष्ट हो, उसे च्यवनप्राश के साथ निम्न प्रकार से दें।

प्रातः सायं च्यवनप्राश २ से ३ तोला तक (अनुपान दूध या जल) तथा दोपहर और रात्रि में भोजनोपरान्त द्राक्षासव १।। से २ तोला तक चौगुने जल में मिलाकर दें। मृगश्रृंग भस्म देना हो तो प्रातः सायं च्यवनप्राश में मिलाकर दें और प्रवाल या मौक्तिक पिष्टी देनी हो तो द्राक्षारिष्ट में मिला कर सेवन करायें।

धातु-क्षीणता की अवस्था में यदि शुक्रक्षय की अधिकता हो, तो च्यवनप्राश और द्राक्षारिष्ट के साथ स्वर्णराजवंगेश्वर की योजना विशेष लाभदायक है। सुवर्ण बंग के ऊपर पारद का संस्कार होने से केवल वंग भस्म की अपेक्षा यह ज्यादा लाभ करता है, अभाव में बंग भस्म भी लिया जा सकता है।

ध्यान रहे, धातुक्षीणता की अवस्था में च्यवनप्राश विशेष गुणदायक हैं, परन्तु यदि क्षयरोग ने अपना पूर्ण स्वरूप धारण कर लिया हो अर्थात् ज्वर, कास आदि उपद्रव पूर्णरूप से उत्पन्न हो गये हों तो च्यवनप्राश से उतना ठीक-ठीक लाभ नहीं होगा, क्योंकि क्षय की ऐसी अवस्था में उन औषधियों का प्रयोग विशेष हितकारी होता है, जिसमें पौष्टिक गुणों की अपेक्षा विषैली अवस्था का प्रतिबंधक या क्षय-कीटाणुनाशक गुण अधिक प्रमाण में हो। च्यवनप्राश में यह गुण विशेष प्रमाण में नहीं होता, यह तो केवल धातुक्षय की अवस्था में या क्षय की प्रथमावस्था में अपने पौष्टिक गुणों से उत्तम कार्य कर सकता है। बाद की अवस्था में वह उतना सफल नहीं होता।

उपर्युक्त धातुक्षीणता की अवस्था में या क्षय की प्रथमावसथा में रक्त-क्षीणता की विशेषता हो (शरीर श्वेत हो गया हो या हाथ-पाँव और मुख पर सूजन आ गयी हो) तो अभ्रक, लौह, या मण्डूर भस्म का उपयोग च्यवनप्राश और द्राक्षारिष्ट के साथ करें अभ्रक और लोहा का उपयोग रक्त-वृद्धि के लिए उत्तम होता है। इसमें भी लौह की अपेक्षा अभ्रक अधिक गुणदायक है। अतः प्रातः सायं च्यवनप्राश के साथ अभ्रक १-१।। रत्ती की मात्रा में या लौह अथवा मण्डूर भस्म १-२ रत्ती की मात्रा में सेवन करें। इसमें अभ्रक जितना अधिक पुट वाला होगा उतना ही विशेष लाभदायक होगा। स्वर्ण बसन्त मालती और अभ्रक भस्म दोनों एक-एक रत्ती मिलाकर च्यवनप्राश १ तोला और मधु ३ माशा में मिला कर सुबह-शाम देने से भी क्षय रोग में विशेष गुण करता है। हमने क्षय की प्रथमावस्था के कई रोगियों को इसे सेवन कराकर ठीक किया है।

च्यवनप्राश (स्पेशल)

बेल की छाल, अरणीमूल, सोनापाठा (अरलू) छाल, खम्भारी छाल, पाटला-छाल, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, पीपल, गोखरू, छोटी-बड़ी कटेरी, काकड़ासिंगी, भुई आँवला, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्करमूल (कूठ), अगर, गिलोय, बड़ी हर्रे, खरेटी (पंचांग), ऋद्धि वृद्धि (दोनों के अभाव में बाराहीकन्द), जीवन, ऋषभक, (दोनों के अभाव में विदारीकन्द), कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, महामेदा, (दोनों के अभाव में शतावरी), इलायची, कमल का फूल, सफेदचन्दन, विदारीकन्द, अडूसा की जड़, काकोली, क्षीरकाकोली (दोनों के अभाव में असगन्ध), काकनासा प्रत्येक ५-५ तोला लेकर जौकुट करके यह क्वाथ तथा ताजा हरा पुष्ट आँवला ७।। सेर लें। प्रथम क्वाथ द्रव्य-चूर्ण को १६ सेर जल में ताँबे की कलईदार अथवा स्टेनलेस स्टील की कड़ाही को साफ करके उसमें उक्त ७।। सेर आँवला को ८ सेर जल में पकावें। जब आँवला पककर हाथ से दबाने पर कली अलग होने लग जाय, तब उतारकर जल से अलग निकालकर किसी बाँस या बेंत की टोकरी में रख लें। फिर एक कलईदार ताँबे या पीतल के भगोने (पात्र) के मुँह पर लोहे के कलईदार तारों की जाली की छलनी रखकर उस पर आँवले डालते जायें और हाथों से रगड़ (मसल-मल) कर सारे आँवलों को छान पिट्ठी बना लें। गुठली और रेशा जो छलनी पर बाकी बचे, उसे फेंक दें।

अब इस आँवले की बनी पिट्ठी में से ५ सेर १० छटाँक पिट्ठी (लगभग इतनी ही तैयार होती है, किन्तु औषध में आँवले का प्रमाण सदा एक जैसा रहे, अतः तौलकर लेना अच्छा है। इसलिए पिट्ठी को तोलकर ही लें।) पिट्ठी को कड़ाही में डाल कर १४ छटाँक घी मिला कर भट्ठी या चूल्हे पर चढ़ाकर आँच देकर सेंक (भून) लें। भूनते समय पिट्ठी को लकड़ी (सागवान, शाल, सीसम, धव आदि की लकड़ी) के बने कोंचे से खूब चलाते रहें, ताकि कड़ाही में लगे नहीं एवं जलने न पावे। सिकते-सिकते जब पिट्ठी से घी अलग होने लगे, तब कड़ाही से पिट्ठी (घी सहित) का निकालकर किसी कलईदार बरतन में भरकर रख लें। पश्चात् कड़ाही को साफ करके पुनः भट्ठी पर चढ़ाकर उसमें उस कपड़े से छने हुए क्वाथ को डालकर चीनी १० सेर तथा केशर १।। तोला मिल कर चाशनी बनायें। चाशनी अवलेह योग्य गाढ़ी तैयार हो जाने पर उसमें सेंकी हुई आँवले की पिट्ठी मिलाकर लकड़ी के कोंचें से बराबर घोंटते रहें। जब च्यवनप्राश पककर अवलेह तैयार हो जाये तब कड़ाही को उतारकर कुछ ठण्डा होने दें। पश्चात् उसमें पीपल १० तोला, दालचीनी ४ माशा, इलायची छोटी ४ माशा, तेजपात ४ माशा, नागकेसर ४ माशा, लौंग २।। तोला इन सबका महीन चूर्ण बनाकर मिलावें तथा वंशलोचन चूर्ण ८ तोला, शुक्ति भस्म ८ तोला, अभ्रक भस्म १० तोला, श्रृंगभस्म १० तोला, मकरध्वज (खरल में खूब महीन पीसा हुआ) २।। तोला, चाँदी का वर्क (मध्यम साइज के) ७५ नग डालकर अच्छी तरह मिलाकर सागवान काठ के बने ड्राम (टंकी) या चीनी मिट्टी के पात्र में भरकर रख लें। -शा.सं. के योग से किंचित् परिवर्तित-परिवर्द्धित

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से एक तोला तक सुबह-शाम मधु मिलाकर या धारोष्ण अथवा गरम दुग्ध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस स्पेशल च्यवनप्राश में पूर्वोक्त च्यवनप्राश के योग से अतिरिक्त मकरध्वज, अभ्रक भस्म, श्रृंगभस्म, शुक्तिभस्म, चाँदी के वर्क, केशर आदि विशिष्ट गुणकारी द्रव्यें को मिलाया जाता है, जिससे इनके गुणों में अत्यन्त वृद्धि हो जाती है और यह शीघ्र लाभ भी करता है। तथा इसमें मकरध्वज और अभ्रक भस्म जैसे विशिष्ट रासायनिक द्रव्यों का

सम्मिश्रण होने से इसका लाभ भी स्थायी होता है। किसी भी कारण से प्राप्त शारीरिक और मानसिक निर्बलता को दूर कर, शरीर को हृष्ट-पुष्ट बना देता है। इसका प्रभाव रस-रक्तादि सातों धातुओं, हृदय, मस्तिष्क, स्नायुमण्डल, फुफ्फुस, आमाशय, इन्द्रियों (कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय) पर विशेष रूप से होता है। राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, अम्लपित्त, पाण्डु, कामला, हलीमक, उन्माद, अपस्मार, स्मरणशक्ति की कमी, स्नायु-दौर्बल्य, हृदयरोग, धातुक्षीणता, शुक्रदोष, प्रमेह, स्वरभंग, अरोचक आदि विकारों को नष्ट करता है। स्त्रियों के गर्भाशय और पुरुषों के वीर्य-दोष को मिटाकर उनको सन्तान उत्पन्न करने योग्य बनाता है। शुक्र और ओज की वृदि्ण कर बल, वर्ण, कान्ति और लावण्ययुक्त बनाता है। यह रसायन और वाजीकरण तथा बलवर्धक है।

छुहारा पाक

गुठली रहित छुहारा ८० तोला और पीपल ५ तोला लेकर दोनों को अलग-अलग सिल पर पीस लें, फिर इसे चौंगुनू दूध में पकावें, जब खोवा तैयार हो जाय, तो ४० तोला घृत में भूनें, फिर सब औषधो से दूनी मिश्री या चीनी लेकर उसकी चाशनी बना, उसमें उक्त खोवा तथा दाख, दोनों मूसली, लौंग, जायफल, जावित्री, तेजपात, बला और केशर का महीन चूर्ण, वंग, लौह तथा अभ्रक भस्म एवं पिस्ता, बादाम, चिरौंजी, अखरोट की गिरी, गम्भारी के फल-प्रत्येक २।।-२।। तोला लेकर इनमें कूटने वाली दवाओं का कपड़छन चूर्ण बनाकर और शेष बादाम आदि के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर अवलेह में मिला कर पाक तयार कर लें।

वक्तव्य- इस योग में चीनी सभी के वजन से दुगुनी दी जाती है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक जल या गो-दुग्ध से।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से मनुष्य हृष्ट-पुष्ट होता है और रति-शक्ति बढ़ती है तथा स्वप्नदोषादि रोग नष्ट होते हैं।

शुक्रक्षीणता के कारण पुरुष की तथा रजोदोष के कारण स्त्री की उत्पन्न हुई कमजोरी इसके सेवन से अवश्य दूर हो जाती है। स्वस्थ मनुष्यों के लिए भी यह उत्तम पौष्टिक का काम करता है। इसका सेवन शीत ऋतु में करने से विशेष लाभ होता है।

जीरकादि अवलेह

जीरे का महीन चूर्ण ८० तोला, लोध्र का कपड़छन किया हुआ चूर्ण ४० तोला इनको ४० तोले घृत में भूनें, फिर दूध ४ सेर लेकर सबको मन्दाग्नि पर पका कर खोवा बना लें। पश्चात् ८० तोला मिश्री की चाशनी बना, उसमें उपरोक्त दवा मिलाकर निम्न दवाओं का चूर्ण मिलावें। यथा- तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, पीपल, सोंठ, जीरा, मोथा, सुगन्धवाला, अनारदाना, रसौत, धनियां, हलदी, कपूर, वंशलोचन और तवाशीर-प्रत्येक २।।-२।। तोला लेकर कपड़छन चूर्ण बना, अवलेह में मिलाकर रख ले। -भा.भै.रं.

मात्रा और अनुपान- १-१ तोला प्रातः सायं ठण्डा जल या दूध से दें।

गुण और उपयोग- प्रमेह, प्रदर, ज्वर, निर्बलता, अरुचि, श्वास, तृषा, दाह और क्षय का नाश करता है। पुराने प्रदर रोग में इसका उपयोग विशेष किया जाता है। यदि रोग से पीड़ित स्त्री की अग्नि मन्द हो जाती है, कमजोरी, रक्त की कमी, पित्तवृद्धि, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, किसी काम में मन न लगना, शरीर में आलस्य, मन्द-मन्द ज्वरांश बना रहना, भूख कम या बिल्कुल न लगना, अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं, तो ऐसी दशा में इस अवलेह को दूध के साथ देने से बहुत शीघ्र फायदा होता है। स्त्रियों के लिए यह अत्युत्तम पौष्टिक है।

जीवनकल्प

अच्छे ताजे आँवलों को जल में उबालकर मोटे कपड़े से छनी हुई आँवले की पिट्ठी ११।सेर घी १ सेर ११ छटांक २।। तोला, चीनी २० सेर लें, पश्चात् अष्टवर्ग १० छटाँक लेकर जौकुट करके २।। सेर जल में अष्टवर्ग का क्वाथ करें, जब आधा जल शेष रहे तो उतार कर इसको छान लें। फिर प्रथम कलईदार कड़ाही में आँवले की पिट्ठी को घी डालकर अग्नि पर भून लें। जब आँवले की पिट्ठी घी छोड़ दें, तब भूनना बन्द करके नीचे उतार लें। पश्चात् उपरोक्त अष्टवर्ग के क्वाथ के जल मे चीनी की चाशनी बनावें। चाशनी बनते समय ही उसमें केशर को खरल में जल से घोंटकर मिला दें। चाशनी बन जाने पर पिट्ठी डालकर पाक करें। अवलेह योग्य सिद्ध पाक होने पर इसमे इलायची छोटी वंशलोचन, जायफल, जावित्री, तेजपात, लौंग, गुलाब के फूल, धनियाँ, सफेद जीरा, दालचीनी, मुक्ताशुक्ति भस्म, मकरध्वज (खूब महीन पीसा हुआ)-प्रत्येक ४-४ तोला, केशर २ तोला, चाँदी-वर्क १ गड्डी, (१०० वर्क १ तोला) अभ्रक भस्म १ तोला लेकर प्रथम मकरध्वज को खरल में डालकर सूक्ष्म मर्दन करें, पश्चात् काष्ठौषधियों का किया हुआ चूर्ण और चाँदी के वर्क तथा मकरध्वज तथा भस्मों को मिलाकर खूब घोंटकर मिला दें। ठण्डा हो जाने पर पात्र में भरकर ढक्कन लगाकर रख दें।- आनुभविक योग

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला तक आवश्यकतानुसार दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- ताजे हर्रे, आँवले, अष्टवर्ग, मकरध्वज, अभ्रकभस्म, केशर, चाँदी के वर्क आदि तथा अन्य उत्तमोत्तम औषधियों के योग से निर्मित इस रसायन के प्रयोग से शरीर का कायाकल्प होकर नवजीवन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इस रसायन से रक्ताल्पता, आलस्य, कामला, श्वास, कास, शारीरिक क्षीणता आदि विकार नष्ट होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलवान् हो जाता है। इस रसायन में विशेषता यह है कि प्रत्येक उम्र का मनुष्य (स्त्री, पुरुष, बच्चे) हर ऋतु में सेवन कर सकते हैं, किन्तु शीतकाल में इस रसायन का सेवन विशेष लाभकारी है।

दाड़िमावलेह

चीनी १० सेर, जल ४ सेर लेकर इनको कलईदार कड़ाही में एकत्र मिला, अग्नि पर चढ़ाकर १३०० स्पेसिफिक ग्रेविटी की चाशनी बनावें, जब चाशनी तैयार हो जाय, तब उसमें ऊपर ही अनार का रस १० छटाँक और जायफल, जावित्री, काली मिर्च, तेजपात, दालचीनी, लौंग सौंठ, पीपल- प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशें लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण करके डालें। पश्चात् १२५० स्पेसिफिक ग्रेविटी की चाशनी होने पर नीचे उतार लें और शीतल होने पर एसेन्स पोमेग्रेनेट (अनार) एक ड्राम ग्लिसरीन १२ औंस और लिक्विड रेड कलर (खाने का) एक ड्राम डालकर भली भाँति मिला दें और कपड़े से छान कर शीशियों में भर कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला तक आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार जल के साथ दें अथवा अनेक औषधों के अनुपान के रूप में भी इसका प्रचुर प्रयोग किया जाता है।

गुण और उपयोग- इस अवलेह का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के पित्त विकार दाह, अम्लपित्त, क्षय, रक्तपित्त, प्यास, अतिसार, संग्रहणी, कमजोरी, नेत्ररोग, शिरोरोग, लू लगना, धातुस्राव, अरुचि आदि विकारों को नष्ट करता है और मस्तिष्क एवं हृदय को बल देता है।

धात्री रसायन (अनाशेदारू)

ताजे हरे पुष्ट आँवले २।। सेर को २४ घंटे तक दूध में भिंगो दें, फिर दूसरे दिन २। सेर जल में डालकर उबालें जिससे कि आँवले नरम होकर सरलता से गुठली निकल जायें, फिर गुठली निकाल कर लोहे के तार की चलनी को कलईदार पात्र पर रखकर, उस पर आँवले को मसल कर छान लें। इस छनी हुई आँवला पिट्ठी में १० तोला गोघृत मिला कर कलईदार ताँबे की कड़ाही में मन्दाग्नि पर पकावें और लकड़ी के खोचे (कौंचे) से अर्क गुलाब में मिलाकर लच्छेदार चाशनी करें, पश्चात् कड़ाही को नीचे उतार लें, पश्चात् उस चाशनी में आँवला पिट्ठी डाल कर पकावें, पश्चात् कड़ाही को नीचे उतार लें, ठण्डा होने पर इसमें छोटी इलायची के बीज, बड़ी इलायची के बीज, नागरमोथा, अगर, तगर, जटामांसी, सफेद चन्दन, वंशलोचन, रूमी मस्तंगी, जायफल, जावित्री, केसर, तेजपात, तालीशपत्र, लौंग, गुलाब के फूल, धनियाँ, काला जीरा, कपूरकचरी निर्विषी (जदवार खताई), दालचीनी, अवरेशम कतरा हुआ, बिजौरा नींबू के शुष्क छिलके-प्रत्येक १-१ तोला लेकर इनका कपड़छन चूर्ण करके उपरोक्त पाक में मिला दें। पश्चात् चाँदी के वर्क १०० नग (१तोला), स्वर्ण वर्क २५ नग (८ माशे) मिलाकर अमृताबन में भरकर सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ६-६ माशे सुबह-शाम भोजन से ३ घण्टा पूर्व सुखोष्ण गो-दुग्ध से, रात्रि को सोने से आधा घण्टा पूर्व दें।

गुण और उपयोग- यह योग अत्यन्त पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक रसायन और उत्तम बाजीकरण है। यह आमाशय, मस्तिष्क, हृदय और आँतों को बलवान बनाता है और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, विटामिन सी की कमी की अवस्था में इस औषध का सेवन विशेष उपयोगी है। इसके अतिरिक्त ज्वर, कास, श्वास, क्षय रोगों में भी गुणकारी है किसी भी रोग के कारण उत्पन्न हुई शारीरिक कमजोरी, मानसिक तथा मस्तिष्क-सम्बन्धी कमजोरी को मिटाने के लिये इस रसायन का उपयोग करना श्रेष्ठ है, जीर्ण-शीर्ण शरीर को हृष्ट-पुष्ट, बल-वर्ण एवं कान्ति तथा शक्ति सम्पन्न बनाकर कायाकल्प कर देता है। रस-रक्तादि सप्तधातुओं की वृद्धि कर शरीर का वजन बढ़ाता है एवं उत्तम वयःस्थापक है। श्वास संस्थान (फेफड़ों) की कमजोरी तथा स्नायविक दुर्बलता के कारण उत्पन्न खाँसी और श्वास में निश्चित लाभ करता है।

नारिकेल खण्ड पाक

३२ तोला नारियल की गिरी (गोले) को पत्थर पर अत्यन्त महीन पीस लें या कद्दू कस से महीन घिस लें। इसे ८ तोला घी डालकर भून लें, फिर १२८ तोला नारियल का पानी (अभाव में गो-दूग्ध) मिलावें और उसमें ३२ तोला चीनी मिला कर मन्दाग्नि पर पकावें। जब चाशनी गाढ़ी हो जाय, तो नीचे उतार कर रख लें और ठण्डा होने पर चिकने बर्तन में भर कर रख दें। -वृ.यो.त.

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला सुबह-शाम दूध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पुरुषत्व, निद्रा और बल की वृद्धि होती है तथा अम्लपित्त, परिणामशूल और क्षय का नाश होता है।

इसमें प्रधान द्रव्य नारियल है, जिससे शीतवीर्य, स्निग्ध और पौष्टिक होने के कारण इस पाक का प्रयोग पैत्तिक बीमारियों में तथा शुक्र-क्षयादि के कारण शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाने से उत्पन्न हुई कमजोरी में सफलतापूर्वक किया जाता है। पाचकपित्त की गड़बड़ी होने से अन्नादि पचने में बाधा हो, खट्टी डकारें आती हों, पेट में मीठा-मीठा दर्द होता रहता हो आदि उपद्रव होने पर इस पाक का अवश्य प्रयोग करें। अम्लपित्त जैसे भयंकर रोगी के लिए तो यह पाक बहुत उत्तम है। इस पाक का सेवन सब ऋतुओं में कर सकते हैं।

बादाम पाक

बादाम की मींगी २ सेर को कपड़े से रगड़ कर पोंछ लें और इमामदस्ता में डालकर दरदरा कूट लें। फिर इसमें गो-घृत २० तोला मिलाकर मन्द-मन्द अग्नि पर भून लें। पश्चात् ४ सेर चीनी की चाशनी करें, इसमें केसर १ तोला को जल के साथ खरल में पीस कर मिला दें और चाशनी गाढ़ी (लच्छेदार) बन जाने पर बादाम मिला कर खूब अच्छी तरह घोंटे तथा जावित्री, जायफल, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची के बीज, बिदारीकन्द, कौंच के बीज, सफेद मूसली, खरेंटी के बीज, सालम मिश्री, शतावर, कमलगट्टा की गिरी, वंशलोचन-प्रत्येक १-१ तोला लेकर किया हुआ चूर्ण तथा खरल में महीन पिसा हुआ ५ तोला रससिन्दूर, वंगभस्म २।। तोला प्रवाल पिष्टी २ तोला लेकर सबको एकत्र मिला उपरोक्त चाशनी में डालकर अच्छी तरह मिलाकर चौड़े थालों में बर्फी जमा दें। पश्चात् छोटे-छोटे टुकड़े काटकर सुरक्षित रख लें। अधिक समय तक टिकाऊ रखने के लिए चाशनी चूरा बनाने जैसी गाढ़ी लेकर उसमें सब सामान मिलाकर ठण्डा होने पर कूटकर मोटी चलीनी से छानकर रखना चाहिए।

वक्तव्य- इस पाक पर यदि चाँदी का वर्क लगाना हो, तो थाली में बर्फी जमाते समय गरम-गरम पर ही चाँदी के वर्क भी आवश्यकतानुसार लगा दें। पाक ठण्डा हो जाने पर वर्क नहीं चिकपते है।

मात्रा और अनुपान- १से २ तोला गो-दुग्ध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- दिमाग एवं हृदय की कमजोरी तथा शुक्र-क्षय, पित्त-विकार, नेत्र एवं शिरोरोग में लाभकारी है। इसके सेवन से शरीर पुष्ट होता है। यह सर्दियों में सेवन करने योग्य उत्तम पुष्टई है।

दिमागी काम करने वाले तथा सिर-दर्द वाले को इस पाक का सेवन अवश्य करना चाहिए। किसी-किसी को सिर-दर्द का दौरा-सा होता है, महीना, दो महीना या इससे ज्यादा दिन पर सिर में दर्द प्रारम्भ हो जाता है। यह दर्द इतना तेज होता है कि रोगी बेचैन हो जाता है। इसके दो कारण है, एक तो पित्ताधिक्य और दूसरा कब्ज (बद्धकोष्ठ) होनाँ प्रथम कारण में तो वमन होने पर दर्द अपने आप ठीक हो जाता है। उसमें इस पाक की उतनी आवश्यकता नहीं, परन्तु बद्धकोष्ठ वालों के लिये यह बहुत मुफीद दवा है, क्योंकि इसका प्रधान द्रव्य बादाम है, जो स्निग्ध और मृदु विरेचक होने के कारण मल को ढीला कर दस्त साफ लाता है। सिर-दर्द को नाश करना तो इसका खास काम है। यह चाहे पैत्तिक या वातिक कैसा भी हो। अतः सिर-दर्द वाले रोगी को इस पाक का अवश्य सेवन करना चाहिए।

रात को सोते समय इसे गोदुग्ध या शीतल जल के साथ सेवन करने से दिमाग की कमजोरी मिटती है। आमाशय में संचित आम दोषों के इकट्ठा हो जाने के कारण जो पेचिश हो जाती है, उसमे भी यह लाभदायक है। इसके सेवन से नया वीर्य बनता है। लगातार कुछ रोज तक इसके सेवन से शरीर में नया खून उत्पन्न होकर शरीर पुष्ट हो जाता हे। यह बल, वीर्य और ओज की वृद्धि करता है, रस-रक्तादि धातुओं को बढ़ाकर शरीर को कान्तियुक्त बना देता है। ध्वजभंग, नपुंसकता, स्नायुदौर्बल्य में अतीव लाभदायक है।

वासावलेह

अडूसे की जड़ २ सेर को जौकुट कर १६ सेर पानी में औटावें और २ सेर पानी शेष रहने पर छानकर उसमें २ सेर चीनी मिलाकर चाशनी बना लें। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतारकर पीपल का चूर्ण और ताजा घी १-१ पाव मिलाकर पात्र में रख लें। -आ.प्र. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला सुबह-शाम मधु या अन्य उचित अनुपान के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह सब तरह की खाँसी, श्वास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त आदि रोगों को दूर करता है। पुरानी कफज खाँसी की यह अचूक दवा हे। नवीन और पुराना कफ रोग अथवा खाँसी या श्वास-नलिका की सूजन में यह बहुत लाभ पहुँचाता है। पुराने कफज रोगों में हृदय के अन्दर बहुत शिथिलता आ जाती है, जो इसके सेवन से कम हो जाती है। नवीन कफज रोगों की अपेक्षा पुराना कफज रोगों में यह विशेष लाभ करता है। बच्चों को होने वाली कुक्कुर खाँसी में भी डेढ़ माशा की मात्रा में दिन-रात मे चार बार मधु मे मिलाकर चटाने से कुछ ही दिन में खाँसी निर्मूल हो जाती है।

इसका प्रभाव छोटी-छोटी रक्तवाहिनी नाड़ियों पर भी पड़ता है, जिससे रक्तवाहिनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव रुक जाता है। अतएव, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, खूनी बवासीर, रक्तमिश्रित दस्त तथा कफ निकालने वाले रक्त में इसे बकरी के दूध के साथ देने से बहुत लाभ होता है। निमोनिया, प्युरिसी, इन्फ्लुएन्जा आदि ठीक हो जाने पर भी कुछ समय तक सूखी खाँसी का ठसका बराबर आता रहता है। वासावलेह तीन-तीन माशा की मात्रा में यवक्षार दो-दो रत्ती मिला, मधु के साथ चटाने से खाँसी का ठसका मिट जाता है।

वासाहरीतकी अवलेह

अडूसे के मूल या ताजी पत्ती ४०० तोला लें, उसको जल से धोकर और कूटकर अठगुने जल में कलईदार बरतन में डालकर पकावें। जब चौथाई जल बाकी रहे तब ठण्डा करके कपड़े से छान, उसमें गुठली निकाली हुई बड़ी हर्रे का चूर्ण २५६ तोला और चीनी ४०० तोला डालकर पकावें। पकाते समय लकड़ी के कोचे से हिलाते रहें। जब लेह जैसा हो जाय, तब नीचे उतार लें। ठण्डा होने पर उसमें ३२ तोला शहद तथा वंशलोचन १६ तोला, छोटी पीपल २ तोला, दालचीनी ४ तोला, छोटी इलायची ४ तोला, तेजपात ४ तोला, नागकेशर ४ तोला और काकड़ासिंगी ४ तोला-इनका कपड़छन किया हुआ चूर्ण और घी एक सेर मिलाकर काँच या चीनी के बरतन में भर लें।-सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला अवलेह चटा कर ऊपर से गौर का गरम दूध पिला दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से खाँसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त और प्रतिश्याय (जुकाम) में फायदा होता है। नवीन और प्राचीन कफ रोग अथवा खाँसी या श्वास-नलिका की सूजन में इस अवलेह के सेवन से बहुत लाभ होता है। इससे कफ पतला होकर शीघ्र बाहर निकल जाता है, जिससे खाँसी और दमा मे लाभ होता है। कफ-रोगों मे हृदय के अन्दर बहुत शिथिलता आ जाती हे, जो इस अवलेह के सेवन से दूर हो जाती है। इस अवलेह के सेवन से छोटी-छोटी रक्तवाहिनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव, रक्त मिश्रित दस्त, बवासीर, क्षय और रक्तप्रदर, रक्तपित्त आदि रोग अच्छे हो जाते हे। बार-बार होनेवाले प्रतिश्याय अथवा जीर्ण प्रतिश्याय और खूनी बवासीर के रोगियों को प्रायः कब्ज की शिकायत रहती है। जब तक कब्ज नहीं मिटता, रोग में लाभ नहीं होता, वासाहरीतक्यवलेह में वासा (रक्तस्रावरोधक) और हरीतकी (कब्जनाशक) ये दोनों द्रव्य मुख्य होने से इन रोगों में यह बहुत लाभ करती है।

बाहुशाल गुड़

इन्द्रायण की जड़, नागरमोथा, जमालगोटे की जड़, निशोथ, हर्रे, कचूर, वायविडंग, गोखरू, चित्रक, सोंठ और तेजबल- प्रत्येक ४-४ तोला, सूरण (जमीकन्द) ६४ तोला, विधारा २४ तोला और शुद्ध भिलावा ३२ तोला लें। इन सब औषधियों को जौकुट कर २५ सेर ९ छटाँक ३ तोला पानी में डालकर पकावें। चौथाई शेष रहने पर छानकर उस पानी में ६ सेर २ छटाँक २ तोला पुराना गुड़ डालकर लड्डू बनाने जैसी चाशनी बना लें। फिर इसमें चित्रक की जड़, निशोथ, जमीकन्द और तेजबल-प्रत्येक ८-८ तोला, काली मिर्च, गजपीपल, इलायची और दालचीनी-प्रत्येक २४-२४ तोले का महीन चूर्ण मिला दें।

वक्तव्य- इसमें घी ६४ तोला मिलाने से विशेष उत्तम बनता है।

मात्रा और अनुपान- १-१ तोला, सुबह-शाम बकरी के दूध या जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से बवासीर, आमवात, संग्रहणी, प्रमेह, प्रतिश्याय आदि रोग नष्ट होकर मनुष्य बलवान हो जाता है। बवासीर में पेट में वायु भर जाने पर उसे अनुलोमन करने के लिए बाहुशाल गुड़ बहुत प्रसिद्ध दवा है। पाँचों प्रकार के गुल्म, पीनस, पाण्डु, हलीमक, उदररोग, मन्दाग्नि, ग्रहणी, क्षय आदि नष्ट करता है। यह रसायन होने के कारण बलिपलितनाशक और बल, मेधा और कांतिवर्धक है।

व्याघ्री हरीतकी

सवा छह सेर अधकुटी कटेली का पंचांग और कपड़े में बंधी हुई १०० नग (वजन में S १।।-)हर्रे को ३२ सेर पानी में पकावें, चौथाई भाग जल शेष रहने पर छान कर उसमें ६। सेर गुड़ और उपरोक्त हर्रे डालकर पुनः पकावें। जब गाढ़ा हो जाय, तो उसे अग्नि से नीचे उतार कर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर चारों मिलाकर ५ तोला पीपल और कालीमिर्च, सोंठ का चूर्ण ५-५ तोला दें और जब वह ठण्डा हो जाय तो ३० तोला मधु मिलाकर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- इसमें घी १ सेर और देने से विशेष उत्तम बनता है। हरीतकी (हर्रे) S १।। सेर का गुदा लगभग १२।। छटाँक होता है। अतः साबूत हर्रे के बजाय हरीतकी का छिलका (सूखा) १२।। छटाँक का चूर्ण बनाकर मिलाने पर भी उत्तम बनता है। हरीतकी चूर्ण गुड़ की चाशनी बन जाने पर मिलावें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला, प्रातः सायं जल या दूध से लें।

गुण और उपयोग- इसके उपयोग से खाँसी और श्वास रोग नष्ट होते हैं तथा स्वर, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है। कफ और वात प्रधान रोगों में इसका विशेष प्रभाव होता है। कास-श्वास रोगी के लिए यह अमृत के समान लाभ करता है। किसी कारण से गला बैठ गया हो, आवाज बहुत धीमी निकलती हो, तो इस अवलेह से गला खुल जाता है और आवाज (स्वर), साफ निकलने लगती है, क्योंकि इसके सेवन से श्वासनली में चिपका हुआ कफ ढीला होकर बाहर निकल जाता है, फिर श्वासनली साफ हो जाने से खाँसी भी नहीं आती है। बद्धकोष्ठ के लिये भी इसका सेवन इसलिए किया जाता है कि इसमें हरीतकी की मात्रा विशेष होने से बद्धकोष्ठता दूर हो, कोष्ठ साफ हो जाता है।

ब्राह्म रसायन

क्वाथ-द्रव्य-शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, गोखरु, बेलछाल, गनियार (अरणी), सोनापाठा-छाल, गम्भारी-छाल, पाढ़ल-छाल, पुनर्नवा, मृद्गपर्णी, माषपर्णी, खरेंटी

पंचांग,एरंडमूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावर, नरकुल (शर), गन्ने की जड़, कुश, कास, धान की जड़- प्रत्येक १०-१० तोला, हर्रे पन्द्रह सेर दस छटाँक, आमला एक मन ६ सेर चौदह छटाँक लेकर ३ मन सवा ग्यारह सेर जल में क्वाथ करें, तेरह सेर दो छटाँक जल (क्वाथ) शेष रखें।

प्रक्षेप-द्रव्य- मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), पीपल, शंखपुष्पी, नागरमोथा, मोथा, वायविडंग, सफेद चन्दन, अगर, मुलेठी, हल्दी, बच, नागकेसर, छोटी इलायची के बीज, दालचीनी-प्रत्येक २०-२० तोला लें। चीनी एक मन साड़े बाईस सेर, तिल्ली का तेल आठ सेर, घृत बारह सेर तथा मधु (अभाव में चीनी या मिश्री) दस सेर।

पूर्वोक्त क्वाथ में आँवला और हरीतकी की पोटली बाँधकर छोड़ दें, स्विन्न हो जाने पर निकाल कर गुठली निकाल, पीठी बना लें। पीठी को घी में सेंक कर रख लें। फिर पूर्वोक्त शेष क्वाथ (जल) में चीनी मिला चाशनी बनावें, चाशनी तैयार होने पर इसमें पीठी डालकर पाक करें, कुछ गाढ़ा होने पर उपरोक्त प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण और तिल तैल व मधु देकर अवलेह तैयार कर लें।-च.चि.अ.१ एवं रसयोग सागर

मात्रा और अनुपान- १। तोला गोदुग्ध या जल के साथ लें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से शरीर की दुर्बलता और दिमाग की कमजोरी दूर होकर आयु बल, कान्ति तथा स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है। इसके नियमित सेवन से खाँसी, दमा, क्षय, कब्जियत आदि दूर हो, शरीर में स्थाई ताकत पैदा होती है। यह उत्तम रसायन होने के कारण वलि-पलितनाशक एवं जीवनीयशक्ति से परिपूर्ण है।

वक्तव्य- इस योग को कई बार बनाकर हमने अनुभव किया है कि ८ सेर तिल तैल और १२ सेर घृत मिलाने पर ठीक नहीं मिल पाते, आधे परिमाण मे ही मिल पाते हें, शेष आधे अवलेह से पृथक् रह जाते हैं। अतः बनाते समय आधे-आधे परिमाण में ही मिलायें, शेष की पूर्ति के लिए सेवन करते समय १। तोला ब्राह्म रसायन में ६ रत्ती घृत और ४ रत्ती तैल मिलाकर सेवन करना उत्तम है।

भार्गी गुड़

भारंगी की जड़ ६। सेर,दशमूल ६। सेर, बड़ी हर्रे १०० नग या वजन में S १।।(हरड़ की साफ और मजबूत कपड़े में ढीली पोट्टली बाँध दें), इन सबको १ मन सवा सोलह सेर पानी में पकावें, चौथाई जल शेष रहने पर उतार लें। अब क्वाथ में से हरड़ की पोट्टली निकाल, हर्रे को चाकू से चीरा देकर, गुठलियाँ निकालकर, गूदा को पीस लें। क्वाथ को छानकर उपरोक्त पीसे हुए हरड़ के गूदा को तथा ६।सेर स्वच्छ पुराना गुड़ देकर पाक करें, जब गाढ़ा हो जाय, तब त्रिकटु(सोंठ, पीपल, मिर्च),त्रिसुगन्धि (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र) प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला और यवक्षार २।। तोला इनका प्रक्षेप देकर कोंचा से खूब मिला, नीचे उतार लें। अवलेह ठंडा होने पर ३० तोला मधु मिलाकर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- इसमें घृत एक सेर देने से विशेष उत्तम बनता है। हरीतकी साबूत १।। सेर की अपेक्षा हरीतकी चूर्ण १।। छटाँक को गुड़ की चाशनी बनाकर मिलाने से सुविधा से बन जाता हैं।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला, सुबह-शाम सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से दारुण श्वास तथा सब प्रकार के कास नष्ट होते हैं। यह स्वर को साफ करता है और अग्नि (जठराग्नि) को प्रदीप्त करता है।

पुराने कास-श्वास वाले रोगी के लिए यह अमृत के समान फायदा करता है, क्योंकि इसका प्रभाव वातवाहिनी तथा कफवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है। अतएव दमा का दौरा प्रारम्भ

होते ही इसमें से १ तोला खाकर ऊपर से कनकासव या वासारिष्ट १। तोला में समान भाग जल मिलाकर पी लेने से दमा का दौरा रुक जाता है।

माजून फलासफा

सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, कलमी, (दालचीनी), आँवला कली, हरड़ का वक्कल, चित्रक मूल-छाल, जराबन्द गिर्द, सालम मिश्री, चिलगोजे की मींगी, बाबूना की जड़, बाबूना पुष्प, नारियल की गिरी-ये प्रत्येक द्रव्य ९-९ माशे, मुनक्का बीज रहित ३ तोला, शुद्ध मधु २ तोला, मिश्री ४ तोला लेकर प्रथम चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण करें पश्चात् मिश्री की गाढ़ी चाशनी बनाकर समस्त द्रव्य मिलाकर माजून (पतली-पतली पपड़ी की तरह) जमाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशा माजून मधु शर्करा (माउल्अस्ल) या मिश्रेयार्क (अर्क-सौंफ) आदि के साथ उपयोग करें।

गुण और उपयोग- माजून का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के वातरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ओर अर्दित रोग, पक्षवध, कफज सन्यास (बलगमी-सुबात) और गृध्रसी प्रभृति व्याधियों मे यह परम गुणकारी है। दिल, दिमाग, वातनाड़ियों और स्नायुमण्डल की दुर्बलता में इसके प्रयोग से उत्तम लाभ होता हे।

मदनानन्द मोदक

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह-भस्म, प्रत्येक १-१ तोला, अभ्रक भस्म ३ तोला, कपूर, सेन्धानमक, जटामांसी, आँवला, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावित्री, तेजपत्र, लौंग, जीरा दोनों, मुलेठी, बच, कूठ, हल्दी, देवदारु, हिज्जलबीज, सुहागा, भारंगी, सोंठ, नागकेशर, काकड़ासिंगी, तालीसपत्र, मुनक्का, चित्रकमूल की छाल, दन्तीमूल, बला (बरियारा), अतिबला (कन्धी), दालचीनी, धनिया, गजपीपल, शठी (कचूर), सुगन्धवाला, मोथा, गन्धप्रसारणी, बिदारीकन्द, शतावरी, आक की जड़, कोंच के बीज, गोखरू, विधारा के बीज, भाँग के बीज-प्रत्येक १-१ तोला लें। इन सबका महीन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को शतावरी के रस से भावना देकर सुखा लें। फिर सेमरमूसली का चूर्ण १३ तोला, धुली हुई भाँग का चूर्ण ३२ तोला (भांग को घी में भूनकर डाले), एकत्रित कर बकरी के दूध में पीस लें। पश्चात् २।। सेर चीनी की चाशनी करें। आसन्नपाक होने पर उपरोक्त सब चीज मिला दें। पाक तैयार होने पर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागकेसर, कपूर, सेन्धानमक, सोंठ और पीपल- इन दवाओं का चूर्ण ६-६ माशे मिलादें, पाक जब ठंडा हो जाय तो १ पाव घृत तथा १ पाव मधु मिलाकर रख ले। -आ.प्र.भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा, दुध या पायस अथवा जल के साथ दें। पश्चात् डेढ़ माशा काले तिल का चूर्ण खिलायें।

गुण और उपयोग- इससे बल-वीर्य की वृद्धि, रति-शक्ति की वृद्धि और स्तम्भन शक्ति प्राप्त होती है। यह संग्रहणी और मन्दाग्नि की उत्तम दवा है।

स्त्री संभोग के लिए सायंकाल इसका सेवन दूध के साथ करना चाहिए। आयुर्वेद के आचार्यो का मत है कि लगातार तीन सप्ताह तक इसका सेवन करने से मनुष्य कामान्ध हो जाता है और इसके सेवन करने वाले का स्वरूप कामदेव के समान सुन्दर, स्वर कोयल के समान मधुर तथा गरुड़ के समान दीर्घ दृष्टि होती है। वृद्ध पुरुष भी इसके सेवन से युवा के समान सामर्थ्ययुक्त होता है। अपस्मार, ज्वर, उन्माद, क्षय, वातव्याधि, कासश्वास, शोथ, भगन्दर, अर्श, ग्रहणी, बहुमूत्र, प्रमेह, शिरोरोग, अरुचि तथा वातिक-पैत्तिक और कफज रोग नष्ट होते है।

जो स्त्री बन्ध्या, मृतवत्सा (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं) अथवा नष्ट पुष्पा (नष्टार्तव) हो, उसे भी इसके सेवन से उक्त दोष नष्ट हो, गर्भाशय का शोधन होकर अच्छी तन्दुरुस्त सन्तान पैदा होती है। सूतिका रोग भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं। ठण्ड के मौसम में ही विशेषतया इस

मोदक का सेवन किया जाता है। इसमें भांग की मात्रा विशेष होने से यह नशा भी करता है। अत: इसका सेवन चिकित्सकों की सलाह से थोड़ी ही मात्रा में करें।

मूसली पाक

सफेद ममूसली ३२ तोला, घी ३२ तोला, सोंठ, पीपल, मरिच, इलायची बड़ी, दालचीनी, तेजपत्र, शतावर, चित्रकमूल, गोखरु, असगन्ध, हरड़, लवंग, जायफल, जावित्री, तालमखाना, खरेंटी के बीज, कौंच का बीज, सेमलगोन्द, कमलगट्टा, वंशलोचन, अकरकरा प्रत्येक १-१ तोला, मकरध्वज १ तोला, बंग भस्म २ तोला लेकर काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण कर लें। पहले मूसली चूर्ण को घी में भून लें, पश्चात् सफेद चीनी २ सेर की चाशनी बनाकर उसमें उपरोक्त भुनी मूसली चूर्ण तथा सब दवाओं का चूर्ण डालकर पाक बना लें। मकरध्वज और बंग भस्म को खरल में अच्छी तरह घुटाई कराकर काष्ठौषधियों के चूर्ण में मिला देना चाहिए, ताकि पाक मे अच्छी तरह मिल जाये।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला दूध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह पाक अत्यन्त पौष्टिक, बल-वीर्य तथा कामशक्तिवर्द्धक और नपुंसकता-नाशक है। इसके सेवन से धातु-दौर्बल्य नष्ट होकर शरीर स्वस्थ, कान्ति युक्त एवं बलिष्ठ हो जाता है। स्त्रियों के प्रदर रोग तथा पुरुषों के वीर्य दोष को नष्ट करने में यह अत्युत्तम है।

यह बात निश्चित है कि पौष्टिक चीजें गरिष्ठ (देर में पचने वाली) होती है। इस पाक में पौष्टिक दवाओं की संख्या अधिक है। अत: इसके सेवनकाल में यदि बद्धकोष्ठता हो जाये तो बद्धकोष्ठता दूर करने के लिये इसबगोल, मुनक्का, त्रिफला, चूर्ण आदि उदरशोधक दवाओं काभी सेवन करते रहें। इससे बद्धकोष्ठता न होकर जठराग्नि प्रबल रहेगी और रस-रक्तादि धातु भी अच्छे और पुष्ट बनते रहेंगे।

शीतकाल में इस पाक का सेवन विशेषकर धातुक्षीणता आदि कारणों से उत्पन्न शारीरिक कमजोरी दूर कर, शरीर सबल और पुष्ट हो, इस निमित्त किया जाता है।

लऊक सपिस्ताँ

लिसोढ़ा ५० नग, उन्नाव २० नग, पोस्ते की डोंडी २ तोला, मुलेठी १ तोला, सफेद खतमी बीज, खीरा-ककड़ी के बीज प्रत्येक ४-४ माशे, बीहीदाना ३ माशा लेकर इनका २ सेर जल में क्वाथ करें, क्वाथ बन जाने पर छानकर आधा सेर चीनी डालकर चाशनी बना लें। चाशनी के अन्त में छिलके रहित जौ का शीरा, छिलका रहित बादाम की गिरी का शीरा, पोस्ता के दाने का शीरा प्रत्येक १-१ तोला मिलावें। चाशनी तैयार हो जाने के बाद मुलेठी का सत्व कतीरा और बबूल का गोंद-प्रत्येक तीन-तीन माशे पीसकर मिलावें और सुरक्षित रख लें। -यू.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला तक प्रात: सायं चाटकर ऊपर से सुखोष्ण जल पी लें।

गुण और उपयोग- इसके प्रयोग से कठिन से कठिन नजला (कफप्रकोप), जुकाम आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। यह कफ को पतला करके सरलता से निकाल देता है। कास-श्वास रोग में भी उत्तम लाभकारी है।

सुपारी पाक

कपूर ३।।। माशा, तज, तेजपात, नागरमोथा, सूखा पुदीना, पीपल, खुरासानी, अजवायन, छोटी इलायची-प्रत्येक ३।।-३।। माशे, तालीसपत्र (जरनब), वंशलोचन, जावित्री, श्वेतचन्दन, काली मिर्च, जायफल-प्रत्येक ५।-५। माशे, सफेद जीरा ७ माशे, बिनौले की गिरी, लौंग सूखा

धनिया, पिपलामूल-प्रत्येक १ तोला २ माशा, नीलोफर का फूल ९ माशा, सूखा सिंघाड़ा, शतावर, नागकेशर-प्रत्येक ३।।।-३।।। तोला, खिरनी के बीज ४ तोला १ माशा, बदाम की गिरी, पिस्ता की गिरी, मुनक्का बीज रहित-प्रत्येक ५-५ तोला, सुपारी १ सेर, चीनी १ सेर, मधु १ सेर, गोघृत आधा सेर। प्रथम मुनक्का को सिल पर पीस लें। सुपारी का सूक्ष्म चूर्ण कर गोघृत कर में डालकर मन्द अग्नि पर भून लें और चीनी तथा मधु के अतिरिक्त शेष समस्त द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बना लें और उस चूर्ण को भी थोड़े से गोघृत में मन्द अग्नि पर भून लें। पश्चात् चीनी और मधु की चाशनी बनाकर, उपरोक्त समस्त द्रव्य डालकर, अच्छी तरह मिला दें और बर्फी जमाकर, काटकर के सुरक्षित रख लें। अथवा चाशनी को बूरा बनाने जैसी गाढ़ी बनाकर, उसमें सब सामान को मिलाकर, उतार करके ठण्डा होने पर बूरा की तरह कूटकर, छान करके रख लें। इस प्रकार चूर्ण रूप में बनाया हुआ सुपारी पाक अधिक समय तक टिकाऊ रहता है एवं इसे चूर्ण की तरह ही सेवन करने में भी बड़ी आसानी रहती है। -यू.सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- १-२ तोला तक सुबह-शाम गोदुग्ध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह पाक अत्यन्त बाजीकरण और पुष्टिकारक है। इसके सेवन से स्त्रियों की योनि से होनेवाले नाना प्रकार के स्राव (प्रदर) नष्ट होते हैं और स्त्री तथा पुरुष दोनों के बंध्यत्व दोष को नष्ट करके उन्हें सन्तानोत्पत्ति योग्य बना देता है। पुरुषों के शीघ्रपतन और शुक्रमेह रोग में अत्यन्त गुणकारी है। यकृत की दुर्बलता को नष्ट कर पाचन-शक्ति की वृद्धि करता है। गर्भाशय को शक्ति देता है और योनि को संकुचित करता है। विशेषतया प्रसूता स्त्रियों के लिये अतिशय गुणकारी है। इसके सेवन से प्रौढ़ा स्त्री भी कान्ति और लावण्ययुक्त होकर नवयुवती जैसी हो जाती है। प्रदर रोग के कारण स्त्री का स्वास्थ्य खराब रहता है, कमर, पीठ, गर्दन और सिर में दर्द रहना, सिर भारी रहना, हाथ-पैरों में दर्द तथा हड़फूटन रहना, किसी काम में मन न लगना, चिन्ता और भ्रम बना रहना, आदि लक्षण रहते हैं। युवावस्था में ही वृद्धा जैसी दिखने लगती है। ऐसी स्थिति में सुपारी पाक का कुछ समय तक निरन्तर सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट होकर, उपरोक्त सभी लक्षण मिट जाते हैं, शरीर में स्फूर्ति एवं बल-वर्ण तथा कान्ति बढ़कर नवयुवती-तुल्य हो जाती है। वास्तव में यह औषध महिलाओं के लिए दैविक वरदान स्वरूप अमृततुल्य गुण करती है।

सौभाग्य शुण्ठीपाक

सोंठ ६४ तोला को कूटकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। बाद में इस चूर्ण को गोघृत ६४ तोला में मिलाकर मन्द अग्नि पर भून लें, किन्तु लघु पाक होने तक ही भूनें, खर पाक न हो जाय इसका ध्यान रखें पश्चात् शतावर, बिदारीकन्द, सफेद मूसली, गोखरू, बलामूल-छाल, गिलोय सत्व, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, अजवायन, तालीशपत्र, अजमोद, सौंफ, रास्ना, पोहकर मूल, वंशलोचन, देवदारु, सोया-बीज, कचूर, जटामांसी, बच, मोचरस, तेजपात, नागकेशर, जावित्री, मेथी, मुलेठी, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, वायविडंग, खस, बाँसा, धनियाँ, कायफल, नागरमोथा- प्रत्येक २-२ तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। फिर सोंठ तथा इन सब चूर्णों से दुगुनी (३ सेर से ४० तोला) चीनी लेकर चाशनी बनावें। जब चाशनी बन जाय तो उपरोक्त भुना हुआ सोंठ का चूर्ण तथा अन्य काष्ठौषधियों का चूर्ण अच्छी तरह मिला दें और बर्फी काटकर सुरक्षित रख लें। यदि इसे टिकाऊ बनाना हो ता बूरा बनाने जैसी गाढ़ी चाशनी बनाकर सब सामान मिला दें और ठण्डा होने पर कूटकर चूर्ण बना, छानकर रख लें। -भै.र. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से २ तोला तक सुबह-शाम कोष्ठ, अग्नि, दोष एवं बलानुसार खाकर सुखोष्ण गो-दुग्ध या सुखोष्ण जल ऊपर से लें।

गुण और उपयोग- इस पाक का प्रयोग करने से बल और आयु की वृद्धि होती है, वर्ण को सुन्दर बनाता है, उत्तम पुष्टिकारक है। वली-पलित विकार को नष्ट करता है। यह पाक अत्यन्त वृष्य और रसायन है, स्त्रियों के लिए अमृत-तुल्य लाभकारी है। इसके सेवन से योनिविकार, प्रदर, कष्टार्तव आदि रोग नष्ट होते हैं। प्रसूता स्त्रियों के लिए विशेष लाभदायक है। पुरुषों के लिए भी बल-वीर्य-वर्द्धक है।

वक्तव्य- भै.र. के मूल पाठ के अनुसार बनाने पर सोंठ के चूर्ण को दशगुने दूध के साथ पकाने का विधान है, किन्तु प्रत्यक्ष अनुभव में देखा गया है कि दूध के साथ सोंठ के चूर्ण को पकाकर पाक बनाने से बहुत जल्दी बिगड़ जाता है। जब कि बिना दूध के साथ पाक बनो पर अधिक समय तक नहीं बिगड़ता है। अतः पाक बिना दूध डाले बनाकर सेवन करते समय अनुपान रूप में दूध का सेवन करना विशेष उपयोगी है।

हरिद्रा खण्ड

हल्दी, निशोथ, हरड़-ये प्रत्येक १६-१६ तोला लेकर इसका सूक्ष्म चूर्ण करें। चीनी २।। सेर लेकर मन्द-मन्द अग्नि पर गाढ़ी चाशनी करें, जब पकते-पकते चाशनी पाक योग्य हो जाय तो उसमें उपरोक्त चूर्ण, दारुहल्दी, नागरमोथा, अजवायन, अजमोद, चित्रकमूल, कूटकी, जीरा सफेद, पीपल छोटी, सोंठ, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, वायविडंग, गिलोय, वासामूल, कूठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, धनियाँ, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, प्रत्येक ६-६ माशे लेकर काष्ठौषधियों का सुक्ष्म कपड़छन चूर्ण तथा भस्में चाशनी में मिला दें। पाक अच्छी तरह हो जाने पर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- इसमें २० तोला घी लेकर बनाने से विशेष उत्तम बनता है।

मात्रा और अनुपान- ६ माशा से १ तोला तक, जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से शीतपित्त, उदर्द, कोठ, (चकत्ते), कण्डू, खुजली, विचर्चिका, (एग्जिमा-छाजन), जीर्णज्वर, कृमि, पाण्डूरोग, शोथ इत्यादि रोग नष्ट होते हैं और यह मृदु विरेचक होने के कारण कोष्ठशुद्धि भी करता है।

हरीतकी खण्ड

हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, अजवायन, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, धनियाँ, सौंफ, सोया-बीज, लौंग-प्रत्येक १-१ तोला, निशोथ ८ तोला, सनाय पत्ती ८ तोला, हरड़ ६४ तोला, मिश्री या चीनी १९२ तोला लें। प्रथम काष्ठौषधियों को सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें पश्चात् चीनी में आवश्यकतानुसार जल मिलाकर चाशनी बनावें, चाशनी पाक योग्य बन जाने पर उपरोक्त द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर पाक जमाकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला दोष और बलानुसार गरम दूध या गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से समस्त प्रकार के शूल रोग नष्ट होते हैं। विशेषतया अम्लपित्तजन्य शूल और अम्लपित्त को शीघ्र नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त अर्श, कोष्ठगत वात विकार, वातरोग, कटिशूल और कठिन आनाह रोग को नष्ट करता है। यह उत्तम विरेचक भी है।

❖❖❖

अर्क प्रकरण

अर्कों के औषध सार (तत्व) रूप होने के कारण तथा लघु (हल्के) एवं शीघ्र पाकी होने के कारण अर्क पेट में जाकर शीघ्र ही अपना प्रभाव प्रकट करते हैं। इसके अलावा अर्कों के द्रव (पानी जैसे पतले)रूप में होने से सेवन करने में भी बड़ी सुविधा रहती है। यही कारण है कि आयुर्वेदिक चिकित्सापद्धती में अर्कों का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आज शायद ही कोई वैद्य ऐसा मिले जो अर्कों का प्रयोग न करता हो। अर्कों के इस बढ़ते हुए प्रचार को देखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आयुर्वेदिक औषधि निर्माणग्रंथ (Pharmacopoeia)स्वरूप इस प्रस्तुत ग्रंथ में स्वतंत्र रूप से अर्क प्रकरण में दिया जाय, जिसमें निर्माणकर्ताओं, चिकित्सकों तथा उपयोगकर्ताओं को मुख्य-मुख्य अर्कों के योगों, निर्माण-विधि तथा गुण-धर्मों की समुचित जानकारी प्राप्त हो सके।

अर्क निकालने की सामान्य विधि - जिस द्रव्य का अर्क निकालना हो वह यदि मृदु (मुलायम) रूप में हो तो उसे साबुत को ही (जैसे- अजवायन, सौंफ, जीरा, मकोय, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, भृंगराज, पटोलपत्र, गुलाबपुष्प, गुलबनप्सा आदि) अन्यथा कठिन (कठोर) द्रव्य होने पर (जैसे-खदिर काष्ठ, चन्दन सफेद, चन्दन लाल, विजयसार, नीम की छाल, गिलोय उस्बा, अनन्तमूल, चोपचीनी आदि) के छोटे-छोटे टुकड़े करके इमामदस्ते (लोहे के खलबट्टा) में कूटकर जौकूट दरदरा चूर्ण करके सायंकाल कलईदार साफ बर्तन में या मिट्टी के बर्तन में आठगुने साफ जल में भिंगोकर ढककर रख दें। दूसरे दिन सुबह ही साफ किये हुए नाड़िकायंत्र में डालकर यंत्र के ऊपरी भाग को कपड़मिट्टी लगाकर या प्लास्टर ऑफ पेरिस आदि से सन्धिरोध कर दें। (पुराने समय में उड़द के आटो को जल में सान कर, उससे भी सन्धिबन्ध करते थे,) पश्चात् यंत्र को चूल्हे या भट्टी पर रखकर नीचे अग्नि जलानी चाहिए, अग्नि न मन्द और न अधिक तेज जलानी चाहिए। मध्यमाग्नि जलानी चाहिए। अग्नि मन्द होने पर औषधियुक्त जल में बाष्प उत्पन्न नहीं होती, फलत: अर्क नहीं बन पाता। अग्नि तेज होने पर उत्ताप अधिक बढ़कर औषधि खरपाक हो जाती है, जिससे अर्क के रंग में बैवर्ण्य-मटमैला या गन्दलापन, कालापन आ जाता है, और गन्ध भी उखरान्द युक्त हो जाती है एवं अर्क के गुणधर्म भी नष्ट हो जाते हैं। अत: तेज आँच से निकले हुए अर्क सेवन योग्य नहीं होते हैं। मध्यमाग्नि पर पकाये हुए अर्क स्वच्छ-श्वेतवर्ण के एवं पारदर्शक और द्रव्य की यथार्थ गन्धकयुक्त होते हैं। अर्क निकालते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पात्र के ऊपरी भाग में जलाधार के डाले हुए जल में जब-जब बाष्प उठने लगें तो जल निकालने की नली का कार्क खोलकर गरम पानी निकालकर पुन: कार्क लगाकर ठंडा पानी भर देना चाहिए, ऐसा करने से अर्क अच्छा एवं साफ निकलता हे। आधुनिक (Modern Type) प्रकार का यन्त्र हो तो इसमें बारबार पानी बदलने की आवश्यकता नहीं रहती है, क्योंकि उसकी अर्क बाष्प निकलने की नली जल-भरे ड्राम में फिट कर, अर्क बनाने (बाष्प ठंडा होने) के पात्र से फिट रहती है, और इस जल भरे ड्राम में भी नीचे के भाग में उस ड्राम के ऊँचाई पर स्थित ठंडे पानी के निचले भाग से फिट होकर आनेवाला ठंडा पानी आने की नली (रबड़ या पाईप नली) फिट रहती है जिससे बराबर ठण्डा पानी ड्राम में आता रहता है। जिस साईज की मोटी यह ठंडा जल आने की नली फिट रहती है, उसी साइज की नली ड्राम के ऊपरी भाग में गरम पानी निकलने को फिट रहती है, जिससे जितने परिणाम में ठण्डा पानी ड्राम में आता है, उतने परिमाण में गरम पानी ड्राम से बाहर

निकलकर थोड़ी दूर पर बने हुए हौज या रखे हुए दूसरे ड्राम में जाकर ठण्डा होता रहता हे। इस प्रकार गरम पानी अपने आप बाहर निकलता है, और उसकी जगह ठण्डा पानी अपने आप आता रहता है। कलकत्ता, मुम्बई आदि बड़े-बड़े शहरों में अर्क निकालने की प्राचीन विधि और आधुनिक विधि से बने दोनों ही प्रकार के नाड़िकायंत्र बने-बनाये मिल जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से आधुनिक विधि (Modern Type) से बने यन्त्र विशेष उपयोगी हैं। वर्तमान समय में तो इनसे भी अधिक सुविधायुक्त स्टीम या विद्युत ताप से काम करनेवाले नाड़िकायंत्रों (Distillation Plants) का भी आधुनिक वैज्ञानिकों ने आविष्कार कर लिया है, जिनका उपयोग विदेशी दवाएँ बनानेवाली फार्मेसियाँ कर रही है। आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माता भी इनका उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं।

अर्क निकालने के लिए द्रव्य को जितने पानी में भिंगोया जाय उसके २/३ भाग अर्क निकल जाने पर अर्क निकालना बन्द कर देना चाहिए और नाड़िकायन्त्र के नीचे की आँच को बाहर निकालकर बुझा दें, इससे अधिक अर्क निकल जायेगा तो फिर द्रव्यों का खरपाक होकर पूर्वोक्त तीक्ष्णाग्नि पर निकाले गए अर्क के समान गुणहीन अर्क निकलेगा और वह पहले निकले हुए अर्क में गिरकर उसे भी खराब बना देगा। अत: ऐसा न होने पाये, इस पर विशेष ध्यान रखकर अर्क निकालना चाहिए।

जिस पात्र में निकाला हुआ अर्क संचित हो वह पात्र भी कलई किया हुआ या एनामेल अथवा चीनी मिट्टी का हो एवं साफ-स्वच्छ होना चाहिए तथा इस पात्र पर ढक्कन लगा रहना चाहिए, ढक्कन में अर्क निकलकर आने की नली फिट करने का छेद (सुराख) रखना चाहिए। अर्क निकाल चुकने के बाद पात्र को अलग हटाकर छेद में कार्क फिट करके ठंडा होने को रख दें। ठण्डा हो जाने पर पात्र को ढक्कन हटाकर अर्क को नाप कर प्रति एक गैलन अर्क में आधा औंस के हिसाब से उत्तम पिसी हुई खूब सफेद खड़िया का चूर्ण (Chalk Powder) मिलाकर दो तीन घंटे पड़ा रहने दें। बाद में चार तह के मोटे कपड़े या फिल्टर बैग से छान लें। ऐसा करने से अर्क नितरकर एकदम साफ स्वच्छ वर्ण का पारदर्शक हो जाता है। अब इस अर्क को साफ धोकर सुखायी हुई बोतलों में भरकर मजबूत कार्क लगाकर बोतल के मुँह के बाहर रहे कार्क को छूरी से काटकर मोम या चमड़ा आदि से सील लगा देना चाहिये ताकि अर्क की बोतलों में बाहरी हवा प्रवेश कर उनको बिगाड़ नहीं सके। आजकी चूड़ीदार मुँह की बोतलें भी बनती हैं।

इन बोतलों में अर्क भरकर इनको फिट करने का फिल्टर प्रूफ (एल्युमिनियम का बना) कार्क लगाकर कार्क कसने की सीलिंग मशीन से कस देना चाहिए। इनके लगने पर बोतलों में बाहरी हवा के प्रवेश करने का भय नहीं रहता तथापि बिल्कुल वायु निरोधक (Air tight) तो इससे भी नहीं हो पाता है, परन्तु बहुत कुछ अंशों में वायु का प्रवेश होना रुक जाता हे। पश्चात् बोतलों पर जिस द्रव्य का अर्क हो उसके (अर्क के) नाम में लेबिल लगाकर ठण्डे स्थान में रख देना चाहिए। इस प्रकार विधिपूर्वक रखने से जल्दी नहीं बिगड़ते।

अजवायन अर्क

अजवायन (साफ करके लें)२।। सेर को बीस सेर जल के साथ सायंकाल भिगो दें। प्रात:काल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर मध्य अग्नि की आंच देकर १० बोतल अर्क निकालकर रख लें। -आरोग्य प्रकाश के आधार पर

मात्रा और अनुपान- १ से ५ तोला तक आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस अर्क के सेवन से मन्दाग्नि, उदरशूल, अजीर्ण, गुल्म, आमदोष, अरुचि, वायु तथा कफ के विकार नष्ट होते हैं।

उस्बा अर्क

उस्बा देशी (अनन्तमूल) को जौकुट करके २।। सेर लेकर सायंकाल २० सेर उष्ण जल में भिंगों दें। प्रात:काल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर २० बोतल अर्क निकाल कर रख लें।-यू.सि.सं. के आधार पर

मात्रा और अनुपान- २ से ५ तोला तक, समान भाग जल में मिलाकर सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इस अर्क को कुछ समय तक लगातार सेवन करने से रक्तदोष (खून की खराबी) तथा त्वचा की विकृति के रोग, खाज-खुजली, फोड़ा फुन्सी आदि नष्ट हो जाते हैं। जीर्ण उपदंश और सुजाक विष के कारण शरीर में लाल चकत्ते पड़ना, चर्म में काले-काले दाग पड़ना आदि विकारों में भी यह उत्तम गुणकारी है। खून शुद्ध करने के लिए 'सार्सापरीला' जैसा श्रेष्ठ प्रभावकारी है।

गिलोय अर्क

हरी ताजी गिलोय २।। सेर के टुकड़े करके इमामदस्ता या लकड़ी के ऊखल में कूटकर बीस सेर पानी में भिंगो दें। प्रात:काल भबके में डालकर २० बोतल अर्क निकाल कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ५ तोला तक सुबह-शाम केवल या समान भाग जल मिलाकर पिलावें।

गुण और उपयोग- इस अर्क के पीने से आमवात, वातरक्त, प्रमेह, रक्तपित्त, जीर्णज्वर, पित्तज्वर, रक्त की गर्मी के विकार, मधुमेह आदि रोगों में बहुत उत्तम गुणकारी है। मधुमेह के रोगियो को जब-जब प्यास लगे तब-तब जल में २ तोला इस अर्क को मिलाकर सेवन कराने से कुछ ही समय में पेशाब में चीनी की मात्रा कम हो जाती है।

गावजवान अर्क

गावजवान २।। सेर को रात में पानी (बीस सेर) में भिंगो दें। सबेरे यथाविधि अर्क परिस्रुत करें फिर उस अर्क में पुन: २।। सेर गावजवान को भिंगोकर दूसरे दिन पुन: अर्क निकाल कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३ तोले प्रात: सायं अकेले या हृदय रोगों तथा मूर्च्छा रोग की औषधियों के अनुपान रूप से दें।

गुण और उपयोग- यह उत्तम हृदयोल्लासक और हृदय को बलदायक होने के कारण हृदयरोगों, मूर्च्छा रोग तथा मस्तिष्क विकारों में उत्तम लाभदायक है। कफ दोष और ज्वर को भी शमन करता है।

गोरखमुण्डी अर्क

गोरखमुण्डी फूल २।। सेर को सायंकाल २० सेर जल में भिंगो दें और प्रात:काल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर यथाविधि अर्क २० बोतल परिस्रुत कर लें।-आरोग्य प्रकाश के आधार पर

मात्रा और अनुपान- २।। तोला से ५ तोला एक दिन रात में चार बार अकेले या समान भाग जल मिलाकर पिलावें।

गुण और उपयोग- इस अर्क के सेवन में रक्तादि धातुओं की वृद्धि होकर फोड़े-फुन्सि, खाज-खुजली, दाद, चकत्ते निकलना, विसर्प, कुष्ठ रोग आदि विकार नष्ट होते हैं। त्वचा और लसीका की विकृति को नष्ट कर वर्ण को सुधारता है। लोगों के शरीर पर तथा मुँह पर काले-काले दाग-झाई आदि हों, उनको कुछ समय तक इसके सेवन कराने से शरीर का वर्ण स्वच्छ एवं मुखमण्डल कान्तियुक्त हो जाता है। जीर्ण पूयमेह ओर जीर्ण उपदंश-जन्य विकारों में भी इसके कुछ समय तक लगातार सेवन करने से धातुओं में प्रविष्ट हुआ विष नष्ट होकर विकार निर्मूल हो जाते हैं।

गुलबनप्सा अर्क

गुलबनप्सा सफेद फूल को अथवा नीले फूल को २।। सेर लेकर सायंकाल २० सेर पानी में भिंगो दें। सबेरे नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क परिस्रुत कर लें।

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ५ तोला तक सुबह-शाम अथवा आवश्यकतानुसार दिन में तीन-चार बार दें।

गुण और उपयोग- इस अर्क के सेवन से प्रतिश्याय, शुष्क कास, जीर्णज्वर, मन्द-मन्द ज्वर रहना, श्लेष्म सन्निपात, कफविकार, श्वासरोग आदि विकारों में उत्तम लाभ होता है। कोमल प्रकृति के रोगियो के लिए यह अतीव गुणकारी, निरापद, मातदिल (न अधिक गरम न अधिक ठण्डी, समशीतोष्ण) औषधि है।

चन्दनादि अर्क

उत्तम सफेद चन्दन का चूर्ण (बुरादा), मौसमी गुलाब के फूल, केवड़ा, वेदमुश्क और कमल के फूल सबकों समान भाग लेकर आठगुने पानी के साथ भबके में डालकर अर्क खींच लें। यदि वेदमुश्क के फूल न मिले तो मौलश्री के फूल डालें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोला तक सुबह-शाम अकेले अथवा दूध की लस्सी के साथ मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह अर्क शीतवीर्य होने के कारण पित्तजन्य विकारों में अतीव लाभदायक है। पेशाब में जलन हो, पेशाब रुक-रुककर कष्ट के साथ उतरता हो, पेशाब के साथ रक्त गिरता हो, अथवा नाक से खून गिरता हो तो इस अर्क में आधा तोला मिश्री मिलाकर पिलाने से पेशाब बिना किसी तकलीफ के साफ होने लगता है तथा रक्त का गिरना भी बन्द हो जाता है। जीर्ण प्रमेह(सूजाक) में कबाबचीनी का तेल ५ बूँद मिलाकर पीने से उत्तम लाभ होता है। इसके अतिरिक्त प्रवाल, मोती, मुक्ताशुक्ति तथा रत्नों की पिष्ट बनाने में भी इसका बहुत श्रेष्ठ उपयोग होता है।

चन्दन अर्क

उत्तम सफेद मलयागिरि चन्दन का बुरादा २।। सेर को सायंकाल आठगुने (२० सेर) पानी में भिंगोकर प्रात: भबका में डालकर २० बोतल अर्क निकाल लेवें। प्रचलित अर्क-विधि के आधार पर

मात्रा और अनुपान- २-४ तोला तक सुबह-शाम चतुर्थांश मिश्री मिलाकर या दूध की लस्सी में मिलाकर पिलावें।

गुण और उपयोग- गुण-धर्म प्राय: उपरोक्त के समान ही है। इसमें अकेले चन्दन का ही अर्क होने के कारण उपरोक्त से कुछ अधिक शीतवीर्य है।

चिरायता अर्क

उत्तम नेपाली चिरायता २।। सेर को जौकुट करके सायंकाल पच्चीस सेर पानी में भिगो दें। प्रात:काल भबके में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकाल लें। -प्रचलित अर्क विधि से

मात्रा और अनुपान- २।। तोला से ५ तोला तक दिन-रात में चार बार पिलावें।

गुण और उपयोग- इस अर्क के सेवन से जीर्ण ज्वर, विषमज्वर, मन्द ज्वर, पित्त ज्वर, पित्तदोष, रक्त विकार, पाण्डु, कामला आदि विकारों में अतीव लाभ होता है। रस-रक्तादि धातुओं में लीन ज्वरकारक दोष को निर्मूल कर ज्वर को जड़ से मिटाने में यह अद्‌भुत प्रभावशाली है, कुनैन आदि तीक्ष्ण और उष्ण औषधियों के सेवन से बुखार अटक जाता है और किसी भी औषधि के सेवन से ज्वर नहीं छूटता हो, तो इस अर्क को प्रति चार-चार घण्टे से २।।-२।। तोला की मात्रा में सेवन करने से कुछ दिनों में ज्वर छूट जाता है। कुनैन के सेवन से कुछ रोगियों के रक्त में गर्मी बहुत बढ़ जाती है। जिससे रोगी को पसीना अधिक निकलता है और प्यास की अधिकता और शरीर में दाह बना रहता है। कानों में सायँ-सायँ आवाज होती है या कानों से कम सुनाई पड़ने लगता है। ऐसी स्थिति में इस अर्क को कुछ दिन लगातार से सेवन कराने से विकारों का शमन हो जाता है। इसके साथ दूध का सेवन करना विशेष लाभकारी है।

त्रिफला अर्क

त्रिफला २।। सेर को जौकुट करके सायंकार २० सेर पानी में भिंगोकर प्रातःकाल भबके में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकाल कर रख लें। -प्रचलित अर्क विधि से

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ८ तोला तक दिन रात में ३-४ बार आवश्यकतानुसार दें।

गुण और उपयोग- यह अर्क रसरक्तादि धातुओं को शुद्ध करनेवाला एवं बढ़ानेवाला है। प्रमेह, मधुमेह, स्वप्नदोष, मेदोवृद्धि, शरीर में पसीना अधिक निकलना तथा पसीने में दुर्गन्ध आना, पेट फूला हुआ रहना, पाण्डूरोग, कामला, आमवात, वातरक्त, खाज-खुजली, पामा, कुष्ठ, कब्ज आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। त्वचा के वर्ण को निखार कर कान्तियुक्त बनाता है। जीर्ण विकारों में लगातार ४ महीने सेवन करना चाहिए।

दशमूल अर्क

दशमूल २।। सेर को जौकुट करके सायंकाल २० सेर पानी में भिगोकर प्रातःकाल भबके में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकालकर रख लें। -अर्क प्रकाश के आधार पर

मात्रा और अनुपान- १ तोला से १० तोला तक दिन में चार बार अकेले ही या वातनाशक औषधियों के अनुपान रूप में दें।

गुण और उपयोग- यह अर्क उत्तम वातशामक तथा प्रसूत विकारों को नष्ट करने वाला एवं शिरोरोग नाशक तथा हृदय और वातनाड़ियों को बल प्रदान करनेवाला है। स्नायु दौर्बल्य या मानसिक अशान्ति के कारण रोगी को निद्रा नहीं आती हो, तो गरम दूध में मिलाकर इस अर्क को पिलाने से स्नायुमण्डल एवं मन को शान्ति मिलकर उत्तम निद्रा आ जाती है। हृदयरोगों में जब वायु की प्रबलता के कारण हृदय में झटके से लगते प्रतीत हो या मन्द-मन्द शूल जैसा अनुभव होता हो, तो एक माशा अर्जुन छाल के चूर्ण अथवा नागर्जुनाभ्र रस और मुक्तापिष्टी के साथ अनुपान रूप में इस अर्क को पिलाने से बहुत शीघ्र एवं श्रेष्ठ लाभ होता है। शोथरोग एवं गुल्म तथा उदर रोगों में भी इसके सेवन से लाभ होता है।

पित्तपापड़ा (शहतरा) अर्क

पित्तपापड़ा (शहतरा) १। सेर को २० सेर जल में सायंकाल भिंगोकर प्रातःकाल भबके में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क परिस्रुत करें।-यू.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ५ से १० तोला अर्क दिन-रात में तीन-चार बार अकेला ही या २ तोला शर्बत उन्नाव में मिलाकर अनुपानरूप में प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- यह अर्क रक्तप्रसादक है। यह त्वचा के वर्ण को निखारता है और मुखमण्डल के लिए कान्तिदायक है। रक्तदोष तथा चर्मविकारों के कारण उत्पन्न हुए खाज-खुजली फोड़ा-फुन्सी आदि को नष्ट करता है। यह उत्तम पित्तशामक होने के कारण पित्त-ज्वर, दाह, रक्तपित्त, प्यास की अधिकता, शरीर में गर्मी का अधिक बढ़ जाना, पसीना अधिक निकलना आदि विकारों में श्रेष्ठ गुणकारी है।

पुनर्नवा अर्क

पुनर्नवा मूल २।। सेर को जौकुट करके सायंकाल २० सेर जल में भिंगोकर प्रातःकाल भबके में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकाल लें। -आरोग्य प्रकाश के आधार पर

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ८ तोला तक दिन-रात में तीन-चार बार आधा तोला मधु मिलाकर या औषधियों के अनुपान रूप में प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- यह अर्क उत्तम शोथनाशक तथा कामला, पाण्डु, हलीमक, उदररोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, रक्तपित्त, वृक्कविकार, यकृत शोथ, बस्तिशोथ, गर्भाशय शोथ आदि विकारों में उत्तम गुणकारी है। मूत्रकृच्छ्र में इसमें यवक्षार ४ रत्ती मिलाकर देना चाहिए। कामला, पाण्डु, हलीमक में गन्ने का रस समान भाग में मिलाकर तथा रक्त पित्त में आँवला रस १ तोला और मिश्री आधा तोला मिलाकर देने से तथा गर्भाशय शोथ में इसके साथ समान भाग दशमूल अर्क मिलाकर देने से बहुत श्रेष्ठ लाभ होता है।

अर्क पुदीना

पुदीना (सुखा) १। सेर लेकर रात्रि में २० सेर पानी में भिगो दें और सबेरे भपके में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकाल लें। फिर इस अर्क में पुनः १। सेर पुदीना भिगोकर दूसरे दिन पुनः अर्क निकाल लें और इसमें प्रति १ छटाँक २० बूँद के हिसाब से केम्फारोडाइन घोलकर रख लें।-यू.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- आधी-आधी छटाँक प्रति चार-चार घंटे के पश्चात् पिलावें।

गुण और उपयोग- यह उत्तम छर्दिघ्न (वमननाशक) है। जी मिचलाना, उबाक आना, अजीर्ण, अफरा, उदरशूल, मन्दाग्नि आदि विकारों में शीघ्र गुणकारी और उत्तम औषधि है।

ब्राह्मी अर्क

ब्राह्मी की पत्ती २।। सेर को पानी से धोकर सायंकाल २५ सेर पानी में भिगो दें, प्रातःकाल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकाल कर रख लें।-प्रचलित अर्क विधि के अनुसार

मात्रा और अनुपान- २ से ५ तोला तक अकेले, दिन-रात में तीन-चार बार या औषधियों के अनुपान रूप में प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- यह अर्क मस्तिष्क के विकारों और मनोवह स्रोतों की विकृति में अतीव लाभदायक है। अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा, हिस्टीरिया, स्मरणशक्ति की कमी दिमाग में थकावट या खुश्की रहना, नींद कम आना, मानसिक अशान्ति और भ्रम बना रहना, आँखों के आगे अंधेरा मालूम पड़ना या चक्कर आदि रोगों में इस अर्क को दूध के साथ मिलाकर या अन्य औषधियों के साथ अनुपान रूप में लेने से बहुत शीघ्र एवं उत्तम लाभ होता है।

वायविडंग अर्क

वायविडंग साफ २।। सेर को सायंकाल २० सेर पानी में भिंगोकर प्रातःकाल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकालकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २।। तोला से १० तोला तक दिन में दो बार दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से कृमिरोग तथा मेदवृद्धि और कफ दोष नष्ट होते हैं। स्थाई लाभ के लिए कुछ समय तक लगातार सेवन करना चाहिए।

मकोय अर्क

मकोय दाना १। सेर को एक ढीली-ढीली कपड़े की थैली में भर २० सेर पानी में डालकर भिंगों दें। पश्चात् नाड़िकायन्त्र (भबका) में भरकर यथाविधि १० बोतल अर्क निकालें।-प्रचलित अर्क विधि से

मात्रा और अनुपान- २ तोला से १० तोला तक दिन-रात में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- इसके प्रयोग से बवासीर, उदररोग, यकृत विकार, पाण्डू, कामला तथा शोथ और ज्वर आदि रोग नष्ट हाते हैं। यह शक्तिवर्द्धक और शांतिदायक है।

महामंजिष्ठादि अर्क

महामंजिष्ठादि कषाय (क्वाथ) की जौकुट की हुई औषधि २।। सेर को सायंकाल २० सेर पानी में भिंगोकर प्रातःकाल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर २० बोतल अर्क निकाल लें।-प्रचलित अर्क विधि से

मात्रा और अनुपान- २ तोला से १० तोला तक दिन रात में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- यह अर्क रक्तदोष और चर्म विकारों, फोड़ा-फुन्सी, खाज-खुजली, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक, शीतपित्त, वातरक्त आदि विकारों को नष्ट करने वाला है। इसको कुछ समय (चार-छःमास) तक लगातार सेवन करने से कुष्ठ जैसी महाव्याधि में भी उत्तम लाभ होते देखा गया है।

महासुदर्शन अर्क

महासुदर्शन चूर्ण का सामान जौकुट किया हुआ २।। सेर लेकर सायंकाल २० सेर पानी में भिंगो दें। प्रातःकाल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर २० बोतल अर्क निकाल लें। -प्रचलित अर्क विधि से।

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ३ तोला तक दिन-रात में २-३ बार अकेले या औषधियों के अनुपान रूप में दें।

गुण और उपयोग- यह अपने विशिष्ट गुणधर्मों के कारण सुप्रसिद्ध ज्वरनाशक है। समस्त प्रकार के विषमज्वर, सन्तत, सतत, इकतरा, तिजारी, चौथिया, आदि में इसके सेवन कराने से रस-रक्तादि धातुओं में लीन दोषो को नष्ट कर धातुओं को शुद्ध कर देता है, जिससे ज्वर समूल नष्ट हो जाता है। कुनैन से खुन में बढ़ी हुई गर्मी के कारण कानों से कम सुनाई पड़ना तथा कानों में सायँ-सायँ की आवाज होना, ये विकार भी इसके सेवन से शान्त हो जाते हैं, पाण्डु, रक्तपित्त, रक्तविकार आदि रोगों में भी इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है।

मेदोहर अर्क

गोमूत्र (२० सेर) को नाड़िकायन्त्र (भबका) में भरकर यथाविधि (10 सेर) अर्क खींच लें।-र.त.सा.

मात्रा और अनुपान- २।। से ५ तोला तक दिन में २-३ बार, १-२ तोला शहद खींच लें।

गुण और उपयोग- यह अर्क मेदवृद्धि (मोटापा अधिक बढ़ जाना), दुर्गन्धियुक्त पसीना आना, हृदय में पीड़ा होना, शोथ, यकृत, शूल, उदर शूल, रक्त विकार, मन्द-मन्द ज्वर, अल्प परिश्रम से ही थकावट आना, प्रमेह आदि विकारों को नष्ट करता है। मेदवृद्धि में लक्ष्मीविलास रस नारदीय या चन्द्रप्रभावटी, मेदोहर, विडंगादि लौह आदि के साथ इसका सेवन करना विशेष लाभदायक है।

सूचना- यदि इस अर्क की मात्रा में अधिक ली जायेगी या शहद कम मिलाया जायेगा, तो व्याकुलता होने लगती है। एक-दो दस्त लग जाते हैं, पसीना आ जाता है एवं कुछ मिनटों के लिए निर्बलता आ जाती है।

शुण्ठी अर्क

२।। सेर सोंठ को जौकुट करके सायंकाल २० सेर पानी में भिंगोकर प्रातःकाल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर २० बोतल अर्क निकाल लें।-प्रचलित अर्क विधि से

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ५ तोला तक अकेले या दूध, मट्ठा, आसवारिष्ट आदि में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह अर्क अग्निवर्द्धक वात और कफनाशक है। मन्दाग्नि, अरोचक, अजीर्ण, आमदोष, अतिसार, संग्रहणी, आमवात, उदरशूल, उदररोग, आध्मान, वातव्याधि, शोथ आदि विकारों को नष्ट करता है। खाँसी तथा श्वास में भी उत्तम गुणकारी है।

अर्क सौंफ

सौंफ साफ २।। सेर का सायंकाल २० सेर पानी में भिंगोकर प्रातःकाल नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क खींच लें।

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ८ तोला तक दिन में २-३ बार अकेले या दही अथवा मट्ठा में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, आमदोष अरुचि, जी मिचलाना, अम्लपित्त आदि विकारों में उत्तम गुणकारी है। यह मातदिल (अनुष्णशीत) होने के कारण विकार शमन के साथ-साथ पेट की गर्मी भी शान्त करता है।

अर्क हरा-भरा

लालचन्दन, खस, पद्माख, नागरमोथा, ताजा गिलोय, पित्त पापड़ा, नीम की छाल, नीलोफर, कासनीबीज, सौंफ, कद्दू के बीज, नेत्रवाला, धनियाँ, तुलसी-बीज, बहेड़ा, धमासा, मुण्डी, मुलेठी, छोटी इलायची, पोस्ते की डोंडी-प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर सायंकाल अठगुने पानी में भिंगोकर सबेरे यथाविधि (जल से आधा परिमाण में) अर्क खींच लें। -यू.सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ६ तोला अर्क अकेले ही या उपयुक्त औषधि के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह अर्क राजयक्ष्मा और उरःक्षत में असीम गुणकारी है। मूत्रदाह, औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक) और दिल की धड़कन के लिये भी गुणकारी है तथा उत्तमांगों को बल प्रदान करता है।

नोट- इसके सेवन काल में उष्ण एवं रूक्ष द्रव्यों से परहेज करें।

रक्तदोषान्तक अर्क

नीम की अन्तर्छाल, बकाइन की छाल, कचनार की छाल, पित्तपापड़ा, जवासा, गोरखमुण्डी, अनन्तमूल, लाल चन्दन का बुरादा, शीशम का बुरादा, मजीठ, खदिर काष्ठ का बुरादा, चोपचीनी, चिरायता, त्रिफला-प्रत्येक चीज समान भाग लेकर सबको मिलाकर २।। सेर लेकर जौकुट कर, सायंकाल गरम पानी में भिंगोकर, ढककर रख दें। प्रातः नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर यथाविधि २० बोतल अर्क निकाल लें। -प्रचलित अर्क विधि से।

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ५ तोला तक दिन-रात में चार बार दें।

गुण और उपयोग- यह अर्क रक्त-दोष और चर्म-विकारों को नष्ट करने में अत्यन्त उपयोगी है। खाज-खुजली, फोड़ा-फुन्सी, विचर्चिका, दद्रु, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक, जीर्ण उपदंश-जन्य रक्तविकार तथा जीर्णपूयमेह (सूजाक) जन्य विकार, गठिया, वातरक्त आदि विकार नष्ट होता है। यह रक्त को शुद्ध करके बढ़ाता हे, त्वचा के वर्ण को निखारता है। इसके कुछ समय तक लगातार सेवन करने से शरीर कान्तियुक्त हो जाता है।

दुग्ध अर्क

गाय का ताजा बीस सेर दूध को नाड़िकायन्त्र (भबका) में डालकर १५ बोतल अर्क निकाल कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- आधा पाव से एक पाव तक आवश्यकतानुसार दिन-रात में ५-६ बार तक दें।

गुण और उपयोग- इस अर्क के सेवन से उदर रोग, शोथ, पाण्डु, कामला, हलीमक, राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, आमदोष, संग्रहणी, अतिसार आदि विकारों में बहुत उत्तम लाभ होता है। जब रोगी की पाचकाग्नि अत्यन्त क्षीण हो ओर दूध आदि शक्तिवर्धक पदार्थ को हजम करने की शक्ति नहीं हो, तब इस अर्क के सेवन से अतीव लाभ होता है। दुग्ध जैसी गरिष्ठता इसमें न होने के कारण यह अत्यन्त लघु (हल्का), शीघ्रपाकी, अग्निवर्द्धक और शक्तिवर्धक है।

❖❖❖

शर्बत- प्रकरण

वर्तमान समय में आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में शर्बतों का प्रयोग काफी बढ़ रहा है, आज के यान्त्रिक युग में लोगों में शारीरिक श्रम करने की शक्ति काफी हद तक कम हो जाने के कारण उनकी प्रकृति बहुत सुकुमार हो गई है और इस कारण से रस-रसायनों और भस्मों आदि के तीक्ष्ण प्रभाव को बिना किसी सौम्य अनुपान के सहन नहीं कर पाते हैं; ऐसी स्थिति में उनके लिए सौम्य अनुपान की योजना करना आवश्यक है। सौम्य अनुपान की दृष्टि से शर्बतों का प्रयोग कर अपना यश तथा चिकित्सापद्धति का सम्मान बढ़ा रहे हैं। शर्बतों के प्रयोग का प्रचार बढ़ने में जनता की अभिरूचि में भी पर्याप्त सहयोग दिया है। शर्बतों के अनुमान से दी हुई औषधि बड़े तथा युवा, 'स्त्री-पुरुष', बच्चे सभी बड़ी रुचि के साथ सेवन करते हैं। कटु और कषाय स्वाद की औषधियों के स्वाद से औषधि लेने में अरुचि उत्पन्न हुए लोगों में भी औषधि को सेवन करने की रुचि जागृत करने की समस्या को हल करने में शर्बत के प्रयोग से काफी सफलता प्राप्त हुई है। कितने ही रोगों की चिकित्सा काढ़ों एवं आसवारिष्ट, चूर्ण, अवलेह, आदि की तरह केवल शर्बत के प्रयोग से ही हो जाती है। सामान्यतः शर्बत स्वाद में मधुर और प्रकृति में सौम्य पेय होने के कारण सेवन करने में सुविधापूर्ण है।

औषधि- प्रयोग में काम आनेवाले शर्बत प्रायः वनस्पतियों के स्वरस, क्वाथ, अर्क और फलों के रस, चीनी, मिश्री आदि से बनाये जाते हैं। शर्बत न अधिक गाढ़ा और न पतला ही होना चाहिए। गाढ़े शर्बत बोतलों में जम जाते हैं और पतले शर्बत जल्दी खराब हो जाते हैं, जबकि ठीक बने हुए शर्बत बहुत समय तक रखने रहने पर भी खराब नहीं होते। कुछ लोग शर्बतों को बिगड़ने से बचाने के लिए उनमें विकृति निरोधक पदार्थ (Preventive Drugs) का सम्मिश्रण भी करते है। यद्यपि ऐसा करना कोई बुरा नहीं है, किन्तु हमारी राय में ठीक विधि से बने शर्बत स्वयं ही विकृति निरोधक होते हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ आम, आँवला, सेब, बिहीदाना आदि अनेक फलों का विकृति से बचाने के लिए चीनी के शर्बत अर्थात् चाशनी में रखने की विधि प्राचीन काल से चली आ रही है। इससे यही सिद्ध होता है कि शर्बत में विकृति से स्वयं बचे रहने एवं दूसरे पदार्थ को बचाने का गुण प्राकृतिक रूप में विद्यमान है। शर्बत दो तार की गाढ़ी चाशनी के होने चाहिए। आजकल द्रवपदार्थों की घनता (गाढ़ेपन) को नापने की घनता-मापक यन्त्र भी बन गए हैं, जिनको हाइड्रोमीटर (Hydrometer) कहते हैं। शर्बत की चाशनी को एक लम्बे नली जैसे कांच के ग्लास के ३/४ भाग तक कर उसमें हाइड्रोमीटर डालकर देखने से जितने नम्बर के अंक तक हाइड्रोमीटर चाशनी में डूब जायेगा, उतने ही नम्बर की चाशनी की घनता मानी जायेगी। शर्बतों की घनता गरम हालत में १२०० नम्बर से १२५० नम्बर तक तथा ठंडा होने पर १२५० से १३०० नम्बर तक रहनी चाहिए, इससे अधिक नम्बर की गाढ़ी चाशनी के शर्बत बोतलों में जम जाते हैं। शर्बतों को जमने से बचने के लिए कुछ लोग प्रति दस सेर चीनी में ३ माशा के हिसाब से फिटकरी का चूर्ण चाशनी बनाते समय मिलाते, किन्तु इससे शर्बतों के रंग में पीलापन आ जाता है। कितने ही लोग प्रति दस सेर चीनी में ९ माशे के हिसाब से निम्बूसत्व पीसकर चाशनी बनाते समय मिलाते हैं, इससे शर्बत के जमने से बचने के अतिरिक्त रंग-रूप में स्वच्छता और स्वाद में रोचकता भी आती है। शर्बत बनाने के काम के लिए जाने ... जल, अर्क ये ताजे लेने चाहिए। चीनी साफ अच्छी

मिठासदार, सफेद रंग की एवं मोटे दानेवाली लेनी चाहिए। मोटे दाने की चीनी में मैल बहुत कम निकलता है। शर्बत की चाशनी बनाते समय मिलाये ये नींबू सत्व में चीनी का मैल काटने का गुण भी होता है। कुछ लोग चाशनी बनाते समय उसमें पानी मिले हुए दूध के छींटे ३-४ बार दे-देकर भी चाशनी का मैल साफ करते है। ऐसा करने में चाशनी में जितना भी मैल होगा वह चाशनी के ऊपर आकर थर की तरह जमा हो जाता है, उसे लोहे के झारे से सावधानीपूर्वक बाहर निकालकर फेंक देना चाहिए। शर्बत बनाने और छानकर, रखने के लिये पात्र ताम्बा या पीतल के बने रांगा की कलई किये हुए या स्टैनलेस के बने होने चाहिए। शर्बत को ठण्डा हो जाने पर मोटे कपड़े या फिल्टर से छानकर, साफ धोकर अच्छी तरह सुखाई हुई शीशी-बोतलों में भरकर कार्क लगाकर मोम या चमड़े की सील लगा दें अथवा बोतल चूड़ीदार मुँह की हो तो पिल्फरप्रूफ कैप (ढक्कन) लगाकर मशीन से कस देना चाहिए। पश्चात् बोतलों पर जिस चीज का शर्बत हो उसके नाम से अथवा कई चीजों के सम्मिश्रण से बना। शर्बत हो तो उस शर्बत का जो नाम हो उसके लेबल लगा देने चाहिए। शर्बतों को अधिक समय तक सुरक्षित बने रहने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि उनको गरम स्थान में न रखा जाये।

शर्बतों में रंग अथवा सुगन्धि (खुशबू-ऐसन्स आदि) मिलानी हो तो गरम में नहीं मिलानी चाहिए। ठण्डा होने के पश्चात् शीशी-बोतलों में भरते समय मिलाकर तुरन्त शीशी-बोतलों में भरकर पैक कर देना चाहिए। रंग और ऐसन्स-इत्र आदि खुशबू देने के गुणों की दृष्टि से कोई विशेष आवश्यकता नहीं हैं, किन्तु उनको आकर्षक और उत्तम वर्ण के बनाने के लिए रंग तथा खुशबू देना उपयुक्त है।

आजकल बहुत से लोग सेक्रीन आदि हानिकर द्रव्यों का इस्तेमाल करके सस्ते शर्बत भी बनाते देखे जाते हैं। अत: चिकित्सकों एवं जनता को शर्बतों को खरीदते समय उनकी उत्तमता का विचार करते हुए प्रामाणिक निर्माण संस्था द्वारा बनाये गये शर्बतों को ही लेकर व्यवहार करना चाहिए।

अडूसा (वासा) शर्बत

अडूसा मूल-छाल १ सेर को आठ सेर जल में पकाकर चतुर्थांश क्वाथ शेष बचने पर मोटे कपड़े या फिल्टर से छानकर, पुनः साफ कलईदार कड़ाही या भगौना औंद में डालकर ४ सेर चीनी मिलाकर यथाविधि शर्बत तैयार करके ठण्डा होने पर छानकर शीशियों में भरकर लेबल लगाकर रख लें।-प्रचलित शर्बत निर्माण विधि से

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ४ तोला तक दिन-रात में २-३ समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत खाँसी, श्वास (दमा), प्रतिश्याय (जुकाम), रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि रोगों में स्वतन्त्र रूप से अथवा औषधियों के अनुपान रूप से प्रयोग करने से उत्तम गुण करता है।

उन्नाव का शर्बत

उन्नाव(असली) आधा सेर को जरा-सा कूटकर दो सेर पानी में पकाकर एक सेर पानी शेष रहने पर मोटे कपड़े से छानकर तीन सेर चीनी डालकर यथाविधि शर्बत तैयार करके छानकर साफ शीशियों में भरकर लेबर लगाकर रख लें।-सि.भै.म.मा.

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ४ तोला तक पानी में मिलाकर प्रातः सायं पिलावें।

गुण और उपयोग- क्षय, खाँसी में कफ के साथ खून निकलना, रक्तपित्त, यौवन पिड़िकायें, मुँहासें, पित्तविकार आदि में बहुत श्रेष्ठ गुणकारी है। यह त्वचा के वर्ण को निखारता है। मुखमण्डल को कान्तियुक्त बना देता है। स्वाद में सुमधुर एवं स्वादिष्ट है।

गावजवान शर्बत

गावजवान ३ तोला ९ माशा, बिल्ली लोटन १ तोला १।। माशा, गुलाब के फूल, सफेद चन्दन का बुरादा, बालछड, छड़ीला-ये प्रत्येक १०।। माशा सबको अर्क गुलाब आधा सेर और वर्षाजल आधा सेर में पकाकर तीन पाव जल शेष रहने पर छानकर १।। सेर चीनी डालकर यथाविधि शर्बत बनाकर इसमें प्रति तोला शर्बत में १।। रत्ती के हिसाब से क्लोवजहाइड्रेट अर्क में घोलकर मिला दें पश्चात् शीशियों में भर करके रख दें। -यू.सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोला तक अकेले या गावजवान-अर्क आदि में मिलाकर प्रातः सायं पिलावें।

गुण और उपयोग- क्लम, थकावट और चिन्ता के कारण या ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में अनिद्रा का विकार हो जाय तो इस शर्बत का उपयोग असीम गुणकारी सिद्ध होता है। इससे गहरी निद्रा आती है और दिमाग को बहुत आराम मिलता है। यह वेदना को शमन करता है। धनुर्वात, मृगी, अपतन्त्रक आदि आक्षेपयुक्त व्याधियों में भी इससे उत्तम उपकार होता है।

अनार का शर्बत

मीठे अनार (बेदाना) का रस एक सेर को इतना पकायें कि यह आधा सेर रह जाये, फिर उसमें आधा सेर जल और चीनी २ सेर मिलाकर यथाविधि शर्बत बनाकर ठण्डा होने पर मोटे कपड़े से छानकर उसमें खाने का तरल गुलाबी रंग तथा अनार का ऐसन्स आवश्यकतानुसार मिलाकर शीशियों में भरकर रख लें।-यू.सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- ३।। तोला से ५ तोला तक चारगुने जल में मिलाकर दिन रात में २-३ बार अथवा आवश्यकतानुसार पिलावें।

गुण और उपयोग- यह मन को प्रसन्न रखने वाला, प्यास को मिटाने वाला, गर्मी अर्थात् दाह को शान्त करने वाला, श्रम अर्थात् थकावट को मिटाने वाला, दीपन-पाचन, सुमधुर और रुचिवर्धक एवं पीने में अत्यन्त जायकेदार है। बहुत से लोग गर्मी के मौसम में स्वयं तथा परिवार के लोगों के लिए व्यवहार करते हैं।

केवड़ा का शर्बत

केवड़ा का जल एक पाव, जल एक सेर, चीनी २।। सेर, साइट्रिक एसिड १५ रत्ती से शर्बत तैयार कर ले। ठंडा होने पर छानकर खाने का हरा रंग (तरल) यथा आवश्यक मिलाकर तथा ऐसन्स केवड़ा आवश्यकतानुसार देकर साफ शीशियों में भर करके रख लें। -प्रचलित शर्बत निर्माण-विधि

मात्रा और अनुपान- २।। तोला से ५ तोला तक को एक गिलास पानी में मिलाकर पीयें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत पीने में अत्यन्त जायकेदार, सुमधुर तथा मन को प्रसन्न करने वाला, रुचिवर्द्धक, दीपन तथा पाचन है। आमाशय को शान्ति प्रदान करने वाला, पेशाब साफ लाने वाला, शारीरिक तथा मानसिक थकावट को मिटाने वाला और मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करने वाला है। प्यास को मिटाकर तृप्ति तथा आनन्ददायक है। अन्तर्दाह, मूत्रकृच्छ्र और ग्लानि को दूर करता है।

खश का शर्बत

अर्क खश एक पाव, जल एक सेर, चीनी २।। सेर तथा निम्बूसत्व १५ रत्ती मिलाकर यथाविधि शर्बत तैयार कर लें। ठण्डा होने पर मोटे कपड़े से छानकर खाने का तरल हरा रंग एवं ऐसन्स खस आवश्यकतानुसार मिलाकर शीशियों में भरके रखें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत अत्यन्त जायकेदार तथा सुमधुर है। प्यास, अन्तर्दाह, पेशाब मे जलन, मूत्रकृच्छ्र, श्रम, ग्लानि तथा शारीरिक और मानसिक थकावट को मिटानेवाला, तृप्तिकारक तथा आनन्ददायक है। रक्तपित्त, पित्तज्वर, पित्तविकार, आँखों में लाली तथा जलन रहना आदि को भी नष्ट करता है। कितने ही लोग गर्मी के मौसम में अपने स्वयं के तथा परिवार के लिए इसका नित्य व्यवहार करते हैं।

गिलोय का शर्बत

१- ताजा गिलोय का रस एक सेर को आग पर इतना पकायें कि वह आधा सेर रह जाये। पश्चात् उसमें पानी एक सेर और चीनी ३ सेर मिलाकर यथाविधि शर्बत बनाकर ठंडा होने पर शीशियो में भर करके रख लें।

२- आधा सेर गिलोय को कूटकर अठगुने जल में पकाकर एक सेर क्वाथ बचने पर छानकर उसमें अथवा गिलोय अर्क एक सेर में दो सेर चीनी मिलाकर यथाविधि शर्बत बनाकर शीशियों में भरकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोला के चौगुने पानी में मिलाकर सुबह-शाम पिलावें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत सब प्रकार के ज्वरों को मिटानेवाला, ज्वर में बढ़े हुए वेग को कम करनेवाला, पित्त विकार, पेशाब की जलन हृदय तथा छाती की जलन, आँखों में जलन तथा सुर्खी रहना, मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, हलीमक, रक्तपित्त, जीर्णज्वर, धातुगत ज्वर, प्यास की अधिकता, दुर्गन्धियुक्त पसीना निकलना, पूयमेह (सूजाक) प्रमेह आदि विकारों को नष्ट करने में अत्यन्त उपयोगी है।

गुड़हल का शर्बत

१-एनामेल के या कलईदार बर्तन या चीनी मिट्टी के इमरतवान में एक पाव निम्बु के रस में जवा पुष्प (ताजा)100 नग को छोटे-छोटे टुकड़े करके भिंगो दें। दूसरे दिन सुबह ऊपर नितरा हुआ जल (रस) निकाल लें। फिर उसमें २ सेर पानी तथा २ सेर चीनी मिलाकर चाशनी करके बोतलों में आधा-आधा भरकर अच्छी तरह कार्क लगाकर पानी के टब या मटके में ३-४ दिन तक डालकर रखें। पश्चात् निकाल कर छानकर अन्य बोतलों में भरकर रखें। -यू.सि.यो.सं. से किंचित् परिवर्तित

२-गुलाब जल १० तोले केवड़ा अर्क १० तोले, जल ३० तोले, चीनी ३० तोले कागजी निम्बू ५ नगर का रस और गुड़हल (जवा) की छाल अथवा पुष्प २।। तोला-इन सब चीजों को दो बोतलों में भरक अच्छी तरह मुँह बन्द करके (कार्क लगाकर) ३ दिन तक पानी में डुबाकर रखें पश्चात् निकाल कर छान कर दूसरी बोतलों में भरकर रखें। -आ.प्र.

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक शर्बत का पानी १२ तोला या अर्क गावजवान में मिलाकर पिलावें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत रक्तपित्त, हृदय की धड़कन, दहशत, संताप, अन्तर्दाह, पेशाब की जलन, मूत्रकृच्छ्र, दिल की धड़कन आदि विकारों में उत्तम गुणकारी है। यह हृदय को उल्लसित करता है एवं मन को शान्तिदायक रखता है।

गुलबनफ्सा का शर्बत

गुलबनफ्सा अर्क २ पौंड, जल ८ पौंड, चीनी १० सेर, साइट्रिक एसिड (निम्बू सत्व)२ माशा मिलाकर यथाविधि शर्बत बनाकर ठंडा होने पर छानकर शीशियों में भरकर रख लें। कुछ लोग इसमें खाने का हरा तरल रंग भी हरा होने योरा मिलाते हैं।

मात्रा और अनुपान- २ तोला से ४ तोला तक को चौगुने पानी में मिलाकर अकेले या कफनाशक दवाओं के अनुपानरूप में व्यवहार करें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम), नजला, दिल की धड़कन, मानसिक अशान्ति, ज्वर, ज्वरान्त दौर्बल्य आदि विकारों में सुप्रसिद्ध महौषधि है। सूखी खाँसी आने तथा क्षय में खाँसी के साथ कफ में खून आने पर प्रवाल पिष्टी २ रत्ती और सितोपलादि चूर्ण १ माशा, अभ्रक भस्म १ रत्ती-इन सबको मिलाकर मधु के स्थान पर इस शर्बत में मिलाकर चाटने से बहुत उत्तम लाभ होता है जुकाम और खांसी की यह सुप्रसिद्ध महौषधि है।

गुलाब का शर्बत

१- गुलाब जल १ सेर में चीनी १।। सेर मिलाकर शर्बत बनाकर तुरन्त छानकर रख लें। - र.त.सा.

२- गुलाब जल १ सेर, चीनी २।। सेर, साइट्रिक एसिड (निम्बूसत्व) आधा माशा मिलाकर शर्बत बना लें। खाने का गुलाबी तरल रंग आवश्यकतानुसार और गुलाब की खुशबू मिलाकर छानकर शीशियों में भर लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ५ तोला तक एक गिलास पानी में मिलाकर दिन-रात में २-३ बार आवश्यकतानुसार पिलावें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत अत्यन्त सुमधुर और जायकेदार है। प्यास की अधिकता, अन्तर्दाह, थकावट, ग्लानि, अवसाद, भ्रम, चित्त की अस्थिरता, पेशाब की जलन, मूत्रकृच्छ्र, आँखों की जलन तथा सुर्खी आदि विकारों को दूर करता है। कितने ही लोग गर्मी के मौसम में इसका नित्य सेवन कर गर्मी की अधिकता से होने वाले विकारों से बचे रहते हैं।

चन्दन का शर्बत

१- आधा पाव श्वेत चन्दन के बुरादा को आधा सेर गुलाब के जल में रात को भिंगो दें। सबेरे हल्का-सा जोश देकर (उबाल कर) डेढ़ पाव जल शेष हरने पर मल कर छान लें। फिर आधा सेर मिश्री मिलाकर शर्बत बना लें। उबालते समय ढक्कन लगा दें, अन्यथा तैल उड़ जाता है।

२- चन्दन सफेद का अर्क एक पाव, जल एक सेर, चीनी २।। सेर, निम्बू सत्व १५ रत्ती मिलाकर शर्बत बना लें। खाने का पीला रंग और खुशबू आवश्यकतानुसार देकर शीशियों में भर लें।

मात्रा और अनुपान- २।। से ५ तोला तक आवश्यकतानुसार जल मिलाकर पिलावें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत सुमधुर और अतीव श्रेष्ठ, जायकेदार, शीतवीर्य और दिल तथा दिमाग को तरावट पहुँचाने वाला है। अन्तर्दाह, प्यास की अधिकता, क्लान्ति, अवसाद, भ्रम, मूर्च्छा, पेशाब लाल या पीला होना, जलन के साथ होना, नाक और मुँह में खुश्की रहना, रक्तपित्त, बढ़ा हुआ ज्वर का वेग, पित्त विकार, गर्मी के दिनों में होनेवाले विकार, सूजाक आदि में उत्तम गुणकारी है। बहुत-से लोग गर्मी के दिनों में इसका नित्य प्रयोग करते हैं।

जूफा का शर्बत

मुनक्का ३० तोला, उन्नस्व २० तोला, सापिस्तान २० तोला, अंजीर २० तोला, बेख सोसन

३० तोला, मुलेठी २० तोला, सौंफ की जड़ १० तोला, बेखकर्फस १० तोला, जूफा १० तोला, हंसराज १० तोला, बिहीदाना ५ तोला, अनीसून ५ तोला, सौंफ ५ तोला, जौ छिले हुए ५ तोला, अलसी ५ तोला, जटामांसी ५ तोला, गवजवान ५ तोला, खतमी के बीज ५ तोला इन सब को जौकुट करके ३ गुने जल में रात को भिंगों दे। सुबह मन्द आँच पर पका कर एक तिहाई जल शेष रहने पर ठण्डा करके कपड़े से छान लें। पीछे उसमें ६ सेर चीनी मिला कर शर्बत बना लें। ठण्डा होने पर छान कर बोतलों में भर लें। -सि.यो.सं.

नीलोफर का शर्बत

नीलोफर के पुष्प १० तोला को एक सेर जल में रात्रि को भिंगों दें। सुबह पकाकर आधा सेर शेष रहने पर छान कर एक सेर चीनी डाल कर शर्बत ठण्डा होने पर बोतलों में भरकर रख लें।-यू.सि.यो.सं. के आधार पर

मात्रा और अनुपान- १ तोला शर्बत शीतल जल या गावजवान अर्क १२ तोला में मिला कर दें।

गुण और उपयोग- यह पित्त की तीक्ष्णता को कम करता है तथा पिपासा और संताप का शमन करता है। हृदय को बलप्रदान करता है। अन्तर्दाह, गर्मी तथा पित्तविकारों और रक्त-पित्त तथा शुष्क कास में उत्तम गुणकारी है।

नींबू का शर्बत

नींबू के रस में २।। गुना चीनी (शक्कर) की चाशनी बना लें, फिर गरम-गरम को ही छान लें (ठण्डा होने पर नहीं छनता)।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर पीवें।

गुण और उपयोग- इस शर्बत के सेवन से पित्त विकार, मन्दाग्नि, अरूचि, तृषा, उबाक, अजीर्ण, मलावरोध, रक्तदोष आदि दूर होते हैं, अग्नि प्रदीप्त होती है। गर्मी में सूर्य के ताप (धूप) में घूमने से उत्पन्न व्याकुलता और पित्त प्रकोप सत्वर दूर होते हैं। सन्ताप तथा दाह शान्त होता है। मन प्रसन्न रहता है, थकावट दूर होती है।

संतरा का शर्बत

संतरा मीठा (पका हुआ) के रस में २।। गुना चीनी की चाशनी बना कर गरम-गरम को छान लें। ठंडा होने पर बोतलों में भर लें। -र.त.सा. की नींबू शर्बत विधि से

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोला तक आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर दिन में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत अत्यन्त जायकेदार, मन को प्रसन्न करनेवाला, थकावट मिटाने वाला, प्यास, दाह, क्लान्ति, अवसाद को मिआने वाला है। दीपन-पाचन एवं बल तथा खून को बढ़ाने वाला और त्वचा के वर्ण को निखारता है।

बनप्सा का शरबत

बनप्सा पत्ती को आठगुने जल में भिगोकर सुबह चूल्हे पर पका कर अष्टमांश जल शेष रहने

पर मोटे कपड़े से छान कर क्वाथ से चार गुना चीनी या मिश्री डालकर शर्बततैयार कर लें, ठण्डा होने पर छान कर बोतलों में भर लें। -सि.भै.म.मा.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोला तक आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर दिन में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- यह शर्बतसौम्य और पित्तशामक होने से पित्तज्वर, शुष्क, कास, बिगड़ा हुआ जुकाम, तीक्ष्ण दवाओं के प्रयोग से छाती में कफ के सूखकर जम जाने पर बहुत उत्तम गुण करता है। तमक श्वास में भी इसके सेवन से अच्छा लाभ होता है।

बेल का शर्बत

बेल के ताजे पके हुए फलों का गूदा आधा सेर को २ सेर पानी में आग पर पकाकर एक सेर पानी शेष रहने पर छान कर २ सेर चीनी डाल कर शर्बत बना कर ठंडा होने पर छान कर बोतलों में भर लें। प्रचलित शर्बत विधि से

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोला तक आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर दिन में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत प्रवाहिका, अतिसार, विशेषत: रक्तातिसार, संग्रहणी, आमदोष खूनी बवासीर, रक्तप्रदर, पुराना कब्ज, मानसिक सन्ताप, अवसाद, भ्रम, मूर्च्छा तथा क्लम को नष्ट करता है। हृदय को उत्तम बल प्रदान करता है। यह रस-रक्तादि धातुवर्द्धक है।

ब्राह्मी का शर्बत

ब्राह्मी २ छटाँक, शंख पुष्पी आधा छटाँक, दोनों को सायंकाल ३ सेर आधा पाव जल में भिंगो दें। प्रात: चूल्हे पर पका कर २।। सेर पानी शेष रहने पर छान कर ५ सेर चीनी और ३० रत्ती नींबूसत्व डालकर शर्बत बना लें, ठंडा होने पर छानकर बोतलों में भरकर रख लें। इसमें खाने का हरा रंग तरल १ या आधा माशा भी आवश्यकतानुसार मिला सकते हैं। इससे रंग अच्छा हो जाता है। - प्रचलित शर्बतविधि से

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर दिन में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत दिमागी कमजोरी, उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, याददाश्त की कमी, सिर में दर्द, मानसिक दुर्बलता, स्नायु-दौर्बल्य आदि विकारों को नष्ट करने में अतीव गुणकारी है। स्मरणशक्ति को बढ़ाने और दिमाग को पुष्ट करने में सुप्रसिद्ध है। यह गर्मी को शान्त करता है और चित्त-भ्रम, अनिद्रा, ग्लानि आदि को मिटाता है।

फालसा का शर्बत

फालसा का रस ३० तोला, चीनी १। सेर मिलाकर यथाविधि शर्बत बना लें। ठंडा होने पर छानकर बोतलों में भर लें।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोला तक शर्बत शीतल जल मिलाकर आवश्यकतानुसार सेवन करें।

गुण और उपयोग- आमाशय और हृदय को बलप्रद और यकृत की उष्मा का शामक है। तृष्णा को शमन करता तथा वमन और अतिसारनाशक है। यह अत्यन्त स्वादिष्ट एवं रोचक तथा शीतवीर्य है। मन को प्रसन्न करने वाला, चित्त भ्रम, मानसिक अशान्ति और बेचैनी मिटाता है। मल और मूत्र का शोधन करता है।

रक्तशोधक शर्बत

उशबा ८ तोला, मजीठ ४ तोला, सौंफ २ तोला, उन्नाव २५ नग, सपिस्तान २५ नग, हंसराज १ तोला, गावजवान १ तोला लेकर जौकुट कर रात्रि को ८ गुने जल में भिंगोंकर रख दें, और सुबह क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें फिर २ सेर चीनी मिलाकर यथाविधि शर्बत तैयार कर लें, ठंडा होने पर छान कर बोतलों में भर लें। -र.त.सा.से किंचित् परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- १।। तोला से २।। तोला तक आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर दिन में दो बार दें।

गुण और उपयोग- यह शर्बत रक्तदोष, उपदंश विकार, पूयमेह (सूजाक), कुष्ठ, वातरक्त, फोड़ा, फुन्सी, दाद, विसर्प, विस्फोटक, खाज-खुजली, बिच्ची (एक्जिमा) आदि रोगों में उत्तम गुणकारी है। यह रक्त को शुद्ध करता, बढ़ाता और त्वचा के वर्ण को निखारता है।

सेब का शर्बत

सेब का रस एक पाव, मिश्री या चीनी आधा सेर इनका यथाविधि शर्बत बनाकर ठंडा होने पर छान कर बोतल में भर रख लें। -यू.सि.यों.सं.

मात्रा और अनुपान- १तोला इस शर्बतका अर्क गावजवान ५ तोला में मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह हृदय को पुष्ट और उल्लसित करता है, दिल की धड़कन, अतिसार और वमन में अतीव गुणकारी है। मानसिक अशान्ति, भ्रम, दिमागी कमजोरी, अवसाद, थकावट आदि को दूर करता है। उत्तम बलवर्द्धक एवं रस-रक्तादि धातुओं को बढ़ानेवाला है।

शंखपुष्पी का शर्बत

शंखपुष्पी आधा पाव, ब्राह्मी (हरद्वारी) आधी छटाँक, शाम को ३ सेर आधा पाव जल में भिंगों दें। प्रातःकाल अग्नि पर पकायें, २।। सेर जल शेष रहने पर कपड़े से छान कर ५ सेर चीनी और साइट्रिक एसिड (नींबू सत्व) ३० रत्ती (एक माशा) मिलाकर यथाविधि शर्बत बना लें। ठण्डा होने पर छान कर बोतलों में भर कर रख लेवें। इसमें खाने का हरा तरल रंग १ माशा या आधा माशा आवश्यकतानुसार मिला सकते हैं। इससे रंग अच्छा होता है। -प्रचलित शर्बत विधि से।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक आवश्यकतानुसार जल में मिलाकर सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बहुत अच्छी बढ़ जाती है। दिमागी कमजोरी के कारण जरा-सी भी मेहनत का काम करने से होने वाली दिमागी थकावट और सिर दर्द नष्ट होता है। उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, हिस्टीरिया आदि विकारों को नष्ट करता है। मानसिक अशान्ति और चित्त विभ्रम को मिटाता है। स्नायु-दौर्बल्य को मिटाता एवं दिमाग को पुष्ट करता है।

❖❖❖

चूर्ण- प्रकरण

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्।
चूर्ण तच्च रजः क्षोदस्तस्यं पर्याय उच्यते।।

अत्यन्त सूखे साफ-स्वच्छ द्रव्यों को सिल कर अच्छी तरह पीस कर या इमामदस्ते में कूट कर अथवा डिसिन्टीग्रेटर, पल्वराइझर आदि यन्त्रों से महीन पीसकर चूर्ण बना, कपड़े से या महीन चलनी से छान लें। इसको "चूर्ण" कहते हैं। 'रज' और 'क्षोद' ये चूर्ण के पर्याय नाम हैं। पुराने सड़े-गले या घुने हुए अथवा कूड़ा-मिट्टी मिश्रित द्रव्यों का चूर्ण एवं अन्य औषधि कार्य में उपयोग नहीं करना चाहिए।

चूर्ण बनाने में भी कल्क के समान औषध- द्रव्यों का कुछ भी अंश नहीं छोड़ा जाता और चूर्ण को द्रव (पतले) पदार्थ में मिलाकर खाया जाता है। इसलिए चूर्ण को कल्क का भेद माना गया है।

साधारणतया चूर्ण ६ माशे से १ तोला की मात्रा में खाने के लिए देना चाहिए। ध्यान रहे यह मात्रा मृदु वीर्य औषध चूर्ण के लिए है। यदि द्रव्य मध्य वीर्य वाला हो, तो उनके चूर्ण की मात्रा ३ से ६ माशा और तीक्ष्ण वीर्य औषध हो, तो इस चूर्ण की मात्रा १।। से ३ माशा करनी चाहिए।

चूर्ण के सामान्य तौर पर ३ विभाग किये जा सकते हैं। यथा-

१. क्षार, लवण तथा अम्ल द्रव्य मिश्रित-तेज, उष्ण, पाचक, सारक और अग्नि, दीपक, रुचिवर्द्धक।

२. शक्कर (चीनी या मिश्री) मिलाये विरेचन गुण-धर्म युक्त सौम्य और पित्तशामक।

३. कटु (तिक्त) पदार्थ युक्त-कण्डु (खुजली) और ज्वरनाशक।

चूर्ण लेने के समय- सुबह-शाम अच्छा है। पाचक चूर्ण को भोजन के बाद आवश्यकतानुसार मुँह में डाल कर ऊपर से घूँट-घूँट भर पानी या अनुपान (आसव अरिष्ट अर्क आदि) पीना चाहिए। जो चूर्ण शहद या घी आदि के अनुपान से खानेवाला हो उसे पहले अनुपान में मिला कर सेवन करें। अग्निवर्द्धक चूर्णों को भोजन के कुछ समय पूर्व शूल नाशक चूर्णों को जब शूल का वेग उत्पन्न हो, तब भी सेवन करना चाहिए, ताकि शूल का वेग शीघ्र शान्त हो जाये।

अवधि (समय)- चूर्ण बरसात में तैयार किया गया हो तो ज्यादा नहीं ठहर सकता है। चूर्ण को काँच या चीनी मिट्टी या कलईदार धातु के पात्र में रख कर मजबूत ढक्कन लगाकर रखने से हवा उसके भीतर नहीं जा सकती है। इस प्रकार रखे हुए चूर्ण अधिक से अधिक समय तक ठहरते हैं। क्षार मिला हुआ चूर्ण भी उपरोक्त तरीके से रखा जाये तो १वर्ष तक रह सकता है। चूर्ण में बाहरी हवा लगने से ही वह गुणहीन तथा निर्वीर्य हो जाता है। वायु-रहित (Air tight)पैकिंग में चूर्ण वर्षों ठीक बने रहते हैं। लौह वाले पात्र में क्षार और नमक मिश्रित चूर्ण नहीं रखना चाहिए। चूर्णों को काँच की शीशियों में भर कर पिल्फर प्रूफ कैप मशीन से लगाकर पैक करने में भी वे वर्षों खराब नहीं होते, क्योंकि उनमें वायु प्रवेश नहीं कर पाती है।

अग्निमुख चूर्ण

भुना हुआ सफेद जीरा १० तोला, सोंठ ५ तोला, सेंधानमक १५ तोला, काला नमक ५ तोला, काली मिर्च ५ तोला, नींबू सत्व ५ तोला, पिपरमेण्ट १।। माशा लें। पिपरमेण्ट और नींबू सत्व को छोड़ कर शेष द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। पश्चात् नींबू सत्व को सूक्ष्म पीस कर चूर्ण में मिला लें। फिर सब से अन्त में पिपरमेण्ट को खरल में मर्दन करके, चूर्ण में अच्छी प्रकार मिला कर चूर्ण को सुरक्षित रख लें। -आनुभविक योग

मात्रा और अनुपान- २-४ माशा तक, भोजन के बाद सुबह-शाम जल के साथ दें या बिना जल के भी थोड़ा-थोड़ा चुटकी से मुँह में डालकर खाया जा सकता है।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण अत्यन्त स्वादिष्ट और दीपन-पाचन है। इस चूर्ण के प्रयोग से खट्टी डकारें आना, जी मिचलाना या मुँह में पानी भर जाना, भूख न लगना, अरूचि, उदरशूल, मन्दाग्नि आदि विकारों को नष्ट करता है। भोजन को अच्छी तरह पचाकर क्षुधा की वृद्धि करता है और उत्तम रुचिवर्द्धक है। विशेषत: उदर वायु (गैस) को शीघ्र शमन करता है।

अग्निमुख चूर्ण (दूसरा)

भूनी हुई हींग १ तोला, बच २ तोला, पीपल ३ तोला, सोंठ ४ तोला, अजवायन ५ तोला, हर्रे ६ तोला, चित्रक मूल की छाल ७ तोला और कुठ ८ तोला इन सबको कूट, कपड़छन्न कर महीन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशा तक, सुबह-शाम दही अथवा दही के जल या गरम पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण का विशेष उपयोग मन्दाग्नि और उदावर्त तथा अजीर्ण में किया जाता है। यह पाचक, अग्निवर्द्धक तथा रुचि उत्पन्न करने वाला है। मलावरोध और पेट में हवा भर जाय तो उसको नष्ट करता है। प्लीहा, अर्श, मन्दाग्नि, उदरशूल, पार्श्वशूल, गुल्म आदि रोगों को भी नष्ट करता है। वात और कफ प्रधान रोगों में यह विशेष गुणकारी है।

अजमोदादि चूर्ण

अजमोद (वनअजवायन),वच, कूठ, अम्लवेत, सेंधा नमक, सज्जीखार, हरड़, त्रिकटु, ब्रह्मदण्डी, मोथा, हुलहुल, सोंठ, काला नमक- प्रत्येक समान भाग लेकर कूटकर महीन चूर्ण बना, रख लें।

वक्तव्य- त्रिकटु से सोंठ, काली मिर्च, पिपल-ये तीनों द्रव्य पृथक् -पृथक् लें।

मात्रा और अनुपान- ३ माशा से ६ माशा तक सुबह-शाम छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग- उचित अनुपान के साथ वह सब प्रकार के शूलों में अच्छा गुण करता है।

आमानुबन्ध वात-अर्थात् पेट में आम संचित होकर, वात प्रकुपित हो, शरीर के जोड़ों में दर्द उत्पन्न करता है। इसमें तथा आमवात, गृध्रसी, पीठ, कमर एवं पेट में शूल (दर्द) होने पर इस दवा का उपयोग किया जाता है। यह शूलनाशक तथा प्रकुपित वायु को शान्त कर शोथ और कफदोष को भी दूर करता है।

दूसरा- अजमोद, वायविडंग, सेंधा नमक, देवदारु, चित्रकमूल की छाल, सोया, पीपल, पीपलामूल, काली मिर्च-प्रत्येक १-१ तोला, हर्रे ५ तोला, विधारा १० तोला, सोंठ १० तोला- इन सबका चूर्ण बना एकत्र मिला सुरक्षित रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ माशा से ६ माशा तक गर्म जल के साथ सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से सूजन, आमवात, गठिया, गृध्रसी, कमर, पीठ, गुदा, जंघा आदि की पीड़ा (दर्द), तूनी-प्रतितूनी, विश्वाची तथा कफ और वायु के विकार नष्ट होते हैं।

नोट- कोई-कोई वैद्य इस चूर्ण में समभाग गुड़ मिलाकर १-१ माशा की गोलियाँ भी बना लेते हैं, तब इन्हें 'अजमोदादि वटक' कहते हैं।

अविपत्तिकर चूर्ण

सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, विड्नमक, वायविडंग, छोटी इलायची और तेजपात-प्रत्येक १-१ तोला, लौंग ११ तोला, निशोथ की जड़ ४४ तोला और मिश्री ६६ तोला लेकर सब को कूट कपड़छन चूर्ण बना कर सुरक्षित रख लें।

नोट- कई वैद्य विड्नमक के स्थान पर नवसादर भी डालते हैं। हमने भी बनाकर अनुभव किया है। उत्तम बनता है। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशा सुबह-शाम, ठण्डे पानी, धारोष्ण दूध या कच्चे नारियल के जल के साथ दें। यदि आवश्यकता हो, तो रात को सोते समय भी दें।

गुण और उपयोग- अम्लपित्त और शूल रोग में पहले इस चूर्ण से विरेचन कराकर पीछे अन्य दवा देने से अच्छा लाभ होता है। यह पैत्तिक विकारों के लिए बहुत उपयोगी है। अम्लपित्त में पित्त की विकृति से ही यह रोग बढ़ता है। उस विकृति को दूर करने के लिये इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है। यह विरेचन होने के कारण दस्त भी साफ लाता है और कब्जियत दूर करता है। इस चूर्ण के सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त होकर भूख खूब लगती है।

अश्वगन्धादि चूर्ण

असगन्ध ४० तोला, विधारा ४० तोला लेकर इन दोनों को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशे तक सुबह-शाम दूध या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से वीर्यविकार, शुक्रक्षय, वीर्य का पतलापन, शिथिलता, शीघ्रपतन, प्रमेह आदि विकार नष्ट होकर वीर्य गाढ़ा और निर्दोष बनता है। इस चूर्ण का सबसे उत्तम प्रभाव वीर्यवाहिनी नाड़ियों और मस्तिष्क तथा हृदय पर होता है, जिसके कारण यह चूर्ण मस्तिष्क को परिपुष्ट करता है। अनिद्रा, हृदय की कमजोरी एवं धड़कन को नष्ट करता है। यह चूर्ण उत्तम शक्तिवर्द्धक तथा बाजीकरण है। शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाकर शरीर के वजन को बढ़ाता एवं उत्तम वय:स्थापक है।

एलादि चूर्ण

छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, तालीसपत्र, वंशलोचन, मुनक्का, बीजरहित, अनारदाना, धनियाँ, काला जीरा, सफेद जीरा-प्रत्येक २-२ तोला, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, काली मिर्च, अजवायन, तिन्तड़ीक, अम्लवेत, अजमोद, असगन्ध, कौंच के बीज छिलका रहित-प्रत्येक १-१ तोला मिश्री १६ तोला लेकर सब द्रव्यों को एकत्र मिला कूटकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करके सुरक्षित रख लें।-भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३से ६ माशा की मात्रा में मिश्री और शहद के साथ मिलाकर सुबह-शाम सेवन करायें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण वातज, कफज, छर्दि एवं पित्तजन्य विकार, प्यास ज्यादा लगना, कण्ठ सूखना आदि को नष्ट करता है।

आमाशय में विशेष उत्तेजना होने से वमन होता है। यह वमन कभी-कभी इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि पानी तक को भी आमाशय में नहीं ठहरने देता। ऐसी हालत में बहुत खतरनाक अवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में एलादि चूर्ण का उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। खासकर पित्त-दोष से उत्पन्न छर्दि(वमन)के लिए यह विशेष उपयोगी है।

कर्पूरादि चूर्ण

कपूर, दालचीनी, कंकोल, जायफल, तेजपत्ता-प्रत्येक १-१ तोला, लौंग १ तोला, जटामांसी २ तोला, कालीमिर्च ३ तोला, पीपल ४ तोला, सोंठ ५ तोला और मिश्री या चीनी सब दवा के बराबर लेकर यथाविधि चूर्ण बना लें।

वक्तव्य- योगरत्नाकर में जटामांसी के स्थान पर नागकेशर है। यह रूचि बढ़ाने की दृष्टि से तो उपयुक्त है, किन्तु जटामांसी रुचिवर्द्धक होन के साथ-साथ हृदय के लिए बलकारक एवं मस्तिष्क के क्षोभ को शमन करने में भी उत्तम गुणकारी होने से अधिक उपयुक्त है।

मात्रा और अनुपान- १ से ३ माशा की मात्रा में सुबह-शाम अथवा आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार ठण्डा जल या छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से अरुचि, खाँसी, स्वरभंग, श्वास, गुल्म, वमन, अर्श और कण्ठ के रोग नष्ट होते हैं।

इस चूर्ण का उपयोग स्वरभंग तथा कण्ठ रोग एवं गले में कफ-वृद्धि के कारण एकाएक दर्द हो जाना, गलशुण्डिका बढ़ जाना आदि रोगों में इस चूर्ण को दिन भर में ५-७ बार चुटकी से मुँह में (सूखा ही) डालने से बहुत शीघ्र गला खुल जाता है। आवाज साफ आने लगती तथा गले में अटका हुआ कफ छंट कर निकल जाता है। इसके सेवन से गले का दर्द तुरन्त बन्द हो जाता है। हृदय की गति क्षीण होने पर अथवा नाड़ी दौर्बल्य होने पर इसके सेवन से हृदय को बल एवं उत्तेजना प्राप्त होती है एवं नाड़ी की गति में शीघ्र ही सुधार होकर ठीक चलने लगती है। रक्तचाप की कमी में इसके प्रयोग से उत्तम प्रभाव होता है। यह उत्तेजक होने के साथ-साथ हृदय के लिये बलवर्द्धक भी है।

इसके अतिरिक्त अरुचि में भी इसका प्रयोग सफल सिद्ध हुआ है। यह चूर्ण पित्तशामक तथा कफ निस्सारक है। अन्नपानादि आहार द्रव्यों में मिलाकर भी इसे सेवन करने से रुचि बढ़ती है।

कर्कटी बीज चूर्ण

ककड़ी के बीज, सेंधा नमक और त्रिफला सब चीजें समान भाग लेकर महीन चूर्ण बना, सुरक्षित रख लें।-वृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- ३ माशा की मात्रा में सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण पित्तशामक तथा मूत्र-प्रवर्तक है। कभी-कभी पित्त की अधिकता के कारण मूत्रनली में उचित परिमाण में मूत्र नहीं आता अथवा खुलकर पेशाब नहीं होता। बूँद-बूँद कर पेशाब आता है। इसमें बस्ति प्रदेश में दर्द होना, पेडू में सूजन, जननेन्द्रिय की नसों में खिंचावट, दर्द से व्याकुलता, प्यास, कण्ठ सूखना, आदि लक्षण होते हैं। ऐसी दशा में इस चूर्ण के उपयोग से पित्त शान्त हो, मूत्र खुलकर आने लगता है।

नोट- इससे सेंधा नमक के स्थान पर यवक्षार और मिश्री में मिलाकर प्रयोग किया जायें तो बहुत लाभ करता है। साथ ही कलमी शोरा को ठण्डे जल में पीस कर नाभि के नीचे बस्ति प्रदेश पर मोटा-सा लेप भी करना अच्छा है।

कमलाक्षादि चूर्ण

कमलगट्टा ७ तोला, जायफल २ तोला, केशर १ तोला, तेजपात १ तोला, शतावरी २ तोला, असगन्ध २ तोला, सफेद मूसली २ तोला, बंशलोचन १ तोला, सालम पंजा २ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, रूमीमस्तंगी १ तोला, पीपलामूल १ तोला, कबाब चीनी १ तोला, सब को कूट, चूर्ण करके शीशी में भर लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा चूर्ण को १ तोला गाय के घी में कुछ भुनकर आधा सेर गाय का दूध और अन्दाज से मिश्री मिला (गरम करके ठण्डा कर) उसके साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण पौष्टिक, बलकारक, कामोत्तेजक और उत्साहवर्द्धक है। अधिक वीर्यपात हो जाने से शारीरिक शक्ति का ह्रास हो गया हो, रस-रक्तादि धातुएँ कमजोर हो गयी हों, रक्त की कमी से शरीर दुर्बल तथा कान्तिहीन हो गया हो, ऐसी दशा में इस चूर्ण के सेवन से आशातीत लाभ होता है। विशेषकर जाड़े के समय में इसका सेवन करना बहुत उपयोगी है।

कामदेव चूर्ण

कौंच की गिरी १ तोला, सफेद मूसली २ तोला, मखाने की ठुड्डी(छिलका-रहित) ४ तोला, तालमखाना ४ तोला, मिश्री ५ तोला-सब का महीन चूर्ण कर मिश्री मिलाकर काम मे लावें। - आनु.यो.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा सुबह-शाम गाय के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से धातु (शुक्र)-विकार, शीघ्रपतन और स्वप्नदोष आदि मिट जाते हैं।

इस चूर्ण का उपयोग धातु (शुक्र) का पतलापन दूर कर उसे गाढ़ा करने के लिए किया जाता है। स्वप्नदोष या अति स्त्री प्रसंग अथवा अप्राकृतिक ढंग से शुक्र का नाश करने से वीर्य पतला हो जाता है। वीर्य पतला हो जाने से मनुष्य सांसारिक सुख-भोगादि से वंचित रह जाता है। ऐसे मनुष्यों को जीवन बेकार-सा प्रतीत होने लगता है। अतः यदि अपने जीवन को आनन्द के साथ बिताना तथा शरीर को बलिष्ठ और सुन्दर बनाना चाहें, तो इस चूर्ण का उपयोग कर लाभ उठायें। शुक्र को गाढ़ा करने के लिये यह बड़ी अच्छी निर्दोष दवा है।

कुंकुमादि चूर्ण

केसर, कस्तुरी, नागरमोथा, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, त्रिफला, अकरकरा, धनियाँ, अनारदाना, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, तिन्तड़ीक, हींग, कपूर, तुम्बरू (नेपाली धनियाँ), तगर, सुगन्धवाला लौंग, जावित्री, मंजीठ, पुष्करमूल, प्रियंगु, कमलगट्टा, वंशलोचन, कपूरकचरी, तालीसपत्र, चीता, जटामांसी, जायफल, खस, खरेंटी, नागबला, कूठ, पीपलामूल, अभ्रक भस्म, रौप्यमाक्षिक और स्वर्ण माक्षिक भस्म-प्रत्येकी१-१ तोला लें। इन सब दवाओं के समान भाग मोचरस लेकर काष्ठौषधियों को कूट, चूर्ण बना, भस्म तथा कस्तूरी को अच्छी तरह घोंटकर सारे चूर्ण में मिलायें। फिर सब चूर्ण के बराबर मिश्री मिला चूर्ण को सुरक्षित रख लें। - भा.भै.र.

वक्तव्य- कुछ लोग श्यामा शब्द से प्रियंगु के स्थान पर अनन्तमूल लेते हैं। त्रिफला शब्द से हर्रे, बहेड़ा, आमला तीनों को पृथक् १-१ तोला लें।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा की मात्रा में सुबह-शाम तथा खाना खाने के बाद गरम जल अथवा रात को गाय के दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन करने से अजीर्ण, अग्निमांद्य, वात-पित्त और कफजन्य रोग, उबकाई, अरुचि, वमन, अतिसार, ग्रहणी, क्षय, कास-श्वास, खाँसी, नेत्ररोग, उदर रोग, मूत्रकृच्छ, शिरोरोग आदि रोगों का नाश होता है। यह बाजीकरण, बलवर्द्धक तथा दीपक-पाचक है। शारीरिक शक्ति-वृद्धि के लिये इस चूर्ण का सेवन विशेष रूप से किया जाता है। क्षीणशुक्र अथवा अल्पशुक्र एवं ध्वजभंग, स्नायुदौर्बल्य आदि विकारों में इसके सेवन से बहुत उत्तम लाभ होता है। वन्ध्या स्त्रियों को सेवन कराने से उनमें प्रजनन शक्ति उत्पन्न होती है।

कृमिघ्न चूर्ण

ढाक (पलास) के बीज, कुटज (कुडा) की छाल-प्रत्येक एक-एक छटाँक, वायविडंग आधा पाव। इन तीनों को एकत्र कूट-छान चूर्ण बना कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा सुबह-शाम गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन करने से पेट के कीड़े, दस्त की कब्जियत, जी मिचलाना आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

नोट- इस चूर्ण के सेवन करने से करीब २-३ घण्टा पहले २ तोला गुड़ खा लेना चाहिए, जिससे पेट के सब कीड़े एक जगह इकट्ठे हो जायँ। बाद में इस चूर्ण को सेवन करें इससे दस्त के साथ सब कीड़े मर कर निकल जाते हैं।

कृष्णादि चूर्ण

पीपल, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा और अजवायन-प्रत्येक समानभाग लेकर कूट कपड़छन चूर्ण बनाकर रख लें।-बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- ४ से ६ रत्ती, सुबह-शाम तथा दोपहर को शहद और थोड़ा घी मिलाकर दें।

दूसरा- पीपल, अतीस, नागरमोथा और काकड़ासिंगी-प्रत्येक दवा समभाग लेकर चूर्ण करके रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ रत्ती, मधु में मिलाकर दिन-रात में ३-४ बार चटायें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से छोटे-छोटे बच्चों को संग्रहणी, अतिसार, दूध न पचना, पेट फूलना या दर्द होना, ज्वर, सर्दी, खाँसी आदि दूर हो जाते हैं।

छोटे-छोटे बच्चों को प्राय: दूध की खराबी से या दाँत निकलते समय फटा-फटा दस्त होने लगता है। बच्चा दिन -प्रतिदिन दुबला और कमजोर होता चला जाता है। इसमें दस्त सफेद, खुरदुरे और फटे-फटे से आते हैं। कभी पेट भी फूल जाता है और दर्द करने लगता है। बच्चों का स्वभाग चिड़चिड़ा हो जाना, ज्यादा रोते ही रहना आदि लक्षण होते हैं। यह अवस्था बच्चों के लिए बहुत भयंकर होती है। कभी-कभी इसी रोग के कारण सूखा रोग भी बच्चे को पकड़ लेता है। अत: इन उपद्रवों से बचाने के लिये कृष्णादि चूर्ण का उपयोग अवश्य करना चाहिए। यह बच्चों की आँतों को मजबूत कर दस्त बांध देता है, जिससे दस्त कम लगते हैं। और धीरे-धीरे बच्चा स्वस्थ हो जाता है।

गंगाधर चूर्ण (बृहत्)

बेलगिरी, सिंघाड़ा की पत्ती, दाड़िम की पत्ती, नागरमोथा, अतीस, राल, धाय के फूल, मिर्च, सोंठ, दारूहल्दी, चिरायता, नीम की छाल, जामुन की छाल, रसोत, इन्द्रजौ, पाठा, मंजीठ, सुगन्धवाला (खस), मोचरस, शुद्ध भांग, भाँगरा-प्रत्येक १-१ तोला, कुटज की छाल २२ तोला लेकर सब द्रव्यों को एकत्र मिला, कूट कर, सूक्ष्म चूर्ण करके सुरक्षित रख लें।

दूसरा (लघु)- नागरमोथा, इंद्रजौ, बेलगिरी, पठानी लोध्र, मोचरस और धाय के फूल-प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- १ माशा से ३ माशा, सुबह-शाम शहद के साथ चटाकर ऊपर से चावल का पानी पिला दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से प्रवाहिका, अतिसार और संग्रहणी रोग नष्ट होते हैं।

इस चूर्ण का प्रभाव आँतों पर विशेष होता है। यह अपने ग्राही गुण के कारण दस्त को रोकता है। अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी आदि रोगों में आँतें कमजोर होकर अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाती हैं। साथ ही ग्रहणी की ग्राहक शक्ति भी नष्ट हो जाती है। इस चूर्ण के सेवन से ये सब दोष दूर हो जाते हैं और दस्त भी बँधकर आने लगते हैं। अतएव, प्रवाहिका या ग्रहणी आदि रोगों में इसका प्रयोग बहुत शीघ्र लाभदायक होता है।

गोक्षुरादि चूर्ण

गोखरू, तालमखाना, शतावर, कौंच के बीज, नागबला और अतिबला-प्रत्येक दवा समान भाग लेकर कूट-छान चूर्ण बना लें।-यो.त.

मात्रा और अनुपान- २ से ३ माशा, तक सुबह-शाम अथवा रात को सोते समय।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण वृष्य, बल-वीर्यवर्द्धक और कामोत्तेजक है। शुक्र की निर्बलता से स्त्री-प्रसंग के समय शुक्र-क्षरण बहुत शीघ्र हो जाने पर स्त्री-पुरुष वास्तविक आनन्द से वंचित रह जाते हैं। इसके लिए कई विषाक्त दवाओं का भी कभी-कभी लोग उपयोग कर बैठते हैं, जिससे नुकसान के सिवा लाभ कुछ नहीं होता। यह चूर्ण निर्विष होते हुए रोग को जड़ से नष्ट कर वास्तविक आनन्द देने के लिए अभूतपूर्व है। रात को सम्भोग से एक घण्टा पहले मिश्री मिले हुए गर्म दूध के साथ सेवन करने से अपूर्व बाजीकरण होता है। साथ ही वीर्य का पतलापन दूर होकर वीर्य गाढ़ा हो जाता है। लगातार कुछ दिनों तक इस चूर्ण के सेवन से फिर यह रोग समूल नष्ट हो जाता है।

सफेद चन्दन, लोध्र, खस, कमलकेसर, नागकेसर, बेलगिरी, नागरमोथा, मिश्री अथवा चीनी, नेत्रबाला, पाठा, कुडा की छाल, इंद्रजौ, सोंठ, अतीस, धाय के फूल, रसौत, आम और जामुन की गुठली की मींगी, मोचरस, नीलोफर, मंजीठ, छोटी इलायची और अनारदाना समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा, सुबह-शाम शहद में मिलाकर दें। ऊपर से चावल का पानी (तण्डुलोदक) पिला दें। वासा स्वरस या अशोक छाल क्वाथ से रक्त प्रदर और रक्तपित्त में सेवन कराना भी विशेष उपकारक है, रक्तातिसार में कुटजावलेह के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर, रक्तातिसार, खूनी बवासीर और रक्तपित्त आदि पैत्तिक रोग नष्ट हो जाते हैं।

वात, पित्त तथा रक्त प्रधान रोगों में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। रक्तरोधक तथा पित्त-शामक गुण विशिष्ट होने के कारण ही रक्त-प्रदरादि रोगों में इसका उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त हाथ-पाँव में जलन, सर्वांग में दाह, प्यास ज्यादा कण्ठ सूखना, शीतल जल पीने से भी तृप्ति न मिलना आदि उपद्रव होने पर भी इस दवा का उपयोग किया जाता है। यह चूर्ण शीतवीर्य होने के कारण पैत्तिक रोगों में विशेष लाभदायक है। रक्तप्रदर में इसका उपयोग प्रधानतया किया जाता है।

चित्रकादि चूर्ण

चीता, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, हींग, पुष्करमूल, अनारदाना, कालाजीरा, वायविडंग, धनिया, हाऊबेर, सोया, हिंगुपत्री, चव्य, अम्लवेत, जीरा, अजवायन, कंचूर, बच, तुम्बरू

दन्तप्रभा चूर्ण (मंजन)

खड़िया मिट्टी ६ तोला, सफेद कत्था ५ तोला, दालचीनी ४ तोला, मौलश्री की छाल, अजवायन, सेंधा नमक, काली मिर्च, भिलावे की राख, सोंठ, बादाम-छिलका की राख, जायफल, अकरकरा, लौंग, माजूफल, इलायची- ये दवाएँ ३-३ तोला, शुद्ध तूतीया, कपूर और शंख-प्रत्येक १-१ तोला, पोटास परमैंगनेट ३ माशा-सबको कूटपीस कपड़छन चूर्ण बना शीशे में रख लें।

गुण और उपयोग- इसको दही में मिलाकर मुँह के छालों पर लगाने से छाले बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके मंजन से दाँत का दर्द, दाँत से खून जाना, पुराना पायरिया, मुँह की दुर्गन्ध, दाँत में कीड़े हो जाना, दाँतों का मैल, असमय में ही दाँत मिलना आदि विकार नष्ट होते हैं।

दूसरा-बादाम के छिलके की राख, मौलश्री की छाल का चूर्ण, खड़िया मिट्टी, अगर कपूर ३ माशा, शुद्ध तूतिया ४ रत्ती इन सबका महीन कूट-पीस कर कपड़छन चूर्ण बना लें, फिर उसमें १ माशा पिपरमेंट का सत मिला कर चौड़े मुँह की शीशी में भर कर रख दें।

व्यवहार- यह सुगन्धित मंजन है। सुबह-शाम इसका मंजन करना बहुत गुणदायक है।

गुण और उपयोग- मुँह की दुर्गंध नष्ट करना इसका प्रधान गुण है। दाँतों के सब विकारों को नष्ट कर मोती के समान चमका देता है।

दन्तसंस्कार चूर्ण (मंजन)

सोंठ, हर्रे, मोथा, कत्था, कपूर, सुपारी की राख, कालीमिर्च, लौंग और दालचीनी सब चीजें समान भाग लेकर कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के समान भाग खड़िया मिट्टी का चूर्ण मिला शीशी में भरकर रख लें।

नोट- कपूर सबसे पीछे मिलावें तथा खड़िया मिट्टी का पृथक् चूर्ण कर मिलायें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के मंजन से दाँतों के समस्त विकार नष्ट हो जाते तथा दाँत साफ और मजबूत बने रहते हैं।

दशांगलेप

सिरस की छाल, मुलेठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारूहल्दी, कूठ, नेत्रवाला, खस-१-१ भाग लेकर कूट कपड़छन चूर्ण करें।-भै.र.

लेप विधि- इस चूर्ण को जल के साथ पीसकर चूर्ण से पाँचवाँ भाग गोघृत मिलाकर लेप करें।

गुण और उपयोग- रूग्ण स्थान पर इस लेप के प्रयोग से समस्त प्रकार के कठिन विसर्प रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त कुष्ठ, ज्वर, शोथ, समस्त शरीर में होनेवाला दाह, विस्फोट, दुष्टव्रण, शिरःशूल इत्यादि विकार नष्ट होते हैं।

दाड़िमाष्टक चूर्ण

अनारदाना १ सेर, भुनी हींग ३ माशे २ रत्ती, सेन्धानमक १ पाव, कालीमिर्च १ पाव, जीरा सफेद भुना हुआ १ पाव, बड़ी इलायची के बीज १ छटाँक, मिश्री १ पाव, नींबू सत्व २।। तोला लेकर हींग को छोड़कर सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर कूट कर सूक्ष्म चूर्ण करें। पश्चात् हींग खरल में पीसकर चूर्ण में मिलाकर सुरक्षित रख लें।-आनुभविक योग

दूसरा- अनारदाना ३२ तोला, खांड ३२ तोला, पीपल, पीपलामूल, अजवायन, कालीमिर्च, धनिया, जीरा, सोंठ प्रत्येक ४-४ तोला, बंशलोचन १ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर-प्रत्येक ६-६ माशा लें। इन सब को एकत्र कर चूर्ण कर लें। यह बृहद्दडिमाष्टक चूर्ण है।

मात्रा और अनुपान- ३ माशा, सुबह-शाम तक या गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से आमातिसार, अग्निमांद्य, अरुचि, खाँसी, हृदय की पीड़ा, पसली का दर्द, ग्रहणी और गुल्म रोग नाश होता है।

पित्तप्रधान रोगों में इसका उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। यह सौम्य, शीतल, रुचिवर्द्धक, पित्तशामक और कण्ठशोधक है।

पाचक पित्त की निर्बलता से आमाशय कमजोर हो जाने पर खाया हुआ पदार्थ आमाशय में ज्यों का त्यों पड़ा रहता है। इस अन्न के पड़े रहने से दूषित गैस की उत्पत्ति होती है, जिससे कण्ठ में जलन, खट्टी डकारें, पेट भारी, दस्त की कब्जियत आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में दाड़िमाष्टक चूर्ण का उपयोग उचित अनुपान के साथ करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

द्राक्षादि चूर्ण

मुनक्का, धान की खील, श्वेत-कमल, मुलेठी, खजूर (गुठली निकाला हुआ), अनन्तमूल, बंशलोचन, खस, आँवला, मोथा, सफेद चन्दन, तगर, कंकोल, (कबाबचीनी) जायफल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेसर, पीपल, धनियां-प्रत्येक चीज समान भाग लेकर चूर्ण करें तथा सबके बराबर चीनी मिश्री पीसकर मिलाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे, सुबह-शाम शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन करने से अम्लपित्त, छर्दि, मूर्च्छा, अरुचि, प्रदर, पाण्डु, कामला और यक्ष्मा आदि विकार नष्ट होते हैं। यह चूर्ण पित्त और वातजन्य, रोगशामक, शीतल, रक्त और बलवर्द्धक तथा पौष्टिक है।

अम्लपित्त में-इस चूर्ण के उपयोग से अनेक रोगी अच्छे किये गये हैं। अम्लपित्त में उत्पन्न छर्दि (वमन), अरुचि आदि को नष्ट करने के लिये यह अच्छी दवा है।

धातुपौष्टिक (शतावर्यादि) चूर्ण

शतावरी, गोखरू बीज बड़ा, बीजबन्द, बंशलोचन, कबाबचीनी, चोपचीनी, कौंच के बीज, सफेद मूसली, काली मूसली, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सालम मिश्री, गट्ठा, बिदारीकन्द, असगन्ध-प्रत्येक १-१ तोला निशोथ ६ तोला, मिश्री २० तोला-सब को एकत्र कूट कर चूर्ण बना लें। -आ.प्र.

वक्तव्य- स्याह मूसली के स्थान पर विधारामूल डालने से भी अच्छा बनता है। अधिक समय के लिये टिकाऊ बनाना हो तो मिश्री बिना मिलाये ही रख लें। मिश्री सेवन करते समय बराबर परिमाण में मिलाकर सेवन किया जायें। हम बिना मिश्री मिलाये ही बनाते हैं।

मात्रा और अनुपान- ६ माशा से १ तोला, सुबह-शाम गाय के दूध के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण पौष्टिक, धातुवर्द्धक और वीर्य को गाढ़ा करने वाला है। इसके सेवन से धातु गाढ़ा हो जाता है और स्वप्नदोष दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट बन जाता है।

नोट- यह चूर्ण गरिष्ठ (बहुत देर में पचनेवाला) है। अतएव इसका सेवन मन्दाग्नि वाले को नहीं करना चाहिए। जिनकी जठराग्नि तेज हो वही इसके सेवन से लाभ उठा सकते हैं। इसके सेवन काल में गाय के दूध का सेवन अवश्य करना चाहिए।

नमक सूलेमानी चूर्ण

जीरा सफेद भूना ९ तोला, सेन्धा नमक १ तोला ३ माशा, काला नमक, कालीमिर्च, नींबू सत्व-प्रत्येक ४।।-४।। तोला, नौसादर २।। तोला, भुनी हींग और पिपरमेन्ट प्रत्येक १।।-१।। माशे लेकर, इनमें से हींग और पिपरमेन्ट को छोड़कर शेष द्रव्यों का महीन चूर्ण करें। पश्चात्

पुदीने फूल और पिपरमेन्ट को पृथक्-पृथक् खरल में पीसकर चूर्ण में अच्छी तरह मिला दें और सुरक्षित रख लें। आनुभविक योग

मात्रा और अनुपान- १-३ माशे तक भोजन के बाद जल से दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण अत्यन्त स्वादिष्ट, रुचिवर्द्धक और उत्तम दीपन-पाचन है। इस चूर्ण के प्रयोग से समस्त प्रकार के अजीर्ण, अरुचि, उदरशूल, अफरा, प्लीहावृद्धि यकृत विकार, गुल्म (वायुगोला) आदि रोगों में उत्कृष्ट लाभ होता है और यह वायु का अनुलोम भी करता है।

नागकेशरादि चूर्ण

नागकेसर ४ तोला, बेलगिरी २ तोला, अनीसून २ तोला, सौंफ २ तोला, खसखस १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, धनियाँ १ तोला, मोचरस १ तोला, खस १ तोला, सफेद चन्दन १ तोला, गुलाब के फूल १ तोला, कपूर कचरी १ तोला, जल से धोकर सुखायी हुई भाँग ४ तोला और मिश्री ५ तोला लें। सबका एकत्र कपड़छन चूर्ण करके रख लें। -सि.यो.सं. द्वितीय संस्करण

मात्रा और अनुपान- २-३ माशा, सुबह-शाम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- पित्तातिसार में और रक्तातिसार में यह उत्तम योग है। इस चूर्ण को अकेला या रस पर्पटी के साथ मिलाकर दें।

नारसिंह चूर्ण

शतावर ६४ तोला, छोटा गोखरू ६४ तोला, बाराहीकन्द ८० तोला, गिलोय १०० तोला, शुद्ध भिलावा १२८ तोला, चित्रकमूल की छाल ४० तोला, धोये हुए तिल ६४ तोला, दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची-प्रत्येक ११-११ तोला, मिश्री २८० तोला, विदारीकन्द ६४ तोला लें, इन सब का एकत्र कूट-कपड़छन चूर्ण बनाकर शीशी में भर लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ माशा से ६ माशा, सुबह-शाम ६ माशे गाय का घी और १ तोला शहद मिलाकर दें, ऊपर से गाय का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण उत्तम बाजीकरण, बलवर्द्धक और रसायन है इसके अतिरिक्त सब प्रकार के वात रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके सेवन काल में घी, दूध, चीनी आदि से बने स्निग्ध एवं पौष्टिक पदार्थों का भोजन करना चाहिए। यह रसरक्तादि धातुओं की वृद्धि कर शरीर में नयी स्फूर्ति तथा बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि करता है एवं कामशक्ति को बढ़ाता है।

नारायण चूर्ण

अजवायन, हाऊबेर, धनियां, हर्रे, बहेड़ा, आमला, कलौंजी, स्याहजीरा, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, बच, सौंफ, जीरा, सोंठ, पीपल, स्वर्णक्षीरी, (सत्यानाशी की जड़-चोक), चीता, यवक्षार, सज्जीखार, पुष्करमूल, कूठ, पाँचों नमक, वायविडंग -प्रत्येक १-१ तोला और दन्तीमूल ३ तोला, निशोथ २ तोला, इन्द्रायण की जड़ २ तोला, सातला (सेहुण्ड) ४ तोला लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बनाकर रख लें। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे, तक सुबह-शाम निम्नलिखित अनुपान के साथ दें। **उदर रोगों में**-तक्र (छाछ) के साथ, **गुल्म रोग में**- बेर के क्वाथ के साथ, **पेट में वायु भर जाने पर**- मद्य के साथ अथवा अर्क सौंफ के साथ दें। **वातव्याधि में**- महारास्नादि क्वाथ के साथ दें। **दस्त की कब्जियत में**- दही के पानी के साथ, **अर्श में** -अनार के रस के साथ, **अजीर्ण में** -गरम जल के साथ दें।

इसके अतिरिक्त, भगन्दर, पाण्डु रोग, खाँसी, श्वास आदि रोगों में उचित अनुपान के साथ प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण का उपयोग विशेषकर उदर रोग में किया जाता है, जैसे दस्त कब्ज रहना, हवा (अपानवायु) नहीं छूटना, पेट में वायु भर जाना, दूषित मल पेट में इकट्ठा हो जाना, भूख नहीं लगना आदि रोगों में यह विशेष गुणकारी है, क्योंकि यह रेचक, मलशोधक तथा दीपक-पाचक है।

गुल्म उदर रोग में- पेट फूलना दस्त की कब्जियत, शोथ, उदावर्त, अरुचि, हृद्रोग, दमा, खाँसी, भगन्दर, मन्दाग्नि, कुष्ठ और बवासीर आदि रोगों में दस्त साफ होने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

शोथ रोग में-पेट में ज्यादा मल संचय होने पर रस-रक्तादि धातु क्षीण होने लगते हैं। साथ ही पाचक पित्त और शरीर का पोषण करने वाली सहायक इन्द्रियाँ भी कमजोर हो जाती हैं, जिससे उचित परिमाण में रसरक्तादि नहीं बनते। शरीर में जलीय भाग विशेष होने से देह सूज जाती है। इसमें मुँह और पाँव पर विशेष सूजन होती है, पेट भी कुछ उभर आता, नाभि उभर जाती, शरीर का रंग पीला और रोगी कमजोर हो जाता, दस्त साफ नहीं आता आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी दशा में नारायण चूर्ण वास्तव में नारायण भगवान की तरह रक्षा करता है। इसके सेवन से मल ढीला होकर दस्त साफ आने लगता है। पाचन-क्रिया ठीक हो जाती और रस-रक्तादि भी उचित मात्रा में बन कर शरीर में रक्ताणुओं की वृद्धि हो जाती तथा शरीरस्थ जल-भाग सूखने लग जाते और शोथ भी नष्ट हो जाता है।

निम्बादि चूर्ण

नीम की छाल गुर्च (गिलोय), हर्रे, आँवला और सोमराजी-प्रत्येक ४-४ तोला, सोंठ, वायविडंग, पवाड (चक्रमर्द-चकवड़)पीपल, अजवायन, बच, जीरा, कुटकी, खैरसार, सेन्धा नमक, यवक्षार, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, देवदारु और कूठ-प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट-पीस-कपड़छन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ माशा से ४ माशा तक सुबह-शाम गिलोय के क्वाथ के साथ अथवा ठण्डे जल से दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से भयंकर वातरक्त, सफेद कोढ़, कुष्ठ, खुजली, चर्मरोग, दाद शरीर पर लाल चट्टे पड़ जाना, आमवातजन्य शोथ, उदर रोग, पाण्डु, कामला, गुल्म और फोड़ा-फुन्सी आदि रक्त विकार नष्ट होते हैं।

यह चूर्ण वात और रक्त शोधक तथा कब्जियत को दूर करने वाला हैं। रक्त विकार में इसका उपयोग अधिक किया जाता है। प्रकुपित वायु रक्त को दूषित कर शरीर में अनेक तरह के रोग उत्पन्न कर देती है। इसमें शरीर रूक्ष हो जाता, त्वचा फटने लगती, शरीर में लाल-लाल चकत्ते भी उठ आते, छोटी-बड़ी फुन्सियाँ भी निकल आती हैं। ऐसी हालत में इस चूर्ण के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

पञ्चकोल चूर्ण

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल की छाल, सोंठ-प्रत्येक १-१ भाग लेकर एकत्र कूट-कपड़छन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें। - शा.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ माशे तक आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार शहद या गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण उत्तम, रुचिकारक एवं दीपन-पाचन है। इस चूर्ण के सेवन करने से आनाह (आफरा), प्लीहा-वृद्धि, गुल्म, शूल, कफजन्य व्याधियाँ एवं उदर रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह श्वास-कास, ज्वर और अरुचिनाशक है।

पंचसकार चूर्ण (विरेचक)

सनाय की पत्ती ४ भाग, सोंठ, सौंफ, सेन्धा नमक १-१ भाग और शिवा (घी या एरण्ड तैल में लगाकर सेंकी हुई जौ-हरड़) २ भाग लेकर कूट-कपड़छन कर चूर्ण बनायें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे तक अकेला या इसमें १ माशा लवण भास्कर चूर्ण मिला रात को सोते समय गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण दस्तावर और अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला तथा पाचन शक्ति बढ़ाने वाला है। बद्धकोष्ठ (कब्जियत) में विरेचन के लिये इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है। इसमें सनाय, सोंठ, और हर्रे का मिश्रण होने से यह उत्तम विरेचक योग बनता है। कब्ज को नष्ट करने के लिए यह उत्तम गुणकारी एवं सुप्रसिद्ध चूर्ण है।

पंचसम चूर्ण

पीपल, हर्रे, सोंठ, काला नमक, निशोथ-प्रत्येक समान भाग लेकर कूट-छान कर चूर्ण बनावें। -शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान-३ माशा, सुबह-शाम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से शूल रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। इसके अतिरिक्त गुल्म, तिल्ली, पेट फूलना, अर्श, आमवात, और अरुचि राग भी नष्ट होते हैं एवं यह कब्ज को नष्ट करता है।

मन्दाग्नि के कारण अन्नादिक की पाचन क्रिया ठीक-ठाक न होने से आमाशय में कच्चा अन्न पड़ा रह जाता है और कच्चा रस तैयार होकर आंव(पेचिश)के रूप में दस्त के साथ निकलने लगता है। इसमें दस्त के समय पेट में असीम पीड़ा होती है, आँव जल्दी नहीं निकलता। रोगी दर्द के मारे परेशान हो जाता है, ऐसी अवस्था में आँव को निकालने तथा पाचक पित्त को प्रदीप्त कर पाचन क्रिया को ठीक करने के लिए यह चूर्ण बहुत उपयोगी है।

प्रदरनाशक चूर्ण

पुष्यानुग चूर्ण ५ तोला, खूनखराबा, आँवला, राल, अशोक की छाल, संगजराहत, गेरुमिट्टी, नागकेशर-प्रत्येक समान भाग लेकर एकत्र मिला करके कूट-कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् पुष्यानुग चूर्ण और उपरोक्त द्रव्यों के चूर्ण को एकत्र मिला सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १।-३ माशे तक शहद के साथ चाटकर ऊपर से चावल भिगोकर बनाया गया जल पीवें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण सौम्य गुणयुक्त और उत्तम ग्राही है। इस चूर्ण के सेवन से समस्त प्रकार के प्रदर रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। विशेषतः रक्त प्रदर में इसके सेवन से शीघ्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त योनिशूल, रक्तातिसार, रक्तार्श, कृमिरोग और आंव मिश्रित रक्तातिसार रोग शीघ्र नष्ट करता और गर्भाशय को पुष्ट एवं गर्भधारण योग्य बनाता है।

प्रवाहिकाहर चूर्ण

पोस्त के दाने, मोचरस, राल, बड़ीमाई तुरजवीन, धाय के फूल, प्रत्येक १-१ तोला और रूमीमस्तंगी २ तोला लें। पहले मोचरस और पोस्त के दाने तवे पर डाल कर भून लें बाद में सब चीजों का कूट-कपड़छन चूर्ण बना कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से ९ माशे तक सुबह-शाम छाछ (मट्ठा) के साथ दें।
गुण और उपयोग- अतिसार, रक्तातिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका और पुराने अतिसार में यह अपना प्रभाव शीघ्र दिखाता है।

पामारि प्रलेप

अशुद्ध पारद, सफेद जीरा, काला, (अरण्य जीरक), हल्दी, आँबा हल्दी, काली मिर्च, सिन्दूर, अशुद्ध गन्धक, अशुद्ध मैनशिल, चकवड़ (पँवाड के बीज)-प्रत्येक १-१ भाग लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनावें, फिर अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके एकत्र मिला सुरक्षित रख लें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य- इस योग में काला जीरा शब्द से अरण्यजीरक जिसे काली जीरी कहते हैं, लेना विशेष लाभदायक है, क्योंकि काली जीरी कुष्ठ, पामा(खुजली) आदि विकारों को नष्ट करने में सुप्रसिद्ध है। सि.यो.सं. में यह योग 'रसादि प्रलेप' के नाम से है, किन्तु पामा रोग में विशिष्ट लाभदायक होने के कारण हम इसे 'पामारि प्रलेप' के नाम से व्यवहार करते हैं।

दूसरा- अशुद्ध गन्धक २ तोला, मैनशिल, कालीमिर्च, कबीला और दारुहल्दी-प्रत्येक १-१ तोला, नीलाथोथा (तूतिया), मूर्दाशंख, सुहागा और मटिया सिन्दूर-प्रत्येक ६-६ माशा कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बनावें।

गुण और उपयोग- सरसों के तेल में मिला कर खुजली पर मालिश करने से तीन चार दिन के अन्दर ही खुजली आराम हो जाती है। यह दवा तेज है, अत: पहले बहुत कम चूर्ण तेल में मिला कर मालिश करें। जैसे-जैसे सह्य होता जाय, वैसे-वैसे दवा की मात्रा बढ़ा कर लगाना चाहिए। यह सुकुमार प्रकृतिवालों के लिए सेवन-योग्य नहीं है।

पुनर्नवा चूर्ण

पुनर्नवा, हर्रे, पाठा, देवदारु, बेलछाल, गोखरू, दोनों कटेली, हल्दी, दारुहल्दी पीपल और गजपीपल (अभाव में पीपलामूल), अडूसा, चित्रक-प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- ३ माशे की मात्रा में गोमूत्र के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से समस्त शरीर पर फैला हुआ शोथ-रोग दूर हो जाता है तथा उदर रोगों का नाश करता है।

इसमें पुनर्नवा की प्रधानता होने से यह चूर्ण दीपक, पाचक, दस्तावर, मूत्रविरेचक (मूत्र लाने वाला) तथा शोथ-नाशक है। इस चूर्ण का प्रधान गुण पेशाब खुल कर लाना तथा शोथ नाश करना है। मूत्रल होने की वजह से ही यह शोथघ्न है, क्योंकि पुनर्नवा के सेवन से मूत्रपिंड में बिना किसी प्रकार का कष्ट हुए मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है। मूत्रपिंड पर रक्त का दबाव बढ़ कर पेशाब की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त मूत्रपिण्ड के अन्दर मूत्र उत्पन्न करने वाले अवयवों पर इस (पुनर्नवा) की उत्तेजक क्रिया होती है, जिससे पेशाब में क्षार की मात्रा बढ़ जाती है। हृदय के ऊपर पुनर्नवा की क्रिया थोड़ी किन्तु स्पष्ट रूप से होती है। इससे हृदय की संकोचक क्रिया बढ़ जाती है, नाड़ियों में रक्त प्रवाह जोरों से होने लगता है और रक्त का दबाव बढ़ जाता है। रक्त का दबाव बढ़ने के कारण ही मूत्र का परिमाण बढ़ जाता है, जिससे शरीर में संचित दूषित जल निकल जाता है। अतएव, पुनर्नवा में शोथघ्न धर्म माना गया है और यह वास्तव में शोथघ्न है भी। इन्हीं कारणों से शोथ रोग में इसके उपयोग से लाभ होता है।

पुष्यानुग चूर्ण नं.१

पाठा, जामुन की गुठली की गिरी, आम की गुठली की गिरी, पाषाण भेद, रसौत, अम्बष्ठा, मोचरस, मंजीठ, कमलकेशर, केसर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध्र, गेरू, कायफल, कालीमिर्च, सोंठ, मुनक्का, लालचन्दन, सोना पाठा (स्योनाक-अरलू) की छाल, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धाय के फूल, मुलेठी और अर्जुन की छाल-प्रत्येक समभाग (मूल ग्रन्थ में से सब चीजें पुष्यनक्षत्र में एकत्रित करने को लिखा है) लेकर एकत्र कूट-कपड़छन कर महीन चूर्ण बना, रख लें।-भै.र.

नोट- कई लोग केसर के स्थान पर नागकेसर डालकर भी बनाते हैं एवं उसे पुष्यानुग चूर्ण नं. २ कहते हैं।

मात्रा और अनुपान- २ से ३ माशा तक सुबह-शाम शहद के साथ लेकर ऊपर से चावल का धोवन (पानी)पीना चाहिए।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से योनि-रोग, योनिदाह, सब प्रकार के प्रदर रक्त, श्वेत, नीला, काला व पीला, योनिस्राव (प्रदर), योनिक्षत, बादी तथा खूनी बवासीर, अतिसार, दस्त में खून आना, कृमि और खूनी आँव जैसे रोग नष्ट होते हैं।

स्त्रियों के बहुत से रोगों की जड़ उनके गुह्य (गुप्त) स्थान के रोगों में मिल जाती है। अकाल (छोटी आयु) में अति समागम तथा गर्भधारण, गुप्तांगो की सफाई न रखना, गर्भावस्था में प्रसव के समय या उसके बाद योग्य उपचार का अभाव, खट्टे या बासी आदि दोषकारक आहार-विहारादि कारणों से स्त्रियों की गुप्तेन्द्रिय (योनि) में विकृति पैदा हो जाती है। फिर उसका परिणाम बुरा होता है। यथा-गर्भाशय फूल जाना या योनि से किसी प्रकार का स्राव शुरू हो जाना आदि ऐसी अवस्था में पुष्यानुग चूर्ण का उपयोग करना चाहिए।

किसी-किसी स्त्री को गर्भाशय बाहर निकल जाने की शिकायत बराबर बनी रहती है। ऐसी अवस्था में योनि में किसी भी प्रकार का स्राव होने पर इसका उपयोग बहुत लाभ पहुंचाता है। सभी प्रकार के प्रदर रोगों में यह विशेष गुणकारी सुप्रसिद्ध औषधि है।

वज्रक्षार चूर्ण

सामुद्र नमक, सेन्धा नमक, काचलवण, यवक्षार, काला नमक, सुहागा और सज्जीक्षार समानभाग लेकर चूर्ण बनायें फिर उसे आक तथा सेहुड (थूहर) के दूध की ३-३ भावना देकर सबका एक गोला बना-सुखा लें। अब इस गोले को आक के पत्तों में लपेट हाण्डी में बन्द कर पुट दें और उसे स्वांगशीतल होने पर निकालकर पीस लें। फिर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, जीरा और चित्रक छाल का समान भाग मिश्रित चूर्ण इस क्षार के बराबर मिला खरल करके रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-३ माशा तक सुबह-शाम गर्म पानी के साथ या रोगानुसार अनुपान के साथ दें। पैत्तिक विकारों में घी के साथ, कफज विकारों में गोमूत्र के साथ तथा त्रिदोषज विकारों में कांजी के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ, सब प्रकार के उदर रोग, अग्निमांद्य, उदावर्त, यकृत और प्लीहा रोग को नष्ट करता है। अजीर्ण और उससे होने वाले विकारों के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। यह दीपक-पाचक, कब्जियत दूर करनेवाला और वात-कफ शामक है। विशेषतया इस चूर्ण का उपयोग उदर रोगों में तथा पेट फूलना, भूख नहीं लगना, हाजमें की खराबी, कब्ज, मन्दाग्नि, गुल्मरोग, यकृत प्लीहा की वृद्धि आदि रोगों में किया जाता है।

वक्तव्य - भै.र. विद्योतिनी टीका र.सा.सं. घनानन्दजी पन्त कृत टीका की प्रतियाँ में अजवायन नहीं है और हल्दी है, किन्तु उदर रोगों में अजवायन विशेष उपयोगी है।

बाकुचिकाद्य चूर्ण

बाकुची, हर्रे, बहेड़ा, आमला, चित्रकमूल, शुद्ध भिलावा, शतावर, सम्भालू, असगन्ध और नीम का पंचांग-प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण कर सुरक्षित रख लें।-ग.नि.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ माशा तक गुर्च (गिलोय) के क्वाथ या जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण रक्तशोधक, विरेचक और कुष्ठघ्न है। इसके सेवन से रक्त-विकार, कुष्ठ, वातरक्त, शरीर पर होने वाली छोटी-छोटी फुंसियाँ आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।

वक्तव्य- इस योग में बाकुची, चित्रकमूल, शु. भिलावा आदि तीक्ष्ण और उष्ण गुणधर्म वाली चीजें होने से पित्त विकृति वालों को कम अनुकूल पड़ता है। देना ही पड़े तो घी के साथ दें। इसमें सम्भालू की बजाय उसके मूल में उत्पन्न होने वाली पीली जड़ी जो कि हल्दी की गाँठों जैसी किन्तु उससे लम्बी होती है, देना विशेष लाभकारी है, यह कुष्ठघ्न होती है।

बालचातुर्भाद्र चूर्ण

नागरमोथा, छोटी पीपल, अतीस और काकड़ासिंगी-प्रत्येक समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण बना शीशी में सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ८ रत्ती शहद में मिलाकर दिन में दो बार दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से बच्चों के ज्वर, अतिसार, खाँसी और वमन आदि रोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण बच्चों की बीमारी के लिये बहुत प्रसिद्ध है। सर्वसाधारण में यह चौहद्दी, चौभुजी, चटनी आदि नामों से प्रसिद्ध है। यह दवा बच्चो के लिये अमृत के समान गुण करती है। बच्चों के ज्वर के साथ होने वाले पतले दस्त, दूध न पचना, पेट फूल जाना, पेट में दर्द शीघ्र लाभ करती है। बच्चों को सर्दी, जुकाम, खाँसी अक्सर होते रहते हैं। इन विकारों में तथा दाँत निकलते समय होने वाले विकार, अतिसार, ज्वर, वमन आदि में इसका उपयोग श्रेष्ठ गुणकारी है। हर घर में हमेशा रखने योग्य औषधि है।

बिल्वफलादि चूर्ण

बेलगिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, मोचरस और इन्द्रजौ समान भाग लेकर कूट कर महीन चूर्ण बना लें। बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा सुबह-शाम बकरी के दूध में या शीतल जल से दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण संग्राही है अर्थात् पतले दस्त को रोकता है तथा आँतों को बलवान बनाता है। इस चूर्ण के सेवन से आम और खूनयुक्त संग्रहणी नष्ट हो जाती है।

संग्रहणी की पुरानी अवस्था में- आँतों में खराश हो जाती है अर्थात् आँतें छिल जाती हैं, जिससे दस्त के समय थोड़ा सा भी जोर लगने पर आँव के साथ दर्द एवं खून निकल आता है। जब तक वह खून और आँव नहीं निकल जाते तब तक बहुत दर्द होता रहता है। ऐसी अवस्था में इस चूर्ण के सेवन से आँतों की खराश भर जाती है तथा आँतें बलवान होकर अपने कार्य में समर्थ हो जाती और आँव भी जो आमाशय में संचित हुआ रहता है बहुत शीघ्र निकल जाता है।

दूसरा- बेलगिरी, नागरमोथा, धाय के फूल, पाठा, सौंठ और मोचरस-प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।-चक्रदत्त

गुण और उपयोग- अतिसार रोग के लिये यह उत्तम दवा है। तक्र के साथ इसका उपयोग किया जाता हैं। संग्रहणी में भी लाभदायक है।

बिल्वादि चूर्ण

कच्चे बेल की गिरी १ भाग, मोचरस १भाग, जल से धोकर सुखाई हुई भांग १ भाग, धाय के फूल १ भाग, धनियां २ भाग और सौंफ ४ भाग लें। प्रथम बेलगिरी, सोंठ और मोचरस को सरौते से काट कर छोटे-छोटे टुकड़े करें, पश्चात् सब द्रव्यों को एकत्र मिला, एक कड़ाही में मन्द आँच पर जब सौंफ की थोड़ी सुगन्ध आने लगे इतना सेंक कर नीचे उतार लें, पश्चात् सब कूटकर सूक्ष्म चूर्ण कर, सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ माशे तक आवश्यकतानुसार दिन में ३-३ बार शीतल जल या अनार का रस अथवा छाछ (मट्ठा) के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण उत्तम पाचन और ग्राही है। अतिसार में इस चूर्ण को अकेले ही या रस-पर्पटी के साथ मिलाकर देने से उत्तम लाभ होता है, प्रवाहिका (पेचिश-मरोड़ के साथ आँव और रक्तमिश्रित दस्त आना) में समभाग घी या एरण्ड तैल लगाकर सेंकी हुई छोटी हरड़ का चूर्ण मिलाकर अर्क सौंफ या ईसबगोल के लुआब के साथ देना श्रेष्ठ गुणकारी है। साथ ही इस बात का ध्यान रखें कि प्रवाहिका के लक्षण कम होने के साथ-साथ हरड़ के चूर्ण की मात्रा भी कम करते जायें। ग्रहणी रोग की किसी भी अवस्था में इस चूर्ण को रस पर्पटी या पंचामृत पर्पटी या स्वर्णपर्पटी आदि के साथ देना लाभप्रद है। अतिसार में प्रारम्भ से रोग अच्छा होने तक किसी भी अवस्था में निर्भयतापूर्वक इस चूर्ण का प्रयोग किया जा सकता है।

विदार्यादि चूर्ण

बिदारीकन्द, सफेद मूसली, सालमपंजा, असगन्ध, गोखरू, अकरकरा- प्रत्येक समभाग लें, कपड़छन चूर्ण करके शीशी में भर लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा, सुबह-शाम भोजन के तीन घण्टे पहले गाय के गरम दूध के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से वीर्य-वृद्धि, स्तम्भन तथा कामोत्तेजना होती है। यह उत्तम पौष्टिक एवं बलवीर्यवर्द्धक योग है। जिन लोगों को वीर्य के पतलेपन की अथवा शीघ्रपतन की शिकायत हो, उनको इसका सेवन कुछ समय नियमित रूप से करने पर बहुत लाभ होता है।

यह चूर्ण गरूपाकी अर्थात् देर से हजम होनेवाला है, अतएव मन्दाग्नि वाले रोगी या जो अधिक कमजोर हो उन्हें इस दवा का सेवन कम मात्रा में करना चाहिए। वीर्य विकार अर्थात् जिसका वीर्य पतला हो गया हो अथवा जो लोग स्त्री प्रसंग के समय तुरन्त स्खलित हो जाते हों, जिनकी शुक्र वाहिनी शिरा कमजोर हो गयी हो, ऐसे रोगियों के लिए यह चूर्ण बहुत लाभदायक है।

वृहत्समशर्कर चूर्ण

लौंग, जायफल, पिप्पल-प्रत्येक १-१ तोला, कालीमिर्च २ तोला और सौंठ १६ तोला- प्रत्येक का कूट कपड़छन चूर्ण बना लें और सब चूर्ण के बराबर उसमें चीनी या खाण्ड मिला कर रख लें। -बं.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ५ माशे तक, दिन में २-३ बार शहद या घृत के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण खाँसी, ज्वर, अरूचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमांद्य और ग्रहणी-विकार को नष्ट करता है। यह पित्त और वात-शामक तथा अग्नि-प्रदीपक है। इस चूर्ण के सेवन से कफ निकल जाता है।

सूखी या पुरानी खाँसी में- इस चूर्ण का उपयोग विशेष किया जाता है। पित्त प्रकोप के कारण कफ सूखकर छाती में बैठ जाने पर खाँसने से साधारणतया नहीं निकलता। इसमें सूखी खाँसी होती है। वह खाँसी वेग के साथ कुछ मिनिट तक लगातार होती रहती है, ज्यादा खाँसी आने के बाद कफ का पीला या काला छोटा-सा खण्ड निकले जाने पर खांसी कुछ देर के लिये बन्द हो जाती है। ऐसी अवस्था में इस चूर्ण के उपयोग से कफ पिघल कर बाहर निकल आता है तथा प्रकुपित पित्त भी शान्त हो जाता है, फिर धीरे-धीरे सर्वदा के लिये खाँसी दूर हो जाती है। यदि इसमें मूलेठी और वंशलोचन का चूर्ण भी मिला दिया जाय, तो क्षय (राजयक्ष्मा)जन्य कास में भी बहुत लाभ करता है।

व्योषादि चूर्ण

सोंठ, मिर्च, पीपल, इन्द्रजौ, नीम की छाल, चिरायता, भांगरा, चीता, कुटकी, पाठा, दारुहल्दी और अतीस-प्रत्येक १-१ तोला तथा कुड़े की छाल इन सबको बराबर लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशा तक, सुबह-शाम, शहद के साथ चाटकर ऊपर से चावलों का पानी पीना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण पाचन और ग्राही (दस्त को रोकने वाला) है। इसके सेवन से प्यास, अरुचि, ज्वरातिसार, प्रमेह, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डु और शोथ का नाश होता है।

लवण भास्कर चूर्ण

सेन्धा नमक, विड् (काला)नमक, धनियां, पीपल, पीपलामूल, स्याहजीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अम्लवेत-प्रत्येक २-२ तोला। समुद्र नमक ८ तोला, सेंचर-नमक (मनिहारी) ५ तोला, काली मिर्च, जीरा और सोंठ १-१ तोला, अनारदाना ५ तोला, दालचीनी, बड़ी इलायची ६-६ माशे इन दवाओं को कूट छान चूर्ण बना रखें।

वक्तव्य- कुछ वैद्य इसमें नींबू रस की भावना देकर सुखाकर रखते हैं, इससे यह अधिक स्वादिष्ट एवं रोचक बन जाता है।

मात्रा और अनुपान- १ माशा से तीन माशा, सुबह-शाम भोजन के बाद शीतल जल, छाछ (मट्ठा), दही के पानी आदि के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से मन्दाग्नि, अजीर्ण, वातकफज, गुल्म, तिल्ली, उदर रोग, क्षय, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, विबन्ध, शूल, आम-विकार आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह चूर्ण खाने में बहुत स्वादिष्ट और अत्यन्त लाभकारी भी है। रोज भोजन के बाद यदि इस चूर्ण का सेवन किया जाये तो पेट के रोग होने की संभावना नहीं रहती। रात को सोते समय गरम पानी से लिया जाये तो प्रातः पाखाना साफ होता है। यदि समभाग पंचसकार चूर्ण मिलाकर रोगी को दिया जाये तो सुखपूर्वक दो-तीन दस्त खुलासे हो जाते हैं।

मन्दाग्नि और संग्रहणी रोग की यह उत्कृष्ट दवा है। वात-पित्त-कफ इनमे से कोई भी दोष प्रधान होने के कारण मन्दाग्नि या संग्रहणी हो तो इसके सेवन से दूर हो जाती है।

भूनिम्बादि चूर्ण

चिरायता, इन्द्रजौ, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, कुटकी-प्रत्येक १-१ तोला, चित्रक की जड़ २ तोला और कूड़ा की छाल १६ तोला लेकर कूट छानकर चूर्ण बनायें। -बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- २ से ३ माशे तक सुबह-शाम गुड़ के शरबत या छाछ के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से ज्वरातिसार, ग्रहणी, कामला, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं। आँव को नष्ट करने एवं रक्तातिसार को मिटाने के लिये यह अत्युत्तम गुणकारी योग है।

मदनप्रकाश चूर्ण

तालमखाना, मूसली, विदारीकन्द, सोंठ, असगन्ध, कौंच के बीज, सेमर के फूल, खरेंटी (बीजबन्द), शतावर, मोचरस, गोखरू, जायफल, उड़द की दाल (घी में भुनी हुई), भांग और बंशलोचन प्रत्येक १-१ भाग तथा चीनी या मिश्री सब चूर्ण के बराबर लेकर कूट छान कर चूर्ण बनायें।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे, प्रातः और रात्रि को सोने से एक घण्टा पहले गाय के दूध अथवा जल से दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण पौष्टिक, रसायन और बाजीकरण है। इसके सेवन से बल और वीर्य की वृद्धि होती तथा प्रमेह का नाश होता है। अधिक स्त्री-प्रसंग या छोटी अवस्था में अप्राकृतिक ढंग से शुक्र (वीर्य) का ज्यादा दुरुपयोग करने से शुक्र पतला हो जाता है। साथ ही शुक्रवाहिनी शिराएँ भी कमजोर हो जाती हैं, और फिर वे शुक्र धारण करने से असमर्थ हो जाती है, परिणाम यह होता है कि स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, वीर्य का पतलापन, पेशाब के साथ ही वीर्य निकल जाना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन विकारों को दूर करने के लिए 'मदनप्रकाश चूर्ण' का उपयोग करना बहुत हितकर है, क्योंकि शुक्र की विकृति को दूर कर वीर्य को गाढ़ा करता और शरीर में बल बढ़ाता है।

मञ्जिष्ठादि चूर्ण

मजीठ, छोटी इलायची, सौंफ-प्रत्येक १-१ तोला, सोनागेरु २ तोला, पाषाण भेद और सनाय ४ तोला लें। सबको एक साथ कूट छान कर चूर्ण बना लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ४ से ६ माशे, प्रातःकाल या रात को सोते समय ठण्डे या गरम जल से दें। एक-दो दस्त बिना कष्ट के साफ हो जाते हैं।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण दस्त और पेशाब साफ लाने वाला और रक्तशोधक है। मल-मूत्र की रूकावट, अर्श (बवासीर) और रक्त-विकार में इसके प्रयोग से विशेष लाभ होता है। पित्त प्रकृति तथा रक्त और पित्त के विकारों में इसका प्रयोग बहुत लाभदायक है।

मदयन्त्यादि चूर्ण

छाया में सुखाए हुए मेंहदी के पत्ते या बीज का कपड़छन किया हुआ चूर्ण २ तोला, और भांगरे के रस में शुद्ध किया हुआ गन्धक का कपड़छन किया हुआ चूर्ण १ तोला लें। दोनों को ३ घंटे तक मर्दन करके शीशी में भर दें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ से २ माशा, दिन भर में २-३ बार जल या **सारिवादि हिम** के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण रक्तशोधक और साधारण रेचक है। पित्त प्रधान रोग में इस चूर्ण का उपयोग विशेषतया किया जाता है। खुजली, फोड़ा फुन्सी आदि रक्त-विकार होने पर इस चूर्ण के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

मधुर विरेचन चूर्ण

मुलेठी २ तोला, सौंफ १ तोला, सनाय ३ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला और मिश्री ६ तोला लेकर सबको एकत्र मिलाकर कूट-छान चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे, सुबह-शाम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण कोष्ठ-शुद्धि के लिए तथा आँव के दस्तों में विशेष गुणकारी है। पेचिश की प्रारम्भिक अवस्था में- आँव निकलने में बहुत दर्द होता हैं, आँतों में ऐंठन और दर्द बहुत जोर से होता है, रोगी को कुछ भी खाने की इच्छा नहीं होती, खुलकर आँव भी नहीं निकल पाता, ऐसी दशा में इस चूर्ण के उपयोग से बहुत फायदा होता है। यह कोष्ठ शोधन करता तथा आँव को निकालता है। कुछ दिनों तक लगातार सेवन करने से कुल आँव निकल जाता और रोगी भी अच्छा हो जाता है।

मधुयष्ट्यादि चूर्ण

कालादाना, सनाय पत्ती, छोटी हर्रे, गुलाब के फूल- प्रत्येक १-१ तोला, सोंठ ६ माशा और मिश्री २ तोला लें। प्रथम कालादाना और छोटी हर्रे को घी में भून लें, तदुपरान्त सब दवा एकत्र कर कूट-छान कर महीन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।-ध.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे, सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से बिना तकलीफ के साधारण दो-तीन दस्त हो जाते हैं। पेट साफ हो जाता है और कमजोरी आदि भी नहीं मालूम पड़ती। सुकुमार स्त्री और कमजोर आदमी के लिये यह विरेचन बहुत उपयोगी है। कब्ज के रोगियों के लिये यह उत्तम कोष्ठशुद्धिकारक योग है। सप्ताह में एक-दो बार सेवन करने से आँतों में मल संचय नहीं हो पाता। फलतः धीरे-धीरे कब्ज निर्मूल हो जाता है।

मरीच्यादि चूर्ण

काली मिर्च का कूट-छान कर किया हुआ महीन चूर्ण और मिश्री या चीनी पीसकर चूर्ण के बराबर मिलाकर रखें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ माशा सुबह-शाम मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से खाँसी और श्वास रोग नष्ट होते हैं।

***सारिवादि हिम**-अनन्तमूल (उसबा), चोपचीनी, मजीठ, गिलोय, धमासा, रक्तचन्दन, गुलबनप्सा, गोरखमुण्डी, शाहतरा, कमल के फूल, गुलाब के फूल, गूमा, पद्माख और शंखाहुली- प्रत्येक समभाग लेकर उसका मोटा (जौकुट) चूर्ण बना, रख लें। उसमें से १ तोला चूर्ण को रात में ६ तोला गर्म जल में मिट्टी या काँच के पात्र में भिंगो दें। सबेरे हाथ से मलकर, छान कर पीने को दें। सबेरे फिर उसी में गरम जल ६ तोला डालकर रख दें और शाम को पुनः उक्त विधान से छानकर पीने को दें।

इस चूर्ण को शहद के साथ खाने के बजाय सुखा ही चूर्ण चुटकी भर में दो-चार बार जब खाँसी या श्वास का वेग (दौरा) मालूम पड़े, मुख में डालने से श्वास का दौरा रूक जाता है। इसके सेवन से आवाज भी साफ और मधुर होती है। प्रतिश्याय में इस चूर्ण को ६ माशा की मात्रा में लेकर आधा सेर पानी में पकायें, आधा पाव पानी बचने पर पीकर, कपड़ा ओढ़कर सो जाने से शरीर में गर्मी बढ़कर कफ को पका देता है। एवं पसीने द्वारा स्रोतों से भी कफ को बाहर निकाल देता है।

मलशोधक चूर्ण

हर्रे, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, कालाजीरा, नागरमोथा, निशोथ, आँवला, भूमिआँवला, सेन्धानमक, वायविडंग, लौंग, तेजपात, कूठ, हींग और चित्रक-प्रत्येक समान भाग लेकर कूट कपड़छन चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।-यो.त.(त.7)

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे, सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण दस्तावर, कोष्ठ को साफ करनेवाला और भूख लगानेवाला है। इसके सेवन से कोष्ठ में संचित दुषित मल फूल कर दस्त के साथ बाहर निकल आता है। विरेचन के लिए यह उत्तम औषध है तथा पाचन और दीपन होने से आम का पाचन करने एवं मन्दाग्नि को नष्ट करने में भी उत्तम लाभकारी है।

महाखाण्डव चूर्ण

तालीसपत्र, कालीमिर्च, नागकेशर और पांचों नमक १-१ तोला तथा पीपल, पीपलामूल, तिन्तड़ीक (पकी इमली का चूक), चित्रक, दालचीनी और जीरा २-२ तोला, सोंठ, बड़ी इलायची, बेर का गूदा, अम्लवेत, नागरमोथा, धनियाँ और अजमोद ३-३ तोला, अनारदाने का चूर्ण सवा दस तोला, खाण्ड या चीनी सब दवा से आधी मिलाकर यथाविधि चूर्ण बनावें। -शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ माशे, सुबह-शाम शहद के साथ या जल के साथ दें अथवा थोड़ा-थोड़ा (चुटकी-चुटकी भर) मुँह में डालकर दिन में कई बार खाया जा सकता है। यह अत्यन्त स्वादिष्ट एवं रोचक है।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से अरुचि, मन्दाग्नि, कण्ठ रोग, मुख रोग, उदररोग, हृदयविकार, गुल्म, आध्मान (पेट फूलना), विसूचिका, श्वास, छर्दि, अतिसार आदि रोग नष्ट हो जाते है। यह श्रेष्ठ रोचक दीपक एवं पाचक है। शाक और मांस आदि के मसाले (बेशवार) के रूप में भी इसे डालने से ये स्वादिष्ट एवं रुचिवर्द्धक बनते हैं।

महासुदर्शन चूर्ण

आँवला, हर्रे, बहेड़ा, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी दोनों, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मूर्बा, गिलोय, जवासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाणा (अभाव में वनप्सा), नेत्रवाला, नीम की छाल, पोहकरमूल, मुलेठी, कुड़ा की छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहिजन के बीज, शु. फिटकरी, बच, दालचीनी, पद्मखार, खस, सफेद चन्दन, अतीस, खरेंटी (बरियार), शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रकमूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, कालमेघ, करंज बीज का मगज, लौंग, बंशलोचन, कमल, काकोली (अभाव में शकाकुरा मिश्री), तेजपत्र, तालीसपत्र और जावित्री-ये ५३ दवाएँ समभाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण के वजन से आधा चिरायते का चूर्ण मिलाकर रख लें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य- शारंगधर, भै.र., यो.र. आदि ग्रंथों में कालमेघ और करंज बीज मगज के स्थान पर जीवक और ऋषभक ये द्रव्य हैं, किन्तु कालमेघ और करंज बीज मगज विशेष ज्वरघ्न न होने के कारण सि.यो.सं. वाला उपरोक्त योग ही श्रेष्ठ है।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

विशेष नोट- महासुदर्शन चूर्ण के द्रव्यों को क्वाथ व घन बनाकर उसकी २-२ रत्ती की बटी बनाएँ जाने पर महासुदर्शन घन बटी के नाम से जानी जाती है।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण निस्सन्देह समस्त ज्वरों को नष्ट करने वाला है। इसके सेवन से एक-दोषज, द्विदोषज, आगन्तुक और विषमज्वर एवं सन्निपात ज्वर, मानसिक दोषों से उत्पन्न ज्वर, पारी से आने वाला ज्वर, प्राकृतिक ज्वर, वैकृतिक ज्वर, सूक्ष्म रूप से रहने वाला ज्वर, अन्तर्दाह (शरीर के बाहर दाह उत्पन्न करनेवाला) ज्वर, बहिर्दाह (शरीर के बाहर दाह उत्पन्न करने वाला) ज्वर, आमज्वर, अनेक देशों के ज्वर-विकार के कारण उत्पन्न होने वाला ज्वर, दवा अनुकूल न पड़ने से उत्पन्न होने वाला ज्वर, यकृत और प्लीहा जनित ज्वर,शीत ज्वर, पाक्षिक ज्वर (पन्द्रह दिन पर आने वाला ज्वर), मासिक (एक मास पर आने वाला) ज्वर, विषमज्वर, रजोदोष से उत्पन्न ज्वरादि दूर होते हैं। ज्वर-नाश करने की इसमें कैसी अद्भुत शक्ति है, इसका वर्णन करते हुए आयुर्वेद मे इस प्रकार लिखा गया है-

सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम्
तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं विनाशनम्।।

अर्थात्- जिस प्रकार सुदर्शन चक्र दैत्यों को नष्ट करता है, उसी प्रकार यह चूर्ण ज्वरों का नाश कर देता है।

यह चूर्ण शीतल, पाचक, कटु, पौष्टिक, ज्वरघ्न, दाह-नाशक, कृमिनाशक, प्यास, कफ, कुष्ठ, व्रण, अरूचि आदि को दूर करने वाला है। गर्भिणी के ज्वर में भी थोड़ी मात्रा में प्रयोग करने से लाभ होता है। इससे आमाशयस्थ ज्वरादि दोष अच्छी तरह पच जाता है।

पुराने विषमज्वर में जब विषमज्वर का विष शरीर के अन्दर गुप्त रूप से होता है, और अपना स्वरूप ज्वर के रूप में प्रकट न कर अजीर्ण, अग्निमान्द्य और हल्की हरारत के रूप में प्रकट करता है, तो उस स्थिति में सुदर्शन चूर्ण के उपयोग से बहुत लाभ होता है। इस चूर्ण में ज्वरनाशक गुण सर्वप्रधान है। आमाशय की शिथिलता को दूर करने के लिए यह एक उत्तम औषध है। इस चूर्ण से दस्त भी साफ होता है। जीर्ण ज्वर में रस-रक्तादि धातुगत ज्वरकारक दोष को नष्ट करके ज्वर को निर्मूल कर देता है, धातुओं का शोधन करता है।

अन्न-प्रणाली के ऊपर यह अपना प्रभाव विशेष रूप से डालता है। मुँह में डालते ही पाकस्थली के रस-प्रवाह को उत्तेजित करता है। बृहदन्त्र के ऊपर भी अपना प्रभाव दिखाता है। ज्वर को नष्ट करने में यह चूर्ण अतीव उपयोगी होने से अनेक वैद्य इसका क्वाथ, फाण्ट, हिम और अर्क आदि के रूप में प्रयोग करते हैं। अधिक कुनैन सेवन से अन्तर्दाह, कानों में गुंजाहट होना या कम सुनाना, मस्तिष्क में शून्यता रहना आदि विकार उत्पन्न होते हैं। इन विकारों में इस चूर्ण का हिम बनाकर सुबह-शाम पिलाने से सभी उपद्रव आसानी से शान्त हो जाते है। संक्षेप में यह दोष और दृष्यों का शोधन ज्वरघ्न, रेचक एवं शामक गुण प्रधान तथा अतीव गुणकारी औषधि है।

मीठा स्वादिष्ट चूर्ण नं. १

काला नमक ३ तोला, सेंधा नमक ३ तोला, सोंठ २ तोला, हींग २ माशा, सतपोदीना १ माशा, नौसादर २ तोला, सफेद मिर्च २ तोला, अजवायन, टार्टरीक एसिड, छोटी हर्रे, अनारदाना और पिप्पली-प्रत्येकी २-२ तोला लें तथा ३ छटाँक मिश्री मिलाकर यथाविधि चूर्ण बना रख लें।-अद्भुतपंचता काव्यम्

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे तक सुबह-शाम या भोजन के बाद जल से दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से मन्दाग्नि, अजीर्ण, मन की ग्लानि, जी-मिचलाना अथवा खट्टी डकार आना आदि पेट के रोग दूर हो जाते हैं। यह उत्तम जायकेदार चूर्ण हैं।

मीठा स्वादिष्ट चूर्ण नं. २

धनिया, सौंफ भुनी हुई, जीरा भुना हुआ, अनारदाना-प्रत्येक २-२ तोला, सेन्धा नमक १ तोला, नींबू सत्व (साइट्रिक एसिड) ३ माशा और मिश्री १० तोला ले सबको एकत्र मिला सूक्ष्म चूर्ण करके सुरक्षित रख लें।-अनुभविक योग

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे तक, सुबह-शाम भोजन के बाद अथवा जब आवश्यकता हो जल के साथ दें या थोड़ा-थोड़ा चुटकी से मुँह में डालकर बिना जल के भी खाया जा सकता है।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण अत्यन्त स्वादिष्ट और उत्तम दीपन-पाचन तथा रुचिवर्द्धक है। इस चूर्ण का उपयोग करने से मन्दाग्नि, अजीर्ण, मन की ग्लानि, अरुचि, वमन, अतिसार आदि रोग नष्ट होते हैं। जठराग्नि की वृद्धि कर भूख बढ़ाता है। बच्चे इस चूर्ण को बड़े स्वाद से खाते हैं।

यवक्षारादि चूर्ण

यवक्षार और मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर रख लें। -भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- १ से ३ माशे तक सुबह-शाम या आवश्यकतानुसार गर्म जल अथवा छाछ के साथ दे।

गुण और उपयोग- कभी-कभी गर्मी ज्यादा बढ़ जाने से पेशाब में विकृति आ जाती है, जैसे पेशाब खुल कर न होना, बूँद-बूँद होना, जलन और दर्द के साथ पेशाब लाल या अधिक पीला होना आदि। ऐसी हालत में यह चूर्ण देने से बहुत लाभ करता है। यवक्षार का प्रभाव मूत्रपिण्ड (वृक्क) पर अधिक पड़ता है, क्योकि यवक्षार मूत्रल है ओर मिश्री पित्त-शामक तथा तर है, अतएव इस रोग में यह चूर्ण बहुत गुण करता है।

दूसरा- यवक्षार और सेन्धा नमक, अजवायन, अम्लवेत, हर्रे, बच और घी में भुनी हुई हींग समान भाग लेकर चूर्ण बनायें। -वैद्यामृत

मात्रा और अनुपान- १ माशा सुबह-शाम गर्म जल से दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण मन्दाग्नि को नष्ट कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

यवानीखाण्डव चूर्ण

अजवायन, तिन्तड़की, सौंठ, अम्लवेत, अनारदाना और खट्टे बेर के फल के छिलके सहित गूदा १-१ तोला, धनियां, काला नमक, जीरा, दालचीनी ६-६ माशा, पीपल २।। तोला, काली मिर्च ७।। माशा और इस चूर्ण में चीनी या खांड का चूर्ण १६ तोला मिलाकर सबको एकत्र करके सुरक्षित रख लें। -शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ४ माशा, सुबह-शाम जल के साथ दें या थोड़ा-थोड़ा मुँह में डालकर खायें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण में से थोड़ा सूखा ही चूर्ण प्रातःकाल मुँह में डालने से अरुचि रोग नष्ट होता है। इसके अतिरिक्त जिव्हा और कण्ठ शुद्ध करता है। यह दीपक और पाचक है। पेट में वायु भर जाना, हवा नहीं छूटना, अजीर्ण, मन्दाग्नि, आदि रोगों के लिये यह बहुत गुणकारी है। यह अतीव स्वादिष्ट एवं रोचक होने के कारण अनेक लोग हमेशा इस चूर्ण का सेवन करते रहते हैं। जिससे उनको मन्दाग्नि, अरूचि और पाचनसम्बन्धी विकार नहीं हो पाते हैं।

रक्तचन्दनादि चूर्ण

लालचन्दन, नागरमोथा, शालिपर्णी, कलिहारी, अजमोद, पाठा, असगन्ध, शतावर, कंकोल, पीपल, देवदारु , इलायची, अजवायन, सोया, पीपलामूल, बच, सेन्धानमक, पद्माख, कूठ, देवदारु, करेला, रास्ना, अरलू की छाल, सोंठ और गिलोय, समान भाग लेकर कूट कपड़छन चूर्ण बनायें। ग.नि.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशा, सुबह-शाम घी या रास्नादि क्वाथ के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से सर्वांगगत वात-विकार नष्ट हो जाता हैं। वात-प्रकोप के कारण वातवाहिनी नाड़ी संकुचित हो जाने से रक्त का संचालन ठीक-ठीक नहीं होता, फिर सम्पूर्ण शरीर की स्नायुओं में खिंचाव होने से दर्द होने लगता है। हाथ पाँव फैलाने में भी कष्ट और दर्द होता है। गाँठों में विशेष दर्द होता है, रोगी कराहने और चिल्लाने लगता है। ऐसी दशा में इस चूर्ण के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

रसादि चूर्ण

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक,, कपूर, बेर की गुठली की मज्जा, लौंग, नागरमोथा, प्रियंगु, धान का लावा (खील) सफेद चन्दन, छोटी पीपल, दालचीनी, छोटी इलायची और तेजपात-प्रत्येक समान भाग लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बना उसमें अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिला चन्दन के अर्क में या चन्दन का चूर्ण १ भाग और जल २ भाग में १२ घण्टा तक भिंगोकर, कपड़ें से छान उस जल में १ दिन तक मर्दन कर छाया में सुखा लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- २ से ६ माशा रत्ती, दिन में तीन बार मधु (शहद)या ठण्डे जल, पुदीने का रस अथवा चन्दनादि अर्क के साथ दें।

गुण और उपयोग- वमन (उल्टी), अम्लपित्त, हिचकी और विदग्धाजीर्ण में यह योग उत्तम कार्य करता है। इसमें जहरमोहरा-पिष्टी २ रत्ती की मात्रा में मिला देने से विशेष गुणदायक हो जाता है। पैत्तिक विकारों में इस चूर्ण का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। यह चूर्ण पित्तशामक और प्रकुपित्त वायुनाशक है।

लघुसुदर्शन चूर्ण

गिलोय (गुर्च), पीपलामूल, पीपल, कुटकी, हर्रे, सोंठ, लौंग, नीम की छाल और सफेद चन्दन १-१ भाग तथा चिरायता सबसे आधा लेकर सब का कूट-छान चूर्ण बनायें। -यो.र.

मात्रा और अनुपान- १।। से ३ माशा, सुबह-शाम गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह भी सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है। तन्द्रा, भ्रम, तृषा, पाण्डु, कामला, कमर की पीड़ा, पीठ का दर्द, पसली का दर्द आदि रोगों को दूर करता है। महासुदर्शन चूर्ण के कहे गए गुणधर्म इसमें भी पाये जाते हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि इसकी अपेक्षा महासुदर्शन चूर्ण में वे दो गुणधर्म कुछ विशिष्ट मात्रा में होते हैं।

लघुमाई चूर्ण

छोटी माई, मोचरस, आम की गुठली की गिरी, पाषाण भेद, धाय के फूल और अतीस ३-३ माशा, अफीम और गेरू ६-६ माशा लेकर सबको यथाविधि चूर्ण बना लें। -बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- ४ रत्ती सुबह-शाम चावल के पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से आमशूल, आमातिसार और विशेषत: रक्तातिसार नष्ट होता है। रक्तातिसार में इस चूर्ण के उपयोग से शीघ्र लाभ होता है। सामान्यत: सभी अतिसारों में यह अच्छा लाभ करता है।

लवंगादि चूर्ण

लौंग, शुद्ध कपूर, कंकोल, खस, सफेद चन्दन, तगर, नीलकमल, काला जीरा, छोटी इलायची, काला अगर, दालचीनी, नागकेसर, पीपल, सोंठ, जटामांसी, सुगन्धवाला जायफल, बंशलोचन प्रत्येक १-१ भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बनावें फिर सम्पूर्ण चूर्ण में आधी मिश्री पीसकर मिलाकर रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- ३- ६ माशा, सुबह-शाम मधु या गो-दुग्ध अथवा ठण्डे जल के साथ सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण रुचि उत्पन्नकारक, अग्निप्रदीपक, बलकारक, पौष्टिक और त्रिदोषनाशक है तथा छाती की धड़कन, तमकश्वास, गलग्रह, खाँसी, हिचकी, यक्ष्मा, पीनस, ग्रहणी, अतिसार और प्रमेह को शीघ्र नष्ट करता है।

अधिक दिनों तक ज्वर आकर छूटने के बाद जो कमजोरी रहती है, उसमें किसी तरह का कुपथ्य हो जाने से पुन: हरारत मालूम पड़ने लगती है। इसमें भूख न लगना, विशेष कमजोरी, अन्न के प्रति अरुचि, रक्त की कमी के कारण शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाना, कफ की वृद्धि आदि होने पर इस चूर्ण का उपयोग करना चाहिए। इससे हरारत दूर हो जाती है और उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

कभी-कभी मन्दाग्नि के कारण पाचन-शक्ति में खराबी होने से अन्न का पाक अच्छी तरह नहीं हो पाता, तब पेट फूलना, पेट में आवाज होना, दस्त पतला होना, विशेष प्यास, शरीर में दाह, वायु के विकार आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी हालत में इस चूर्ण का उपयोग करने से शीघ्र लाभ होता है।

लाई चूर्ण

शुद्ध गन्धक १ तोला, हिंगुलोत्थ पारद ६ माशा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल-प्रत्येक २-२ तोला, सेन्धा नमक, सञ्चर नमक, विड्नमक (काला नमक) सामुद्र नमक, साम्भर नमक, भुनी हींग, काला जीरा, सफेद जीरा-प्रत्येक १।।-१।। तोला लें और इन सब द्रव्यो के वजन से आधी धुली भांग घृत में भुनी हुई लें। प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली बनायें। फिर अन्य द्रव्यों को एकत्र मिला कूट कपड़छन चूर्ण करें फिर कज्जली को चूर्ण में अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रख लें। -भा.प्र.

मात्रा और अनुपान- १माशा, सुबह-शाम तक्र (छाछ) के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से संग्रहणी, शूल, अफरा और अतिसार का नाश होता है तथा मन्दाग्नि दूर होती है और पाचन शक्ति बढ़ती है। संग्रहणी की प्रारम्भिक अवस्था में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। यह पाचक पित्त को उत्तेजित कर पाचन क्रिया को ठीक करता तथा आमातिसार और रक्तातिसार जो दर्द के साथ होता हो, उसे भी दूर करता है।

शतपत्र्यादि चूर्ण

गुलाब का फूल २० तोला, मोथा, जीरा, सफेद चन्दन, छोटी इलायची, सौंफ, कत्था, संगजराहत, कबाबचीनी, गिलोय का सत्व, खस, बंशलोचन, खसखस, ईसबगोल की भूसी, गोखरु, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेसर, सारिवा (अनन्तमूल), कमलगट्टा, कमल और तिखूर(आरारोट) प्रत्येक १-१ भाग मिश्री ४० भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बनाकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १।। माशा से ३ माशा तक सुबह-शाम शीतल जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- विदग्धाजीर्ण, अम्लपित्त और पेट की खराबी से उत्पन्न होने वाले मुखपाक प्राय: कब्ज के कारण आन्तरिक गर्मी बढ़कर होते हैं। इस चूर्ण के सेवन से कब्ज नष्ट

होता है एवं शीतवीर्य होने के कारण आन्तरिक गर्मी भी शान्त हो जाती है, जिससे मुखपाक स्वयंमेव ठीक हो जाता है।

शतपुष्पादि चूर्ण

सौंफ, सोंठ, सफेद जीरा, हर्रे और पोस्त का डोंडा- प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इस चूर्ण को मन्दाग्नि पर घी में कुछ सेंक (भून) लें, फिर उसमें सब चूर्ण की आधी मिश्री मिला, रख लें।-बृ.नि.र.

मात्रा और अनुपान- ३-३ माशे सुबह-शाम छाछ (मट्ठा) या दही से दें।

गुण और उपयोग- आमातिसार (पेचिश) की प्रारंभिक अवस्था में आँव अच्छी तरह नहीं निकलने से पेट में दर्द होता है, आँतों में मरोड़ उठने के कारण रोगी बेचैन हो जाता है, बार-बार टट्टी के लिये दौड़ लगानी पड़ती है, ऐसी हालत में दर्द बन्द करने और धीरे-धीरे आँव को पचित कर मल के साथ निकालने के लिये यह चूर्ण बहुत उपयोगी है। इसके सेवनकाल से मट्ठा के साथ चावल का भोजन करना चाहिए।

इसी तरह दर्द के साथ होने वाले अतिसार, शूल आदि में भी यह बहुत लाभ करता है। पाचक पित्त को प्रदीप्त कर पाचन-क्रिया को सुधारता तथा वायु को शान्त करता है।

शतावर्यादि चूर्ण

शतावर, असगन्ध, कौंच के बीज (छिलका रहित), सफेद मूसली, गोखरू के बीज-प्रत्येक १-१ भाग लेकर इनको एकत्र मिला, चूर्ण करके सुरक्षित रख लें। -यो.रं.

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशे तक, रात को सोने से एक घंटा पूर्व व प्रातःकाल शर्करा मिश्रित गो-दुग्ध के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण पौष्टिक, श्रेष्ठ बाजीकरण और उत्तम वीर्यवर्धक है। इस चूर्ण के सेवन से रस-रक्तादि सप्तधातुओं की क्रमशः वृद्धि हो जाती है। इसके सेवनकाल में ब्रह्मचर्य से रहने से शरीर में बल और पौरुष शक्ति की वृद्धि होती है और निर्दोष वीर्य का निर्माण होता है। समस्त प्रकार के वीर्य सम्बन्धी विकार जैसे-वीर्य का पतलापन, शीघ्रपतन, शुक्रवाहिनी नाड़ियों की शिथिलता आदि नष्ट होते है।

शान्तिवर्द्धक चूर्ण

सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लौंग, बड़ी इलायची-प्रत्येक १-१ तोला लेकर गैरिक (गेरू) ३ तोला, नौसादर ४ तोला, नींबू का सत्व १ तोला, चीनी ३ तोला, सूखा पुदीना १ तोला लेकर इन्हें एकत्र मिलाकर कूट-कपड़छन चूर्ण करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-४ माशे तक, भोजन के बाद जल के साथ या चुटकी से थोड़ा-थोड़ा मुँह में डालकर खायें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण स्वादिष्ट, दीपक, पाचक एवं उत्कृष्ट रुचिवर्द्धक है। इस चूर्ण के सेवन से मन्दाग्नि, भूख न लगना, जी मिचलाना, अपचन, अफरा, अम्लपित्त और समस्त प्रकार के उदरशूल आदि विकार नष्ट होते हैं। स्वादिष्ट होने के कारण इस चूर्ण को बच्चे बड़े प्रेम से खाते हैं।

सिर दर्दनाशक चूर्ण

सफेद चन्दन, केसर, भाँगरा, मुनक्का, फूलप्रियंगु, कालीमिर्च, गिलोय, मुलेठी और सोंठ समान भाग लेकर कूटकर चूर्ण बनावें। फिर इस चूर्ण के बराबर मिश्री या चीनी मिलाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३-३ माशा शहद और घी में मिलाकर दें। ऊपर से दूध या ठण्डा जल पिला दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से पित्त और रक्तजन्य सिर-दर्द में आराम होता है। यदि इसी चूर्ण में थोड़ी-मात्रा में (दो रत्ती) एस्पिरीन मिला दिया जायें तो सिर-दर्द तो दूर होगा ही, साथ ही निद्रा भी अच्छी आयेगी।

शिवाक्षार पाचन चूर्ण

हिंग्वष्टक चूर्ण, छोटी हरड़ का चूर्ण, सज्जीक्षार या सोडा बाईकार्ब (खाने का सोड़ा)-प्रत्येक १-१ भाग लेकर एकत्र मिला सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- २-४ माशे तक, दिन में २ बार भोजन के बाद दोनों समय सुखोष्ण जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण उदर वायु (गैस्ट्रिक ट्रबल) रोग की श्रेष्ठ औषधि है। इस चूर्ण के सेवन से अजीर्ण, कब्ज, अफरा, हिचकी, वमन, अरुचि, शूल, कृमि आदि रोग नष्ट होते हैं और यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। आम का पाचन करने अपान वायु को शुद्ध करता और मलावरोध को नष्ट करके कोष्ठ-शुद्धि करता है।

यह चूर्ण पाचक, अग्नि प्रदीपक, यकृत शक्तिवर्द्धक और सारक है। उदर में भारीपन होने पर भी इस चूर्ण के उपयोग से शीघ्र लाभ होता है। आमाशयिक पित्त में अम्लता बढ़ने तथा यकृत में पित्तस्राव कम होने से उदर में वायु संचय हो जाने पर शूल, बद्धकोष्ठता, अन्त्र में सूक्ष्म कृमि की उत्पत्ति आदि विकार उत्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में इस चूर्ण के उपयोग से उक्त सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण यकृत स्थित पित्त को सबल बनाकर आमदोष का पाचन करता है, उदर में संचित वायु को बाहर निकालता है एवं उदर कृमियों को नष्ट करके उदर में उत्पन्न होने वाली दुर्गंध को नष्ट करता है। यह साफ दस्त लाने में सहायता करता है। यह चूर्ण साधारण औषध होते हुए भी उदर की विकृत पाचनक्रिया को व्यवस्थित करके यकृत बनाने में अतीव श्रेष्ठ गुणकारी है।

सरलविरेचन चूर्ण

सनाय की पत्ती १६ तोला, अनारदाना १६ तोला, बड़ी हर्रे, आँवला, काला जीरा और काला नमक- प्रत्येक ४-४ तोला, सेन्धा नमक, ६ तोला लेकर सब को कूटकर चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।

गुण और उपयोग- यह चूर्ण विरेचन के लिये सर्वोत्तम है। बहुत दिनों का मलावरोध इसके सेवन से नष्ट हो जाता है। आमाशय, सिर और नासा रोगों के लिये यह बहुत गुणदायक है। रक्त-शोधक और क्षुधा-वर्धक (भूख बढ़ाने वाला) भी है। इसमें अनारदाना और आँवला का सम्मिश्रण होने से अन्य विरेचक चूर्ण योगों की अपेक्षा स्वादिष्ट एवं रोचक भी है, जिसके कारण सेवन करने में किसी प्रकार की ग्लानि अनुभव नहीं होती।

सारस्वत चूर्ण

कूठ, सेन्धा नमक, सफेद जीरा, काला जीरा, पीपल, पाठा, असगन्ध, सोंठ, अजमोद, शंखपुष्पी, मिर्च- प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूठछान चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण के बराबर दूधिया बच का चूर्ण मिला, ब्राह्मी रस की भावना देकर, छाया में सुखाकर रख लें।

वक्तव्य- प्रत्येक भावना में चूर्ण के कूल वजन से आधी ब्राह्मी लेकर अठगुने जल में क्वाथ कर अष्टभाग जल शेष बचने पर छानकर चूर्ण में भावना दें। इस प्रकार 3 भावना दें।

मात्रा और अनुपान- २-४ माशे, सुबह-शाम घृत और शहद के साथ दें।

गुण और उपयोग- उन्माद, अपस्मार, मस्तिष्क की कमजोरी, स्मरणशक्ति की हीनता आदि में इसका उपयोग किया जाता है।

सामुद्रादि चूर्ण

सामुद्र लवण, सौवर्चल नमक (काला नमक), सेन्धा नमक, यवक्षार, अजवायन, अजमोद, पीपल, चित्रकमूल-छाल, सोंठ, भूनी हुई हींग, विड्नमक-प्रत्येक १-१ भाग लेकर सबको एकत्र मिला कूटकर सूक्ष्म चूर्ण बना सुरक्षित रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- २-४ माशे तक, दिन में दो बार सुबह-शाम घृत के साथ भोजन के पूर्व प्रथम ग्रास में लें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण का उपयोग करने से समस्त प्रकार के उदर रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त गुल्मरोग, अजीर्ण, वायु-प्रकोप, कठिन ग्रहणी रोग, दुष्ट अर्श, पाण्डु रोग और अति कष्टदायक भगन्दर रोग नष्ट होते हैं।

विशेषतः- जब आमाशय को मिलने वाला पाचक रस कम परिमाण में और निर्बल उत्पन्न होता है, तो ऐसी दशा में वात प्रधान उदर रोग, वातज गुल्म, अफरा आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। ऐसी स्थिति में सामुद्रादि चूर्ण का उपयोग करने से आमाशयिक रस और यकृत स्थित पित्त दोनों का स्राव बढ़ जाता है। पश्चात् पाचन क्रिया सबल और व्यवस्थित होकर वातोदर आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।

नोट-असमय पर भोजन, अधिक उपवास, अधिक द्विदलं धान्य, तले हुए पदार्थ, बासी भोजन और सिगरेट आदि का सेवन, मानसिक चिन्ता, रात्रि जागरण- ये सब रोगवर्द्धक हैं। अतः इन सभी का जितना हो सके परित्याग करना चाहिए।

सितोपलादि चूर्ण

मिश्री १७ तोला, बंशलोचन ८ तोला, पिप्पली ४ तोला, छोटी इलायची के बीज २ तोला और दालचीनी १ तोला लेकर इन सबको कूट-छान कर चूर्ण बना लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- २ माशा प्रातः सायं ६ माशा घृत और १ माशा मधु के साथ दें अथवा केवल मधु के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण के सेवन से श्वास, खाँसी, क्षय, हाथ और पैरों की जलन, अग्निमान्द्य, जिव्हा की शून्यता, पसली का दर्द, अरुचि, ज्वर और उर्ध्वगत रक्तपित्त शांत हो जाता है। यह चूर्ण बढ़े हुए पित्त को शान्त करता, कफ को छाँटता, अन्न पर रूचि उत्पन्न करता, जठराग्नि को तेज करता और पाचक रस को उत्तेजित कर भोजन पचाता है।

पित्तवृद्धि के कारण कफ सूखकर छात में बैठ गया हो, प्यास ज्यादा, हाथ-पाँव और शरीर में जलन हो, खाने की इच्छा न हो, मुँह में खून गिरना, साथ-साथ थोड़ा-थोड़ा ज्वर रहना (यह ज्वर विशेषकर रात में बढ़ता है), ज्वर रहने के कारण शरीर निर्बल और दुर्बल तथा कांतिहीन हो जाना आदि उपद्रवों में इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है, और इससे काफी लाभ भी होता है।

बच्चों के सूखा रोग में जब बच्चा कमजोर और निर्बल हो जायें, साथ-साथ थोड़ा ज्वर भी बना रहे, श्वास, या खाँसी भी हो, तो इस चूर्ण के साथ प्रवाल भस्म और स्वर्ण मालती बसन्त की थोड़ी मात्रा मिलाकर प्रातःसायं सेवन करने से अपूर्व लाभ होता है।

बिगड़े हुए जुकाम में भी इस चूर्ण का उपयोग किया जाता है। अधिक सर्दी लगने, शीतल जल अथवा असमय में जल पीने से जुकाम हो गया हो। कभी-कभी यह जुकाम रूक भी जाता

है। इसका कारण यह है कि जुकाम होते ही यदि सर्दी रोकने के लिए शीघ्र ही उपाय किया जायें, तो कफ सूख जाता है, परिणाम यह होता है कि सिर में दर्द, सूखी खाँसी, देह में थकावट, आलस्य और देह भारी मालूम पड़ना, सिर भारी, अन्न में रुचि रहते हुए भी खाने की इच्छा न होना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी स्थिति में इस चूर्ण को शरबत बनप्सा के साथ देने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह रुके हुए दूषित कफ को पिघला कर बाहर निकाल देता है और इससे होने वाले उपद्रवों को भी दूर कर देता है।

सुखविरेचन चूर्ण

निशोथ ६ तोला, काला दाना (भुना हुआ) ६ तोला, सौंफ ३ तोला, सनाय की पत्ती (भुनी हुई) ६तोला, हरड़ का छिलका ३ तोला, गुलाब के फूल ३ तोला लेकर इन सबको एकत्र मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशा तक, रात को सोते समय प्रातः काल उठते हाथ-मुँह धोकर गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह मातदिल एवं मृदु विरेचक और उत्तम औषध है। इस चूर्ण के सेवन करने से एक-दो दस्त खुलकर साफ हो जाते हैं और कब्जियत को यह शीघ्र नष्ट करता है। इसके सेवन से उदर या आँतों में किसी प्रकार की जलन या विकार उत्पन्न नहीं होते। यह जठराग्नि को प्रदीप्त करता तथा आम का पाचन करता है।

हिंग्वष्टक चूर्ण

सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, सेन्धानमक, सफेद जीरा, काला जीरा-इन सात दवाओं को समभाग लेकर महीन चूर्ण करें-बाद में घी में भुनी हुई हींग का चूर्ण एक द्रव्य का आठवाँ भाग लेकर चूर्ण में मिलाकर रख लें।

वक्तव्य- कुछ लोग समस्त चूर्ण का आठवाँ भाग शुद्ध हींग मिलाते हैं, किन्तु हींग उष्ण एवं तीक्ष्ण होने के कारण उसे इतने अधिक परिणाम में सेवन करने में दिक्कत होती है।

मात्रा और अनुपान- ३-३ माशा गरम जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस चूर्ण को भोजन के समय प्रथम ग्रास में घृत में मिलाकर खाने के बाद फिर यथेष्ट भोजन करने से अग्नि प्रदीप्त होती और वातरोगों का नाश होता है। इससे वात-प्रधान मन्दाग्नि अच्छी हो जाती है। पेट में वायु जमा होना, खट्टी या वैसे ही डकारें ज्यादा आना, भूख न लगना, अजीर्ण आदि की यह उत्तम दवा है।

यह चूर्ण उत्तम दीपक और पाचक है। अजीर्ण, पेट फूलना, पेट में वायु भर जाना, पेट में दर्द, कुपच होकर दस्त होना आदि रोगों में यह चूर्ण ३ माशा और शंख भस्म ४ रत्ती देने से बहुत लाभ करता है। मन्दाग्निनाशक, शूलनाशक योगों में यह अतीव श्रेष्ठ योग है, इसके गुणों से जनसाधारण तक परिचित हैं।

हिंग्वादि चूर्ण

शुद्ध हींग, सोंठ मिर्च, पीपल, पाठा, हपुषा, हर्रे, कचूर, अजमोद, बनतुलसी, तिन्तड़ीक, अम्लवेत, अनारदाना, पोहकरमूल (अभाव में कूठ) धनियाँ, जीरा, चित्रकमूल, बच, यवक्षार, पाँचों नमक और चव्य-प्रत्येक दवा समभाग लेकर चूर्ण बनायें।

मात्रा और अनुपान- २ माशा से ४ माशा तक प्रातः सायं गर्म जल या मट्ठा (छाछ) के साथ दें। पुराने कुमार्यासव, लोहासव, द्राक्षासव, मृतसंजीवनी के साथ भी यह सेवन करने से लाभ करता है।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पार्श्वशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल, वात-कफज, गुल्म, अफरा, ग्रहणी, अरुचि, छाती की धड़कन, श्वास, कास, और स्वरभंग अर्थात् आवाज बैठ जाना आदि रोग दूर होते हैं। यह दीपक, पाचक एवं रोचक है तथा उत्तम वातशामक और शूलघ्न है।

यह चूर्ण वात-दोष की विकृति से पैदा हुए अजीर्ण, पेट फूलना, पेट में दर्द होना, दस्त पतला होना आदि रोगों में भी बहुत लाभ करता है। इस चूर्ण को बिजौरा नींबू के रस की भावना देकर रख लें अथवा बिजौरा नींबू रस से घोंटकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना सुखाकर रख लें। इन गोलियों को हिंग्वादि चूर्ण गुटिका या बटी कहते हैं। ये दोनों प्रकार उत्तम रोचक एवं विशेष उपयोगी है।

हृद्य चूर्ण

डिजिटेलिस-पत्र का चूर्ण १ भाग, साम्भर श्रृंग की भस्म २ भाग लेकर ३ घण्टा तक मर्दन करके सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ रत्ती तक प्रातः सायं शहद से दें।

गुण और उपयोग- हृदय की दुर्बलता (धड़कन), नाड़ी वेगाधिक्य- इन लक्षणों में इस चूर्ण का प्रयोग करें। हृदय रोग में उपद्रव रूप में जब सर्वांग शोथ हो तब आरोग्यवर्धिनी के साथ मिलाकर इसका उपयोग करने से विशेष लाभ होता है। पुरानी खाँसी में जब कफ अधिक और चिकना पड़ता हो, साथ ही हृदय की दुर्बलता हो, तो इसमें जंगली प्याज को सुखाकर, उसका कपड़छन चूर्ण १ भाग मिलाकर इसका प्रयोग करें। यदि रोगी को हृल्लास और वमन हो तो इसका प्रयोग कुछ दिन बन्द कर दें। डिजिटेलिस भारत में कश्मीर प्रान्त में होता है एवं मुम्बई की झण्डू फार्मेसी डिजिटेलिस-पत्र चूर्ण बेचती है।

दंतमंजन लाल

गेरु मिट्टी ८ सेर ६ छटाँक ४ तोला, तमालपत्र १० छटाँक २ तोला, काली मिर्च ६ छटाँक १ तोला, सोंठ ८ छटाँक १ तोला, पीपल ४ छटाँक १ तोला, तुम्बलबीज ४ छटाँक १ तोला, बबूल छाल ४ छटाँक १ तोला, अकरकरा ३ तोला, नीमछाल ३ तोला, कपूर ५ छटाँक १ तोला, लौंग तेल १।। तोला, पिपरमेंट २ तोला लें। प्रत्येक द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण, अच्छी तरह से मिलाकर सबके बाद में कपूर, पिपरमेंट तथा लौंग तैल मिलाकर रख लें।

गुण और उपयोग- सुबह-शाम दोनों समय इस्तेमाल करने से पीब निकलना, दन्त कृमि, मसूढ़ों का फूलना, दर्द करना आदि बीमारियाँ दूर होती है और दाँत स्वच्छ तथा निरोग रहते हैं। दाँतों की छिद्र (कैविटी) को बन्द करता है।

❖❖❖

क्षार-लवण और सत्व- प्रकरण

आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में क्षारों, औषधि, लवणों तथा सत्वों का उपयोग भी काफी बढ़ रहा है। कई रोगों में इसके प्रयोग से आश्चर्यजनक प्रभाव होता देखा जाता है, इससे इनकी उपयोगिता प्रत्यक्ष सिद्ध है।

क्षार-निर्माण-विधि-जिस वनस्पति का क्षार तैयार करना हो उसे जब वह पूर्णरूप से पक जाय अर्थात् समूल शाखा पत्र-पुष्प-फल युक्त हो जाये तब समूल उखाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके सुखा लें। सुख जाने पर किसी गजपुट जैसे पक्के कुण्ड में या लोहे की कड़ाही में डालकर अग्नि प्रज्वलित करके खूब अच्छी तरह जलाकर राख कर लें (कोयले न रहने पावें) दूसरे दिन स्वांगशीतल होने पर भस्म (राख) को इकट्ठा कर, तौल कर, मिट्टी की नान्द या कलईदार बर्तन में डालकर राख से आठ गुना पानी डालकर लकड़ी के डंडे से चलाकर जल निथरने के लिये पात्र को निश्चल (स्थिर) रख दें। दो-तीन दिन बाद पात्र को धीरे-धीरे टेढ़ा करके पानी निथार कर चार तह के कपड़े से सात बार छानकर दूसरी नाँद में डालकर अग्नि पर चढ़ाकर पानी को जलावें। आधा ताजा पानी डालकर एक दिन निथरने को निश्चल पड़ा रहने दें। दूसरे दिन पुन: पहले की तरह ही निथार कर नान्द में डालकर अग्नि पर चढ़ाकर पकायें। जब पानी जलते-जलते रबड़ी जैसा गाढ़ा हो जाय, तब नान्द को चूल्हे से उतारकर धूप में रख दें ताकि क्षार दानेदार रूप में बनकर सूख जाय। इस सूखे हुए क्षार को लकड़ी या लोहे के साफ कलछे से खुरच, शीशी में भरकर रख लें। अच्छा बना हुआ क्षार श्वेताभ अथवा किंचित् बादाम के छिलके के रंग का एवं रवादार होता है। खनिज और धात्वीय द्रव्यों का क्षार बनाना हो तो प्रथम उन्हें शराब सम्पुट में रखकर अच्छी तरह भस्म बना लेना चाहिए। अल्प परिमाण में एवं कीमती द्रव्यों की भस्म का क्षार बनाना हो तो उसके बनाने में कांच के पात्रों और स्प्रिटलेम्प का उपयोग करना उचित है। औषधि लवण इनके बनाने की कोई एक सामान्य विधि नहीं है।अत: इनके प्रत्येक योग के साथ में ही इनकी निर्माण-विधि भी दी जायेगी।

सत्व-निर्माण-विधि- जिस वनस्पति का सत्व बनाना हो उसके ऊपरी पतले भाग को छोड़कर शेष भाग को धोकर टुकड़े-टुकड़े करके काठ के साफ ऊखल में लकड़ी के मूसल को कूटकर (कूचलकर) किसी कलईदार साफ बर्तन में चौंगुने जल में डालकर, हाथों में खूब मसलकर दूसरे कलईदार बर्तन पर कपड़ा बान्धकर उसमें सब जल को छान लें और बर्तन को ढाँक कर रख दें। दूसरे दिन ऊपर का सब जल धीरे-धीरे एक दूसरे बर्तन में निथार लें और नीचे बैठा हुआ भाग रख लें और इस बर्तन पर पतला कपड़ा बाँध कर खुले स्थान में रखकर सुखा लें। पश्चात् बर्तन के पेन्दे में जमे इस शुष्क हुए सत्व को चम्मच में खुरचकर, शीशी या इमरतबान आदि में भरकर रख लें।

यवक्षार-जब जौ पक जायें तब उनकी बालियों को तोड़कर सुखा, जलाकर उनकी राख बनाकर क्षारपाक-विधि से यवक्षार बना लें। जौ के समग्र पंचांग को सुखा जलाकर भी इसी प्रकार यवक्षार बना लिया जाता है।

मात्रा- ३ से १० रत्ती तक, उष्ण जल में मिलाकर अथवा नींबू रस, तक गोमूत्र आदि के साथ दें।

यवक्षार के गुण- यवक्षार कटु, उष्णवीर्य, सर (मलमूत्र को साफ करने वाला) तथा कफ, वात, पाण्डुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी रोग, प्लीहा और यकृत की वृद्धि, आनाह, गलग्रह, कफज, कास, अर्श, उदर रोग, आमशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र,विबन्ध, गुल्म और विष दोष को दूर करने वाला है।

स्वर्जिकाक्षार- पंजाब और सिन्ध में लाना (लाणा) नामक क्षारयुक्त वनस्पति से सज्जीखार बनाते हैं। इसकी अच्छी जाति को लोटा सज्जी कहते हैं। बाजारू सज्जी को पानी में घोलकर एक दिन रहने दें। दूसरे दिन ऊपर का पानी निथारकर उसको 5-7 बार कपड़े से छानकर मिट्टी के पात्र में अग्नि पर सुखा लेने से सज्जी शुद्ध होती है। औषधि के लिए शुद्ध सज्जी का प्रयोग करना चाहिए। कितने ही वैद्य वर्तमान विज्ञान का सोड़ा-बाई-कार्ब(रसामृत) को भी शुद्ध स्वर्जिकाक्षार ही मानते हैं।

मात्रा- १ से १२ रत्ती, ठंडा या गरम जल, मधु, द्राक्षासव, पिपल्यासव आदि के साथ दें।

गुण- सज्जीखार तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष, क्लेदन, करने वाला, पाचक, ग्रन्थि और व्रणशोथ का क्लेदन करने वाला दीपन, छेदन और अग्नितुल्य है। कफ, विबन्ध, अर्श, गुल्म और प्लीहा वृद्धि का नाश करने वाला है।

टंकणक्षार- तिब्बत, नेपाल और ईरान के खारे सरोवरों के किनारे जमे हुए दानों के आकार में टंकण पाया जाता है। टंकण के शुद्ध टुकड़ों को कपड़े से खूब पोंछकर, भीतर से साफ की हुई लोहे की कड़ाही में डालकर, अग्नि पर चढ़ाकर, उसको फुलाकर लाजा (लावाखील) बना लें। खाने के काम में इस प्रकार शुद्ध किये हुए टंकण का प्रयोग करें। लेप-मलहम आदि में बिना फुलाए हुए टंकण का प्रयोग करें। यदि उसमें धूल आदि मिले हों, तो उसको जल में घोलकर एक दिन रखा रहने दें। दूसरे दिन ऊपर का जल निथारकर उसको चार तह के कपड़े से छान, साफ कड़ाही में डालकर मन्द-मन्द आँच पर पकायें। जब कुछ (थोड़ा सा) जल शेष रहे तब उस कड़ाही को उतार कर धूप में सुखाकर टंकण को निकालकर रख लें।

गुण- सुहागा कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, सारक, कफ निःसारक, हृद्य, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला, आर्तवजनक, बल्य, पित्तकारक, मूढ़ गर्भ प्रवर्तक तथा वातरोगों, कास, श्वास, विष, आध्मान और नाना प्रकार के व्रणों का नाशक है।

नव्यमतानुसार- टंकण शैत्यकारक, मूत्रल, रजोनिःसारक, गर्भाशय-संकोचक, जीवाणुनाशक, स्थानिक अवसादक और पचन निवारक है। टंकण का चूर्ण शहद में मिलाकर मुखव्रण (मुँह के छालों) में लगाने से लाभ होता है। सूजाक और श्वेत प्रदर में टंकणद्रव (टंकण ५ ग्रेन, जल १ आँस) की उत्तरबस्ति देने से लाभ होता है। योनि कण्डूयन में टंकणद्रव से प्रक्षालन करने से लाभ होता है। आयुर्वेद में टंकण को वत्सनाभ का निवारण माना गया है।

अर्कक्षार

अर्क पंचांग को सुखा, जलाकर राख बना, अठगुने जल में घोलकर, निथारकर, क्षार-पाक विधि से क्षार बनाकर रख लें।

मात्रा- २ रत्ती से ६ रत्ती तक, उष्ण जल, मधु अथवा आसवारिष्ट या क्वाथ में मिलाकर दें।

गुण- अर्क क्षार तीक्ष्ण, गुल्म और प्लीहा, यकृत आदि रोगनाशक, पाचक रस उत्पादक, दीपन तथा कास-श्वास नाशक, अग्निवर्धक है।-र.त.

अडूसा क्षार

वासा (अडूसा)पंचांग को सुखा, जला, राख बनाकर, अठगुने जल में घोलकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार-पाक-विधि से बनाकर रख लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक मधु में मिलाकर अथवा कास-श्वास नाशक किसी क्वाथ में मिलाकर आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार दें।

गुण-अडूसा क्षार कास-श्वास और प्रतिश्याय तथा रक्त-पित्त नाशक है। शुष्क कास में मिश्री की चाशनी अथवा गुलबनप्सा शरबत में मिलाकर चटाने से सत्वर लाभ होता है।

अपामार्ग क्षार

अपामार्ग पंचांग को सुखा, जला, राख बनाकर अठगुने जल में घोंलकर, निथारकर, ७ बार छानकर, यथाविधि क्षार बनाकर रख लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक मधु, गुलबनप्सा शरबत, मुलेठी शरबत, द्राक्षासव, पिप्पल्यासव या कनकासव के साथ दिन रात में २-३ बार दें।

गुण- अपामार्ग क्षार तीक्ष्ण श्वास, कास, गुल्म, शूल, बाधिर्य आदि रोग नाशक है। मधु के साथ देने से अथवा द्राक्षासव, पिपल्यासव अथवा कनकासव के साथ लेने से श्वास और कास रोग में शीघ्र लाभ होता है, अटका हुआ कफ दूर होकर गला तथा फुफ्फुस साफ होते हैं। अजवायन के चूर्ण और त्रिकटु चूर्ण के साथ मिलाकर देने से तीव्र उदरशूल को नष्ट करता है। तिल तैल में मिलाकर, पकाकर कान में डालने से बाधिर्य का नाश करता है। गोमूत्र में मिलाकर लेप करने से श्वेत को नष्ट करता है।

इमली (चिंचा) क्षार

इमली की डालियों को सुखा, जला, राख को अठगुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार कपड़े से छानकर, यथाविधि क्षार बना लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक गरम पानी, शंख भस्म, त्रिकटु चूर्ण आदि के साथ दें।

गुण- इमली क्षार अग्निमान्द्य, गुल्म, शूल, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोग को नष्ट करता है तथा अग्निमान्द्य, अजीर्ण, गुल्म, पीड़ा को नष्ट करता है। पाँचों नमक, जीरा और त्रिकटु चूर्ण के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग, शूल, आध्मान, पंक्तिशूल, विष्टब्धाजीर्ण को नष्ट करता है। शर्करा तथा द्राक्षा के पाक में मिलाकर देने से अरोचक को नष्ट करता है। व्योष चूर्ण के साथ लेने से अग्निमान्द्य और वातजीर्ण को नष्ट करता है। काली मिर्च चूर्ण तथा शंख भस्म के साथ मिलाकर देने से बच्चों के संग्रहणी रोग तथा अतिसार को नष्ट करता है।

कण्टकारि क्षार

छोटी कटेरी पंचांग को सुखा, जला, राख को अठगुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार कपड़े से छानकर, यथाविधि से क्षार बना लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक, मधु गुलबनफ्सादि या श्रृंग्यादि क्वाथ, शरबत गुलबनप्सा, शरबत अडूसा, शरबत मुलेठी आदि में मिलाकर दें।

गुण- खाँसी, वास, गले की खराबी, प्रतिश्याय (सर्दी, जुकाम), मूत्रकृच्छ्र, आदि रोगों को नष्ट करता है। शुष्क कास में चन्द्रामृत रस २ रत्ती, मिश्री चूर्ण ४ रत्ती में मिलाकर शहद अथवा शरबत मुलेठी के साथ दें।

चणकक्षार

चने के पौधों के पंचांग को सुखा, जला, राख को ८ गुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार कपड़े से छानकर, क्षार पाक विधि से क्षार बना लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक उष्ण जल, नींबूरस, त्रिकटू चूर्ण, शंखभस्म आदि के साथ मिलाकर दें।

गुण- चणकक्षार मन्दाग्नि, कफ, दोष, गुल्म, प्लीहा, अजीर्ण, संग्रहणी, विसूचिका, आध्मान, शूल रोग, अरोचक आदि को नष्ट करता है। त्रिकटू चूर्ण और शंख भस्म के साथ मिलाकर उष्ण जल के साथ देने से संग्रहणी, मन्दाग्नि, अतिसार, उदरशूल और आध्मान नष्ट करता है। त्रिकटू चूर्ण और मधु के साथ देने से कफ दोष नष्ट करता है। त्रिकटू चूर्ण के साथ मिलाकर गोमूत्र के साथ देने से गुल्म और प्लीहा नष्ट होते हैं।

तिल-क्षार

तिल के पंचांग को सुखा, जलाकर राख को ८ गुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार-पाक-विधि से क्षार बना कर लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक गोमूत्र तक, सुरा, नींबू रस आदि के साथ दिन में दो बार दें।

गुण- तिल-क्षार तीक्ष्ण मूत्रावरोध, अश्मरी और प्लीहा को नष्ट करता है। व्रण का भेदन करता है। व्यूषण चूर्ण और सैन्धव नमक चूर्ण के साथ देने से जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। अंकोलक्षार में मिलाकर मधु के साथ सेवन करके ऊपर से जल पीने से मूत्रावरोध को नष्ट करता है। यवक्षार के साथ मिलकर नींबू रस के साथ मिलाकर सेवन करने से वृक्क शूल को नष्ट करता हे। कदलीक्षार के साथ मधु में मिलाकर सेवन करने से अश्मरी रोग को नष्ट करता है। धात्रीक्षार के साथ गोखरू क्वाथ में मिलाकर पीने से मूत्रशर्करा को नष्ट करता हैं। एक माशा की मात्रा में तिलक्षार को शरपुंखा क्षार के साथ मिलाकर सेवन करने से गुल्म रोग को नष्ट करता है। तिल-क्षार को यवक्षार के साथ मिलाकर व्रण पर लेप करने से व्रण का भेदन करता है।

धतूरा-क्षार

धतूरा पंचांग को सुखा, जलाकर, राख को अठगुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार पाक विधि से क्षार बनायें।

मात्रा- १ रत्ती से २ रत्ती तक पान में रख कर खिलायें या पिपल्यासव में मिलाकर दें।

गुण- धतूरा-क्षार दमा (श्वास) के बढ़े हुए वेग का शमन करने में अद्वितीय प्रभावकारी है। खाँसी, उन्माद, अर्दित, पक्षाघात आदि रोगों में उत्तम गुणकारी है।

पीपल-क्षार

पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष की डालियों (फलसमेत) और छाल को सुखा, जला, राख को अठगुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार-पाक-विधि से क्षार बना लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक गरम पानी, लाजा, क्वाथ, मोसम्बी रस, मधु आदि के साथ दें।

गुण- पीपल क्षार मूत्रल है तथा मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, श्वास (दमा), खाँसी, प्यास की अधिकता आदि रोगों को नष्ट करता है।

पुनर्नवा-क्षार

पुनर्नवा पंचांग को सुखा, जला राख को अठगुने पानी में भिंगोकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार पाक विधि से क्षार बना लें।

मात्रा- २ रत्ती से ८ रत्ती तक, उष्ण जल, गोमूत्र, दशमूल क्वाथ आदि के साथ दें।

गुण- शोथ, उदर रोग, अश्मरी, गुल्म, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में उचित अनुपान के साथ देने से उत्तम लाभकारी है। स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी शोथ को भी नष्ट करता है।

पलास-क्षार

पलास वृक्ष के पंचांग को सुखा, जला, राख को अठगुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार पाक विधि से क्षार बना लें।

मात्रा - २ से ९ रत्ती तक पिप्पली चूर्ण और मधु में मिलाकर अथवा कदलीक्षार, यवक्षार, अथवा अपामार्गक्षार के साथ मिलाकर दें।

गुण - पलास-क्षार को पिप्पली चूर्ण और मधु में मिलाकर देने से क्षुधावृद्धि होती है और गुल्म तथा प्लीहोदर शान्त होते हैं। पलास-क्षार के जल से गोघृत को सिद्ध कर लेप कराने से स्त्री का रक्तगुल्म तथा पुरुषों को सेवन कराने से शुक्र की सब विकृतियाँ तथा ग्रन्थिदोष नष्ट हो जाता है। पलास-क्षार को कदली-क्षार के साथ मिलाकर देने से अश्मरी और मूत्रशर्करा नष्ट हो जाती है। पलास-क्षार और यवक्षार को मिलाकर कुमारी-स्वरस से सेवन करने से बढ़ी हुई प्लीहा और यकृत ठीक होते हैं। पलास-क्षार को अपामार्ग क्षार के साथ मिलाकर सेवन करने से शरीर के किसी भी भाग में बढ़े हुए कठिन मांस (अग्रमांस) ठीक होते हैं।

मूली-क्षार

मूली पंचांग को सुखा, जला, राख को अठगुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार पाक विधि से क्षार बना लें।

मात्रा - २ से ८ रत्ती तक ठण्डा जल, नारियल जल, वरुणादि क्वाथ, गोखरू क्वाथ, आदि से दे।

गुण - यह क्षार पाण्डु, कामला, शोथ, अश्मरी, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रशर्करा, पेशाब की जलन आदि में उत्तम गुणकारी है।

स्नुही-क्षार

स्नुही पंचांग (डंडाथूहर) को सुखा, जला, राख को अठगुने पानी में घोलकर, निथारकर ७ बार छानकर, क्षार-पाक-विधि से क्षार बना लें।

मात्रा - २ से ४ रत्ती तक, उष्णजल, मधु, त्रिफला क्वाथ आदि के साथ दें।

गुण - स्नुही क्षार को शंख भस्म, सज्जी क्षार और यवक्षार के साथ मिलाकर देने से विसूचिका, अजीर्ण, पाँचों प्रकार के चिरोत्थित गुल्म, संग्रहणी तथा दारुण शूल रोग को नष्ट करता है। स्नुही क्षार में सेन्धा नमक, सोंचर नमक तथा विड् नमक, जवाखार, सज्जीखार और टंकण क्षार मिलाकर सेवन करने से शोथ, प्लीहा, उदर रोग को नष्ट करता है। स्नुही क्षार को त्र्यूषण चूर्ण और मधु में मिलाकर सेवन करने से बढ़ा हुआ श्वास रोग नष्ट होता है। स्नुही क्षार को त्रिफलाचूर्ण, सैन्धव नमक और चित्रकमूल चूर्ण के साथ सेवन करने से अग्निमांद्य, यकृत, प्लीहा और उदर रोग नष्ट होते हैं।

अर्क-लवण

सैन्धव नमक को चूर्ण कर समभाग आक के पके (पीले हुए) पत्ते, हण्डिया में नीचे-ऊपर पत्ते लगाकर बीच-बीच में नमक रखकर ढक्कन लगाकर सन्धिरोध करके गजपुट में फूँक दें-स्वांगशीतल होने पर हण्डिया को निकाल, खोलकर दवा को निकालकर पीस कर रख लें।

मात्रा - १ माशा से २ माशा तक गरम पानी अथवा गोमूत्र के साथ दें।

गुण - इस अर्क लवण के सेवन से कठिन प्लीहा और यकृत-वृद्धिरोग, गुल्म तथा उदर रोग नष्ट होते हैं। अजीर्ण, मन्दाग्नि तथा पाण्डू रोग एवं कब्ज को नष्ट करता है।

अभया-लवण

पारिभद्र छाल, पलास काष्ठ, अर्क पंचांग, स्नुही पंचांग, अपामार्ग पंचांग, चित्रक पंचांग, वरूण छाल, अरणीमूल, सफेद पुनर्नवा, गोखरू पं. छोटी कटेरी, पं., बड़ी कटेरी पं., करंज पं., अपराजिता पं., पुनर्नवा लाभ पं.-इन सबको समान भाग लेकर उखल में कूटकर जौकुट कर लें। पश्चात् तिल की लकड़ियों की अग्नि प्रज्ज्वलित कर उसमें इस जौकुट की हुई दवा को जलाकर राख कर लें। पश्चात् ठण्डी होने पर इसमें से १ सेर राख को २५।। सेर ८ तोला जल में मिलाकर मजबूत मिट्टी के पात्र में पकायें। चौथाई जल शेष रहने पर उतारकर, पानी को निथारकर, ७ बार कपड़े से छानकर पुनः साफ मिट्टी के बर्तन में पकायें और इसमे पकाते समय एक सेर सैन्धव नमक चूर्ण और आधा सेर हर्रे का चूर्ण तथा गोमूत्र (छना हुआ) ६ सेर ६ छटाँक २ तोला मिलाकर पकायें। आसन्न पाक होने पर उतारकर, सफेद जीरा, सोंठ, मरिच, पीपल शु. हींग, अजवायन, कूठ, कचूर-इनको २-२ तोला लेकर किया हुआ चूर्ण मिलाकर सुखाकर रख लें।

मात्रा - १ से २ माशा तक, तक्र, गरम जल, गोमूत्र आदि के साथ दिन में २-३ बार दें।

गुण - यह अभया-लवण कोष्ठ सम्बन्धी विकारों, यकृत-वृद्धि, प्लीहा-वृद्धि, उदर रोग, अफरा, अष्ठीला, अग्निमान्द्य-इनको नष्ट करता है। अजीर्ण, शूल रोग, कब्जियत, शिरोरोग, हृद्रोग आदि विकारों को नष्ट करता है।

नारिकेल-लवण

पके हुए पानी युक्त नारियल को लेकर जटा उतारकर वर्मा से छेद करके उसका पानी निकाल दें। पश्चात् सैन्धव नमक का चूर्ण १० तोला उस छेद के द्वारा नारियल में भरकर उस छेद में ढक्कर (कार्क) लगाकर बन्द करके नारियल के ऊपर से कपड़मिट्टी करके धूप से सुखाकर महापुट में रखकर फूँक दें। स्वांगशीतल होने पर नारियल को निकालकर उसके ऊपरी जले हुए काले भाग को हटाकर अन्दर के साफ नमक को खरल में पीसकर रख लें। -र. त.

मात्रा - १/२ माशा से १।। माशा तक, समभाग नवसादर और यवक्षार मिलाकर पानी के साथ दें।

गुण - नारिकेल लवण पाचक, पित्तशामक, अम्लपित्तनाशक और पित्तदोषजन्य शूल, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज शूल और परिणामशूल को शीघ्र ही नष्ट करता है।

गिलोय सत्व

अंगूठे जितनी मोटी ताजी हरी गिलोय लें, उसको जल से धोकर, छोटे-छोटे टुकड़े, करके लकड़ी की उखली में डालकर खूब कूटकर, बर्तन में चौगुने जल में डाल, हाथों से खूब मल, दूसरे कलईदार बर्तन में स्वच्छ कपड़े से सब जल छान लें और रात भर बर्तन को ढाँक कर रहने दें। सबेरे ऊपर का सब जल धीरे-धीरे एक बर्तन में निथार लें और नीचे जले सत्व को बर्तन में रखा रहने दें। पश्चात् इस बर्तन पर पतला कपड़ा बान्ध कर खुले स्थान में रखकर सत्व को सुखाकर रख लें। ऊपर से निथारे हुए जल को आग पर घन बनाकर इसकी संशमनी बटी बनाई जा सकती है।-सि.यो.सं.

मात्रा - ४ रत्ती से १ माशा तक समभाग सितोपलादि चूर्ण में मिलाकर या २ रत्ती प्रवालपिष्टी या चन्द्रकला रस २ रत्ती अथवा बसन्त मालती रस १ रत्ती में मिलाकर मधु अथवा अन्य उचित अनुपान के साथ दें।

गुण - जीर्ण ज्वर, मन्द-मन्द ज्वर बने रहना, हाथ पैरों के तलुवों में गर्मी बनी रहना, पसीना अधिक निकलना, रक्त-पित्त, पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, खुनी बवासीर, श्वेत तथा रक्त प्रदर, पूयमेह, पित्तज अन्य विकार, प्यास की अधिकता आदि विकारों में उत्तम गुणकारी है।

चिरायता सत्व

उत्तम नेपाली ताजा चिरायता लेकर, उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर उखली में कूटकर, चौगुने पानी में डाल, हाथों से खूब मलकर दूसरे कलईदार बर्तन में कपड़े से सब जल छानकर ढाँक कर रात भर रख लें। दूसरे दिन पानी को निथारकर अन्य पात्र में नीचे जमे हुए सत्व को पात्र पर महीन कपड़ा बान्धकर खुले स्थान में रखकर सुखा लें। सूखने पर खुरचकर शीशी में भर लें।

-सि.भै.म.मा. के आधार पर

मात्रा - आधा माशा से २ माशा तक जल अथवा अन्य उचित अनुपान के साथ सुबह-शाम दें।

गुण - यह चिरायता सत्व सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने में अत्युत्तम गुणकारी है। विशेषतः जीर्णज्वर, सन्तत, ज्वर, अन्येद्युस्क (इकतरा), तिजारी, चौथिया एवं जीर्ण विषम ज्वर, पित्तज्वर आदि में बहुत लाभ करता है। कुनैन से अटके हुए बुखार को दूर करने में यह निश्चित लाभकारी दवा है।

कुटज-सत्त्व

ताजी कुड़ा (कड़वे कुड़ा) की छाल ला, उसे पानी से धोकर, लकड़ी की उखली में खूब कूटकर, एक कलईदार बर्तन में चौगुने पानी में मिला हाथों से खूब मसल, एक दूसरे पात्र में कपड़े से पानी को छान लें और रात भर रखा रहने दें। दूसरे दिन सुबह ऊपर के पानी को निथार दें और पात्र में नीचे जमें हुए सत्व को पात्र के मुँह पर पतला कपड़ा बाँधकर खुले स्थान में रखकर सुखा लें। सूख जाने पर सत्व को खुरचकर निकालकर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा - ४ रत्ती से १ माशा तक धान्य-पंचक क्वाथ, अर्क सौंफ, तक्र अथवा बेलगिरी के साथ दिन में २-३ बार दें।

गुण - यह कुटज सत्व अतिसार, आमदोष तथा संग्रहणी में उत्तम गुणकारी है।

अदरक-सत्त्व

ताजी मोटी-मोटी पकी अदरक को लाकर पानी से धो, लकड़ी की उखली में डाल अच्छी तरह कूटकर चौगुने पानी में डाल, हाथों से खूब मल, एक अन्य पात्र पर कपड़ा बाँधकर यह पानी छानकर रात भर रखा रहने दें। दूसरे दिन सबेरे धीरे-धीरे ऊपर के पानी को दूसरी बर्तन में निथारकर रख दें और इस पात्र में नीचे जमे अदरक सत्व को पात्र पर महीन कपड़ा बांधकर खुले स्थान में रखकर सुखा लें। सुख जाने पर खुरचकर, उतारकर शीशी में भर लें।

मात्रा - १ माशा से ३ माशा तक जल, तक्र, सुरा अथवा अन्य उचित अनुपान के साथ दें।

गुण - अग्निमांद्य, उदरशूल, आध्मान, प्रतिश्याय, कास, श्वास, ज्वर, आमवात, वातविकार, अजीर्ण, विसूचिका आदि विकारों में तथा शोथ, यकृत, प्लीहा, बस्तिशूल आदि विकारों में अत्यन्त गुणकारी है।

आसवारिष्ट- प्रकरण

द्रव्येषु चिरकालस्य द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत्।
आसवारिष्ट भेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम्।।

अर्थात् जल, क्वाथ, स्वरस, आदि पतले पदार्थों में गुड़, चीनी, मधु आदि घोलकर धायफूल, बबूलछाल, मधूकपुष्प (महुवा) आदि मिलाकर सन्धान करके रखने पर उनमें जो वस्तु चिरकाल स्थायी (बहुत समय तक रखने पर भी नष्ट न होने वाली) उत्पन्न होती है- यह औषधोपयोगी होती है एवं उसके आसव-अरिष्ट आदि कई भेद (प्रकार) कहे जाते हैं।

आसव-अरिष्ट क्यों बनाये गये?- वनस्पतियों के स्वरस, कषाय (काढ़े) आदि द्रवपदार्थ बनाकर वैसे ही पड़े रखने पर कुछ दिन बाद दोषपूर्ण हो जाते हैं, अत: वे स्थायी गुणदायक बने रहें, इसके लिये 'आसव-अरिष्ट' बनाये गये।

आसव-अरिष्ट किसे कहते हैं?- जल में औषधि-द्रव्य एवं मीठा तथा धायफूल, बबुल छाल, महुआफूल आदि मिला कर कुछ दिनों तक पात्रों में रखकर जो सन्धान किया जाता है, उसे 'आसव और अरिष्ट' कहते हैं।

आसव और अरिष्ट में भेद

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः।
अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात् तयोर्मानं पलोन्मितम्।।

अर्थात् बिना क्वाथ बनाये कच्चे जल में औषधि और गुड़, चीनी, मधु आदि मीठे पदार्थ और धायफूल, महुआफूल, बबूलछाल आदि डालकर जो सन्धान किया जाता है, उसे 'आसव' तथा औषधियों का क्वाथ करके और उसमें ये चीजें मिलाकर जो बनाया जाता है, उसे 'अरिष्ट' कहते हैं। परन्तु यह बात सर्वथा यथार्थ हो प्रतीत होती है, क्योंकि आसव नाम रहने पर भी क्वाथ करके बनाना और अरिष्ट नाम रहने पर भी क्वाथ करके न बनाने का निर्देश प्राचीन और अर्वाचीन अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है, जैसे-द्राक्षासव, लोध्रासव आदि का क्वाथ करके बनाना एवं पिपल्यारिष्ट, मण्डूराद्यरिष्ट, त्रिफलारिष्ट आदि का क्वाथ न करके बनाने का विधान प्रत्यक्ष है। ***'आसुयनिष्पद्यते इति आसवः'*** इस व्याख्या से सन्धानित औषधि मात्र को आसव माना गया। सभी प्रकार के अरिष्ट, सीधू, वारुणी, सुरा, मैरेय आदि विभिन्न नाम और मद्य के भेद शास्त्र में पाये जाते हैं। और उनके गुण भी विभिन्न हैं। लेकिन यहाँ विस्तार-भय से इनका वर्णन न कर केवल आसव-अरिष्ट के विशुद्ध निर्माण के विषय में ही लिखना है।

वनस्पतियों की विशुद्धता- आसव-अरिष्ट बनाते समय सबसे पहले उनके मूलद्रव्यों की तरफ ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि पंसारी लोग असली द्रव्यों की जगह नकली द्रव्य बेचा करते हैं। जैसे अनन्तमूल, नेत्रबाला, सफेदमूसली, रास्ना, जीरास्याह, चव्य, अतीस, दालचीनी, मुसब्बर, कबाबचीनी, चिरायता, अशोक-छाल, सफेद चन्दन, दशमूल की चीजें, गजपीपल, कूठ, मधु, कस्तूरी, केसर आदि अक्सर नकली दे देते हैं। अत: इनको लेते समय पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए अन्यथा इन नकली चीजों द्वारा निर्मित आसव-अरिष्ट ही क्या कोई भी औषध गुणकारी नहीं होती। कुछ चीजें असली मिलने पर भी उनमें कुछ अंश में मिलावट रहती है। जैसे धनियां, सौंफ, अजवायन, जीरा स्याह और सफेद, धाय के फूल आदि। अत: इन्हें खूब साफ करके काम में लेना चाहिए। असली और नकली दोनों जिसमें मिली हों उसमें असली को अलग करके उपयोग में लेना सम्भव हो तब तो लें, अन्यथा उसे छोड़ देना ही उत्तम है।

स्वच्छता एवं तौल- कोई भी वनौषधि काम में लेने के पहले अच्छी तरह साफ कर लेनी चाहिए। तौलते समय ध्यान रखें कि उसके कांटे पर नमक, खटाई, नींबू-रस आदि न लगा हो। इसी तरह इमामदस्ता या डिसेन्टीग्रेटर आदि को जिसमें आसव-अरिष्ट का सामान कूटा-पीसा जायें उसे भी खूब साफ कर नमक आदि से रहित हो जाने पर ही दवाओं को कूटे-पीसें अन्यथा लवण या अम्ल संयोग से आसवारिष्टों में एसिड की मात्रा पैदा होने से बिगड़ जाने की संभावना रहती है।

पात्र एवं उसकी सफाई- क्वाथ बनाने के लिये पीतल या ताम्बे का कलईदार या स्टेनलेस स्टील का बर्तन लेना चाहिए। साधारण लोह पात्र में क्वाथ बनाने से रंग काला एवं स्वाद में भी अन्तर पड़ जाता है। एक आसवारिष्ट का क्वाथ समाप्त हो जाने के बाद सभी पात्रों को गरम पानी में छाई (राख) या सोडा मिलाकर बिचाली या चट (टाट) से अथवा चूने के पानी से ब्रुश से खूब रगड़ कर साफ करना चाहिए। बाद में दो-तीन बार साफ पानी से धोकर फिर उसमें दूसरा क्वाथ बनाना चाहिए। सन्धान के लिए प्रायः मिट्टी के पात्र, चीनी मिट्टी के पात्र, सीमेंट के होज या सागवान, साखू अथवा सीसम-काठ के बने पात्र काम में लिये जाते हैं।

यद्यपि मृत्तिका-पात्र में आसवारिष्ट बनाने की प्रथा है, जो सर्वथा उपयुक्त नहीं है, क्योंकि कभी-कभी दूषित, खारी और नमकयुक्त मिट्टी के बने पात्र में सन्धान करने से आसवारिष्ट खट्टे होकर खराब हो जाते हैं। इसके अलावा जमीन में पात्र को गाड़ने से कभी फूट कर बह जाने का तथा जमीन के ऊपर रखने से फूटने तथा सर्दी एवं गर्मी की अधिकता से सन्धान ठीक नहीं होने का भय रहता है और बहुत सा आसवीय अंश का शोषण भी हो जाता है।

सीमेंट के बने होज में भी कुछ दिनों तक आसव ठीक बनते हैं, परन्तु पुराने हो जाने पर या सीमेंट आदि की खराबी से सन्धान क्रिया की उष्णता से सीमेंट गलकर आसव में घुल जाता है, जिनसे आसव-अरिष्ट गाढ़े घोल जैसे एवं गन्दे हो जाते हैं तथा स्वाद में खराब एवं साफ भी नहीं होते, बल्कि कभी-कभी तो बोतलों में भरने या पात्र में पड़े रहने पर आसवारिष्ट जमकर खाक हो जाते हैं।

सागवान आदि काठ के बने पात्रों में उपरोक्त कोई दोष नहीं पाये जाते। इनमें बाहर की सर्दी या गर्मी का असर जल्दी नहीं होता तथा सन्धान भी ठीक से होता है और चिरकाल तक पड़े रहने पर धीरे-धीरे स्वच्छ होते जाते हैं। इसलिये काठ के पात्र ही आसवारिष्ट के लिये सबसे अधिक उपयोगी है, परन्तु यदि थोड़े परिमाण में बनाने हों और काष्ठपात्र की सुविधा न हो और मृत्तिका-पात्र ही लेना पड़े तो निम्न प्रकार के पात्र लें। नमक आदि रहित मृत्तिका का पात्र बनवाकर उसमें कुछ दिन जल भरा रहने दें, बाद में उसपर सीमेंट का मोटा लेप करके बाहर से मोटे चट को लपेट दें, अगर चट के अन्दर थोड़ी रूई या बिचाली काटकर भर दी जायें तो और भी उत्तम रहता है। भांड के भीतर राल या चपड़ा को स्प्रीट में गलाकर ५-७ बार लेप कर दें। जिससे सूक्ष्म छिद्र भी बन्द हो जायें। उसके बाद सन्धान करने से आसवारिष्ट का सन्धान ठीक होता है। काठ के पात्र बड़ी फार्मेसियों में रहते हैं। उन्हें देखकर तद्नुकूल बनवाना चाहिए।

पात्र रखने का स्थान- जहाँ अधिक शीतल हवा या गर्मी-लू अथवा प्रखर धूप का प्रवेश तथा कीड़े-मकोड़े-मच्छर, गन्दगी, अम्ल पदार्थ न हों, ऐसे स्वच्छ एवं साधारणतः वायु प्रदेश वाले स्थानों में पात्र रखना चाहिए। अधिक गर्मी से आसवीय कीटाणुओं के नष्ट हो जाने का एवं अधिक शीतलता के कारण खमीर न उठने से आसवारिष्ट ठीक तैयार नहीं होते। अतः कड़ी धूप अधिक गर्मी, अधिक ठण्डक बरसाती हवा से पात्र को सुरक्षित रखना चाहिए। पात्र रखने वाले स्थान को साफ रखना एवं उस स्थान पर धूप आदि देना चाहिए। काठ के पात्र को जमीन से २-

३ फुट ऊँचे स्थान या स्टैण्ड पर रखना चाहिए ताकि नीचे के स्थान की सफाई करने में दिक्कत न हो।

क्वाथ-द्रव्य- काष्ठादि वनौषधियों को जौ-कुटकर (मोटा-मोटा कूटकर) लेना चाहिए। बहुत महीन चूर्ण नहीं करना चाहिए अन्यथा आसवारिष्ट घोल जैसे गाढ़े बन जाते हैं, जिससे जल्दी साफ नहीं होते। पीसने का काम डिसेन्टीग्रेटर मशीन से बहुत जल्दी एवं ठीक होता है। बहुत सी वस्तुएं ऐसी होती हैं, जिन्हें केवल साफ करके ही लेना उत्तम है। जैसे- नागकेशर, सौंफ, अजवायन, खस, नीलोफर, तालीसपत्र, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, पटोलपत्र, गोरखमुंडी, शहतास आदि धान के फूल और मधूक पुष्प (महुआ) सर्वथा साफ करके ही डालना चाहिए।

जल और उसका परिणाम- जल लेते समय ध्यान रखना चाहिए कि जल खारा, गन्दा, कीटाणुयुक्त एवं अम्ल पदार्थ मिश्रित न हो, क्योंकि ऐसे जल में आसवारिष्ट न बन कर सिरका बन जाता है। अत: साफ, स्वच्छ एवं ठीक स्वादयुक्त जल ही काम मे लेना चाहिए। क्वाथ कर लेने पर जल का स्वत: पाक हो ही जाता है,लेकिन जिसका क्वाथ नहीं बनाते ऐसे आसवों में भी ग्रीष्म काल को छोड़कर अन्य ऋतुओं में जल को गरम कर लेना चाहिए, गरम कर लेने से जल के दूषित कीटाणुओं का नाश हो जाता है और सन्धान, क्रिया भी अच्छी तरह होती है। शीत ऋतु में ठंडे जल से सन्धान में विलम्ब होता है, यहाँ तक कि जाड़े में कभी-कभी सन्धान क्रिया उत्पन्न ही नहीं होती और मीठा जल अथवा क्वाथ ऐसे ही पड़े रह जाते हैं। कालान्तर में उनमें उष्णता पैदा होने से पुन: सन्धान क्रिया पैदा होती है, जिससे अगर बोतलों में भरा रहता है, तो बोतल फूट जाती है। पात्र में रहता है तो उसके भी फूटने या उफान आदि आने का भय रहता है।

प्राय: क्वाथ-द्रव्य से चतुर्गुण, अष्टगुण-सा इससे कम-बेशी भी जल देकर पकाकर उचित अवशिष्ट जल रहने पर मीठा आदि मिलाकर सन्धान किया जाता है। यह प्राचीन पद्धति है, परन्तु इस प्रकार से बनाये गये सभी आसव-अरिष्ट पूर्ण गुणकारी नहीं होते, कारण जिनके क्वाथ-द्रव्य में बहुत सी उड़नशील गुणयुक्त औषधियाँ रहती हैं इनका पाक करने पर बहुत अंश उड़ जाता हो, उन्हें खासकर तथा जिनमें न हों, उन्हें भी निम्न प्रकार से बनाने से विशेष गुणयुक्त आसवारिष्ट तैयार होते हैं। मैंने दोनों तरह से बनाया पर नीचे लिखी विधि ही उपयोगी साबित हुई।

क्वाथ द्रव्य को, जिसमें काष्ठादिक शुष्क वस्तुएँ ज्यादा हों, उन्हें चतुर्गुण तथा मृदु एवं सरस औषधियुक्त क्वाथ-द्रव्यवाली औषधि से द्विगुण गरम जल लेकर किसी कलईदार पात्र में भिगोकर रख लें। २४ घण्टे बाद खूब मसलकर छान लें और बाकी बचे हुए क्वाथ द्रव्य में त्रिगुण या चतुर्गुण जल देकर मन्दाग्नि पर पाक कर उचित अवशिष्ट जल रहने के बाद छान लें और पहले का बिना पका हुआ जल भी मिलाकर पूरा कर लें। नीचे की गाद छोड़ देनी चाहिए। बाद में उसमें गुड़, चीनी, मधु आदि मीठा तथा धाय फूल, बबूलछाल, महुआ आदि मिलाकर प्रक्षेप देकर सन्धान करें। इसी तरह के बनाये हुए अरिष्ट पूर्ण गुणकारी एवं स्वादयुक्त होते हैं। यह प्रक्रिया अरिष्ट बनाने के लिये है। आसव में तो स्वत: सम्पूर्ण द्रव्य महीने भर पड़े रहने से उसका सार तत्व सर्वांश में आ ही जाता है।

मीठा कब, कैसा और किस परिमाण में देना चाहिए?- मधु, गुड़, चीनी-ये तीनों चीजें आसवारिष्ट के घटक है। अगर इनमें खट्टापन, खारापन, गन्दापन आदि दोष होंगे तो उनके द्वारा निर्मित आसवारिष्ट शुक्त होकर तैयार होंगे, जिनका सेवन शास्त्र-विरुद्ध है, अत: खूब मधुर,

स्वच्छ, मीठा ही उपयोग में लाना चाहिए। बाजार में बिकने वाला मधु प्राय: दोषपूर्ण रहता है, अत: यदि लेना हो तो अपने खूब विश्वासी आदमी द्वारा निकाला हुआ मधु (शहद) लें, अगर ऐसा सम्भव न हो तो मधु की जगह पुराना गुड़ ही लेना उत्तम है।

शास्त्रों में किसी आसव में जल एवं मीठा ठीक-ठीक तथा किसी-किसी में अधिक तथा किसी में कम लिखा रहता है, तद्नुसार बनाने से कोई आसवारिष्ठ तो ठीक बनता है, कोई ज्यादा मीठा, कोई बिल्कुल कम मीठा होता है। कम-ज्यादा मीठा दोनों की आसवारिष्ट के गुण में बाधक हैं, अत: अगर जल कम है तो उसे द्रवद्वैगुण्य परिभाषानुसार बढ़ा देना चाहिए और मीठा कम हो तो जल का आधा भाग कर देना चाहिए, उदाहरणार्थ अश्वगन्धारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, अरविन्दासव, पत्रांगासव को ही लीजिये। उनमें यदि जल और मीठा का परिमाण शास्त्रानुकूल दिया जाये तो कोई बिल्कूल गाढ़ा, कोई मीठा और कोई खट्टा तैयार होता है।

क्वाथ बनाने के बाद तत्काल मीठा मिलाना चाहिए और उसे चट या कपड़े से छानकर ही पात्र में डालना चाहिए, क्योंकि गुड़ आदि चीजों में कंकड, पत्थर, कीड़े-चीटियाँ आदि बहुत सी दूषित चीजें मिली रहती हैं। छानने से वे सब दूर हो जाती हैं। एक-साथ सब मीठा न मिलाकर जितना मीठा देना अभीष्ट हो, उसका तीन भाग पहले मिलाकर सन्धान करें। बाकी एक भाग सन्धान-समाप्ति के बाद या छानने के बाद मिलाना चाहिए। इससे आसवों में मधुरता ठीक बनी रहती है और बिगड़ने का भय भी नहीं रहता है। एक साथ मिलाने से गाढ़ा होकर सन्धान क्रिया ठीक नहीं हो पाती है।

प्रक्षेपादि द्रव्य कब मिलाना?-सन्धान समाप्ति (खमीर उठना बन्द हो) के बाद एक प्रकार का मैल आसवारिष्टों के ऊपर जमा रहता है। इसे हटाकर आसवों को छानकर बाद में प्रक्षेपादि द्रव्य कुछ लोग मिलाते हैं, कुछ लोग मीठा मिलाने के बाद तत्काल प्रक्षेप मिलाते हैं। मैंने दोनों तरह से बनाया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मीठा मिलाने के कुछ समय के बाद ही प्रक्षेप-द्रव्य डालना चाहिए। ऐसा करने से बराबर चलाते रहने पर सन्धान समाप्ति तक सब प्रक्षेप द्रव्य धीरे-धीरे नीचे बैठ जाता है, जिससे उकसा पूरा अंश आसवों में आ जाता है। बिना ५-६ दिन खूब चलाये प्रक्षेप द्रव्य जल में अच्छी तरह भींगता नहीं, अत: प्रक्षेप डालने के बाद आसव-अरिष्ट को कुछ दिन रोज चलाते रहें, अगर सन्धान के बाद ५-६ दिन प्रक्षेप द्रव्य मिलाने के लिये पात्र का मुँह खुला रख कर चलाया जाय तो मद्यांश बहुत अंश में उड़ता रहता है और तुरन्त प्रक्षेप मिलाकर बन्द करने से प्रक्षेप सूखा रह जाने से गुण पूरा नहीं आता। अत: मीठा मिलाने के बाद सन्धान क्रिया चालू होने के बाद प्रक्षेप-द्रव्य मिलाना उत्तम है।

पात्र का मुँह खुला या बन्द रखना चाहिए- संधान के समय आसवारिष्ट के पात्र के पास कान लगाकर सुनने से सूँ-सूँ जैसी आवाज आती है और संधानित पात्र से एक प्रकार की तेज गन्ध जिसे 'कार्बोनिक गैस' कहते हैं, बाष्प रूप में बाहर निकलती रहती है। इसके न निकलने से आसवों में विकृति आती है। अगर पात्र का मुँह खुला रहता तब तो धीरे-धीरे विकार निकल जाता है और संधान क्रिया ठीक होती है। यदि पात्र का मुँह तत्काल बन्द कर दिया जाये, तो यह दूषित गैस बाहर न निकलकर बाष्प का द्रवरूप होकर पात्र के ढक्कन से टकराकर पुन: संधानित पात्र में ही गिरती है, जिससे पूरा मद्यांश न बनकर उसमें एसिड की मात्रा पैदा हो जाती है और छानने के बाद अम्लत्व-गुण विशिष्ट आसव तैयार मिलता है। कभी-कभी तो तत्काल बन्द कर देने से कार्बोनिक गैस का निस्सारण न होने से साधारण पात्र या मृत्तिका पात्र फूट भी जाते हैं। इसलिए संधान के समय पात्र के मुँह को बन्द कर के उसके मुँह के ऊपर स्वच्छ जालीदार कपड़ा

या हल्का चट बाँध देना चाहिए, जिससे छिद्रों द्वारा दूषित वायू भी निकल जाती है, और पात्र में किसी जीव-जन्तु आदि के गिरने का भय नहीं रहता। संधान समाप्ति के बाद तत्काल पात्र का मुँह कपड़-मिट्टी कर बन्द कर देना चाहिए। संधान समाप्त हुआ या नहीं यह तो नित्यप्रति चलाकर देखने से भी मालूम हो जाता है। लेकिन कभी-कभी अधिक ठण्डा आदि के कारण धीरे-धीरे खमीर उठता है, जिससे सूँ-सूँ की आवाज से साफ-साफ पता नहीं चलता। उस समय दिया सलाई या तेल की बत्ती आदि जलाकर पात्र के भीतर ले जाएँ अगर खमीर उठना बन्द न हुआ होगा, तो दियासलाई आदि बुझ जायेगी, किन्तु संधान-क्रिया समाप्त हो जाने पर नहीं बुझेगी। उस समय पात्र को खुला न रखें अन्यथा अल्कोहल (मद्यांश) उड़ने का भय रहता है। उसी समय ढक्कन लगाकर कपड़मिट्टी कर बन्द कर देना चाहिए।

पात्र पूरा भरा या खाली रहना चाहिए- जिसमें आसव-संधान क्रिया जायें या छानकर रखा जायें, वह पात्र लबालब भरा हुआ न रहना चाहिए, पात्र का तीन भाग दवा से पूर्ण एवं एक भाग खाली रखना चाहिए। खास कर सन्धान वाले पात्र को तो अवश्य खाली रखना चाहिए, क्योंकि प्रक्षेपादि द्रव्य के फूलने से, पात्र के खाली न रहने से फटने या उफान आकर बहने का भय रहता है। छने हुए आसवों के रखने वाले पात्र भी अगर कुछ खाली न रखे जायें, तो मद्यांश के उड़ने का भय रहता है। सन्धान के बाद तथा छानने के बाद पात्र के मुँह को खूब अच्छी तरह कपड़मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए ताकि आसवीय अंश उड़ने का भय न रहे।

आसवों को छानना- सन्धान-समाप्ति के १०-१५ दिन बाद आसवों को छानकर प्रक्षेपादि (कूड़ा) द्रव्य बाहर फेंक देना चाहिए। छानने के समय पात्र के अधोभाग में स्थित गाढ़ा घोल जैसा गन्दा भाग (जंगल) को हटा देना चाहिए, कारण उसे मिलाने से समूचा आसव गन्दा हो जाता है और उसमें आसवीय मद्यांश भाग भी बहुत थोड़ा रहता है। आसवों को बन्द पात्र में छानना चाहिए। खुले पात्र में छानने से वायु के लगने के कालापन दोष आ जाता है। जितनी जल्दी हो सके छानकर पात्र को बन्द कर देना चाहिए अन्यथा कभी-कभी उसमें वायु के प्रवेश से पुन: सन्धान क्रिया उत्पन्न हो जाती है। बिना छाने हुए पात्र से भी आसवारिष्ट काम के लिये जा सकते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया ठीक नहीं रहती, क्योंकि कभी-कभी सन्धान के समय कुछ असावधानी होने से मीठा भाग पात्र के तलस्थ भाग में जमा रह जाता है और ऊपर का भाग कम मीठा रहता है। उसमें से खर्च करने से कुछ भाग मीठा चला जाता है। कुछ कम मीठा होने पर उसमें अम्लता आदि उत्पन्न होने का भय हो या छानने के बाद मीठा मिलाना हो, तो बिना छाने कैसे ठीक हो सकता है? अत: छानकर ही उपयोग में लाना हर हालत में ठीक है। छानने से एक-सा सम्मिश्रित हो जाता है।

नोट- आसवों को छानने के बाद चखकर देंख लें। मिठास न हो तो आवश्यकतानुसार चीनी मिला लें। इससे आसवरिष्टों में मधुरता ठीक बनी रहती है और सुस्वादु बने रहते हैं तथा पीने में अरुचि भी नहीं होती है।

लौह मिश्रण- जिसमें लोहचूरा मिलाया जाता है, उनमें साबुत लोहचूरा देने से लोहा का सर्वांग नहीं घुलता, अत: लोहचूरा को घृतकुमारी-रस से भावित कर, पुट देकर भस्म बना लें। पश्चात् उस भस्म को बड़ी हरीतकी-क्वाथ या त्रिफला क्वाथ में डालकर धूप में ५-७ दिन रखकर चलाते रहें। बाद में लौह विलीन हो जाने पर आसवो में डालें। इस प्रकार से डाला हुआ

लोह का पूरा अंश आसव में आ जाता है।

आसवों में किण्व डालना- जिस तरह दूध में दही बनाने के लिये दूध को औंटाकर उसमें दही, नीम्बू-खटाई आदि अम्ल पदार्थ जामन देकर जमाते हैं, उसी तरह आसवरिष्ट में खमीर उठने के लिये धातुकीपुष्प, बबूलछाल व महुए का फूल डालते हैं। इनसे भी खमीर उठता है, लेकिन उसमें थोड़ा-सा सुराबीज प्रति एक मन आधा सेर के परिमाण में मिला दें, तो सोने में सुगन्ध हो जाये। किण्व के लिये जो आसव बनाने हो, उसी के (पहले बने हुये) तलस्थ भाग को सुखाकर रख लें। अगर प्रत्येक आसव की अलग-अलग गाद सुखानी सम्भव न हो तो द्राक्षासव के नीचे की गाढ़ी गाद को सुखाकर रख लें और उसी को प्रत्येक आसव में डालें। किण्व डालने से आसवों में आसवीय अंश पैदा करने वाले कीटाणुओं की संख्या अधिक बलवान हो जाने से अन्य एसिड आदि पैदा करने वाले कीटाणु उत्पन्न नहीं हो पाते हैं, जिससे शुद्ध आसव तैयार होते हैं, जो चिरकाल तक पड़े रहने से विशेष गुणकारी बनते जाते हैं, और बिगड़ने का भय भी नहीं रहता है।

सुगन्धित द्रव्य मिलाना- कस्तूरी, केसर, कर्पूर आदि को आसवरिष्टों के छानने के बाद जिसमें मिलाना हो, उसी आसव-अरिष्ट में अथवा एल्कोहल में या रेक्टीफायड स्प्रीट अथवा स्प्रीट क्लोरोफार्म में घोंटकर डालें। संधान के समय डालने से इनका कुछ अंश प्रक्षेप आदि में तथा कुछ गन्ध खमीर उठने के समय उत्ताप से नष्ट हो जाता है, इसलिए छानने के बाद उपरोक्त विधि से बनाकर रखे हुए आसव पात्र में या बोतलों में भरते समय मात्रानुसार डालें।

कुछ प्रमुख बातें- मुनक्का, घृतकुमारी आदि किस रूप में कैसा लेना चाहिए? मुनक्का काला, आबजूस, किशमिश आदि कई तरह के आते हैं। काला मुनक्का अन्य औषधियों के लिये तो श्रेष्ठ होता है, परन्तु उसमें अम्लता रहने से आसवों के काम लायक नहीं होता,यदि किसमिश मधुर हो, तो काम में ली जा सकती है, परन्तु आसवों के लिये आबजूस (बड़े-दाने का लाल मुनक्के) ही सर्वदा उपयुक्त होता है। बाजार में सड़े-गले रसरहित तरह-तरह के मुनक्का पाये जाते हैं। उन्हें कभी भी नहीं लेना चाहिए।

कुछ दिन पहले अमेरिकन मुनक्का के नाम से किशमिश की तरह, परन्तु बिल्कुल काला मुनक्का बहुत तादाद में आया था। उन दिनों आबजूस पाकिस्तान आदि के रास्ते से कम आने के कारण बाजार में बहुत कम मिलता था। उसके अभाव में इस अमेरिकन मुनक्का को कुछ लोगों ने काम में लाने का विचार किया। हमने भी उसे मंगाया और बना कर देखा, परन्तु वह किसी काम का नहीं निकला। रंग तो खराब था ही साथ ही स्वाद में अम्लता-प्रधान था। अभी बाजार में ऐसे मुनक्के मिलते हैं। वैद्यों को उन्हें कभी भी व्यवहार में नहीं लेना चाहिए।

मुनक्के का क्वाथ कर प्रायः द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट आदि बनाये जाते हैं। बहुत से आसवों में साबुत-सी(बिना क्वाथ कर) डालने का निर्देश पाया जाता है। हमने एक बार बिना क्वाथ किये थोड़ा-सा द्राक्षासव बनाया, जो रंग-रूप में सुन्दर एवं बिल्कुल साफ पारदर्शक जैसा मालूम होता था, जिसके सामने क्वाथ कर बनाया द्राक्षासव कभी भी पसन्द नहीं आ सकता, स्वाद में भी ठीक था, परन्तु धीरे-धीरे उसमें अम्लता आती गई और अन्त में बिल्कुल शुक्त रूप में परिणत हो गया। उसके बाद में हमने अन्य आसवों में भी जिनमें साबुत मुनक्का ही डालते थे, उनमें भी पका कर ही डालना शुरू किया। फलस्वरूप हमें उसका बहुत अच्छा असर मालूम पड़ा और जो आसव खट्टे हो जाते वह दोष फिर न हुआ। अतः मुनक्का को पकाकर डालना ही उत्तम है। कच्चा रसप्रधान द्रव्य एवं कच्चे स्वरस आदि से आसवारिष्ट ठीक नहीं बनते। गिलोय, पुनर्नवा,

धतूरपंचांग, वासक, ब्राह्मी, शतावर आदि के स्वरस या इन्हें कच्चा डालकर बनाने में आसवारिष्ट खट्टे तैयार होते हैं तथा कभी-कभी उनमें सफेद कीड़े भी पड़ते नजर आते है। अत: इसको सुखाकर ही काम मे लाना उपयुक्त है। घृतकुमारी रस को भी पकाकर काम में लाना चाहिए। पत्ते को छील कर गूदा निकालने में थोड़े परिमाण में तो किसी तरह बना सकते हैं, फिर भी बड़ी दिक्कत होती है और गूदा सहित संधान के लिये डाल दिया जायें तो छानने के बाद गूदा रूप में ही बहुत अंश निकल जाता है। अत: घृतकुमारी को धोकर टुकड़े करके कड़ाही में दुगुने जल में डालकर पकायें। आधा जल शेष रहने पर उतारकर हाथों से मसलकर रस निकालकर काम में लें।

इस तरह रस का पाक भी हो जाता है और रस भी ठीक निकल जाता है कुमारी आसव में लोह का मिश्रण किया जाता है, अत: लोह पात्र में उबालने में कोई हर्ज नहीं है। ऊपर तो मुनक्का एवं कच्चे रस वाली औषधियों के विषय में लिखा, परन्तु अन्य और भी कोई अम्ल गुण विशिष्ट वस्तु जैसे आमला कैथ आदि अगर आसवारिष्ट के क्वाथ द्रव्यों में हो तो उन्हें भी छोड़ देना चाहिए।

आसवों का स्वच्छ होना- गुण-धर्म के अलावा आसवों का स्वच्छ होना भी बहुत महत्व रखता है। स्वच्छता (निर्मलता)के लिये आसवों को साफ एवं पुराना होना जरूरी है। नये आसवों में फिल्टर बैग, रिफाइन करने की मशीन आदि से छानने के बाद भी कुछ दिन बोतलों के तलस्थ भाग में गाद बैठ जाती है और ऊपर स्वच्छ आसव दिखाई पड़ता है। आसवों का पुराना होना ही स्वच्छता के लिये जरूरी है। पुराना होने पर धीरे-धीरे गाद नीचे टंकियों में बैठ जाती है और स्वच्छ मद्यांशयुक्त भाग ऊपर रह जाता है, फिर उसे साधारण कपड़े से भी छान लें तो आसव स्वच्छ गाद रहित पारदर्शक रहेगा।

आसवों की परीक्षा- आसवों को छानने के बाद बोतल में भरकर कार्क लगाकर खूब हिलायें और कान के पास बोतल का मुँह लगाकर कार्क खोलें। अगर आसव कच्चा होगा और उसमें कार्बन गैस या एसिड पैदा हो रही होगी तो बोतल के मुँह से जोर की आवाज निकलेगी और बोतल फेन से भर जायेगी। कभी-कभी तो बोतल से बाहर आसव बहने लगता है। अगर ज्यादा दोष होगा, तो बोतल हिलाने के बाद अपने आप कार्क उड़ जायेगा या बोतल कमजोर रही तो फूट जायेगी। अच्छी तरह बने आसवों में उपरोक्त बातें नहीं पायी जातीं। उनको बोतल में भर कर हिलाने के बाद कार्क खोलने से आवाज नहीं आती तथा फेन जल्दी बैठ जाता है।

कभी-कभी सूक्ष्म दोष रहने पर इस तरह परीक्षा करके देखने पर भी साफ नहीं मालूम होता। अत: बोतल में आसव भरकर कार्क लगाकर धूप में रख दें। कुछ देर बाद, उसमें उष्णता आने से अपने आप कार्क फेंक देगा और कभी-कभी आसव बोतल से बाहर निकलना शुरू हो जायेगा। इस तरह के आसवों को काम में नहीं लेना चाहिए। जिस पात्र में ऐसा आसव हो उसका मुख खोलकर सलाई जलाकर देखें अगर बुझ जायें, तो उसे ५-७ दिन मुख पर पतला कपड़ा या चट बाँधकर खुला रहने दें और देखते रहें। जब सलाई न बुझें, तब उसे बन्द कर दें और २-३ महीना पड़ा रहने के बाद काम में लें। अगर उसमें मधुरता कम हो, तो ऊपर से उचित मीठा और मिला दें। अच्छी तरह बने आसव मधुर एवं गुणयुक्त होते हैं और उसके पीने से बदन में स्फूर्ति एवं चित्त में प्रसन्नता रहती है। इसके विपरीत कच्चे एवं अम्लतायुक्त आसव पीने से चित्त में उद्विग्नता और बदन में लहर पैदा होती है। ऐसे आसवों को व्यवहार में नहीं लेना चाहिए।

आसवों को बोतलों में भरते समय बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। प्रायः आसवों को पात्र के लगे हुए नल से सीधे बोतलों में भरना चाहिए। भरते समय बोतलों के मुँह पर महीन जाली या मोटा कपड़ा लगी हुई कूपी रख लेनी चाहिए, ताकि कोई दूषित वस्तु बोतल के भीतर न जा सके। पात्र के नल में फिल्टर बैग लटका देना चाहिए। अगर सीधे नल से भरने में सुविधा न हो या दूसरे स्थान पर ले जाकर भरना हो तो छोटे-छोटे पीतल या ताँबे के कलईदार बर्तन अथवा एनामेल के कलईदार या स्टेनलेसस्टील के बर्तन जिसके मुँह पर चुड़ीदार ढक्कन लगा हो उसमें नल लगवा लें, और भरे हुए, आसव के पात्र में फिल्टर बैग लगाकर इस प्रकार के बर्तन में भर लें और भरने के बाद पात्र को ढाँक कर किसी डेढ़-दो फीट ऊँचे स्थान पर रखकर उसमें लगे नल के द्वारा बोतलों को खूब धोकर, सुखाकर ही उसमें आसव भरें, अगर बोतलों में कुछ पानी की बूँदे रहेंगी, तो कुछ दिन बाद उसका आसव विकृत हो, बोतल फूटने का भय रहेगा। बोतलों को खूब लबालब नहीं भरना चाहिए। कुछ भाग खाली रखना चाहिए, अन्यथा आसवों में जोश आने से बोतलों के फूटने या कार्क के खुलने का भय रहता है।

आसवों के सामान्य गुण- पाचनशक्ति को बढ़ाकर खाए हुए पदार्थों को हजम करना, पेट में रुकी हुई वायु का अनुलोमन कर दस्त साफ लाना, शरीर में स्फूर्ति पैदा करना, पेशाब उचित मात्रा में और खुलकर होना, मूत्र की विकृति दूर करना इत्यादि।

नये और पुराने आसवारिष्ट- आसवारिष्ट यदि ठीक विधि से बनाये गये हों तो वे कभी भी बिगड़ नहीं सकते, बल्कि रखे रहने पर पुराने होकर और भी गुणवृद्धि करते हैं यह अनुभव और शास्त्र सिद्ध बात है। आसवारिष्ट जितने पुराने होते हैं, उतने ही रुचिकर, जायकेदार, शीघ्र गुणकारी और तेज होते हैं, कारण नये आसवों में दवाओं की मिलावट से उत्पन्न होने वाले गुण अच्छी तरह प्रकट नहीं हो पाते, अतः लाभ कम होता है, पुराने आसवों में गुणों की बराबर वृद्धि होती है।

आसवारिष्ट लेने की मात्रा और अनुपान- पुराने आसवारिष्ट में अधिकता तीक्ष्णता उत्पन्न हो जाती है। अतः आसवारिष्ट अकेला न लेकर बड़े या बच्चों को भी समान भाग पानी मिलाकर सेवन कराना चाहिए। बड़े और बलवान मनुष्यों को २ से ४ तोला तक, कमजोर को १।। तोला तक, बच्चे को ३ से ६ माशे तक और दूध पीने वाले बच्चे को १५ से ३० बूँद तक आसवारिष्ट देना चाहिए।

आसव-सेवन के विधान- आसवारिष्ट सेवन करते समय पानी बराबर दुगुनी मात्रा में मिलाना चाहिए। आसवारिष्ट इस तरह से पीयें कि वे लगकर गले से सीधे पेट में पहुँच जायें।

पथ्यापथ्य- जिस रोग-विनाश के लिये आसवारिष्ट का सेवन किया जायें, उस रोग में बताये हुए पथ्य का ही सेवन करना अच्छा है। यदि स्वस्थावस्था में अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिये आसवारिष्ट का सेवन किया जायें, तो स्निग्ध (घी, दूध आदि) और पौष्टिक पदार्थों का सेवन करें, क्योंकि आसवारिष्ट के प्रभाव से अन्नादि शीघ्र ही पच जाते हैं।

अंगूरासव

लौंग, जायफल, जावित्री, नागकेसर, कंकोल, शीतल चीनी, पीपल, पीपलामूल, रेणूका, सफेद इलायची अकरकरा, सोंठ, कालीमिर्च, मुलेठी, असगन्ध, दालचीनी, शतावर, सफेद मूसली, उटंगन के बीज, तेजपात- प्रत्येक ३-३ तोला, बबूल की छाल ५ तोला, कंचनार की छाल ५ तोला, छुहारा आधा सेर, सुपारी १ पाव, पिस्ता १ पाव, चिरौंजी आधा सेर, बादाम की

मींगी आधा सेर, अंगूर ५ सेर, नाशपाती २।। सेर, सेब २।। सेर, अनार २।। सेर, संतरा १।। सेर, शहद २ सेर, केसर १ तोला, कस्तुरी ३ माशे, धाय के फूल आधा सेर, चीनी ४ सेर, जल २५ सेर लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों को जौकूट चूर्ण करें एवं केसर और कस्तूरी को आसव बन जाने के बाद रेक्टीफाइड स्पिरिट में छोटे टुकड़े करके मिलावें। पश्चात् जलसहित सब द्रव्य घृतलिप्त पात्र में भर दें और १।। मास तक सन्धान करें। १।। मास बाद निकालकर छानकर के सुरक्षित रख लें।-बृ. आसवारिष्ट संग्रह

मात्रा और अनुपान- १। तोले से २।। तोला तक, सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर पिलायें।

गुण और उपयोग- बादाम, पिस्ता, चिरौंजी, अनार, सेव, सन्तरा, अंगूर आदि उत्तमोत्तम द्रव्यों से निर्मित यह आसव अत्यन्त बाजीकरण, बलवर्द्धक और पुष्टिकर है। यह मन्दाग्नि को नष्ट कर क्षुधा की वृद्धि करता है। रस-रक्त, मांस आदि सप्तधातुओं की वृद्धि करता है। शरीर में स्फुर्ति उत्पन्न कर नवीन शुद्ध रक्त निर्माण करता है एवं हृदय-बलवर्द्धक, प्रसन्नताकारक और वीर्यवर्द्धक है। मस्तिष्क की निर्बलता को नष्ट कर स्मरणशक्ति को बढ़ाता है और फेफड़ों को ताकत देता है।

अभयारिष्ट

काढ़ा बनाने की औषधियाँ- बड़ी हर्रे का छिलका ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, महुए के फूल ४० तोला, वायविडंग ४० तोला लें तथा कूटने योग्य चीजों का जौकुट चूर्ण करें।

क्वाथ के लिये जल- उपरोक्त दवाओं को एक मन ११ सेर १६ तोला पानी में डालकर पकायें। चौथाई जल शेष रहने पर शीतल कर छान लें।

प्रक्षेप- इसमें ८ सेर गुड़ घोल दें। बाद में छोटा गोखरू, निशोथ, धनियां, धाय का फूल, इन्द्रायण की जड़, चव्य, सोंठ, दन्तीमूल और मोचरस प्रत्येक ८-८ तोला लेकर मोटा चूर्ण करें और इसमें डाल दें।

सन्धान- किसी चिकने और बड़े बर्तन में डालकर सन्धान कर दें। एक मास बाद निकाल कर छान लें।

वक्तव्य- इसमें हर्रे का छिलका अत्यन्त कषाय द्रव्य होने से ५ सेर गुड़ से मधुरता ठीक नहीं होती और मधुरता की कमी से अरिष्ट उत्तम नहीं बनता। अतः गुड़ का परिमाण ५ सेर के स्थान पर ८ सेर किया गया है। इससे अच्छा बनता है, ऐसा हमारा अनुभव है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला, प्रातः और सायं भोजन के बाद जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- रोग और रोगी का बल, रोगी की अग्नि (पाचक-शक्ति) और कोष्ठ का विचार कर उचित मात्रा में इसका सेवन करने से बवासीर और आठ प्रकार के उदर रोग नष्ट होते हैं। यह मल-मूत्र की रुकावट को दूर करता है और अग्नि को भी बढ़ाता है।

अभयारिष्ट- साधारण रेचक और पाचक तथा बद्धकोष्ठ (कब्जियत) को दूर करने वाला है। इसके अतिरिक्त सब प्रकार के अर्श (बवासीर), उदररोग, मन्दाग्नि, मूत्राघात, यकृत, गुल्म और हृद्रोग का नाश करता है।

यह जमालगोटे जैसी रेचक (दस्तावर) नहीं हैं। जमालगोटे से जो दस्त (रेचक) होते हैं, उसमें आँतों की क्रिया शिथिल (निर्बल) हो जाती है, उससे विरेचन के बाद आँतों में पुनः मल संचय होने लगता और उससे दूषित गैस उत्पन्न हो अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अभयारिष्ट द्वारा जो दस्त होते हैं उसमें आँतें कमजोर न होकर सबल बनी रहती हैं, जिससे दूषित मल संचय नहीं होता है।

इसका उपयोग विशेषकर अर्श (बवासीर) के रोग में किया जाता है। बवासीर बहुत ही परेशान करने वाली बीमारी है। इससे मस्सों में दर्द बहुत जोर का होता है। इस दर्द को शान्त करने के लिये अर्शकुठार, बोलबद्ध रस, कामदुधा रस, सूरण बटक आदि के सेवन से किसी एक दवा का सेवन करने के उपरान्त जब दर्द का जोर कम हो, तब अभयारिष्ट के सेवन से बहुत फायदा होता है, क्योंकि बवासीर में दस्त कब्ज हो जाना प्रधान लक्षण है। दस्त कब्ज होने के कारण जोर लगाने (कींछने) से और भी दर्द होता है, उस कब्जियत को यह बहुत शीघ्र दूर कर देता है साथ सूजन को भी दूर करता है। बवासीर का सन्देह होते ही अथवा प्रारम्भिक अवस्था में (दर्द होने से पहले) ही यदि अभयारिष्ट का सेवन करा दिया जायें, तो यह रोग आगे न बढ़कर वहीं रुक जाता है।

उदर रोग में मन्दाग्नि बहुत भयंकर और दुखदायी रोग है। यदि मन्दाग्नि के कारण मल संचय होकर दस्त कब्ज (बद्धकोष्ठ) हो गया हो, तो इच्छाभेदी, अश्वकंचुकी आदि दवा का उपयोग करना चाहिए, परन्तु इनमें जमालगोटे का मिश्रण होने से कुछ हानि होने का डर रहता है। अतएव, अभयारिष्ट में बराबर कुमार्यासव मिला कर लेने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह मल और मूत्र को साफ करके अग्नि (जठराग्नि) को बढ़ाता है, उदर के रोगों को नष्ट करता है और पाचक-रस की उत्पत्ति कर अन्न को पचाने की शक्ति पैदा करता है।

अमृतारिष्ट

क्वाथ द्रव्य- गिलोय ५ सेर के छोटे-छोटे टुकड़े कर लें और दशमूल (बेल की छाल, अरणी, अरलू की छाल, गम्भारी की छाल, पाढल की छाल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू) ५ सेर लेकर जौकुट चूर्ण कर लें।

क्वाथ- इन्हें २ मन २२ सेर ३२ तोला पानी में डाल कर पकायें, २।। सेर ८ तोला पानी शेष रहने पर उतारकर छान लें।

प्रक्षेप द्रव्य- इस क्वाथ में ५ सेर गुड़ घोल दें, बाद में धायफूल ३२ तोला, सफेद जीरा ६४ तोला, पित्तपापड़ा ८ तोला, सप्तपर्ण की छाल, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, नागकेसर, कुटकी, अतीस, इन्द्रजौ-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण बना, क्वाथ में डाल दें।

सन्धान- इसे चिकने पात्र में डालकर सन्धान कर दें, १ मास बाद छानकर काम में लायें।

वक्तव्य- इस रोग में द्रवद्वैगुण्य परिभाषा से जल का परिमाण द्विगुण लिया है एवं मूल पाठ में धायफूल न होने से सन्धान क्रिया ठीक नहीं हो पाती है। अत: हमने ३२ तोला धायफूल बढ़ाए है। इस प्रकार बनाने से उत्तम बनता है, ऐसा हमारा अनुभव है।

मात्रा और अनुपान- १।। तोला से २।। तोला बराबर जल मिलाकर, भोजन के बाद दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- अमृतारिष्ट के सेवन करने से पुराना ज्वर आने से हुई निर्बलता, विषम ज्वर (सतत, सन्तत, एक दिन, दो दिन, तीन दिन के बाद में आने वाला ज्वर), रस-रक्तादि धातुगत ज्वर, प्लीहा और यकृतजन्य ज्वर, पाण्डु, कामला तथा बार-बार छूट कर होने वाले ज्वर दूर होते हैं।

अधिक दिन तक जाड़ा देकर आने वाले ज्वरों में प्लीहा और यकृत की वृद्धि हो जाने से ज्वर का प्रकोप विशेष हो जाता है और मन्दाग्नि, भूख न लगना, शरीर में रक्त की कमी, दुर्बलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में अमृतारिष्ट अमृत के समान गुण करता है। इसके साथ में सुदर्शन चूर्ण का भी उपयोग करना चाहिए, इससे रोगी बहुत शीघ्र नीरोग हो जाता है।

अमृतारिष्ट में गुर्च की प्रधानता है, अतः इसके गुण भी इसमें अधिक पाये जाते हैं, इसलिये मूत्राशय की कमजोरी के कारण यदि बार-बार पेशाब करने की शिकायत हो गयी हों, तो यह उसे भी दूर करता है। सूजाक और उपदंश रोगों में भी यह सौम्य तथा रक्त-शोधक गुण-युक्त होने के कारण दिया जाता है।

जीर्णज्वर (पुराना ज्वर) के कारण मन्दाग्नि हो जाती, जिससे रस-रक्तादि धातुएँ ठीक और उचित परिमाण (मात्रा) में नहीं बनती हैं। अतएव शरीर में रक्त की कमी हो जाने के कारण देह पीली (पाण्डू रंग की) हो जाती है। यकृत-प्लीहा की वृद्धि हो जाने से पित्त का स्राव अच्छी तरह नहीं होता, अतएव पेट में दर्द, अन्न नहीं पचना, पेट में आवाज होना, वायु का संचार नहीं होना आदि उपद्रव हो जाते हैं, पतले दस्त भी आने लग जाते हैं। ऐसी हालत में अमृतारिष्ट के सेवन से शीघ्र लाभ देखा गया है, क्योंकि इसका प्रभाव प्रथम आमाशय पर होता है। यह पाचक पित्त को उत्तेजित कर पाचन क्रिया को ठीक करता तथा भूख की वृद्धि करता है। साथ ही रंज पित्त को भी जागृत कर रक्त-कणों की वृद्धि करते हुए शरीर की कान्ति अच्छी बना देता है और यकृत प्लीहा की वृद्धि को रोककर उसे नीरोग बना देता है।

प्रसूत ज्वर में इसका उपयोग किया जाता है। यद्यपि प्रसूत ज्वर में दशमूलारिष्ट का उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है, फिर भी पित्तप्रधान प्रसूत ज्वर में जिसमें हाथ-पाँव में जलन हो, पेट में दाह, प्यास ज्यादा लगे, कभी-कभी चक्कर आने लगे, ज्वर की गर्मी बढ़ी हुई रहती हो, शीतल पदार्थ से विशेष प्रेम हो, ऐसी दशा में इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह पित्तशामक और पौष्टिक भी है। ज्वरघ्नता तो इसका प्रधान गुण है। इसके साथ में सूतिकाविनोद रस या प्रतापलंकेश्वर रस आदि का भी यदि उपयोग किया जायें, तो यह विशेष गुणदायक हो जाता है। सौम्य होने से रसरक्तादि धातुओं में किसी भी कारण से बढ़ी हुई उष्णता को शमन करता है एवं जीर्ण ज्वर को तो जड़ से ही मिटा देता है।

अर्जुनारिष्ट

क्वाथ द्रव्य- अर्जुन छाल ६००० ग्राम के छोटे-छोटे टुकड़े कर लें और मुनक्का ३००० ग्राम, मधुप पुष्प १२०० ग्राम और जल ६१४४० मि.लि. में डालकर पकायें, जल १५३६० मि.लि. शेष रहने पर उतारकर छान लें।

प्रक्षेप द्रव्य- इस क्वाथ में धाय के फूल १२०० ग्राम और गुड़ ६००० ग्राम डाल दें।

सन्धान- इसे चिकने पात्र में डालकर सन्धान कर दें। एक माह बाद छानकर काम में लायें।

गुण और उपयोग- शरीर में वायु अधिक हो जाने के कारण हृदय धड़कता है और शरीर में पसीना आने लगता है, मुँह सूख जाता है, नींद कम आती है, बेचैनी रहती है, शरीर में रक्त-संचार ठीक से नहीं होता, मन घबराता है और रोगी की मृत्यु-भय सताने लगता है। ऐसी स्थिति में बैद्यनाथ अर्जुनारिष्ट का व्यवहार बहुत ही लाभदायक सिद्ध होता है। रोगी शीघ्र अपने को आरोग्य समझता है। -भैषज्यरत्नावली

अरविन्दासव

कमल के फूल, खस, गम्भारी फल, नीलकमल, मंजीठ, इलायची, खरेंटी, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, हर्रे, बहेड़ा, बच, आँवला, कचूर, कालीनिशोथ, नीली-मूल, परवल के पत्ते, पित्तपापड़ा, अर्जुन की छाल, मुलेठी, महुए के फूल, मुरामांसी-प्रत्येक को ४-४ तोला लेकर मोटा चूर्ण बना लें और मुनक्का १ सेर तथा धाय के फूल ३४ तोला लें।

सन्धन- चिकने मिट्टी के पात्र में २५।। सेर ८ तोला जल डालकर उसमें १० सेर उत्तम चीनी और शहद (अभाव में पुराना गुड़) ५ सेर डालकर घोल दें। सन्धान-क्रिया चालू होने के पश्चात् उपरोक्त चूर्ण, मुनक्का, धायफूल मिला दें। फिर १ मास तक (तैयार होने तक) रखा रहने दें। पश्चात् छानकर स्वच्छ काठ की टंकी, इमरतबान या बोतलों में भरकर डाट (ढक्कन) लगाकर रख दें। -भै.र. से किंचित् परिवर्तित।

मात्रा और अनुपान- छोटे बच्चों को २ से ४ माशे तक और बड़ों को १ से १।। तोला तक बराबर जल के साथ देना चाहिए।

गुण और उपयोग- अरविन्दासव बच्चों के सब रोगों को दूर करता, बल और अग्नि को बढ़ाता एवं शरीर को पुष्ट करता है। यह आयु बढ़ाने वाला तथा बालग्रहों को दूर करने वाला है।

अरविन्दासव बच्चों को कमल की तरह अच्छा, कान्तिमान और प्रसन्न बना देता है। बच्चों के सब रोगों में इसका उपयोग किया जाता है, विशेषकर यह सूखा रोग (बालशोष) में बहुत फायदा करता है। यह रोग माता के दूध की खराबी के कारण होता है। इसमें पहले कफ की वृद्धि, ज्वर, खाँसी, पतले दस्त होना आदि उपद्रव होने के बाद बच्चा धीरे-धीरे सूखने लगता है। इसके चूतड़ की खाल लटक जाती है, शरीर की हड्डी उभर आती है और कान्ति नष्ट हो जाती है। हड्डियाँ इतनी कमजोर हो जाती हैं कि बच्चा खड़ा नहीं हो सकता, चल-फिर भी नहीं सकता, बार-बार रोता ही रहता है तथा स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। यह अवस्था नाजुक बच्चों के लिये बहुत कष्टकर होती है। ऐसी हालत में अरविन्दासव के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। किन्तु इसके साथ-साथ प्रवाल (चन्द्रपुटी) भस्म और स्वर्ण मालती बसन्त का मिश्रण देते रहना उत्तम है, क्योंकि, यह हड्डी को कड़ा कर देता है और हृदय को ताकत पहुँचाता है। इससे रक्त की वृद्धि जल्दी हो जाती है, जिससे शरीर कान्तिमान हो जाता है, साथ ही उपरोक्त उपद्रव भी क्रमशः शान्त हो जाते हैं।

पित्त की विकृति और मूत्र में जलन, बूँद-बूँद पेशाब होना,पेशाब करते समय दर्द, जलन आदि उपद्रव होना, स्त्रियों के प्रदर रोग, श्वेतप्रदर आदि रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

वक्तव्य- इस योग में ग्रंथ के मूल पाठानुसार चीनी ५ सेर और शहद २।। सेर है, किन्तु इतना ही डालकर बनाने से सब खट्टा बनता है। अतः चीनी १० सेर और शहद ५ सेर किया गया है। इससे यह उत्तम बनता है। कुछ लोग काश्मर्य शब्द का अर्थ केसर भी करते हैं, किन्तु यथार्थ अर्थ गम्भारीफल ही होता है।

अशोकारिष्ट

अशोक की छाल ५ सेर को जौकुट कर अच्छे ताँबे या पीतल के कलईदार बर्तन में १ मन ११ सेर १६ तोला जल में डालकर मन्दाग्नि से क्वाथ बनायें। जब चतुर्थांश जल १२।।। सेर ४

तोला बाकी रहे, तब उतारकर कपड़े से छान लें। ठण्डा हो जाने पर उसमें १० सेर गुड़ मिलायें
पश्चात् भांड या उत्तम काठ की टंकी में डालकर उसमें धाय के फूल ६४ तोला, स्याहजीरा,
नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, नीलोफर, हरड़, बहेड़ा, आमला, आम की मींगी, सफेद जीरा,
वासक मूल और सफेद चन्दन-प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला मिलाकर, यथाविधि सन्धान करके १
माह के बाद (तैयार होने पर) छानकर रख लें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- १।। तोला से २।। तोला समभाग जल मिलाकर भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- स्त्रियों को होने वाले प्रमुख रोग यथा- रक्त-श्वेत प्रदर, पीड़ितार्तव,
पाण्डु, गर्भाशय व योनि भ्रंश, डिंम्बकोष, प्रदाह, हिस्टीरिया, वन्ध्यापन तथा ज्वर, रक्तपित्त,
अर्श, मन्दाग्नि, सूजन, अरुचि इत्यादि रोगों को नष्ट करता है।

अशोकारिष्ट में अशोक की छाल की ही प्रधानता है। अशोक की कई जातियाँ होती हैं। इनमें
एक जाति के पत्ते रामफल के समान, फूल नारंगी के रंग के होते हैं, जो बसंत ऋतु में खिलते हैं,
इसको लैटिन में 'जौनेसिया अशोक' कहते हैं, और यही असली अशोक है। अशोकारिष्ट के
लिये इसी अशोक की छाल लेनी चाहिए। यद्यपि शास्त्र में 'अशोकस्य तुलामेका चदुर्द्रोणे जले
पचेत्' इतना ही लिखा है, वहाँ स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि किस जाति के अशोक की छाल लें,
परन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ है कि उपरोक्त अशोक छाल द्वारा निर्मित अशोकारिष्ट जितना
गुणकारक होता है, उतना अन्य जाति के अशोक-छाल द्वारा निर्मित अशोकारिष्ट गुणकारी नहीं
होता है। उपरोक्त अशोक बंगाल में बहुत मिलता है। अस्तु।

अशोक मधुर, शीतल, अस्थि को जोड़ने वाला, सुगन्धित, कृमि-नाशक, कसैला, देह की
कान्ति बढ़ाने वाला, स्त्रियों के रोग दूर करने वाला, मलशोधक, पित्त, दाह, श्रम, उदररोग शूल,
विष, बवासीर, अपच और रक्त-रोगनाशक है।

डॉक्टरों ने भी अशोक का रासायनिक विश्लेषण करके देखा है। इसके अन्दर का अल्कोहोलिक
एक्सट्रेक्ट गरम पानी के अन्दर घुलने वाला है। इसमें टेनिन की मात्रा काफी पायी गयी है और
एक इस प्रकार का प्राणिवर्ग से सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ पाया गया, जिसमें लोहे की मात्रा
काफी थी। इसमें-अल्केलाइड और एसेनशियल ऑयल की मात्रा बिलकुल नहीं पायी गयी।
अशोक के विषय में प्राय: प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाक्टरों का मत है, कि अशोक की छाल बहुत सख्त
ग्राही है, क्योंकि उसमें टेनिन एसिड रहता है।

वास्तव में अशोकारिष्ट स्त्रियों का परम मित्र है, इसका कार्य गर्भाशय को बलवान बनाना
होता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न होने वाले अत्यार्तव-विकार में इसका उत्तम उपयोग
होता है। गर्भाशय के भीतर के आवरण में विकृति, बीजवाहिनियों की विकृति, गर्भाशय के मुख
पर योनिमार्ग में या गर्भाशय के भीतर या बाहर व्रण हो जाता है आदि कारणों से अत्यार्तव रोग
उत्पन्न होता है। इसमें अशोकारिष्ट के उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

कितनी ही स्त्रियों को मासिक धर्म आने पर उदर पीड़ा की आदत पड़ जाती है, जिसे
पीड़ितार्तव या कष्टार्तव कहते हैं- इस रोग में मुख्यत: बीजवाहिनी और बीजाशय की विकृति
कारण होती है। कितनी ही रूग्णों को तीव्र रूप में पीड़ा होती है, कमर में भयंकर दर्द, सिर-दर्द,
वमन आदि लक्षण होते हैं। इस विकार में अशोकारिष्ट उत्तम कार्य करता है।

प्रदर रोग-मद्यपान, अजीर्ण, गर्भस्राव, गर्भपात, अति मैथुन, कमजोरी में परिश्रम, चिन्ता,
अधिक उपवास, गुप्तांगों का आघात, दिवाशयन आदि से स्त्रियों का पित्त दूषित होकर पतला
और अम्लरसप्रधान हो जाता है, वह खून को भी वैसा बना डालता है। फलत: शरीर में दर्द,

कटिशूल, सिर-दर्द, कब्ज तथा बेचैनी आरम्भ हो जाती है। साथ ही योनिद्वार से चिकना, लस्सेदार, सफेदी लिए चावल के धोवन के समान, पीला-नीला-काला, रूक्ष, लाल, झागदार मांस के धोवन के समान रक्त गिरने लगता है। रोग पुराना हो जाने पर उसमें दुर्गंध निकलने लगती है, और रक्तस्राव मज्जामिश्रित भी हो जाता है। ऐसा हो जाता है कि चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम खून जारी रहता है, कोई अच्छा कपड़ा पहनना कठिन हो जाता हैं। कभी-कभी खून के बड़े-बड़े जमें हुए कलेजे के समान टुकड़े गिरने लगते हैं। इस अवस्था में खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना सब मुश्किल हो जाता है। यह हालत लगातार महीनों तक चलती है। कभी-कभी किसी उपचार या अधिक रक्ताभाव से कुछ दिन के लिए खून का वेग बन्द भी हो जाता है। परन्तु फिर वही हालत हो जाती है। इस प्रकार तमाम शरीर का रक्त गिर जाता है और शरीर बिल्कुल रक्तहीन हो जाता है। पाचन शक्ति बिल्कुल खराब हो जाती है, अतः नया रक्त भी नहीं बन पाता है। अशोकारिष्ट उपरोक्त उपद्रवों को दूर कर, शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए अपूर्व गुणकारी दवा है।

इसी तरह श्वेत प्रदर में रक्त की जगह सफेद, गाढ़ा और लस्सेदार पानी गिरता है। इसकी उत्पत्ति के दो स्थान हैं-योनि की श्लैष्मिक कला तथा गर्भाशय की भीतरी दीवाल, यह रस इसी कला या त्वचा में बनता और निकलता रहता है। थोड़ा-बहुत रस तो यह त्वचा बनाती ही रहती है, जो योनि को तर रखने के लिए आवश्यक भी है, किन्तु अधिक सहवास के कारण इस स्थान में विकृति पैदा हो जाने से यह रस अधिकता से बनने लगता है, और फिर योनिमार्ग से सदा सफेद, लस्सेदार पदार्थ गिरता रहता है। पहले तो गन्धरहित, फिर दुर्गंधयुक्त स्राव होने लगता है और पीड़ा भी धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। इस रोग में भी वे सभी उपद्रव होते हैं, जो रक्त-प्रदर में होते हैं। अशोकारिष्ट का सेवन इन उपद्रवों को दूर करने के लिए बहुत प्रसिद्ध दवा है।

पीड़ितार्तव में मन्द ज्वर होता है। मासिक धर्म बड़े कष्ट से और कम आता है, कमर, पीठ, पार्श्व आदि सभी अंगों में बहुत दर्द होता है। पेशाब भी बड़े कष्ट से उतरता है। इस रोग में सब से अधिक पीड़ा बस्ति-स्थान (पेडू) में होती है, इससे मुक्त होने के लिये अशोकारिष्ट अवश्य सेवन करना चाहिए।

गर्भाशय भ्रंश या योनि भ्रंश में- मैथुन क्रिया का ज्ञान नहीं रहने के कारण या कामोन्मादवश मूर्खतापूर्ण ढंग से मैथुन करने पर गर्भाशय तथा योनि दोनों अपने स्थान से हट जाते हैं। गर्भाशय तो भीतर ही टेढ़ा होकर नाना प्रकार की पीड़ा का कारण बनता है और योनि बाहर निकल आती है या बार-बार बाहर भीतर आती जाती रहती है। इसके साथ पेडू और कमर में दर्द होना, पेशाब करने में दर्द होना, श्वेत-प्रदर का जोर होना तथा मासिक धर्म कम होना या बिल्कूल बन्द हो जाना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी स्थिति में अशोकारिष्ट का तो सेवन करावें ही साथ में चन्दनादि चूर्ण में त्रिवंग भस्म मिलाकर सुबह-शाम दूध के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है।

डिम्बकोष प्रदाह- यह रोग ऋतुकाल में पुरुष के साथ संगम करने से होता है, व्यभिचारिणी और वेश्याओं को यह रोग अधिक होता है। इसमें पीठ और पेट में दर्द होना, वमन होना, रोग पुराना हो जाने पर योनि से पीब निकलना आदि लक्षण होते हैं। स्त्रियों के लिए यह रोग बहुत त्रासदायक है। इसमें प्रातः सायं चन्द्रप्रभाबटी १-१ गोली तथा भोजनोत्तर अशोकारिष्ट बराबर जल मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

हिस्टीरिया में- स्नायुसमूह की उग्रता से यह रोग पैदा होता है, रोग पैदा होने के पहले छाती

में दर्द तथा शरीर और मन में ग्लानि उत्पन्न होती है, ऐसे देखने में तो यह रोग मिर्गी जैसा ही प्रतीत होता है, परन्तु इसमें रोगिणी के मुँह से झाग नहीं आते, कभी-कभी इस रोग से पेट के नीचे एक गोला सा उठकर ऊपर की ओर आ जाता है। गर्भाशय सम्बन्धी किसी भी रोग से यह रोग उत्पन्न हो सकता है। यह रोग बड़ा दुष्ट और नवयुवतियों को तंग करने वाला है। अशोकारिष्ट के सेवन से उपरोक्त उपद्रव दूर हो जाते हैं।

पाण्डुरोग- स्त्रियों के रक्तप्रदर आदि कारणों से रक्त का क्षय होकर उनका शरीर पीताभ रंग का हो जाता है। इसमें शारीरिक शक्ति का क्रमशः ह्रास होने लगता है। आलस्य और निद्रा हरदम घेरे रहते हैं, थोड़ा भी परिश्रम करने से भ्रम (चक्कर) आने लगता है। भूख नहीं लगती। यदि कुछ खा भी लें, तो मन्दाग्नि के कारण हजम नहीं हो पाता, जिससे पेट भारी बना रहता है। कदाचित् तरुणावस्था में यह रोग हुआ, तो यौवन का विकास ही रूक जाता है और स्त्री अपनी जिन्दगी से निराश रहने लग जाती है। इस दुष्ट रोग का कारण बहुमैथुन या बाल-विवाह है। इस रोग में प्रातः सायं नवायस लौह और भोजनापरान्त अशोकारिष्ट में समभाग लौहासव तथा बराबर जल मिलाकर देने से आशातीत लाभ होता है।

उर्ध्वगत रक्तपित्त के लिए अशोकारिष्ट अत्युत्तम औषध है। रक्तार्श में भी विशेषतः वेदना या जलन होने पर अशोकारिष्ट के सेवन से लाभ होता है।

अश्वगन्धारिष्ट

क्वाथ द्रव्य- असगन्ध २।। सेर, मुसली ८० तोला, मंजीठ, हर्रे छाल, हल्दी, मुलेठी, रास्ना, बिदारी कन्द, अर्जुन छाल, नागरमोथा, निशोथ ४०-४० तोला प्रत्येक, काली और सफेद दोनों सारिवा (अनन्तमूल और श्यामलता), सफेद और लाल चन्दन, बच, चित्रकमूल-प्रत्येक ३२-३२ तोला लेकर सबको मोटा चूर्ण कर लें।

क्वाथ- इन सबको ५ मन ४ सेर १२ छटाँक ४ तोला पानी में डालकर पकावें। अष्टमांश (२५ सेर ९ छटाँक ३ तोला) पानी शेष रहने पर छान लें।

प्रक्षेप द्रव्य- इसमें असली शहद (अभाव से पुराना गुड़) १५ सेर, धाय के फूल ६४ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल मिलाकर ८ तोला, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात मिलाकर १६ तोला, फूलप्रियंगू १६ तोला, और नागकेशर ८ तोला मिलाकर इनका चूर्ण कर डाल दें।

सन्धान- इन सबको चिकने पात्र में डालकर सन्धान करके १ मास तक रखा रहने दें। बाद में छान कर काठ की टंकी, इमरतबान या बोतलों में भरकर डाट (ढक्कन) लगाकर रख दें।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला बराबर जल मिला कर दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से मूर्च्छा, स्त्रियों का हिस्टीरिया रोग, दिल की धड़कन, हौलदिल (बेचैनी), चित्ते की घबराहट, चित्तभ्रम, याददाश्त की कमी, बहुमूत्र, मन्दाग्नि, बवासीर, कब्जियत, सिर-दर्द, काम में चित्त न लगना, स्नायु-दौर्बल्य, हर प्रकार की कमजोरी, बुढ़ापे की शिथिलता आदि रोग नष्ट होकर बल, वीर्य, कान्ति एवं शक्ति की वृद्धि होती है। प्रसूता स्त्रियों की कमजोरी इससे बहुत शीघ्र दूर हो जाती है। दिमाग की विकृति या कमजोरी दूर करने के लिये अभ्रक भस्म प्रातः सायं मधु के साथ और भोजन के बाद यह दवा लेने से विशेष लाभ होता है। दिमागी मेहनत करने वालों को यह आसव हमेशा लेना चाहिए। यह मानसिक थकावट को दूर करता और स्नायुओं में एक तरह की नवीन स्फूर्ति पैदा कर दिमाग को तरोताजा

बना देता है। अतएव, थकावट नहीं मालूम होती है। दिमाग को पुष्ट करने की यह एक ही दवा है।

वक्तव्य- इस योग में क्वाथ द्रव्यों की अधिकता के कारण द्रव-द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार जल का परिमाण द्विगुण कर दिया है, यद्यपि मधु भी द्रव पदार्थ है, परन्तु इसका परिमाण पहले ही ठीक होने से द्विगुण नहीं किया गया है।

अहिफेनासव

अफीम १३ तोला, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजौ, छोटी इलायची के बीज-प्रत्येक ४-४ तोला लें।

सन्धान- चीनी मिट्टी के या काँच के पात्र में ५ सेर महुए की देशी शराब डाल दें, इसमें पहले अफीम को घोल कर, बाद में शेष चारों वस्तुओं के चूर्ण डाल करके मुख बन्द कर १ मास तक रखने के बाद छान लें।

नोट- इसके पात्र को धूप में रखने से १५ दिन में ही अच्छा सन्धान हो जाता है और गुण भी विशेष करता है। प्राय: इसी तरह से वैद्य लोग इसका निर्माण करते है।

मात्रा और अनुपान- इसके सेवन से भयंकर अतिसार और हैजा का नाश होता है। इस आसव का उपयोग वात और कफ-जन्य विकारो में अधिक किया जाता है। वातजन्य अतिसार में जब किसी दवा से लाभ न हो, तो इसका उपयोग करना चाहिए। इससे अवश्य लाभ होगा।

इसी तरह हैजा की भयंकर अवस्था में शरीर ठण्डा हो जाना, नाड़ी अपने स्थान से छुटती हुई दिखाई पड़ना, बेहोशी, सम्पूर्ण शरीर में ऐंठन, दाँत बन्ध जाना, दस्त बहुत पतला और दुर्गंधयुक्त होना, अपचन दस्त होना, वमन बड़े जोर के साथ होना, पेशाब बन्द हो जाना, पड़े-पड़े ही दस्त हो जाना आदि उपद्रव होने पर अहिफेनासव चीनी या बताशे अथवा गर्म पानी में मिलाकर १५-१५ मिनट पर बराबर देते रहें और वायु शमन के लिए तथा खून में गर्मी लाने के लिये हाथ-पाँव की मालिश अजवायन की पोटली से करें। इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसके साथ ही हृदय में कुछ ताकत बनी रहने के लिए मकरध्वज का भी उपयोग तुलसी-पत्र स्वरस और मधु के साथ करना चाहिए। इससे रक्त में गर्मी आकर रक्त का संचालन होने लगता है, साथ ही हृदय और नाड़ी की गति में सुधार होता है।

उशीरासव

खस, सुगन्धबाला, कमल, गम्भारीफल, नीलोफर, फूल प्रियंगु, पद्माख, लोध्र, मंजीठ, जवासा, पाठा, चिरायता, बड़ की छाल, गूलर की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, सफेद कमल, पटोल-पत्र, कंचनार की छाल, जामुन की छाल, मोचरस- प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला, मुनक्का ९० तोला और धाय के फूल ६४ तोला लें।

सन्धान- इसका एक मटके में या काठ अथवा चीनी मिट्टी के पात्र में डालकर उसमें २५।। सेर ८ तोला जल, देशी खांड १० सेर, शहद (अभाव में पुराना गुड़) २।। सेर मिलाकर उसी मटके में डाल दें और सन्धान कर १ मास तक छोड़ दें, बाद में तैयार हो जाने पर छान कर रख लें। - भै.र.

वक्तव्य- भै.र. के मूल पाठानुसार चीनी का परिमाण कम रहने से आसव खट्टा बनता है, अत: चीनी का परिमाण दुगुना किया गया है।

मात्रा और अनुपान- १।से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से नाक, कान, आँख, मल-मूत्र द्वार से होने वाला रक्तस्राव, ,खूनी बवासीर, स्वप्नदोष, पेशाब में धातु जाना, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, उष्णवात, प्रमेह, बहुमूत्र, स्त्रियों के रोग, श्वेत और रक्तप्रदर, ऋतुकाल में या प्रसव के बाद में अत्यन्त रक्तस्राव, गर्भाशय दोष, पेट का दर्द, रजःकृच्छ्रता, पाण्डु, कुष्ठ, कृमि, क्षय आदि रोगों का नाश होता है। इसका विशेष उपयोग- रक्तस्राव, अर्श, रक्तप्रदर, ऋतुकाल में अत्यन्त रक्त जाना, पेट में दर्द होना आदि रोगों में होता है। शुक्रविकार में इसके साथ चन्द्रप्रभा बटी का उपयोग करने से बहुत लाभ होता है।

उपदंश, कुष्ठविकार आदि रोगों में पित्त की विशेषता के कारण अथवा अधिक तेज दवा के सेवन से शरीर में गर्मी ज्यादा बढ़ गयी हो या वीर्य पतला होकर पेशाब के रास्ते निकलता हो, तो इस आसव के साथ गोक्षुरादि गुग्गुल का उपयोग करना चाहिए।

यह आसव सौम्य (ठंडा) होने की वजह से गर्भिणी स्त्री को भी दे सकते हैं। अकाल प्रसव-असमय में गर्भपात होना अथवा इसका डर लगा रहना या बच्चा होने के बाद अधिक खून गिरना आदि उपद्रव में १। तोला उशीरासव बराबर जल और शहद मिलाकर लेने से बहुत फायदा होता है। यह रक्तरोधक, गर्मी को शान्त करने वाला और वीर्यवर्द्धक है।

एलाद्यरिष्ट

छोटी इलायची २०० तोला, वासकमूल- छाल ८० तोला, मंजीठ, कुड़ा की छाल, दन्तीमूल, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, खस, मुलेठी, शिरीष की छाल, खदिरकाष्ठ, अर्जुन की छाल, चिरायता, नीम की अन्तर-छाल, चित्रक मूल छाल, कूठ, सौंफ-प्रत्येक ४०-४० तोला लेकर सबको एकत्र मिला जौकुट चूर्ण कर लें, फिर इस चूर्ण २०५ सेर जल में डालकर पकायें। जब अष्टमांश (२५ सेर १० छटाँक) जल शेष रहे तो उतारकर छान लें। पश्चात् इस क्वाथ में धाय के फूल ६४ तोला, मधु ३ तोला (१५सेर), दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेसर, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, मुरामांसी, नागरमोथा, छरीला, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा प्रत्येक ४-४ तोला लेकर जौकुट चूर्ण कर लें। इन सबको एक मिट्टी के पात्र में भरकर दृढ़ सन्धि बन्धन कर एक मास तक सन्धान करें। एक माह पश्चात् निकाल लें और छान कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला तक भोजन के बाद दिन में दो बार समान भाग जल मिलाकर लें।

गुण और उपयोग- इस अरिष्ट का सेवन करने से विसर्प, मसूरिका (चेचक), रोमान्तिका, शीतपित्त, विस्फोट (फोड़े), विषमज्वर, नाड़ी व्रण (नासूर), दुष्टव्रण, दारुण कास, श्वास, भगन्दर, उपदंश और प्रमेह पीड़िका रोग आदि समूल नष्ट होते हैं।

यह अरिष्ट शीत-वीर्य, मूत्रल, दीपन, पाचन, रक्तप्रसादन, विषघ्न और बल्य है। इसके प्रयोग से मूत्रोत्पत्ति कुछ अधिक होती है तथा रक्त में संचित विष मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है और यकृत से पित्त-स्राव की वृद्धि होकर अन्तः स्थित आमविष और कीटाणुओं को नष्ट करता है।

विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, प्रमेह पीड़िका आदि अनेक व्याधियों की उत्पत्ति रक्त में कीटाणु या विष-वृद्धि होने पर होती है। साथ ही इन रोगों की वृद्धि भी विष-प्रकोप से ही होती है। यह अरिष्ट इन रोगों की उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले मूल विष को ही बाहर निकाल देता है और नवीन उत्पत्ति को बन्द करता है। परिणामतः समूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

एलाद्यारिष्ट के उपयोग से ज्वरजनित और धातु-शोष-जनित दाह का शमन होता है। मसूरिका रोग में इसके उपयोग से नेत्रों का संरक्षण होता है और बेचैनी नष्ट होती है। मसूरिका की सभी अवस्थाओं में आबाल वृद्ध के लिए समान रूप से हितकारी है। इस अरिष्ट का मुख्य औषधि के साथ अनुपान रूप से भी प्रयोग किया जाता है। जिनको उपदंश या सूजाक होते हैं, उनमें से कितने ही व्यक्तियों के रक्त में लीन विष कुछ अंश में रह जाता है, फिर उस विष के कारण उनकी सन्तानों के शरीर में भी कुछ-न-कुछ विष के उपद्रव होते रहते हैं। इस प्रकार के उपदंश पीड़ित माता-पिता की सन्तानों और अत्यन्त निर्बल बच्चों को शीतला हो जाने पर विशेष सावधानी न रखी जायें तो रोग भयंकर रूप धारण कर लेता है, अत: उन रोगियों को शीतला, रोमान्तिका या विसर्प आदि रोग प्रारम्भ होते ही एलाद्यरिष्ट का नियमित सेवन करना चाहिए। इससे सभी प्रमुख उपद्रव नष्ट होकर रोगविष सरलता से नष्ट हो जाता है।

कनकारिष्ट (रक्तशोधक)

क्वाथ द्रव्य- खैरसार ८ सेर के छोटे-छोटे टुकड़े कर लें और ६४ सेर पानी में पकायें। १६ सेर पानी शेष रहने पर छानकर इसे मिट्टी या चीनी के पात्र में डाल दें।

प्रक्षेप द्रव्य- इसमें हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, हल्दी, निर्मलीबीज, दालचीनी, बाकुची, गिलोय और वायविडंग-प्रत्येक ५-५ तोला लेकर चूर्ण बनायें। धाय के फूल ४० तोला दें।

सन्धान-पहले खदिर-क्वाथ में १२।। सेर उत्तम मधु को घोल दें, बाद में सन्धान क्रिया होने पर प्रक्षेप द्रव्य डालकर यथाविधि सन्धान करे और एक माह बाद (तैयार होने पर) छानकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसे प्रात:काल बिना कुछ खाये ही सेवन करने से पुराना कुष्ठ एक मास में शान्त हो जाता है। यह अरिष्ट-रक्त-शोधक है। अतएव इसका प्रयोग रक्तविकार में करने से विशेष लाभ होता है। प्रमेहपीड़िका, शरीर में छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाना, खून की विकृति के कारण त्वचा रूक्ष और मलिन हो जाना, शोथ, खाँसी, श्वास, बवासीर, भगन्दर आदि रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

कनकासव

शाखाख जड़, पत्ते और फल सहित सूखे धतूरे को कूटकर १६ तोला (गीला हो तो ३२ तोला) लें, वासा की जड़ १६ तोला, मुलेठी, पीपल, छोटी कटेरी, नागकेसर, सोंठ, भारंगी और तालीसपत्र प्रत्येक ८-८ तोला लेकर मोटा चूर्ण कर लें। धाय के फूल ६४ तोला, मुनक्का ८० तोला लें।

सन्धान- उपरोक्त चीजों को पात्र में रखें। फिर २५।। सेर ८ तोला जल में देशी खांड या चीनी १० सेर, मधु (अभाव में पुराना गुड़) २।। सेर घोलकर सन्धान कर दें। सन्धान क्रिया चालू होने पर उपरोक्त चूर्णादि मिला दें। एक मास बाद तैयार होने पर छानकर रख लें।- भै.र.से किंचित् परिवर्तित

वक्तव्य- भै.र. मूल पाठानुसार चीनी का परिमाण कम रहने से खट्टा बनता है। अत: चीनी द्विगुण की गयी है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से श्वास, कास, यक्ष्मा, उर:क्षत, क्षय, पुराना ज्वर, रक्त-पित आदि शान्त हो जाते हैं।

कास-श्वास की उग्रावस्था में इसका उपयोग अधिकतर किया जाता है, क्योंकि श्वासनलिका की श्लैष्मिक त्वचा को शिथिल कर के यह दमें की पीड़ा को दूर करता है। इसीलिए श्वासनलिका में संकोच-विकास प्रधान रोग में इसका उपयोग विशेषतया सफल होता है। श्वासनली की सूजन, दमा और फेफड़ों के रोगों में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इससे कफ ढीला होकर गिरने लगता है। श्वासनली की संकुचित होने की शक्ति कम हो जाती है और दमा का वेग बन्द हो जाता है।

कर्पूरासव

उत्तम देशी मद्य ५ सेर, उत्तम कर्पूर ३२ तोला और छोटी इलायची के बीज, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन, काली मिर्च-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण बनाकर, एक बर्तन में डाल दें और मुख बन्द कर १ मास तक छोड़ दें। बाद में छान कर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- ५ से २० बून्द पानी में मिलाकर दें।

दूसरी विधि- (अर्क कर्पूर)-असली रेक्टीफाइड स्पिरिट १६ औंस में ४ औंस कपूर डाल दें। यदि इसमें एक औंस फूल पिपरमेंट भी डाल दें तो अच्छा होगा। कुछ समय में ही अर्क कर्पूर तैयार हो जायेगा।

मात्रा - ५ से १० बूँद, चीनी या बताशे में दें।

गुण और उपयोग- ये तीनों हैजा, अजीर्ण, बदहजमी, पेट के दर्द, जी मिचलाना आदि के लिये अक्सीर दवा है। कई बार का अनुभूत है।

तीसरी विधि-(बैद्यनाथ धारा)- कपूर, फूलपिपरमेंट, सत अजवायन- ये चीजें समभाग लेकर शीशी में डाल, मुँह बन्द कर दें। थोड़ी देर में अर्क तैयार हो जायेगा।

मात्रा और अनुपान- ५ से १० बूँद, चीनी या बताशे में दें।

गुण और उपयोग- ये तीनों हैजा, अजीर्ण, बदहजमी, पेट के दर्द, जी मिचलाना आदि के लिये अक्सीर दवा है। कई बार का अनुभूत है।

नोट- अर्क कपूर बनाने का विधान उपरोक्त ही है और प्राय: सब उच्च स्तर के निर्माता इसी तरह बनाते भी हैं, परन्तु बाजार में सस्ता बिकने वाले अर्क कपूर में धूर्त व्यापारी पानी मिला देते हैं। अत: जितना लाभ होना चाहिए, उतना नहीं हो पाता। इसकी पहचान यही है कि अर्क कपूर में दियासलाई लगाने पर तुरन्त जलने लगता है, नकली जलता नहीं है।

कालमेघासव

कालमेघ ६। सेर, गिलोय १। सेर, सप्तपर्ण १। सेर, कुटकी १। सेर, करंज-पचांग १। सेर, कुटज छाल १। सेर लेकर सबका जौकुट चूर्ण करें और ३ मन ८ सेर जल में डालकर क्वाथ बनावें। जब ३२ सेर जल शेष रह जाये, तो उतारकर छान लें। फिर इसमें गुड़ २० सेर तथा धाय के फूल आधा सेर डालें और सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लौह चूर्ण, लाल रोहितक (रोहेड़ा) की छाल, तेजपात, दालचीनी, बड़ी इलायची, शरपुंखामूल, एलुवा (मुसब्बर), हरड़, बहेड़ा-प्रत्येक द्रव्य १०-१० तोला, बबूल की छाल आधा सेर लेकर जौकुट चूर्ण करके मिलायें। पश्चात् घृतलिप्त पात्र में भर दें और एक माह तक सन्धान करें। एक माह बाद तैयार हो जाने पर निकाल कर छानकर सुरक्षित रख लें।-आनुभविक योग

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला तक सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस आसव का सेवन करने से समस्त प्रकार के मलेरिया (शीतपूर्वक) ज्वर, इकतरा, तिजारी, चौथिया आदि ज्वर, विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर, पुनरावर्तक ज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं। जो विषम ज्वर और शीतपूर्वक ज्वर, कुनैन आदि औषधियों के सेवन से भी नष्ट होते एवं जिनके कारण रोगी को चिरकाल तक त्रास होते रहता है, परिणामत: रोगी के यकृत और प्लीहा दोनों बढ़ जाते हैं, रोगी अत्यन्त क्षीण एवं रक्तहीनता के कारण पीतवर्ण का हो जाता है, साथ ही पाण्डु रोग और कामला हो जाता है, जठराग्नि मन्द हो जाती है, कभी-कभी अतिसार भी हो जाता है, ऐसी दशा में इस आसव का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं। यकृत और प्लीहा व्यवस्थित होकर अपना कार्य ठीक से करने लगते हैं। इस आसव का पाण्डु, कामला आदि पर विशेषत: बालकों के कामला रोग पर आश्चर्यजनक लाभ होता है। यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर शरीर में नवीन रक्त और बल की वृद्धि करता है। रस-रक्तादि धातुओं में लीन ज्वरकारक दोषों को नष्ट कर ज्वर को जड़ से नष्ट करता है, उससे धातुओं के शोधन का भी बहुत उत्तम कार्य होता है, जिससे ज्वर से पुनराक्रमण की संभावना नहीं रहती है।

कुटजारिष्ट

क्वाथ द्रव्य- कुड़े की जड़ की छाल ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, महुए के फूल, गंधारी के फूल-प्रत्येक ४०-४० तोला कूटने योग्य द्रव्यों को जौकुट चूर्ण करें, इनको एक मन ११ सेर १६ तोला जल में पकायें। १२।।। सेर ४ तोला जल शेष रहने पर छानकर ठंडा कर लें।

प्रक्षेप द्रव्य- इनके ५ सेर गुड़ घोल दें और १ सेर धाय के फूल डाल दें।

सन्धान- इन सबको चिकने पात्र में डालकर सन्धान कर १ मास तक रखा रहने दें। बाद में तैयार हो जाने पर छानकर काम में लायें। -भै.र.

वक्तव्य - इनमें कुड़ा छाल कटु होने पर ५ सेर गुड़ और मिलाने से ठीक बनता है।

मात्रा और अनुपान- १।। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पुराने संग्रहणी अतिसार, कृमि, आमांश, अग्निमांद्य, अरूचि, दुर्बलता, जीर्णज्वर, रक्त गिरना, खाँसी आदि रोग नष्ट होते हैं, कितनी ही पुरानी संग्रहणी, श्वेत आँव और ज्वर के साथ क्यों न हो, उसके निवारण के लिए यह अरिष्ट बहुत ही उपयोगी है।

पुरानी संग्रहणी- मल थोड़ा और आँव के साथ आना, पेट में दर्द होना, ज्वर भी हो जाना, अन्न में अरूचि, दस्त के समय आँतों में मरोड़ होना उपद्रव होते हैं। इसमें कुटजारिष्ट कुटजावलेह के साथ देने से अच्छा फायदा होता है।

संग्रहणी रोग आराम हो जाने पर भी कुछ रोज तक कुटजारिष्ट का सेवन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में करते रहना चाहिए, क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि पुरानी संग्रहणी दूर हो जाने पर दवा और पथ्यादि का सेवन बन्द कर देने से पुन: यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इस तरह बार-बार यह रोग अपना प्रभाव जमाकर रोगी को अधिक कष्ट देता है। अतएव इसके दौरे को रोकने के लिये कुटजारिष्ट का सेवन रोग छूटने पर भी कुछ रोज तक बराबर करना चाहिए।

संग्रहणी रोग में पाचक पित्त की दुर्बलता के कारण जठराग्नि मन्द हो जाती है, फिर भूख नहीं लगना, कभी-कभी पेट में दर्द, अपचन, दस्त आदि उपद्रव भी होने लगते हैं। ऐसी हालत में कुटजारिष्ट के सेवन से पाचक पित्त उत्तेजित हो, जठराग्नि को प्रदीप्त कर देता है और पाचनक्रिया भी ठीक करता है।

कुटजारिष्ट कफ को भी ढीला करता है। विशेषकर छोटे-छोटे बच्चों के कफ को ढीला कर दस्त की राह निकाल देता है। अतएव बच्चों की खाँसी या कफ-वृद्धि युक्त खाँसी में अथवा न्यूमोनिया या मोतीझरा आदि में कफ-दोष दूर करने के लिये बब्बूलारिष्ट या द्राक्षासव के साथ इसे मिलाकर, बराबर जल मिला, थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन भर में ३-४ बार देने से कफ ढीला होकर निकल जाता है और खाँसी भी कम हो जाती है।

कुमार्यासव नं. १

अच्छा पका हुआ और रस भरा ग्वारपाठा (घीकुमारी) लाकर उसे धो, छोटे-छोटे टुकड़े कर सम्मान भाग जल मिलाकर कलईदार ताँबा या पीतल की अथवा लोहे की बड़ी कड़ाही में डाल, आग पर चढ़ाकर, पाँच-दस उफान आयें इतना गरम कर नीचे उतारकर रख दें। ठण्डा होने पर हाथ से मसलकर कपड़े से छान लें।

ऐसा निकाला हुआ रस १२।। सेर ४ तोला, गुड़ ५ सेर, लौह चूर्ण ३।। सेर, शहद (अभाव में पुराना गुड़) २।। सेर और सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, नागकेसर, चित्रक, पीपलामूल, वायविडंग, गजपीपल, चव्य, हाउबेर, धनिया, कुटकी, सुपारी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रास्ना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वामूल, मुनक्का, दन्तीमूल, पुष्करमूल, बला, अतिबला, कौंच के बीज, गोखरु, सौंफ, हिंगपत्री, (डीकामाली), अकरकरा, उटंगन बीज, श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, लोध्र, स्वर्णमाक्षिक भस्म-प्रत्येक ३-३ तोला और धाय के फूल ३२ तोला लेकर सबको चीनी मिट्टी के पेचदार ढक्कन की बरनी या कड़ाही के पीपे में डालकर रख छोड़ें, फिर सन्धान कर एक मास तक रहने के बाद छानकर रख लें।- शा.ध.सं.

वक्तव्य- सोंठ से लेकर लोध्र तक की काष्ठौषधियों का मोटा चूर्ण बनाकर डालें। सि.यो.सं. में सुपारी, मूर्वामूल, मुनक्का, काँचबीज, गोखरूबीज, लोध्र-ये चीजें नहीं हैं। कोयल (अपराजिता) के बीज, सरफों का मूल, रोहेड़े (रोहितक) की छाल-ये चीजें हैं। शेष सब द्रव्य समान हैं।

मात्रा और अनुपान- १।। से २।। तोला, बराबर जल मिला कर दोनों समय भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से गुल्म, परिणामशूल, यकृत-प्लीहा, नलाश्रित वायु, मेदोवायु, जुकाम, श्वास, दमा, खाँसी, अग्निमांद्य, कफ और मन्द ज्वर, पाण्डु, पुराना ज्वर, कमजोरी, बीसों प्रकार के प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, स्मृतिनाश, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, अश्मरी (पथरी), कृमिरोग, रक्तपित्त, मासिक धर्म का न होना या कम होना, शक्तिक्षय, गर्भाशय के दोष और आर्त्तव की अशुद्धि, अम्लपित्त, संग्रहणी, अपस्मार, वातविकार और बवासीर समस्त रोग नष्ट होते हैं।

कुमार्यासव में मुख्य वस्तु घीकुमारी का रस है, इसके अतिरिक्त लौह चूर्ण, हरें आदि भी दवाएँ है, अतएव पाचक कोष्ठ को शोधन करने वाला, भूख बढ़ाने वाला और पौष्टिक है। ऐसे बच्चे जो अन्न खाते हों उनके लिये यह दवा बहुत मुफीद है तथा ५-६ माह के बच्चों के

लिए यदि बराबर पेट खराब रहता हो, जिगर या तिल्ली बढ़ी हुई हो, अनपच दस्त आदि होते हों, तो देने में कोई नुकसान नहीं है, क्योंकि यह तिल्ली, जिगर, कफ विकार, श्वास-खाँसी आदि बच्चों के रोगों में विशेष गुण करता है।

इसका उपयोग विशेषकर पेट के विकारों में बच्चे से लेकर बूढ़े तक सबके लिए किया जाता है। प्रारम्भ में इसकी मात्रा थोड़ी ही देनी चाहिए। जैसे-जैसे बर्दास्त होता जाय, वैसे-वैसे मात्रा बढ़ाते जाना ही इसका अच्छा नियम है। एक दो सप्ताह लगातार सेवन करने से इसका गुण मालूम होता है। शूल, गुल्मादि रोगों में यदि रोगी बलवान हो तो इसके साथ वज्रक्षार चूर्ण का भी उपयोग करें। इससे पेट में वायु भरने नहीं पाता और रोग में भी बहुत शीघ्र आराम हो जाता है तथा अग्नि (जठराग्नि हाजमा) भी तेज हो जाती, खाई हुई चीजें बहुत जल्द हजम होने लगती और रस-रक्तादि धातु बढ़कर शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है।

स्त्रियों के दर्द, मेदोवृद्धि, रजोदर्शन के समय पेट में दर्द होना, दमा, खाँसी, अम्लपित्त, पेट में वायुगोला, अतिशय दुर्बलता, शक्तिहीन होना आदि के कारण गर्भ-धारण न होना, अथवा गर्भ धारण होने में कोई अड़चन होना, इसके लिये कुमारी आसव का बराबर कुछ दिनों तक सेवन करना चाहिए।

कुमार्यासव यकृत को बल देने वाला है। अतएव, यकृत वृद्धि होने पर जब पित्त का स्राव अच्छी तरह होने में बाधा होती है, तब इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। इसी तरह यकृद्दाल्युदर रोग में उसकी प्रारम्भिक अवस्था में कुमार्यासव के प्रयोग करने से पेट में जल संचय नहीं हो पाता है, क्योंकि इसमें लौह का अंश वर्तमान है, जो रक्ताणुओं की वृद्धि कर जलीय भाग को सुखाता रहता है। अतएव पेट में जल-संचय नहीं होने देता। पुराने प्लीहा रोग में कुमार्यासव के प्रयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इस रोग में भी रक्ताणुओं की वृद्धि के लिए लौह प्रधान कोई दवा-ताप्यादि लौह आदि का सेवन करना अच्छा रहता है।

कुमार्यासव नं. २

ग्वारपाठे का रस ३ सेर १६ तोला लेकर किसी साफ कांच या चीनी मिट्टी के पात्र में भर कर रखें, पश्चात् उसमें पुराना गुड़ ३२ तोला, शुद्ध मण्डूर भस्म, शुद्ध टंकण, सज्जीक्षार, यवक्षार, सेन्धा नमक, सामुद्र नमक, साम्भर नमक, विड्नमक, मनिहारी नमक, नवसादर-प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोला लेकर बारीक चूर्ण कर मिलायें। पश्चात् पात्र को अच्छी प्रकार दृढ़ सन्धिबन्धन कर ८ दिन तक धूप में रखें। ८ दिन के पश्चात् छानकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला तक सुबह-शाम भोजन के पश्चात् शक्कर, बताशा अथवा जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस आसव का सेवन करने से उदर रोग, शूल, अजीर्ण, यकृत वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गुल्म, अग्निमांद्य आदि रोग नष्ट होते हैं। यह भोजन का अच्छी तरह से पाचन कर क्षुधा की वृद्धि करता है। बालकों को होने वाले यकृद्विकार, प्लीहा, पाण्डु, कामला, हलीमक, कृमि, कब्ज, उदरशूल आदि विकारों पर अमृत तुल्य लाभकारी है।

कुमार्यासव नं. ३

विजया नाम की हरड़ १। सेर लेकर इसका जौकुट चूर्ण कर १२।। से ४ तोला जल में पकावें, जब ३ सेर १६ तोला जल शेष रहे, तब उतारकर छान लें और साफ चिकने पात्र में भर

दें, फिर उसमें ग्वारपाठे का रस १२।।। सेर ४ तोला, गुड़ ५ सेर, शहद ३ सेर १६ तोला, धाय के फूल १२ छटाँक ४ तोला मिला दें। पश्चात् जायफल, लौंग, कंकोल, कबाबचीनी, जटामांसी (बालछड़), चव्य, चित्रकमूल-छाल, जावित्री, काकड़ासिंगी, बहेड़ा, पुष्करमूल-ये प्रत्येक ४-४ तोला, लौह भस्म, ताम्र भस्म-प्रत्येक २-२ तोला लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों का जौकुट चूर्ण करके शेष चीजें वैसी ही मिला दें फिर यथा विधि सन्धान करके रखें। २० दिन पश्चात् छानकर सुरक्षित रख लें।-यो.र.

मात्रा और अनुपान- १तोला से २ तोला तक, सुबह-शाम भोजन के बाद अग्निबलानुसार बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस आसव का सेवन करने से पाँचों प्रकार की खाँसी, श्वास, क्षय और आठों प्रकार के उदर रोग, ६ प्रकार के अर्श, वातव्याधि, अपस्मार, अग्निमान्द्य, कोष्ठशूल, आठ प्रकार के गुल्म तथा नष्टपुष्प (स्त्रियों के मासिक धर्म न होना) इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त अग्निमांद्य, संग्रहणी, अजीर्ण, अतिसार, प्रवाहिका रोग में उत्तम लाभप्रद है। छोटे बच्चों को इसका सेवन कराने से अन्न या दूध का ठीक-ठीक परिपाक होता है। उदर में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। एक मास के बच्चे को इसकी १ बूँद नित्य १-२ बार दें।

वक्तव्य- कुछ वैद्य विजया शब्द का अर्थ भांग करते हैं और भांग डालकर यह आसव बनाते भी हैं। भांग डाले हुए आसव में ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि को नष्ट करने के विशेष गुण है, जबकि विजया नामक हरड़ डालकर बनाये आसव में कोष्ठबद्धता (कब्ज), अजीर्ण, उदरशूल, यकृत और प्लीहा के विकार, उदर रोग, आनाह आदि को नष्ट करने के विशेष गुण हैं। शेष गुण-धर्म दोनों में समान हैं।

कुमार्यासव नं. ४

ग्वारपाठे का रस २।। सेर, गुड़ १।। सेर, तेजपात, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, लौंग, सेन्धानमक, हल्दी, दारुहल्दी, करंज, पीपल, मिर्च, धाय के फूल, अकरकरा, बच, जावित्री, वायविडंग ये प्रत्येक ४-४ तोला, हरड़ ८ तोला लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यों को कूटकर जौकुट चूर्ण करें। पश्चात् सब द्रव्यों को एकत्र मिला, साफ चिकने मटके में भरकर यथाविधि सन्धान करके १५ दिन तक रखा रहने दें। पश्चात् छानकर सुरक्षित रख लें। - गदनिग्रह

वक्तव्य- अधिक परिमाण में बनाने पर एक मास तक सन्धान करके रखना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला तक सुबह-शाम, भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस आसव का सेवन करने से समस्त प्रकार के उदर रोग, गुल्म (वायुगोला), उदावर्त, अफरा, पार्श्वशूल, कफ दोष, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास, हिक्का (हिचकी), क्षय, यकृतवृद्धि जनित विकार, तिल्ली (प्लीहा) और शोथ(सूजन) आदि रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त जलोदर, कृमिरोग, पाण्डु, अशक्ति, शुक्र दोष, स्त्रियों के रजोविकार तथा गर्भवती स्त्रियों के विकारों पर भी यह औषधि उत्तम लाभदायक है। छोटे बच्चों के विकारों पर भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

खदिरारिष्ट

क्वाथ-द्रव्य, खैरसार (खदिर की मोटी लकड़ियों के बीच का लाल पका हुआ भाग) और देवदारु-प्रत्येक २।।-२।। सेर, बावची ४८ तोला, दारुहल्दी १ सेर, हर्रे, बहेड़ा, आँवला तीनों

मिलाकर ८० तोला-इन सबको जौकुट कर २०४ सेर ६४ तोला जल में पकाकर, २५।। सेर ८ तोला जल बाकी रहे तक छान लें।

वक्तव्य - खैरसार, देवदारु, दारुहल्दी आदि अत्यन्त कठिन द्रव्यों के होने के कारण इस योग में द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार जल द्विगुण किया गया है।

प्रक्षेप द्रव्य- पीछे उसमें शहद (अभाव में पुराना गुड़) १० सेर, चीनी ५ सेर तथा धाय के फूल १ सेर, कंकोल, नागकेसर, जायफल, लौंग, बड़ी इलायची, दालचीनी तेजपात-प्रत्येक ४-४ तोला तथा पीपल १६ तोला, इनका मोटा चूर्ण बना डाल दें।

सन्धान- इन सब को चीनी मिट्टी के बर्तन में या सागौंन के पीपे में भरकर सन्धान कर १ माह रहने दें। १ माह बाद तैयार हो जाने पर छानकर रख लें। -शा.ध.सं.भ.खं.

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर दोनों समय भोजन के बाद सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से लाल और काले कोढ़ के चकत्ते, कपालकुष्ठ, औदुम्बरादि महाकुष्ठ, खुजली, मंडल-कुठ, दाद आदि क्षुद्र कोढ़, रक्तविकारजन्य ग्रन्थि, रक्तविकार, वातरक्त, विसर्प, व्रण, सूजन, नाहरुरोग, गण्डमाला, अर्बुद, श्वेत कुष्ठ, कृमिरोग, यकृत, गुल्म, कास, श्वास, बदहजमी, कफ, वायु, आमविकार, हृद्रोग, पाण्डुरोग और उदर रोग नष्ट होते हैं।

अनेक प्रकार के दूषित आहार-विहार के कारण रक्त दूषित हो, उसमें रोग उत्पन्न करने वाले कृमि उत्पन्न हो जाते हैं। फिर यह कृमि कण्डू (खुजली), कुष्ठ, विसर्पादि रोगों को उत्पन्न करते हैं। रक्त में विकार होने से चमड़ी, मांस, हड्डियाँ, शुक्रधातु आदि बिगड़ जाते तथा पाचनशक्ति भी कमजोर हो जाती है, ये रोग जल्दी अच्छे भी नहीं हो पाते हैं। ऐसे कठिन रोगों को अच्छा करने के लिए खदिरारिष्ट, गन्धक रसायन के साथ उपयोग किया जाता है। यह अत्यन्त पाचक, रक्तशोधक और विरेचक है। यह रक्त में उत्पन्न दूषित कृमियों को नष्ट कर आँतों को सबल बनाता है तथा साफ करता है, रक्त को शुद्ध करता और त्वचा रोगों को भी नष्ट करता है। यह अनेक कुष्ठों में तथा कण्डू, दाद आदि क्षुद्र कुष्ठों में होने वाले कृमियों को शीघ्र नष्ट कर रोग मुक्त कर देता है। अतएव इसकी गणना उत्तम कुष्ठघ्न दवाओं में की जाती है।

खदिरारिष्ट का प्रभाव लसीका पर विशेष पड़ने से महाकुष्ठ में भी यह बहुत शीघ्र लाभ करता है, क्योंकि महाकुष्ठ में लसीका से सर्वप्रथम कीटाणु उत्पन्न होते हैं, और वहीं से सम्पूर्ण शरीर में फैलकर त्वचा मांस आदि को दूषित करते हैं। महाकुष्ठ के कीटाणु और राजयक्ष्मा के कीटाणुओं में बहुत समता पायी जाती है। खदिरारिष्ट के सेवन से ये कीटाणु निर्बल और शिथिल हो जाते हैं। हृदय की अधिक धड़कन में खदिरारिष्ट बहुत लाभ करता है।

चन्दनासव

सफेद चन्दन, सुगन्धबाला (खस), नागरमोथा, गम्भारी फल, नीलोफर, प्रियंगु, पद्माख, मंजीठ, लाल चन्दन, पाठा, चिरायता, बड़ की छाल, पीपल की छाल, कचनर की छाल, आम की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलेठी, रास्ना, परवल के पत्ते, मोचरस-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर मोटा चूर्ण कर लें और धाय के फूल ६४ तोला तथा मुनक्का १ सेर लें। इन सबको २५।। सेर ८ तोला पानी में डालकर ५ सेर चीनी और २।। सेर गुड़ मिलाकर घोल दें, बाद में उपरोक्त चूर्ण डालकर पात्र का मुख बन्द कर दें। १ मास बाद छानकर रख लें।

वक्तव्य- इस योग में चीनी का परिमाण कम होने से खट्टापन आ जाता है, अतः चीनी दुगुनी (१० सेर) डालने से ठीक बनता है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पेशाब में धातु जाना, स्वप्न दोष, कमजोरी, पेशाब में जलन, श्वेतप्रदर, प्रमेह और उपदंश के विकार, अग्निमांद्य और हृद्रोग अच्छे हो जाते हैं।

यह आसव शीतवीर्य होने की वजह से उष्णता को नष्ट करता है और शुक्रस्थान की गर्मी को दूर कर बल तथा वीर्य की वृद्धि करता है। पेशाब पीला या काला होता हो तो उसे भी दूर कर साफ पेशाब लाता हैं।

शुक्र प्रमेह (सुजाक) में चन्दनासव के साथ चन्दन के तैल का सेवन करने से काफी लाभ होता है। अथवा चन्दनासव २।। तोला देवदार्वारिष्ट १।। तोला, सारिवाद्यासव २।। तोला तथा चन्दन तैल २० बून्द मिला कर ३ मात्रा बनाकर, कुछ समय प्रतिदिन देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। उष्णवात (सूजाक) की कसर को दूर करने के लिये यह मिश्रण बहुत गुणदायक है।

यह शीतवीर्य होने से सूजाक, उपदंश एवं मूत्रविकारों में बहुत गुणदायक है। यह हृदय को बल देने वाला, पौष्टिक तथा बलवर्द्धक एवं अग्निदीपक है।

सूजाक की प्रथमावस्था में जलन होती है, जिससे पेशाब करने के समय चिनक (दाह-दर्द) होता है और पेशाब खुलकर नहीं होता है। कुछ रोज तक यही क्रम चालू रहने से मूत्रनली में घाव होकर पीब निकलने लगता है और यह स्राव बराबर जारी रहता है। रोग पुराना होने पर पीब में दुर्गंध आने लगती है। शरीर कान्तिहीन हो जाता, रक्तविकार होने से त्वचा रूक्ष हो जाती है तथा चकत्ते आदि भी निकल आते हैं। ऐसी अवस्था में चन्दनासव के उपयोग से दाह शान्त हो, पेशाब खुलकर आने लगती है। धीरे-धीरे स्राव भी रुक जाता है।

चव्यकारिष्ट

चव्य २।। सेर, चित्रकमूल १। सेर, काला जीरा, पोहकरमूल, बच, हाऊबेर, कचूर, पटेल-पत्र, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, कुड़े की छाल, इन्द्रायण मूल, धनियां, रास्ना, दन्तीमूल, प्रत्येक द्रव्य आधा-आधा सेर, वायविडंग, नागरमोथा-मंजीठ, देवदारु, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल-ये प्रत्येक १-१ पाव लेकर इन सबको एकत्र जौकुट करके ५ मन ४ सेर ४ तोला जल में क्वाथ करें, २५।। सेर ८ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लें और उनमें गुड़ ३०० पल (१५सेर), धाय के फूल २० पल (१ सेर), दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेसर-ये प्रत्येक ८-८ तोला, लौंग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, शीतल चीनी-ये प्रत्येक ४-४ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करके मिलावें, पश्चात् पात्र में भरकर १ मास तक सन्धान करके रखें। एक माह पश्चात् निकाल, छानकर सुरक्षित रख लें।-यो.र.

वक्तव्य- जल का परिमाण, द्रवैगुण्य परिमाण के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला तक सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस अरिष्ट के प्रयोग से समस्त प्रकार के गुल्म २० प्रकार के प्रमेह, जुकाम, क्षय, खाँसी, अष्ठीला, वातरक्त, उदरविकार तथा अन्त्र-वृद्धि रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह कामला, यकृत विकार, आध्मान (अफरा), अण्डवृद्धि और अग्निमांद्य को भी नष्ट करता है।

चित्तचन्दिरासव

नागरमोथा, काली मिर्च, चव्य, चित्रक-मूल, हल्दी, पीपल, वायविडंग, आँवला, उशीर, छारछरीला, सुपारी, लोध्र, पत्रज, कुटकी, सफेद चन्दन, तगर, जटामांसी, दालचीनी, लौंग,

गोदन्ती (गून्दी-फल), नागकेसर-ये प्रत्येक ३-३ तोला, धाय के फूल ३२ तोला, मुनक्का २ सेर ६ छटाँक २ तोला, पुराना गुड़ १२ सेर, जल २० सेर १२ छटाँक ४ तोला लें। जल में गुड़ को घोलकर मुनक्का तथा धाय के फूल मिला दें। पश्चात् शेष द्रव्यों को जौकुट चूर्ण करें और सब सामान को घृतलिप्त पात्र में भरकर १ मास तक सन्धान करें। एक माह पश्चात् निकाल लें और छानकर सुरक्षित रख लें।-सि.भै.म.मा.

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला तक सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह आसव सौम्य गुण युक्त दीपन, पाचन, कब्जनाशक और श्रेष्ठ बलकारक है। इस आसव का उपयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन कास-श्वास, राजयक्ष्मा, मन्दाग्नि, प्रमेह, मूत्रविकार और मलावरोध आदि रोग नष्ट होते हैं। इसमें द्राक्षा (मुनक्का) प्रधान योग होने के कारण यह द्राक्षासव और द्राक्षारिष्ट के समान ही उत्तम गुणकारी एवं सुमधुर पेय है। राजस्थान के वैद्य समुदाय में इस योग का विशेष प्रचार है।

जम्बीरद्राव

चीनी मिट्टी के चिकने पात्र (बरनी) में नींबू का रस ५ सेर डाल दें। इसमें हींग ८ तोला, सेन्धा नमक, वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल और अजवायन-प्रत्येक ४-४ तोला, सोंचर नमक और सरसों-प्रत्येक १६-१६ तोला लेकर चूर्ण बनाकर डाल दें। पात्र का मुख बन्द कर २१ दिन तक रखा रहने दें। बाद में छानकर काम में लायें। - यो. चि.

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से यकृत, गुल्म, प्लीहा, विद्रधि, अष्ठीला, वायुगोला, दस्त, दर्द, पार्श्वशूल, हृद्रोग, नाभिशूल, कब्ज, अफरा, गुदविकार, (अर्श), उदररोग और वात अथवा कफ सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं।

यह पाचक (अन्न को पचाने वाला), दीपक (जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला) रुचिवर्धक, कृमिनाशक और अरुचि को नष्ट करने वाला है।

शरीर के अन्दर से दूषित विषों को निकालने के लिये जितने द्वार है, उन सब के द्वारा यह आसव एकत्रित दूषित दोषों को निकाल देता है। पेशाब और पसीना के द्वारा यह शरीर के अनेक तरह के मल को बाहर निकाल देता है। यकृत, गुल्म और उदर रोग के लिये जम्बीरद्राव के समान गुणदायक अन्य कोई भी दवा नहीं है।

जब खाली आमाशय में यह आसव जाता है, तब सबसे पहले जिन कृमियों से आमाशय में बादि पैदा होती है, उन कृमियों को नष्ट करना शुरू कर देता है। इन कृमियों से आमाशय में अनेक प्रकार के हानिकारक एसिड उत्पन्न होते रहते हैं। यह आसव इन कृमियों को नष्ट करके एसिड पैदा होना बन्द कर देता है।

पेट के अन्दर कृमियों को नष्ट करके यह आसव रस-रक्तादि में मिलकर रक्त में रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाता है। इसके बाद, यह जल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार यह पाचनक्रिया को शुद्ध करके रक्त के साथ मिलने के पश्चात् पानी और कार्बोलिक एसिड के रूप से परिवर्तित हो जाता है। यह कार्बोलिक एसिड रक्त में रहने वाले अम्ल,

प्रतियोगित लक्षणों के साथ मिलता है। फिर उसमें कार्बोलिक एसिड और दूसरे तत्वों का मिश्रण बनता है। ये सब कार्य नींबू रस की प्रधानता से ही होते हैं।

मेदोवृद्धि के लिये- इस आसव को बराबर जल मिलाकर २ तोले की मात्रा में प्रातः सायं लेने के अद्‌भूत गुण देखने में आया है।

इसके अन्दर कृमिनाशक गुण भी है। आँतों के अन्दर अनेक प्रकार के जो कृमि पैदा हो जाते हैं और जिनके द्वारा टायफाइड, अतिसार, हैजा इत्यादि रोग उत्पन्न होने का डर रहता है, इन रोगों की जड़ (कीटाणुओं) को यह आसव शीघ्र दूर कर देता है, क्योंकि इसमें नींबू रस के साथ हींग का भी सम्मिश्रण है। अतएव कृमियों को नष्ट करने में बहुत उपयोगी है।

शरीर की संधियों (जोड़ों) में एक प्रकार के जन्तु उत्पन्न होकर, सन्धिवात, आमवात आदि रोगों को उत्पन्न करते हैं। इन जन्तुओं को नष्ट करने के लिये यह आसव बहुत उपयोगी है।

जीरकाद्यरिष्ट

१० सेर सफेद जीरे को २ मन २२ सेर ३२ तोला पानी में पकायें। जब २५।। सेर ८ तोला पानी शेष रह जायें, तब उसमें गुड़ १५ सेर, धाय के फूल ६४ तोला, सोंठ का चूर्ण ८ तोला, जायफल, मेथा, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, बड़ी इलायची, अजवायन, कंकोल और लौंग का चूर्ण ४-४ तोला लेकर मिट्टी के चिकने बर्तन अथवा चीनी मिट्टी के या उत्तम काठ के बने पात्र में उपरोक्त सब दवा डालकर सन्धान करके १ मास तक रखा रहने दें। बाद में तैयार हो जाने पर छानकर रख लें।

वक्तव्य- इस योग में जल का परिमाण, द्रवद्वैगुण्य परिमाण के अनुसार द्विगुण किया गया है। इससे उत्तम बनता है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, खाना खाने के बाद, सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- यह शीतल, रुचिकारक, चरपरा, मधुर, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, विष-दोष शामक तथा पेट के अफरे को दूर करने वाला है। यह थोड़ा उष्ण (गर्म) भी है और गर्भाशय की शुद्धि करता है। इसके अतिरिक्त सूतिका रोग, संग्रहणी, अतिसार और मन्दाग्नि के विकारो को दूर करता, भूख बढ़ाता और पाचनशक्ति को प्रबल करता है।

तक्रारिष्ट

अजवायन, आमला, हर्रे, काली मिर्च-प्रत्येक १२-१२ तोला, पाँचों नमक प्रत्येक ४ तोला, इनका चूर्ण बना, एक पात्र में डालकर उसमें तक्र ६ सेर ६ छटांक २ तोला डाल दें और पात्र का मुख बन्द कर, १ माह बाद छान कर रख लें। -भै.र.

वक्तव्य- ग्रन्थ के मूल पाठ में तक्र का परिमाण नहीं हैं, अतः श्री नरेन्द्रनाथ मिश्र कृत रत्नोज्वला टीका के अनुसार २ आढ़क (६ सेर ६ छटाँक २ तोला) परिमाण दिया गया है।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला, प्रातः एवं सायं जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग- यह उत्तम दीपन-पाचन है तथा शोथ, गुल्म, अर्श, कृमि, प्रमेह, ग्रहणी, अतिसार और उदर रोगों को नष्ट करता है।

इसका उपयोग ग्रहणी और अतिसार में- जब कि ये रोग पुराने हो गये हों, किसी दवा से लाभ नहीं होता हो, आँति कमजोर हों, अपना कार्य करने में असमर्थ हों, ग्रहणी निर्बल हो गयी हो, अन्न की पाचन-क्रिया ठीक से न हो, पतले दस्त या अनपच दस्त होते हों, भूख न लगती

हो, यदि कुछ खा भी लें तो ठीक से हजम न हों, पेट में दर्द, कमजोरी, रस-रक्तादि धातुओं की कमी, कभी-कभी शोथ, हाथ-पाँव सूज जाएँ आदि विकार होने पर इस अरिष्ट के सेवन से बहुत लाभ होता है। यह अग्नि को दीप्त कर मन्दाग्नि को नष्ट करता है तथा यकृत क्रिया को उत्तेजित कर तथा पाचकरस का अधिक निर्माण कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है, एवं तक्र के मौलिक गुण अम्ल और ग्राही, लघु, पाचन, दीपन आदि के कारण भी यह श्रेष्ठ दीपक, पाचक, रुचिकारक और मल को बाँधने वाला है।

त्रिफलारिष्ट

त्रिफला, चित्रक, पीपल, अजवायन, लौह चूर्ण और वायविडंग का चूर्ण १६-१६ तोला, शहद ३२ तोला और पुराना गुड़ ५ सेर तथा जल १६ सेर- सब को घृत लगे चिकने मिट्टी के बर्तन में भर कर मुख बन्द करके जौ के ढेर में रख दें। फिर १ माह बाद निकालकर छान लें।- च.सं.

वक्तव्य- ग्रंथ के मूलपाठ में जल का उल्लेख नहीं है, किन्तु बिना उचित मात्रा में जल मिलाये आसव-अरिष्ट बनना सम्भव नहीं। अतः एक द्रोण जल दिया गया है, क्योंकि त्रिफला इस योग का मुख्य द्रव्य है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर, भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से हृद्रोग, पाण्डु, शोथ, प्लीहा-वृद्धि, चक्कर आना, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, वातोदर, पित्तोदर, बद्धोदर आदि श्वास, कास, ग्रहणी रोग, कुष्ठ रोग, कण्डु, शाखागत वात, बद्धकोष्ठ, हिचकी, किलास और हलीमक आदि रोग नष्ट होकर बल, वर्ण, आयु तथा ओज की वृद्धि होती है।

दशमूलारिष्ट

दशमूल (शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी और छोटी कटेली, गोखरू, बेल, गम्भारी, सोनापाठा, पाटला और अरणी)-प्रत्येक २०-२० तोला, चित्रकमूल और पुष्करमूल १।-१। सेर, गिलोय, और लोध्र १-१ सेर, आँवला ६४ तोला, जवासा ४८ तोला, खैर का सार या छाल, विजयसार और हर्रे ३२-३२ तोला, कूठ मंजीठ और देवदारु, वायविडंग, मुलेठी, भारंगी, कैथ का गूदा, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, फूलप्रियंगू, सारिवा, काला जीरा, निशोथ, रेणुका, रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोया, पद्माख, नागकेसर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, काकड़ासिंगी, जीवक, ऋषभक, (अभाव में विदारीकन्द) मेदा, महामेंदा, (अभाव में शतावरी), काकोली(अभाव से असगन्ध) और ऋद्धि-वृद्धि (अभाव में बराही कन्द)-इनमें से प्रत्येक चीज ८-८ तोला लेकर सबको जौकुट कर अठगुने (२ मन २४ सेर ६४ तोला) जल में पकायें। चौथाई जल (२६ सेर १६ तोला)शेष रहने पर छान लें। बाद में ६० पल (२४० तोला) मुनक्का को चौगुने (१२ सेर) जल में पकाकर तीन-चौथाई भाग (9 सेर) पानी शेष रहने पर उतार लें। इस मुनक्का युक्त क्वाथ को तथा उपरोक्त छने क्वाथ को एकत्र कर उसमें शहद (अभाव में पुराना गुड़) १२८ तोला और गुड़ २० सेर, धाय के फूल १२० तोला, कंकोल, सुगन्धवाला (खस), सफेद चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेसर और पीपल-प्रत्येक ८-८ तोले का चूर्ण और कस्तूरी ३ माशा इन सबको क्वाथ में डालकर मिट्टी या सागौन के बने बर्तन (टंकी) में यथाविधि सन्धान करें। एक महीना बाद तैयार होने पर छानकर काठ की टंकी, इमरतबान या बोतल में भरकर रख दें।- भै.र.

वक्तव्य- आमला तथा कैथ दोनों अम्ल द्रव्य हैं। इनके डालने से अम्लता आकर अरिष्ट के बिगड़ने का भय है। अतः इनको बिना डाले ही बनाया जाना उत्तम है। कस्तूरी अरिष्ट छानने के बाद उत्तम सुरा (रेक्टिफाइड स्पिरिट) या स्पिरिट कैम्फर के साथ घोंटकर मिलाना या बोतलों में

अरिष्ट भरते समय अरिष्ट में मिलाकर बोतलों में भरना उत्तम है। कितने ही लोग बिना कस्तूरी डाले भी बनाते हैं।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद सुबह-शाम देना चाहिए।

गुण और उपयोग- इसे यथोचित्त मात्रा में सेवन करने से धातुक्षय, खाँसी, श्वास, बवासीर, उदररोग, प्रमेह, अरुचि, पाण्डु सब प्रकार की वात व्याधियाँ, शूल, श्वास, वमन, प्रदर, कुष्ठ, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, अम्लपित्त, प्रसूतरोग, गर्भाशय की अशुद्धि, अग्निमांद्य, कामला, श्वेतप्रदर आदि रोग नष्ट होते हैं।

इसका उपयोग वात और कफजन्य रोगों में विशेष होता है। दशमूलारिष्ट में दशमूल का सम्मिश्रण अधिक प्रमाण में है। इसमें अनेक वनस्पतियाँ ऐसी मिली हुई हैं, जिनसे जीवनीय शक्ति की भी वृद्धि होती है।

कस्तूरी आदि बहुमूल्य सुगंधित, रुचिकर और पौष्टिक अनेक द्रव्यों के संयोग से यह स्वादिष्ट, जायकेदार और विशेष गुणदायक है। शक्ति को कम करने वाली संग्रहणी, धातुविकार और प्रसूतरोग में अनेक प्रकार के वातजन्य दर्द एवं ज्वरादि उपद्रवों को यह दूर करता है। धातुक्षीणता मिटकर शक्ति बढ़ती है, शरीर कान्तिमान बन जाता है, वीर्य की वृद्धि होती है।

क्षय के विकार में यह और 'काडलिवर आयल' समभाग या कुछ कम-ज्यादा मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। इनमें कस्तूरी आदि सुगंधित और अनेक मीठी दवाइयों के सम्मिश्रण होने से बच्चे भी इसे अच्छी तरह पी जाते हैं और स्त्रियाँ तो बड़ी खुशी से इसे पीती हैं। इससे बहुत शीघ्र स्त्रियों का बल बढ़ता तथा वे स्वस्थ हो जाती है।

दशमूलारिष्ट प्रसूता स्त्रियों के लिये अमृत है, यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रसूता स्त्रियों को प्रसूत-गृह में या उससे निकलने के बाद जो अग्निमांद्य, खाँसी, ज्वर आदि उपद्रव होते हैं, वे सब इसके सेवन से नष्ट होते हैं। रक्तस्राव के कारण आयी हुई कमजोरी और निर्बलता इससे दूर हो जाती है। इसके सेवन से बच्चे को भी दूध ज्यादा मिलता है। यदि बच्चा पैदा होने के बाद से ही कुछ रोज तक प्रसूता को इसका सेवन कराया जाय, तो प्रसूता को किसी तरह की तकलीफ ही नहीं हो सकती है।

दशमूलारिष्ट पौष्टिक भी है, अतएव जिन स्त्रियों का गर्भाशय गर्भ धारण करने में असमर्थ हो अथवा जिन्हें गर्भस्राव या गर्भपात की शिकायत हो, उन्हें यह अरिष्ट बहुत गुण करता है, क्योंकि इसमें जीवन-शक्ति बढ़ाने एवं शरीर को पुष्ट करने वाली अनेक दवाइयों का सम्मिश्रण होने से यह गर्भाशय की कमजोरी को दूर कर सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान करता है।

प्रसूता स्त्री को यदि दूध कम मात्रा में उतरता हो तो १ तोला शतावरी को जौकुट कर २० तोला पानी में उबालें। जब ५ तोला शेष रहे, तब उसमें १ तोला दशमूलारिष्ट मिला कर सुबह-शाम पिला देने से दूध बढ़ जाता है, परन्तु प्रसूता को पथ्य से ही रहना चाहिए।

वातजन्य खाँसी में- खाँसी का एक प्रकार का दौरा होता है। यह दौरा जब शुरू होता है तो रोगी खाँसते-खाँसते बेचैन हो जाता, पेट की नसें दुखने लगती, मुँह की नसे, फूल जातीं और सुर्ख हो जाती हैं। यदि रोगी कमजोर रहा, तो बेहोश भी हो जाता है। दौरा लगातार १०-१५ मिनट तक रहता है। कुछ कफ का खण्ड निकल जाने पर कुछ देर के लिये खाँसी शान्त हो जाती

है। ऐसी हालत में दशमूलारिष्ट थोड़ी-थोड़ी मात्रा में जल मिलाकर दिन भर में ३-४ बार देते रहने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह प्रकुपित वायु को शान्त कर कफ को ढीला करके बाहर निकालता है और श्वास-नली को साफ करता है, जिससे खाँसी का वेग रुक जाता है और रोगी क्रमशः अच्छा हो जाता है।

दन्ती-अरिष्ट

दन्ती की जड़, चित्रक की जड़, दशमूल (बेल की छाल, अरणी, श्योनाक की छाल, गम्भरी की छाल, पाढल की छाल, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरु)-प्रत्येक ४-४ तोला और त्रिफला १२ तोला लेकर सबको जौकुट चूर्ण बना, २५।। सेर ८ तोला पानी में पकावें, चौथाई पानी रहने पर उतार लें। फिर उसमें ५ सेर गुड़ मिला, बर्तन में भरकर, सन्धान करके रख, १५ दिन बाद तैयार होने पर, छानकर रख लें।-चरक

वक्तव्य- इस योग में जल का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण दिया गया है। मूल पाठ में धायफूल नहीं है, किन्तु सन्धान के लिए उपयोगी होने के कारण ३२ तोला देना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला, बराबर जल मिलाकर, सुबह-शाम कुछ खाना खाकर लें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से बवासीर, ग्रहणी, पाण्डु, अरुचि आदि रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह मल और वायु का अनुलोमन करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

इसका उपयोग विशेषतया अर्श रोग में किया जाता है। बवासीर में भी यह बादी में जितना लाभ करता है, उतना खूनी में नहीं, क्योंकि इसमें रेचक और वात को अनुलोमन करनेवाली दवाओं का मिश्रण ज्यादा है। बादी अर्श में वायु अच्छी तरह नहीं खुलता, पेट में वायु भरा रहता है, जिसकी वजह से मल शुष्क हो जाता, अतः पखाना कड़ा और रुक्ष होता है- वह भी बहुत कोंछने पर। मस्सों में वायु भर जाने से, मस्से फुले हुए दिखने लगते और उनमें सुई चुभने जैसी पीड़ा होती रहती है। दर्द के मारे रोगी बेचैन हो जाता, भूख नहीं लगती, बद्धकोष्ठता, रक्त की कमी, निर्बलता आदि उपद्रव होने लगते हैं। ऐसी हालत में इसके उपयोग से अर्श में बहुत फायदा होता है। सबसे पहला गुण तो यह होता है कि दस्त खुलकर आने लगता और साथ ही वायु का संचार भी होने लगता है।

द्राक्षारिष्ट

मुनक्का ३ सेर १० तोला को ६४ सेर जल में क्वाथ करें, जब चौथाई भाग (१६ सेर) जल शेष रहे, तब उतारकर शीतल होने पर क्वाथ को छानकर एक घड़े (पात्र) में भर दें। फिर इसमें गुड़ १२।। सेर और धाय के फूल ४० तोला तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, फूल प्रियंगु, मिर्च, पीपल, वायविडंग-प्रत्येक ५-५ तोला लेकर जौकुट चूर्ण बना कर डाल कर, (पात्र) में सन्धान कर दें। कुछ दिनों बाद (तैयार होने पर), छान कर काम में लावें।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर दिन में आवश्यकतानुसार दें।

गुण और उपयोग- यह भूख बढ़ाता, दस्त साफ लाता, कब्जियत को दूर करता, ताकत पैदा करता, नींद लाता, थकावट को दूर करता, दिल और दिमाग में ताजगी पैदा करता तथा शरीर के प्रत्येक अंग को ताकत देता है। कफ, खाँसी, सर्दी, जुकाम, हरारत, कमजोरी, क्षय, बेहोशी,

आदि रोगों में शर्तिया लाभ करता है। जिनके फेफड़े कमजोर हो कफ, खाँसी हमेशा ही होती रहती हो, उन लोगों के लिए यह बहुत गुणा करने वाला है। इसके अतिरिक्त कुक्कर, खाँसी, उर:क्षत, अर्श, ग्रहणी, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, नकसीर, अरुचि आदि रोगों में भी इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है।

राजयक्ष्मा की खाँसी में- खाँसी का वेग विशेष बढ़ जाये, रोगी कमजोर और शिथिल हो गया हो, फेफड़े दूषित हो गये हों ज्वर का ताप १०० से १०४ तक पहुँच जाता हो, कफ की वृद्धि, अग्निमांद्य आदि उपद्रव होने पर द्राक्षारिष्ट के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इससे बढ़ा हुआ कफ कम होकर खाँसी कम हो जाती है और रोगी को कुछ बल भी मिल जाता है, साथ ही भूख भी लगने लगती है और रोगी अपने को निरोग होता हुआ अनुभव करने लगता है। इस अरिष्ट के साथ स्वर्ण बसन्तमालती, च्यवनप्राशावलेह, सितोपलादि चूर्ण आदि दवाओं का भी उपयोग करने से विशेष लाभ होता है।

किसी भी कारण से शरीर में निर्बलता आ गयी हो अथवा शरीर भारी मालूम पड़ना, कोई भी काम करने की इच्छा न होना, मन में अनुत्साह, भूख नहीं लगना, अन्न में अरुचि, दस्त कब्ज आदि उपद्रव होने पर सेवन करने से बहुत लाभ होता है।

कभी-कभी स्त्रियों को रजोधर्म के समय अथवा बच्चा पैदा होने के बाद खून अधिक मात्रा में निकलने लगता हैं, जिससे शारीरिक कान्ति नष्ट हो जाती, स्त्री दुर्बल हो जाती, उठने-बैठने में असमर्थ, स्वभाव चिड़चिड़ा, कोई भी बात अच्छी न लगना, अपनी जिन्दगी से हताश हो जाना, खाने की इच्छा न होना, पेट में वायु भरा रहना, पेट भारी मालूम पड़ना, अन्न में अरुचि आदि उपद्रव हो जाते है, ऐसी दशा में प्रवाल चन्द्रपुटी और मधुकाद्यवलेह के साथ द्राक्षारिष्ट का सेवन करना बहुत लाभदायक है।

द्राक्षासव

मुनक्का १०० पल (४००तोला) को ४ द्रोण (१२८सेर) पानी में पकायें, जब एक द्रोण (३२ सेर) जल शेष रहे, तो उसे उतार कर ठण्डा करके छान कर उसमें खाँड (चीनी) ६। सेर, मधु ६। सेर, धाय के फूल ८० तोला (१ सेर), कंकोल, लौंग, जायफल, कालीमिर्च, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेसर, पीपल, चित्रकमूल, चव्य, पीपलामूल, सम्भालु-बीज (रेणुका)-प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करके मिला लें और घृतलिप्त पात्र में भर कर १ मास तक सन्धान करें। एक माह बाद छानकर सुरक्षित रख लें। -भा.भै.र.

वक्तव्य- इस योग में भारत भैषज्यरत्नावली की टीका के अनुसार जल का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

द्राक्षासव (दूसरा योग)

मुनक्का ५ सेर, खांड २० सेर, बेर की जड़ १० सेर, धाय के फूल ५ सेर तथा सुपारी, लौंग, जावित्री, जायफल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, सोंठ, पीपल, मिर्च, रूमीमस्तंगी, अकरकरा और कूठ-प्रत्येक आधा-आधा सेर लेकर, कूटने योग्य चीजों को कूटकर मिट्टी के चिकने पात्र में या सागौन लकड़ी के पीपे में भर दें। इन सब औषधियों से चौगुना पानी डालकर उसका मुँह बन्द कर दें। १४ दिन पश्चात् उसमें से आसव को निकालकर अर्क खींचने वाले यन्त्र द्वारा इसका अर्क खींच लें।-यो.चि.

यदि इसमें केसर, कस्तुरी आदि डालनी हो, तो जहाँ से अर्क शीशी में टपकता है, वहीं पर

एक पोटली में बाँधकर लटका दें। इस अर्क को तीन दिन रखा रहने दें, पीछे इसमें चौथाई चीनी मिलाकर बोतलों में छानकर भर दें, बाद में सेवन करें।

वक्तव्य- प्राय: निर्माता वैद्य इसको बिना चीनी मिलाये ही बोतलों में भरते हैं, क्योंकि इसमें मद्यांश अधिक होने से यह आबकारी कानून के अनुसार लाइसेन्स लेकर बनाया जाता है और इस पर आबकारी कर भी लगता है।

मात्रा और अनुपान- २ से ४ तोले, प्रात:-सायं भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से ग्रहणी, बवासीर, क्षय, दमा, खाँसी, काली खाँसी और गले के रोग, मस्तक रोग, नेत्र रोग, रक्तदोष, कुष्ठ,, कृमि, पाण्डु, कामला, दुर्बलता, कमजोरी, आमज्वर आदि नष्ट हो जाते हैं। यह सौम्य, पौष्टिक तथा बलवीर्यवर्द्धक है।

देवदार्वाद्यरिष्ट

देवदारु ३ सेर २ छटाँक, वासा-मूल १। सेर, मंजीठ, इंद्रजौ, दन्तीमूल, तगर हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, वायविडंग, नागरमोथा, सिरस की छाल, खदिर काष्ठ, अर्जुन की छाल-प्रत्येक द्रव्य १०-१० छटांक, अजवायन, कूड़ा की छाल, सफेद चन्दन, गिलोय, कुटकी, चित्रक-मूल, प्रत्येक आधा सेर लेकर जौकुट चूर्ण करके ६ मन १६ सेर जल में पकायें, ३२ सेर जल शेष रहने पर छान लें। पश्चात् धाय के फूल १ सेर, शहद (अभाव में पुराना गुड़) १८।। सेर सोंठ, कालीमिर्च, पीपल-ये मिलित १० तोला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, ये मिलित द्रव्य २० तोला, प्रियंगु २० तोला, नागकेसर १० तोला लेकर इनका जौकुट चूर्ण करके उपरोक्त क्वाथ में मिलाकर घृतलिप्त पात्र में भरकर एक मास तक सन्धान करें। एक माह के बाद छान कर सुरक्षित रख लें।-भै.र.

वक्तव्य- इस योग में जल का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है। मधु का परिमाण अधिक होने से द्विगुण नहीं किया है।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला तक, दोनों समय में भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर लें।

गुण और उपयोग- इस अरिष्ट का उपयोग करने से सब प्रकार के कठिन प्रमेह, वातरोग, ग्रहणी, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, दद्रु, कुष्ठ इन विकारों को यह नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त उपदंश, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, गर्भाशय के दोष, कण्डू इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। यह औषध उत्तम रक्तशोधक और मूत्र-शोधन तथा पाचन-क्रिया को व्यवस्थित करता है। स्त्रियों के प्रसव के बाद होनेवाले उपद्रवों में अपूर्व गुणकारी है।

धात्र्यरिष्ट

अच्छे पके हुए २००० आँवलों को कूटकर उसका रस निकालकर जितना रस हो उसका आठवाँ भाग शहद, पीपल चूर्ण ८ तोला तथा चीनी २।। सेर मिलाकर सबको चिकने मटके (पात्र) में भरकर सन्धान कर के १५ दिन रखा रहने दें। पश्चात् तैयार होने पर निकालकर छान कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर और कुछ खिलाकर के सुबह-शाम दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पाण्डु, कामला, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, खाँसी, हिचकी, अरुचि और श्वास रोग नष्ट होते हैं।

पाण्डु और कामला रोग में-जब शरीर में रक्तकणों की कमी होकर जल भाग की वृद्धि विशेष हो जाती है, तब शरीर पीताभ दिखने लगता है, भूख कम लगती और दस्त होने लगते हैं। ऐसी दशा में इसके सेवन से काफी लाभ होता है, क्योंकि इसमें आँवले का रस ही प्रधान है और आँवले में लौह का अंश होने से शरीर की पुष्टि तथा रक्तकणों को बढ़ाने में बहुत लाभदायक है। रक्तकणों की वृद्धि होने से जल भाग शुष्क होकर सूजन नष्ट हो जाती है और धीरे-धीरे पीलापन भी नष्ट होकर रोगी कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो जाता है।

धान्यपंचकारिष्ट

धनियां, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, सोंठ-प्रत्येक द्रव्य १ सेर, ९ छटाँक, ३ तोला लेकर जौकुट चूर्ण कर ६४ सेर जल में पकावें। १६ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् इसमें गुड़ ६। सेर, धाय के फूल १० छटाँक डालकर घृतलिप्त पात्र में भर दें और १ माह तक सन्धान करें। १ माह पश्चात् छानकर सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला तक, भोजन के बाद दोनों समय समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह अरिष्ट उत्कृष्ट दीपन, पाचन और ग्राही है। इसका प्रयोग करने से अतिसार, प्रवाहिका और संग्रहणी रोग नष्ट होते हैं। अर्क सौंफ ५ तोला मिलाकर पिलाने से यह पित्तातिसार और रक्तातिसार में अच्छा लाभ करता है।

वक्तव्य- यह धान्यपंचक क्वाथ का योग है। हम इसे शारंगधरोक्त आसवारिष्ट परिभाषा विधि के अनुसार -'धान्यपंचकारिष्ट' के नाम से बनाते हैं, क्योंकि क्वाथ शीघ्र विकृत हो जाता है, किन्तु इसमें सन्धान के कारण मद्यांश उत्पन्न होकर क्वाथ के गुणों को चिरस्थायी बना देने से यह क्वाथ की अपेक्षा उत्तम एवं गुणकारी होता है।

नारिकेलासव

नारियल का पानी २५।। सेर ८ तोला, ईख का रस १२।।। सेर ४ तोला, सेमल का क्वाथ १२८ तोला, दशमूल-क्वाथ १२८ तोला और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर का जौकुट चूर्ण तथा धाय के फूल- प्रत्येक ६४-६४ तोला, कस्तूरी ३ माशे और केसर ३ माशा, तगर, सफेद चन्दन और लौंग का चूर्ण ४-४ तोला- सबको एकत्र मिलाकर घृत के चिकने पात्र (मटका) में भरकर सन्धान करके १ मास तक छोड़ दें, बाद में छानकर रख लें।

वक्तव्य- दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर-सबको समान भाग मिलाकर ६४ तोला लें। द्रवपदार्थों का द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण किया गया है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला, बराबर जल मिलाकर प्रातः सायं दें।

नोट-केसर और कस्तूरी पहले न डालकर, आसव तैयार हो जाने के बाद रेक्टीफाइड स्पिरिट में घोंटकर डालें।

गुण और उपयोग- यह आसव पौष्टिक, बल वीर्य-बढ़ाने वाला और बाजीकरण है। इसके सेवन से कामशक्ति की वृद्धि होती है।

धातुक्षीणता- छोटी आयु में अप्राकृतिक ढंग से शुक्र का नाश करने या अधिक स्वप्नदोष अथवा और भी किसी कारण से वीर्य पतला हो गया हो, वीर्य-वाहिनी नाड़ियाँ शिथिल होकर वीर्य धारण करने में असमर्थ हो गयी हों, अथवा इन कारणों से स्त्रीप्रसंग का विचार होते ही वीर्यस्राव हो जाये या नामर्दी हो गयी हो, तो ऐसी हालत में इस आसव का सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। इससे वीर्यविकार दूर होकर, वीर्य गाढ़ा बन जाता तथा शरीर पुष्ट और बलवान हो जाता है।

पत्रांगासव

पतंगकाष्ठ, खैरसार, वासक मूल, सेमल के फूल, खरेंटी, शुद्ध भिलावा, सारिवा दोनों (अनन्तमूल और श्यामलता), गुड़हल की कली, आम की गुठली की मींगी, दारुहल्दी, चिरायता, पोस्त के डोडे, जीरा सफेद, लौहचूर्ण या भस्म, रसोत, बेलगिरी, भांगरा, दालचीनी, केसर, लौंग-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर मोटा चूर्ण बनायें। पश्चात् २।। सेर ८ तोला पानी में मुनक्का १ सेर, धाय के फूल, ६४ तोला, खाँड ५ सेर, शहद (अभाव में पुराना गुड़) २।। सेर और उपरोक्त दवाओं का चूर्ण अच्छी तरह घोलकर उसे चिकने पात्र में भरकर सन्धान कर दें तथा एक मास पश्चात् छानकर रख लें।-भै.र.

वक्तव्य- इस योग में चीनी का परिमाण कम होने से खट्टापन होता है, अतः चीनी दुगुनी (१० सेर) मिलाने से ठीक बनता है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला, बराबर जल मिलाकर खाना खाने के बाद दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से रक्त-श्वेत प्रदर, दर्द के साथ रज निकलना, ज्वर, पाण्डु, सूजन, अरुचि, अग्निमांद्य, गर्भाशय के अवयवों की शिथिलता, कमजोरी, दुष्टार्तव आदि रोग नष्ट होते हैं।

इस आसव का प्रभाव स्त्रियों के कटि (कमर) प्रदेश के अवयवों पर विशेष होता है। यह स्त्रियों के कटि-प्रदेश के अवयवों पर तो काम करता ही है, साथ ही उन अवयवों में किसी तरह के विकार न हो, इसे भी यह रोकता है। अतएव प्रत्येक स्त्री को लगातार एक-दो महीने अथवा साल भर में इसकी २-३ बोतल अवश्य पीना चाहिए। इससे स्त्रियों की तन्दुरूस्ती तथा सुन्दरता ठीक बनी रहती है। स्त्रियों की तन्दुरूस्ती या सुन्दरता कटि-प्रदेश पर ही निर्भर है। कटि-प्रदेश जितना नीरोग और स्वस्थ रहेगा, तन्दुरूस्ती भी उतनी ही अच्छी बनी रहेगी। इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

यह आसव गर्भाशय को भी बलवान बनाता है। गर्भ नहीं रहना, अथवा गर्भ रहकर असमय में ही स्राव या पात्र हो जाना, मरा हुआ बच्चा पैदा होना, सन्तान होते ही मर जाना अथवा रोगी सन्तान होना आदि उपद्रवों में भी इसका लगातार कुछ रोज तक बराबर सेवन करते रहने से अच्छा फायदा होता है। साथ में चन्द्रप्रभाबटी का भी उपयोग करने से विशेष लाभ होता हे।

पर्पटाद्यरिष्ट

५ सेर पित्तपापड़ा को जौकुट कर १ मन ११ सेर १६ तोला जल में क्वाथ करें। १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला जल शेष रहने पर छान लें। फिर इसमें पुराना गड़ १० सेर, धाय के फूल १२ छटाँक ४ तोला मिला दें तथा गिलोय, नागरमोथा, दारुहल्दी, छोटी कटेरी, धमासा, चव्य, चित्रक-मूल, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, वायविडंग-ये प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करके मिला दें और सब सामान को पात्र में भरकर एक माह तक सन्धान करें। एक माह पश्चात् तैयार हो जाने पर छानकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला लें, दोनों समय भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से समस्त प्रकार के कठिन पाण्डु रोग, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, कामला, हलीमक, प्लीहा-वृद्धि, यकृतवृद्धि शोथ और विषमज्वरों को शीघ्र नष्ट करता है। इनमें मुख्य औषधि पित्तपापड़ा है, जो कि उत्तम पित्तशामक, सौम्य और हृदय को बल देने वाली है।

पार्थाद्यारिष्ट (अर्जुनारिष्ट)

अर्जुन की छाल ५ सेर, मुनक्का २।। सेर, महुवे के फूल १ सेर लेकर सबको १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकायें। चौथाई (१२।।। से ४ तोला) पानी शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें १ सेर धाय के फूल और ५ सेर गुड़ मिलाकर उसे मिट्टी के चिकने बर्तन (मटका) में भर कर सन्धान करके १ मास रहने दें, बाद में छानकर रख लें। -भै.र.

वक्तव्य- इस योग में अर्जुन छाल का रस प्रधान होने से गुड़ ५ सेर के स्थान पर ८ सेर मिलाना उत्तम है। वर्तमान वैद्यसमाज में यह अर्जुनारिष्ट नाम से अधिक प्रचलित है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, प्रातः-सायं भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर देवें।

गुण और उपयोग- इसके उपयोग से हृदय की कमजोरी, दिल की धड़कन एवं फेफड़ों के विकार नष्ट होते हैं। यह हृदय को ताकत देता, हार्ट फेल नहीं होने देता तथा हृदय की निर्बलता को दूर कर बलवान बना देता है।

पिप्पल्यासव

पीपल, कालीमिर्च, चव्य, हल्दी, चीतामूल, नागरमोथा, वायविडंग, सुपारी, लोध्र, पाठा (जलजमनी), आँवला, एलुआ, खस, सफेद चन्दन, कूठ, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, प्रियंगु, नागकेसर-प्रत्येक २-२ तोला-इनका मोटा चूर्ण कर लें। पश्चात् २५, सेर ८ तोला जल में धाय के फूल आधा सेर, मुनक्का ३ सेर, गुड़ १५ सेर लेकर मिला दें एवं उपरोक्त दवाओं का चूर्ण भी उसमें मिलाकर, चिकने मटके (पात्र) में भरकर, यथाविधि सन्धान कर, आसव तैयार कर लें। भै.र.

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, प्रातः-सायं भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, क्षय, गुल्म, उदर रोग संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। यह अग्निदीपक, पाचक और भूख बढ़ाने वाला है। आँतों की कमजोरी दूर कर उन्हें बलवान बनाता है। श्वास और खाँसी में भी इसके सेवन से बड़ा उत्तम लाभ होता है। जीर्णज्वर में साथ ही मन्दाग्नि भी हो, तो इसका उपयोग दोनों में श्रेष्ठ गुणदायी है।

पुनर्नवारिष्ट

सफेद और लाल पुनर्नवा, बला, अतिबला, आकनादि पाठा, गिलोय, चित्रक की जड़, छोओी कटेली और वासा मूल-प्रत्येक १२-१२ तोला लेकर सबको कूटकर १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकायें। चौथाई (१२।।। सेर ४ तोला) पानी शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें १० सेर गुड़ और ६४ तोला शहद (अभाव में पुराना गुड़) मिला, पात्र में डालकर सन्धान करके १ मास तक रखा रहने दें। बाद में तैयार हो जाने पर इसमें नागकेसर, दालचीनी, इलायची बड़ी, काली मिर्च, सुगन्धबाला (खस) और तेजपात का चूर्ण २-२ तोला लेकर मिला दें। कुछ दिन के बाद छानकर उपयोग में लायें।

वक्तव्य- इस योग में गुड़ का परिमाण अधिक होने से द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार जल द्विगुण लिया है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला बराबर जल मिलाकर, दोनों समय भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पाण्डु, हृद्रोग, बढ़ा हुआ शोथ, प्लीहा, भ्रम अरुचि,

प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, अर्श, उदर रोग, खाँसी, श्वास, संग्रहणी, कोढ़, खुजली, शाखागत वायु, मल बन्ध, हिचकी, किलास, कुष्ठ और हलीमक रोग नष्ट होते हैं।

इस अरिष्ट का प्रभाव वृक्क (मूत्रपिण्ड), यकृत-प्लीहा और हृदय पर विशेष रूप से होता है। अतएव प्लीहा की विकृति के कारण अथवा मूत्रपिण्ड की विकृति के कारण उत्पन्न हुए शोथ अथवा हृदय की निर्बलता आदि यह शीघ्र नष्ट करता है। यह हृदय को ताकत पहुँचाता और उसे अपने कार्य करने में समर्थ बनाता है।

शोथ (सूजन) की उग्रावस्था में- रस-रक्तादि धातु कमजोर हो जाते हैं। पाचक पित्त की शिथिलता के कारण मन्दाग्नि और शरीर में जल भाग की वृद्धि हो रक्तकणों का ह्रास हो जाता है। फिर शरीर कान्तिहीन, पीला तथा सफेद-मायल दिखने लगता है। शोथ के रोगी को पेशाब या दस्त साफ नहीं आता। अतएव इसकी चिकित्सा करते समय ऐसी दवा का उपयोग करना चाहिए, जो मूत्र (पेशाब) साफ लायें तथा दस्त भी खुलकर हो। इससे शरीर में रूका हुआ दूषित विकार मल-मूत्र द्वारा निकल जाता है और सूजन भी घटने लगती है। इसके साथ में यदि सारिवाद्यासव भी थोड़ा मिलाकर दिया जाय तो बहुत शीघ्र फायदा करता है। इससे रक्त की वृद्धि होती है तथा शुद्ध रक्त तैयार होता है।

पाण्डु रोग में- पाण्डु रोग जब पुराना हो जाता है और शरीर में इस रोग की जड़ अच्छी तरह जम जाती है, तब शरीर का रंग पाण्डु वर्ण का हो जाता, हाथ, मुँह, पाँव आदि सूज जाते हैं, ज्वर भी होने लगता तथा प्लीहा और यकृत भी बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में पुनर्नवारिष्ट नवायस लौह के साथ उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

फलारिष्ट

बड़ी हर्रे और आँवला ६४-६४ तोला, इन्द्रायन के फल, कैथ का गूदा, पाठ, चित्रक-मूल प्रत्येक ८-८ तोला लेकर सबको कूट कर २५।। सेर ८ तोला पानी में पकायें। जब ६ सेर ६ छटाँक २ तोला पानी शेष रह जाये, तो छानकर उसमें ५ सेर गुड़ मिलाकर यथाविधि मिट्टी के चिकने पात्र में भर, उसका सन्धान करके रख दें। १५ दिन पश्चात् छानकर रख लें।-चरक संहिता

वक्तव्य- इसमें सन्धान क्रिया ठीक से हो इसके लिये धायफूल ८ तोला प्रक्षेप में डालें।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- यह अरिष्ट ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, पाण्डु, प्लीहा, कामला, विषमज्वर, वायु तथा मल-मूत्र का अवरोध, अग्निमांद्य, खाँसी, गुल्म और उदावर्त का नाश करता तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

यह दीपन-पाचन, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है। यह शरीर में रक्त के कणों को बढ़ाता है और रक्त को शुद्ध करता तथा हृदय विकार-जैसे हृदय कमजोर हो जाना या ज्यादा धड़कना, घबराहटें आदि विकारों को दूर करता है। पाचक पित्त को उत्तेजित करने वाला है। अतएव यह अग्निदीपक तथा भूख बढ़ाने वाला और उदावर्त नाशक है।

मलेरिया ज्वर अधिक दिन तक आने की वजह से शरीर में रक्त की कमी हो जाती और प्लीहा बढ़ जाती है। यही रोग जब पुराना हो जाता है, तब पाण्डु, कामला आदि रूप में प्रकट हो जाता है। ऐसी अवस्था में यह अरिष्ट, विषमज्वरान्तक लौह अथवा सुदर्शन चूर्ण के साथ देने से बहुत लाभ करता है।

बलारिष्ट

बला (खरेंटी) का पंचांग ५ सेर, असगन्ध ५ सेर-इनको जौकुट करके १०२ सेर ६ छटाँक २ तोला जल में क्वाथ करें, २५ सेर ९ छटाँक ३ तोला जल शेष रहने पर छान लें। पश्चात् इसमें पुराना गुड़ ३ तोला (१५ सेर) डालकर घोल दें, फिर इसमें धाय के फूल ६४ तोला, क्षीरकाकोली, एरण्डमूल-प्रत्येक ८-८ तोला, रास्ना, बड़ी इलायची, प्रसारणी, लौंग, उशीर, गोखरू बीज प्रत्येक ४-४ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करके मिलायें और सब सामान को पात्र में भर दें, पश्चात् एक माह बाद तैयार हो जाने पर छानकर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला, दोनों समय भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह औषध उत्तम वातनाशक, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक और जठराग्नि प्रदीपक है। इसके सोवन से समस्त प्रकार के कठिन-से-कठिन वातव्याधि रोग नष्ट होते हैं और खाँसी, श्वास, राजयक्ष्मा, प्रमेह तथा बलक्षय में भी लाभकारी है। यह स्नायुमण्डल को भी पुष्ट करता है।

बब्बूलारिष्ट

१० सेर बबूल की छाल को २ मन २२ सेर ३२ तोला पानी में पकावें, जब चौथाई (२५।। सेर ८ तोला) पानी शेष रह जाय, तो छान कर ठंडा करके उसमें २५ सेर गुड़, धाय के फूल ६४ तोला, पीपल का चूर्ण ८ तोला तथा जायफल, लौंग, कंकोल, बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर और काली मिर्च-प्रत्येक का मोटा चूर्ण ४-४ तोला, सबको चिकने मटके (पात्र) में भर कर उसका सन्धान करके १ माह तक रखा रहने दें। एक माह बाद तैयार हो जाने पर छान कर रख लें।-भै.र.

वक्तव्य- इस योग में गुड़ का परिमाण अधिक होने के कारण जल का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला बराबर जल मिला कर भोजन के बाद दोपहर और शाम को दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से क्षय, सोमरोग, उर:क्षय, दमा, खाँसी, रक्तपित्त, मूत्रविकार, रक्तविकार, अतिसार, कुष्ठ, प्रमेह आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह अरिष्ट कफ को दूर करता है और श्वासनली को साफ करता तथा खाँसी के साथ आनेवाले खून को रोकता है। अग्नि को दीप्त कर हाजमा ठीक करता है।

क्षय रोग में जब खाँसी और ज्वरादि उपद्रवों की अधिकता हो, खाँसी के साथ खून मिश्रित कफ निकलता हो, शरीर कमजोर हो, दुर्बलता, अग्निमान्द्य आदि उपद्रव विशेष हों, तो ऐसी दशा में इसका उपयोग किया जाता है।

दमा या खाँसी की उग्रावस्था में बब्बूलारिष्ट और द्राक्षारिष्ट दोनो समभाग में एकत्र मिलाकर देने से बहुत शीघ्र लाभ करता है। विशेषकर सूखी खाँसी में जिसमें खाँसते-खाँसते रोगी बेचैन हो जाता है। भूख नहीं लगती हो, कफ छाती में जमा हुआ हो, तो ऐसी हालत में इस दवा के साथ-साथ चन्द्रपुटी प्रवाल और सितोपलादि चूर्ण, वासावलेह आदि का भी उपयोग करते रहने से शीघ्र फायदा होता है।

वासारिष्ट

१० सेर वासा-पंचांग को कूटकर १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकायें २।।। सेर ४ तोला पानी शेष रहने पर छान लें, फिर उसमें ५ सेर गुड़, धाय के फूल ३२ तोला, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, मिर्च, पीपल और सुगन्धबाला का मोटा चूर्ण प्रत्येक ४-४ तोला लेकर सबको मिला, चिकने मटके (पात्र) में भर कर सन्धान कर दें। १ माह बाद तैयार हो जाने पर उसे छान कर सुरक्षित रख लें। -भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, खाना खाने के बाद दोनों समय बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह सब प्रकार की खाँसी को दूर कर तथा शरीर को पुष्ट कर बलवान बनाता है। यह काम-शक्ति को भी बढ़ाता तथा बन्ध्या स्त्री को सन्तानोत्पत्ति की शक्ति प्रदान करता है। खाँसी दूर करने के अतिरिक्त यह पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक तथा हाजमा को ठीक करने वाला है।

इसका उपयोग शोथ रोग नष्ट करने के लिये भी किया जाता है। कफ-प्रधान शोथ मे जल भाग की वृद्धि एवं रक्ताणुओं की भी कमी होने पर वहाँ सूजन हो जाती है। सूजन को अंगुली से दबाने पर गड्ढा हो जाता है, जो फिर धीरे-धीरे भरता रहता है। यही इसकी पहचान है। ऐसी सूजन को मिटाने तथा कफ को शान्त करने के लिए इसका उपयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वासक में लौह का अंश होने से वह कफ दोष को नष्ट करता है तथा रक्ताणुओं की शरीर में वृद्धि कर, जल भाग को सुखाकर शोथ (सूजन) कम कर देता है, जिससे फिर धीरे-धीरे शरीर बलवान, पुष्ट और सुन्दर-स्वस्थ बन जाता है।

इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी होता है। प्रदर, श्वेतप्रदर अथवा रजोविकार या और भी किसी कारण से गर्भाशय कमजोर हो गया हो, अथवा गर्भाशय की खाल मोटी हो गयी हो, शरीर की चर्बी ज्यादा बढ़ जाने के कारण गर्भाशय का मुँह ढक गया हो और इन कारणों में यदि सन्तान न होती हो, तो इस आसव का सेवन लगातार कुछ दिनों तक करायें। इसके साथ ही चन्द्रप्रभा बटी आदि का भी उपयोग कराते रहने से गर्भाशय का दोष दूर हो, स्त्री सुन्दर और स्वस्थ सन्तान पैदा करती है।

यदि स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य की कमजोरी से सन्तानोत्पत्ति में बाधा हो, तो दोनों को इसका सेवन करना चाहिए। साथ ही, जब तक यह दवा चालू रखें, ब्रह्मचर्य से रहें।

विडंगासव (विडंगारिष्ट)

वायविडंग, पीपलामूल, रास्ना, कुड़ा की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, एलबालुक (एलुवा), आँवला प्रत्येक २०-२० तोला लेकर जौकुट करके २ मन २२ सेर ३२ तोला जल में क्वाथ करें। १२।। सेर ४ तोला जल शेष रहने पर ठण्डा करके छान लें। पश्चात् उसमें शहद (अभाव में पुराना गुड़) १५ सेर, धाय के फूल १ सेर, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात-ये तीनों द्रव्य मिश्रित ८ तोला, प्रियंगु, कंचनार की छाल, लोध्र-प्रत्येक ४-४ तोला सोंठ, काली मिर्च, पीपल-ये तीनो मिश्रित ३२ तोला लेकर जौकुट करके मिलायें। पश्चात् घृतलिप्त पात्र में भर कर १ माह तक सन्धान करें, एक माह बाद छान कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला तक दोनों समय भोजन के बाद, समान भाग बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके उपयोग से उदर कृमि, विद्रधि, गुल्म, उरुस्तम्भ, अश्मरी, प्रमेह, प्रत्यष्ठीता, भगन्दर, गण्डमाला, हनुस्तंभ-इन रोगों को यह शीघ्र नष्ट करता है।

भृंगराजासव

भृंगराज (भांगरा) स्वरस ३२ सेर, गुड १२।। सेर, हरड़ आधा सेर, पीपल, जायफल, लौंग, दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर - प्रत्येक १०-१० तोला और धाय के फूल एक सेर लेकर जौकुट चूर्ण कर मिलावें तथा सब सामान को घृतलिप्त पात्र में भर दें। पश्चात् एक मह तक सन्धान करें, बाद में छानकर सुरक्षित रख लें।-ग.नि.

वक्तव्य- ताजे हरे भांगरे के स्वरस के अभाव में, सूखा भांगरा १६ सेर लेकर १२८ सेर जल के क्वाथ करें, ३२ सेर जल शेष रहने पर छानकर काम में लें। मूलपाठ में १५ दिन मात्र सन्धान करने का विधान है, किन्तु अनुभव से ज्ञान हुआ है कि इतने अल्प समय में सन्धान ठीक से नहीं होता है, अतएव एक माह तक सन्धान करना ही ठीक है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला तक, दोनों समय भोजन के बाद दें।

गुण और उपयोग- इस आसव के उपयोग से सभी प्रकार के धातुक्षय और राजयक्ष्मा रोग नष्ट होते हैं। पाचों प्रकार की खाँसी और कृशता को नष्ट करता है। यह बलकारक और कामोद्दीपक है। इसके सेवन से वन्ध्यत्व दूर हो स्त्री सन्तानवती होती है। धातुक्षय के रोगी को इसका प्रयोग कराने से मूत्र के साथ निकलने वाली धातु को रोकता है। यह आसव सुस्ती, निर्बलता, प्रमेह, स्मरणशक्ति की कमी, नेत्र रोग, श्वास रोग, नजला के कारण होने वाले नेत्र विकार, असमय में बालों का सफेद होना इत्यादि विकारों को भी नष्ट करता तथा दूषित रक्त को शुद्ध करता है।

मध्वारिष्ट

शहद १ तोला, पानी १ तोला, वायविडंग ८ तोला, पीपल १६ तोला, बंशलोचन, नागकेशर, कालीमिर्च-प्रत्येक ४-४ तोला दालचीनी, इलायची, तेजपात, कचूर, सुपारी, अतीस, नागरमोथा, रेणुका, एलबालुक, तेजबल, पीपलामूल, चित्रकमूल प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूटने योग्य चीजों को मोटा कूट लें। फिर शहद में जल और पीपल का चूर्ण मिला कर कुछ शहद और अगर से धूप दिये चिकने मटके (पात्र) में भर दें, उसी में उपरोक्त अन्य दवाओं के चूर्ण को डालकर सन्धान कर १ माह तक रखा रहने दें। बाद में तैयार हो जाने पर छानकर रख लें। - च.चि. स्थान

वक्तव्य- इसमें सन्धानार्थ धायफूल १० तोला प्रक्षेप रूप में डालने से ठीक बनता है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, खाने के बाद, बराबर शीतल जल मिला कर दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से मन्दाग्नि और विषमाग्नि-विकार दूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह अरिष्ट, हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, कुष्ठ, अर्श, ज्वर, शोथ और वातज तथा कफ जन्य रोगों को भी नष्ट करता है।

जठराग्नि की विकृति में- भूख नहीं लगना, खाई हुई चीजें ठीक से हजम न होना, खट्टी डकारें आना, कभी सुबह, कभी शाम और कभी रात को भूख लगना, कभी दो-दो दिन तक भूख नहीं लगना, पेट भारी मालूम पड़ना, दर्द भी होना, जी मिचलाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी हालत में यह अरिष्ट लवण भास्कर चूर्ण या क्रव्याद रस अथवा हिंग्वष्टक चूर्ण आदि के साथ देने से बहुत फायदा करता है, क्योंकि यह पाचक पित्त को प्रदीप्त कर जठराग्नि को बढ़ाता है तथा

हाजमें को भी जठराग्नि को बढ़ाता हैं तथा हाजमें को भी ठीक करता हैं। मन्दाग्नि से उत्पन्न होने वाले पाण्डु, ग्रहणी आदि रोगों में भी इससे बहुत फायदा होता है। पौष्टिक पदार्थों के सेवन करने से शरीर में वसा (चर्बी) की वृद्धि हो जाती हैं। इससे चलने-फिरने, परिश्रम करने में दिक्कत होती है- ऐसे व्यक्तियों को मध्वारिष्ट सेवन से उत्तम लाभ होता है।

मस्त्वासव

मस्तु (दही का पानी) १२।। सेर ४ तोला लेकर उसमें ५ सेर गुड़ मिलावें तथा पीपल ६४ तोला और हर्रे, बहेड़ा, आँवला ६४-६४ तोला, वायविडंग, कालीमिर्च, मुनक्का, गम्भारी के फल और फालसा के फल, इन्द्रजौ-प्रत्येक १६-१६ तोला, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेली दोनों, गोखरू, बच, दन्तीमूल, चित्रकमूल और शुद्ध भिलावा-प्रत्येक ८-८ तोला, इनको जौकुट कर उपरोक्त वस्तु में मिला, मिट्टी के चिकने एवं बच और कूठ का लेप किये बर्तन में भरकर, उसको सन्धान कर, 1 माह तक छोड़ दें। बाद में तैयार होने पर छानकर रख लें।

वक्तव्य- इसमें सन्धानार्थ 16 तोला धायफूल प्रक्षेप में डालने से उत्तम बनता है।

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, सुबह-शाम, बराबर जल मिलाकर देना चाहिए।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से पाण्डुरोग, उदररोग, ग्रहणी विकार, अर्श (बवासीर), भगन्दर, प्लीहा, शोष, खाँसी, आमवात, बाधिर्य (बहरापन), मोटापा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं, इसका उपयोग ग्रहणी और अर्श रोग में विशेष किया जाता है। यह रोचक, पाचक, दीपक और लेखन है। कृमिरोगनाशक और कौष्ठस्थ वात-शामक भी है।

मृगमदासव

मृत संजीवनी सुरा (अथवा रेक्टीफाइड स्पिरिट) २।। सेर, शहद १। सेर, पानी १। सेर, कस्तूरी १६ तोला तथा काली मिर्च लौंग, जायफल, पीपल, दालचीनी-प्रत्येक ८-८ तोला लेकर प्रथम कस्तूरी को सूरा में घोल लें, फिर सब चीजों को काँच के पात्र में भरकर, उसका मुख बन्द करके रख दें। १ माह बाद निकालकर, छान कर बोतलों में भरकर रख लें। -भै.र.

मात्रा और अनुपान- १० से १५ बूँद, १ तोला जल अथवा चीनी या बताशे में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से हैजा, हिचकी और सन्निपात ज्वरादि में कोष्ठ और बल का विचार कर उचित मात्रा में प्रयोग करने से ये सब रोग दूर हो जाते हैं। कफ-प्रधान सन्निपात (निमोनिया) तथा बच्चों को होने वाले ब्रोंकाइटिस, निमोनिया तथा कफ प्रधान श्वास और खाँसी में इसके दिन-रात में आवश्यकतानुसार कई बार सेवन करने से बहुत उत्तम लाभ होता है। शीतांग हुए मरणासन्न रोगियों को भी इसे सेवन कराने पर चेतना एवं शरीर में गर्मी उत्पन्न हो जाती है। मुँह द्वारा न पी सकने की स्थिति में आधी शीशी (३० बूँद दवा) का शिरान्तर्गत सूचीवेध देना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र ही लाभ होता है।

विसूचिका (हैजा) की अत्युग्रावस्था में- जब सम्पूर्ण शरीर शीतल हो गया हो, नाड़ी क्षीण , बेहोशी, वमन और दस्त अनायास ही हो रहे हों, प्यास ज्यादा हो, शरीर में ऐंठन हो, शरीर की कान्ति नष्ट हो गयी हो, चेहरा काला पड़ गया हो, ऐसी अवस्था में यह आसव अमृत के समान गुण करता है।

हिचकी- प्रकुपित वायु का उर्ध्वगति होना ही हिचकी कहलाती है। यह आठ प्रकार की होती है। अन्नजा (खाना खाने के बाद जो हिचकी होती है, उसको अन्नजा कहते हैं), यमला (एक ही बार में दो बार हिचकी होने को यमला कहते हैं), क्षुद्रा (यह बहुत धीरे-धीरे होती हैं), गम्भीरा (यह हिचकी नाभिस्थान से उठती है और इसमें सब नसें खिंचने लगती हैं), महती (यह हिचकी जब होती है तो जोर के साथ आवाज होती है), इनमें वायु की ही प्रधानता रहती है। ऐसी दशा में यह आसव थोड़ी-थोड़ी मात्रा में दिन भर में ३-४ बार देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

सन्निपात ज्वर में- तीनों दोषों का प्रकोप रहता है। इसमें वायु प्रधान सन्निपात में अक-बक बकना (प्रलाप), बेहोशी, शरीर में दर्द, हृदय की कमजोरी, नाड़ी क्षीण, हाथ-पाँव ठण्डे पड़ जाना, ज्वर गम्भीर रूप में रहना आदि अवस्था उत्पन्न होने पर हृदय को ताकत पहुँचाने के लिये अन्य दवाओं के साथ-साथ इसका भी प्रयोग स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी दवा में मिलाकर किया जाता हैं। इससे रोगी ज्यादा जोर से प्रलाप नहीं करता तथा निद्रा भी आ जाती है। अण्ट-सण्ट बकना भी बन्द हो जाता है। हृदय भी बलवान हो जाता है और नाड़ी की चाल भी ठीक स्थिति पर आ जाती है। यह पौष्टिक भी है। स्वस्थ आदमी अपने शरीर में ताकत बढ़ाने के लिए अंगूर, सेव, सन्तरा, बेदाना आदि फलों के रस के साथ इसका व्यवहार करते हैं। नियमित रूप से कुछ दिनों तक इसका व्यवहार करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

महामञ्जिष्ठाद्यरिष्ट

मंजीठ, नागरमोथा, कुड़े की छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, छोटी कटेरी, बच, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, बहेड़ा, हरड़, आँवला, पटोल पत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडंग, विजयसार, सखुवा की छाल (शाल), शतावर, त्रायमाणा (बनप्सा), गोरखमुण्डी, इन्द्रजौ, वासे की जड़, भांगरा, देवदारु, पाठा, खदिरकाष्ठ, लालचन्दन, निशोथ, वरुण की छाल, करंज की छाल, अतीस, खस, इंद्रायण की जड़, धमासा, अनन्तमूल, पित्तपापड़ा-प्रत्येक १-१ सेर लेकर ९ मन जल में पकावें, २। मन जल शेष रहने पर ठण्डा करके छान लें, फिर उसमें गुड़ ३५ सेर १२ तोला ६ माशे, धाय के फूल ३।। सेर मिलाकर घृतलिप्त पात्र में भर दें और एक मास तक सन्धान करें। एक माह पश्चात् छानकर सुरक्षित रख लें।-सि.यो.सं. के आधार पर

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला तक दोनों समय भोजन के बाद बराबर जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग- इस औषधि के उपयोग से कुष्ठ रोग, वातरक्त, अर्दित, मेदोवृद्धि, श्लीपद (फीलपाँव) रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त रक्तदुष्टिजन्य, त्वचारोग, खाज-खुजली, फोड़े-फुन्सी आदि में अकेला या गन्धक रसायन अथवा शुद्ध गन्धक या रसमाणिक्य या अन्य किसी रक्तदुष्टिनाशक औषधि के अनुपान के साथ इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। यह श्रेष्ठ रक्तशोधक औषध है।

वक्तव्य- सिद्धयोग संग्रह में महामंजिष्ठादि कषाय के नाम से जो योग है, उसी को चिरस्थायी एवं गुणवृद्धियुक्त करने के लिये हम शारंगधरोक्त आसव-अरिष्ट को परिभाषानुसार बनाकर 'महामंजिष्ठाद्यारिष्ट' के नाम से व्यवहार करते हैं।

मृतसंजीवनी सुरा

नवीन गुड़ ६। सेर, बबूल की छाल, बेर की छाल और सुपारी १-१ सेर, लोध्र २० तोले। अदरक १० तोले लेकर कूटने योग्य चीजों को कूट लें तथा अदरक को पत्थर पर पीस लें।

पश्चात् सबसे पहले ८ गुने पानी में गुड़ को घोलें। फिर उसमें क्रमशः अदरक, बबूल छाल, बेर की छाल तथा अन्य औषधियाँ मिला दें और सबको चिकने मटके (पात्र) में भरकर उसको ढक्कन लगाकर, यत्नपूर्वक सन्धान कर दें। २० दिन पश्चात उसे निकालकर मयूर यन्त्र अथवा मोचिका यन्त्र (भबका) में डालकर चूल्हे पर रख मन्दाग्नि से अर्क खींचते समय उसमें निम्नलिखित चीजों का चूर्ण भी डाल देना चाहिए।

सुपारी, एलबालुक, देवदारु, लौंग, पद्माख, खस, सफेद चन्दन, सोया, अजवायन, काली मिर्च, सफेद जीरा, स्याह जीरा, कचूर, जटामांसी, दालचीनी, इलायची, जायफल, नागरमोथा, गठिवन, सोंठ, मेथी, मेंढासिंगी, चन्दन-प्रत्येक २।।-२।। तोला।

इस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति इस अर्क (सुरा) को नाड़िका यन्त्र (भबका) से खींचकर रख लें। -सि.भे.म.मा.

वक्तव्य- प्रायः वैद्य सुपारी और एलबालुक आदि प्रक्षेप द्रव्यों को भी जौकुट करके संधान करते समय ही मिला देते हैं, जिससे उसमें उनके गुण (कार्यकारी तत्व) अच्छी तरह आ जाते हैं। इसमें मद्यांश प्रतिशत अधिक होता है। अतः इसे आबकारी कानून के अनुसार लाइसेन्स लेकर बनाना होता है तथा जितना तैयार होती है उस पर आबकारी कर चुकाकर ही बिक्री आदि के व्यवहार में लिया जा सकता है।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से २ तोला बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसे यथोचित मात्रा के अनुसार सेवन करने से देह सुदृढ़ होती है तथा बल-वर्ण की वृद्धि होकर शरीर की कान्ति अच्छी होती जाती है। हैजा अथवा सन्निपात ज्वर में भी शरीर ठण्डा हो जाने पर इस दवा का उपयोग किया जाता है।

यह पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और प्रकुपित वायुनाशक तथा स्फूर्ति और पराक्रम पैदा करने वाली है। यह प्रसूता स्त्री की कमजोरी दूर कर बलवृद्धि करती और स्वप्नदोष या विशेष वीर्यपात से होने वाली कमजोरी को दूर करती है। बल और वीर्य की वृद्धि कर कामोत्तेजना को बढ़ाती है। शीतकाल में सेवन से ठंडक कम अनुभव होती है, क्योंकि यह गर्मी पैदा करती है।

प्रसूता स्त्री को- प्रसव के बाद नियमित आहार या उपचार के अभाव से वायु प्रकुपित हो अनेक उपद्रव उत्पन्न कर देता है। जैसे-ज्वर होना, शरीर भर में विशेषकर गाँठों और कमर तथा हाथ-पैर आदि में दर्द होना, भूख न लगना, उठते-बैठते चक्कर सा आना, अन्न में अरूचि, हाजमें की गड़बड़ी, पेट फूल जाना, कभी-कभी पतला दस्त हो जाना आदि उपद्रव होने पर यह औषधि देने से बहुत शीघ्र लाभ करती है।

निमोनिया, सन्निपात ज्वर अथवा हैजा में शरीर बहुत जल्द ठण्डा हो जाता है। इसका कारण यह है कि इन रोगों का प्रभाव सबसे पहले हृदय और रक्तवाहिनी शिराओं पर पड़ता है, जिससे हृदय की गति में अन्तर पड़ जाता अर्थात् गति मन्द हो जाती है। फिर नाड़ी भी मन्द-मन्द चलने लगती और खून का संचार ठीक न होने से उसमें गर्मी की जगह शीतलता आ जाती है। इस हालत में शरीर का शीतल हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी अवस्था में अन्य दवाओं के साथ थोड़ा-थोड़ा इस महौषधि का भी उपयोग करना बहुत लाभदायक होता है। इससे रक्त में गर्मी आकर शरीर गर्म हो जाता तथा हृदय की गति भी ठीक पर आ जाती है और नाड़ी भी ठीक-ठीक चलने लगती है। श्वास-दमा तथा खाँसी के बढ़े हुए वेग को तुरन्त शमन करती है।

यह पौष्टिक और बाजीकर होने के कारण शरीर की पुष्टि तथा बाजीकरण के लिए भी लोग इसका प्रयोग करते हैं।

मुस्तकारिष्ट

नागरमोथा १२।। सेर को जौकुट करके १२८ सेर जल में पकावें, ३२ सेर पानी शेष रहने पर छान लें, पश्चात् उसमें गुड़ १८।। सेर धाय के फूल १ सेर, अजवायन, सोंठ, काली मिर्च, लौंग, मेथी, चित्रक-मूल की छाल, सफेद जीरा प्रत्येक १०-१० तोला लेकर जौकुट कर मिलायें। फिर सबको घृतलिप्त, पात्र में भरकर १ मास तक सन्धान करें। एक मास पश्चात् तैयार हो जाने पर सुरक्षित रख लें।-भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला तक, दोनों समय भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस अरिष्ट के उपयोग से जीर्ण और नवीन अतिसार तथा संग्रहणी रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त यह अजीर्ण, मन्दाग्नि, विसूचिका (हैजा) और उदर रोगों को नष्ट करता है और दस्त के पतलेपन को गाढ़ा कर देता तथा प्रकुपित उदरवात को शमन कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

मण्डूराद्यरिष्ट

शुद्ध मण्डूर चूर्ण ३ सेर १० तोला, शुद्ध लोह चूर्ण ३ सेर १० तोला, पुराना गुड़ १० तोला, बेर की छाल ३ सेर, दन्तीमूल, चित्रकमूल-प्रत्येक १०-१० तोला पीपल और वायविडंग २०-२० तोला हरड़, बहेड़ा, आँवला-प्रत्येक १-१ सेर लेकर कूटने योग्य द्रव्यों का जौकुट चूर्ण करें, फिर ३२ सेर पानी में मिलाकर घृतलिप्त-चिकने पात्र में भर कर सन्धि बन्द करके १५ दिन तक सन्धान करें। १५ दिन बाद छानकर सुरक्षित रख लें।- यो.र.

वक्तव्य- द्रव्य-द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार जल का परिमाण द्विगुण लिया गया है। इस योग में आसवारिष्ट के मूलोत्पादक द्रव्य गुड़ का परिमाण कम होने से सन्धान क्रिया समुचित नहीं हो पाती, अतः गुड़ भी द्विगुण देना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला तक दोनों समय भोजन के बाद, समान भाग जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग- इस आसव (अरिष्ट) के उपयोग से शरीर के ऊर्ध्व तथा अधोभाग में होने वाले विकार नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त पाण्डु, कामला, कृमि रोग, कुष्ठ, कास-श्वास (दमा) तथा कफजनित रोग और शोथ (सूजन) को नष्ट करता है। यकृत-प्लीहावृद्धि और रक्ताल्पता (एनिमिया) की यह सर्वश्रेष्ठ दवा है। हृदय रोग में उत्तम लाभकारी है।

रोहितकारिष्ट

रोहेड़े की छाल 5 सेर को जौकुट करके २ मन २२ सेर ३२ तोला पानी में पकावें। जब २५।। सेर ८ तोला पानी शेष रहे, तब छान लें। फिर इस काढ़े में १० सेर गुड़ और धाय के फूल ६४ तोला तथा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, हर्रे, बहेड़ा आमला प्रत्येक ४-४ तोला लेकर मोटा चूर्ण बना, उपरोक्त काढ़े में मिला, मिट्टी के चिकने बर्तन (मटके) में रखकर सन्धान कर एक माह तक रखा रहने दें। फिर एक माह बाद तैयार हो जाने पर मिलाकर छान लें।-भा.भै.र.

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला, बराबर जल मिलाकर खाना खाने के बाद, दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से तिल्ली, यकृत, वायुगोला, अग्निमान्द्य, हृद्रोग, पाण्डु, संग्रहणी, कुष्ठ, शोथ (सूजन) आदि रोग दूर हो जाते हैं।

यह रक्तशोधक और पाचक भी है। प्लीहा अथवा यकृत बढ़ जाने से शरीर कमजोर हो जाना, भूख नहीं लगना, अग्निमान्द्य हो जाना, पेट भरा रहना, अन्न में अरूचि, खाने की इच्छा न होना आदि उपद्रव होने पर यह अरिष्ट बहुत अच्छा काम करता है, क्योंकि यह पाचक है और पित्त को जागृत कर हाजमा (पाचनशक्ति) को ठीक करता है। तथा बढ़ी हुई प्लीहा और यकृत को भी घटाता है।

हृद्रोग और खूनी तथा बादी बवासीर में इसके उपयोग से लाभ होता है। अर्श (बवासीर) में दस्त कब्ज होना ही रोग सूचक है। यदि दस्त साफ-साफ और समय पर होता रहे, तो फिर अर्श में वेदना आदि किसी तरह की तकलीफ नहीं होती है। रोहितकारिष्ट में यह विशेष गुण है कि दस्त साफलता है और भूख को भी जगाता है अतएवं अर्श रोग में इसके सेवन से लाभ होता है।

लवंगासव

लौंग, पीपल, अनार, कालीमिर्च और एलबाहुक का चूर्ण ८-८ तोला लेकर सबको १ मन ११ सेर १६ तोला पानी में पकावें। १२।।। सेर ४ तोला पानी शेष रहने पर छान लें। क्वाथ जब ठण्डा हो जायें, तो १० सेर गुड़ मिला कर, मटके (पात्र) में भरकर सन्धान कर, एक माह तक रहने दें और बाद में तैयार होने पर छानकर रख लें।-ग.नि.

वक्तव्य- इसमें सन्धानार्थ ३२ तोला धायफूल और डालना चाहिए।

मात्रा और अनुपान-१ से २ तोला भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से अर्श, संग्रहणी, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, कुष्ठ, सूजन, अरूचि, कामला, क्षय, कृमि, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, व्यंग, ज्वर आदि रोग नष्ट होते हैं। यह बल, वर्ण और अग्निवर्धक भी है।

लोध्रासव

लोध्र, कचूर, पोहकरमूल, बड़ी इलायची, मूर्वा, वायविडंग, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, अजवायन, चव्य, फूलप्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड़, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रक, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, इन्द्रायण, नखी, तेजपात, काली मिर्च (वाग्भट में दालचीनी लेने का आदेश है।) और मोथा- प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको अधकुटा (जौकुट) करके १२।।। सेर ४ तोला पानी में पकायें और ३ छटांक १ तोला पानी शेष रहने पर छान लें। फिर इसमें १ सेर ९ छटाँक ३ तोला शहद (अभाव में पुराना गुड़) मिलाकर सबको घृत से चिकने किये मटके (पात्र) में रख सन्धान कर दें। १ माह बाद तैयार हो जाने पर छानकर रख लें। -च.सं.यो.र.

वक्तव्य- इसमें सन्धानार्थ १२।। तोला धायफूल डालकर बनाने से उत्तम बनता है। किसी-किसी पुस्तक में यही योग मध्वासव नाम से है।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला खाना खाने के बाद सुबह-शाम समान भाग जल मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- पेशाब की जलन, बार-बार या अधिक मात्रा में बूँद-बूँद पेशाब होना, मूत्राशय का दर्द, पेशाब की नली में सूजन, धातुस्राव होना-विशेष कर स्वप्नावस्था में, कफ खाँसी, चक्कर आना, संग्रहणी, अरुचि, पाण्डू रोग आदि इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

यह आसव पाचक, रक्त को शुद्ध करने वाला तथा कब्जियत (बद्धकोष्ठता) नाशक है। इसके सेवन से स्त्रियों के रजोविकार नष्ट होते हैं और गर्भाशय को बल मिलता है। अतएवं, स्त्रियों के

लिये यह बहुत उपयोगी दवा है।

इस आसव का उपयोग प्रमेह, शुक्रमेह तथा रक्तप्रदरादि रोगों में विशेषतया किया जाता है, क्योंकि इसका असर वृक्क (मूत्रपिण्ड) गर्भाशय और यकृत पर विशेष होता है। रक्तप्रदर में अरविन्दासव और सारस्वतारिष्ट अथवा उशीरासव या अशोकारिष्ट के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

लोहासव

लोहे का बुरादा, सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्रे, बहेड़ा, अजवायन में वायविडंग, नागरमोथा, चित्रकमूल-प्रत्येक १६-१६ तोला, धाय के फूल १ सेर, शहद (अभाव में पुराना गुड़) ३ छटाँक १ तोला, गुड़ ५ सेर और जल २५।। सेर ८ तोला लेकर उसमें गुड़ और शहद मिला दें तथा कूटने योग्य चीजों को मोटा कूटकर सबको घृत से चिकने किये हुए पात्र में भर कर, सन्धान करके १ माह तक रहने दें, पश्चात् तैयार हो जाने पर छानकर रख लें।

नोट- लोहासव में लौहचूर्ण के स्थान में लौहभस्म डाला जाय, तो विशेष उत्तम बनता है। लौहभस्म को प्रथम हर्रे के क्वाथ मे भिंगों दें। फिर तीन दिन पश्चात् उसमें आँवला और बहेड़े का चूर्ण और मिला दें। इसके चार दिन बाद इस मिश्रण को आसव के पात्र में डालना चाहिए। इस क्रिया से लौहभस्म आसव में विलीन हो जाती है।

वक्तव्य- इस योग में शहद और गुड़ का परिमाण कम होने से खट्टापन आ जाता है। दुगुने परिमाण में डालने से उत्तम बनता है।

मात्रा और अनुपान- १। तोला से २।। तोला, भोजन के बाद, दोनों समय समान भाग जल मिला कर सेवन करें।

गुण और उपयोग- पाण्डु, गुल्म, सूजन, अरुचि, संग्रहणी, जीर्णज्वर, अग्निमांद्य, दमा, कास, क्षय, उदर, अर्श, कुष्ठ, कण्डू, तिल्ली, हृद्रोग और यकृत-प्लीहा की विकृती को नष्ट करता है।

जीर्णज्वर अथवा अधिक दिन तक मलेरिया ज्वर (विषमज्वर) आने से यकृत या प्लीहा की वृद्धि होने पर इस आसव का प्रयोग किया जाता है। इसमें ज्वर की गर्मी अथवा ज्वर बराबर बना रहना या दूसरे-तीसरे दिन ज्वर हो जाना, कुछ देर तक रहकर ज्वर का वेग कम हो जाना, बुखार जाड़ा लगकर चढ़ना, अग्निमांद्य, भूख की कमी, रस-रक्तादि धातुओं के क्षीण हो जाने के कारण शरीर पाण्डू (पीले) वर्ण का हो जाना, मुँह और हाथ-पैरों में कुछ-कुछ सफेदी और सूजन दिखाई देना तथा दस्त में कब्ज आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी हालत में यह आसव बहुत शीघ्र अपना प्रभाव दिखाता है।

पाण्डुरोग- जब रक्ताणुओं (रक्तकणों) की कमी के कारण शरीर पीला हो जाता है, तब मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठता (कब्जियत), कमजोरी, किसी काम में मन न लगना, अनुत्साहित बना रहना आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसी दशा में लौहासव के उपयोग से मन्दाग्नि आदि दोष दूर हो जाते है। धीरे-धीरे जल भाग कम होने लगता और सूजन भी कम हो जाती है।

श्रीखंडासव

सफेद चंदन, काली मिर्च, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रकमूल, मोथा, खस, तगर, मुनक्का, लाल चन्दन, नागकेशर, पाठा, आमला, पीपल, चव्य, लौंग, एलबाहुक लौध-प्रत्येक २-२ तोला लेकर सबको जौकुट चूर्ण बना लें। फिर २५।। सेर ८ तोला पानी में मुनक्का ६० पल (३ सेर), गुड़ १५ सेर और धाय के फूल ४८ तोला मिलाकर उपरोक्त चूर्ण सहित सबको एक

मटके (पात्र) में भर कर उसका सन्धान कर दें। एक मास बाद तैयार हो जाने पर निकालकर छानकर रख लें।- भै.र.

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला प्रात:-सायं बराबर जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से मद्यजनित रोग यथा- पानात्यय, पानविभ्रम में पानाजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं। पैत्तिक (पित्तजन्य) रोगों में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। रक्तपित्त, प्यास की अधिकता, बाह्य और अंतर्दाह, रक्तदोष, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, शुक्रदोष आदि विकारों में भी यह उत्तम लाभदायक है।

सारस्वतारिष्ट

ब्राह्मी १ सेर, शतावर, विदारीकंद, बड़ी हर्रे, खस, अदरक और सौंफ-प्रत्येक २०-२० तोला, सबको जौकुट कर २५।। सेर ८ तोला जल में पकावें।

जब चौथाई (६ सेर ६ छटाँक २ तोला) जल बाकी रहे, तब कपड़े से छान कर उसमें शहद (अभाव में पुराना गुड़) ४० तोला और चीनी (खाण्ड) १। सेर, धाय के फूल २० तोला, रेणुका, निशोथ, छोटी पीपल, लौंग, बच, कूठ, असगंध, बहेड़ा, गिलोय (गूर्च), छोटी इलायची, वायविडंग, दालचीनी और स्वर्णपत्र-प्रत्येक १-१ तोला, इनका चूर्ण कर, सब सामान को चीनी मिट्टी की पेचदार ढक्कन वाली बरनी (बर्तन में) भरकर एक मास रहने दें। एक मास बाद तैयार हो जाने पर, कपड़े से छान कर रख लें।- भै.र.

वक्तव्य- स्वर्णमात्र के स्थान पर सुवर्ण लवण मिलाकर भी बना सकते हैं। सुवर्ण लवण छानने के बाद मिलाना चाहिए। इस योग में जल का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार लिया गया है। बहुत से वैद्य बिना स्वर्णपत्र डाले भी बनाते हैं। उसमें स्वर्ण के गुणों को छोड़कर शेष सभी गुण रहते हैं। सर्वसाधारण के लिये यह उपयोगी है।

मात्रा और अनुपान- १ तोला से २ तोला तक, सुबह-शाम खाना खाने के बाद समान भाग जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से आयु, वीर्य, धृति, मेधा (बुद्धि), बल, स्मरणशक्ति और कान्ति की वृद्धि होती है। यह रसायन-हृद्य अर्थात् हृदय के रोगों को दूर करने वाला या हृदय को बल प्रदान करने वाला है। बालक, युवा (जवान), वृद्ध, स्त्री-पुरुषों के लिए हितकारी है-यह ओजवर्द्धक है। इसके सेवन से आवाज मधुर हो जाती है। रजोदोष और शुक्रदोष नष्ट करने के लिए इस आसव का उपयोग किया जाता है। अधिक पढ़ने अथवा और भी किसी कारण से स्मरणशक्ति का ह्रास हो गया हो, तो उसे भी ठीक करता है।

यह आसव बलवर्धक, हृदय को पुष्ट करने वाला, चित्त को प्रसन्न करने वाला तथा दिमाग को तर रखने वाला है। इसका प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों पर विशेष होता है, यह पित्त शामक भी है।

कभी-कभी स्त्रियों को ऐसा मालूम होता है, कि शरीर घूम रहा है। उनकी नजर के सामने सब चीजें घूमती दिखाई देती है। इसमें चक्कर आना, आँख बंद करने से अच्छा मालुम पड़ना, आँख खोलने में परिश्रम और चक्कर का वेग विशेष मालुम होना, घबराहट, चित्त में अशान्ति, तन्द्रा, निद्रा न आना, किसी की बात अच्छी न लगना, कभी-कभी बेहोश भी हो जाना आदि उपद्रव होते हैं। ऐसी अवस्था में सारस्वतारिष्ट के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है, क्योंकि उपरोक्त विकार मासिक धर्म की खराबी से उत्पन्न होता है। जिस स्त्री को मासिक धर्म

ठीक-ठीक नहीं होता अथवा एकदम नहीं होता या नियत समय पर और उचित मात्रा में नहीं होता, उसे पित्त प्रकोप के कारण उपरोक्त उपद्रव होते हैं, जिससे वातवाहिनी नाड़ियाँ भी उत्तेजित हो जाती हैं। इन सबका सारस्वतारिष्ट तुरन्त शमन कर देता है।

छोटे-छोटे बच्चों को लगातार दूध के साथ कुछ दिन तक नियमित रूप से सेवन कराने से उनकी बुद्धि तीव्र हो जाती, स्मरण-शक्ति बढ़ती, बोली अच्छी और स्पष्ट निकलने लगती तथा आँख की रोशनी तेज हो जाती है। अर्थात् गले से ऊपर जितने अंग हैं, उन अंगों को इससे काफी सहायता मिलती है, इसलिए उन्माद और अपस्मार आदि मानसिक विकारों को दूर करने के लिए सबसे पहले इसी का प्रयोग किया जाता है।

जिस स्त्री को यौवनवय आने पर भी रजोधर्म न होता हो, शरीर दुबला हो, अंग प्रत्यंग पुष्ट न हों, शरीर में रक्त की कमी हो, उसे सारस्वतारिष्ट के सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता है। यह गर्भाशय और बीजाशय दोनों को बलवान बनाता है।

सारिवाद्यासव

सारिवा (अनन्तमूल), मोथा, लोध, बरगद की छाल, पीपल वृक्ष की छाल, कचूर, अनंतमूल, सफेद, पद्माख, सुगन्धवाला, पाठा, आमला, गिलोय, खस, दोनों चन्दन, अजवायन, कुटकी- प्रत्येक ४-४ तोला, छोटी और बड़ी इलायची कूठ, सनाय, हर्रे-प्रत्येक १६-१६ तोला लेकर सब को जौकुट बना लें। फिर एक मटके में २५।। सेर ८ तोला पानी डालकर उसमें यह चूर्ण और १५ सेर गुड़ ४० तोला धाय के फूल तथा ६० पल (३ सेर) मुनक्का डालकर सन्धान कर दें, और एक माह पश्चात् तैयार होने पर निकालकर छानकर रख लें। -भै. र. मूल संस्कृत श्लोक के पाठानुसार

मात्रा और अनुपान- १। से २।। तोला, भोजन के बाद, सबेरे और शाम को, समान भाग जल मिला कर दें।

गुण और उपयोग- यह आसव २० प्रकार के प्रमेह, पीड़िका, उपदंश और इसके उपद्रव, वातरक्त, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, नाड़ीव्रण, पीब बहने वाले फोड़े-फुन्सियाँ आदि रोगों को नष्ट करता है। यह आसव रक्तशोधक, रक्तप्रसादक, मूत्रशोधक और पेशाब साफ लाने वाला है।

अधिकतर प्रमेह रोग बहुत दिनों तक ध्यान में नहीं आता है। जब इस रोगी की तरफ ध्यान जाता हैं, उस समय यह मधुमेह के रूप में बदल जाता है अथवा पीडिका उत्पन्न हो गयी होती है। अतएव ऐसे भयंकर रोग के ऊपर विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्राकृतिक नियमों में थोड़ा भी अन्तर पड़ जाने पर भी लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से यह दोष मिट जाता है।

पित्तजन्य प्रमेहों पर इसका उपयोग किया जाता है। इसका प्रभाव वातवाहिनी नाड़ियों पर तथा मूत्र-पिण्ड, स्त्री जननेन्द्रिय, गर्भाशय, बीजाशय आदि पर अधिक होता है।

मस्तिष्क के विकारों में भी इसका अच्छा असर होता है। कोई-कोई वैद्य उन्माद रोग में सर्पगन्धा चूर्ण के साथ इस आसव का प्रयोग करने की राय देते हैं और इससे लाभ भी होता है।

मूत्राश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अथवा रुक-रुक कर पेशाब होना, पेशाब में जलन होना, लाल रंग का पेशाब होना, पेशाब करते समय पेडू अथवा मूत्रनली में दर्द होना या सूजाक रोग के कारण मूत्र में जलन अथवा दर्द होना या पीब आना आदि विकारों में इस आसव के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

सूजाक या उपदंश, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए विशेष कष्टदायक है। एक बार जिस स्त्री को यह रोग हो गया हो फिर उसकी जड़ उखाड़ना कठिन हो जाता है। इसमें स्त्रियों को

ज्यादा तकलीफ होती है। जननेन्द्रिय में खुजली होती, काम की प्रवृत्ति विशेष बनी रहती, मवाद आता और साथ ही सूजन भी आ जाती है। ऐसी स्थिति में सारिवाद्यासव का उपयोग लगातार करने से बहुत लाभ होता है। साथ ही त्रिफलाजल से योनि को धोते रहने और यह क्रिया दिन भर में तीन-चार बार करते रहने तथा इस आसव का नियमित रूप से सेवन करने से और पथ्यपूर्वक रहने से बहुत शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

वक्तव्य- प्रायः वैद्य और निर्माता इसी योग को सारिवाद्यारिष्ट के नाम से भी बनाते हैं, अतएव सारिवाद्यासव की अपेक्षा सारिवाद्यारिष्ट के नाम से ही यह अधिक प्रचलित है।

सुन्दरीकल्प

अशोक छाल २५ सेर, लोध्र-छाल १२१/२ सेर को लेकर इनको जौकुट चूर्ण करके २५६ सेर जल में क्वाथ करें, ६४ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें, फिर उसमें चीनी २५ सेर, गुड़ १२ सेर डालकर अच्छी तरह घोल दें तथा धाय के फूल ४ सेर, मुनक्का ५ सेर, सफेद जीरा, नागरमोथा, सोंठ, दारुहल्दी, कमल फूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, आम की गुठली की मींगी, केशर (अभाव में नाग केसर), वासा-मूल, सफेद चन्दन, रसौत, पतंगकाष्ठ, खदिर-काष्ठ, बेलगिरी, सेमल के फूल या मोचरस, खरेंटी के पंचांग, शुद्ध भिलावा, अनन्तमूल, गुड़हल के फूल, दालचीनी, बड़ी इलायची, लौंग-प्रत्येक २०-२० तोला लेकर जौकुट चूर्ण करके मिलाकर, सब सामान को घृतलिप्त पात्र में भर दें और आसवारिष्ट के समान एक माह तक सन्धान करके, पश्चात् तैयार हो जाने पर, छान कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ११/४ तोला से २१/२ तोला तक दोनों समय भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर सेवन करें।

गुण और उपयोग- स्त्रीरोगनाशक, अनेक उत्तमोत्तम औषधियों के मिश्रण से निर्मित इस महौषधि के सेवन से स्त्रियों को होने वाले समस्त प्रकार के रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा रक्तप्रदर, श्वेत प्रदर, कष्टार्तव, पाण्डू, गर्भाशय तथा योनिभ्रंश, डिम्बग्रन्थिप्रदाह, हिस्टीरिया, बन्ध्यापन, ज्वर, रक्तपित्त, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अर्श, मन्दाग्नि, गर्भाशय-शोथ, योनि-शोथ, अरुचि, हाथ-पैर के तलवों की जलन, आँखों की जलन, कास, पेट का दर्द, सिर भारी रहना, रक्ताल्पता, तृष्णा आदि विकार नष्ट होकर नवयौवन प्राप्त होता है तथा यह कल्प शरीर को बलवान, हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ बनाता है।

वक्तव्य- यह योग आचार्य यादवजी कृत सिद्धयोग संग्रह के स्त्री रोगाधिकार में अशोकारिष्ट के नाम से है। स्त्रियों के रोगों में यह अत्युत्तम गुणकारी सिद्ध हुआ है। सुन्दरियों के होने वाले सभी रोगों को नष्ट कर उनके स्वास्थ्य का कल्प कर देता है। अतः हम इसको "सुन्दरी कल्प" के नाम से व्यवहार करते हैं।

❖❖❖

घृत- प्रकरण

घृत- पाक करने में सबसे पहले घृत को मूर्च्छित किया जाता है। इसके बाद उसमें जल, क्वाथ, दूध आदि द्रव पदार्थ जो योगानुसार डालने हो उनको और औषधियों का कल्क कर उसे पकाया जाता है।

घृतमूर्च्छन- १ सेर घी को मन्दाग्नि पर गर्म करके फेन रहित होने पर उनमें हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी और नागरमोथा सब मिलाकर ४ तोला, इन सबको एकत्र कर, बिजौरा नींबू के रस में पीसकर, कल्क बनाकर डालें एवं घृत के समान भाग जल डालकर मन्दाग्नि में पका लें। इससे घृत साफ, आमदोष रहित और वीर्यवान हो जाता है। एक साथ १०-२० से घृत को मूर्च्छन करके भी रख लेते है और जब जिस घृत के लिये जितने घृत की आवश्यकता हो उसमें से लेकर सिद्ध करने में क्वाथादि द्रव्य के साथ बहुत समय तक अग्नि पर पकाने से उनके मौलिक तत्व नष्ट हो जाते हैं। अतः मूर्च्छन द्रव्यों के कल्क को भी मुख्य पाक कल्क के साथ ही मिलाकर स्नेह पाक कर लेने से दो बार पृथक् -पृथक् पाक करने की आवश्यकता नहीं रहती है। इससे स्नेह को अग्नि पर पकाने के समय की अधिकता में भी पर्याप्त कमी हो जाती है, जिससे स्नेह के मौलिक गुण भी नष्ट होने से बच जाते है। हमने स्वयं भी इसका अनुभव करके देखा है। इस प्रकार स्नेह (घृत-तैल आदि) उत्तम गुणकारी सिद्ध होते हैं।

क्वाथ-घृत-पाक के लिए जिन चीजों का क्वाथ बनाना हो, उनका परिमाण न लिखा हो तो वह सब मिलाकर घृत से दुगुना लें और मृदु द्रव्य हों तो चौगुने जल में, अत्यन्त कठिन द्रव्य हों तो सोलह गुने जल में, मध्यम, कठिन या मृदु कठिन मिले हों तो अठगुने पानी में पकाकर चौथाई भाग शेष रहने पर छान लें। यदि क्वाथ-द्रव्यों का परिमाण बहुत अधिक हो, तो सबका क्वाथ एक साथ ही न बनाकर ५-५ सेर या सुविधानुसार क्वाथ-द्रव्य लेकर कई बार में क्वाथ तैयार करें और घृत में डालकर पाक करते जायें, इसी प्रकार सब क्वाथों को मिलाकर पाक कर लें। औषधि (क्वाथ-द्रव्य का परिमाण) ५ से हो तो जल एक मन लेना चाहिए और क्वाथ शेष १० सेर रखना चाहिए।

दूध आदि- यदि केवल दूध से ही घृत पाक करना हो और उसमें क्वाथ आदि अन्य द्रव पदार्थ नहीं डालने हों, तो दूध घृत से चौगुने लें और यदि अन्य द्रव पदार्थ भी डालने हो तो दूध घृत के समान लेना चाहिए। यदि तीन द्रव पदार्थों से घृत पाक करना हो तो इन्हें बराबर-बराबर मिलाकर घृत से चार गुना लेना चाहिए और यदि चार या चार से अधिक द्रव पदार्थ डालने हों, तो प्रत्येक पदार्थ घृत के समान लेना चाहिए। यदि केवल स्वरस, दूध, दही, तक्र, रस आदि से पाक करने को लिखा हो, तो घृत से चौगुना जल अवश्य लेना चाहिये, क्योंकि केवल-दूध दही आदि से स्नेह का पाक भली-भाँति सिद्ध नहीं होता है।

कल्क- स्नेह में साधारणतः स्नेह का चौथा भाग कल्क डाला जाता है, परन्तु यदि वासापुष्प आदि का कल्क डालना हो, तो स्नेह से आठवाँ भाग लेना चाहिए। यदि केवल जल से ही स्नेह सिद्ध करना हो तो कल्क चौथाई भाग, क्वाथ से सिद्ध करना हो तो छठा भाग और स्वरस से सिद्ध करना हो तो आठवाँ भाग कल्क डालना चाहिए।

विशेष जानकारी- स्नेह (तैल-घृत) का परिमाण (तौल) नहीं लिखा हो, तो १ सेर स्नेह लेना चाहिए और उसमें उक्त परिभाषा के अनुसार जलादि डालना चाहिए।

• उपर्युक्त परिभाषाएँ केवल उस स्थान के लिए हैं, जहाँ द्रव्यों का परिमाण नहीं हो। जहाँ परिमाणों का उल्लेख हो, वहाँ लेखानुसार ही डालना चाहिए।

• यदि गोमूत्रादि क्षारयुक्त पदार्थों के साथ स्नेह पाक करना हो, तो बहुत सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं स्नेह उफन कर कड़ाही से बाहर न निकल जाय, क्योंकि क्षार पदार्थों के योग से स्नेह में अत्याधिक झाग (उफान) आते हैं।

• जहाँ किसी गुण की समस्त औषधियाँ न मिल सकें, वहाँ जितनी मिल जाएँ, उतनी से ही काम लेना चाहिए। जो न मिलें, परन्तु उनके प्रतिनिधि द्रव्य मिलें, तो उन्हें डालना भी अच्छा है।

• यदि स्नेह को दूध के साथ सिद्ध करना हो, तो २ दिन में, और स्वरस के साथ सिद्ध करना हो, तो ३ दिन में और तक्र, कांजी आदि से सिद्ध करना हो, तो ५ दिन में पाक पूर्ण करना चाहिए-अर्थात् पहले दिन थोड़ी देर उसे पकाकर छोड़ दें, फिर दूसरे दिन पकायें। इस प्रकार एक ही दिन में पाक सिद्ध न करके कई दिनों में सिद्ध करने से घृत-तैल अधिक गुणवान होते हैं। धान्य (चावल, उड़द, मसूर, अढ़की, यव आदि अनाज) क्वाथ या मांस रस से पाक करना हो, तो एक दिन में ही स्नेह पाक कर लें।

सिद्ध स्नेह के लक्षण- यदि स्नेह का कल्क अग्नि में डालने पर किसी प्रकार का शब्द न हो, और अग्नि में डालते ही कल्क जलने लगे, तो स्नेह को सिद्ध समझना चाहिए। घृत का पाक पूर्ण होने के समय झाग शान्त हो जाते हैं, किन्तु तैल का पाक पूर्ण होते समय झाग (फेन) उठते हैं। स्नेह पाक होने पर कल्क थोड़ा-सा कोंचे से निकालकर अंगूठा और तर्जनी के बीच दबाकर घुमाने से बत्ती बनने लगती है।

स्नेह पाक- यह ३ प्रकार का होता है- मृदु, मध्य और खर। यदि स्नेह का कल्क किंचित रसयुक्त हो, तो उसे मृदुपाक, नीरस, किन्तु कोमल हो तो मध्यम, एवं कुछ कठिन हो, तो खर पाक समझें। कल्क कठिन हो जाये, तो उसे दग्धपाक कहते हैं। पर दग्धपाक का स्नेह दाहकारक एवं गुणरहित होता है।

इन चारों प्रकार के पाकों में मध्यम पाक सर्वोत्तम है और दग्धपाक निकृष्ट माना गया है। मालिश के लिए खरपाक अच्छा होता है।

घृतों के सामान्य गुण- गाय का घी अत्यन्त स्निग्ध और पौष्टिक होता है। औषधियों द्वारा सिद्ध होने पर यह अधिक पाचक तथा अंतड़ियों और बस्ति को शुद्ध करके मलावरोध और मूत्र संकोच को दूर करता है। यह स्निग्ध होने से मलाशय, दिमाग, मांस, हड्डियों, नसों, नेत्र ज्योति आदि को शक्ति प्रदान कर पुष्ट करता है। धातुक्षीणता को दूर करने के लिए यह अमृत गुण करता है।

प्रयोग- घृतों का विशेष उपयोग पित्त विकार एवं नलाश्रित वायु विकार (पेट में वायु भर जाने) पर करने से अधिक लाभ करता है। यथा-अपच, बदहजमी, संग्रहणी, बवासीर, रक्तपित्त, अपस्मार, हिस्टीरिया, रक्त-विकार, खून के विकार, माथे का दर्द, भ्रम, नेत्र रोग, व्रण, भगन्दर तथा गर्भाशय के अनेक रोगों में सिद्ध घृत विशेष लाभदायक है।

मात्रा और अनुपान- ६ माशा से १ तोला तक सुबह-शाम दिन में दो तीन बार लिए जा सकते हैं। गुनगुने पानी, दुध या रोगोक्त किसी काढ़े के साथ दें।

अर्जुन-घृत

मूर्च्छित गो-घृत १ सेर और अर्जुन की छाल २ सेर लेकर प्रथम अर्जुन की छाल को जौकुट करें। पश्चात् इसमें १६ सेर जल मिलाकर क्वाथ करें। ४ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। बाद में अर्जुन की छाल १० तोला लेकर उसका कल्क बनावें, फिर उपरोक्त क्वाथ, घृत और कल्क को एकत्र मिला घृतपाक विधि से घृत पाक कर लें। घृत सिद्ध हो जाने पर छान कर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे तक, मिश्री के साथ चटाकर ऊपर से गो-दुग्ध पिलायें।

गुण और उपयोग- मिथ्या आहार-विहार और अधिक तीव्र औषधियाँ तथा अधिकतर गरिष्ठ भोजन के सेवन से उदर में वायु का संचय हो जाता है और वह गैस का रूप धारण कर लेती है। गैस के कारण घबराहट और दिल की धड़कन अधिक होने लगती है। यहाँ तक कि श्वास भी कठिनाई से आता है। कभी-कभी गैस के कारण अतिरिक्त, स्वतंत्र रूप से भी यह रोग हो जाता है। इस रोग में मिश्री के साथ इस घृत के उपयोग से एवं ऊपर से दुग्ध पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। इस घृत का पथ्यपालन के साथ कुछ दिनों तक निरन्तर सेवन करने से सकल प्रकार से हृदय रोग निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं और हृदय की क्रिया व्यवस्थित रूप से होने लगती है।

अशोक-घृत

६४ तोला अशोक छाल को सव्वा ६ सेर, २छटाँक २ तोला जल में पकावें, चौथाई जल रहने पर छान लें यह काढ़ा और जीरे का क्वाथ, चावलों का पानी, बकरी का दूध तथा भाँगरे का रस- प्रत्येक १२८-१२८ तोला और जीवनीय (जीवक (शतावरी), ऋषभक(शतावरी), मेदा (असगंध), महामेदा, काकोली(शतावरी), क्षीरकाकोली(शतावरी), मृद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी) चिरौंजी, फालसा, रसौत, मुलेठी, अशोक की जड़ की छाल, मुनक्का, शतावर, चौलाई की जड़-प्रत्येक २-२ तोला लें। इनके कल्क के साथ १२८ तोला घृत पकावें। घृतपाक सिद्ध हो जाने पर, उतारकर ठंडा हो जाने के बाद छानकर ३२ तोला शक्कर (चीनी) पीसकर मिलाकर रख लें।

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

मात्रा और अनुपान- १-१ तोला प्रातः-सायं दूध अथवा गर्म पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह घृत रक्त-सफेद, नीले-पीले रंग के प्रदर रोग, कुक्षि का दर्द, कमर और योनि की पीड़ा, मन्दाग्नि, अरूचि, पाण्डु, दुबलापन, श्वास, कामला आदि स्त्रियों के रोगों का नाश करता है। यह बल और शरीर की कान्ति को भी बढ़ाता है।

यह घृत स्त्रियों के लिए अमृत के समान लाभदायक है। प्रदर रोग में विशेषतया पित्त और वायु के दोष पाये जाते हैं यथा- हाथ एवं पाँवों में जलन होना, आँखों के सामने चिनगारियाँ उड़ना, अन्न नहीं पचना, भूख न लगना, कमर में दर्द और सिर में दर्द होना, आलस्य आदि। इसमें अशोक घृत के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि यह प्रकुपित वायु तथा पित्त का शमन कर उसके विकारों को दूर करता है और पाचक पित्त को उत्तेजित करके हाजमा ठीक करता है, फिर भूख भी लगती है तथा खाना हजम होने लगता है। धीरे-धीरे शरीर पुष्ट होकर रोगिणी स्वस्थ हो जाती है।

अश्वगन्धादि-घृत

असगन्ध २ सेर को जौकुट करके १६ सेर जल में क्वाथ करें, ४ सेर जल शेष रहने पर, उतार

कर छान लें। पश्चात् असगन्ध १० तोला और लेकर उसका कल्क बनायें। फिर मुर्च्छित किया हुआ गाय का घृत एक सेर तथा गाय का दूध ४ सेर क्वाथ और कल्क सब को एकत्र मिला, ताँबे की कलईदार या लोहे की कड़ाही में डालकर घृत-पाक-विधि से घृत का पाक करें। घृतसिद्ध होने पर छानकर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

मात्रा और अनुपान- ३-६ माशे तक, मिश्री के साथ चाटकर ऊपर से गो-दुग्ध पीयें।

गुण और उपयोग- इस घृत के उपयोग से समस्त प्रकार के वात रोग, सन्धिशूल (जोड़ों का दर्द), कमर का दर्द, किसी भी अंग में आयी हुई अशक्तता, भ्रम (चक्कर आना), अनिद्रा आदि विकार नष्ट होते हैं। यह स्नायुमण्डल को अपूर्व शक्ति प्रदान करता है तथा रस-रक्तादि धातुओं को पुष्ट कर शरीर को सबल बनाता है। यह घृत उत्तम वाजीकरण और पौरुषशक्तिवर्द्धक है।

कल्याण-घृत

इन्द्रायन, त्रिफला, रेणुका (सम्हालू बीज), देवदारु, एलुवा, शालपर्णी, तगर, अनन्तमूल, दोनों सारिवा, हल्दी, दारुहल्दी, फूलप्रियंगु, नीलकमल, इलायची, मंजीठ, दन्तीमूल, अनारदाना, नागकेसर, तालीसपत्र, बड़ी कटेरी, चमेली के ताजे फल, वायविडंग, पृश्निपर्णी, कूठ, चन्दन, पद्मकाष्ठ-प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबका कल्क बना लें और चौगुने पानी के साथ १२८ तोला घी पाकसिद्ध कर लें। -च.चि.

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्रव द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार लिया गया है।

गुण और उपयोग- यह घृत उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया, भूतोन्माद, दिमाग की खराबी, दिमाग की कमजोरी, तुतलापन, अग्निमांद्य, पाण्डु, कन्डु, जहर, सूजन, प्रमेह, कास, श्वास, ज्वर, पारी का ज्वर, वातरोग, जुकाम, वीर्य की कमी, बन्ध्यापन, बुद्धि की कमी, कमजोरी, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प आदि रोगों का नाश करता है।

दिमाग की कमजोरी या बौद्धिक परिश्रम करने वालों के लिये तो यह अमृत के समान काम करने वाला है। इस घी के साथ ही कुष्माण्डावलेह भी लिया जा सकता है। कुष्माण्डावलेह में इस घी को मिला देने से जायका भी अच्छा हो जाता है तथा गुण भी विशेष करता है।

जिसकी बुद्धि कमजोर हो या बच्चा तुतलाता हो यानी जल्दी-जल्दी शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाता हो, उसके लिये भी यह विशेष लाभदायक है। गर्भपुष्टि के लिये इसका विशेष उपयोग किया जाता है। गर्भावस्था में इस घृत के सेवनोपरान्त जो बच्चा पैदा होता है, वह बहुत बुद्धिमान होता है।

पागलपन या मृगी, हिस्टीरिया आदि रोगों में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। साथ में भूतभैरव रस, स्मृतिसागर रस या अभ्रक भस्म आदि का भी सेवन करायें।

कासिसादि-घृत

कासीस, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, अशुद्ध हरिताल, अशुद्ध मैनसिल, कबीला, अशुद्ध गन्धक, वायविडंग, अशुद्ध गुग्गुल, मोम, काली मिर्च, कूठ, अशुद्ध तूतियां, सफेद सरसों, रसौत, सिन्दूर राल, लालचन्दन, इरिमेद की छाल, नीम की पत्ती, करंज के बीज, अनन्तमूल, बच, मंजीठ, मुलेठी, जटामांसी, सिरस की छाल, लोध्र, पद्मकाष्ठ, हरड़, पंवाड के बीज प्रत्येक १-१

तोला लेकर कटने योग्य द्रव्यों का सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें, फिर गोघृत १।। सेर लेकर सब द्रव्य एकत्र मिला, ताम्रपात्र में ७ दिन तक खूब तेज धूप में रखा रहने दें एवं प्रतिदिन दो बार लकड़ी के डंडे से चला दिया करें। पश्चात् ताम्रपात्र से द्रव्यों सह घृत को निकालकर इमरतबान आदि पात्र में सुरक्षित रख लें। यह घृत मरहम की तरह लगाने से काम आता है। -शा.ध.सं.

गुण और उपयोग- यह घृत की शरीर पर मालिश करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ, दाद, पामा, विचर्चिका, शुक्र दोष, विसर्प, वातरक्त जनित विस्फोट, सिर के फोड़े, उपदंश, नाड़ी, व्रण, शोथ, भगन्दर, मकड़ी के विष-जनित फफोले आदि विकार नष्ट होते हैं, यह घृत व्रणशोधक, व्रणरोपक और व्रण वस्तु (फोड़ों के दानों) को मिटाकर त्वचा के वर्ण को सुधारता है।

कामदेव-घृत

असगन्ध ५ सेर, गोखरू २.५ सेर, बरियारा, गिलोय, सरिबन, विदारीकन्द, शतावर, सोंठ, गदहपुरना, पीपल की कपोल, गम्भारी के फूल, कमलगट्टा और उड़द-प्रत्येक २०-२० तोले लें। सबको जौकुट करके ५१ सेर १६ तोला जल में पकायें। जब १२.५सेर ४ तोला जल शेष रहे तब कपड़े से छान, उसमें गाय का घी २५६ तोला, गन्ने का रस २५६ तोला तथा मेदा, महामेदा (असगंध), जीवक (शतावरी), ऋषभक (शतावरी), काकोली (शतावरी), क्षीरकाकोली (शतावरी), ऋद्धि (बला), वृद्धि (बला), कूठ (पुष्करमुल), पद्माख, लालचन्दन, तेजपात, छोटी पीपल, मुनक्का, केवाँच-बीच, नील-कमल, नागकेशर, अनन्तमूल, बरियारा और कन्धी प्रत्येक १-१ तोला, मिश्री ८ तोला-इनका कपड़छन किया हुआ चूर्ण, जल में पीसकर बनाया हुआ कल्क मिलाकर घृतपाक विधि से पकावें। घृत तैयार होने पर कपड़े से छान कर शीशी में भर लें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से २ तोला बराबर मिश्री का चूर्ण मिला करके दें और ऊपर से गाय का दूध पिलावें।

गुण और उपयोग- यह घृत रक्तपित्त, क्षत-क्षीणता, कामला, वातरक्त, हलीमक, पाण्डु, स्वरक्षय (गला बैठ जाना), मूत्रकृच्छ्र, हृदय की दाह और पसली के दर्द को दूर करता है।

यह उत्तम पौष्टिक और बाजीकरण है। वीर्यक्षय, शरीर की कृशता (दुबलापन) और नपुंसकता में इसका प्रयोग करें, अतीव श्रेष्ठ लाभ होगा।

घृत वैसे भी पुष्टिकारक होता है, परन्तु पौष्टिक दवाइयों द्वारा बना हुआ घृत तो और भी पुष्टि कारक हो जाता है। इससे अनेक दवाइयाँ पौष्टिक और बल-वीर्यवर्द्धक है, इसलिये यदि शुक्रक्षय के कारण शरीर दुबला हो गया हो अथवा भूख नहीं लगती हो, शरीर की कान्ति नष्ट हो गई हो आदि उपद्रव हों, तो इसके उपयोग से पूर्ण लाभ होता है।

यह बाजीकरण भी है। अतएव जो विषय-भोग की इच्छा रखते हों, वे भी इसके उपयोग से लाभ उठा सकते हैं, किन्तु इसके साथ-साथ और भी दवाइयों का सेवन तथा पौष्टिक और बलवर्द्धक आहारों का उपयोग करना आवश्यक है। रक्तपित्त और गला बैठ जाने पर भी इसके उपयोग से लाभ होता है।

यदि वीर्यवाहिनी नाड़ियों की कमजोरी से नपुंसकता उत्पन्न हुई हो, तो उसमें भी यह लाभ करता है, परन्तु लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से ही लाभ होता है। यह घृत शुक्र में बीजशक्ति को उत्पन्न करता है एवं स्त्रियों के भी डिम्बकोषों में बीज धारणशक्ति उत्पन्न करता है। हृदय के लिए हितकारी, बलवर्द्धक तथा रसायन है।

कुमारकल्याण-घृत

शंखाहली, बच, ब्राह्मी, कूठ (पुष्करमूल), हरड, बहेडा, आँवला, मनक्का, मिश्री, सोंठ,

जीवन्ती (शतावरी), जीवक, बरियार, कचूर, धमासा, बेल, अनार, तुलसी, सरिबन, नागरमोथा, पुष्करमूल, छोटी इलायची, छोटी पीपल, खस, गोखरु, अतीस, आकनादिपाठा, वायविडंग, देवदारु, मालती के फूल, महुआ के फूल, पिंड खजूर, मीठे बेर और बंशलोचन सब समभाग लें। कूट कपड़छन कर जल में पीसकर, उससे चौगुना गाय का घी तथा दूध एवं छोटी कटेरी का क्वाथ घी से चौगुना मिलाकर घृतपाक-विधि से पकायें। जब घृत तैयार हो जा। तब कपड़े से छानकर शीशी में भर लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे गरम दूध में डाल कर पिलावें।

गुण और उपयोग- इस घृत के सेवन से बल, वर्ण, रुचि, जठराग्नि, मेधा और कान्ति बढ़ती है। दाँत आने के समय बालकों को उसके सेवन कराने से बिना उपद्रव के दाँत निकल आते हैं। बालशोष में ३ माशा इस घृत में २ रत्ती गोदन्ती भस्म और ४ रत्ती सितोपलादि चूर्ण मिलाकर चटाने से अच्छा लाभ होता है। कुछ समय में ही शोष नष्ट होकर बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। बालकों को होने वाले कुक्कर खाँसी में भी ३ माशा इस घृत में सितोपलादि चूर्ण ६ रत्ती मिलाकर दिन-रात में २-४ बार देने से बहुत जल्दी आराम होता है।

चित्रकादि-घृत

चित्रक, धनियाँ, जीरा, अजवायन, पाठा, त्रिकुटा, अम्लवेत, बेलगिरी, अनारदाना, जवाखार, पीपलामूल और चव्य का कल्क १-१ तोला, जल ३ सेर २ छटाँक १ तोला और घृत ६४ तोला- सबको एकत्र मिलाकर, घृतपाक विधि से सिद्ध करके रख लें। -च.सं.चि.अ. १२

मात्रा और अनुपान- १ तोला से १.5 तोला, गर्म जल के साथ दें।

गुण और उपयोग- यह घी अग्नि-प्रदीपक और तिल्ली, गुल्म, सूजन, उदररोग, बवासीर आदि रोगों में विशेष फायदा करने वाला है। संग्रहणी, पुराना अतिसार, पेट फूलना व अरुचि आदि रोगों में भी इससे लाभ होता है। यह मन्दाग्नि दूर कर भूख बढ़ाता है तथा बढ़े हुए वायु और पित्त को शान्त करता है।

चैतस-घृत

शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनों कटेली, गोखरू, गम्भारी की छाल, रास्ना, एरण्डमूल, निशोथ, खरेंटी, मूर्वा और शतावरी-प्रत्येक ८-८ तोला लेकर १६ गुने जल में पका कर चौथाई भाग जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर इसमें कल्याण घृत में कही हुई दवाओं का कल्क और कल्क से चौगुना घृत मिलाकर घृत के घृतपाक-विधि से सिद्ध करके रख लें।

मात्रा और अनुपान- ६ माशा से १ तोला, गरम दूध या गरम पानी के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस घृत का अधिकतर उपयोग मानसिक रोगों में किया जाता है। उन्माद रोग की प्रारम्भिक अवस्था में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। इसी तरह हिस्टीरिया, मृगी (अपस्मार), मूर्च्छा, सन्यास आदि रोगों में भी इसके उपयोग से लाभ होता है।

जात्यादि-घृत (मरहम)

चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, परवल के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मंजीठ, मुलेठी, मोम, करंज की गिरी, खस, अनन्तमूल, और तूतिया-इन सबको समान भाग लें, कल्क बनावें। कल्क से चौगुना घृत और घृत से चौगुना जल डालकर पकायें।- शा.ध.सं.

वक्तव्य- कल्क द्रव्यों को कपड़छन कर घृत में मिलाकर, एक सप्ताह धूप में रखकर,

पश्चात् कल्क द्रव्यों सहित घृत के पात्र में भरकर रख लें। इसको मरहम की तरह फोड़ा-फुन्सी, नाड़ीव्रण आदि पर लगाने से उत्तम लाभ करता है। कई अनुभवी वैद्य इस प्रकार बनाकर भी प्रयोग करते हैं।

गुण और उपयोग- यह घृत नाड़ीव्रण (नासूर), पीड़ायुक्त व्रण और जिस व्रण से रक्त निकलता रहा हो, उस व्रण को तथा मकड़ी के घाव, अग्नि से जलने तथा गहरे घाव भी ठीक करता है। इसको मरहम की भाँति लगाने से मर्मस्थानों के घाव, पीबयुक्त और अधिक फोड़ायुक्त घाव आदि भरकर अच्छे हो जाते हैं।

महात्रिफलादि-घृत

त्रिफला क्वाथ ६४ तोला, भाँगरे का रस ६४ तोला, बाँसे (वासा)का रस ६४ तोला, शतावरी रस ६४ तोला, बकरी का दूध ६४ तोला, आमला रस ६४ तोला, गिलोय का रस ६४ तोला और घी ६४ तोला-इन सबको एकत्र कर इन औषधियों का कल्क डालें। पीपल, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नीलोफर, मुलेठी, क्षीरकाकोली (शतावरी), गुडूची, कटेरी-सबको मिलाकर ८ तोला लेकर कल्क बना लें। फिर सब एकत्र मिलाकर पकायें। जब समस्त जलांश भाग जल जाये, तब घृत छानकर रख लें। भै.र.

वक्तव्य- कल्क अष्टमांश लेने से द्रव पदार्थ द्रवद्वैगुण्य परिभाषानुसार द्विगुण हो गए हैं।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला, बराबर मिश्री मिलाकर दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से रक्तदुष्टि, रक्तस्राव, रतौंधी, तिमिर, आँखों में ज्यादा दर्द होना, आँखों से कम दिखाई पड़ना, शरीर की कमजोरी आदि नेत्ररोग दूर होते हैं।

त्रिफला की महिमा आयुर्वेदशास्त्र में बहुत वर्णित है तथा इसके उपयोग से लाभ उठाने वाले भी बहुत देखे जाते हैं। यह घृत नेत्रों के लिये बहुत लाभदायक है। केवल त्रिफला के जल से ही प्रातःकाल आँख धोने तथा त्रिफला का चूर्ण रात में मिश्री मिला, पानी के साथ लेने से आँख की ज्योति बढ़ जाती है, फिर इस घृत के सेवन से तो बड़ा ही अच्छा लाभ होता है, यह आनुभविक बात है।

यदि पित्तवृद्धि के कारण आँखों में तकलीफ हो, जैसे आँखें ज्यादा सुर्ख हो जाना, आँखों की पलके सूज जाना, प्रकाश में आँख नहीं खुलना, रोहे बढ़ जाना, दर्द होना आदि लक्षण उपस्थित होने पर, इस घृत का मिश्री मिलाकर सेवन करायें और त्रिफला के जल से प्रातःकाल आँखों को धोयें तथा रात के समय त्रिफला चूर्ण ३ माशे में बराबर मिश्री मिलाकर दूध या पानी के साथ दें। इस उपचार से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

वैसे भी जिन्हें नेत्ररोग की शिकायत बराबर बनी रहती हो, वे भी यदि नियमित रूप से कुछ रोज तक इस घृत का सेवन करें, तो आँख तो अच्छी हो ही जायेगी, साथ ही रक्त की भी वृद्धि हो शरीर पुष्ट हो जायेगा। यदि इसके साथ ही मिलाकर तीन-तीन रत्ती सप्तामृत लौह का भी सेवन किया जाये तो और भी श्रेष्ठ लाभ होता है। कई रोगियों पर प्रयोग कर हमने अनुभव किया है। इससे नेत्रों की ज्योति बढ़कर चश्मा लगाने की आवश्यकता नहीं रहती है।

दुर्वादि-घृत

दूब, अनार के फूल, मंजीठ, कमल केसर, गूलर के फूल, खस, नागरमोथा, सफेद चन्दन (नेत्रबाला), पद्माख, अडूसा के फूल, केसर, गेरू, और नागकेशर प्रत्येक १-१ तोला लेकर कपड़छन चूर्ण बना जल में पीसकर कल्क बना लें। फिर उसमें बकरी का दूध, घी, पेठे का रस, आयापान का रस और चावल का पानी-प्रत्येक ६४-६४ तोला मिलाकर मन्द आँच पर पकायें। जब घृत सिद्ध हो जाये, तब नीचे उतार उसे कपड़े से छानकर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला, बराबर मिश्री मिलाकर, सुबह-शाम सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह घृत मुख से रक्त आता हो तो पीने को देना, नाक से रक्त आता हो तो नस्य देना, कान या आँख से रक्त आता हो, तो कान या आँख में डालना और लिंग,योनि अथवा गुदा से रक्त आता हो उत्तर बस्ति का अनुवासन बस्ति द्वारा देना चाहिए।

रक्तपित्त में पित्त की विकृति से रक्त दूषित होकर वायु द्वारा कभी ऊपर, कभी नीचे और कभी रोमछिद्रों द्वारा बाहर निकलता है। यद्यपि इस रोग में कफ विकृत हो जाता है, परन्तु पित्त का प्रकोप विशेष रहता है। अतएव प्यास लगना, शरीर में जलन, दाह, मुँह सूखना, चक्कर आना, शीतल पदार्थ खाने की इच्छा ज्यादा होना आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालत में इस घृत के उपयोग से शीघ्र लाभ होते देखा गया है। साथ में प्रवालपिष्टी, कहरवा पिष्टी, अशोकारिष्ट आदि दवाओं में से भी किसी का सेवन करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

पंचगव्य-घृत

दशमूल, त्रिफला, कुड़े की छाल, मूर्वा, भारंगी, छतिबन, गजपीपल, अपामार्ग, अमलतास, कठगूलर की छाल-प्रत्येक समान भाग मिश्रित १ सेर लेकर अधकुट करके ८ सेर पानी में पकावें, २ सेर पानी शेष रखकर छान लें। फिर चिरायता, त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, निशोथ, पाठा, दारुहल्दी, दोनों सारिवा, पुष्करमूल, कुटकी, यवासा, दन्तीमूल, बच नील का पंचांग और वायविडंग सब समान भाग मिश्रित २० तोला लेकर कल्क बना लें।

अब क्वाथ और कल्क तथा गाय का घी, गाय के गोबर का रस, दही, दूध और गोमूत्र-प्रत्येक २ सेर लेकर, सब को एकत्र मिलाकर, घृत-विधान से पकावें। जब घृत मात्र शेष रहे, तो उसे छानकर रख लें।

मात्रा और अनुपान- ५ माशे से १ तोला, गर्म पानी से मिला कर दें।

गुण और उपयोग- प्रधानतया इसका उपयोग सब प्रकार के उन्माद और अपस्मार, क्षय, श्वास, गुल्म, उदर और पेट-दर्द में होता है। पेट, वृषण (फोता) तथा हाथ-पाँव पर सूजन आ गई हो, उसमें यह बहुत लाभ करता है।

जुलाब हो जाने के बाद यदि इसका सेवन किया जाय, तो पेट में वायु नहीं भरती तथा मलों की गुठलियाँ भी नहीं बनती। इसके अतिरिक्त अपस्मार, भगन्दर, पाण्डु, कामला, दमा, खाँसी, थोड़ा बहुत बुखार, बालग्रह, विशेषकर धातुक्षीणता, नलाश्रित वायु आदि रोगों में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है।

पंचतिक्त-घृत

नीम की छाल, पटोलपत्र, कटेरी पंचांग, गिलोय-प्रत्येक द्रव्य ४०-४० तोला लेकर जौकूट चूर्ण कर २५ सेर ८ छटाँक ३ तोला जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् इसमें गो-घृत १३८ तोला और कल्कार्थ त्रिफला चूर्ण १६ तोला लेकर सबको एकत्र मिला, घृतपाक विधि से घृतपाक करें। जब घृत सिद्ध हो जाये तब छानकर सुरक्षित रखें।-भै.र.

वक्तव्य- द्रवपदार्थों को द्रव-द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

मात्रा और अनुपान- ३ से ६ माशे तक मिश्री के साथ चाटकर ऊपर से गो-दुग्ध पिलायें।

गुण और उपयोग- इस घृत का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ, वात-पित्त और

कफज रोग, दुष्टव्रण कृमिरोग, अर्श, ज्वर, कास इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। रक्त और चर्म दोष के कारण उत्पन्न विकारों में इसका उपयोग लाभदायक सिद्ध हुआ है।

पुराना-घृत

अच्छे उत्तम गो-घृत को लेकर किसी चीनी मिट्टी के पात्र या कांच के अमृतवान में भरकर ढक्कन बन्द करके ५ वर्ष, पर्यन्त रखें, तत्पश्चात उपयोग में लें।

गुण और उपयोग- यह पुराना घी अनेक विकारों में ताजे घी की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ, लाभप्रद और, उत्कृष्ट मेधावर्द्धक है। इसकी मालिश करने से छाती में जमा हुआ कफ ढीला होकर सरलता से निकल जाता है। विशेषतया पार्श्वशूल और न्यूमोनिया में उत्कृष्ट लाभ होता है। उन्माद अपस्मार और अनिद्रा को भी नष्ट करने में विशेष उपयोगी है।

फल-घृत

मंजीठ, मुलेठी, कूठ, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चीनी, अजवायन, हल्दी, दारुहल्दी, घी में सेंकी हुई हींग, कुटकी, नीलोफर, श्वेतकमल फूल, चन्दन दोनों(नेत्रबाला), मेदा (असगंध), काकोली, क्षीरकाकोली (शतावरी), मुनक्का, असगन्ध, खरेंटी, काकोली, क्षीरकाकोली (पुष्करमुल)-प्रत्येक १-१ तोला लें, कूट छान चूर्ण बना जल में पीस, कल्क बना लें। फिर उस कल्क में गाय का घी ११८ तोला, पाकार्थ शतावरी रस ५१२ तोला और गाय का दूध ५१२ तोला सब को एकत्र मिलाकर घृतपाक विधि से पकायें। जब घृत मात्र शेष रहे, तब उसे छानकर काँच के बर्तन में भर दें। -भै.र.

वक्तव्य- द्रव्य पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है। कल्क में लक्ष्मणा (सफेद फूल की कटेरी) की जड़ १ तोला मिलाने से विशेष गुणकारी है। क्षीरकाकोली का दो बार उल्लेख है, अतः दो बार ही अर्थात् दुगुना देना चाहिए।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला, मिश्री का चूर्ण बराबर मिलाकर दें और ऊपर से गाय का दूध पिला दें।

गुण और उपयोग- इस घृत के सेवन से स्त्रियों के शरीर का कमर में दर्द होना तथा गर्भाशय की कमजोरी दूर होती है। इससे गर्भ का पोषण होता है। कुछ दिनों तक इसके सेवन से स्त्रियों का आर्त्तवदोष और पुरुषों का वीर्यदोष दूर हो जाता है।

जिस स्त्री को बार-बार गर्भपात होता हो, या मरे हुए अथवा अल्पायु बालक पैदा होते हों, एक बालक हो फिर सन्तानादि न होती हो या गर्भ नहीं रहता हो, तो इस घृत के सेवन से बुद्धिमान, दीर्घायु तथा हृष्ट-पुष्ट बच्चा पैदा होता है। अनेक सन्तान-रहित स्त्रियों को इसका सेवन कराने से सन्तान उत्पन्न होते देखा गया है। जिस गाय का बछड़ा भी उसी रंग का हो एवं जीता हो उसके घी से बनाने पर विशेष उत्तम गुणकारी बनता है। ऐसा शारंगधराचार्य का मत है।

बलादि-घृत

बला(खरेंटी) की जड़, नागबला के मूल और अर्जुन छाल-प्रत्येक ६४-६४ तोला लेकर यवकुट करके १०२४ तोला जल में पकायें। जब चौथाई (२५६ तोला) जल शेष रहे, तब काढ़े को छान कर उसमें गाय का घी ६४ तोला, मुलेठी ८ तोला और अर्जुन की छाल का चूर्ण ८ तोला दोनों का कल्क बना, सबको एकत्र मिला, घृतपाकविधि से मन्द-मन्द आंच पर पकावे। जब घृतपाक शेष रहे तब उतारकर छान लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- १ तोला घृत, दूध या गर्म जल में मिलाकर प्रात:-सायं सेवन करें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से हृदयरोग, शूल, उर:क्षत, रक्तपित्त, खाँसी और वातरक्त रोग दूर होते हैं। यह पौष्टिक और बलवर्द्धक है। खाँसी और रक्तपित्त में इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है।

ब्राह्मी- घृत

मूल और पत्रसहित ताजी ब्राह्मी को पानी से धोकर, कूट करके निकाला हुआ स्वरस या क्वाथ तीन से बारह छटाँक १ तोला में ६४ तोला घी और बच, कूठ, शंखपुष्पी तीनों को मिलाकर ८ तोला कल्क बना सबको एकत्र मिलाकर पकावें। जब घृत मात्र शेष रह जाय, तो उसे छानकर रख लें।

वक्तव्य- द्रव पदार्थों का द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला, बराबर मिश्री के साथ दें। ऊपर से धारोष्ण दूध पिलावें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से अपस्मार, उन्माद, बोलने की कमजोरी, अर्थात् साफ-साफ न बोलना अथवा कमजोरी से मिनमिना कर बोलना, देर से हकलाकर या जल्दी-जल्दी बोलना आदि, बुद्धि की निर्बलता, मनोदोष, स्मरण-शक्ति (याददाश्त) की कमी, स्वरभंग (गला बैठ जाना), दिमाग की कमजोरी, वातरक्त तथा कुष्ठरोग दूर होते हैं।

आयुर्वेद में इसका गुण-वर्णन करते हुए लिखा है कि-इस घृत का केवल १ सप्ताह मात्र सेवन करने से स्वर किन्नरों के समान मधुर और सुरीला हो जाता है। २ सप्ताह तक सेवन करने से मुख कान्तिमान हो जाता है। यदि नियमपूर्वक १ माह तक इसका सेवन किया जाय, तो मनुष्य की स्मरणशक्ति बहुत बढ़ जाती है।

महातिक्त-घृत

सतौने (सप्तवर्ण या छतिबन) की छाल, अतीस, अमलतास का गूदा या छाल कुट की, पाठा, नागरमोथा, खस, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, पटोल (परवल) की पत्ती, नीम की अन्तर्छाल, पित्तपापड़ा, धमासा, लाल चन्दन (नेत्रबाला), छोटी पीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, बच, इन्द्रायण की जड़, शतावर, अनन्तमूल, वासा, कूड़ा की छाल, जवासा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलेठी और त्रायमाणा प्रत्येक १-१ तोला लेकर सबको एकत्र चूर्ण बनाकर कल्क कर लें। पीछे उसमें गाय का घी १२८ तोला, जल १०२४ तोला, आमले का रस २५६ तोला मिला सबको एकत्र करके मन्दाग्नि पर पकायें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- ६ माशे से १ तोला, गर्म जल में अथवा गुर्च के क्वाथ में मिलाकर सुबह-शाम सेवन करें।

गुण और उपयोग- यह घृत कुष्ठ, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डु रोग, विस्फोट, यक्ष्मा, उन्माद, कामला, पामा, कण्डू, जीर्णज्वर, रक्तप्रदर आदि रोगों को नष्ट करता है। शरीर पर लाल चकत्ते हो जाना, फोड़े-फुन्सी होना, उनमें दाह या जलन रहना, पीब या पानी-सा लस निकलता हो, खुजली के कारण रोगी को बेचैनी अधिक रहती हो, तो यह घृत सेवन करने से दाह और खुजली शीघ्र ही शान्त हो जाती है। धीरे-धीरे फोड़े-फुन्सी भी मिटते जाते हैं। कुछ समय में ही सब विकार मिटकर शरीर पूर्ववत् नीरोग हो जाता है। इस घृत को डेढ़-दो महीने तक सेवन करना चाहिए। सेवन-काल में नमक, मिर्च, तैल, खटाई का परहेज रखा जाये तो जल्दी लाभ होता है।

महाचैतस-घृत

सन के बीज, निशोथ, एरण्ड-मूल, दशमूल (मिश्रित), शतावर, रास्ना, पीपल, सहिजन की छाल-प्रत्येक ८-८ तोला लेकर जौकूट करके २५ सेर ९ छटाँक ३ तोला जल में क्वाथ करें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् बिदारीकन्द, मुलेठी, मेदा, महामेदा (असगंध), काकोली (शतावरी),क्षीर काकोली, मिश्री, खजूर, मुनक्का, शतावर, युज्जात, (ताल मस्तक अथवा कशेरु), गोखरु तथा चैतस घृत की समस्त औषधियाँ-अर्थात् इंद्रायण मूल, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुबा, शालिपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, कृष्णसारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, छोटी इलायची, मंजीठ, दन्तीमूल, अनारदाना, केसर, तालीशपत्र, बड़ी कटेरी, चमेली के फूल, वायविडंग, पृश्निपर्णी, कूठ, सफेद चन्दन (नेत्रबाला), पद्मकाष्ठ, देवदारु-प्रत्येक आधा-आधा तोला लेकर कल्क बना लें और गोघृत १२८ तोला लेकर सबको एकत्र मिला कड़ाही में डालकर घृतपाक-विधि से घृतपाक करें। घृतसिद्ध होने पर छानकर सुरक्षित रखें।-चक्रदत्त

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य द्रव परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

मात्रा और अनुपान- ३ माशे से ६ माशे के साथ चटाकर ऊपर से गो-दुग्ध पिलायें।

गुण और उपयोग- इस घृत के सेवन से उन्माद और अपस्मार (मृगी) रोग नष्ट होते हैं। मस्तिष्क की दुर्बलता को भी यह नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त गलदोष प्रतिश्याय, तृतीयक एवं चातुर्थिक ज्वर, पापदोष, कुरुपता, ग्रह दोष, श्वास-कास आदि रोगों को नष्ट करता है। यह घृत शुक्र तथा आर्तव का विशोधन करता तथा मानसिक विकृति और वात प्रकोप को नष्ट करता है। मस्तिष्क, मन, बुद्धि, शुक्राशय और गर्भाशय को सबल बनाता है।

शतावरी-घृत

शतावरी का रस या क्वाथ २५६ तोला, गोदुग्ध २५६ तोला, गोघृत १२८ तोला लें और जीवन (शतावरी), ऋषभक (शतावरी), मेदा (असगंध), महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली (शतावरी), मुनक्का, मुलेठी, मृद्गपर्णी, माषपर्णी, बिदारीकन्द, लाल चन्दन (नेत्रबाला)-प्रत्येक पृथक्-पृथक् १ तोला ४ माशे लेकर कल्क बनायें। पश्चात् क्वाथ, घृत, कल्क और दूध-इन सबको एकत्र मिला घृतपाक करें। जब घृत सिद्ध हो जाये, तब छान लें और उसमें मिश्री ८ तोला, मधु ८ तोला मिलाकर रखें। -चक्रदत्त

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है। अनुभव में देखा गया है कि घृत छानने के बाद मिलाये जाने वाले मिश्री और मधु ठीक से नहीं मिल पाते हैं, अतः घृत छानने के बाद इन्हे न मिलाकर, घृत सेवन करते समय घृत की मात्रा में षोडशांश मिश्री चूर्ण और षोडशांश मधु मिलाकर सेवन करना विशेष उपयुक्त है।

मात्रा और अनुपान- ३ माशे से ६ माशे तक मिश्री के साथ चाटकर ऊपर से गो-दुग्ध पीयें।

गुण और उपयोग- यह घृत उत्तम पौष्टिक, शीतवीर्य और वाजीकरण है। इस घृत के सेवन से रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं। वातरक्त तथा क्षीण- शुक्र रोगियों के लिए यह अत्यन्त हितकर है और अंगदाह, शिरोदाह, पित्तज्वर, योनिशूल, दाह, मूत्रकृच्छ्र, विशेषकर पैत्तिक योनिशूल शीघ्र नष्ट होते हैं। यह शरीर के बल, वर्ण, कान्ति और वीर्य की वृद्धि कर शरीर को पुष्ट करता है।

❖❖❖

तेल - प्रकरण

तैलों का पाक भी घृत के समान ही होता है। अतएव, घृत-प्रकरण में ही इसके पाक करने की विधि तथा तैल सिद्ध (पाक) हुआ या नहीं और पाक कितने प्रकार के होते हैं आदि बातों का वर्णन देखें। ये सब बातें दोनों में समान ही होती हैं किन्तु तैल की मूर्च्छा विधि अलग होती है। यथा-

कटु तैल-मूर्च्छा- आमला, हल्दी, नागरमोथा, बेल की छाल, अनार की छाल, नागकेसर, काला जीरा, नलिका, सुगन्धबाला और बहेड़ा समान भाग लेकर १ सेर तैल में १.२५० तोला के हिसाब से डालें तथा मंजीठ १० तोला कूटकर डालें एवं जल ९ सेर डालकर तैल को मन्दाग्नि पर गरम करके इनका कल्क धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा डालकर पकायें। इससे कटुतैल (सरसों का तैल) का आमदोष नष्ट हो जाता है अथवा तैल से षोडशांश मंजीठ और मंजीठ से चतुर्थांश हल्दी का कल्क डालकर पकाकर भी मूर्च्छा की जाती है।

तिल तैल-मूर्च्छा- मंजीठ, हल्दी, लोध्र, नागरमोथा, नलिका, आँवला, बहेड़ा, हरड़, केवड़ा की जड़, बड़ की जटा और सुगन्धवाला, इनमें से तैल का सोलहवाँ भाग मंजीठ और मंजीठ का चौथा भाग अन्य सब दवा (समान भाग में) लेकर मन्दाग्नि पर पाक करके रख लें। तेल से षोडशांश मंजीठ और मंजीठ से चतुर्थांश हल्दी का कल्क डालकर पकाने से भी भली-भांति मूर्च्छन होता है।

एरण्ड तैल-मूर्च्छा- मंजीठ, नागरमोथा, धनियाँ, त्रिफला, जयन्ती, सुगन्धबाला, बन-खजूर, बड़-जटा, हल्दी, दारुहल्दी, नलिका, सोंठ, केतकी, दही और कांजी, १ सेर तैल को मूर्च्छित करने के लिये इनमें प्रत्येक दवा ४-४ माशे लें। आवश्यकतानुसार जल से मन्दाग्नि पर पाक करें। इससे एरण्ड तैल का भली-भांति मूर्च्छन होता है।

बने हुए तैलों के गुण- अपनी चिकनाहट के कारण चमड़ी को मुलायम करता सूक्ष्मता के कारण बालो के छिद्रों में प्रविष्ट हो रक्त में मिल जाता, शरीर का रूखापन, जड़ता और दर्द आदि को दूर करता तथा खराब हवा का असर शरीर पर नहीं होने देता, इत्यादि अनेक गुण बने हुए तैलों में होते हैं। औषधियों द्वारा तैल रोगनाशक होता है और शरीर को हृष्ट-पुष्ट तथा सशक्त बना देता है।

सौम्य और तीक्ष्ण- भेद से ये दो प्रकार के होते हैं। यथा-विषगर्भ तैल अपनी तीक्ष्णता के कारण रक्त में गर्मी पैदा कर रक्त को संचारित करके दर्द, सूजन, ऐंठन आदि उपद्रवों को शीघ्र दूर कर देता है। नारायण तैल सौम्य गुण के कारण कमजोर शरीर या शरीर के अवयवों की विकृति को दूर कर सशक्त (बलवान) बना देता है।

तैल लगाने के समय- इसके लिये सबसे उत्तम समय सुबह ७ या ८ बजे का है। अन्यथा रात को ८ बजे या शाम को ४ बजे भी लगा सकते हैं, परन्तु वात-विकारों में आवश्यकतानुसार ४-५ घण्टे पर मालिश और सेंक करना चाहिए।

आधुनिक चिकित्साशास्त्रों के मतानुसार घी-तैल आदि स्नेह द्रव्यों को बहुत अधिक समय तक अग्नि पर पकाने या तेज अग्नि पर पकाने से उनके मौलिक गुण नष्ट हो जाते हैं। अतः मूर्च्छन संस्कार में पृथक् से चौगुने जल के साथ पाक न करके मूर्च्छा द्रव्यों का कल्क भी औषधिकल्क के साथ मिला, पाकार्थ दिये जाने वाले द्रव पदार्थों से ही पाक कर लें। ऐसा करने से मूर्च्छा और पाक दोनों एक साथ हो जाते हैं तथा मौलिक गुण भी नष्ट नहीं होने पाते।

तैल-मालिश- शरीर में धीरे-धीरे तैल की मालिश करने से रक्त के अन्दर गर्मी पहुँचकर उसका संचार होने लगता है। तैल मालिश करने वाला मनुष्य नीरोग तथा तन्दुरूस्त होना चाहिए। मालिश करते समय शरीर में सुख और आराम का अनुभव हो, इस तरह की मालिश अच्छी होती है।

अणु तैल

सफेद चन्दन (नेत्रबाला), अगर, तेजपात, दारूहल्दी की छाल, मुलेठी, बलामूलछाल, पुण्डरीककाष्ठ, छोटी इलायची, वायविडंग, बेल छाल, कमल फूल, नेत्रबाला, खस, केवटीमोथा, दालचीनी, नागरमोथा, अनन्तमूल, शालपर्णी, जीवन्ती, पृश्निपर्णी, देवदारु, शतावर, रेणुका, छोटी कटेरी, सुरभि (शल्लकीत्वक्), कमलकेसर-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर जौकुट करें और २६०० तोला माहेन्द्र जल (बरसात का जमीन पर न गिरा हुआ अर्थात् पात्र में संचित किया हुआ वर्षा का जल) में डालकर क्वाथ कर, जब दशमांश जल शेष रह जाये तो उतार कर, छान लें। इसमें तिल तैल २६ तोला लें, फिर उपरोक्त २६० तोले क्वाथ के दस भाग करें और प्रथम पाक में २६ तोला तैल और २६ तोला क्वाथ डालकर पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर पुनः पूर्वपाचित २६ तोला तैल और २६ तोला क्वाथ डालकर पाक करें। इस प्रकार ९ बार पाक करें, अन्तिम पाक में पूर्वपाचित २६ तोला तैल शेष २६ तोला क्वाथ और बकरी का दूध २६ तोला मिलाकर पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर छानकर सुरक्षित रखें। -चरक सूत्रस्थान अ. 5।

मात्रा और उपयोग विधि गुण- सर्वप्रथम उत्तमांग (अर्थात् शिर) का स्नेहन स्वेदन करके, पिचु (रूई का फाहा) तैल में भिंगोकर तीन बार नस्य लें। इन नस्यों की मिलित मात्रा आधा पल है। इस प्रकार तीन नस्य प्रति तीसरे दिन लेने चाहिए। नस्य लेने वाले पुरुष को निवांत (जहाँ वायु सीधा प्रवेश न करें) स्थान में रहना चाहिए-(अर्थात्) उष्ण स्थान में रहे, हितकारी भोजन का सेवन करें, इन्द्रियों को अपने वश में रखें, तो यह तैल तीनों दोषों (बढ़े हुए) को नष्ट करता है। इन्द्रियों की बलवृद्धि करता है। इस तैल का समुचित काल में विधिपूर्वक प्रयोग करने से मनुष्य उत्तम गुणों को प्राप्त करता है।

मनुष्य को अणु तैल का नस्य प्रतिवर्ष जब आकाश मेघाच्छन्न न हो प्रावृट, शरद और बसन्त तीनों ऋतुओं में लेना चाहिए। जो मनुष्य यथासमय इसके नस्य का सेवन करते हैं, उनके आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियों की शक्ति की वृद्धि होती है और सिर तथा मूँछ के बाल श्वेत तथा कपिलवर्ण के नहीं होते और न गिरते हैं, किन्तु उत्तम प्रकार से बढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त इस तैल का नस्य लेने से मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित, हनुग्रह (ठोड़ी का जकड़ना), पीनस, अर्धावभेदक, शिरःकम्प (वातनाड़ियों की दुर्बलता से सिर का हिलना) ये विकार नष्ट होते हैं यथा सिर और कपाल की शिरायें, सन्धियाँ, स्नायु, कण्डरा आदि परिपुष्ट होकर बलवान हो जाती हैं। मुख प्रसन्नचित्त तथा चेहरा उपचित (भरा हुआ) स्वर स्निग्ध, स्थिर और गम्भीर हो जाता है। समस्त इन्द्रियाँ निर्मल, शुद्ध और बलयुक्त हो जाती हैं। उर्ध्वजत्रु में होने वाले विकार सहसा आक्रमण नहीं करते, एवं वृद्धावस्था प्राप्त होते हुए भी उत्तमांगों को बुढ़ापा नहीं सताता।

इरिमेदादि तैल

इरिमेद छाल ५ सेर लेकर जौकुट करके २५ सेर ९ छटाँक ३ तोला जल में क्वाथ करें। अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार कर छान लें, पश्चात् तिल तैल १२८ तोला लें, और कल्क के लिए इरिमेद छाल, लौंग, गेरु, अगर, पद्मकाष्ठ, मंजीष्ठ, लोध्र, मुलेठी, लाख, बड़ की छाल,

नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कपूर, शीतलचीनी, खदिरकाष्ठ, धाय के फूल, छोटी इलायची, नागकेसर, कायफल- ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर कपूर को छोड़कर शेष काष्ठौषधियों का कल्क बनायें। पश्चात् सब द्रव्यों को एक साथ मिलाकर तैल पाक विधि से तैल सिद्ध करें। तैल सिद्ध होने पर उतार लें, पश्चात् कपूर मिलाकर सुरक्षित रखें।-शा.सं.

वक्तव्य- शा.सं. के मूल पाठानुसार इरिमेद छाल ५ सेर को एक द्रोण (१२ सेर १२ छटाँक ४ तोला) जल में पकाकर चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने का विधान है, किन्तु इतने कम जल में पकाने पर क्वाथ अच्छी तरह नहीं बन पाता है ऐसा अनुभव में आया है। दो द्रोण (२५ सेर ९ छटाँक ३ तोला) जल लेकर क्वाथ बनाना एवं अष्टामांश क्वाथ अवशेष रखकर तैलपाक करने से उत्तम बनता है। इस योग में क्वाथार्थ जल और क्वाथ के परिमाण में ऐसा संशोधन किया गया है।

प्रयोग-विधि- इस तैल का गण्डूष में (कुछ समय मुँह में धारण कर कुल्ला कराने में फाहा रखने में तथा मालिश करने में यथा योग्य व्यवहार होता है।)

गुण और उपयोग- इस तैल के गण्डूष करने (कुल्ला करने) से मसूढ़ों (दन्तवेष्ट) की सड़न, पीब गिरना, दाँतों का हिलना, शीर्णदन्त, दन्त सौषिर, श्यावदन्त, दन्तप्रहर्ष, दन्तविद्रधि, कृमिदन्त (दाँतों में कीड़ा लगना), दाँतों का कड़कना, मुखदुर्गन्धि, जीभ की पीड़ा, तालु की पीड़ा, ओष्ठ ग्रन्थि तथा अन्य समस्त प्रकार के मुखरोग नष्ट होते हैं और तालुगत, जिव्हागत रोगों को नष्ट करता है।

काशीसादि तैल

कशिस, कलिहारीमूल, कूठ, सोंठ, पीपल, सेंधानमक, मैनसिल, कनेरमूल, वायविडंग, चित्रक मूल, वासा मूल, दन्तीमूल, कड़वी तोरी के बीज, सत्यानाशी मूल, हरिताल-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर कल्क बनाये फिर तिल तैल ६४ तोला, थूहर का दूध ८ तोला, आक का दूध ८ तोला, गोमूत्र २५३ तोला, लेकर सबकों एकत्र मिला पाक विधि से तैल पाक करें। तैल सिद्ध हो जाने पर, छानकर सुरक्षित रखें।

गुण और उपयोग- आचार्य श्री खरनाथ जी ने अर्शांकुरों का नाश करने के लिए इस तैल को श्रेष्ठ कहा है। इस तैल को अर्शांकुरों पर लगाने से समस्त प्रकार के अर्शरोग नष्ट होते हैं। इस तैल के क्षारत्व गुण के कारण इसके लगाने से बवासीर शीघ्र नष्ट हो जाती है। यह तैल क्षार कर्म की तरह बवासीर के मस्सों को काटकर गिरा देता है। जो गुदवलियाँ अर्श के कारण दूषित हो जाती है, उन्हीं पर इस तैल का प्रभाव होता है, तथा गुदवलियों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती है। इसके अतिरिक्त दुष्टव्रणों में भी इस तैल के प्रयोग करने से लाभ होता हे। यह तैल व्रणों का शोधन एवं रोपण करता है।

कुम्भी तैल

जल-कुम्भी का कल्क १६ तोला, तिल का तैल ६४ तोला और जल कुम्भी का स्वरस २५६ तोला-सबको तैलपाक विधि से पकायें। जब तैल सिद्ध हो जाये, तब उसको कपड़े से छानकर शीशी में भर लें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- कान के रोगों में इस तैल का व्यवहार किया जाता है। इससे कान का दर्द, कान का पकना, मवाद आना आदि रोग दूर हो जाते हैं।

कान के अन्दर फोड़ा-फुन्सी हो जाने से वह पककर बहने लगता है। यदि कहीं अधिक दिन तक मवाद बहता रहा, तो सुनाई भी कम पड़ने लगता है। ऐसी हालत में पहले नीम के पत्ते

डालकर गर्म किए हुए पानी से पिचकारी द्वारा कान साफ करके यह तैल दिन में दो-तीन बार डालने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त कान में मैल जम जाने अथवा कान की जड़ में चोट लगने से यदि दर्द हो, तो उस हालत में भी इससे बहुत लाभ होता है।

किरातादि तैल

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायण की जड़, नेत्रवाला, पोहकरमूल, रास्ना, गजपीपल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पाठा, इन्द्रजौ, सेंधा नमक, काला नमक, सोंचर नमक, वासा का पंचांग, अर्क-मूल काली निशोथ, देवदारु, लाल इन्द्रायण का फूल-ये प्रत्येक द्रव्य समान भाग मिलाकर १६ तोला लेकर इनका कल्क बनायें और दही का पानी, काँजी, चिरायता-क्वाथ, जल, मूर्च्छित किया हुआ कडुआ तैल-ये प्रत्येक द्रव्य १२८-१२८ तोला लेकर सबको एकत्र मिला, यथाविधि तैल-पाक करें। तैल सिद्ध हो जाने पर उतारकर छान लें और सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है। कल्कार्थ-प्रत्येक काष्ठौषधि द्रव्य चार माशा लेकर एकत्र मिला कूटने से १६ तोला कल्क हो जाता है। भै.र. में यह रोग भूनिम्बादि तैल के नाम से है। यद्यपि मूल ग्रन्थ में किस तैल से बनाया जाये इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु वृद्ध वैद्य-परम्परा के अनुसार, कटु तैल से ही बनाने का विधान है।

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश करने से सन्तत-सततादि ज्वर एवं धातुगत ज्वर तथा अस्थि-मज्जागतज्वर नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त कामला, ग्रहणी, अतिसार, हलीमक, प्लीहा, पाण्डु रोग और शोथ-इन रोगों को भी नष्ट करता है।

कुष्ठराक्षस तैल

पारा, गन्धक, कूठ, सतौना, चीता, सिन्दूर, लहसुन, हरताल, बावची, अमलतास के बीज, ताँबे की भस्म और मैनसिल-प्रत्येक १-१ तोला लेकर इनको कपड़छन चूर्ण कर इन्हें ३२ तोले कड़वे तैल में डालकर धूप में रख दें, (कोई-कोढ़ इसमें ४ सेर पानी भी मिलाने को कहते हैं। परन्तु पानी मिलाने से सूर्यपाक द्वारा पानी जल्दी नहीं सूखता, अतएव, बिना पानी मिलाये ही १ सप्ताह तक धूप में रखा रहने दें।) फिर छानकर बोतल में भर लें। औषध-निर्माण के अनुभवी रसायनाचार्यों के मतानुसार इस तैल में कल्क द्रव्यों को खूब महीन पीसकर मिलाकर धूप में रखकर पाक कर, मलहम की तरह मिलाकर (बिना छान) रखना चाहिए और प्रयोग करते समय लकड़ी या चम्मच से मिलाकर लगाना चाहिए। ऐसा करने से अधिक गुणकारी होता है।

वक्तव्य- इस योग में पारा, गन्धक, हरताल, मैनसिल इनको अशुद्ध ही डाला जाता है। पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर डालें।

गुण और उपयोग- यह तैल सफेद कुष्ठ (कोढ़), खुजली, वातरक्त, औदुम्बर कुष्ठ (शरीर भर में लाल चिट्टे पड़ जाना) आदि रक्तविकारों में बहुत लाभ करता है।

कुष्ठ या खुजली की प्रारम्भिक अवस्था में इस तैल की मालिश करने और साथ -साथ कैशोर गुग्गुलु या अमृतादि गूगल आदि के खाने से एवं खदिरारिष्ट भोजनोत्तर बराबर जल मिलाकर पीने से रोग आगे न बढ़कर वहीं रुक जाता है एवं कुछ समय लगातार प्रयोग करने से रोग नष्ट हो जाता है।

खदिरादि तैल

खैर की छाल २.५ सेर, मौलसरी की छाल २.५ सेर-दोनों को कूटकर २५.५ सेर ८ तोला जल में पकायें। जब ६ सेर ८ छटांक २ तोला जल बाकी रहे, तब कपड़े से छानकर, उसमें १२८

तोला तिल तेल मिलायें। फिर खैर की छाल, गेरु, लौंग, अगर, पद्माख, मंजीठ, लोध्र, मुलेठी, लाख, बड़ की छाल, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कबाब चीनी, अकरकरा, पतंग, धाय के फूल, छोटी इलायची, नागकेसर और कायफल-प्रत्येक १-१ तोला लें। इनका कल्क बना तैल पाक-विधि से मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध कर लें। जब तैल सिद्ध हो जाये, तब ठण्डा होने पर उसमें १ तोला कपूर का चूर्ण मिला, कपड़े से छान लें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- इस तैल के प्रयोग से मुँह का पकना, मसूढ़ों का पकना और मवाद (पीब) आना, दाँतों का सड़ना, दाँतों में छिद्र होना, दाँतों में कीड़ लगना, मुँह की दुर्गन्ध तथा जीभ, तालु और होठों के रोग नष्ट हो जाते हैं।

मुखरोग- मुँह में छाले हो जाने पर इस तैल को रुई के फाहे में लगा, छाले पर लगाये और लार नीचे टपकाये। ऐसे दिन भर में ३-४ बार करने से धीरे-धीरे छाले दूर हो जाते हैं।

इसी तरह मसूढ़े सड़ने पर- कभी-कभी मसूढ़ों का मांस सड़कर कटने लगता है, जिससे दाँत कमजोर हो जल्दी गिर पड़ते हैं अथवा पायरिया आदि के कारण मसूढ़ों से खून आने लगता है। इसकी उचित चिकित्सा न करने पर दाँत कमजोर होकर गिर पड़ते हैं। दाँतों के छेद में मैल जमा होने अथवा मसूढ़ों में पीब (मवाद) भर जाने से मुँह से दुर्गन्ध आने लगती है। इन विकारों में इस तैल को फाहे से लगाने के बजाय, इस तैल का कुल्ला कराया जाय तो बहुत शीघ्र लाभ होता है। तेल को मुँह में डालकर करीब २-३ मिनट तक मुँह में चारों तरफ चलाते रहें, फिर कुल्ला कर दें। इस विधि से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गन्धकपिष्टी तैल

गन्धक को खरल में घोंटकर, पिष्टी बना, चौगुने कटु, तेल में मिलाकर, सूर्य की प्रखर धूप में रख दें। जब वह तेल सूर्य की प्रखर गर्मी से तप्त हो जाय, तब शीतल होने पर उसको शीशी में भर लें।

गुण और उपयोग- इस तेल के उपयोग से नयी-पुरानी खुजली, चाहे वह सूखी हो या गीली, कुछ दिनों तक धूप में बैठकर मालिश करने तथा बाद में नीम के साबुन लगाकर स्नान करने से चली जाती है। इसके साथ शुद्ध गन्धक २ रत्ती बराबर मिश्री मिलाकर घी के साथ दोनों समय लेते रहने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गर्भविलास तैल

विदारीकन्द, अनार के पत्ते, हल्दी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सिंघाड़े के पत्ते, चमेली के फल, शतावर, नीलकमल और सफेद कमल इन सबको समान भाग लेकर ४ छटाँक लें, कल्क बनाकर, तिल तेल २ सेर को जल ८ सेर से सिद्ध कर लें। पाक सिद्ध होने पर छानकर रख लें।

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- गर्भावस्था में कभी-कभी गर्भिणी के पेट में दर्द होने लगता है। उस समय दर्द शान्त करने के लिये कोई दवा खिला नहीं सकते, ऐसी दशा में इस तेल की मालिश धीरे-धीरे पेट पर तथा पेट के चारों तरफ करने से दर्द बन्द हो जाता है।

कभी-कभी गर्भावस्था में योनि द्वारा खून निकलने लगता है। यह बहुत खतरनाक बीमारी है। इससे गर्भ कमजोर होकर बच्चा असमय में ही बाहर निकल आता है। इसी को गर्भस्राव या गर्भपात कहते हैं। ऐसी हालत में रुई की एक मोटी बत्ती बना, इस तेल में डुबोकर, योनिमार्ग, द्वारा गर्भाशय में रखने से रक्तस्राव रुक जाता है। फिर गर्भपात या गर्भस्राव होने का डर नहीं रहता। यह प्रयोग लगातार कम-से-कम एक सप्ताह करना चाहिए।

इस तैल की बराबर मालिश करने से गर्भ पुष्ट होता है और बच्चा हृष्ट-पुष्ट तथा चिरायु उत्पन्न होता है। गर्भिणी के लिये यह तैल बहुत उपयोगी है।

ग्रहणीमिहिर तैल

धनिया, धाय के फूल, लोध्र, मंजीठ, अतीस, हर्रे, खस, मोथा, नेत्रबाला (खश), मोचरस, रसोत, बेलगिरि, नीलोफर, तेजपात, नागकेसर, कमलकेसर, गिलोय, इन्द्रजौ, श्यामलता (अनन्तमूल) पद्माख, कुटकी, तगर, जटामांसी, दालचीनी, काला भांगरा, पुनर्नवा, आम की छाल, जामुन की छाल, कदम्ब की छाल, कुड़े की छाल, अजवायन और जीरा- प्रत्येक १.२५०-१.२५०तोला लेकर इनका कल्क बना लें। यह कल्क और मट्ठा (छाछ) या कुड़े की छाल का क्वाथ अथवा धनिया का क्वाथ ८ सेर के साथ तिल तैल मूर्च्छित २ सेर मिलाकर तेलपाक-विधान से तैल सिद्ध कर लें।

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है। कुछ लोग यहाँ मट्ठा, कुड़ाछाल क्वाथ अथवा धनिया क्वाथ-इन तीनों द्रवों से तेल पाक करते है। ऐसा करने से विशेष गुणकारी बन जाता है।

गुण और उपयोग- यह सब प्रकार की ग्रहणी, अतिसार, ज्वर, तृष्णा, श्वास, हिक्का और उदर रोगों का नाश करता है।

यह तेल रसायन है और अकाल में केश (बाल) पकने को रोकता है तथा देह की ढीली चमड़ी को सख्त करता है। यथोचित अनुपान के साथ ३-६ माशे की मात्रा में पिलाना और पेट पर मालिश करनी चाहिए।

संग्रहणी रोग में- पुरानी संग्रहणी में रस-रक्तादि धातुओं की कमी तथा अन्नादिकों का पाचन ठीक तरह से न होने और आँतों की कमजोरी के कारण दस्त पतले होने लगते हैं। इस रोग में जब किसी दवा से लाभ होते न दिख पड़े तब इस तेल को ३ माशे बकरी या गाय के दूध में मिलाकर पिलायें तथा थोड़ा-सा तेल लेकर शरीर में या पेट पर मालिश करें, साथ ही पीयूषवल्ली रस और धान्यपंचक का काढ़ा भी सेवन करते रहने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। खाने के लिए केवल मट्ठा ही पीने को दें और कुछ नहीं। इस तरह करीब दो सप्ताह में ही काफी सुधार मालूम होने लगता है। यह तेल वायुनाशक होने के कारण ग्रहणी रोग में विशेष लाभ करता हे। यह गर्भस्थानपनकारक भी है।

गुडूच्यादि तैल

मूर्च्छित तिल तैल १२८ तोला, गिलोय का क्वाथ ५१२ तोला, गो-दुग्ध १२८ तोला, गिलोय का कल्क ३२ तोला लेकर सबको एकत्र मिला तेल पाक-विधि से तेल-पाक करें। तेल मात्र शेष रहने पर उतार लें और छानकर सुरक्षित रख लें।-भै.र.सरयू प्र.की टीका

वक्तव्य- कुछ वैद्य मूलग्रन्थोक्त ''पय'' शब्द से गो-दुग्ध न लेकर जल लेते हैं, क्योंकि ''पय'' शब्द जल और दुग्ध दोनों का पर्यायवाची है।

गुण और उपयोग- इस तेल की मालिश करने से वातरक्त, तिमिर रोग, कुष्ठ रोग, त्वचा के विकार, विसर्प, पसीना अधिक आना, खुजली और दाह आदि रोग नष्ट होते हैं।

चन्दन-बला-लाक्षादि तैल

चन्दन सफेद, खरेंटी की जड़, लाख,खस- प्रत्येक ६४-६४ तोला लेकर २५ सेर ९ छटाँक, ३ तोला जल में पकायें। जब चौथाई पानी शेष रहे, तब उतारकर छान लें। फिर यह क्वाथ तथा निम्नलिखित कल्क और ६ सेर ६ छटाँक २ तोला दूध के साथ २५६ तोला तिल तेल सिद्ध कर लें।

कल्क द्रव्य- सफेद चन्दन, खस, मुलेठी, सौंफ, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूठ (पुष्करमूल), मंजीठ, अगर, नेत्रबाला (सुगन्धबाला), असगन्ध, खरेंटी, दारुहल्दी, मूर्वा, मोथा, मूली, इलायची बड़ी, दालचीनी, नागकेसर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पक, पीतसार (पीला चन्दन), सारिवा, चौरपुष्पी और गठिवन- सब चीजें समान भाग मिलाकर ३२ तोला लेकर कल्क बनाकर, उपरोक्त दवा में मिला, तैलपाक-विधि से तैल कर लें।

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रवपदार्थों को द्विगुण लिया गया है। कुछ औषधि-निर्माण के अनुभवी वैद्यों का मत है कि तैल में दुग्ध का परिमाण तैल के परिमाण से अधिक होने से तेलपाक ठीक से नहीं हो पाता है। अत: तैल के बराबर ही दूध डालकर पाक करना चाहिए।

गुण और उपयोग- यह तेल खाँसी, श्वास, क्षय, छर्दि, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, कफरोग, दाह, कण्डू, विस्फोटक, शिरोरोग, नेत्रदाह, शरीर का दाह, सूजन, कामला, पाण्डू रोग और ज्वर का नाश करता है।

इसके अतिरिक्त- दाह, पाण्डू, छाती, कमर, हाथ-पाँव का जकड़ जाना, इनमें भी लाभदायक है। सूखी खुजली, चेचक, जोड़ों की सूजन आदि में भी इस तेल का उपयोग किया जाता है। जीर्ण ज्वर और पाण्डु रोग में यह विशेष उपयोगी है।

किसी भी बीमारी के कारण रस-रक्तादि धातुओं की कमी होने से शरीर कमजोर हो गया हो, अर्थात् शरीर में रक्त की कमी, थोड़ा-थोड़ा बुखार का भी अंश बना रहना, हाथ-पाँव आदि में जलन अथवा अशक्ति, किसी भी कार्य में मन नहीं लगना, ज्यादा चलने-फिरने में असमर्थ रहना इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर इस तेल की मालिश दोनों समय करते रहने से ज्वर की गर्मी धीरे-धीरे कम हो जाती है तथा शरीर में रस-रक्तादि धातुओं की वृद्धि होकर शरीर पुष्ट होने लगता है।

इसी तरह बच्चों की बीमारी- सूखा रोग में भी इस तेल की मालिश करने से बहुत लाभ होता है, परन्तु तेल-मालिश के साथ-साथ प्रवाल या मुक्तापिष्टी, लौहभस्म अथवा स्वर्ण बसन्तमालती उचित मात्रा में सेवन करना चाहिए। इससे बच्चे की तन्दुरूस्ती बहुत शीघ्र अच्छी हो जाती है और बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

चन्दनादि तैल

तिल तैल १ सेर ९ छटाँक ३ तोला, कल्कद्रव्य-लाल चन्दन, सुगन्धवाला, नखी, कूठ (पुष्करमूल), मुलेठी, छरीला, पद्माख, मंजीठ, सरल काष्ठ, देवदारु, कचूर, छोटी इलायची, पूति (मूश्तविलाव), नागकेसर, तेजपात, शिलारस, मुरामांसी, शीतलचीनल, प्रियंगु, मोथा, दोनों हल्दी, दोनों सारिवा, कुटकी, लौंग, अगर केसर, दालचीनी, रेणुका, नलिका प्रत्येक आधा-आधा तोला, दही का पानी ६.५ सेर १२ तोला, लाक्षा रस १ सेर ९ छटाँक ३ तोला, सबको तैलपाक-विधि से पकायें। -भै.र.

वक्तव्य- द्रव पदार्थों का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- यह चन्दनादि तैल रक्त, पित्त, क्षय, ज्वर, पसीना की दुर्गन्ध, जीर्णज्वर अपस्मार, उन्माद, सिर-दर्द, धातु की विकृति आदि रोगों को दूर कर शरीर की कान्ति बढ़ाना और दीर्घायु प्रदान करता है। यह तैल सौम्य (शीतल) गुण-प्रधान होने के कारण पित्त विकारों में लाभदायक है।

जात्यादि तैल

चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल पत्र, करंज के पत्ते, मोम, मुलेठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मंजीठ, पद्माख, लोध, हर्रे, नीलोफर (नीलकमल), नीलाथोथा, सारिवा और

करंज के बीज-प्रत्येक समान भाग लेकर पानी में पीसकर, कल्क बना लें। इस कल्क को चौगुने तैल में मिलाकर तैल से चौगुना पानी डाल, मन्दाग्नि पर पकायें। जब पानी जल जाये, तैल मात्र शेष रहे, छानकर रख लें।-शा.ध.सं.

गुण और उपयोग - इस तैल के सब गुण लगभग जात्यादि घृत के समान ही है। इसके लगाने से विषाक्त घाव, जैसे-मकड़ी आदि विषैले जन्तुओं के स्पर्श से होने वाले घाव और साधारण घाव, चेचक, खुजली सूखी-गीली दोनों तरह की, विसर्प, शस्त्रादि से कट जाने पर हुआ घाव, अग्नि से जलने या कील आदि घुस जाने से उत्पन्न तथा नाखुन या दाँतों के काटने से होने वाले घाव या कहीं रगड़ लगकर चमड़ी छिल गई हो इस तरह के घावों के लिये बहुत उपयोगी है।

तुबरक तैल (चालमोगरा तैल)

भारतवर्ष के पश्चिम समुद्र के तट पर कोकण से त्रावणकोर तक तुबरक के वृक्ष होते हैं। इसके फल को मराठी में 'कडूकवीठ' कहते हैं। वर्षा ऋतु के आरम्भ में जब इस वृक्ष के फल पककर तैयार हो जायें, तब लाकर तौलकर उसके अन्दर का मगज निकाल, सुखा करके कोल्हू में पेरवाकर, तैल निकाल लें अथवा मगज को चूर्ण कर जल के साथ पकायें। जब तैल पानी के ऊपर आ जाय, तब धीरे-धीरे उसमें से तैल निकाल लें। फिर इस तैल को मन्द आँच पर इतना पकायें कि लगभग सारा पानी जलकर तैल मात्र शेष रह जाये, फिर उतार कपड़े से छानकर रख लें। इस तैल को खैर की छाल के तिगुने क्वाथ में पुनः पकायें। जब क्वाथ का पानी जल जाय और तैल मात्र शेष रहे, तब छानकर बोतलों में रख लें। इन बोतलों को कण्डे के चूर्ण में तीन दिन तक गाड़ कर रखने के बाद तैल काम में लायें।-सि.यो.सं.

वक्तव्य- तुबरक तैल को ही आजकल चालमोगरा तैल कहते हैं। इसी नाम से यह तैल विक्रेताओं के यहाँ बना हुआ तैयार मिल जाता है।

मात्रा और उपयोग-विधि- सुबह-शाम दिन में दो बार यह तैल पाँच बूँद की मात्रा से आरम्भ करें और प्रति चौथे दिन पाँच बूँद की मात्रा बढ़ाकर १ तोला तक गाय के ताजे मक्खन या दूध या मलाई में मिलाकर दें। रोगी जितनी मात्रा सहन कर सके, उतनी मात्रा बढ़ायें। जब मात्रा सहन नहीं होती हैं, तब जी मिचलाने लगता है और वमन भी होती है ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर तैल की मात्रा घटा दें। स्नान करने के बाद इस तैल की मालिश करायें, रोगी जितनी मात्रा सहन कर सके उतनी ही मात्रा में ६ माह तक इसका सेवन करायें।

सब प्रकार के कुष्ठों में इस तैल के खाने और लगाने से बहुत लाभ होता है। इस तैल में कपड़ा भिंगोकर व्रण पर रखने से व्रण भर जाता है। खुजली आदि में लगाने से लाभ होता है। कुष्ठ रोग की यह सुप्रसिद्ध औषधि है। आजकल कुष्ठ का प्रसार अधिक होने के कारण इसका उपयोग भी बहुत बढ़ रहा है और पर्याप्त सफलता भी मिलती है।

दशमूल तैल

मूर्च्छित कडुवा तैल १ से ९ छटाँक ३ तोला ले और दशमूल १६ तोला लेकर उसका कल्क बनायें। पश्चात् दशमूल १ सेर ९ छटाँक ३ तोला लेकर १२ सेर १२ छटाँक ४ तोला जल में डालकर क्वाथ बनायें। जब चतुर्थांश जल शेष रहे, तो उतारकर छान लें, पश्चात निर्गुण्डी पत्र स्वरस-३ सेर ३ छटाँक १ तोला और तैल, कल्क, क्वाथ सब को कड़ाही में एकत्र मिलाकर यथाविधि तैल सिद्ध करें। चतुर्थांश अर्थात् ३ सेर ३ छटाँक १ तोला क्वाथ शेष रहने पर छानकर डालें।

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है। निर्गुण्डी-पत्र-स्वरस के अभाव में निर्गुण्डी पत्र या पंचांग ३ सेर छटाँक १ तोला को १२ से १२ छटाँक ४ तोला जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश अर्थात् ३ सेर ३ छटाँक १ तोला क्वाथ शेष रहने पर छानकर डालें।

गुण और उपयोग- इस तेल की मालिश करने से समस्त प्रकार के शिरोरोग एवं वात रोगों से शीघ्र लाभ होता है तथा अस्थिगत, सन्धिगत और कफ प्रधान रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त कान या नाक के दर्द में भी ३-४ बूँद डालने से अच्छा लाभ होता है।

नारायण तैल

असगन्ध, बरियार (खरेंटी) की जड़, बेल की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरु, सम्भालू की पत्ती, सोनापाठा के मूल या छाल, गदहपुरना (पुनर्नवा) के मूल, उड़द, कटसरैया, रास्ना, एरण्डमूल, देवदारु, प्रसारणी और अरणी-प्रत्येक ४०-४० तोला लें। उनको जौकुट करे ५१ से १६५ तोला जल में पकायें। जब १२.७५० सेर ४ तोला जल शेष रहे, तब उतारकर ठण्डा होने पर कपड़े से छान लें। फिर उसमें तिल का तैल २५६ तोला, शतावरी का रस २५६ तोला, गाय का दूध २५६ तोला, कूठ, छोटी इलायची, सफेद चन्दन, बरियार के मूल, जटामांसी, छरीला, सेंधा नमक, असगंध, बच, रास्ना-सौंफ, देवदारु, सरिवन, पिठवन, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, तगर-प्रत्येक ८-८ तोला लेकर कल्कर बना, तैल में मिलाकर पकायें। तैल सिद्ध होने पर कपड़े से छान शीशियों में भर लें। -सि.यो.सं.

गुण और उपयोग - इस तैल के उपयोग से सब प्रकार के वायु रोग जैसे पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, अपबाहुक, कमर का दर्द, पसली का दर्द, कान का दर्द, शरीर के किसी अवयव का सूखना, लंगड़ापन, सिर का दर्द तथा अन्य एकांग या सर्वांग में होने वाले वात रोगों में लाभ होता है। इस तैल का उपयोग मालिश करने में, नस्य देने में, कान में डालने में, पिलाने और बस्ति देने में किया जाता है।

यह तैल सौम्य और अद्‌भुत चमत्कार दिखाने के कारण बहुत विख्यात है। इसमें शतावरी का रस प्रधान है और चूँकी शतावरी का नाम नारायणी है, अतएव इसका भी नाम नारायण तैल रखा गया है।

जहाँ-जहाँ दर्द हो, वहाँ-वहाँ इस तैल की धीरे-धीरे मालिश करें। फिर दर्दस्थान को ऊनी कपड़े से लपेट दें। लगभग तीन घण्टे के बाद पुनः गरम पानी से सेंकें। यदि वायु की प्रबलता हो तो पानी गरम करते समय निर्गुण्डी, करंज, नीम, इनमे से एक या सब वृक्षों के पत्ते और खशखश के पोस्त डालकर पानी गरम करना चाहिए। रात को एक बार या ज्यादा दर्द हो तो सुबह-शाम तेल लगाकर सेंक दें। शरीर के किसी कोमल-स्थान पर यह लगाने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। छोटे बच्चों की अण्ड-कोष-वृद्धि या बड़ी उम्र वालों की अण्ड-वृद्धि पर भी इसका उत्तम उपयोग होता है।

धनुर्वात में- छाती पर गले से लेकर कमर तक पीठ की सभी नसों पर यह तेल लगाकर उपरोक्त विधि से सेंक करना चाहिए। हर दो घण्टे बाद १५ बूँद तेल गर्म पानी या किसी वातनाशक काढ़े में मिलाकर पिलाने से भी लाभ होता है। इस तरह से गला व ठोडी स्तम्भ, गलग्रह, सर्वांग (शरीर) या हाथ-पाँव की ऐंठन आदि अति त्रास-दायक वायु के दर्द दूर हो जाते हैं।

शरीर का एक भाग सूख जाना- लकवा, पक्षाघात आदि वायु के कारण शरीर का एक भाग सूख जाता है। वहां रक्त संचार न होने से वह भाग शून्य और पतला हो जाता है। ऐसी हालत में नारायण तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है।

कभी-कभी गला और पाँव के जोड़ों की हड्डियों में विकार पैदा होकर उनके कारण हाथ-पाँव को हिलाने-डुलाने में बाध पड़ने लगती है। उनमें रह-रह कर चक्कर होने लगता है, ऐंठन पैदा होती है। ऐसी हालत में नारायण तैल की मालिश एवं सेक से काफी लाभ होता है। करीब एक माह बाद वहाँ की हड्डियों की विकृति दूर हो जाती और रक्त-संचार होने लग जाता है।

पुराने वात रोगों में इस तेल की मालिश कर और साथ ही चन्द्रप्रभा बटी, योगराज गुग्गुलु आदि का सेवन करने से कष्ट साध्य वात रोग भी दूर हो जाते हैं।

ज्वर, राजयक्ष्मा, माथे का दर्द, बुद्धि की कमी, स्मरण-शक्ति का ह्रास, बधिरता आदि का नाश करने के लिए नारायण तैल का उपयोग किया जाता है।

त्वचा (चमड़ी), नस, मांस और हड्डियों को मजबूत करना इत्यादि गुण इस तैल में विशेष होने की वजह से यह बालक, युवक, वृद्ध, गर्भवती स्त्रियाँ सबको लाभ होता है। इस तेल की मालिश से नसे फैल जाती है तथा रक्त का संचार अच्छी तरह होने लगता है, यही कारण है कि जो अंग शुष्क-निर्जीव से हो जाते हैं, वे भी इसकी मालिश से जीवन प्राप्त कर पुष्ट हो जाते हैं। यह गुण और तेलों की अपेक्षा में इसमें अधिक हैं।

नासार्शोहर तैल

गृहधूम (घर की छत में जमा हुआ धुआँ), छोटी पीपल, देवदारु, जवाखार, करंज की छाल, सेंधा नमक और अपामार्ग के बीज, प्रत्येक २-२ तोला लें, इन्हें जल में पीसकर कल्क बनायें। फिर इसके ६४ तोला तिल तेल और २५६ तोला जल में मिलाकर तेलपाक-विधि से पकायें। सिद्ध होने पर छानकर रख लें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- रुई का फाहा बनाकर इस तेल में डुबोकर नाक में टपकाने से नाक में होने वाले मस्से दूर हो जाते हैं।

निर्गुण्डी तैल

तिल तैल मूर्च्छित १०८ तोला लेकर उसमें कलिहारि-मूल १६ तोला का कल्क तथा निर्गुण्डी (सम्भालू) स्वरस ५१२ तोला मिला सबको कड़ाही में डालकर तैलपाक विधि से तेल सिद्ध कर के छानकर पात्र में रख लें।

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- यह तेल गण्डमाला, अपची, नाड़ीव्रण (नासूर), दुष्टव्रण, अदृष्टव्रण (Carbuncle) आदि रोगों में नस्य लेने एवं लगाने के काम में उपयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से इन रोगों में बहुत उत्तम लाभ होता है।

पंचगुण तैल

हर्रे, बहेड़ा, आँवला-प्रत्येक ५-५ तोला, नीम और सम्भालू की पत्ती-प्रत्येक १५-१५ तोला लें, जौकुट करके अठगुने जल में पकायें। जब चौथाई जल बाकी रहे, तब उसमें तिल का तेल ८० तोला, मोम, गन्धाबिरोजा, शिलारस, राल और गूगल-प्रत्येक ४-४ तोला डालकर मन्द आँच पर पकावे। जब पकते-पकते खरपाक होकर तेल अलग हो जाये, तब कपड़े से छान, थोड़ी

गरम हालत में उसमें कपूर का मोटा चूर्ण ५ तोला डाल, चमचे से हिलाकर मिला दें। ठण्डा होने पर उसमें तारपीन का तेल, युकेलिप्टस का तेल और केजोपुटी का तेल २.५-२.५ तोला मिलाकर शीशी में भर लें। -सि.यो.सं.

गुण और उपयोग -संधिवात में और शरीर के किसी भी अवयव में शूल (दर्द) में हल्के हाथ से मालिश करें। कर्णशूल में कान में डालें। सब प्रकार के व्रणों में व्रण को नीम और सम्भालू की पत्ती के क्वाथ से धोकर, उसपर इस तैल में भिगोंई हुई रूई या स्वच्छ कपड़ा रख ऊपर से केला-पत्त, समुद्रशोष, धाय-पात अथवा बड़ का पत्ता रखकर बाँध लें। यह तैल उत्तम वेदनाहर और व्रण का शोधन तथा रोपण करने वाला है। जले हुए स्थान पर लगाने से उसकी जलन शान्त करता और फफोले हो गये हों तो उसको भी ठीक कर देता है। चोट-मोच पर भी लगाने से ठीक कर देता है।

प्रमेहमिहिर तैल

सोया, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, कूठ (पुष्करमूल), असगन्ध, सफेद चन्दन (नेत्रबाला), लाल चन्दन, रेणुका, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, दालचीनी (तज), इलायची, भारंगी, चव्य, धनियां, इन्द्रजौं करंज-बीज, अगर, तेजपात, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, नलिका, सुगन्धबाला, खरेंटी, कंधी, मंजीठ, सरल काष्ठ, पद्म काष्ठ, लोध्र, सौंफ, बच, कालाजीरा, खस, जायफल वासा (अडूसा) मूल ओर तगर प्रत्येक १-१ तोला लेकर कल्क बनायें। फिर तेल १२८ तोला, शतावर का रस १२८ तोला, लाख का रस ५१२ तोला, दही का पानी ५१२ तोला और दूध १२८ इन सबको एकत्र करें, उपरोक्त कल्क मिलाकर तैलपाक विधि से तैल सिद्ध करें। तैल सिद्ध हो जाने पर (छान कर) रख लें।

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है। पाकान्त में वातव्याधि अधिकार में भै.र. में कहे गये गन्धद्रव्यों को मिलाकर ६४ वाँ भाग लेकर, कल्क बनाकर तैल में डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर दो-तीन दिन में पकाकर छानकर रखने से विशेष उत्तम बनता है।

गुण और उपयोग- इसकी मालिश से वात-विकार तथा वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मेदोगत और मांसगत ज्वर नष्ट होते हैं। यह शुक्रक्षय के कारण दुर्बल व्यक्तियों के लिये विशेष उपयोगी है। यह तैल दाह, पिपासा, पित्त, छर्दि (वमन), मुँह सूखना तथा २० प्रकार के प्रमेह रोगों को नष्ट करता है।

यह तैल पित्त और वायुनाशक, सौम्य और रक्तादि धातुवर्द्धक एवं शरीर को पुष्ट करने वाला तथा वीर्यवाहिनी नाड़ियों को ताकत देने वाला है।

प्रसारिणी तैल

५ सेर प्रसारिणी को १२.७५० सेर ४ तोला जल में पकायें, जब ३.५ सेर =१ तोला जल शेष रह जाये, तब उतारकर छान लें। फिर इसमें ३.५ सेर =१ तोला मूर्च्छित तिल तैल तथा दही और कांजी तैल के बराबर, गौ का दूध तैल से चौगुना और तैल का आठवाँ हिस्सा निम्न औषधियों का कल्क लें, यथा-मूलेठी, पीपलामूल, चित्रक की जड़, सेंधा नमक, बच, प्रसारिणी, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, भिलावा, सौंफ और जटामांसी, लालचन्दन (नेत्रबाला) सब समान भाग लेकर बना, सबको एकत्र कर विधिपूर्वक तैल सिद्ध करें।

वक्तव्य- प्रसारणी नाम से कुछ वैद्य राजस्थान में होनेवाली खींप को लेते हैं। और कुछ लोग देहरादून और बंगाल आदि में होने वाली गन्ध प्रसारणी नामक बदबूदार लता को लेते हैं।

गुण और उपयोग- इस तैल से मालिश की जाती और नस्य तथा अनुवासन बस्ति दी जाती है। यह तैल गृध्रसी, अस्थि-भंग (हड्डी टूटना), मन्दाग्नि, अपस्मार (मृगी), उन्माद (पागलपन) और विद्रधि का नाश करता है। जो व्यक्ति तेज नहीं चल सकतें, उनकी नसों में रक्त का संचार कर फुर्ती पैदा करता है। त्वचा और शिरा तथा सन्धि (जोड़) गत वायु को नष्ट करता है। इस तैल में यह विशेषता है कि जितना फायदा वायु से पीड़ित मनुष्य को इससे होता है, उतना ही फायदा पशुओं-बैल, घोड़े, गाय आदि को भी होता है।

यह तेल रक्त और मांस को पुष्ट करने वाला तथा कमजोर हाथ-पाँव आदि शारीरिक अंगों में शक्ति प्रदान करने वाला तथा शरीर की कान्ति को सुधारनेवाला है। इसकी मालिश से शरीर में बल की वृद्धि होती है तथा सन्तानोत्पादन की शक्ति आती हैं। जो मनुष्य लंगड़ाकर चलता हो, वह इस तेल की लगातार नियमित रूप से कुछ दिनों तक मालिश करें तथा दूध के साथ सेवन करें, तो लंगड़ापन अवश्य दूर हो जायेगा, क्योंकि इसमें प्रसारणी प्रधान है, जो नसों तथा हड्डियों के विकार को ठीक करने में प्रसिद्ध है।

पुनर्नवादि तैल

पुनर्नवा-मूल ५ सेर लेकर २५ सेर ९ छटाँक ३ तोला में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर, उतारकर छान लें। पश्चात् तिल तैल १२८ तोला और सोंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, काकड़ासिंगी,धनियां, कायफल, कचूर, दारुहल्दी, प्रियंगु, पद्मकाष्ठ, रेणुका, कूठ (पुष्करमूल),पुनर्नवा-मूल, अजवायन, काला जीरा, बड़ी इलायची, दालचीनी (तज) लोध्र, तेजपात, नागकेसर, बच, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल, सौंफ, नेत्रबाला (खश), मंजीठ, रास्ना और जबासा-प्रत्येक १-१ तोला लेकर कल्क बना लें। पश्चात् क्वाथ कल्क, तैल- इन सबको कड़ाही में एकत्र मिला तैल-पाक-विधि से तैल सिद्ध करें। तैल सिद्ध हो जाने पर छानकर सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- इस तैल से मालिश करने से शोथ, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, रक्तपित्त, अत्यंत कठिन महाशोथ, भगन्दर, प्लीहा रोग, उदररोग, जीर्ण ज्वर आदि व्याधियाँ नष्ट होती हैं।

बाधिर्य नाशक तैल

शहद, अदरक का रस, सहिजन की जड़ की छाल का रस और केले की जड़ का रस-प्रत्येक १-१ सेर, तिल तेल १ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकायें। तेलमात्र शेष रहने पर उतारकर छानकर रख लें।

गुण और उपयोग- कान में ज्यादा मैल जम जाने अथवा कान में छेद किसी कारण बन्द हो जाने अथवा सुनने की शक्ति कम हो जाने या सुनाई कम देने पर इस तैल का उपयोग करें। कान में किसी प्रकार बीमारी हो, तो इससे पूर्ण लाभ होता है।

ब्राह्मी तैल-औषधि-सिद्ध

तिल तैल १० सेर १० छटाँक ले और ब्राह्मी-पत्ती (हरिद्वारी) १ सेर लेकर ८ गुने जल में पकायें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतार लें, पश्चात् इसको बिना छाने ही (फोंक सहित) तिल तैल में मिला कर मन्दाग्नि पर पाक करें। तेल सिद्ध होने पर उतारकर छान लें। शीतल होने पर इसमें ५ आना भर ग्रीन कलर (तेल में मिलाने का) मिलाकर सुरक्षित रखें।

गुण और उपयोग- यह तैल सौम्यगुण युक्त, शीतलतादायक, बुद्धिवर्धक और केश (बाल) वर्द्धक है। सिर में इस तैल की मालिश करने से दिमागी कमजोरी को नष्ट कर बुद्धि बढ़ाता है तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ाने में उत्तम गुणकारी है।-आनुभविक प्रयोग

ब्राह्मी तैल-औषधि-सिद्ध और सुगन्धित

तिल तैल फिल्टर किया हुआ १५ सेर, औषधि सिद्ध ब्राह्मी तैल १ सेर लेकर इन दोनों को एकत्र मिला लें। पश्चात् इसमें सुरंगी सेन्ट ४ तोला, गुलाब का सेन्ट ४ तोला, चन्दन तैल ८ तोला, हरा रंग (ग्रीन कलर) तेल में मिलाने का ३ माशे लेकर अच्छी प्रकार मिलाकर सुरक्षित रख लें। -आनुभविक प्रयोग

गुण और उपयोग- यह तैल सौम्यगुणयुक्त, शीतलता प्रदान करने वाला, बुद्धिवर्धक और मनमोहक सुगन्धि-युक्त एवं केशवर्द्धक है। इस तैल को सिर में मालिश करने से मस्तिष्क की निर्बलता नष्ट होकर स्मरणशक्ति एवं बुद्धि की वृद्धि होती है। दिमागी काम करने वाले सुगन्धित तेल का व्यवहार करना पसन्द करते हैं, उनके लिये नित्य व्यवहार के लिये यह बहुत उपयोगी है।

वासाचन्दनाद्य तैल

कल्क-सफेद चंदन, रेणुका, जुन्दबेदस्तर (खट्टाशी), असगंध, प्रसारणी, दालचीन (तेज) तेजपात, बड़ी इलायची, पीपलामूल, नागकेसर, मैदा, सोंठ-मिर्च, पीपल, रास्ना, मुलेठी, छरीला, कचूर, कूठ (पुष्करमूल), देवदारु, फूल प्रियंगू और बहेड़ा-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर सब को एकत्र पीस लें। फिर ५ सेर वासक मूल या पंचांग को कूटकर २५.५सेर ८ तोला पानी में पकायें और चौथाई पानी शेष रहने पर छान लें। बाद में सफेद चन्दन, गिलोय (गुर्च), भारंगी, दशमूल और कटेरी-प्रत्येक १-१ सेर लेकर बसको एकत्र कूट करके २५.५ सेर ८ तोला पानी में पकायें, जब चौथाई जल शेष रहे, तो छान लें। फिर तिल तैल ६ सेर ६ छटांक २ तोला, लाख का रस और दही का पानी-प्रत्येक तैल के बराबर लेकर, सबको एकत्र मिलाकर तैल-पाक विधि से तैल तैयार कर, रख लें।-भै.र.

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- यह तेल कास, ज्वर, रक्तपित्त, पाण्डु, हलीमक, कामला, क्षतक्षय, राजयक्ष्मा और श्वास में उपयोगी है। इसकी मालिश से बल-वर्ण की वृद्धि होती है।

इस तैल का उपयोग राजयक्ष्मा की खाँसी, पुरानी खाँसी और श्वास रोग के कारण जिसका शरीर दुर्बल हो गया हो, उसमें किया जाता है। यह तैल सौम्य होने की वजह से कफ को ढीला करता है तथा श्वास पथ अथवा छाती में बैठे हुए पुराने कफ को पिघलाकर बाहर निकालता है। साथ ही शरीर में रक्त की वृद्धि कर देह को पुष्ट और कान्ति-युक्त बना देता है।

रक्तपित्त में पित्त की विकृति के कारण खून ज्यादा मात्रा में गिरता हो, खाँसी तेज आती हो, शरीर में दाह, जलन हो, प्यास ज्यादा लगती हो, ज्वर भी बना रहता हो, रक्त की कमी के कारण शरीर का वर्ण पीला हो गयाा हो इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर इस तैल की मालिश से अच्छा लाभ होता है, क्योंकि यह पित्त-विकार शामक तथा खून को रोकनेवाला है। रक्त को रोकना भी इसका कार्य है। इसीलिये रक्त-पित्त-रोग में वासक द्वारा अनेक औषधियाँ बना कर देने का शास्त्र में उपदंश है। इसकी प्रशंसा करते हुए यहाँ तक लिखा गया है कि जब तक वासक का पेड़ है, तब तक रक्त-पित्त के रोगी को चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

व्रणराक्षस तैल

पारद, गन्धक, सिन्दूर, मैनसिल, लहसुन, छिल्का रहित, मीठा विष, ताम्र-भस्म प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर पारा, गन्धक की कज्जली बनायें, पश्चात् अन्य द्रव्यों को पृथक्-पृथक् सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर लें। फिर कज्जली तथा सब द्रव्यों के चूर्ण को १६ तोला कडुव तैल में मिलाकर, एक ताम्रपात्र में भर कर, १५ दिन तक सूर्य के तीव्र ताप में रख और प्रतिदिन दो बार चला दिया करें। पश्चात् बिना छाने ही द्रव्यों के कल्क सहित तेल को चीनी मिट्टी या काँच की बरनी में भरकर ढक्कन लगा सुरक्षित रख लें।

वक्तव्य- इस योग में पारा, गन्धक, मैनसिल, मीठा विष आदि द्रव्य अशुद्ध ही डाले जाते हैं।

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश से समस्त प्रकार के चर्मरोग और व्रण नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त नाड़ीव्रण (नासूर), विस्फोट, मांस-वृद्धि, विचर्चिका (एक्जिमा), दाद, अपची, कण्डू, मण्डलकुष्ठ और दुष्ट व्रण नष्ट हो जाते हैं।

ब्राह्मी आँवला तैल

ब्राह्मी पत्ती (हरिद्वार) १५ छटाँक १.२५० तोला और आंवलाकली १५ छटांक १.२५० तोले लेकर पृथक्-पृथक् ३ सेर १३ छटांक जल डालकर अलग-अलग क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर आँवला क्वाथ को छानकर और ब्राह्मी क्वाथ को बिना छाने ही इन्हें तिल तैल ८ सेर ७ छटाँक में मन्द-मन्द आँच से पकावें और तैल का पाक सिद्ध होने पर उतार कर छान लें।

नोट- तैल का पाक करते समय इसमें ब्राह्मी क्वाथ का ही फोंक कल्क रूप में डालना चाहिए, आँवला क्वाथ का फोंक नहीं डालना चाहिए, क्योंकि आँवला तैल का वर्ण काला हो जाता है।

उपरोक्त सिद्ध तैल १० छटांक, तिल तैल ९ सेर ६ छटाँक, रुह आँवला १/४ औंस, सुरंगी १/४ औंस, बेन्जिल एसिटेट ४ औंस, ग्रीन कलर (तैल में मिलाने का) बुसका १/४ ड्राम लेकर इन सबको अच्छी प्रकार मिलाकर सुरक्षित रखें।

गुण और उपयोग- यह तैल ब्राह्मी और आँवला के क्वाथ द्वारा निर्माण किया गया है। अतः यह ब्राह्मी तैल की अपेक्षा अधिक सौम्य, शीतलता प्रदान करने वाला और अधिक गुणकारी है। तैल का नित्य व्यवहार करने से यह बालों को झड़ने और सफेद होने से रोकता है एवं बालों ...ता है, मस्तिष्क को शीतल रखने एवं बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढ़ाने में अपूर्व

विपरीतमल्ल तैल

लहसुन, चित्रक, सुगन्धबाला की जड़ और कलिहारी ...को एकत्र पीस लें। १ सेर कड़ुए तैल में यह ... जाये, तब तैल को छान लें। ...माण द्विगुण लिया गया है। ...द्वारा कटे हुए घाव, ...ण, गलगण्ड,

गण्डमाला आदि को नष्ट करता है।

बिल्व तैल

मूर्च्छित कड़ुवा तेल १२८ तोला, बकरी का दूध ६ सेर ३२ तोला, बेलगिरी ३२ तोला लें। बेलगिरी को गोमूत्र में पीसकर कल्क बना, आवश्यकतानुसार जल मिलाकर तेल पाक-विधि से तैल सिद्ध करें। तैल सिद्ध हो जाने पर, उतारकर छान लें। -भै.र.

वक्तव्य- इस तैल में तैल से चौगुना बकरी का दूध है। अनुभव से देखा गया है कि इतने अधिक परिमाण में दूध के साथ पकाने पर तैल गाढ़ा हो जाता है और पाक ठीक नहीं हो पाता है। अत: तैल दुगुने के साथ पाक करने से उत्तम बनता है।

गुण और उपयोग- इस तैल को कान में डालने से समस्त प्रकार के कर्ण रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त कान में दर्द होना, कामन में सायँ-सायँ शब्द होना एवं बहरापन आदि कान के विकार नष्ट होते हैं।

महाविषगर्भ तैल

मूर्च्छित तिल तैल ५ सेर ८ छटाँक, अशुद्ध श्रृंगिक विष, अशुद्ध कुचला, अर्कमूल छाल, एरण्डमूल, धतूर का पंचांग प्रत्येक २०-२० तोला लेकर कल्क बनायें। इसमें जल २० सेर मिलाकर, सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर, कड़ाही में डालकर तैलपाक-विधि से तैल सिद्ध करें। तैल-पाक-सिद्ध होने पर, उतारकर छान करके सुरक्षित रख लें।-आनुभविक योग

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश से सन्धियों की सूजन, गृध्रसी, सिर-दर्द, समूचे शरीर में हड़फूटन होना, कान में आवाज होना, आधा शरीर सूख जाना आदि रोग नष्ट होते हैं।

यह बहुत प्रसिद्ध तैल है। पुराने वात रोगों में इस तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है। ज्यादा परिश्रम या रास्ता चलने आदि के कारण शरीर में थकावट मालूम हो अथवा देह अकड़ती हो, जम्भाई बार-बार आती हो, शरीर में दर्द होता हो, कभी-कभी ज्यादा सर्दी लगकर शरीर में वायु-सम्बन्धी दर्द होने लगता हो, इन अवस्थाओं में विषगर्भ तैल की मालिश से शीघ्र लाभ होता है।

बृहद् विष्णु तैल

असगन्ध, नागरमोथा, जीवक (शतावरी), ऋषभक, कचूर, काकोली (शतावरी), क्षीरकाकोली (शतावरी), जीवन्ती, मुलेठी, सौंफ, देवदारु, पद्मकाष्ठ, छरीला, जटामांसी, इलायची बड़ी, दालचीनी (तज), कूठ (पुष्करमूल), बच, लाल चन्दन, केसर, मंजीठ, कस्तूरी (अभाव में लताकस्तूरी), श्वेतचन्दन (नेत्रबाला), रेणुका, माषपर्णी, कुन्दरुगोंद, मुद्गपर्णी, गठिवन, नरवी- ये प्रत्येक द्रव्य १-१ पल (४-४ तोला) लेकर इनका कल्क बनायें। पश्चात् तिल तैल २ आढक (६ सेर ३२ तोला), शतावर रस २ आढ़क, गोदुग्ध ५ आढ़क और पाकार्थ जल २ द्रोण (२५.५सेर ८ तोला) लेकर सबको एकत्र मिला, तैल-पाक-विधि से तैल पाक करें, पाक सिद्ध होने पर तैल को उतारकर छान लें और सुरक्षित रखें।-भै.र.

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है। केसर और कस्तुरी को खरल में महीन पीसकर तैल पाक सिद्ध होने पर, छानने के बाद मिलाकर तैल को पात्र में भरकर, पात्र का मुख अच्छी तरह ढककर, सुरक्षित रखना चाहिए ताकि गन्ध उड़ने नहीं पाये।

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश से वातव्याधि से पीड़ित हाथी, घोड़े तक भी अच्छे हो जाते हैं। विशेष शुक्रपात होने अथवा छोटी आयु में अप्राकृतिक ढंग से शुक्र का नाश करने से

यदि शुक्रवाहिनी नाड़ियाँ कमजोर हों, नपुंसकता उत्पन्न हो गयी हो, तो इस तैल की मालिश से वह भी दूर हो जाती है। इसके अतिरिक्त, यह तैल हृच्छूल, पार्श्वशूल, अर्धावभेदक, पाण्डु, कामला, राजयक्ष्मा, लकवा और वातरक्त को भी नष्ट करता है।

जो पुरुष जवान होते हुए शुक्र की कमी के कारण अपने को बुड्ढा समझते हों, उन्हें भी इस तैल की मालिश से बहुत लाभ होता है। जिन स्त्रियों को सन्तान नहीं होती हो, उन्हें इस तैल का अवश्य सेवन करना चाहिए। इस तैल की मालिश से गर्भाशय सशक्त हो गर्भधारण करता है। यदि गर्भ गिर जाता हो, तो विशेषकर पेड़ू तथा पेट के आसपास एवं जांघों में इस तैल की मालिश करें और रुई के फाहे में इस तैल को भिंगों कर योनि में गर्भाशय के मुख पर रखें। इस तरह एक सप्ताह तक फाहा रखने से फिर गर्भ गिरने का डर नहीं रहता है।

भृंगराज तैल

भाँगरे का स्वरस २५६ तोला, ब्राह्मी स्वरस ६४ तोला, आँवले का रस ६४ तोला, तिल का तैल १२८ तोला, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, कचूर, लोध्र, मंजीठ, बावची, बरियारा के मूल, चन्दन(नेत्रबाला), पद्माख, अनन्तमूल, मण्डूर, मेंहदी, प्रियंगु, मूलेठी, जटामांसी और कूठ (पुष्करमूल)- प्रत्येक १-१ तोला, इनका कल्क मिलाकर सब को तैलपाक-विधि से पकायें। जब तैल सिद्ध हो जाय तब कपड़े से छानकर, शीशी में भर लें।

गुण और उपयोग- यह तैल नित्य सिर पर लगाने से सिर के बाल बढ़ते हैं तथा सिर का दर्द, बाल सफेद होना और गिरना ये रोग अच्छे होते हैं। बार-बार इस तैल को सिर में लगाने से बाल न तो जल्दी पकते हैं, और न ही झड़ते हैं। स्वस्थ स्त्री-पुरुषों को नित्य सिर में लगाने के लिए यह तैल उत्तम है। इससे मस्तिष्क की कमजोरी नष्ट होती है और स्मरणशक्ति बढ़ती है। मस्तिष्क की खुश्की दूर कर उसको ठण्डा रखता है।

मल्ल (संखिया का) तैल

श्वेत मल्ल, जावित्री, जायफल, लौंग, अजवायन, खुरासानी अजवायन, अजमोदा, भाँग के बीज-प्रत्येक ३-३ तोला लें। मालकांगनी ६ तोला ले, सबको कूटकर दरदरा चूर्ण करें। एक आसमानी (नीली) रंग की बोतल पर तीन कपरौटी करके उसमें यह चूर्ण भर दें। तदुपरान्त बोतल में ७.५ तोला तिल तेल डालकर झाडू के पतले तिनकों (सीकों) से बोतल का मुँह बन्द कर दें और पाताल यन्त्र की विधि से तैल निकाल लें। आधा पाव इस तैल में कस्तूरी ३ रत्ती और केसर ३ रत्ती को खरल में पीसकर आधा तोला रेक्टीफाईड स्पिरिट में घोलकर मिला दें।- सि.भे.म.मा. से किंचित परिवर्तित

मात्रा और अनुपान- २ से ४ बूँद तेल मिला कर लगायें।

गुण और उपयोग- यह तैल बहुत उग्र और तत्काल फल दिखाने वाला है। वात वेदना में इस तैल की १० बूँद को अन्य तेल में मिलाकर मालिश करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

नीम की एक सींक में तैल लगाकर पान में रगड़ दें। इस पान के खाने से दमें में तत्काल फायदा होता है। बराबर खाने से बल की वृद्धि होती है। नपुंसकता में २ बूंद इस तैल में १० बूंद तिल तेल मिलाकर इन्द्रिय का मुँह छोड़कर मालिश करें तथा १-१ बूँद खाने को दें। शर्तियां आराम होगा।

महामरिच्यादि तैल

काली मिर्च, निशोथ, दन्तीमूल, आक का दूध, गोबर का रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी,

जटामांसी, कूठ (पुष्करमूल), लालचन्दन (नेत्रबाला), इन्द्रायणमूल, कनेर की जड़, हरिताल, मैनसिल, चित्रक, मूलछाल, कलिहारी, वायविडंग, पवाड़ के बीज, सिरस की छाल, कुटज की छाल, नीम की छाल, सप्तपर्ण की छाल, स्नुही का दूध पिलाये, अमलतास, करंज के बीज, नागरमोथा, खदिरकाष्ठ, पीपल, बच, मालकांगनी- प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोला, वत्सनाभ विष ८ तोला लेकर कल्क बनायें, फिर कडुवा तैल ६ सेर ६ छटांक २ तोला, गोमूत्र २५ सेर ९ छटाँक ३ तोला लेकर सब द्रव्यों को एकत्र मिला, लोहें की कड़ाही में तैल-पाक विधि से सिद्ध करें, तैल सिद्ध होने पर छानकर सुरक्षित रख लें।

गुण और उपयोग- कुष्ठ, सूजन, सुनबहरी, वात, देह में चट्टे निकलना और व्रण आदि रोगों में इस तैल के लगाने से लाभ होता है। आग से जल जाने पर होने वाला घाव, नासूर, कहीं गिर पड़ने से खुर्च (छिल) कर हुआ घाव, जो फोड़ा बराबर बहता ही रहता हो, फोड़ा-फुन्सी, छाला, गण्डमाला, गाँठ आदि पर इसको लगाने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

गीली या सूखी खुजली, दाद, विसर्प, पित्ती उछलना (शीतपित्त), खाज आदि में भी इस तैल से लाभ होता है। इस तैल की पट्टी से व्रण के सड़ने की क्रिया बन्द होकर कृमि (कीड़े) मर जाते हैं।

ऋतुकाल में स्त्रियों के पेट में दर्द हो, तो इसकी ८-१० बूँद नाभि में डालकर पेट पर लगाने से शूल कम हो जाता है। इस तैल के लगे हाथ से आँच नहीं छूना चाहिए। तेल-मालिश के बाद हाथ को साबुन से खुब मल कर साफ कर लेना चाहिए, क्योकि यह तैल विषाक्त है।

महाचन्दनादि तैल

श्वेत चन्दन, अगर, तालीश पत्र, मंजीठ, नरवी, पद्मकाष्ठ, नागरमोथा, कचूर, लाख, हल्दी, लालचन्दन- प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोला लेकर कल्क बनायें और भारंगी, वासा-पत्र, कटेरी और खरेंटी का पंचांग, गिलोय- प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् १ सेर ९ छटाँक लेकर १ मन २२.५ सेर जल में पकायें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें और तिल तेल (मूर्च्छित) ५ सेर लेकर समस्त द्रव्यों को एकत्र मिला, कड़ाही में डालकर तेल-पाक विधि से तैल सिद्ध कर, तैल का आसन्न पाक होने पर शिलारस, नरवी सफेद चन्दन, कपूर, इलायची, छोओी लौंग-प्रत्येक द्रव्य ९.५-९.५ माशे लेकर, कस्तूरी और केसर को छोड़ कर शेष चीजों का सूक्ष्म चूर्ण करके मिला दें और केसर तथा कस्तूरी को खरल में रेक्टीफाइड स्पिरिट के साथ घोंटकर तैल में मिलाकर, तैल को पात्र में सुरक्षित रख लें।-भै.र. (विनोदलाल सेन टीका)

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश करने से राजयक्ष्मा और जीर्ण ज्वर शीघ्र नष्ट होते हैं। निर्बल रोगी को बलवान बनाता है। दाह, श्वास, शारीरिक क्षीणता आदि विकारों में भी उत्तम लाभदायक है। यदि विषदोष को नष्ट करता है।

महानारायण तैल

बेल छाल, असगन्ध, बड़ी, कटेरी, गोखरू, सोनापाठा, खरेटी पंचांग, पारिभद्र, छोटी कटेरी, पुनर्नवामूल, गनियार (अरणीमूल) कंधी, पं. गन्ध, प्रसारणी, पाटला- ये प्रत्येक द्रव्य १.२५०-१.२५० प्रस्थ (८०-८०) लेकर जौकुट करके १६ द्रोण (५ मन ४.५ सेर ४ तोला) जल में क्वाथ करें। ४ द्रोण (१ मन ११ सेर १६ तोला) जल शेष रहने पर उतार कर छान लें, फिर मूर्च्छित तिल तेल चार आढ़क (१२.७५० सेर ४ तोला), बकरी या गौ का दूध ४ आढक

(१२.७५० सेर ४ तोला) लें, और रास्ना, असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूठ, शालपर्णी, मुद्गपर्णी, अगर, नागकेशर, सेंधानमक, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, छरीला, सफेद चन्दन, पोहकरमूल, छोटी इलायची, मंजीठ, मूलेठी, तगर, नागरमोथा, तेजपात, भांगरा, जीवक (शतावरी), ऋषभक (शतावरी), काकोली (शतावरी), क्षीरकाकोली (शतावरी), मेदा, महामेदा (असगंध), ऋद्धि-वृद्धि (बला), सुगन्धबाला (खस) बच, पलासमूल, गठिवन, पुनर्नवामूल, चोरपुष्पी- ये प्रत्येक द्रव्य २-२ पल (८-८ तोला) लेकर कल्क बनायें।

फिर सब द्रव्यों को कड़ाही में एकत्र मिला, तेलपाक-विधि से तैल सिद्ध करें। पाक सिद्ध हो जाने पर उतारकर छानकर, उसमें कपूर, केसर, कस्तूरी-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ पल (४-४ तोला) लेकर (रेक्टीफाइड स्पिरिट में मर्दन करके) मिलाकर, सुरक्षित रखें। -भै.र.

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है। भै.र. में यह योग नारायण तैल (मध्यम) नाम से है, किन्तु वैद्य समाज में यह महानारायण तैल के नाम से प्रचलित है। कितने ही वैद्य इसे बिना केसर-कस्तूरी डाले भी बनाते हैं- यह उपरोक्त से किंचित् न्यून गुण होता है, किन्तु फिर भी बिना कस्तूरी डाले भी उत्तम लाभदायक होता है।

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश करने से पसीने की दुर्गन्ध शीघ्र नष्ट होती है और समस्त प्रकार के वात रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। इस तैल को पीने, अभ्यंग, मालिश करने, भोज्य सामग्री में मिलाकर खाने और बस्ति के रूप में सब प्रकार से प्रयोग होता है। इस तैल के सेवन से सभी प्रकार की वातव्याधि विशेषत: एकांग वात, अर्दित ओर हस्त-पादादि कम्पन, पंगु (पीठ के बल चलना), बाधिर्य, शुक्रक्षय, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ और शिर:शूल आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं तथा बल-वर्ण की वृद्धि करता है। इस तैल के सेवन से बन्ध्या स्त्री सब प्रकार के योनि दोषों से मुक्त होकर शूरवीर, सर्वगुणसम्पन्न, धारण-शक्ति एवं शोभायुक्त विनयशील सन्तान को उत्पन्न करती है। शाखाश्रितवात, कोष्ठगतवात, जिव्हास्तम्भ, दन्तमूल, उन्माद, कुब्जता (कुबड़ापन), ज्वर आदि से कृश हुए मनुष्यों के लिए यह उत्तम लाभदायक है। इस तैल के प्रभाव से मनुष्य लक्ष्मीवान (शरीर कान्तियुक्त), स्त्रीप्रियता, शरीर की प्रकर्षता आदि से युक्त होता है। वृद्धावस्था से मुक्त होकर शक्तिसम्पन्न हो चिरकाल जीवित रहता है।

महाभृंगराज तैल

तिल तैल (मूर्च्छित) १२८ तोला, भृंगराज का स्वरस या क्वाथ ५१२ तोला लें। पश्चात् मंजीठ, पद्मकाष्ठ, लोध्र, चन्दन लाल, गैरिक, खरेंटी का पंचांग, हल्दी, दारुहल्दी, नागकेशर, प्रियंगु, मुलेठी, प्रपौण्डरीक (कमल फूल), अनन्तमूल- प्रत्येक ४-४ तोला लेकर, कूटकर दुग्ध से पीसकर कल्क बना लें। फिर एक कड़ाही में तिल तैल भृंगराज स्वरस तथा कल्क को डालकर तैल-पाक विधि से पकायें। तेल सिद्ध हो जाने पर, छानकर पात्र में भरकर रख लें।-भै.र.

वक्तव्य- द्रव पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है। फिर भी इस तैल में कल्क का परिमाण अधिक है, अत: तैल मे चतुर्थांश कल्क को कल्क रूप में मिलायें तथा शेष कल्क को अष्टगुण जल में पकाकर, चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर, इस क्वाथ को तैल में डालकर इससे भी पाक कर लें। ऐसा करने से बनाने में सुविधा रहती है एवं उत्तम गुणयुक्त भी बनता है।

गुण और उपयोग- इस तैल को सिर में लगाने से बालों का असमय में झड़ना और सफेद होना ये दोनों विकार नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, गल-ग्रह, कान तथा

आँख के रोगों में नस्य लेने तथा मालिश करने से उत्तम लाभ करता है। यह बालों को काले, घुंघराले और चिकने बनाता तथा बालों को खूब उगाता तथा बढ़ाता है। बालों का गिर जाना या न उगना-इन दोनों रोगों को भी यह नष्ट करता है।

महामाष तैल (निरामिष)

१२८ तोला तिल तेल मूर्च्छित लें। फिर असगंध, कचूर, देवदारु, खरेंटी, रास्ना, प्रसारणी, कूठ, फालसा, भारंगी, विदारीकन्द, क्षीर-विदारीकन्द, पुनर्नवा, शतावरी, बिजौरा नींबू, सफेद जीरा, स्याह जीरा, हींग, सौंफ, गोखरु, पीपरामूल, चित्रक, सेंधा नमक और जीवनीय गुण अर्थात्-मेदा (असगंध), महामेदा(असगंध), काकोली(शतावरी), क्षीर-काकोली(शतावरी), जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि(बला), मुलेठी, जीवन्ती-इन सब दवाओं को समभाग मिलाकर १६ तोले का कल्क करके तैल में डाले। फिर ३ सेर ३ छटाँक १ तोला दशमूल को २५.५ सेर ८ तोला जल में पकायें, जब ६ सेर ६ छटांक १ तोला जल शेष रह जाय, तब छानकर उक्त तैल में यह क्वाथ डालकर पकायें, फिर बढ़िया माष (उड़द)(५.५ सेर) तोला को २५.५ सेर ८ तोला जल में पकायें, चौथाई जल शेष रहने पर छान कर क्वाथ तैल में डालें। इसी प्रकार १२८ तोला दूध भी तेल में डालकर पकायें। पकते-पकते जब तैल पाक सिद्ध हो जाय, तब गर्म ही छानकर पात्र में भरकर रख लें। बहुत से वैद्य तैल को ठण्डा होने पर छानते हैं, परन्तु ऐसा होने पर तैल कल्क में रह जाता है, गर्म ही छानना चाहिए। - भै.र.

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक, आदि कठिन रोगों में लाभ करता है। अपबाहुक, विश्वाची, खञ्ज, पंगुजा, सिर का जकड़ना, गर्दन का जकड़ना, वातिक अधिमन्थ, शुक्रक्षय, कर्णनाद, कलायखञ्ज आदि में गुणकारी है।

पुराने वात रोगों में- कफ और वात प्रकृति वाले पुराने वात रोगों में यह बहुत शीघ्र और अद्भूत चमत्कार दिखलाता है, परन्तु इस तैल की मालिश के साथ-साथ महारास्नादि क्वाथ के साथ बृहत् योगराज गुग्गुलु सुबह-शाम सेवन कराते रहें, और बादी या कफवर्द्धक अथवा दस्तकब्ज करने वाले पदार्थों से परहेज रखें, तो पुराने से पुराने वात रोगी इस उपचार से अच्छे हो जाते हैं। कई बार का अनुभव है।

महासुगन्धित तैल

युकेलिप्टस ऑयल (नीलगिरी का तैल)२.५ तोला, कपूर २.५ तोला, सन्तरे को रुह (तैल) २.५ तोला लें। इन तीनों को बोतल में भरकर डाट लगा दें। एक घण्टे में तीनों चीजें मिलकर तैल हो जाएगा। फिर सफेद तिल का तेल ८० तोला भी इसी बोतल में डालकर डाट लगाकर रख देने से एक घण्टे में यह सुगन्धित तैल तैयार हो जाता है। -ध.से किंचित् परिवर्तित

गुण और उपयोग- जिसके मस्तक में आधाशीशी का दर्द होता हो, उसको सीधा लेटाकर गर्दन के नीचे तकिया लगाकर, मस्तक को तकिये के पीछे झुका दें, जिससे नाक के छेद आसमान की तरफ हो जायें, फिर २-२ बूँद नासिका में यह तैल डालें और जोर से ऊपर को खींचने के लिए रोगी से कहे, जिससे तैल मस्तक में चढ़ जायें।

एक-दो बार डालने में ही दो-चार दिन में आधाशीशी का दर्द दूर हो जाता है। यह तैल इतना सुगन्धित है कि सिर में डालते ही इसकी खुशबू चारों तरफ फैल जाती है। इसको माथे में लगाने से गर्मी के कारण होने वाले सिर दर्द, दिमाग की गर्मी, बेचैनी, ज्यादा गर्मी लगना, माथा बार-बार गर्म रहना आदि दूर हो जाते हैं।

लक्ष्मीविलास रस

शतावर का स्वरस या क्वाथ, विदारीकंद का क्वाथ, केला कन्द का स्वरस, गोखरु स्वरस, नारियल का पानी, आँवला का क्वाथ या स्वरस, पेठे का रस, दही का पानी, काँजी, लाख का रस या क्वाथ, बकरी का दूध-ये प्रत्येक द्रव्य १२८-१२८ तोला, तिल तैल (मूर्च्छित) १२८ तोला लें। कचूर, चम्पा की छाल, नागरमोथा, बला-मूल, बेलगिरी, असगन्ध, बड़ी कटेरी, वासे की जड़, लाल चन्दन, मंजीठ, सारिवा, अनन्तमूल, हल्दी, दारुहल्दी, मूलेठी, महुआ का फूल, पद्मकाष्ठ, नीलोफर, सुगन्धबाला (खश), अजवायन, गन्ध प्रसारिणी-प्रत्येक द्रव्य ९-९ माशा लेकर कल्क बनायें और पश्चात् सब द्रव्यों को कड़ाही में मिलाकर तैल-पाक विधि से तेल सिद्ध करें। आसन्नपाक होने पर इसमें कचूर, छोटी इलायची, अगर, लौंग, केसर, कबाबचिनी, जटामांसी, मुरामांसी, गन्धबिरोजा, तेजपत्ता, गठिवन, कपूर, छरीला, खस, कस्तूरी अभाव में लता कस्तूर, नरवी, खट्टासी, शिला-रस, नागरमोथा, मेथी, लौंग-ये प्रत्येक द्रव्य ६-६ माशे लेकर (कस्तूरी को छोड़कर) सूक्ष्म चूर्ण करके, मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। तैल का पाक सिद्ध होने पर उतारकर छान लें और सबसे अन्त में कस्तूरी ६ माशे को खरल में महीन पीसकर स्पिरिट रेक्टीफाइड में घोलकर इसमें मिलाकर सुरक्षित रख लें।-भै.र.

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश करने से कठिन मस्तिष्क रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त स्नायुगत रोग, स्नायविक दुर्बलता, प्रमेह-वात-व्याधि, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार, ग्रहणी, पाण्डू रोग शोष, नपुंसकता, वातरक्त, मूढ गर्भ, आर्तव और शुक्रगत दोषों को नष्ट करता है। यह तैल अत्यन्त पुष्टिकर और कान्ति तथा बुद्धिवर्द्धक है।

महालाक्षादि तैल

तिल तैल ६४ तोला, सौंफ, हल्दी, मूर्वामूल, कूठ, रेणुका, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, असगन्ध, देवदारु, मोथा, लालचन्दन- ये १२ दवाएँ १-१ तोला लेकर इसका कल्क बना, तैल में डाल दें। साथ में २५६ तोला दही का पानी और २५६ तोला लाख का पानी या काढ़ा डाल कर पकायें। जब केवल तेल मात्र शेष रह जाये, तब छानकर बोतल में भर लें।

गुण और उपयोग- जीर्णज्वर, विषमज्वर, रस-रक्तादि, धातुज्वर, गर्भावस्था में होनेवाली गर्भिणी का ज्वर आदि ज्वरों में इसकी मालिश से बहुत लाभ होता है। इसके अतिरिक्त पित्त की गर्मी ज्यादा बढ़ जाने से शरीर में दाह होता हो, हाथ-पाँव एवं आँखों में जलन होती हो, निद्रा न आती हो, शरीर में थकावट मालूम पड़ती हो, इन उपद्रवों में इसकी मालिश से बहुत लाभ होता है। यह तैल सौम्य गुण प्रधान होने से गर्भिणी स्त्री के लिये बहुत उपयोगी है। बालक, वृद्ध और युवा के लिये ये तैल उपयोगी है।

शंखपुष्पी तैल

शंखपुष्पी का रस या क्वाथ ४ तोला, बकायन की छाल का क्वाथ ४ सेर, अडूसा का रस ४ सेर, अर्जुन की छाल या क्वाथ, काँजी और लाख का रस-प्रत्येक ४-४ सेर और दही ४ सेर लें। फिर अनार की छाल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, लाल चन्दन, खस, सुगन्धबाला, सफेद चन्दन, मुलेठी, नागरमोथा, श्यामलता, सेबार (शैवाल), हरसिंगार, लाल कमल और रसौत-प्रत्येक २.२५०-२.२५० तोला या सब समान भाग (आधा सेर मिश्रित) लेकर कल्क बनायें। ४ सेर तिल में यह कल्क और उपरोक्त काढ़े आदि पदार्थ मिला कर पकायें। पश्चात् सभी गन्ध द्रव्यों को कल्क देकर, मन्द-मन्द पाक कर, जब जलांश शुष्क हो जाय, तब तैल को छान लें।-भै.र.

वक्तव्य- गन्ध द्रव्य प्रत्येक ७.५-७.५ माशा लेकर कल्क करें। गन्ध द्रव्य भै.र. वातव्याधि अधिकार में लिखे हैं। द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थ द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- इस तैल के मर्दन से बालकों के समस्त रोग दूर हो जाते हैं तथा यह कान्ति, मेधा, धृति और पुष्टि की वृद्धि करता है। ज्वर और दुर्बलता को मिटाता है।

बच्चों के सूखा रोग में इस तैल के उपयोग से विशेष लाभ होता है। यह तैल रक्त बढ़ाने वाला तथा मांस को पुष्ट करने वाला है।

शोथशार्दूल तैल

धतूरा, दशमूल, संभालू, जयन्ती, पुनर्नवा और करंज-प्रत्येक ३०-३० तोला लेकर सबको ३२ सेर पापनी में पकायें और चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। फिर रास्ना, पुनर्नवा, देवदारु, सूखी मूली, सोंठ और पीपल समान भाग (२० तोला) लेकर कल्क बनायें। २ सेर सरसों के तेल में यह कल्क तथा उपरोक्त क्वाथ मिला कर पकायें। जब तैल मात्र रह जाय, तब छानकर रख लें।

गुण और उपयोग- यह तैल वातज, कफज, पित्तज तथा सन्निपातज, सर्व देहगत भयंकर से भयंकर शोथ भी नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त यह ज्वर, पाण्डु, श्लीपद, घाव वाले व्रण, दुष्ट वर्ण आदि रोगों का भी नाश करता है।

श्रीगोपाल तैल

शतावर, पेठा, आँवला- प्रत्येक का रस ५१२-५१२ तोला, असगन्ध कटसरैया, (पिया बांसा) और खरेंटी- प्रत्येक ५-५ सेर को पृथक्-पृथक् २५.५ सेर ८ तोला जल में क्वाथ करें और ६ सेर ६ छटाँक २ तोला जल शेष रहने पर प्रत्येक क्वाथ छान कर रख लें। इस तरह क्वाथ १९ सेर २ छटाँक ६ तोला होगा। फिर बेल छाल, करलू, छाल, खम्भारी छाल, पाढ़ल छाल, अरणी, कटेली एवं मूर्वा की जड़, केवड़ा की जड़, करंज फरहद की छाल-प्रत्येक ४०-४० तोला लेकर सबको कूट कर २५.५ सेर ८ तोला पानी में पकावं, ६ सेर ६ छटाँक २ तोला शेष रहने पर छान लें।

असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्मकाष्ठ, कटेली, खरेंटी, अगर, नागरमोथा, जुन्दबेदश्तर, शिलारस, अगर, सफेद चन्दन (नेत्रबाला), लाल चन्दन (नेत्रबाला), हर्रे, बहेड़ा, आँवला, मूर्वा, जीवक (शतावरी), ऋषभक (शतावरी), काकोली (शतावरी), क्षीरकाकोली (शतावरी), मेदा (असगंध), महामेदा (असगंध), ऋद्धि-वृद्धि(बला), मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, जुन्दबेदस्तर, केसर, कस्तूरी (जावित्री), दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, छारछरीला, नखी, नागरमोथा, कमलनाल, नीला कमल, खस, जटांमासी, मुरामांसी, देवदारु, बच, अनार की छाल, नेपाली धनिया, ऋद्धि, वृद्धि (बला), दमनक (दौंना) और छोटी इलायची- प्रत्येक २-२ तोला लेकर कल्क बनाकर तिल तैल ६ सेर ६ छटाँक २ तोला में उपरोक्त सब दवा मिलाकर तैल-पाक-विधि से पकायें। तैल सिद्ध हो जाने पर छानकर रख लें।-भै.र.

वक्तव्य- केशर, कस्तूरी, पाक-सिद्ध होने पर तैल को छानकर रेक्टिफाइड स्पिरिट के साथ अच्छी तरह घोलकर मिलायें। द्रव पदार्थों को द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश से वात, पित्त और कफजन्य सभी तरह के रोग आराम होते हैं। स्मरणशक्ति बढ़ती है और बुद्धि तीव्र हो जाती है। इस तैल के उपयोग से वात रोगों और प्रमेह रोग में बहुत लाभ होता है। इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी होता है। जिस स्त्री को गर्भपात या गर्भस्राव की आदत हो, इस तैल के उपयोग से गर्भाशय बलवान होरक गर्भ धारण करने योग्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त अपस्मार (मृगी), उन्माद, सिर दर्द, दिमाग की कमजोरी आदि रोगों को नष्ट करता है। यह तैल वीर्यवर्द्धक तथा नपुंसकतानाशक है।

शुष्कमूलादि तैल

सूखी मूली, पुनर्नवामूल, देवदारु, रास्ना, सोंठ-प्रत्येक द्रव्य १०-१० तोला मूर्च्छित तिल तैल ५ सेर लेकर उपरोक्त द्रव्यों का कल्क बनायें और सूखी मूली, पुनर्नवामूल, देवदारु, रास्ना और सोंठ ये प्रत्येक १२ सेर लेकर जौकुट करके २ मन जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान ले और उपरोक्त कल्क तिल तैल और क्वाथ सब को कड़ाही में मिला कर तैल-पाक-विधि से तैल सिद्ध करें। तैल सिद्ध होने पर उतारकर छान लें और सुरक्षित रखें।-बंगसेन

षड्बिन्दु तैल

एरण्ड की जड़, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रास्ना, सेंधा नमक, दालचीनी, वायविड़ंग, मुलेठी और सोंठ के समान भाग मिश्रित चूर्ण १६ तोला लें, सबको बकरी के दूध में पीसकर, काले तिल का तैल १२८ तोला, बकरी का दूध १२८ तोला और भांगरे का रस ५१२ तोला सबको मिलाकर मन्द आँच पर तैलपाक-विधि से पकायें। जब तैल सिद्ध हो जाय, तब कपड़े से छान कर शीशी में रख दें।

वक्तव्य- द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण लिया गया है।

गुण और उपयोग- सिर के दर्द के रोगी को चित्त लेटा कर दोनो नथुनों में इस तेल की ६-६ बूँद डालें। पुराना जुकाम, बार-बार सर्दी-जुकाम होना, नाक के मस्से, नाक के अन्दर सूजन आदि रोगों में एक सींक पर रुई लगा, इस तैल में भिंगों कर नाक के अन्दर लगाएँ।

शिरोरोग के लिये यह तैल बहुत प्रसिद्ध और उत्तम गुण भी करता है। पुराने सिर-दर्द अथवा सूर्यावर्त (आधाशीशी), बालों का विशेष गिरना अथवा सिर के बाल कहीं-कहीं से बिल्कुल उड़ जाना (जिसको गंज कहते हैं) आदि सब विकारों में यह तैल बहुत गुणकारी और लाभदायक है।

सप्तगुण तैल

हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम की पत्ती, सम्भालू की पत्ती-प्रत्येक द्रव्य ५-५ तोला लेकर ४.५ सेर जल में क्वाथ करें, चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् गन्धबिरौजा, मोम देशी, शिलारस, राल, गूगल-ये प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोला लें और तिल तेल १ सेर लेकर, सब द्रव्यों को कड़ाही में एकत्र मिला, मन्द-मन्द अग्नि पर पकायें। इतना ध्यान अवश्य रखें कि उत्ताप विशेष बढ़कर तैल में आग न लग जाये। जब तैल पकते-पकते खरपाक हो जाये और तैल कल्क से पृथक् हो जाये तो उतार लें और छानकर मामूली गरम में ही ५ तोला कपूर मिला दें। पश्चात् शीतल हो जाने पर तारपीन तैल २।।, यूकेलिप्टस ऑयल (नीलगिरी तैल) २.५ तोला, ऑयल काजूपुट २.५ तोला-ये तीनों द्रव्य मिलाकर सुरक्षित रखें। -आनुभविक योग

गुण और उपयोग- इस तैल के उपयोग करने से समस्त प्रकार के वातविकार नष्ट होते हैं

और आग से जलना, चोट लगना, शरीर के किसी भी अंग में मोच आ जाना, वायु का शूल, गठिया, कान का दर्द या बहना, फोड़ा, फुन्सी, शोथ, पार्श्वशूल एवं अनेक प्रकार के व्रण, नाड़ीव्रण, आदि विकार नष्ट होते हैं।

सैंधवादि तैल बृहत्

सेंधा नमक, गज पीपल, रस्ना, सोया बीज, अजवायन, सज्जीक्षार, काली मिर्च कूट, सोंठ, संचर नमक, विड़नमक, बच, अजमोद, मुलेठी, जीरा सफेद, पोहकरमूल, पीपल-प्रत्येक २-२ तोला लेकर इनका कल्क बनायें, फिर मूर्च्छित एरण्ड तैल १२८ तोला, सोया बीज का क्वाथ १२८ तोला, काँजी २५६ तोला, दही का पानी २५६ तोला लेकर सब द्रव्यों को कड़ाही में एकत्र मिला, तैलपाक-विधि से तैल सिद्ध करें। तैल का पाक सिद्ध हो जाने पर उतारकर, छानकर रख लें।-भै.र.

गुण और उपयोग- इस तैल के खाने और लगाने दोनों तरह से व्यवहार होता है। इस तैल की मालिश करने से समस्त प्रकार के दुष्ट आमवात रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त वायुरोगों को नष्ट करने में भी यह तैल सुप्रसिद्ध है। विशेषत: अण्डवृद्धि, अन्त्रवृद्धि, कटिशूल, जानुशूल, सन्धिशूल, जंघाशूल, हृदय, पार्श्व और पृष्ठ का शूल, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी की पीड़ा, बाह्ययाम, अर्दित रोग, आनाह आदि को नष्ट करता है।

सोमराजी तैल

बाकुची, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सरसों, कूठ (पुष्करमूल), करंज, बीज, पँवाड़ के बीज, अमलतास के पत्ते-प्रत्येक ४-४ तोला लेकर कल्क बना लें और मूर्च्छित कड़वा तैल १२८ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला लेकर सबको कड़ाही में एकत्र मिला, तैल-पाक-विधि से तैल सिद्ध करें। तैल पाक सिद्ध हो जाने पर उतारकर छान लें और सुरक्षित रखें।-भै.र.

वक्तव्य- औषधि रूप में केवल कल्क होने से द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार द्रव पदार्थों को द्विगुण करने से औषध अल्प गुण हो जाती है। अत: द्रव पदार्थों को द्विगुण नहीं किया गया है।

गुण और उपयोग- इस तैल की मालिश करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण आदि शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त पीलिका, पीड़िका, व्यंग, गम्भीर वातरक्त रोग, कण्डू, कच्छू, दाद पामा आदि नष्ट करता है।

हिमसागर तैल

शतावर का रस, विदारीकन्द का रस या क्वाथ, पेठे का स्वरस, आँवले का स्वरस का क्वाथ, सेमर का स्वरस या क्वाथ, गोखरु का क्वाथ, नारियल का जल-प्रत्येक द्रव्य १२८-१२८ तोला, मूर्च्छित तिल तैल १२८ तोला, केले के कन्द का रस १२८ तोला, गो-दुग्ध ५१२ तोला लें और लाल चन्दन (नेत्रबाला), तगर, कूठ (पुष्करमूल), मंजीठ, सरलकाष्ठ, अगर, जटामांसी-मुरामांसी, छरीला, मुलेठी, देवदारु, नरवी, हरड़, खट्टासी, पोई शाक के पत्र, कुन्दरुगोन्द, नलिका, शतावर, लोध्र, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, लौंग, जावित्री, सौंफ, कचूर, श्वेत चन्दन (नेत्रबाला), गठिवन, कपूर-ये प्रत्येक १-१ तोला लेकर कपूर को छोड़कर शेष द्रव्यों का कल्क बनाकर तथा उपरोक्त सब द्रव्यों को एकत्र मिला, कड़ाही में मन्द-मन्द अग्नि पर ले तैल-पाक विधि से तैल सिद्ध करें। तैल पाक सिद्ध हो जाने पर उतारकर छान लें और तैल थोड़ा गरम ही रहे तभी उसमें कपूर मिलाकर सुरक्षित रख लें। भै.र.

गुण और उपयोग- इस तैल के प्रयोग से वायुवेग के कारण ऊपर से नीचे गिरे हुए हाथी, घोड़ा, ऊँट इनकी सवारी पर से गिरे हुए एवं ठेले की चोट खाये हुए मनुष्यों के वात रोगों में अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त पंगु, एकांग शोष, सर्वांग शोष, उर:क्षत, क्षीण-वीर्य, क्षयरोग, हनुस्तम्भ, कृशता, शोथरोग, तुतला कर बोलना, अस्पष्ट (मिनमिन) बोलना, शरीर में दाह या जलन होना, क्षीणता और समस्त प्रकार के वात रोगों से पीड़ित मनुष्यों के लिये यह तैल अत्यंत गुणकारी है। विशेषतया वातरोग, शिरोरोग और शाखाश्रित रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। यह तैल अत्यन्त शीतवीर्य है, अत: ज्वर का वेग बढ़ जाने पर बढ़ी उष्मा (दाह) को शान्त करने के लिये इस तैल का उपयोग करना चाहिए, इससे शीघ्र लाभ होता है। सिर में लगाने से मस्तिष्क की खुश्की और उष्णता शान्त होती है।

क्षार तैल

मूली-क्षार, यवक्षार, सज्जीक्षार, सेंधानमक, सोंचर नमक, विड्नमक, सामुद्र नमक, हींग, सहिजना की छाल, सोंठ, देवदारु, वच, कूठ (पुष्करमूल), सौंफ, रसौत, पीपलामूल, नागरमोथा ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर कल्क बनायें। इसमें सरसों का मूर्च्छित तेल ६४ तोला, केले की जड़ का स्वरस, बिजौरा नींबू का रस, मधुशुक्त-ये प्रत्येक द्रव्य ३ से १५ तोला, पृथक्-पृथक् लेकर सबकों कड़ाही में एकत्र मिला तेल-पाक विधि से पाक करें। तैल का पाक सिद्ध हो जाने पर उतारकर छान लें और सुरक्षित रखें।-शा.सं.

गुण और उपयोग- इस तैल के उपयोग से समस्त प्रकार के कर्णरोग जैसे कर्ण पुय (कान से मवाद या पीब जाना), कर्ण नाद (कान में भाँति-भाँति के शब्द सुनाई देना), कर्णशूल (कान का दर्द), बधिरता (बहरापन), कर्ण-कृमि (कान में कृमि उत्पन्न होना) तथा कान सम्बन्धी अन्यान्य रोगों एवं मुख रोगों को शीघ्र नष्ट करता है।

❖❖❖

क्वाथ- प्रकरण

१ तोला क्वाथ की औषधि को जौकूट (मोटा चूर्ण) करके मिट्टी के पात्र अथवा कलईदार बर्तन में सोलह गुने पानी में मन्द अग्नि पर पकायें। जब चौथाई पानी शेष रहे, तब कपड़े से छान, सुखोष्ण (थोड़ा गरम-गरम) पिलायें। क्वाथ बनाते समय बर्तन का मुँह खुला रहना चाहिए। ढक देने से क्वाथ भारी हो जाता है, ऐसी शास्त्रज्ञा है। क्वाथ मिट्टी के कोरे बर्तन में बनाना चाहिए और क्वाथ बनाकर उसे अधिक देर तक नहीं रखना चाहिए। यदि किसी गोली के अनुपानरूप क्वाथ लेना हो, तो पहले गोली का चूर्ण कर मुँह में रख, ऊपर से क्वाथ पीना चाहिए।

अभयादि क्वाथ

हरड़, नागरमोथा, धनिया, लालचन्दन (नेत्रबाला), पद्माख, अडूसा, इन्द्रयव, खस, गिलोय (गुर्च), अमलतास का गूदा, पाठा, सोंठ और कुटकी- ये सब द्रव्य समभाग लेकर उसको १६ तोला जल में पकायें। जब चार तोला शेष रहे, तब कपड़े से छानकर उसमें ५ रत्ती छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलायें। -शा.ध.सं.

गुण और उपयोग- यह अभयादि क्वाथ, पाचन, दीपन, मल-मूत्र और वायु के विबंध (कब्ज) को दूर करनेवाला तथा प्यास, खाँसी, दाह, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा, वमन, मुँह का सूखना और अन्न पर अरूचि-इन लक्षणों से युक्त ज्वर को नष्ट करता है। सब प्रकार के ज्वरों में यह क्वाथ केवल या इसमें ५ रत्ती नौसादर का चूर्ण और ५ रत्ती कलमी सोरा मिलाकर या अकेला अन्य ज्वरनाशक रस जैसे मृत्युंजय, संजीवनी, ज्वरांकुश आदि रोगों के अनुपान के रूप में दें।

अश्मरी-हर कषाय

पाषाणभेद, सागौन के फल, पपीते (अण्ड खरबूजे) का जड़, शतावरी, गोखरु, वरना की छाल, कुश की जड़, कासा की जड़, ककड़ी के बीज- प्रत्येक समभाग लेकर जटामांसी तथा खुरासनी, अजवायन-प्रत्येक दो-दो तोला लेकर सब को जौकुट (दरदरा) चूर्ण करके रख लें। इसमें से १ तोला चूर्ण को १६ तोले जल में पकायें, ४ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छान और उसमें ५-१० रत्ती शिलाजीत या १० रत्ती क्षारपर्पटी या जवाखार मिलाकर पीने को दें। आश्यकतानुसार रोगी को दिन भर में तीन बार भी दे सकते हैं। इस क्वाथ को 'हजरुल यहूद' की भस्म के साथ देने से विशेष लाभ होता है। -सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- यह कषाय अश्मरी (पथरी), शर्करा (पेशाब की नली में छोटी-छोटी कंकड़ी) जैसा पत्थर हो जाना और उससे होने वाले वृक्कशूल और पेट के दर्द में इसका प्रयोग किया जाता है। यह कषाय, सौम्य गुणयुक्त होते हुए भी इसमें क्षार-पर्पटी या यवक्षार का मिश्रण हो जाने से यह तीक्ष्ण हो जाता है और इसी तीक्ष्णता के कारण यह अश्मरी (पथरी) को गला कर पेशाब के रास्ते निकाल देता है तथा पेशाब और खुलकर लाता है। यदि पेट में वायु भर गया हो, हवा नहीं खुलती हो, दर्द होता हो, पेट भारी मालूम पड़ता हो, तो इस कषाय के उपयोग से बहुत लाभ होता है।

१- क्वाथ (कषाय) के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखें-'आयुर्वेद-सारसंग्रह' के पृष्ठ ७ पर ''औषध-निर्माण-परिभाषा''।

अमृताष्टक क्वाथ

गिलोय, कुटकी, नीम की छाल, पटोल-पत्र, नागरमोथा, लाल चन्दन, सोंठ और इन्द्रजौ ३-३ माशे लेकर जौकुट चूर्ण बनायें। इसमें से १ तोला चूर्ण को १६ तोला पानी में पकायें, ४ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छान २-४ रत्ती पीपल के चूर्ण मिलाकर पिलायें। च.द.

गुण और उपयोग- इस क्वाथ के सेवन से पित्त और कफजन्य ज्वर, जी मिचलाना, अरुचि, वमन, अधिक प्यास लगना, पेट, हाथ-पैर और आँखों में जलन होना आदि उपद्रव शान्त होता है।

यह काढ़ा सौम्य गुण-प्रधान होते हुए कफघ्न भी है, अतएव इस क्वाथ का प्रयोग विशेषकर पित्त और कफजन्य विकार में किया जाता है।

आरग्वधादि क्वाथ (दस्तावर)

अमलतास का गूदा २ तोला, कुटकी २ तोला, निशोथ २ तोला, मुनक्का (बीज निकाला हुआ) २ तोला, सनाय की पत्ती २ तोला, बड़ी हरड़ की वक्कल २ तोला, सुखे हुए गुलाब के फूल-(यदि सूखे न हो तो गीले ही ४ तेला लें) २ तोला, सब औषधियों से आधा गुलकन्द लें।

इन आठों में से अमलतास का गुदा, दाख और गुलकन्द इन तीन चीजों को छोड़कर बाकी ५ चीजों को जौकुट चूर्ण बना लें। पीछे इन शेष चीजों को भी मिलाकर रख लें। इस कल्क में से २-२।। तोले के अन्दाज लेकर, पाव भर पानी में डालकर, अर्ध्दावशिष्ट क्वाथ बनाकर पीयें।

गुण और उपयोग- ज्यादा दिन तक दस्त कब्ज होने के कारण पेट में गाँठसी पड़ जाती है, पेट को दबाने पर सख्त-सा मालूम पड़ता है। रोगी उत्साहहीन और धीरे-धीरे दुर्बल होता है। थोड़ा-थोड़ा बुखार भी रहने लगता, कभी-कभी देह सूज भी जाती है, आँखें पीली हो जाती हैं और रक्त की कमी के कारण शरीर पाण्डु वर्ण का हो जाता है। ऐसी अवस्था में इस क्वाथ के उपयोग से बहुत शीघ्र लाभ होता है, क्योंकि इस क्वाथ में जिन दवाओं का सम्मिश्रण है, वे सब अनुलोमक, दस्तावर तथा उदरशोधक है। इसके उपयोग से एक-दो दस्त साफ आते हैं, जिससे पेट साफ हो जाता, वायु खुलने लगती और भूख भी लगने लगती है। आँतों में संचित मल के कारण अनेक विकार होते हैं। इस क्वाथ के सेवन से आँते साफ हो जाती हैं। ५-७ दिन सेवन करने से मल-संचय नष्ट हो जाता है।

कमलादि फाण्ट

कमल के फूल, सफेद चन्दन (नेत्रबाला), लाल चन्दन (नेत्रबाला), मूलेठी, नागरमोथा, खस, धान का लावा और मिश्री, सब दवा मिलाकर दो तोला लेकर जौकुट चूर्ण करें। फिर ६४ तोले उबलते जल में डालकर ठण्डा होने तक ढँककर रख दें। पश्चात् छानकर क्वाथ का प्रयोग करें। -सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- इसमें से ८ से १० तोले की मात्रा में दिन भर में दो-तीन बार पिलायें।

गुण और उपयोग- इस फाण्ट से हृदय का संरक्षण होता है, पेशाब खुलकर साफ आती है, दाह कम होता है। दस्त पतले हों तो बँध जाते हैं तथा हृदय की धड़कन और नाड़ी की गति तीव्र हो, तो वह भी कम हो जाती है। ज्वर की तीव्रावस्था में हृदय की पेशी विकृत और शिथिल हो जाती है। यदि ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था से ही इस फाण्ट का व्यवहार किया जाय, तो हृदय पर ये दोनों घातक प्रभाव नहीं होते हैं।

गुडुच्यादि क्वाथ

गिलोय (गुर्च), धनिया, नीम की अन्तर-छाल, लाल चन्दन (नेत्रबाला) और पद्माख- ये पाँचो द्रव्य समभाग लें, जौकुट करके रख लें। इसमें से एक तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में क्वाथ-विधि से पकाकर चतुर्थांश जल अवशेष रहने पर छानकर रख लें। इसे पकाकर दिन भर में ३-४ बार दें। -सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- यह क्वाथ सब प्रकार के ज्वर, दाह, जी मिचलाना, वमन होना और अरुचि आदि को भी दूर करता है तथा अग्नि को भी प्रदीप्त करता है।

इस क्वाथ में रोहेड़ा की छाल, दारुहल्दी, सरफोंका की जड़ और पुनर्नवा (गदहपूर्ना) के मूल, ये चार दवा और मिलाकर क्वाथ तैयार करने से यकृत-प्लीहा सम्बन्धी विकार में बहुत गुण करता है। यकृद्विकार वालों को यह क्वाथ पिलाते समय इसमें ५-१० रत्ती शुद्ध नौसादर का चूर्ण मिलाने से अधिक लाभ होता है।

किसी-किसी को मलेरिया ज्वर छूट कर जरा-सा भी कुपथ्य होने पर फिर बुखार आने लगता है और दवा करने पर छूट जाता है, परन्तु कुछ दिन के बाद फिर हो जाता है। ऐसी अवस्था में लगातार इस क्वाथ का सेवन कराने से बहुत शीघ्र और आशातीत लाभ होता है। इस क्वाथ के साथ जयमंगल रस या सुदर्शन चूर्ण आदि का सेवन कराने से विशेष लाभ होता है।

गुलबनप्सादि क्वाथ

गुलबनप्सा, गावजबां, मुलेठी, खतमी के बीज- प्रत्येक ३-३ माशे, लिसोड़ा के बीज १० दाने, उन्नाव ५ दाने लेकर इन सबको एकत्र मिला जौकुट कर लें। पश्चात् इसको १ पाच जल में डालकर मन्दाग्नि पर पकायें, जब आधा जल शेष रहे तो उतारकर छान लें। इस प्रकार क्वाथ बना, मिश्री ३ माशे मिला कर दिन में ३-४ बार पिलायें। -भै.र. (विद्योतिनी टीका)

गुण और उपयोग- सहन करने योग्य गरम इस क्वाथ के सेवन से नवीन या जीर्ण कठिन प्रतिश्याय-विकार(जुकाम), खाँसी, श्वास आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। विशेषतया सर्दी और जुकाम में यह उत्कृष्ट लाभकारी है, जमे हुए कफ को पिघलाकर बाहर निकाल देता है, फुफ्फुसों, श्वास-प्रणाली और गले को साफ करता है।

वक्तव्य-कितने ही वैद्य इसमें सोंठ ३ माशा, अडूसा-मूल ३माशा, नीलोफर ३माशा, काकड़ासिंगी ३माशा, भारंगी ३ माशा घी मिलाकर क्वाथ बनाते हैं। ऐसा करने से यह क्वाथ और भी गुणकारी बन जाता है। हमने भी इसका बहुत बार प्रयोग कर परीक्षण किया है, यह श्रेष्ठ गुणकारी सिद्ध हुआ है। हमारी राय में जुकाम, कफ, खांसी में यह क्वाथ अमोघ गुणकारी औषध है।

गोजिव्हादि क्वाथ

गावजबां, मुलेठी, सौंफ, मुनक्का, अंजीर, उन्नाव, अडूसा, जूफा, लिसोड़ा (सूखा), खूबकला (खाकसीर), हंसराज, गुलवनप्सा, अलसी, खतमी की जड़ और भटकटैया प्रत्येक समान भाग तथा काली मिर्च आधा भाग लें। इनको जौकुट चूर्ण करके रख छोड़े। इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पका, ४ तोला जल बाकी रहने पर कपड़े से छान, उसमें ३ माशा मिश्री या मधु मिलाकर दिन में ३-४ बार दें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- प्रतिश्याय-जुकाम-सर्दी-कफज्वर में तथा उस खाँसी-श्वास में, जिसमें कफ गाढ़ा जमा हो और सरलता से न निकलता हो, इस क्वाथ के प्रयोग से बहुत लाभ होता है। केवल क्वाथ को या उसमें ५ रत्ती नौसादर, ५ रत्ती यवक्षार और द्राक्षारिष्ट १-२ तोला मिलाकर उपयोग करें। कफज्वर में त्रिभुवनकीर्ति, ज्वर-संहार आदि रोगों के अनुपान रूप में इसका अच्छा उपयोग होता है।

जन्मघूंटी (काढ़ा)

सौंफ, सौंफ की जड़, वायविडंग, अमलतास का गूदा, सनाय की पत्ती, छोटी हरड़, बड़ी हरड़ का छिलका, बच, अंजीर, अजवायन, गुलाब के फूल, ढाक के बीज, मुनक्का, उन्नाव, गुड़, शुद्ध टंकण- ये प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर इनको एकत्र मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। पश्चात् इस चूर्ण में से डेढ़ माशा या ३ माशा चूर्ण बालक की अवस्थानुसार लेकर १ छटाँक पानी में मिलाकर क्वाथ बनायें, १ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लें और इसमें जरा-सा काला नमक मिलाकर पिलायें।-आरोग्य प्रकाश

गुण और उपयोग- इस जन्मघूँटी का प्रयोग कराने से बच्चों को होने वाली सर्दी, जुकाम, बुखार, कफ, खाँसी, अजीर्ण, वमन, अतिसार, आदि समस्त बाल-रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। बच्चों के लिये यह अत्यन्त गुणकारी घूँटी होने के कारण कितनी ही माताएँ अपने बच्चे को जन्मकाल से ही यह घूंटी पिलाती रहती है, जिससे बच्चे तन्दुरुस्त रहते हैं तथा किसी प्रकार की बीमारी होने का भय नहीं रहता है।

जात्यादि क्वाथ (कषाय)

चमेली की पत्ती, दाड़िम (अनार) की पत्ती, बबूल की छाल और बेर की जड़-प्रत्येक ६-६ माशे ले। सब को जौकुट कर ६४ तोला जल में पकायें, आधा जल शेष रहने पर कपड़े से छान, उसमें फिटकरी १० रत्ती और शुद्ध सुहागा १० रत्ती मिलाकर कुल्ला करने से मुँह और गले के छालों, गलग्रन्थि शोथ, उपजिव्हा प्रदाह आदि में अच्छा लाभ होता है।

दूसरा प्रयोग- मुखपाक, मसूढ़े फूलना और मुँह तथा गले में छाले पड़ना इन रोगों में उदुम्बरसार को जल में मिला कर कुल्ला करना, खदिरादि तैल लगाना, या उसको मुँह में रख कर फिराना, यदि दस्त की कब्जियत हो, मंजिष्ठादि चूर्ण सोते समय देना और मुख पाक आदि रक्त-विकार या पेट की गर्मी हो, तो सारिवादि हिम पीने को और शतपत्र्यादि चूर्ण खाने को देना चाहिए। -सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का प्रयोग रक्त-विकार सम्बन्धी विकारों, फोड़े फुन्सी होना, मुँह में छाले पड़ जाना, गले में छाले पड़ जाना आदि रोगों में बाह्य तथा आभ्यन्तरिक दोनों विधि से होता है।

तगरादि क्वाथ

तगर (युनानी-असारून), पित्त पापड़ा, अमलतास का गुदा, नागरमोथा, कुटकी, जटामांसी असगंध, ब्राह्मी, मुनक्का, लाल चन्दन, दशमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी), छोटा गोखरू, छोटी और बड़ी कटैया, बेल, गम्भारी, अरणी, सोनपाठा (पाढ़) और शंखाहुली ये सब द्रव्य समभाग लेकर अधकचरा (दरदरा) कूट कर रख लें। इसमें से १ तोला दवा को १६ तोला जल में पकायें, जब ४ तोला बाकी रहे, तब छानकर प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- प्रलापक सन्निपात में (सन्निपातज्वर में रोगी प्रलाप करने लगे तब) इस क्वाथ के उपयोग से बहुत लाभ होता है। इस क्वाथ को अकेले या बृहत कस्तूरीभैरव रस के अनुपान के रूप में उपयोग करें। यदि रोगी को पतले दस्त आते हों तो इस योग में से कुटकी, अमलतास और मुनक्का निकाल कर इसका उपयोग करें।

त्रिफलादि क्वाथ

हरड़, बहेड़ा, आँवला, गिलोय, कुटकी, नीम की छाल, चिरायता, वासा-ये प्रत्येक ३-३ माशा लेकर इनका यवकुट चूर्ण करें, पश्चात् इनको १ पाव पानी में पकायें, आधा पाव पानी शेष रहने पर उतारकर छान लें और मिश्री मिलाकर दिन में दो तीन बार पिलायें।-शा.स.

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का सेवन करने से समस्त प्रकार के कठिन पाण्डु रोग, कामला और हलीमक रोग नष्ट होते हैं। विशेषत: पित्त-विकृति-जन्य पाण्डु, कामला और दूषित जल के पीने से उत्पन्न हुआ पाण्डु, कामला रोग शीघ्र नष्ट होता है। इसका फाण्ट या हिम बनाकर शहद मिलाकर पीना भी लाभप्रद है।

त्रिकण्टकादि क्वाथ

गोखरु, अमलतास का गूदा, डाभ (दर्भ-कुशा) की जड़, काश की जड़, जवासा, पित्त पापड़ा, पाषाण भेद औ हरड़- ये प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे लेकर इनका जौकुट चूर्ण करें, इसका आधा सेर पानी में क्वाथ करें, आधा पाव जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। शीतल होने पर मद्य १ तोला का प्रक्षेप देकर दिन में दो-तीन बार पिलायें।-यो.र.

गुण और उपयोग- मद्य का प्रक्षेप देकर इस क्वाथ के पिलाने से अत्यन्त कठिन अश्मरी-जनित मूत्रकृच्छ्र रोग शीघ्र नष्ट होता है और शनैः शनैः अश्मरी को तोड़कर बाहर निकाल देता है। मूत्राघात में भी उपयोगी है।

तारुण्यादि कषाय (दस्तावर)

गुलाब के फूल १ तोला, सनाय १ तोला, सौंफ १ तोला और मुनक्का २ तोला लेकर सब को बिना कूटे ही रात को २० तोला जल में भिंगों दें। सबेरे पकाकर ५ तोला जल बाकी रहे, तब उसमें १ तोला शर्करा (युनानी-तुरन्जबीन) या ६ माशा मिश्री मिला, कपड़े से छानकर पिलायें। -सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- यह क्वाथ दस्तावर है। इस क्वाथ के उपयोग से बिना तकलीफ के दो-तीन साफ दस्त हो कर पेट शुद्ध हो जाता है। पित्त प्रकृति वालों तथा कोमल प्रकृति वालों के लिये यह बहुत ही उपयोगी, मृदुविरेचक योग है। जीर्णकब्ज के रोगियों को भी बीच-बीच में सेवन कराते रहने से आँतें मुलायम होकर कब्ज नष्ट हो जाता है।

दशमूल क्वाथ

छोटी और बड़ी कटेरी का पंचांग, शालिपर्णी और पृश्निपर्णी का पंचांग, वेलछाल, गम्भारी छाल, सोनापाठा-छाल, अरणी-छाल, पाढ़, गोखरु का पंचांग या फल- प्रत्येक समान भाग लेकर यवकुट चूर्ण कर रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान -इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकायें, जब ४ तोला जल बाकी रहे, तब नीचे उतार, कपड़े से छानकर पिलायें। यह क्वाथ आवश्यकतानुसार दिनभर में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का उपयोग वात और कफ सम्बन्धी विकारों में विशेष होता है। प्रसूत रोग के लिये यह क्वाथ प्रसिद्ध है। वात प्रकोप में भी अनुपान रूप से इसका प्रयोग किया जाता है।

मुँह सूखना, हाथ-पाँव आदि अवयव ठंडे पड़ जाना, चक्कर आना, पसीना अधिक आना, खाँसी, श्वास, छाती तथा पसली का दर्द, तन्द्रा (झपकी आना), और सिर-दर्द युक्त सन्निपातज्वर, सूतिका (प्रसूत) ज्वर और शोथ रोग में इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। यदि सन्निपातज्वर में प्रलाप और नींद न आना, ये उपद्रव हों तो इस क्वाथ के योग में लौंग, ब्राह्मी, जटामांसी, तगर, शंखाहुली और सर्पगन्धा- प्रत्येक १-१ तोला और मिला दें। इससे यह क्वाथ बहुत गुणकारी हो जाता है।

प्रसव के बाद प्यास अधिक लगना, रक्त की कमी, पेट का दर्द, सम्पूर्ण अंग में दर्द होना, अन्न में अरुचि आदि लक्षण उपस्थित होने पर इस क्वाथ का उपयोग करना अति हितकर है।

प्रसव के बाद कमजोरी और थकान आना, प्रसूता स्त्री के लिये स्वाभाविक बात है। बच्चा पैदा होने के बाद पेट में दूषित रक्तादि रह जाते हैं। बाहर निकलना आवश्यक रहता है। नहीं निकलने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे-ज्वर, मक्कलशूल, अन्न में अरुचि, रक्त की कमी, सम्पूर्ण शरीर में दर्द होना, शरीर सूज आना आदि। ऐसी स्त्रियों का दूध भी दूषित हो जाता है, जिसका बुरा प्रभाव बच्चे के ऊपर होता है। बच्चा पैदा होने से पहले यदि ज्वरादि आता रहता है, तो वह रोग भी प्रसव के बाद प्रकोप कर जाता है। इन उपद्रवों को रोकने या दूर करने के लिये दशमूल क्वाथ का प्रयोग करना बहुत उपयोगी है।

बच्चा पैदा होने के दिन से लेकर दस दिन पर्यन्त दशमूल क्वाथ प्रसूता को अवश्य देना चाहिए, क्योंकि दस दिनों में प्रसवजन्य अनेक तरह की वेदना बच्चों को होती है। इस वेदना को दूर करने के लिये 'दशमूल क्वाथ' का उपयोग बहुत लाभदायक है। फिर प्रसूतजन्य कोई भी बीमारी होने का डर नहीं रहता है। महाराष्ट्र प्रदेश में बालान्त काढ़ा नं. १ के नाम से भी यह प्रचलित है। बड़ी फार्मेसियाँ आसवारिष्ट प्रक्रिया के अनुसार सन्धान विधि से बनाकर विक्रयार्थ प्रस्तुत करती है। इस प्रकार बनाने से यह बहुत टिकाऊ एवं गुणकारी भी बन जाता हे।

प्रसूता को अधिक उष्ण उपचार से बचायें। अधिक उष्ण उपचार से शरीर में गर्मी विशेष होकर अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं,जैसे- मुँह में छाले हो जाना, हाथ-पाँव और आँखों में जलन, दूध कम होना, इतना ही नहीं, बच्चे के मुँह में भी छाले हो जाते हैं, शरीर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं, दुध कम मिलने की वज से बच्चा बराबर रोता रहता है। बच्चे का शरीर, विशेषकर चेहरा लाल वर्ण का हो जाता है। इसमें भी उष्णताजन्य उपद्रवों को दूर करने के लिए इस काढ़े का प्रयोग करें।

वात-रोग में भी क्वाथ का उपयोग अनुपानरूप में दिया जाता है। पुराने वायु रोग में वातघ्न औषधियाँ जैसे-महायोगराज गुग्गुलु, वातारि बटी, वात-चिन्तामणि रस, अमर सुन्दरी बटी(रस) आदि दवाओं के साथ अनुपानरूप में दिया जाता है।

दार्व्यादि क्वाथ

दारुहल्दी, रसोत, नागरमोथा, शुद्ध भिलावा, बेलगिरी, अडूसा, चिरायता-ये प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे लेकर इनको जौकुट करके आधा सेर पानी में क्वाथ करें, आधा पाव रहने पर उतार कर छान लें, शीतल होने पर शहद मिलाकर दिन में दो-तीन बार पिलायें। शा.ध.सं.

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के प्रदर रोग नष्ट होते हैं, विशेषत: पित्तजन्य प्रदर को यह शीघ्र नष्ट करता है और गर्भाशय को सशक्त बनाकर मासिक धर्म साफ और नियमित समय पर लाता है।

यह क्वाथ गर्भाशय के शोधनार्थ प्रयुक्त होता है। बीजाशय या बीजाशय नलिका या गर्भाशय में विकार उत्पन्न होने पर प्रदर रोग उत्पन्न होता है, कुछ समय पश्चात् रोग दृढ़ हो जाने पर रक्त में विष शोषित होता रहता है, परिणामत: शारीरिक निर्बलता, दृष्टिमान्द्य, कटिवेदना, सिर-दर्द, मन्दज्वर आदि लक्षण होते हैं, ऐसी दशा में यह क्वाथ अपूर्व लाभ करता है। कभी-कभी गर्भाशय में क्षत हो जाने पर दूषित स्राव होने लगता है, उसमें भी यह क्वाथ अच्छा लाभकारी है।

दाड़िम पुटपाक

अच्छे प्रकार से पका हुआ मीठा अनार लेकर, उस पर एक अंगुल मोटी कपड़मिट्टी करके पुटपाक-विधि से पकायें, पश्चात् कपड़मिट्टी हटाकर अनार को निकाल कर, उसका रस निकालकर शीतल होने पर शहद (दशमांश) मिलाकर दिन मे तीन-चार बार पिलायें।- शा.ध.सं.

गुण और उपयोग- इस दाड़िम पुटपाक के रस को पीने से समस्त प्रकार के अतिसार रोग नष्ट होते हैं, इसके अतिरिक्त प्यास, दाह, रक्तपित्त रोग एवं पित्तजन्य रोगों में भी उत्कृष्ठ लाभ करता है।

देवदार्वादि क्वाथ

देवदारु, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, कायफल की छाल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, हरड़, गजपीपल, जवासा, गोखरु, धमासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी और स्याहजीरा-ये सब द्रव्य समभाग लेकर दरदरा कूट कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकायें। ४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान करके, प्रसूता स्त्री को पिलायें।

गुण और उपयोग- देवदार्वादि क्वाथ प्रसूत ज्वर में उत्तम है। इसका केवल या 'बृहत्कस्तूरी भैरव' के अनुपानरूप में प्रयोग करें। इससे शूल, खाँसी, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, सिर का दर्द और तन्द्रा-प्रलाप आदि उपद्रवयुक्त सूतिका ज्वर हो जाता है। यदि प्रलाप हो, तो इस क्वाथ में लौंग, ब्राह्मी, जटामांसी, तगर, खुरासानी, अजवायन १-१ माशा और मिलायें। प्रसूता स्त्री को प्रसव के दिन में ही देवदार्वादि क्वाथ और दशमूल क्वाथ दोनों मिलाकर देने से प्राय: सूतिका रोग होने का डर नहीं रहता।

धान्यपंचक क्वाथ

धनिया, खस, बेल की गिरी (बीज), नागरमोथा और सोंठ समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करके रख लें। -चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान - इसमें से १ तोला चूर्ण १० तोला जल में पकायें, जब चार तोला जल शेष रहे, तब ठण्डा कर स्वच्छ कपड़े से छानकर रोगी को दें। इस तरह आवश्यकतानुसार दिनभर में ३ बार दें। यदि पित्तातिसार में इसका प्रयोग करना हो, तो इसमें से सोंठ निकाल दें।

गुण और उपयोग- यह क्वाथ उत्तम दीपन-पाचन और ग्राही है। अतिसार में इसका उपयोग विशेष होता है। पित्तातिसार या रक्तातिसार में इसका उपयोग करना हो, तो सोंठ की जगह सौंफ डालकर इसका प्रयोग करें। इस क्वाथ का अकेला या महागंधक रसायन, पीयूषवल्ली रस आदि दवाओं के अनुपानरूप में प्रयोग करें।

धान्यसप्तक क्वाथ

धनिया, खस, बेलगिरी, नागरमोथा, सोंठ, सौंफ, कुड़े की छाल-प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे लेकर इनका जौकुट करें। पश्चात् इस चूर्ण को दो मात्रा में करके १ माशा लेकर १ पाव जल में पकायें, ५ तोला जल शेष रहने पर उतार कर छान लें और ३ माशे मिश्री मिलाकर पिलायें। आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- यह क्वाथ अत्यन्त उत्तम दीपन-पाचन और ग्राही है। इसका उपयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन अतिसार रोग शीघ्र नष्ट होते हैं और पित्तातिसार तथा रक्तातिसार रोग में भी उत्तम लाभप्रद है। आमातिसार में आम का पाचन कर शूल का शमन करता है एवं अतिसार को नष्ट करता है।

पटोलादि क्वाथ

कड़ुए परवल के पत्ते, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम की अन्तर छाल, मुनक्का, इन्द्रजौ,

नागरमोथा, मुलेठी, और अडूसा-प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर उसको दरदरा कूटकर रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान - इसमें से १ तोला अधकुटा चूर्ण लेकर उसको १६ तोला जल में पकायें। ४ तोला शेष रहने पर कपड़े से छानकर केवल यह कषाय या इसमें ५ रत्ती नौसादर का चूर्ण और ५ रत्ती कलमी शोरा मिलाकर दिन भर में तीन-चार बार दें।

गुण और उपयोग- यह क्वाथ ज्वर पाचन के लिये दिया जाता है। ज्वर-पाचन के लिये अकेले या त्रिभुवनकीर्ति रस, ज्वरसंहार, ज्वरांकुश, सप्तपर्णघन बटी आदि योगों के अनुपान रूप में दें।

पथ्यादि क्वाथ

बड़ी हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चिरायता, हल्दी तथा नीम के वृक्ष पर लगी हुई गिलोय (गुर्च) प्रत्येक समभाग लेकर जौकुट करके रख लें। -सि.यो.सं.

वक्तव्य- अन्य ग्रन्थों में नीम के वृक्ष पर लगी हुई गिलाये के स्थान पर नीम की अन्तर्छाल और गिलोय का उल्लेख है।

मात्रा और अनुपान - इस चूर्ण में से १ तोला लेकर १६ तोला जल में पकायें, ४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर कपड़े से छान लें। इसमें ६ माशा गुड़ मिलाकर पिला दें।

गुण और उपयोग- इसका उपयोग सिर दर्द में किया जाता है। अकेले या शिर:शूलादि वज्र रस के अनुपानरूप में भी इसका प्रयोग करें।

नोट-सिर दर्द के लिये गोदन्ती भस्म और मिश्री का चूर्ण प्रत्येक १।।-१।। माशा एकत्र मिला कर छः माशे घृत के साथ देने से सिर दर्द में अच्छा लाभ होता है।

प्रदरान्तक क्वाथ

झरबेरी की जड़, जामुन की छाल, आम की छाल, अशोक की छाल- प्रत्येक सम-भाग लेकर दरदरा चूर्ण बना कर रख लें।

मात्रा और अनुपान - इस चूर्ण में से १ तोला लेकर १६ तोला जल में पकायें और ४ तोला शेष रहने पर कपड़े से छान, सेवन करें।

गुण और उपयोग- रक्त और श्वेतप्रदर में इस क्वाथ का उपयोग किया जाता है। इससे गर्भाशय दोषरहित होकर संतान धारण करने में समर्थ होता है।

प्रतिशायघ्न क्वाथ

मुलेठी, मुनक्का, अडूसा-पत्र, लिसोड़ा, वनप्सा, और गुलवनप्सा- प्रत्येक १-१ तोला, काली मिर्च और मिश्री ६-६ माशे मिला कर यवकुट चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा और अनुपान - इस चूर्ण में से १ तोला दवा लेकर १६ तोला जल में डाल, मिट्टी के बर्तन में पकायें, ४ तोला जल शेष रहने पर उतारकर महीन कपड़े से छान लें तथा तीन माशे शहद और ६ माशे घी मिला कर सेवन करें। दिन में २-३ बार और रात को सोते समय इस क्वाथ को पीकर चुपचाप सो जाएँ।

रोग और रोगी की अवस्थानुसार ३ से ७ दिन तक इसका प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- जुकाम नया हो या पुराना, या रुक गया हो, जुकाम के मारे ज्वर हो गया हो, सिर में दर्द रहता हो, किसी काम में मन नहीं लगता हो आदि उपद्रव युक्त जुकाम (प्रतिश्याय) में इस क्वाथ से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

प्रमेहहर क्वाथ

दारुहल्दी, हल्दी, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आँवला, देवदारु, नागरमोथा, खस, लोध्र, श्वेत चंदन (नेत्रबाला), कमल के फूल, पद्माख, गोखरु, पटोलपत्र- प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर इनका जौकुट चूर्ण करके रखें। इसमें से १ तोला चूर्ण को १० तोला जल में पकायें, चार तोला जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् उसमें आधा तोला शहद मिलाकर सुबह-शाम पिलायें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के प्रमेह रोग शीघ्र नष्ट होते हैं और मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात में भी यह लाभदायक है। इस क्वाथ का अकेले या प्रमेहहर योगों के अनुपानरूप में भी प्रयोग किया जाता है।

पुनर्नवाष्टक क्वाथ (पुनर्नवादि क्वाथ)

पुनर्नवा की जड़, हरड, नीम की छाल, दारु, हल्दी, कुटकी, परवल का पंचांग, गिलोय और सोंठ-प्रत्येक समान भाग लेकर जौकुट चूर्ण कर रख लें।

मात्रा और अनुपान - इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर उसको १६ तोला पानी में पकायें, जब ४ तोला पानी शेष रहे, तब उसे कपड़े से छानकर उसमें १-२ तोला गो-मूत्र मिला कर पिलावे। दिन भर में आवश्यकतानुसार २-३ बार दें।

गुण और उपयोग- यकृत और प्लीहा की वृद्धि, शोथ, उदर रोग, सर्वांग शोथ और संधिवात (जोड़ों के दर्द) में इसका प्रयोग करना चाहिए। इससे दस्त और पेशाब साफ होकर शोथ (सूजन) उतर जाता है। इसमें पुनर्नवा और कुटकी दो भाग लें और राहेड़ा की छाल तथा शरपुंखा (सरफोंका) की जड़ १-१ तोला और मिला दें, तो अधिक गुणदायक होता है। इस क्वाथ का केवल या आरोग्यवर्द्धिनी और पुनर्नवादिमण्डूर के अनुपान से प्रयोग करना चाहिए। सन्धिवात और आमवात में इस क्वाथ में चोपचीनी, सुरंजान, एरण्डमूल, सोनापाठा की छाल, हरमल और रास्ना एक-एक भाग और मिला कर श्रृंग भस्म १-१ माशा के साथ इसका प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

पंचभद्र क्वाथ

पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, चिरायता-ये प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे लेकर जौकुट चूर्ण करके १ पाव पानी में पकायें, १ छटाँक जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। फिर इसमें ६ माशे शहद मिलाकर दिन में दो बार प्रातः सायं पिलायें। -शा.ध.सं.

गुण और उपयोग- इस क्वाथ के प्रयोग से समस्त प्रकार के वात-पित्त-जन्य ज्वर नष्ट होते हैं। विशेषतः पित्तज्वर में शीघ्र एवं उत्कृष्ट लाभप्रद है।

वत्सकादि क्वाथ

कुड़ा की छाल, अतीस, बेल का गूदा, सुगंधवाला और नागरमोथा- प्रत्येक समान भाग लें, और यवकुट कर रख लें।- चक्रदत्त

मात्रा और अनुपान - इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में क्वाथ करें। ४ तोला जल शेष रहने पर छान कर सेवन करें।

गुण और उपयोग- आमातिसार, रक्तातिसार और नये-पुराने अतिसार में इसके उपयोग से लाभ होता है।

वरुणादि कषाय

वरुण की छाल, सोंठ, गोखरु और पाषाणभेद- प्रत्येक १-१ तोला लेकर यवकुट चूर्ण बना कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- इसमें से यवकुट किया हुआ चूर्ण १ तोला को १६ तोला जल में पकायें। ४ तोला शेष रहने पर छानकर इसमें क्षार-पर्पटी या यवक्षार ५ रत्ती की मात्रा में मिला कर पकायें।

गुण और उपयोग- अश्मरी रोग मूत्रकृच्छ्र, वृक्कशूल, बस्तिशूल आदि में इसके उपयोग से काफी लाभ होता है।

भार्ग्यादि क्वाथ

भारंगीमूल, नीम की छाल, नागरमोथा, हरड़, गिलोय (गुर्च), चिरायता, अडूसा, अतीस, त्रायमाणा, कुटकी, बच, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, सोनापाठा, कुड़ा की छाल, रास्ना, जवासा, कडवें परवल के पत्ते, पाढ़, निशोथ, दारुहल्दी, इंद्रायण की जड़, हल्दी, ब्राह्मी, पुष्करमूल, छोटी कटेरी, कचूर, आँवला, बहेड़ा और देवदारु-इन ३२ दवाओं को समभाग लें, दरदरा कूट रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- इसमें से १ तोला यवकुट चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकावं ४ तोला जल शेष रहने पर उतार लें और छानकर पिलायें।

गुण और उपयोग- यह भार्ग्यादि क्वाथ आवश्यकतानुसार दिन में दो-तीन बार अकेला या इसमें ४ रत्ती नौसादर चूर्ण और ५ रत्ती यवक्षार मिलाकर दें। यह क्वाथ कफज्वर, कफाधिक्य, सन्निपात जवर, श्वसनक (न्यूमोनिया) ज्वर, उरस्तोय (प्लूरसी), पार्श्वशूल, कफ-कास और श्वास दूर करने के लिए उत्तम है। इसकी केवल या अभ्रक भस्म और मृगश्रृंग भस्म २-२ रत्ती के अनुपान रूप में दें।

उरस्तोय- (प्लूरसी) की प्रारम्भिक अवस्था में- छाती में थोड़ा-थोड़ा जल संचय होने लगता है। इस रोग में सूखी खाँसी उठती है, क्योंकि कफ छाती में बैठा हुआ रहता है, निकलता नहीं है, जिसमें रोगी खाँसते-खाँसते घबराने लगता है। पसली में दर्द होने लगता है। बुखार भी हो जाता है। दस्त, कब्ज, चेहरा उदास एवं रोगी निरुत्साहित हो जाता है। इसमें मृगश्रृंग भस्म ४ रत्ती, मण्डूर भस्म २ रत्ती मधु में मिलाकर दें और ऊपर से यह क्वाथ पिलायें।

भूनिम्बादि क्वाथ

चिरायता, अतीस, लोध्र, नागरमोथा, इन्द्रजौ, गिलोय, नेत्रबाला, धनियां, बेलगिरी- ये प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे लेकर जौकुट चूर्ण करके रखें। पश्चात् इसको आधा सेर जल में क्वाथ बनायें, आधा पाव जल शेष रहने पर उतारकर छान लें और शहद १ तोला मिलाकर दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार पिलायें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ को शहद मिलाकर सेवन करने से मोतीझरा, मन्दज्वर, मधुर ज्वर, अतिसार, श्वास, कास, रक्तपित्त आदि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं।

मधुकादि हिम

मुलेठी, मिहीदाना, गावजबाँ, गुलवनप्सा, रेशाखातमी, मुनक्का, लिसोड़ा-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ तोला लेकर इनको जौकुट चूर्ण करके ७ पुड़ियाँ बनायें।

विधि- १-१ पुडिया को १० तोले जल में मिट्टी या काँच के पात्र में रात्रि में भिंगों दें, सुबह मसल-छान कर मिश्री मिलाकर पीयें। इसी प्रकार एक पुड़िया सुबह भिंगोकर शाम को पीयें। -र.यो.सा.

गुण और उपयोग- इस हिम का प्रयोग करने से अर्द्धावभेदक, पित्तवृत्ति-जनित शिर:शूल, लू लगने से होने वाले मन्दज्वर, जुकाम, सिर-दर्द आदि विकारों को शीघ्र नष्ट करता है। जिनको श्वास, कास, कफवृद्धि-विकार बराबर रहते हों, उनके लिए यह हिम विशेष उपयोगी है।

महामंजिष्ठादि क्वाथ

मंजीठ, नागरमोथा, कुड़ा, गिलोय (गुर्च), कुठ (पुष्करमूल), सोंठ, भारंगी, छोटी कटेली, बच, नीम की अंतर्छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, पटोल-पत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडंग, विजयसार, साल (असाखु), शतावर, त्रायमाणा, गोरखमुण्डी, इंद्रजौ, अडूसा, भांगरा, देवदारु, पाठा, खैरसार, रक्तचन्दन (नेत्रबाला), निशोथ, वरना की छालें, चिरायता, बावची, अमलतास, शाखाटेक (सिहोरा), बकायन की छाल, करंज, अतीस, नेत्रबाला, इंद्रायण की जड़, धमासा, अनंतमूल और पित्तपापड़ा सम समान भाग लेकर जौकुट चूर्ण बनाकर रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर उसको १६ तोला जल में पकायें ४ तोला जल शेष रहने पर कपड़े से छान, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पिलायें। इस तरह सुबह-शाम दोनों समय दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ के सेवन से महाकुष्ठ, क्षुद्र कुष्ठ, वातरक्त, सुनबहरी, वात, व्रण (घाव), दाह, सूई चुभोने जैसी पीड़ा, उपदंश, शरीर पर लाल-लाल चकत्ते पड़ जाना, अर्दित, पक्षाघात, नेत्ररोग, मेद रोग, श्लीपद (फीलपाँव) तथा रक्तमण्ड आदि दोष नष्ट होते हैं। इसको आठ गुने जल में ४ प्रहर भिंगोकर, अर्क निकालकर पिलाने से भी बहुत उत्तम लाभ होता है।

इन रोगों में गन्धक रसायन, गलितकुष्ठारि रस, कैशोर गुग्गुल, शिलाजीत गुटिका, माणिक्य रस आदि दवाओं के अनुपान रूप में इस क्वाथ का प्रयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। मेदोवृद्धि रोग में योगराज गुग्गुल के साथ सेवन करने से अच्छा लाभ होता है।

यह क्वाथ तीक्ष्ण है, अतएव छोटे बच्चों, स्त्रियों तथा नाजुक प्रकृतिवालों को देते समय इसमें समभाग चूर्ण का काढ़ा मिला लेना चाहिए, क्योंकि इससे तीक्ष्णता नष्ट होकर क्वाथ में सौम्यता आ जाती है।

महारास्नादि क्वाथ

रास्ना २ तोला, जवासा, बरियारा के मूल, एरण्डमूल, देवदारु, कचूर, बच, अडूसे की जड़, गोखरु, असगंध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावर, पीपल, कटसरैया, धनियां, सोंठ, हर्रे, चव्य, नागरमोथा, पुनर्नवा (गदहपुर्ना), गिलोय (गुर्च), विधारा, सौंफ, छोटी कटेली, बड़ी कटेली समभाग लें तथा जौकुट करके रख लें।- शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर उसको १६ तोला जल में पकायें ४ तोला जल शेष रहने पर सोंठ का चूर्ण २ रत्ती, पीपल चूर्ण २ रत्ती, योगराज गूगल १ गोली, हींग भुनी २ रत्ती, सोंचर नमक का चूर्ण ४ रत्ती अथवा एरण्ड तैल १० बूँद, इनमें से किसी एक के अनुपान के साथ मिलाकर दें। सुबह-शाम दो बार प्रयोग करें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ के सेवन से सर्वांगवात, अर्धांगवात, संधिवात, मेदागत वात, कम्पवात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानक, आन्त्रवृद्धि, आध्मान, अर्दित, एकांगवात, शुक्रदोष, योनिरोग, और बंध्यादोष नष्ट होते हैं।

वात संबंधी रोगों को नष्ट करने के लिए यह दवा बहुत प्रसिद्ध है। वात रोगघ्न औषधे, जैसे महायोगराज गुग्गुलु, सिंहनाद गुग्गुलु, योगराज गुग्गुलु, वातारि रस, वातविध्वंसन रस, दशमूलारिष्ट,

अश्वगंधा पाक इत्यादि दवाओं के अनुपान रूप में इसका प्रयोग किया जाता है।

आमवात रोग में १ तोला रेंडी का तैल और २ तोला महारास्नादि क्वाथ सिद्ध क्वाथ जल दोनों को एकत्र मिला कर सेवन करने से बहुत लाभ होता है। इसी प्रकार पुराने वात रोगों में ६ माशे से प्रारम्भ कर १ तोला महानारायण तैल में महारास्नादि क्वाथ १ से २ तोला मिलाकर सेवन करने से शीघ्र फायदा करता है।

मांस्यादि क्वाथ

जटामांसी १ तोला, असगंध चौथाई तोला, खुरासानी अजवायन के बीज १।। माशा इनको जौकुट कर रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- इसमें से १ तोला चूर्ण को १० तोला जल में पकायें और ४ तोला जल शेष रहने पर उसे छान कर सेवन करें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का हिस्टीरिया, आक्षेप और बालकों का आक्षेप आदि रोगों में अकेले या अपतंत्रकारि बटी या वृहद्वाताचिन्तामणि या ब्राह्मी वटी (सुवर्णयुक्त) या सर्पगंधायोग- इनके अनुपान रूप में प्रयोग करें। मस्तिष्क के क्षोभ एवं निद्रानाश में भी इसके सेवन से उत्तम लाभ होता है।

मूत्रल कषाय

पुनर्नवा की जड़, गन्ना (ईख) की जड़, कुश (डाभ) की जड़, काँस की जड़, छोटा गोखरु, खुरासानी, अजवायन, रक्तचंदन, अनंतमूल, सौंफ, धनियां, सागौन के फूल, मकोय, कारानी के बीज, ककड़ी या खीरा के बीज, गिलोय, पाषाणभेद, काकनज और कमल के फूल-सब समान भाग लें, जौकुट चूर्ण करके रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- इसमें से २ तोला लेकर १६ तोला जल में पका लें। ४ तोला जल शेष रहने पर छान कर इसमें अच्छा शिलाजीत ५ से १० रत्ती मिलाकर पिलायें या क्षार पर्पटी अथवा श्वेत पर्पटी ५ से १० रत्ती मिलाकर ऐसी एक-एक मात्रा दिन भर में आवश्यकतानुसार २-३ बार पिलायें।

गुण और उपयोग- गुर्दे के शोथ से जो सर्वांग शोथ होता है, उसमें इसका उपयोग करना अच्छा है। यह क्वाथ मूत्रल और मूत्रवर्द्धक (पेशाब बढ़ाने वाला और साफ लाने वाला) है। अश्मरी के कारण जो पेट और कमर में दर्द होता है, उसके लिए इस क्वाथ के योग में-जटामांसी २ तोला और खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती १ तोला मिलाकर इसका प्रयोग करें। साथ में हजरूलयहूद की भस्म ४ से ८ रत्ती तक पिलाते समय मिला देने से विशेष लाभ करता है। मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रकुण्डलिका, तूनी, प्रतूनी, मूत्रोदावर्त आदि में रुके हुए पेशाब को उतारने तथा मूत्र की उत्पत्ति बढ़ाने में यह बहुत लाभदायक है। विसूचिका (हैजा) में भी मूत्र की कमी होने पर इसका प्रयोग गुणकारी है।

रज:प्रवर्तक कषाय

अपामार्ग के बीज, मूली के बीज, सोया के बीज, हंसराज, अमलास का गूदा, अजमोदा, वायविडंग, मंजीठ, कलौंजी- प्रत्येक ६-६ माशा, चित्रकमूल-छाल ४ माशा, गाजर के बीज १ तोला, पुराना गुड़ (पाँच साल का) २ तोला-इन सबको कूटकर रात को आधा सेर जल में भिंगो दें। प्रात: आग पर चढ़ा, क्वाथ कर लें। आधापाव जल शेष रहने पर, छान कर रख लें।

मात्रा और अनुपान- इसमें से १ छटाँक क्वाथ प्रात: काल-रजप्रवर्तनी बटी या योगराज

गुग्गुलु के साथ दें, इसी तरह शाम को भी दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ के उपयोग से अधिक दिनों का रुका हुआ मासिक धर्म भी खुलकर आने लगता है।

रास्नासप्तक क्वाथ

रास्ना, गोखरू, एरण्ड की जड़, गिलोय (गुर्च), देवदारु, पुनर्नवा, सोंठ, और अमलतास का गूदा-प्रत्येक समान भाग लेकर जौकुट चूर्ण बनाकर रख लें।-शा.ध.सं.

मात्रा और अनुपान- १ तोला चूर्ण लेकर १६ तोला जल में पकायें ४ तोला जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। फिर उसमें रेंडी का तेल मिलाकर पीने को दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ के सेवन से आमवात, कमर, जाँघ, पीठ और पसली का दर्द और वात-सम्बन्धी पेट-दर्द दूर होता है।

षडंगपानीय

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सुगंधबाला, लालचंदन (नेत्रबाला), खस और सोंठ- ये सब द्रव्य समान भाग लेकर जौकुट करके रख लें।-चि.च.

मात्रा और अनुपान- इसमें से १ तोला चूर्ण लेकर उसको १२८ तोला जल में मिट्टी के बर्तन में पकायें, ६४ तोला जल शेष रह जाये, तब नीचे उतारकर ठंडा करके कपड़े से छान लें।

वक्तव्य- जल का परिमाण द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार लिया गया है।

गुण और उपयोग- ज्वरवाले रोगी को जब प्यास लगे, तब यह जल थोड़ा-थोड़ा पीने को दें। इससे प्यास कम लगती है, और ज्वर का वेग भी कम हो जाता है। यह षडंगपानीय ज्वर में उत्तम पाचन है। सब तरह के ज्वर में इसका उपयोग किया जाता है। विशेषतया पैत्तिक और वातिक ज्वर में यह बहुत लाभ करता है।

स्तन्यशोधक क्वाथ

अनन्तमूल, पाढ़, देवदारु, चिरायता, मोरबेल (मूर्वामूल), कुटकी, गिलोय, तगर, सोंठ, नागरमोथा, इंद्रजौ- प्रत्येक द्रव्य समान भाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। पश्चात् २ तोला चूर्ण को १ पाव पानी में डालकर क्वाथ बनायें और ५ तोला शेष रहने पर उतार लें और छानकर मिलाकर पिलायें।-र.त.सा.

गुण और उपयोग- इस क्वाथ को बालक की माता को पिलाने से दूध शुद्ध होता है, जिससे बालक की प्रकृति स्वस्थ रहती है।

अनेक माताओं के रक्त में जीर्ण उपदंश, सूजाक आदि रोगों का विष होता है और अनेक के अम्लपित्त और आमाशय या अन्त्र में क्षत होने पर रक्त में अपक्व रस का प्रवेश होकर स्तन्य अशुद्ध या विषमय बन जाता है। इस प्रकार दूषित स्तन्य पीने से बच्चा अस्वस्थ रहता है और अनेक प्रकार के विकारों से पीड़ित हो जाता है। इस प्रकार कितने ही बच्चों की १-२ वर्ष के भीतर ही मृत्यु हो जाती है। ऐसी माताओं को स्तन्य का शोधन करने के लिए यह क्वाथ बहुत उपयोगी है। यदि पथ्य-पालन सह मूलरोग का उपचार भी किया जाये, तो स्थायी एवं विशेष लाभ होता है।

सारिवादि हिम

अनंतमूल, उस्बा, चोपचीनी, मंजीठ, गिलोय, धमासा, रक्तचंदन, गुलवनप्सा, खस, गोरखमुण्डी, शहतरा, कमल के फूल, गुलाब के फूल, गूमा, पद्माख और शंखाहुली-प्रत्येक

समान भाग लेकर जौकुट चूर्ण करके रख लें।-सि.यो.सं.

मात्रा और अनुपान- इसमें १ तोला चूर्ण को रात में ६ तोला गरम जल में मिट्टी के बर्तन या काँच के बर्तन में भिंगो दें, सबेरे हाथ से मसल, कपड़े से छानकर पीने को दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से रक्त-विकार, पाण्डु,खुजली दोनों (सूखी-गीली), हाथ-पाँव की जलन, अम्लपित्त पुराना बुखार आदि तथा पित्त और दूषित रक्त के कारण उत्पन्न हुए रोग दूर हो जाते हैं।

रक्त विकारों में उपयोग- तैल, मिर्च, राई, सिरका, मद्य, अम्लपदार्थों और तीक्ष्णपदार्थों के अधिक सेवन करने से रक्त में उष्णता बढ़ जाती है। फलतः रक्त दूषित होकर मांस, मेद, लसीका और चर्म इसको भी दूषित कर देता है, जिससे हाथों, पैरों गुह्यांगों आदि में फोड़े, फुन्सियाँ निकलते हैं, जिनमें बड़ी खुजलाहट होती है। इनके फूटने पर गाढ़ा जल के सदृश स्राव निकलता है। जहां यह स्राव लग जाता है, वहाँ भी फुन्सियाँ होकर खुजली होने लगती है। फैलते-फैलते यह विकार सारे शरीर में भी फैल जाता है। शीघ्र उचित चिकित्सा न की जाये, तो पुराना होने पर शरीर में लाल फुंसियों के समूह, मंडलाकार चकत्ते (चट्टे) अथवा पीबदार (पूययुक्त) फोड़ों के रूप में प्रगट होता है। रोगी को सोने, उठने, बैठने, भोजन करने, मल-मूत्र विसर्जित करने, चलने-फिरने आदि शारीरिक क्रियाओं को करने में भी कष्ट होता है एवं खुजली के कारण रोगी बेचैन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में गंधक रसायन ६-६ रत्ती सुबह-शाम मधु से चटाकर ऊपर से इस सारिवादि हिम को पीने से दो सप्ताह के बाद ही प्रत्यक्ष लाभ अनुभव होने लगता है। रक्त की गर्मी शांत हो जाती है एवं रक्त, मेद, मांस, लसीका और चर्म का शोधन होकर नये फोड़े-फून्सियों की उत्पत्ति बंद हो जाती है तथा पुराने भी मिटते चले जाते हैं। डेढ़-दो महीने सेवन करने से प्रायः लाभ हो जाता है। यदि विकार अधिक पुराना हो, तो फिर पुनः अकेले इसी सारिवादि हिम को ही ३-४ महीने तक सेवन करना चाहिए। रक्त और चर्म विकारों को नष्ट करने एवं धातुओं के शोधन में यह अतीव उपकारी, शोधक, शामक एवं सौम्य औषधि है। यह विकार को जड़ से निर्मूल कर देती है।

क्षुद्रादि क्वाथ

छोटी कटेरी की जड़, गिलोय सोंठ, पुष्करमूल-ये प्रत्येक द्रव्य ३-३ माशे लेकर जौकूट चूर्ण करके १ पाव पानी में क्वाथ करें। १ छटाँक पानी शेष रहने पर उतारकर छान लें और शहद मिलाकर दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार पिलायें।-भै.र.

मात्रा और अनुपान- इस क्वाथ का सेवन करने से कफ-वातज्वर, श्वास, कास, अरुचि, पार्श्वशूल युक्त ज्वर, श्लैष्मिक ज्वर (न्यूमोनिया) आदि विकार नष्ट होते हैं।

❖❖❖

प्रवाही क्वाथ- प्रकरण

आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में क्वाथ कल्पना का विधान अत्यंत प्राचीन है। यहीं नही बल्कि आयुर्वेदिक प्राचीन ग्रंथों, चरक, सुश्रुत आदि के पर्यालोचन से भी यही सिद्ध होता है कि क्वाथ-कल्पना आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में औषधि-प्रयोग कल्पनाओं में सर्वप्रथम आविष्कृत है। क्वाथ (कषाय), मधुरपाकी, दीपन, पाचन, स्रोत-विशुद्ध कारक मलमूत्र शोधक एवं निरापद होने के कारण रोगों को जड़ से नष्ट करने में अद्वितीय प्रभावकारी है और यही कारण है कि आयुर्वेद चिकित्सा में क्वाथ कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य पद्धतियों से आयुर्वेद चिकित्सा प्रतिपादित करने का मुख्य कारण भी क्वाथ प्रयोग विधि है। प्राय: देखा जाता है कि अन्य चिकित्सा पद्धतियों की औषध-कल्पनाओं से निर्मित ऊँची-ऊँची कीमती दवाओं को लम्बे अर्से तक सेवन करने पर भी रोगमुक्त न हुए और चिकित्सकों द्वारा असाध्य समझकर त्यागे हुए रोगी भी आयुर्वेदिक क्वाथों के सेवन करने से रोग-मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि, आयुर्वेदिक चिकित्सा की सफलता का मुख्य आधार इसकी क्वाथ प्रयोग विधि है। शायद ही कोई रोग ऐसा हो जिसकी आयुर्वेदिक चिकित्सा करने पर किसी न किसी रूप में क्वाथ का प्रयोग न होता हो, किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी आजकल लोगों में आराम-पसंदगी की भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाने के कारण रोज सुबह-शाम क्वाथ बनाकर सेवन करने में बड़ी झंझट और तकलीफ अनुभव करते हैं और जहाँ तक होता है वे बनी-बनाई, तैयार, तुरंत सुविधापूर्वक ली जा सकने वाली औषधियों को अधिक पसंद करते हैं। इस प्रकार की वर्तमान परिस्थिति से आयुर्वेदिक प्राचीन औषध-कल्पना क्वाथ-प्रयोग विधि के विकास से बड़ी बाधा (रूकावट) उत्पन्न हुई देखकर आयुर्वेदिक औषधि निर्माणकर्ताओं के सामने जनाभिरूचि के अनुसार लोगों को नित्यप्रति क्वाथ बनाने की झंझट से मुक्त रखकर क्वाथ प्रयोगों के सेवन से यथापूर्व लाभ पहुँचाने का विचार उपस्थित हुआ, परंतु क्वाथ को बनाकर चिरस्थाई (टिकाऊ) बनाये बिना ऐसा करना सम्भव नहीं था। अत: कुछ बुद्धिमान विचारकों ने क्वाथ बनाकर उसको छान कर पुन: उसे पकाकर, घनसार के रूप में घन गाढ़ा बनाकर प्रयोग करना शुरू किया। जहाँ तक क्वाथ के चिरस्थाई बनाने का प्रश्न है, यह विधि भी उपयुक्त है, क्योंकि पतले तरल पदार्थों की अपेक्षा घन (गाढे) पदार्थ चिरस्थाई टिकाऊ होते हैं और औषधि के मौलिक गुणों में भी कोई अंतर नहीं आता, किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी इसमें क्वाथ के मौलिक स्वरूप में परिवर्तन आ जाने के कारण क्वाथ-चिकित्सा को पसंद करने वाले लोगों ने इसे क्वाथ रूप में पसंद नहीं किया एवं इसी कारण यह प्रक्रिया क्वाथ रूप में सफल सिद्ध नहीं हुई और लोग इसे अन्य कोई नई औषध-कल्पना मानने लगे। ऐसी विषम परिस्थिति में, चिकित्सकों और औषधि निर्माण विशेषज्ञों (Physidians & Pharmacists) के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्वाथ को उसके मौलिक स्वरूप और गुणों में परिवर्तन किये बिना चिरस्थायी (टिकाऊ) बनाया जाए। इस विषय में बहुत विचार और परीक्षण करने पर यही निश्चित हुआ कि क्वाथ को मद्यसार (Alcohol) युक्त करके चिरस्थाई बनाया जाये, क्वाथ को मद्यसार युक्त करने की दो विधियाँ है। उनमें से एक तो यह है कि क्वाथ को बनाकर प्रति सौ भाग तैयार क्वाथ में ५ या १० भाग मद्यसार या हुली (Alcohol or Rectified Spirit) मिलाकर प्रयोग किया जाये और दूसरी विधि यह है कि क्वाथ को बनाकर उससे आसव-अरिष्ट प्रक्रिया के अनुसार गुड़-चीनी, शहद आदि मधुर पदार्थ और धाय के फूल, बबूल छाल, मधूक पुष्प आदि संधानकारक द्रव्य मिलाकर

उसमें मद्यसार (Alcohol) को प्राकृतिक रूप से स्वयं-उत्पन्न (Self-generated) किया जाय। ये दोनों ही विधियाँ समान उपयुक्त होने के कारण कुछ औषधि-निर्माण-कर्ता प्रथम विधि और कुछ द्वितीय विधि से क्वाथों को चिरस्थायी बनाने लगे और इस प्रकार चिरस्थायी बनाए गये क्वाथों से मद्यसार के सम्मिश्रित रहने से वे अल्पमात्रोपयोगी, रोज क्वाथ बनाकर सेवन करने की पूर्वविधि की अपेक्षा थोड़ी मात्रा में सेवन करने से ही गुणकारी और शीघ्र प्रभावकारी भी सिद्ध हुए और ये ही मुख्य कारण है कि प्रगतिवादी चिकित्सकों और जनता दोनों ने ही इस प्रकार बने प्रवाही क्वाथों को बहुत पसंद किया और इनका इतना अधिक प्रचार बढ़ गया कि आज प्राय: चिकित्सकों और जनता में इस प्रकार बने हुए प्रवाही क्वाथों की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और प्राय: सभी औषधि निर्माता प्रवाही क्वाथ बनाने लगे हैं किन्तु क्वाथ को मद्यसार युक्त करने की इन दो विधियों में से भी प्रथम विधि के अनुसार बनाने में सर्वप्रथम निर्माताओं के सामने मद्यसार (Alcohol) या हुली (Rectified Spirit) प्राप्त करने में सरकारी नियमों की सख्ती के कारण बड़ी कठिनाई होने एवं कहीं-कहीं सरकारी प्रतिबंधित निर्माणशाला (Bonded Laboratory) में सरकारी निरीक्षक (Excise Inspector) के सामने ही बनाने और कितने ही प्रकार की अन्य झंझटों के कारण इस विधि से केवल कुछ ही औषधि-निर्माता बना पाये और इसी कारण से यह विधि अधिक विकसित नहीं हो पाई। दूसरी विधि संधान-विधि से क्वाथ में मद्यसार (स्वयं-उत्पन्न Self generated) करने में कोई खास कठिनाई न होने से एवं आयुर्वेदिक औषधि-निर्माता-कल्पना आसव) अरिष्ट-कल्पना के तुल्य होने से प्राय: अधिकतर औषधि-निर्माण-कर्ता इसी प्रचलित विधि के प्रवाही क्वाथ बना रहे हैं।

यद्यपि इस द्वितीय विधि से प्रवाही क्वाथ अनेक औषधि निर्माता संस्थायें (Pharmacies) और चिकित्सक बनाते हैं, किन्तु उन सब में विधि सादृश्य होने पर भी संधान द्रव्यों, गुड़, चीनी, मधु आदि मधुर पदार्थ और धायफूल, बबूल छाल, मधूक पुष्प आदि के सम्मिश्रण की मात्रा (परिमाण) में कुछ कमी-बेशी होना संभव है, क्योंकि हम लोग अभी तक भी अपने संकुचित दृष्टिकोण को अपनाये रहने के कारण किसी भी नई भेषज-कल्पना का आविष्कार या प्राचीन कल्पना में परिवर्तन अथवा औषधियोग को एक दूसरे तक पहुँचाने की उदार भावना से बहुत पिछड़े हुए है और इसी कारण प्राचीन क्वाथ कल्पना में सामायिक आवश्यकतानुसार आए हुए इस नए परिवर्तन में एकरूपता नहीं आ सकी। इस दोष को मिटाने के लिए हम इस आयुर्वेदिक औषधि निर्माण कल्पना और औषधि प्रयोग ग्रन्थ (Pharmacopia) में प्रवाही क्वाथ प्रकरण स्वतंत्र रूप से दे रहे हैं इस प्रकार के प्रयत्नों से इस विधि में निश्चित ही एकरुपता आयेगी, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

प्रवाही क्वाथों को स्वयं-उत्पन्न (Self generated Alcohol) मद्यसारयुक्त बनाने की विधि-

किसी भी क्वाथ को उसके योग में कहे परिमाण के अनुसार जल में पकाकर एवं निर्दिष्ट मात्रा में क्वाथ-जल अवशिष्ट रहने पर उसे उतार, छान लें। पश्चात् प्रति एक द्रोण (१२।।। सेर ४ तोला) जल से ५ सेर गुड़ या चीनी मिलाकर ७ छटाँक धाय के फूल, साफ किये हुए ३२ तोला मधुक पुष्प तथा १६ तोला बबूल छाल (जौकुट) डालकर गरम जल से साफ किये हुए चीनी मिट्टी के इमरतबान अथवा काष्ठनिर्मित पीपे (ढोल, ड्रम) अथवा टंकी आदि पाक में भरकर ग्रीष्मकाल में १५ दिन तक तथा शीतकाल में एक मास तक संधान करके रखें। इस क्वाथ को प्रतिदिन लकड़ी के डंडे से चला दिया करें, ताकि सब सामान ठीक से मिल जाये, बीच-

बीच में माचिस (दियासलाई) जलाकर पात्र के अंदर ले जाकर संधान उत्पन्न होना तथा उत्पन्न हो जाने की परीक्षा (जांच) भी करते रहना चाहिए। जब संधान क्रिया (Fermentation) शुरू हो जाने पर तथा जब तक होता रहता है तब तक माचिस को बाहर जलाकर पात्र में ले जाने पर वह एकदम बुझ जाती है। जब आवश्यक संधान हो चुकने पर क्वाथ तैयार हो जाता है, तब उसके पात्र में ले जाई हुई माचिस की सींक बाहर से भी अच्छी तेज लौ के साथ जलती है। क्वाथ के मद्यसार (Alcohol) युक्त तैयार हो जाने पर मोटे कपड़े से या अन्य फिल्टर प्रेस आदि से छान कर दूसरे साफ पात्र में भरकर मुँह पर अच्छी तरह ढक्कन लगा कपड़मिट्टी आदि से उसकी सन्धिरोध कर देना चाहिए।

नोट- संधान होने के समय का उल्लेख सामान्य जानकारी के लिये किया गया है। वास्तव में जब भी संधान पूरा होकर माचिस की सींक अन्दर ले जाने पर अच्छी तरह जलती रहें, तब क्वाथ को तैयार समझना चाहिए और तभी छानकर अन्य पात्र में रखना चाहिए। तैयार क्वाथ को संधान काल में समशीतोष्ण तापमान वाले स्थान में रखना चाहिए। ऐसा करने से वे बनते भी ठीक हैं और सुरक्षित रहते हैं। समशीतोष्ण तापमान वाले मौसम अर्थात बसंत ऋतु में प्रवाही क्वाथ प्राकृतिक रूप से ही बहुत उत्तम बनते हैं। अधिक शीत में संधान क्रिया करने वाले कीटाणु उत्पन्न हो ही नहीं पाते और अधिक गर्म में अधिक तापमान जानकर संधानकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। फलतः प्रवाही क्वाथ ठीक नहीं बन पाते। समशीतोष्ण तापमान पर उनकी उत्पत्ती होकर संधान क्रिया ठीक होती है।

गुलबनप्सादि क्वाथ (प्रवाही)

गुलबनप्सा, गावजबाँ, मुलहठी खतमी- ये प्रत्येक द्रव्य ६४-६४ तोला, लिसोड़ा ३.५ सेर, उन्नाव १.७५० सेर लेकर सब को जौकुट करके १ मन २४ सेर जल में पकायें। ३२ सेर जल शेष रहने पर उतार लें, शीतल होने पर इसमें गुड़ १२.५ सेर, धाय के फूल १.५ सेर लेकर आसव के समान घृत-लिप्त एवं धूपित मटके (पात्र) में १ माह तक सन्धान करें। एक माह पश्चात् छानकर सुरिक्षत रखें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक समान भाग जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय दें। (भै.र. विद्योतिनी टीका का योग आसव-अरिष्ट विधि से निर्मित)

गुण और उपयोग- इस प्रवाही क्वाथ का सेवन करने से समस्त प्रकार के नवीन या जीर्ण प्रतिश्या (जुकाम) नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त खाँसी, श्वास इनको शीघ्र नष्ट करता है और कफ को पतला करके निकाल देता है। यह जुकाम को पकाकर कफ को निकाल देता है, जिससे फेफड़े, श्वास प्रणाली तथा गला साफ हो जाता है एवं जल्दी-जल्दी जुकाम होने की शिकायत (नजला) समूल नष्ट हो जाती है।

दशमूल काढ़ा (प्रवाही)

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरु, बेलगिरी, अरणी, मूल, सोनापाठा, गंभारी छाल, पाढ़ल- ये प्रत्येक द्रव्य ६४-६४ तोला लेकर जौकुट करके १ मन २४ सेर जल में पकावें, चतुर्थांश (१६सेर) जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। पश्चात् समें गुड़ ६.२५० सेर एवं धाय के फूल १० छटाँक डालकर आसवारिष्ट सन्धानविधि से १ माह तक सन्धान करें। एक माह के बाद छानकर रखें। (शारंगधर संहिता या योग आसवारिष्ट विधि से निर्मित)

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक सुबह-शाम भोजन के बाद दोनों समय पीपल चूर्ण ४ रत्ती का प्रक्षेप देकर पिलावें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के वातश्लैष्मिक ज्वर शीघ्र

नष्ट होते हैं और सन्निपात ज्वर, समस्त प्रकार के सूतिका रोग, हृद्ग्रह, कण्ठ ग्रह, पार्श्वशूल, तन्द्रा और शिर, शूल तथा वातरोगों को शीघ्र नष्ट करता है। विशेषतया सूतिका रोग में अधिक लाभप्रद है।

देवदार्वादि क्वाथ (प्रवाही)

देवदारु, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, हरड़, गजपीपल, जवासा, गोखरु, धमासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी, कालाजीरा-ये प्रत्येक द्रव्य ३२-३२ तोला लेकर जौकुट करें। इसमें १२८ सेर जल डालकर पकायें, जब अष्टमांशावशेष (१६ सेर) जल शेष रहे तब उतारकर छान लें। पश्चात् इसमें गुड़ ६.२५० सेर, धाय के फूल १० छटाँक का प्रक्षेप देकर आसवारिष्ट विधि से १ माह तक संधान करके रखें। एक माह पश्चात् छानकर रखें। (शारंगधर संहिता या योग आसवारिष्ट विधि से निर्मित)

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- यह क्वाथ उत्कृष्ट दीपन, पाचन और श्रेष्ठ ग्राही है। इस क्वाथ का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के अतिसार और संग्रहणी रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। अर्क सौंफ २ तोला के साथ मिलाकर पिलाने से अतिसार, पित्तातिसार, और रक्तातिसार रोग में उत्तम लाभ करता है। आम का पाचन कर अतिसार और ग्रहणी रोग नष्ट करने में यह क्वाथ अतीव श्रेष्ठ और निरापद सुप्रसिद्ध औषधि है।

पथ्यादि क्वाथ (प्रवाही)

हरड, बहेड़ा, आँवला, चिरायता, हल्दी, नीम की अन्तर्छाल, गिलोय - ये प्रत्येक द्रव्य पृथक्-पृथक् एक सेर पाँच छटाँक २ तोला लेकर जौकुट करके ६४ सेर जल में पकायें, १६ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् उसमें गुड़ ६.२५० सेर, धाय के फूल १० छटाँक डालकर आसवारिष्ट संधान-विधि से १ माह पश्चात् निकालकर छान लें और सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन से कठिन शिरोरोग यथा-सूर्यावर्त, अर्धाविभेदक, अनन्तवात आदि शिर:शूल शीघ्र नष्ट होते हैं। यह क्वाथ मृदु रेचक है। अत: कब्ज के कारण उत्पन्न होने वाले सिर दर्द में उत्तम लाभ करता है। विशेषत: पित्तजन्य शिर:शूल में अच्छा लाभकारी है। इसको दो-तीन महीने तक लगातार सेवन कराने से कितने ही पुराने सिर-दर्द के रोगियों को बहुत उत्तम लाभ होते देखा गया है। नवीन सिर-दर्द में तो एक-दो सप्ताह सेवन करने से ही लाभ हो जाता है।

पुनर्नवादि क्वाथ

पुनर्नवामूल, हरड़, नीम की छाल, दारुहल्दी, कुटकी, पटोलपत्र, गिलोय, सोंठ-ये प्रत्येक द्रव्य १-१ सेर लेकर जौकुट चूर्ण करके ६४ सेर जल में पकावें, १६ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। बाद में गुड़ ६.५ सेर, धाय के फूल १० छटाँक डालकर आसवारिष्ट संधान-विधि से एक माह तक संधान करें। एक माह पश्चात् छानकर सुरक्षित रखें। (शारंगधर संहिता का योग आसवारिष्ट विधि से निर्मित)

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का प्रयोग करने से समस्त प्रकार के कठिन पाण्डुरोग तथा शोथरोग शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकार के कास उदररोग, श्वास, शूलरोग, यकृत रोग- इनको शीघ्र नष्ट करता है। यदि इस क्वाथ में १-२ तोला गोमूत्र मिलाकर सेवन कराया जाय तो अतिशीघ्र उत्कृष्ट लाभ होता है।

महामंजिष्ठादि क्वाथ (प्रवाही)

मंजीठ, नागरमोथा, कुड़े की छाल, गिलोय, कूठ, सोंठ, भारंगी, छोटी कटेरी, बच, नीम की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, पटोलपत्र, कुटकी, मूर्वा, वायविडंग, विजयसार, साल (सखुआ), शतावर, त्रायमाणा, गोरखमुण्डी, इंद्रजौ, वासा, बाकुची, अमलतास का गूदा, शाखोटक, बकायन की छाल, करंज, अतीस, खस, इंद्रायण की जड़, धमासा, अनंतमूल, पित्तपापड़ा- ये प्रत्येक द्रव्य १४ तोला, ३ माशे लेकर जौकुट करके ६४ सेर जल में पकायें, १६ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् इसमें गुड़ ६.२५० सेर, धाय के फूल १० छटाँक डालकर आसवारिष्ट संधान-विधि से एक माह तक संधान करें। एक मास पश्चात् निकाल कर छान लें और सुरक्षित रखें। (सि.यो.सं. के महामंजिष्ठादि कषाय का आसवारिष्ट-विधि से निर्मित)

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का पथ्य-पालनपूर्वक कुछ समय तक निरन्तर सेवन करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त कठिन वातरक्त रोग, अर्दित, मेदवृद्धि और समस्त प्रकार के कठिन श्लीपद (फील-पाँव) रोग नष्ट होते हैं। यह रक्त शुद्धि के लिए सर्व-प्रसिद्ध परम लाभकारी औषधि है। उपदंश एवं सूजाक रोग के कारण उत्पन्न हुई रक्त-शुद्धि के लिए सर्व प्रसिद्ध परम लाभकारी औषधि है। उपदंश एवं सूजाक रोग के कारण उत्पन्न हुई रक्त-दृष्टि में भी इस क्वाथ का अपूर्व चमत्कारी प्रभाव होता है। सभी प्रकार के फोड़ा-फुंसी, खाज-खुजली, दाद आदि त्वचा सम्बन्धी विकारों में अतीव श्रेष्ठ गुणदायी है। दोष और दूष्य शोधक और शामक महौषधि है।

महारास्नादि क्वाथ (प्रवाही)

रास्ना पत्ती ५ सेर ५ छटाँक १ तोला ८ माशे, धमासा, वलामूला, एरण्डमूल, देवदारु, कपूर, बच, वाँसा, सोंठ, हरड़, नागरमोथा, पुनर्नवामूल, गिलोय, विधारा, सौंफ, गोखरु, असगंध, अतीस, अमलतास का गूदा, शतावर, पीपल, पियावांसा, धनिया, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी-ये प्रत्येक १ तोला ३ माशे लेकर जौकुट चूर्ण करके ६४ सेर जल में पकायें, १६ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् गुड़ ६.२५० सेर, धाय के फूल एक माह पश्चात् निकालकर छान लें और सुरक्षित रखें। (शारंगधर संहिता का योग आसावारिष्ट-विधि से निर्मित)

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला तक इस क्वाथ को समान भाग जल मिलाकर सुबह-शाम भोजन के बाद पीपल चूर्ण २ माशा या महायोगराज गुग्गुल या योगराज गुग्गुल या अजमोदादि चूर्ण के साथ दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का किसी औषधि के साथ अनुपान रूप में या अकेले ही रोगानुसार अपचित प्रक्षेप के साथ पथ्यपूर्वक सेवन करने से सर्वांगवात, कम्पवात, कुब्जता (कुबड़ापन), पक्षाघात (लकवा), अपबाहुक, गृध्रसी, कठिन आमवात रोग, दुष्ट श्लीपद (फीलपाँव), रोग अपतानक, अन्त्रवृद्धि, आध्मान, जंघागत और जानुगत वात, कठिन अर्दित रोग, शुक्रदोष, बंध्यत्व दोष, योनिरोग आदि विकार शीघ्र एवं समूल नष्ट होते हैं। मेदोवृद्धि विशेषतः

स्त्रियों की मेदवृद्धि को नष्ट करता हैं।

महासुदर्शन काढ़ा (प्रवाही)

हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कचूर, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, पीपलामूल, मुर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाणा (वनप्सा), नेत्रबाला (खश), अतजवायन, इंद्रजौ, भारंगी, सहिजना बी, शुद्ध फिटकरी, बच, दालचीनी, कमल के फूल, उशीर (खश), चंदन सफेद (नेत्रबाला), अतीस, बलामूल, शालपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रकमूल छाल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, कालमेघ, करंज की मींगी, लौंग, वंशलोचन, कमल फूल, काकोली, तेजपात, जावित्री, तालिसपत्र- ये प्रत्येक द्रव्य ८ तोला ८ माशे ४ रत्ती लें और चिरायता २ सेर १० छटांक ३ तोला ४ माशे लेकर सबको मिलाकर जौकुट करके ६४ सेर पानी में पकावें १६ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। पश्चात् इसमें गुड़ ६.२५० सेर एवं धाय के फूल १० छटांक डालकर आसवारिष्ट संधान विधि के अनुसार १ माह तक संधान करें। एक माह के बाद निकालकर छान लें और सुरक्षित रखें। (सि.यो.सं. के महासुदर्शन चूर्ण का योग आसवारिष्ट विधि से निर्मित)

मात्रा और अनुपान- १ से २ तोला सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इस क्वाथ का प्रयोग करने से नवीन या पुराने ज्वर, एकदोषज, द्विदोषज, धातुगत, त्रिदोषज, सन्निपात ज्वर, शीत ज्वर, विषमज्वर, आदि सभी प्रकार के ज्वरों को समूल नष्ट करता है। मन्दाग्नि, अजीर्ण, निर्बलता, सिर-दर्द, कास, पाण्डु, हृद्रोग, कामला, कटिशूल आदि विकारों को नष्ट करता है। इस क्वाथ का ज्वर हो जाने की दशा में उतारने के लिये और ज्वर आने के समय से पूर्व ज्वर रोकने के लिये उत्कृष्ट प्रयोग होता है और यह क्वाथ ज्वर से पीड़ित पुरुष और स्त्री (चाहे वह सगर्भा या प्रसूता हो) बालक, युवा और वृद्ध सबको निर्भयतापूर्वक दिया जा सकता है और सबको समान रूप से उत्तम लाभ करता हे। इस क्वाथ का क्वीनीन के कारण अटके (रूके) हुए ज्वर पर विशेष प्रभाव होता है। रस-रक्तादि सप्त धातुगत जीर्ण ज्वर के कारण अथवा अल्पदोष के कारण मन्द-मन्द ज्वर रहता है अथवा कभी-कभी दोष-प्रकोप बढ़कर ज्वर का वेग अधिक बढ़ जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में इस क्वाथ को १-१ तोला की मात्रा में दिन-रात में चार पाँच बार पिलाने से कुछ की समय में बड़ा उत्तम लाभ होता है। दोष और दूष्यों का शोधन कर ज्वर को समूल नष्ट करने में उत्कृष्ट गुणकारी सुप्रसिद्ध योग है।

बालन्त काढ़ा नं. १

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोओी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरु, बेलगिरी, अरणी, सोनपाठा, गम्भारी, पाढ़ल- ये प्रत्येक १२ छटाँक ४ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करें और इसको ६४ सेर जल में पकावें। १६ सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें। इसमें गुड़ ६.२५० सेर, धाय के फूल १० छटाँक मिलाकर आसवारिष्ट-संधान विधि से तैयार करें।

मात्रा और अनुपान- १.५ से २ तोला सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- प्रसूता स्त्री के लिए इस क्वाथ को प्रसव के १० दिन बाद से सेवन कराना विशेष लाभकारी है। इसके सेवन से प्रसूता को होने वाले रोग- ज्वर, कास, अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अजीर्ण, अफरा एवं दूषित रक्त के रुकने से होने वाले सभी उपद्रव नष्ट होते

हैं। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकार के शूल, श्वास, कास, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, धनुर्वात, शिर:शूलादि विकारों को नष्ट करता है। बिना किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हुए भी प्रसूता को इसे पिलाना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भाशय एवं प्रजननकारी अंगों की शक्ति बढ़ती है एवं स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

बालन्त काढ़ा नं. २

देवदारु, बच, कूठ(पुष्करमूल), पीपल, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियाँ, हरड़, गजपीपल, दु:स्पर्शा (जवासा), गोखरु, धमासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी, काला जीरा-प्रत्येक ३२-३२ तोला लेकर जौकुट कर १२८ सेर जल में पकावें, १६ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लें। फिर इसमें गुड़ ६.२५० सेर, धाय के फूल १० छटाँक मिलाकर आसवारिष्ट संधान विधि के अनुसार १ माह तक संधान करें। एक माह के बाद निकापकर छानकर सुरक्षित रख लें।

मात्रा और अनुपान- आधा तोला से १ तोला, सुबह-शाम भोजन के बाद समान भाग जल मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- प्रसूता स्त्री के लिए इस क्वाथ को प्रसव होने के १० दिन बाद से सेवन कराना विशेष लाभकारी है। इसके सेवन से प्रसूता स्त्री को होने वाले रोग जैसे ज्वर, कास, अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अजीर्ण, अफरा एवं दूषित रक्त के रुकने से होने वाले सभी उपद्रव नष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त समस्त प्रकार के शूल, श्वास, कास, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, धनुर्वात और शिर:शूलादि विकारों को नष्ट करता है। बिना किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हुए भी प्रसूता को इसे पिलाना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भाशय एवं प्रजननकारी अंगों की शक्ति बढ़ती है एवं स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

वक्तव्य- यह आयुर्वेद शास्त्र के देवदार्वादि क्वाथ का सुप्रसिद्ध योग है। महाराष्ट्र की अनेक फार्मेसियों आसवारिष्ट-संधान-विधि से बनाकर बालान्त काढ़ा नं. २ के नाम से व्यवहार करती है। महाराष्ट्र की जनता में इस नाम से इसका व्यापक प्रचार है एवं प्रसव के दस दिन बाद में इससे सेवन करने का आम रिवाज है।

बालकडू

सौंफ, सौंफ की जड़, वायविडंग, अमलतास का गूदा, सनाय पत्ती, छोटी हरड़, बड़ी हरड़, बच, अंजीर, अजवायन, गुलाब फूल, ढाक के बीज, मुनक्का, उन्नाव, शुद्ध टंकण ये प्रत्येक द्रव्य- १-१ सेर लेकर १२० सेर जल में पकावें। ३० सेर जल शेष रहने पर उतारकर छान लें, फिर इसमें गुड़ ११ सेर ११.५ छटाँक और धाय के फूल १ सेर २.७५० छटाँक डालकर आसवारिष्ट सन्धान-विधि से एक मास तक संधान करें। एक माह के बाद छान कर सुरक्षित रखें।

मात्रा और अनुपान- जितने माह का बच्चा हो, उतनी बूँद माता के दूध में या सुषुम जल में मिलाकर दें।

गुण और उपयोग- इसके सेवन से बच्चों को होने वाले रोग सर्दी, जुकाम, अतिसार, ज्वर, वमन, कफ, खाँसी, अजीर्ण, कब्ज, दूध न पचना, पेट में शूल चलना, पेट में अफरा होना, कृमिरोग, दाँत निकलते समय होने वाले विकार आदि शीघ्र नष्ट होते हैं। बिना किसी प्रकार का विकार हुए भी बच्चों को इसे नियमित रूप से सेवन कराने से किसी रोग की संभावना नहीं रहती। बच्चे हृष्ट-पुष्ट, तन्दुरुस्त, हंसमुख बने रहते हैं। बच्चों के लिए यह अमृततुल्य गुणकारी महौषधि है।

मरहम (मलहम) प्रकरण

जो व्रण (घाव) तैल, घृत आदि लगाने से अच्छे नहीं होते, अथवा जहाँ पर तैल, घृत आदि पतले-चिकने द्रव्य पर देर तक नहीं रह पाते, वहाँ पर मलहम लगाया जाता है। ये मलहम कई तरह के होते हैं और उनके क्रम भी अनेक प्रकार के हैं। कोई तो तैल घृत आदि स्निग्ध पदार्थ डालकर कुछ-कुछ गाढ़ा बनाया जाता है, तो कोई बिल्कुल गाढ़ा बनाया जाता है। कोई आग पर रख कर तैयार किया जाता है, तो कोई बिना आग के, पानी के द्वारा तैयार किया जाता है। व्रण में भी दोनों के भेद रहते हैं। पानी के द्वारा बनाया गया शीतल, ठण्डा और व्रणरोपक होता है तथा अग्नि-संस्कार द्वारा बनाया हुआ, कुछ उष्ण-प्रधान और व्रण शोधक होता है।

लगाने की विधि- खुजली और दाद पर मलहम लगाना हो तो उस जगह नीम के पत्ते डालकर उबाले हुए पानी से अच्छी तरह धोकर खादी के तौलिये से (सफेद मुलायम कपड़े से) पोंछकर दाद या खुजली पर थोड़ा-थोड़ा मलहम लगा, धीरे-धीरे हाथ की अंगुलियों से मलते रहें। इस तरह कम-से-कम १५-२० मिनट तक मलने से मलहम भीतर प्रवेश करके कीटाणुओं को मार देता है और खुजली भी अच्छी हो जाती है।

घाव धोने की तरकीब-गहरे घाव, जैसे नासूर (नाड़ीव्रण) और कारबंकल (पीठिया घाव) आदि का मवाद धोकर निकाल डालने के लिये नीचे लिखी तरकीब काम मे लायें।

नीम के पत्तों को पानी में डाल कर गरम कर लें। इस पानी से दो बार घाव को धोकर साफ करें और सूख जाने पर टिंचर आयोडिन डाल कर कपड़ा बाँध दें। यदि घाव गहरा हो, तो एडोफार्म की रूई दबा कर बाँध दें। पुराने और सड़े हुए तथा फैलने वाले घाव को गरम पानी में जरा-सा पौटेशियम परमैंगनेट डालकर दोनों समय साफ करना बहुत लाभदायक है। फिर मलहम या व्रणराक्षस तैल या महामरिच्यादि तैल आदि तैल का फाया या मुलायम कपड़े (लिंट) की बत्ती मलहम में भिंगों कर उसमें भरना चाहिए। ऐसा करने पर घाव बहुत जल्दी भीतर से अच्छा होने लगता है।

मलहम पट्टी- कपड़े की पट्टी के बीच में छेद करके, उस पर मलहम लगाकर व्रण का मवाद बाहर निकलता रहता है। कुछ मलहम चिपकने वाले होते हैं। उनको मोटे कपडे की गोलाकार कागली (कवलिका) काटकर एवं उसके बीच में छेद कर मलहम को आग पर गरम करके पिघलाकर उस गोल कागली पर लगाकर फोड़े पर चिपका देना चाहिए। इससे या तो फोड़ा बैठ जाता है या पककर फूट जाता है। मुम्बई की काली कागली वाला सिट्टेदार मलहम प्रसिद्ध है। बिरोजा के मलहम की कागली भी व्रणशोधन और रोपण में उत्तम गुणकारी है।

सावधानी- घाव पर पट्टी लगाने के बाद कम-से-कम दो घण्टे तक आराम से एक जगह लेटे रहें। कहीं भी घूमने-फिरने न जायें। ऐसा करने से मलहम का पूरा गुण घाव पर होता है।

कुछ मलहम ऐसे भी होते हैं, जो अशुद्ध पारद, विष आदि मिलायें जाने के कारण विषाक्त होते हैं। इन मलहमों को लगा कर हाथों को साबुन या मिट्टी से अच्छी तरह धो लें। बगैर धोये हाथ यदि भूल से आँख में लग जाये और आँख में आँसू ज्यादा निकलने लगे, तो आँख में गौ का घी डालें। जब तक विष-भाग दूर न हो जाये, तब तक बराबर घी डालते रहें।

संयोगवश यदि कहीं विषादि मिश्रित मरहम पेट में चला जाय, तो रोगी को वमन-विरेचनादि दवा देकर पेट साफ करा देना चाहिए।

उपदंशहर मलहम

कज्जली १ तोला को तुलसी पत्र के रस में १ दिन घोंट कर खुश्क बना लें फिर तूतिया २ माशा, खुरासानी अजवायन, अकरकरा, वायविडंग, सतबहरोजा, मेढ़ासिंगी, कपूर, इलायची के दाने, तजकलमी, शीतलचीनी-इन ९ औषधियों को १-१ तोला लें। कूट-कपड़छन चूर्ण बना, एक हजार बार बासी पानी से धोए हुए गाय के नवनीत (मक्खन) १८ तोला में मिलाकर डब्बे में रख लें।

गुण और उपयोग- उपदंश के घाव, उपदंश से होने वाले मुँह के छाले, शरीर में छोटे-बड़े उत्पन्न चकत्ते, जलन आदि उपदंश सम्बन्धी उपद्रवों को यह बहुत शीघ्र शमन करता है।

गरमी अर्थात् उपदंश, आतशक के कारण जननेन्द्रिय के ऊपर या भीतर चट्टे पड़ना, उनमें से मवाद बहना, दर्द होना आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। जननेन्द्रिय पर शोथ हो जाता है। फिर जननेन्द्रिय के मुण्ड पर से चमड़ी इधर-उधर नहीं हो पाती और भीतर ही भीतर घाव सड़ने लगता तथा मवाद बाहर आने लग जाता है। ऐसी अवस्था में इस मरहम को दिन-रात में दो-तीन बार मल करके लगाना बहुत गुणदायक है। इससे जलन पैदा न होकर ठण्डक पहुँचती है। यह मरहम तर खुजली के लिए भी अच्छी है।

काला मलहम

एक सेर शुद्ध तिल का तैल लेकर उसे एक बड़ी कड़ाही में गरम करें। तैल धुआँ छोड़ने लगे तब उसमें आधा सेर सिन्दूर डालकर लोहे की कलछी से हिलाते रहें। हिलाते समय बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। एक ओर मिश्रण के छींटे उड़ते हैं, उनसे बचने की आवश्यकता होती है। दूसरी और मलहम में उफान आता है, उसे न सँभाला जाये तो वह चूल्हे में जा गिरता है और उसके जलने से बड़ा भभका होता है। जब मिश्रण का रंग काला हो जाये तब कलछी से मिश्रण की दो-चार बूँदे जलभरे कटोरें में डालें, और देखें कि गोली बनती है या नहीं। मलहम कच्चा होगा तो पानी में उसके कण अलग-अलग रहेंगे, उसकी गोली न बन सकेगी। वह पट्टी के काम का न होने से उसे और पकाना होगा, जब तक गोली बनने योग्य हो जाये। मलहम की बूँद यदि पानी में डूब जाये तो समझें कि पाक अधिक (खरपाक) हो गया है। यह मलहम भी काम का न होगा। मलहम पानी में डालने से डूबे नहीं, और गोली बनने योग्य हो जाये तो इसे उतारकर उसमें १ तोला कपूर और आधा सूक्ष्म पीसा हुआ नीलाथोथा मिलाकर कुछ गरम रहने पर डिब्बे में भरकर रखें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- समस्त प्रकार के कठिन व्रणों में इस मलहम की मोटे कपड़े पर पट्टी बनाकर लगाने से संचित पीब (मवाद) निकल जाता है, और आगे बनना बंद हो जाता है, इस प्रकार व्रण भर जाता है। यह मलहम उत्तम व्रणशोधक और व्रणरोपक हैं।

खाज का मलहम

पारा, गन्धक, सफेद जीरा, स्याह जीरा, कालहमिर्च, हल्दी, दारुहल्दी, सिन्दूर मैनसिल-प्रत्येक ३-३ माशे लें। प्रथम पारा और गन्धक की कज्जली बनावें, बाद में शेष दवाओं का कपड़छन चूर्ण बना कर कज्जली के साथ घोंटे, जब अच्छी तरह मिल जाये, तब ५ तोला गाय का घृत मिलाकर २ रोज तक घोंटते रहें। मलहम-सा बन जाने पर उसे चौड़े मुँह की शीशी में रख लें।

गुण और उपयोग- मलहम लगाने से पहले नीम के साबुन या कार्बोलिक साबुन से धोकर

यह मलहम लगाना चाहिए।

यह मलहम सब प्रकार की खुजली (तर-सुखी) में गुण करता है। इस मलहम को घाव पर धीरे-धीरे मलने से जलन कम होती है। किसी नस के ऊपर खुजली के फोड़े हो जाने से नस तन जाती है तथा उसमें दर्द होने लगता है। इस मरहम को लगाने से फोड़े मुलायम हो जाते हैं और नसें भी मुलायम हो जाती हैं। फिर दर्द वगैरह आप ही आप बन्द हो जाता है। उपदंश (गर्मी) से होनेवाले चट्टे पर भी इस मलहम को लगाने से अच्छा फायदा होता है।

गुलाबी मलहम

१०० बार धोया हुआ घी १० तोला, पुष्पाञ्जन (सफेद जिंक ऑक्साईड) १ तोला, सिन्दूर १ तोला, रस कपूर ६ माशा, कपूर १ तोला, चन्दन का तैल १ तोला-सब को एकत्र घोंट-मिला कर काँच के पात्र में भर लें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- इस मलहम के उपयोग से खाज, खुजली, आग से जला हुआ घाव और बवासीर के मस्से अच्छे होते हैं। वेदना और जलन की भी शान्ति होती है।

घाव का उत्तम मलहम

मुरदाशंख, सुहागा, तूतिया, कत्था, कबीला, कालीमिर्च, अजवायन-ये ७ चीजें ३-३ तोला, कपूर ९ माशे, सफेद काजल जो (जयपुर में बहुत मिलता है)१.५ तोला, सुपारी नग ४, पीली कौड़ी नग ४ लें। इनमें से कालीमिर्च, अजवायन और सुपारी-इन तीनों को अधजली कर लें और पीली कौड़ी का भस्म बना लें। फिर सब का कपड़छन चूर्ण करके गाय के घी में मिलाकर रख लें।-आरोग्यप्रकाश

गुण और उपयोग- यह मलहम सब तरह के घावों में फायदा करता है। नीम के पत्तों के पानी से घावों को अच्छी तरह धोकर दिन भर में २ बार इस मलहम को लगायें इससे सड़े-पुराने घाव भी अच्छे हो जाते हैं।

चर्मरोगनाशक मलहम

कसीस, हरिताल, वायविडंग, कूठ (पुष्करमूल), सिन्दूर, नीम के पत्ते, मंजीठ, लोध, हल्दी, मैनसिल, गूगल, नीलाथोथा, राल, करंज, महुआ की छाल, पद्माख, दारुहल्दी, कबीला, मोम, सरसों, लालचन्दन (नेत्रबाला), अनंतमूल, जटामांसी, पमार के बीज, मोथा, गन्धक, काली मिर्च, रसौत, खैर, बच, सिरस, हरड़- प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बना, १.५ सेर घृत (गो-घृत हो तो अच्छा) मिलाकर ताँबे के बर्तन में रख कर ७ दिन तक धूप में रखें, आठवें दिन खूब अच्छी तरह उसे घोंट कर, काँच के बर्तन में सुरक्षित रख लें।-ध.

गुण और उपयोग- इस मलहम के लगाने से छोटी-छोटी फुंन्सियाँ जो अक्सर खुजलाती रहती या खुजलाने पर फट कर बहने लगती और फिर दूसरी जगह उत्पन्न हो जाती हैं, फोड़े, पुराने और सड़े गले व्रण, दाद, खाज, नासूर, भगन्दर, अपरस (छाजन) आदि अनेक तरह के व्रणादि अच्छे होते हैं।

जीवन्त्यादि मलहम

जीवन्ती (गुजराती-दोड़ी का शाक) के मूल, मंजीठ, दारुहल्दी और कबीला- प्रत्येक का कपड़छन चूर्ण ४-४ तोला और नीलाथोथा का महीन किया हुआ चूर्ण १ तोला-इनको जल में पीसकर कल्क करें, पीछे उसमें तिल का तेल ३२ तोला, गाय का घी ३२ तोला, गाय का दूध

६४ तोला और पानी २५६ तोला मिला कर स्नेहपाक-विधि से पकायें। जब स्नेह सिद्ध हो जाये, तब उसको कपड़े से छान, थोड़ा गरम करके उसमें राल का चूर्ण ८ तोला और मोम ८ तोला मिला, कपड़े से छानकर काँच के बर्तन या चीनीमिट्टी के पात्र में भरकर ऊपर से चार अंगुल ठंडा जल भर सुरक्षित स्थान में रख दें। इस जल को चार दिन के बाद बदलते रहें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- बिना धोये इस मलहम को हाथ-पाँव के तलवे फटने और पाँव की अंगुलियों के बीच के हिस्से पकने पर लगायें। धोये हुए मरहम को आग से जले हुए घाव, खुजली, खाज और बवासीर के मस्सों पर लगायें।

नासूरनाशक मलहम

चुना-पत्थर (खानेवाला) का टुकड़ा १ सेर २ पाव लेकर १ सेर २ पाव भर तिल्ली के तेल में डाल कर खूब घुटाई करें। जब मलहम जैसा बन जाय तो इसको डिब्बे में भर कर रख लें। -ध.

गुण और उपयोग- आवश्यकता पड़ने पर नासूर के मुख पर लगाकर ऊपर से आक के पत्ते बांध दें। तीन दिन तक पट्टी वैसी ही बँधी रहने दें, तीन दिन के बाद पट्टी खोलने पर नासूर (नासूर-घाव) के अन्दर एक पतला डोरा रहता है, यही इस घाव में प्रधान उपद्रव कारक है। इसके निकल जाने पर घाव बहुत जल्द भर जाता है, यही (डोरा) भीतर से आकर बाहर निकल जाता है। इसमें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती है। प्रायः एक ही पट्टी में यह कार्य हो जाता है। यदि कुछ बचा रह जाय, तो तीन दिन के बाद फिर दूसरी पट्टी बाँध दें, परन्तु जब तक पट्टी बँधी रहे, स्नान करना निषिद्ध है।

न्यूमोनियाहर मलहम

घृत ५ तोला और मोम २ तोला को आग पर गरम करके उतार लें, फिर इसमें कपूर, सत्व-अजवाइन, पिपरमेण्ट-प्रत्येक ३-३ माशे, दालचीनी का तैल १५ बूँद, लौंग का तैल १५ बूँद खूब मिला कर शीशी में रख लें। -ध.

गुण और उपयोग- इस मलहम को लगाने से पहले १सेर २पाव तारपीन के तैल में ६ माशे कपूर और ३ माशे अफीम मिला कर, इस तैल की मालिश करके थोड़ा सेंक भी कर दें, पश्चात् धीरे-धीरे इस मलहम को लगा कर मालिश करके एरण्ड-पत्र गरम करके पसली, छाती आदि में चिपकाकर ऊपर गरम रुई रख कर, कपड़े से बाँध दें। इस प्रकार दिन भर में दो-तीन बार इस दवा का उपयोग करें। इससे पसली और छाती में न्यूमोनिया से होने वाली पीड़ा में लाभ होता है। इसके अतिरित सिर-दर्द में भी यह फायदा करता है।

नेत्ररोगहर मलहम

फिटकरी की खील ३ माशे, अफीम ३ रत्ती, नीम की पत्ती की राख ३ माशा, गौ का पुराना घृत १.५ तोला-सबको एकत्र मिलाकर काँसे की थाली में काँसे के कटोरे से घिस कर मलहम बना, डिब्बी में रख लें।-ध.

गुण और उपयोग- छोटे-छोटे बच्चों की अक्सर आँखे आ जाती हैं, आँख आना, चाहे बच्चा हो या बड़ा, सबके लिये दुःखदायी है। इस मरहम से आई हुई आँखें (विशेष कर बच्चों की) बहुत शीघ्र अच्छी हो जाती है।

बिरोजे का लाल मलहम

गन्धाबिरोजा ४० तोला हिंगुल (सिंगरफ) १ तोला लें। प्रथम गन्धाबिरोजा को मन्दाग्नि में रख कर पिघलावे, बीच-बीच में उसको एक-दो बूँद, चम्मच या चाकू से जल भरे पात्र में डाल, दो अंगुलियों से दबा कर देखते रहें कि मलहम बनाने योग्य हुआ या नहीं। जब मलहम बनाने योग्य हो जाये, तब कपड़े से छान, उसमें महीन पीसा हुआ सिंगरफ का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा करके डालते जाएँ और तब तक हिलाते रहें, जब तक कि मलहम ठंडा न हो जाये। यदि इस प्रकार हिलाया न जायेगा, तो सिंगरफ भारी होने से नीचे बैठ जायेगा।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- यह मलहम शोधन (व्रणों को शुद्ध करनेवाला) रोपण (व्रणों को भरने वाला) तथा वेदना (पीड़ा) नाशक और प्लीहा की वृद्धि को दूर करने वाला है। पार्श्वशूल (पसली का दर्द) या अन्य स्थानों के दर्द में भी इससे बहुत लाभ होता है।

इसके प्रयोग के लिए व्रण, प्लीहा या जहाँ शूल (दर्द) हो उस स्थान के बराबर मोटे कपड़े की पट्टी काटकर, एक चाकू गरम कर, उस पर मलहम लेकर पट्टी पर फैलाते जाएँ। पट्टी तैयार होने पर उसे जहाँ लगाना हो वहाँ लगा दें। लगाने से पूर्व उस्तरे से बाल उतार लेना चाहिए। अन्यथा पट्टी निकालते समय पट्टी के साथ बाल खिचेंगे। पट्टी उखाडते समय यदि बाल खिंचे तो कुछ बूँद तारपीन का तैल पट्टी के किनारे को जरा उखाड़ कर अन्दर डाले, उससे आसानी से उतर जायेगी।

महात्माजी का मलहम

उत्तम राल १० तोले का महीन चूर्ण करें और ६ माशे पारा को २.५ तोला तूतिया के महीन चूर्ण के साथ खूब घोंटकर राल के चूर्ण में मिला दें, फिर घी डालकर पत्थर की लोंढ़ी-शिल पर भांग की तरह ६ घण्टे तक घोंटे। (घी अन्दाज से डालें, जिससे दवा रोटी बनाने के जल मिले आटे की तरह हो जाये)। घोटने के लिए मजबूत आदमी चाहिए, क्योंकि मलहम पत्थर से बहुत चिपक जाता है। मलहम तैयार होने पर उसे टीन के डिब्बे में भर दें।

गुण और उपयोग- इस मलहम को जिस फोड़े पर लगाना हो, पहले कपड़े की गोलाकार उतनी ही बड़ी पट्टी काट लें, बीच में जरा-सा छेद रहने दें। फिर मलहम को उस कपड़े पर लगा कर आग की सहायता से जरा तपा कर फोड़े पर चिपका दें। इससे फोड़ा बहुत जल्दी पककर बह जायेगा। यदि मामूली सूजन होगी, तो वह भी बैठ जायेगी। यह बहुत चमत्कारी मलहम है।

शीतल मलहम

सफेद कत्था ४ तोला, कपूर २ तोला, सिन्दूर १ तोला, गौ-घृत २० तोला लें। पहले कत्था और कपूर को अलग-अलग पीस कर महीन कपड़े से छान लें। फिर कांसे की थाली में १०८ बार धुला हुआ गौर का घी लेकर उसमें कत्था और सिन्दूर मिला, फेंट कर रख लें।

गुण और उपयोग- इसमें लगाने से गीली खुजली की फुन्सियाँ तत्काल फूट जाती है, और बार-बार इसी को कुछ रोज तक लगाने से आराम हो कर सूख जाती है। फोड़े, फुन्सी, जले हुए घाव आदि भी इससे अच्छे होते हैं।

श्वेत मलहम

१६ तोला तिल का तेल लेकर उसे मन्द आंच पर रखें। उसमें से जब धुआँ निकलने लगे, तब ४ तोला राल का चूर्ण और तीन माशा सूक्ष्म पिसा हुआ तूतिया उसमें डाल कर तेल को नीचे

उतार लें। राल तेल में घुल जाने पर उसे कपड़े से छान, एक थाली में डाल कर ठण्डा होने दें। ठण्डा होने पर उसमें थोड़ा-थोड़ा पानी मिलाते जाएं और हाथ से मसलते जाएं। थोड़ी-थोड़ी देर पर पानी बदलते जाएं। जब मलहम सफेद रंग का हो जाये तब उसे कांच के पात्र में भर कर ऊपर से थोड़ा-थोड़ा पानी डाल, बन्द कर रख दें। पानी तीसरे दिन पर बदलते रहें, अन्यथा मलहम काला हो जाएगा। पानी नहीं डालने से मलहम खुश्क हो जायेगा।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- बच्चों की गुदा और मूत्रेन्द्रिय के आस-पास के स्थान की सूजन और पाक में तथा अन्यत्र भी फोड़े, फुन्सी, बवासीर, अग्निदग्ध आदि में इससे बहुत फायदा होता है।

हरा मलहम

गन्धाबिरोजा ४० तोला, जंगाल २ तोला, साबुन २ तोला, पापड़खार ३ तोला और पत्थर का कोयला २ तोला लें। प्रथम गन्धाबिरोजा को धीमी आँच पर पिघला लें। पिघला कर मलहम बनने योग्य हो जाने पर उसे कपड़े से छान लें। फिर अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलायें और ठण्डा होने तक हिलाते रहें।-सि.यो.सं.

गुण और उपयोग- यह मलहम व्रणों का शोधन करने वाला तथा फोड़े को पकाकर फोड़ने वाला (बिदारक) है। यदि व्रणशोथ पक जाने पर भी न फूटता हो, तो इसकी पट्टी लगाने से जल्द फूट कर मवाद बह जाता है।

शरीर में रक्त-विकार के कारण छोटी-छोटी फुन्सियाँ और बड़े-बड़े फोड़े हो जाते हैं। कभी-कभी तो वे पककर बह जाते हैं और कभी घाव का आकार धारण कर लेते हैं। चोट लगने, कट जाने या जल जाने आदि से भी घाव हो जाते हैं। उपयुक्त उपचार न होने के कारण घाव नासूर-नाड़ीव्रण का रूप धारण कर लेता है। प्राकृतिक नियम है कि मवाद (पूय) जिस स्थान में उत्पन्न होता है, यदि उस स्थान को साफ न रखा जाय तो आसपास में सड़न पैदा कर देता है। भीतर-ही-भीतर जब सड़न बहुत फैल जाती है, तब नासूर (नाड़ीव्रण) होता है। इसमें यह मलहम बहुत गुण करता है।

एक तरह का भयानक फोड़ा पीठ पर होता है, उसे "अदृष्ट-व्रण" या "कारबंकल" कहते है। यह बत्तक के अण्डे जैसा या सन्तरे जैसा होता है, और यह घाव ४० वर्ष की अवस्था के बाद होता है। मधुमेह वाले रोगी को यह घाव होने से प्रायः मृत्यु हो जाती है। इसके लिये भी यह मलहम बहुत लाभदायक है।

❖❖❖

-इति-

बैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन

यह कारखाना केवल औषधि निर्माता ही नहीं है, बल्कि शुद्ध अर्थ में यह एक आयुर्वेदीय संस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य है भारतीय चिकित्सा पद्धति- आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार और उसके स्वाभाविक मानव-कल्याणकारी गुणों, उसकी विशेषताओं और चिकित्सा-प्रणाली की श्रेष्ठता की जानकारी जनता को देना। औषध और ग्रन्थ, दोनों इसके साधन हैं, इसलिये एक ओर जहां यह उत्तमोत्तम औषध निर्माण द्वारा आयुर्वेद की विशेषता को प्रमाणित करने की चेष्टा करता है, वहीं दूसरी ओर इसके उत्तमोत्तम और प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रकाशन का समुचित प्रबन्ध भी करता है। राजकीय शिक्षा संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों ने इसके अनेक ग्रन्थों को अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकों में प्रमुख स्थान दिया है। पुस्तकों के मूल्यनिर्धारण में सर्वसामान्य की क्रय-शक्ति का पूरा विचार रखकर इन्हें लागत मात्र कीमत पर बेचने का प्रबन्ध होता है। हमारे आरोग्य प्रकाश को तो जनता ने इतना पसन्द किया है कि उसके २७ संस्करणों में तीन लाख से अधिक प्रतियाँ छपकर हाथों-हाथ बिक चुकी है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों के भी कई संस्करण छप चुके हैं।

१) **अभिनव शारीरम् (संस्कृत) प्रथम संस्करण**- लेखक : वैद्य पं. दामोदर शर्मा गौड़ ए.एम.एस.। शिक्षा में उच्चता तथा एकरुपता लाने वाला, शारीरशास्त्र का अभूतपूर्व ग्रन्थ है। अध्ययन तथा अध्यापन के लिए उचित पाठ्य पुस्तक है तथा शारीरशास्त्र का युगानुरूप तथा परिष्कृत प्रतिसंस्कार कहा जा सकता है। (पृष्ठ संख्या ५८२, चित्र संख्या ४००, रंगीन चित्र ११२:)

२) **अभिनव शारीर (हिन्दी) प्रथम संस्करण**- लेखक: वैद्य पं. दामोदर शर्मा गौड़ एम.ए.एस.शिक्षा में आदर्श प्रस्थापित करने वाला अद्‌भुत ग्रन्थ है। मूल संस्कृत में प्रकाशित ग्रंथ की सर्वाधिक उपादेयता को उसी प्रकार समाविष्ट करते हुए सभी के लिए सुलभ हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया गया है। इस ग्रंथ के संस्कृत संस्करण को पं. रामनारायण शर्मा रिसर्च ट्रस्ट द्वारा सर्वश्रेष्ठ मौलिक ग्रंथ होने के कारण एक लाख रुपयों का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। (पृष्ठ ६५०, चित्र सांदे २८६, रंगीत ४७)

(केन्द्रीय आयुर्वेदिक कौन्सिल द्वारा पाठ्य ग्रंथ के लिए मान्यता प्राप्त ग्रन्थ रत्न)

३) **अष्टांग-संग्रह (सुत्रस्थान) सर्वांग सुन्दर**-व्याख्या सहित (तृतीय संस्करण) व्याख्याकार: वैद्य पं. लालचन्द शास्त्री- श्रीमदवाग्भट्टाचार्य विरचित 'अष्टांग-संग्रह' आयुर्वेद की प्राचीन संहिताओं में सर्वोत्कृष्ट और प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें सूत्रस्थान बहुत महत्वपूर्ण है, इसलिए 'सूत्रस्थाने तु वाग्भट', यह सदुक्ति वैद्य विद्वानों के बीच प्रचलित है। सूत्र स्थान में कुल ४० अध्याय हैं। इन अध्यायों मे जो विषय प्रतिपादित हुए हैं, वे काय-चिकित्सकों की जानकारी के लिए अत्यावश्यक एवं उपयोगी हैं।

पृष्ठ संख्या ९१४

४) **अष्टांग-संग्रह (उत्तर स्थान)**- व्याख्याकार: वैद्य पं. लालचन्द शास्त्री अष्टांग संग्रह (उत्तरस्थान) में कुल ५० अध्याय हैं। १ से ६ तक बालरोग और उनकी चिकित्सा (कौमारतन्त्र) ७ से १० तक भूतबाधा, मानस रोग और उनका उपचार (भूत-तन्त्र) ११-२८ नेत्र-कर्ण-नासा -मुख शिरोवात (शालाक्य तंत्र) २९-३९ स्थावर विष-जंगमविष (विष-तन्त्र) ४९- रसायन अंग ५०-वाजीकरण अंग इन विषयों की विस्तृत विवेचना इस ग्रंथ में की गई है।

५) **अष्टांग-संग्रह (शारीर-निदान-चिकित्सा-कल्पसिद्ध-स्थान)** व्याख्याकार: वैद्य पं. लालचन्द शास्त्री-इसमें कुल ६० अध्याय है। शरीर स्थान १२ अध्यायों का, निदान स्थान १६

अध्यायों का, चिकित्सा स्थान १६ अध्यायों का, तथा कल्पसिद्ध स्थान ८ अध्यायों का है।

६)अष्टांग-संग्रह की वनौषधी एवं वर्गीकरण- लेखकः वैद्य मायारामजी उनियाल-पुस्तक में अष्टांग संग्रह की वनौषधियों के वर्गीकरण अकारादि क्रम एवं पर्यायवाची शब्द तथा लैटिन नामों के साथ दिया गया है। यह पुस्तक आयुर्वेद शोधकर्ताओं एवं वनस्पति अन्वेषकों एवं प्राध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

७) अम्लपित्त प्रकरण-(चतुर्थ संस्करण) लेखक आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदीः- श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लिमिटेड, द्वारा अखिल भारतीय संभाषण परिषद आयोजित की गई थी। इस परिषद में एक दिन अम्लपित्त के निदान और चिकित्सा पर जो अनुभव प्रकट किये गये वे इसमें प्रकाशित किये गये हैं। (पृष्ठ संख्या ८५)

८) अग्न्यतिसारग्रहणी- कोष्ठवातप्रकरणानि (प्रथम संस्करण) लेखक आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी- श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि. द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संभाषण परिषद में अग्नि, अतिसार, ग्रहणी एवं कोष्ठगत वात निदान और चिकित्सा पर प्रकट गिए गए अनुभव इसमें प्रकाशित हैं। (पृष्ठ संख्या ४३७)

९) आरोग्य प्रकाश (हिंदी) लेखक वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा, वैद्यशास्त्री (सत्ताईसवां संशोधित संस्करण) श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि. के संस्थापक एवं प्रधान संचालक ने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य समय पर हजारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध के विषयों को पढ़कर और तद्नुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला व्यक्ति भी बिना दवा के निरोग (तन्दुरूस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में पैदा होनेवाले सभी रोगों के कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि पर बड़ी ही सरल सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है जिसको विद्वान से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान रुप से लाभ उठा सकते हैं। (पृष्ठ संख्या ५४६)

१०) आरोग्य प्रकाश (मराठी)(२४ वां संस्करण) लेखक- वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि. के प्रबन्ध निर्देशक द्वारा लिखित प्रसिद्ध ग्रन्थ-रत्न का महाराष्ट्र की जनता भी लाभ ले सके इस उद्देश्य से भवन ने इस ग्रन्थ का मराठी संस्करण प्रस्तुत किया है। यह मराठी संस्करण भी हिन्दी संस्करण की भांति सचित्र है। (पृष्ठ संख्या ५६६)

११) आरोग्य प्रकाश (गुजराती)-(प्रथम संस्करण) लेखकः वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा, वैद्यशास्त्री श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि., के प्रबन्ध निर्देशक द्वारा लिखित इस पुस्तक का लाभ गुजराती भाषा भाषियों को भी प्राप्त हो इस हेतु से गुजराती संस्करण भी प्रकाशित किया गया है।

१२) आयुर्वेद क्रिया-शारीर (हिन्दी) संशोधित परिवर्धित (आठवा संस्करण) लेखकः वैद्य रणजितराय देसाई, सेवानिवृत्त प्राचार्य आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत, आयुर्वेदीय महाविद्यालयों के पाठ्य-पुस्तक के रूप में यह स्वीकृत हो चुका है। इसमें ४६ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के सप्त धातुओं के कार्य वात, पित्त, कफ का प्राकृत-वैकृत स्वरूप, कार्य और उनका स्थानसंश्रय गति प्रसार का प्राचीन अर्वाचीन मतों के साथ सुरूचिपूर्ण विवेचन है। इसे पढ़ लेने के बाद आयुर्वेद के विद्यार्थियों को 'हैलिबर्टन फिजियोलॉजी' खरीदने की जरुरत नहीं रह जाती। (पृष्ठ संख्या ९५७)

१३) आयुर्वेद-सार संग्रह (२२ वां संशोधित संस्करण)- राष्ट्रभाषा में ऐसी आयुर्वेदीय

पुस्तकों की बहुत कमी थी जिनमें रोग-विचार के साथ-साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का वितरण समझाकर सरल भाषा में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त इसमें औषध निर्माण-विधि तथा उनके गुणधर्म और प्रयोग विधि तथा पथ्यापथ्य के साथ सभी वैद्योपयोगी बातों का सविस्तर वर्णन सरल-हिन्दी भाषा में किया गया है। रस रसायन धातुओं के शोधन, अर्क आदि बनाने के यन्त्रों के चित्र भी दिये गये हैं, जिनको देखने से औषध निर्माताओं को काफी सुविधा होगी। (पृष्ठ संख्या ७४२)

१४) **आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान (पूर्वार्ध (पंचम संस्करण)** लेखक: आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य- इस ग्रन्थ का अध्ययन कर लेने के बाद निदान-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धान्त हस्तामलकवत् प्रतिभासित हो जाते हैं। (पृष्ठ संख्या १३२)

१५) **आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (उत्तरार्ध)(चतुर्थ संस्करण)**- लेखक: आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य- यह ग्रन्थ उपर्युक्त ग्रन्थ का उत्तरार्ध है। जिसकी प्रतीक्षा आयुर्वेद जगत को अनेक वर्षों से थी। यह ग्रन्थ ज्वर, महास्रोतगत रोग, उरोगत रोग, पाण्डुरोग, शोध, व्रण, विसर्प, भ्रम, निदान, गलगण्ड, गण्डमाला, कुष्ठ आदि १५ अध्यायों में समाप्त हुआ है। इसके प्रत्येक अध्याय में रोगों के लक्षण, निदान, चिकित्सा आदि पर सरल भाषा में पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया गया है। (पृष्ठ संख्या २८६)

१६) **आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान (चतुर्थ संस्करण)**-लेखक: वैद्य रणजितराय देसाई- आयुर्वेदीय 'पदार्थ विज्ञान' अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधारभुत है। अत: इसका अध्ययन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विशद् विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देने का सफल प्रयास किया गया है। (पृष्ठ संख्या २८८)

१७) **आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान (षष्ठम संस्करण)**- लेखक: सुप्रसिद्ध आयुर्वेद मनीषी ह.श्री.कस्तुरे यह ग्रन्थ पंचकर्म विषय पर प्रथम ही अनोखा वैशिष्टयपूर्ण ग्रन्थ है। स्नातकोत्तर शिक्षण तथा अन्वेषण में लगे हुए छात्रों को पथ प्रदर्शक के रूप में यह उपयुक्त सामग्री होगी। प्रत्यक्ष कर्म में जो वैद्य व्यवसाय में लगे हुए हैं उन्हें प्रत्यक्ष कर्मों की वैज्ञानिक पद्धति इस ग्रंथ से मिलती है। पंचकर्म पद्धति को पुनरुज्जीवित करने की दिशा में यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। (पृष्ठ संख्या ७१५)

१८) **आयुर्वेदीय हितोपदेश (सप्तम संस्करण)**-लेखक: वैद्य रणजितराय देसाई- आयुर्वेद के रहस्य-बोधन के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। प्राय: आयुर्वेदीय पाठयक्रम की प्रारम्भिक परीक्षाओं में संस्कृत भी एक अनिवार्य विषय रहता है, परन्तु इस का अध्ययन-अध्यापन संस्कृत साहित्य के पाठ्य ग्रन्थ हितोपदेश, पंचतन्त्र प्रभृति आयुर्वेदोतर विषयों के रूप में होता है। इसी दृष्टिकोन को सामने रखकर आयुव्रेदीय अध्ययन-अध्यापन के कार्य में दक्ष श्री रणजितराय देसाई ने 'आयुर्वेदीय हितोपदेश' नाम की इस पुस्तक का प्रणयन किया है। (पृष्ठ संख्या २९६)

१९) **औषधि विज्ञान शास्त्र (तृतीय संस्करण)**-लेखक: विश्वनाथजी द्विवेदी,(भू.पू. विभागाध्यक्ष- आयुर्वेद संस्कृत विश्व विद्यालय, काशी)-प्रस्तुत पुस्तक में नवीन पद्धति के आधार पर औषधि शास्त्र के बारे में बहुत ही सरल ढंग से अत्यन्त परिश्रम पूर्वक विषय स्पष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ पांच भागों (अध्यायों) में विभक्त है और इन भागों में निघण्टु, द्रव्यगुण शास्त्र, सैद्धान्तिक विवरण, सामान्य व विशिष्ट परिभाषा, कर्म विज्ञान, कार्मुक संज्ञाओं आदि का विस्तृत एवं सुबोध ढंग से वर्णन किया गया है। आयुर्वेद जगत में इस ग्रन्थ की बहुत दिनों से

प्रतीक्षा थी। इस ग्रन्थ में विद्वान लेखक के लम्बे अनुभवों का निचोड़ है। द्रव्य परिचय, स्वरूप, शरीर पर प्रभाव एवं चिकित्सा में उनका उपयोग आदि विषयों का खुलासा करने से वास्तव में लेखक ने औषधि विज्ञान शास्त्र को और भी सामने ला दिया है। (पृष्ठ संख्या ८३८)

२०) **आयुर्वेदीय औषध सेवनविधि (नवम संस्करण) (हिन्दी)**-भवन द्वारा निर्मित रस, भस्म, लौह, मण्डूर, बटी, पर्पटी, गुग्गुलु, चूर्ण, पाक, आसव, अरिष्ट, काढे एवं पेटेन्ट औषधियों के सेवन करने की विधि इसे छोटी किन्तु अतीव उपयोगी पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में समझाई गई है। सेवन विधि के अतिरिक्त औषधि के गुण-धर्म आदि भी दिये गये हैं। (पृष्ठ संख्या ११२)

२१) **आयुर्वेदीय औषध सेवनविधि (नवम् संस्करण) (मराठी)**- उक्त हिन्दी संस्करण का ही मराठी अनुवाद बहुत ही सरल मराठी भाषा में किया गया है। (पृष्ठ संख्या ११२)

२२) **आयुर्वेदीय औषध सेवनविधि (द्वितीय संस्करण) (गुजराती)**- उक्त हिन्दी संस्करण का गुजराती अनुवाद बहुत ही सरल गुजराती भाषा में किया गया है। (पृष्ठ संख्या १४०)

२३) **आत्ययिक चिकित्सा (द्वितीय संस्करण) लेखक** - आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी-आयुर्वेद में आत्ययिक चिकित्सा नहीं है ऐसा लोग समझते हैं। यह आत्ययिक चिकित्सा या आकस्मिक चिकित्सा की पुस्तक आयुर्वेद-शास्त्र के प्रसिद्ध व मर्मज्ञ विद्वान आचार्य पं. विश्वनाथ द्विवेदी जो कई महाविद्यालयों तथा स्नातकोत्तर विद्यालयों के प्राचार्य व प्रोफेसर पद पर कार्य कर चुके हैं, द्वारा लिखित अब प्रकाशित हो गई है। हमें विश्वास है कि उपरोक्त पुस्तक चिकित्सकों एवं विद्यार्थियों के लिये प्रेरणाप्रद एवं बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। अतः चिकित्सकों को इसकी प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। (पृष्ठ संख्या २५०)

२४) **उपचार पद्धति (एकादश संस्करण)- लेखकः** पं. रविन्द्र शास्त्री सर्वसाधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रतिवर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें उपचार और पथ्य का साधारण ज्ञान भी हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रख कर इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। (पृष्ठ संख्या १०७)

२५) **किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य (षष्ठ संस्करण)**-किशोर बालकों और तरुणों को कुटेव-जन्य व्याधियों से बचाने का इस पुस्तक में सफल प्रयास किया गया हैं। (पृष्ठ संख्या ११६)

२६) **चर्मरोग दिनदर्शिका (द्वितीय संस्करण)**- यह पुस्तक पंचम अखिल भारतीय शास्त्र, चर्चा परिषद पर विभिन्न बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा बाह्य रोगों पर लिखे गये निबंधों का संग्रह है। शास्त्रोद्धरण तथा आयुर्वेद मनीषियों के निबन्धों का संग्रह निश्चित रूप से बहुत उपयोगी हैं। (पृष्ठ संख्या ५०४)

२७) **चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन**- लेखकः डॉ. ज्योतिर्मित्र।

२८) **त्रिदोष तत्व विमर्श (पंचम संस्करण) लेखक** : आयुर्वेद बृहस्पति वैद्य पं. रामरक्षपाठक, आयुर्वेदाचार्य। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभुत त्रिदोष सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन विधिवत किया गया है। विद्वान लेखक ने त्रिदोष-तत्व के विभिन्न रूपों का भी वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। (पृष्ठ संख्या १९४)

२९) **द्रव्य-गुणविज्ञानम् पूर्वार्ध (षष्ठम संस्करण) लेखकः** आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य वाचस्पति श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य-स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए यह ग्रन्थ अत्युपयोगी है। द्रव्यों के रस गुण, वीर्य विपाक प्रभाव आदि विषयों पर पृथक्-पृथक् पांच अध्यायों में उत्तमतापूर्वक

संकलित कर सरल हिन्दी व संस्कृत भाषा में विवेचन किया है, जो आयुर्वेद विज्ञान की प्रगति के लिए बहुत उपयोगी है। (पृष्ठ संख्या ३९०)

३०) **द्रव्य-गुणविज्ञानम् उत्तरार्ध लेखक:** श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य-यह ग्रन्थ श्री यादवजी का अत्यंत खोजपूर्ण परिश्रम का फल है। इसमें औषधि द्रव्यों का वर्णन है।

३१) **निदान-चिकित्सा हस्तामलक (खण्ड-१) (तृतीय संस्करण)**-लेखक: वैद्य रणजितराय देसाई, विद्यार्थियों और प्राध्यापकों के लिए यह पुस्तक परमोपयोगी है। (पृष्ठ संख्या ६२०)

३२) **निदान-चिकित्सा हस्तामलक (खण्ड-१) (तृतीय संस्करण)**- लेखक: वैद्य रणजितराय देसाई, विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए यह पुस्तक परमोपयोगी है। (पृष्ठ संख्या ७१७)

३३) **निदान-चिकित्सा हस्तामलक (खण्ड-३) (प्रथम संस्करण)**-लेखक: वैद्य रणजितराय देसाई, विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए यह पुस्तक परमोपयोगी है। (पृष्ठ संख्या ६२०)

३४) **निदान-चिकित्सा हस्तामलक (खण्ड-४) (प्रथम संस्करण)** लेखक: वैद्य रणजितराय देसाई, विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी है। (पृष्ठ संख्या ६७२)

३५) **नेत्र चिकित्सा (संस्कृत प्रथम भाग)(द्वितीय संस्करण)**-लेखक: डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे, डॉ. मुंजे की डॉक्टरी शिक्षा पूर्णरूपेण पाश्चात्य पद्धति से सम्पन्न हुई तथापि उनकी संस्कृत भाषा तथा आयुर्वेद शास्त्र में असीम श्रद्धा के ही कारण उन्होंने नेत्र शारीर पर तथा शारीर पर अभिनव तथा अनूठी संस्कृत रचना की है। इस ग्रन्थ में नेत्र शारीर तथा विकृत शारीर पर सरल संस्कृत में विवेचन है तथा विषय ज्ञान की सरलता के लिये १४० से अधिक रेखाचित्रों का भी समावेश है। प्राचीन तथा आधुनिक शास्त्रीय ज्ञान का इस ग्रंथ में समन्वय कर लेखक ने अपनी विद्वता का परिचय दिया है। (पृष्ठ संख्या २८८)

३६) **नेत्र रोग विज्ञान (मराठी)(षष्ठम संस्करण)**-लेखक: डॉ. वैद्य र.रा. पद्मावार, जी.एफ.ए.एम. (मुंबई) वैद्य रमेश पद्मावारजी द्वारा लिखी हुई 'नेत्ररोग विज्ञान' इस समय की आयुर्वेद की मराठी में प्रकाशित होनेवाली इनी गिनी पुस्तकों में से एक उत्तम पुस्तक है। इसमें लेखक ने सुंदर और विवेचन पूर्ण आकृतियाँ, उत्कृष्ठ भाषा शैली और आधुनिक वैद्यक शास्त्र का सुंदर मेल किया है। (पृष्ठ संख्या २०२)

३७) **नेत्र रोग विज्ञान (हिन्दी)(तृतीय संस्करण)**- लेखक: डॉ. र.रा. पद्मावार जी.एफ.ए.एम.(मुंबई) उक्त मराठी संस्करण का हिन्दी अनुवाद, में किया गया है। (पृष्ठ संख्या २०१)

३८) **पदार्थ विज्ञान (सप्तम संस्करण) लेखक:** आयुर्वेद बृहस्पति पं. रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य, देशभर की आयुर्वेदीय संस्थाओं एवं परीक्षा समितियों के पाठ्यक्रम में स्वीकृत।

३९) **परिषद्यं शब्दार्थ शारीरम्- (द्वितीय संस्करण)** - सम्पादक: आयुर्वेदाचार्य पं. दामोदर शर्मा गौड़, भुमिका लेखक: आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी। यह ग्रन्थ आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन के कार्य में लगे लोगों के लिए परम उपयोगी है। (पृष्ठ संख्या २८०)

४०) **मानस रोग विज्ञान (चतुर्थ संस्करण)**- लेखक: स्वर्गीय डॉ. बालकृष्ण अमरजी

पाठक, इस विषय के अंग्रेजी-भाषी विद्वान ज्ञाताओं का कहना है कि मानस शास्त्र जैसा अंग्रेजी में है वैसा अन्यत्र नहीं हैं इस ग्रंथ की रूपरेखा पूज्यपाद ने तैयार की थी, किन्तु इस पुस्तक के अवलोकन से उनके भ्रम का निवारण होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। (पृष्ठ संख्या २२३)

४१) मोटापन कम करने का उपाय (चतुर्थ संस्करण)- लेखक : श्री सन्त प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी यह ग्रन्थ परम उपयोगी एवं मननीय है। (पृष्ठ संख्या १४६)

४२) युनानी चिकित्सा सार (तृतीय संस्करण)- लेखक: हकीम डॉ. दलजीत सिंह- यह सुविदित है कि युनानी दवा के नुस्खे बहुत सस्ते तथा आशु फलदायक साबित होते हैं। विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में ऐसे अनेक रोगों का उल्लेख कर, पुस्तक की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ा दी है। (पृष्ठ संख्या ५७६)

४३) युनानी सिद्धयोग (पंचम संस्करण)- युनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्व सभी जानते हैं। इसके नुस्खे आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरन्त फायदा करनेवाले तथा सस्ते होते हैं। (पृष्ठ संख्या २३७)

४४) यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश (तृतीय संस्करण)- लेखक: डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा, एम.ए.एस.आर.एम.पी. भिषग्रत्न, विद्वान लेखक ने प्राचीन व आधुनिक लेखकों के पूर्वाग्रह से हटकर स्वतंत्र शैली द्वारा वैज्ञानिक एवं सरल ढंग से इस विषय को समझाने का प्रयास किया है। यह ग्रन्थ युवक एवं युवतियों के ज्ञान पर निश्चय ही नया प्रकाश डालने वाला साबित होगा, साथ ही अभिभावकों के लिए भी माननीय होगा। (पृष्ठ संख्या २०८)

४५) वनौषधि शतक (तृतीय संस्करण)- लेखक: प्राणाचार्य वैद्य पं. दुर्गाप्रसाद शर्मा, इस ग्रन्थ में सौ वनौषधियों का विशद परिचय रंगीन चित्रों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक आयुर्वेद के विद्वानों, छात्रों, चिकित्सकों एवं आयुर्वेद से प्रेम रखने वाले साधारण जनों के लिए परमोपयोगी है। (पृष्ठ संख्या २०८)

४६) वैद्य सहचर (दशम संस्करण)- लेखक: आचार्य विश्वनाथजी द्विवेदी, श्री विश्वनाथ द्विवेदी का यह 'वैद्य सहचर' नामक ग्रन्थ लगभग १० वर्षों से अप्राप्य था।

उनकी यह पुस्तक बिना किसी विज्ञापन तथा प्रचार के इतनी लोकप्रिय हुई कि अल्प समय में ही इसके नौ संस्करण निकल गये। बाद में यह पुस्तक वैद्यों द्वारा बहुत दिनों में मांगी जा रही थी। हमने आग्रह करके श्री. द्विवेदीजी से इस पुस्तक का संशोधित संस्करण तैयार कराया। श्री द्विवेदी जी ने पिछले १० वर्षों में जो नये अनुभव प्राप्त किये उन सबको इस पुस्तक में सम्मिलित किया तथा नई विधि से पुस्तक को फिर से लिखा है। मधुमेह (Diabetes) की इसमें बहुत ही अच्छी अनुभव-पूर्ण विशुद्ध आयुर्वेदीय सिद्ध चिकित्सा लिखी है और उसके अन्वेषधों का भी विवरण साथ में दिया गया है। अब यह पुस्तक बिलकुल नये रूप में आप लोगों के सामने प्रस्तुत है। (पृष्ठ संख्या ३४९)

४७) सिद्धयोग-संग्रह (दशम संस्करण) लेखक- आयुर्वेदोद्वारक वैद्यवाचस्पति श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य, पूज्य यादवजी के करकमलों से लिखा हुआ यह ग्रंथ है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से प्रत्येक बैद्य को लाभ होगा, इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है। (पृष्ठ संख्या १७६)

४८) संक्रामक रोग विज्ञान (तृतीय संस्करण)-लेखक: कविराज बालकराम शुक्ल,

आयुर्वेद शास्त्राचार्य-आज जब कि देश में मलेरिया, कुष्ठ, यक्ष्मा, हैजा, प्लेग आदि अनेक भयंकर रोगों से हजारों-लाखों मनुष्य आक्रान्त हो रहे हैं तो यह आवश्यक है कि संक्रामक रोगों से बचने के उपाय, तथा रोग-परीक्षा, निदान-चिकित्सा आदि से भारतीय जनता को पूर्ण परिचित करा दिया जाय, जिससे ये भयंकर रोग होने ही न पावें और यदि हो भी जायें तो उनका उचित प्रतिकार किया जा सके। इस ग्रन्थ में उनका पूरा विवेचन किया गया है। (पृष्ठ संख्या ८१८)

४९) शारंगधर-संहिता (चतुर्थ संस्करण)-टीकाकार: आचार्य पं. राधाकृष्ण पाराशर, शारंगधर-संहिता की अनेक टीकाओं के बावजूद इस टीका में पाठकों को आयुर्वेद का रहस्य नये ढंग से समझाकर लिखा गया है। (पृष्ठ संख्या ६०८)

५०) शालाक्यतन्त्र भाग १ ला (कर्ण-नासा-शिरोरोग) (मराठी सप्तम संस्करण)लेखक-वैद्य र.रा. पद्मावार, अधिष्ठाता, शल्य-शालाक्य तंत्र शासकीय आयुर्वेद म. वि.,नांदेड- कर्ण, नासा, शिरोरोग पर यह ग्रन्थ सरल भाषा में लिखा गया है। (पृष्ठ संख्या २१९)

५१) शालाक्य तन्त्र भाग २ (मुखरोग) (मराठी षष्ठम संस्करण)-लेखक-वैद्य र. रा. पद्मावार, नांदेड- मुख रोगों पर यह ग्रन्थ सरल भाषा में लिखा गया है। (पृष्ठ संख्या २३०)

५२) शारीर क्रिया विज्ञान (मराठी तृतीय संस्करण)-लेखक: वैद्य रा.उ. पद्मावार, वैद्य र. रा. पद्मावार, प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद के स्नातक आयुर्वेदाचार्य - बी.ए.एम.एस. पाठ्यक्रम के शारीर क्रिया विज्ञान विषयक अंशों का सरल एवं विस्तृत वर्णन लेखक-वैद्य रा.ऊ.पद्मावार, यवतमाल एवं वैद्य श्री रमेश पद्मावार नांदेड द्वारा किया गया है। इस पुस्तक में लेखकद्वय ने दोष, धातु तथा मलों का सविस्तर वर्णन सुबोध भाषा में किया है। मराठी भाषा में इस विषय पर इस प्रकार की पुस्तक उपलब्ध नहीं है। (पृष्ठ संख्या २७५)

५३) शारीर क्रिया विज्ञान (हिन्दी) उक्त मराठी संस्करण का ही हिन्दी अनुवाद बहुत ही सरल हिन्दी भाषा में किया है। (पृष्ठ संख्या २७९)

❖❖❖

निम्न किताबें भी मिलती हैं।

१) पारद विज्ञानीयम् (तृतीय संस्करण) लेखक- श्री वासुदेवजी मुलशंकरजी द्विवेदी। विद्वान लेखक ने आयुर्वेद मर्मज्ञ पं. श्री रामनारायणजी शर्मा के व्यक्तिगत निरीक्षण में अपने लम्बे अनुभव के आधार पर पारद के अष्ट संस्कारों का संपादन करते हुए उनके परिणामों को इस ग्रन्थ में लेखबद्ध किया है। ग्रन्थ में पारद के संस्कारों का प्रात्यक्षित विवरण दो बडे चार्ट द्वारा स्पष्ट किया गया है। (पृष्ठ संख्या ३५५)

२) भारतीय रसशास्त्र- लेखक: श्री विश्वनाथ द्विवेदी- इस में अनेकानेक रस साहित्य विवरण जो अद्यावधि उपलब्ध नहीं थे, उसका समावेश है। (पृष्ठ संख्या ५९२)

❖❖❖

अंग्रेजी प्रकाशन
English Publication

(1) Therapeutic Guide - to Ayurvedic Medicines.

Page 421

(2) Digestion and Metabolism in Ayurveda.

Page 351

(3) Science & Philosophy of Indian Medicines

By- Shri K.N. Udupa M.S. FRCS, FACS

And R.H. Singh Ph.D.

(4) Baidyanath Book of Ayurved Knowledge.

(5) Arogya Prakash Part I, Part II,

By Vaidyaraj Pandit Ramnarayan Sharma

Page 443

(6) Treatise of 30 Important Baidyanath Products.

(7) The Problems of Ayurvedic Research.

(8) Basic Principles of Ayurved.